Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी, 2010 ■ बीस रुपये

र्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)
2010
JAN-JUN
131844

नववर्ष की शुभकामनाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शमशेर बहादुर सिंह

13 जनवरी, 1911–12 मई, 1993

चुका भी हूँ मैं नहीं

चुका भी हूँ मैं नहीं
कहाँ किया मैंने प्रेम
अभी।

जब करूँगा प्रेम
पिघल उठेंगे
युगों के भूधर
उफन उठेंगे
सात सागर।

किन्तु मैं हूँ मौन आज
कहाँ साजे मैंने साज
अभी।

सरल से भी गूढ़, गूढ़तर
तत्व निकलेंगे
अमित विषमय
जब मथेगा प्रेम सागर
हृदय।

निकटतम सबकी
अपर शौर्यों की
तुम
तब बनोगी एक
गहन मायामय
प्राप्त सुख
तुम बनोगी तब
प्राप्य जय!

—शमशेर बहादुर सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संस्थापक संपादक
❑ विभूतिनारायण राय
संस्थापक संपादक (अलीगढ़ प्रारूप)
❑ कुँवरपाल सिंह
संपादक
❑ नमिता सिंह
सह संपादक
❑ अजय बिसारिया ❑ राजीवलोचन नाथ शुक्ल
प्रबंध-संपादक : राजीव श्रीवास्तव
सलाहकार : वेद शर्मा, बीकानेर
विशेष सहयोग : परवेज़ फ़ातिमा
पृष्ठ सज्जा : बिसारत अली
रेखांकन : सिद्धेश्वर, करबिगहिया, पटना (बिहार)
(केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा से सहयोग प्राप्त)

वर्ष 27 ❑ जनवरी, 2010
RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय
28 एम.आई.जी., अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
टेलीफैक्स: 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114
Web. : www.khabarexpress.com
E-mail : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com
सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/- ❑ वार्षिक : 230/- ❑ संस्थाओं व पुस्तकालयों के लिए : 300/- ❑ आजीवन : 2000/- ❑ विदेशों में साधारण अंक : 4 डालर ❑ वार्षिक : 60 डालर
(सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएं तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएं। चैक से भुगतान करने पर तीस रुपये अतिरिक्त जोड़कर भेजें।)
प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से कान्तिप्रसाद शर्मा (011-20013119) द्वारा रुचिका प्रिंटर्स से मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar 249404 (U.A.)

इस अंक में

131844

पाठक मंच/2

अपनी बात/7

स्मरण
के0 बालगोपाल का न रहना/सुभाष गाताड़े/10

लेख
क्या मंदी जा रही है/गिरीश मिश्र/12
टॉल्सटॉय द्वारा वेश्या का उद्धार/डॉ0 भवदेव पांडेय/35

कहानी
रिसाइकिल बिन में मल्लिका/भगवान वैद्य प्रखर/14
'न' कहने का अधिकार/महेन्द्र फुसकेले/18
वी0आर0एस0/गिरीश पंकज/23
ध्वंस/दिनेश पालीवाल/38

दोहे/ग़ज़ल
ग़ज़ल/कुलजीत सिंह/29
ग़ज़ल/डॉ0 शचीकांत/29
ग़ज़लें/महेन्द्र सिंह/30
बने फिरें रसखान/नरेन्द्र तिवारी/37
टेलेंट हंट/सुहैल अख्तर/50
ग़ज़ल/टीकेन्द्र शाद/68

चिंतन
भविष्य का मैगा शहरीकरण...../रमेश कुंतल मेघ/31

देशांतर : कहानी
मौत के दूसरी तरफ/गैबरियल गार्सिया मारखेज़/51

लघुकथा
कभी-कभी/डॉ0 शैलजा 'श्यामा'/28
सयाना लकड़हारा/डा0 शैलजा 'श्यामा'/61
समाप्ति/डॉ0 शैलजा 'श्यामा'/66

शताब्दी वर्ष पर
गुलेरी जी की कहानियों से गुज़ाते हुए/छबिल कुमार मेहेर/56

आज की बात
श्रमिकों का दर बदर होना/वेद प्रकाश/60

मीडिया
साहित्य और सिनेमा/सी0 भास्कर राव/62

फिल्म
भारत का अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह-2009/राजीव श्रीवास्तव/67

पुस्तक समीक्षा
सम्पाति और मर्यादा पुरुषोत्तम राम/मंजु शर्मा 'वनिता'/69
साधारणता में विशिष्ट खोज की कविताएँ/नरेन्द्र पुण्डरीक/70
प्रतिरोध के पक्ष में खड़ी कविताएँ/डॉ0 कुमार वीरेन्द्र/71
खुरदरे समय के रिसते घावों के दृश्यबिंब/रमाकांत शर्मा/73
बोलते बिंब की अग्निमय लहरें/विप्लवी हरिकृष्ण राय/74
पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ/डा0 सुनीता ठाकुर/75

सांस्कृतिक समाचार / 77

मेरी वसीयत/कुँवरपाल सिंह/80

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□

'वर्तमान साहित्य' का नवंबर, 2009 अंक। 'अपनी बात' में आपने ठीक कहा है कि अगर ग़रीबी को वाकई में दूर करना है तो रोजगार की व्यवस्था करनी होगी और अपनी ज़मीन को सुरक्षित कराना होगा जिससे वह अपने परिवार का पालन पोषण कर सके। आज ज़मीन का सवाल बहुत अहम हो रहा है।

प्रिया तेंदुलकर की 'कानी का ब्याह को....' कहानी प्रभावित करती है। इस कहानी की नायिका ने अपनी भारतीय परंपरा को क़ायम रखा है। इन्दुबाली की 'एक यात्रा' की नायिका कुंठित महिला है। अगर बच्चे की चाह है तो अनाथालय से भी बच्चा गोद लिया जा सकता है। प्रमोद रंजन का 'चयन के विकल्प पर ताला'. .. आजकल सारे अखबार एक जैसी खबरें छाप रहे हैं जिसके लिए हम किसी एक अखबार का चयन नहीं कर सकते हैं। अखबार वही अच्छा माना जा सकता है; जो सही सूचना दे। समय संवाद में कुँवरपाल सिंह ने अपने लेख के माध्यम से विश्वविद्यालयों में शोध में चल रही मनमानी के लिए सतर्क करने की कोशिश की है। अगर शोध पद्धति में सुधार आ जायेगा तो जो मेहनती बच्चे हैं वह भी बच जायेंगे क्योंकि कभी-कभी रिश्वत, घूस देने की चपेट में मेहनती बच्चे भी आ जाते हैं। लोग उनकी डिग्री को भी रिश्वत की डिग्री समझते हैं। साहित्य जगत् से अचानक कुँवरपाल सिंह का चले जाना बड़ा ही दुखद रहा लेकिन व्यक्ति अपनी रचनाओं से हमेशा अमर रहता है। उनकी रचनाएँ पाठकों को हमेशा उनकी याद दिलाती रहेंगी और लोगों के ज्ञान में बढ़ोत्तरी करती रहेंगी।

जया सिंह, कानपुर

□

'वर्तमान साहित्य' का अक्टूबर अंक यहाँ के स्टाल से खरीदा। पिछले एक अंक की तरह इसमें भी मणि में नग की तरह एक रचना चमकती है, प्रिया तेन्दुलकर की कहानी 'कानी का ब्याह'। शीर्षक को छोड़कर पूरी कहानी निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात' की याद कराती है। निर्मल ने भूख से जूझते बेकार लोगों की ठंड में ठिठुरती ज़िंदगी को बताया है तो किंचित स्ट्रक्चर को बदलकर यही प्रेमचंद ने 'पूस की रात' में किया है। प्रिया की कहानी का चिलिंग अनुभव यह है कि कदम-कदम पर बलात्कार, अपहरण और बेईज्जती का डर है। वह इतना मूर्त है कि विमान परिचालिकाओं की आशंका से भरी आजीविका का आतंक बन जाता है। भारतीय ढंग से, सुरक्षित घर पहुँचते ही माँ को याद कर रोना सहज स्वाभाविक है। रचना का मराठी में भी हिन्दी के समान ही स्तर है।

प्रो0 परेश, चंडीगढ

□

अक्टूबर, 2009 अंक पढ़ा। साहित्य को नित नई पहचान प्रदान करता 'वर्तमान साहित्य' एक नये रूप में दिखा। 'अपनी बात' में आपके विश्लेषण करने का तरीका हृदय के किसी कोने को छू गया। सच-रचना अगर समाज विरोधी, नकारात्मक है तो निश्चित ही उसका सही स्थान कूड़ेदान है, लेकिन सवाल यह है कि यह तय कौन करेगा कि, रचना समाज विरोधी है... समाज के वर्तमान नियंता या तथाकथित साहित्य के शीर्षस्थ पर विराजित महाधीश। 'समय संवाद' में कुँवरपाल सिंह का संवाद रचा। गांधी स्मरण में शंभुनाथ, गिरीश मिश्र, देवी प्रसाद मौर्य, कन्हैया त्रिपाठी के विचार प्रेरणाप्रद व ज्ञानवर्धक है। कविताओं में सुनीता जैन, शैलेय, सुरेन्द्र काले व निशांत का कविताएँ अच्छी लगीं। कामेश्वर पाण्डेय ने अपनी कहानी में 'टिप्पल' का जीवंत वर्णन किया है, हर गली-मुहल्ले में टिप्पल का चरित्र दिखलाई पड़ ही जाता है। सनत कुमार की कहानी 'अलस भोर में' एक अच्छी कहानी है। 'छुट्टी' कहानी पारिवारिक संतुलन को नये आयाम प्रदान करती सशक्त रचना है। सफल संपादन हेतु बधाई स्वीकारें।

बृजेन्द्र अग्निहोत्री, फतेहपुर

□

पत्रिका का अक्टूबर अंक प्राप्त हुआ। जिस प्रकार राजनीतिक एवम् सामाजिक जगत् में एक वर्ग-विहीन अमन-चैन से परिपूर्ण समाज की स्थापना के प्रयास में महात्मा गांधी का नाम सर्वोपरि है, वहीं प्रेमचंद जी के साहित्यिक अवदान को भी भुला पाना असंभव है, जिन्होंने यथास्थितिवाद का विरोध करते हुए परिवर्तनकारी सामाजिक शक्तियों को स्वीकारने पर बल दिया। धर्म के नाम पर समाज को गुमराह करने की वर्चस्ववादियों की चाल को ध्वस्त करने के लिए जो मशाल ज्योतिबा फुले तथा बाबा साहब भीमराव अंबेडकर ने जलाई, उसी को क्रांति की ज्वाला का रूप देने में गांधी जी एवम् प्रेमचंद जी का योगदान भी कम नहीं है।

सुशांत सुप्रिय की 'छुट्टी' शीर्षक कहानी लघु होते हुए भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदना के धरातल पर गहराई लिए हुए है। 'पुनर्पाठ' स्तंभ के तर्गत रतनकुमार सांभरिया का लेख प्रेमचंद, 'मंदिर और दलित' ढ़ा। इसमें उन्होंने मुंशी प्रेमचंद के लेखन के प्रति आलोचनात्मक ष्टि अपनाते हुए उनके लेखन को स्वभौम लेखन कहा है, जो र्वथा अनुचित है। 'चुड़ैल' और 'चाण्डाल' शब्द (दलितों के लिए) ुंशी प्रेमचंद जी के स्वयं के दिये हुए नहीं थे। वे तो वही दिखा हे थे जो तत्कालीन समाज में हो रहा था। सामाजिक परिवर्तन ा एक अन्य तरीका समाज को आईना दिखाना भी है।

'समय संवाद' स्तंभ पढ़ा। लेखक का दायित्व बहुत बड़ा ौर गंभीर होता है, क्योंकि साहित्यकार तत्कालीन समाज एवम् ावी पीढ़ी को बीच का सेतु होता है। गांधी जी या प्रेमचंद को लित-विरोधी कहने वालों को यह समझना चाहिए कि अधूरा ज्ञान बसे ख़तरनाक होता है। हर बार की तरह इस बार का अंक भी चारोत्तेजक एवम् पठनीय है।

आरती त्रिपाठी, कानपुर

□

र्तमान साहित्य' के अक्टूबर 2009 अंक में 'हिन्द स्वराज्य' के रे में श्री देवी प्रसाद मौर्य और श्री कन्हैया त्रिपाठी के लेख पढ़े। ामग्री महत्वपूर्ण है। महात्मा गांधी ने सन् 1909 ई0 में भारत के ोगों को एक कालजयी वैचारिक कृति 'हिन्द स्वराज्य' के रूप में । इंग्लैण्ड से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए गांधी जी ने जहाज में ह पुस्तक गुजराती में लिखी। 'इंडियन ओपीनियन' में धारावाहिक पकर जब यह किताब रूप में आई तो 1909 ई0 में सरकार द्वारा ब्त कर ली गई। इसी बीच धनपतराय (प्रेमचंद) का पाँच हानियों का पहला संग्रह 'सोज़े वतन' छपा जिसे सरकार ने ज़ब्त र शेष सात सौ प्रतियों को आग के हवाले कर दिया। इसके बाद र धनपतराय ने अपना लेखन 'प्रेमचंद' के नाम से ही किया। स प्रकार वर्ष 2009 दो महत्त्वपूर्ण कालजयी कृतियों का शताब्दी र्ष है। सौ साल पहले के विचारों से यदि हमें कुछ नई राह सूझती तो यह हमारे लिए सकरात्मक है।

डा0 रमेश चन्द्र शुक्ल, लखनऊ

□

तंबर, 2009 का अंक। संपादकीय ने अत्यधिक प्रभावित किया। तन में यदि वास्तव में मानवमात्र के कल्याण की भावना हो तथा ष्टिफलक व्यापक हो तो मानव के वास्तविक कल्याण की ाधारशिला रखी जा सकती है। आज जो विश्वव्यापी विचारधारात्मक मस्याएँ हैं, वे बौद्धिक बेईमानी के ही कारण हैं। बौद्धिक मानदारी से तमाम विचारधारात्मक समस्याएँ स्वतः ही हल हो ाएँगीं और तब शायद सैम्युअल हटिंगटन की 'सभ्यताओं के घर्ष' वाली स्थिति उत्पन्न ही न हो।

ज्ञान-विज्ञान ही विकास के प्रमुख आधार स्तंभ हैं। जो इन त्रों में जितना अधिक दखल रखेगा वह प्रगति के मार्ग में उतना ो आगे बढ़ जाएगा। बंद समाजों में बंद मानसिकता के रहते विकास की प्रक्रिया चल ही नहीं सकती व पिछड़ापन दूर हो ही नहीं सकता। ज्ञान को सीमित करने की प्रक्रिया आखिर कब तक चलती रहेगी? कब तक संकीर्ण मानसिकता, अवरुद्ध विचार शक्ति, तर्कहीन धार्मिक धारणाएँ, कर्मकाण्ड व रूढ़ियाँ समाज की प्रगति को रोकेंगे और इनके कारण विभाजनकारी तत्वों को बल मिलता रहेगा?

आज प्रत्येक वस्तु, घटना व विचार को तर्कनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ व संतुलित दृष्टि से देखने और एक ऐसे गतिमान दृष्टिकोण को अपनाए जाने की आवश्यकता जो जड़ समाज को तेज़ी से बदल सके।

मु0 रज़ा, शोधछात्र, हिन्दी विभाग,
अ0मु0वि0, अलीगढ़

□

अपने संपादक, समर्पित साहित्य मनीषी, कृतिजीवी, मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत कुँवरपाल सिंह के महाप्रयाण का समाचार 'अमर उजाला' में पढ़कर स्तब्ध रह गया। 'समय संवाद' से मैंने जो कड़ी जोड़ी थी, वह अचानक टूट गयी।

मैंने सितंबर, 2009 के अंक में संपादक कुँवरपाल सिंह का 'समय संवाद'-उच्च शिक्षा में बंधुआ मजदूर बड़े मनोयोग से पढ़ा। मैंने कुछ बिन्दुओं को 'वर्तमान साहित्य' में लिखकर भेजने का मन बनाया। सोचा कि वैसे तो पत्रकारिता बाजारीकरण की चपेट में है, जिससे वह निरंतर प्राणहीन हो रही है और अपने उद्देश्यों से भटक रही है, किन्तु कुँवरपाल सिंह सरीखे संपादक प्रकर पत्रकारिता को जीवंतता प्रदान करने में अग्रणी है। कुँवरपाल सिंह की इसी अदप्रेरणा से और जुड़ने का मन बनाया। शायद विधाता को इतना की मंजूर था।

बाजारीकरण के कारण समाप्त प्राय साहित्यिक पत्रकारिता को कुँवरपाल सिंह ने सदैव नया जीवन देने का महान योगदान किया। इसे साहित्य जगत भुला नहीं सकता। 'वर्तमान साहित्य' कुँवरपाल सिंह की साहित्यिक सेवाओं को बढ़ाता रहेगा-ऐसा मेरा विश्वास है।

डा0 रमेश वर्मा, कानपुर

□

मुझे मेरे साथी श्री देवेन्द्र कुमार जी से परम आदरणीय भाई कुँवरपाल सिंह जी के देहावसान का दारुण समाचार मिला। वे व्यक्ति नहीं संस्था थे और उन्होंने अपने शिष्यों के द्वारा हिन्दी साहित्य जगत् को अमूल्य निधि प्रदान की मेरी उनके प्रति श्रद्धांजलि। आप विश्वास कीजिए कि इस दारूण दुःख में मेरा हृदय आपके साथ है।

दिवाकर शास्त्री, अध्यक्ष, वनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली विद्यापीठ-304022

□

भाई प्रो0 के0पी0 सिंह के निधन के दुखद समाचार को पढ़कर मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तब्ध रह गया। यह आपकी व्यक्तिगत क्षति तो है ही, साहित्य जगत की अपूरणीय क्षति भी है। कुछ जख़्म कभी नहीं भरते। मार्च मास में उनसे हम आखिरी कर मिले थे। अस्वस्थ होने के बावजूद उन्होंने जिस अपनत्व और गर्मजोशी से डाक्टर साहब को भुजाओं में भेंटा, वह दृश्य मेरे मानस में आज भी अमिट है। सचमुच प्यार लुटाने का ऐसा माद्दा जल्दी-जल्दी नहीं मिलता। पूर्व में भी उनसे जब-जब हमारी मुलाकात हुई, हमेशा निर्व्याज प्रेम की गंगा के रूप में पाया।

प्रोफ़ेसर उषा यादव, आगरा

□

वरिष्ठ साहित्यकार प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह के आकस्मिक निधन से साहित्य जगत् अवसन्न है। डी0ए0वी0 कॉलेज, कानपुर के हिन्दी विभाग में विभागाध्यक्ष डा0 शारदा रंजन शुक्ल की अध्यक्षता में प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह के मानवीय, सामाजिक साहित्यिक सरोकारों का स्मरण करते हुए उनके रचनाकार की गंभीर वास्तविक चिंताओं की चर्चा हुई।

डा0 शारदा रंजन शुक्ल, कानपुर

□

डा0 साहब के निधन के समाचार से हम सभी स्तब्ध हैं। प्रगतिशील-जनवादी आंदोलन के साथ यह हमारे लिए व्यक्तिगत भी गहरी क्षति है। डा0 साहब की प्रतिबद्धता, सजगता, सहजता व सक्रियता हमारे लिए हमेशा प्रेरणा स्रोत रही है। नये रचनाकारों को प्रेरित, प्रोत्साहित, प्रकाशित व मार्गदर्शित करने की डा0 साहब की सतत् पहल से रचनाकारों को उर्जा मिलती रही है। प्रेमचंद, सुभद्राकुमारी चौहान, रांगेय राघव, महादेवी वर्मा, रशीदजहाँ, प्रवासी साहित्य आदि पर वर्तमान साहित्य के विशेषांकों ने नई पीढ़ी को रचनाकारों को जानने व समझने की दृष्टि दी है।

दुःख के इन क्षणों में हम आपके सहभागी हैं तथा मनुष्य, मूल्य व विचारधारा के प्रति डा0 कुँवरपाल सिंह जी की शिक्षा के अनरूप कार्य करने को संकल्पित हैं।

सुरेश उपाध्याय, महासचिव,
एम0पी0 बैंक आफीसर्स एसोसियेशन, भोपाल

□

डा0 कुँवरपाल सिंह के निधन का समाचार सुनकर अत्यंत दुःख हुआ। डा0 कुँवरपाल जी के निधन से साहित्य की अपूरणीय क्षति हुई है। वे उच्चकोटि के विद्वान और लेखक थे। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी, लेखक और साहित्यकार उन्हें सर्वदा याद रखेंगे। 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका के वे प्राणपुरुष थे। वे अतीत उदार स्वभाव के व्यक्ति थे। पूरे हिन्दी साहित्य के समाचार वे छापते थे। छोटा बड़ा कोई साहित्य संबंधी समाचार अछूता नहीं रहता था। इसीलिए सब लोग उनका सम्मान करते थे और श्रद्धा की दृष्टि से उनको देखते थे। यह तो सभी को मानना पड़ेगा कि 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका को एक उच्चकोटि की साहित्यिक पत्रिका बनाने में उनका बहुत बड़ा अवदान था। इस पत्रिका को बड़ा बनाने के लिए आर्थिक और साहित्यिक दोनों प्रकार की कठिनाइयों का स करना पड़ा किन्तु वे कभी झुके नहीं। वे पत्रिका के सम्मा बचाने के लिए जीवनभर लड़ते रहे। उच्चकोटि के गणेषक, प्र और साहित्यिक पथप्रदर्शक के अलावा वे हिन्दी साहित्य क चोटी के पत्रकार भी थे। अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ 'जलेस' से उनका गहरा संपर्क था। अपने दायित्व को वे समझते थे। आज वर्तमान साहित्य का पूरा भार डा0 नमिता कंधों पर आ गया है। आशा है, उनके नेतृत्व में 'वर्तमान सा पत्रिका सर्वदा आगे बढ़ती रहेगी।

निर्भय मल्लिक, पश्चिम

एक पत्र और

'वर्तमान साहित्य' के अंकों को मैं गौर से पढ़ता रहा हूँ। मैं ज़िम्मेदारी से यह कह सकता हूँ कि उसका रूप सरोकार नि गया है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि और पत्रिका की वैचा प्रतिबद्धता को आपने क़ायम रखा है। इस दौर में वाम विचारधारा के साहित्य को निरर्थक या आउट डेटेड सिद्ध करने एक अभियान सा चला है। एक हल्ला सा मचाया जा रहा है विचार तक तो मामला ठीक है, विचारधारा निरर्थक हो गई धार्मिक कट्टरता, भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद के संकट का अ सभी कर रहे हैं, इन्हें कोस भी रहे हैं और उनसे अपनी असह भी ज़ाहिर कर रहे हैं। संकट के ये सभी रूप पूँजीवादी विचार की अनिवार्य नियमावली हैं, इसे भी मानने में किसी को उज्र है। इसके बावजूद इनसे टकराने के लिये विचारधारा की ज़रूरत नहीं है? संगठन का कोई अर्थ नहीं है? कलम को तल की तरह भांजकर अकेले ही इस संकट से जूझने की कल्पना कुर्सीतोड़ लेखक ही कर सकता है। कोई नहीं कहता कि सड़क पर आयें या संगठन के सदस्य बनें लेकिन जो संगठन व्यापक वैचारिक आधार बना रहे हैं उन्हें अप्रासंगिक क बौद्धिक चर्वण भी करने वालों को क्या कहिये। इस कठिन में कुछ ऐसे नये लेखक उभरे हैं जो प्रतिभाशाली तो है जिनके लेखन में झोल है, वे भी फैशनेवल मसीहाई मुद्रा में यह रहे हैं कि उनकी रचना का आधार संघर्ष की चेतना नहीं बल्कि जमाने की समस्याएँ हैं जो विगत शताब्दी से भिन्न हैं। अधकचरे विचार से कुछ संपादक भी प्रभावित लगते हैं, जबकि समझने के लिए किसी विशिष्ट ज्ञान की ज़रूरत नहीं है कि जो भी सामाजिक परिदृश्य है वह पूँजीवाद का ही विकसित रूप शत्रु वही है, उसके हथियार भर बदल गये हैं। नई तकनालॉजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार मान लेना और सूचनातंत्र को नया ज्ञान समझ लेना द्भ्रम है। सूचनाओं का अंबार अपने आप में विवेक नहीं है। ा इतिहास बोध के वह क्विज का अच्छा खिलाड़ी भर बना ता है। यहाँ इस स्थिति को समझ लेना भी ज़रूरी है कि इस य क्विज़ के सबसे अच्छे खिलाड़ी बच्चे और किशोर हैं। स्था की कोशिश है कि सूचना और विवेक के अंतर को समाप्त दिया जाए। इस झांसे में कुछ लेखक और समीक्षक हैं। अपने नयों का मसीहा बनाने की लालसा में कुछ संपादक इसे हवा दे रहे हैं।

इस परिदृश्य का दुखद पहलू यह है कि जहाँ आक्रामक होना हिए वहाँ वामपंथी समीक्षा बैकफुट पर है। विगत दिनों कुछ त्रिकाओं में विचार शून्य समीक्षायों को महत्वपूर्ण बना कर और ाऊ रचनाओं को नये ज़माने के युवा पाठ की तरह रेखांकित ते हुए प्रकाशित किया। यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो 'वर्तमान हित्य' के किसी अंक में आपने लिखा था कि दिल्ली के किसी क ने आपको आज के स्टार लेखकों की सूची भेजी थी। आपको बात के लिये बधाई कि आप ऐसे बाज़ारवादी विचार से वित नही हुई और हिन्दी साहित्य के मौजूदा ट्वेन्टी-ट्वेन्टी के ार खिलाड़ियों के आंखमूंद कर मारे गये चौकों-छक्कों से अपनी का को बचा ले गईं। हिन्दी साहित्य के विशाल युवा रचना ार को हाशिये पर डालकर सात-आठ चिकने-चुपड़े नामों को ही लनेवाली एकाक्षी समीक्षा और लंगड़ी संपादन कला इस समय सबसे बड़ी कमजोरी है। वर्तमान साहित्य में कुछ अन्य जोरियाँ हो सकती हैं किन्तु यह फिसलन उसमें नहीं है। रहाल, वर्तमान साहित्य के अक्टूबर, 2009 के अंक के बहाने छ बातें और–

हिन्दी साहित्य में गंभीर लेखों की समृद्ध परंपरा रही है जो ज भी ज़ारी है किन्तु इन दिनों नकली बौद्धिकता, ज्ञान के बघार र नपुसंक भाषा का एक रोग सा व्याप्त है। हिन्दी की साहित्यिक काओं का सामान्य पाठक बिटिर-बिटिर ताकता रह जाता है इन लेखों को वह कैसे समझे? घनघोर बौद्धिकता के कुहासे में ते हुए भी उसे भय लगता है। हम जिन्हें बुद्धिजीवी पाठक ते हैं उनमें से अधिकांश, ऐसे लेखों को फिर कभी फुरसत से ने के लिये रख देते हैं। मैंने एक ढ़ीले-ढ़ाले सर्वे की तरह कई किकों और पाठकों से इस संबंध में जानकारी एकत्र की और इस ीजे पर पहुँचा कि हिन्दी की अधिकांश साहित्यिक पत्रिकाओं शायद कोई पूरा पढ़ता है। मुझे संदेह है कि ऐसी रचनाओं को ादक भी पढ़ते होंगे। नतीजा यह कि हिन्दी का सामान्य पाठक ना और समाज के महत्वपूर्ण मुद्दों से हट रहा है। उद्धरणों धिकतर विदेशी लेखकों के) से भरपूर, अपठनीय भाषा में, पेक्षित ज्ञानाडम्बर से भरे लेखों को पढ़ेगा कौन? हिन्दी के मान्य पाठक कई लेखकों को विद्वान तो मानते हैं किन्तु उन्हें ते नहीं हैं। हमारे अत्यंत महत्वपूर्ण समीक्षक और लेखक तो सहज भाषा में संश्लिष्ट और गंभीर विषयों पर लिखते रहे हैं। हिन्दी साहित्य के इस सहज गुण से आज के ज्ञानीजन कट गये हैं।

वर्तमान साहित्य के अक्टूबर अंक में गांधी पर प्रकाशित लेख पढ़ना सुखद अनुभव है। शंभुनाथ और गिरीश मिश्र के लेख महत्वपूर्ण हैं जो विषय की गहराई में उतरते हैं और एक रचना जैसा स्वाद देते हैं। शंभुनाथ 'हिन्दुस्तानी की भावधारा' को विश्लेषित करते हुए इसे रेखांकित करते हैं कि स्थानीय पहचानें हिन्दी की ताकत हैं किन्तु स्थानीयता अपनी सीमा में सिमटकर विकासशील राष्ट्रीय अस्मिता को ठुकरा देती है। छत्तीसगढ़ के संबंध में उनकी यह टिप्पणी बहुत सही है कि सत्ता संघर्ष में शामिल एलीट व्यक्ति छत्तीसगढ़ी भाषा को हिन्दी भाषा की प्रतिस्पर्धा में खड़ी करने का प्रयास करता है। इस बाबत में यह और जोड़ना वाहता हूँ कि ऐसे व्यक्तियों में से अधिकांश के घरों में बच्चे छत्तीसगढ़ी नहीं बोलते। वे अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं जो वर्तमान समय में एक विवशता भी है। सभी जानते हैं कि हिन्दी और अंग्रेज़ी की ही ज़रूरत पड़ने वाली है। दुखद यह है कि छत्तीसगढ़ी भाषा की रचनाधर्मिता का स्तर दयनीय हो गया है। छत्तीसगढ़ी की पत्रिकाओं के प्रकाशन के उपरांत छत्तीसगढ़ी कविता और कहानी समकालीन रचनाधर्मिता और आधुनिक भावबोध से पीछे हैं। अच्छी रचनाएँ उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं। जो गंभीर और महत्वपूर्ण रचनाएँ आई हैं उन्हें रेखांकित भी नहीं किया जाता। मंत्रियों के हाथों अपनी कृति का लोकार्पण करके दो दिन के लिये चर्चा में आने की होड़ लगी है। जो ऐसा कह दे वह खलनायक और जो हवाई बातें करते हुए छत्तीसगढ़ी को हज़ार वर्ष प्राचीन भाषा सिद्ध कर दे वह संस्कृति का नायक। गनीमत है कि यह समझने वालों की संख्या भी काफ़ी बड़ी है कि छत्तीसगढ़ी के विरुद्ध हिन्दी का यह खेल अस्वाभाविक तो है ही, हानिकारक भी है।

मैं गिरीष मिश्र के लेख को विशेष रूप से रेखांकित करना चाहता हूँ। यह छोटा किन्तु सार्थक लेख है-'नावक के तीर' की तरह। यह 'मजबूत नेता' शब्द की गंभीर ऐतिहासिक व्याख्या करता है। सांप्रदायिक तनाव फैलाने वाले नेता को 'मजबूत' और 'लौह पुरुष' के रूप में पेश करने की दक्षिणापंथी ऐतिहासिक परंपरा को याद दिलाते हुए गांधी को मजबूती को रेखांकित करना ज़रूरी है। कुँवरपाल जी 'समय संवाद' में गांधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत से असहमति जाहिर करते भी उनकी शिक्षानीति की मूल भावना की ज़रूरत की ओर संकेत करते हैं। यह वैचारिक ईमानदारी है।

प्रेमचंद की 'मंदिर' कहानी पर चर्चा दिलचस्प से कहीं अधिक आश्चर्यजनक है। शताब्दियों के संधिकाल की चेतना से मुक्त कोई पाठक या समीक्षक रत्नकुमार सांभरिया जैसी समीक्षा लिखे तो यह विस्मय भाव के अलावा और क्या देगी? प्रेमचंद की कहानी समग्रता में एक विशेष काल के भारतीय समाज के यथार्थ को चित्रित करती है। अंधविश्वास से भरे समाज में व्यक्तियों के स्वाभाविक व्यवहार का चित्रण करने वाला लेखक अंध विश्वासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होता। प्रेमचंद की पूरी कहानी सुखिया के पक्ष में और पंडित जी तथा पाखण्डी भक्तों के विरुद्ध है। जहाँ तक मंदिर प्रवेश का प्रश्न है वह बेशक दलितों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति में फर्क पैदा नहीं करता किन्तु वह सैकड़ों साल से चले आ रहे अंधविश्वास, जड़ता और सवर्णों के एकाधिकार के विरुद्ध एवं सक्रिय विरोध है। जब डा0 अंबेडकर ने महार ग्राम में 'चौदार सरोवर' आंदोलन किया था तो वह भी ऐसा ही क्रांतिकारी प्रतीकात्मक विरोध था। उससे भी दलितों की आर्थिक दशा में सुधार नहीं होता किंतु इतिहास को वह आंदोलन गति प्रदान करने में सहायक था। मंदिर कहानी में पंडित खलपात्र है। प्रेमचंद उससे असहमत तो हैं ही उनका उद्देश्य यह भी है कि पाठक उसकी चालाकी को समझे। सामान्य पाठक इसे समझ भी लेता है। आश्चर्य है कि सांभरिया जी पंडित की चालाकी को लेखक की चालाकी के रूप में पेश करते हैं। कथा लेखन के सामान्य से व्याकरण को ताख पर रखकर वे मनमाने निष्कर्ष निकालते चले गये हैं। सुखिया बीसवीं सदी के दूसरे-तीसरे दशक की एक सामान्य दलित पात्र है जिसके मन का विद्रोह आज के दलित आंदोलन के विरोध जैसा नहीं हो सकता था। फिल्मी तरीके से किसी पात्र को अस्वाभाविक ढंग से क्रांतिकारी बना देना लेखन में क्रांतिधर्मिता नहीं कही जा सकती। यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिएं कि सांभरिया जी की विवेचना में आलोचना विवेक शून्य है। आपने संपादकीय में मंदिर कहानी का विश्लेषण समीक्षाकर्म की तरह किया है। अतः विस्तार से कुछ और लिखने की आवश्यकता नहीं है।

इस अंक में दो कहानियों-'केवट मतवारो माने नहीं' और 'अलस भोर में' के लेखक कामेश्वर पाण्डेय और सनत कुमार नाम कुछ आलोचकों-संपादकों की स्टार सूची में बेशक नहीं किन्तु इनकी कहानियों की अंतर्वस्तु और सहजता पाठक आकृष्ट करती है। हिन्दी कथा साहित्य की आलोचना तो कई यही साबित करती रही है कि पठनीयता और श्रेष्ठता में कोई नहीं होती। श्रेष्ठ लेखक अपने साढ़े तीन मित्रों, दो आलोचकों एक संपादक के लिये लिखता है। संपादक का दर्द यह अ होता है कि लोग पत्रिका नहीं खरीदते किंतु वह साहित्य को ए वर्ग की विशिष्टता कला भी मानना चाहता है। इधर इस रोग ताप कुछ और बढ़ा है। बहुतेरे युवा लेखकों की अच्छी कहा की उपेक्षा कर, भाषिक संरचना को ही महत्वपूर्ण मानने लेखकों की चर्चा का बाजार गर्म है। सनत कुमार की 'अलस में' कहानी हाल में प्रकाशित कहानियों में रेखांकित करने योग्य क्लासिक और लोक शैली में वर्तमान को व्याख्यायित करती है कहानी। साहित्य के गंभीर से गंभीर पाठक की यह इच्छा किसी काल में धुंधली नहीं होती कि श्रेष्ठ रचना मन को आकृष्ट भी क जो लेखक-बौद्धिक पाठक का अर्थ मनहूस पढ़ाकू समझते हैं, भ्रम में है। हिन्दी के गंभीर पाठक, समीक्षक और लेखक को स्वीकार करते हुए लज्जित नहीं होना चाहिए कि वह पठनीयता भी एक शर्त मानता है।

रमाकांत श्रीवास

वर्तमान साहित्य : कमलेश्वर कहानी प्रतियोगिता-2009 का परिणाम

वर्तमान साहित्य : कमलेश्वर कहानी प्रतियोगिता-2009 के लिए **हरपाल सिंह 'अरुष'** की कहानी **'कैम्पस'** का चुनाव हुआ है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कहानियाँ भी निर्णायकों द्वारा पसंद की गयीं :

1.	**मट्ठा**	:	वृजलाल कोरी 'विरज', मुरादाबाद
2.	**काली गाय**	:	आनंद प्रकाश मिश्र, बिजनौर
3.	**सांत्वना पुरस्कार**	:	सिराज खांन बातिश, कोलकाता
4.	**मेरे लिए जियो पापा**	:	चन्द्ररेखा ढडवाल, धर्मशाला
5.	**कांता के बाल**	:	विजय शर्मा, जमशेदपुर
6.	**वे अब्हत्तर दिन**	:	ओमप्रकाश नामदेव, भोपाल
7.	**रियर व्यू**	:	रजनी गुप्त, लखनऊ

निर्णायक समिति में श्री विभूति नारायण राय, प्रो0 सूरज पालीवाल और डा0 कमलकुमार थे। कहानी पुरस्कार 27 जनवरी, 2010 को अलीगढ़ में आयोजित एक समारोह में प्रदान किया जायेगा।

(संपादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री सुश्री मायावती ने प्रदेश में बारहवीं तक मुफ़्त शिक्षा की घोषणा की है। यह एक स्वागतयोग्य विचार है। इससे पहले अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा के लिये भी पिछले वर्षों से तरह-तरह के कदम उठाये जा रहे हैं। सर्वशिक्षा अभियान उनमें से एक कदम है। सुदूर गाँव देहातों के प्राइमरी स्कूलों में बेसिक शिक्षा अभियान के अंतर्गत शिक्षकों की लगातार नियुक्तियाँ हुई हैं। नियुक्तियाँ ही नहीं बल्कि मॉनीटरिंग भी हो रही है ताकि पहले जैसी स्थिति न रहे। मुझे याद है कुछ वर्ष पहले हमारे एक परिचित हमसे मिलने आये थे। उनकी घर गृहस्थी, पत्नी-बच्चों का हाल पूछा तो बहुत संजीदा लेकर बोले, मैडम, क्या बतायें चूक हो गयी अबकी तो,

-चूक! कैसी चूक

-बेसिक शिक्षा विभाग में भर्तियाँ हो रही थीं टीचर्स की! कुसुम को अप्लाई नहीं करा पाये...

-अच्छा! लेकिन आपके तो अभी बच्चे छोटे हैं... कुसुम कैसे करेगी नौकरी... मैंने जानना चाहा। उन परिचित के घर का ढर्रा पुराना, परंपरावादी है। किसी नौकर-नौकरानी के हाथ में वे घर नहीं छोडेंगे, मुझे मालूम था। मैंने समझाया,

-ये स्कूल तो भाई साहब, दूर-दराज़ गाँव देहातों में हैं... आने-जाने का साधन भी तो आपको पहले जुटाना पड़ेगा...

वे भाई साहब मेरी नादानी पर मुस्कुराये जैसे कि ये व्यर्थ की मूर्खतापूर्ण आशंकाएँ हों मेरी,

-मैडम, रोज़ कौन जाता है। कोई नहीं जाता। महीने में एक दिन चले जाइये... या जब कभी इंस्पेक्शन वग़ैरह हो... उनके चेहरे पर विद्वता का भाव झलक रहा था।

-कमाल है... भाई साहब और कोई कहे तो कहे... कम से कम आप तो न कहो ऐसा हमारे सामने... यह तो क्रिमिनल है भाई साहब...। दरअसल यही विडंबना रही है हमारे समाज की। शहराती आधुनिक लड़की नौकरी करना चाहती हैं। स्वावलंबी होना चाहती हैं लेकिन उसके लिये रास्ते वही जो यह भ्रष्ट समाज व्यवस्था सुझाती है।

यही स्थिति मनरेगा की है। यह एक बेहतरीन योजना है जिसे अगर सही तरीके से इस्तेमाल किया जाय तो गाँव के ग़रीबों को बहुत राहत मिल सकती है। ऐसी कोई भी कल्याणकारी योजना के आते ही जोड़-घटाना शुरू हो जाता है। मंत्री से लेकर संतरी तक, सबका गणित लगने लगता है! हमारी संस्था जिन गाँवों में काम कर रही है वहाँ हमने सूचना के अधिकार के कानून का इस्तेमाल करने की कोशिश की। हम जानना चाहते थे कि नरेगा के अंतर्गत कितने लोगों को काम मिला और इसमें कितनी स्त्रियाँ हैं। लगातार गाँवों से लोग आते कि जॉब कार्ड नहीं बन रहे हैं कि वहाँ ठेकेदारों के ज़रिये काम कराया जा रहा है और ठेकेदार अपने जिन लोगों से काम कराता है उसे दूसरे सरकारी मद से भुगतान कराया जाता है और कि मनरेगा में अपने मन माफिक सारेगामा हो रहा है.. वग़ैरह वग़ैरह।

हमारे लिये यह जानना एक दुखद अनुभव रहा। हमारी संस्था के कार्यकर्ताओं ने जो सूचना दी उसके अनुसार उसमें ऐसी महिलाओं की खासी बड़ी संख्या थी जो घर में बैठकर पैसा ले रही थीं। फिफ्टी-फिफ्टी का बंटवारा सबके लिये सुविधाजनक था। उन महिलाओं को क्या आपत्ति हो सकती थी। घर बैठे जो हाथ लग जाय।

साहित्य और सामाजिक क्रिया कलाप में भागीदारी करते हुए हम स्त्री समूहों के उत्थान की बातें करते हैं, परंपरागत सामाजिक शोषण से उनकी मुक्ति की बात करते हैं, उनके प्रतिरोध की चेतना के सशक्तीकरण की बात करते हैं, लेकिन ऐसे मौकों पर हमें सोचना पड़ता है कि कैसे इन प्रवृत्तियों से उन्हें दूर रखा जा सकता है। कैसे हम उनके मानसिक बदलाव में संपूर्ण समाज के प्रति कल्याणकारी सोच को विकसित कर सकते हैं। व्यक्तिगत तौर पर अपने प्रति होने वाले अन्याय और अत्याचार के खिलाफ़ अगर स्त्री खड़ी हो रही है तो सामाजिक स्तर पर भी होने वाली बेईमान और नाइंसाफी के लिये वह क्यों नहीं संघर्ष कर सकती है। ये मुद्दे स्त्रियों के सामाजिक और साहित्यिक एजेंडा में क्यों नहीं शामिल हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा मानना है कि कितनी ही लाभकारी योजना हो, सार्वजनिक स्तर पर जो गहन भ्रष्टाचार का माहौल है, वह उसे फलीभूत नहीं होने देता और चारों दिशाओं में गूंजने लगता है कि, कुछ नहीं हो सकता.. इस अनैतिक बेईमान व्यवस्था में कुछ नहीं हो सकता।...

इस लिये निश्चित रूप से चाहे शिक्षा अभियान हो, नरेगा या कोई अन्य योजना हो, प्रथम चरण के रूप में माहौल बनाने की ज़रूरत है। वातावरण निर्माण के कार्यक्रम केवल रस्मी नहीं होते। सांस्कृतिक उपादानों का अपना महत्व है। मनुष्य के दिल और दिमाग इन प्रक्रियाओं से किसी हद तक प्रभावित होते हैं। आज भी साहित्य के पठन पाठन में उन लोगों की जीवनियाँ, जिन्होंने समाज को बदलने के क्रम में अपना जीवन अर्पण कर दिया, हमें प्रभावित करती हैं। विशेष रूप से बच्चों के दिमाग पर स्थाई प्रभाव छोड़ती हैं। नाटक और संगीत के विविध रूप एक स्वस्थ सांस्कृतिक वातावरण बनाने का काम करते हैं। कई बार सांस्कृतिक यात्राएँ और मेलों के आयोजन हुए। उनमें लोगों की भागीदारी और आपसी बातचीत के समय वैचारिक मंथन और उससे निकले सवाल लोगों को उद्वेलित करते हैं और एक निश्चय के लिये प्रेरित करते हैं। अभी तो वातावरण ऐसा है कि 'लूट सके सो लूट' का भाव ही तैरता रहता है।

हमारी समाजसेवी संस्था पिछले पच्चीस सालों से एक स्कूल चला रही है। स्कूल जिस मुहल्ले में है उसे दलितों में भी दलित कहना ठीक होगा। आपसी चंदे और सहायता इकट्ठा करके चलने वाले इस स्कूल में, जहाँ अब लगभग सौ फीसदी सफाई कर्मियों के बच्चे पढ़ते हैं, हम आज किंचित गर्व से कह सकते हैं कि एक आपसी रिश्तों वाला पारिवारिक माहौल बनाने में हम सफल हुए हैं। संस्था के सदस्य और शिक्षक वर्ग के साथ बच्चों और उनके माता-पिता के बीच एक आत्मीय रिश्ता बना है। निश्चित रूप से यह एक बड़ी उपलब्धि है। विचार के स्तर पर, बच्चों के बीच सामाजिक समरसता का वातावरण बनाने का जो बीज बोया गया था, वह फलीभूत हुआ है।

लेकिन... अब इसका दूसरा पहलू भी है। हमें इन सबके बावजूद लगातार उनके घरों में जाना पड़ता है... पूछना पड़ता है कि उनका बच्चा स्कूल क्यों नहीं आ रहा है। पचास फीसदी बच्चों के माँ-बापों को कतई यह जानने की फिक्र नहीं है कि उनका बच्चा स्कूल जा रहा है या नहीं और अगर नहीं जा रहा है तो क्यों नहीं जा रहा है। ज़्यादातर घरों में माँ-बाप दोनों काम पर जाते हैं। काम भी कैसा... घर-घर जाकर सफ़ाई का काम जो वैसे ही थकाने वाला होता है। जिन घरों में पुरुष सरकारी नौकरी मे है और अच्छा वेतन पाता है उनके बच्चे भी नियमित रूप से आते हैं और पढ़ने में अच्छे हैं। वर्ना स्कूल के बाहर कंचा-गोली खेल रहे हैं, फालतू बैठे, ताश के पत्ते पीटते नौजवानों को देख रहे हैं लेकिन स्कूल के भीतर नहीं आ रहे हैं। आप घर में शिकायत करेंगे, किससे? घर में कोई है ही नहीं! बच्चे लंबे समय से ग़ैरहाजिर हैं। आपने घर से बुलवाया माँ-बाप को, पूछा! बच्चा बीमार है तो समझ में आता है। लेकिन बीच पढ़ाई के दिनों में वह या तो नानी के यहाँ या बुआ के यहाँ चला जाता है। यह एक आम बात है। किसी भी समय में पाँच-सात फीसदी बच्चे जो अनुपस्थित होते हैं, नानी के या बुआ के घर गये होते हैं। या फिर घर-बाहर माँ के साथ तो कभी पिता के काम में हाथ बंटाने में लग जाते हैं।

यहाँ तो शहरी वातावरण में हम फिर भी माँ-बाप को डॉट-डपट लेते हैं और लगातार संवाद क़ायम करते हुए बच्चों को स्कूल भेजने के लिये कहते रहते हैं। गाँव में यह स्थिति ज़्यादा गंभीर है। वहाँ पचास-फीसदी बच्चे भी अगर स्कूल पहुँच जाँय तो बड़ी बात है। मेरा एक परिचित नौजवान अलीगढ़ से लगभग साठ किलोमीटर दूर गाँव में पढ़ा रहा है। मैंने एक बार उसे किसी महत्वपूर्ण आयोजन में भागीदारी करने को कहा था। मुझे अच्छा लगा कि उसने आने से मना कर दिया क्योंकि उस स्कूल में केवल दो ही अध्यापक हैं और एक अध्यापक छुट्टी पर है। उसने कहा कि अगर वह भी स्कूल न गया तो उस दिन स्कूल बंद हो जायेगा और बच्चे निराश होंगे। लेकिन बच्चों की नियमित उपस्थिति न होना तथा आये दिन नानी के घर चले जाना वहाँ भी समस्या है। बहुत लोगों से बात करने के बाद अंत में इसी निष्कर्ष पर मैं पहुँचे कि दरअसल नानी-बुआ के घर भेज कर कम से कम माँएँ कुछ दिन राहत महसूस करती हैं। बच्चे बाहर चले जाते हैं तो खर्च भी बचता है। यही स्थिति गांव के स्कूलों में अनुपस्थिति का कारण बनती है। वहाँ तो फसल पर बच्चे कभी श्रमिक माँ-बाप के साथ खेतों पर मदद करते हैं, कभी खेत से मूली-गाजर जैसी सब्जियाँ निकाल कर उन्हें धोने के काम में लग जाते हैं। माँ-बाप भी बच्चों को इन कामों में लगा देते हैं। स्कूल की पढ़ाई क्या ज़रूरी है? दो पैसे हाथ में आ रहे हैं, यह महत्त्वपूर्ण है। बहुधा गांव के सरकारी स्कूलों में यह भी देखा गया है कि मध्यान्ह भोजन के बाद स्कूल में उपस्थिति आधी रह जाती है।

यह जमीनी हकीकत की बातें हैं जो बच्चों की अनिवार्य बेसिक शिक्षा के आड़े आती है। सरकार ने बाल श्रमिकों के लिये स्कूल खोले। उन्हें प्रतिमाह सौ रुपये का वजीफा दिया कि उनके श्रम से जो घर की आमदनी होती थी, उसकी पूर्ति हो जाय और बच्चे ठीक से पढ़ पायें। लेकिन स्थिति क्या है। अनुदान साल भर बाद आ रहा है। जो संस्थाएँ बाल श्रमिक स्कूल चला रही हैं, उनके सामने दुविधापूर्ण स्थिति। न तो शिक्षकों को मानदेय मिलता समय से और न ही बच्चों को वजीफ़ा। बच्चों के घरवाले संस्था पर आरोप लगाते हैं कि, 'वजीफे का पैसा खा रहे हो...''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा मानना है कि अगर 'शिक्षा का अधिकार' के अंतर्गत अनिवार्य शिक्षा की योजना को अगर लागू करना है तो पूरी नीयत से इस ओर कदम उठाने की ज़रूरत है। एक उदाहरण सोवियत रूस का है। ज़ारशाही से आज़ादी के बाद सार्वजनिक शिक्षा के संख्यिकी विभाग द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार 1920 में पुरुष साक्षरता 40.9 प्रतिशत और स्त्री साक्षरता 24. 4 प्रतिशत थी जो कुल साक्षरता का 31.9 प्रतिशत था। समाजवादी सोवियत सरकार ने कल्याणकारी योजनाओं को न केवल बनाया बल्कि व्यवहारिक रूप से और पूरी निष्ठा और ईमानदारी से उस पर अमल भी किया। बीसवीं सदी के मध्य तक पूरा सोवियत समाज उच्च वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा से लैस विश्व में शीर्षस्थ था। इसलिये नीयत से तात्पर्य है कि स्थानीय परिस्थिति और परिवेश को ध्यान में रखते हुए बेहतर नतीजे मिलें, ऐसे कदम उठाने चाहिये। सबसे महत्वपूर्ण है बच्चों की शिक्षा के लिये, विशेष रूप से लड़कियों को शामिल करते हुए पहले वातावरण निर्माण किया जाय जिसके केंद्र में बच्चों से ज़्यादा उनके माता-पिता और घर के लोग हों। इस वातावरण निर्माण के काम में अभिभावकों को सम्मिलित करना बहुत ज़रूरी है। हमने देखा है कि वातावरण निर्माण कार्यक्रम जो सरकारी योजना में भी शामिल होता है, उसकी इति स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की रैली निकाल करके कर ली जाती है। रैली के अंत में लंबे इंतज़ार के बाद कोई राजनेता अथवा अफसर जब बच्चों को संबोधित करते हुए विद्वतापूर्ण भाषण देते हैं तब तक बच्चे इतने परेशान और पस्त हो जाते हैं कि अगर उनके मन में भाव पैदा हो कि, क्या जंजाल है स्कूल जाना... तो कोई आश्चर्य नहीं।

सांस्कृतिक और जीवंत कार्यक्रम हों, बच्चों का और उनके माता-पिता के बीच संवाद हो। इसके अलावा जो चिन्हित परिवार हैं जिनके बच्चे स्कूल नहीं जाते, उनके साथ सक्रिय रूप से परस्पर संवाद हो... यह ज़रूरी है। इसमें गाँव के अथवा क्षेत्र के प्रधान, पंचायत सदस्य तथा अन्य प्रमुख लोगों की उपस्थिति भी चिन्हित परिवारों पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। यह सचमुच शर्म की बात है कि आज भी कुल आबादी का लगभग एक पाँचवा हिस्सा अनपढ़ है जिसमें स्त्रियों की संख्या पैंतालीस फ़ीसदी है।

दूसरी बात यह है कि जहाँ बच्चों को वज़ीफा मिलता है, स्कूल चलाने के लिये अनुदान मिलता है, वह सही समय पर मिले। पूरा पूरा साल बीत जाता है, अनुदान नहीं आता। इससे बच्चे भी हताश होते हैं और माँ-बाप सशंकित होते हैं।

सबसे आदर्श स्थिति तो यह है कि हर जिले में नवोदय विद्यालय या कस्तूरबा गांधी विद्यालय जैसे शिक्षण संस्थान हों, जो आवासीय होते हैं। यहाँ बच्चों के साथ-साथ शिक्षकों के आवास की व्यवस्था भी विद्यालय में अनिवार्य रूप से होती है। व्यवहारिक क़दम उठा कर ही हम 'सबको शिक्षा' जैसी व्यवस्था कारगर रूप से लागू कर सकते हैं। अनपढ़ और अशिक्षित समाज किसी भी देश के लिये कलंक है जो एक नहीं, अनेक विकृतियों को जन्म देता है।

नमिता सिंह

(नमिता सिंह)

आवश्यक सूचना

वर्तमान साहित्य का साधारण मूल्य 18 से बढ़कर 20 रुपये है। यह कीमत जुलाई-2009 से लागू हुई हैं। जिन सदस्यों ने अपना वार्षिक चंदा जून-2009 तक भेज दिया है। उन्हें एक वर्ष तक पत्रिका भेजे गये मूल्य पर ही मिलेगी।

अब जो नये सदस्य होंगे उनका वार्षिक चंदा 230/- रुपये का मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट होगा। बाहर का चैक पाँच सौ रुपये से कम का स्वीकार नहीं करते हैं। संस्थागत चंदा 300/- रुपये है। आजीवन व्यक्तियों को 2000/- तथा संस्थाओं को 2500/- रुपये देय होगा।

वर्तमान साहित्य रेलवे के सभी बड़े स्टेशनों पर स्थिति व्हीलर्स के पास उपलब्ध है।

संपादक

E-mail : vartmansahitya@gmail.com

vartmansahitya@yahoo.com

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के. बालगोपाल का न रहना!

सुभाष गाताडे

साँवला सा चेहरा, पूरी बांह की भूरे रंग की धारीदार शर्ट, आँखों पर लगा चश्मा और जुबाँ से निकलने वाले एक-एक शब्द जो सुनने वाले को अंदर तक आप्लावित कर देने के लिए काफी थे, यह मेरी उनसे पहली मुलाकात थी। वह अस्सी के दशक के मध्य की बंबई यात्रा थी, जब परिवर्तनकामी समूहों के प्रतिनिधियों से मिलने के लिए मैं कुछ अन्य साथियों के साथ बंबई पहुँचा था। वहीं पर नागरिक अधिकार के सवालों पर आयोजित एक सभा में पहली दफ़ा मैं नागरिक अधिकार आंदोलन की दो अज़ीम शख्सियतों से मिला था-के0जी0 कन्नाबिरन् और के0 बालगोपाल। सभा किस मसले पर केंद्रित थी यह याद नहीं, लेकिन उस छोटी-सी अंतक्रिया में यह स्पष्ट था कि अपनी पैनी नज़र, अपना विस्तृत ज्ञान और 'साहस को ही सबकुछ के ऊपर रखने' का उनका माद्दा किसी को भी आकर्षित क़रने वाला था।

बंबई की उस पहली मुलाकात के बाद कई बार उनसे मिलना हुआ, लेकिन ऐसा इत्तफाक हुआ कि कभी उनसे फुर्सत से बात करना मुमकिन ही नहीं हुआ। वर्ष 1993 में दिल्ली में प्रतिबद्ध छात्रों ने आगे आकर प्रोग्रेसिव स्टुडेण्टस यूनियन के गठन हेतु आयोजित सम्मेलन में प्रो0 रणधीर सिंह, गुरूशरण सिंह के साथ के0बालगोपाल को विशेष अतिथि के तौर पर बुलाया था। उस वक्त़ सम्मेलन की इन्तज़ामिया कमेटी में होने के बावजूद उनसे गुफ्तगू नहीं हो सकी थी... और अब कभी ऐसी संभावना भी नहीं बनेगी क्योंकि पिछले दिनों के0 बालगोपाल ने अन्तिम साँस ली, जब उनकी उम्र 57 साल थी। उस दिन तेलगू के मशहूर लेखक-सामाजिक कार्यकर्त्ता एवम दो दशकों से अभिन्न मित्र भार्गव ने तड़के सवेरे पाँच बजे फोन किया। किसी अनहोनी की आशंका के साथ ही मैंने फ़ोन उठाया। 'क्या तुम्हें पता चला कि के0 बालगोपाल नहीं रहे!' (8 अक्तूबर 2009) वह रात भर की यात्रा करके वहाँ हैदराबाद पहुँचे थे और वहाँ पहुँचते ही उन्होंने मुझे यह समाचार दिया था।

भार्गव जैसे लेखक-कार्यकर्ता हैदराबाद की सड़कों पर उस दिन जुटे हज़ारों की तादाद का हिस्सा थे, जो हमारे वक्त़ की इस अज़ीम शख्सियत के न रहने की ख़बर सुन कर आँध्र प्रदेश के दूरदराज के इलाकों से वहाँ पहुँची थी। उनकी इस अंतिम यात्रा शामिल में होने वालों में करीमनगर, आदिलाबाद के आदिवासियों से लेकर देश-विदेश में भ्रमण करने वाले बुद्धिजीवी थे, संस्कृ कर्मी, मानवाधिकार कार्यकर्ता तथा जनपक्षीय राजनीति से विभि स्तरों पर जुड़े लोग या दलित तथा नारी आंदोलन से संबंधि कार्यकर्त्ता-सभी किस्म के लोग शामिल थे, जो जनसंघर्षों के इ प्रखर हमसफर को अपना आखिरी सलाम पेश करने आए थे दिल्ली से निकलनेवाले 'मेलटुडे' के संवाददाता ने अपनी रिपोर्ट लिखा कि हैदराबाद के रहनेवालों को यह यकीन ही नहीं हो र था कि यह किसी सियासतदां की या किसी दूसरे सेलेब्रिटी की अंतिम यात्रा नहीं है बल्कि एक अदद नागरिक अधिकार कार्यक की अन्तिम यात्रा है।

लाजिमी सवाल उठता है कि आखिर इस शख्स की ऐसी क ख़ासियत थी कि हज़ारों लोगों ने उनके न रहने के ग़म को अं तक महसूस किया था और वहाँ पहुँचना ज़रूरी समझा था। स्प था कि वारंगल की काकतिया युनिवर्सिटी से गणित में अध्याप कर रहे, लेकिन अपने आप को मानवाधिकारों की रक्षा के लि झोंक देने वाले बालगोपाल ने अपने तीस साल से अधिक समय सक्रिय जीवन की विभिन्न कार्रवाइयों के जरिए उन तमाम लो को अंदर तक छुआ था।

चाहे क्रांतिकारी एवम जनवादी किस्म के आंदोलनों के दम के लिए पुलिस-सुरक्षा बलों द्वारा अपनाये जाने वाले फर्जी मुठभेड़ के तौरतरीकों के खिलाफ लगातार आवाज़ बुलंद करने का मसल रहा हो, देश और समाज का बारीक विश्लेषण करते हुए उसे अंग्रेज़ तथा तेलगू की स्तरीय पत्रिकाओं के जरिये लोगों तक पहुँचाने क प्रश्न हो और यहाँ तक कि राज्य हिंसा का जवाब देने के नाम प कभी कभी क्रांतिकारी संगठनों द्वारा किए जानेवाले मानवाधिकार ह हनन को भी प्रश्नांकित करनेवाले बालगोपाल के अंदर वह साहस लगातार बना रहा कि वह हर क़िस्म की सत्ता को चुनौती देने चूके नहीं।

आंध्र प्रदेश सिविल लिबर्टीज कमेटी की तरफ से वर्ष 199 में सालिसिटर जनरल के नज़रिये को चुनौती देते हुए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के समक्ष उनके द्वारा रखी याचिका की ऐतिहासिक परिणति हुई जिसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति को फर्जी मुठभेड़ में मारनेवाले पुलिस अधिकारियों को दण्डित करने का रास्ता खुला। आयोग की यह सिफारिश जो सुप्रीम तथा हाईकोर्ट के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कई फैसलों में पुष्ट हुई, उस पर इन दिनों ख़तरा मंडरा रहा है।

एक नागरिक अधिकार कार्यकर्ता के तौर पर कश्मीर से कन्याकुमारी तक देश के अलग अलग भागों में उन्होंने लगातार भ्रमण किया ताकि ऐसे स्थानों पर हुई नागरिक अधिकार हनन की घटनाओं को शेष दुनिया के सामने लाया जा सके। बंगाल के मानवाधिकार संगठन एसोसिएशन फार दि प्रोटेक्शन आफ डेमोक्रेटिक राइटस ने लिखा है कि 'कई बार ऐसे होता था कि वह ऐसी तथ्यान्वेशी टीम की अगुआई कर रहे होते थे, जो अलग अलग राज्यों से आए सदस्यों से, अलग अलग जुबां से परिचित लोगों से बनी होती थी। कई बार यह भी होता था कि टीम में शामिल सदस्यों को ऐसे तथ्यसंग्रहण का कोई पूर्वानुभव भी नहीं रहता था और बहुत प्रतिकूल परिस्थितियों में ऐसी यात्राओं को अंजाम देना पड़ता था जब इस बात का ख़तरा रहता था कि राज्य के एजेंटों की तरफ से उन्हें बाधित किया जाएगा।'

मालूम हो कि जिन दिनों आंध्र प्रदेश सिविल लिबर्टीज कमेटी की अगुआई उन्होंने शुरू की, वह दौर आंध्र प्रदेश में ज़बरदस्त दमन का दौर था, लेकिन तमाम विघ्नबाधाओं के बावजूद-गोपी राजन्ना, डा रामनाथम, जापा लक्ष्मा रेड्डी और नररा प्रभाकर रेड्डी जैसे सहयोगियों की सरकारी एजेंटों द्वारा की गयी हत्या के बावजूद-बालगोपाल ने अपने हौसले को नहीं खोया। अपने साथियों, मित्रों की वह लगातार हौसला आफजाई करते रहे। अपने कामों के चलते उन्हें कुख्यात कानून 'टाडा' के अंतर्गत वारंगल जेल में भी तीन माह बीताने पड़े, लेकिन वह डिगे नहीं क्योंकि उनका मानना था कि कार्यकर्ताओं को ऐसी तमाम विपदाओं को झेलने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। वर्ष 1984 में जब विद्यार्थी परिषद के लोगों ने उन पर हमला किया, 1989 में उन्हें खम्मम पुलिस ने उनका अपहरण किया या कोट्टागुडेम में वर्ष 1992 में उन पर हमला हुआ या 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के सामने उन्हें पीटा गया, लेकिन ऐसी तमाम घटनाओं के बाद भी वह एक दिन का विश्राम किए बगैर अपने काम में जुटे रहे।

स्पष्ट था कि बालगोपाल की अगुआई में आंध्र प्रदेश सिविल लिबर्टीज कमेटी के संगठन का तानाबाना दूर दूर तक फैला और जगह जगह उसकी शाखाएँ खुलीं और नए नए लोग मानवाधिकार आंदोलन के साथ जुड़े। नागरिक अधिकार आंदोलन की अपनी सक्रियताओं के दौरान वह इस नतीजे तक पहुँचे कि अधिकारों की अनुपस्थिति महज वर्गप्रभुत्व के चलते नहीं होती बल्कि अंतर्निहित वर्चस्व एवम उत्पीड़क प्रणालियों के चलते भी होती है और चूंकि सभी किस्म का संस्थागत वर्चस्व अधिकारों के अमल को बाधित करता है, लिहाजा मानवाधिकार आंदोलन को चाहिए कि वह एक ही किस्म के अधिकारों के उल्लंघन को अपनी प्राथमिकता समझे। विभिन्न आंदोलनों की गैरजनतांत्रिक कार्रवाइयों के मुद्दे पर आलोचनात्मक चर्चा करने की बात रेखांकित करते हुए उन्होंने यह भी दलील दी कि मानवाधिकार आंदोलन के लिए यह कोई आवश्यक नहीं कि वह संघर्ष के नाम पर आंदोलनों द्वारा की जानेवाली हर किस्म की कार्रवाई की हिमायत करे।

अपने विचारों में आए इस विकास के चलते उन्हें बाद में आंध्र प्रदेश सिविल लिबर्टीज कमेटी को छोड़ना पड़ा। बाद में उन्होंने 'ह्यूमन राइटस फोरम' नामक अन्य संगठन का गठन किया, जिसके दस साल हालही में पूरे हुए।

लगभग दस साल पहले काकतिया युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर के पद से इस्तीफा देकर उन्होंने अपने आप को पूरी तौर पर कानूनी पेशे में सक्रिय किया था और फर्जी मुठभेड़ों से संबधित कई केस उन्होंने लड़े।

यह रेखांकित करना ज़रूरी है कि के0 बालगोपाल की शोहरत महज आंध्र प्रदेश तक ही सीमित नहीं थी? राजधानी दिल्ली से लेकर देश के कई नगरों-महानगरों में उनके सम्मान में आयोजित श्रद्धांजलि सभाओं की सूचनाओं को देखें तो पता चलता है कि सिर्फ आंध्र के लोगों ने ही नहीं नागरिक अधिकारों की रक्षा के प्रति सरोकार रखनेवाले देश के तमाम संगठनों, समूहों, व्यक्तियों ने उनके न रहने से उपजी खाई को शिद्दत से महसूस किया।

दिल्ली में उनके सम्मान में आयोजित एक श्रद्धांजलि सभा में एक वक़्ता ने अपने अन्तिम दिनों में उनके द्वारा किए एक महत्वपूर्ण योगदान को विशेष तौर पर रेखांकित किया जिसका फोकस रैडिकल आंदोलन द्वारा 'प्रभावित इलाकों में विकास की चुनौतियों' पर था। सरकार की पहल पर योजना आयोग के डी0 बन्दोपाध्याय की अगुआई में बनी इस कमेटी के अन्य सदस्यों में पूर्व डीजीपी प्रकाश सिंह, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के चेअरमैन सुखदेव थोरात आदि लोग भी शामिल थे, जिन्होंने पिछले साल की शुरूआत में अपनी रिपोर्ट पेश की और सरकार को स्पष्ट तौर पर आगाह किया कि ऐसे आंदोलनों के प्रति 'सुरक्षा केन्द्रित सैन्य केन्द्रित' रुख तय करना अनुचित होगा और इन आंदोलनों के साथ 'राजनीतिक आंदोलन' के तौर पर अंतर्क्रिया करनी चाहिए।' यह अकारण नहीं कि अपनी रणनीति के लिए असुविधाजनक लगने वाली प्रस्तुत रिपोर्ट पर सरकार ने विशेष चर्चा नहीं होने दी।

कोई भी मानेगा कि आज जबकि 'उग्रवाद का सफाया' करने के नाम पर सरकार ने 'पुलिस-अर्द्धसुरक्षा बलों' की जबरदस्त लामबंदी करते हुए 'आपरेशन ग्रीन हण्ट' आयोजित किया है और ऐसे आंदोलनों पर जबरदस्त दमन की बातें हवाओं में हैं, उस वक्त हमें के0 बालगोपाल जैसे शख्स की सख्त जरूरत थी, जो फ्रांस के मशहूर लेखक एमिल ज़ोला की तर्ज पर (जरूरत पड़ने पर) अकेले ही खड़ा होता और सत्ताधारियों से कहता कि 'आई एक्यूज' आप पर अभियोग है।

एच-4, पूसा अपार्टमेण्ट, रोहिणी, सैक्टर-15, दिल्ली-110089

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या मंदी जा रही है?

गिरीश मिश्र

आजकल हमारे यहाँ मीडिया, राजनेता, व्यवसायी और आम जनता सब ख़ुश हैं। इसका मुख्य कारण मंदी का आखिरी चरण में प्रवेश कहा जा रहा है। बतलाया जा रहा है कि देश में औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक अगस्त में 8.2 प्रतिशत बढ़ा जबकि तीन महीने पूर्व उसमें मात्र 2.1 प्रतिशत वृद्धि हुई थी। दावा किया जा रहा है कि विनिर्माण के 17 में से 14 क्षेत्रों में वृद्धि हुई है जिनमें से सात ने दो अंकों में वृद्धि दर्ज की है। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की माँग बढ़ रही है। बाज़ार में नवजीवन आने के पीछे छठे वेतन आयोग की सिफारिशों का कार्यान्वयन तथा नरेगा का विस्तार माना जा रहा है। बैंकों द्वारा अपनी ऋणनीति उदार बनाए जाने से आवासगृहों की खरीदारी में बढ़ोत्तरी होने लगी है। खरीद उत्पादन में उतनी कमी नहीं होने वाली जितनी मानसून की अपर्याप्तता को देखते हुए कहा जा रहा था। रबी की फसल आशानुकूल होने लगी है।

विदेशी निवेशकों ने भारत का रुख करना शुरू कर दिया है। अगस्त में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 40 प्रतिशत बढ़कर तीन अरब 26 करोड़ डॉलर पर पहुँच गया। विदेशी संस्थागत निवेश में भी तेजी आयी है, जिससे शेयर बाजार का सूचकांक ऊपर चढ़ने लगा है। वह 17 हज़ार से ऊपर है। फरवरी की तुलना में उसमें 50 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

अगर यही स्थिति रही तो निर्यात बढ़ेगा और निर्यातोन्मुख उद्योगों में रौनक लौटेगी। बेरोज़गार मजदूरों को काम मिलेगा। सुना जा रहा है कि अमेरिका समेत तमाम पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं की हालत पहले की अपेक्षा काफी बेहतर है। अतः वह दिन दूर नहीं जब भारतीय फिर से वापस फारस की खाड़ी स्थित देशों तथा पश्चिमी यूरोप, कनाडा और अमेरिका में कार्यरत होंगे और उनकी कमाई आने से उनके कुटुंब एवं इलाके के लोग ख़ुश होंगे। कॉल सेंटरों के वर्तमान दुर्दिन समाप्त होंगे तथा युवा वर्ग को रोजगार के अवसर फिर से भारी संख्या में प्राप्त होंगे। इन सबके परिणामस्वरूप कुछ ही वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था की संवृद्धि 9 प्रतिशत होगी और एक विश्व शक्ति बनने का उसका सपना साकार होने के द्वार खुलेंगे। भारतीय प्रधानमंत्री, वित्त मंत्री, योजना आयोग के उपाध्यक्ष समेत तमाम प्रमुख सेठों ने ऐसी ही आशा प्रकट की है। कहना न होगा कि इन सुविचारों से सहसा महान भौतिक शास्त्री वर्नर हाइजेनबर्ग के उस सिद्धांत की याद हो आती है जिसके अनुसार किसी भी स्थिति के संबंध में बोलते समय जितनी ही सुनिश्चितता से कोई दावा किया जाता है, उसके परिणाम को वह उतना ही अधिक प्रभावित करता है। महामंदी के दौरान, वित्तीय मामलों के मशहूर जानकार लियाकत अहमद ने (अपनी चंद महीनों पहले प्रकाशित महत्त्वपूर्ण पुस्तक "लॉयर्स ऑफ़ फाइनेंस में) लिखा है कि आर्थिक स्थिति के बारे में बोलते समय, नेता एक भारी दुविधा का सामना कर रहे थे। उन्हें अहसास था कि हाइजेनबर्ग के सिद्धांत के अनुसार वे आर्थिक स्थिति के विषय में जो कुछ भी कहेंगे उसका उसके परिणाम पर असर पड़ेगा। नतीजतन उन्होंने ऐसे सकारात्मक वक्तव्यों तक ही अपने को सीमित रखा जिनको पूर्वानुमान के रूप में बहुत महत्व नहीं दिया जाएगा। वर्ष 1929 में जब, आज से ठीक अस्सी वर्ष पूर्व 23 अक्तूबर को महामंदी की शुरूआत हुई तब अमेरिका में हर्बर्ट हूवर राष्ट्रपति थे जिन्होंने अपने सार्वजनिक वक्तव्यों द्वारा लोगों को दिलासा देने की भरपूर कोशिश की। उदाहरण के लिए 14 दिसंबर 1929 यानी महामंदी शुरू होने के मात्र छह हफ़्तों के बाद उन्होंने घोषणा की कि देश में उपभोक्ता जिस मात्रा में खरीदारी कर रहे हैं उससे संकेत मिलता है कि अर्थव्यवस्था सामान्य स्थिति में पहुँच गई है। मार्च 7, 1930 को उन्होंने भविष्यवाणी की कि अगले साठ दिनों में अर्थव्यवस्था बदहाली के गर्त से निकल आएगी। साठ दिन की अवधि समाप्त होते ही उन्होंने कहा कि हम संकट से बाहर आ गए हैं।

हूवर और उनके सहयोगियों की तरह ही हमारे नेताओं और उनके सहायकों को भी इस जटिलता कर सामना करना पड़ रहा है कि अर्थव्यवस्था सीधी रेखा में नहीं चलती। वह कभी उठती है तो कभी लुढ़कती है। उदाहरण के लिए 1929 के आखिरी कुछ महीनों के दौरान लुढ़कते जाने के बाद 1930 के शुरूआती महीनों में स्थिरता आने के लक्षण दिखे। वॉल स्ट्रीट में शेयरों के भाव में 20 प्रतिशत का इजाफ़ा हुआ। कहना न होगा कि हारवर्ड इकॉनमिक सोसायटी जैसी संस्था जिसने कभी मंदी की भविष्यवाणी की थी, भ्रमित हो गई और कहने लगी कि अर्थव्यवस्था के दिन फिरने लगे हैं। हूवर पर इस विशेषज्ञ संख्या का इतना प्रभाव दिखा कि जब जून 1930 में नेशनल कैथोलिक वेलफेयर काउंसिल का एक प्रतिनिधिमंडल इस प्रार्थना के साथ मिला कि राष्ट्रपति रोजगार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसरों के सृजन के लिए कार्यक्रम आरंभ करें तब हूवर ने कहा, "भलेमानुसों, आप साठ दिन देर से आए हैं। मंदी तो ख़त्म हो चुकी है।" याद रहे कि इस कथन के चन्द दिन बाद ही अर्थव्यवस्था फिर बड़ी तेज़ी से लुढ़कने लगी। हूवर ने अपने संवाददाता सम्मेलनों में लगातार यह दावा किया कि रोज़गार के अवसर बढ़ने लगे हैं जबकि ऐसा कुछ भी न ही हो रहा था। उनके वक्तव्य आंकड़ों की बाज़ीगरी पर आधारित थे। याद रहे कि अमेरिका में महामंदी लंबे समय तक चली और 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ होने के बाद अमेरिकी उत्पादों की माँग बढ़ने के बाद ही जाकर ख़त्म हुई। रूजवेल्ट के 'न्यू डील' के कार्यक्रमों से उसकी विभीषिका निःसंदेह कम हुई थी। वर्तमान युग में जब भूमंडलीकरण का दबदबा है, भारतीय अर्थव्यवस्था का वर्तमान और भविष्य बहुत कुछ विश्व अर्थव्यवस्था और उसका नेतृत्व करने वाली अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर निर्भर है। अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के ताजा अनुमानों के अनुसार अगले वर्ष विश्व के सफल घरेलू उत्पाद में 3.1 प्रतिशत की वृद्धि होगी। विश्व के शेयर बाजार निम्नतम स्तर पर पहुँचने के बाद अब तक 64 प्रतिशत ऊपर चढ़े हैं। सुप्रतिष्ठित ब्रिटिश पत्रिका 'दी इकोंनमिस्ट' (3 अक्टूबर) में छपे संपादकीय के अनुसार, "इससे अतिउत्साहित होने के बदले सतर्क रहने की ज़रूरत है। संवृद्धि की दिशा में आगे बढ़ना स्वागतयोग्य घटना अवश्य है फिर भी इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि विश्व अर्थव्यवस्था सामान्य स्थिति में पहुँच रही है। बेरोज़गारी अब भी बढ़ रही है और विनिर्माण उद्योग में अब भी काफी क्षमता का उपयोग नहीं हो रहा। 'वर्तमान संवृद्धि' के अनेक स्रोत अस्थायी और अनिश्चितता के घेरे में हैं। मालभंडार का पुनर्निर्माण कंपनियों के उत्पादन को लंबे समय तक नहीं बढ़ा सकता।" विश्वभर में क्रयशक्ति में इज़ाफ़ा सरकारी प्रयासों से हो रहा है, अपने आप नहीं। सरकार द्वारा करों में छूट और ऋणों को उदार बनाए जाने के कारण ही वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग बढ़ रही है। पत्रिका का दावा है कि कतिपय तिमाहियों के दौरान अच्छी संवृद्धि देखने में आ सकती है मगर इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि संकट-पूर्व स्थिति जल्द आ जाएगी। ख़तरा इस बात का है कि संवृद्धि होती रहे मगर उसकी दर काफ़ी कम हो।

सबसे ज़रूरी है कि रोजगार के अवसर बढ़ें, जिससे लोगों की आय और क्रय शक्ति में वृद्धि हो जिसके फलस्वरूप बाज़ार में लोग वस्तुओं और सेवाओं की माँग बढ़ाएँ। ऐसी स्थिति में ही उनका उत्पादन मजबूती से आगे बढ़ेगा। यह बात भारत समेत समस्त दुनिया पर लागू है। दशकों पहले केंस ने 'प्रभावी माँग' की अहमियत पर जोर देते हुए सरकार की भूमिका को रेखांकित किया था। वर्तमान मंदी ने भी स्पष्ट कर दिया है कि बाज़ार पर पूरी तरह निर्भरता से न तो संकट को रोका और न ही उससे उबरा जा सकता है।

भारत में मुंबई शेयर बाज़ार के संवेदी सूचकांक की वृद्धि को लेकर अतिउत्साह आए दिन देखा जाता है। याद रहे कि इस सूचकांक को पूरी अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधिक संकेतक नहीं माना जा सकता क्योंकि इसमें केवल तीस कम्पनियों के ही शेयर शामिल हैं। इसके अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के आधार पर समूची अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के विषय में बहुत कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि हमारे यहाँ काफी उत्पादन असंगठित क्षेत्र में होता है। इतना ही नहीं, कृषि के क्षेत्र का हिस्सा सकल घरेलू उत्पादन में घटकर लगभग 20-22 प्रतिशत हो गया है मगर उस पर अभी 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या निर्भर है। स्पष्ट है कि बहुसंख्यक जनता की आय शेष जनसंख्या के मुकाबले घटती जा रही है। कहना न होगा कि तीस-चालीस प्रतिशत लोगों की खरीदारी के आधार पर बाजार को बहुत दिनों तक मजबूत नहीं रखा जा सकता जबकि उनकी स्थिति में भी मंदी के कारण गिरावट आयी है।

मँहगाई बढ़ने के कारण आम लोगों के खरीदारी के ढाँचे में परिवर्तन हो रहा है। दाल, आटा, चावल, साग-सब्जी, चीनी, चाय आदि की कीमतों में तेज वृद्धि से अन्य वस्तुओं और सेवाओं की माँग में कटौती हो रही है या उसे स्थगित किया जा रहा है। सिर्फ उच्च-मध्यम वर्ग के लोग कीमतों की बिना परवाह किए खरीदारी कर रहे हैं, मगर इसके आधार पर मंदी से उबर पाना संभव नहीं है। ज़रूरत है कि सरकार वाशिंगटन आम राय से प्रभावित अपनी नीतियों में किए गए परिवर्तनों पर फिर से विचार करे।

एम-112, साकेत, नई दिल्ली-110017

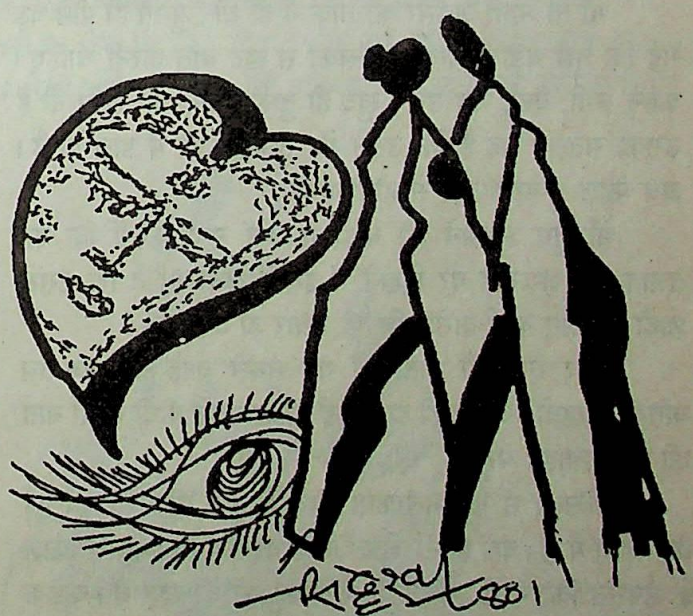

'स्पंदन संस्था' भोपाल द्वारा वरिष्ठ कथाकार मृदुला गर्ग को स्पंदन कथा शिखर सम्मान हेतु 'वर्तमान साहित्य' परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिसाइकिल-बिन में मल्लिका

भगवान वैद्य प्रखर

मेरा बड़ौदा जाने का कार्यक्रम पूर्वनियोजित नहीं था। उस रोज़ हमेशा की तरह मैं दफ़्तर पहुँचा ही था कि मंडल प्रबंधक ने अपने कक्ष में बुला लिया और कहा कि मुझे एक विजिलेंस केस के दस्तावेज़ लाने के लिए तत्काल बड़ौदा जाना है। सुनकर मैं विस्मयचकित था। साथ ही, भीतर कहीं गुदगुदी भी हुई। गुदगुदी इसलिए कि मल्लिका से अनायास मुलाकात हो जाएगी और चकित इसलिए कि मल्लिका से मुलाकात का योग इतनी जल्दी आएगा ऐसा मैंने ख्वाब में भी नहीं सोचा था। यह एक तरह से तृषार्त पौधों पर अप्रत्याशित वर्षा होने जैसी बात थी। इधर मल्लिका याद तो बहुत आ रही थी पर मैं कोई निर्णय नहीं ले पा रहा था कि अपनी बात को किस तरह आगे बढ़ाऊँ। शायद मल्लिका की मंशा थी कि पहल मेरी ओर से हो। यह भी मेरा अनुमान ही था। उसने तो डाइवोर्स मंजूर हो गया है, महज इतनी सूचना देकर इतिश्री कर ली थी।

माँ तो मानो अवसर की ताक में ही थी। सुनते ही पीछे पड़ गई कि मुझे बड़ौदा जाकर मल्लिका से खुद बात करनी चाहिए। कहने लगी, बेटा, जब उसने खुद ही तुम्हें तलाक़ की खबर दी है उसका मतलब यह है कि उसने गेंद तुम्हारे पाले में डाल दी है। अब पहल तुम्हारी ओर से होनी चाहिए।

माँ तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करतीं कि वह तलाकशुदा ज़रूर है पर दिखने में इतनी खूबसूरत है कि उससे शादी के लिए कोई करोड़पति भी तैयार हो जाएगा।

अगर ऐसा ही होता तो वह तुमसे काहे को जब-तब बतियाती रहती? जानते हो इधर कई मर्तबा उसने वीथी से भी बात की है लैंडलाइन पर।

मल्लिका से मेरी मुलाकात आज से कोई पाँच वर्ष पूर्व हुई थी, बड़ौदा में ही। वहां हमारी ज़ोनल लेवल कॉन्फ्रेंस थी। भोजनावकाश के उपरांत कितने ही अधिकारी मल्लिका को घेरे खड़े थे। कुछेक बीच में घुसकर उसे बधाइयाँ दिए जा रहे थे। चालू वर्ष की दूसरी तिमाही में मल्लिका का परफॉर्मेंस हमारे वेस्टर्न ज़ोन में सर्वोत्कृष्ट रही था इसलिए उसे प्रथम पुरस्कार से नवाज़ा गया था। मुझे तीसरा पुरस्कार मिला था इस कारण मैं भी आमंत्रित था कॉन्फ्रेंस में। अधिकांश शाखाएँ माइनस रहीं थीं उस तिमाही में। ऐसे में मल्लिका ने चालीस प्रतिशत वृद्धि हासिल की थी। मैं महज़ बारह प्रतिशत वृद्धि हासिल कर पाया था। पर इसके लिए भी मुझे रात दिन एक करना पड़ा था। कमेंडेबल परफॉरमेंस इनडीड ज़ोनल मैनेजर ने पुरस्कार प्रदान करते समय कहा था मल्लिका से। मल्लिका इसी वर्ष ट्रांसफर होकर आई थी सेंट्रल ज़ोन से और मैं उसे पहली बार देख रहा था। सिर्फ़ देख ही नहीं रहा था अपितु देखकर अभिभूत था। गज़ब की खूबसूरत थी मल्लिका। इतनी कि जो देख ले वह बस सब कुछ भूलकर देखता ही रह जाए उसे। मन में विचार कुलबुलाया था कि इतनी खूबसूरत महिला जिस किसी क्षेत्र में जाए उसने सफल तो होना ही है। स्वयं हाथ आगे बढ़ा-बढ़ाकर बधाई स्वीकार करती जा रही थी मल्लिका। इस बीच पता नहीं मैंने यह क्यों महसूस किया कि कुछ लोग महज़ स्पर्श सुख के लिए मल्लिका से हाथ मिलाते जा रहे हैं। लेकिन अगर ऐसा है भी तो इससे मुझे क्या। यह तो उसे खुद समझना चाहिए। औरतें तो इस मामले में अधिक संवेदनशील मानी जाती हैं और जब वह स्वयं ही अपना स्लीव लेस हाथ आगे बढ़ाती जा रही है तो मुझे क्यों जलन होनी चाहिए। मैंने अपने आप को सांत्वना दी और अपना स्थान बदलकर मल्लिका से थोड़ी दूरी और बढ़ा ली। कुछ ही देर में मैंने महसूस किया कि मल्लिका मुझे तक रही थी और मैं उसे। और इसके पूर्व कि मैं कुछ हरकत करूं, मल्लिका भीड़ में से रास्ता निकालते हुए खुद मेरे समक्ष उपस्थित हो गई एवं हाथ बढ़ाकर कहने लगी, हैलो... आप बलदेव जी हैं न?

जी हाँ, आपको फॉर्टी-परसेंट ग्रोथ के लिए बधाई।....आप भीड़ से इतनी घिरी हुई थीं कि मैंने सोचा, सब मिल लें तब मैं नंबर लगाऊँगा। मैंने एक अनावश्यक झूठ जड़ दिया था।

आपको नंबर लगाने की ज़रूरत नहीं साहब, मैं खुद आपसे मिलना चाहती थी। इस ज़ोन में नई हूँ। आने के बाद पिछले दो वर्षों के बिजिनेस स्टेटमेंट देखे। दोनों वर्षों में आप ज़ोन में नंबर वन रहे हैं। मैं खुद आपसे जानना चाहती थी कि यह चमत्कार आपने कैसे किया जबकि मेरी हालत तो दूसरे क्वार्टर में ही पतली हो गयी है।

आपको देखकर तो नहीं लगता कि आपकी हालत पतली हुई है और अगर सचमुच ऐसा है तो मैं तो कहूँगा कि खुदा करे यह हालत और यह नूर हर किसी को नसीब हो।

सुना था तारीफ़ करना भी एक कला है लगता है जनाब को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस कला में महारत हासिल है। खैर, रुके कहाँ हैं आप?

होटल ग्रीन-वैली में.... 304 नंबर। और आप?

मैं भी तो वहीं हूँ 407 में। दरअसल मेरी छोटी बहन रहती है यहाँ बड़ौदा में। बहनोई एसबीआई में हैं। लेकिन मैंने उनके घर जाने की बजाय होटल में रहना ही प्रीफ़र किया। ट्रांसफर पर चाहती तो मैं भी थी कि बड़ौदा मिले लेकिन उन्होंने मुझे भड़ौच दे दिया। भोपाल में वैसे भी चार वर्ष हो चुके थे इस कारण तबादला तो होना ही था।

खैर, आपको फिर एक बार बधाई और कल तो मिलना ही है, प्लानिंग-मीटिंग में।

अगले दिन प्लानिंग मीटिंग दस बजे आयोजित थी। मैं कुछ जल्दी तैयार होकर कमरे से बाहर निकला ताकि होटल के रेस्टोरेंट में नाश्ते पर कुछ लोगों से मुलाकात हो जाएगी। कमरा लॉक करके दो कदम लिफ़्ट की ओर बढ़ा ही था कि पीछे से आवाज़ आयी दलदेव जी, एक मिनट....। मैं रुक गया। हाथ में तौलिया तथा अन्य कुछ कपड़े और साबुन आदि संभाले मल्लिका लगभग दौड़ते हुए मेरे करीब आ पहुँची। हमारे फ़्लोर पर पानी की कुछ प्रॉब्लम हो गयी है। आप के पडोस के 307 में सूरत की एक मेरी परिचित ब्रांच मैनेजर रुकी हुई है। सोचा, उसके कमरे में नहा लूँ लेकिन वह शायद बाथरूम में है इसलिए कमरा खोल नहीं रही है। अगर आप निबट चुके हों तो क्या मैं आपका बाथरूम इस्तेमाल कर सकती हूँ।... ऑफकोर्स, अगर आपको कोई ऐतराज़ न हो तो। मैं चाबी काउंटर पर छोड़ दूँगी।

क्षणमात्र के लिये में किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। फिर पता नहीं कि किस सम्मोहनवश मैनें मल्लिका को कमरे की चाबी सौंप दी।

प्लानिंग-मीटिंग के बाद लंच आयोजित था। मल्लिका फिर घिर गयी सौंदर्य प्रेमियों से। लेकिन मुझतक पहुँचने में उसे अबकी अधिक देर न लगी।

आपने तो काफ़ी देर कर दी। आपकी जगह कोई और होता तो जेड0एम0 ने दस बातें सुना दी होतीं लेकिन खूबसूरती के सामने अच्छे खाँ भी हथियार डाल देते हैं यह एक बार फिर साबित हो गया। मैंने पहल की।

आपको तो तारीफ करने के लिए कोई बहाना चाहिए, बस।.... ऊपर नीचे करते करते देरी हो गई। मालूम दो चक्कर लगाने पड़े। नहाकर ऊपर अपने कमरे में गयी तो पता चला अपनी चाबी नीचे भूल आई हूँ। फिर भागी। होटल से यहाँ डिविजन-ऑफिस आने में भी तो दस-पंद्रह मिनट लग जाते हैं, ऑटो से। मल्लिका बोल रही थी और मैं उसकी चितवन से झरते मोती अपनी पलकों से चुग रहा था।

शाम को क्या प्रोग्राम है? मैंने पूछा।

शाम को कोई प्रोग्राम नहीं है। आज शनिवार हैं उम्मीद है, बहनोई कुछ जल्दी घर पहुँच जाएँगे। अभी यहाँ से सीधे वहाँ जाऊँगी। पाँच बजे के आसपास होटल लौट आऊँगी। संभव हो सका तो थोड़ा आराम करके शाम को मार्केट से बिटिया के लिए कुछ छोटी-मोटी खरीदारी करूँगी।

क्या उम्र है बिटिया की

'चार साल। केजी-वन में है।'

'क्या इत्तिफाक है। मेरी बेटी भी केजी-वन में ही है।'

'अच्छा। और मिसेज बलदेव भी कहीं सर्विस करती हें या. ...।'

'करती थीं। एक प्राइवेट बैंक में। लेकिन अब वह इस दुनियां में नहीं हैं। दो साल पहले कार एक्सीडेंट में चल बसीं।'

'ओह आई एम सॉरी... मुझे नहीं पूछना चाहिए था।'

'नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। जीवन की सच्चाईयों से मुँह मोड़कर भला कबतक जिया जा सकता है?.... मैं खुद ही चला रहा था कार। सब यानी माँ, मैं और वीथी भी ज़ख्मी हुए थे। लेकिन वास्तवि के ब्रेन में गहरी चोट लगी थी। ऑन द स्पॉट चली गई। उस दुर्घटना के बाद से मैंने कार चलाना छोड़ दिया है।... सुना है, यहाँ सूटिंग्ज-शर्टिंग्ज भी अच्छी मिलती है।

हाँ, मिलती तो हैं पर किसके लिए लूँ? जिनके लिए लेती थी उनके और मेरे बीच में अब इतना बड़ा फ़ासला है कि उसे किसी भी चीज से नहीं पाटा जा सकता। खैर, शाम को मुलाकात होगी ही। ये आपकी चाबी, सुबह जल्दी में काउंटर पर देना भूल गई थी।

होटल का कमरा खोलते ही एक अलौकिक महक से मैं रोमांचित हो उठा। कमरे का कोना-कोना चुगली कर रहा था कि कोई अप्सरा यहाँ आकर अपना अक्स छोड़ गई है। मैंने तत्काल फैन बंद कर दिया ताकि वह खुशबू लंबे समय तक कमरे में बनी रहे। छह बजे मल्लिका ने दरवाजे पर दस्तक दी।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं लेटा था। उठकर दरवाज़ा खोलते ही वह बेधड़क भीतर चली आयी। मैं उसकी बे-तकल्लुफ़ी से अवाक् था। दस मिनट में मैं तैयार हो गया। इस बीच वह कमरे में पड़ा अख़बार तथा पत्र-पत्रिकाएँ उलटती-पलटती रही। दोनों ने रेस्टोरेंट में एक-एक कप चाय पी और खरीदारी के लिए निकल पड़े। एक दुकान में मैंने वीथी के लिए दर्जनों फ्रॉक उलट डाले लेकिन मुझे एक भी पसंद नहीं आ रहा था। दूसरी ओर मल्लिका ने चार फ्रॉक सिलेक्ट कर लिए और एक साड़ी भी।

'इन में से कोई दो आप रख लीजिए वीथी के लिए और दो मैं रख लूंगी निधी के लिए।'

'तो निधी नाम है आप की बिटिया का।'

'जी'

'और ये साड़ी क्या आपने अपने लिए चुनी है?'

'जी नहीं ये भी आप ही को खरीदनी है, माँ जी के लिए। उन्हें बताइएगा कि एक कोई मिली थी बड़ौदा में उसकी पसंद है। उम्मीद है, उन्हें जरूर पसंद आएगी।'

सहसा मुझे लगा जैसे मैं कोई महत्वपूर्ण चीज़ भूल रहा था जिसका मल्लिका ने स्मरण करा दिया।

'आपने फ्रॉक के अलावा और कुछ नहीं खरीदा।'

'घर में निधी के अलावा मेरी माँ भर हैं। पहले भाई के पास रहती थीं। मैं निधी को लेकर अलग रहने लगी तबसे वह मेरे साथ हैं अथवा कहिए मुझे उसीका साथ है।'

उनके लिए साड़ी या कोई और चीज़...।

पिछले हफ़्ते ही आकर गए हम लोग यहाँ। बहन के मकान का वास्तुपूजन था। तब खरीदी थीं माँ के लिए दो साड़ियाँ बहन ने आज एक और थमा दी है।

आपने अपने लिए भी कुछ नहीं खरीदा।

उसमें मज़ा नहीं है।

मतलब

मतलब....। इतना कहकर लगा जैसे उसने अपनी जिह्वा चबा ली है। फिर अगले ही पल कुछ सँभलकर कहने लगी, एक बात तो यह है कि घर में साड़ियों का अंबार लगा है। दूसरी बात यह है कि खुद खरीदो और खुद पहनो... इसके लिए मन अभी पूरी तरह से तैयार नहीं हुआ है।

जवाब सुनकर मेरे मन में कई रंगोंवाली एक चिडिया फड़फड़ाई पर तभी मुझे एक कहावत की पंक्तियाँ याद आ गयी कि सूत न कपास और जुलाहों में लट्ठम लट्ठा....

अमरावती लौटने के चार दिन बाद मल्लिका की चिट्ठी मिली। चिट्ठी में जो लिखा था उसमें प्रमुख यह था कि क्या माँ जी को साड़ी पसंद आई? उत्तर में मैंने जो लिखा उसमें माँ जी की साड़ी और वीथी को पसंद आए फ्रॉक्स का ही ज़िक्र प्रमुख था। लेकिन, चूंकि केवल इतना लिखने से ही पत्र पूरा नहीं बन जाता इसलिए हम दोनों के पत्रों में और भी कई बातें थीं। उनके अलावा दोनों पत्रों में बहुत से रिक्त-स्थान भी थे जो बहुत कुछ कह रहे थे। स्त्री-पुरूषों के अप्रत्याशित परस्पर स्पर्श, उनके सांसों की गंध संवादों के बीच उगते मौन या लुकाछिपी खेलती नज़रों से मन में उपजी भावनाओं को कभी-कभी शब्दों के बीच छोड़े गए रिक्त-स्थान बेहतर अभिव्यक्ति दे जाते हैं। कुछ और पत्रों का सिलसिला और उसके उपरांत टेलीफ़ोन एवं एसएमएस। मल्लिका से समाचार मिलते रहे कि उसकी माताजी का निधन हो गया... निधी को होस्टल में शिफ़्ट कर दिया गया है... मल्लिका का तबादला बड़ौदा हो गया... बहन जहाँ रहती है उसी अपार्टमेंट में एक फ़्लैट खरीद लिया गया .. तलाक के मुकदमे की सुनवायी चल रही है... और एक दिन यह जानकारी भी मिल गई कि मल्लिका ने मार्केटिंग बदलकर एडमिनिस्ट्रेटिव साइड ऑप्ट कर ली है तथा उसकी पोस्टिंग बड़ौदा मंडल कार्यालय में ही प्रशासन अधिकारी के पद पर हो गई है। एक ओर जानकारियाँ अद्यतन हो रही थीं, वहीं दूसरी ओर कुछ सुखद-स्मृतियों पर धूल की परतें जम रही थीं।

मैं बड़ौदा पहुँचा तब रात हो चुकी थी। ठहरने के लिए मैंने होटल ग्रीन-वैली ही चुना। कमरा भी वहीं 304 नंबर। मैनेजर ने दिया कोई और था पर मैंने 304 माँगा और इत्तफ़ाक से मिल भी गया। मैंने कमरे में सामान रखा, दरवाज़ा बंद किया और पूरे कमरे में एक चक्कर लगाया। कमरा था तो यथावत् ही पर मुझे पता नहीं क्यों ऐसा लगा जैसे वह होटल का कमरा नहीं बल्कि मुर्दाघर है। कमरे की सारी चीज़ें बेजान लगीं। उनमें कोई खुशबू न थी।

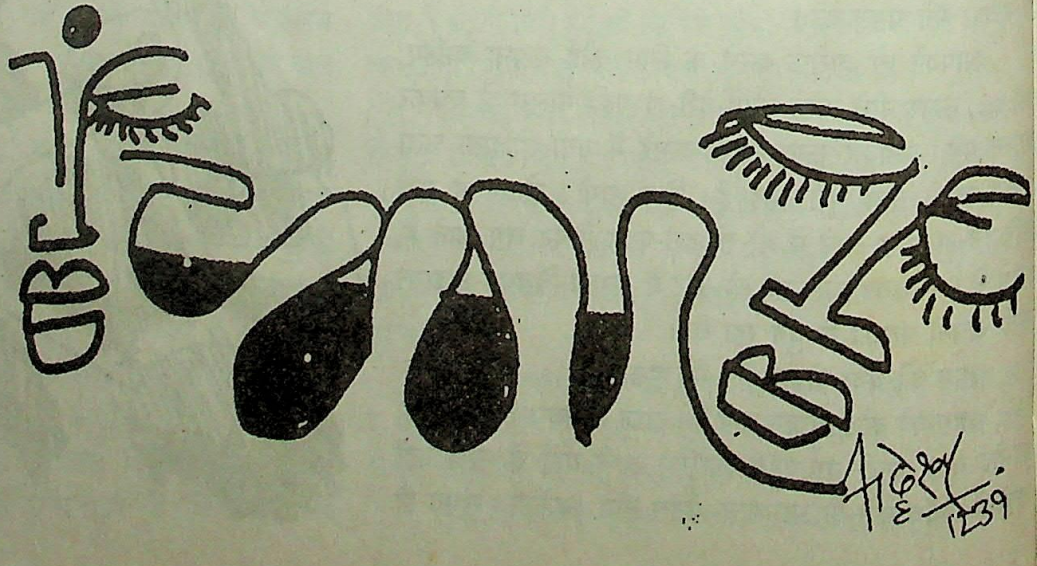

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलबत्ता मैं सारी रात बग़ीचों की सैर करता रहा, अकेले नहीं अपितु मल्लिका के साथ। हम दोनों तरह-तरह के वाद्य बजाते रहे, मनचाहे गीत गाते रहे, मोर बनकर नाचते रहे, हिरन बनकर कुलाँचे भरते रहे सागर की लहरों से खेलते रहे, बादलों की सैर करते रहे, आसमान में रंग भरते रहे, वर्षा में भीगते रहे और अपनी-अपनी देह-गंध आपस में बाँटते रहे।

अगले दिन अपना काम निबटाकर अपराह्न में मैं मल्लिका के विभाग में गया। पता चला, थोड़ी देर के लिए वह कहीं गई हैं मैं टेबिल के सामने रखी कुर्सी पर बैठकर उसका इंतज़ार करने लगा। टेबिल पर एक नेमप्लेट रखी थी जिसपर लिखा था श्रीमती मल्लिका। मल्लिका के आगे भी कुछ लिखा था जिस पर कागज चिपका दिया गया था। मैं किसीसे कुछ पूछता इसके पहले ही बगल की सीट पर बैठी उनकी एक सहयोगी गुजराती भाषा में बोल पडी 'मैडम पैला मल्लिका ठक्कर हती। बीजी नेम-प्लेट बनीने आव्यासुधी एमणे जूनी नेम-प्लेट नेज सुधारीने राखी लिधी छे।' कुर्सी पर बैठे-बैठे मैंने रात को होटल के कमरे में देखे सपनों के अलबम के अभी दो एक पन्ने ही पलटे होंगे कि मल्लिका आ धमकी। 'ओव.... वाट अ प्लीज़ंट-सरप्राइज... कहीं मैं सपना तो नहीं न देख रही हूँ।

'नहीं.....बिल्कुल नहीं, मैं साक्षात बलदेव ही हूँ।'

'वेलकम-वेलकम...'- और उसने अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया। मेरे स्मृतिपटल पर पहली मुलाक़ात ताज़ा हो गई। अभिवादन स्वीकार कर मैं फिर सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया पर मन में एक बेचैनी के साथ। मल्लिका ने पूरे बाँह की कमीज़ पहनी थी और साथ में हैंड ग्लव्ज़ भी। मैंने ग़ौर से देखा। मल्लिका के चेहरे पर अपने इर्द-गिर्द चुम्बकीय-क्षेत्र पैदा कर देने वाली वह रौनक न थी जो मैंने पहली मुलाक़ात में देखी थी। इसी बीच मेरा ध्यान उसके होंठ तथा गर्दन की ओर गया और मुझे कारण समझते देर न लगी। मुझे जैसे साँप सूघ गया। दरअसल मैंने यह सोचकर कार्यालयीन कामकाज जल्दी निपटाया था कि मुझे अधिकाधिक समय मल्लिका के साथ बिताने को मिले। सोचा तो यह भी था कि आज की शाम मल्लिका के साथ बिताऊँगा। बातचीत के दौरान मल्लिका ने घर चलने को कहा पर मैंने सफ़ाई से टाल दिया। इस बीच उसने चाय बुला ली थी। मैंने जैसे-तैसे चाय पी और ऑफिस का कुछ काम बाकी होने का बहाना बनाकर उससे विदा ले ली। ग्रीन-वैली होटल के कमरा नंबर 304 में वह रात बड़ी मुश्किल से कटी। सारी रात अपने टूटे हुए सपनों के टुकडे समेटता रहा मैं।

माँ जानने के लिए बेहद उत्सुक थी। मौका पाते ही पूछ बैठी मल्लिका मिली थी?

'हाँ'

'कैसी है?'

'अच्छी है।'

'उसकी बिटिया कैसी है?'

'मैं पूछ नहीं पाया। समय ही नहीं मिला।'

'क्या मैं जितना पूछूँगी उतना ही बताओगे।' माँ का धैर्य शायद जवाब दे गया था।

'तुम क्या जानना चाहती हो, मैं समझता हूँ माँ। पर बेहतर यही होगा कि हमलोग मल्लिका को भूल जाएँ।'

'क्यों ऐसा क्या कह दिया उसने?'

'उसने कुछ नहीं कहा, न मैंने कुछ पूछा। पर उसे देखकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि.... मेरा मतलब मल्लिका अब वो मल्लिका नहीं रही जिसके बारे में मैने आपको बताया था।'

'साफ़-साफ़ बताओ बेटा कि हुआ क्या है मल्लिका को।'

'मल्लिका को ल्यूकोडरमा हो गया है। उसके शरीर पर जहाँ-तहाँ सफ़ेद दाग उभर आए हैं।.... माँ, उसके इतने एसएमएस और फोन आते रहे पर उसने हमें कभी नहीं बताया कि उसे यह बीमारी हो गई है। यह भी स्पष्ट है कि उसने इसी कारण मार्केटिंग से एडमिनिस्ट्रेटिव साइड में पोस्टिंग ले ली है। बाहर धूप में जाने से उसे तकलीफ होती होगी। अब उसमें वह बात नहीं रही जिसके कारण मैंने उसे...। बडी बदरंग दिखाई दे रही थी वह।'

सुनकर माँ थोड़ी देर चुप रही। फिर अत्यंत शालीन और संयत स्वर में कहने लगी, बेटा, क्या इसके अलावा भी कोई कारण है जिसकी वजह से तुमने अपना विचार बदलने का सोचा है?

नहीं और कोई कारण नहीं है पर जो है, क्या वह काफी नहीं हैं?

'बेटा एक बात बताओ। क्या यह बीमारी केवल महिलाओं को ही होती है? मां ने जैसे विरोधी पक्ष के वकील की भूमिका अख्तियार कर ली थी।

नहीं ऐसा तो नहीं है। आजकल तो कोई भी शिकार दिखायी देता है इस बीमारी का।

'तब क्षण भर के लिए मानकर चलो कि मल्लिका के साथ-साथ यह बीमारी तुम्हें भी हो जाती तो तुम्हारा रवैया क्या होता? क्या तब भी तुम इसी प्रकार सोचते जैसे अभी सोच रहे हो।'

माँ के मुँह से यह प्रश्न मेरे लिए अप्रत्याशित था। मैं सहम गया। कुछ पल बाद मुझे याद आया कि कम्प्यूटर सीखने के दौरान वीथी ने मजा लेते हुए एक बार कहा था, पापा क्या आप जानते हैं कि डिलीट की गई फाइल भी कम्प्यूटर की रिसाइकिल-बिन में से निकाली जा सकती है? मेरी बेचैनी बढ़ गई है। मैं सेल फोन उठाकर उसमें मल्लिका का नंबर खोजने लगता हूँ।

30, गुरूछया कॉलौनी साईं नगर अमरावती-444607

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'न' कहने का अधिकार

महेन्द्र फुसकेले

माँ की, जीवित रहने के संघर्ष की स्मृति ही मेरा सबसे बड़ा संबल है। वह याद मेरे मन में आज भी एक सुगंध, एक मधुर ध्वनि की तरह तरंगित होती रहती है। अन्यथा मुझ जैसी एक लड़का, जिसे उसकी माँ ने यह बताया न हो कि उसमें किस पुरुष का अंश है, समाज में सहेलियों तथा दोस्तों में उठना-बैठना, खाना-पीना, साँस लेना तक दूभर हो जाता। "माँ को यह कहाँ पता चला होगा कि जिसे उसने अपनी कोख में रखा है, किसके दैहिक संसर्ग का प्रतिफल है। हो सकता है कि माँ को यह आभास हो चुका हो। कुछ तो अंदाज़ वह अवश्य लगा सकी होगी। लगता है, माँ ने मुझे जान-बूझ कर नहीं बताया। संभवतः, उसने मुझे आघात पहुँचने, नुक़सान होने, दुख पहुँचने की आशंका के वशीभूत इस पर पर्दा डाले रखा। क्योंकि वह एक माँ थी।

मेरी माँ डांसबार गर्ल नहीं थी। कॉलगर्ल नहीं थी। सेक्स वर्कर भी नहीं थी। न तो वह दलित कन्या थी और न वह निर्धन की पुत्री थी। वह अपने माता-पिता की मँझली लड़की थी। अपनी बड़ी दीदी की दूसरी विदा के अवसर पर उसके साथ उसकी ससुराल कुछ दिन के लिए, ससुराल वालों के आग्रह पर गयी थी। वहाँ जीजा ने शर्बत में नींद की गोलियाँ पिलाकर अपनी हवस का शिकार बना लिया था। घर के जिस नौकर ने उन्हें यह करते देख लिया था, उसका मुँह हमेशा के लिए बंद रखने की शर्त पर जीजा ने मेरी माँ को उसी दिन नौकर से अनंग-क्रीड़ा करने को भी मजबूर कर दिया था। दीदी के सुख का और माता-पिता की इज़्ज़त का वास्ता तथा तलाक देने की धमकी देकर जीजा ने उसे चुप रहने के लिये विवश कर दिया था। माँ अपनी दीदी की ससुराल से चौथे दिन ही घर वापस आ गयी थी। लुटी-पिटी अपने होंठ सिये; हँसने का प्रहसन करती, मगर अंदर से रोती। माँ कहा करती थी—"मैं दीदी से अधिक सुंदर थी, इसलिए सभी की नज़र मुझ पर अड़ जाती थी। मेरी मुसीबत की जड़ में यही रंग-रूप था।" घर में आकर माँ ने किसी को कुछ नहीं बताया।

अकस्मात् एक रिश्ता माँ के लिए उसकी ताई के मायके से आ गया। माँ के माता-पिता ने गाँव के रिवाज़ के अनुसार उसी महीने में पंडित से शुभ मुहूर्त निकलवाकर माँ के हाथ पीले कर दिये थे। डेढ़ महीने में ही दो-दो मड़वों का ख़र्च उठाना घर वालों को काफ़ी कठिन था। दहेज में मेरे नाना को अपना एक सिंचित खेत बेच देना पड़ा था। मेरी नानी के रहे-सहे गहनों को ऊँचे ब्याज़ पर साहूकार के यहाँ गिरवी रखकर बारात का स्वागत-सत्कार हो सका था। विदा के समय माँ की डोली बारात के साथ-साथ उठ सकी थी। माँ आँख में आँसू और दिल में नये अरमान तथा सपने लिये डोली में बैठकर ससुराल चली गयी थी। गपईसमुंदर का खेल जिस आँगन में मेरी माँ खेला करती थी, अपनी सहेलियों, दीदी तथा छोटी बहिन के साथ, वह हमेशा के लिए उससे छूट गया था। आँगन के नीम के पेड़ पर बैठकर चहकने वाली चिड़िया हमेशा के लिए माँ से बिछुड़ गयी थीं, जिन्हें वह दाल-भात खिलाती थी। अपनी माँ का बिछोह मेरी माँ की छाती में जीवन भर बबूल के काँटे की तरह सालता रहा। माँ फिर कभी अपने गाँव, अपने घर, अपनी माँ तथा पिता को न देख सकी थी, न उनसे मिल सकी थी।

माँ को सुहागरात सास और ननदों के कम दहेज लाने के तीक्ष्ण तानों की बौछार में मीठी से कड़वी हो गयी थी। सास के बुलाने की करेले के रस में डूबी आवाज़ों से माँ की सुहागरात पौ फटने से घंटा भर पहले ही बीत गयी थी। सुबह से लेकर देर रात्रि तक घर का सभी प्रकार का थका देने वाला कार्य निपटाते, पति से मिलन का इंतज़ार करते-करते माँ को सो जाना पड़ता। पति को माता-पिता के कमरे में सुला लिया जाता था। यह माँ पर एक मोटरसाइकिल और सयानी हो गयी ननद के लिए मायके से दहेज मँगवाने के लिए दबाव डालने की मंशा से किया जाता था। माँ के हाथ नाना के लिए चिट्ठियाँ लिखवायीं गयीं, रुपया मँगवाने के लिए। नाना के लिए चिट्ठियाँ तथा संदेशे लेकर घर के एक पुराने नौकर को भेजा जाता था। नाना के पास बचा ही क्या था कि अपनी बेटी के सुख-चैन एवं उचित सम्मानजनक व्यवहार किये जाने के एवज़ उसकी ससुराल वालों के चरणों में अर्पित कर सकते। नाना-नानी की आँख से गिरे आँसुओं का मोल माँ की ससुराल वालों को धूल से अधिक नहीं लगना था, सो नहीं लगा। घर का बचा-खुचा भोजन और सास-ससुर-पति के तानों की बौछारों के बीच में प्रतिदिन मेरी माँ को मार-पीट सहनी पड़ती। कुछ दिन के पश्चात उसका बिस्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़मीन पर एक अँधेरी कोठरी में डाल दिया गया था।

पेट में बढ़ रही मैं दुनिया की नजर में आने ही वाली थी। भोली-अनुभवहीन मेरी माँ घबरा गयी, उसके हाथ-पाँव फूल गये। करे तो क्या करे? मुझसे निजात पा ले? क्या उपाय करे? किसी से न बताया जा सकता है और न कोई उपाय किया जा सकता है। मुझे पेट में रहने दे? संसार में आने दे? मगर कैसे? न रहने दे? दुनिया में न आने दे? कैसे? क्या किया जाए?

मेरा बढ़ना माँ कैसे रोक पाती? घर में खुसुर-फुसुर होने लगी। माता-पिता द्वारा रोक दिये जाने और एक अलग कोठरी में माँ को रहने के लिए मजबूर कर दिये जाने पर सब की आँख बचाकर माँ का पति अपनी शरीरिक भूख मिटाने प्रतिदिन माँ के साथ हमबिस्तर होता रहा। उसके लिए अधिसंख्य पुरुषों की तरह मेरी माँ एक देह से अधिक कुछ नहीं थी। सास-ननद के साथ-साथ यही पति दिन के प्रकाश में लात-घूसों की सौगात देने में शामिल रहता। रात्रि के अँधेरे में आये अपने पति की यौनिक क्रूरता को माँ रोक नहीं पाती थी। उसे अपने पति को 'न' कहने का अधिकार ही कहाँ था? स्त्री को यह अधिकार और अधिकार जताने की हिम्मत अभी समाज से ही जुटानी है। स्त्री की अपनी देह से मुक्ति के बड़े सामाजिक प्रश्न से यह मुद्दा जुड़ा है।

माँ सब सहती जाती थी कि एक दिन उसका पति अपनी माता को लेकर कोठरी में आया। कोठरी का दरवाज़ा अंदर से बंद करके पति ने एक कटोरी अपनी माता के हाथ में थमा दी। अपनी माता से कहा "स्वार्थी बाप की इस बदचलन की... में इन्हें भर दे।"

कटोरी अपने हाथ में पकड़े वह झिझकती खड़ी रही। फिर उसकी माता नें भद्दी गालियाँ देते हुए मेरी माँ की साड़ी और पेटीकोट ऊपर उठा कर उसे नंगा कर दिया।

पति ने गरियाते हुए क्रोधित स्वरों में फिर कहा—"घुसेड़े देता हूँ कटोरी भर इसकी.....मैं।"

और, पति ने कटोरी भर पिसी लाल मिर्च बलपूर्वक मेरी माँ की जननेंद्रिय में अपनी अँगुलियों से ठूँस दी। कुछ पिसी मिर्च उसकी माता ने भी ज़मीन पर गिर पडी माँ की जननेंद्रिय में अपने हाथ से भर दी। भीषण जलन और दर्द से कराहते हुए माँ अचेत हो गयी। उसे छटपटाते और पीड़ा से चीख़ते छोड़कर दोनों बहुत आनंदित होकर कोठरी के किवाड़ बाहर से बंद करके चले गये थे। जल में से निकालकर गर्म रेत पर फेंक दी गयी मछली की तरह मेरी माँ छटपटाती वहाँ कई दिन तक भूखी-प्यासी पड़ी रही। मछली तो मर जाती है, मगर माँ मछली नहीं थी, एक स्त्री थी, सो वह मरी नहीं। मैं भी बच गयी थी। हालाँकि उन दोनों माँ-बेटे की मंशा मेरी भ्रूण-हत्या कर देने की थी। माँ को एक स्त्री होने की क्रूर एवं वीभत्स सज़ा दी गयी थी। माँ को सज़ा इसलिए, क्योंकि उसने कुछ किया नहीं था। दूसरों ने किया था, उसे भुगतना पड़ा था। पुरुषों के समाज ने बेकसूर को कसूरवार ठहरा दिया था। एक स्त्री को ही कुल्हाड़ी का बेंट बनाकर दूसरी स्त्री की अस्मिता-निजत्व-लज्जा को घृणित तरीके से निरावृत्त कर काट दिया गया था।

ससुराल वालों को सलाह दी गयी थी कि "बहू को यदि घर में किसी भी प्रकार से मौत के घाट उतारा गया, तो संपूर्ण परिवार को ज़िंदगी जेल में गुज़ारनी पड़ेगी। इसलिए, घर में ऐसे हालात पैदा कर दो कि बहू स्वयं घर छोड़ कर भाग जाए। वह न ससुराल में रह पाए और न ही अपने मायके में जा पाए। बहू के साथ ही पेट के बच्चे का भी अस्तित्त्व तब समाप्त हो जाएगा। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। घर की इज़्ज़त तथा मर्यादा बची रहेगी। बहू का क्या, दस बहुएँ आ जाएँगी।"

माँ का नाम था गायत्री और ससुराल वालों ने उसका नामकरण किया गिरिजाबाई। मेरी माँ का सुहाग जिसके नाम से तिलकित था, वह कुबेर दत्त विज्ञान से स्नातक होकर नाक तक कर्मकांड और अंधविश्वास में डूबा था। वहीं उसे सलाह दी गयी थी कि मेरी माँ के प्रति किस तरह का व्यवहार किया जाए। सताया खूब जाए, मगर किसी को कुछ दिखे नहीं। किसी को माँ अपने मुँह से कुछ बता नहीं सके और दिखा भी नहीं सके। घर से स्वयं भाग जाने का रास्ता ही उसे सूझे। एक बार पीड़ा तथा निराशा के घटाटोप में माँ ने अपने प्राणों का अंत कर लेने का इरादा किया। रात्रि में सबकी आँख बचाकर वह घर से फर्लांग भर की दूरी पर बने कुएँ में कूदने वाली थी कि उसके अंतर्मन में हलचल मच गयी, उसे मेरा ख़्याल आ गया। सोच-विचारकर फिर उसने इरादा बदल दिया। घर में इसके बाद माँ की पहरेदारी सघन कर दी गयी थी। उसका खाना तो पहले ही कम कर दिया गया था, अब पीने का पानी उससे भी कम कर दिया गया।

अपनी योजना में जब घर वाले नाकाम हो गये, तो उन्होंने धर्म का, तीर्थयात्रा का सहारा लिया। माँ के पति कुबेर ने एक दिन सुबह उससे प्यार जताने की मुद्रा बनाकर, प्यार की भाषा में कहा—"गिरिजा, अब तक जो कछ हुआ उसे देवी माँ का श्राप मानकर मन से निकाल दो। कुलदेवी की पूजा करने और उनका आशीर्वाद लेने शाम की रेलगाड़ी से अपन दोनों आज चलेंगे। तुम अपनी तैयारी कर लो।" सुनकर माँ अचंभित रह गयी थी। शाम के पहले कोठरी में आकर कुबेर ने माँ की अटैची में खुद अपने हाथों से उसके पहनने के सभी कपड़े तह करके रख दिये। जेवर तो पहले ही ससुराल वाले छीन चुके थे। माँ के गले में बस एक सस्ता, काली पोत का मंगलसूत्र रहने दिया गया था। घंटे भर बाद अटैची हाथ में उठाते हुए मिसरी घुली आवाज़ में माँ से बोला—"गिरजा ट्रेन का समय हो गया है, अब अपन को चलना चाहिए।" कोठरी के बाहर सास-ससुर खड़े थे। पति कुबेर ने पहले, इसके पश्चात माँ ने उनके पैर छूकर विदा ली। गाँव भर में ढिंढोरा-सा पीट दिया गया था कि दुलेन को लेकर सुकुल जी का लड़का तीर्थयात्रा के लिए जा रहा है। मैहर की देवी माँ की पूजा

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से शुरूआत करेगा।'' यह बस सोची-समझी दूसरी योजना का एक हिस्सा था।

रास्ते भर रेलगाड़ी में पति कुबेर ने माँ के साथ अच्छा बर्ताव किया। अच्छा खिलाया-पिलाया। माँ का हैरान होना स्वाभाविक था। मैहर में पूरे भक्तिभाव से माँ के साथ पति कुबेर ने पूजा की। प्रसाद चढ़ाया। दो दिन मैहर में रुककर पति कुबेर माँ को लेकर मोटर के रास्ते चित्रकूट जा पहुँचा। मैहर में मंदिर की सीढ़ियों पर एक मर्तबा कुबेर ने माँ को धक्का देकर गिराने का प्रयत्न किया था। माँ के मन में शंका तो उठी थी, मगर माँ ने शारदा मइया के चरणों में माथा रखकर भुला दिया था। मइया को रखना होगा, तो रखेगी। चित्रकूट में एक धर्मशाला में ठहरे। सुबह घाट पर स्नान किया और मंदिरों में पूजा की, परसाद चढ़ाया, उनकी परिक्रमा की। संध्या की आरती के बहाने पति कुबेर माँ को नदी किनारे बने मंदिरों में ले गया। वह मौक़े की तलाश में था। वृक्षों के झुरमुट के नीचे गहन अँधेरे का लाभ उठाकर माँ को उसने नदी के गहरे पानी में धकेल दिया। धर्मशाला में आकर दोनों अटैचियाँ तथा बैग उठाकर उसने तुरंत चित्रकूट छोड़ दिया था।

गाँव वापस आकर कुबेर दत्त ने गाँव वालों को यह बता दिया था कि गिरजा को उसके मायके पहुँचा आया है। वह कुछ दिन अपने मायके में रहना चाहती थी। मगर घर में गुप-चुप दिल खोलकर खुशियों के अनारदाने फूटे। लंबे अरसे के बाद माँ के मायके वालों को यह बता दिया गया था कि तीर्थयात्रा में पति को होटल के कमरे में सोता छोड़ किसी के साथ भाग गयी है। यही बात कुछ बदलकर गाँव के स्त्री-पुरुषों के बीच में फैला दी थी कि गिरजा गाँव के एक लड़के के साथ भाग गयी है, जिसके साथ उसका इश्क़ चल रहा था। इस तरह माँ को उसकी ससुराल और मायके के गाँव में भी एक चरित्रहीन स्त्री घोषित कर हमेशा के लिए चैन की वंशी बजाने लगे। माँ के लिए उसके मायके के दरवाज़े इस तरह बंद कर दिये गये थे। आगे की ज़िंदगी में माँ कौन-सा मुँह लेकर अपने मायके जा पाती? बरसों के अंतराल के बाद माँ का असतित्त्व स्त्री-पुरुषों की स्मृतियों तक से मिट चुका था।

मैं आज एक न्यायिक अधिकारी हूँ, तो माँ के आशीर्वाद और मेरे नाना रामदयाल की खून-पसीने की छोटी-सी कमाई के बड़े सहयोग तथा हौसला अफ़ज़ाई से। नाना रामदयाल ने न केवल मेरा लालन-पालन अपनी स्वयं की संतान की तरह किया, बल्कि मेरी ऊँची पढ़ाई के लिए क़र्ज़ तक लिया। उनके पास था ही क्या? मिट्टी का खपरैल वाला एक कच्चा मकान। निःसंतान। बीमार पत्नी की मृत्यु के पश्चात एकदम अकेले। पत्नी ने बच्चे तो चार जन्मे, मगर महीने भर के अंदर एक-एक कर काल उन्हें निगल गया था। दूसरा विवाह फिर किया नहीं। म्युनिसिपाल्टी में थे तो एक चतुर्थ श्रेणी सफ़ाई कामगार, मगर ड्राइवरी का काम करते थे। जीप चलाते थे। म्युनिसिपाल्टी द्वारा उन्हें बरसों बा ड्राइवर मान लिया गया था और तदनुसार वेतन बढ़ा दिया ग था। दलित, ग़रीब एवं कम पढ़े-लिखे होने के बावजूद वे अ आदमी थे। इन्सानियत के रिश्ते से उन्होंने माँ को जीवन दि था, आश्रय दिया था, रहने को घर दिया था, सुरक्षा दी थी, दि का प्यार दिया था। अपनी पत्नी और मेरी माँ के देहावसान

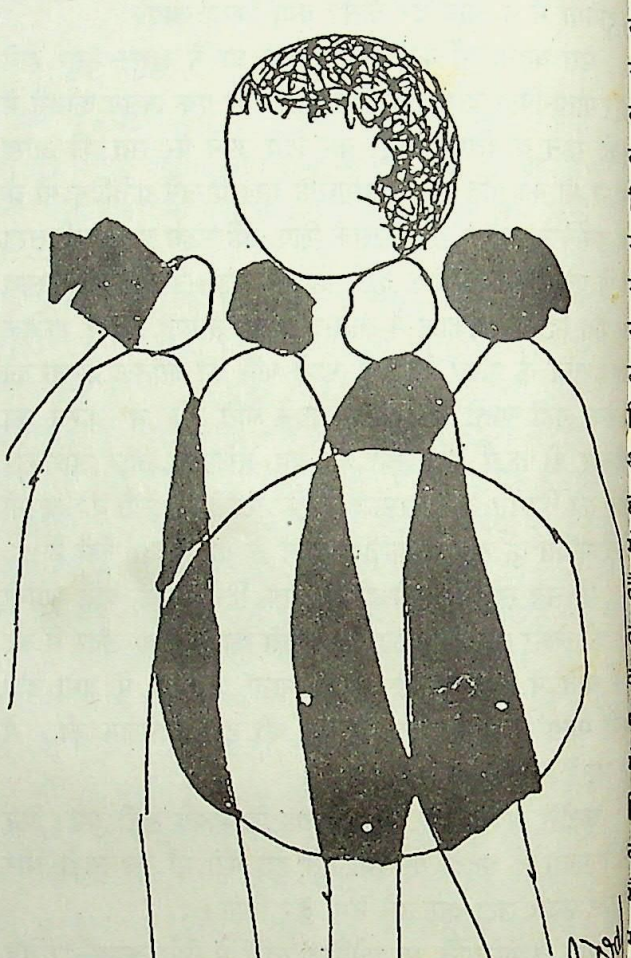

पश्चात मुझे अकेले ही पढ़ा-लिखाकर बड़ा किया था, सुयो बनाया था। वे मेरे लिए सगे नाना से अधिक सगे थे।

जब माँ ने पूरे दिन होने पर नाना के पड़ोस के ए सरकारी अस्पताल में मुझे जन्म दिया था, तब मुहल्ले भर में ना ने अपने हाथ से मिठाई बाँटी थी। नानी दलित स्त्रियों के सा घर के बाहर मुहल्ले में तीन दिन तक दिल खोलकर नाची-गा थी। बुलउआ में स्त्रियों को एक-एक रुपये का सिक्का अ बच्चों को एक-एक मुट्ठी चना-चिरोंजी बाँटी गयी थी।

मेरा नाम लड़कियों के एक सरकारी स्कूल में लिख दिया था। पिता के नाम पर आयी समस्या को नाना ने माँ इच्छा के विपरीत और मना करने के बावजूद, मजबूरी में लिखवा दिया था। स्कूल घर से दूर था। नाना मुझे अप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साइकिल पर बैठाकर स्कूल छोड़ने और लेने आते थे। मैं शुरू से ही पढ़ने में तेज थी। खेलने में भी पढ़ाई की तरह अव्वल आती थी। स्कूल तथा कॉलेज तक मुझे छात्रवृत्ति और खेल-कूद और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में पुरस्कार हमेशा मिलते रहे, तो इसके पीछे मेरी नानी की प्रेरणा तथा नाना का परिश्रम रहता था। माँ को पढ़ने का बड़ा चाव था। मेरी पुस्तकों के अलावा वह समय निकालकर पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ा करती थी। नाना म्युनिसिपाल्टी के वाचनालय और कार्यालय के मुख्य अधिकारी के घर से उनसे माँगकर लाते रहते थे। माँ का आशीर्वाद मुझे कॉलेज तक उसकी सुंदर तथा बड़ी-बड़ी आँखों के हमेशा के लिए बंद हो जाने के साथ ही मिलना समाप्त हो गया था। माँ घर में सिलाई मशीन पर दूसरों के सुंदर कपड़ों के साथ-साथ मेरे लिए भी मेरी ऊँची पढ़ाई के साथ-साथ मेरी शादी के ख़ूबसूरत सपने सिलती रहती थी। उनमें सुनहरे गोटा-किनारी-सलमा-सितारे टाँकती रहती थी। मगर दुर्भाग्य ने मेरे ऊपर अकस्मात वज्रपात किया और माँ को दुनियाँ से उठा लिया था। नाना ने बताया था कि एक दिन नहाते समय वह नहानी घर में चेतनालुप्त होने पर गिरी, तो फिर उठ नहीं सकी थी। उसकी बच्चेदानी में कैंसर हो गया था। मुझे तब लगा था- मैं उफनती नदी में तैरती एक नौका में बैठा दी गयी हूँ। मेरे एक हाथ में पतवार तो पहले कभी थी ही नहीं, अब दूसरे हाथ की पतवार भी हवा के एक तेज झोंके ने छीन ली। सामने तेज़ लहरें हैं और पतवारविहीन मैं नौका में बैठा दी गयी हूँ। तब मैं इलाहाबाद में पढ़ती थी। नाना का फ़ोन पाकर मैं घर आयी थी। तिल-तिलकर मृत्यु की ओर बढ़ती माँ से मैं दो शब्द भी नहीं बोल सकी थी। कितनी अभागी थी मैं। नाना रामदयाल को मैंने इतना उदास और दुखी कभी नहीं देखा था, जितना माँ की मृत्यु हो जाने पर देखा था। तब भी नहीं देखा था, जब मेरी नानी कस्तूरीबाई का देहावसान हुआ था।

एक बार गंभीर बीमारी के समय माँ ने अपने गले में पड़ी सोने की माला नाना को सौंपते हुए कहा था कि "यह माला जब पूजा दुल्हन बने, उसे दे देना। आप तो जानते ही हैं कि यह मंगलसूत्र नहीं है, जो मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखता है। पति से मंगलसूत्र होता है, सुहाग होता है। ज़ब पति, पति ही न रहा हो, हत्यारा हो गया हो, तो मैं रही कहाँ? जिसको आपने चित्रकूट में नदी में से बहती हुई अधमरी और अचेत निकालकर बचाया था, वह गिरजा बची ही कहाँ थी। वह तो मर चुकी थी और यह जो आज तक है, वह तो आपकी बेटी गायत्री है। और, जिसे मैंने जन्मा है, यह पूजा अब आप के भरोसे है। अब आगे आप ही इसकी सुरक्षा करेंगे। देखभाल करेंगे। जितना पढ़ना चाहे, पढ़ा देना। उसे मैं साहबों की साहब बनाना चाहती हूँ, ताकि यह सतायी और बेसहारा औरतों को न्याय दिला सके। सताने वालों को सज़ा दे सके। यह माला मेरी माँ की दी हुई है। जब वह पूजा के जन्म के बाद आयीं थी, मेरे पिता के साथ। आपको तो मालूम है। पति का पहनाया मंगलसूत्र तो नदी में कहीं गिर गया, जब आप मुझे डूबने से बचा रहे थे। उसका गिर जाना ही अच्छा था। एक दहेज लोभी हत्यारे की निशानी मेरे लिए एक घृणा की चीज़ होती। आपको तो यह भी मालूम है कि पूजा के बाप का पता मुझे नहीं है। बस यह मेरी बेटी है, यही अकेला सत्य है।"

माँ बीमार, दुबली-पतली तो थी ही। दुखी काया में बीमारियों ने घोंसले बना लिये थे। पौष्टिक भोजन और दवाइयों का टोटा भी ग़रीबों-आदिवासियों को शताब्दियों से पड़ता आया है। स्त्रियों की हालत तो क्या अमीर और क्या ग़रीब क्या अवर्ण एवं क्या सवर्ण, क्या द्विज और क्या अद्विज, क्या शिक्षित तथा क्या निरक्षर सभी की, भारत में पानी से भी ज़्यादा पतली चली आ रही है। गिरिजाबाई हो अथवा कस्तूरीबाई हो। अब मेरे सिर पर से माँ का ममता भरा हाथ भी उठ गया था। घर में मैं रह गयी थी और बूढ़े नाना रह गये थे। जब मैं छोटी थी, तब एक मर्तबा नाना रामदयाल ने मुझे बताया था कि माँ की चिट्ठियाँ पाकर तुम्हारे नाना-नानी आये थे। तुम्हें देखकर गोद में खिलाकर और माँ से बातचीत करके कुछ घंटे बाद राजा जनक की तरह आँखों में आँसू लिये विवश होकर वापस चले गये थे।

मैं अपनी उन दिनों की दशा वर्षों बाद आज याद नहीं करना चाहती। याद इतनी रखना चाहती हूँ कि मैं पढ़ती रही, पढ़-पढ़ कर बड़ी होती गयी, बड़ी होकर पढ़ती रही। परीक्षा, फिर परीक्षा और डिग्री के बाद फिर परीक्षा। सफलता की प्रथम ख़ुशी माँ के नाम, दूसरी नानी के नाम, तीसरी नाना के नाम और..... ...और चौथी पारिजात के नाम मैं करती रही। नाना की ख़ुशी तो एक बाग़वान की ख़ुशी से बहुत अधिक होती थी। सिविल जज की परीक्षा पास होने और पश्चात चयन होने पर तो मैं ख़ुशी से रो पड़ी थी। रोते-रोते हँसते हुए मैं पारिजात सिंह से लिपट गयी थी। पारिजात की ख़ुशी भी दुहरी थी। एक अपनी तथा दूसरी मेरी ख़ुशी। वह भी मेरे साथ ही सिविल जज हो गया था। मैं उसकी परिणीता होने का स्वप्न देखती थी।

131844

इलाहाबाद में कॉलेज की पढ़ाई करते हुए मेरी भेंट पारिजात सिंह से हो गयी थी। वह मेरा सहपाठी था। भेंट ज़ल्दी ही दोस्ती में, फिर दोस्ती प्रगाढ़ आत्मीयता में और फिर घनी आत्मीयता, चाहत में, प्यार में विकसित होती गयी थी। होली के अवकाश में एक मर्तबा मैंने अपने साथ पारिजात को लाकर माँ से मुलाक़ात करा दी थी। पारिजात दो दिन हमारे घर में ही रहा था। माँ को पसंद आ गया था। नाना ने तो उसे मेरी नज़र से देखा था, पसंद तो आता ही। नाना बहुत सतर्क होकर उससे अपने मन के संदेह दूर करते रहे थे। माँ, नाना से अधिक संदेह तथा अविश्वास के मकड़जाल को एक भुक्तभोगी स्त्री के नाज़ुक, मगर सख़्त हाथों से हटाकर, उसे जानने-समझने की कोशिश करती रही थी।

Gurukul Kangri University Haridwar-249404

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे दिन माँ ने नाना एवं मेरी उपस्थिति में पारिजात से कुछ अप्रत्याशित प्रश्न पूछकर घर में भूचाल ला दिया था। नाना तो भौंचक, अवाक् रह गये थे। मैं और पारिजात दोनों कॉलेज में पढ़ते नयी पीढ़ी के युवा होते हुए भी शरमा गये थे। दोनों की आँखें जैसे ज़मीन में गड़ गयी थीं। पारिजात तो घबरा गया था। क्योंकि माँ ने उसी से पूछा था—"तुम जानते हो कि पूजा ने अपने पिता को न कभी देखा है, और न ही उनका उसे नाम मालूम है?"

हाँ, मुझे मालूम है, पूजा ने बताया था," कहा पारिजात ने।

सुनकर माँ ने पूछा था, "फिर भी तुम पूजा को चाहते हो। उससे शादी करना चाहते हो?"

पारिजात ने दृढ शब्दों में उत्तर दिया था, हाँ। यदि आपकी आज्ञा होगी तब।"

"क्या तुमने अपने माता पिता से मंजूरी ली है?"

सुनकर पारिजात ने कहा था, "मेरी माताजी और पिताजी दोनों पूजा को पसंद करते हैं तथा उन्होंने विवाह के लिए स्वीकृति भी दे दी है।"

नाना की तरफ़ अँगुली से इशारा करते हुए माँ ने तब कहा था—"ये मेरे धर्मपिता हैं। सगे पिता से अधिक मुझ पर कृपालु हैं। शूद्र हैं, जैसा सब को ज्ञात है। मेरे प्राण बचाने वाले साक्षात् ईश्वर हैं। बेटी पूजा का लालन-पालन मैंने इसी दलित बस्ती में रहकर किया है। अब एक बात संकोच छोड़कर साफ़-साफ़ बताओ पारिजात, क्या तुम स्त्री-पुरूष के संबंध में स्त्री को 'न' कहने का अधिकार देते हो?... तुम्हारी सोच इस मामले में क्या है?... क्या तुम समर्थन करते हो?"

वास्तव में इसी प्रश्न ने घर में भूकंप ला दिया था। पारिजात घबरा गया था। हिचकते हुए उसने कहा था स्त्री को 'नहीं' कहने का अधिकार है और अपनी इच्छा जताने का भी. पुरुष जितना हक़ है। स्त्री-पुरुष को एक दूसरे की इच्छा अथवा अनिच्छा का सम्मान करना चाहिए। मैं स्त्री को 'नहीं' कहने के अधिकार का समर्थक हूँ।"

"तुम्हारी बात सुनकर बहुत खुशी हुई। मेरी छाती जुड़ा गयी... मगर विश्वास नहीं होता। तुम बाद में पूजा के साथ धोखा तो नहीं करोगे? मेरे विश्वास का ख़ून तो नहीं कर दोगे?... सात फेरों के पहले दो पुरुषों ने और सात फेरों के बाद तीसरे पुरुष ने मेरी इच्छा के विरुद्ध बलात् संसर्ग किया था। मैं पुरुष मात्र से घृणा करने लगी थी। बाद में धर्मपिता रामदयाल जी के देवतातुल्य व्यवहार ने सभी पुरुषों के ख़िलाफ़ मुझे धारणा बदलने को मजबूर कर दिया था। तभी से स्त्री की 'न' का सवाल मेरी अस्मिता का सवाल बन चुका है," माँ ने पारिजात के सामने तोप का गोला-सा दाग दिया था।

मैं काँपने लगी थी कि पारिजात से समुचित उत्तर नहीं बना तो क्या होगा? तभी पारिजात की दृढ़ आवाज़ मेरे कानों में पड़ी, "माई, आपको पूजा ने बताया नहीं होगा कि हम आदिवा हैं। हमारे समाज में स्त्री का सम्मान सर्वोपरि है। स्त्री को पु के समान बराबर के अधिकार हैं। वह परिवार की मुखिया स्त्री की 'न' का अर्थ अपसंस्कृति की देन है... माई, मुझ आप पूरा भरोसा कर सकती हैं। पूजा के हाथ आप कृपाकर हाथों मे दे देंवें।"

माँ ने तब कहा, "पारिजात, मेरे पास तुम्हें दहेज में देने लिए कुछ नहीं हैं, यह बात मैं अभी से बताये देती हूँ।" "मा यह भी आप जान लें कि हमारे समाज में दहेज-प्रथा नहीं कन्या के माता-पिता को वर पक्ष खाने-पीने की सामान्य व तथा वस्त्र इत्यादि भेंट में जाकर देता है। तब कन्या के माता-पि अपनी कन्या का विवाह करने के लिए रज़ामंद होते हैं। नाना और आप मेरे परिवार वालों से भेंट मांगने का अधिकार रखते आपकी पूजा, मेरी भी पूजा है, ऐसा मानिए, "पारिजात क करते-करते उठा और माँ के पास आकर पलक झपकते उसने के पैर छू लिये।

माँ ने तब मुझे अपने निकट बुलाया तथा मेरा हाथ पकड़ पारिजात के दोनों हाथों में पकड़ा दिया था।

"तुम दोनों का प्रेम हमेशा इसी तरह बना रहे। मे आशीर्वाद है। बेटी पूजा और बेटा पारिजात दोनों अपने नाना का भी आशीर्वाद ले लें। तभी बात बनेगी," कहते हुए माँ ने ए हाथ पारिजात के सिर पर तथा दूसरा मेरे सिर पर रख दिया थ बगैर विलंब किये पारिजात और मैंने थोड़ी दूर ज़मीन पर बै नाना के पैर छूकर उनका आशीर्वाद भी ले लिया था। माँ ने त कहा था—"पूजा और पारिजात, तुम्हारा पाणिग्रहण हो गया ऐसा मानो और समझो।"

मैं तब माँ से कह उठी थी—"माँ मैं एक वचन पारिजात लेना चाहती हूँ। मेरी ओर से तभी पक्की होगी।" फिर मैं पारिजात के कान में धीरे से कहा था कि बच्चा हो अथवा न हो? कब हो और कितने हों? इसे निश्चित करने का अधिक मेरा होगा। तुम्हारी राय भी मैं सुनूँगी। पारिजात ने भी मेरे का में ही उत्तर दिया था हाँ, हाँ, हाँ, वचन देता हूँ। पारिजात बात सुनकर तब मैंने ज़ोर से कहा था, "माँ, अब मैं हाँ कह हूँ।" और मैं मुस्कुरा दी थी।

"मगर माई, आपको तो पूजा के पिता का ज्ञान है, उन नाम पता है। भले ही पूजा को मालूम नहीं है, देखा नहीं आपने बताया नहीं। आपकी चुप्पी आपके ख़िलाफ़ बहुत कु कहती है। पूजा का भविष्य उजाड़ती है। कोई इसे कैसे मंजूर क सकता है? इसलिये माई, मैं अब पूजा के साथ शादी के लिये कहता हूँ। हाँ, मैं और पूजा अच्छे दोस्त बने रहेंगे," कहते हु पारिजात तेज़ी से कमरे से बाहर चला गया था।

9/7 नमक मंडी, कटरा बाज़ार वार्ड, सागर (म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वी0आर0एस0

गिरीश पंकज

सी0 के0 अग्निहोत्री आज बेहद ख़ुश हैं। दफ़्तर का आख़िर दिन जो है। वी.आर.एस. (स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना) का लाभ उठा लिया है। अभी पचपन साल के ही है। रिटायरमेंट के पूरे पाँच साल बाक़ी हैं, लेकिन दूसरे लोग वी.आर.एस. ले रहे हैं, तो अग्निहोत्री जी ने भी अप्लाई कर दिया। पाँच साल की पूरी सेलरी, भत्ते आदि मिलाकर तीस लाख रुपए मिल रहे हैं। इतनी बड़ी रक़म एक साथ। सारी रक़म जमा कर देंगे। ब्याज़ के सहारे ज़िंदगी कट जाएगी। घूमेंगे-फिरेंगे, मस्ती करेंगे। पत्नी और दो बच्चे हैं। सबका लालन-पालन हो जाएगा। वैसे भी बच्चे बड़े हो रहे हैं। दो चार-साल बाद वे कहीं न कहीं सेटल हो जाएँगे। ठीक-ठाक पैकेज तो मिल ही जाएगा।

पत्नी गीता भी ख़ुश है, कहती है—"अच्छा हुआ, जो आपने वी.आर.एस. ले लिया। अब दिन भर आपका साथ रहेगा।"

"लेकिन, हमारी मुसीबत तो बढ़ जाएगी। अब तो बार-बार टोका-टोकी करेंगे डैडी, बेटे शलभ ने हँसते हुए कहा।

"मेरी भी आज़ादी गयी, बिटिया वर्षा भी चहकते हुए बोली।

"ऐसा कुछ नहीं होगा", अग्निहोत्री ठहाके लगाते हैं, "तुम लोग मेरे पीछे जितनी मनमानी किया करते थे, वह सब जारी रखना। अब तो ख़ुश। मैं भारत-भ्रमण के लिए निकल जाऊँगा।"

"वाह, मुझे छोड़कर जाएँगे क्या?" गीता बोली।

"तुम्हारे बिना मैं तो जहन्नुम में भी कदम न रखूँ, अग्निहोत्री मुस्कराते हुए बोले, "लेकिन, अभी तो मैं चलूँ। आज दफ़्तर का आख़िरी दिन है। मेरे कुलीग इंतज़ार कर रहे होंगे।"

"तीस लाख का चेक भी साथ लाएँगे न?" गीता ने स्त्रियोचित उतावलापन दिखाया।

"हाँ भई, हाँ', अग्निहोत्री बोले, "चेक लाऊँगा और सबसे पहले तुम्हारे कर कमलों की शोभा बढ़ाऊँगा। ख़ुश...?"

गीता शरमा गयी। बच्चे भी हँस पड़े।

अग्निहोत्री के मन में हर्ष और विषाद दोनों का अजीब-सा सम्मिश्रण हो रहा था। हो रहा था। एक तो वी0आर0एस0 के कारण रोज़ाना आठ घंटे की जी-तोड़ मेहनत से मुक्ति और तीस लाख का चेक था, तो दूसरी ओर वर्षों पुराने साथियों से जुदाई का दर्द भी। फिर, एक डर भी था, सबसे बड़ा डर-खालीपन का डर। दफ़्तर में तो घंटों खप जाते थे, लेकिन कल से इन आठ घंटों में करेंगे क्या?... बोर हो जाऊँगा। वक़्त कैसे कटेगा? फिर सोचने लगे, दिन भर पत्नी के साथ गप्पे हाँकेंगे, टी0वी0 देखेंगे, वी0सी0डी0 पर नयी-पुरानी फ़िल्में देखा करेंगे। शाम को घूमने-फिरने निकल जाएँगे। रोज़ यही सिलसिला रहेगा। पैंतीस साल नौकरी कर ली। जाने कितने अवसर ऐसे भी आये, जब रात को आठ- नौ बजे तक घर पहुँचते थे। अब कोई टेंशन नहीं। दिन भी अपना और रात भी अपनी, यानी मौजां ही मौजां। दफ़्तर पहुँचे तो सहकर्मियों ने हाथों हाथ लिया।

"आज तो कुछ ज़्यादा ही ख़ुश नज़र आ रहे हैं अग्निहोत्री जी?" मिश्रा जी ने मज़ाक किया।

"भाया, तीस लाख का चेक जो मिल रहा है," ये आवाज़ थी वर्मा की।

"लेकिन, हम लोगों को मत भूल जाइएगा सर," यह थी मिस सुनीता। उसके चेहरे से उदासी टपक रही थी, इधर भी आते रहिएगा। आपके बिना दफ़्तर खाली-खाली लगेगा।"

"आप लोगों को कैसे भूल सकता हूँ भला?" अग्निहोत्री जी बोले, "दफ़्तर से विदा ले रहा हूँ ज़िंदगी से नहीं। बीच-बीच में आता रहूँगा, बशर्ते आप लोग चाय-पानी के लिए पूछें। क्यों...?"

कुलीग हँस पड़े, फिर अपने कामों में भिड़ गये लेकिन मिश्राजी से रहा न गया। उन्होंने अग्निहोत्री जी से पूछा "सर, भविष्य की क्या योजना है?"

"अभी तो कोई आयोग नहीं बिठाया है", अग्निहोत्री जी ने प्रश्न को हँसते हुए टाल दिया और बोले, "इस सब के बारे में बाद में सोचेंगे।"

"व्हाई नाट, व्हाई नाट", मिश्राजी हँसते हुए बोले, "आप चलिए, पीछे-पीछे मैं भी आ रहा हूँ।"

शाम को एक आकर्षक स्मृति-चिह्न, शॉल, श्रीफल देकर अग्निहोत्री जी को विदाई दी गयी। भाषण हुए...तस्वीरें खिंचीं कुछ आँखें छलछलायीं....कुछ कंठ रुँधे, फिर देखते ही देखते एक अनिवार्य औपचारिकता पूरी हो गयी।

और....शाम हमेशा की तरह रात की बाहों में समाने चल पड़ी।

सुबह के नौ बज चुके हैं। अग्निहोत्री जी अभी तक सो रहे हैं। गीता सोचती है, आज इनको क्या हो गया है? फिर याद आता

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—अरे, अब तो दफ़्तर से परमानेंट छुट्टी मिल गयी है। अच्छा है, सोने दो। लेकिन थोडी देर बाद ही अग्निहोत्री जी की आँखें खुल जाती हैं। घड़ी पर नज़र जाती है, तो हड़बड़ाकर बिस्तर से उठ खड़े होते हैं—"बाप रे नौ बज गये? गीता, तुमने मुझे जगाया क्यों नहीं?" फिर मुस्करा पड़े, "ओह, धत्त तेरे की। अब काहे का दफ़्तर? गीता, बढ़िया चाय पिलाओ। अख़बार भी ले आओ। आज तो बस, तुम्हारा सिर खाना है।

पूरा दिन मटरगश्ती में निकल गया। इस कमरे से उस कमरे। हर कमरे की हर चीज़ को ग़ौर से देखा। जैसे अपने ही घर को पहचानने की कोशिश कर रहे हों। ड्राइंगरूम पर भी नज़र डाली। फिर बोले- "इसका कायाकल्प करना पड़ेगा। अब तो फ़ुरसत ही फ़ुरसत है।"

घूम-फिर कर फिर टीवी के सामने आकर बैठ गये। चैनल पर चैनल बदलते रहे। थोड़ी देर बाद काग़ज़-क़लम लेकर बैठ गये कि तीस लाख का क्या-क्या करेंगे, फिर अख़बार लेकर बैठ गये। हर पेज़ को चाट डाला। कुछ ख़बरों पर अपनी स्पेशल टिप्पणियाँ भी देते रहे। दो बज गये, तो खाना खाया और फिर सो गये। पत्नी के कहने पर शाम को बाज़ार निकलने का विचार मन में आया ज़रूर, लेकिन निकले नहीं। पता नहीं क्यों....? कहने लगे—"मूड ही नहीं हुआ।"

अग्निहोत्री जी दूसरे दिन कुछ जल्दी उठ गये लेकिन तैयार होने का मन नहीं हुआ। सोचते रहे कि हड़बड़ी क्या है। काम पर तो जाना है नहीं। बेहतर यही है कि घर पर आराम फ़रमाया जाए, सोचकर सो गये। गीता भी कुछ नहीं बोली। उसे मज़ा आ रहा था कि रोज़ समय पर दफ़्तर जाने वाले अग्निहोत्री जी अब कितने तनावरहित, कितने निश्चित हो गये हैं। ज़िंदगी हो तो ऐसी। अच्छा हुआ, इन्होंने वी0आर0एस0 ले लिया। सरकार की यह अच्छी स्कीम है। पुराने लोग आराम करें, ताकि नये लोगों के लिए रास्ता खुले। इस वी0आर0एस0 के चलते न जाने कितनी पत्नियों को अपने खोये हुए पति मिल जाएँगे। नीरस ज़िंदगी में जैसे रंग भरने के दिन आ गये हैं। अग्निहोत्री जी का चेहरा पहले से कुछ ज्यादा ही चमकने लगा है।

अग्निहोत्री जी दूसरे दिन भी घर से बाहर नहीं निकले।

देखते-देखते एक सप्ताह बीत गया। अग्निहोत्री जी ने घर से बाहर झाँका तक नहीं। पड़ोसियों ने खोज-ख़बर ली, तो गीता ने साफ़-साफ़ कह दिया—"वी0आर0एस0 ले लिया है न, इसलिए आजकल आराम फ़रमा रहे हैं।"

"वी0आर0एस0 में तो तगड़ा पैसा मिलता है। कितना मिला साब को?" पड़ोसन लालवानी ने पूछा—

"कोई ख़ास नहीं," गीता हँस कर आगे बढ़ गयी।

वी0आर0एस0 का दसवाँ दिन...

अग्निहोत्री जी में काफ़ी परिवर्तन नज़र आने लगा था। उनके चेहरे पर पहले जैसी चमक नहीं थी। आवाज़ में भी पहले जैसी खनक नहीं थी। कुछ-कुछ उदास-से नज़र आने लगे थे। सुबह उठकर तैयार हो जाते, मगर बेचैन होकर इधर- उधर टहलते रहते। मॉर्निंग वॉक पर भी जाना छोड़ दिया।

गीता बोली—"दस दिन हो रहे हैं, आप घर से बाहर ही नहीं निकले? जाइए, अपने दफ़्तर तक हो आइए। बाज़ार के चक्कर लगा लें, मूड फ्रेश हो जाएगा।

"मन तो करे बाहर निकलने का," अग्निहोत्री जी बोले, "गीता, समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। दिन भर खाली बैठा रहता हूँ। फ़्रस्ट्रेशन होने लगा है। किसके पास जाऊँ। सौ तरह के प्रश्न करते हैं लोग कि समय कैसे काट रहे हो... जो पैसे मिले हैं, उनका क्या कर रहे हो... क्या कोई एन0जी0ओ0 चलाने का इरादा है? प्रश्नों का पहाड़ खड़ा कर देते हैं। बड़ी रक़म मिल जाएगी, यही सोच कर वी0आर0एस0 ले लिया। यह भी था कि काम के बोझ से मुक्ति मिल जाएगी, लेकिन अब लगता है, कि बिना काम के तो जीना कठिन हो जाएगा। कोई प्लानिंग कर लेनी थी और उसी में भिड़ जाना था। सचमुच बिना काम के आदमी बेकाम हो जाता है। कुछ तो करना होगा। कहीं छोटी-मोटी दूकान डाल लूँ...कोई प्रॉइवेट कंपनी ज्वॉइन कर लूँ...? क्या करूँ गीता?

"अरे, गोली मारिए काम-धाम को", गीता बोली, "और कितना काम करेंगे? आराम कीजिए। अभी दस दिन ही तो हुए हैं। धीरे-धीरे सब सेट हो जाएगा। कुछ दिन के लिए नरेंद्र मामा के यहाँ चले जाइए सिलीगुड़ी। अपन दोनों चलते हैं। कल्पना चाची से भी मिलकर आ जाएँगे। अब आप अपना बाक़ी समय घूमने-फिरने में लगाएँ। ज़िंदगी मज़े से कट जाएगी। देखिए मेहता जी को, मस्ती के साथ देश-विदेश घूम रहे हैं कि नहीं।"

पत्नी की बातें सुनकर अग्निहोत्री जी को तनिक राहत मिली। बोले-"ठीक कहती हो। करता हूँ कुछ प्लानिंग।" लेकिन जैसे ही एक सप्ताह और बीता, अग्निहोत्री जी की बेचैनी बढ़ती गयी। अग्निहोत्री घर के बाहर ही नहीं निकले। निकले भी तो चार कदम चलकर लौट आये। जैसे कोई उनके पीछे पड़ा हो। घर की चौखट लाँघने की हिम्मत ही नहीं होती थी। हर बार यही भय कि लोगों के सवालों का जवाब क्या दूँगा? अभी तक कुछ सोच ही नहीं पाये कि करना क्या है। जब कोई योजना नहीं बना सके तो वी0आर0एस0 क्यों ले लिया? पूरी ज़िंदगी ऐसे ही ठलुआगिरी करते काट देंगे? कुछ तो करना होगा। अग्निहोत्री जी के ज़ेहन में ये तमाम बातें कौंधती रहतीं।

लोगों के सवाल रूपी प्रक्षेपास्त्रों से बचने के लिए वे घर के बंकर में बने रहना बेहतर समझते थे।

दो महीने बीत गये। अग्निहोत्री का अधिकांश समय घर पर ही बीतता। एकाध बार शाम हो जाने के बाद शहर का चक्कर ज़रूर लगाया। एक-दो पुराने सहकर्मियों के घर भी हो आये, बस। जहाँ भी जाते, लोगों का एक ही सवाल होता।

"क्या कर रहे हैं आजकल?" वर्मा ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुछ प्लान किया कि नहीं...?" शर्मा ने पूछा।

"कुछ तो सोचा होगा...?" आहूजा ने पूछा।

"अरे, अब तक कुछ नहीं सोचा, हद है...," खान ने सुना दिया।

तरह-तरह के सवाल और फिर कटु टिप्पणियाँ "भई कोई भी निर्णय सोच-समझकर लेना चाहिए। आख़िर ज़िंदगी का सवाल है।" ये थे बड़े साहब।

अग्निहोत्री जी परेशान हो गये और आख़िरकार घर से निकलना ही बंद कर दिया।

कल के अग्निहोत्री और आज के अग्निहोत्री में काफ़ी अंतर आ गया था। दर्पण के सामने खुद को निहारते हुए अग्निहोत्री जी सोचते, क्या ये मैं हूँ? बाल तेज़ी के साथ सफ़ेद हो चले थे। सीने में हल्का-हल्का दर्द भी महसूस करने लगे थे। चेहरे पर भी अंतर साफ़ नज़र आने लगा था। उन्हें लग रहा था कि पचपन साल की उम्र में पैंसठ का नज़र आने लगा हूँ।

गीता के कहने पर बाल काले करने लगे अग्निहोत्री जी, लेकिन भीतर बैठा अग्निहोत्री बार-बार कह रहा था कि तुम बूढ़े होते जा रहे हो। अभी ये हाल है, तो साठ साल तक पहुँचते-पहुँचते क्या होगा? तब क्या मैं सत्तर का नज़र आऊँगा?

यकायक अग्निहोत्री जी के ज़ेहन में वे लोग भी उभरने लगे जो सेवानिवृत्ति के कुछ महीनों बाद ही मर गये। ज़्यादातर लोगों को हार्ट अटैक ही आया। क्यों? ऐसा क्यों होता है कि कुछ लोग सेवानिवृत्ति के एकाध साल बाद ही इस संसार से चले जाते हैं। ये लोग नौकरी से रिटायर होते हैं, ज़िंदगी से तो नहीं। फिर ऐसा क्यों होता है? क्या नौकरी के बाद जीवन का कोई और मक़सद नहीं रह जाता? जबकि असली जीवन तो सेवानिवृत्ति होने के बाद शुरू होना चाहिए—सामाजिक जीवन। अग्निहोत्री जी सोच रहे हैं... वी0आर0एस0 लेने के बाद मौज-मस्ती से ज़िंदगी कटनी चाहिए थी। टेंशनफ्री लाइफ़ बीतनी चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हो रहा। एक-एक दिन भारी पड़ रहा है। समझ में नहीं आता कि क्या करें। पैंतीस साल नौकरी करने के बाद अब नौकरी करने की इच्छा भी नहीं। समय काटने के लिए अगर कहीं नौकरी ही करनी है, तो सौ टके का सवाल यह है कि वी0आर0एस0 लिया ही क्यों? नहीं, कुछ न कुछ तो करना होगा। नौकरी न सही, कोई छोटा-मोटा धंधा ही। कंप्यूटर की दूकान खोल लें, साइबर कैफ़े या आइसक्रीम पॉर्लर। आजकल ये सब ख़ूब चलते हैं। कुछ तो करूँ, वरना ज़िंदगी पहाड़ हो जाएगी। इसे पार करना कठिन हो जाएगा।

धीरे-धीरे अग्निहोत्री जी चिड़चिड़े भी होने लगे थे।

उस दिन अग्निहोत्री जी रोज़ की तरह सुबह उठे। पत्नी को नयी साड़ी में देखा, तो भड़क गये—"कहाँ जा रही हो सुबह बन-ठनकर? तुम औरतों का तो बस यही एक काम रह गया है। मैं अभी फ्रैश नहीं हुआ और तुम निकलने की तैयारी कर रही हो। बड़ा शौक है मार्केटिंग का। घर तो जैसे काटने दौड़ता है, क्यों?"

गीता की आँखों में आँसू झलक उठे। वह सुबकते हुए भीतर चली गयी। अग्निहोत्री जी को लगा कि कुछ ज़्यादा ही कड़ा बोल गया।

वे उठे और पत्नी के पास जाकर बैठ गये।

"माफ़ कर देना, इतना कड़ा नहीं बोलना था। पता नहीं, कैसे मुँह से निकल गया। ख़ैर, बताओ, कहाँ जा रही थीं?"

"आज तेईस अगस्त है। हमारी शादी की बत्तीसवीं सालगिरह", गीता बोली, "बाज़ार जाकर कुछ सामान ख़रीदना था। शाम को कुछ लोग आएँगे बधाई देने वाले। उनके लिए नाश्ता बनाने की सोच रही थी। ख़ैर, जाने दीजिए, बाद में चली जाऊँगी। मैं आपके लिए चाय लेकर आती हूँ।

"ओ हो, तो ये बात है?" अग्निहोत्री जी चहक उठे, पहले क्यों नहीं बताया? देखो, मैं भूल गया और तुमको याद रहा। इसीलिए तो औरतें महान होती हैं। और मैं शैतान तुम्हे डाँट रहा था। मुझे माफ़ कर दो गीता। तुम बाजार जाओ, तब तक मैं तैयार हो जाता हूँ, फिर अपन मंदिर चलेंगे। पता नहीं क्यों अब चिड़चिड़ा-सा होता जा रहा हूँ। घर में रहते-रहते अपने आप से कोफ़्त होने लगी है। सोचता हूँ, बेकार ही वी0आर0एस0 ले लिया। व्यक्ति को कम से कम साठ साल तो आठ घंटे लगातार मेहनत करना चाहिए। साठ साल ही क्यों, व्यक्ति जब तक ज़िंदा है, उसे काम करते रहना चाहिए। फिर चाहे खेत हो या दफ़्तर हो या कहीं और। काम करना जीवन को ऊर्जावान बनाये रखना है। काम के अभाव में व्यक्ति की ज़िंदगी में ख़ालीपन आ जाता है और वह धीरे-धीरे मानसिक रूप से विक्षिप्त होता चला जाता है। शारीरिक रूप से शिथिल भी होने लगता है—जैसे मैं। अब मैं सीरियसली सोच रहा हूँ कि घर से बाहर निकलूँ, कुछ काम शुरू करूँ। कुछ भी। भले ही एस0टी0डी0 पी0सी0ओ0 खोल लूँ, मगर कुछ करूँ। गीता, तुम ही कहो न, क्या करूँ? कौन-सा काम मेरी पर्सनालिटी को सूट करेगा?"

"अपने किसी मित्र से सलाह क्यों नहीं लेते", गीता बोली—"उपाध्याय जी से मिल लीजिए न, उन्होंने भी तो वी0आर0एस0 लिया। देखो, अपना खुद का काम शुरू कर दिया। उनका लड़का बैठता है। वे भी चले जाते हैं। बढ़िया चल रहा है काम।"

"यह बिल्कुल ठीक कहा तुमने," अग्निहोत्री जी बोले —"मैं आज ही जाऊँगा उपाध्याय जी के पास। अच्छा, चाय पिला दो। मैं जल्दी से तैयार हो जाता हूँ। तुम भी बाज़ार हो आओ।"

अग्निहोत्री जी स्कूटर उठाकर उपाध्याय जी के घर पहुँचे तो पता चला कि दुकान गये हैं। दूकान पहुँचे तो वहाँ उपाध्याय जी का लड़का अभिनव मिल गया। उसने कहा कि पापा जी को अचानक बिलासपुर जाना पड़ गया। रात को वहीं रुकेंगे। कल लौटेंगे। कुछ अर्जेंट हो, तो उनके मोबाइल पर बात करा देता हूँ।

"नहीं, ऐसी कोई जल्दी नहीं है। मैं कल फिर आ जाऊँगा।"

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निहोत्री जी निराश हो गये। खुद पर अफ़सोस करने लगे, घर से निकलने से पहले फ़ोन तो कर लिया होता। इतनी भागदौड़ नहीं करनी पड़ती। अच्छा मूड बना था आज। सब गड़बड़ हो गयी। ख़ैर, अब आये हैं, तो उपाध्याय जी के बेटे से ही कुछ बात कर लेते हैं।

"क्यों बेटे, कैसा चल रहा है काम-धाम?"

"वेरी फ़ाइन"

"तो क्या तुम अब नौकरी-वौकरी....?""यस अंकल, नो नौकरी," अभिनव बोला, "इतना अच्छा काम जम गया है कि सिर उठाने की फ़ुरसत ही नहीं मिल रही है। महीने के बीस हज़ार कहीं नहीं गये। अंकल, आपका क्या हुआ? आपने कुछ शुरू किया कि नहीं। आप भी कोई काम शुरू कर दें। शलभ बड़ा हो गया है। वो बैठेगा आपके साथ।"

"अरे बैटा, वो तो पैकेज के चक्कर में है। माँ-बाप के बारे में भला कौन सोचता है?"

"मैं सोचता हूँ" अभिनव बोला, "चाहता तो मैं भी पैकेज के चक्कर में पड़कर घर से दूर चला जाता, लेकिन मुझे लगा कि माता-पिता के साथ ही रहना चाहिए। इकलौता बेटा हूँ। दो-तीन भाई होते, तो भले ही बाहर चला जाता, लेकिन मैं अकेला हूँ, इसलिए माता-पिता के साथ रहना चाहता हूँ। इनका ध्यान हम नहीं रखेंगे, तो कौन रखेगा?"

अभिनव की बातें सुनकर अग्निहोत्री जी की आँखें छलछला उठीं। वे बोले—"तुम इस ज़माने के होकर भी इस ज़माने के नहीं लगते। ग़ज़ब हैं तुम्हारे संस्कार। अच्छा बेटे, ये तो बताओ कि मुझे कौन-सा काम शुरू करना चाहिए?

अभिनव कुछ देर तक सोचता रहा, फिर बोला, "अब आपको क्या बताऊँ। आप बड़े हैं। मुझसे ज़्यादा समझदार हैं। आप पिताजी से चर्चा कर लीजिएगा।"

"फिर भी कुछ तो बताओ। तुम तो काफ़ी समझदार लगते हो।"

"मेरे ख़याल से आप साइबर कैफ़े खोल लें। कुछ पैसे शेयर मार्केट में लगाएँ। कुछ पैसों से ज़मीन ख़रीद लें। इसमें इन्वेस्ट करना ठीक रहेगा। पैसे तेज़ी के साथ डबल होते हैं। कुछ पैसे फ़िक्स ज़रूर करवा दें। आइसक्रीम पॉर्लर या पिज्जा हट भी खोल सकते हैं। फिर भी, आप पापा से चर्चा कर लें तो बेहतर होगा।"

अग्निहोत्री जी घर लौट आये। वह बिल्कुल ही तय नहीं कर पा रहे थे कि आख़िर कौन सा काम शुरू करें। गीता को भी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। स्कूल की पढ़ाई और ट्यूशनों में उलझा बेटा शलभ भी कोई आइडिया नहीं दे पा रहा था। कॉलेज पहुँच चुकी बेटी अपनी दुनियाँ में मस्त थी।

एक दिन अग्निहोत्री जी ने हिम्मत करके एक दूकान ख़रीद ली। पंद्रह लाख में पड़ी। साज-सज्जा पर दो लाख और ख़र्च हो गये। गीता ने सुझाव दिया कि आजकल फ़ास्ट फूड का चलन बढ़ गया है। यही ठीक रहेगा। अग्निहोत्री जी को सुझाव पसंद आया और उन्होंने 'न्यू पिज्जा हट' नाम से सिविल लाइन में एक दूकान खोल ली।

शुरू-शुरू में तो पिज्जा हट ख़ूब चला। लेकिन, दो महीने बाद समस्याएँ खड़ी होने लगीं। कभी वर्कर ग़ायब, तो कभी आस-पास के मुफ़्तख़ोरी करने वाले गुंडे आकर बैठने लगे। गुंडों की अराजक हँसी और अभद्रता के कारण धीरे-धीरे ग्राहकी प्रभावित होने लगी। फिर, पुलिस वाले भी पहुँचने लगे। आते और फोकट में खाकर निकल लेते। पैसे माँगने पर मुस्कराते हुए कहते, "पुलिस वालों से पैसे माँगते हैं? ख़ैर, दे देंगे, खाते में लिख लीजिए?" ये लोग उधारी करते और समय पर पैसे भी नहीं देते थे। धीरे-धीरे घाटा शुरू हो गया। ग्राहक झाँकते ही नहीं थे। अग्निहोत्री जी पिज्जा हट में बैठे-बैठे मक्खियाँ मारते और शाम को निराश होकर घर लौट आते।

आख़िरकार छह महीने बाद ही न्यू पिज्जा हट बंद हो गया।

अब क्या करें? सोचा, दुकान किराये पर दे देते हैं।

एक दिन किरायेदार भी मिल गया। रामकिशन धनवानी। दस हज़ार में दुकान किराये पर उठ गयी। गीता ख़ुश हो गयी कि चलो, रेगुलर इन्कम शुरू हो जाएगी। पिज्जा हट से तो दो हज़ार रुपए भी नहीं मिलते थे। अब अग्निहोत्री जी फिर घर पर आराम फ़रमाने लगे। किरायेदार हर महीने पैसे पहुँचा जाता था। चार महीने तो उसने पैसे पहुँचाये, मगर पाँचवे महीने वह नहीं आया। अग्निहोत्री जी सोचते रहे, कल आ जाएगा, लेकिन पंद्रह तारीख़ हो गयी, रामकिशन नहीं आया। हारकर अग्निहोत्री जी रामकिशन के पास पहुँच गये।

"क्या बात है भई रामकिशन, इस बार तुम पंद्रह दिन लेट हो गये?"

"एक-दो दिन में दे दूँगा" रामकिशन ने बेफ़िक्र के साथ जवाब दिया।

अग्निहोत्री जी चार दिन बाद पहुँचे, तो रामकिशन ने आधी रक़म थमाते हुए कहा, "बाक़ी पैसे दो-तीन दिन बाद दे दूँगा" अग्निहोत्री जी को बुरा तो लगा, लेकिन क्या कर सकते थे, वापस लौट गये। एक सप्ताह तक रामकिशन नहीं आया, तो अग्निहोत्री जी फिर पहुँच गये। इस बार थोड़ी नाराज़गी के साथ बोले—"ये क्या तमाशा है भाई? तय समय पर किराया क्यों नहीं देते?"

"क्या करें जी, घाटा हो रहा है। यह जगह कुछ मनहूस-सी लग रही है। चिंता न करें, अगले महीने पूरी रक़म एक साथ दे दूँगा, प्रॉमिस।"

अग्निहोत्री लौट आये। एक महीना बीत जाने के बाद रामकिशन किराया देने नहीं आया। अब अग्निहोत्री जी का माथा ठनका। कहीं किरायेदार की नीयत में खोट तो नहीं आ गया? वे फिर गुस्से से भर कर रामकिशन के पास पहुँच गये। इस बार रामकिशन ने उनको देखा, मगर उन्हें बैठने के लिए भी नहीं कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्टे बोल पड़ा—"आप यहाँ क्यों चले आते हैं? मैं घर आकर पैसे दे दूँगा।"

"अरे घर आकर दे देते तो मुझे यहाँ क्यों आना पड़ता?" अग्निहोत्री जी कड़क स्वर में बोले—"देखो भई, समय पर पैसे दे दिया करो। तीन महीने हो गये, तुमने पूरे पैसे ही नहीं दिए। पूरे पच्चीस हज़ार हो गये हैं। आख़िर कब दोगे?"

"दे दूँगा, कहीं भागा तो नहीं जा रहा," रामकिशन भी रूखे स्वर में बोला, "अगले महीने आप इसी समय आकर पूरे पैसे ले जाइएगा, ठीक?"

अग्निहोत्री जी फिर लौट आये। एक महीने बाद किरायेदार केवल एक महीने के पैसे दे गया। अब अग्निहोत्री जी घबराये, कहीं पंद्रह लाख रुपए की दूकान पर रामकिशन कब्ज़ा न कर ले।

और, उनका शक ठीक निकला। साल भर बीत गया। किरायेदार ने पाँच महीने का किराया नहीं पटाया। आख़िरकार अग्निहोत्री जी को कहना पड़ा—"भाई, अब तुम दूकान खाली कर दो।"

"कोई और दूकान मिलते ही छोड दूँगा," दुकानदार ने बेरुख़ी के साथ जवाब दिया।

किरायेदार के तेवर देखकर अग्निहोत्री जी चिंतित हो गये। उनके सामने हज़ारों ऐसे उदाहरण थे कि किरायेदार दूकान या मकान खाली नहीं करते और मालिकों को गुंडो की सहायता से या कोर्ट की मदद से मकान-दूकान खाली करवाना पड़ता है। अग्निहोत्री जी गुंडों की मदद ले नहीं सकते थे, सो उन्होंने शुक्ला वकील से मुलाक़ात की। किरायेदार को कोर्ट का नोटिस मिला, तब कहीं जाकर उसने दूकान खाली की। अग्निहोत्री जी की जान में जान आयी।

वी0आर0एस0 लेने के बाद अग्निहोत्री जी का साल भर परेशानियों में ही बीता। इस बीच ब्लड प्रेशर की शिकायत हो गयी। ब्लड टेस्ट कराया, तो सुगर की शिकायत निकल आयी। वे हार्ट में दर्द की शिकायत भी करने लगे।

एक दिन अग्निहोत्री जी बिस्तर पर लेटे-लेटे सोचने लगे कि क्या वी0आर0एस0 लेकर उन्होंने भूल कर दी? कितनी स्मूथ लाइफ़ चल रही थी साल भर पहले तक। लेकिन, अब तो टेंशन ही टेंशन। अब तो दर्पण देखने से भी डरते हैं। बुढ़ापा क्या इतनी तेज़ी से हमला करता है? बाप रे! रात को नींद नहीं आती, गोली लेनी पड़ती है। उन्हें कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें।

गीता पति का परेशान और मुरझाया चेहरा देखकर भीतर ही भीतर रोती, लेकिन चेहरे पर बनावटी मुसकान के साथ पति के सिर पर प्रेम से हाथ फेरती हुए कहती-"चिंता न करें, सब ठीक हो जाएगा।"

लेकिन कुछ ठीक नहीं हुआ। हालात बद से बदतर होते चले गये। अग्निहोत्री जी बुरी तरह से चिड़चिड़े हो गए थे। पत्नी को जब-तब फटकारते रहते। आये दिन बच्चों को भी नहीं बख़्शते थे।

"...कहाँ जा रहे हो..?"

"तुम अब आ रही हो? घर को धर्मशाला समझ रखा है?"

"कहाँ गयी थे, ये वक़्त है घर आने का...कल से लेट आये तो टाँग तोड़ दूँगा..." आदि-आदि।

दोनों बच्चे पिता से कटने लगे। भाई-बहन आपस में यही चर्चा करते—"वी0आर0एस0 लेने के बाद डेडी कितने बदल गये हैं, क्यों?"

एक दिन तो बेटे शलभ के हेयर स्टाइल को लेकर ही उसे फटकारने लगे। शलभ उनकी बातों को अनसुना करके बाहर निकल गया। थोड़ी देर बाद अग्निहोत्री जी को पसीना छूटने लगा। घबराहट-सी होने लगी। सीने में दर्द की शिकायत हुई। पत्नी उन्हें फ़ौरन हार्ट केयर सेंटर ले गयी। वहाँ हफ़्ते भर भर्ती रहे। एक लाख रुपए ख़र्च हो गये।

डॉक्टर नक़वी ने हिदायत दी—"अब ज़्यादा भागदौड़ न करें। टेंशन न पालें। खान-पान पर ध्यान दें।"

अस्पताल से लौटने के बाद अग्निहोत्री जी गुमसुम और उदास रहने लगे। किसी से कुछ न बोलते। चुपचाप खाना खाते और सो जाते। घूमना-फिरना तो उन्होंने पहले ही बंद कर दिया था। हर वक़्त बिस्तर पर पड़े-पड़े यही सोचते कि वी0आर0एस0 लेकर ठीक नहीं किया। आराम चाहता था, लेकिन हिस्से में आया टेंशन। लाखों रुपये बर्बाद हो गये, सो अलग।

और एक दिन...

अग्निहोत्री जी सुबह देर तक सोते रहे। नौ....दस...और फिर ग्यारह भी बज गये। इतनी देर तो कभी सोते नहीं। बहुत

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय हो गया है, गीता सोचने लगी। कल रात को देर तक कुछ लिख-पढ़ तो रहे थे, लेकिन देर से सोने के बावजूद इतनी देर तो कभी नहीं सोये। बहुत समय हो गया है। जगा दिया जाए। चिड़चिड़ाएँगे ही न, देखी जाएगी। लेकिन, जैसे ही गीता ने पति का स्पर्श किया, तो बुरी तरह सिहर उठी। अग्निहोत्री जी का पूरा शरीर ठंडा पड़ा हुआ था। वह घबरा गयीं। काँपते हुए हाथों से उसने अग्निहोत्री जी को ज़ोर से झकझोरा... लेकिन शरीर में कोई हलचल न हुई।

गीता चीख़ पड़ी... "शलभ...."

माँ की करुण चीख़ सुनकर दोनों बच्चे दौड़े चले आये। घर में कोहराम मच गया।

"अग्निहोत्री जी नहीं रहे..."

पूरी कॉलोनी में यह दुखद ख़बर फैल गयी। देखते ही देखते लोग जमा होने लगे। सबकी आँखें नम थीं। दफ़्तर के कुलीग भी आ गये।

"साल भर पहले ही तो दफ़्तर से विदाई लेकर निकले थे। इतनी जल्दी संसार को छोड़कर चले जाएँगे, किसी ने सोचा भी नहीं था।"

"अभी उनकी उम्र ही क्या थी। छप्पन साल।"

"कितने स्वस्थ और प्रसन्न रहते थे। पता नहीं, ऐसा कैसे हो गया?"

लोगों को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहें। सबके सब गुमसुम। जो लोग अग्निहोत्री जी के बहुत ज़्यादा अंतरंग थे, उनके आँसू थम नहीं रहे थे। जितने मुँह, उतनी बातें होने लगीं—"एक भला आदमी चल बसा...."

"अभी उन्हें और रहना था..."

"वी0आर0एस0 लेकर अग्निहोत्री जी ने ठीक नहीं किया था," एक ने दबे स्वर में कहा, "ले लिया था, तो प्लानिंग करके काम करना था।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है, मौत को तो बस एक बहाना चाहिए।"

अग्निहोत्री के कुलीग मिश्रा जी ने अपने साथी पांडे से कहा—"देखो, जो होना था, सो हो गया। अब तो यही मानकर संतोष करो कि अग्निहोत्री जी इस असार संसार में और ज़्यादा दुख पाने के लिए जीवित नहीं रहे। कल नौकरी से मुक्त हुए, आज जीवन से। उनकी आत्मा को मुक्ति मिली, और क्या। वो क्या कहते हैं, न कि 'सब ठाठ पड़ा रह जाएगा, जब लाद चलेगा बंजारा..."

शव यात्रा की तैयारी पूरी हो चुकी थी। 'राम नाम सत्त है, सबकी यही गत्त है' की सुस्त एवं ग़मगीन आवाज़ें उभरीं और अग्निहोत्री जी चल पड़े अनंत की यात्रा पर, कभी न लौटने के लिए...

जी-31, नया पंचशील नगर, रायपुर-492001

लघुकथा

कभी-कभी

डा0 शैलजा 'श्यामा'

सकरी पुलिया पर आकर आगे जाने हेतु आपस में लड़ते दोनों बकरों को नदी में गिरकर पानी बहते दोनों तरफ की दोनों बकरियों ने देखा। बकरे बह जाने के बाद दोनों तरफ से दोनों पुलियों पर आकर वे आमने-सामने रुकीं। सफेद बकरी ने कहा-सुन अभी-अभी हमने जो देखा उससे हमें कुछ सीखना चाहिए।

-'हाँ', काली बकरी ने कहा, 'अगर पहले देख लेती तो हम एक ही समय पर पुलिया पर नहीं आतीं।'

-'कोई बात नहीं, संकट से मार्ग निकालना ही होता है। ऐसा करते हैं मैं बिना देखे पीछे हटती हूँ, ज़रा कठिन होगा पर असाध्य नहीं। तुम आगे-आगे चली आना।' काली बकरी ने सहमति दी-

-सफेद बकरी ने पीछे हटना शुरू किया, सामने से काली बकरी आगे आने लगी, कुछ क्षणों बाद सफेद बकरी जमीन पर आयी। पीछे हटी, तब काली बकरी ने जमीन पर पाँव रखे। वह मुस्कुराती हुई कहने लगी-'तुमने अच्छा तरीका निकाला वरना हम दोनों...'।

-उन बकरों के अहम ने उन्हें डुबा दिया। पीछे हटने से उन्हें अपमान लगा होगा। परंतु कभी-कभी पीछे हटना भी सफलता की ओर क़दम बढ़ाना होता है। हमने पीछे हटना मंजूर किया और दोनों का उद्देश्य भी सफल हुआ।....."

'आख़िर अहम् की तुलना में कभी-कभी वापसी भी प्रेरणादायी सफलता का रहस्य होता है।'

'बिल्कुल सही कहा।'

'दोनों अपने-अपने मार्ग पर चली गयीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

कुलजीत सिंह

ज़िंदगी

सिली यहाँ तो कहीं और से फटी ज़िंदगी
ज़ख्मों से जख़्मों तक दुखती कटी ज़िंदगी।

ख़्वाबों से डर कर सच के काँटों पर जागे
थोड़ी सच, बाकी सपने में कटी ज़िंदगी।

गा ना पाये मन का चाहा गीत कभी भी
बस पिंजरे में तोते जैसी कटी ज़िंदगी।

दिल में खिलते रहे फूल अनगिनत भले ही
पर बाहर काँटों में खिंचती कटी ज़िंदगी।

सूखी पड़ी नदी बिखरी चट्टानों में ज्यों
बस वैसे ही चिथड़ा-चिथड़ा कटी ज़िंदगी।

भर ना पाये पेट किसी का भी जो पूरा
भूखे बच्चों में रोटी जैसी कटी ज़िंदगी।

अभी यहाँ थी परछायीं-सी ऐ 'कुलजीत'
हाथ बढ़ाया जब छूने को हटी 'ज़िंदगी'।

इश्क़ में

दिल गया दुनिया गई अपने गए घर जायेगा
फ़िक्र कैसी इश्क़ में ग़र अब मेरा सर जायेगा।

क्या ख़बर थी जिसने रुस्वा कर निकाला है हमें
वो शहर वीरानियों की रहगुज़र पर आयेगा।

गुनगुनाता गुलमोहर वो सुर मिलाती चाँदनी
अब न शायद ख्वाब में भी वैसा मंज़र आयेगा।

तारों की तनहाईयों में सुन सको ग़र तो सुनो
बहती धारा में पड़ा ख़ामोश पत्थर गायेगा।

होगी मुश्किल तो बहुत लेकिन जियेंगे मौत तक
कौन है मजनूँ यहाँ जो इश्क में मर जायेगा।

बस्तियाँ यादों की वीराँ मौत से होती नहीं
बस गया जो भी रुलाने वो बराबर आयेगा।

दे रहा 'कुलजीत' दस्तक क्यों ठिठुरती रात में
छोड़ गरमाहट घरों की कौन बाहर आयेगा।

एम-117, गोपबंधु नगर, छेंद कॉलोनी, राउरकेला-769015, (ओड़िसा)

ग़ज़लें

डा0 शचीकांत

गम दे के जो इतना करीब़ लाएगा
तेरी बज़्म से एक आदमी उठ जाएगा।

छोड़ दे कबूतर एक दड़बे में ज़िंदा
उड़ गया गर तो तमाशा उठ जाएगा।

हस्ती से उसकी है मस्ती तेरे बज़्म में
वर्ना हक़ीकत से पर्दा भी उठ जाएगा।

उसके हुनर को बख्श देना तुम केवल
तरकीबों से ऊपर वह उठ जाएगा।

अपनी मोहब्बत से करना न महरूम उसे
लैला-मजनूँ का फसाना भी उठ जाएगा।

अदाओं से छेद कर मारो न तुम उसे
तेरी महफिल से दीवाना उठ जाएगा।

नहीं देखते तुम कभी उसकी ओर
तब तेरे इश्क से भरोसा भी उठ जायेगा।

फ्लैट नं0 604, एमएस-04, केन्द्रीय विहार, सेक्टर-56, गुड़गाँव

हमेशा की तरह 'वर्तमान साहित्य' का मार्च 2010 अंक स्त्री सरोकारों पर केंद्रित होगा। इस अंक में अतिथि संपादक के रूप में प्रो0 सूरज पालीवाल सहयोग करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

महेन्द्र सिंह

:: 1 ::

तेज़ आँधी बने औ उड़ा ले गए।
बाढ़ बन के घरौंदे बहा ले गए।।

ये नहीं था कि मन से ही सब कुछ सहा।
जुल्म-जुल्मत के दम पर सहा ले गए।।

सारा तन मन हया से सराबोर है।
इस तरह कीचड़ों में उछाले गए।।

कोई मंजिल तो क्या राह तक ना मिली।
वादे क्या थे हमें ये कहाँ ले गए।।

सत्य को दाग जो पीढ़ियों से दिए।
खुद का कौतुक से दामन बचा ले गए।।

सारे भटकाव का दोष उनका न था।
हम भी जाते गए वो जहाँ ले गए।।

इन लुटेरों ने लूटा कई जन्म तक।
सारी लूटी जमरीं आसमां ले गए।।

:: 2 ::

नौजवान पीढ़ी पर ज़्यादा ध्यान धरुँगा।
बूढ़े अनुभव का लेकिन सम्मान करुँगा।।

धरती की ही तपिश बूँद से भाप बना था।
अब बादल बन बूँद-बूँद कुर्बान करुँगा।।

बूढ़े बच्चे बेहोश पीछे छूट गये हैं।
उनको लिए बिना कैसे प्रस्थान करुँगा।

पेड़ सरीख जमा हुआ अपनी धरती से।
नये सृजन के लिये बीज बनकर बिखरुँगा।।

कड़वा घूट अकारण पीना नहीं गँवारा।
बेजुबान बेबसियों का संज्ञान करुँगा।।

:: 3 ::

यूँ ही नहीं बेअसर होना तुमको है मंजूर अगर।
बात बनाने की ख़ातिर कुछ बात में मानी पैदा कर।।

निखरा-निखरा रूप कमल का सजा ओस की बूँदों से।
देख रही है माँ बेटे को सुबह-सुबह यूँ नहला कर।।

परंपरा से दाग़दार है सत्ता का लोभी चेहरा।
अहले सियासत बाज भी आ अब और न उनको गंदा कर।।

मैंने दी थी सदा जिसे सुन कुछ पल वो ठिठका भी था।
फिर जाने क्या सोच के आगे चला गया मुँह बिदकाकर।।

भले शिखर पाने की हो पर इतना मूल्य कहाँ उनका।
पाई है हमने ये खुशियाँ जिस ज़मीर का सौदा कर।।

संशय में ग्रस्त हमी थे जो कुछ दूरी चल पथ भ्रष्ट हुए।
संकल्पों को कौन डिगाता छोटी-मोटी बाधा कर।।

मेरे गाँव की दृश्यावलि में सूखी धरती प्यासे लोग।
बूदों की तूलिका से बादल हरा रंग भर गहरा कर।।

जैसे जलने को ही घर हो हत्या की खातिर ही लोग।
जन्नत से कश्मीर को मज़हब चला गया हूँ उलझाकर।

बार-बार वो मुकर चुका है होता नहीं यकीन मगर।
अब फिर पीछे नहीं हटेगा कहता है फिर वादा कर।।

माना दर्द पहाड़ों जैसा ऊँचा भी है भारी भी।
बाँटें से बँट भी जाता है आ मिल बैठ के साझा कर।।

अब के पूर ने पाट दिया है उथला-उथला तट उसका।
पानी की दरकार अगर है और नदी को गहरा कर।।

सुख मेहमानों जैसा उसको आकर वापस जाना है।
दुख ही अपना सगा बंधु है दुख को खूब नवाज़ा कर।।

एफ-116/25 शिवाजी नगर, भोपाल (म0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्य का मैगा-शहरीकरण : सौर ऊर्जा तथा तैरते द्वीपोंवाले नगर

रमेश कुंतल मेघ

संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1996 में तुर्की के इस्ताम्बूल शहर में विश्व नगरों पर एक सम्मेलन आयोजित किया था, जिसमें दुनिया भर के चुनिंदा वास्तुकारों तथा नगर-निवेशकों ने भागीदारी की थी। हमारे पास उसकी कार्यवाही का सर्वेक्षण है।

वहाँ केंद्रीय नतीजा यह निकला कि औद्योगिक युग का प्रतिस्थापन भविष्य में सौर युग कर देगा। दूसरे, धरती के ऋतूरूप तथा पर्यावरण के संरक्षण के लिए दो प्रकार के शहरों का निवेश होगा—सौर ऊर्जा वाली टैक्नालॉजी से संचालित शहर तथा मानव-निर्मित, कृत्रिम बनाये गये, द्वीपों पर तैरते हुए शहर। पहला विचार राबर्ट रोजर्स का तथा दूसरा कियोमोरी किकूताके का है। इसका क्रांतदर्शी मतलब यह हुआ कि औद्योगिकीकरण के सहवर्ती आधुनिक शहरीकरण की पुरानी अवधारणा बदलती जाएगी। और; वह बदल रही है। नये द्वीपों पर तैरते शहरों की उसारी की योजना दुबई, सिंगापुर, जापान में लागू भी हो रही है। एक अन्य नतीजा भी निकाला गया कि भविष्य के अतिमहा (मेगा) नगरों में दौलत, अवसरों तथा संसाधनों का समानतापरक वितरण (?) अनिवार्य है ताकि भावी शहरी जीवन-शैली में सामंजस्य क़ायम हो सके। इस तरह से 'मानवीकृत टैक्नोपोलिस' की अवधारणा केंद्र में आ चुकी है।

आजकल भविष्य के पुराने नगरों की सूची में बर्लिन, एम्सटर्डम, बूदापेस्ट, मास्को, पेरिस, लंदन, न्यूयार्क, लॉज एंजिलेस, बीजिंग, तोक्यो, दिल्ली, दुबई, लीमा, ब्यूनस एयरीज़, रिओ-डि-जेनियरो, जोहानिसबर्ग, काहिरा, बैंकाक आदि गिने जा रहे हैं। भारत में बंगलूर, गुड़गाँव तथा चंडीगढ़ भी भावी अतिमहानगर बनने के उपक्रम में हैं। फिलहाल इनकी शिनाख्त तेज रफ़्तार वाले नाना प्रकार के परिवहन और आकाशचुंबी कई-मंजिला इमारतों तथा मॉल्स द्वारा की जा सकती है। मानो ये शहर धरती में लेट कर सुस्ताएंगे नहीं, बल्कि मिसाइलों की तरह ऊँचाई को भी चीरते हुए चढ़ते जायेंगे। तो क्या पहले के आधुनिक शहर बूढ़े दानव हो रहे हैं? या उनका छिन्नमस्त धूमधमाका ही महासंहार का निमित्त हो रहा है? उत्तर घुमावदार है।

आगे, वर्तमान के आधुनिक शहरीकरण की व्यास-रेखा ही, हमारा संदर्भ-अक्ष बनाएगी।

हमें इन शहरी दानवों में अपराधों और दुर्घटनाओं के संग-संग ही जीना-मरना होगा। इनमें पानी, हवा और शोरगुल का प्रदूषण भी आदमी को बीमार तथा अपनर्मिल बना रहा है। पर्यावरण में बेतहाशा तोड़फोड़ से हरित चंदोवा भी कमतर होता जा रहा है। इनमें आबादी ठूंसठूंस कर भरती जा रही है। अतः पुराने शहरीकरण में नये ढंग का नगर-निवेश तथा नगर-नियोजन दोनों ही शुरू हो चुके हैं जिससे हम 'मानवीकृत टैक्नोपोलिस' की ओर अग्रसर हो सके।

यहाँ तक पहुँचने के लिए हम फिलहाल भूमंडलीकरण की दशा के मध्य में हैं। अतः पुराने धुरीण, गोत्र, तीर्थ स्थान, व्यापारिक केंद्र, राजधानी, औद्योगिक हलचल वाले बड़े नगरों की स्थितियों का विहंगावलोकन अपेक्षित है।

धुरीण सच्चाई है कि शहरों की सभ्यता के साथ ही शहरों की संस्कृति अनुस्यूत है। आज नगरीकरण के चक्र में महानगरों, अतिमहानगरों महातिनगरों आदि की उसारी हो रही है जिनकी सभ्यता विश्व बाजार और प्रौद्योगिकी से संचालित है। इसे वैश्वीकरण भी कहा जा सकता है जो प्रायः ऐकरेखाक-जैसी है। ऐसे में एकसमान सभ्यता के भूमंडलीय दौर में विभिन्न देशिक संस्कृतियों का क्षय होगा, वे क्षीण होंगी तथा कालांतर में उनका क्षरण होता चलेगा। समाज संस्कृति आयाम में इसे समुन्नत आधुनिकीकरण तथा उत्तर-आधुनिकता का विखंडनवादी चरण भी माना जाता है। अतः हम थोड़ा इतिहास-चक्र घुमा लें-भारत की धुरी पर ।

ईसा से तीन हज़ार से ज़्यादा वर्षों के पहले मोहनजोदड़ो-हड़प्पियों की सभ्यता-संस्कृति प्रधानतया शहरी थी। वे कुशल नगर-निर्माता थे। घुमंतू चरवाहे आर्य-कबीले जब बाद में आये तो क्षीण होती खंडित उस सभ्यता को असुरों की, राक्षसों की, दैत्यों की मान लिया (बाद में 'मय' नामक असुर-वास्तुकार के पुर-निवेश को मायानगरी बताया गया)। उनके मेसोपोटामिया ईजिप्ट तक व्यापारिक संबंध थे। आर्यों के नेतृ कबीले-विशाल आश्रम-शिविरों में ग्रामकेंद्रित 'गोत्र' स्थापित करके रहते थे। उनका नेता देव इन्द्र था जो उन पुरों का बिनाशक अर्थात 'पुरन्दर' था। आर्यों के अभियान में उनके देवता भी साथ देते थे : इन्द्र, वरुण, वायु, अग्नि, सोम, रुद्र, मित्रारुण (विष्णु) आदि। अतः सेना, सत्ता-संपत्ति के त्रित्व ने पहले जिस शहरी सभ्यता का निर्माण किया था उसे परवर्ती महाजनपदों की व्यवस्था ने नई दिशा दे दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज सवर्णों तथा असवर्ण शूद्रों-दासों के बीच बँटता गया।

अकारांतर से लगभग ऐसा ही ग्रीस में भी हुआ। वहाँ के ऐथेंस जैसे नगर-राज्य के अंदर ही दो शहर थे—अमीरों का शहर तथा गरीबों-गुलामों का शहर। प्लेटो इससे विक्षुब्ध हो रहे थे। तो यूँ शहर की सभ्यता तथा संस्कृति का विभक्त विकास हुआ। यह आज तक जारी है; वर्ग-विभेदों में।

व्यापार तथा सत्ताकेंद्र के पश्चात पूँजीवादी औद्योगिकीकरण तथा अभिजात प्रजातंत्रीकरण ने नगरों को, महानगरों, अतिमहानगरों में रूपांतरित करके आधुनिकीकरण के मौजूदा युग के प्रमुख लक्षण बना दिये। तदपि आज भी मानव-सभ्यता की चार बुनियादी ज़रूरतें हैं—भोजन और आवास, पानी और ऊर्जा। ये शहर में घनीभूत होती है।

अपने यहाँ पारंपरिक पूँजीवाद की चरम अवस्था में पूँजी के बजाय कालाधन (स्विस बैंकों में भारतीय धन्नासेठों की अरबों की दौलत जमा है), उत्पादक अल्पसंख्यकों के बजाय माफिया-गिरोह, रोज़गार और कार्य के बजाय भ्रष्टाचार, सत्ता एवं न्याय के बजाय सत्ता और संपत्ति का गठबंधन भी व्याप्त हो गए हैं। ध्यातव्य है कि अगर भ्रष्टाचार बना रहता है तो सिद्धांत मरते जायेंगे तथा सिफ़ारिश-रिश्वत से उन्नति देने पर अकुशलता एवं घटियापन फैलता जाएगा; प्रतिभा तथा श्रेष्ठता का ह्रास होता जाएगा और क़ानून का शासन अप्रभावी हो जाएगा। सारांश में, विकृत तथा बेरहम शहरीकरण में जंगल के क़ानून का राज चलने लगेगा।

तदापि महानगरों का दानवी प्रसार जारी है। ग्रामीणों का सैलाब शहरों की ओर पलायन कर रहा है। रोज़गार की तलाश में, भूख मिटाने को, बेहतर ज़िंदगी की प्रत्याशा में। अविकासशील प्रांतों में गाँव के गाँव खाली हो रहे हैं। ऐसा पैटर्न परिलक्षित है कि निर्धन क्षेत्रों से अपेक्षतया विकसित क्षेत्रों में पलायन की दिशा जातरी है। मसलन बांग्ला देशी मज़दूर-किसान बिहार, उत्तर प्रदेश में, बिहार-उत्तर प्रदेश का मज़दूर-किसान पंजाब, हरियाणा में, पंजाब-हरियाणा का मजदूर किसान दुबई, स्पेन, कनाडा, अमेरिका में प्रव्रजन कर रहा है। जो पलायन ग़ैर-क़ानूनी ढंग से ठगी तथा धोखाधड़ी द्वारा हो रहा है वह मानव-तस्करी है। इस समय अकेले इटली में ऐसे एक लाख पंजाबी-सिख लोग फँसे रहकर मुसीबतें झेल रहे हैं। आबादी के इस खिसकाव से जो सामाजार्थिक समूह बनते हैं उनमें हिंडोलचित्त वाली विचित्र अनुजातीय (एथनिक) बुनावट होती है जिससे सांप्रदायिक हिंसा, अपराधीकरण तथा जातीय ध्रुवीकरण सामाजिकता को छिन्न-भिन्न कर रहा है। काश्मीरी पंडितों की अनुजातीय निकासी एक भयानक सच है।

अतः अबके आगामी शहरीकरण में नये छोटे शहरी केंद्र विकसित किये जा रहे हैं जैसे चंडीगढ़ की फिरनी में मोहाली, पंचकूला, ज़ीरकपुर, डेराबस्सी, खरड़ आदि। परिवहन के लिए चार गलियारों वाले राजमार्ग, अपरिगामी कांक्रीट पथ, घने क्षेत्रों को बाईपास करते उच्च मार्ग बन रहे हैं। दिल्ली, कोलकाता, बंगलूर, मुंबई, चेन्नई में मुद्रिका जैसी बस सेवाएँ तथा मेट्रो-रेलें भी चल पड़ी है। अतिमहानगरों में ऐसा अनुप्रवेश हो चला है।

निर्धनता के निवारण के साथ-साथ भविष्य के अतिमहानगरीकरण को झोंपड़पट्टियों से विमुक्त करने का भी आयोजन है। इस बार की केन्द्र सरकार ने कामकाजी महिलाओं के बच्चों के लिए पालना (क्रेश) तथा आंगनबाड़ी, प्राथमिक कक्षाओं तक अनिवार्य शिक्षा, स्कूलों में दोपहर का भोजन, ग़रीबी-रेखा के नीचे तथा अनुसूचित जातियों के लड़कों-लड़कियों को मुफ़्त शिक्षा, मुफ़्त किताबें, गाँवों में सौ दिनों का रोज़गार आदि कुछ कल्याणकारी योजनाएँ जारी की गई हैं। हमें तो इनका स्वागत करना ही है। किंतु बिना सामाजार्थिक संरचना बदले ये भी भ्रष्टाचार तथा उपभोग में परवान चढ़ती जाएँगी। समाजवादी दिशानिर्देश के अनुसार 'हरेक को उसके कार्य के मुताबिक : हरेक को उसकी ज़रूरत के मुताबिक'' का सूत्रबंध लागू होने पर ही अतिमहानगरों का प्रभावी शहरीकरण हो सकता है। आज के 'भूमंडलीय पूँजीवाद' का प्रादर्श है-''यथातथा व्यवसाय और यथातथा

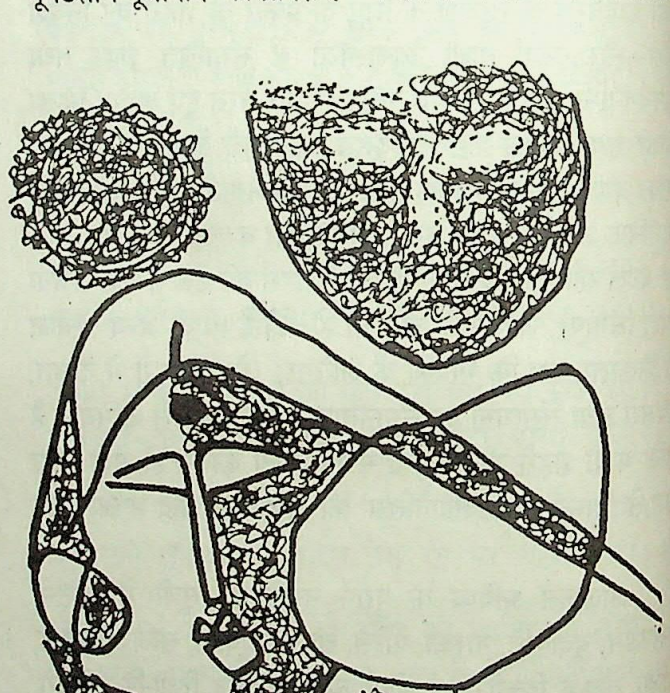

बैंकिंग।'' भारत भी इसी का अनुपालन करने लगा है। अब इस पर ''जी-20'' देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर जो मंदी की पिघलन रिस रही है इससे विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोश आदि की पश्चिमोन्मुख नीतियों को कुछ लचीला होना पड़ रहा है जिसका कुछ अच्छा प्रभाव विकासशील अर्थरचनाओं पर पड़ेगा।' अतएव उनका शहरीकरण भी तदनुकूलित होगा।

झोंपड़पट्टी-विमुक्त शहरों की परियोजना निर्धनता के निवारण बगैर मुंगेरी लाल का सपना ही रहेगी। सन् 2030 तक स्वदेश के मौजूदा महानगर भी ठसाठस भरे होंगे। सन् 2007 के अनुमान के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुताबिक लगभग 240 लाख यूनिटों की कमी है-दुर्बल आय के लोगों की रहाइश में (झोंपड़ पट्टी वालों का तो अंदाजा ही नहीं लग रहा है)। तो क्या यह सपना लोकलुभावन नारा मात्र हैं? क्या इसका उद्देश्य हाइपर-आधुनिकता तथा भव्यता का प्रदर्शन मात्र है? सचाई यह है कि 2012 तक ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में इसके लिए भी 3,60,000 करोड़ रुपयों की ज़रूरत पड़ेगी। मौजूदा संरचना (स्ट्रक्चर) के कायम रहते यह असंभव है। इसके अलावा 'शहरी निर्धनता' के निवारक चिह्न स्वरूप ज़मीनों पर 'रियेलइस्टेट' के उद्योग की गृद्धनज़रें गड़ी रहती हैं। विश्व बैंक की रपट बताती है कि झोपड़पट्टियों की बदौलत भी लकवाग्रस्त वृद्धि (ग्रोथ) होती है क्योंकि ये श्रम की सस्ते और बिनाशर्त स्रोत है। उदाहरण स्वरूप, बिहार, उत्तर प्रदेश से (सन् 1990 के दशक में) लगभग तीस लाख लोग महाराष्ट्र तथा पंजाब में प्रव्रजन कर गए। (धारावी महाराष्ट्र की, गाज़ियाबाद नोएडा की सबसे बड़ी झोंपड़पट्टी हैं)। इनसे ज़मीन की कीमतें आसमान छूने लगी हैं। ऐसी बेरहम यथार्थताओं के चलते अपराधों का ग्राफ़ ऊँचे और ऊँचे, चढ़ता जा रहा है। इसी के साथ क्षेत्रीय विषमताओं से (उत्तर-पूर्व में) उग्रवादी-हिंसा फैल रही है। इसे 'आंतरिक उपनिवेशवाद' कहा जा सकता है।

स्वार्थांध अतिक्रमण गंदगी और बदसूरती और विषमता फैलाता है। इससे शहरी विरासत (हेरिटेज) का भी क्षरण होता जाता है। विरासत का रिश्ता अनुजाति-विज्ञान (एथनोग्राफी) से भी है। इस गोरखधंधे में सरकार भी दलाल होकर ज़मीनों का मध्यम एवं दुर्बल आय वर्गों में आवंटन करने के बजाय नीलामी करने लगी है। सितंबर 2009 में चंड़ीगढ़ की मोहाली फिरनी के सेक्टर-70 में 125 वर्ग गज के एक व्यावसायिक शो-रूम की नीलामी छै करोड़ पाँच लाख रुपयों में हुई है। (मनमोहन सिंह के सपनों का भारत ऐसा होगा!

झुग्गी-झोंपड़ी मुक्त महानगरों की चंद परियोजनाओं के सहवर्तन में पर्यावरण का निम्नकोटि का होते जाना भी महत्तम चुनौती है। यह शहरीकरण के अशुभ के प्रभावों में से एक है। इसे स्थानिक ज़रूरतों, लोक जीवन तथा 'लघु पैमाने वाले कौशलों से समायोजित कर काफ़ी कम किया जा सकता है। वृक्ष-मित्त सुंदरलाल बहुगुणा, पचौरी, अरूणा राय आदि ने पृथ्वीरक्षा के लिए जागरण का बिगुल बजाया है। इस दुर्गुण की असली जड़ अर्थात् ठेकेदारों एवं राजनीतिज्ञों की सांठगांठ को तोड़ना होगा। इससे शहर पुनः लब्ध हो जाएँगे तथा हवा, पानी और शोर शराबे के प्रदूषण पर भी नियंत्रण रहेगा। इसी अनुक्रम में 2008 में केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड' ने एक कार्यक्रम के तहत कोट्टायम, तिरुपति, उज्जैनपुरी, तंजावूर तथा वृंदावन के पर्यावरण के संवर्धन तथा पर्यावरण-अवरोधकों को बदलने का कार्यक्रम चालू किया। गंगा तथा यमुना का शुद्धिकरण और गंगोत्री के ग्लेशियरों की रक्षा की कोशिशें भी जारी हैं।

इसके लिए महानगरों की आवासीय भूमि पर बेहिसाब, बदहोश जनसंख्या को सुनियोजित करके, बहुमंजिला इमारतें बनाकर, पार्कों तथा चौराहों के यातायात को वैज्ञानिक बनाकर, तनाव-खिंचाव को घटाकर मनोरोगों से भी बचा जा रहा है। मसलन सन् 2006 में मापे गए प्रतिवर्ग किलोमीटर में जनसंख्या को घनत्व के लिहाज से पहले पाँच केंद्र शासित महानगर या नगर-राज्य दम घुटने के कगार पर आन खड़े हो रहे हैं। इनमें दिल्ली के बाद चंडीगढ़ दूसरे स्थान पर है (दिल्ली : 9294, चंडीगढ़ : 7903) चंडीगढ़ तो पंजाब और हरियाणा राज्य के दो पाटों के बीच दबाव में है। ऐसा लगता है कि प्रदूषण से पूरे शहरों की धीमी मौत हो रही है। इसलिए एक नारा है कि 'गाँवों की हरित क्रांति शहरों तक ले आओ' अर्थात् हरित महानगरों का विधान करो। मुंबई के पर्यावरणविद रश्मि मयूर ने एक व्यापक अभियान भी चला रखा है। एक अन्य एजेंसी है 'अरबन आर्ट कमीशन'। यह पाया जा रहा है कि शहरी क्षय के कारण आर्थिक संरचना में आभिजात्य पक्ष के अनुकूल परिवर्तन भी है। अब क्षरण के निमित्त फौरी राजनीतिक व्यवस्थापन, भवन निर्मात्री समायोजनाएँ, बैंकों का पक्षपात तथा बेशकीमती मानवीय पूँजी की अनियंत्रित बर्बादी तथा उत्पीड़न भी है। ऐसे में हमें डोमिनीक लापियर की 'आनंदमय शहर' (सिटी ऑफ़ ज्वॉय) की याद हो आती है। वस्तुतः महानगरों के आनंद के शत्रु तो एकांत भीषण स्वार्थ, आत्मनिर्वासन, अंडरवर्ल्ड, कालेधन का फैला संजाल है। इन्हें 'कोफेपोसा' तथा 'एन0एस0ए0' भी दूर नहीं कर सके हैं। अनिवासी भारतीय (एन0आर0आई0) बेशुमार दौलत को पम्प कर रहे हैं। उनकी बदौलत भी हवाला-कारोबार (दुबई से नरेश जैन पाँच हज़ार करोड़ का धंधा चला रहा है), अंडरवर्ल्ड, परित्यक्ता भारतीय नववधुएँ, अंधाधुंध रियेल्टी में निवेश आदि ने सत्ता, नैतिकता को भी तहस-नहस कर डाला है। दक्षिण दिल्ली की संपन्नता (एफ्लुएंस) तथा चंडीगढ़ के शुरू वाले कुछ सेक्टरों की अमीरगी इस दशा की प्रतिनिधि है।

तो अगर आज के महानगर शहरीदानव हो गए हैं तो भविष्य के सौर ऊर्जा पर आधारित अतिमहानगरों की सुछवि कैसी होगी?

क्या हम मेगा-शहरों का अभ्युत्थान रोक सकते हैं? नहीं।.. रोकना भी नहीं चाहिए। अन्यथा भविष्य में मानव-सभ्यता तथा मानवीय-समाज खतरे में पड़ जायेंगे।

तो क्या हो सकता है?

एक तो भविष्य के पुराने शहरों को सँवारा जा रहा है। (हम कुछ शहरों की सूची गिना आए हैं) इनमें से शंघाई, सिंगापुर, हांगकांग, टोक्यो और चंडीगढ़ मॉडल बनाए जा रहे हैं। यह कोशिश की जा रही है कि शहरीकरण के 'वास्तुपुरुष' की देहस्वस्थ-सुडौल, सुंदर-शक्तिमान हो अर्थात् उसमें घाव और सूजन नहीं फैले : यथा, झोपड़पट्टियों का बढ़ना, फूहड़ता, असुंदरता, लोगों का तीव्र आगमन, दमघोंटू-मृत्युपाशी सड़कें, प्रदूषण, गंदे और बीमार शहरी क्षेत्र। इसके लिए उपग्रही नगर (सेटेलाइट टाउन) बनाए/ बढ़ाए जा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनव विस्तार मेगा-शहरीकरण की प्रमुख बुनियाद है। जैसा कि हम बता आए हैं कि दिल्ली की फैलती परिधि में शाहदरा, ओखला, नोएडा, गुड़गाँव के अलावा मेरठ, गाज़ियाबाद, रोहतक, सोनीपत तक आते जा रहे हैं। मुंबई का विस्तार पुणे तक हो रहा है। चंडीगढ़ का भी यही हाल है। अब खुले लेटे अँगड़ाते मकानों के बजाय तीरों-भालों-बंदूकों जैसी आकाश छेदती बहुमंजिला इमारतें मेगा शहरीकरण की निशानी हैं। अब पुरानी वास्तुपरक धरोहरें भी ढँकी जाकर गुमशुदा होती जा रही हैं। शहरों का नया मुखमंडल, पुरानों से मिलान करने पर, अजनबी जैसा हो गया है।

आगे 'ईको-सिटी', 'नेनो-सिटी', 'नॉलेज सिटी', 'आई0टी0 सिटी', 'विज्ञान-सिटी' आदि के रूप में सेक्टरों की परियोजनाएँ शुरू हो रही हैं। जगमोहन, सैम पित्रोदा और अब कपिल सिब्बल भी इन नवेले निवेशों के पुरोहित बन रहे हैं। इनका एकमात्र लक्ष्य है 'मानवीकृत टैकनोपोलिस' इसके दो ध्रुवांत होंगे-सूचना नगर और शिक्षा नगर। ऐसे मेगा-महानगर झोपड़पट्टी से मुक्त, पर्यावरण के हरित चंदोले की बढ़ोत्तरी से आच्छादित, उच्चतर प्रोद्योगिकी से संपन्न, सघनीकरण से संपन्न, सघनीकरण से असंकुल, नये से नये प्रशिक्षण-प्रकारों से सज्जित', बहुप्रकार की उन्नति के अवसर प्रदान करने वाले, उद्योग और कृषि के संतुलनकर्ता होंगे। विकासशील, किंतु ग़रीब और अनपढ़ता-बहुल, भारत में यह एक भविष्य शास्त्रीय (फ्यूचरोलाजिकल) दिवास्वप्न लगता है, किंतु भविष्य की यथार्थन संभावनाओं से युक्त हो रहा है, ह सब नतीजन ऐसा भविष्य का मेगा-शहरीकरण बहु-प्रकार्य धर्मी (मल्टी फंकशनल) होगा। मूलतः भूमंडलीकरण के कार्पोरेट पूँजीवाद का यह नया प्रतिबिम्ब ही है। क्या भारत में यही चलेगा?

इसके लिए राज्य-स्तर पर भी योजनाएँ लागू की जाने का संकल्प है ताकि मेगा-नगरीकरण के लिए वैज्ञानिक- टैकनोलॉजिकल मानसिकता बन सके जिसके केंद्र में ज्ञान होगा। मसलन पंजाब व चंडीगढ़ में भारतीय प्रबंधन संस्थान (आई0आई0एम0), भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई0आई0टी0), भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान (आई0आई0आई0टी0) तथा हर राज्य में (पुनः) एक केंद्रीय यूनिवर्सिटी, एक 'फैशन संस्थान (आई0एफ0टी0) एक आयुर्विज्ञान का संस्थान (आई0एम0एस0) आदि की स्थापना के द्वारा उच्च शिक्षा का स्तर मज़बूत होगा। इन संस्थानों के जरिये कुशल एवं सक्षम कार्मिक तैयार होंगे जिससे 'ज्ञानवर्ती समाज' (नालेज सोसायटी) की परियोजना भी परवान चढ़ेगी। इनके लिए अखिल भारतीय परीक्षाएँ भी ली जाएंगी। ब्लॉकों में माडल स्कूल, सेक्टरों में डिग्री कालेज तथा प्रमुख कालेजों में महिला छात्रावासों का भी प्रावधान होगा।)

सब ठीक है कि इस व्यायाम में लोक-प्रशासन (पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन) तक शामिल है। परंतु समाजविज्ञान एवं मानविकी-अध्ययन शोध सीमांतिक (मार्जिनलाइज़्म) बनाकर परे कर दिये गए हैं। क्या सारी बौद्धिक संपदा विज्ञान एवं टैकनालॉजी की ही होगी? क्या सभी डाक्टर, आई0ए0एस0, इंजीनियर, प्रबंधक, कम्प्यूटरज्ञ बन जाएंगे? क्या हम हर्बर्ट मार्क्यूज़ की चेतावनी को सही साबित करते हुए एकायामी मनुष्य (वन-डाइमेंशनल मैन) को मंदगामी निर्माण करने का निर्णय ले चुके हैं? तब तो हमारा 'सिविल समाज' तक न जाने कहाँ भटक जाएगा? समाजवादी ढाँचा तो बड़ी दूर की कौड़ी होता जा रहा है। क्या इसी तरह से निर्धनता का निवारण तथा समग्र समाज का सिस्टम बन सकेगा? ये यक्ष प्रश्न पूरे देश के प्रारब्ध से, करोड़ों जनजन के जीवन से जुड़े हैं जो शताब्दियों से बस केवल आश्वासनों और यूटोपियाओं के भ्रम में जीते-मरते चले आ रहे हैं। अकेले व्यक्ति की पीठ पर घाव घोंपे तथा हथेली पर दाग़ दागे गये हैं।

लेख का समापन एक लघु प्रौद्योगिकीय प्रकल्प अर्थात् नैनो सिटी से करना। मेगा-शहरीकरण का यह पहला कदम माना जा सकता है (अमर्त्यसेन अधिक गहरे धँसते हैं)।

त्रिनगरी चंडीगढ़ की फिरनी के पंचकूला शहर के सीमांत (बरबाला तथा रायपुरानी क्षेत्र में टोका एवं टांगरी नदी के बीच) में बनने वाले नैनो-सिटी या नॉलेज-सिटी या टैकनालॉजी-सिटी में बड़ी तादाद में युवाओं को लर्निंग, ट्रेनिंग तथा जॉबिंग के मौके मिलेंगे (2006)। इसमें हॉटमेल के आविष्कारक सबीर भाटिया की कंपनी की नब्बे प्रतिशत हिस्सेदारी होगी। यह विश्व बाजार के लिए उत्पादों एवं टैकनालॉजी के विकास में शामिल हो सकेगी। इसमें विभिन्न प्रकार के संस्थान भी स्थापित किये जाएँगेः शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परिवहन के।

निष्कर्ष यह है कि इस कथित उत्तर आधुनिक युग में मेगा-शहरीकरण की महत्तम चुनौती स्वयं धरती की रक्षा हो गई है। प्रकृति एवं पर्यावरण समेत जैविक जगत को कार्बन डाई-आक्साइड गैस के प्राण घातक आवरण से बचाने, ओज़ोन गैस की परत को क्षीण होने से रोकने, पृथ्वी का तापमान बढ़ने से रोकने तथा अनेकानेक जीवों और वनस्पतियों को विलुप्त होने से बचाने की ये आनुसंगिक चुनौतियाँ भी ऐसे शहरीकरण की प्रक्रिया का पुनर्विधान कर रही है।

यह मानो सब कुछ अंतर्बंध है। क्या संस्कृति तथा मानविकी और कला सीमांतिक होती जाएगी? अतएव भाव-धुरी वाले मनोरंजन-चक्र से प्रतिस्थापित होकर ज्ञान तथा सूचना तथा दस्तावेज के त्रिकोण की साधिका होना उनकी अनिवार्यता है। इसी से इनके भविष्य की स्वतंत्रता की गारंटी सिद्ध होगी और जन-जीवन का समग्र उद्धार हो सकेगा।

फ्लैट सं0 3 (भूतल), स्वास्तिक विहार-।।।, मनसादेवी कामप्लेक्स, पंचकूला-13410

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टॉल्सटॉय द्वारा वेश्या का उद्धार

डा0 भवदेव पांडेय

सन् 1856 की घटना है। जाड़ों के दिन थे। उस वक़्त टॉल्सटॉय जवानी का उद्मादक समय जी रहे थे। उन्होंने अपनी डायरी में 9-10 जनवरी का विवरण देते हुए लिखा-''आजकल ऑरेल में हूँ। मेरा भाई मित्री मर रहा है। उसके प्रति मेरे मन में जो दुर्भावनाएँ थीं, वे स्वतः विलुप्त हो गईं। 'माशा' और 'तातिआना अलेग्जैण्ड्रोवना' उसकी सुश्रुषा में लगी हैं। मैं वैलेरियन को फिर घृणा की दृष्टि से देखने लगा हूँ। तबीयत बहुत दबी जा रही है। कुछ कर नहीं सकता, पर एक ख़ेल का ख़ाका तैयार कर रहा हूँ।''

यहाँ यह जानना ज़रूरी है कि अपने डायरी लेखन में टॉल्सटॉय ने जिस 'माशा' का उल्लेख किया है, वह एक वेश्या थी, जिसका उद्धार उन्होंने एक वेश्यालय से किया था। वे 'माशा' को अपनी स्त्री बनाकर रखना चाहते थे, परंतु कुछ दिनों के बाद माशा की मृत्यु हो गई। लाचार टॉल्सटॉय माशा की सहेली तातिआना अलेग्ज़ैण्ड्रोवना से उलझ गए। जब उन्होंने अपना वृहद् उपन्यास 'एना करेनिना' लिखा तब माशा और उसकी सहेली तातिआना अलेग्जैण्ड्रोवना का भरपूर चरित्र चित्रण किया। 'माशा का नाम तो नहीं बदला परंतु तातिआना का नाम 'किटी' रख दिया।

टॉल्सटॉय एक बहुत बड़े कथाकार थे। उन्होंने अनेक कहानियाँ और कई उपन्यास लिखे थे। इन कहानियों, उपन्यासों में स्वानुभूत पात्रों के चरित्रों के ख़ाके तैयार किये थे, इसलिये उनके सृजित पात्रों में जीवंतता आ गई थी और रचनाएँ आज भी आकृष्ट योग्य हैं। टॉल्सटॉय ने 9-10 जनवरी के बाद फिर दो फरवरी को अपनी डायरी में लिखा-'पीटर्सवर्ग मैं हूँ। मित्री का देहांत हो गया। मैंने आज यह ख़बर सुनी। कल से मैं अपने दिन इस प्रकार व्यतीत करुँगा कि उसकी स्मृति ही सुखकर प्रतीत हो। कल पेलागिया इलिनिश्ना और कारिन्दे को लिखूँगा और बर्फीले तूफ़ान की साफ प्रतिलिपि तैयार करुँगा। क्लब घर में भोजन करने के बाद नकल करने का काम हाथ में लूँगा। शाम को तुर्गनेव से मिलने जाऊँगा। प्रातः काल एक घंटा रह लूँगा। मैंने अपनी डायरी के एक बड़े क्रियात्मक पृष्ठ का मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया, जिसमें मैंने लिखा है कि हमें पूर्णता का दावा करके पूर्णतया को धोखा नहीं देना चाहिए और दोनों के लिए निषेधार्थक साधनों द्वारा काम करना चाहिए। मेरी प्रधान त्रुटि है सुस्ती की आदत, अनियमितता, इन्द्रियासक्ति और जुए की प्रवृत्ति। इनके विरुद्ध युद्ध करुँगा।'

04 फरवरी को फिर टॉल्सटॉय ने लिखा -

'प्रातः काल कुछ लिखा। बल्गाकोव ने आकर मेरे काम में बाधा डाली, सो गया। इसके बाद कटलर आया। क्लबघर में खाना खाया। फेट बड़ा ही सुंदर है।'

अपनी डायरी में टॉल्सटॉय ने फेट की चर्चा विस्तार से की है। ए0ए0 फेट एक गायक कवि था और बहुत वर्षों तक टॉल्सटॉय का मित्र था। राजनीति में वह अनुदार दल से सहानुभूति रखता था। उसका मत था कोई भी सुधार करने के बजाय केवल प्रांतों और नगरों में अच्छे शासक नियुक्त कर देना चाहिए किंतु मित्र होने के बाद भी टॉल्सटॉय उसके राजनीतिक मत से सहमत नहीं थे। वे उदार दल के समर्थक थे। टॉल्सटॉय ने 4 फरवरी को ही सहायक की कहानी और शराबी के दृश्य की चर्चा की है -

'शाम को वे अपने पितृ गृह गए। निकोरोशेन से रुपये प्राप्त किए और कटलर के साथ दो बजे तक बैठे रहे। ईश्वर को धन्यवाद है कि दूसरे दिन भी मेरी तबियत ठीक रही। इसके बाद ब.... और क.... की प्रेम कहानी। यहाँ एक अवांतर प्रसंग की चर्चा ज़रूरी है। देखा जा सकता है। 'ब' और 'क' के बाद नौ-नौ डाट दिए गए हैं। जहाँ डाट दिए गए हैं, वहाँ टॉल्सटॉय ने अपने चरित्र पतन के ब्यौरे दिए थे, परंतु जब डायरी छपने के लिए दी गई तब टॉल्सटॉय के ज्येष्ठ पुत्र ने पिता के चरित्र पतन के ब्यौरे निकाल लिए। इसलिए डायरी के मूल अनुवादक ऐल्मर मॉड को डाट देकर काम चलाना पड़ा। एल्मर मॉड ने टॉल्सटॉय के बड़े बेटे की बड़ी निंदा की थी। हिन्दी अनुवादक ठाकुर राजबहादुर सिंह ने एल्मर मॉड को ज्यों का त्यों अनूदित कर दिया है।

इस अवांतर प्रसंग के बाद टॉल्सटॉय की डायरी की चार फरवरी 1856 की अगली घटनाएँ जिसमें टॉल्सटॉय ने लिखा-

अपने पास उद्विग्नता को फटकने न दूँगा। स्त्रियों का आदर करना चाहिए। कल सुबह इन विचारों और तथ्यों को इस रूप में सुव्यवस्थित करके लिखूँगा कि इन्हें फिर स्मरण कर सकूँ। इसी उद्देश्य को लेकर डायरी लिखने का समय नियत करुँगा।

सहायक की कहानी -

एक किसान कारिन्दे ने अपने मालिक (जमींदार) का अनाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात हज़ार में बेच दिया और किसी काम से बाहर जाते समय अपने सहायक से कह गया कि वह रुपये को सावधानी से रखे। सहायक रुपये लेकर ऑडेसा भाग गया और वहाँ एक धनी व्यक्ति बन बैठा। छुटकारा प्राप्त करने के लिए उसने दो हज़ार की रक़म वहाँ के जमींदार को देकर गुलामी से मुक्ति प्राप्त करने का सर्टीफिकेट प्राप्त किया। दस वर्ष बाद वह सहायक घरेलू झगड़ों से तंग आकर अपने दो लाख के बर्धित धन में से दस हजार साथ लेकर अपने गाँव को लौटा। अपने चचा से मिलने के बाद उसने चचा से कहा कि मुझे अपने भाइयों के पास ले चलो और इस प्रकार वहाँ अपने आप को प्रकट कर दिया। उसने अपने चचा को दो हज़ार रूबल दिये। अपने दो भाइयों में से भी प्रत्येक को दो-दो हज़ार रूबल देने का वचन दिया। उसका चचा उसे गाँव की ओर ले गया और गाँव में घुसते ही उसकी गर्दन पकड़कर गोहार लगाई-'दौड़ो-दौड़ो, चोर-चोर।' सहायक कैद हो गया और सख़्त सज़ा का हुक़्म हुआ। उसके चचा ने चोर पकड़वाने के उपलक्ष्य में ज़मींदार से कुछ पुरस्कार स्वीकार नहीं किया, और उसने दो हजार की रक़म ज़मीदार को सौंप दी, जो उसे सहायक से मिली थी।

शराबी का दृश्य-

वोज़्नेसेंस्की प्रॉस्पेट प्रथम में आकर मैंने एक भीड़ देखी। दो भले मानस, मज़दूरों की पोशाक पहने, एक नंगे सिर बुढ्ढे की ओर मुड़कर उसे गाड़ी में डालने की चेष्टा कर रहे थे। गाड़ी वाला पहले किराया तयकर लेने पर ज़ोर दे रहा था, और उसने गाड़ी का बरसाती पर्दा बाँधकर रखा था। मज़दूरों की पोशाक वाले दोनों सज्जन उत्तेजित हो रहे थे। भीड़ के छोर पर बढ़िया चमड़े के दस्ताने मैन अल्हड़पन के साथ आता दिखाई दिया। बुढ्ढा ड़ रहा था। मज़दूरों की पोशाक वालों ने गाड़ी वाले और बुड्ढे को एक तरफ़ ले चले। कॉन्सटेबिल ने प्या कर रहे हो?" और इसके बाद उस लंबी कहानी . जिसकी ओर कॉन्सटेबिल उसी तरह अल्हड़ गति ओर चला और शौक़ के मारे दस्तानें सँभालता गी। एक व्यर्थ की भीड़ लग गई थी।

प्रेम कहानी-

और एक युवती महिला देहात से चल कर वे एक दूसरे से नितांत अनभिज्ञ थे, पर में इतनी घनिष्ठता हो गयी कि दोनों एक संबोधित करने लगे। ब... ने बाद में में किसी चीज़ का त्याग नहीं करना ा कि वह उससे प्रेम का एक बड़ा । वह यह है कि ब... उसे दस रूबल रकम नौकरानी को रिश्वत के रूप मिलने आये। बड़ी ही सुंदर और हृदय स्पर्शी कहानी होगी।

उदासीनता को पास न फटकने दो और जब कभी कोई उदासीन जनक बात सामने आये, तो तुरंत सावधान होकर कह दो कि उससे तो मैं उदासीन हो जाऊँगा।

स्त्रियों के प्रति आदर-

स्त्रियों से तीन प्रकार का संबंध हो सकता है। कुछ स्त्रियों की तुम किसी कारण प्रतिष्ठा करते हो, (जिनका कारण बिल्कुल ही मूर्खतापूर्ण है) और यह समझते हो कि उनके संबंध तुमसे उच्चकोटि के हैं। यह एक दुर्भाग्य की बात है। कभी तुम उन्हें इसलिए प्रेम करते हो कि मतभेद में दुःख उत्पन्न होता है और तुम तर्क करना चाहते हो-प्रेम ऐसा सुंदर है।

7 फरवरी -

तुर्गनेव के साथ झगड़ा किया।....

8 फरवरी -

बोल कोस्वी ने दावत दी थी। कल प्रार्थना में जाना है। लिट्वाइल-डू-नॉर्ड जाकर दिन भर बम फैक्टरी में रहा। ति कलकाकोव (एक चतुर चित्रकार) और इरेसीव शाम को मेरे साथ थे।

10 फरवरी

कल थोड़ा लिखा। जिमनास्टिक में बहुत समय गल जाता है। थियेटर के संबंध में अपनी स्वीकृति दे देनी मेरी मूर्खता थी। कैवस्की (ए0ए0 कैवस्की एक मशहूर अख़बार नवीस था जो Father Land News और दैनिक Petersburg Gazatte का संपादक था) के पास गया।

11-12 फरवरी

बर्फ़ीला तूफान समाप्त करके बहुत प्रसन्न था।

18-19 फरवरी, 1856 को टॉलस्टॉय फिर लिखते हैं-

कोई कार्य नहीं किया। मंडी की ओर जाकर भीड़ का अध्ययन करने में आनंद मिला। इस बात का निरीक्षण किया कि रूसी भीड़ वक्ताओं के भाषण किस प्रकार सुनती है। तुर्गनेव के साथ खाना खाया। हमने तैयारी कर ली। शाम को मार्डीव के घर स्त्रियों का जमाव होगा। मेरी अभीष्ट लड़की बड़ी सयानी है। यद्यपि उसकी हंसी बड़ी मनोहर होती है, फिर भी उसमें हृदय शून्यता होती है। वोलकोंस्की प्रेम करना चाहती है पर सोचती है कि कोई उसे चाहने वाला मिले, जो पहले उस पर प्रेम प्रदर्शित करे। कल मैं छः घण्टे काम करुँगा और जब तक काम समाप्त न कर लूँ, सोने का नाम न लूँगा। पहले 'डेज़र्टर' से इपिश्का चरित्र लेकर लिखूँगा, फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखान्त और उसके बाद युवावस्था।

ऊपर टॉल्सटॉय की डायरी की कुछ तिथियाँ और कुछ घटनाएँ दी गई हैं। यह बात पहले कही जा चुकी है कि ये तिथियाँ और घटनाएँ सन् 1856 की हैं जब टॉल्सटॉय नौजवानी की देहरी पर पैर रखने जा रहा था। उक्त घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि एक युवा लेखक को अपने समाज, संस्कृति, प्रेम, घृणा और भीड़ की मानसिकता समझने के लिए कितना कुशल और कितना त्वरित होना चाहिए। साथ ही अपने समय के लेखकों से किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए। यदि टॉल्सटॉय समवय एकता का इतना गूढ़ अर्थ न समझता तो इतना बड़ा कथाकार न हो पाता।

टॉल्सटॉय की डायरी काफी मोटी है, 474 पृष्ठों की। उसकी डायरी के थोड़े से पन्ने दिए गए हैं, वे बड़े दिलचस्प हैं, खासकर तुर्गनेव के-'तुम्हीं से मुहब्बत, तुम्हीं से लड़ाई।

अपने हिन्दी साहित्य में भी कुछ ऐसे कथाकार होंगे जिनके स्वभाव टॉल्सटॉय से मिलते-जुलते हों। अगर नहीं तो इस कमी को पूरा करने के लिए ही डायरी के कुछ पन्ने उद्धृत किए गए हैं आगे और भी किए जाएँगे।

प्रेमघन मार्ग, मिरजापुर-231001 (उ0प्र0)

दोहे

बने फिरें रसखान

नरेन्द्र तिवारी

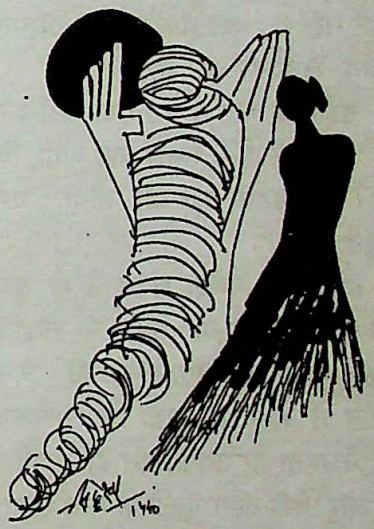

कवि होने को कर दिया, सर्वाधिक आसान।
मुक्तछंद ने नोचकर, कविता के परिधान।।

नब्ज़ कभी पकड़ी नहीं, कैसा रोग-निदान।
कवि हैं ऐसे डाक्टर, फिर भी चले दुकान।।

ग़लत छंद छपने लगे, हर कविता में छेद।
दोहे जैसी चीज़ में, करें मात्रा-भेद।।

बे-तरतीब प्रलाप को, रचना कहें महान।
बेचारी कविता सहे, खोती जन-पहचान।।

ख़ुद समझें ख़ुद ही लिखें, ख़ुद ही करें बखान।
नीरस कविताई करें, बने फिरें रसखान।।

ढाई पृष्ठों में छपी, कवि की फोटो साथ।
पूरी कविता पढ़ गये, लगा न कुछ भी हाथ।।

कोमल कांधों पर लदे, इतने वाद-विचार।
कविता डगमग चले ज्यों, कुबड़ा रूपाकार।।

अग्रदूत बनते फिरें, गर्वित निज अज्ञान।
तख़्ती लय को छोड़िए, नहीं मात्रा-ज्ञान।।

गीत लिखें पर है नहीं, सुर-सम की पहचान।
तीन ताल में बांधते, दीपचंद की तान।।

मित्रो! केवल उसी का, मुक्तछंद अधिकार।
बंदिश में जो दे सके, कविता को आकार।।

116, आवास विकास कालोनी, प्रदर्शनी मार्ग, अलीगढ़

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वंस

दिनेश पालीवाल

मैली शलवार, पसीने से तर बदरंग कुर्ता, रूखे-सूखे खिचड़ी बाल, मुरझाया चेहरा। हमीद के साथ सकुचायी-सी खड़ी महिला की तरफ़ देखा तो हमीद ने कहा, "बाबू, अम्मी कुछ पूछने आयी हैं आप से।"

फटी, मैली-कुचैली ओढ़नी सिर पर ठीक से ढकने की कोशिश की, तो बाल फटे हिस्सों से चुगली करने लगे, "हमीद की अम्मी सईदा... दो दिन हो गये, भैया घर नहीं आये। फिकर हो रही है। हमीद के अब्बू भी ऐसे ही एक बार रिक्शा लेकर घर से निकले, तो लौटे नहीं थे। बाद में पता चला, अस्पताल में पड़े हैं। जब तक ढूँढ पाये, ख़त्म हो चुके थे।"

सईदा के भाई से मेरा क्या लेना-देना? हैरत से उसकी ओर देखा, "कौन भैया?" समझ नहीं पाया, किस भाई के बारे में पूछ रही है। तभी सहसा कुछ याद आया, "गणेश शंकर के बारे में तो नहीं पूछ रहीं?"

हमीद को गणेश शंकर ने ही सुबह अख़बार बाँटने की हॉकरी पर लगवाया था। हमीद पर साइकिल नहीं थी, तो अपनी साइकिल सुबह के लिए दे दी थी। दिन में गणेश शंकर ख़ुद साइकिल से काम पर जाता था। गणेश शंकर जिस किराये के मकान में रहता है, उसके पास ही कच्ची कोठरी में हमीद अपनी अम्मी और छोटी बहन गुल्लो के साथ रहता है। मुहल्ले में ज़्यादातर मुसलमान या नीची जाति के लोग रहते हैं। गंदगी और असुविधाओं के बावजूद गणेश शंकर को किराये पर वह घर सस्ता मिल गया, तो रहने लगा। हमीद की अम्मी सईदा उसका बहुत ख़्याल रखती है। घर की साफ़-सफ़ाई, चौका-बर्तन, खाना बना देना... बहुत स्वादिष्ट खाना बनाती है, बिल्कुल बामनों की पसंद का। कभी मुझे भी आमंत्रित कर खिलवाएगा।

"जी साब, गणेश भाई दो दिन से घर नहीं आये। बिना बताये कभी गये नहीं। शायद आपको बताकर गये हों। बहुत बुरा बखत है साब। हत्या, खून, कत्ल, हादसे। ठेलों-मोटरों के नीचे कुचलकर हर दिन दो-चार मौतें हो जाती हैं," सईदा ने आशंकित चेहरा झुका लिया। कैसा वक़्त आ गया है आज? कोई आदमी दो दिन भी घर न आये, तो तमाम तरह की चिंताएँ और बुरे ख़्याल मन में उठने लगते हैं।

दो दिन से...? दो दिन पहले चौदह सितंबर था, हिन्दी दिवस। नगर के महाविद्यालय में हुई गोष्ठी में गणेश शंकर शामिल हुआ था। वहाँ उसने कुछ कहना चाहा था, पर संचालक ने उसे बोलने का मौक़ा इसलिए नहीं दिया, क्योंकि जनता के प्रिय कवि वेणु गोपाल को श्रद्धांजलि दी जा चुकी थी। श्रद्धांजलि के बाद किसी वक्ता को बोलने देने की परंपरा नहीं है।

गोष्ठी के बाद बाहर निकले तो अँधेरा झुक आया था। बिजली रात नौ बजे से पहले आती नहीं है। दमघोट गरमी, उमस और पसीने के यातना-शिविर में घर जाने की बजाय हम कुछ लोग पास के भ्रमण-स्थल पक्के तालाब की तरफ़ निकल गये। इनवर्टरों को बिजली पर्याप्त न मिलने के कारण घंटे दो घंटे में ही वे चिल्लाना शुरू कर देते हैं, इसलिए उनकी बिजली बखत-ज़रूरत के लिए बचाकर रखनी पड़ती है। छोटे शहरों का जीवन असुरक्षित ही नहीं, नारकीय भी हो गया है। आपसी रंजिशें, मनमुटाव, गुस्सा, झल्लाहट, गाली-गलौज़, मारपीट... परेशानियों से खीझा हुआ आदमी और क्या करेगा?

गोष्ठी की गरमाहट हमारे बीच अभी भी बाक़ी थी। लपकते हुए गणेश शंकर कब हम लोगों के पीछे आ लगा, हम जान नहीं पाये। जाना तब, जब वह आते ही फट पड़ा, "क्यों साब, आप हम साधारण श्रोताओं को किसी गोष्ठी में अपनी बात कहने का मौक़ा क्यों नहीं देते? हमें चूतिया क्यों समझ लिया जाता है? अख़बारों से आप लोग आम श्रोताओं को क्या सिर्फ़ सुनने और तालियाँ बजाने के लिए ही बुलाते हैं? क्या हम इतने बौड़म, बेवकूफ़ और नासमझ हैं कि समाज, देश और उसके मौजूदा हालात के बारे में अपनी कोई राय ही नहीं रख सकते? हर आयोजन में यही होता है। लोग अपनी बात कहते हैं, हमारी कोई नहीं सुनता। आप लोगों की कही बातों पर हम भी तो अपनी राय रखना चाहते हैं। हमारे भीतर भी तमाम सवाल उठते हैं। उनके जवाब हमें भी चाहिए, पर आप विद्वान लोग हमें गोबर तक में थापने को तैयार नहीं होते। शायद आप लोग हमें सिर्फ़ पशु मानकर चलते हैं, बिना सोचे-समझे जीते चले जाने वाले... जैसे हमें सिर्फ़ खाने, मूतने, औरत के संग सोने, बच्चे पैदा करने के अलावा और कुछ आता ही नहीं है।"

"नहीं, ऐसा क़तई नहीं मानते," मैंने हिचकिचाते हुए प्रतिवाद किया, "गोष्ठी के अंत में मैंने ही वेणु गोपाल जी को श्रद्धांजलि दी थी। श्रद्धांजलि के बाद किसी वक्ता को संचालक बोलने का अवसर दे, यह परंपरा नहीं है।"

"समाज और देश को बदलने की बकवास करने वाले आप लोग लकीर के इस क़दर फ़कीर क्यों हैं?" उसने सवाल दागा।

"यह सब आयोजकों की समझ और मान्यताओं पर निर्भर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है,'' मैंने जवाब देना चाहा, ''ज़रूरी नहीं है कि सब उनसे सहमत हों। हम लोग तालाब किनारे किसी एकांत जगह बैठते हैं। वहाँ बहस कर लेंगे'' टालने के लिए कहा।

''क्या बहस करेंगे आप?'' मैं समझ नहीं पा रहा था कि गणेश शंकर मुझसे नाराज़ है या संयोजक-संचालक से। मेरी ख़ता यह थी कि मैंने कहना कुछ और चाहा था, पर जब तक मुझे बोलने के लिए आमंत्रित किया गया, लोग उबाऊ और वही घिसी-पिटी बातें सुन-सुन कर बुरी तरह ऊब चुके थे, इसलिए वेणु गोपाल का संक्षिप्त परिचय दिया और उनकी एक तीन पंक्तियों की कविता। कविता समझ में नहीं आती, अगर उस कविता का अर्थ स्पष्ट करने के लिए, उन्हें श्रद्धांजलि देने के लिए मैं अपनी कविता प्रस्तुत न करता। जैसे ही मैंने अपनी कविता प्रस्तुत की, लोगों को वेणु की कविता एकदम समझ में आ गयी और लोग तालियाँ बजाते रहे, क्योंकि वेणु की वह कविता आज के माहौल पर सीधे चोट करती थी, पर इतनी संक्षिप्त थी कि लोग समझ ही नहीं पाये थे।

तालाब किनारे पहुँचकर ऊँचे चबूतरे पर हम सब आ बैठे। गणेश शंकर अभी भी गुस्से में था, ''श्रद्धांजलि के बाद अन्य कोई वक्ता न बोले, अगर यह परंपरा है, तो इन प्रशांत जी ने अपनी वही हर साल सुनायी जाने वाली तुकबंदी क्यों सुनायी?''

मंच पर बैठे सब लोगों को अचरज भी हुआ था कि जब आयोजन समाप्ति की घोषणा की जा चुकी है, तो माइक एकाएक पकड़कर प्रशांत जी ने क्यों अपनी कविता के तीन-चार छंद ज़बरन सुना डाले? वाक़ई ये वही छंद थे, जिन्हें हम हिन्दी दिवस पर बरसों से उनके मुख से सुनते आ रहे थे। स्थानीय कवियों को अपनी सुनाने की इतनी तीव्र लालसा क्यों होती है?

सुनते ही प्रशांत जी एकदम आपे से बाहर हो गये, ''तुम क्या जानो कविता क्या होती है? तुम साले दो कौड़ी के सड़े-से पुस्तकालय में क्लर्क और एक सेठिया की दूकान के मामूली नौकर। छंद बिना कविता को कविता कहा जा सकता है क्या? वेणु गोपाल की जिन तीन पंक्तियों की कविता को श्रद्धांजलि स्वरूप सुनाया गया, अगर योगेंद्र जी उसे स्पष्ट करने के लिए अपनी कविता न प्रस्तुत करते, तो किसी को उस कविता की नाक-पूँछ पकड़ में न आती। आजकल जिन कवियों की कतिवाएँ अख़बारों-पत्रिकाओं में छपती हैं, मंच पर सुनाकर दिखाएँ वे, सिर के ऊपर से गुज़र जाने वाली कविताएँ। लोग सड़े टमाटर, अंडे और जूते-चप्पल फेंक कर भगा दें। हैं किस होश में ये? इन्हीं लोगों ने कविता का सत्यानाश किया है, फिर शिकायत करते हैं कि कविता-संग्रह बिकते नहीं हैं कि हिन्दी में पाठक नहीं रहे। क्यों सुने-पढ़ें आपकी बकवास? न लय, न तुक, न रस, न अलंकार। हर ऐरा-ग़ैरा नत्थू खैरा छंद नहीं साध सकता। इसे हम जैसे छंद साधने वाले ही साध पाते हैं, जिसे आप जैसे बेवकूफ तुकबंदी कह रहे हैं।''

गुस्से से काँपने लगे थे प्रशांत जी, ''श्रोताओं में कोई था जिसने कभी वेणु गोपाल का नाम भी सुना हो? योगेंद्र जी चूँकि मार्क्सवादी हैं, इसलिए उस नक्सली और मार्क्सवादी कवि को श्रद्धांजलि देने लगे।''

प्रशांत जी की दुनिया सिर्फ़ वेद, पुराण, उपनिषद और गीता-महाभारत-रामायण तक ही सीमित है, वे सबसे ज़्यादा नफ़रत मुसलमानों से करते हैं या फिर मार्क्सवाद-नक्सलवाद से। आतंकवादियों में उन्हें हमेशा या तो मुसलमान दिखायी देते हैं या फिर नक्सली। गोष्ठी में यह चर्चा उठी कि जो भाषा जनता से नहीं जुड़ी रहती, जिस भाषा से रोज़ी-रोटी नहीं मिलती, वह भाषा बहुत दिन ज़िंदा नहीं रहती। परंतु, प्रशांत जी हमेशा कहते हैं कि संस्कृत मरी नहीं, उसे औरंगज़ेब ने मारा। लाखों संस्कृत के विद्वानों को औरंगज़ेब ने मार डाला। वही उसे जीवंत भाषा बनाये हुए थे। उनकी हत्याओं के कारण ही संस्कृत के आचार्य इतने भयभीत हो गये कि उन्होंने संस्कृत पढ़ना छोड़ दिया। धीरे-धीरे संस्कृत जनता से कटती चली गयी, जिसे आज लोग प्रचारित करते हैं कि संस्कृत पिछड़ी हुई भाषा है, मृत भाषा है, रोज़ी-रोटी से उसका जुड़ाव नहीं है। कंप्यूटर, इंटरनेट, ब्लाग, एस0एम0एस0 की तकनीकी दुनिया में वह कहीं नहीं ठहरती, क्योंकि उसे ठहरने नहीं दिया जा रहा। कथित लोकतंत्रवादी, धर्मनिरपेक्ष लोग इस षडयंत्र में शामिल हैं।

गोष्ठी के बाद चाय-पान के वक़्त भी वे यही राग अलापते रहे थे। मुझे लक्ष्य कर उन्होंने व्यंग्य किया था, ''आपका मार्क्सवाद आजकल किस कूड़ेदान में पड़ा है, उसकी भी कुछ ख़बर लिया करिए! है कोई उसका नामलेवा इस पूरी दुनिया में? जिस रूस में कभी उसने पाँव जमाये थे, वहीं उसे गहरी क़ब्रों में दफ़ना दिया गया, क्यों? क्योंकि उसके पीछे न कोई दर्शन था, न सोच, न विश्वास। हमारे संस्कृत साहित्य में संसार का सर्वश्रेष्ठ दर्शन, सोच, नैतिक मूल्य, मान्यताएँ, समाज को दिशा देने की जो शक्ति है, संसार के किसी साहित्य में नहीं। हमें बदनाम करने के लिए कथित इतिहासकारों ने ऐसे षडयंत्र किये और सत्ता ने ऐसे जाल बिछाये कि हमारा यह मूल्यवान साहित्य बदनाम हो गया, जनता से कट गया।''

0 0 0

''गणेश शंकर दो दिन से घर नहीं पहुँचा। उसके बारे में कुछ पता है?'' सबसे पहले मैं प्रशांत जी के पास ही गया।

''मुझे क्यों पता होगा? और उस सिरफिरे के बारे में मैं क्यों जानना चाहूँगा...? हाँ, इतना ज़रूर पता है कि वह जिस मुहल्ले में रहता है, वहाँ एक मुसल्लिया उसने पाल रखी है। घर का काम-धाम करती है। खाना बनाकर खिलाती है। सोचकर देखिए, हमारी-आपकी तरह का एक ब्राह्मण... मुसल्लिया ही मिली उसे खाना बनाकर खिलाने वाली...? हिन्दू तो उसके दुश्मन हैं ही, मुहल्ले के मुसलमानों में भी बहुत गुस्सा है उसके प्रति। मार-मूर दिया होगा किसी कटुए ने। उन्हें मारने-काटने में क्या देर लगती

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है? जैसे कलिया काटना, वैसे आदमी काटना! सालों में दया-ममता तो होती नहीं।''

अपनी भड़ास निकालने का जैसे मौक़ा मिल गया प्रशांत जी को, कुछ सोच कर-बोले, ''पुस्तकालय में तलाशिए या फिर उस सेठिया के यहाँ, जिसकी दूकान पर वह नौकरी करता है। हमें उसके बारे में क्यों पता होगा?''

चलने लगा, तो प्रशांत जी बोले, ''रुकिए कॉमरेड! अरसे बाद आप हमारे घर पधारे हैं। ठीक है कि हम मार्क्सवाद को पसंद नहीं करते, पर आप ने जो उस दिन वेणु गोपाल की कविता की तीन पंक्तियाँ सुनायीं, वे दिमाग़ में खुद-सी गयी हैं और उनका अर्थ खोलती आपकी कविता मुझे अतुकांत होते हुए भी नापसंद नहीं रही। कहूँगा, अच्छी ही लगी।''

''इस वक़्त हमारी चिंता गणेश शंकर को ढूँढना है,'' मैंने चलने के लिए क़दम उठाये, तो प्रशांत जी बोले, ''चाय बन कर आ रही है। पीकर ही जा सकेंगे।''

एक मिनट को भीतर वे गये फिर बाहर आये और बैठक में बैठते हुए बोले, ''आपको शायद गणेश शंकर के बारे में बहुत जानकारियाँ नहीं हैं।''

''मैं एक बार अपने शहर के पुराने रिकार्ड की तलाश में उस पुराने पुस्तकालय में गया था। मेरी पहली मुलाक़ात उसी दिन गणेश शंकर से हुई थी। पहली मुलाक़ात में मुझे वह एक अदद ठीकठाक आदमी लगा। कारगिल युद्ध में सिपाही के रूप में लड़ा था। अफ़सरों से नहीं पटती थी। कारगिल युद्ध के बाद बड़े अफ़सर फिर सीमा पर तस्करी और आतंकवादियों की घुसपैठ पैसे लेकर कराने लगे थे, जिसकी उन्होंने शिकायत ऊँचे अफ़सरों से की, तो उनका कोर्टमार्शल किया गया। आरोप लगाये गये। किसी षड़यंत्र के तहत उन्हें भगोड़ा बताकर फ़ौज से बेइज्ज़त करके निकाल दिया। न पेंशन मिलती है, न कोई अन्य नौकरी रिटायर्ड फ़ौजी होने के बावजूद मिली।''

प्रशांत जी को बताया नहीं कि पाश गणेश शंकर का पसंदीदा कवि है। कई कविताएँ उसे ज़बानी याद हैं। उस दिन भी उसने. ... सबसे ख़तरनाक होता है मुर्दा शांति से भर जाना/ न होना तड़प का / सब चुपचाप सहन कर जाना/ ...सबसे ख़तरनाक होता है/ हमारे सपनों का मर जाना... और इसी के साथ उसने पाश के गुस्से के साथ अपनी भड़ास भी जोड़ दी थी... कामरेड। जानते हो, इंदिरा जी की हत्या पर उसने क्या लिखा था?... जिस औरत को मैं जीवन भर नफ़रत करता रहा/ अगर उस औरत के मारे जाने पर/ देश का झंडा झुकाया जाता है तो मेरा नाम उस देश से काट दो.... आख़िर किसी व्यक्ति को अपने नेताओं से इतनी नफ़रत क्यों हो जाती है? इस व्यवस्था से इस क़दर नाराज क्यों हो जाता है?... और इसके बाद उसने अपने बारे में, अपने कोर्टमार्शल और भगोड़ा सिद्ध करके बदनामी के साथ बर्ख़ास्त करने का पूरा घटनाक्रम बताया था। बताते हुए वह क्रोध से काँपने लगा था। उसके दाँत किटकिटाने लगे थे।

पुस्तकालय में उस दिन उसने बहुत बातें की मुझसे, ''आप को अच्छी तरह जानता हूँ। अनेक गोष्ठियों में सुना है आपको। कविता हो या कहानी-उपन्यास... रचनाकार व्यवस्था से ही लड़ने का काम करता है।''

उसके बाद कई बार रेडीमेड वस्त्रों की उस दूकान में गणेश शंकर से भेंट हुई, जहाँ वह नौकरी करता है। सेठ उस पर बहुत भरोसा करता है। शायद इसलिए कि एक बार बदमाशों ने सेठ का अपहरण करना चाहा था, गणेश शंकर उस वक़्त उनके साथ था, अपनी जान की परवाह न करते हुए उनसे भिड़ गया और सेठ को बचा लिया।

''इसकी अंतर्कथा शायद आपको नहीं मालूम...।'' प्रशांत जी मुस्कुराये, ''अपहरणकर्ताओं से उस दिन वह इसलिए भिड़ गया, क्योंकि वे उसके गाँव के ही थे। यमुना-चंबल के बीच बीहड़ में उसका गाँव है नरियापुर... वहीं के बदमाश थे। सेठ के पास आता देख वह सावधान हो गया, क्योंकि उन्हें पहचानता था। सेठ ने उसे उस दिन अपनी सुरक्षा के लिए पिस्टल थमा दी थी। हाथ में बैग थामे थे सेठ जी, उसमें काफ़ी रक़म थी। बैंक जा रहे थे। सरेआम दिन के एक बजे की घटना है यह। दूकान के पास ही बैंक है। दोनों पैदल थे। बाज़ार की भीड़भाड़। बदमाशों ने एकदम अपनी वैन उनकी बगल में अड़ा दी और दरवाज़ा खोल उन्हें भीतर घसीटने लगे। गणेश शंकर फ़ौजी सिपाही रह चुका था, तुरंत उसने फ़ायर झोंक दिये। बदमाश उन्हें छोड़ गाड़ी भगा ले गये।''

चाय आ गयी थी। न चाहते हुए भी पीनी पड़ी।

''इस तरह की घटनाएँ अख़बार में रोज़ छपती हैं, इसलिए कुछ ख़ास ध्यान नहीं दिया,'' मैंने कहा, तो प्रशांत जी बोले, ''मैं भी कहाँ ध्यान देता हूँ? वो तो उस दिन उनकी दूकान से श्रीमती जी बच्चों के लिए कपड़े लेकर निकली थीं। उनके सामने ही यह घटना घटी थी। घर आकर बताया तो पता चला।''

चाय के बाद चलने लगा, तो बोले, ''आपकी तो कई किताबें छपी हैं। एक गीत-संग्रह हमारा भी कहीं से छपवा दीजिए, किसी कॉमरेड के प्रकाशन से ही सही।''

मैं मुस्कुरा दिया, ''आप कॉमरेड के प्रकाशन से छपना चाहेंगे?''

''कहीं से छपे। किताब छपेगी, तो लोग तो जानेंगे। फिर कभी अपने स्थानीय टीवी चैनल पर आप मेरा इंटरव्यू करा दीजिए। लोग जानेंगे कि हम भी कुछ हैं!''

प्रशांत जी ने जिस आज़िज़ी से कहा, अजीब लगा। स्थानीय टी0वी0 समाचार चैनल में मेरा एक पुराना छात्र पार्टनर था और वह मुझे अक्सर किसी न किसी बहाने बुला लिया करता था। गोष्ठियों में भी लोग मुझे अक्सर इसलिए नहीं बुलाते थे कि मैं एक रचनाकार था, बल्कि इसलिए बुलाते थे कि मेरे कारण वह समाचार चैनल गोष्ठी को कवर करने आ जाता था। इसीलिए, अक्सर मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोष्ठी के अंत में बोलने के लिए कहा जाता था, जिससे चैनल पूरे कार्यक्रम की शूटिंग करे।

अंत में, प्रशांत जी ने अपनी छंदबद्ध कविताओं का मोटा रजिस्टर मुझे थमा दिया, "वक़्त निकालकर ज़रा मेरी कविताएँ देखिएगा। इनमें क्या कमी है? तमाम पत्रिकाओं को इनमें से कुछ कविताएँ भेजीं, पर कहीं नहीं छपीं। जबकि एक से एक घटिया कविता अख़बार और पत्रिका वाले छाप देते हैं। समझ में नहीं आ रहा, असली साहित्य को दरकिनार क्यों किया जा रहा है?"

"फ़िलहाल मेरी चिंता गणेश शंकर है," मैंने वह मोटा रजिस्टर उन्हें वापस करते हुए कहा, "जिस हमीद के साथ उसकी अम्मी सईदा मेरे पास आयी थी, वह लड़का मुझे अख़बार और पत्रिकाएँ देता है। यह काम गणेश शंकर ने ही उसे शुरू करवाया था और मेरे लिए भी अख़बार उसी से पहुँचवाता था।"

"अरे मरने दो उस हरामी को यार!" प्रशांत जी फिर कोशिश करने लगे कि मैं उनकी कविताओं का रजिस्टर ले लूँ, "वैसे भी उसके पीछे वी0एच0पी0, शिवसेना और बजरंग दल के हिन्दू संगठन पड़े हैं। उधर दलित लोग भी उसके सख़्त ख़िलाफ़ हैं। वह जहाँ रहता है, उसके घर के सामने एक ख़ाली मैदान है। बरगद का बड़ा पेड़ उस मैदान के बीच में है। हिन्दू संगठन के लोग उस पाकिस्तान में अपने बजरंगबली को स्थापित करना चाहते थे। बरगद के नीचे भव्य मंदिर बनवाते। जहाँ मंदिर की सुकसुक मुहल्ले को लगी कि उन्होंने एतराज़ करना शुरू कर दिया। मुसलमानों की बस्ती में मंदिर क्यों? यह सवाल उठा, तो मुसलमानों को चुप करने के लिए हिन्दुओं ने कहा कि उस मुहल्ले में कुछ हिन्दू भी रहते हैं, गणेश शंकर ब्राह्मण है। मंदिर की देखरेख कर लेगा। गणेश शंकर ने एकदम इन्कार कर दिया तो हिन्दुओं ने दलितों को आगे करना चाहा। पर दलित अपने अंबेडकर की मूर्ति लेकर सामने आ गये कि मंदिर नहीं बनेगा। यहाँ अंबेडकर की मूर्ति लगेगी। मामला प्रशासन तक पहुँचा। कोर्ट ने यथास्थिति का आदेश जारी कर दिया।"

"हाँ, एक बार गणेश शंकर ने यह सब बताया था मुझे," मैंने कहा, "अब उस मैदान में जाड़े की धूप सेंकती है तमाम महिलाएँ। बच्चे खेलते हैं वहाँ। रात को गणेश शंकर अपने घर के बाहर एक बल्ब जलवा देता है, जिससे मुहल्ले के वे गरीब बच्चे आराम से पढ़ते रहते हैं, जिनके घरों में बिजली नहीं है। रात को गरमियों में वे बूढ़े वहाँ आकर सो जाते हैं, जिनके घर बहुत छोटे हैं और बेटे-बहुओं के कारण वे घरों में सोने की जगह नहीं पाते।"

"जब एक-एक मुसल्ला दस-दस औलादें पैदा करेगा तो घरों में जगह कहाँ से आएगी?" प्रशांत जी बोले, "देखना योगेंद्र जी एक दिन इस हिन्दुस्तान पर इन मुसल्लों का फिर राज होगा। आज़ादी के आंदोलन के वक़्त ये लोग यही नारा लगाते थे, "लड़ कर लिया है पाकिस्तान, मर कर लेंगे हिन्दुस्तान।"

"ऐसा नारा तो मैंने कभी सुना नहीं," मैंने प्रतिवाद किया, तो हँसने लगे वे, "आप कहाँ से सुनेंगे! कॉमरेडों को देश भक्त कहाँ दिखायी देते हैं? उन्हें तो ये आतंकवादी ही सही नज़र आते हैं।"

"ग़लत कहते हैं आप," मैं बोला, "हम फ़िरक़ापरस्ती के ख़िलाफ़ हैं, वह चाहे हिन्दू हो या मुसलमान। जाति, धर्म, मज़हब, प्रांत, भाषा... हमारे लिए ये लड़ने-झगड़ने के विषय नहीं हैं। लड़ना है, तो ग़रीबी से लड़ो। सांप्रदायिकता से लड़ो। जातिवाद से लड़ो। अशिक्षा, बेरोज़गारी और प्रदूषण से लड़ो। सड़ी-गली परंपराओं और अंधविश्वासों से लड़ो। विज्ञान और तकनीक का युग है, दक्षता हासिल करो। हम लोग यह लड़ाई लड़ते हैं। और, गणेश शंकर हमें इसलिए बुरा नहीं लगता कि वह उस मुहल्ले में रहकर नगर के सबसे ग़रीब, पिछड़े, दलित और बेसहारा लोगों के बीच रहता है। उनके काम आता है। उनकी जितनी मदद कर सकता है, करता है। नरोत्तम जी कोर्ट में जिलाधिकारी के पी0ए0 हैं। उन्हें पटा रखा है। उनके ज़रिये वह प्रशासन से तमाम मदद इन लोगों की करवा देता है।"

"वह हरामी क्या किसी की मदद करवाएगा? नरोत्तम को कविताओं का शौक है, इसलिए गोष्ठियों में आ जाता है। महारिश्वती और शातिर आदमी है। जिलाधिकारीगण सीधे रिश्वत नहीं लिया करते। अपने पी0ए0 के माध्यम से लेते हैं। सारे सौदे वही पटाया करता है," कुछ रुककर बोले प्रशांत जी, "पुस्तकालय में किताबें-पत्रिकाएँ लेने आता-जाता था, इस कारण गणेश शंकर से परिचय हो गया। जिलाधिकारी से कहकर उस नरोत्तम ने कॉन्वेंट स्कूल में अपनी बीवी को अंग्रेज़ी टीचर बनवा लिया। ज़रा घर जाकर देखिए, सुबह-शाम उसके घर पर अंग्रेज़ी पढ़ने वाले लड़के-लड़कियों का मेला लगा रहता है। शहर क़ा वह कॉन्वेंट स्कूल प्रसिद्ध स्कूल है। हर अच्छे परिवार का व्यक्ति अपने बच्चों को उस स्कूल में पढ़ाना चाहता है। अंग्रेज़ी जैसा विषय, जिसमें आजकल हर कोई पारंगत होना चाहता है, तो स्वाभाविक है कि वहाँ पढ़ने वालों की भीड़ लगेगी।"

"और क्या लोग संस्कृत और हिन्दी का ट्यूशन पढ़ने के लिए भीड़ लगाएँ?" मैं मुस्कुरा दिया। समझ रहा था कि अंग्रेज़ी पढ़ने वालों की भीड़ और होने वाली ट्यूशनों की आमदनी प्रशांत जी को खल रही है, "आपने ग़लती की। हिन्दी में एम0ए0 न करते, अंग्रेज़ी में करते और इंटर कॉलेज में अध्यापक हो जाते, तो ऐसे ही रक़म चीरते।"

"वही तो! साहित्य के चस्के ने ज़िंदगी बर्बाद कर दी," प्रशांत जी ने पश्चात्ताप प्रकट किया, "हमारे कॉलेज में अंग्रेज़ी और गणित, साइंस और बायलॉजी के अध्यापक सबसे ज़्यादा फ़ायदे में रहते हैं। तन्ख़्वाह से चार-पाँच गुना ज़्यादा रक़म ट्यूशनों से बना लेते हैं। आजकल स्कूल-कॉलेजों में कोई पढ़ाता नहीं है। घर पर बैच के बैच सुबह से शाम तक लगे रहते हैं। प्रधानाचार्य को पटाये रखते हैं। मैनेजरों को थामे रहते हैं। बस, कॉलेज आओ या न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आओ, कौन परवाह करता है? दिन-रात घर पर बैच पढ़ाओ।''

''और आप हिन्दी व संस्कृत के अध्यापक, इतिहास और भूगोल के अध्यापक यह देख-देख कर कुढ़ते रहते हैं,'' मैं हँसा।

''कुढ़ेंगे नहीं?'' प्रशांत जी बोले, ''हम हिन्दी-संस्कृत के अध्यापकों को स्कूल-कॉलेज में सब चूतिया मानते हैं, कोई-कोई तो कुबड्ड या अपढ़ तक मान लेता है। सबके सामने हमारा अपमान करने से नहीं चूकते विज्ञान, गणित और अंग्रेज़ी के अध्यापक। कह देते हैं कि अरे इनसे क्या बहस करना! बेचारे हिन्दी वाले हैं। इन्हें दुनिया के बारे में क्या पता। ईसा मसीह का बोला हुआ अंतिम वाक्य चस्पा कर देते हैं हम पर... ईश्वर इन्हें माँफ़ करना! ये नहीं जानते कि ये गोबर गणेश हैं!''

मुझे लगा, प्रशांत जी व्यथा प्रकट करते हुए कहीं रोने न लगें। इस अर्थयुग की कड़वी सचाई को ये भी समझ रहे हैं, पर अब कर क्या सकते हैं? नौकरी तो हिन्दी की ही करनी पड़ेगी और हिन्दी में भी क्या पढ़-लिख रहे हैं? जिस साहित्य को छोड़कर हिन्दी वाले स्वयं बहुत आगे निकल गये हैं, ये क़स्बाई हिन्दी अध्यापक आज भी घनाक्षरी, सोरठा से आगे नहीं बढ़ते हैं। पद्माकर आज भी इनके आदर्श हैं। रस, अलंकार, छंद में प्राण अटके हैं।

इस आर्थिक युग में अपनी निरर्थकता आदमी को कितने गहरे तक सालती है। ज़रा-सा खुरचो, उसके भीतर का गारा-चूना खीस निपोरता दिखायी देने लगता है। प्रशांत जी अकेले इस पीड़ा से ग्रस्त नहीं हैं, तमाम मध्यवर्गीय व्यक्ति ऊपरी आमदनी न कर पाने की विवशता से या तो झल्ला रहे हैं या रिरियाते हुए जो कमा रहे हैं, उन्हें गलियाने लगते हैं। हक़ीक़त का अहसास सब को है, पर ऊपर से अकड़-फूँ बनाये रखकर अपनी दरिद्रता और विवशता ढाँपे रहते हैं।

अचानक मुझे प्रशांत जी बेहद दयनीय नज़र आये। सपनों की मृत्यु, आत्मा का यह ध्वंस, आत्महीनता का यह गहरा बोध इस वर्ग को किस अतल गर्त में दफ़न कर रहा है!

0 0 0

पुस्तकालय की तरफ़ जाते हुए मैं लगातार सोचे जा रहा था, क्यों जा रहा हूँ गणेश शंकर को तलाशने? क्या लगता है वह मेरा? कोई ख़ास जुड़ाव भी नहीं है उससे। फिर हिन्दी दिवस पर जिस तरह वह संयोजक-संचालक की ग़लती के लिए मुझे कोसने लगा था, उससे मुझे भी कहीं गहरे तक़लीफ़ हो रही थी। औरों की तरह मैं ''हा-हा हिन्दी दुर्दशा न देखी जाई'' का महारुदन नहीं करना चाहता था। अंतिम वक़्त था। इसलिए अंत में एक प्रिय कवि को श्रद्धांजलि हिन्दी-दिवस पर देना मुझे सर्वथा उपयुक्त लगा था, इसलिए भी कि ये कठमुल्ले, जिन्हें आधुनिक हिन्दी से कुछ लेना-देना नहीं है, जो अपने लिखे के अलावा कभी कुछ पढ़ते-गुनते नहीं हैं, जिनके यहाँ हिन्दी का एक अख़बार तक नहीं आता, कुछ तो जानें। प्रशांत जी से पूछा था तो बता दिया कि अख़बार पर खर्चा क्यों करें? कॉलेज के पुस्तकालय-वाचनालय में पढ़ लेते हैं। पत्रिकाएँ? जवाब में सिर खुजाने लगे थे। किसी पत्रिका का नाम याद नहीं आया। किताबें ख़रीदने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। कॉलेज के पुस्तकालय तक से कोई कहानी संग्रह, कविता संग्रह या उपन्यास लेकर कभी नहीं पढ़ते। पढ़े-लिखे अगर इतने बुद्धिविरोधी और ज्ञान में दरिद्र होंगे, तो देश का, समाज का क्या होगा?

उधेड़-बुन में लिप्त गणेश शंकर की तलाश में पुस्तकालय की तरफ़ बढ़ता चला गया। वेणु को श्रद्धांजलि देने के लिए उनकी एक छोटी कविता को प्रस्तुत किया था :

जो लोग दिल्ली जा रहे हैं
वे क्या वहाँ भी जाएँगे
जहाँ दिल्ली जा रही है?

श्रोताओं को कविता सुनने पर कुछ ख़ास नहीं लगी, यह अहसास होते ही मैंने अपनी कविता श्रद्धांजलि स्वरूप सामने रखी थी... शायद उस सवाल को स्पष्ट करने के लिए, जो वेणु ने अपनी इन तीन पंक्तियों में देश की मौजूदा स्थितियों पर व्यंग्य करते हुए उठाया था... क्या देश, समाज और सामान्य-जन वहाँ जाएगा या जा सकेगा, जहाँ दिल्ली के रहनुमा दिल्ली को लिए जा रहे हैं?

हरिया दिल्ली जा रहा है/ क्योंकि गाँव में उसका सब कुछ बाढ़ में बह गया है/ नथुआ भी दिल्ली जा रहा है/ क्योंकि पिछले कई सालों से लगातार/ उसकी फ़सलें बर्बाद हो रही हैं और/ वह महाजनों-बैंकों से लिये कर्ज़े चुका नहीं पा रहा है/ दिल्ली क्यों जा रहे हो नत्थू?/ जवाब नहीं देता नत्थू/ उसकी आँखों में खून उतर आता है और/ उसकी मुट्ठियाँ भिंच जाती हैं/ दाँत किटकिटाने लगता है वह/ गुस्से से /हम सब भी दिल्ली जा रहे हैं /पर हम सबके दिल्ली जाने के कारण /अलग-अलग हैं/ सवाल यह है कि हरिया, नथुआ और हम सब/ दिल्ली पहुँचें और हमें वहाँ हमारी वह दिल्ली न मिले तो?/ हमारी दिल्ली को एटमी ज़ंजीर से बाँध/ अपने व्हाइट हाउस की गोल गुम्मद के दरवाज़े पर पालतू बनाकर बाँधे हुए/ व्यंग्य से मंद-मंद मुस्कुराये तो?/ सोचो, हम सब दिल्ली पहुँचें/ और वहाँ हमारी दिल्ली हमें न मिले तो?/ इसलिए दिल्ली जाने से पहले सोचो...

क्यों दी मैंने वेणु को इस कविता से श्रद्धांजलि? क्या सचमुच मैं स्वयं इस दिल्ली से उतना ही क्षुब्ध नहीं हूँ, जितने वेणु या पाश या कोई भी समझदार रचनाकार? संसद में अपनी सरकार बचाने और बहुमत सिद्ध करने के लिए जो नंगानाच किया गया, क्या उससे हम सबका सरकार और व्यवस्था के प्रति मोहभंग नहीं हुआ? वो कौन-सा सांसद था बंगाल का, जिसने व्यंग्य में एक शेर पढ़ा था—''तूफ़ां से क्या बातें हुई प्यारे माँझी यह बतलाना/ दरिया को गिरवी रखा है या साहिल को भी बेच दिया....?'' क्या हम इन डीलरों के फ़रेब से बच पाएँगे? लीडर कहाँ हैं अब दिल्ली में? सबके सब डीलर हैं।

पुस्तकालय बंद था। रेडीमेड वस्त्र भंडार की तरफ़ बढ़ गया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ गणेश शंकर नौकरी करता है। सेठ विशुनचंद अपनी भारी-भरकम काया लिए गद्दी पर लुढ़के-से पड़े थे। शायद मुझे पहचानते थे या गणेश शंकर ने उन्हें मेरे बारे में कुछ बता रखा था। ठीक से बैठ अपनी बगल में गद्दी को झाड़ा और मुझे बैठने को आमंत्रित किया। "कैसे तक़लीफ़ की...?" उनका सवाल था।

"गणेश शंकर अपने घर दो दिन से नहीं पहुँचा। पुस्तकालय भी बंद है," उनकी तरफ़ देखते हुए पूछा।

"यह पहली बार हुआ है कि गणेश शंकर मुझे बिना बताये कहीं ग़ायब हो गया। वैसे वह बहुत ज़िम्मेदार व्यक्ति है। ऐसा कभी किया नहीं उसने। मुहल्ले में तलाशा?" सेठ बिशुनचंद ने उल्टे मुझसे पूछा।

"सईदा नाम की मुसलमान महिला उसके घर में झाड़ू-पोंछा और खाना बनाने का काम करती है। अपने हॉकर बेटे हमीद के साथ आयी थी। उसी ने बताया था।"

"उसी मुहल्ले में नलों का एक फ़िटर रहता है, रहमान। सड़क पर छोटी-मोटी दूकान कर रखी है। उसका लड़का है परवेज़। यहाँ के डिग्री कॉलेज में पढ़ता है। दोनों में बहुत घुटती है। अक्सर पुस्तकालय में गणेश शंकर के पास बैठा रहता है या फिर यहाँ दोपहर को आ जाता है, जब बाज़ार का काम हल्का रहता है। पता नहीं दोनों किन समस्याओं पर बतियाते रहते हैं, पर बातों से लगता है कि दोनों में गहरी दोस्ती और आपसी समझ अच्छी है। रहमान से दूकान पर जाकर परवेज़ का पता-ठिकाना पूछो। उससे कुछ पता चलेगा, कहाँ ग़ायब हैं।"

"मुसलमान महिला सईदा ने परवेज़ के बारे में क्यों नहीं बताया?" सेठ जी से पूछा, तो सेठ जी सोच में पड़े रहे कुछ देर, फिर बोले, "मुहल्ला ग़रीब मुसलमानों का है। आप तो जानते हैं कि जो जितना कम पढ़ा-लिखा होगा और ग़रीब होगा, वह उतना ही अधिक कठमुल्ला होगा। मुहल्ले में परवेज़ से पूछती, तो पचास तरह की बातें होतीं। औरत की जात, समाज और मज़हब का डर रहा होगा। वैसे भी गणेश शंकर को लोग वहाँ हमेशा शक की नज़र से देखते हैं। मुसलमानों को वह मुख़बिर नज़र आता है या काफ़िर और हिन्दुओं को हरामी। दलित भी उसे पसंद नहीं करते, क्योंकि चबूतरे पर उसने अंबेडकर की मूर्ति नहीं लगने दी। कोर्ट से स्टे ले लिया।"

"स्टे में जिलाधिकारी के पी0ए0 नरोत्तम जी की सहायता लीं होगी?" मैंने पूछा तो मुस्कुराये, "हाँ, उन्हीं ने एक सस्ता वकील करवा दिया और मजिस्ट्रेट से कहकर स्टे दिलवा दिया। हालाँकि मैंने उसे हटका था... मंदिर बन जाने दो! क्यों बहुसंख्यक हिन्दुओं से बैर लेते हो? तो बोला, 'मंदिर नहीं बनेगा, झगड़े-टंटे की जड़ जम जायेगी। वही पूरे शहर में एक-मात्र जगह है मंदिर के लिए? तमाम ज़मीनें शहर में खाली पड़ी हैं। कहीं बना लें। ज़रूरी है, जहाँ 90 प्रतिशत मुसलमान रहते हैं, उनकी छाती पर मंदिर बना दिया जाए।"

फिर गणेश शंकर के बारे में बहुत कुछ बताते रहे। उसका पारपट्टी का गाँव नरियापुर। उसके पिता की दुश्मनियाँ। हत्या। माँ की बोटी- बोटी काटा जाना और चंबल में मगरमच्छों को खिला देना। ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लेना।

"गणेश शंकर तो सेना में था। सैनिक होकर अपने घर की और माँ-बाप की रक्षा नहीं कर पाया? देश की और समाज की क्या रक्षा करता रहा होगा?" मैंने शंका प्रकट की।

"यमुना-चंबल के बीहड़ में डाकुओं का राज चलता है, यह तो आप भी जानते हैं। जब जिस जाति का डाकू दल दबंग हो जाता है, उसकी बंदूक ही बोलने लगती है। उसकी जाति के लोग भुलभुल मूतने लगते हैं। दूसरों को जीने नहीं देते।"

यमुना चंबल के बीहड़ों में गाँव के ग़रीब बामनों-ठाकुरों का जीवन में एक ही सपना होता है... बेटा किसी तरह फ़ौज में आ जाए। ज़्यादातर लड़के उस क्षेत्र के फ़ौज में या पुलिस में हैं। गणेश शंकर के पिता बारह बीघा के एक मामूली किसान। फ़सल बरसात पर या फिर प्राइवेट ट्यूबैल पर निर्भर। पानी मिल गया तो फ़सल हो गयी, नहीं तो खाद-बीज का ख़र्चा भी निकालना मुश्किल। ऐसे में यह सपना कि उनका एकमात्र पुत्र गणेश शंकर किसी तरह फ़ौज में भर्ती हो जाये, तो परिवार की रोज़ी-रोटी चलने लगे।

पुराने फ़ौजियों से सीगा भिड़ाया। अफ़सर दलाल से बात हुई। चार लाख में सौदा पटा। बिना रिश्वत के तो इस देश में लड़के जान देने की नौकरी भी नहीं पाते। आठ बीघा ज़मीन रह गयी थी। बेटा फ़ौज में लग गया, तो पगार से रुपये भेजने लगा। क्षेत्र में एक प्रकार से मनीऑर्डर अर्थव्यवस्था चलती है। जिनके बेटे बाहर नौकरी पर लग जाते हैं, उनके घरों में रोटी-दाल का हिल्ला हो जाता है, वरना फटेहाल ग़रीबी में दिन काटने पड़ते हैं।

गूजर डाकू एकाएक क्षेत्र में ताक़तवर हो गया। बामन डाकू को मौक़ा पाकर उसने मार दिया। ठाकुर डकैत क्षेत्र छोड़कर भिंड-मुरैना से शिवपुरी की तरफ़ निकल गये। कुछ जालौन की तरफ़। पूरा क्षेत्र गूजर डाकू के रहमोकरम पर रहने लगा, तो बामनों पर उसका आतंक बढ़ गया। बहू-बेटियों को जबरन उठवा लेना, बलात्कार करना, अपनी रखैलें बनाना। जी भर जाने पर हत्या कर यमुना या चंबल में बहा देना अथवा मुंबई-दिल्ली के दलालों को बेच पैसे सीधे कर लेना। क्षेत्र में अवैध हथियारों का कारोबार, शराब के और दूसरे नशे के साधन मुहैया कराना। अपहरण, फिरौती, लूटमार, सुपारी लेकर हत्याएँ करना। पुलिस और समाज पर अपनी रंगबाज़ी दिखाने के लिए मंदिरों पर झंडे-घंटे ऐलान करके चढ़ाना, भंडारे करवाकर क्षेत्र की जनता को भोजन कराना। वाह-वाही लूटकर अच्छी छवि बनाना। इन बाग़ियों-डाकुओं का अपनी तरह का अर्थशास्त्र चलता है उस क्षेत्र में।

गणेश शंकर के पिता की ज़मीन पर गूजर डाकू के एक ख़ास दबंग की नज़र टिक गयी। पहले तो उसी ने कहा, "तुम्हारा बेटा नौकरी से लग गया। तुम बूढ़े हो गये। खेती-बारी बस की नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही। हमें दे दो खेत अपना।''

डरे-सहमे बाप ने दबी ज़बान मना कर दिया, ''दो बखत की रोटी तो निकल ही आती है खेत से।''

बात न मानने पर एक दिन डाकू उठा ले गये पिता को। भाग न पाएँ, इसके लिए उनके हाथ-पैरों की उँगलियों के नाख़ून प्लास से खींच लिये। पैरों में छुरे से घाव बना दिये। मार-मार कर हड्डी-पसली एक कर दी। दबाव डाला गया, ज़मीन उसके नाम मुफ़्त में लिख दें। तैयार नहीं हुए, तो रोज़ तो उनकी धुनायी हुई। ज़ंजीर बाँधकर अड्डे पर रखते। सारे काम उन्हीं से कराते। खाना बनवाना, पैर दबवाना, अड्डे बदलने पर सारा सामान लाद कर चलना, चल न पाना तो लात-जूतों से पिटना।

गणेश शंकर को पता चला, तो भागा-भागा आया। तहसीलदार, एस0एस0पी0, जिलाधिकारी से मिला। पर अफ़सर जायज़ बात इस देश में सुनते कहाँ हैं? पुलिस ने कह दिया, ''बाप को छुड़ाने के दस लाख दो, वरना मरने दो साले को!''

इतनी बड़ी रक़म खेत बेचकर ही पा सकता था गणेश शंकर, पर उस खेत पर डाकू के गुर्गे ने ज़बरन कब्ज़ा कर लिया था। काग़जात लिये लेखपाल और तहसीलदार के पास चक्कर लगाता रहा गणेश शंकर, पर किसी के कानों पर जूँ न रेंगी।

आख़िर एक दिन बाप की लाश डाकू गणेश शंकर के दरवाज़े पर डाल गये। तीन-चार दिन बाद माँ को उठा ले गये और बोटी-बोटी काटकर चंबल के मगरमच्छों को खिला दी। घर को आग लगा कर भस्म कर दिया।

''बंदूक़ तो थी ही उस पर। बाग़ी क्यों नहीं बन गया?'' सेठ ही से पूछा।

''नौकरी से लगा आदमी मन से कमज़ोर हो जाता है,'' वे बोले, ''वह नौकरी से चिपके रहना चाहता है। किसी क़ीमत पर उसे खोना नहीं चाहता... फिर ऐसी नौकरी जिसे पाने की ऐवज़ उसके पिता को चार लाख ख़र्चने पड़े हों। मजबूरन रोकर रह गया गणेश शंकर।''

''फ़ौज में भी उसकी बड़े अफ़सरों से नहीं पटी?'' मैंने पूछा तो वे बोले, ''कैसे पटती? देश के रक्षकों को उसने भक्षक बनते देखा, तो बड़े अफ़सरों से शिकायत कर दी। नतीजा हुआ, न घर का रहा, न घाट का। फ़ौज से बेइज़्ज़त करके निकाल दिया गया। रिटायर्ड फ़ौजी को जो सुविधाएँ मिलती हैं, वे भी नहीं मिलीं।''

0 0 0

''मुसलमान औरत तुम्हारे लिए खाना बनाती है। शादी क्यों नहीं की? नौकरी में लग गये थे, माँ-बाप ने शादी नहीं करायी....?'' एक बार पुस्तकालय में गणेश शंकर से पूछा था।

''पुस्तकालय सिर्फ़ शाम को खुलता है। गिने-चुने पाठक आते हैं। बहुत मामूली आमदनी है इसकी इसलिए तनखा भी न के बराबर मिलती है। पढ़ने का शौक है, इसलिए पुस्तकालय से जुड़ा हूँ। अख़बार, पत्रिकाएँ, किताबें ही नहीं, शहर के बुद्धिजीवियों और पाठकों से भी इस बहाने जुड़ा रहता हूँ।... पर आप तो जानते हैं, सिर्फ़ पढ़ने के शौक से आदमी का पेट तो नहीं भर सकता। उसके लिए सेठ की दूकान पर काम करता हूँ। सेठ ने इसलिए नौकरी दी, क्योंकि उसका नाम शहर के पैसे वालों में है। बदमाशों की हिटलिस्ट में रहते हैं। अपहरण के मामले दिनोंदिन शहर में बढ़ते जा रहे हैं। डाकुओं के लिए पैसे वाले सॉफ़्ट टारगेट हैं। इनकी पकड़ वे अपने सफ़ेदपोश उन अपराधियों से करवाते हैं, जो इनके बीच घुले-मिले होते हैं। इन्हें बहला-फुसलाकर अपने साथ कहीं लिवा ले जाते हैं, फिर डाकुओं को सौंप देते हैं। बदले में इन्हें इनका कमीशन मिल जाता है। यह खेल यहाँ के शहरों-क़स्बों में पुलिस के संरक्षण में और नेताओं की देखरेख में निर्बाध चलता रहता है। सबका कमीशन बँधा हुआ है। अपराध की इस दुनिया से नये लड़के पैसे के लालच में जुड़ते हैं। सबको मोटरसाइकिलें चाहिए, मोबाइल चाहिए, शराबें, लड़कियाँ और ऐशो-आराम चाहिए। यह कहाँ से आए? इसका आसान ज़रिया बन गया है इन जगहों पर अपराध! हर कोई इसकी तरफ़ खिंचता आ रहा है और माँ-बाप इसलिए नहीं रोकते, क्योंकि उनके मुँह भी पैसे का ख़ून लग जाता है।

''इन क़स्बों-शहरों में रहने वाला हर व्यक्ति इस सत्य से वाक़िफ़ है। नौजवान लड़के जिस तरह लुंपेनों की फ़ौज में बदलते जा रहे हैं, समाज भी देख रहा है और हम सब लोग भी। हर कोई पैसा कमाने की आसान जुगत में लगा हुआ है, भले उसके लिए कुछ भी क्यों न करना पड़े। दिल्ली, अहमदाबाद, बंगलूर, जयपुर से लेकर उ0प्र0 के अनेक शहरों को बमों के धमाकों से दहलाने वाले लड़कों-नौजवानों को कैसे तैयार किया जा रहा है, यह सारा देश जानता है। हवाला के ज़रिये आ रहे धन ने और अबू सलेम जैसे आलीशान ज़िंदगी जीने वाले डॉनों ने इन लड़कों की आँखें चौंधिया दी हैं। सब उस आसान तरीक़े को अपनाकर मोस्ट वांटेड का गौरव प्राप्त करना चाहते हैं। ज़्यादा से ज़्यादा लोग मरें, तड़पें, लाशों के चीथड़े हवा में उड़ें, लोग विलाप करें, रोयें-चीख़ें, अख़बार दहशत से भरे हों, भय और आतंक से हर कोई सहमा-सहमा जिये, पुलिस नाकारा सिद्ध हो, सरकार असहाय और पंगु बनी रहे, यह इन लोगों का उद्देश्य होता है। एक दिन ये डॉन दाऊद, शकील या अबू सलेम जैसे नामी-गिरामी हो जाएँगे और फ़ोन लगाते ही लोग मन चाहा पैसा लेकर देने चले आएँगे... यह रुतबा होगा! पुलिस पालतू होगी। नेता वोट के लालच में इन्हें संरक्षण देंगे। सरकारें इनके पकड़ने और कोर्ट में मुक़द्दमा चलाने का ढोंग करेंगी। जल्दी से ये छूट जाएँगे। बाइज़्ज़त बरी होने के लिए ये चुनाव लड़ेंगे। हर पार्टी इन्हें जिताऊ प्रत्याशी मानकर अपने दल का टिकट देगी। सरकार बनेगी, तो ये मंत्री बन जाएँगे और देश पर अपने आतंक का राज कायम करेंगे... कितना आसान रास्ता है, नाम और नामा कमाने का, सत्ता और अधिकार पाने का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सोचने वाले सोचते रहते हैं पर देश को इस ध्वंस से बचाने के लिए कोई आगे नहीं आता। हर कोई दूसरे में दोष ढूँढता है। हम नहीं, वे ज़िम्मेदार हैं इस ध्वंस के लिए, जबकि सच यह है कि हम सब, हमारे भीतर बैठा लोभ-लालच, नाम और नामा कमाने की हवस, इस सारे ध्वंस की ज़िम्मेदार है।

"सेठ जी को बताया कि मैं फ़ौज में रहा हूँ। अच्छा निशानेबाज़ हूँ। उन जैसे नामी-गिरामी पैसे वाले की सुरक्षा के लिए ज़रूरी हूँ, तो उनकी समझ में आ गया और मेरे बारे में सारी जानकारी करने के बाद उन्होंने नौकरी पर रख लिया। एक तरह से उनका अंगरक्षक हूँ। दिखाने को उनकी दूकान पर नौकरी करता हूँ," गणेश शंकर ने बताया था।

"मेरे सवाल का जवाब नहीं दिया। शादी क्यों नहीं की?" गणेश शंकर से पूछा।

"गाँव में कुछ रह नहीं गया। रिश्तेदारों ने परिवार की बर्बादी और मेरी फ़ौज से बर्ख़ास्तगी सुनी तो पीछे हट गये। फिर बीहड़ों में अभी डाकुओं का सिक्का चलता है। उस क्षेत्र के लड़के को कौन अपनी लड़की देकर उसकी ज़िंदगी दाँव पर लगाए? उम्र निकल गयी, तो मेरे मन में भी शादी को लेकर कोई उत्साह नहीं रह गया," वह जिस तरह खिसियानी हँसी हँसा उससे उस पर दया आयी।"

अब इस मुहल्ले के ग़रीब-बेसहारा लोगों के लिए ज़ितना कर सकता हूँ, करके संतोष पाता हूँ।"

गणेश शंकर इस मुहल्ले में कैसे रहता होगा? नाक पर रुमाल रखना पड़ा। नालियों का कीचड़ गली में बह रहा था। गोबर, सूअरों की गंदगी चारों ओर बिखरी हुई थी। नाले में बजबजाता स्याह पानी दुर्गंध और मच्छरों की फ़ौज के साथ बह रहा था। लगभग सारे मकान उसी नाले के किनारे-किनारे थे। ज़्यादातर झोंपड़ीनुमा, कच्चे या आधे कच्चे, आधे पक्के। सबके दरवाज़े बहुत नीचे। टूटे, लचर-पचर। कुछ के दरवाज़ों पर फटे टाट के पर्दे। बकरियाँ, सूअर, आवारा कुत्ते, मच्छर-मक्खी, बदबू, गंदगी। हर दरवाज़े में टूटी झंगोला खाटों पर बैठे बूढ़े या बूढ़ियाँ। रिरियाते-खेलते बच्चे। एकमात्र गणेश शंकर के घर के सामने ही चबूतरेनुमा मैदान था, जिसके बीचोंबीच बरगद का पेड़ था और उसके नीचे मुहल्ले की बकरियाँ बँधी थीं या बच्चे खेल रहे थे।

"तुम्हारा ही नाम परवेज़ है?" एक मामूली से घर के नीले दरवाज़े में खड़े युवक से पूछा।

"जी सर!" वह सावधान हो नमस्कार कर बोला, "आप इधर कैसे सर?"

"गणेश शंकर के बारे में जानने आया हूँ," मैंने कहा तो परवेज़ को अचरज हुआ।

"अगर आप असुविधा न अनुभव करें, तो भीतर घर में आएँ सर," परवेज़ बोला, "गणेश भाई मेरे एक तरह से बड़े भाई जैसे हैं। बहुत मानता हूँ उन्हें। दो-तीन दिन से इधर दिखे नहीं। सोचा, कहीं गये होंगे। कोई ख़ास बात...?"

"कुछ नहीं। पुस्तकालय गया था, वहाँ दो दिन से नहीं पहुँचे। सेठ की दूकान पर भी तलाशा। वहाँ भी नहीं आ रहे दो दिन से। असल में एक किताब की ज़रूरत थी," बहाना बनाया। सईदा का नाम नहीं लिया। क्यों किसी इज़्ज़तदार महिला को रुसवा किया जाए?

"आप बैठें सर। सईदा से पूछते हैं। उसे बता कर गये होंगे। उनके घर की चाबी उसी के पास रहती है। एक तरह से उनकी देखरेख करती है। सईदा के लड़के हमीद को एक तरह से गोद-सा ले रखा है उन्होंने। उसके सारे खाना-ख़र्चे, पढ़ाई-लिखाई, कपड़े-लत्ते का वही प्रबंध करते हैं।"

"और हमीद की अम्मी सईदा कुछ नहीं करती?" चालाकी से सवाल पूछा।

"करती है। गणेश भाई के घर के सारे काम, खाना बनाना वगैरह। वैसे वह साड़ियों में फ़ॉल लगाना, ब्लाउज़ों में हुक टाँकना, कमीज़ में काज-बटन... दर्ज़ियों से काम माँग लाती है। जब तक रोशनी रहती है, अपने घर में करती है। अँधेरा होने पर गणेश भाई के दरवाज़े पर जलते बल्ब के नीचे बैठकर काम करती है। वहीं हमीद पढ़ता रहता है। मुहल्ले के और लड़के भी पढ़ते-लिखते हैं," परवेज़ ख़ुद ही बताता रहा।

"सईदा के हस्बेंड...?" परवेज़ डिग्री कॉलेज में इतिहास में एम0ए0 कर रहा था, यह पता चल गया था, इसलिए अंग्रेज़ी शब्द का इस्तेमाल आसान लगा।

"वह एक ट्रेजेडी है सर...। बैठिए, ऐतराज न हो तो चाय बनवाते हैं सर। आप जैसे नामी-गिरामी लोग इस मुहल्ले में आ जाएँ, यही अचरज की बात है सर। आपको अरसे से जानता हूँ। हसरत है आप से बातें करने की," वह उत्साह में था।

"हमीद के अब्बा मोहम्मद शाकिर पहले शहर में इक्का चलाते थे। मुख्य बाज़ार से स्टेशन, स्टेशन से मुख्य बाजार, मुख्य बाज़ार से कचहरी, कचहरी से मुख्य बाज़ार या स्टेशन। बीस-पच्चीस चक्कर लग जाते। बाल-बच्चों की रोटी आसानी से निकल आती, पर अचानक बदलाव की हवा चली। नगरपालिका को सनक सवार हुई, इक्कों में जुड़े घोड़े सड़कें गंदी करते हैं। इक्के बंद कर दिये गये। अब क्या हो?

"शाकिर ने रिक्शा किराये पर लिया, तो सईदा उससे लड़ पड़ी, "घोड़े की जगह ख़ुद जुतोगे रिक्शे में? यह भी कोई सवारी है ससुरी? आदमी, आदमी को खैंचे। न! हमें नहीं चाहिए ऐसे काम।"

"हमीद के अब्बू मायूस होकर बोले, "भागवान तुझे और बच्चों को क्या ज़हर लाकर खिलाएँ? हमीद के बाद एक बिटिया पैदा हो गयी गुल्लो... पैसा कहाँ से आएगा, आसमान से बरसेगा क्या?"

"बात सईदा की समझ में आयी। औरत ने बच्चों की ख़ातिर हमीद के अब्बू को रिक्शे में घोड़े की जगह जुतते देखा, सहा कलेजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर पत्थर रखकर, जाने दिया। दिन में आठ-दस घंटे और मेले तमाशों व देवी के दिनों में या सावन के महीने में कालीवाहन और नीलकंठ मंदिरों के चक्कर लगाते हुए बारह-पंद्रह घंटे भी रिक्शा चलाते। वैसे इस मुहल्ले में ज़्यादातर ऐसे ही मरे-टूटे लोग रहते हैं। कोई सड़क पर फड़ बिछाकर सब्जी बेचता है। कोई मुहल्लों में ठिकाना तलाशकर कपड़ों पर प्रेस करता है। कोई नल फ़िटर है, तो कोई जूतों की मरम्मत करने वाला मोची। कोई फेरी लगाकर मूँगफली बेचता है, कोई ब्रेड-बिस्कुट। सब्ज़ी और फलों की ठेल लगाकर पूरे शहर में फेरी लगाने वाले अधिकतर इसी मुहल्ले के लोग हैं। मिल जाती है, तो किसी ठेकेदार या राज-मिस्त्री के साथ लगकर मकान या मरम्मत की मजूरी कर लेते हैं। हैंडपंप लगाने वाले, बिजली का काम करने वाले, कबाड़ वाले, रद्दी इकट्ठा करने वाले ज़्यादातर लड़के इसी मुहल्ले में हैं। कुम्हारों को पहले काम की कमी नहीं थी। अब फ्रिज आ गये। दीवाली पर लोग बिजली की चाइनीज़ झालरें लगाने लगे, बहुत हुआ मोमबत्ती जला लीं, उनका काम-धंधा चौपट।

"बेरोज़गारी, ग़रीबी, अशिक्षा, बीमारियाँ, सरकारी अस्पतालों में इलाज की कमियाँ, इस मुहल्ले और इस जैसे मुहल्लों में पीने के साफ़ पानी का संकट। बिजली की क़िल्लत। सफ़ाई की कमी। गली का खरंजा तक न होना। बरसात में पूरी गली कीचड़ की बजबजाती नाली में बदल जाना, घरों में पानी के साथ गंदगी का घुस आना, कीड़े-मकोड़े। यह सब यहाँ के बदनसीब लोगों को सहना पड़ता है, क्यों? क्योंकि यहाँ के लोगों में पैसे की ताक़त नहीं है। वे सिर्फ़ वोटदाता हैं। नेताओं को उनके वोट चाहिए। उन्हें सुविधाएँ देनी हैं, रोज़गार देने हैं, आमदनी के ज़रिये मजबूत करने हैं, इन बातों से उनका कोई सरोकार नहीं है। वोटों के दबंग लोग ठेकेदार हैं। अव्वल तो हमें वोट डालने नहीं दिया जाता, डालते हैं, तो निश्चित व्यक्ति को ही देने पड़ते हैं।

"काग़ज़ की थैलियों की जगह प्लास्टिक की थैलियाँ आ गयी। डब्बू-सरवों की जगह प्लास्टिक के दोने और गिलास आ गये। पत्तलों की जगह प्लास्टिक की प्लेटें। पुश्तैनी धंधे चौपट होते गये। रोज़ी-रोटी से लोग बेदख़ल होते गये।

"मई-जून की भराभर दोपहरी। हमीद के अब्बू शाकिर को तेज़ बुखार, फिर भी रिक्शा लेकर चल दिये बाज़ार। सवारी मिल गयी, तो स्टेशन या कचहरी। सईदा हड़बड़ाई हुई बाहर निकली, "तेज़ बुखार में तप रहे हो। भरी दोपहर कहाँ चल दिये?"

"दो-तीन चक्कर लगा आऊँ स्टेशन तक के। जुलाई आ रही है। हमीद का स्कूल में दाख़िला कराना है। किताब-कापियाँ, फ़ीस, मास्टर.... पढ़ाई बहुत महँगी हो गयी है। पैसा कहाँ से आएगा?"

"नहीं जाने दूँगी। कुछ दिन आराम कर लो। टकर-टकर हिल रहे हो। रिक्शा चलेगा तुम से?"

पर सईदा की बात अनसुनी कर दी शाकिर ने। स्टेशन से किसी सरकारी दफ़्तर की सवारियाँ मिली थीं। सवारियों को शायद बहुत जल्दी थी। लेकर चला शाकिर, तो गालियाँ देने लगे, "हरामी की औलाद। रिक्शा खिंचता नहीं है, तो चलाता क्यों है? घर क्यों नहीं बैठता? हमारा टैम ख़राब करता है।"

तेज़ी से उतरे रिक्शे से और दस-पाँच लात-घूँसे, थप्पड़-तमाचे दनादन जड़ दिये। टंपू आ गया। सब टंपू में बैठे और चले गये। शाकिर को रिक्शा चलाते वक़्त पता नहीं था कि एक दिन रिक्शे वालों का निवाला छीनने टंपू सड़कों पर आ जाएँगे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि सरकारें रोटी देने की बजाय रोटी छीनने के तरीक़े क्यों ईजाद करती हैं? ग़रीबी दूर करने के नारे देकर ग़रीबों को ही क्यों अपनी ज़मीनों-रोज़गारों से उखाड़ती हैं? ऊपर से तुर्रा यह कि देश तरक़्क़ी कर रहा है। अर्थ-व्यवस्था मज़बूत हो रही है। सेंसेक्स उछालें मार रहा है। हमीद के अब्बू यह कभी नहीं समझ पाये कि आदमी को कमजोर करके देश की अर्थव्यवस्था किस गणित से मज़बूत होती है? आदमी को उजाड़कर आदमियों का मुल्क कैसे बढ़ सकता है?

"शाम को घर नहीं लौटे शाकिर। सईदा ने मुझे और मुहल्ले के दूसरे लोगों को साथ लिया और उनकी खोज-ख़बर में निकली, पर कहीं नहीं मिले। पुलिस में रपट कराने गयी तो भगा दिया। 'हरामी भाग गया होगा किसी दूसरी लुगाई के साथ। या फिर नशेड़ियों के साथ कहीं पिनक में पड़ा होगा। पुलिस क्या रिक्शे वालों को ही खोजती फिरे? और कोई काम नहीं है पुलिस को?'

"सड़क पर पड़ा था शाकिर बेसुध तपती दोपहर में। रिक्शा कोई भगा ले गया। मुँह से ख़ून की धार मची हुई थी। वहीं से निकल रहा था अपनी साइकिल से गणेश शंकर। साँसें चल रही थीं, पर ख़ून बंद नहीं था। किसी तरह अपनी सइकिल पर लादकर अस्पताल ले गया। डॉक्टरों ने जनरल वार्ड में ले जाने को कहा। टट्टी-पेशाब और ख़ून के गंदे दाग़ों से गँधाता बिस्तर। एक खजुआ कुत्ता बिस्तर पर बैठा था। उसे भगा उस पर लिटाया। बेहोश हो चुका था। नाम-पता कुछ मालूम न था। डॉक्टरों की चिरौरी करता रहा, देख लें। इलाज कर दें। पर किसी ने नहीं सुनी।

"दूसरे दिन पहुँचा गणेश शंकर तो डॉक्टरों ने बताया, मर गया। शवगृह में पड़ा है। ले जाओ, अन्यथा लावारिस लाश पुलिस को सौंप दी जाएगी। यमुना में बहा देंगे। पता नहीं हिन्दू है या मुसलमान।"

0 0 0

कुछ दिनों बाद परवेज़ पुस्तकालय में आया था। गणेश शंकर से हमीद और उसके अब्बू का ज़िक्र किया। सहसा गणेश शंकर को याद आ गया। परवेज़ के साथ सईदा के पास पहुँचा, हुलिया बताया। सूचना दी, अस्पताल में ले गया। बेहोश था, इसलिए नाम-पता नहीं पता चला। अब अस्पताल भागे। डाक्टरों ने अनभिज्ञता जतायी। किसी कंपाउंडर ने बताया, 'भयंकर टी0बी0 थी। लात-घूँसों की कहीं अंदरूनी चोट लगी थी। फेंफड़े फट गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँह से खून उगलता रहा। ग़िज़ा खिलाती नहीं हो। ऊपर से रिक्शा चलवाती हो। आदमी को बैल बनाकर इस्तेमाल करोगी, तो मरेगा नहीं-तो जिएगा क्या?'

लाश शवगृह में नहीं थी। पुलिस ने लावारिसों की तरह यमुना में फिंकवा दिया। दाह-संस्कार के जो मामूली रुपये मिलते हैं, वे अपनी जेब में रख लिये और ज़बरन किसी रिक्शेवाले को लाश सौंप दी कि नदी में डाल आए।

दो भाई-बहन, बेवा माँ और अँधी बूढ़ी दादी। इन सबका भार आ गया हमीद और सईदा पर। गणेश शंकर के पुस्तकालय में जो अख़बार देने आता था, उससे बात की। हमीद को हॉकरी के काम पर लगवा दिया। सईदा ने ही किराये पर वह घर गणेश शंकर को दिलवाया। गणेश ने हॉकरी के लिए सुबह अपनी साइकिल हमीद को दे दी। चौका-बर्तन सईदा ने सँभाल लिया। खाली वक़्त में काग़ज़ की थैलियाँ बनाती। पूरा घर लगा रहता। अख़बारों की रद्दी हमीद ख़रीद कर लाता। सईदा काटती। हमीद और गुल्लो लेई से चिपकाते। पर, जल्दी ही वह काम बंद हो गया। प्लास्टिक की पिन्नियों ने अख़बारी काग़ज़ों की थैलियों का बिकना कम कर दिया, फिर बंद। सईदा ने टेलरों से फ़ॉल लगाने, बटन टाँकने, काज बनाने, हुक लगाने के काम पकड़े, पर उनसे पेट नहीं भरता था। गणेश शंकर से कहा तो उसने कुछ सोच कर हमीद का सारा खर्च स्वयं उठा लिया, हालाँकि गणेश शंकर की ख़ुद की हालत अच्छी नहीं थी।

सईदा ने एक टेलर की दूकान पर हमीद को टेलरी सिखाने के लिए किसी तरह रिरियाकर लगवा दिया। टेलर मास्टर बब्बन मियाँ ने उसे इस शर्त पर रखा कि काम सिखाने के लिए कोई तनखा नहीं देगा। तीन साल लगेंगे टेलरी सीखने में। दूकान में झाड़ू लगाना। साफ़-सफ़ाई करना। सिले कपड़े बताये पते पर पहुँचाना। हैंडपंप से पानी भरकर लाना। कपड़ों पर इस्त्री करना... पढ़ाई छूट गयी हमीद की। पेट भरे कि पढ़े? फिर भी गणेश शंकर उसे पढ़ने के लिए प्रेरित करता। किताब-कापियों का इंतज़ाम करता। कच्चे घर में बिजली नहीं थी। मकान के बाहर बल्ब लगा मुहल्ले के हमीद जैसे लड़कों को पढ़ने के लिए बुलाता। ख़ुद उन्हें पढ़ने में मदद करता।

तीन साल किसी तरह निकल गये। हमीद को टेलरी आ गयी, तो गणेश शंकर ने सेठ जी से कुछ उधार दिलवा कर एक लकड़ी का खोखा दिलवाया। एक ठीक-सी जगह देखकर उसकी दूकान खुलवायी। उद्घाटन बब्बन मियाँ ने किया। ऊपर बोर्ड लगवाया—'हमीद टेलर्स!' बहुत ख़ुश थी सईदा और हमीद भी। गणेश शंकर भी। आमदनी से सेठ का पैसा हर महीने वापस देना तय हुआ।

तभी शहर में अतिक्रमण हटाने का अभियान चल पड़ा। नगरपालिका कर्मचारियों के साथ पुलिस भी आ गयी, "अपना खोखा यहाँ से कल तक हटाओ, वरना महाबली क्रेन लगा कर हम इसे उठा ले जाएँगे और नगरपालिका के चक्कर लगाते रह जाओगे, मिलेगा नहीं।"

"हम कहाँ दुकान लगाएँ सा'ब...?" हमीद का गला ख़ुश्क हो गया।

"जहन्नुम में!" उसका जवाब था, "हमें इससे क्या मतलब? हमें हुक्म हुआ है, शहर के अवैध कब्जे हटाओ, हम हटा रहे हैं। शहर को सुंदर बनाना है।"

"आपको यह हुक्म कभी नहीं हुआ सा'ब कि ग़रीब को रोटी और रोज़गार देना है, लो हम देने आये हैं," हमीद ने कहा तो पुलिस वाले ने डंडे जड़ दिये उसकी पीठ पर, "हरामी की औलाद, ज़बान लड़ाता है। दो कौड़ी का छोकरा और गज़ भर की ज़बान! कोतवाली में ले जाकर यह डंडा साले तेरी.... में पूरा पेल दिया तो कौड़ियों-सी आँखें बाहर निकल आएँगी, समझा कुछ!"

मुँह बाये, हड़बड़ाया, हौलनाक अवस्था में हमीद खड़ा उसकी तरफ़ ताकता रहा। हमीद ही क्यों, मैकू, जोधा, छग्गन, जुम्मन, रिजऊ, रम्मू सभी मुँह बाये सफ़ाई अभियान देखते रह गये। हमीद अख़बार ज़रूर बाँटता है, पर उसके जैसे लोगों के उजड़ने और बर्बाद होने, अपनी रोज़ी-रोटी से बेदख़ल होने के समाचार अख़बार के किसी कोने में नहीं छपते। जैसे वे इस मुल्क में कहीं हैं ही नहीं। सिर्फ़ बड़े लोग हैं। करोड़पतियों की तस्वीरें हैं। चिकनी चमड़ी वाली गोरी-गोरी हीरोइनें हैं। चिकने-चुपड़े हीरो लोग हैं। डॉन हैं। मक्कार नेता और डाकू हैं। क्रिकेट या दूसरे खेलों के खिलाड़ी हैं।

शाम को रोता रहा हमीद गणेश शंकर के पास, "हम इस मुल्क में क्यों नहीं हैं दादा....?" पर इस सवाल का जवाब गणेश शंकर पर भी नहीं था। बड़ा पेचीदा सवाल है यह कि मुल्क की अस्सी प्रतिशत जनता मुल्क में क्यों नहीं गिनी जाती?

परवेज़ के साथ मैं कचहरी नरोत्तम बाबू के पास गया, "गणेश शंकर का दो दिन से पता नहीं है। चिंता हो रही है, उसके साथ कुछ अनहोनी न हो गयी हो।"

"आजकल तहसील दिवस और थाना दिवस का नाटक सरकार प्रदेश में चला रही है। अफ़सर लोग जनता की समस्याएँ सीधे जनता के बीच जाकर सुनते हैं। उनसे अर्जियाँ लेते हैं। उनका निराकरण करने का वायदा करते हैं," नरोत्तम मुस्कुराया।

"निराकरण होता है?" मैंने पूछा।

"अफ़सरों का टी0ए0, डी0ए0 बनता है। अपने दफ़्तर की काँय-क्लेश से एकदिन की फ़ुर्सत मिलती है। दिवस के बहाने तफ़रीह हो जाती है। काजू-बादाम उड़ते हैं। बड़े और प्रभावशाली लोगों से संपर्क सधता है। उनके काम कर दिये जाते हैं... बाक़ी को भरोसा दे दिया जाता है... वो मराठी का कौन-सा नाटक था... 'अदालत जारी है।' व्यवस्था बहुत चतुर है योगेंद्र जी! जनता को यह विश्वास बना रहना चाहिए कि कुछ हो रहा है, वरना पता नहीं कब इसका दिमाग़ फिर जाए।"

"गणेश शंकर का तहसील दिवस से क्या लेना-देना?" मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछा तो नरोत्तम बोला, "उसका गाँव पार-पट्टी की जिस तहसील में लगता है, कल उसी में तहसील दिवस था। मेरे पास आया था अपने खेत के काग़ज़ात लेकर कि मेरे परिचित तहसीलदार जा रहे हैं वहाँ, उनसे मैं कह दूँ कि उसकी ज़मीन जिस दबंग ने कब्ज़िया ली है, उससे वापस दिलवा दें।"

"वापस मिल जाएगी ज़मीन?" नरोत्तम से पूछा।

"आपको भी ग़लतफ़हमी है कॉमरेड कि इस देश में अफ़सर या नेता कुछ अच्छा भी करेंगे? अफ़सर छोटा हो या बड़ा, हमेशा ताक़तवर की सुनता है। कमज़ोर की नहीं," नरोत्तम मुस्कुराया।

"फिर, गणेश शंकर को झूठी तसल्ली देकर गाँव क्यों भेजा? गाँव में डाकुओं ने उसके पिता की हत्या कर दी थी और माँ की बोटी-बोटी काटकर चंबल के मगरमच्छों को खिला दी थी। भय के कारण गणेश शंकर ने गाँव हमेशा के लिए छोड़ दिया था," मैंने सवाल किया।

"गणेश पुराना फ़ौजी है। उस क्षेत्र के रिटायर्ड फ़ौजियों और बेरोज़गार नौजवानों को विदेशी सैन्य कंपनियाँ भाड़े के सिपाही बनाने के लिए सुनहरे सपने दिखा रही हैं। ब्लैक वाटर, जैक्स डेसमंड, एयर स्कैन, सी-3 डिफेंस, डिन कार्पोरेशन, टैक्टीकल रिस्पांस सर्विस, टाइटन कार्पोरेशन जैसी प्रसिद्ध अमरीकी सैन्य कंपनियाँ ग़रीब देशों के नौजवानों को अफ़ग़ानिस्तान, ईराक, ईरान और दूसरे देशों में लड़ने के लिए ठेके पर भर्ती कर रही हैं। अमरीका में अमरीकी सरकार की युद्ध-नीतियों का भारी विरोध हो रहा है। वहाँ की जनता अपने सैनिकों को खाड़ी के देशों में युद्ध में झोंकने के लिए भेजने को तैयार नहीं है। इसलिए पेरू, अफ़्रीका, लेटिन अमरीका, फ़िजी, नेपाल और भारत जैसे भुखमरे और अराजकताग्रस्त देशों के नौजवानों को टारगेट बनाया जा रहा है। सब्ज़ बाग़ दिखाये जा रहे हैं," नरोत्तम ने कहा, "अलक़ायदा और लादेन को नष्ट करना अमरीका के लिए क्या बहुत कठिन काम है? इन्हें ख़त्म कर दिया, तो दुनिया में आतंकवाद का हौआ कैसे खड़ा रहेगा? भय की राजनीति कॉमरेड! असुरक्षा की भावना, लोग जितना डरे रहेंगे, इनका व्यापार उतना अच्छा रहेगा। लादेन को ज़िंदा रखकर भय को ज़िंदा रखा जा सकता है, ताकि उसके बहाने तेल उत्पादक देशों की सरकारें सत्ता से हटायी जाएँ, वहाँ अपनी पिट्ठू सरकारें कायम की जाएँ और फिर तेल की खुली लूट की जाए! इस सबके आसान शिकार हमारे बेरोज़गार रिटायर्ड फ़ौजी और नौजवान हो रहे हैं। हमारे नौजवानों को अमरीका कूड़ा-कचरा मानता है। जैसे ज़िंदा, वैसे मरे हुए। कीट-पतंगे की तरह ठेके पर रखे गये ये सैनिक अमरीकी सैनिकों की तुलना में बहुत कम वेतन पाएँगे। मारे जाने पर इनके घर वालों को मुआवज़ा तक नहीं दिया जाएगा। घायल होने और अंग-भंग होने पर इनका महंगा इलाज कराने की ज़रूरत नहीं है उन्हें। रेगिस्तानों में मरने के लिए छोड़ दिया जाएगा इन्हें।"

"गणेश शंकर को यह सब नहीं बताया...?" सुनकर घबरा गया मैं।

"बताया कॉमरेड, पर वह बोला.... 'एक पंथ दो काज। ज़मीन वापस लेने की कोशिश करेंगे और जँच गयी, तो विदेशी सैन्य कंपनियों की नौकरी स्वीकार कर लेंगे। जब हमें इस देश में जीने तक की सुविधाएँ नहीं मिल रहीं, तो जो हमें सुविधाएँ देगा, हम वहाँ चले जाएँगे। चाहे उसके लिए हमें अपनी जान ही क्यों न गँवानी पड़े," नरोत्तम ने बताया।

"विदेशी सैन्य कंपनियों की भर्ती-सूचना तुम्हें कैसे मिली?" मैंने नरोत्तम से पूछा तो मुस्कुराया, "ऐसी कौन-सी गुप्त सूचना ज़िले की होती है, जो जिलाधिकारी को नहीं होती? उन्हें सारी सूचनाएँ रहती हैं।"

"फिर वक़्त रहते उचित कार्रवाई क्यों नहीं करते अफ़सर?"

"करते हैं, अपने आक़ाओं और मालिकों की जान की हिफ़ाज़त से संबंधित सारी सावधानियाँ बरती जाती हैं, पर जनता की हिफ़ाजत की किसी को चिंता नहीं होती। नेता न मरें, बाक़ी पूरा देश बाढ़ में बह जाए, सूखे में झुलस जाए, पानी की प्यास या रोटी की भूख से मर जाए, किसी को चिंता नहीं होती। आतंकवादी रोज़ धमाके करते रहते हैं, किसी को फ़िकर नहीं। बिहार की जातीय सेनाएँ रोज़ ख़ून बहाती हैं, किसी के कानों पर जूँ नहीं रेंगती। इंदिरा जी मारी जाती हैं, तो कांग्रेस सिक्खों के कत्लेआम पर जवाब देती है कि कोई बड़ा पेड़ जब गिरता है, तो भूचाल आता ही है।"

"गणेश शंकर कब तक आएगा?" पूछा तो नरोत्तम मुस्कुराया, "कह नहीं सकता, आएगा भी या नहीं। हो सकता है विदेशी फ़ौज में भर्ती हो जाए। हो सकता है, दबंग से ज़मीन को लेकर झंझट हो जाए और मारा जाए। हो सकता है, लौटते में डाकू उसे अगवा कर लें। हो सकता है, पुलिसवाले ही उसे किसी डाकू दल से पकड़वा दें.... हमें यह तक ख़बर है कि शहर के कुछ हिन्दुस्तानी संगठन उससे खार खाये बैठे हैं। उसने उस मुहल्ले में मंदिर नहीं बनने दिया। कोर्ट से स्टे ले लिया। इससे उनकी योजना धरी रह गयी। संभव है, वही उसके पीछे वहाँ पहुँच जाएँ और कोई गुल खिला दें।"

नरोत्तम ने जिस ठंडे स्वर में यह सब कहा, सुनकर परवेज़ और मैं दोनों ही असमंजस में पड़ गये। यानी गणेश शंकर ज़मीन के लालच में उस क्षेत्र में चला गया है, पर वापस आ पाएगा, यह निश्चित नहीं है।

नरोत्तम तीन-चार दिन बाद मेरे पास आया, "कॉमरेड, बुरी ख़बर है। गणेश शंकर की पकड़ करवा दी है लोगों ने।"

"किन लोगों ने....?" मैं सकपकाया।

"तमाम दुश्मन हैं उसके। विदेशी सैन्य कंपनियों के लिए परीक्षा दे रहा था। जब उसने पाया कि क्षेत्र के अनेक लुटेरे और बदमाश भी उन कंपनियों की सेना में भर्ती हो रहे हैं और उन्हें खाड़ी के देशों में लूटमार करने और औरतों का भोग करने का लालच दिया गया, तो गणेश शंकर पीछे हट गया। उसे यह सब मंज़ूर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। वापस आने लगा, तो चंबल के किनारे उसकी पकड़ हो गयी।''

''जिलाधिकारी साहब से कहकर उसे छुड़वाने का प्रयास करो यार.... ।''

''संभव नहीं है। जिस दबंग ने ज़मीन हथियायी है, उसने पुलिस को साँठ लिया है। पुलिस कुछ करेगी नहीं। अधिकारियों के कहने पर भी छुड़वाने का नाटक करेगी, पर छूटेंगे नहीं, यह मैं जानता हूँ।''

''फिर.... अपना एक दोस्त इस तरह....?''

''हम क्या कर सकते हैं इस व्यवस्था में यार!'' वह चुप हो गया।

ये कम उम्र के नौजवान, जिन्हें इस देश में अपना कोई भविष्य नज़र नहीं आ रहा, जिन्हें हमेशा शक की निगाह से देखा जाता है, जिन पर किसी को भरोसा नहीं हो रहा, जो दोयम दर्ज़े के नागरिक बनकर रह गये हैं, उन्हें मज़हबी अफ़ीम का पिनकी बनाना कितना आसान है। आख़िर अपराधों में लिप्त यह नयी पीढ़ी क्यों इस प्रकार संवेदनहीन, नृशंस, क्रूर और आत्मकेंद्रित हो गयी है? तस्करों, अपराधियों, लुटेरों, डाकुओं, डॉनों को जब ये नौजवान आलीशान ज़िंदगी जीते देखते हैं, ऐशोआराम के जिन्हें सारे साधन उपलब्ध हैं, जिन्हें मीडिया हीरो बनाता है, जिन पर फ़िल्में बनती हैं, जिनकी किताबें लाखों-करोड़ों की रॉयल्टी पाती हैं, जिनका रुतबा समाज, पुलिस और सरकार तक पर क़ायम है, तब भला ऐसे धंधों की तरफ़ ये महत्वाकांक्षी नौजवान क्यों न आकर्षित हों? क्या हम सब इस विध्वंस के लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं? हमारी व्यवस्था, यह अवारा पूँजी का खुला खेल, यह भूमंडलीकरण, यह उत्तर-आधुनिकता... जिनका न इतिहास में विश्वास रह गया है, न नैतिक मूल्यों में, न परंपरा और संस्कृति में। जो रोज़ घोषणा कर रही है कि सारे सिद्धांत मर गये हैं। अब सिर्फ़ पैसे का सिद्धांत ही ज़िंदा है, कैसे भी कमाओ, पैसा कमाओ और अपने आप को ज़िंदा रखो, दूसरे जाएँ भाड़-चूल्हे में! हमें किसी से क्या लेना-देना।

मन हुआ कि आज दिल्ली, अहमदाबाद, बंगलूर और जयपुर के धमाकों के लिए जिम्मेदार जिन नौजवानों को आज़मगढ़ का बताकर पकड़ा गया है और जिस आज़मगढ़ को आतंकवाद की नर्सरी मीडिया में बताया जा रहा है, मैं अपने नगर टी0वी0 चैनल पर बताऊँ कि वह आज़मगढ़ कैफ़ी आज़मी का नगर है। सिर्फ अबू सलेम ही वहाँ नहीं रहता, वहाँ कभी राहुल सांकृत्यायन भी रहे हैं। पर, इस माहौल में मेरी कौन सुनेगा? कॉमरेड का तो ठप्पा लगा हुआ ही है, देश के गद्दार हैं ये, यह ठप्पा भी लग जाएगा। हिन्दूवादी हमें मीर जाफ़र और जयचंद घोषित कर देंगे। विभीषण मान लिया जाएगा.... । जाने क्यों रह-रह कर पाश याद आते रहे और मन कसैला होता रहा।

0 0 0

''हम मुसलमानों के लिए बहुत बुरा बखत है सा'ब। क़यामत जैसा बखत,'' सईदा अपने बेटे हमीद के साथ मेरे घर आयी, ''कुछ करो सा'ब। गणेश शंकर हमारे सबसे बड़े सहारे हैं सा'ब। उन्हें कुछ हो गया, तो हम जीते जी मर जाएँगे सा'ब।'' आँसू पोंछती रही सईदा, ''हम मुसलमान शक के घेरे में रहते हैं सा'ब। कोई हमें फूटी आँखों नहीं देखना चाहता इस मुल्क में। सब हमें नेस्तनाबूद करने पर तुले हैं सा'ब। हमारी पूरी क़ौम कुछ लोगों की वजह से बदनाम हो गयी है सा'ब। हम क्या करें सा'ब?'' वह सिसकने लगी, तो मैं अचकचाया-सा उसकी ओर ताकता रहा।

''लेकिन गणेश शंकर तो मुसलमान नहीं है। वह तो तुम लोगों पर शक नहीं करता,'' मैंने कहा।

''उन पर हिन्दू काफ़िर होने की तोहमत लगाते हैं, क्योंकि वे हमारी मदद करने का गुनाह कर रहे हैं। हिन्दू ही नहीं, मुहल्ले के मुसलमान भी उनकी मदद को शक़ की नज़रों से देखते हैं सा'ब।''

''क्यों....?'' मैं उसकी ओर ताके जा रहा था।

''दुनिया की नज़रों में आदमी और औरत दो अलग जिंस हैं न सा'ब। उनके बीच कोई पाक रिश्ता भी हो सकता है, जाति, मज़हब और क़ौम से ऊपर उठकर... इसका भरोसा ही उठ गया सा'ब। जानते हैं सा'ब.... इस माहौल की सबसे बड़ी बदकारी क्या हुई...? हमारे पाक रिश्तों का भी सत्यानाश हो गया... ध्वंस सा'ब। रिश्तों के सारे धागे टूट गये सा'ब। हमारी सारी सींवने उधड़ गयीं। सब कुछ ख़त्म हो गया सा'ब। ऐसे बुरे बखत में हम कैसे जिएँ साब? गणेश शंकर भाई को कुछ हो गया, तो हमारी तो आख़िरी उम्मीद भी ख़तम हो जाएगी सा'ब। हम किस उम्मीद पर जिएँगे?''

सईदा का सवाल देर तक मेरे सामने साँप के फन की तरह तना रहा और मैं भौंचक्का उसकी ओर अपलक ताकता रहा। क्या जवाब दूँ इस सईदा को और क्या दिलासा दूँ इस हमीद को... उनके मरते सपनों को? विकल्पहीन-सा मैं यह कहाँ आ गया वेणु?

राधाकृष्ण भवन, न्यू कॉलोनी, इटावा (उ0प्र0)

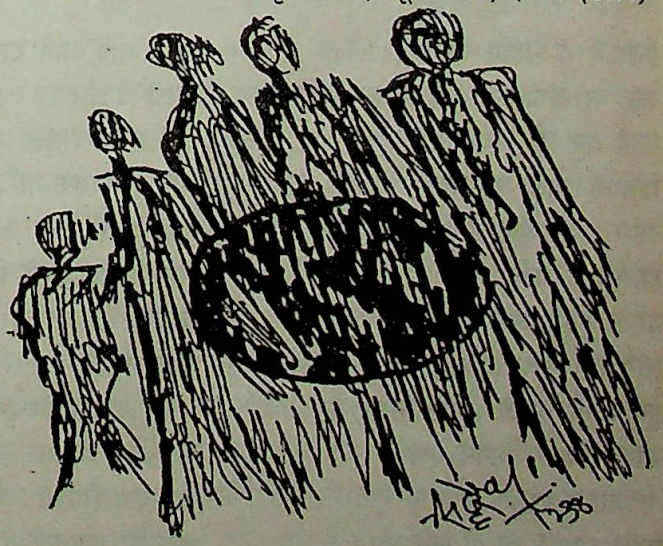

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेलेंट हंट

सुहैल अख़्तर

हमारे कुछ मित्र आज भी
वही पुराना संगीत
सुनते रहना चाहते हैं
रफ़ी, किशोर, लता और आशा के समय का।
कैसे मनमोहन थे वे गीत, वे संगीत
जो कानों में रस घोल जाते
दिल के तारों को छेड़ जाते
मुग्ध कर देते।

महान गायकों में से
अधिकांश मर-खप चुके हैं।
जो जल्द मर गये
वे अपनी आबरू बचा ले गये
जो लंबे अर्से तक जीवित रहे
ज़िल्लत उठायी
तंगहाली में जिये
और गुमनामी की मौत मरे।
लता जीवित हैं
काम भी मिलता है उन्हें
लेकिन अब वे
'रसिक बलमा' नहीं गातीं।

कैसे थे वे महान गायक
उम्र भर संगीत-साधना में लगे रहते
मरते दम तक स्वयं को
विद्यार्थी मात्र समझते।
अगर कभी भूले से
फ़िल्मों में चले आते
या ले आये जाते
सारा देश मुग्ध हो जाता
डूब जाता उनके संगीत-सागर में
और न जाने कितने ऐसे
जो जीवन-भर
केवल साधना में ही जुड़े रहे
संगीत की शुद्धता को
अपवित्र और दूषित करने को
महापाप समझते,
गुमनाम रहकर संगीत की सेवा करते
मरते दम तक।

परंतु, आज हमारे टी.वी. चैनलों का मानना है
कि टेलेंट वेस्ट नहीं होना चाहिए
टेलेंट को लाइम-लाइट में आना ही चाहिए।
वे आयोजित कर रहे हैं
'इंडियन आइडल' और 'फ़ेम गुरुकुल' सरीखे
असंख्य प्रोग्राम
नये-नये गायकों को चांस मिल रहा है
अपने टेलेंट प्रस्तुत करने का
पैदा की जा रही है
प्रतियोगिता की ऐसी भावना
जिसकी चपेट में अब
मासूम बचपन भी है;
विकसित की जा रही है
किसी भी तरह ज़ीत हासिल करने की
क्रूर मानसिकता।

अब नहीं आने वाले
रफ़ी-किशोर
या शमशाद-लता की तरह
महान गायक-गायिकाएँ
जो दशकों तक
संगीत-प्रेमियों के दिलों पर
राज करते थे,
अब आएँगे
अभिजित सावंत और क़ाज़ी जैसे
टटपूँजिये गायक,
जिनका कैरियर
एक-दो एलबमों
या चंद फ़िल्मी गीतों तक
सीमित होगा,
फिर वह संगीत-जगत् से
यूँ हो जाएँगे ग़ायब
जैसे कभी थे ही नहीं
किसी को उनके नाम तक
याद नहीं रहेंगे,
लेकिन उन्हें हंट करने वाले
टी0वी0 चैनल और प्रोग्राम
दर्शकों को रिझाते, उल्लू बनाते
लोकप्रियता की
नयी पायदानें चढ़ते रहेंगे।

जे0एम0 (डी0) आई0डी0सी0ओ0
आई0डी0सी0ओ0 टॉवर्स, जनपथ,
भुवनेश्वर-751022

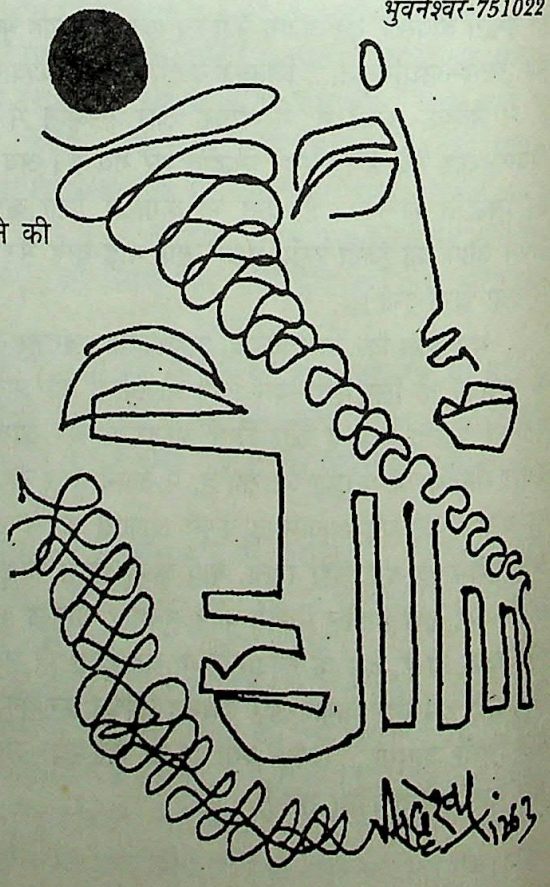

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौत के दूसरी तरफ़

गैबरियल गार्सिया मारख़ेज़

वो बिना कुछ जाने और समझे हुए बस एक शुरूआत के साथ ही जागा। एक तीख़ी तेज़ गंध जो बैंगनी रंग के पेड़ों (वायलेट्स) और फूलों में से आ रही थी, जिसके साथ फ़ार्मेल्डीहाइड की गंध भी घुली-मिली थी। यह बहुत ही ताक़तवर और विकराल गंध थी, जो पास के ही दूसरे कमरे से आ रही थी। बाहर ही सुबह-सुबह की मुस्कुराहट बिखेरता वो बगीचा भी था जिसमें खिले ताज़ा फूलों की ख़ुशबू में ये ताम ख़ुशबुएँ मिल गयी थीं। उसने कोशिश करके ख़ुद को शांत किया और उस ताक़त को दुबारा प्राप्त किया, जिसे कि वो अचानक ही नींद में खो चुका था। इस समय निश्चित ही सुबह की शुरूआत हुई थी, क्योंकि बाहर बगीचे में सब्ज़ियों और फूलों के बीच स्प्रिंक्लर ने (पानी को बारीक़ बूँदों में छिड़कने वाला झरना) गीता गाना शुरू कर दिया था और उस खुली खिड़की में से झाँकता आकाश नीला था। उसने छाया में घिरे कमरे को देखा, कोशिश करते हुए उसने जानना चाहा कि वो कैसे अचानक और अनचाहे तरीक़े से अपनी नींद से जाग उठा? उसकी धारणा थी कि कोई शारीरिक उपस्थिति निश्चित ही कमरे में मौजूद थी और कोई कमरे में ज़रूर आया था, जबकि वो गहरी नींद में सोया हुआ था। इसके बावजूद वो बिल्कुल अकेला था और उस कमरे का दरवाज़ा अंदर से बंद था, जिसके अंदर किसी भी प्रकार की हिंसा के चिह्न मौजूद नहीं थे। वहाँ बहुत ऊपर खिड़की के बाहर सुबह का तारा उगता हुआ दिखायी दे रहा था। वो थोड़े समय के लिए शांत हो गया, जैसे कि वो अपनी घबराहट और दिमाग़ी परेशानी को थोड़ी ढील दे रहा हो। वो दिमाग़ी परेशानी, जिसने कि उसे धकेलकर वापस नींद की सतह पर पहुँचा दिया था और उसने अपनी आँखों को बंद कर लिया और वो दुबारा टूटी हुई अक्षुब्धता के धागों को पाने की कोशिश में लग गया था।

उसका सारा जमा ख़ून अचानक ही टूटकर उसके गले में आ गया और इन सबके परे उसकी छाती में उसका दिल धड़धड़ धड़क रहा था... बराबर... लगातार। वो चिह्नित करता जा रहा था एक धीमी लय, जो ऐसा लगता था मीलों लंबी दौड़ लगाने के बाद एक दिल में आकर धक-धक करते हुए समा गयी हो। उसने पहले के मिनट्स का पूर्व विचार अपने दिमाग़ में किया। हो सकता था कि उसने कोई बहुत विचित्र सपना देखा हो। यह एक भयावह सपना भी हो सकता था। नहीं! वहाँ कुछ भी निश्चित नहीं था, कोई भी कारण किसी भी सूरत में नहीं था वो?

वे सब एक ट्रेन में सफ़र कर रहे थे। मुझे अच्छी तरह से अब कुछ याद आने लगा था। ट्रेन दूरदराज के देहाती इलाके से होकर गुज़र रही थी और मैं लगातार एक ही सपने को बार-बार देख रहा था, जैसे कि स्थिर जीवन हो, झूठे और बनावटी पेड़ों को बो दिया गया हो और वे तमाम ऐसे फलों से लदे पड़े हों, जिनमें रेजर, कैंचियों और चाकू-छुरी और न जाने क्या-क्या उन पेड़ों पर फलों की शक्ल में लदा हुआ था। तभी मुझे याद आया कि अरे! मुझे तो अपने बाल कटवाने नाई की दूकान पर जाना है। नाई के वे तमाम औज़ार मुझे नज़र आ रहे थे। पर उसे तो ये सपना बार-बार दिखा था, लेकिन पहले कभी भी वो इस सपने को देखकर डरा नहीं था, जैसाकि आज उस सपने को देखने के बाद वो डर गया था। वहाँ पेड़ों के पीछे उसका भाई था और दूसरा उसका जुड़वा भाई था, जो मुझे इशारों से सारी बात बता रहे थे कि ऐसा वाकया मेरे साथ हक़ीक़त में कभी ज़रूर घटित हुआ था और उनके लिए मुझे ट्रेन को रोक देना चाहिए था। वो पूरी तरह से इस सपने की निरर्थकता को जान चुका था, वो कोच के पीछे भागना शुरू कर देता है और तब तक भागता है, जब तक वो हाँफकर मुँह से फेन निकालता हुआ ज़मीन पर नहीं गिर जाता।

यह निश्चित ही बिल्कुल बेतुका, तर्कहीन और बेबुनियाद सपना था, लेकिन वहाँ कोई कारण भी नहीं था, जिसकी वजह से वो अपनी नींद में से यूँ अचानक उठकर जाग गया था। उसने दुबारा अपनी आँखें बंद कर लीं, उसकी दोनों कनपटियों पर अंदर रहने वाले ख़ून के दबाव की वजह से मुक्के पड़ रहे थे। उस वक़्त ट्रेन बहुत ही ऊबाऊ, सूखे और बंजर इलाके से गुज़र रही थी और तभी उसके बायें पैर में उठने वाले तीव्र दर्द के कारण उसका ध्यान उन प्राकृतिक दृश्यों की तरफ़ से हटकर पूरी तरह से पैर की तरफ़ जा चुका था। उसने ध्यान से देखा कि उसके पैर के पंजे में बिल्कुल बीच में एक मोटी गाँठ उभरकर निकल आयी थी। उसने ख़ुद को कोसा कि उसे इतने कसे, टाइट जूते बिल्कुल भी नहीं पहनने चाहिए थे। बिल्कुल स्वाभाविक तरीक़े से, जैसे कि वो पूरी तरह से इस बात का अभ्यस्त हो, उसने अपनी जेब से पेचकस निकाला और उस गाँठ के मुँह को उससे छीलकर निकाल दिया। फिर उस पेचकस को सँभालकर एक छोटे से नीले डिब्बे में रख दिया। क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपनों में तुम रंगों को देख सकते हो? और एक हल्की-सी झलक और अपने घाव में झाँकने के बाद उसने एक चिपचिपी पीली डोरी को घाव के भीतर से पकड़कर बिना घबराये खींचना शुरू कर दिया, बिल्कुल इस तरह, जैसे कि वो डोरी वहाँ पर पहले से ही मौजूद होगी, वो ऐसा मानकर चल रहा था। फिर उसने बड़ी सावधानी से उसे बाहर खींचकर निकाल दिया। यह एक लंबी और बहुत ही लंबी टेप थी, जो अपने आप ही बाहर निकल आयी थी, जिसकी वजह से उसे कोई भी परेशानी और दर्द महसूस नहीं हुआ था। एक पल के बाद, जैसे ही उसने अपनी आँखें ऊपर उठायीं, तो उसने देखा कि ट्रेन के दूसरे कंपार्टमेंट (डिब्बे) में जो एक यात्री अभी नहीं उतरा था, वो उसका भाई था, जो एक औरत की तरह सजा-धजा था। वह शीशे के सामने खड़ा होकर अपनी बायीं आँख को कैंची से उखाड़कर बाहर निकाल रहा था।

वास्तव में, वो अपने उस सपने से नाराज़ था, लेकिन वो इस बात को व्यक्त भी कर सकता था कि उसके ख़ून के बहाव को उस सपने ने किस बुरी तरह बदल डाला था। असल में, जबकि पहले देखे गये सभी भयानक सपने, जिन्हें देखने के बाद उसके सिर के बाल खड़े हो जाते थे, वो किसी तरह से ख़ुद को शांत व व्यवस्थित करने में कामयाब हो जाता था। उसके हाथ ठंड को महसूस करते थे। बैंगनी रंग के फूलों (वायलेट्स) और फ़ार्मेल्डिहाइड की मिली-जुली ख़ुशबू अब वातावरण को असहनीय और बहुत ही ज़्यादा आक्रामक बना रही थी। उसने अपनी बंद आँखों को दबाकर रखा हुआ था और वो धीरे-धीरे किसी मामूली विचार को पाने की कोशिश में लग रहा था, जिससे वापस वो उसी सपने में डूब जाए, जिसने थोड़े मिनट्स पूर्व ही उसके सपने में व्यवधान डाला था। उदाहरण के तौर पर, वो सोच सकता था कि वो अब श्मशान में तीन घंटों के अंदर ज़रूर चला जाएगा, जिससे कि वो अपने खर्चों को बचा सके। उसके अंदर भयंकर मानसिक दबाव पड़ने लगा था और अपनी मांसपेशियों को एक बार फिर उसे ढीला खींचते हुए पाया था। उसने महसूस किया था कि वो एक कोमल, मुलायम कुशन पर पूरी तरह गिर चुका था और उसका शरीर हल्का-फुल्का, बिना किसी भार का, तेज़ी से भाग रहा था, जिसके अंदर था एक मीठा अहसास, जो परम आनंद के बाद की थकावट को समेटे था और अपने विवेक और होश को खोता जा रहा था। वो अपने ठोस आकार के शरीर की उपस्थिति और भौतिकवादी बनावट, जो बेहद भारी, पृथ्वी की तरह सख़्त-सी चीज़ थी और जिसके होने की वजह से प्राणि विज्ञान में उसे एक निश्चित मानक प्राप्त होता था और जो पूरी तरह से सभी तरीक़ों के जोड़ और ज्यामितीय आकार-प्रकार को अंगों से प्रतिपादित करके स्थापित करती थी, उस पूरी सृष्टि में जो प्राणि जगत की मुख्य कार्यशाला थी, उसकी पलकें भारी हो गयी थीं उस पूरी सृष्टि में, जो प्राणि जगत की मुख्य कार्यशाला थी, उसकी पलकें भारी हो गयी थीं और पूरी तरह से उसके वश में थीं और उसकी आँखों की पुतलियों को पूरी तरह ढक चुकी थी। यह सब बिलकुल ही प्राकृतिक तरीक़े से हुआ था, जैसे कि उसकी बाँहें और पैर आपस में जुड़कर पूरी तरह मिलकर एक हो गये थे। यह सब बिल्कुल ऐसा था, जैसे कि एक साथ इकट्ठा हुए सदस्य धीमे-धीमे अपनी स्वतंत्रता खोते जा रहे हों, जैसे कि सारे जीवित प्राणि सिर्फ़ एक बड़े विशालकाय जीवित शरीर में बदल गये हों और वो एक आदमी की तरह, अपने विनाश और मौत की जड़ों को पूरी तरह छोड़ चुका था, जिससे वो दूसरी जड़ों को, जो अधिक गहरी, मजबूत थीं, उन्हें भेद सके। एक पूरे, निश्चित सपने की जड़ें जिनकी न शुरूआत थी और न अंत, जो सनातन थीं। संसार के बाहर के दूसरे हिस्से की ओर से वो अब झींगुर का गाना सुन रहा था, जिसकी आवाज़ धीमे-धीमे कम होती गयीं, जब तक कि वो उसकी चेतना में से गायब नहीं हो गयी। जिसने कि उसके अंदर समाकर एक नये, सुलझे काल और स्थान में उसे डुबकी लगाकर पहुँचा दिया हो और पूरी तरह से भौतिकवादी संसार की उपस्थिति, जो शारीरिक और कष्टदायक थी, जिसमें कीड़ों, बैंगनी रंग के फूलों और फ़ार्मेल्डिहाइड की मिली-जुली गंध भरी थी, उसे पूरी तरह से गलाकर मिटा दिया गया था।

उसने अपनी बनावटी और रोज़ होने वाली मौत के हल्केपन को महसूस किया था, जबकि वो पूरी कोमलता के साथ हल्के गर्म मौसम से लिपटा था, जो शांत और स्वच्छ था और जिसकी उत्कृष्ट चाहत उसे हमेशा से थी। वो एक प्यारे से भौगोलिक परिवेश में डूब गया था, एक बहुत ही सरल, आदर्श संसार एक ऐसा संसार, जो एक शिशु ने खींचा था, जिसमें किसी भी प्रकार के बीजगणित (एल्जेब्रा) के समीकरण नहीं थे, जिसमें कोई भी प्यार भरी विदाई शामिल नहीं थी, न ही गुरुत्वाकर्षण बल था।

उसे वास्तव में सही और पक्के तरीक़े से यह बिल्कुल भी पता नहीं था कि उन सपनों के महानुभाव की सतह और वास्तविकता के बीच वो कितनी देर से था, लेकिन उसे अचानक याद आया था जैसे कि उसके गले को चाकू के वार से काट दिया गया था और उसे बिस्तर में दुबारा शुरूआत दे दी गयी थी। और उसने महसूस किया था कि उसका मृत जुड़वाँ भाई उसके बिस्तर के किनारे पर बैठा था।

दुबारा जैसाकि पहले भी हुआ था उसके दिल ने घूँसा मारते हुए तेज़ी से ऊपर उठते हुए, ठीक उसके मुँह के अंदर उसे धक्का देते हुए एक लंबी छलाँग के लिए आगे धकेल दिया। बाहर भोर की रोशनी और उसके साथ ही झींगुर अपने थोड़े बेसुरे हाथ से बजने वाले वाद्य-यंत्र से लगातार एकांत को पीस रहे थे। उधर बगीचे की सत्ता से बिल्कुल ठंडी और ताज़ी हवा जो इधर ही बहती हुई आ रही थी, इन सभी ने मिलजुलकर अपना योगदान दिया, जिससे वो वास्तविक संसार में एक बार फिर लौट आया, लेकिन इस समय वो समझ नहीं सका था कि उसकी शुरूआत का कारण क्या था? उसके उन थोड़े-से सीमित पलों के बीच जबकि वो नींद की छोटी-सी झपकी लेने में मशगूल था और मैं अब उसे देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता था कि पूरी रात के बीच, जबकि उसने सोचा था कि वो बिना किसी बाधा के शांत और सहज और पूरी नींद ले सकेगा; ऐसी नींद, जिसमें कोई भी विचार नहीं था। उसकी याददाश्त एक स्थिर और दृढ़ छवि पर जाकर जम गयी थी। एक ऐसी छवि, जो स्वरचित थी और स्वयं अपने आप उसके विचार में जाकर चिपक गयी थी। उसके अंदर के प्रतिरोध और अनिच्छा के बावजूद वो छवि वहाँ पर जाके पूरी तरह से स्थिर हो गयी थी। हाँ, पूरी तरह से बिना उसके ध्यान में आये और वो ख़्याल, वो विचार उसे अपने चंगुल में ले रहा था, उसमें लगातार समा रहा था। उसके सारे विचारों के पीछे वो बात, वो छवि एक बूँद की तरह जाकर जम गयी थी और उसके दिन और रात को मानसिक नाटक की कमुख्य कड़ी (वरटीब्री) को पूरा आधार दे रही थी। उसके दोनों जुड़वा भाइयों के मृत शरीरों की यादें उसके जीवन के केंद्र बिंदु से पक्की तरह से जुड़े थे। आज, जबकि वो उसे छोड़कर जा चुके थे, उसके अपनी ज़मीनी टुकड़े पर और अब उसकी पलकें बारिश की वजह से फड़फड़ा रही थीं और वो अब ख़ुद से डरा हुआ था।

उसने ऐसा कभी नहीं सोचा था कि वो इतनी ताक़त से बहेगी। आधी खुली खिड़की में से वो ख़ुशबू अंदर दाख़िल हुई, वो अजब तरह से घुली-मिली थी, जिसमें गीली धरती का सौंधापन, पानी के भीतर डूबी हड्डियाँ, जिनके साथ उसकी ख़ुद की सूँघने की शक्ति-सब एक साथ ख़ुशी-ख़ुशी मिल गयी थीं जिसमें एक रूखे और अशिष्ट व्यक्ति की ढेर सारी ख़ुशियाँ थीं। उस पल के बाद बहुत सारे घंटे बीत गये थे, जबकि उसने एक कुत्ते को बुरी तरह जख़्मी हाल में देखा था, जो चादर के नीचे था, गुर्राता हुआ और अपनी अंतिम चीख़ को काटता हुआ, जिसने उसके गले में नमक भर दिया। उसने अपने नाखूनों का इस्तेमाल करते हुए उस दर्द को नीचे ही तोड़ने की कोशिश की, जबकि वो उसके अंदर तेज़ी से ऊपर की तरफ़ चढ़ रहा था, उसके पीछे के हिस्से की तरफ़ से होता हुआ ठीक उसके ट्यूमर की जड़ों तक पहुँच गया था। वो भुला नहीं सका था कि ख़ुद उसे एक मरे जानवर की तरह पीटा जा रहा था। वो इस सच्चाई के आगे एक विद्रोही की तरह ही था, जो अचानक उसके समक्ष आकर रुक गयी थी, जिसने उसके पूरे शरीर को दृढ़ता के साथ जकड़ लिया था, जो शांत और स्थिर थी, कुछ निश्चित भी, बिल्कुल मृत्यु की तरह। उसने ख़ुद को अपनी निर्दयी और असभ्य मौत के अंतिम पलों की प्रसव-वेदना में देखा। जब उसने दीवार से टकराकर अपने नाखूनों को तोड़ लिया, तब उसके पंजे में से जीवन का अंतिम टुकड़ा उसकी अंगुलियों से फ़िसल रहा था और ख़ून भी बराबर बह रहा था। वहीं उसके अंदर बैंगीन (माँस का सड़ाव) का लगातार बढ़ना, जो बिल्कुल अतिद्वेषी और दुश्मन औरत की ही तरह था। तभी उसने देखा कि वो गंदे और अस्त-व्यस्त बिस्तर पर गिर गया, जिसके स्पर्श में त्याग दी गयी थकावट थी। वो पसीने से भरा था और उसके झाग से ढके दाँत एक विकट और शैतानी हँसी पूरी दुनियाँ के लिए बिखेर रहे थे। यह सब कुछ उसके अंदर से हो रहा था और मृत्यु ने उसके अंदर की हड्डियों में से बहना शुरू कर दिया, जैसे कि कोई राख की नदी हो।

बिल्कुल तभी मैंने सोचा कि उसके पेट के भीतर ट्यूमर के कारण होने वाला दर्द बंद हो गया था। मैंने कल्पना की थी कि वो गोल था। अब वो भी पहले जैसी अनुभूति महसूस कर रहा था। वो सूज रहा था। सूरज के अंदरूनी हिस्से की तरह वो असहनीय था, बिल्कुल पीले कीड़े की तरह, जो अपने ख़तरनाक तंतु उसकी आँतों की गहराई की तरफ़ बढ़ा रहे थे। (वो महसूस कर रहा था कि उसकी आँतों के अंदर की चीज़ें अपनी जगह से हट गयी थीं इसके पहले कि उनकी शारीरिक ज़रूरत होती)।

ऐसा भी हो सकता है कि कभी मेरे अंदर भी उसके जैसा ट्यूमर किसी दिन हो जाए। सबसे पहले वो छोटा-सा होगा, लेकिन धीरे-धीरे एक गोले की तरह बढ़ता जाएगा, जिसमें से शाखाएँ निकलेंगी और वो बहुत बड़ी होकर मेरे पेट के अंदर स्थित भ्रूण की तरह तकलीफ़ देंगी। मैं संभवतः उसे महसूस करूँगा, जबकि वो दर्द अपनी हरकत में आ जाएगा, मेरे अंदर चलते हुए बिल्कुल नींद में चल रहे बच्चे की तरह क्रोधित होगा। लगातार मेरी आँतों के अंदर अंधों की तरह यात्रा करते हुए उसने अपने हाथों को पेट पर रख दिया, जिससे दर्द की तीव्रता को रोका और कम किया जा सके। उसने जिज्ञासु हाथ परछाईयों की तरह बढ़ा दिये, गर्भस्थ की गरमी की तरफ़ देखते हुए, उस गरमाहट को वो मेहमाननवाज़ गर्भाशय कभी नहीं पा सका। जबकि सौ फीट के शानदार जानवर ने अपने को बराबर लंबी पीली गर्भ से जुड़ी नाल से लपेटना शुरू कर दिया था। हाँ, हो सकता है कि मैं और मेरा पेट बिल्कुल उस भाई की तरह हों जो अभी-अभी मर चुका है, उसके अंदरूनी हिस्से की जड़ों में ट्यूमर मौजूद हो। बाहर बगीचे ने जो ख़ुशबू भेजी थी, वो बहुत ही तीख़ी, शक्तिशाली और उल्टी की गंदी बदबू में लिपटकर वापस लौट रही थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि समय प्रातःकाल के किनारे पर रुक गया था। भोर का तारा गिलास पर जैली की तरह जम गया था, जबकि पड़ोस के कमरे में, जहाँ पर लाश पूरी रात से रखी थी, वहाँ से अभी भी ताक़तवर फ़ार्मेल्डिहाइड संदेश आ रहा था। यह वास्तव में बगीचे में से आ रही बिल्कुल अलग क़िस्म की बदबू थी। यह कुछ ज़्यादा ही दुखदायी थी, कुछ ज़्यादा ही अलग क़िस्म की बदबू थी, जो उन फूलों की मिली-जुली बदबू से अलग थी। एक ऐसी बदबू, जिसके बारे में पता चलने के बाद इसे मृत शरीरों से जोड़ दिया जाता था। यह बर्फ़ का था और उसके अंदर प्रचुरता में एंफ़ीथियेटर (रंगभूमि संबंधी) से आने वाली फ़ॉर्मिक ऐल्डिहाइड की बदबू अभी बाक़ी बच गयी थी। उसने प्रयोगशाला (लेबोरेट्री) के बारे में सोचा। खंड-खंड कटी चिड़ियाओं के अंदरूनी हिस्सों का ऐल्कोहल में सुरक्षित रखा जाना, उसे सब याद था। एक खरगोश, जिसे पूरी तरह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एल्कोहल में डुबोकर भिगो दिया था, उसका मांस बहुत ही कठोर हो गया था और वो पूरी तरह से सूख भी चुका था। वो अपने सहज सरल लचीलेपन को खो चुका था। जब तक कि वो सदा क़ायम रहने के लिए परिवर्तित नहीं हो जाता। फ़ार्मेल्डिहाइड। ये बदबू कहाँ से आ रही थी। केवल एक तरीक़े से इस दुर्गंध और सड़न को रोका जा सकता था। अगर हम सभी आदमियों की नसों में फ़ार्मेल्डिहाइड होता, तो हम शारीरिक रचना-शास्त्र के नमूने होते, जो पूर्णतः एल्कोहल में डूबे थे।

वहाँ बारिश के लगातार बढ़ने के साथ ही टप टपा टप की आवाज़ें भी सुनायी पड़ रही थीं। बिल्कुल ऐसा लग रहा था कि अधखुली खिड़की के शीशे पर कोई हथौड़े मार रहा हो। एक बिल्कुल ठंडी, सुखद और नयी हवा अंदर की तरफ़ आयी, जिसमें नमी भरी थी। उसके ठंडे हाथ और ज़्यादा ठंडे हो गये थे, जिन्होंने उसे यह अहसास कराया कि उसकी धमनियों में फ़ार्मेल्डिहाइड मौजूद था, जैसे कि सीलन और नमी, जो बाहर बरामदे से उसके अंदर आयी थी, वो सीधी उसकी हड्डियों में पहुँच गयी थी। हाँ वो सीलन, बहुत सारी सीलन थी वहाँ। कुछ निश्चित अप्रसन्नता के साथ उसने सोचा कि सर्दियों की रात, जबकि बारिश घास के अंदर से गुज़रती और सीलन उसके भाई की तरफ़ जाकर आराम करती हे और वो उसके शरीर के चारों तरफ़ घूमती बिल्कुल ठोस करंट की तरह। ऐसा प्रतीत होता था कि मृत व्यक्ति को किसी दूसरी तरह की परिसंचरण-पद्धति की ज़रूरत थी, जो चारों तरफ़ से उसे घेरकर दूसरी ओर असाध्य और अंतिम मृत्यु की तरफ़ ले जाए। उस समय वह बिल्कुल भी नहीं चाहता था कि अब बारिश और हो। वह चाहता था कि गर्मियों का मौसम प्रभावशाली और निरंतर रहे, क्योंकि वह अपने विचारों की वजह से नाराज़ था, जिसकी वजह सीलन का लगातार काँच पर टकराते रहना भी था। वह चाहता था कि कब्रिस्तान की चिकनी मिट्टी सूखी रहे, क्योंकि वो उसे व्यग्र और अशांत बना देती थी, जैसे ही वो सोचता था कि दो हफ़्तों के बाद जब सीलन उसकी मज्जा मे दौड़ना शुरू कर देगी, तब उसके बराबर कोई भी दूसरा आदमी नहीं होगा, हाँ सही मायनों में उसके बराबर ज़मीन के नीचे नहीं होगा।

हाँ! वहाँ पर द्रो जुड़वाँ भाई, बिल्कुल एक से, जिन्हें पहली नज़र में देखते ही कोई पहचान नहीं पाएगा। इसके पहले कि वे अलग-अलग अपना जीवन जीने लगे, वे कोई नहीं सिर्फ़ दो साधारण जुड़वाँ भाई थे, जो पृथक् थे, एक दूसरे से अलग-अलग आदमियों की तरह। वहाँ आध्यात्मिक तौर पर कोई भी एक जैसा या मिलता-जुलता तत्त्व उनके बीच में नहीं था। लेकिन अब जबकि सख़्ती के साथ भयानक सच्चाई उसकी पीठ के ऊपर चढ़ रही थी, जैसे कि कोई जानवर था, जिसकी पीठ की हड्डी नहीं थी। वो जो कुछ वातावरण के अंदरूनी हिस्से में गुला था, कुछ खालीपन भी आवाज़ कर रहा था, ऐसे कि जैसे कुछ अवशेष खुलकर उसकी तरफ़ आ जाएँ, या फिर ऐसे जैसे कि उसका शरीर अचानक ही दो टुकड़ों में एक कुल्हाड़ी के वार से कट जाए, ठीक पूरी तरह नहीं, शरीर की रचनात्मकता पूर्ण ज्यामितीय निपुणता की परिभाषा के अंतर्गत ही थी, वो भौतिक शरीर, जो अब डर महसूस कर रहा था, दूसरा शरीर किंतु वो उसके अंदर से उस पार से आ रहा था, जो कि उसके अंदर डूबी हुई थी—एक माँ के गर्भ में रात्रि की तरह और जो उसके अंदर शाखाओं के सहारे चढ़ रही थी—एक प्राचीन वंशवृक्ष की तरह। वो अब उसके ख़ून में चार जोड़े, जो उसके परदादा और दादी के यहाँ से उसके वशांनुगत मिले थे। ये तो संसार की शुरूआत से ही अपने साथ अपने भार में रखे हुए एक रहस्यमय उपस्थिति, जो पूरे ब्रह्मांड का संतुलन थी। ये हो सकता था कि उसके ख़ून में आइजक और रिबैक्का थे, वो उसका दूसरा भाई था, जो कि अपनी एड़ियों से ज़ंज़ीरों से जकड़ा था और घुटनों के बल रेंगता हुआ एक वंश के बाद दूसरे वंश, एक रात के बाद दूसरी रात, एक चुंबन के बाद दूसरे चुंबन, एक प्यार के बाद दूसरे प्यार, नीचे आता हुआ धमनियों में से और अंडकोष से होता हुआ जबकि वह पहुँचता, बिल्कुल जैसे वो रात की समुद्री यात्रा पर अपनी ताज माँ के गर्भ में कर रहा था। वो रहस्यात्मक आनुवंशिक योजनाएँ अब उसके सामने प्रस्तुत की गयी थीं, अब वो बहुत दर्दनाक और सत्य थीं। अब, जबकि संतुलन टूट चुका था और समीकरण भी निश्चित ही हल हो चुका था, वो जानता था कि उसकी व्यक्तिगत अनुरूपता में, उसकी औपचारिक और प्रतिदिन की पवित्रता और स्थिरता में कहीं कुछ कमी ज़रूर थी। जैकोब तुरंत ही अपनी ऐड़ियों से मुक्त हो गया था।

उन दिनों के बीच, जबकि उसका भाई बीमार था, उसके अंदर इस प्रकार की भावना नहीं थी, क्योंकि लंबी बीमारी के कारण उसका पतला चेहरा, जो बुरी तरह से तेज़ बुखार और दर्द से बिगड़ चुका था, उस चेहरे को बढ़ी हुई दाढ़ी, वो सभी कुछ उससे पूरी तरह से अलग था।

एक बार वो बिल्कुल गतिहीन हो गया, अपनी कुल मौत के सबसे ऊपर लेटे हुए। एक नाई को बुलाया गया, जिससे शव को व्यवस्थित किया जा सके। वो वहाँ मौजूद था, पूरी सख़्ती से दीवार की तरफ़ झुके हुए, जबकि एक आदमी सफ़ेद कपड़े पहने हुए वहाँ आया, जिसके हाथों में उसके व्यवसाय के साफ़ सुथरे औज़ार थे... नियमपूर्वक वो गुरु उस मृतक के चेहरे को झाग से पूरी तरह से ढक देता था। वो व्यर्थ चेहरा था। इस तरह से मैंने उसे मरने से पहले देखा था और वो भी धीमे-धीमे, बिल्कुल ऐसे, जैसे कि कोई भयानक गोपनीय बात बताने जा रहा हो, उसने उसकी हजामत बनानी शुरू कर दी थी। उस भयानक विचार का हमला उस पर तभी हुआ था, जैसेकि पीले और ज़मीन में गड़े उसके जुड़वाँ भाई का चेहरा रेजर के अंदर के रास्ते से बाहर निकल आया। उसके अंदर एक ही भावना थी कि इस शव के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंदर कुछ भी ऐसी चीज़ नहीं थी, जोकि उसके लिए अजनबी थी, बल्कि वो उसी मिट्टी से बनी थी और जो उसकी ही पुनरावृत्ति थी... उसके अंदर एक अजनबी भावना थी कि उसके रिश्तेदारों ने उसकी छवि को आईने से खींचा था, वही छवि, जब वो दाढ़ी बनाकर आईने के सामने खड़ा होता था और वो उसे प्रतिबिंबित कर देता था। अब वो छवि, जो उसकी हर गति और हलचल का प्रतिवाद करती थी, अब उसने स्वतंत्रता अर्जित कर ली थी। वो उसे सुबह कुछ अलग समय दाढ़ी बनाकरं देखता था। लेकिन, अब वो कुछ अलग ही घटना को घटित होते साक्षात देख रहा था। वो नाटकीयता से पूर्ण अनुभव ही था कि कोई दूसरा आदमी उसकी आईने वाली छवि की दाढ़ी हटा रहा था, उसकी ख़ुद की शारीरिक उपस्थिति ज़रूरी नहीं थी। वो निश्चित था और उसे पक्के तौर पर पता था कि यदि वो अभी आईने के सामने इस पल चला गया, तो वो आईने को कोरा ही पाएगा (वहाँ उसकी छवि नहीं प्रतिबिंबित होगी) यहाँ तक कि भौगोलिक विज्ञान के पास इस प्रकार की प्रक्रिया के लिए किसी भी प्रकार का कोई भी स्पष्टीकरण नहीं था। इस प्रकार वो अवगत था कि वो दो में टूट रहा था। वो पूरी तरह से चाहता था, इस बात की प्रतिक्रिया करने के लिए। उसने उस मजबूत दीवार को छुआ, जो उसके अंदर केवल छूने से खड़ी हो गयी थी, वो एक प्रकार की सुरक्षा की तरंग थी। नाई अपना काम ख़त्म कर चुका था और अपनी कैंची के कोने से उसने शव की पलकें बंद कर दीं। रात उसे अंदर से काँपता हुआ छोड़ गयी, जिसके साथ में उखाड़े गये शव का अटल अकेलापन भी था। इस प्रकार, उन दोनों में बिल्कुल समानता थी। दो बिल्कुल समानांतर भाई, बिल्कुल चुपचाप, एक दूसरे को दोहराते हुए। यह फिर तभी हुआ, जबकि उसने देखा कि किस-किस अंतरंगता के साथ वो दो प्राकृतिक रूप से जुड़े थे। तभी उसे ऐसा लगा कि कुछ असाधारण, कुछ अनचाहा घटित होने जा रहा था। उसने कल्पना की कि अंतरिक्ष में दो शरीरों का अलग होना केवल प्रतीत हो रहा था, जबकि वास्तव में वो दोनों अलग न होकर केवल एक थे, उनका पूरा स्वभाव, प्रकृति सब एक था। हो सकता था कि मृत शरीर तक जब इंद्रिय अपघटन पहुँच पाता, वो उस समय तक जीवित था, वो भी फिर बाद में धीमे-धीमे नष्ट होने लगेगा, इसी प्राणि संसार में।

वो खिड़की की चौखट पर बारिश की तेज़ होती टप-टप सुन सकता था और तभी झींगुर ने अचानक अपने तंतु को फटकारा था। उसके हाथ लंबी और अमानवीय ठंड के कारण भयंकर ठंडे थे। फ़ार्मेल्डिहाइड की बदबू अब काफ़ी बढ़ गयी थी। इस बदबू ने उसे सोचने पर मजबूर किया था कि उसके भाई का मृत शरीर अब सड़ने लगा था और इस तरह की संभावना इस बदबू के माध्यम से पता चल रही थी। ये बदबू उसका भाई वहीं से भेज रहा था, जहाँ पर एक छेद था, जो बर्फ़वत् ज़मीन के अंदर स्थित था। यह बिल्कुल बेतुका था। हो सकता है कि यह प्रक्रिया बिल्कुल विपरीत हो। इसका प्रभाव वो ही कर रहा है, जिसमें अभी जीवन शेष है, जिसके साथ ऊर्जा है, जिसके साथ जीवंत कोशिका है। हो सकता है, इस सतह पर वो और उसका भाई एक साथ इकट्ठा जुड़े होंगे, जो जीवन और मृत्यु के बीच एक तरह का संतुलन कायम रखेंगे। वैसे वे दोनों अपने आपको सडने से बचाने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन कौन इस बात से निश्चित हो सकता है? क्या ऐसा सम्भव हो सकता था कि दफ़नाये हुए भाई का शव नष्ट नहीं होता, जबकि सारी सड़न और गलन के नीले ऑक्टोपस उस जीवित शरीर में हमला करते? उसने सोचा था कि अंतिम अनुमान, जिसकी संभावना सबसे अधिक थी और जिसके लिए उसने सब त्याग दिया था—बस केवल उस विकट समय के आने की प्रतीक्षा की थी। उसका मांस मुलायम, मोटा था और उसने सोचा कि वो ऐसा महसूस कर सकता था कि एक नीला तत्त्व उसे चारों तरफ़ से ढक रहा था। उसने ज़ोर से नाक से हवा नीचे की ओर खींची, जिससे ख़ुद के शरीर की गंध वो सूँघ सके, लेकिन केवल फ़ार्मेल्डिहाइड की ही बदबू दूसरे कमरे से आ रही थी, जोकि उसकी घ्राणेंद्रिय झिल्ली को उत्तेजित और व्याकुल कर रही थी, जिसके साथ बर्फ़ जैसी ठंडक और न भूलने वाली थरथराहट थी। जिसके बाद उसे किसी बात की भी चिंता नहीं थी। कोने बैठे झींगुर ने अपना राग फिर से गाना शुरू कर दिया था, जबकि कमरे की छत से एक मोटी बूँद ने उस पूरी छत में तेज़ी से बहते हुए ठीक कमरे के बीच में टपकना शुरू किया था। उसने बूँद के टपकने की आवाज़ सुनी, तो उसे इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वो जानता था कि उस जगह से लकड़ी बहुत पुरानी थी (छत की), लेकिन उसने फिर ऐसी कल्पना की कि वो बूँद जो ठंडे, अच्छे और मित्रवत पानी से बहकर आ रही थी; वहाँ से, जहाँ बेहतर जीवन था और वो जो विस्तृत था, जो पूरी तरह से मूर्खतापूर्ण घटनाओं-जैसे प्यार, पाचन-शक्ति या जुडवाँ बच्चों से संबंधित बातों को अपने अंदर नहीं समेटे था। ऐसा हो सकता था कि वो उस कमरे के शून्य को एक घंटे में भर देती या फिर इस काम में हज़ारों साल लग जाते और उसमें वो विनाशी (मृत्यु) कवच घुल जाता और वो व्यर्थ तत्त्व, वो भी संभवतः गल जाता क्यों नहीं? इन शीघ्र घटित होने वाले छोटे पलों में कुछ भी नहीं था, बल्कि एक चिपचिपा मिश्रण जो अंडे की ज़र्दी और फटे हुए दूध के पानी के मिलने से बना था, उसके अंदर था। सब कुछ अब बराबर था। केवल ख़ुद उसकी मौत आ गयी थी, जो उसके और क़ब्र के बीच में थी। उसने त्याग दिया, फिर उसे बूंद के टपकने की आवाज़ सुनायी दी, जो मोटी, भारी और सही थी। ऐसा लगा कि यह टप-टप की आवाज़ किसी दूसरे संसार से आ रही थी, भ्रम और बेतुकी चीज़ों से भरा संसार, जिसमें विवेक और बुद्धिसंपन्न प्राणि रहते थे।

अंग्रेज़ी से रूपांतर : **रश्मि भार्गव**

91, शिव शक्ति नगर, निर्माण नगर के पास, किंग रोड, जयपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलेरीजी की कहानियों से गुज़रते हुए

छबिल कुमार मेहेर

कहानी हर दृष्टि से एक पुरानी विधा है। साधारणतया रचनाकार जहाँ अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए कविता का सहारा लेता है वहीं दूसरों के बोझिल मन को हल्का करने के लिए गल्प या कहानी का। प्राचीन काल से ही वाचिक परंपरा के संवाहक के रूप में कथात्मक आख्यान पीढ़ी दर पीढ़ी (लोक कथाओं के माध्यम से) बहते चले आ रहे थे। परंतु आज हम जिस 'कलात्मक कहानी' या आधुनिक दृष्टि से 'परिपक्व कहानी' की बात करते हैं उसका उन्मेष हिंदी साहित्य के 'आधुनिक काल' या 'भारतेंदु युग' तक नहीं हुआ था। भारतेंदु युग तक 'कहानी' के नाम से जो साहित्य हमारे हाथ लगता है, वह या तो स्वप्न कथा या नीति या हास्य प्रधान कथाएँ हैं या कथा और निबंध के बीच का मिलाजुला रूप -'कथात्मक निबंध'। यह पुरानी कहानी का प्रस्थान बिन्दु हे। पहली कहानी के रूप में जिन चार-पाँच कहानियों के नाम गिनाये गए हैं ('रानी केतकी की कहानी', 'प्लेग की चुड़ैल', इंदुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय', 'दुलाईवाली' या 'टोकरी भर मिट्टी' आदि) उनमें से 'प्लेग की चुड़ैल' को छोड़कर शेष सभी कहानियाँ पुरानी कहानियों की श्रेणी में आती हैं क्योंकि इन कहानियों में अपने समय को पहचानने की ललक सिरे से ग़ायब हैं। गोकि इसमें किसी प्राचीन समय की कथा को दोहराया गया है फिर भी अपने समकालीन दौर की खोज खबर लेने या उसके साथ संबंध बनाने की बेचैनी दूर-दूर तक नज़र नहीं आती। कहने का तात्पर्य है कि हिंदी कहानी की वास्तविक शुरूआत द्विवेदी युग से ही होती है। आचार्य शुक्ल ने हिन्दी कहानी की उत्पत्ति के बारे में ठीक ही लक्ष्य किया था कि 'अंग्रेज़ी की मासिक पत्रिकाओं में जैसी छोटी-छोटी आख्यायिकाएँ या कहानियाँ निकला करती हैं वैसी कहानियों की रचना 'गल्प' के नाम से बंगभाषा में चल पड़ी थी। ये कहानियाँ जीवन के बड़े मार्मिक और भाव व्यंजक खंड-चित्रों के रूप में होती थी। द्वितीय उत्थान की सारी प्रवृत्तियों का आभास लेकर प्रकट होने वाली 'सरस्वती पत्रिका' में इस प्रकार की छोटी कहानियों के दर्शन होने लगे।[1]

अतः हिन्दी कहानी को निखारने का श्रेय द्विवेगीयुगीन पत्रिका 'सरस्वती' और महावीर प्रसाद द्विवेदी, दोनों को जाता है। ऐसे में संस्कृत एवं अपभ्रंश के अधिकारी विद्वान एवं अंग्रेजी के ज्ञाता पं. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' (सन् 1883 ई.- 1920ई.) को हिंदी के पहले आधुनिक कहानीकार की मान्यता उनकी बहुचर्चित कहानी 'उसने कहा था' की खातिर मिलती है जो सन् 1915 ई में 'सरस्वती' (भाग 16ए खण्ड 9ए पृ. 318) में प्रकाशित हुई थी। सिर्फ़ एक ही कहानी के सबब हिंदी साहित्य में अमर होने का गौरव मात्र गुलेरी जी को ही प्राप्त है। जिस प्रकार अपने एक ही उपन्यास 'वुदरिंग हाइट्स' के लिए अंग्रेजी महिला कथाकार 'एमिलीब्रॉण्टे' अंग्रेज़ी साहित्य में अमर हैं उसी प्रकार हिन्दी कथासाहित्य में अपनी एक ही कहानी 'उसने कहा था' की बदौलत चंद्रधर शर्मा गुलेरी। हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा में यह कहानी आज भी मील का पत्थर है। 'उसने कहा था' से पहले गुलेरी की पहली कहानी पर विचार करेंगे।

विद्वानों और आलोचकों के बीच अब तक गुलेरी जी की तीन कहानियों ('सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा', तथा 'उसने कहा था') पर ही चर्चा होती रही। नवीन शोध और खोज के अनुसार एक असंपूर्ण कहानी को मिलाकर, गुलेरी की कहानियों की संख्या छह मानी जा रही है। कालक्रम की दृष्टि से 'घण्टाघर' को उनकी पहली कहानी स्वीकारी जा रही है जो सन् 1904 ई. में 'वैश्योपकारक (वर्ष 1, संख्या 8) में प्रकाशित हुई थी। दरअसल, यह कहानी नहीं एक आलेख है जो शैली की दृष्टि से 'कथात्मक निबंध' का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है क्योंकि उसका पूर्वार्द्ध 'कहानी' है तो उत्तरार्द्ध 'निबंध'। यही कारण है कि अनेक आलोचक इसे कहानी की श्रेणी में नहीं रखते। महत्वपूर्ण बात यह है कि स्वंय गुलेरी जी इसे कहानी नहीं लेख ही स्वीकारते हैं। परंतु यह आलेख 'निबंध' की अपेक्षा 'कहानी' की ओर झुका हुआ है। इसकी कथावस्तु की मौलिकता को स्पष्ट करते हुए गुलेरी जी महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को लिखते हैं कि 'मालूम होता है कि आपको मेरी भाषा, मेरी तर्ज वगैरा पसंद नहीं है, किन्तु कुछ-कुछ उस लेख के लिए आपको Lingering Bondness है। वह लेख Carlyle का अनुवाद नहीं है। वह उसके अनुकरण पर स्वतंत्र लेख है। मैंनें कुछ-कुछ कार्लाइल के Style का भी अनुकरण किया है। आप शायद जानते होंगे कि कार्लाइल का कितना कुढंगा है।[2] स्पष्ट है कि घंटाघर कार्लाइल की कथावस्तु और शैली का नवीन रूपान्तर है और इसलिए गुलेरी जी इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंत में कार्लाइल का अनुकरण- An imitation of Carlyle का संदर्भ देते हैं। यह 'कथात्मक निबंध' जहाँ एक ओर समाज में धर्म-भक्ति की आवश्यकता पर प्रश्न चिह्न लगाता है, वहीं दूसरी और मनुष्य की अपनी ज़रूरतों व सुविधाओं के मुताबिक चीज़ों को देखने की दृष्टि में आने वाली तब्दीली का भी शिद्दत से उल्लेख करता है। आलेख में कोई महत्त्वपूर्ण घटना या विशेष कथा का वर्णन नहीं, वरन् स्वतः ही मंदिर बनाते जाने की निर्माण-प्रक्रिया, जो अन्ततोगत्त्वा एक घंटाघर का रूप ले लेता है, को व्यंग्यात्मक शैली में उकेरा गया है। गुलेरी जी लिखते हैं कि 'बड़े आदमी वहाँ घोड़ों, हाथियों पर आते, मखमल बनाते बिछाते जाते, और अपने को धन्य मानते आते। गरीब आदमी कण-कण माँगते वहाँ आते और जो अभागे वहाँ न आ सकते वे मरती बेला अपने पुत्र को थीजी की आन दिखलाकर वहाँ जाने का निवेदन कर जाते।[3] सौ वर्ष पहले की ये स्थितियाँ आज भी ज्यों की त्यों हमारे समाज में मौजूद हैं और इसी में गुलेरी जी की दूरदृष्टि और सार्थकता निहित है।

गुलेरी जी की दूसरी कहानी 'धर्मपरायण रीछ' सन् 1906 ई. में 'समालोचक' में प्रकाशित हुई थी। यह उनकी मौलिक कहानी नहीं वरन् विदेशी रीछ का स्वेदशी रूपांतर है। बक़ौल विष्णु प्रभाकर, 'यह रचना कहानी तो मानी जा सकती है परंतु आधुनिक कहानी से उसका कोई संबंध नहीं है। विषय का प्रतिपादन कुछ कथावाचक की शैली में है। अगर उसके अंत में थोड़ा परिवर्तन कर दिया जाए तो यह एक कहानी बन सकती है पर इसे मौलिक कहानी नहीं कह सकते। एक प्राचीन आख्यान को उन्होंनें आधुनिक शैली में लिखने का प्रयत्न किया है। यदि वे इस प्रतीक-कथा को आज के यथार्थ के साथ जोड़ पाते तो सम्भवतः यह और भी अच्छी बन जाती। इसकी गणना उनकी कहानियों में निश्चय ही की जा सकती है।[4] कहानी के अंत में कहे गये - 'भारतवासियो, यह तुम्हारे ही 'महाभारत' की कथा है' वाक्य के आधार पर कुछ आलोचक कथा का आधार हमारे प्राचीन 'महाभारत' को स्वीकारते हैं। प्रतीकात्मक शैली में कही गई यह कहानी प्राचीन भारत की आतिथ्य सेवा के आदर्श पर प्रकाश डालता है जो अन्ततः भारतीय संस्कृति के 'अतिथि देवो भवः' का समर्थन करती है। कहानी में पौराणिकता और उपदेशात्मकता के निरे संगुंफन के कारण भले ही हम इसे आधुनिक कहानी न माने, किंतु गुलेरी जी की प्रारंभिक कहानी के रूप में इसकी महत्ता असंदिग्ध है।

यह दोनों कहानियाँ गुलेरी जी को उदीयमान कहानीकार रूप को ही नहीं, हिंदी कहानी के प्रारंभिक उलझे स्वरूप को भी देखने-समझने के लिहाज़ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

गुलेरी जी की तीसरी कहानी 'सुखमय जीवन' सन् 1911 में 'भारत मित्र' पत्रिका में छपी थी। यह कहानी जहाँ एक ओर मनोविचार और जीवन-व्यवहार के बीच स्थित अंतर को बखूबी रेखांकित करती है वहीं दूसरी ओर बदलते सामाजिक मूल्यों को भी खूबसूरती के साथ उकेरती है। कहानी का नायक जयदेव शरण नयी चेतना संपन्न विचारक है। उसकी यह सोच- 'समाज की कुरीतियों से लड़ने के लिए सामूहिक प्रयास की ज़रूरत है, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता' - उसकी परिपक्व मानसिकता की पुष्टि करती है। इतना ही नहीं अविवाहित होने के बावजूद वह 'सुखमय दाम्पत्य जीवन' पर एक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना कर डालता है, जिसे पढ़कर कई विवाहितों का उद्धार हो जाता है। परंतु पुस्तक की यही सफलता, उसकी ज़िंदगी के लिए अभिशाप साबित होती है, क्योंकि पाठकों का कहना है कि एक शादीशुदा व्यक्ति ही ऐसा ग्रंथ लिख सकता है (ठीक वैसे ही जैसे कि पानी में उतरे बिना तैराकी सीखी नहीं जा सकती)। यही कारण है कि वह अपनी प्रेमिका (18 वर्षीय युवती-कमला) की नज़र में पापी बन जाता है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप नायक जीवन की कड़वी सच्चाई उगल देता है, 'भाड़ में जाए 'सुखमय जीवन'। उसी के मारे नाक में दम है। 'सुखमय जीवन' के कर्ता ने क्या यह शपथ खा ली है कि जन्म भर कुँआरा ही रहे। क्या उसमें प्रेमभाव नहीं हो सकता।[5] सबसे बड़ी बात यह है कि समाज इस कड़वी सच्चाई को सहज ही स्वीकार कर लेता है और नायिका का शक भी दूर हो जाता है जिससे कहानी को अपना सुखांत मिल जाता है।

गुलेरी जी की चौथी कहानी 'बुद्धू का काँटा' सन् 1914 ई. में 'पाटलिपुत्र' में प्रकाशित हुई थी। कहानी एक ऐसे अध्ययनरत युवक की भावुक परंतु मनोरंजक कहानी है जिसे दुनियादारी का बिल्कुल ज्ञान नहीं। कहानी का आधार वाक्य-वाहजी वाह, ऐसे बुद्धू के आगे भी कोई लहँगा पसारेगी-के इर्द गिर्द प्रेम का तानाबाना बुना गया है। इसके बीच कहानी ज़रूरी तौर पर अनेकानेक प्रासंगिक बातों-दहेज, शोषण, पर्दाप्रथा, धनाढ्यवर्ग के वर्चस्व, पर्दाप्रथा, बेमेल विवाह आदि को भी उठाती है। एकाध उदाहरण से बातें स्पष्ट हो जाएगी। कहानी का मुस्लिम पात्र टट्टूवाला है। नवाब उस पर जुल्म करता है, उसकी बीवी पर जुल्म करता है, वह कहता है 'मैं फरियाद नहीं करता क्योंकि 'कचहरियाँ गरीबों के लिए नहीं है, बा'छा, वे तो सेठों के लिए हैं।[6] यह बात आज उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी उस समय था, बल्कि उस समय से ज़्यादा। ऐसे ही कांगड़ा के संयुक्त परिवार में दंपत्ति की मजबूरी को गुलेरी जी ने ठीक ही लक्ष्य किया था- 'हिन्दू घरों में, कुछ दिनों तक दंपत्ति चोरों की तरह मिलते हैं।' यह संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली का वर या अभिशाप है।[7] इस प्रकार कहानी की अनेक समसामयिक बातों को प्लॉट में समाहित कर उसके फलक को विराट् रूप दिया गया है। परंतु अस्वाभाविक, अप्रासंगिक और अतिरंजित कहानी के रूप में 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का कांटा' की आलोचना करते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं कि 'सुखमय जीवन' में तो वास्तव में कहानी अच्छी तरह बन भी नहीं पाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी चरम घटना में विस्मय का अत्यंत अस्वाभाविक और अतिरंजित प्रयोग है। 'बुद्धू का काँटा' उससे कहीं अधिक सफल कहानी है, परन्तु उसमें भी अतिरंजना और अप्रासंगिकता है। इसकी नायिका - (शायद यह पारिभाषिक और कृत्रिम नागरिक विशेषण उसके लिए गुलेरी जी स्वीकार न करते) - कुछ अधिक वाग्वीर और पहलवान है। इसके अतिरिक्त उस पहाड़ी टट्टू वाले की सारी कहानी ही अप्रासंगिक है।[8] नगेन्द्र जी की यह छानबीन गलत तो नहीं, अधूरी ज़रूर है। अतिरंजना के फेरे में आकर उन्होंनें बहुत-से महत्त्वपूर्ण मुद्दों को छोड़ दिया है और कुछ अस्वाभाविक मुद्दों के चलते वे अनेक प्रासंगिक बातों का ज़िक्र नहीं करते।

गुलेरी जी की लोकप्रिय एवं बहुचर्चित कहानी 'उसने कहा था' विषय-वस्तु और संरचना के लिहाज से आज भी हिंदी की अद्वितीय कहानी मानी जाती है। 'यथार्थपूर्ण वातावरण में प्रेम के सूक्ष्म तथा उदात्त स्वरूप' के रूप में इस कहानी का मूल्यांकन करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि '....उसमें भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है-केवल झाँक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी-भर में कहीं प्रेमी की निर्लज्जता, प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स विवृत्ति नहीं है। सुरूचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।[9] और इसी में गुलेरी जी की विशिष्टता छिपी हुई है। शैली की नवीनता के साथ सूक्ष्म अर्थवक्रता गुलेरी जी की अपनी विशेषता है।

'उसने कहा था' कहानी को सहज ही दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है, प्रेमोत्पत्ति की महक से लिपटा ('तेरी कुड़माई हो गई?'... 'हाँ हो गई') कहानी का पहला अतीत पक्ष है और त्याग, प्रतिज्ञा व उत्साह से भरा ('जैसे मेरे प्राण बचाए थे, वैसे ही इन दोनो को बचाना') मार्मिक वर्तमान पक्ष। कहानी में वीर और शृंगार रस का उदात्त और विशुद्ध निरूपण हुआ है। पूर्वदीप्ति (फ़्लैश बैक) जैसी आधुनिक शैली के माध्यम से आगे बढ़ती इस कहानी की कथावस्तु, शिल्प और भाषा की दृष्टि से पर्याप्त परिपक्वता ली हुई है; साथ ही, नवीनता व शाश्वतता से युक्त भी। इसका रचना विधान या संरचना कौशल इतनी विलक्षणता लिए हुए हैं कि समकालीन दौर में इसका पुनर्मूल्यांकन कभी 'प्रचलित धारणा से परे प्रेम कहानी से इतर स्त्री-पुरूष के बीच सहज मैत्री-भाव' के रूप में किया जा रहा है तो कभी यह 'ऐसे भरोसे की कथा के रूप में रेखांकित की गई जो प्रेम में ही उपजती और सिरजती है', तो कभी युद्धों के दिनों की प्रेमकथा' के रूप में। इस कहानी की उच्छ्वसित प्रशंसा करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि 'इसके पक्के यर्थाथवाद के बीच, सुरूचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ संपुटित है।[10] कहने की ज़रूरत नहीं की यह कहानी अपने समय से बहुत आगे की कहानी कहती है। यथार्थ के धरातल पर प्रेम की सूक्ष्म अनुभूति और त्याग के विराट उदात्त स्वरूप की मार्मिक शैली मे कही गई यह कालजयी कहानी एक साथ अनेक प्रासंगिक बातों को समेटती चली जाती है। लब्धप्रतिष्ठ कथाकार राजेन्द्र यादव ने ठीक ही टिप्पणी की है कि 'त्याग और बलिदान की भारतीय परंपरा भी इसके मूल में है। वह यदि सूबेदारनी के उदात्त गंभीर प्यार और अडिग विश्वास की कहानी के रूप में देखते हैं तो यह समीचीन भी है। यदि प्रेम का धागा दोनों ओर न बँधा होता तो लहना सिंह से अपने बेटे और पति की सुरक्षा के लिए कहती, वह यूँ ही उसका जीवन न माँग लेती।'[11] बार-बार मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन की ताप से गुजरती यह कहानी हर बार नए कोण से नया संकेत देने में सफल रही हैं।

अगर हम इस कहानी के प्रेमचित्रण पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं तो भारतीय संस्कृति के लैला-मजनूँ, हीर-राँझा आदि के अमर-प्रेम की वास्तविकताओं पर भी प्रश्नचिह्न लग जाते हैं। पहली बार इस कहानी में आंचलिक महक, सामाजिक चेतना, और आधुनिक दृष्टि का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। अनेक आंचलिक शब्दों के प्रयोग होने के बावजूद इसे हम आंचलिक कहानी की श्रेणी में नहीं रख सकते क्योंकि आंचलिक विशेषता अपनी समग्रता के साथ यहाँ मौजूद नहीं, सिर्फ उसकी भीनी खुशबू यहाँ विद्यमान है। फिर आंचलिकता को प्राथमिकता देना कहानीकार के ऐजेंडा में नहीं।

कहानी का नायक पश्चिमी शूरवीर की भाँति संवेदनशील, वीर, निर्भय, निस्वार्थी, देशभक्त, उदात्त-प्रेमी, कर्तव्यपरायण और त्याग भावना से ओतप्रोत है। कहानी के आखिरी हिस्से में घायल पड़ा लहना सिंह अतीत की स्मृतियों के बीच डूबता-उतरता अपनी उसी 12 बरस की उम्र में जा पहुँचता है जहाँ वह अपने मामा के यहाँ अमृतसर आ गया था। वहीं बाजार में उस लड़की से भेंट हुई थी... अतीत से वर्तमान मे आते जाते 25 बरसों का सफर बहुत कम समय में तय हो जाता है। हजारा सिंह सूबेदार की पत्नी से गाँव में मिलना... इससे बहुत कुछ याद हो आता है। गुलेरी जी के शब्दों में 'मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने हो आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ हो जाते हैं। समय की धुँध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।'[12] इसे पढ़ते ही गोदान में वर्णित होरी के अंतिम क्षण जहन में फिर ताजा हो जाते हैं। प्रेमचन्द लिखते हैं कि 'होरी के सिर में चक्कर आ रहा था.... आँखों के सामने कैसा अँधेरा छा जाता है। उसकी आँखें बंद हो गई और जीवन की सारी स्मृतियाँ सजीव हो-होकर हृदय-पट पर आने लगी... वह सुखद बालपन आया, जब वह गुल्लियाँ खेलता था और माँ की गोद में सोता था। फिर देखा, जैसे गोबर आया है. .. धनियाँ दुलहिन बनी हुई... फिर एक गाय का चित्र सामने आया, बिल्कुल कामधेनु-सी।'[13]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलेरी जी की छठी अधूरी कहानी 'हीरे का हीरा' 6 जुलाई 1987 को 'जनसत्ता' में छपी थी। यह कहानी शायद 'उसने कहा था' की पूरक कहानी के रूप लिखी गई थी। कहानी का जो भाग दो आज हमें उपलब्ध है उसमें लहना सिंह की वापसी का जिक्र है '....लहनासिंह की टाँग चीन की लड़ाई में घायल हो गई है और हांगकांग के अस्पताल में उसकी टाँग काट दी गई है।'[14] लहनासिंह की माँ मानो उसे देखने के लिए जीवित थी। जब पुत्र ने आकर उसके पैर छुए तो 'माता ने उसके सिर को अपनी छाती के पास लेकर उसके मुख को आँसुओं की वर्षा से धो दिया जो बाक्तरों की गोलियों की वर्षा के चिह्न कम से कम तीन जगह स्पष्ट दिखा रहा था।'[15] प्रथम भाग में लहनासिंह की पत्नी गुलाबदेई ने पति के आने की खुशी में घर को झाड़ पोंछ कर साफ कर दिया है, घर की चीज़ों को करीने से जमा दिया है। आखिर तीन साल के बाद लहनासिंह घर जो लौट रहा था। और 'ये तीन साल उसने कौए उड़ाते और पल-पल गिनते काटे थे।' और कहानी का अंतिम अंश इस विच्छेद वेदना को क्या खूब उकेरती- 'वह रोती गई और रोती गई और फिर रोती गई। क्या यह आश्चर्य की बात है? जहाँ की स्त्रियाँ पत्र लिखना-पढ़ना नहीं जानतीं और शुद्ध भाषा में अपने भाव नहीं प्रकाश कर सकतीं और जहाँ उन्हें पति से बात करने का समय भी चोरी से ही मिलता है वहाँ नित्य अविनाशी प्रेम का प्रवाह क्यों नहीं अश्रुओं की धारा की भाषा में. ...।'[16] कहानी यहीं से अधूरी पड़ी हुई है। उपलब्ध दोनों भागों को देखकर सहज ही कहा जाता सकता है कि अगर यह कहानी पूरी होती तो एक महत्वपूर्ण सुखांत कहानी ज़रूर बनती।

विद्वानों में इन छह कहानियों के अलावा गुलेरी जी की एक और कहानी 'पनघट' का भी ज़िक्र होता है। 'बुद्धू का काँटा' कहानी के पनघट-प्रसंग में साम्य रखने के कारण कुछ विद्वानों ने 'पनघट' को 'बुद्धू का काँटा' का तीसरा खंड होने का अनुमान लगाया है। इसके बारे में विद्याधर गुलेरी जी लिखते हैं कि, 'पनघट', 'बुद्धू का काँटा' न होकर स्वतंत्र कथा है जिसे राजकमल प्रकाशन से शीघ्र ही प्रकाशित 'गुलेरी ग्रंथावली' में समाविष्ट किया जाएगा।'[17] परंतु यह कहानी अभी तक हिंदी पाठकों के सामने नहीं आई है। हो सकता है आने वाले दिनों में इसके अस्तित्व का भी ठोस प्रमाण मिले। अभी इस कहानी के बारे में कुछ भी कहना अप्रासंगिक होगा।

गुलेरी जी की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना और व्यंग्य का संगुंफन ही उन्हें कालातीत बनाते हैं। भाषा का ऐसा जीवांत प्रयोग उनके समकालीनों में देखने को नहीं मिलती। डॉ. नगेन्द्र गुलेरी जी भाषा शक्ति को प्रेमचन्द, शुक्लजी और राहुलजी के आगे की बताते हैं। उन्होंने गुलेरी जी के भाषा वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए जो लिखा है उसे यहाँ उद्धृत करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ- 'ऐसी प्रौढ़ भाषा उस समय तो कोई लिख ही क्या सकता था, गद्य के समुन्नत युग में भी कोई लिख सका है, इसमें मुझे संदेह है। प्रेमचंद की भाषा में इतनी प्रौढ़ता और शक्ति कहाँ है, और शुक्लजी की भाषा में जीवन की इतनी स्फूर्ति और यथार्थता कहाँ है। .....उन्होंने अपनी व्यापक शब्दशक्ति और भाषागत पाण्डित्य का उपयोग जीवनगत भाषा गढ़ने में किया। ....गुलेरी जी के बाद इस विषय का उनसे गुरूतर उदाहरण हमारे पास राहुल जी का है। परंतु राहुल जी में एक दोष है, उनमें ह्यूमर नहीं, इसलिए उनकी भाषा में समृद्धि और शक्ति अधिक होते हुए भी स्फूर्ति ओर फड़क उतनी नहीं है जितनी कि गुलेरी जी की भाषा में।'[18]

कहानी के अलावा गुलेरी जी ने विपुल निबन्ध, शोध परक आलेख, समीक्षाएँ एवं टिप्पणियाँ लिखी हैं जिन्हें देख-पढ़ कर उनकी बहुज्ञता की दाद दिए बिना रहा नहीं जाता। हिंदी नवजागरण के संदेश के साथ नवीन आधुनिक चेतना को गुलेरी जी ने अपने विपुल लेखन के माध्यम से बखूबी प्रकट किया था। 'गुलेरी जी आधुनिकता के अग्रदूत हैं। भारतेंदु द्वारा प्रवर्तित आधुनिक बोध के स्वरूप को वे विकसित करते हैं। उस आधुनिकता की अर्थात मानवतावाद की गहरी जड़ें तलाशते हैं।[19] और उनकी यही महानता, आधुनिकता और प्रगल्भता आनेवाली कई सदियों तक अपने पाठकों को विस्मय में डालती रहेंगी और आलोचक उन्हें पुनर्मूल्यांकन के घेरे में लाकर उनकी नयी-नयी विशेषताओं को उद्घाटित करते रहेंगे।

संदर्भ संकेत

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 275।
2. डॉ. पीयूष गुलेरी, श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरीः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 365।
3. सं. डॉ. मनोहरलाल, उसने कहा था तथा अन्य कहानियाँ, पृष्ठ 62।
4. विष्णु प्रभाकर के पत्र, 21.7.1988, उसने कहा था तथा अन्य कहानियाँ की भूमिका, पृष्ठ 17।
5. सं. डॉ. मनोहरलाल, उसने कहा था तथा अन्य कहानियाँ, पृष्ठ 78।
6. वही, पृष्ठ 83।
7. वही, पृष्ठ 104।
8. डॉ. नगेन्द्र, विचार और अनुभूति, पृष्ठ 50।
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 275।
10. वही, पृष्ठ 275।
11. डॉ. रफ़ीक़ मसूदी, हिन्दी शिरजा, अगस्त-सितम्बर, 2006, अंक 3, प्र. सं. - पृष्ठ 19।
12. सं. डॉ. मनोहरलाल, उसने कहा था तथा अन्य कहानियाँ, पृष्ठ 121-122।
13. प्रेमचन्द, गोदान, पृष्ठ 408।
14. सं. डॉ. मनोहरलाल, उसने कहा था तथा अन्य कहानियाँ, पृष्ठ 128।
15. वही, पृष्ठ 129।
16. वही, पृष्ठ 130।
17. आजकल, अक्टूबर 83, पृष्ठ 79।
18. डॉ. नगेन्द्र, विचार और अनुभूति, पृष्ठ 49।
19. सं. विश्वनाथ त्रिपाठी, चंद्रधर शर्मा गुलेरीः हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत, प्राक्कथन, पृष्ठ 11।

सहायक प्रबन्धक, राजभाषा

इंडियन ओवरसीज़ बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय, डी पॉल स्कूल कैंपस

इंजीनियरींग स्कूल रोड, ब्रह्मपुर-ओड़िशा-760010

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमिकों का दर-बदर होना

वेद प्रकाश

बात सीधी होनी चाहिए। बात में कोई लाग-लपेट नहीं होना चाहिए। लाग-लपेट की बातों का कोई निहितार्थ नहीं होता। मैं साफ़ कर दूँ कि धर्म का मुलम्मा किसी भी चीज़ पर चढ़ा दीजिए वह बरक की बरफी हो जाएगी। बरफी सड़ी है या कैसी है, आपको सोचना नहीं है। केवल खाना है। कुछ ऐसा ही हाल श्रमिकों का है। श्रमिकों ने माँग की कि मजदूरी घंटों के हिसाब से तथा मजदूरी का समय तय हो। लेकिन उद्योगपति, पत्रकार एवं सांसद सभी मंदी की दुहाई देने लगे, माओवाद, नक्सलवाद की बात करने लगे। हर्षवर्धन शाही ने तो यहाँ तक कहा कि 'करीब एक साल से विभिन्न कारखानों में चल रहे श्रमिक आंदोलनों के इधर तेज़ हो जाने से यहाँ के औद्योगिक जगत् में भूचाल आ गया है। आंदोलन के तौर-तरीकों और श्रमिक नेताओं की कार्यशैली से उद्यमी खासे परेशान हैं। फिर आगे लिखते हैं कि इस आंदोलन की मंशा यहाँ के उद्योग को बंद करा कर पूर्वांचल को एक और संकट में झोंकने की है।" (हिन्दुस्तान, पृ0 1, दिनांक 15 सितंबर, 2009) संपादकीय बचाना है, इसलिए वे मजदूरों की बात नहीं कर सकते। वे उद्योगपतियों से नहीं पूछ सकते कि मंदी के दौर में उनके बच्चे कार से स्कूल कैसे जाते रहे, बिजली की कमी के बावजूद उद्योगपतियों के ए0सी0 कैसे चलते रहे। शाही जी को यह नहीं दिखाई पड़ता है कि मजदूरों से नियत समय से ज़्यादा देर तक बिना भुगतान किए कैसे काम लिया जाता रहा? मैं पिछले कई दिनों से देख रहा हूँ, चिलचिलाती धूप में श्रमिक हाथों में झण्डा लिए, नारों के साथ सड़क पर पैदल मय परिवार जिलाधीश कार्यालय तक जाते हैं। प्रत्येक बार तरंग चौराहे पर भीड़ लग जाती है। लोग कहते हैं, बताइये क्या ज़रूरत है, हल्ला करने को। सारी प्रताड़ना के बावजूद वे कचहरी तक पहुँचते हैं। दिनभर कार्यक्रम करते हैं। लेकिन शाही जी यह हिम्मत नहीं कर सकते कि वे मजदूरों का बयान दर्ज़ करें तथा उस पर टिप्पणी करें। यहाँ का श्रम विभाग निकम्मा ही निकला। पुस्तकों में दर्ज़ श्रम के खण्डों/ पाठों/ शब्दों को यहाँ खुलेआम जलाया जा रहा था। श्रम विभाग के लोग मदहोश कमरों के अंधेरों में खोये हुए थे। उन्होंने समझौता जैसा भी प्रयास नहीं किया। उद्योगपतियों से पूछने की ज़रूरत भी नहीं समझी कि वे समय से ज़्यादा देर तक कैसे श्रमिकों को रोकते थे? इस विभाग का अस्तित्व ही नहीं दिखाई पड़ता। उद्योगपति, अखबार, सांसद सभी धमकी दे रहे हैं कि उद्योग बंद करके वे बाहर चले जाएंगे। अरे, कहीं भी जायेंगे, श्रमिक की ज़रूरत पड़ेगी ही। कोई भी उद्योग बिना मजदूर के चल पाएगा क्या? आज जो ताकत इन उद्योगपतियों के पास है, वह मजदूरों के दम पर है। उनके खुश बच्चे मजदूरों के दम पर हैं। आज के समय में मजदूरों की हिफ़ाज़त ज़रूरी है।

हमारे सांसद योगी जी को श्रमिकों की समस्या नहीं सालती, उन्हें ज़्यादा परेशानी है—माओवाद से। तालाबंदी के पीछे माओवादियों तथा नक्सलवाद की एक गहरी साजिश मानते हैं। ये ताकतें लोगों को बेरोज़गार बनाती हैं तथा पूर्वांचल को औद्योगिक अशांति देती हैं जिसमें चर्च का एक मुखिया शामिल है। (हिन्दुस्तान, दिनांक 17 सितंबर, 2009) बताइये, आप इतने कमजोर हैं कि आपको साजिश करने वालों की जानकारी है, लेकिन कुछ करने में असमर्थ हैं। जनता को यह बताना चाहिए कि क्या खाद का कारखाना नहीं शुरू करवाना चाहिए? एक तरफ चीनी मिल बंद होती गयीं, क्या इनकी ज़रूरत नहीं थी? मैं साफ़ कर दूँ कि धर्म ने इस क्षेत्र को पिछड़ेपन में धकेल दिया है। मेडिकल कॉलेज, सरकारी हस्पताल, सरकारी पुस्तकालय तथा सरकारी विद्यालय की दयनीयता उन लोगों से पूछिए जो एक बार जाने के बाद दुबारा जाने का नाम नहीं लेता। क्या इसमें भी माओवाद का असर है? क्या सभी माओवादी अपना-अपना हस्पताल, अपना-अपना स्कूल भी चलाते हैं? इस तरह का कार्य करने वाले पुस्तकालय नहीं चला सकते, क्योंकि यह किसी भी वाद से नहीं जुड़ा है। इस काम के लिए किसी धंधेबाज की नहीं अपितु किसी विज्ञ की ज़रूरत होती है। यहाँ किसी हस्पताल का पंजीकरण ज़रूरी है या नहीं, यह तो माओवाद के विरोधी जाने लेकिन यह तो निश्चित है कि लोग मौत के मुँह में ज़रूर धकेले जा रहे हैं। लोग अशिक्षा के शिकार हो रहे हैं। पाखण्ड की प्रवृत्ति जड़ जमाती जा रही है। लोग शिकार होने को बेचैन हैं। मौत ही इनकी दवा है। इससे बचने का कोई तरीका है, तो, वह हवन इत्यादि में ही है, जो क्रमशः नियमित चल रहा है। कोई भी इनसे सवाल नहीं कर सकता। माओवाद सब जगह आ जाता है। इसे लाने वाले यही धर्माधिकारी हैं। यह इनका पलायन है, अक्षमता है, यह बात लोगों को कैसे समझ आएगी? जब तक उनकी आँख पर धर्म का चश्मा चढ़ा है। इन्हें सब जगह केवल माओवाद व नक्सलवाद ही नज़र आएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मजदूरों के प्रति इस तरह का व्यवहार समाज को पीछे धकेलता है। इस समय में ज़्यादा ज़रूरी है, मजदूरों को बचाने की। जब सर से पानी गुज़र जाता है, तभी कोई मजदूर सड़क पर आता है। ऐसी स्थिति में मजदूरों से वार्ता की जानी चाहिए तथा उचित हल निकाला जाना चाहिए न कि उन्हें कमजोर समझकर तरह-तरह से प्रताड़ित करने का प्रयास करना चाहिए। मजदूर जब सड़क पर उतरता है, तो वह आग होता है। आग ज़रूरी है, जीवन के लिए। मैं प्रतिरोध को बुरा नहीं मानता। किसी को भी बुरा नहीं मानना चाहिए। प्रतिरोध निहत्थे का अस्त्र होता है। यह अस्त्र उसे जीवन देता है। इसे सभी को बचाना चाहिए। एक उद्योगपति को मजदूर अपना जीवन देता है। उद्योगपति को मानवीय होने का प्रयास करना चाहिए। यह मानवीयता देश को आगे बढ़ाती है। पवन बथवाल का कहना है कि उद्योगपति और व्यापारी से बड़ा एक्टिविस्ट दूसरा नहीं होता। बात तो सही है, लेकिन प्रत्येक एक्टिविस्ट को कार्यकर्ता चाहिए। ये कार्यकर्ता मजदूर होते हैं, जो उनके उद्देश्यों को रूप देते हैं, आगे बढ़ाते हैं। अतः दोनों में सामंजस्य आवश्यक है जो संभव नहीं दिखाई दे रहा है। जिन्हें हस्तक्षेप करना चाहिए, वे उद्योगपति से मिलकर अपनी राजनीति या अफसरी झाड़ने में लगे हैं।

मजदूरों, तुम्हारी एकता एक दिन अवश्य रंग लायेगी। याद करो उस दिन को जब तुम्हारे आने का समय निश्चित होता था, जाने का कोई समय नहीं होता था। कुर्बानियों के बाद एक यह अधिकार तुम्हें मिला है। इसे बचाये रखने का एक सूत्र है, कि मेहनत से काम करना तथा उत्पादन में बढ़ोत्तरी करना। इस बढ़ोत्तरी में तुम्हारा सबसे पहला अधिकार बनता है। यदि तुम्हारी मेहनत के बाद भी उत्पादन में ह्रास होता है तो, यह मालिक की कोई बहुत बड़ी साज़िश है। इस साज़िश के तहत तुम्हें किसी भी तरह का परिणाम भुगतना पड़ सकता है। इसलिए तुम्हारे संगठन को इस बात की निगरानी रखनी होगी कि उत्पादन की मार्केटिंग उचित तरीके से हो तथा लाभ में उचित हिस्सा भी मजदूरों को मिले। अब इसके लिए यह ज़रूरी है कि संगठन के लोग मालिक के साथ मार्केटिंग तक संबंध रखें। यह हमेशा ध्यान में होना चाहिए कि केवल काम करना और उत्पादन देना ही पर्याप्त नहीं है। यह काम केवल मजदूरों से जुड़े लोग ही कर सकते हैं। आइए, हम मजदूरों के लिए एक हों। हम उनके हित की बात करें। बढ़े हुए घण्टों में हम कार्य नहीं करेंगे।

मजदूरों एक हो!

गोरखपुर

लघु कथा

सयाना लकडहारा

डा0 शैलजा 'श्यामा'

वनदेवी ने नदी के डूह से तीन आरियाँ बाहर निकालीं पर लकडहारे ने सिर्फ़ लोहे की आरी ले ली। बाकी दोनों को अस्वीकृत करने का कारण वनदेवी द्वारा पूछे ज़ाने पर उसने उत्तर दिया, "माता लोहे की आरी मेरी काम की चीज है। मेरे जीवन यापन का यह साधन है। सूखी लकड़ियाँ काट-बेचकर निर्वाह करता हूँ। सोने-चाँदी की आरी स्वीकृत करने में असमर्थ हूँ।

-क्यों

-लोग कहेंगे कि इसने पुरस्कार मैनेज किये हैं।

-अच्छा

-तूने स्वीकार किया है कि सूखी लकड़ी काटने से पहले तू एक नया पौधा लगायेगा, जिस दिन तू ऐसा नहीं करेगा तब मैं लकड़ी काटने नहीं दूँगी। चाहे वह सूखी हो या हरी-भरी।

-मुझे मंजूर है माता

-पौधे लगाने का मतलब पर्यावरण का संतुलन कायम करना है। वातावरण का प्रदूषण कम करने का प्रयास करना है। धरती माता की बढ़ती गरमी नष्ट करने के अभियान में सहयोग देना है।

-तू समझदार है, पर्यावरण संतुलन कार्य में सक्रिय सहयोग देने की तेरी समझ प्रशंसनीय है।

-लकड़हारे की नेकी और आधुनिक विचार सुनकर वनदेवी को आनंद हुआ। उसने लकड़हारे के हाथ में छोटे बिरवों का गुच्छा थमा दिया।

-तुम्हारे रोपे बिरवों का एक बड़ा जंगल बन जायेगा... आशीर्वाद देकर वनदेवी चली गयी।

-लकड़हारा गुच्छे के बिरवे रोपने हेतु रिक्त जगह की तलाश में आज तक भटक रहा है।

गंध बहार, 1-अयोध्यानगरी, आगा शिवनगर, करार-415110

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य और सिनेमा

सी0 भास्कर राव

साहित्य एक प्राचीन कला रूप है और सिनेमा अपेक्षाकृत एक नया और आधुनिक कला रूप है, फिर भी इन दोनों का परस्पर संबंध इतना गहरा है कि दोनों के बीच का फासला कोई मायने नहीं रखता है। जिस तादाद में साहित्यिक कृतियों का सिनेमा में रूपांतरण होता रहा है, उससे यही एहसास होता है कि दोनों का अंतरसंबंध भी उतना ही प्राचीन है, जितना कि साहित्य। जब कि सचाई यह है कि दोनों के उद्‌भव और विकास में अत्यधिक अंतराल है, फिर भी दोनों के बीच सामंजस्य इतना अधिक है कि इस अंतराल का अनुभव प्रायः नहीं होता है। इतना अधिक सामंजस्य सामान्यतः अन्य कलारूपों के बीच नहीं मिलता है। कलारूप एक दूसरे से प्रेरित भी होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित भी करते हैं, पर जिस हद तक साहित्य और सिनेमा ने एक दूसरे को आत्मसात किया है, वह अपने आप में एक अनोखी मिसाल है। साहित्य एक ऐसा उदार कला रूप है कि उसमें अन्य कई कलाओं को भी अपने क्षेत्र में समाहित कर लेने की अद्‌भुत क्षमता है। साहित्य भी अपनी बनावट और बुनावट में संगीत, चित्र, नृत्य, वास्तु आदि विभिन्न कलाओं को साथ लेकर ही चलता है। कविता और गीत में सांगीतिकता, लयात्मकता, बिम्बात्मकता, चित्रात्मकता आदि की बात बडी गंभीरता और सूक्ष्मता से होती है। भले ही साहित्य ने इन कलाओं को सायास और प्रायोजित ढंग से अपनी संरचना में स्वीकार नहीं किया हो, पर यह भी सच है कि साहित्य में अन्य कई कलाओं की प्रकृति स्वतः अनायास रूपायित होती रही है। लगभग यही स्थिति अन्य कला रूपों की भी है कि वहां साहित्य का प्रवेश उतना ही अनायास और अंतरंग रूपमें होता रहा है। प्रत्येक कला अपने आपमें जितनी स्वतंत्र और पूर्ण होती है, उतना ही वह दूसरी कलाओं को भी आश्रय देती जाती है। कई बार यह सब बड़ा ही अनायास होता है और कई बार सायास भी। इधर नए प्रयोगों के तहत कलाओं को एक अंतर्कला रूप में अभिव्यक्त करने की परंपरा विकसित हो रही है। इससे कलाओं के नये आयाम भी विकसित हो रहे है। कोई भी कला जब किसी अन्य कला के साथ सार्थक रूप में जुड़ती है, तो स्वाभाविक है कि उससे एक नया आस्वाद निर्मित होता हे। कई बार कलाएं, एक दूसरे का पूरक भी बनती हैं और कई बार इनसे नये कलारूपों का निर्माण भी होता है। इस तरह अंतर्कला का आधार भी एक महत्वपूर्ण आधार बन जाता है। साहित्य चूंकि एक प्रचीनतम कला है, इसलिए इसमें अन्य कई कलाएं समय-समय पर अंतर्भुक्त होती रही हैं। फिर भी, साहित्य और संगीत का संबंध बेहद अंतरंग रूप में विकसित होता रहाहै। संगीत का शाब्दिक आधार मूलतः साहित्य ही प्रदान करता है। विशेषकर शास्त्रीय संगीत गायन में शब्द सौंदर्य का अपना अलग ही महत्व रहा है। संगीत पर आधारित गीत साहित्य पर ही एक तरह से निर्भर करते हैं, पर साहित्य और संगीत एक दूसरे के बिना अधूरे भी नहीं है। साहित्य इस रूप में भी कलाओं से जुड़ता है कि अन्य लगभग सभी कलाओं की चर्चा, विवेचना, गवेषणा और विश्लेषण साहित्य के अंतर्गत ही होता है। शेष सभी कलाओं की आलोचना समीक्षा का एक मात्र आधार साहित्य ही है।

ठीक यही बात साहित्य और सिनेमा के संबंध में नहीं कही जा सकती। सिनेमा का आधार साहित्य होता है, क्योंकि बुनियादी रूप में उसमें कथा, घटनाएं, पात्र और संवाद होते ही है। यों तो सिनेमा को एक समूह कला माना जाता है, वह एक ऐसा कला कोलाज है, जिसमें एक ही साथ कई कलाओं को देखा जा सकता है। न तो सिनेमा को साहित्य से अलग करके देखा जा सकता है और न ही उसे संगीत, चित्रकला और नृत्यकला से। इन सब कलाओं के संबंध और संयोग से ही सिनेमा का निर्माण होता हे। इनके बिना सिनेमा का अस्तित्व शायद पूरा नहीं होता है, पर एक सवाल यह उठता ही है कि सिनेमा को किस कला से जोड़कर सर्वप्रथम देखा जाए। वो कौन सी कला है जिसके बिना सिनेमा की कल्पना भी संभव नहीं थी। इस दृष्टि से सिनेमा का पहला संबंध साहित्य से बनता है। शेष कलाएं उसमें बाद में जुडती हैं। आज भी इसमें कोई आधारभूत फर्क नहीं आया है। यह जाहिर है कि किसी भी सिनेमा को रूपायित होने के लिए यानी साकार होने के लिए एक कथा का आधार चाहिए होता है और जहाँ कथा होती हैं, वहां कुछ पात्र भी होते हैं और पात्रों से संबद्ध कुछ घटनाऐं और दुर्घटनाएं भी। इन्हीं के बीच एक कथा बढ़ती है और एक सिनेमा बनता है। बनने की प्रक्रिया में उससे एक ओर दूसरी कलाएं जुड़ती हैं और दूसरी ओर उसका तकनीक जुड़ता है। कहा जाता है कि सिनेमा एक तकनीकी कला है। इसलिए माना जाता है कि उसका जो अंतिम रूप हमारे सामने आता है वह तकनीकी माध्यम से ही संभव होता है पर उससे पहले वह सिर्फ साहित्य से अपना सरोकार रखता है। साहित्य से यहाँ तात्पर्य मात्र साहित्यिक कृतियाँ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, बल्कि वह प्रत्येक रचना है, जिस पर सिनेमा का निर्माण होता है। यह अलग बात है कि प्रत्येक रचना साहित्य की कोटि की नहीं होती है, पर यह रचना है यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता हे। यही वजह है कि सिनेमा के लिए सबसे पहले एक आलेख की जरूरत होती है, यानी रचना की, यानी शब्दों, वाक्यों और अर्थों के एक समूह की जो साहित्य का ही आधार है। इस तरह सिनेमा साहित्य पर निर्भर करने के लिए लगभग विवश है। हर सिनेमा साहित्य की गरिमा और गंभीरता से पूर्ण हो, यह आवश्यक नहीं होता। सिनेमा स्वतंत्र है पर अपनी तकनीकी कौशल के साथ। एक बार उसका निर्माण हो जाने पर वह कितना साहित्य रह जाता है, यह और विवाद का विषय हो सकता है, पर उसके निर्माण की प्रक्रिया का आरंभ रचना से अर्थात साहित्य से होता है इस पर किसी विवाद की संभावना नहीं रह जाती है।

साहित्य के शब्द को चाक्षुष रूप प्रदान करना ही सिनेमा का काम होता है। शायद यही वजह है कि पहले सिर्फ साहित्यिक कृतियों पर ही फिल्में बनती थीं। बहुत बाद में सिनेमा के लिए अलग तरह की रचनाओं की प्रक्रिया आरंभ हुई। सिनेमा और साहित्य के बीच बुनियादी रूप से बिम्ब और शब्द का संबंध होता है। बिम्ब से दृष्य बनता है। सिनेमा में हम साहित्यिक शब्द का दृश्यगत रूपांतरण पाते हैं। दृश्य की स्थिति बाद में आती हे और शब्द अनिवार्यतः पहले होता है। शब्द और दृश्य की इस अंतर निर्भरता के कारण ही साहित्य और सिनेमा एक दूसरे के इतने करीब होते हैं। शब्द का महत्व संगीत में भी है, पर वह आंशिक है। वहां शब्दों का केवल सहारा लिया जाताहै और शेष पूरा संगीत राग-रागिनियों पर निर्भर करता है। सिनेमा में स्थिति इससे काफी भिन्न है। सिनेमा अपने आंरभ से लेकर अपने अंत तक साहित्य, यानी रचना से जुडा हुआ हेाता है। इसलिए यह कहना शायद गलत नहीं होगा कि साहित्य और सिनेमा के बीच जो अंतरकला संबंध है, वह दूसरी कलाओं में नहीं मिलता है। यही वह आधारभूत संबंध है, जिसके चलते साहित्य और सिनेमा को एक दूसरे से पूरी तरह अलग करके नहीं देखा जा सकता है। साहित्य के सृजन में सिनेमा की वैसी कोई अनिवार्य भूमिका नहीं होती, जो सिनेमा में साहित्य की होती है। इस अर्थ में जितना स्वतंत्र साहित्य है, उतना सिनेमा अपने आप में नहीं है। वस्तुतः सिनेमा विभिन्न कलारूपों के कोलाज की सेल्यूलायड पर एक तकनीकी अभिव्यक्ति है। आज इसका तकनीक इतना विकसित हो चुका है कि वह अपने में एक स्वतंत्र कला रूप बन गया है। साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्र, वास्तु, आदि सभी कलाओं का साक्षात्कार हम सिनेमा में चूंकि इसके तकनीकी माध्यम से करते हैं, इसलिए इसके तकनीक का उतना ही महत्व हे, जितना इसमें अन्य कलारूपों का। यही वजह है कि इन कलाओं को हम उनकी तकनीकी कला कौशल के जरिये ही ग्रहण कर पाते हैं, इसलिए सिनेमा में तकनीक, कलाओं पर भारी पड़ती है। उसकी तकनीक ही इन कलाओं को नियंत्रित और निर्धारित करती है। कलाएँ उसकी सहायक बनती हैं, पर अन्य कलाओं और साहित्य में फर्क है। एक कला-सिनेमा किसी साहित्यिक कृति की तरह ही महत्वपूर्ण माना जाता हैं ऐसे सिनेमा को ही क्लासिक सिनेमा की संज्ञा दी जाती है। हर साहित्यिक कृति पर बना सिनेमा क्लासिक नहीं भी हो सकता है, पर हर क्लासिक सिनेमा का एक कलात्मक और साहित्यिक मूल्य जरूर होता है।

सिनेमा की उत्पत्ति ही प्रमाणित कर देती है कि उसका प्राथमिक संबंध साहित्य से था। जब ल्यूमिरे बंधुओं ने सर्वप्रथम सिनेमा का अविष्कार किया, तब उन्होंने शब्दों, दृश्यों, स्थितियों और पात्रों के आधार पर ही इसे अंजाम दिया। कई छोटे-छोटे प्रसंगों को लेकर उन्होने उसे स्थिर से मूवी बनाया। यानी उन्हें गति प्रदान की। यह मूवी बनाने की प्रक्रिया भले ही पूरी तरह तकनीकी कमाल हो, पर उसका आधार तो निश्चय ही साहित्य या रचना या आलेख है। शुरू में छोटी-छोटी घटनाओं और कथाओं को मूवी बनाया गया। यही छोटी घटनाएँ, कथाएँ जब सिनेमा माध्यम में विकसित होती गईं तब बड़ी फिल्म या फीचर फिल्म का निर्माण भी होने लगा। इस तरह से सिनेमा का आरंभ साहित्य से हुआ, उसका विकास सहित्य के चलते हुआ और आज भी सिनेमा के निर्माण की प्रक्रिया का एक अभिन्न तथा अनिवार्य अंग है साहित्य।

यदि वैश्विक स्तर पर इसकी पड़ताल की जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले अधिकांशतः सहित्यिक रचनाओं पर ही फिल्में बनाई जाती थीं। इसकी एक वजह बहुत स्पष्ट है कि वह रचना पहले से ही चर्चित होती थी और ऐसी रचना को दर्शकों के द्वारा सहजता से स्वीकार किए जाने की संभावना अधिक होती है। इसके साथ ही उसमें कथा, पात्र, स्थिति आदि की पहले निश्चित मौजूदगी, उसे सिनेमा में रूपांतरित करने की प्रक्रिया को भी सहज बना देती है। ऐसी रचनाओं को सिनेमा के सांचे में ढालने का काम ही मुख्य हो जाता था, उसके लिए किसी पृथक रचना लेखन का कार्य बहुत बाद में शुरू हुआ। उससे पहले सिनेमा के लिए जो आधार सबसे प्राचीन और सबसे समृद्ध संसार माना जाता है वहाँ प्रायः उन्हीं साहित्यिक कृतियों पर फिल्म निर्माण का कार्य अधिक से अधिक हुआ, जो विख्यात थीं। पढ़ी हुई या सुनी हुई कृतियों को सिनेमा माध्यम में देखने की उत्सुकता ही दर्शकों की पहली प्रबुद्ध उत्सुकता थी। तभी विदेशों में प्रसिद्ध रचनाकारों के प्रसिद्ध उपन्यासों और नाटकों पर फिल्में बड़ी संख्या में बनती रहीं। शायद ही कोई ऐसा अंग्रेज़ी या अमेरिकी उपन्यास बच गया हो, जो अपनी लोकप्रियता के बावजूद फिल्म माध्यम में नहीं आ पाया हो। विश्व के लगभग सभी क्लासिक उपन्यासों पर फिल्मों का निर्माण हुआ है। यह परंपरा आज भी चल रही है, भले ही वह अब उतनी समृद्ध नहीं रही गई हो, पर आज भी ऐसी अनेक फिल्में बनती हैं, जो किसी न किसी महत्वपूर्ण कृति पर आधारित होती हैं। जिनमें यह लिखा मिल जाता है कि यह फिल्म फलां उपन्यास पर आधारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इस तरह की फिल्मों की एक बहुत विस्तृत सूची है, जो विश्व विख्यात उपन्यासों के सिनेमा रूपांतरण हैं या फिर उन पर आधारित हैं। निश्चय ही यह सूची विदेशी फिल्मों की लम्बी है, पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी यह परंपरा कम महत्वपूर्ण नहीं रही है। भारत में फिल्म निर्माण उतना ही पुराना है, जितना कि शेष विश्व में। प्रारंभ में ज्यादातर उन ऐतिहासिक, धार्मिक और पौराणिक कथाओं पर ही फिल्में यहां भी बनतीं रही जो साहित्य से कम लोकप्रिय नहीं थी। इस तरह भारत में फिल्म निर्माण का आरंभ ही साहित्य से हुआ है। स्वयं दादासाहब फाल्के की जो पहली फिल्म थी, जिसे प्रथम भारतीय फीचर फिल्म भी माना जाता है, वह एक धार्मिक आख्यान है तथा साहित्य की दृष्टि से भी उतना ही महत्वपूर्ण है। उनकी फिल्म-सत्य हरिश्चन्द्र एक सबसे प्राचीन और सबसे प्रामाणिक दृष्टांत है। उसके बाद तो पौराणिक, धार्मिक और ऐतिहासिक फिल्मों की खासी बड़ी परंपरा मिलती है। काफी बाद में चलकर साहित्यिक कृतियों पर फिल्में बनने लगीं। यह कार्य लगभग समानांतर रूप में हिन्दी, बांग्ला और मराठी में होता रहा। इसलिए साहित्यिक फिल्मों की स्थिति इन भाषाओं में अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध है। बाद में तो हर प्रदेश को साहित्यिक रचनाओं पर फिल्में बनती रहीं। खासकर जो फिल्में कलात्मक मानी जाती रहीं और जिन्हें देश के प्रबुद्ध वर्ग ने सराहा तथा जो विदेशी फिल्म समारोहों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा पाईं। समानांतर सिनेमा, कला सिनेमा, वैचारिक सिनेमा तथा सामाजिक सिनेमा के नाम पर ऐसी जितनी भी फिल्में बनीं, उन्होंने साहित्य को ही अपना प्रमुख आधार बनाया।

तुलनात्मक रूप में भारतीय साहित्य को भारतीय सिनेमा में सबसे अधिक और सबसे सही स्थान, शायद बांग्ला सिनेमा में मिला है। इस मानी में मराठी और मलयाली सिनेमा भी बहुत पीछे नहीं है। हिन्दी का स्थान उनके बाद ही आता है। बांग्ला भाषा में साहित्यिकि कृतियों के फिल्मांकन की एक लम्बी परंपरा है। जिस बांग्ला फिल्म निर्देशक को भारत और विश्व में अब तक सबसे महत्वपूर्ण निर्देशक के रूप पहचान एवं प्रतिष्ठा मिली, वे हैं सत्यजीत राय। उन्होंने अपनी पहली फीचर फिल्म ही बनाई बांग्ला के प्रसिद्ध उपन्यासकार विभूति भूषण बंधोपाध्याय के अत्यंत पठित, चर्चित और लोकप्रिय उपन्यास पॉथेर पांचाली पर। इस फिल्म ने पहली बार पूरी दुनियां के फिल्म जगत में एक हलचल-सी मचा दी। अब भी विश्व की सर्वश्रेष्ठ फिल्मों में उसे बड़े आदर के साथ स्थान दिया जाता हैं शरत्चंद्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर जेसे बांग्ला के विश्व विख्यात उपन्यासकारों की साहित्यिक कृतियों पर उन्होंनें फिल्में बनाकर सिनेमा में भी साहित्य को समादृत किया। यदि समस्त प्रादेशिक साहित्यिक फिल्मों को एक साथ मिला दिया जाए तो विश्वभर में भारतीय सिनेमा, साहित्य की दृष्टि से सबसे समृद्ध प्रतीत होगा।

साहित्य और सिनेमा के संबंध की दृष्टि से हिन्दी सिनेमा में कोई स्पष्ट स्थिति नहीं मिलती। वह उलझी हुई है। सिनेमा की साहित्यिक धारा का सही रूप में विकास हो ही नहीं पाया। हॉलीवुड के बाद विश्व में बॉलीवुड सिनेमा का महत्व माना जाता है, पर हॉलीवुड की विविधता की यहां कमी दिखलाई पड़ती है। हालांकि सेक्स और हिंसा के लिहाज से हॉलीवुड, वॉलिवुड से कहीं आगे हैं। बॉलीवुड की ऐसी फिल्में ज्यादातर हॉलीवुड की नकल पर ही बनी हैं, पर दूसरी ओर साहित्यिक सिनेमा के लिहाज से भी हॉलीवुड काफी आगे हैं। हमारे यहाँ आरंभ में जो फिल्में बनती थीं, वे चाहे पौराणिक हों, धार्मिक हों या ऐतिहासिक, उनमें प्रकारांतर से साहित्य होता था। आज भी महाभारत, रामायण आदि रचनाएँ, जितनी धार्मिक मानी जाती हैं, उतनी ही साहित्यिक भी। तुलसीदास की रचना रामचरितमानस का धार्मिक और साहित्यिक महत्व समानांतर है। इसलिए उस समय यह दुविधा या द्वंद्व की स्थिति नहीं थी कि इन्हें साहित्य मानें या न मानें। आज यह सवाल उठ सकता है और उठाया भी जा सकता है, पर तब उसकी जरूरत नहीं थी। बाद में जब हिन्दी साहित्य का विकास खड़ी बोली के आधार पर हुआ, तब अलग से चर्चित साहित्यिक कृतियों पर फिल्म निर्माण की आवश्यकता समझी गई। हिन्दी कथा सम्राट प्रेमचंद के उपन्यासों पर भी फिल्में बनी। कुछ बांग्ला उपन्यासकारों की रचनाओं पर भी फिल्म निर्माण संभव हुआ, पर यह परंपरा विकसित नहीं हो पाई। आज तो स्थिति यह है कि न तो किसी साहित्यिक कृति पर फिल्म बन रही है और न ही उनका आधार लेकर। एक तरह से साहित्य से हिन्दी सिनेमा कटा हुआ प्रतीत होता है। यह दुखद है जबकि प्रादेशिक सिनेमा इस मामले में उपेक्षाकृत अधिक समृद्ध है। व्यावसायिक सिनेमा की तरह ही कला सिनेमा और साहित्यिक सिनेमा का भी विकास होता तो आज बॉलीवुड की टक्कर में खड़ा होता। विश्व में आज जिस सिनेमा का मार्केट सबसे विकासमान है, वह बॉलीवुड सिनेमा ही है, पर वहां या तो चालू किस्म की फिल्में पहुंच रही हैं, या औसत किस्म की फिल्में। वहां के आम दर्शकों तक वह सिनेमा सामान्यतः नहीं पहुंचता है, जो सहित्यिक और कलात्मक सिनेमा होता है, जो ज्यादातर फिल्म समारोहों में जाता हे। इस तरह जो धारणा हमारी फिल्मों की बनती है, वह व्यावसायिक सिनेमा के चलते बनती है जो निश्चित रूप से अच्छी नहीं होती है। वह किसी भी रूप में हमारी कला और संस्कृति तथा सहित्य से कोसों दूर होती है। एक समय जीविका की तलाश में कई साहित्यकार हिन्दी सिनेमा के क्षेत्र में पहुँचे, पर वे वहां की व्यावसायिकता से समझौता नहीं कर पए। उनके संस्कार साहित्यिक थे, इसलिए वे वहां टिक नहीं पाए। जो टिक पाये, उन्हें वहां की शर्तों के साथ समझौता करना पडा। ऐसे में वे कितनी साहित्यिकता सिनेमा को दे पाते या फिर उसे बचा पाते। आज भी हिन्दी, उर्दू के साहित्यकार सिनेमा में हैं, पर वे पहले व्यावसायिक तकाजों को पूरा करने के लिए मजबूर हैं। फिर तब थोड़ी बहुत साहित्यिकता बचा पाए तो उनका और हमारा सौभाग्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज भी धुंधली-सी जो साहित्यिकता बची है, वह इन्हीं की बदौलत। अन्यथा बॉलीवुड से साहित्य का जनाजा निकल चुका होता। हिन्दी में कुछ ऐसे भी सामाजिक दृष्टि से प्रतिबद्ध फिल्मकार हुए , जिन्होंने साहित्यिक कृतियों पर वैचारिक और कलात्मक फिल्में बनाईं। कुछ समय तक हम इस भ्रम में रहे कि हिन्दी को भी कई ऐसे नाम मिले हैं, जो व्यावसायिकता से अलग अच्छी, संवेदनशील, सामाजिक और कलात्मक सिनेमा हमें दे रहे हैं, पर वह भ्रम ही अंततः प्रमाणित हुआ। लगभग वे सभी फिल्मकार एक-एक कर व्यावसायिक सिनेमा के सामने घुटने टेकते रहे। अब वे लोग हमारे अतीत के फिल्मकार रह गए, जो हिन्दी सिनेमा को एक ऊँचे मुकाम पर पहुंचाने में एक समय कामयाब हुए थे। आज वे भी फार्मूला फिल्में बना रहे हैं, चाहे उसे कला और साहित्य में थोड़ा बहुत क्यों न रंग ले। सच कहा जाए तो आज की तिथि में हिन्दी सिनेमा में साहित्य का कोई आधार ही नहीं दिखलाई पडता है, चाहे वह कृति पर निर्माण हो या कृति पर आधारित। अधिक से अधिक हम आज की कुछ अच्छी फिल्मों में साहित्यिक तत्व भले ही ढूंढ निकालें, पर इससे कोई फिल्म साहित्यिक नहीं हो जाती है।

हिन्दी सिनेमा से साहित्य के चिंताजनक लोप का एक बड़ा कारण रहा है, बॉलीवुड पर माफिया का नियंत्रण। यह नियंत्रण इतने लम्बे समय तक और इतने जबरदस्त तरीके से रहा है और सिनेमा इस कदर सेक्स और हिंसा का शिकार हुआ कि उसका कला और साहित्य से दूर-दूर का कोई संबंध ही नहीं रहा। एक समय तक हमारे यहाँ स्क्रिप्ट लेखक अलग होते थे और वे संवाद भी लिखते थे। प्रायः ऐसे लोग दृश्यों से ज़्यादा शब्दों की दुनियाँ के लोग होते थे, इसलिए थोड़ी उम्मीद बची रहती थी कि किसी गीत या किसी संवाद में कला और सहित्य का आस्वाद मिल जाये। धीरे-धीरे यह स्थिति भी खत्म होती चली गई। पहले तो लेखक हाशिए पर चले गए, फिर पटकथा लेखक और संवाद लेखक अलग होते गए। फिर तो वह दौर आयाकि निर्देशक ही पटकथा लिखने लगे। आज की स्थिति यही है कि निन्यानबे प्रतिशत फिल्मों के निर्देशक ही अपने फिल्मों के पटकथा लेखक भी है, जिनका कोई दूर का भी रिश्ता साहित्य से नहीं होता है। वह कुल मिलाकर एक तकनीकी कथा तैयार करता है। उसमें कला और साहित्य ढूंढना भी बेमानी होगा। इसलिए हिन्दी सिनेमा का साहित्य से रहा-सहा रिश्ता अपनी अंतिम सांसे लेता दिख रहा है। पहले की पटकथाएं भी अपने में साहित्यिक आस्वाद और आयाम लिए होती थीं। बासु दा के लिए कथाकार मन्नूभंडारी ने जो पटकथाएँ लिखी हैं, वे किसी साहित्यिक रचना से कम नहीं है। आज किसी निर्देशक की पटकथा को उसके तकनीशियन ही बेहतर समझ पाते हैं। उसमें साहित्य की खोज अंधेरे में तीर चलाने की तरह हे। सत्यजित राय की फिल्म-पाथेर पांचाली, एक फिल्म के रूप में जितनी साहित्यिक है, उस पर लिखी उनकी पटकथा भी उतना ही साहित्यिक सरोकार रखती है।

विशेषकर हिन्दी सिनेमा में साहित्य हाशिए पर लगातार जाता रहा तो इसके कई-कई कारण हैं। अब कोई सिनेमा में साहित्य की बात सामान्यतः नहीं करता है। लोगों ने शायद मान लिया है कि इसकी चर्चा का कोई मतलब ही नहीं है, पर इसकी उम्मीद पूरी तरह से खत्म हो गई है, ऐसी बात नहीं है, इधर हिन्दी में सिनेमा का एक नया और बेहतर दौर दिखलाई पड रहा हैं। अच्छी फिल्में बन रही हैं और उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं। कोई सिनेमा बॉक्स ऑफिस पर भले ही हिट न हो, पर वह डूब भी नहीं रही है। मल्टीप्लेक्स संस्कृति और फिल्मों के अंतर्राष्ट्रीय मार्केट ने फिल्मों के जीवन को भले ही छोटा कर दिया हो, पर उसे एक स्वतंत्र और बहुआयामी आधार जरूर प्रदान किया है। एक समय था, जब कुछ फिल्में इतनी लोकप्रिय होती थीं कि वे सालों चलती थीं, पर अब उसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती हे। अच्छी से अच्छी फिल्म का भी बाजार सप्ताह भर का रह गया है। यही कारण है कि महानगरों में हर हफ़्ते नई फिल्में लग रही हैं और सप्ताह भर पुरानी उतर रही हैं। पिछले सप्ताह की फिल्म इस सप्ताह मिलना भी मुश्किल हो गया है। सिनेमा का एक नया बाजार बना है। इस बाजार ने शुद्ध व्यावसायिक और अर्ध व्यावसायिक दोनों तरह की फिल्मों के लिए रास्ते बना दिया हैं। कलात्मक और साहित्यिक फिल्मों के लिए अब एक नई संभावना बनी है। यह सही है कि अब न तो शुद्ध कला फिल्म बनाई जा सकती है और न ही शुद्ध साहित्यिक फिल्म, पर इनके बीच भी व्यावसायिकता को नज़र अंदाज किए बिना ऐसी फिल्में बन रही है, जो विचार और भावना दोनों स्तरों पर समझदार दर्शकों को सामाजिक और राजनैतिक सरोकारों से जोड़े रखने में काफी हद तक कामयाब हो रही हैं। इनमें कई फिल्में कलात्मक आधार पर भी खरी उतर रही हैं और साहित्यिक आधार पर भी। कला सिनेमा और साहित्य-सिनेमा का जो दर्शक वर्ग था, जो एक तरह से हताश-निराश हो चुका था, उसके लिए एक नई ताजी बयार आयी है, जिसका स्वागत होना चाहिए। इसलिए भी फिर से एक बार यह संभावना बनी है कि व्यावसायिकता से समझौता कम से कम या नहीं करके भी, कला सिनेमा को पुनर्जीवित किया जा सकता है। उसी के समानांतर यह संभावना भी उभरती है कि भारतीय साहित्यिक कृतियों पर फिल्म निर्माण का एक नया दौर शुरू हो सकता है।

यदि केवल हिन्दी की दृष्टि से विचार किया जाए तो आज हिन्दी कहानी और उपन्यास में अत्यधिक और आधुनिक परिवर्तन आए हैं। विशेषकर युवा पीढ़ी की रचनाएं, जितनी सामयिक होती हैं, उतने ही सशक्त भी। उनमें फिल्म और टी.वी. की अनुरूपता भी काफी दिखलाई पड़ती है। कई हिन्दी पत्रिकाएँ नवलेखन को प्रोत्सहित करते हुए, उनके लिए कथा-विशेषांक प्रकाशित करने लगी हैं। उनमें कुछ कहानियों में वर्तमान समय इतनी शिद्दत से मिलता है और वह भी बिल्कुल नई ताजी शैली में और एक प्रयोगात्मक शिल्प के साथ कि ऐसी कहानियां टेली फिल्मों के

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकूल होती हैं। जो उपन्यास युवा कलम से आ रहे हैं, वे इतने बहुआयामी होते हैं कि उन पर फिल्म निर्माण की भरपूर संभावना बनती है। फिल्म यदि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से साहित्य का आधार लिए हुए होती है तो स्वाभाविक रूप से उसमें कलात्मक संभावनाएँ भी उतनी ही पैदा होती हैं। बुनियादी रूप से किसी साहित्यिक रचना में ही इस बात की संभावना अधिक रहती है कि उसे कला और क्लासिक फिल्म का स्वरूप प्रदान किया जा सके। यह जरूरी नहीं कि ऐसी संभावनाओं से भरपूर छोटी-बडी कथाओं से आज के संवेदनशील और समझदार सामाजिक फिल्मकार रूबरू हो पाते हों। उन पर फिल्म माध्यम के अपने दबाव इतने रहते हैं कि हम अपेक्षा भी नहीं कर सकते वे समकालीन कहानी और उपन्यास पढ़ें। ऐसी स्थिति में संभावनापूर्ण रचनाओं के चयन और उन्हें समर्पित तथा प्रतिबद्ध फिल्मकारों तक पहुँचाने के लिए एक कारगर जरिया ढूंढना-बनाना होगा। इधर हिन्दी में कई ऐसे युवा लेखक हैं, जिन्हें मीडिया की अच्छी समझ है और जो लिख सकते हैं। अपनी रचनाओं पर उन्हें स्वयं स्क्रिप्ट तैयार करने की पहल करनी चाहिए। हिन्दी की जागरूक पत्रिकाओं में भी एक कमी दिखलाई पडती है कि वे न तो नाटक प्रकाशित करने में रूचि लेते हैं और न ही अच्छी और प्रभावशाली कथाओं पर स्क्रिप्ट। नाटक तो एक तरह से गायब ही हो चुका है। पहले कुछ पत्रिकाएँ जो स्क्रिप्ट छापती थीं, वे भी हाशिए पर जा चुकी हैं। कई बार नाटक से भी फिल्म या टेली फिल्म की संभावना पैदा होती है। ऐसा हुआ भी है। गोविंद निहलानी ने तो तीन नाटकों पर तीन फिल्में बनाकर एक नया और नायाब काम किया था। हमें यह मानकर चलना चाहिए कि साहित्य और सिनेमा अपने आप में पूर्ण और स्वतंत्र होते हुए भी एक दूसरे पर निर्भर करने वाले और एक दूसरे को पूरक बनाने वाले सबसे निकट के माध्यम हैं। यह निकटता अब फिल्मकारों और कथाकारों के बीच भी आवश्यक है ताकि हम आने वाले समय में हिन्दी सिनेमा और हिन्दी साहित्य को एक नया रूप और रंग दे सकें तथा उसे एक नए मुकाम और मंजिल तक पहुँचा सकें। इसमें हिन्दी की समकालीन और सजग पत्रिकाएं एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। वे दरअसल आज के समर्पित फिल्मकारों और आज के सशक्त कथाकारों के मध्य एक पुल बन सकती हैं। समय का तकाजा भी है कि हम अंतरकला माध्यमों को भी तरजीह दें। इसके लिए साहित्य और सिनेमा से बेहतर माध्यम नहीं हो सकते, जिनमें एक दूसरे को प्रभावित करने और प्रभावित होने की सबसे अधिक क्षमता है। बॉलीवुड सिनेमा के क्षेत्र में बेहतर फिल्मों के निर्माण की एक नई और ताजी परंपरा शुरू हुई तो इधर की कुछ फिल्मों ने हमारी उम्मीद फिर से जगा दी है और इस उम्मीद के पूरा होने की अपेक्षा अब सिर्फ फिल्मकारों से नहीं की जा सकती, इसके लिए हिन्दी के नए कथाकारों को ही प्रयत्न और पहल करनी पड़ेगी। सिनेमा, साहित्य का ही विस्तार है, और साहित्य, सिनेमा का निखार। यह इनके बीच का एक गहरा अंतर्संबंध है। इसके समुचित विकास से ही हिन्दी सिनेमा और साहित्य का एक नया अध्याय शुरू हो सकता है।

एयरबेस कॉलौनी, कदमा, जमशेदपुर-831005 (झारखंड)

लघु कथा

समाप्ति

डा0 शैलजा 'श्यामा'

नदी तीर पर घूमते समय सियार और क्रौंच पक्षी में घनी मित्रता होने के परिणामवश सियार ने क्रौंच को अपने घर भोजन हेतु आमंत्रित किया। क्रौंच के आते ही सियार ने टेबल पर दो थालियों में खीर परोसी और कहा, "मित्र, संकोच मत करना, खाओ...।" सियार अपनी लंबी जिव्हा से लप् लप् खीर खाने लगा। मन ही मन हंसता वह देख रहा था कि क्रौंच क्या करता है। क्रौंच ने पंखों के नीचे से स्ट्रॉ निकाला। उसे खीर में डालकर वह चोंच द्वारा खीर चूसने लगा। सियार को आश्चर्य हुआ। भोजन समाप्त होने पर उसने क्रौंच से पूछा, "मित्र, तुमने कैसे जाना कि मैं थाली में परोसूँगा?" क्रौंच ने हंसते-हंसते कहा, "तुम्हें, तुम्हारे घाघपन को कौन नहीं जानता? तुम्हारी हर कृति में ठगी होती है। मुझे ज्ञात है अतः मैं स्ट्रॉ लाया।" सियार ने लज्जित होकर कहा, "मुझे पछतावे का अवसर दो। तुम मुझे अपने घर बुलाओ और भोजन सुराही में देना। प्रतिकूलता की तकलीफ मैं झेल लूँगा।"

क्रौंच ने कहा, "ऐसा करने का अर्थ है 'शठं प्रति शठयम्।' उससे क्या होगा? देखो मित्र जैसे को तैसा यानी संघर्ष, युद्ध... और युद्ध में तो दूसरे युद्ध के ही बीज बोए जाते हैं शांति स्थापित नहीं होती। और वैसे भी इस तरह जैसे को तैसा आचरण करने से मिलने वाला आनंद निकृष्ट स्तर का क्षुद्र आनंद होता है जो स्वभाव में हीनता उत्पन्न करता है। मुझे ऐसा आनंद नहीं चाहिए। क्यों ना हम जैसे को तैसेवाला किस्सा यहीं समाप्त करें? इससे प्रतिशोध का भाव ही नष्ट हो जाएगा।"

सियार क्रौंच से सहमत हुआ।

गंध बहार, 1-अयोध्यानगरी, आगा शिवनगर, करार-415110

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह-2009

राजीव श्रीवास्तव

गोवा की राजधानी पणजी में भारत का चालीसवाँ अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह (23 नवंबर से 03 दिसंबर, 2009) अपनी पूरी रौनक, शानो शौकत और उत्सव की रंगीनियों के साथ संपन्न हो गया।

गोवा की अनूठी प्राकृतिक छटा के साये में यहाँ का खूबसूरत झील सदृश मांडवी नदी के किनारे विश्व की बेहतरीन फिल्मों का मेला इस बार अपनी एक अलग छाप छोड़ गया। समारोह का उद्घाटन भारत की सूचना प्रसारण मंत्री अंबिका सोनी, गोवा के मुख्य मंत्री दिगम्बर बी0 कामथ की उपस्थिति में हिन्दी सिनेमा की वरिष्ठ अभिनेत्री वहीदा रहमान ने बतौर मुख्य अतिथि दीप प्रज्जवलित कर के किया। इस अवसर पर विशेष अतिथि के रूप में प्रसिद्ध युवा अभिनेत्री असिन और अभिनेता नाना पाटेकर भी मंच पर उपस्थित थे। अपने संबोधन में वहीदा रहमान ने फिल्मों को ज़िंदगी की धड़कन बताते हुये उम्मीद जाहिर कि की लोग इस महोत्सव में धड़कते दिलों की दास्तान क़रीब से महसूस कर सकेंगे।

ग्यारह दिनों तक चले सिनेमा के इस कुंभ में एशिया पैसीफिक, लैटिन अमरीका और अफ्रीका से आयी फिल्मों की धारा में गोवा की शांत समन्दर में एकाकार हो गयी। इस बार विभिन्न वर्गों में फिल्म प्रोग्राम, नॉन फिल्म प्रोग्राम, फिल्म बाजार, शार्ट फिल्म सेंटर, पोस्टर एक्जीबिशन तथा कल्चरल एक्टिविटिज़ के अंतर्गत सिनेमा और उससे संबंधित कार्यक्रम दिखाये गये। तमाम देशों से आयी तक़रीबन तीन सौ फिल्में इस बार दिखायी गयीं। 'विश्व सिनेमा' श्रेणी में मन देशों की 55 से ज़्यादा फिल्में दिखायी गयी। फीचर फ़िल्म के प्रतियोगिता खंड में बांग्ला देश, ब्राजील, चीन, काजिकस्तान, ईरान, मैक्सिको, पेरु, फिलिपींस, दक्षिण कोरिया, श्रीलंका, ताइवान तथा अर्जेन्टिना की चुनी गयी। 13 फिल्मों में भारत की दो फिल्में, बांग्ला की 'आंशुमानेर छोबी' एवं मराठी की 'गबरिचा पाउस' को मिलाकर कुल 15 फिल्में शामिल थीं।

इस वर्ष समारोह में भारतीय खण्ड की विभिन्न नौ श्रेणियों में 77 फिल्में दिखायी गयीं। भारतीय पैनोरमा में 26 फ़ीचर फिल्म और 18 नॉन फ़ीचर फिल्में शामिल थीं जिसमें हिन्दी के साथ-साथ बांग्ला, कन्नड़, मराठी, मलयालम, तमिल, राजस्थानी, टुलु, कोंकणी एवं अंग्रेजी भाषा की भी फिल्में थीं।

अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह के उद्घाटन पर दिखाये जाने के लिये जिस फिल्म का चुनाव किया गया था वह चीन की फिल्म 'व्हीट' (निर्देशक ही पिंग) थी। इस समारोह में जिन फिल्मों ने वाह वाही लूट उनमें भारत-नेपाल की 'गॉड लिव्स इन द हिमालया' (निर्देशक : संजीव श्री निवास), इंग्लैंड की 'भाजी-ऑन द बीच' (निर्देशक गुरिन्दर चढ्ढा), फ्रांस की 'द क्लास' (निर्देशक : लॉरेन्ट कैन्टल), डेनमार्क की 'मौली कैम' (निर्देशक : आगे रायस नोर डेटोफ़्ट), ईरान की 'चाइल्ड ऑफ़ स्वायल' (निर्देशक : मौहम्मद अली अहंगर), इंडोनेशिया की 'वूमन विद ए टर्बन' (निर्देशक : हनुंग ब्रमनट्यो), अमरीका की 'बेयार आर यू सोफीया' (निर्देशक : नगेन्द्र करी), पोलैण्ड की 'गॉड्स लिटिल विलेज' (निर्देशक : जेकेक बोम्सकी) तथा इटली की 'आय एम अलाइव' (निर्देशक : डिनो जेंटीलीं फिलिप्पो जेंटीली) शुमार है। इसके साथ-साथ भारत की हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं की जिन फिल्मों ने विभिन्न वर्गों में बड़ी संख्या में दर्शकों को आकर्षित किया वो थीं अनंत महादेवन निर्देशित रेड अलर्ट, परेश निर्देशित मराठी फिल्म 'हरिशचन्हाची फैक्ट्री', शाजी एन0करुन निर्देशित 'कुट्टी स्रन्क' (मलयालम) तथा सीमा कपूर निर्देशित राजस्थानी फिल्म 'हाट' (द वीकली बाजार) शामिल थी। इसी क्रम में कवि शैलेन्द्र की फ़िल्म 'तीसरी क़सम' (राजकपूर-वहीदा रहमान) को देखने के लिये हॉल में युवा दर्शकों की भारी संख्या देखकर एक सुखद आश्चर्य होना स्वाभाविक था। नंदिता दास निर्देशित फिल्म 'फ़िराक़' भी इस समारोह में पसंद की गयी। फिर भी नंदिता नाराज थी क्योंकि फिल्म के सबटाइटल्स अंग्रेजी में नहीं दिये गये थे।

इस समारोह के अन्य प्रमुख आकर्षणों में नेशनल फिल्म आर्काइव द्वारा लगायी गयी फिल्मों के पोस्टरों की प्रदर्शनी भी थी जो हिन्दुस्तानी सिनेमा के लंबे सफ़र को मुखर कर रही थीं। फिल्म्स डिवीज़न द्वारा प्रस्तुत की गयी संगीतमयी श्रंखला के अंतर्गत संगीत जगत् के कई दिग्गजों पर दिखायी गयी डाक्यूमेंट्री फिल्में तथा इस अवसर पर पं0 जसराज, पं0 शिव कुमार शर्मा, पं0 राम नारायण, उस्ताद अमज़द अली खां, संगीतकार (कल्याणजी), आनंद जी, रवि, निदेशक, गीतकार, गुलज़ार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थिति ने पहली बार शुरू किये गये संगीत के इस वर्ग को खासी लोकप्रियता दिला दी। गोवा के इस फिल्म समारोह में गीत-संगीत पर प्रारंभ की गयी इस विधा को लोगों ने हाथों-हाथ लिया।

नेशनल फिल्म डेवलपमेंट कार्पोरेशन द्वारा आयोजित किये गये 'फिल्म बाज़ार' का आयोजन फिल्म के व्यवसाय के लिहाज से बेहद कामयाब रहा। इसी क्रम में इस समारोह में 'शार्ट फिल्म-सेन्टर' के अंतर्गत लघु फिल्मों, उसके निर्माताओं, खरीददारों और वित्तीय संस्थाओं को एक ऐसा साझा मंच मिला जिससे सभी को अपनी-अपनी राह आसान नज़र आयी और साथ ही भविष्य की उनकी योजनाओं को उत्साह के नये पंख भी लगा गया। ताइवान की लियोनदाई निर्देशित फिल्म 'आईकान्ट लिव विद्आउट यू' इस समारोह की सर्वश्रेष्ठ फिल्म रही। दक्षिण कोरिया के ओउनी लोकामे को 'ए ब्रेंड न्यू लाइफ' के लिये सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का ख़िताब मिला जबकि विशेषजूरी पुरस्कार जार्जिया एवं कजाकिस्तान की फिल्म 'द अदर बैंक' (निर्देशक : जार्ज ओवाशिवली) की झोली में आया। पुरस्कार और सम्मान की खुशनुमा रस्म के साथ अब इंतजार है मांडवी नदी के तट पर अगले सिने मेले का।

जौक़ी की कहानी 'बेहद नफरत के दिनों में' अन्तर्राष्ट्रीय नाट्य महोत्सव के लिए स्वीकृत

सन 2010, दिल्ली में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय नाट्य महोत्सव के लिए प्रसिद्ध साहित्यकार मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी की कहानी 'बेहद नफरत के दिनों में' का चयन किया गया है। यह कहानी भारत-पाक बनते-बिगड़ते संबंधों को नई दिशा देने का काम करेगी।

दौलत वैद्य के निर्देशन में इस कहानी का पहला मंचन 23 सितंबर, जयपुर के जवाहर कला केन्द्र में संपन्न हुआ। कथानक के अनुसार भारत में रहने वाला हिन्दू युवक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के एक पदाधिकारी का बेटा है। वहीं पाकिस्तान में रहने वाली युवती का भाई कट्टरवादी संगठन तालिबान का सदस्य है। इंटरनेट की वेबसाइट पर दोनों का परिचय होता है और प्रेम और नफरत की नई कहानी 26/11 की त्रासदी के बीच जन्म लेती है।

नाट्य-निर्देशक दौलत वैद्य के अनुसार बांग्लादेश, लंदन और पाकिस्तान में भी इसके मंचन की तैयारियाँ चल रही हैं और इसे वो भारत के प्रत्येक राज्य में करने का इरादा रखते हैं क्योंकि आज के निर्मम वातावरण में इस नाटक के संदेश को दूर तक पहुचाना एक विकल्प है।

निशांत रंजन

इ-8/6, सादतपुर एक्सटेंशन, दिल्ली-110094

दोहे

दोहे

टीकेन्द्र 'शाद'

करमन की गति भूल जा वर्तमान में डोल
वरना तू पछतायेगा जीवन है अनमोल,
हाकिम डूबे मौज में बहरी भई सरकार
मँहगाई की मार से तू तो चीख-पुकार,
दुखिया सब संसार है तू भजता हरिनाम
मदद करें चल कर सभी ये है हरि का काम,
कान खोलके सब सुनो, कंस न बनियो कोय
छोरा-छोरी में कभी, भेद न करियो कोय,
आँखिन देखी पर यहाँ सब बैठे चुपचाप
कौन हरेगा फिर यहाँ जन-जन का संताप,
बात करे जा प्रेम की नफरत मत फैलाय
ख़ाकी नेकर पहन कै बुद्धि जड़ है गाय,

20/21 रामनगर, पोस्ट-कृष्णानगर, मेरठ

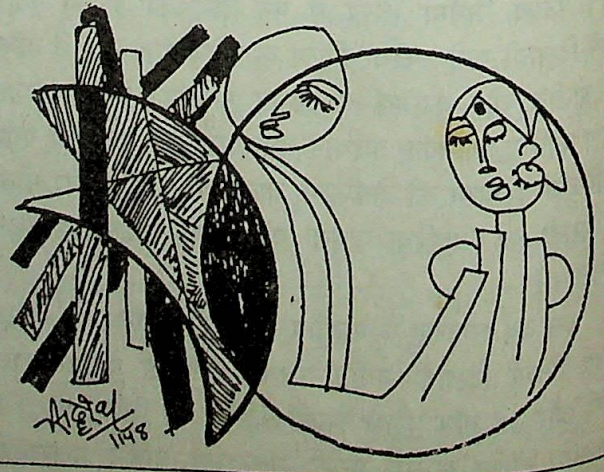

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पाति और मर्यादा पुरुषोत्तम राम

मंजु शर्मा 'वनिता'

'सम्पाति चिंता' सुप्रसिद्ध प्रगतिशील कवि मलखान सिंह सिसौदिया की पौराणिक प्रसंगाधारित एक उत्कृष्ट काव्य रचना है।

इस कृति में सूर्य साधारणता को तिरस्कृत करने वाली सर्वोच्चता का प्रतीक है तथा सम्पाति इस दम्भ के विरुद्ध उठने वाली आवाज़ है। सूर्य का समस्त सृष्टि पर एकाधिकार, उसके द्वारा नदियों और सरोवरों का शोषण और वनस्पतियों की प्राण शक्ति को सोखने का, उन्हें निष्प्राण करने का क्रूर व्यवहार सम्पाति को हर क्षण सालता है। परिणाम स्वरूप वह सूर्य को चुनौती देने के लिए तत्पर हो जाता है लेकिन शारीरिक क्षमता की सीमाओं के कारण यह महाअभियान अधूरा ही रह जाता है। सम्पाति अपना संकल्प पूर्ण नहीं कर पाता और पंख एवं नेत्र खोकर पूर्णतः असफल हो जाता है। यह असफलता जन्य पीड़ा किस तरह उसके मन में निरंतर कसकती रहती है, कवि ने उसकी पीड़ा को सूक्ष्मता, स्पष्टता एवं विस्तृत संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया है।

कवि सिसौदिया ने इस काव्य संग्रह को चार शीर्षकों में बाँटा है–प्रथम खंड 'आत्म चिंतन' में कवि ने सूर्य के दम्भ-भंजन के लिए सम्पाति के प्रबल विद्रोह, दृढ़ संकल्प और असफल प्रयास को चित्रित किया है। असफल होने पर नितांत असहाय, विवश, शक्तिहीन, नेत्रहीन, पंख विहीन सम्पाति असीम पीड़ा और आक्रोश में तड़प उठता है। वह तन और मन की विसंगति और अंतर्विरोध से विक्षुब्ध और उद्वेलित होकर विधाता से पूछता है–.

ओ विश्व चेतना के आगार,
तुमने शरीर को ही मन
और मन को ही शरीर
क्यों कर नहीं बनाया?

द्वितीय खंड-'पराजय की पीड़ा' में सम्पाति रिच्छ-बानरदल को अपनी विषाद भरी गाथा सुनाता है और अपनी अक्षमता और पराजय पर क्षोभ व्यक्त करता है। जब हनुमान राम की विषाद कथा और सीता हरण को विषय में बताते हैं तो सम्पाति उनकी पीड़ा से द्रवीभूत होकर लंकेश के विषय में विस्तार से बताता है। सम्पाति के मार्ग दर्शन से ही हनुमान सीता की खोज में दक्षिण दिशा में चल देते हैं।

'पीड़ा से मुक्ति' खंड में युगों की प्रतीक्षा सिमट जाती है, सम्पाति को राम मिल जाते हैं। सम्पाति राम को अपनी मनो व्यथा, शारीरिक अक्षमता और दृढ़ संकल्प शक्ति से अवगत कराता है। अपनी असफलता को स्मरण कर उद्वेगाकुल, अपमानित, पराजित सम्पाति निराशा के गहन सागर में डूबने लगता है तब राम उसको हताशा से उबारने के लिए समझाते हैं-

तात! तुम्हारी बर्हिदृष्टि
कब की अंतर्दृष्टि बन चुकी है।

संशय की झिल्ली जब तक नहीं फटती है
तब तक बुद्धि अनिश्चय की असह प्रसव
पीड़ा
व्याकुल भोगती रहती है।

राम सम्पाति को असफलता का कारण बताते हैं -

आपकी त्रासदी यह है कि
आपने एक अहं को दूसरे अहं से पराभूत करना चाहा था

अपनी भूल को जान' अद्भुत ज्ञान से संपन्न होकर सम्पाति पराजय की भावना से मुक्त होकर नवीन चेतना एवं नया जीवन प्राप्त करता है।

अंतिम खंड 'अग्नि परीक्षा' में राम भगवान नहीं मर्यादापुरुषोत्तम दृष्टिगत होते हैं। साधारण मानव की तरह राम का अहं मानवोचित स्वभाविक संशय और अविश्वास सीता को अग्नि परीक्षा देने का आदेश देता है। सीता पतिव्रता पत्नी की तरह अग्नि परीक्षा के लिए तत्पर होती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे रावण हार कर भी जीत गया और राम जीतकर भी हार गए। निरीह पक्षी की तरह नारी की विवशता, पुरुष का अत्याचार उन्हें झकझोर देता है। उन्हें लगता है सीता का हरण उनके अर्द्धांग का हरण, उनकी प्रिया का हरण नहीं था वह तो केवल राम के सम्मान का हरण था जिसे राम ने रावण को पराजित करके पुनः अर्जित कर लिया है। पत्नी रूप में स्वीकारने के लिए समाज के साथ-साथ राम भी संशय ग्रस्त हैं। उनके इस रूप को देखकर सम्पाति चुप नहीं रह पाते वह राम को धिक्कारते हैं–

सोच तुम कैसे सके सीता नहीं है शुद्ध
छिः छिः, राम
राम तुमने ऐसी सीता पर संदेह किया है जो तुम्हारे लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महलों क वैभव छोड़ कर वन में अनेकानेक कष्ट सहती रही। रावण ने सीता का हरण किया था इसके भी जिम्मेदार आपही हैं। उसमें सीता का कोई दोष नहीं था। वह भी आपके कारण ही हुआ। आपके ही इशारे पर लक्ष्मण ने लंकेश की बहन का, एक नारी का अपमान किया था जिसका परिणाम भोगना पड़ा निर्दोष सीता को। अग्नि-परीक्षा को अनुचित ठहराते हुए वे राम को फटकारते हैं–

कहाँ की और कौन सी वह वंश मर्यादा
कि जिसमें नारि तन की शुद्धता की परीक्षा
की अग्नि में जाती
कि जैसे धातु की जड़ मूर्ति हो वह।

वह राम की ग़लतफहमी भी दूर करते हैं–आप क्या सोचते हैं राम! सीता आपके आदेश के कारण नहीं बल्कि अपने अपमान के कारण स्वयं को जलाने के लिए तत्पर है। वह राम को सलाह देते हैं कि राम दुराग्रह छोड़ दो, संकोच मत करो और सीता को भस्म होने से बचा लो अन्यथा कुछ ही पल में सब कुछ समाप्त हो जायेगा। अन्तर्द्वन्द्व ग्रस्त, संशकित राम को दृष्टिहीन सम्पाति का यह कथन नूतन दृष्टि देता है–

मनुजता सर्वोच्च जिससे जनमते हैं
सत्य शिव आदर्श युग अनुसार।
वचन यों सम्पाति के उद्‌बोधमय सुन
नेत्र भीतर के गये खुल राम के

अग्नि परीक्षा के प्रसंग को सम्पाति से जोड़कर कवि ने राम कथा को एक नया रूप दिया है। समाज में एकाधिकार प्राप्त तानाशाहों के वर्चस्व को चुनौती देने के प्रयासों की विफलता, शारीरिक सीमाओं के कारण संकल्पों की अपूर्णता, नारी की अग्नि परीक्षा सम्पाति की नहीं कवि की भी पीड़ा है जो हर युग में रूपान्तरित होकर विद्यमान है।

हिन्दी विभाग, टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़

सम्पाति चिंता, मलखान सिंह सिसौदिया, ज्योतिलोक प्रकाशन, 19, टैगोर मार्ग, केवल पार्क, दिल्ली-33 मूल्य : 100/-

●

साधारणता में विशिष्ट खोज की कविताएँ

नरेन्द्र पुण्डरीक

इधर जो कविताएँ देखने में आ रही हैं उन कविताओं में भरत प्रसाद की कविताएँ कथन और विषय वस्तु दोनों को लेकर अलग दिखायी देती हैं। भूमंडलीय भाषा एवं कहन से दूर अपने को अपनी धरती का कवि बनाकर चल रहे हैं। सीजों और विषयों को देखने की दृष्टि बहुत स्पष्ट है। कवि की संवेदना चीजों के पास सीधे-सीधे जाकर संवाद करती हैं। अनावश्यक भाषा का जंजाल नहीं बुनती है। "एक पेड़ की आत्मकथा" कवि का पहला कविता संग्रह है। कविता में विषयों का चयन एवं संकलन में कविताओं का चयन प्रथम कविता संग्रह का आभास नहीं देता है। कवि जहाँ रहता है वहाँ प्रकृति का मातृत्व इतना सघन है कि उसका मातृत्व प्रवाहित ही होता रहता है।

"मैं तो अल्हड़ से झुकी हुयी साँवली घटाओं में।
धारासार दूध बरसता हुआ देखता चला आ रहा हूँ।।

यह संकलन की पहली कविता के अंश हैं। काव्यः अभिव्यक्ति की स्पष्टता के आभास का पता शुरूआत से ही चल जाता है।

संकलन में समकालीन हिन्दी कविता ने वरिष्ठ कवि भगवत् रावत की भूमिका है। भूमिका का शीर्षक है। "सबसे सुंदर कविता अभी लिखी जानी है" कविता संग्रह की कविताओं को प्रथम दृष्टया देखने से लगता है। वह सुंदर कविता जिसके लिखने की बात भगवत् रावत ने कही है। वह इसी शिलांग (मेघालय) से ही लिखी जायेगी, जो प्रकृति का सबसे सुंदर मातृत्व से समृद्ध प्रदेश है।

कविता के साधारणीकरण में, श्रेष्ठ कविता की खोज में लगे भरत प्रसाद की कविताएँ निश्चय ही कविता के जड़ स्वरूप को तोड़कर आगे बढ़ती हैं उनकी कविता समकालीन हिन्दी कविता की रचना शीलता का वह रास्ता अख्तियार करती हुयी चलती है, जो कविता के उस काव्य रूप को सामने लाती हैं, जो कविता की नई अर्थ छवियों को सामने ले आती हैं।

"किसी पर्वत-शिखर से/ फूटता हुआ पाश्चाताप/ जो इतना ऊँचा उठा / कि अकेला रह गया/ इतना शक्तिशाली बना / कि कठोर हो गया।"

भरत प्रसाद की कविता के साधारीकरण का यह जो तेवर है इधर तेजी से कविता में आ रही पीढ़ी को एक रौशन रास्ता दिखाने का अच्छा माद्‌दा रखती है।

इस तथाकथित भूमंडलीकरण समय में पूँजीवाद के खेल में उत्पन्न अराजकता, अवसाद और हीनता में डूबते समाज में लड़ने के लिये नयी रोशनी देती हैं, जो अवसरंवाद से दूर, वैचारिक दृष्टि से संपन्न कवि में मौजूद हैं, जिसमें समाज को देखने, परखने की गहरी चिंता है। "मुझे पता है कि/ कैसे सिर उठाया जाता है / कैसे अपने बल पर लड़ा जाता है/ जब हज़ारों हाँ-हाँ की जय-जयकार कर रहे हो/ अकेले कैसे ना कहा जाता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो यह कहते हैं समकालीन हिन्दी कविता पाठ्कों से दूर हैं वे भरत प्रसाद की कविताएँ पढ़ें उन्हें निराश नहीं होना पड़ेगा। भरत प्रसाद कविताएँ कौंधती नहीं, बल्कि एक कविता दूसरी कविता के कल्ले फोड़कर निकल पड़ती है, क्योंकि वे ख़ास अंदाज़ में नहीं होती हैं। बल्कि वह दूब की तरह धरती में पकड़ रखकर फैलने का जज्बा अपने अंदर रखती हैं।

"कौन देखेगा इनमें?/ फसल ढ़ोते समय/ मारे थकान के बावजूद/ परिश्रम का अलौकिक आनंद/ किसी की मड़ई छाते हुये/ दुनिया में अपनी ज़रूरत का एहसास।"

यह जो आदमी की आदमी होने की असली ताकत है उसको पहचानने और पहचान देने का प्रयास हैं भरत प्रसाद की कविताएँ। आगे इसी कविता में कवि कहता है "आपके पहचाने का मूल्य/ इनको ही पहचानने में निर्भर है।"

कवि के अंदर समय को पहचाने का ज़ज्बा और उस समय में रहने का उनका अपना एक अंदाज़ है और उसका आत्म स्वीकार भी है। यह आत्म स्वीकार उसकी कविता की ताकत है।

"मुझे क्षमा करें मेरे लोग/ वे पल-प्रतिपल मेरे लिये बदल रहे हैं/ और मैं उनके लिये भी" यह जो क़हना और आत्म स्वीकार का अंदाज़ है वह आज की कविता से ग़ायब होता जा रहा है। भरत की कविता रेडीमेड फिनिस्ट प्रोडक्ट नहीं है। इनकी कविता अवसाद, घुटन, कुंठा और पराजय के बीच से निकालने का उद्यम करती है। बेदाग ढंग से अपनी बात को कहती हुयी आगे और आगे बढ़ती चली जाती है। इनकी भाषा का यह बेलागपन इनकी कविता की कमजोरी नहीं बल्कि ताकत है, जो कविता को उलझाव-ऊबास, दुरूहता के घेरे से बाहर निकालती है। भरत की कविता की कमजोरियाँ हैं, जिनको इन्होंने छिपाया नहीं है यह आत्म स्वीकार इनकी कविता की अतिरिक्त ताकत बन कर सामने आती हैं। इनकी कविता जनसामान्य के हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, संघर्ष के स्वरूपों की कविता है। इसीलिये इनमें किसी प्रकार के बनाव-ठनाव भाषायी चमत्कार से दूर रहकर साधारणता में ही विशिष्टता की खोज की कविताएँ हैं, जो इन्हें दूसरे कवियों से अलग कर नयी पहचान देती हैं।

"जिसे कहना बहुत ज़रूरी है / उसे कहते ही नहीं/ किसी मौन की भाषा/ कभी सुनते नहीं हैं।"

जिसे दूसरे नहीं कहते अपने विशिष्टता बोध के कारण उसको ही भरत प्रसाद की कविताएँ व्यक्त करती हैं। समकालीन कविता में छाये विशिष्टता बोध के अहम भाव को भी यह कविताएँ तोड़ती है। भरत की कविताएँ दुनियाँ के जटिल यथार्थ से साक्षात्कार करती हुयी आगे बढ़ती हैं। उसे अपनी अभिव्यक्ति में लाने के लिये कवि भाषा में कहना संभव बनाता है। यह सहज़ संप्रेषणीयता इनकी कविताओं में अर्थछवियों को खोलकर सामने रखकर उसके सहज प्रभाव को और अधिक बढ़ा देती है। नीचे की लिखी लाइनों पर गौर करें। "जो न दे सके वह ज्ञान/ कि संपूर्ण ज्ञान पा लेने के बावजूद लगे हन कितने अज्ञानी है/ जो न दे सके वह प्यास/ जिससे हृदय/ समस्त भावों के पीने के बावजूद/ लगे कि कितना खाली है।"

एक पेड़ की आत्मकथा, भरत प्रसाद, अनामिका प्रकाशन, 52, तुलाराम बाग, इलाहाबाद, मूल्य : 275 रुपये

प्रतिरोध के पक्ष में खड़ी कविताएँ

डॉ0 कुमार वीरेन्द्र

युवा कवि शैलेय का कविता संग्रह 'या' अपने समूचे पाठ के साथ पाठक को रोमांच से तो भर ही देता है, गहन विचारक चिंतन-मंथन को प्रेरित व उद्वेलित भी करता है। हर कविता हालांकि कवि के अपने निजी अनुभव रस व शब्द-अभ्यास की साझा उपज होती है, परंतु उसकी वास्तविक कसौटी यही है कि अपनी संरचना व बुनावट में वह अपने समय की जनविरोधी हरकतों का एक मुकम्मल प्रतिपक्ष रचे ताकि रचना अंततः सामाजिक परिवर्तन का सुविचारित व पुख़्ता औज़ार बन सके। शैलेय इस मायने में एक अत्यंत सहज, सतर्क व गंभीर राजनीतिक कवि हैं। यहाँ तक कि उनकी कविताओं में आये प्राकृतिक बिंब व प्रतीक भी समाज के मौजूदा अंतर्विरोधों को बहुत तीखेपन के साथ उजागर करते हैं। यही कारण है कि इन कविताओं के शिल्प में रोमानी हृदय के आलोड़न नहीं बल्कि गहन-सघन विचार के सहज संकेत उभरते दिखाई देते हैं। इन कविताओं को पढ़ते हुए बराबर यह आभास होता है कि कविताएँ और कवि मानो एक-दूसरे के परिपूरक बने एक-दूसरे को बराबर अनवरत रचने में जुटे हैं। संग्रह की पहली ही कविता इस अनुभव को एक साथ प्रमाणित करती हैं-

हताश लोगों से/ बस/ एक सवाल/ हिमालय ऊँचा/
या
बछेन्द्रीपाल - (या)

सामाजिक परिवेश की तमाम हलचलों के साथ ही शैलेय की कविताओं में इतिहास, भूगोल व राजनीति को प्रतिद्वायित करते-होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते हमें उनमें आसपास बिखरी तमाम मामूली चीज़ों, वस्तुओं, बहुरंगी जीवन स्थितियों-परिस्थितियों के प्रति भी गहन संवेदना व स्वस्थ विचार साथ-साथ चलता दिखाई देता है। संवेदना, राजनीति और काव्यशिल्प के ताने-बाने में गुथी शैलेय की कविता हमें एक बृहत्तर अर्थ सौंपती चलती है- "जूता/अगर पांव के साइज़ का न हो /तो/दुखाता ही है/ज्यादा ढीला हुआ/ तो चाल बिगड़ जाती है/और ज़्यादा टाइट होने पर तो चल ही पाना मुश्किल! लेकिन नये-नये जूते भी तो नोचते हैं एड़ी/ पर हर नया ब्रह्माण्ड/ रूप इसी तरह लेता है/जैसे कुछ दिनों में/पाँव नहीं/ जूता ही खुलता है/ढीला होता है जूता ही/ घायल पाँव/ फिर ठीक हो जाता है/ मस्त-मस्त चलता है/ जूते पर सवार।"-(जूता)।-यहाँ जूता एक रूढ़ होते जा रहे सिस्टम व आवरण का प्रतीक है तो पाँव मनुष्य की अम्यजिजीविषा और विचार का प्रतीक।

शैलेय रूढ़ हो चुके विचार, संस्कार व समाज में एक प्रतिपक्ष रचते हुए नई पीढ़ी के नये सपनों को ज़मीन व स्थायित्व देते दिखाई देते हैं- "ढाई साल की मेरी बिटिया/मेरे लिखे हुए पर/क़लम चला रही है/और गर्व से इठलाती/मुझे दिखा रही है/मैं इसे अपने समय का बिगाड़ मानूँ/या कि नये समय का लेखा/बिटिया के लिखे को मिटाने का मन नहीं है/और दोबारा लिखने को/ अब न काग़ज़ है और न समय।" (इतिहास)।

मनुष्य के इस अनवरत संघर्ष और अदम्य जिजीविषा पर शैलेय का गहरा भरोसा है। वह कविता लिखते हुए जनता के साथ-साथ खड़े हेकर चलते उसे विचार और हौसला देते दिखाई देते हैं-"जहाँ कोई रास्ता नहीं हुआ करता/वहाँ भी होती है/एक अदद ज़मीन/ जहाँ भी हो/रास्ता बन सकता है।" (रास्ता)।

शैलेय की रचनात्मक चिंताएँ और सरोकार उन्हें व्यापक संसार से जोड़े रखती हैं। यहाँ कवि की रचनाधर्मिता दैनन्दिन कसौटी पर खरी उतरती दिखाई देती है। कवि दो टूक कहता-मानता है कि यदि व्यक्ति के पास कोई सुविचारित दृढ़ विचार ही नहीं है तो घर में सुविधाओं के लिए एकत्र की गयी तमाम चीज़ों की कोई अर्थवत्ता नहीं है-"फ़ोन अगर हटा दूँ/ तो क्या/ और भी छोटा नहीं हो जायेगा/ मेरा घर/अब देखो न/अकाल पर बातें हुईं तो/देश भर के अघाते गोदाम याद आये/युद्ध पर बातें हुईं तो/ मौत पर भी मुस्कुराते प्यार याद आये/हाँ मानता हूँ कि/घर की ज़रूरतों में कुछ भी कम/नहीं किया जा सकता/ पर आदमी के जीने को विचार भी तो चाहिए।"-(विचार)।

शैलेय घर और समाज के प्रति बराबर संवेदनशील और समर्पित प्रतिबद्धता बनाये रखते हैं।

विचारपरक दृष्टि से वे समाज के आम आदमी की जीवन-स्थितियों के अंकन के साथ ही प्रश्न भी खड़े करते चलते हैं। "इतने भगवान/इतने विज्ञान/इतने उत्पादन/इतनी सरकारें/इतने क़ानून के बाद भी/सांस भर का सपना दुश्वार हो रहा है।" शैलय बाज़ारवाद व भूमण्डलीकरण की इस चकाचौंध पर करारा व्यंग्य करते हैं -"लाखों-लाख दमकते मोतियों से क्या/प्यास को तो घूंट भर सादा पानी चाहिए।"

शैलेय कविता को समाज के लिए बराबर एक सांस्कृतिक रचनात्मक औज़ार मानते हैं। वे शासक वर्ग की बर्बरता व शोषण का प्रखर विरोध तो दर्ज करते ही हैं, साथ ही साथ सामान्य व्यक्ति सर्वहारा वर्ग को अत्यन्त सीधी सरल जुबान में झकझोरते, जागृत भी करते चलते हैं-"उन्होंने देखा कि/ मैं अठारह का हो गया/ उनके लिए मैं वोट बन गया/ उन्होंने देखा कि/ मैं पढ़-लिख गया/ उनके लिए मैं मुनीम बन गया/उन्होंने देखा कि मैं भोला हूँ/ भावुक भी/उन्होंने मेरे आगे भगवान थोप दिये/मरने के बाद/मैं बैकुंठ पहुँचता हूँ कि नहीं/यह देखना अब आपका काम है।"-(आपका काम)।

शैलेय की कविता में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे रूढ़ियों का विरोध तो करते हैं परंतु स्वस्थ परंपरा के प्रति गहन आस्था भी बनाये रखते हैं-"चाहे जिस वजह से/ठंडा हो मन/कंपकपा रहा हो बदन/आदमी को/किसी पुराने अलाव के पास जाना चाहिए/जाड़ा ही नहीं/वह रात को भी काटेगा।"

दरअस्ल शैलेय एक गहरे भावबोध से भरे एक प्रखर राजनीति-संस्कृतिकर्मी की भूमिका में दिखाई देते हैं। वैश्विक पूंजी का वैश्वीकृत बाज़ार, मंदी, मंहगाई, भ्रष्टाचार व शोषण को तो वे उघाड़ते ही हैं, जड़सूत्रवाद का भी खंडन-भंजन करते चलते हैं। गहन पीड़ा, समर्थ आक्रोश और भरपूर ऊर्जा से उनकी कविताएँ निश्चय ही एक सकारात्मक रचनाधर्मिता का प्रमाण देती हैं। तभी तो वे भावी पीढ़ी तक के लिए प्रतिबद्ध हैं-"हम अपने हाथ/उन्हें इस तरह सौंपेंगे/ कि/ जैसे उनके क़दमों को जड़ें मिल गयी हों।"

द्वारा-श्री नगीना सिंह, उदयगढ़ ट्रांसपोर्ट, पुलिस लाइन रोड, डाल्टनगंज, पलामू, झारखण्ड।

'या' (कविता संग्रह), शैलेय, अंतिका प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुरदरे समय के रिसते घावों का दृश्यबिंब

(शैलेन्द्र चौहान की कविताएँ)

रमाकांत शर्मा

साहित्यिक पत्रिका 'धरती' के संपादक कवि शैलेन्द्र चौहान की कविताओं से गुज़रना अपने समय का साक्षी होना है। आज के खुरदरे समय के रिसते और टीसते घाव यहाँ साफ़ नज़र आते हैं। शैलेन्द्र की कविताएँ धरती से उगी फसलें हैं—जिनकी ताम्रवर्णी बालियों पर ओस के आँसू कभी सूखते, कभी बहते महसूस किये जा सकते हैं। आँख में टूटे सपनों की किरचें लेकिन मन में लड़ाई जीत लेने का अटूट विश्वास-कवि शैलेन्द्र चौहान की कविताओं की महत्त्वपूर्ण ख़ूबी है।

इनकी कविताओं से रू-ब-रू होना समय के सूर्यताप में झुलसने जैसा है। ऊष्मा, ऊर्जा और स्वेद की ज़मीन ही कवि शैलेन्द्र चौहान की कविताओं की असली ज़मीन है। इनकी विशेषताओं का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि यहाँ गाँव में बरबस घुस आये शहर और शहर में बस गये गाँव के दृश्यबिंब अपनी क्रियाशीलता में उजागर होते हैं। यहाँ गाँव सिर्फ़ गाँव नहीं है और शहर महज़ शहर नहीं है। इन दोनों के मिलन से जो नये सूरतेहाल बने हैं—उनकी सचाई अपनी विश्वसनीयता में व्यक्त हुई है। शैलेन्द्र चौहान के अब तक तीन कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'नौ रुपये बीस पैसे के लिए' सन् 1983 में, 'श्वेतपत्र' सन् 2002 में तथा 'ईश्वर की चौखट पर' सन् 2004 में छपे। इनकी कविताएँ समय के साथ प्रौढ़ और परिपक्व होती रही हैं। यह परिपक्वता शिल्प और संवेदना दोनों स्तरों पर देखी जा सकती है।

शैलेन्द्र चौहान की कविताएँ सांप्रदायिकता, आतंकवाद, अलगाव, अवसाद, बाज़ारूसंस्कृति, भूमण्डलीकरण और जड़ सौंदर्याभिरुचि जैसी चुनौतियों से सीधे टकराती हैं और विकल्प तलाशती हैं। हताशा और निराशा में रुदन नहीं करतीं। इनकी कविताएँ कवियों से कविता-कर्म के अतिरिक्त भी कुछ करने की माँग करती हैं। सक्रिय संस्कृतिकर्म। सामाजिक हिस्सेदारी। उदाहरण के लिए 'ईश्वर की चौखट पर' कविता-संग्रह की कविता 'क्या हम नहीं कर सकते कुछ भी' में बिटिया के सवालों को देखा जा सकता है—

"पूछती है अब / क्यों मरते हैं इतने लोग / कौन होते हैं मारने वाले/ कहाँ से आता है इतना/ गोली-बारूद। क्या करती है पुलिस, सेना/ क्या करते हैं ये मंत्री/ और / हम नहीं कर सकते क्या/ कुछ भी?"

आख़िरी सवाल सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह सवाल कविकर्म को नई दिशा देने वाला है। कवियों से सामाजिक-सांस्कृतिक सक्रिय भूमिका की माँग करने वाला सवाल है। जिस दिन शब्द और कर्म की दूरियाँ सिमट कर समाप्त हो जायेंगी—सच मानिए—समाज की सूरत बदल जायेगी। केवल कवितागिरी पर्याप्त नहीं है कोरी लफ्फाज़ी बेमानी और बेईमानी है।

यदि कतिपय लंबी कविताओं को छोड़ दिया जाय तो शेष कविताओं में कवि शैलेन्द्र चौहान अपनी संवादधर्मिता बनाए रखते हैं। यह हृदय-संवाद पाठक को कर्मयोग की ओर प्रेरित करता है, शब्द में छिपी ऊर्जा को प्रकाशित करता है। शैलेन्द्र की कविताएँ इस कसौटी पर खरी उतरती हैं। 'श्वेतपत्र' कविता-संग्रह में वे लिखते हैं—

"मैंने तो लिखा है श्वेतपत्र/ काली सियासत के खिलाफ/ तुम भी उट्ठो अब/ इन लुच्चे हुक्मरानों के खिलाफ।"

दुष्यंत कुमार ने भी ऐसी ही घोषणा करते हुए लिखा था—

"मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ/ हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।"

सिरफिरे और सनकी हुक्मरानों के खिलाफ़ यह आवाज़ उठनी ही चाहिए। यह आवाज़ ही नई सुबह का आगाज़ होगी। कवि शैलेन्द्र अपनी 'विकल्प' शीर्षक कविता में समाज के डरे-सहमे लोगों से यह सवाल करते हैं,

"साफ़-साफ़ और खुलेआम / क्यों नहीं कहते तुम /वह जो तुमने मेरे कान में कहा।

डर से निजात पाना ज़रूरी है। भय भैरव को जीत लेना ही असली जीत की सीढ़ी है। बेहतर दुनिया और जीने लायक दुनिया का ख्वाब भी तभी साकार हो पायेगा।

शैलेन्द्र चौहान की कविताओं में सियासत की अमानवीय क्रूरताओं के प्रति तीखा आक्रोश है। इस क्रोध का अभिनंदन किया जाना चाहिए क्योंकि यह क्रोध मानवीय करुणा की उपज है। गहरी संवेदनशीलता का परिचायक है। तथाकथित सियासतदारों के प्रति फूटते गुस्से की बानगी देखिए—

"बुद्धू सड़ियल नेता वहाँ उभरा / और खजेले कुत्ते में तब्दील हो गया।

यह व्यंग्य का पैनापन नागार्जुन की व्यंग्य कविताओं की यादें ताज़ा करता है।

शैलेन्द्र की कविताओं क़ा एक वैशिष्ट्य यह भी है कि वहाँ मनुष्य और प्रकृति जुदा न हो कर-एक-दूसरे से प्रगाढ़ रूप में संबद्ध है। वहाँ मनुष्य की देहगंध और प्रकृति की रसगंध घुलमिल गई है। 'पत्थर का पथ' कविता में यह घुलाव स्पष्ट देखा जा सकता है। हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर पड़ते मानवीय पदचिह्नों को देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि देवदार वृक्ष से उसकी साम्यता दर्शाते हुए लिखता है–

"देवदार सीधे ही बढ़ते / चूम रहे हिम-शिखरों को/ मैंने तुमको चाहा / उन अर्थों में/ जहाँ मैल-कलुष से दूर / सुंदर मन हो / रम्य प्रकृति-सा/ तरल वेग-सा/ निर्मल नभ-सा।

पथ निर्गम/ मानव-हाथों ही/ बना सुगम है।

मनुष्य के श्रम के प्रति यह निष्ठा, श्रम-सौंदर्य की पारखी नज़र तथा नैसर्गिक सुषमा से उसका आत्मीय संबंध इस कविता में देखते ही बनता है। इस कविता की अंतिम पंक्तियाँ गौरतलब हैं–

"देहगंध तुम्हारी/ प्रकृति गंध से मिलकर/ मन मुग्ध करेगी।"

ख़ास बात यह है कि कवि शैलेन्द्र चौहान की काव्यसंवेदना का आयतन छोटा नहीं है। उसमें पूरी कायनात शामिल है। इससे न केवल कविता की भूमि व्यापक हुई है, वरन् कविता की भूमिका ने भी विस्तार प्राप्त किया है। 'ग्रीष्म एक कविता' में शैलेन्द्र लिखते हैं–

"कविता /होती वाष्पित जल-सी/ उत्सर्जित होती / स्वेद-सी/ फूटती मन और शरीर से/ फैल जाती है/ ब्रह्माण्ड में।"

इस दृष्टि से शैलेन्द्र की बहुत सारी कविताएँ–मसलन 'पुनर्वास', 'खूनी दहशत में गुलाबी शहर', 'देहरी पर मरी माँ', 'छटे कुछ धुँध', 'दीवारें' और 'आषाढ़ बीतने पर' जैसी कविताएँ उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं में संवेदना और शिल्प में सुंदर संतुलन अनायास सध गया है।

उपर्युक्त समीक्षात्मक विवेचन का तात्पर्य कतई यह नहीं है कि शैलेन्द्र चौहान ने जो कुछ लिखा वह श्रेष्ठ है। ऐसा समझना भ्रम होगा। कुछ कविताओं में, खासकर लंबी कविताओं में आंतरिक लय कई बार टूटती है। शब्द-विन्यास गड़बड़ हुआ है। वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली की भारी घुसपैठ ने कविता को बोझिल और असंप्रेषणीय बनाया है। उदाहरण के लिए 'ईश्वर की चौखट पर' कविता-संग्रह की अंतिम कविता 'उपसंहार' को देखा जा सकता है। इस कविता में प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली काव्यार्थ के संप्रेषण को आहत करने वाली सिद्ध हुई है–

"अपना पहला आर्बिट/ छोड़ देता है इलेक्ट्रान/ परमाणु विखंडन की/ अनचाही प्रतीक्षा/ रेडियोधर्मिता/ रोकने का प्रयास/ विशद ऊर्जा का स्वप्न/ निरर्थक।"

यह शब्दावली कविता के स्वभाव के विरुद्ध लगभग असह्य है। यदि इस शब्दावली में कविताएँ लिखी गई तो कविताएँ अपने पाठकों को ढूँढ़ती रह जायेंगी।

राहत का सबब यह है कि शैलेन्द्र चौहान ने ऐसी कविताएँ कम लिखीं हैं। यह उम्मीद की जा सकती है कि शैलेन्द्र अपनी वैज्ञानिक शिक्षा-दीक्षा को कविता में बतौर 'वैज्ञानिक दृष्टि' प्रयोग में लायेंगे-जिसके आलोक में चीजों को ठीक से देखेंगे–किन्तु अपनी काव्यभाषा की सर्जनात्मकता को आहत नहीं होने देंगे। शैलेन्द्र को अभी निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, विजेन्द्र और ज्ञानेन्द्रपति से बहुत कुछ हासिल करना चाहिए। बहरहाल।

'संकेत-विला', ब्रह्मपुरी-प्रतापमंडल, जोधपुर (राजस्थान)-342001

●

बोलते बिंब की अग्निमय लहरें

विप्लवी हरिकृष्ण राय

"स्वाधीनता" (पश्चिम बंगाल) का शारदीय विशेषांक 2009' भारतीय राजनीति और साहित्य को रेखांकित करने का गंभीर प्रयास है। इस विशेषांक के संपादक श्री राम अहलाद चौधरी ने उन तथ्यों को प्रकाशित किया है तथा उन मानवीय मूल्यों को उजागर किया हैं जिन्हें हम भारतीय विवेक चेतना के प्रतीक कह सकते हैं। इस विशेषांक में देश के शीर्षस्थ नेताओं के सामाजिक मूल्य स्फूर्ति की अग्निमय लहरों और संवेदनाओं का समागम देखा जा सकता है। इस विशेषांक की विशेषता यह है कि इसमें संपादक ने उन्ही बिन्दुओं को उकेरने का प्रयास किया है जो सामाजिक और राजनीतिक जीवन मर्म को कहीं न कहीं स्पर्श करते हैं। इसके राजनीतिक निबंध जहाँ एक ओर ज़िंदगी की सारी ऊष्मा और प्रेरणाओं को आत्मसात् करते है और उनके केन्द्र की सारी चिनगारियों से सुलगते हुए आगे बढ़ते हैं वहीं साहित्यिक और कलात्मक टिप्पणियाँ सुलगती हुई कल्पना और छूती हुई भावना का अविभाज्य और अनिवार्य अंग है।

तकरीबन 400 पृष्ठों में फैले इस विशेषांक में 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 21वीं सदी की झलकें, तत्कालीन राजनीति, संस्कृति और साहित्य की एक अविकल यात्रा है। एक युग के अनुभव और साक्ष्य इसके राजनीतिक निबंधों में दृष्टिगोचर होते हैं तथा साहित्यिक कहानियों और कविताओं में किस्सागोई का अंदाज़ भाषा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवानगी और बिंबों के कारण कला के नये आयाम प्रस्तुत करता है।

स्वाधीनता विशेषांक कई खंडों में बंटा हुआ है। इसके अंतर्गत राजनीतिक लेख, कहानियाँ, कविताएँ, उपन्यास अंश, लघु कथाएँ, नुक्कड़ नाटक, व्यंग्य, बहस, गीत, गज़ल इत्यादि बहुत सारी सामग्री एक साथ उपलब्ध है। भारतीय राजनीति के पितामह ज्योति बसु का संस्मरण 'कामरेड ई एम0एस0' इस विशेषांक का एक महत्त्वपूर्ण आकर्षण है। ज्योति बसु ने इस संस्मरण में यह बताया है कि जब 1959 में केरल में वाम दलों द्वारा संचालित सरकार को पं0 नेहरू तथा उनकी पुत्री इंदिरा गांधी ने उखाड़ फेंका तो उन्होंने तत्कालीन मुख्यमंत्री विधान चंद्र राय से मुलाकात की। उन्होंने (बी0सी0राय) कांग्रेस के इस जन विरोधी आंदोलन की भर्त्सना की और यह भी कहा कि अगर मैं नम्बूदिरीपाद की जगह होता तो सरकार गिराने वाले तमाम आंदोलनकारियों को गिरफ़्तार कर प्रशासनिक कार्यवाही करता।

विमान वसु ने अपने निबंध में यह स्वीकारा है कि राजनीतिक स्तर पर वाममोर्चे की एकता को कमजोर बनाने की साजिश चल रही है। प्रदेश के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने अपने निबंध में परिवर्तन की तलछट तलाशने वालों को चेतावनी देते हुए कहा कि दुनिया का भविष्य अमेरिका नहीं वामपंथ है और पश्चिम बंगाल का भविष्य भी कांग्रेस और भाजपा नहीं वामपंथ है।

श्री निरूपम सेन ने अपने आलेख में यह शिकायत की है कि विरोधी दल की नेत्री पश्चिम बंगाल में अराजकता और हिंसा का वातावरण तैयार कर रही है और संचार माध्यम भी उनका साथ दे रहा है। मृदुल डे ने पार्टी के साहस और बहादुरी को रेखांकित करते हुए पार्टी कार्यकर्ताओं पर होने वाले राजनीतिक हमलों की भर्त्सना की है।

प्रेमचंन्द से संबंधित प्रो0 कुँवर पाल सिंह, सनत कुमार और विपल्वी हरिकृष्ण राय के आलेख सिर्फ पठनीय ही नहीं संग्रहणीय भी हैं। शिवकुमार मिश्र, अनुनय चट्टोपाध्याय और नमिता सिंह, परमानंद श्री वास्तव, डा0 देवी प्रसाद मौर्य, विद्याधर शुक्ल, ज्योर्तिमय धोष के साहित्यक आलेख स्वाधीनता विशेषांक की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हैं। शेखर जोशी, अजय श्रीवास्तव, हीरालाल नागर, महेश दर्पण और उदय राज को कहानियों ने नयी जमीन तैयार की है। विजेन्द्र, शैलेन्द्र, नूर मुहम्मद नूर और कीर्ति नारायण मिश्र की कविताएँ सराहनीय है। डा0 अमरनाथ शर्मा और डा0 ब्रजकुमार पांडेय की बहस काफी गभीर है।

यह विशेषांक हिन्दी में आधुनिक भावबोध के अधूरे भग्न चित्र को पूरा करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है और निश्चय ही यह बोलता हुआ बिंब एक अनमोल चिंतामणि है।

राजनीतिक की व्याख्या करने वाली पत्रिकाएँ तो बहुत हैं परंतु राजनीति की धारा बदलने वाली बहुत ही कम है और मुझे लगता है कि चौधरी द्वारा संपादित स्वाधीनता एक ऐसी ही पत्रिका है।

स्वाधीनता शारदीय विशेषांक-2009, रामअह्लाद चौधुरी, गणशक्ति प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, 33-अलीमुद्दीन स्ट्रीट, कोलकाता, मूल्यः 50 रुपये

●

'पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ' एक साहित्यिक आईना

डा0 सुनीता ठाकुर

'पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ' नाम से रमणिका गुप्ता द्वारा संपादित कहानी संकलन एक सुखद अहसास की तरह सामने आया है जो इस समाज और देशकाल की जीवंत झांकियाँ प्रस्तुत करता है, इस क्षेत्र की संस्कृति को छूता है तथा सांस्कृतिक गौरव को प्रस्तुत करने के साथ-साथ बाहरी संपर्क और आधुनिकता के साथ-साथ उस संस्कृति में आने वाले विसंगत प्रभावों की भी पड़ताल करता है। 'मि0 के0', 'जड़ें', जैसी कहानियाँ बदलते हुए समाज, ज़रूरतों और परिवेश में अपने आप को बचाए रखने की जद्दोजहद को सामने रखती हैं। 'शिउली की गंध' और 'सूर्यास्त' जैसी कहानियाँ सत्ता के राज्यश्रयी और सामाजिक संदर्भों में स्त्री के शोषण और संघर्ष को त्रासद रूप में प्रस्तुत करती हैं। 'शिउली की गंध' के पात्र सरकार की सैनिक कार्रवाईयों का शिकार होते हैं, तो 'सूर्यास्त' के पात्र सामाजिक व्यवस्था में अपने अभावों का। दोनों ही संदर्भों में स्त्रियों की विसंगति कहीं बदली नज़र नहीं आती। 'आईना', 'मिस्टर के', जैसी कहानियों में भी स्त्री का यही दैहिक शोषण अलग रूपों में सामने आया है। 'आईना' एक औरत के दर्द को उसके सौंदर्य के संदर्भ में उभारती है-तेजाब फेंक दिए जाने के कारण उसका चेहरा जल जाता है। अपने सौंदर्य के लिए कभी विख्यात युवती समाज की दया का पात्र बन कर रह जाती है। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में स्त्री के दैहिक शोषण और तज्जन्य पीड़ा का यह मार्मिक दस्तावेज है। बस दुःख इस बात का लगा कि वह स्त्री-पात्र समाज और जीवन से पलायन रास्ता चुनती

In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, पर फिर मन के भीतर से आवाज़ आती है कि सत्य भी तो यही है।

पूर्वोत्तर के अनजान क्षेत्रों को आवाज़ देती ये कथाएँ, वहाँ की बोलियाँ और संस्कृति के स्रोतों की जानकारी देती हैं। ये कहानियाँ व्यक्ति की सामाजिक पहचान के संघर्ष की कहानियाँ हैं। अपनेपन को ढूंढ़ते व्यक्ति की कहानियाँ हैं। 'जड़ें' कहानी का पात्र आदि एकबारगी अपनी शिक्षा और परवरिश के अंतर के कारण अपनी जड़ों में 'अनफिट' महसूस करता है, पर वापस वह अपने गाँव लौटकर जाता है, इस फैसले के साथ कि 'आखिर कोई अपनी जड़ों से अलग होकर कितने दिन रह सकता है?''

इन कहानियों में अपने विकास और उद्धार की लालसा में सरकार और समाज सुधारकों के हथों शिकार होते व्यक्ति की व्यथा कुंगरी (भोर) लोंग्की (संघर्ष), सत्येन्द्र (वे तीनों और वह), और विलिएन्यु (जड़ें) जैसे पात्रों के रूप में बार-बार व्यक्त हुई हैं। इन कहानियों में सरकार और समाज सुधारकों के दोगले चरित्रों का साक्षात् कुछ इस तरह होता है कि पात्र उनके व्यामोह से उठकर अपने लिए जीवन का रास्ता स्वयं चुनते हैं, और अपने फैसले खुद लेकर आगे बढ़ते हैं।

इन कहानियों को पढ़ते हुए किसी न किसी रूप में मन में चुपके से यह सवाल कौंधता ज़रूर है कि 'हम किन्हें आदिवासी कहेंगे-जो अपने सीधे सरल जीवन में मगन है, या फिर उन्हें जो विकास का मुखौटा लगाकर सीधे सहज और सरल आदिवासी जीवन संस्कृति को धूमिल करते हैं?' ऐसे ही अनेक सवालों के साथ कुंगरी और लोंग्की जैसे पात्रों में जीवन का संघर्ष बोलता नज़र आता है, वे जैसे अपने होने, न होने की सार्थकता से जूझते हैं-'जीवित रहने के लिए मेहनत करना चाहिए और यहीं संघर्ष है, जीवन का संघर्ष। संघर्ष ही जीवन है।''... और यही इन कहानियों का मूल सूत्र विचार है। यहाँ रोमानियत नहीं यथार्थ है, ऐसा कटु यथार्थ जहाँ जीवन के प्रश्न से महत्त्वपूर्ण और कुछ नहीं होता।

अपनी समग्रता में यह संग्रह पूर्वोत्तर समाज में महिलाओं के संघर्षमय जीवन को प्रस्तुत करता है। इस भ्रम को भी किसी हद तक तोड़ने में सफल हुआ है कि मातृसत्तात्मक समाज होने के कारण वहाँ स्त्रियाँ ज़्यादा मज़बूत सामाजिक स्थिति में हैं। स्त्री शोषण के अनेक रूप यहाँ भी दिखाई देते हैं। यहाँ परिस्थितियाँ इसलिए और भी भयावह हो उठती हैं कि वहाँ सहायता और जानकारियों का अभाव साफ़ नज़र आता है-'कुंगरी सोचती रही। संघर्ष में जीना ही हमारा धर्म है। संघर्ष का अर्थ है, सुख-दुःख दोनों का सामना करना। यदि हर एक आदमी केवल अपने लिए ही सोचेगा, तो समाज के लिए कौन सोचेगा? ऐसे में अपने जीने के रास्ते वे स्वयं तलाश करती हैं-बिना किसी मदद और उम्मीद के, अपने बूते पर जीते हुए-''मैंने तुम्हारे दिए सारे पैसे अपने मंगेतर के चुनाव अभियान में लगा दिए। क्यों न लगाती, हम अब शादी के बंधन में जो बंधने जा रहे हैं? हमें ज़िंदगी में आगे बढ़ना चाहिए। है कि नहीं?... अच्छा अलविदा...'

कुल मिलाकर यह संकलन अपनी सहज सरल भाषा शैली और अनुवाद की श्रेष्ठता के रहते हिन्दी साहित्य के लिए एक बड़ी उपलब्धि है। यहाँ हम आम आदमी को अपनी बात कहते और अपने फैसलों पर जीता हुआ पाते हैं। उनमें विकास की लालसा तो है, पर अपने मूल्यों और समझौतों की क़ीमत पर नहीं। इसलिए वे सिर्फ़ एक ही भाषा जानते हैं-संघर्ष की भाषा, अन्य किसी भी चीज़ या सिद्धांत से समझौता करना उन्होंने जैसे सीखा ही नहीं है। कहानियाँ पढ़ते समय मेरे मन में सहज ही एक विचार बार-बार आता रहा-इतना भी मुश्किल नहीं समझौतों के बिना सिर्फ़ अपने फैसलों पर जीना। अच्छा संदेश है न!

पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ, डॉ0 रमणिका गुप्ता

वंशिका

साहित्य वार्षिकी-2010

वंशिका साहित्य वार्षिकी, जो कि जनवरी 2010 में विश्व पुस्तक मेला, प्रगति मैदान, नई दिल्ली में लोकार्पित की जायेगी, हेतु प्रत्येक विधा की मौलिक, अप्रकाशित तथा अप्रसारित रचनाएँ यथा कहानी, कविता, गीत, ग़ज़ल, उपन्यास अंश, लघु उपन्यास, लघु कथा, साक्षात्कार, लेख, पुस्तक, समीक्षा आदि आमंत्रित हैं। रचनाओं के साथ पासपोर्ट साइज फोटो, संक्षिप्त परिचय, पता, मोबाइल नंबर अवश्य भेजें। अस्वीकृत रचनाएँ लौटायी नहीं जायेंगी। रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।

रचनाएँ पंजीकृत डाक अथवा कोरियर से भेजें।

रचनाएँ इस पते पर भेजें

नित्यानंद तुषार (संपादक)

प्रारंभ प्रकाशन

आर-64, सेक्टर-12, रेल एन्क्लेव, प्रताप विहार, ग़ाज़ियाबाद-201009 (उ0प्र0)

मोबाइल : 9968046643

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर में गहरी प्रश्नाकुलता

"कबीर में काल और अकाल का द्वंद है। कबीर में गहरी प्रश्नाकुलता है। उनमें बहुवचनात्मकता भी है।" उक्त विचार डा0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने हिन्दी अकादमी द्वारा कबीर पर आयोजित कार्यक्रम में बोलते हुए कहे। हर बड़े रचनाकार का एक मुख्य द्वंद्व होता है। भक्ति आंदोलन के बाद केवल स्वाधीनता आंदोलन ही ऐसा था जो देश के हर जाति, हर संप्रदाय, हर भाषा, हर गली, हर गाँव में गूंजा और दोनों के प्रतीक चिन्हों में भी अद्भुत समानता है। इन दोनों आंदोलनों की साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक एकरूपता पर गंभीर काम की ज़रूरत है। निर्गुण भक्ति के ज़्यादातर कवि केवल भक्ति ही नहीं अपनी रोजी-रोटी भी कमाते हैं। इसीलिए कबीर दास हर उस संप्रदाय की निंदा करते हैं जो अपनी रोजी-रोटी खुद न कमाते हों। ऐसा लेखक हमेशा 'याचक' नहीं बल्कि 'दाता' होता है। यह भक्ति आंदोलन का ही असर था कि जैन और बौद्ध धर्मों में भी भक्ति का प्रवेश हो गया। कबीर सफल लोगों को मृत्यु का डर दिखाकर ग़रीबों को परलोक में ऐसे संसार का विकल्प देते हैं जहाँ वे ही सिंहासन पर बैठेंगे और अमीर और दुष्ट लोग जंजीरों से जकड़े होंगे। इस मायने में कबीर का परलोक सच्चे लोगों के लिए बेहतर दुनिया का विकल्प है।

कार्यक्रम के प्रारंभ में अकादमी के सचिव डा0 रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास' ने डा0 विश्वनाथ त्रिपाठी का विस्तृत परिचय दिया। प्रो0 अशोक चक्रधर ने कबीर को चेत, चेतना, चेतनावादी, चैतन्य का कवि बताया। वे अनपढ़ होते भी सबसे ज़्यादा ज्ञानी हैं लेकिन ज्ञान का वितण्डा नही दिखाते। कर्मकाण्ड के विरोधी कबीर ज्ञानकाण्ड के भी विरोधी हैं। उन्होंने कबीर को जीवन में उतारने की अपील करते हुए कहा कि हमें कबीर की कविता को पकड़कर चलना चाहिए।

इसके बाद प्रख्यात नृत्यांगना ज्योति श्रीवास्तव ने कबीर के कई पदों-'राम रहीम एक हैं दोनों', 'घूँघट के पट खोल सखी री', 'अरे मौको कहाँ ढूढे रे बंदे मैं तेरे पास में", 'भजो राम गोविन्द हरे' पर नृत्य प्रस्तुत किया।

प्रस्तुति : अजय कुमार शर्मा

स्त्री मातृत्व से नहीं अपने विवेक से पूर्ण होती है।

'स्त्री मातृत्व मात्र से नहीं अपने विवेक से पूर्ण होती है और इसी स्त्री की आज समूचे विश्व को आवश्यकता है।' ये शब्द प्रख्यात कथाकार/ व्यंगकार सूर्यबाला ने गोवा में 'कोंकणी भाषा मंडल' द्वारा आयोजित श्रीमती विजयाबाई सरमलकर व्याख्यानमाला के प्रथम आयोजन के अवसर पर कहे।

सूर्यबाला ने 'समकालीन स्त्री लेखन का इतिहास तथा विकास' पर अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते हुये देश में गहराती अपसंस्कृति और भाषा समस्या पर भी अपने विचार रखे। उन्होंने कहा कि विजयाबाई जैसी समर्थ और साहित्य तथा समाज के प्रति समर्पित रचनाकारों से ही साहित्य एवं भाषा अभिमंडित होती है। विजयाबाई निःसंदेह कोंकणी का अभिमान है।

समकालीन महिला के स्वरूप की चर्चा करते हुये सूर्यबाला ने कहा कि हिन्दी महिला लेखन एक स्वतः प्रसूत अभियान की तरह था। आलोचनाओं की परवाह न करते हुये स्त्री-लेखन ने कथा साहित्य को आज इतना समृद्ध कर लिया है कि उसके बिना कथा-साहित्य का इतिहास नहीं लिखा जा सकता। लेकिन आज स्त्री लेखन जिस संक्रांति से गुज़र रहा है, वहाँ उसके सामने अनेक चुनौतियाँ हैं। ये चुनौतियाँ स्व्यं अपने आत्म साक्षात्कार की हैं। यह देखना है कि विश्व-संदर्भों में आये क्रांतिकारी परिवर्तन के बीच स्त्री लेखन की दिशा क्या हो? क्योंकि समकालीन स्त्री-लेखन के पिछले चार दशकों के इतिहास में, मात्र शरीर और सेक्स की समस्या को कभी उस तरह केन्द्र में नहीं रखा गया जितना आज। अचानक शरीर केंद्रित प्रसंगों की बाढ़ को मैं-स्त्री-लेखन के लिये बहुत शुभ नहीं मानती क्योंकि यह ट्रेंड कहीं न कहीं स्त्री लेखन को संकुचित करता है, उसे एक निश्चित चौखटे में कसता है।

त्रैमासिक पत्रिका 'प्रबुद्ध विहार' का लोकार्पण समारोह एवं विचार गोष्ठी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन-इतिहास के वरिष्ठ प्रवक्ता डा0 महेश प्रसार अहिरवार के संपादन में प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका 'प्रबुद्ध विहार' के प्रवेशांक का लोकार्पण समारोह विश्वविद्यालय के कला संकाय प्रेक्षागृह में संपन्न हुआ। पत्रिका का लोकार्पण महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के कुलपति प्रो. अवध राम जी के द्वारा किया गया। दूसरे सत्र में 'दलित आंदोलन की चुनौतियाँ और लघु पत्रिकाओं की भूमिका' विषयक विचार गोष्ठी का भी आयोजन किया गया।

लोकार्पण सत्र की अध्यक्षता काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो0 चौथीराम यादव द्वारा की गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यक्रम का संचालन अशोक मिशन एजूकेशन सोसायटी के प्रबंधक और मासिक पत्रिका 'अंबेडकर टुडे' के ब्यूरो चीफ अशोकानंद द्वारा किया गया। कार्यक्रम का प्रारंभ दलित चिंतक व लेखक मूलचंद सोनकर के स्वागत भाषण से हुआ।

कार्यक्रम के मुख्य वक्ता प्रखर वामपंथी विचारक प्रो0 दीपक मलिक ने अपने उद्‌बोधन में डा0 अंबेडकर के महत्व को रेखांकित किया। अध्यक्षीय उद्‌बोधन प्रो0 चौथीराम यादव जी ने दिया।

अपने समापन भाषण में पत्रिका के संपादक डॉ0 महेश अहिरवार ने बताया कि वर्ष 1996 में विश्वविद्यालय में आने के साथ ही उनकी दृष्टि यहाँ आने वाले पत्र-पत्रिकाओं पर पड़ती रही है और यह देखकर उन्हें पीड़ा होती थी कि इनमें कहीं भी हमारे लोग नहीं हैं। इसी पीड़ा ने उन्हें पहले 'जागृति' और अब 'प्रबुद्ध विहार' निकालने के लिये प्रेरित किया।

प्रस्तुति : मूलचंद्र सोनकर, 48, राज राजेश्वरी नगर, गिलट बाजार, वाराणसी-2

सज्जाद ज़हीर उर्फ़ बन्ने भाई की याद में विचार गोष्ठी

जनवादी लेखक संघ मुरादाबाद के तत्वाधान में महान स्वतंत्रता सैनानी व प्रगतिशील लेखक संघ के संस्थापक, लेखक व कवि सज्जाद ज़हीर उर्फ़ बन्ने भाई की याद में विचार गोठी का आयोजन हिन्दू कालिज मुरादाबाद में 27 सितम्बर 2009 को किया गया। विषय था, 'सामाजिक परिवर्तन में साहित्यकार की भूमिका'। गोष्ठी की अध्यक्षता जलेस की राज्य कमेटी के सदस्य व जनवादी कवि ओंकार सिंह 'ओंकार' व संचालन जलेस के जिला संयोजक मुशर्रफ़ अली ने किया। सज्जाद ज़हीर की जीवनी पर बलवीर सरन रस्तौगी ने विस्तार से प्रकाश डाला और जलेस मुरादाबाद द्वारा निकाला गया पर्चा पढ़कर सुनाया। उन्होंने कहा कि बन्ने भाई ने 1935 में लंदन में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की, जिसका पहला सम्मेलन 1936 में लखनऊ में आयोजित किया गया जिसकी अध्यक्षता मुंशी प्रेमचंद ने की थी। 1948 में उन्हें भारत की कम्युनिष्ट पार्टी ने पाकिस्तान भेजा जहाँ उन्होने पाकिस्तान कम्युनिस्ट पार्टी की बुनियाद रखी व पाकिस्तान प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की। उन्हें पाकिस्तान सरकार ने 'रावलपिन्डी षडयंत्र केस में गिरफ़्तार कर लिया और वह चार साल से ज़्यादा वहाँ की जेलों में रहे। उन्होने भारत में प्रगतिशील लेखक संघ के अलावा 'इन्डियन पीपुल थियेटर ऐसोसियेशन'(इप्टा) व ऐफ्रो-ऐशियन राईटर्स ऐसोसियेशन' और किसान सभा की भी स्थापना की। 13 सितम्बर, 1973 को जब वह कज़ाकिस्तान के अल्मा आता शहर में ऐफ्रो-ऐशियन राईटर्स ऐसोसियेशन के सम्मेलन म भाग ले रहे थे तभी हृदय आघात के कारण उनका देहांत हो गया। उनकी रचनाओं में 'लंदन की एक रात' नामक उपन्यास, प्रगतिशील लेखक संघ की गतिविधियों पर 'रोशनाई' नामक लेख संग्रह और फारसी शायर हाफ़िज़ शीराज़ी पर ज़िक्रे-हाफिज़ नामक लेख, 'अंगारे' नामक कहानी संकलन जिसे 1932 में सरकार ने ज़ब्त कर लिया, शामिल है। सज्जाद ज़हीर ने अनेक पत्र व पत्रिकाओं का संपादन किया। 'अवामी दौर' जो बाद में 'हयात' नाम से निकाला गया, नया दौर, कौमी जंग, नया ज़माना, चिंगारी आदि का संपादन किया।

श्री शिवऔतार सरस ने कहा सज्जाद ज़हीर साहब की तरह के ही साहित्यकार दिनकर थे। उन्होने भी आम आदमी के हक़ में आवाज़ उठायी वह अपनी रचना में शासको को चुनौती देते हुये कहते हैं कि सिंहासन खाली करो कि जनता आती है। श्री अनुराग गौतम ने कहा कि साहित्य और समाज का संबंध शरीर और आत्मा का संबंध है। दलित के हक़ में लिखा जाने वाला साहित्य दलित साहित्य ही है चाहे उसे किसी ने ही लिखा हो। डा0 बीना गुप्ता ने कहा कि प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक अग्रणी क़दम है। आज जब कोई राजनैतिक शक्ति नही बची है तब ऐसे में साहित्यकार को इस उत्तरदायित्व को निभाना होगा। डा0 चन्द्रभान यादव ने कहा कि लोकतंत्र में साहित्यकार का दायित्व परिवर्तन के लिये राज सत्ता पर दबाव बनाना है। श्री कृष्ण कुमार नाज़ ने कहा कि साहित्यकार को एक ईमानदार समाजसेवक की भूमिका निभानी चाहिये। श्री वीरेन्द्र सिंह बृजवासी ने कहा कि साहित्यकार समाज को बदलने की क्षमता रखता है। श्री रामदत्त द्विवेदी ने कहा कि मानवमात्र के लिये जो हितकारी है वही सच्चा साहित्य है। ऐसे साहित्य की रचना करना ही साहित्यकार का धर्म है।

गोष्ठी में युवा गायक शाबान व ज़ियाउर्रहमान ने क्रांतिकारी गीत प्रस्तुत किये। अंत में अध्यक्षीय भाषण में श्री ओंकार सिंह 'ओंकार' ने कहा कि साहित्यकार न तो राजा की तरह राजशक्ति दिखाकर और न स्वर्ग-नर्क का भय दिखाकर मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। वह तो अपनी रचनाओं के माध्यम से उसके अन्तर्मन को जगाकर कर उसे सामाजिक दायित्व के लिये तैयार करता है। गोष्ठी में भगवान दास शर्मा, आसिफ कमल, आदित्य कुमार एडवोकेट व कुमार प्रदीप ने भी विचार रखे।श्री अतुल जौहरी, डा0 विजय आलम, शरीफ अहमद, विकास नेगी, चन्द्रपाल सिंह आज़ाद, मसरूर आज़ाद, सलीम खाँ, अफरोज आलम, कामरेड सिद्दीक, थान सिंह, बृहमस्वरूप, तैयब नूर, कसीम आज़ाद व उपेन्द्र कुमार सत्यार्थी भी उपस्थित रहे।

मुशर्रफ अली, ज़िला संयोजक, जनवादी लेखक संघ, मुरादाबाद

अलवर में हरीश भादाणी को याद किया

जनकवि हरीश भादाणी को स्मृति में अलवर के साहित्यकारों, प्रबुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिकों तथा श्रमिकों ने विगत बुधवार को प्रेरणा सभागार में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी का विषय था 'हरीश भादानी : व्यक्ति और रचनाकार।' मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए डा0 जीवन सिंह मानवी ने कहा कवि हरीश भादानी जनवादी संस्कृति के पुरोधा थे। उनकी लंबी कविताओं में आत्म सम्मान और आत्म साक्षात्कार का भाव था। उन्होंने भादानी की लंबी कविता पितृकल्प, अष्टावक्र और नष्टोमोह पर विस्तार से चर्चा की।

वरिष्ठ कवि एवं चिंतक प्रो0 जुगमंदिर तायल ने इस अवसर पर कहा कि वे सच्चे अर्थों में समाजवादी और राष्ट्रवादी थे। जो राष्ट्रवादी नहीं हो सकता वह समाजवादी भी नहीं हो सकता। वे प्रखर मार्क्सवादी थे। गोष्ठी के आरंभ में रेवतीरमण शर्मा का कहना था कि वे मूलतः गीतकार थे। 'वातायन' नामक पत्रिका का संपादन किया जो अखिल भारतीय स्तर की पत्रिका बनी। उनका प्रख्यात गीत था "मैंने नहीं, कल ने बुलाया है। आदमी आदमी में दीवारें हैं/ तुम्हें छैनिया लेकर बुलाया है।"

ओज के महत्त्वपूर्ण कवि बलवीर सिंह करुण ने कहा कि मैं उनके साथ बीकानेर की गोष्ठियों में शरीक रहा हूँ। वे एक समय राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से जुड़े हुए थे बाद में वे मार्क्सवादी हो गये। 'गति' मासिकी के प्रधान संपादक और समाजवादी चिंतक हरिशंकर गोयल ने कहा कि वे अलवर में कई बार आये थे।

प्रख्यात लेखक और सोशल एक्टिविस्ट सुरेश पण्डित का कहना था कि उनके आने पर ही अलवर में जनवादी लेखक संघ का गठन हुआ। भादाणी की मृत्यु पर मुख्यमंत्री अशोक गहलोत का आना महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है हजारों अनाम लोगों का आना। प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता एवं कर्मचारी नेता प्यारे सिंह ने कहा कि मेरे लेखक बनने में भादानी जी का बड़ा योगदान है।

मंच संचालन कवि चित्रकार डा0 नंद किशोर नीलम ने किया। अध्यक्षता प्रो0 जुगमंदिर तायल ने की। अंत में डा0 शंभुगुप्त ने धन्यवाद ज्ञापित किया। गोष्ठी जनवादी लेखक संघ और प्रगतिशील लेखक संघ की ओर से आयोजित की गई थी।

रेवतीरमण, राजस्थान

वामिक जौनपुरी जन जागरण सांस्कृतिक यात्रा

'इप्टा', प्रगतिशील लेखक संघ, जन संस्कृति मंच और कलम नाट्य मंच ने 2 नवंबर, 2009 तक कैफी के आजमगढ़ से वामिक़ के जौनपुर तक दर्जनों गाँवों-कस्बों में अपने गीतों-नाटकों के जरिये वामिक जौनपुरी के इंकलाब के संदेश को आम अवाम तक पहुँचाने की कोशिश की।

वामिक जौनपुरी के 'जन्म शताब्दी वर्ष' में 'भूखा है बंगाल रे साथी' जैसे अमर गीत के रचयिता वामिक़ की आवाज़ हमारे गीतों, नाटकों में उसी तरह थी, जैसे ब्रेख्त ने कहा था : क्या जुल्मतों के बाद भी गीत गाये जायेंगे?/ हाँ जुल्मतों के दौर के ही गीत गाये जायेंगे।

2 बजे 2 नवंबर, 2009 को शिवली एकेडेमी के हॉल में 'वामिक जौनपुरी की विरासत' पर आयोजित संगोष्ठी के साथ इस यात्रा की वैचारिक शुरूआत हुई। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग के अध्यक्ष, प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े जाने-माने समालोचक अली अहमद फातमी ने वामिक़ को कबीर और नजीर की परंपरा का शायर बताते हुए कहा कि वामिक की शायरी में हिन्दी-उर्दू का भेद मिट जाता है। 'इप्टा' के राष्ट्रीय महामंत्री जितेन्द्र रघुवंशी ने संस्कृतिकर्मियों का आह्वान किया कि आज जिस तरह साहित्य-संस्कृति को हाशिये पर धकेल कर उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया जा रहा है, सुनहले सपनों की चकाचौंध से जनता को भरमाया जा रहा है, उससे आम अवाम को आगाह करने के लिए लेखकों-कलाकारों को कबीर, नज़ीर, प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, कैफ़ी, वामिक़, मखदूम जैसे अदीबों की रचनाओं के साथ जनता के बीच जाना होगा।

इप्टा के प्रांतीय महामंत्री राकेश ने कहा कि वामिक की विरासत आज अवाम के सुख-दुख में शामिल होने की विरासत है। शिवली कॉलेज के उर्दू के विभागाध्यक्ष डॉ0 शबाबुद्दीन ने कहा कि उन्हें इस बात पर फ़क्र है कि उनके निर्देशन में शिवली कॉलेज के वामिक़ की शायरी पर शोध किया गया है। अवाम से जुड़कर ही वामिक़, कैफी, साहिर, फैज जैसे शायरों ने हुस्न को एक नया मयार दिया और इन्सानियत के झंडे को बुलंद किया।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रांतीय सचिव डॉ0 गिरीश तथा भाकपा के जिला सचिव हामिद अली लगातार कलाकारों का उत्साहवर्धन करते रहे। इस अवसर पर वामिक जौनपुरी पर केंद्रित 'वर्तमान साहित्य' के नये अंक का विमोचन भी किया गया। वामिक साहब के सहयोगी सैय्यद मोहम्मद रिजवी इस अवसर पर विशेष रूप से उपस्थित थे। स्थानीय शायर शादाब आजमी ने काव्यांजलि पेश की।

जौनपुर में आयोजित वामिक की मशहूर 'लाल कोठी' समापन कार्यक्रम में बोलते हुए जनसंस्कृति मंच के राष्ट्रीय महामंत्री प्रणय कृष्ण ने कहा कि भूमंडलीकरण के इस हमलावार दौर में वामिक हमें हमारे कर्त्तव्यों की याद दिलाते हैं।

सभा को इप्टा के राष्ट्रीय महामंत्री जितेन्द्र रघुवंशी और पूरी यात्रा में लगातार शामिल रह भाकपा, उ0प्र0 के प्रांतीय सचिव डा0 गिरीश ने भी संबोधित किया।

समापन सभारोह की अध्यक्षता प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े जाने माने लेखक शकील सिद्दीकी ने की। धन्यवाद ज्ञापन भाकपा जौनपुर के सह सचिव जय प्रकाश सिंह ने दिया। इस समूची यात्रा की परिकल्पना में इप्टा के प्रान्तीय सचिव मुख्तार अहमद और शहजाद रिजवी ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

प्रस्तुति : राकेश, पंचटीला, वर्धा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी वसीयत

(कुँवरपाल सिंह की फाइलों में उनकी यह वसीयत मिली है। इसमें भी व्यक्त किये गये उनके उद्‌गार उनके सामाजिक सरोकारों और जनसामान्य के प्रति उनकी चिंता और एक समरसतापूर्ण समाज के निर्माण के प्रति उनकी आस्था और आकांक्षा को व्यक्त करते हैं। हमें लगा कि वसीयत का यह हिस्सा उनके 'समय संवाद' के रूप में प्रस्तुत करना पाठकों को अच्छा लगेगा-संपादक)

0 0 0

.....मेरे परिवार के सभी लोग संवेदनशील हैं। वे मनुष्य की इच्छाओं को समझते हैं। वे मेरी भावनाओं का ख्याल रखेंगे। मेरी मृत्यु के बाद कोई धार्मिक क्रिया-कलाप न किया जाय। मैं पैदा ज़रूर हिन्दू परिवार (ठाकुर परिवार) में हुआ हूँ जिस पर मेरा कोई वश नहीं था। मैं बीस वर्ष तक आर्य समाज के क्रिया-कलापों में संलग्न रहा लेकिन जब मैंने मार्क्सवाद पढ़ा तो कम्यूनिस्ट पार्टी का सदस्य हो गया और मुझे दुनियां के बारे में सही बोध हुआ। धर्म, जाति का वर्ग संघर्ष की राजनीति में कोई महत्व नहीं है। विगत पचास वर्ष से मेरा और ईश्वर का कोई वास्ता नहीं है। मेरे और ईश्वर के बीच एक मूक समझौता है। हम एक दूसरे के काम में हस्तक्षेप नहीं करते। जब इतिहास पढ़ा तो यह मालूम हुआ कि धर्म ने साधारणजन पर कितने अत्याचार किये हैं। धर्म की खातिर करोड़ों बच्चे अनाथ हो गये लेकिन धर्मयुद्ध निरंतर चलते रहे। मध्यकाल में इस्लाम और ईसाई धर्म के नाम पर लाखों लोग काल-कवलित हो गये। फिर नस्लवाद के कारण यहूदियों एवं ईसाईयों में संघर्ष हुआ। विगत साठ वर्ष से अरब देशों में यहूदियों एवं अरबों में संघर्ष चल रहा है जो थमने का नाम नहीं ले रहा है। अरबों की तीन पीढ़ियाँ लड़ते-लड़ते समाप्त हो गयीं। पाकिस्तान बनने के बाद से शिया-सुन्नियों में वैमनस्य बना हुआ है जो कभी भी विकराल रूप धारण कर लेता है जिसके परिणामस्वरूप हज़ारों लोग मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। जिस देश में नफ़रत, संकीर्णता और अविश्वास होगा वह समाप्त हो जायेगा। जिन तालिबानों को पैदा किया गया उन्होंने भस्मासुर का रूप धारण कर लिया है। धर्म के नाम पर देश का विभाजन हुआ और लाखों लोगों के घर उजड़ गये। धर्म के प्रचारक लोग कहते हैं कि-'धर्म बुरा नहीं है, उसका पालन सही नहीं हो रहा है।' आम आदमी सिद्धांत नहीं व्यवहार देखता है इसलिए इस तर्क का कोई आधार नहीं है। विगत पच्चीस वर्ष से 'हिन्दुत्व' का राजनीतिक उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग किया गया है। इसके परिणाम स्वरूप अनेक विद्रूपताओं ने जन्म लिया है। स्वतंत्रता आंदोलन में एकता की जो भावना पैदा हुई थी वह धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। 21वीं शताब्दी में गांधी जी की जन्मभूमि में भयानक दंगे हुए। गुजरात में जो हुआ वह भारतीय इतिहास में कलंक है। धर्म की संकीर्णता और उसका राजनीतिक उपयोग कितना ख़तरनाक हो सकता है, इसका एक रूप राज ठाकरे के क्रिया-कलापों में देखा जा सकता है। पहले वे लोग मुसलमानों के खिलाफ थे, फिर दक्षिण भारतीयों के और अब उत्तर भारतीयों पर उन्होंने हमले किये। यह विद्वेष की भावना कठमुल्लावाद को बढ़ावा देती है। सांप्रदायिकता अमानवीयता को जन्म देती है। देश में संकीर्णता को दूर करने के लिए आपसी सद्‌भाव, भरोसा, प्रेम एवं सम्मान की भावना आवश्यक है। हमारा नारा होना चाहिए-'हम सब एक हैं।'

मेरे परिवार के लोग मेरी पुस्तकों के संबंध में मिलजुल कर राय बनायेंगे। मेरी पुस्तकों का कॉपी राइट डा0 नमिता सिंह के नाम रहेगा। मेरी कई पाण्डुलिपियाँ हैं। इनका दायित्व डा0 नमिता सिंह व डा0 देवेन्द्र गुप्ता का होगा। ये इनका संपादन एवं चयन करेंगे। इस कार्य में डा0 रामवीर सिंह, डा0 राजीवलोचन नाथ शुक्ल, श्री अजय बिसारिया सहयोग करेंगे।

'वर्तमान साहित्य' जब तक चल सके, मिलजुल कर चलायें। यदि मासिक संभव न हो तो त्रैमासिक निकालें।

मेरे परिवार में सद्‌भाव है और कोई लालची नहीं है, इसलिए कोई समस्या होगी नहीं। यदि कोई समस्या हो तो मिलजुल कर हल कर लें।.....

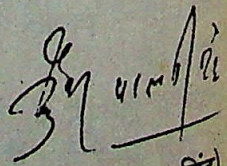

(कुँवरपाल सिंह)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास के लिए, हम सबके उठ खड़े होने का समय

अब प्रदेश एक नये दौर में दाखिल हो रहा है।
पिछले पांच वर्षों में उभरती तस्वीर में विकास के रंग भरने का वक्त आया है।
हर वर्ग अब शामिल होगा प्रदेश की उड़ान को नयी ऊंचाइयां देने में।

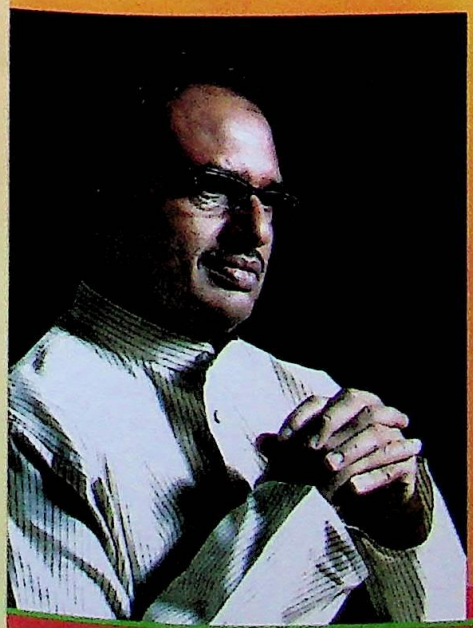

पिछले पांच वर्षों में हमने मिल कर प्रदेश के विकास का जो सफ़र शुरू किया था, उसे गति देने का समय आ गया है। प्रदेश का हर नागरिक इस सफ़र का भागीदार है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम सब मिल कर, अपने प्रदेश को एक उजला भविष्य देंगे। आप सबके साथ, मैं भी प्रदेश को विकास की पहचान देने कृत संकल्पित हूं।

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

अधोसंरचना विकास को नयी ऊर्जा मिलेगी,
किसान को सच्चा लाभ मिलेगा,
मिलेंगे बच्चों को नये स्कूल,
नौजवानों को नये रोजगार के मौके,
बढ़ेगा औद्योगिक निवेश,
महिलाएं सशक्त होंगी,
सबके स्वास्थ्य की बेहतरी होगी,
सुराज की ओर कदम उठेंगे
सब साथ होंगे विकास के इस नये सफ़र में।

विकसित प्रदेश मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसंपर्क द्वारा जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सृजन स्मरण

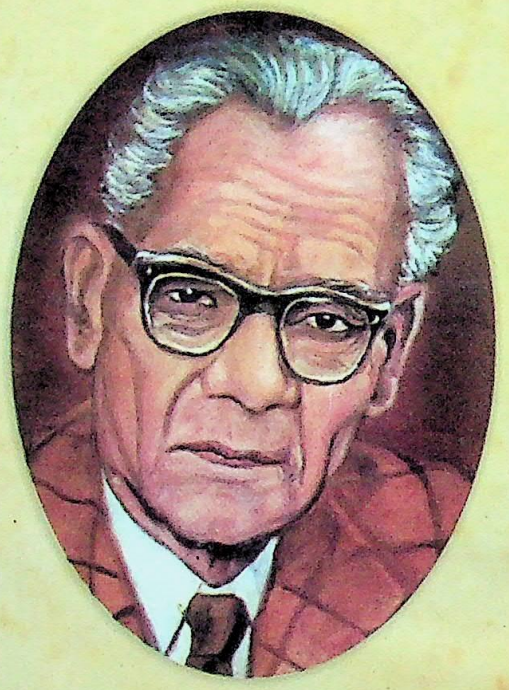

काश! जीवन में मेरे सुख-दुख का कोई एक अवलम्ब होता।
मेरा कोई साथी होता! मैं अपने दुख-सुख का एक भाग उसे दे,
उसकी अनुभूति का भाग ग्रहण कर सकता!
मैं अपने इस निस्सार यश को दूर फेंक संसार का जीव बन जाता।

यशपाल
(1903-1976)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित
28, एम.आई.जी., अवन्तिका-।, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

फरवरी, 2010 ■ बीस रुपये

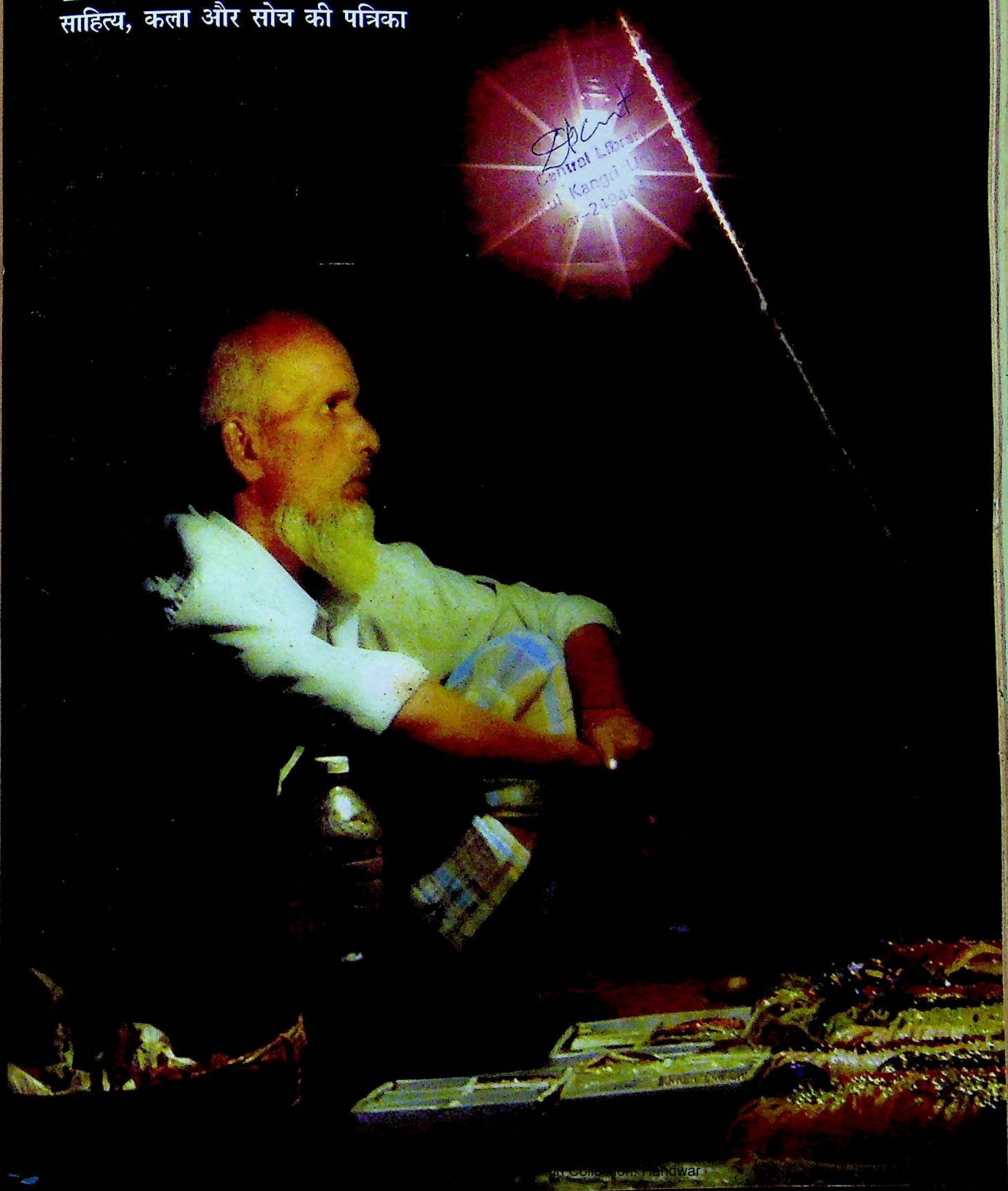

Central Library
Kangri
2484

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलविदा

कॉमरेड ज्योति बसु

08 जुलाई, 1914–17 जनवरी, 2010

'वर्तमान साहित्य' परिवार का शत-शत नमन

जनाकांक्षाओं को मूर्त्त किया उन्होंने
समाजवाद के सपने को
जन-जन की आँखों में चमकाया...

कैसे चलाया जाता है जनता का शासन
कैसे साथ लेकर चला जाता है
सहयोगियों को
कैसे ठुकरा दिया जाता है
राजनीति का सर्वोच्च पद
जब सहारा लेना पड़े उन शक्तियों का
जिनकी संवेदना में
दूर-दूर तक नाम न हो जन का
दिखा दिया सारी दुनिया को...

सामान्य से शुरू किया सफ़र
विशिष्ट होते हुए भी बने रहे सामान्य
सबसे सम्मानित नेता के रूप में
विदा हो गये आज...

ऋणी रहेगा भारतीय जन-मानस
जनतंत्र और समाजवाद के
इस पुरोधा का
जिसने सिखाया
वैचारिक अडिगता के साथ
लोकतंत्र की ज़रूरतों को
कैसे निभाया जाता है!

—अजय बिसारिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
विभूति नारायण राय

सम्पादक
नमिता सिंह

सह-सम्पादक
□ अजय बिसारिया □ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

सहयोग : **प्रो. प्रदीप सक्सेना**
प्रबन्ध सम्पादक : **राजीव श्रीवास्तव**
सलाहकार : **वेद शर्मा, बीकानेर**
विशेष सहयोग : **परवेज़ फ़ातिमा**
शब्दांकन : **बिसारत अली**
मुखपृष्ठ : **दिनेश कुमार शर्मा 'अज्ञात'**
रेखांकन : **डॉ. रामेश्वर वर्मा, कानपुर**

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

वर्ष 26 □ फरवरी, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय
28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com
Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; □ वार्षिक : 230/-; □ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 250/- □ आजीवन : 2000/- □ **विदेशों में** साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/ड्राफ्ट **'वर्तमान साहित्य'** के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। चैक से भुगतान करने पर तीस रुपये अतिरिक्त जोड़कर भेजें।)

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से **वर्तमान साहित्य**, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

इस अंक में

पाठक मंच/2
अपनी बात/5
जन्मशताब्दी के अवसर पर
संत, कर्मयोगी, हिन्दी-प्रहरी : बाबा कामिल बुल्के/ डॉ. वीणा रानी श्रीवास्तव/8
जन्मशताब्दी के अवसर पर : पुनर्प्रस्तुति
वाल्मीकि और रामकथा की दिग्विजय/फ़ादर कामिल बुल्के/11
कविता/गीत/ग़ज़ल/दोहे
कविताएँ/एकांत श्रीवास्तव/7
अशोक अंजुम की चार ग़ज़लें/16
फ़र्क नहीं पड़ता/स्नेह सुधा/10
कुछ इतिहास नहीं है/ओमप्रकाश 'अडिग'/43
ग़ज़लें/राम मेश्राम/47
ग़ज़लें/वीरेन्द्र 'हमदम'/48
शब्द जो ब्रह्मांड है/वीरेन्द्र गोयल/51
तीन कविताएँ/सुरेश सेन निशांत/55
मेरी बेटी/भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज'/57
कहानी
नाटक के बाद/सेराज ख़ान बातिश/17
घनी होती झाड़ियाँ/रूप लाल बेदिया/20
सुख/गोविन्द उपाध्याय/27
गोष्ठी/जय प्रकाश कर्दम/34
समयांतर/अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'/39
संघर्षों के बीच/राजेन्द्र परदेसी/44
लेख
धर्म का असली संकट क्या है/सुरेश पंडित/30
क्रांतिदृष्टा भवभूति/रामगोपाल भावुक/49
पुनर्पाठ
'जुही की कली' : शृंगार की स्वच्छंद दृष्टि/धीरेन्द्र कुमार पटेल/32
आज की बात
सामाजिक बदलाव की दिशा में एक ऐतिहासिक फैसला/ डा0 कुसुम मित्तल/52
कहानी की बात
यथार्थ के स्तब्धकारी चलन से.../ए.अरविंदाक्षन/58
पास-पड़ोस-मराठी कविता
कविता/कुसुमाग्रज/54
दृष्टिकोण
दूसरों पर अगर तब्सिरा कीजिए.../दामोदरदत्त दीक्षित / 60
लघु कथा
बदहाल मानसिकता/कृष्ण चन्द्र महादेविया/38
पुस्तक चर्चा
कथा आलोचना की जनधर्मी परंपरा/शैलेन्द्र चौहान/63
पुस्तक समीक्षा
कल हमारा है/वशिष्ठ अनूप/65
गूँगी कलम का मुखर प्रतिरोध/दया दीक्षित/67
ऐतिहासिक धरातल पर सामाजिक संदर्भों की खोज/ एम0हनीफ मदार/68
आचार्य शुक्ल अपनों की दृष्टि में/श्रीनिवास शर्मा/69
आधुनिक मध्यवर्गीय समस्याएँ/नम्रता गीतेश्वर/71
सांस्कृतिक समाचार/73
आखिरी पन्ना
उपभोक्तावाद पर मंदी का साया/गिरीश मिश्र/79

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुँवरपाल सिंह के देहांत से बहुत धक्का लगा और दुख पहुँचा। मालिक उनकी आत्मा को शांति दे और आप को धीरज का साहस। मेरी अलीगढ़ की यादों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सैय्यद हामिद, नयी दिल्ली

विचार के प्रति निष्ठा, संबंधों के प्रति निष्ठा, सब मेरे अनुभव के दायरे में हैं। उनसा जीवट कम देखने को मिलता है। 'वर्तमान साहित्य' के दिसंबर अंक में वह सब कुछ विशद रूप से सामने आया है जो उन्होंने अर्जित किया था। वे सबके प्रिय थे हज़ारों के प्रेरणा स्रोत थे। हम जैसों के संबल थे। उनकी स्मृति को बार-बार प्रणाम करता हूँ। मन में वे इस तरह नक्श हैं कि हमेशा स्मृतियों में रहेंगे।

शिवकुमार मिश्र, वल्लभ विद्यानगर

वह एक सजग बाग़वान था
अच्छी नस्ल के पौधों की
देखभाल सभी करते हैं
वह कमज़ोर पौधों को
सींचता था
उनकी बडिंग करता था
उन्हें 'शेप' देता था
वह एक बागवान था
वह जानता था कि फूल
उसके किसी काम न आएँगे
फिर भी, वह पौधों को
देखता उस नज़र से था
जैसे देखती हो माँ
अपने बच्चे को...

मैंने आज मुहाफ़िज खो दिया। मेरी अनगढ़ कविताओं को प्रोफ़ेसर साहब ने चयन कर 'कृति ओर' में टिप्पणी सहित छपवाया था। वे मुझे नहीं जानते थे, मैं उनसे मिला न था, फिर भी एक आत्मीयता की डोर उनसे बँध चुकी थी। प्रोफ़ेसर साहब का जाना नवागंतुकों के लिए असहनीय है। ऐसे लोग यदा-कदा ही धरती पर अवतरित होते हैं। आपके दुख में हम सभी क़लम के मज़दूर शरीक हैं।

अनवर सुहैल, अनूपपुर (म0प्र0)

अभी-अभी 'नया ज्ञानोदय', 'वागर्थ', 'पब्लिक एजेंडा' आदि पत्र-पत्रिकाओं से पता चला कि कुँवरपाल सिंह जी तो चले गये। बहुत बुरा हुआ। मैं आपको और उनको क्या-क्या बता था और उधर क्या से क्या हो गया ? कुदरत का खेल निराला। प्रेरणा और जो शक्ति वे हमें दे गये उसे हम कभी नहीं भूलेंगे

शिवरतन थानवी, जोध

प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह के असामयिक निधन की ख़बर से हिन्दी-जग मर्माहत हो गया। अब कहाँ रहे वैसे साहित्य के पारखी, जो साहि के सच्चे पाथेय बन सकें। प्रोफ़ेसर साहब के चिंतन-लेखन 'वर्तमान साहित्य' के अंकों द्वारा परिचित होने का अवसर मि था। उन्होंने आजीवन लोकतांत्रिक जनवादी मूल्यों के संरक्षण त संवर्धन के लिए जो कार्य किये हैं, वे उनकी यशः काया सदा-सर्वदा जीवित रखेंगे।

संपादक-हिन्दी प्रचारक पत्रिका, वाराण

'वर्तमान साहित्य' का अनेक वर्षों से पाठक हूँ। निरंतर निकल है यह पत्रिका। उत्कृष्ट व पठनीय सामग्री। बधाई और मंगलकामना दिसंबर, 09 अंक मिला, तो मन उदास हो गया।

'वर्तमान साहित्य' को निकालते रहने का निर्णय अच्छा है। हम सब आपके साथ हैं। जैसा भी सहयोग हो बता

एकांत श्रीवास्तव, कोलक

मैंने भोपाल में ही 'वर्तमान साहित्य' का कुँवरपाल जी पर केंद्रि अंक पढ़ लिया था। आपका संपादकीय पढ़कर कुँवरपाल जी सब यादें दुबारा ताज़ा हो गयी। जो मानसिकता कुँवरपाल जी थी, क़रीब वैसी ही मानसिकता कमलेश्वर जी की थी—दूसरों मदद करना, साहित्य के साथ-साथ सब तरफ़ अपनी दृष्टि दौड़ा बहुत याद आतें है, पर क्या करूँ। कुँवरपाल जी को लोग कित प्यार करते थे, मैंने पढ़ा।

गायत्री कमलेश्वर, नयी दि

(स्व0 श्री कुँवरपाल सिंह जी के लिए)
मैंने अभी-अभी
अपने पिता को खोया है।
मैंने अभी-अभी एक और
उस शख़्स को खोया है
जिसकी आवाज़ से पिता-सा स्नेह
झरता था,

चर्चित
रहना
प्रगतिश
वर्तमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी चिंताओं में
पूरी पृथ्वी का हरापन था।
जिनकी उँगली पकड़कर
चलना सीखते हैं हम
उन्हें खोने का ग़म
कितना हो सकता है ?
मेरे गूँगे दुखों के पास
नहीं हैं उस तरह के शब्द
मैं नहीं कर सकता बयान।

मैं उस पेड़-सा खड़ा हूँ
जिसने इस पतझर में
अपनी सारी प्रिय पत्तियाँ खो दी हैं
जो उसका रूप थीं।

हाँ, हम पेड़ ही हैं,
जिन्हें जीना और फलना है
आपदाओं से लड़ते हुए
बाँटने हैं अपने फल।

वे, जिन्हें हमने खोया है
फलदार पेड़ ही तो थे
रसदार फलों से भरे पेड़
जो औरों के लिए जिये और फले,
लड़े उम्र भर, औरों के लिए।

उनकी गंध हमारी नसों में है
हमारे विचारों में है
हमारी साँसों में है
हम बीज हैं उन वृक्षों के।

मैंने अभी-अभी
अपने पिता को खोया है।

मैंने अभी-अभी एक और
उस शख़्स को खोया है
जिसकी आवाज़ से पिता-सा स्नेह
झरता था।

सुरेश सेन निशांत, मंडी (हि0प्र0)

चर्चित आलोचक व प्रगतिशील लेखक डा0 कुँवरपाल सिंह का न रहना हम सभी के लिए बड़ी क्षति है। उन्होंने हिन्दी समाज के प्रगतिशील आंदोलन में जो रचनात्मक भूमिका निभायी, वह हम सबके लिए प्रेरणादायी बनी रहेगी। उनके काम को आगे ले जाना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी, 'आधारशिला' परिवार उन्हें श्रद्धा-सुमन अर्पित करता है।

दिवाकर भट्ट, नैनीताल

'वर्तमान साहित्य' का दिसंबर अंक। हिन्दी के अनगिनत लेखकों-साहित्यकारों से मेरे संबंध रहे हैं, लेकिन कुँवरपाल जी जैसा निश्छल व्यक्तित्व मैंने बहुत कम पाया। वे इतने पारदर्शी थे कि उन्हें आर-पार देखा जा सकता था। बात चाहे राजनीति की हो या साहित्य की या फिर व्यक्तिगत संबंधों की, विनम्रता के साथ कड़ी-से-कड़ी बात कह जाने का उनमें ग़ज़ब का साहस था। जिन दिनों हम पहली बार मिले थे, वह 1992 के दिनों की बात है, देश में तथाकथित 'हिन्दुत्व' के उफान का दौर था। मुग़लसराय से बनारस जाते हुए हम इसी पर चर्चा कर रहे थे। उनकी एक बात मुझे अभी भी याद है, उन्होंने कहा था कि 'हमारे यहाँ कुछ ग़लत अवधारणाएँ बनी हुई हैं—किसी अकेली विदेशी स्त्री को घूमते देख यह मानकर चलते हैं कि यह दुश्चरित्र होगी, उसी तरह लोग यह भी मानकर चलते हैं कि मुसलमान है, तो सांप्रदायिक ही होगा। हमें इस दिमाग़ी जाले को साफ़ करना होगा।'

रामदेव सिंह, मुगलसराय

यादों की खिड़कियाँ खुलीं, तो खुलती ही चली गयीं। एक मुकम्मल इन्सान, दानिशवर, संस्कृतिकर्मी, समाजसेवी, सब की भलाई चाहने वाला और हर जुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद करने वाला, क़लम का धनी। वह जुझारू व्यक्ति हम में नहीं रहा, लेकिन अपनी बेशुमार यादें छोड़ गया, जो हमें प्रेरणा देती रहेंगी।

बादशाह हुसैन रिज़वी, गोरखपुर

उम्र के इस पड़ाव पर इस प्रकार के विछोह और भी दुःखद होते हैं। अपने अंतरंग का इस तरह जाना, जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया होने के बावजूद, आजीवन एक अभाव का बोध कराता रहता है।

चन्द्रमोहन दिनेश, शाहजहाँपुर

'वर्तमान साहित्य' का के0पी0 केंद्रित अंक मिला। संपादकीय पढ़कर लगा कि काश, हमारे भी ऐसे दोस्त होते। प्रचार के युग में ऐसे विचारवान व कर्मठ लोग दुर्लभ हो गये हैं।

जनवादी लेखक संघ हिसार (हरियाणा) की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

मधुसूदन पाटिल, हिसार

रोज़ ही इक बयान लिखता था
खुद को मौसम के नाम लिखता था
शाख कब फूल हो के महकी थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस चमन का हिसाब लिखता था
लोग यह कह के संगसार हुए
क्यों हमारी ही बात लिखता था,
जो मवादों में बह नहीं सकते
ऐसे ज़ख़्मों की ज़ात लिखता था।

गुज़रे लम्हों का असर रख लेंगे।
उनके होने का भरम रख लेंगे।
तंगहाली है ज़मीनों की फ़कत।
उनके हिस्से में फ़लक रख लेंगे।

चंद्रलेखा ढडवाल, धर्मशाला

श्रद्धेय कुँवरपाल सिंह के निधन के बारे में यहाँ पत्रिकाओं में छपी ख़बर से पता चला। उनके संघर्ष को, जीवन-मूल्यों को प्रणाम करता हूँ। हिन्दुस्तान की गंगा-जमुनी संस्कृति के वे शायद अंतिम स्तंभ थे।

राम स्वरूप, टीकमगढ़-472001

क्या मालूम था कि स्पष्टवादी, निर्भीक अभिव्यक्ति करने वाले प्रतिष्ठित साहित्यकार कुँवरपाल सिंह जी कुछ समय बाद ही हमारे बीच नहीं रहेंगे। आज से पाँच वर्ष पूर्व आपने और कुँवरपाल सिंह जी ने जिस भाँति 'वर्तमान साहित्य' संपादन का दायित्व संभाला, उसे आम पाठकों से जोड़ा तथा अपरिचित रचनाकारों को भी मंच प्रदान किया, उन्हें प्रोत्साहित किया—वह प्रशंसनीय है।

राजेन्द्र सिंह गहलौत, शहडौल

सिंह जी के दिवंगत होने की सूचना से मर्माहत हूँ। मैं उन्हें एक मार्क्सवादी आलोचक, प्रतिबद्ध संगठनकर्मी और प्रखर संपादक के रूप में जानता था। सांप्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष करने वालों में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। उनके काम को आगे बढ़ाएँ।

शकील, हजारीबाग

हम लोगों ने एक साहित्यिक एवं सामाजिक योद्धा खो दिया है। संपादकीय एवं कवर पेज़ का शीर्षक 'मौत तू जीती है... वो हारा नहीं' उनके लिए सार्थक लगा। प्रो0 वशिष्ठ अनूप जी ने बड़ी शिद्दत से प्रो0 साहब को श्रद्धांजलि दी है। प्रो0 प्रदीप सक्सेना जी ने तो प्रो0 साहब को इतिहास बनाने वाला कहा, जो कि अक्षरशः सही है। अजय बिसारिया जी ने 'समय संवाद' के माध्यम से प्रो0 साहब को बख़ूबी याद किया है और अंत में यह स्वीकार करके कि 'यह कॉलम उन्हीं का था और उन्हीं को शोभा देता था,' सच्ची श्रद्धांजलि पेश की है।

मनीष कुमार, वाराणसी

नमिता जी ने इस दुख की घड़ी में कितने साहस के साथ प्रो साहब को याद किया है। 'राह हारी, मैं न हारा' पूरे जीवन-चक्र को दिखाता है। प्रो0 प्रदीप सक्सेना ने कुँवरपाल जी को 'मुझे किसी कर्मकांड में विश्वास नहीं' के द्वारा श्रद्धांजलि दी है। प्रो0 वशिष्ठ अनूप का यह कहना कि 'जो अक्सर आँखों के सामने होते हैं आज कान उनकी चर्चा सुन रहे हैं'—बहुत ही मार्मिक लगा। ज़ुबैर क़मर का 'एक अच्छे इन्सान, एक अच्छे दोस्त' लेख पढ़कर लगा कि सचमुच प्रो0 साहब एक मिसाल थे। 'समय संवाद' में अजय बिसारिया जी अपनी बात को प्रो0 साहब को समर्पित करते हैं। वर्तमान समय में 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका का कोई जोड़ नहीं अर्थात् बेजोड़ है।

सत्यप्रकाश पाल, हिन्दी विभाग, बी0एच0यू0, वाराणसी

इस बार की तरह आज भी 'वर्तमान साहित्य' का पैकेट बड़े उत्साह से खोला। पहले दृष्टि गयी 'कुँवरपाल सिंह पर केंद्रित अंक', अच्छा लगा। मगर तभी आँख नीचे गयी। यह क्या ? 'मौत तू जीती है ... वो हारा नहीं'... जी धक्क से रह गया। यह मालूम था कि उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। कुछ साल पहले जब अलीगढ़ में थी, तब देखा था। उनकी लगन और जिजीविषा भी तब देखी जो मेरे मन पर सदा के लिए अंकित हो गयी है। सच कह हूँ, काफ़ी देर तक मैं अंक बिना खोले हाथ में लिये सुन्न बैठी

शोक उस व्यक्ति की मृत्यु का करना चाहिए, जो अ दायित्व पूरे न कर सका हो। उस व्यक्ति की मृत्यु का दुःख मनाना चाहिए, जिसने अपनी सारी ज़िंदगी अपने दायित्वों समर्पित कर दी।

विजय शर्मा, जमशे

प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह की मौत पर मैं मर्माहत हूँ। उनके नि से एक प्रतिबद्ध वामपंथी चिंतक की क्षति तो हुई ही है, व्यक्तिगत क्षति भी है। मूल्यों की लड़ाई लड़ने वाले इस अप्र योद्धा को मेरा कोटिशः प्रणाम।

सुनील विक्रम सिंह, जौ

यह मेरी हानि है कि कुँवरपाल जी जैसे विद्वान व्यक्तित्व से मि पाने का अवसर न मिल पाया, फिर भी 'समय संवाद' के जु जितना उन्हें समझा, उससे उनके बेबाक़ और निष्पक्ष व्यक्तित्व झलक मैंने पायी। किसी प्रिय के जाने की पीड़ा तो सभी अनु करते हैं, किंतु अपने ही एक हिस्से का चले जाना—इस खाली के अहसास की शिद्दत हम सब नहीं समझ सकते। आपको मि मिले, इसी हार्दिक भाव के साथ!

नताशा अरोड़ा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

रुचिका गिरहोत्रा केस उन्नीस साल बाद फिर कब्र से उठ खड़ा हुआ है। अदालत के फैसले पर हरियाणा के पूर्व डायरेक्टर जनरल पुलिस शंभु प्रसाद सिंह राठौर के चेहरे की चौड़ी मुस्कान पर अब ताला लग चुका है। रुचिका के पिता ने मीडिया के सामने कहा था कि हमें राठौर की इस मुस्कान से डर लगता है। इस पूरे कांड में रुचिका की सहेली आराधना और उसके पिता आनंद प्रकाश और माँ मधु प्रकाश को कोटिशः नमन! ऐसी सहेली दुर्लभ है जिसने अपनी मित्र के अपमान और नाइंसाफ़ी के खिलाफ अपनी लड़ाई को जीवन का उद्देश्य बना लिया और उसे एक सामाजिक प्रतिरोध का रूप देकर संपूर्ण जनमानस को उस लड़ाई के साथ जोड़ दिया। आराधना की माँ मधु प्रकाश और पिता आनंद प्रकाश भी इस पूरे घटनाक्रम में नायक की भूमिका में सामने आये हैं जिन्होंने अपनी बेटी का न सिर्फ साथ दिया बल्कि इस लड़ाई की कमान को थामे रहे। जाहिर है इसके लिए उन पर भी अनेक दबाव पड़े लेकिन उनका विचलित न होना थोड़ा आश्चर्य चकित करता है। कहते हैं न कि मुसीबत के दिनों में साया भी अपना साथ छोड़ देता है। सामाजिक सरोकारों के लिए चिंता और जुड़ाव की भावना जो इस प्रकरण में कभी किसी स्तर पर व्यक्तिगत रही होगी, आज समाज के बहुत बड़े हिस्से के लिये अनुकरणीय बन चुकी है। लगभग उन्नीस साल पहले यह खबर अखबारों में बहुत ही संक्षिप्त और दबी ढकी सी छपी थी जिसमें एक पुलिस अधिकारी राठौर के ऊपर एक चौदह साल की नयी टेनिस खिलाड़ी के द्वारा दैहिक शोषण का आरोप लगाया गया था। बस, इसके बाद कुछ नहीं। कुछेक साल बाद एक और छोटी सी खबर कि उस लड़की ने आत्महत्या कर ली है। उस वक़्त महिला अधिकारों पर होने वाली एक गोष्ठी में मैंने यह सवाल उठाया था। वह समय था जब महिलाओं के विरुद्ध यौन हिंसा के कानून पर महिला संगठन उद्वेलित थे और उसमें बदलाव की माँग कर रहे थे। आंदोलन और विचार विमर्श चलते रहे और अंततः यौन हिंसा कानून में आवश्यक बदलाव भी हुये। उस वक़्त भी और आज भी यह धारणा बनी हुई है कि लड़की अपने घर से बाहर निकल कर कुछ करना चाहती है, अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल करना चाहती है, जीवन के किसी क्षेत्र में सक्रिय होकर कुछ उपलब्ध करना चाहती है तो इन सबके लिये उसे तैयार रहना चाहिये। सचमुच क्या स्थिति ऐसी ही है ? शायद हाँ और शायद नहीं। सोना चौधरी ने 'पायदान' जैसा उपन्यास लिखकर महिला खिलाड़ियों के हर स्तर पर होने वाले शोषण का खुलासा किया है। खासतौर पर निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग की लड़कियों के मामले में जहाँ स्तिथियाँ और जटिल हो जाती हैं। लेकिन रुचिका तो बहुत संपन्न परिवार की थी। संपन्नता भी कुछेक समस्याओं का समाधान तो कर ही देती हैं। पंचकूला जैसी जगह में पिता की शानदार कोठी। पिता व्यापारी। फिर भी यह संकट। उसका भाई! इतने संपन्न घर का लड़का, सीधा-सादा, पढ़ने लिखने वाला। वो भी सात-आठ झूठे केसों में पुलिस द्वारा फंसाया गया। सरेआम बेइज्जत किया गया। थाने में बुरी तरह से पीटा गया. .. और अंततः परिवार को वहाँ से पलायन करना पड़ा। रुचिका की आत्महत्या के बाद परिवार ने दूसरे राज्य में छिपकर रहना चाहा। वहाँ भी परेशान किया गया। क्या यह समाज रहने लायक है! गुंडे, माफिया, पुलिस से बचकर सम्मान से जीना क्या आज सचमुच बहुत कठिन हो गया है ?

दरअसल राठौर एक प्रतिनिधि पात्र है आज की इस व्यवस्था का। एस0पी0एस0 राठौर एक प्रवृत्ति है, एक प्रतीक है शक्ति का, सत्ता के वर्चस्व का। यह वर्चस्व, यह सत्ता की बेलगाम शक्ति आदमी को संवेदनहीन और व्यवहार में अमानवीय बनाती है। राठौर तो हर जगह, हर क्षेत्र में मौजूद हैं। राठौरों द्वारा प्रताड़ित, उत्पीड़ित ज़्यादातर किस्से दफ़्न होकर रह जाते हैं। कोई कोई ही प्रतिरोध का दंड थामे जमा रहता है। राजनीतिज्ञों के सत्ता के मद में डूबे ऐसे किस्से अक्सर ही सुनाई देते हैं। जब कोई मुकाबिला करने की ठान लेता है तो अमरमणि त्रिपाठी को जेल जाना पड़ता है या वयोवृद्ध तिवारी जी की कुर्सी छोड़नी पड़ती है। और तभी कोई रोहित शेखर जैसा नौजवान अदालत में जाकर अपने लिये और अपनी माँ के लिये न्याय की गुहार लगा पाता है। तो सत्ता का मद अहंकारी तो बनाता ही है, अपने अहम् की तुष्टि के लिये निर्मम और षड्यंत्रकारी भी बनाता है। डी0जी0पी0 राठौर बदला ले रहा है, चौदह-पंद्रह साल की बच्ची रुचिका से। उसके किशोरवय भाई आशू से...। तत्कालीन डी0जी0पी0 आर0आर0 सिंह पर मंत्री दबाव डाल रहे हैं राठौर को क्लीन चिट देने के लिये।

आज समाज में समरसता को, सद्भाव, मानवीयता और संवेदनशीलता को नेस्तनाबूद करने का बीड़ा उठाये अनेक समूह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। वे राजनीति में हैं, शिक्षा जगत में हैं, साहित्य में, कानून और व्यवस्था के रक्षक कहलाये जाने वालों में हैं। किसान त्राहि-त्राहि कर रहा है। छोटा, मध्यम श्रेणी का किसान जमीन बेच रहा है। खेती उसे कुछ नहीं दे पा रही है सिवा आशंका और कर्ज के। किसान संगठन राजनीति में बंटे हैं तो इस अंधी व्यवस्था से वह कैसे भिड़े। शासन व्यवस्था धीरे-धीरे कारपोरेट जगत की संरक्षक बनकर आम जनता पर डंडे चलवा रही है, उसे बेदखल कर रही है। गाँव में नौजवान के पास काम नहीं है। वह पत्ते पीटता है, लड़कियाँ छेड़ता है, चोरी चकारी करता है। उसे मालूम है कि आज की शिक्षा व्यवस्था में उसके ख्वाब डाक्टर, इंजीनियर या आफिसर बनने के नहीं हो सकते। वह आसानी से दो चार हजार खर्च कर डिग्री खरीदना ज़्यादा आसान समझता है। सामाजिक जीवन की यह बरबादी आज अपने समय की सबसे बड़ी त्रासदी बन रही है। राज्य व्यवस्था इस ताने-बाने को नष्ट कर रही है लेकिन प्रतिरोध नहीं हो पा रहा है। जनमानस आंदोलित नहीं हो पा रहा है। मीडिया की सूची में भी इन किसानों की खबरों के लिये कोई आकर्षण नहीं है। यहाँ पूरी व्यवस्था निर्मम है, संवेदनहीन है। यहाँ जनमानस भी उद्वेलित नहीं होता।

राजनीति में ही नहीं, साहित्य और पत्रकारिता जगत में भी राठौर हर जगह दिखाई देता है। खड़े-खड़े, चुटकी बजाते, बड़े-बड़े दिग्गज़ बाहर सड़क पर दिखाई देते हैं। इस राठौर व्यवस्था में कारण नहीं होता। बॉस की पसंद, नापसंदगी भी होती है। कल तक बॉस को लाल रंग पसंद था। हो सकता है उसे अब पीला या हरा रंग अच्छा लगने लगा हो। हो सकता है कि बॉस के ऊपर बैठे बॉस ने उसे अपने अखबार का रंग बदलने के लिये कह दिया हो। ये राठौर ही तय करते हैं कि किसे पुरस्कार मिलेगा, किसे सम्मान दिया जायेगा। किसे संस्थान या समिति की अध्यक्षता मिलेगी। कौन सभाओं, संगोष्ठियों में बुलाया जायेगा और किसे नहीं बुलाया जायेगा। चयन समितियों में कौन-कौन होगा...। और कौन-कौन नहीं होगा.... यही राठौर आनंद मठ बनाते हैं तो दूसरी ओर विषाद मठों का निर्माण भी करते चलते हैं। निर्भर करता है कि किसने आपको सलाम किया, कितनी बार किया कि आपका हुक्म बजाया कि नहीं। असहमति और इन्कार के लिये कोई जगह नहीं होती राठौरी व्यवस्था में।

लेकिन इसके बाद भी, रुचिका के लिए न्याय की उम्मीद बंधती है। राठौर अगर एक सत्ता और शक्ति का केंद्र है तो प्रतिरोध के लिये समर्पण भी एक शक्ति है। युद्ध केवल हथियारों से ही नहीं लड़ा जाता। शारीरिक शक्ति और हथियारों की उपलब्धता जितनी ज़रूरी है, उतनी ही ज़रूरी है मानसिक शक्ति। मनोबल बनाये रखने की क्षमता। वॉर ऑफ़ नर्वस... सकारात्मक मनोभाव की पुष्ट धरती पर नैतिक बल ही अंततः लंबी लड़ाई लड़ने की ताकत देता है, अंतिम शक्ति निश्चित रूप से जनशक्ति है। संगठित प्रतिरोध है। आज रुचिका की लड़ाई पूरे भारत के जनमानस की लड़ाई बन चुकी है। इस प्रकरण में मीडिया ने इस लड़ाई को पूरी तरह से आगे बढ़ाया, उसे जनता का मुद्दा बनाया और उन्नीस साल पहले हुये इस अन्याय के प्रतिकार के लिये पूरा समय और स्पेस दिया। संगठित प्रतिरोध के साथ कोई सत्ता, कोई शासन अपने मंसूबों में नहीं सफल हुआ। व्यवस्था पर सत्ता और शासन दबाव बनाते हैं तो जनसमूह की व्यापकता और उसका सुसंगठित दबाव भी प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न करता है और ऊर्जा प्रदान करता है। इस प्रकरण से यही एक सबक मिलता है।

इसीलिये कहा है न कि सब कुछ समाप्त नहीं हुआ है जब तक मूल्य व्यवस्था और न्याय की लड़ाई के लिये आराधना और उसके माँ-पिता रहेंगे, जनशक्ति के रूप में समाज की संवेदना और उद्वेलन रहेगा, तब तक न्याय की आस बंधी रहेगी। यह अलग बात है कि बहुतों को राठौरों की इस दुनियां में न्याय देर से मिलता है, मरने के बाद ही मिलता है।

0 0 0

'समय संवाद' की जगह अब 'आखिरी पन्ना' के रूप में हम नया स्तंभ शुरू किया है। इस बार सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री और सामाजिक चिंतक गिरीश मिश्र का लेख 'उपभोक्तावाद पर मंदी का साया' दे रहे हैं जो आज की परिस्थितियों पर एक बेबाक टिप्पणी है।

नमिता

(नमिता सिं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

एकान्त श्रीवास्तव

कमीज़ का रंग

रात को दिखता था
कुछ अधिक हरा
दिन को कम

दुःख भी था कुछ ऐसा ही
रात को गहरा दिखता था
दिन को
जीने-कमाने की आपाधापी में
पड़ जाता था फीका।

खिलना

वृक्ष पर चढ़ी फूल की बेल
वृक्ष को भी
कर देती है पुष्पित
क्या हुआ जो उसके नहीं ये फूल
किसी के साथ रहकर भी
हम सीखते हैं खिलना कभी-कभी।

वर्जित प्रदेश

खाऊँगा निषिद्ध फल
पियूँगा निषिद्ध जल
सीना ताने घूमूँगा इस वर्जित प्रदेश में
गोली खाकर गिर पड़ने के लिए।

दूसरे ग्रह में

ट्रेन में एक दूसरी बच्ची को देखकर
अपनी बच्ची याद आई

नीलकंठ की तस्वीर देखकर
किसी दशहरे में दिखा
नीलकंठ याद आया
एक दूसरा स्वप्न देखते हुए पिछला स्वप्न
सरसराता गुज़र गया
नींद की गीली घास से

परदेश में कौर तोड़ते ही
घर के सिल पर पिसी चटनी
ईंट ढोते बच्चों को देखकर
झुरमुटों में फँसी उनकी पतंग
धूल भरा आकाश देखकर एक चिड़िया
उड़ती
याद आई

याद आई अपनी नदी
दूसरी नदी पार करते हुए
एक दूसरे ग्रह में मरते हुए
अपनी पृथ्वी याद आई।

आँवला नवमी

लिपी हुई भूमि पर फैली है धूप
झीनी छाँव डगालियों की
दोने में ढँका जल रहा द्वीप
आज आँवला नवमी

आज जंगल पिता की गोद में
बिताएँ पूरी दोपहर
बनाएँ पत्तल और दोने
नदी माँ से लें जल पीने को
वृक्ष बंधुओं से करें संवाद
आज आँवला नवमी

तीन पत्थरों के चूल्हे पर डेकची में
देखो, पक रहा अन्न
भट्टी में पकता है लोहा
दुःख में समय
शहद पकता मधुमक्खियों के छत्तों में
स्वप्न फल नींद के वृक्ष में
धूप में पक रहा धान
प्यार में हृदय

आज आँवला नवमी।

किवाड़

गाँव के किनारे जहाँ बहता है दाहरा
और ढलान पर झूमते हैं शीशम के पेड़
मिट्टी का छोटा-सा घर है हमारा
जिसकी ड्योढ़ी में महकती है
पारिजात की फूल भरी झाड़ी
लेकिन जिसका किवाड़ है टूटा

फिर भी जो पाहुनों के स्वागत को
हर घड़ी तत्पर
फिर भी हर रात जिसकी आँखों में
जन्म लेते हैं नए सपने
चाहे वे टूट जाएँ अगली सुबह

क्या हुआ जो किवाड़ है टूटा
दिल तो है साबुत
प्रेम तो अखण्ड।

द्वारा—श्रीमती मंजुल श्रीवास्तव
एलआईसी, सीबीओ-21, चौथा तल
हिन्दुस्तान बिल्डिंग एनेक्सी
4-सीआर एवेन्यू, कोलकाता-700072

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत, कर्मयोगी, हिन्दी-प्रहरी : बाबा कामिल बुल्के

डा0 वीणा रानी श्रीवास्तव

पटना विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर छात्रों को 'तुलसीः' विशेष पत्र पढ़ाने के क्रम में पहली बार 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' को स्वयं पढ़ने का अवसर मिला। उस महार्घ शोध-ग्रंथ में शोध की व्यापकता, विश्लेषण, सूक्ष्म अंतर्दृष्टि एवं देश-विदेश में रामकथा के स्वरूपों की व्याख्या तथा विस्तार देखकर चमत्कृत हो गई। इसे रामकथा का कोशात्मक ग्रंथ कहने में कोई अत्युक्ति नहीं। इस एक ग्रंथ का सूत्र पकड़कर मैं फादर कामिल बुल्के के संपूर्ण व्यक्तित्व से परिचित होने को व्यग्र हो उठी थी। जिस व्यक्ति का वहिरंग इतना आकर्षक था—लंबी देवदार सरीखी काया, गौर वर्ण, नीली भूरी किंचित हँसती सी आँखें, सोने जैसे रंग वाले केश और छितराई दाढ़ी, पादरियों के दुग्ध-धवल चोगे में लिपटा-उसका अंतरंग भी वैसा ही था। परम आत्मीय, तपःपूत। परिचय का यह सिलसिला ऐसा बना कि मैं उस अनदेखे, अनजाने, अपरिचित विदेशी के व्यक्तित्व और कृतित्व से जुड़ती चली गयी।

फादर बुल्के पश्चिम और पूरब के बीच एक पवित्र सेतुबंध थे जिसके माध्यम से पाश्चात्य एवं पौवसत्य संस्कृतियों को देखा समझा जा सकता है। यूरोप और एशिया दो मित्र महादेश, बेल्जियम और भारत दो अलग देश—इनकी सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषिक, वैदुषिक और वैचारिक परम्पराएँ, भाव भूमियाँ एक दूसरे से प्रायः असम्पृक्त। इनके बीच अपने सम्मोहक व्यक्तित्व, निरस्त्र कर देने वाली उदार सहिष्णुता, निश्छल प्रेममयता एवं अडिग आस्था के सहारे फादर ने अत्यंत सौहार्दपूर्ण समन्वय स्थापित कर लिया था। भारत और भारतीयता ने उन्हें अपने रंग में लिया। उन्होंने भारत और भारतीयों को सहज ही अपना आत्मीय बना लिया। उन्हें बाबा कहलाना बेहद पसंद था—"मुझे फादर मत कहो।" इस बाबा ने मिशनरी के रूप में भारत को अपनी कर्मभूमि चुना था पर अनायास यह उनकी आत्मिक भावभूमि, धर्मभूमि बन गई। वे विशुद्ध भारतीय थे—मनसा, वाचा, कर्मणा, विशुद्ध भारतीय। भारत सरकार ने न केवल उन्हें यहाँ की नागरिकता दी, योग्यता, क्षमता एवं सेवा के लिए किसी नागरिक को दी जाने वाली 'पद्मविभूषण' की विशिष्ट उपाधि से भी अलंकृत किया।

फादर सच्चे अर्थों में एक संत थे। उनका जीवन और उनकी साधना इकहरी थी। उनके लिए सन्यास का अर्थ जीवन और जगत् का निषेध नहीं। वरन् 'स्व' का निषेध था। सन्यास का अर्थ ही है 'स्व' का विस्तार, एक ऐसी विराटता जिसमें सारी दुनिया समा जाय। सेवा ही उसकी प्रेरणा है। फादर सन्यासी थे, स्व को पर के साथ समाहित कर ऐसे प्रेममय मानलोक के स्वामी थे जिसमें आनंद ही आनंद है।

इस आनंदलोक की सर्जना की प्रेरणा उन्हें अपने उस गाँव से, वहाँ के निवासियों से मिली जो संसार के कोलाहल से दूर विस्तृत नील सागर के किनारे, नदियों, झरनों और नहरों के बीच बेल्जियम के एकांत कोने में बसा था। भरपूर प्राकृतिक सौंदर्य के मध्य बसे उस गाँव की एकमात्र पहचान थी मीनारों वाली वह धर्मस्थली जिसमें ईसा को गोद में लिए माता मरियम की ऊँची भव्य मूर्ति थी। शांत, सुंदर वह माता अपनी छाँह में सबको सुख बाँटती थी। एक पवित्र मसीही जीवन दृष्टि की प्रेरणा देती थी। यहाँ फादर ने प्रेम का पाठ पढ़ा, धैर्यपूर्वक ईश्वर के सान्निध्य में जीवन की विसंगतियों को सहना सीखा, प्रकृति को प्यार करना सीखा और यहाँ सहज जीवन का गुरुमंत्र भी सीखा। ग्रामीण परिवेश ने जो भक्ति एवं शक्ति उन्हें दी थी उसे जीवन पर्यंत वे बाँटते भी रहे उसकी स्मृति से आनंदित भी होते रहे। इंजीनियरिंग के स्नातक सुदूर भारत भूमि को अपनी सेवा, अपने प्रेम से आलोकित करते रहे।

फादर कामिल बुल्के की संपूर्ण जीवन की साधना के तीन ही घटक थे—ईसा, तुलसी के राम और हिन्दी। मैं उन्हें साक्षात् तीर्थराज प्रयाग ही मानती हूँ जहाँ त्रिवेणी संगम है।

फादर की पहली निष्ठा के केन्द्रस्थ यीशु ने 'स्व' की परिधि का विस्तार कर मानवमात्र को प्रेमालिंगित किया। प्रतिदिन बाइबिल का पाठ, प्रभु की उपासना, बाइबिल का नियमित अनुवाद दशाधिक पुस्तकों के लेखन और अनुवाद करने वाले फादर ने कभी किसी धर्म का विरोध नहीं किया, निन्दा नहीं की। तुलसी के राम में फादर को अपना प्यारा जीसस ही दिखाई देता था। वहाँ वैसे ही सेवाभाव और वैसी ही कर्मनिष्ठा जैसी प्रभु यीशु में थी, वैसी ही प्रभु राम में। उन्होंने लिखा था—'रामचरित मानस में मुझे आचार, मर्यादा और जीवन-मूल्यों का नैतिकपत्र उसी तरह दिखाई देता है। मेरे लिए यह काव्यग्रंथ नहीं है, मेरा पवित्र धर्मग्रंथ भी है, जिसे पढ़ते समय मैं अपनी चित्तवृत्तियों के परिष्कार का वातावरण उपस्थित होता हुआ देखता हूँ।"

एक जगह हँसते हुए उन्होंने कहा था—'सबहि नचावत रामगुसाईं, मोहि नचावत तुलसी गुसाईं। मैं तुलसी का हाथ पकड़कर भगवान की ओर जा रहा हूँ।"

तुलसी ने उन्हें रामकथा का ही सबसे मर्यादित रूप नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया वरन भगवत भक्ति का भी ऐसा स्वरूप दिया जिसे वे ईश्वर भक्त मात्र के लिए आदर्श मानते थे। एक ओर उनका ईसाभाव था, दूसरी ओर नाना वेद-पुराण निगमागम मंडित रामचरितमानस का भक्तिभाव। दोनों में एक तादात्म्य भाव था जो साम्य उन्हें ईसाई संतों एवं भारतीय संतों में भी दीखा था। एकाग्र चिंतन, मनन, अध्ययन एवं परिश्रम से इसे रामकथा का कोशग्रंथ ही बना डाला। बस उनकी एक लालसा रह गई थी तुलसी पर एक महार्घ शोधग्रंथ संपादित करने की। ठीक वैसे ही जैसे मृत्यु शय्या पर पड़े हुए भी वे चार-सौ घंटों की मुहलत चाहते थे कि बाइबिल का अनुवाद पूरा कर सकें।

फादर की इस तुलसी-निष्ठा के कारण लोकमन में सहज ही एक विश्वास जन्म लेने लगा था कि फादर कहीं तुलसी के अवतार ही तो नहीं हैं। बाल्मीकि से तुलसी और तुलसी से कामिल बुल्के-रामकथा की महत्त्वपूर्ण परंपरा की सशक्त कड़ी। उन्होंने एक जगह अपने सहज विनोदी स्वभाव में कहा था 'स्वर्ग पहुँचते ही मैं पहले तुलसीदास की खोज करुँगा।'

जैसे जैसे प्रवास का समय बीतता गया, फादर जन-जीवन से एकाकार होते गए। उनकी यह अनुभूति दृढ़ होती गई कि भारतीय जनता का दिल जीतने के लिए उसकी भाषा में ही बात करना होगा। आंचलिकता, सांप्रदायिकता, जातीयता की छोटी-छोटी सीमाओं को ध्वस्त करते हुए हिन्दी के माध्यम से ही संवाद स्थापित किया जा सकता है। उनका मानना था कि जिस देश के लोग अपनी भाषा का आदर नहीं करते वह देश मरने लगता है, उसकी संस्कृति मरने लगती है। तुलसी ने जब कहा था—''कीरति, भीनति भूति मल सोई, सुरसरि सम सबका हित कोई।' फादर ने तब इस इंगित को भली प्रकार ग्रहण किया था कि हिन्दी ही वह 'सुरसरि' है जिसमें भारतवासियों के हित की रक्षा करने की क्षमता है। बिनोवा के पवनार आश्रम में बहुत पहले उन्होंने संकल्प जता दिया था कि 'मैं हिन्दी की सेवा तब तक करुँगा जब तक इस शरीर में प्राण हैं।''

भारतीय संस्कृति की मूल विशेषता है समन्वय एवं संतुलन। विभिन्नताओं के इस देश में मौलिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का समन्वय। यही भारतीय पारंपरिक अवधारणा रही है। फादर ने समझ लिया था अपने अनुभवों से कि—'हिन्दी और केवल हिन्दी ही इस समन्वय एवं संतुलन की संवाहिका हो सकती है।'' इसलिए वे हिन्दी के जुझारू योद्धा बने रहे। जब कभी हिन्दी की अवहेलना उन्हें दीखती थी वे खिन्न होते थे। सूचनापट्टों पर अंग्रेज़ी का प्रयोग अथवा बोलचाल में अंग्रेज़ी का अनावश्यक प्रयोग उनमें सात्विक आक्रोश जगाता था। वे सामान्यतः हिन्दी में ही बात करते थे—वह व्याकरण सम्मत परिनिष्ठित हिन्दी में विद्वत् समाज में अपनी बात रखते थे।

1975 में नागपुर में पहला विश्व हिन्दी सम्मेलन था। प्रधानमंत्री से लेकर देश-विदेश के बड़े विद्वान एवं नेतागण उपस्थित थे। सभी ने हिन्दी के महत्व को स्वीकारा। राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने का प्रस्ताव पारित हुआ। इस सम्मेलन में फादर की उपस्थिति विशिष्ट थी। एक तो उनकी अप्रतिम देहयष्टि, गौरवर्ण, नीली आँखें, सुनहरी दाढ़ी, धवल वस्त्र और उस पर धवल अंगवस्त्रम। पर सर्वोपरि थी उनकी वकालत जो हिन्दी के लिए थी। विशुद्ध, परिमार्जित हिन्दी, गहन विचार, तर्कपूर्ण प्रस्तुति। एक विदेशी हिन्दी के सरोकारों की बात कर रहा है; लोग लज्जित भी थे, हतप्रभ भी। जीवन भर वे हिन्दी के लिए, हिन्दी में काम करते रहे, संघर्ष करते रहे। हिन्दी ही उनके अस्तित्व की, समस्त व्यक्तित्व की भाष्य, उनकी पहचान बन गई। पाँचवे दशक में ही अपने कलकत्ता प्रवास के दिनों में वे अनुभव कर चुके थे कि भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास और साहित्य को हिन्दी के माध्यम से समझा जा सकता है, समझाया जा सकता है। यह राष्ट्रीय एकता की संवाहिका भी है अतः इसकी प्रगति, प्रतिष्ठा, अध्ययन, अध्यापन एवं शोध के अभियान में वे लग गए तो जीवन-पर्यंत लगे रहे। वस्तुतः स्वतंत्रता आंदोलन में भी हिन्दी ही राष्ट्रीयता की पहचान बनी थी। कलकत्ता से स्नातक एवं इलाहाबाद से स्नातकोत्तर डिग्री लेकर वहाँ शोध कार्य पूरा करने के उपरांत राँची में सेंट जेवियर्स कॉलेज के हिन्दी एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष पद से निरंतर हिन्दी के लिए समर्पित भाव से कार्यरत रहे।

हिन्दी में काम करने तथा अन्य भाषा-भाषियों के लिए हिन्दी सीखने की सुविधाओं का विस्तार करने के लिए ही उन्होंने अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश का निर्माण किया। यह कोश भारतीय भाषाओं के द्विभाषिक कोशों में अत्यंत विशिष्ट है। पहलीबार इसमें शब्द की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को विवेचित किया गया है। शब्द-प्रयोगों की व्यवस्थित जानकारी के साथ-साथ शब्दों के उच्चारण के मानक रूप को स्पष्टता से बताया गया है। अंग्रेज़ी के पूर्व स्वर्गीय प्रयोगों के साथ मुहावरों के प्रयोग को दर्शाकर दो भिन्न भाषाओं की प्रकृति को ध्यान में रखकर तद्नुरूप शब्दार्थ की व्यंजन अपने आप में क्लिष्ट किंतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य बना। यह कोश हिन्दी का आदर्श द्विभाषिक कोश है।

फ़ादर मूलतः फ़्लेमिश भाषी थे। यह भाषा डच भाषा की सहोदरा है। इस भाषा को राजनैतिक कारणों से बड़ी उपेक्षा झेलनी पड़ी थी। फ्रेंच प्रशासन की, आभिजात्य की, शिक्षा की भाषा बन गई और डच भाषी फ्लैंडर्स की ग़रीबी और अशिक्षा के कारण भाषा भी निम्नवर्ग की बोली बन कर रह गयी। शांत, सौम्य, सुदृढ़, परिश्रमी और स्वाभिमानी लोगों ने सौ साल तक संघर्ष कर अपनी भाषा को बराबरी का दर्जा दिलाया। इसे व्यापार, अनुसंधान एवं राजनीति का माध्यम बनाया। इसमें अनुवाद की भूमिका बड़ी अहम् थी।

इस पृष्ठभूमि में फादर के हिन्दी प्रेम एवं हिन्दी के लिए निरंतर प्रयत्नशील भूमिका को समझने की ज़रूरत है। अनुवादों के माध्यम से फ्लेमिश को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। फादर ने अनुवादों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सहारा लेकर अपने धार्मिक दायित्व को विस्तार दिया। मूल यूनानी से किया गया सरस, प्रवाहमय, हृदयग्राही अनुवादों का विपुल बाइबिल साहित्य तैयार कर दिया। 'मुक्तिदाता' हो या 'सुसमाचार', 'प्रेरित चरित हो या 'नया विधान' सभी अनुवाद अत्यंत बोधगम्य, हिन्दी संस्कारों से युक्त, मुहावरेदार, रचनात्मक अनुभव संपन्न हैं। इनमें सौंदर्यानुभूति भी है, रसात्मकता भी, भारतीय कला-चेतना भी है और शिल्पगत समृद्धि भी। ये अनुवाद विलक्षण सादगी और मौलिक ताजगी भरे हैं। बहुभाषाविद् फादर ने अपनी भाषा मर्मज्ञता से लेखकीय चेतना एवं सर्जनात्मक समृद्धि को सजीव बना दिया है।

डा0 फादर कामिल बुल्के एक कोलाज नहीं थे वरन् एक तराशे हीरे के मानिन्द थे जिसके हर कोण से, एक नई आभा निकलती दीखती है।

फादर के नाभिकेन्द्र में जो अमृत था वह चाहे उनके उस मरियम की छाँववाले गाँव की देन हो या अपनी त्यागमयी माँ की देन हो या दृढ़ निश्चय वाले कर्मठ स्वाभिमानी पिता की देन हो, उससे आप्लावित हुआ यह देश, यहाँ के रहने वाले बहु संख्य लोग। बच्चन जी ने उन्हें स्मरण करते हुए लिखा था—

तुलसी होते, तुम्हें पगतरी के हित, देते अपना चाम
सदा सहज श्रद्धा से लेगा, देश तुम्हारा नाम।

उस ऋषितुल्य बाबा को, उस कर्मयोगी को, हिन्दी के अप्रतिम योद्धा को प्रणाम।

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग (अवकाश प्राप्त)
पटना विश्वविद्यालय, पटना
मोबा-09473377338, दूरभाष-0612-26723

कविता

फ़र्क़ नहीं पड़ता

स्नेह सुधा

कैसे कहूँ कि फ़र्क़ नहीं पड़ता
जब कोई परिचित मेरा
या कि अतिस्नेही
मुझे पहचानने से इन्कार कर देता है
सिर्फ़ इसीलिए कि
चंद सफलताओं में उसने अपना मुकाम पाया है।

कैसे कह दूँ कि फ़र्क़ नहीं पड़ता
जब कोई बेहद अपना मेरा
मुझसे पूछना छोड़ देता है कि
मेरी हँसी कहाँ खो गयी
वह मेरा छोटी-छोटी बातों पर
बच्चों-सा रूठना
और फिर
इक मीठे बोल पर मान जाना
अब आड़े नहीं आता
मेरी बातों के...

कैसे कह दूँ कि फ़र्क़ नहीं पड़ता
जब मेरा कोई सन्निकट
यह जान नहीं पाता
कि ये बातें मेरी ऊपरी हैं,
सामाजिक व्यवहार हैं
मेरे मर्म को कहीं छूती नहीं
कि वे बेधित हैं, चोटिल हैं।

फ़र्क़ पड़ता है, बहुत फ़र्क़ पड़ता है
फिर भी जिये जा रही हूँ
सारी व्यावहारिकताओं के साथ
चेहरे पर अनगिनत मुस्कानों के साथ
कि ज़िंदगी मेरे थमने से थमेगी नहीं।

वक़्त का फ़ेर है
सफलता मेहनत के साथ
कतिपय चमत्कार माँगती है
संयोग जब दोनों का होगा
तो फिर
कुछ तो बदलेगा...

तब तक तो
अपनी मुस्कुराहटों से यही व्यक्त
होना है
कि मुझे फ़र्क़ नहीं पड़ता
क्योंकि
यही ज़िंदगी का मर्म है।

चंद्रभागा छात्रावास, कमरा नं0 117, जे0एन0यू0, नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि और रामकथा की दिग्विजय : होमर और वाल्मीकि

फ़ादर कामिल बुल्के

अनेक दृष्टियों से भारतीय एवं एशियाई साहित्य में रामकथा का वही स्थान है जो युनानी और यूरोपीय साहित्य में होमर के इलियड और ओडिसी नामक महाकाव्यों का है। इन महाकाव्यों के रचनाकाल, ऐतिहासिकता, प्रारंभिक प्रचार आदि और वाल्मीकि रामायण की तत्संबंधी समस्याएँ एक-सी प्रतीत होती हैं।

होमर के समय के विषय में युनानी परंपरा में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलते। पाँच सौ ईसवी पूर्व के युनानी इतिहासकार हेल्लानिकुस के अनुसार, होमर का समय बारहवीं शताब्दी ईसवी पूर्व है, जबकि हेरोदोतुस (जिनका देहांत 425 ई0 पू0 में हुआ था) लिखते हैं कि 'होमर मेरे समय से चार सौ वर्ष पूर्व विद्यमान थे इससे पूर्व नहीं।' होमर का समय बारहवीं शताब्दी ई0 पू0 मानने का मुख्य कारण यह था कि यह समझा गया था कि जिस कवि ने ट्रॉय के युद्ध का ऐसा सजीव वर्णन किया था, उसने यह युद्ध अपनी ही आँखों से अवश्य देखा होगा।

बहुत समय तक यह निश्चित नहीं हो पाया कि उन दोनों इतिहासकारों में किसका मत प्रमाणित माना जाये। अब तो सर्व-सम्मति से हेरोदोतुस के साथ यह समझा जाता है कि होमर के काव्यों का रचनाकाल नवीं शताब्दी ई0पू0 है। इसके अतिरिक्त यह भी माना जाता है कि होमर के पहले कई शताब्दियों तक ट्रॉय के युद्ध के विषय में गाथाओं की रचना हुई होगी। अन्य प्रजातियों के महाकाव्यों के अध्ययन से भी इलियड और ओडिसी की उत्पत्ति के विषय में इस धारणा को बहुत बल मिला कि होमर ने अपने पूर्ववर्ती गाथा-साहित्य के आधार पर ही अपने महाकाव्यों की रचना की थी।

जहाँ तक होमर के काव्यों के कथानक की ऐतिहासिकता का प्रश्न है, यह कभी नहीं पता चल सकेगा कि उनका कितना अंश, अथवा यों कहें, उनका कितना कम अंश इतिहास-सम्मत है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में जर्मन विद्वान श्लीमैन की खुदाई के पश्चात् ट्रॉय नामक नगर के अस्तित्व के विषय में कोई संदेह नहीं रहा। वह एक बहुत प्राचीन नगर है जो एक से अधिक बार नष्ट किया गया था, किंतु जिस युद्ध का वर्णन युनानी साहित्य में किया गया है, वह प्रायः बारहवीं शताब्दी ई0 पू0 का माना जाता है।

होमर की रचनाएँ इतनी उत्कृष्ट कोटि की थीं कि पूर्ववर्ती गाथा-साहित्य लुप्त हो गया है। होमर का काव्य शताब्दियों तक युनानी शिक्षा का आधार रहा और पेशेवर चारण (काव्योपजीवी) पूरे देश का भ्रमण करते हुए होमर की काव्य-रचनाएँ गाकर सुनाते थे।

युनानी दार्शनिक अफ्लातून ने (427-348 ई0 पू0) अपने इयोन नामक संवाद में एक पेशेवर चारण का विनोदपूर्ण चित्रण किया है। इयोन अन्य चारणों की भाँति अभिमानी था और उस संवाद में वह यह दावा करता है कि होमर के काव्यों को कंठस्थ करने के बाद वह संपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुका है। अफ्लातून इयोन से कहते हैं—'इयोन जी! तुम देश भर का भ्रमण करते रहते हो और जहाँ कहीं भी पहुँचते हो, भीड़ की भीड़ तुम्हारे पास एकत्र हो जाती है। तुम क़ीमती कपड़े पहनकर होमर का काव्य गाकर सुनाते हो और अपने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते हो। तुम कितने सौभाग्यशाली हो।'

जिस तरह भारत के कवियों ने शताब्दियों तक रामकथा को अपने काव्य का विषय बना लिया, उसी तरह युनान के साहित्यकार होमर से अपनी कथा-वस्तु ग्रहण करते रहे। महान् नाटककार ईस्कीलस ने (525-456 ई0पू0) अपनी रचना के विषय में कहा—'होमर द्वारा तैयार की हुई दावत के कुछ पकवान।'

वाल्मीकि पूर्व राम-विषयक गाथा-साहित्य और उसका मूल स्रोत

(अ) बौद्ध त्रिपिटक, महाभारत तथा रामायण के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक काल के बाद चौथी शताब्दी ई0पू0 के कई शताब्दियों पहले से रामकथा-विषयक आख्यान-काव्य की उत्पत्ति हुई थी।

वाल्मीकि रामायण में इस बात की ओर निर्देश किया गया है—

इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्।।3।।
(बालकांड, सर्ग 3)

हरिवंश पुराण में भी रामकथा के अत्यंत संक्षिप्त वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनंतर तत्संबंधी पुरानी गाथाओं का उल्लेख है—

गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः।।149।।

(हरिवंश पर्व, अध्याय 41)

उन गाथाओं के अवशेष बौद्ध त्रिपिटक में सुरक्षित हैं। उनके मूल स्रोत के विषय में मतैक्य नहीं है। वैदिक साहित्य में रामकथा के इन पात्रों के नाम मिलते हैं—इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, अश्वपति, जनक और सीता। राम चार व्यक्तियों का नाम है—उनमें से एक राजा है और तीन ब्राह्मण। इन नामों के आधार पर कुछ विद्वान् रामकथा का मूल स्रोत वैदिक साहित्य में ढूँढते हैं, किंतु वैदिक साहित्य में न तो इन नामों का पारस्परिक संबंध उल्लिखित है और न इनके संदर्भ में रामकथा का निर्देश मिलता है। जनक और सीता का बारंबार उल्लेख होने पर भी दोनों के पिता-पुत्री संबंध की ओर कहीं भी संकेत मात्र भी नहीं किया गया है। अतः वैदिक साहित्य के रचनाकाल में रामकथा-विषयक गाथाओं का अस्तित्व अत्यंत संदिग्ध है। उस साहित्य में अनेक ऐसे ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम मिलते हैं जो रामायण के पात्रों के नाम भी हैं—इससे यह निष्कर्ष मात्र निकाला जा सकता है कि ये नाम प्राचीन काल में भी प्रचलित थे।

(आ) डॉ0 वेबर ने पिछली शताब्दी में अपना यह मत प्रतिपादित किया कि रामकथा का मूल रूप दशरथजातक में सुरक्षित है। इस जातक में युद्ध का कोई उल्लेख नहीं है, इसलिए डा0 वेबर का अनुमान है कि सीता-हरण का मूल स्रोत होमर काव्य में वर्णित पैरिस द्वारा हेलेन का अपहरण है। डॉ0 सुनीतिकुमार चटर्जी ने हाल में डॉ0 वेबर के इस बात का समर्थन किया। इलियड और रामकथा, दोनों में किसी की पत्नी के कारण युद्ध छिड़ जाने का वर्णन अवश्य है, किंतु दोनों काव्यों के नैतिक स्तर में आकाश-पाताल का अंतर है। हेलेन पैरिस में अनुरक्त होकर स्वेच्छा से उसके साथ छिपकर भाग जाती और पैरिस की पत्नी के रूप में ट्रॉय में बस जाती है। होमर के काव्य में युद्धपोतों को बहुत महत्त्व दिया गया है। यदि भारत के चारण इससे परिचित होते, तो उन्होंने सेना को समुद्र के पार पहुँचाने के लिए सेतु के स्थान पर नावों का सहारा लिया होता। अतः रामगाथाओं के कवि इलियड से परिचित थे, यह डॉ0 वेबर का अनुमान मात्र है जिसके लिए वह कोई प्रमाण नहीं दे सके।

जहाँ तक दशरथजातक की समस्या है, इसके संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उस जातक का मुख्य अंश गद्य में है और अपेक्षाकृत अर्वाचीन भी। पद्य का अंश बौद्ध त्रिपिटक की गाथाएँ हैं जो तीसरी शताब्दी ई0पू0 मगध देश में पाली भाषा में लिपिबद्ध की गयी थीं। पहली गाथा का विषय है—वनवासी राम के पास भरत के आगमन के बाद दशरथ की जलक्रिया। इसके बाद की ग्यारह गाथाओं में शोक की व्यर्थता पर राम का उपदेश उद्धृत है। रामायण में राम अपने पिता के देहांत का समाचार सुनकर अत्यंत शोक प्रकट करते हैं (2, 103, 1) और केवल बाद में भरत को सांत्वना देते हैं (2, 105, 15-42)। जातक में राम किंचित् भी शोक नहीं करते। अंतिम गाथा में कहा गया है कि कंबुग्रीव महाबाहु राम ने सोलह सहस्र वर्ष तक राज्य किया। इस गाथा का संस्कृत रूप रामायण, महाभारत और हरिवंश में पाया जाता है—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत्।।

(रामायण, दाक्षिणात्य पाठ 6, 128, 10)

अतः स्पष्ट है कि पाली गाथा और संस्कृत श्लोक का मूल स्रोत एक ही है और वह स्रोत रामकथा-संबंधी प्राचीन गाथा-साहित्य है।

उपर्युक्त सामग्री को छोड़कर दशरथजातक की शेष कथा गद्य में है। बहुत संभव है कि प्रारंभ से ही पाली त्रिपिटक की गाथाओं के साथ गद्य की टीका भी प्रचलित थी, क्योंकि इसके अभाव में बहुत-सी गाथाएँ अपूर्ण और अबोधगम्य हैं। किंतु वर्तमान पाली जातकट्ठवण्णना पाँचवीं शताब्दी ईसवी की एक सिंहली पुस्तक का अनुवाद है। मूल सिंहली पुस्तक (जिसमें गाथाएँ पाली में दी गयी थीं) आजकल अप्राप्य है। अज्ञात लेखक का कहना है कि मैंने अनुराधपुर की परंपरा के आधार पर अपनी पुस्तक की रचना की है। इससे स्पष्ट है कि जातक का गद्य अंश प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि वह गाथाओं के कई शताब्दियों बाद, मौखिक परंपरा के आधार पर लिपिबद्ध किया गया है। दशरथ जातक की रामकथा इस प्रकार है। वाराणसी के राजा दशरथ की ज्येष्ठा महिषी की तीन संतानें थीं—दो पुत्र राम पंडित और लक्ष्मण और एक पुत्री सीता देवी। इस महिषी के मरने के बाद राजा ने एक दूसरी को ज्येष्ठा के पद निर्दिष्ट किया। उसके भी भरत कुमार नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उस अवसर पर उसे एक वर दिया और इसके बल पर रानी ने अपने पुत्र के लिए राज्य माँगा। राजा ने उसे षड्यंत्रों के भय से राम को चले जाने और अपने मरने के बाद लौटकर राज्य पर अधिकार करने का आदेश दिया। तब राम ने ज्योतिषियों को बुलाकर अपने मरने की अवधि पूछी। बारह वर्ष का उत्तर पाकर दशरथ ने कहा कि तुम बारह वर्ष बाद वापस आओ। इस पर राम पंडित हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं और उनके भाई लक्खण और उनकी बहन सीता उनके साथ जाते हैं। नौ वर्ष के बाद दशरथ पुत्रशोक के कारण मर जाते हैं, किंतु भरत कुमार राजा बनना नहीं चाहते और चतुरंगिणी सेना लेकर राम को वापस ले आने के उद्देश्य से हिमालय जाते हैं। राम पंडित अपने पिता के देहांत का समाचार सुनकर न तो शोक करते और न रोते हैं। वह लक्खण और सीता को सांत्वना देने के लिए अनित्यता और शोक की व्यर्थता का उपदेश देते हैं। बाद में पंडित यह कहते हुए भरत का प्रस्ताव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्वीकार करते हैं, 'मेरे पिता ने मुझे बारह वर्ष की अवधि के अंत में राज्य करने का आदेश दिया। अब लौटकर मैं उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकूँगा। मैं तीन वर्ष बाद लौटूँगा।'

इस पर भरत शासनाधिकार अस्वीकार करते और राम उन्हें अपनी पादुकाएँ देते हुए कहते हैं, 'मेरे आने तक ये शासन करेंगी।' तीन वर्ष बीत जाने पर राम लौटते और अपनी बहन सीता से विवाह करते हैं। अंत में इसके उल्लेख है कि 16000 वर्ष तक राज्य करने के बाद स्वर्ग चले गये।

दशरथजातक की अंतरंग परीक्षा से सिद्ध होता है कि उसका कथानक मौलिक नहीं है। रामायण में कैकेयी ने वर के बल पर राम के लिए चौदह वर्ष का बनवास माँग लिया था, अतः दशरथ के मरने के बाद राम का वन में रहना आवश्यक था, लेकिन दशरथ-जातक में इसके लिए कोई समीचीन कारण नहीं है। दशरथ ने कहा था कि 'मेरी मृत्यु के पश्चात् लौटो।' तब ज्योतिषियों से यह समझकर कि मैं और बारह वर्ष जीता रहूँगा, तो उसने इस अवधि के अंत में आने को कहा।

रामायणीय कथा में सीता का अपने पति के साथ चला जाना स्वाभाविक है। दशरथजातक में इसके लिए कोई ऐसा कारण नहीं है। सीता को विमाता के षड्यंत्रों से कोई आशंका नहीं थी। इन असंगतियों के कारण स्पष्ट है कि यह दशरथजातक रामायणीय कथा का विकृत रूप है। दोनों कथाओं में जो शेष अंतर पाये जाते हैं, वे स्वाभाविक कहे जाते हैं। जातक के प्रारंभ में कहा गया है कि बुद्ध ने पिता के मरण से शोकातुर पुत्र को धैर्य देने के लिए दशरथ के मरने पर राम के धैर्य का उदाहरण दिया था। इस उद्देश्य के लिए सीता-हरण का उल्लेख अनावश्यक था। इसके अतिरिक्त जातक के अनुसार बुद्ध अपने किसी पूर्वजन्म में राम पंडित थे, अतः बौद्ध आदर्श की रक्षा के लिए रावण-वध का अभाव स्वाभाविक है। बौद्ध जातकों की शैली के अनुसार राजधानी वाराणसी है। वनवास का स्थान हिमालय है, जो बौद्ध कथाओं में अत्यंत लोकप्रिय है। राम और सीता, भाई-बहन का विवाह एक मौलिक अंतर है, किंतु इसके लिए भी बौद्ध ग्रंथों में कई उदाहरण प्रस्तुत हैं (उदाहरणार्थ कुणालजातक)।

जातकट्ठवण्णना में दो और गाथाएँ रामकथा से संबंध रखती है। जयद्दिस जातक में एक माता अपने पुत्र से कहती है—जिस तरह से दण्डकारण्य-वासी राम की सुंदर माता ने अपने पुत्र का कल्याण किया, उसी तरह मैं तेरा कल्याण करती हूँ। और वेस्संतर जातक में वेस्संतर की पत्नी कहती है—मैं एक प्रतापवान निर्वासित राजकुमार की भार्या हूँ। अनुगामिनी सीता जिस तरह राम का आदर करती थीं, उसी तरह मैं इनका आदर करती हूँ। दोनों गाथाओं में दशरथजातक की गद्य-कथा से भिन्नता है। (वनवास का स्थान और राम-सीता-समन्वय) इससे भी उसकी अप्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है।

(इ) डा0 योकोबी भी रामायण के दो प्रधान मूल स्रोत मानते हैं। उनके अनुसार अयोध्याकांड का कथानक ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, किंतु दण्डकारण्य तथा लंका से संबंधित सामग्री वैदिक साहित्य के कुछ पात्रों के चरित्र-चित्रण के विकास से धीरे-धीरे उत्पन्न हुई है। किंतु एक तो डा0 योकोबी इस विकास के सोपान निर्धारित करने में असमर्थ हैं। दूसरे, वाल्मीकि-कृत आदि-रामायण के अयोध्याकांड और शेष कथानक में कोई मौलिक अंतर नहीं था। आदि रामायण में कहीं भी अलौकिक घटनाओं का वर्णन नहीं था। इस पर आगे विचार किया जायेगा।

(ई) डा0 दिनेशचन्द्र सेन मानते हैं कि रामकथा की प्रधान कथा-वस्तु दशरथजातक और रावण-संबंधी आख्यान-काव्य के संयोग से उत्पन्न हुई है। एक तीसरा लेकिन गौण आधार हनुमान-संबंधी सामग्री है जिसमें प्राचीन वानर-पूजा का अवशेष देखा जा सकता है। इस मत के विरुद्ध यह तर्क दिया जा सकता है कि एक तो, वाल्मीकि रामायण में कहीं भी वानर-पूजा का निर्देश नहीं मिलता। दूसरे रामकथा के पूर्व रावण अथवा हनुमान के विषय में स्वतंत्र आख्यान-काव्य प्रचलित था। डा0 सेन ने इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। यह निराधार कल्पना मात्र है।

(उ) रामकथा के मूल स्रोत के विषय में विभिन्न धारणाओं की अप्रामाणिकता और पारस्परिक विरोध को ध्यान में रखकर सब से स्वाभाविक अनुमान यही प्रतीत होता है कि राम-विषयक प्राचीन गाथा-साहित्य ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। यह अनुमान मात्र तब तक रहेगा जब तक कोई पुरातत्त्वज्ञ प्राचीन अयोध्या की खुदाई नहीं करता। ट्रॉय के युद्ध की ऐतिहासिकता के विषय में तब तक संदेह बना रहा जब तक श्लीमैन ने ट्रॉय की खुदाई नहीं की थी। पच्चीस साल से मेरी धारणा यह है कि अयोध्या की खुदाई के फलस्वरूप यह प्रमाणित होगा कि नवीं शताब्दी ईसवी पूर्व में वहाँ एक नगर का अस्तित्व था। हाल में प्रकाशित 'रामायण, मिथ आर रियैलिटी' (पृ0 45) में डा0 एच0डी0 संकालिया ने यह विचार प्रकट किया कि अयोध्या कम से कम 800 ई0पू0 तक बसायी गयी थी और संभवतः और पुरानी है।

रामकथा की ऐतिहासिकता के पक्के प्रमाण अब तक नहीं मिले। किन्तु निर्देश अवश्य मिलते हैं। महाभारत के शांति पर्व में एक संक्षिप्त रामकथा षोडशराजोपाख्यान के अंतर्गत मिलती है। इससे स्पष्ट है कि महाभारत राम को उन अन्य पन्द्रह राजाओं की तरह ऐतिहासिक मानता है।

(ऊ) रामकथा के भूगोल के विषय में विस्तृत साहित्य प्रकाशित हो चुका है और हो रहा है। वाल्मीकि रामायण के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि आदिकवि उत्तर प्रदेश को अच्छी तरह जानते थे, किन्तु मध्य और दक्षिण भारत के भूगोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अपरिचित थे। अतः चित्रकूट-निवास के बाद की घटनाओं का भूगोल-विषयक साहित्य अनुमान पर आधारित है। अधिकांश आधुनिक लेखक किष्किन्धा और लंका, दोनों को विन्ध्य पर्वतमाला के दक्षिण, मध्य भारत में रखते हैं। इतना ही निश्चित प्रतीत होता है कि सिंहल और लंका शताब्दियों तक दो भिन्न देश समझे जाते हैं। महाभारत के वनपर्व में उन राजाओं की सूची है जो पाण्डवों के राजसूय यज्ञ के लिए बुलाये जाते थे। उस सूची में सिंहल और लंका अलग देश माने गये—सिंहलान् बर्बरान् म्लेच्छान् ये च लंकानिवासिनः (5, 23; गीता संस्करण)। भवभूति, कुमारदास, मुरारि राजशेखर और बराहमिहिर ने सिंहल देश को लंका से भिन्न माना है।

बौद्ध साहित्य (दे0 दीपवंश, 9, 1) में पहले-पहल सिंहल के लिए लंका प्रयुक्त होने लगा और दसवीं शताब्दी ईसवी से दोनों की अभिन्नता व्यापक रूप से स्वीकृत होने लगी। लंकावतार सूत्र के प्रथम अध्याय में लंकापति रावण और बुद्ध का संवाद है। यह रचना चौथी शताब्दी ई0 की है, किन्तु उसका प्रथम अध्याय प्रक्षिप्त है। 443 ई0 के चीनी अनुवाद में रावण-बुद्ध-संवाद नहीं मिलता, किन्तु 513 ई0 में इस रचना का पुनः चीनी भाषा में अनुवाद किया गया और छठी शताब्दी ई0 के उस अनुवाद में एक नया प्रथम अध्याय जोड़ा गया जिसमें रावण-बुद्ध-संवाद मिलता है। अतः पाँचवीं शताब्दी ई0 का पाली दीपवंश प्राचीनतम रचना है जिसमें लंगा और सिंहल की अभिन्नता स्वीकृत की गयी है।

आदि रामायण और उसका प्रारंभिक प्रचार

आदिकवि वाल्मीकि के पूर्व जो राम-विषयक आख्यान-काव्य की रचना हो चुकी थी, उसकी लोकप्रियता तथा क्षेत्र-विस्तार निर्धारित करना असंभव है किन्तु अवशिष्ट सामग्री की कल्पना को ध्यान में रखकर यह अनुमान दृढ़ हो जाता है कि वाल्मीकि ने जिस समय उस प्राचीन गाथा-साहित्य को एक ही कथा-सूत्र में ग्रथित कर आदि रामायण की रचना की थी, उसी समय से रामकथा की दिग्विजय प्रारंभ हुई थी। वाल्मीकि-कृत रामायण में अयोध्या कांड से लेकर युद्धकांड की कथावस्तु का वर्णन था, इसलिए उन्होंने अपने काव्य का नाम रामायण, अर्थात् राम का अयन (पर्यटन) रखा।

पिछली शताब्दी में रामायण पहले पहल पश्चिम में विख्यात होने लगा; उस समय अनेक विद्वानों का मत यह था कि रामायण ईसवी सन् के एक हजार वर्ष से अधिक पुराना है। आजकल अधिकांश यूरोपीय और भारतीय विद्वान आदि रामायण की रचना 300 ई0 पू0 के आस-पास मानते हैं। यह मत भारतीय साहित्य की अन्य रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है। प्राचीन बौद्ध साहित्य, विशेषकर जातकों की भाषाओं की सामग्री के विश्लेषण से स्पष्ट है कि त्रिपिटक के रचनाकाल में रामकथा संबंधी आख्यान-काव्य प्रचलित हो चुका था, लेकिन रामायण की रचना नहीं हो पायी थी। पाणिनी में रामायण वाल्मीकि या रामायण के मुख्य पात्रों दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, सुग्रीव, बिभीषण आदि का उल्लेख नहीं होता।

युद्धकांड की फलश्रुति को छोड़कर प्रामाणिक रामायण में वाल्मीकि की ओर कहीं भी संकेत नहीं मिलता। इस फलश्रुति में, बालकांड, उत्तर कांड और महाभारत में वाल्मीकि को रामायण का रचयिता माना गया और उस प्राचीन परंपरा के विरुद्ध कोई युक्तिसंगत तर्क नहीं दिया जा सकता है। बालकांड के रचनाकाल तक होमर की तरह आदिकवि वाल्मीकि को रामायण की घटनाओं के समकालीन माना गया था और उत्तरकांड के अनुसार लक्ष्मण सीता को वाल्मीकि के आश्रम के निकट जंगल में छोड़ते समय कहते हैं कि वाल्मीकि ब्राह्मण और दशरथ के सखा हैं—

राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुंगवः ।।161।।
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः।

(सर्ग 47)

किंतु होमर की तरह वाल्मीकि की जीवनी के संबंध में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। बालकांड (2, 3) के अनुसार वाल्मीकि का आश्रम तमसा और गंगा के समीप था। उत्तर कांड में वह गंगा के दक्षिण में माना जाता है (सर्ग 47), बाद में वाल्मीकि के दाक्षिणात्य पाठ (अयोध्याकांड, सर्ग 56), अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण आदि बहुसंख्यक अर्वाचीन रामकथाओं में वाल्मीकि-आश्रम यमुना के पार चित्रकूट के पास माना गया।

बालकांड में इसका स्पष्ट उल्लेख है। वाल्मीकि के शिष्य कुशीलव थे और कुशीलवों का समाज में कोई विशेष आदर नहीं था, जैसा कि उनके नाम (कु-शील) से प्रतीत होता है। रामायण की ख्याति के साथ ही कुशीलव वाल्मीकि का महत्व बढ़ा और वह ब्राह्मण माने गये तथा अयोध्या के राजवंश से उनका घनिष्ठ संबंध स्थापित किया गया। परवर्ती साहित्य में उनकी जीवनी के संबंध में एक विस्तृत साहित्य का विकास हुआ, जो प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है।

प्राचीन भारत में कुशीलव समस्त देश का भ्रमण करते थे और आख्यान काव्य सुनाकर अपनी जीविका चलाते थे, इसलिए वे 'काव्योपजीवी' के नाम से विख्यात थे। वाल्मीकि का काव्य कुशीलवों की सम्पत्ति बन गया। बालकांड (सर्ग 4) और उत्तर-कांड में लिखा है कि वाल्मीकि ने अपने शिष्यों को रामायण सिखलाया उसे राजाओं, ऋषियों और जनसाधारण को सुनाने का आदेश दिया—

कृत्स्नं रामायणं काव्यंगायतां मुदा।।4
ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च।
रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च।।5

(उत्तराकांड, सर्ग 6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण का विकास समझने के लिए उसका प्रारंभिक प्रचार का ध्यान रखना आवश्यक है। रामायण कई शताब्दियों तक मौखिक रूप से प्रचलित रहा और बाद में विभिन्न परंपराओं के आधार पर लिपिबद्ध किया गया। फलस्वरूप आजकल वाल्मीकि रामायण के तीन पाठ मिलते हैं–

(अ) **दाक्षिणात्य पाठ :** गुजराती प्रिंटिंग प्रेस (बम्बई) निर्णय सागर प्रेस (बम्बई) और दक्षिण के संस्करण।

(आ) **गौडीय पाठ :** गोरेसिया (पैरिस) और कलकत्ता सीरीज के संस्करण।

(इ) **पश्चिमोत्तरीय पाठ :** दयानन्द महाविद्यालय (लाहौर) का संस्करण, जो अब साधु आश्रम, होशियारपुर से प्राप्य है।

बड़ौदा के ओरियेन्टल इंस्टिट्यूट द्वारा रामायण का एक वैज्ञानिक संस्करण सन् 1960 में प्रारंभ हुआ था और अब पूरा हो गया। यह संस्करण उपर्युक्त तीन पाठों की प्राचीनतम हस्तलिपियों पर आधारित है।

दाक्षिणात्य पाठ अधिक मौलिक प्रतीत होता और गौडीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ से पर्याप्त समानता है। दाक्षिणात्य और गौडीय पाठों की तुलना करने पर पता चलता है कि प्रत्येक पाठ में श्लोकों की एक-तिहाई संख्या केवल एक ही पाठ में मिलती है। रामायण का प्रारंभिक मौखिक प्रचार इस विभिन्नता का मुख्य कारण है। फिर भी आधिकारिक कथावस्तु के दृष्टिकोण से तीनों पाठों की तुलना करने पर कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

एक अन्य कारण से वाल्मीकि द्वारा रचित आदि रामायण का मूल रूप निर्धारित करना असंभव-सा प्रतीत होता है। कुशीलवों को रामायण कंठस्थ था और जिनमें काव्य-कौशल था, वे अपने श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखकर लोकप्रिय अंश बढ़ाते थे और दूसरे शब्दों में दुहराते थे। इस प्रकार आदि रामायण का कलेवर बढ़ता रहा। इसके अतिरिक्त राम कौन थे, सीता कौन थी, उनका विवाह कब और किस प्रकार हुआ ? रावण कौन था ? रावण-वध के बाद राम-सीता का जीवन कैसा रहा ? उन्हें कौन संतान हुई ? ये सब अत्यंत स्वाभाविक प्रश्न थे। जनता की इस जिज्ञासा को संतुष्ट करने के लिए कुशीलवों द्वारा पहले बालकांड और बाद में उत्तरकांड की सृष्टि हुई।

महाभारत के वैज्ञानिक संस्करण के संपादक डा0 वी0एस0 सुकठणकर का अनुमान था कि हस्तलिपियों की अर्वाचीनता के कारण जो पाठ निर्धारित हो पाता है, वह लगभग दसवीं शताब्दी ई0 में प्रचलित महाभारत का स्वरूप है। जिन हस्तलिपियों पर बड़ौदा संस्करण आधारित है, वह महाभारत की हस्तलिपियों के समय से अधिक भिन्न नहीं है, अतः बड़ौदा संस्करण को हम दसवीं शताब्दी ई0 में प्रचलित रामायण का स्वरूप मान सकते हैं। बंबई संस्करण की श्लोक-संख्या 24049 है और बड़ौदा संस्करण की श्लोक संख्या-18766 है। दोनों में 5000 से भी अधिक श्लोकों का अंतर है।

तीसरी शताब्दी ई0 उत्तरार्ध के अभिधर्ममहाविभाषा नामक बौद्ध ग्रंथ में रामायण की चर्चा है। मूल भारतीय पाठ अप्राप्य है, किंतु वह चीनी अनुवाद में सुरक्षित है। इसमें बताया गया है कि रामायण की श्लोक-संख्या 12,000 है। पाठों की विभिन्नता और बढ़ती हुई श्लोक-संख्या को ध्यान में रखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि कुशीलव रामायण का कलेवर बढ़ाते रहे।

प्रायः सभी आलोचक मानते हैं कि प्रचलित रामायण के मुख्य प्रक्षेप (अर्थात् बालकांड, उत्तरकांड और अवतारवाद) द्वितीय शताब्दी ईसवी तक उसमें सम्मिलित किये गये थे।

कुशीलवों के माध्यम से आदि रामायण शीघ्र ही अत्यंत लोकप्रिय बना और यह लोकप्रियता अक्षुण्ण ही नहीं, वरन् शताब्दियों तक बढ़ती रही। रामकथा की लोकप्रियता का एक और प्रमाण बौद्ध तथा जैन साहित्य से मिलता है। बौद्धों ने ईसवी सन् की कई शताब्दियों पहले राम को बोधिसत्त्व मान लिया। जैनियों ने वाल्मीकि की रचना को मिथ्या कहकर राम-कथा को एक नये रूप में प्रस्तुत किया।

इस प्रकार रामकथा भारत की संस्कृति में इतनी व्यापक रूप से फैल गयी थी कि राम ने उस समय के तीन मुख्य धर्मों में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया था–ब्राह्मण धर्म में विष्णु के अवतार, बौद्धधर्म में बोधिसत्त्व और जैन धर्म में त्रिपिटक महापुरुषों में से आठवें बलदेव के रूप में।

('रामकथा और तुलसीदास' ले.-फ़ादर डॉ. कामिल बुल्के, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण-1981 से आभार सहित)

श्रीमती कुसुम चतुर्वेदी, प्रपौत्री आचार्य रामचंद्र शुक्ल का वाराणसी में अचानक हृदयाघात से देहांत हो गया। लेखिका, कवयित्री, 'नया मानदंड' की संपादिका तथा 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल की जीवनी' की सहलेखिका के निधन पर 'वर्तमान साहित्य' परिवार की हार्दिक श्रद्धांजलि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक 'अंजुम' की चार ग़ज़लें

1.

यहाँ रिमझिम यहाँ भूचाल अच्छा
हर इक ग़म का है इस्तक़बाल अच्छा
तुम्हारे रेशमी वादों से दिलबर
तुम्हारे हाथ का रूमाल अच्छा
जो बच्चा पूछता है क्या कहूँ मैं
लगा क्यों पंछियों को जाल अच्छा
सियासतदाँ के है पाँवों में चक्कर
कभी दिल्ली कभी भोपाल अच्छा
तुम्हारे शहर की बेबस नदी से
हमारे गाँव का ये ताल अच्छा
सदा बैरंग आते हैं लिफ़ाफे
वो लिखता है ख़तों में हाल अच्छा।

2.

मौसम के अनुकूल चले
वे भी हमको भूल चले
धब्बे मिट भी सकते थे
हम ही देकर तूल चले
उनको मिली कामयाबी
मेरे साथ उसूल चले
राजाजी को बेचैनी
कुछ उत्तर माकूल चले
काँटों के अभिनंदन को
हँसते-गाते फूल चले
वो खोया था और कहीं
उसके साथ फ़िज़ूल चले
मैं बादल बूँदों से भरा
मेरे आगे धूल चले
अच्छा था चुप ही रहते
जाते समय कबूल चले

3.

बिन तेरे अब खुशी रहेगी क्या?
ज़िंदगी-ज़िंदगी रहेगी क्या?
बस यही बेबसी रहेगी क्या?
ख़ामुशी-ख़ामुशी रहेगी क्या?
जब तलक ज़द में आएगा दरिया
तिश्नगी-तिश्नगी रहेगी क्या?
दूर मंज़िल है, राह मुश्किल है
अपनी ज़िंदादिली रहेगी क्या?
रहनुमाओ, तुम्हारी सोचों पर
गर्द यूँ ही जमी रहेगी क्या?
जब खुलेगी हमारी आँख 'अंजुम'
रोशनी-रोशनी रहेगी क्या?

4.

वो मुझको आँख भर कर देखता है
बड़ी हसरत से खंजर देखता है
तू जिसमें सिर्फ़ पत्थर देखता है
वहीं पे कोई ईश्वर देखता है
न कोई देख सकता है वहाँ तक
जहाँ तक एक शायर देखता है
तू जो भी कर रहा है बेखुदी में
समझ ले ये कि नटवर देखता है
उसे अपनों से यूँ नज़रें मिली हैं
वो सावन में भी पतझर देखता है
मैं पारस तो नहीं इन्सान ही हूँ
ज़माना है कि छूकर देखता है
घटाएँ देखकर खुश हो रहे सब
मगर होरी क्यों छप्पर देखता है
अगर कुछ भी नहीं है बीच अपने
वो फिर क्यों मुझको मुड़कर देखता है?

संपादक- अभिनव प्रयास, 615, ट्रक गेट, कासिम
अलीगढ़-202

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटक के बाद

सेराज ख़ान बातिश

किशोरी लाल कब से इस महानगर में रह रहा है, लोग नहीं जानते! बस उसकी दिलचस्प बातें, उसका व्यवहार और साहित्यक अभिरुचि ने सबका प्रिय बना दिया है उसे....वह मुफ़लिस है कलकत्ते की ज़बान में, यानी अकेला। उसके चेहरे पर संस्कार के धब्बे ज़रूर उभरे हुए नज़र आते हैं। शीतला माता, जिसे पढ़े-लिखे लोग चेचक कहते हैं, के प्रकोप से सुंदर मुख-मंडल वीतरागी हो गया है। फिर भी चेहरे पर प्रतिभा की आभा है, जो पचास-साठ के दशक के प्रसिद्ध फ़िल्मी अभिनेता मोती लाल के चेहरे पर हुआ करती थी.., या आज जो ओम पुरी सरीखे चरित्र नायकों के चेहरे पर है। शहरों की यह विशेषता होती है कि लोग अपनी जाति, वंश और संप्रदाय से नहीं, अपने पद, गुण और महत्त्वाकांक्षा से पहचाने जाते हैं। जब से ग्रामीण भुखमरी, बेरोज़गारी, जातीय असमानता, भेद-भाव, संसाधनहीनता से तंग आकर शहरों में बसने लगे, तब से लेकर आज तक शहरों का निरंतर विस्तार होता रहा है। जंगलों, पहाड़ों, नदी-तालाबों को काटता-पाटता हुआ शहर दिन-रात बढ़ता ही रहा है।

...अतः शहर दमित, दलित, परास्त और आहत लोगों का पनाहगाह है। डॉ० इकबाल के शब्दों में कहा जाए तो—'एक ही सफ़ में खड़े हो गये'... किशोरीलाल एक मँझा हुआ घड़ीसाज़ है। [illegible] घड़ियों को खोलकर उनका धड़कन देख लेता है। [illegible] पेचीदा वक़्त से बहके हुए समय [illegible] की [illegible] है। वह कहता है कि ग़ज़ल [illegible] कठिन घड़ीसाज़ी [illegible] की पहचान करना [illegible] के शेरों का वजन परखने जैसा ही है।

...गोकि अब घड़ीसाज़ी, रेडियो मैकेनिक की भाँति ही आकर्षणविहीन हुनर होकर रह गया है, इस इलेक्ट्रॉनिक घड़ियों के दौर में, फिर भी उसे अपने हुनर पर नाज़ है। वह कई बार बता चुका है कि बलरामपुर में उसकी घड़ी की दूकान थी। इसके अतिरिक्त वह कुछ नहीं बताता। यहाँ किसी घड़ी की दूकान पर वक़्त [illegible] है और [illegible]।

उम्र [illegible] नहीं, देश [illegible] आज़ादी से दस वर्ष छोटा है। उसकी भाषा अवधी मिश्रित उर्दू रूपी हिन्दी है। वह फ़ैज़ाबाद, जलालपुर, गोंडा, शाहजहाँपुर आदि के सभी उर्दू-हिन्दी के साहित्यकारों को जानता है।

'मानस' की पचासों चौपाइयाँ उसे याद हैं। उर्दू-फ़ारसी के सैकड़ों शेर उसकी जुबान पर गर्दिश करते रहते हैं।

किसी मुशायरे में यहाँ के साहित्यिक लोगों से उसकी पहचान हुई थी। उसने अपना नाम किशोरीलाल 'टांडवी' बताया था। शब्द टांडवी को सष्ट करते हुए उसने कहा था कि यह टांडा अयोध्या क्षेत्र का एक छोटा-सा शहर है, जिसके आस-पास गोंडा, बलरामपुर, फ़ैज़ाबाद, बस्ती, सुल्तानपुर, जलालपुर, आज़मगढ़ आदि हैं। यह सारा इलाका नवाब वाजिद अली शाह के ज़माने में अवध कहलाता था और रामायण काल में अयोध्या बलरामपुर में उसकी ससुराल थी और वह ससुराल में ही रह रहा था। वह ठहाका मारते हुए कहता—'टांडा और बलरामपुर की दूरी ब्रज और गोकुल जितनी ही है—आप कह सकते हैं कि मैं महाप्रेमी कृष्ण हूँ और—गोकुलरूपी टांडा तथा ब्रज रूपी बलरामपुर के बीच मेरी आत्मा भटकती रहती है। पर, टांडा से मेरा विशेष लगाव है... लेकिन क्या करूँ। ग़ालिब भी शायद मेरी तरह यातना को झेल रहे थे—तभी तो उन्होंने कहा था—'हम बयांबां में हैं और घर में बहार आयी है।'

किशोरी के तेवर बताते हैं कि वह किसी कारण अपने घर से रूठा हुआ है। कभी-कभी वह गोष्ठियों में होते हुए भी नहीं होता। वह चुप, अकेला, तन्हा हो जाता है। उसकी सभी कलाएँ, शौक, ठहाके, घड़ीसाज़ी उससे छिटक कर कहीं दूर जा गिरते हैं। उसकी आँखों में क्रोध-प्रतिशोध के काँटे चुभने लगते हैं.....।

...कई वर्ष हो गये थे, किशोरी यहाँ के परिवेश में घुल-मिल गया था, लेकिन वह उस छोटे से शहर को इतनी दूर रहकर भी नहीं भूल पाया था। पाकिस्तान के फाँसी दिये गये प्रधानमंत्री जुल्फ़िकार अली भुट्टो की भाँति, जिन्होंने सारा जीवन लरकाना के गाँव 'भट्ट' को अपने नाम से जोड़ रखा.... किशोरीलाल टांडवी ने भी टांडा को अपने साथ जोड़े रखा है। किशोरी बताता है कि भट्ट से ही भुट्टो है। और ये भट्ट कबीला अपने यहाँ महेश भट्ट जैसे उपनामधारकों के ही समानांतर हैं। इन्हें ही हम यू.पी. वाले भाट कहते हैं। ये बड़े तेज, वाचाल और कुशाग्रबुद्धि होते हैं। कादंबरी के रचयिता संस्कृत के कवि बाण भट्ट भी इसी कबीले के थे।

एक इंग्लिश लेखक स्टेनली वॉल्पर्ट ने लिखा है कि जुल्फ़िकार अली भुट्टो के दादा और पिता दोनों की हत्या कबीलाई जंग में हुई थी और एक आश्चर्य यह भी है कि जुल्फ़िकार अली भुट्टो की माँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यानी बेनज़ीर की दादी एक राजस्थानी हिन्दू थीं। राजस्थान का वह हिस्सा, जहाँ से पाकिस्तान की सीमा दिखायी पड़ती है, वह वहीं की थीं शायद।

पहली ही मुलाक़ात में अपनी ओजस्विता और हाजिरजवाबी से लोगों का दिल जीत लेने वाले किशोरी की इच्छा थी कि ज़ुल्फ़िकार अली भुट्टो की भाँति वह भी अपने उस छोटे से शहर टांडा का नाम दुनियाँ में रोशन करें।

इस मुस्लिमबहुल्य क्षेत्र में वह अपने ढंग और अपनी रुचि के अनुसार रहता है। उसे किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती। बस, माँस को देखकर थोड़ा बिदकता है। 'आदम होटल' बस्ती के साहित्यप्रेमियों का कॉफ़ीहाउस है। दूर-दूर से लोग आते हैं। घंटों बैठते हैं। तरह-तरह की बहसें होती हैं, चर्चा होती हैं। नौसिखियों की शायरी की इसलाह होती है। दबीर उसी भीड़ का एक उभरता हुआ नाटककार है। उसके कई ड्रामे छोटे-छोटे मंचो पर खेले जा चुके हैं। उसके लेखन में बड़ा पैनापन और दम है। उसके सब्जेक्ट में बड़ी गहराई होती है। दबीर अदबनवाज़ी के नाम पर केवल शायरी करने के सख़्त ख़िलाफ़ है। उसका मानना है कि मुशायरावाज़ी ने उर्दू का बड़ा नुकसान किया है।... मुशायरा तो अब उर्दू ज़बान का मीलाद (कीर्तन) हो गया है।

किशोरी, दबीर से बड़ा प्रभावित है... उसके आने से ही उर्दू के साहित्यिक मित्रों में नाटकों के प्रति लगाव बढ़ा है, नहीं तो अदबनवाज़ी के नाम पर केवल मुशायरा ही हुआ करता था। वैसे दबीर के कई नाटक खेले जा चुके हैं। वह ग़ज़लों से अधिक प्रभावशाली नाटक लिखता है, पर मुशायरे की लोकप्रियता के चलते कुछ कामचलाऊ शेर कह लेता हैं

...इसके पहले भी किशोरी ने दबीर के कई नाटक देखे हैं। एक में तो उसने काम भी किया है....

दिसंबर का महीना आने ही वाला है। मार्गशीर्ष गुज़र चुका है, पौष की शुरूआत है, किंतु प्रेमचंद की पूस की रात की ठंड नहीं पड़ रही है।

...हाँ, राजनैतिक पार्टियों में हलचल है। अपने-अपने तौर से दिसंबर के ध्वंस को कैश करने की होड़ लगी है... एक दिन पार्क सर्कस से लौटते हुए किशोरी ने देखा कि कोई चुगदनुमा सांप्रदायिक पार्षद बंगबंधु शेख मुजीबुर्रहमान सरणी में धरने पर बैठा हुआ है। उसके कान में जैसे एक साथ कई घड़ियों के अलार्म बज उठे.....

.....मुसलमानों में हलचल है। विरोधी दलों को फिर एक मुद्दा मिल गया है। एक इस्लामी संस्था द्वारा शहीद हुई विवादित मस्जिद की गुंबदों की तस्वीर में आँखें उकेरकर पोस्टर दीवारों पर चिपकाया जा रहा है। इस मूक प्रदर्शन से वे आहत समाज के ग़म-दुख को दर्शाना चाह रहे हैं, उनमें प्रतिशोध का संचार करना चाह रहे हैं। किंतु, दृष्टिवान समाज पर इसका कोई प्रभाव नहीं है।

...लेकिन संसद में फिर बहस है। उन नेताओं पर एक बार फिर आरोप-प्रत्यारोप का दौर चल पडा है, जिन्होंने गुंबदों पर चढ़कर आक्रामक भीड़ को उकसाया था। मामले अदालत में थे। इस सिलसिले में कई लोगों की पेशी हो चुकी थी। सारी अर्जियाँ क़ानून के ताड़ पर औंधी लटकी पड़ी थीं और मंत्री बने नेतागण मूँछों और ठुड्डियों में मुस्करा रहे थे।

...इस बीच देश में और कोई तरह की घटनाएँ घटी थीं नेतृत्व-परिवर्तन हुआ था। भूकंप और सुपर साइक्लोन से लोग कीड़े-मकोड़ों की तरह मर गये थे। फ़िल्म अभिनेता दिलीप कुमार से राष्ट्रवादी होने के प्रमाण माँगे जा रहे थे। लेकिन, किशोरीलाल तब भी मस्त था और अब भी मस्त है। अपनी घड़ीसाज़ी और साहित्यिक गतिविधियों में तब भी व्यस्त था और अब भी है।

...इस विशेष अवसर के लिए दबीर भी कुछ नया लिखना चाह रहा है। कुछ ऐसा लिखना चाह रहा है, जिससे उसकी प्रसिद्धि राष्ट्र स्तर की हो जाए...

वह घर-परिवार से संपन्न है, चिंतामुक्त है, वह निश्चित ही कुछ बेहतर लिख सकता है, अपनी क्षमता का चमत्कार दिखा सकता है।

...तो दबीर को अपने नाटक का थीम मिल गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्लियों उछल रहा था, जैसे घंटों इंतज़ार करते किसी मछलीमार शौकीन के काँटे में बड़ी मछली फँस गयी हो। उसके चेहरे पर विजय की आभा झलक रही थी।

.....उस दिन आदम होटल में उसने सबको फिरनी खिलायी थी। उसके उत्साह को देखकर कोई भी कह सकता था कि उसमें अपार आत्मविश्वास है उसे अपने लेखन पर पूरा भरोसा है। ख़ासतौर पर इस जन्म लेते हुए नाटक के प्रति उसमें अपार उमंग थी। उसने इतराते हुए कहा था—"यार, मास्टरपीस होगा मास्टरपीस। देखना, धमाका हो जाएगा। बस, लिख लेने दो इस नाटक को फिर देखना..."

...दबीर ने नाटक लिख लिया था। बहुत ज़बरदस्त नाटक उतरा था। आदम होटल के टेबिल पर मित्रों के बीच दबीर अपने गंभीर अंदाज़ में नाटक 'ध्वंस' पढ़ रहा था, मानो किरदार उसकी नज़रों के सामने घूम रहे हों। जैसे वह सारे घटनाचक्र का प्रत्यक्षदर्शी हो। प्रभावशाली, कसे हुए, दोहरे अर्थों से पूर्ण संवाद, अभिधा-लक्षणा के कौशलपूर्ण प्रयोग नाटक में चार चाँद लगा रहे थे।

"सच में नाटकीय प्रस्तुति यदि सही ढंग से हो पायी, तो फिर तुम सफ़दर हाशमी के 'हल्ला बोल' से भी अधिक चर्चित हो जाओगे, दबीर..." बशर ने टोस्ट कुतरते हुए कहा।

लेकिन, किशोरीलाल चुप रहा। उसकी आँखों में कई तरह के भाव तैर रहे थे। जैसे वह कहीं अंदर आहत हो रहा हो।

दबीर को याद आया कि किशोरीलाल भी उनके बीच है और इस प्रकार ध्वंस को उसके सामने प्रस्तुत नहीं करना चाहिए था, हो सकता है उसे कहीं कुछ खराब लगा हो।

दबीर कुछ झेंपते हुए बोला—"यार किशोरी, यदि तुम्हें कहीं इस नाटक की संरचना पर कोई एतराज़ है, तो मैं इसमें संशोधन करने को तैयार हूँ...वैसे तो हम सभी वैचारिक स्तर पर समान हैं, किसी में किसी के प्रति कोई ग़लत धारणा नहीं है। और न ही किसी को पछाड़ने की मंशा है, मेरी। मैं समझता था कि तुम हमारी मानसिकता से कहीं अलग नहीं हो..."

किशोरीलाल उसी प्रकार गंभीर बना सुनता रहा, जैसे वह बहुत दुखी और मर्माहत हो।

दबीर अपनी इस उत्तम कृति के प्रति किशोरी की उदासीनता से दुखी हुआ..."मुझे अफ़सोस है कि इससे तुम्हारे जज़्बात मजरूह हुए हैं... वह लिटरेचर क्या, जिससे किसी की संवदेना आहत हो, पीड़ित हो। लो इसे मैं तुम्हारे सामने फाड़ डालता हूँ...

किशोरी ने लपककर दबीर की कलाई पकड़ ली... "नहीं इसे मत फाड़ो, मुझे कोई ऐतराज़ नहीं है... मैं इतने दिनों से तुम्हारे बीच हूँ, क्या मैंने कभी ऐसा महसूस होने दिया कि मैं कोई ग़ैर हूँ?.. नहीं मेरे दोस्त, यह नाटक बहुत उत्तम है। इसकी भाषा कितनी मज़बूत है, कितना प्रवाह है इसमें। सच मानो तो यह नुक्कड़ नाटक ध्वंस अपने समय का दस्तावेज़ है... हाँ मैं थोड़ा भावुक ज़रूर हो गया था... ख़ैर छोड़ो इस बात को... मैं इसे खेलूँगा... यह चरित्र शायद मेरे लिए ही लिखा है तुमने..."

बोलते-बोलते किशोरी का गला रुँध-सा गया। उसकी आँखें सजल हो गयीं...।

...अदालत का दृश्य है... जज के रूप में दबीर एक तरफ़ खड़ा है। कुछ युवक उसके सामने हाथ बाँधे खड़े हैं। किशोरी कटघरे में खड़ा फ़रियाद कर रहा है—"हुजूर, मैं लुट गया। मेरे बच्चे, मेरी पत्नी—सब मारे गये। मेरी पत्नी के साथ बलात्कार किया गया। बच्चों को बड़ी बेरहमी के साथ दंगाइयों ने मार डाला... हुजूर, मैं दशरथ पुत्र श्री रामचंद्र को इस के लिए दोषी समझता हूँ। अयोध्यावासी श्री राम के कारण ही आज मैं बर्बाद हो गया हूँ... सरकार, मेरी कोई नहीं सुनता। सब मुझ पर हँसते हैं, पागल समझते हैं... पर हुजूर, मैं अदालत से जानना चाहता हूँ कि अयोध्यावासी दशरथ पुत्र श्री राम पर क्यों नहीं मुकद्दमा चलाया जा सकता? क्यों नहीं उनके ख़िलाफ़ कोई कार्यवाही हो सकती? यदि उनका अस्तित्व है, वे आज भी आस्था के प्रतीक हैं... तो फिर वे हर नीति-अनीति के ज़िम्मेवार हैं... हुजूर मैं इन्साफ़ चाहता हूँ... मैं उनके ही निर्माण हेतु ध्वंस के लिए गया था और दंगाइयों ने मेरा घर फूँक दिया, मेरी पत्नी की इज्जत लूट ली। मेरे बच्चों को बेरहमी से मार डाला..."

संवाद बोलते-बोलते किशोरी रोने लगा था। उसका अंग-अंग क्रोध से काँप रहा था। वह इस प्रकार अपने चरित्र के अभिनय और संवाद में डूब गया था कि दर्शक देखते ही रह गये। उसके इस जीवंत अभिनय पर ऐसे कई मिलेनियम स्टार फीके पड़ गये थे, जो अपनी लयहीन, छंदहीन उछल-कूद से आज नोट छापने की मशीन हो गये हैं...।

नुक्कड़ पर खड़े नाटक देखते लोगों में सन्नाटा छा गया। इस स्तब्धता और ख़ामोशी में जज का क़ानूनी सांकेतिक हथौड़ा कई बार हवा में उछल चुका था। नाटक समाप्त हो गया था। तालियों से बाज़ार का वह नुक्कड गूँज उठा था।

...पर किशोरी ने पागलों की तरह चीख़ते हुए अपना गरेबान चाक कर डाला—"देखिए माई-बाप, हत्यारों ने मुझे भी नहीं छोड़ा... देखिए हुजूर, कितने ज़ख़्म हैं मेरे सीने पर..."

किशोरी पागलों की तरह उसी प्रकार चीखता रहा—"हे राम, मैं अपने परिवार को तुम्हारे ही हवाले कर गया था....हे राम, तुम मुजरिम हो, विश्वासघाती हो। तुम इतिहास हो, ढोंग हो, मिथ्या हो, कल्पना हो....."

किशोरी पछाड़ें खाता हुआ धराशायी हो गया। जैसे वर्षों से उसके सीने में दबा कोई लावा फूटकर बह गया हो...।

3-बी, बंगाली शाह वारसी लेन
दूसरा तल, फ्लैट नं. 4
खिदिरपुर, कोलकाता-700023

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घनी होती झाड़ियाँ

रूपलाल बेदिया

सड़क सुनसान थी। शाम गहराती जा रही थी। इस वक़्त सड़क पर आवागमन इक्का-दुक्का ही होता था। यों भी शहर के कोलाहल से दूर उस सड़क पर यातायात कम ही होता था। सड़क के दोनों ओर ऊँची-ऊँची घनी झाड़ियाँ फैली हुई थीं। रोशनी की व्यवस्था न होने के चलते शाम ढलते ही इन झाड़ियों के बीच से गुज़रती हुई सड़क पर शरीर में झुरझुरी पैदा कर देने वाला अँधेरा गहरा जाता था। परंतु, उन दोनों को इस अँधेरे, घनी झाड़ियों की कोई परवाह नहीं थी। उनके लिए वह समय बेहद सुखद था। उन दोनों को अपने सामने एक दूसरे के अलावा कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। वहाँ अँधेरा था, कार की रोशनी से सामने की चमचमाती सड़क थी, वह था, वह थी और सुख की ख़ुशबू से भरपूर उनकी अपनी दुनिया थी।

वे किसी ख़ास उद्देश्य से सफ़र पर नहीं निकले थे, पर उनकी यात्रा बिल्कुल निरुद्देश्य भी नहीं थी। दरअसल, शहर के शोरगुल, गाड़ियों की चिल्ल-पों, आदमियों के रेले से दूर सुकून की तलाश में किसी निर्जन स्थान की ओर वे कभी-कभार निकल पड़ते थे। घंटे दो घंटे धीमी रफ़्तार से सफ़र कर वापस आ जाते थे। मन को तरोताज़ा करने का इससे अच्छा साधन उनकी नज़र में और कोई नहीं था। वे पार्टियों एवं क्लबों में जा-जाकर ऊब चुके थे।

आगे सड़क की अवस्था थोड़ी जर्जर थी। हिचकोले खाते हुए उनकी कार आगे की ओर सरक रही थी। इन हिचकोलों से भी उन्हें ख़ुशी ही मिल रही थी। अगल-बगल बैठे वे दोनों एक-दूसरे से टकरा पड़ते थे और उनकी निश्छल हँसी फूट पड़ती थी। ऐसी हँसी वे ऐसे ही सफ़र के दौरान् हँसते थे, वरना वे तो नकली मुस्कुराहट के आदी हो चुके थे। एक तो शहर की ज़िंदगी, जिसमें स्वाभाविक हँसी का नितांत अभाव पाया जाता है, दूसरे उनका पेशा ही ऐसा था कि ज़बरदस्ती लोगों के सामने मुस्कुराना पड़ता था।

किसी शिशु की चीख़ ने उन्हें चौंका दिया। ऐसे सुनसान एवं निर्जन स्थान पर शाम के इस गहराते अँधेरे में शिशु की चीख़! डॉक्टर संपत साहु ने झटके के साथ कार रोक दी। दोनों ने कान लगाकर दिशा और वास्तविकता का जायज़ा लिया। वह सचमुच बच्चे की ही चीख़ थी, जो बगल की झाड़ियों से आ रही थी। सड़क के पार झाड़ियों के बीच कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था। वे टॉर्च लेकर झाड़ियों के बीच घुसे। उनके सारे शरीर में सिहरन दौड़ गयी। उन्होंने टॉर्च की रोशनी में देखा—एक सद्यःजात शिशु बुरी तरह तड़प रहा था। उसकी देह पर ख़ून के धब्बे कुछ स्याह हो चले थे, जो साबित करते थे कि वह बच्चा कुछ ही देर पहले इस धरा पर आया है। उसके सारे शरीर पर चीटियाँ रेंग रही थीं। लतिका के मुँह से तो एकबारगी चीख़ निकल गयी। प्रसूति एवं स्त्री रोग विशेषज्ञ डॉक्टर लतिका गुप्ता ने भले ही स्वयं किसी बच्चे को जन्म न दिया हो, लेकिन उसने कितने ही बच्चे जने थे, परंतु कभी इस तरह विचलित नहीं हुई थी। वे कुछ देर निर्वाक् व किंकर्तव्यविमूढ़-से बच्चे को देखते रहे, फिर दिल के डॉक्टर संपत साहु के दिल में कठोरता उभर आयी, जिसकी छाप उसके चहेरे पर साफ़-साफ़ देखी जा सकती थी। वह नाक-भौं सिकोड़ते हुए बड़बड़ाया, "कैसे बेरहम माँ-बाप होते हैं! इन सालों को पालने-पोसने की ताक़त नहीं होती है, तो पैदा क्यों करते हैं!"

लतिका के पास गर्भपात के कई मामले आते रहते थे, जिनमें से कुछ पति-पत्नी होते थे, तो कुछ ऐसे होते थे, जो सामाजिक स्वीकृति प्राप्त पति-पत्नी नहीं होते थे। वे अलग-अलग कई कारणों से गर्भपात कराने आते थे। उसके पेशे की ज़िंदगी में कई ऐसे मामले भी आये थे, जिनका गर्भकाल अधिक बीत जाने के कारण गर्भपात करना संभव नहीं हो पाता था। लतिका ने अनुमान लगाया कि संभवतः यह ऐसा ही अवांछित बच्चा होगा। एक पल को वह अपराध-बोध से ग्रस्त हो गयी कि कहीं यह उसी के द्वारा गर्भपात करने से इनक़ार करने का परिणाम तो नहीं। वह बोली, "शायद उनकी कोई मजबूरी रही होगी।"

संपत ने असहमति जतायी, "ऐसी कोई मजबूरी नहीं हो सकती। कोई मजबूरी थी, तो पैदा ही नहीं करना चाहिए था। असल में, ये दुनिया ही बिगड़ गयी है, दुनिया के लोग बिगड़ गये हैं। अरे, ऐसे बेरहम तो पशु-पक्षी भी नहीं होते।" पुनः जैसे वह अपने निष्कर्ष पर आ पहुँचा, "चलो, चलते हैं; नहीं तो किसी ने देख लिया, तो सारी तोहमत हम पर ही आएगी।"

लतिका की आँखों में प्रश्न तैर गया, "और ये बच्चा?"

इस प्रश्न का जवाब न संपत के पास था, न स्वयं लतिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास।

उस रात उनकी नींद ग़ायब हो गयी। सफ़र का सुख पल भर में छू-मंतर हो गया था। मन पर जैसे भारी बोझ लद गया था। काफ़ी रात गये तक वे उस बच्चे के बारे में अपने-अपने ढंग से सोचते रहे, स्थितियों-परिस्थितियों का अंदाज़ा लगाते रहे। किसी ने कुछ नहीं कहा। अंततः लतिका की पलकों में नींद उतर आयी, लेकिन संपत अभी भी जाग रहा था। उसकी आँखों के सामने उस बच्चे का लोमहर्षक दृश्य अब भी मौजूद था। उसके कानों से अब भी उसकी कारुणिक चीख़ टकरा रही थी। उसके दिमाग़ के अतल सागर में प्रश्नों की लहरें उठती रहीं। वह बच्चा कौन है? उसके माँ-बाप कौन हैं? क्यों उसे उन घनी झाड़ियों के बीच फेंक दिया गया? लतिका कहती है, कोई मजबूरी रही होगी। क्या सचमुच कोई मजबूरी रही होगी? किंतु ऐसी कौन-सी मजबूरी हो सकती है? फ़ीमेल बेबी की बात तो समझ में आती है, लेकिन ये तो मेल है। मेल बेबी के जन्म पर तो लोग ख़ुशियाँ मनाते हैं, मिठाइयाँ बाँटते हैं, क्योंकि उनके हिसाब से उनकी सामाजिक हैसियत बढ़ जाती है। वह बिना परिश्रम के मनचाहे पैसा कमाने का ज़रिया बन जाता है। फिर इस बच्चे को क्यों फेंक दिया गया? कहीं यह बच्चा अवैध तो नहीं? लोग इस वैध- अवैध के चक्कर में कब तक मासूमों का गला घोंटते रहेंगे?

उसका ध्यान उस बच्चे की परिणति पर गया। क्या होगा उस बच्चे का? क्या किसी रहमदिल का आश्रय उसे मिल पाएगा? क्या कोई उसे ले जाकर अपने सीने से लगाकर पालेगा, पढ़ाएगा-लिखाएगा, बड़ा करेगा? लेकिन इस रात के अँधेरे में उस सुनसान जगह पर कौन और क्यों जाएगा? तब क्या वह यों ही तड़प-तड़पकर प्राण त्याग देगा? क्या चींटियाँ उसे चट कर जाएँगी? सड़क के किनारे तीन-चार कुत्ते उसी ओर दौड़े चले जा रहे थे। कहीं वे उसे नोंच तो नहीं खाएँगे?

उसे लगा, बिस्तर पर घनी झाड़ियाँ उग आयी हैं और न जाने कहाँ से छोटी-छोटी लाल चींटियाँ आकर उसके सारे शरीर पर फैल गयी हैं। वे उसके माँस को काट-काटकर खाने लगी हैं। वह बुरी तरह छटपटा रहा है, तड़प रहा है। उठकर भागना चाहता है, पर उसकी ताक़त ख़त्म हो गयी है। बिस्तर के चारों ओर कुत्ते भौंक रहे हैं।

वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। उसकी साँस धौंकनी की तरह चलने लगी। उसने उठकर पानी पिया और लतिका पर निगाह डाली। वह नींद में सो रही थी। उसकी छाती ऊपर-नीचे हो रही थी। आज उसे लतिका के उरोजों का उस तरह उठना-बैठना बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था। जिन उरोजों से वह नित्य खेलता रहता था, सुंदर से सुंदर वस्तु की उपमा देता रहता था, आज वे केवल माँस के लोथड़े लग रहे थे, जिन्हें चींटियाँ या कुत्ते पल भर में चट कर सकते हैं। उसने कुछ क्षण अपनी आँखें बंद कर लीं। फिर अपने सिर को झटका और आहिस्ते से दरवाज़ा खोल बाहर आया और कार स्टार्ट कर उसी सुनसान राह पर निकल पड़ा।

उसका हृदय धक्क से होकर रह गया। वह शिशु वहाँ मौजूद नहीं था। ज़मीन पर ख़ून के कुछ छोटे-छोटे कतरे अवश्य थे, जो अब लगभग सूख चुके थे। कुछ चींटियाँ अब भी उन सूखे कतरों पर उनके एक-एक कण को निगल जाने के लिए जी-जान से लगी हुई थीं। तो क्या चींटियाँ उस नवजात को चट कर गयीं? परंतु कुछ तो अवशेष बचता! कहीं कुत्तों ने तो नहीं नोंच डाला! संपत ने ध्यान से उस स्थान का निरीक्षण किया। ऐसा भी नहीं लगता था कि उस जगह पर किसी मांसाहारी जानवर ने किसी अन्य जीव का भक्षण किया हो। ऐसा तो नहीं कि कुत्ते उसे मुँह में दबाकर कहीं और ले भागे?

उस घनघोर अँधेरी रात में वैसी सुनसान जगह पर किसी सुहृद के पहुँचकर उसे ममता के आँचल में छिपा ले जाने के बारे में सोचना अपने आप को दिलासा देने से ज़्यादा कुछ नहीं था। उसके पूरे शरीर में रोमांच हो आया। हाथ-पाँवों में जैसे जान ही नहीं बची थी। मन-मस्तिष्क सुन्न पड़ता-सा लगने लगा। वह वहीं धूल-धूसरित ज़मीन पर बैठ गया।

सहसा उसकी माँ प्रकट हुई। उसने संपत को पुकारा, "बेटा संपू, क्या हुआ? क्यों इस वक़्त यहाँ बैठा है?... हाँ, मैं। मुझसे तेरी यह दशा देखी नहीं गयी, इसीलिए चली आयी।.. हाँ, मुझे मालूम है कि यहाँ एक बच्चा था, पर अब नहीं है। बेटा, तुम्हें समझना चाहिए कि किसी के लिए किसी की ज़िंदगी हमेशा के लिए रुकी नहीं रहती। वह अपनी रफ़्तार से चलती रहती है और जब चलने में अशक्त हो जाती है, तो वह अपने को प्रकृति में विलीन कर लेती है।.... हाँ-हाँ, चींटियाँ, कुत्ते, साँप, चूहे, पेड़- पौधे सभी प्रकृति का ही हिस्सा हैं। देखो, इन झाड़ियों को देखो। वे भी तुमसे कुछ कहना चाह रही हैं।"

संपत ने अपनी बोझिल पलकें उठाकर उन झाड़ियों को देखा। मंद-मंद चल रही हवा के झोंकों से वे झूम रही थीं। उनका उस तरह झूमना उसे भीतर तक कचोट गया। उसे लगा जैसे ये झाड़ियाँ उसका उपहास करते हुए कह रही हैं, "क्यों डॉक्टर, तुम तो हृदयरोग विशेषज्ञ हो, दिल के डॉक्टर। दूसरे के हृदय का इलाज करते-करते तुम्हारा हृदय कब रुग्ण हो गया, तुम्हें ख़ुद पता नहीं! कैसे डॉक्टर हो! वह बच्चा तो नियति को प्राप्त हो चुका। जब उसे तुम्हारी ममता की, करुणा की, वत्सलता की आवश्यकता थी, तब तो मुँह मोड़कर चले गये। सचमुच इन्सान कितना गिर गया है!"

उसकी माँ ने आदेश दिया, "उठो और अपने घर चले जाओ। इस सुनसान जगह पर अकेले रहना ठीक नहीं। कौन जाने कहाँ से साँप-बिच्छू निकलकर डस ले। वैसे भी वह मासूम तो अब यहाँ है नहीं, इसलिए पश्चाताप करने का क्या मतलब?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का बरखा जब कृषि सुखानी।''

माँ अदृश्य हो गयीं। संपत चिल्ला उठा, ''माँ...!'' किंतु वहाँ कोई नहीं था। केवल झाड़ियाँ उस पर हँस रही थीं।

असमान में उमड़-घुमड़ रहे बादलों ने गर्जना शुरू कर दी। देखते-देखते बौछारें पड़ने लगीं। वह हताश-सा बैठा-बैठा भीगता रहा और बारिश के संग-संग न जाने क्यों उसकी आँखें भी बरसती रहीं।

घंटा भर बरसने के बाद बारिश थम गयी। अब संपत को ठंडक महसूस होने लगी। उसने पुनः एक नज़र उस स्थान को देखा जहाँ बच्चा तड़प रहा था। अब उसके रहे-सहे निशान भी मिट चुके थे। वह भारी क़दमों से चलकर सड़क पर आया, कार स्टार्ट की और वापस चला आया।

रात के कुछ ही घंटे बाक़ी थे। वह चाह रहा था कि थोड़ा आराम कर ले, लेकिन उसकी नींद जैसे और दूर भाग गयी थी। लेटे-लेटे विचारों में खोया रहा... मेरे साथ यह घटना हुई होती, मेरे माता-पिता ने भी इसी तरह जन्म लेते ही किन्हीं झाड़ियों के बीच फेंक दिया होता, तो क्या होता? क्या मेरे जीवन की साँसें अब भी चल रही होतीं? क्या तब भी मैं डॉक्टर संपत साहु, हार्ट स्पेशलिस्ट होता? क्या कारण रहा होगा कि मुझे नहीं फेंका गया? जन्म देने और पाल-पोसकर बड़ा करने, योग्य बनाने के पीछे माता-पिता का क्या उद्देश्य होता है? क्या केवल ममता और स्नेहवश ऐसा करते हैं या इसके पीछे उनका कोई स्वार्थ होता है?... सोचने-समझने की शक्ति जैसे समाप्त होती जा रही थी। उसे कोई रास्ता नहीं दिखायी दे रहा था। बस, ले-देकर उस बच्चे और अपनी माँ की ही तस्वीर उभरती थी। माँ कहाँ हैं? यह प्रश्न उसे लगातार परेशान करने लगा।

0 0 0

संपत के पिता श्यामल साहु छोटे-से गाँव में एक किसान थे। खेती-किसानी के अलावा आस-पास के साप्ताहिक हाटों में चाय-पकौड़ी की दूकान लगाया करते थे। आमदनी इतनी कि किसी तरह निर्वाह हो जाता था। उनकी ज़िंदगी सामान्य गति से चल रही थी। न बहुत संपन्नता थी और न ही बहुत ज़्यादा अभाव।

सावन की झरती रात थी। श्यामल साहु के पिता यानी संपत के दादा जी डायरिया के शिकार हो गये। गाँव में कोई डॉक्टर नहीं था। उस पर झरझर बरसते सावन की रात। कोई उपाय नहीं था, सिवाय सुबह होने के इंतज़ार के। परंतु, नियति को कुछ और ही मंजूर था। वह सुबह नहीं आयी, जिसके उजाले में रोगी को इलाज के लिए शहर ले जाया जाता। रात आठ बजे शुरू हुए डायरिया के प्रकोप ने तीन बजे रात्रि में उनकी आख़िरी साँस छीन ली। इस घटना ने श्यामल साहु को भीतर तक हिला दिया था। इसी घटना ने उन्हें प्रेरित किया कि जो भी करना पड़े, वे अपने बेटे को डॉक्टर बनाएँगे। इसके लिए उन्होंने तभी से एक-एक पैसा जोड़ना शुरू कर दिया।

समय बीतता गया और संपत ने मेडिकल की प्रवेश परीक्षा पास कर ली। श्यामल साहु ख़ुशी से झूम उठे। उन्हें लगा मानो उनका बेटा डॉक्टर बन चुका है। वह गाँव में दीन-दुखियों का इलाज करेगा। अब गाँव में इलाज के अभाव में कोई अकस्मात व असमय मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा, परंतु अगले ही पल उनकी ख़ुशी धूमिल होती सी प्रतीत होने लगी। डॉक्टरी पढ़ाई का ख़र्च सुनकर उनका माथा चकराने लगा। अब तक वे कई खेत गिरवी रख चुके थे। संपत की माँ के कुछ पुराने, प्रयोग में न लाये जाने वाले गहने भी बिक चुके थे। ऐसे में डॉक्टरी पढ़ाने के लिए भारी-भरकम रक़म का जुगाड़ कहाँ से हो सकेगा। उन्होंने अनुमान लगाया कि बचे हुए सारे खेतों को बेच देने पर भी आधी रक़म भी नही निकल पाएगी। इस किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति से उन्हें संपत ने ही निकाला। बैंक से लोन का सहारा लेकर संपत ने अपने पिता के सपने को साकार करने लिए मेडिकल कॉलेज में दाख़िला ले लिया।

संपत पूरे मनोयोग से पढ़ाई में जुट गया। यदा-कदा उसकी चिट्ठी अपने माँ-बाप के नाम आती रहती थी। पिछली चिट्ठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लिखा था, "आप लोग चिंता न करें। मैं ठीक हूँ और मेरी पढ़ाई अच्छी तरह चल रही है। डेढ़ साल बाद मैं पूरा डॉक्टर बन जाऊँगा...।"

खुशी से उनके पाँव ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे। गाँव वाले भी कम खुश नहीं थे। उन्हें भरोसा था कि अपने ही गाँव का बेटा डॉक्टर बनकर इसी गाँव में आएगा, तो सबका भला होगा। सभी चाहते थे कि जल्दी से जल्दी उसकी पढ़ाई पूरी हो जाए।

क़रीब साल भर संपत की कोई चिट्ठी नहीं आयी। उसके माता-पिता के चेहरे पर चिंता की लकीरें साफ़ झलकने लगी थीं। कहीं उसकी तबीयत तो ख़राब नहीं हो गयी! या वह किसी बुरे व्यसन में तो नहीं फँस गया? गाँव के ही आलोक साहु ने एक बार कहा था, "श्यामल भैया, बबुआ को डॉक्टरी पढ़ने शहर तो भेज दिया, लेकिन वो पढ़कर वापस गाँव आएगा ही, इसकी क्या गारंटी है!" इस पर श्यामल ने नाराज़गी प्रकट की थी, "देखो आलोक, ऐसी अशुभ बातें मत करो। मुझे अपने बेटे पर पूरा भरोसा है। वह ज़रूर आएगा और हम सबका इलाज करेगा।"

कहीं आलोक साहु की बातें सच तो नहीं हो जाएँगी? संपत शहरी चाल-ढाल में ढलकर शहर का ही होकर तो नहीं रह जाएगा? वह कोई ख़बर क्यों नहीं भेज रहा?... और इसी वक़्त उसकी चिट्ठी आ गयी। सारे गाँव में बात हवा की तरह फैल गयी। कई लोग भागे-भागे श्यामल साहु के घर आये। बड़ी उत्सुकतापूर्वक लिफ़ाफ़ा खोला गया। श्यामल साहु एवं उनकी पत्नी को गहरा धक्का लगा। गाँव वाले हक्का-बक्का होकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। संपत ने सहपाठिनी लतिका गुप्ता से विवाह कर लिया था। श्यामल साहु एवं केतकी देवी का सपना मानो चकनाचूर हो गया। संपत ने शादी कर ली और उन्हें ख़बर तक नहीं की! न जाने किस चुड़ैल के फेर में पड़ गया। उन्हें लगा, उनका बेटा अब उनके हाथ से निकल गया है।

वे दोनों एक तरह से टूट गये थे। उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि उनका बेटा इतना ग़ैर-ज़िम्मेदार निकलेगा। महीनों वे इसी सोच में डूबे रहे कि आख़िर उन्होंने ऐसा कौन-सा कुकर्म किया था कि यह दिन देखना पड़ा।

बहरहाल, धीरे-धीरे उनकी ज़िंदगी पुनः पटरी पर रेंगने लगी। उन्होंने मान लिया था कि बुढ़ापे में उन्हें बेटे-बहू के बिना ही जीवन गुज़ारना होगा।

उधर संपत की पढ़ाई पूरी हो गयी और सरकारी नौकरी में आ गया। अपना निजी क्लीनिक भी खोल लिया। वह दिन में नौकरी करता और सुबह-शाम अपनी प्रैक्टिस करता। अस्पताल में आने वाले रोगियों को वह बिना जाँचे-परखे ही दवाइयाँ लिख देता था। मरीज़ सरकारी दवाइयाँ खाते, ठीक नहीं होते, तो पुनः डॉक्टर संपत के पास आते। वह उन्हें बड़े ही सधे हुए अंदाज़ में समझाने में सफल हो जाता कि दवाइयाँ विभाग द्वारा ख़रीदी जाती हैं। अब काम नहीं करतीं, तो वह क्या कर सकता है। उन्हें अच्छे से इलाज कराना है, तो उनके क्लीनिक पर आ जाएँ। क्लीनिक में आने वाले मरीज़ों की वह पूरी तरह जाँच करता और दवाइयाँ नामित दवाखानों से ही लेने की सलाह देता। फ़ीस के रूप में मोटी रक़म लेता। दवाई की दुकानों से भी उसे बँधी-बँधायी राशि आ जाती। वह जमकर प्रैक्टिस भी करता और सरकार की तरफ़ से नॉन-प्रैक्टिसिंग भत्ता भी लेता।

उसने एक नर्सिंगहोम भी खोल लिया, जिसकी प्रभारी डॉक्टर लतिका गुप्ता थी। ख़ूब मज़े से उनकी ज़िंदगी चल रही थी। इसी समय गाँव से आलोक साहु ने खबर दी कि संपत के पिता श्यामल साहु गंभीर रूप से बीमार हैं और वे एक बार अपने बेटे-बहू को देखना चाहते हैं। संपत ने किसी महत्त्वपूर्ण सेमिनार में जाने की मजबूरी बतायी और कुछ पैसे देकर अपने शहर के किसी अच्छे डॉक्टर से दिखाने को कहा। आलोक साहु टुकुर-टुकर कभी संपत को, तो कभी लतिका को ताक रहा था। मुँह से शब्द नहीं फूट रहे थे। किंतु, लतिका ने प्रतिरोध किया, "नहीं संपत, हमें जाना चाहिए। न जाने उनकी हालत कैसी होगी। इसी बहाने माँ-बाबू जी से...।"

"लतिका, तुम भावुक हो रही हो। भावुकता की धारा बड़ी प्रबल होती है। इसकी चपेट में जो एक बार आ गया, वह ज़िंदगी भर उसके भँवर से निकल नहीं पाता। वैसे भी हमारे पेशे में भावुकता का कोई स्थान नहीं है।"

"लेकिन तुम इसे मात्र भावुकता ही क्यों समझते हो? आख़िर उनसे हमारा कोई रिश्ता भी तो है; और ये रिश्ते यों ही बाज़ार में नहीं मिलते। इस समय उन्हें हमारी आवश्यकता है। ऐसे समय में भी हम उनके पास न हों तो... आख़िर हम डॉक्टर किस बात के हैं, जब अपनों की ही देखभाल नहीं कर सकते?"

"वही तो मैं कह रहा हूँ। बीमार हैं, तो उन्हें डॉक्टर की आवश्यकता है, रिश्ते-नाते की नहीं। उन्हें कोई भी डॉक्टर देख लेगा। पास में पैसा हो, तो किसी भी डॉक्टर से इलाज कराया जा सकता है।"

लतिका संपत के तर्कों से सहमत नहीं हो पायी। उसके लाख समझाने पर भी वह न मानी और आलोक साहु के साथ गाँव आ गयी। गाँव पहुँचते-पहुँचते शाम उतर आयी थी। पश्चिम में क्षितिज पर सूर्य की किरणें रक्ताभ हो चली थीं। अभी घर के आँगन में पाँव पड़े भी न थे कि सूर्य पूरी तरह अस्त हो गया। उसी वक़्त घर के भीतर टूटी खाट पर लपलपाते हुए मद्धिम रोशनी के साथ जल रहा वृद्ध दीपक भी बुझ गया। केतकी देवी के विलाप ने एकबारगी जैसे शांत वातावरण की छाती चीर डाली। पास-पड़ोस के एकत्र सभी लोग रो उठे। लतिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पाँव एक पल को ठिठक गये। उसने आलोक चाचा की ओर देखते हुए आँखों से प्रश्न किया। उसने मायूस होकर जवाब दिया, "बेटी, लगता है, हमने आने में देर कर दी।" तदुपरांत वे तेजी से घर में दाख़िल हुए। आलोक साहु लोगों को हटाते हुए श्यामल साहु तक पहुँचा। उसके पीछे-पीछे लतिका भी पहुँची और श्यामल साहु की नाड़ी देखी। फिर उसने जल्दी से अपने बैग से आला निकालकर उसके एक सिरे को श्यामल साहु की छाती से लगाया तथा दूसरे सिरे को अपने कानों से।

एक डॉक्टर को सामने पाकर लोगों का रोना-धोना बंद हो गया। उनके भीतर आशा की क्षीण किरणें पुनः उगने लगीं। केतवी देवी का विलाप भी थम गया था, पर भीतर ही भीतर वे अब भी सिसक रही थीं। लतिका के आग्रह पर सभी बाहर आँगन में आ गये थे। किसी ने धीरे से पूछा, "ये डॉक्टर साहिबा कौन हैं?"

"ये... यही बहू हैं। संपत बाबू की पत्नी," आलोक साहु ने वैसे ही धीरे से बताया। दूसरे ने अगला सवाल पूछा, "और संपत बाबू कहाँ हैं?"

आलोक साहु ने इस वक़्त कुछ ज़्यादा बताना उचित नहीं समझा। उसने सिर्फ़ इतना बताया कि उन्हें मीटिंग में कहीं जाना था, इसलिए नहीं आ सके। लोग धीमे स्वर में आपस में तरह-तरह की बातें करने लगे।

आधा घंटे से अधिक व्यतीत हो गया। डॉक्टर लतिका गुप्ता अभी तक बाहर नहीं आयी थी। लोगों को बेचैनी होने लगी थी। वे जल्दी से जल्दी किसी शुभ समाचार की उत्कंठा पाले बैठे थे। जब उनके सब्र का बाँध टूटने लगा, इंतज़ार असह्य लगने लगा, तो आलोक चाचा अंदर घुसे। उनके पीछे सारे लोग। भीतर का दृश्य दर्दनाक था, बची-खुची आशा की किरण पूरी तरह खत्म हो चुकी थी। डॉक्टर लतिका श्यामल साहु की मृत देह से लिपटकर फफक-फफककर रो रही थी, बड़बड़ा रही थी, "बाबू जी...! ये क्या किया आपने बाबू जी...! मैं आपके बेटे को क्या जवाब दूँगी? मैं आपकी गुनाहगार हूँ। मेरा अपराध अक्षम्य है। मैंने ही आपके बेटे को आप लोगों से दूर रखा...!"

0 0 0

उस सुबह लतिका अपेक्षाकृत देर से जागी। बिस्तर पर संपत को न पाकर उसे हैरत हुई। वह प्रतिदिन लतिका के बाद ही जागता था। फिर आज पहले कैसे जाग गया? कहीं दिखायी भी नहीं दे रहा। आखिर गया कहाँ? वह उसे ढूँढते हुए कॉरिडोर में आयी। संपत खड़ा-खड़ा आसमान की ओर निहार रहा था। आसमान अभी भी पूरी तरह साफ़ नहीं हुआ था। बादल के टुकड़े यत्र-तत्र छाये हुए थे। संभवतः भोर से ही पुनः हल्की बारिश शुरू हो गयी थी। उसने देखा-- बादलों के बीच झाड़ियाँ उग आयी हैं। उन झाड़ियों के मध्य माँ प्रकट हुई। वह मुस्कुराती हुई कह रही है, "क्यों दुखी होता है, पगले? तुम मेरी छोड़ो। चिंता करने का हक़ सिर्फ़ माता-पिता का अपने के प्रति है। हर कोई अपने कर्मों के फल का भोक्ता स्वयं है। तुम अपना जीवन जियो। सभी अपना ही जीते हैं। क्या, औरतों की तरह आँसू बहाता है...।"

अगले ही पल उन्हीं बादलों के बीच उसके पिता हुए। उन्होंने केतकी देवी से कहा, "तुम क्या इस नालायक समझाने चली हो जी? ये अब बच्चा नहीं है। तुम्हारा संपु है। ये डॉक्टर है। डॉक्टर संपत साहु, हार्ट स्पेशलिस्ट। ये हार्ट को जानता है। दिल को, उसमें उठने वाली भावनाओं उसकी पीड़ा को नहीं...।"

"क्या यार, तुम यहाँ खड़े हो और मैं सारे घर में ढूँ फिर रही हूँ," लतिका संपत की कमर को बाहों में भरते सिर को उसकी पीठ पर टिकाते हुए बोली। उसकी अस्त-व्यस्त केशराशि संपत की पीठ पर फैल गयी। संपत जल्दी से आँसू पोंछे और पीछे मुड़ा।

"ये क्या, तुम रो रहे हो!"

"लतिका, मुझे माँ और पिता जी की बहुत याद आ है।"

पिता की तो मात्र याद ही आ सकती थी। लेकिन एक अकेली और लाचार औरत। जिसके बेटे-बहू होकर हों, जिसका पति इतनी दूर चला गया हो कि वापस मुमकिन न हो; उस औरत के जीवन की, उसके दुख-दर्द कल्पना करना भी व्यर्थ है।

0 0 0

संपत ने केतकी देवी को समझाने की कोशिश की "माँ, अब तो यहाँ कुछ बचा नहीं है। बेहतर होगा, आप हमारे साथ शहर में रहें।"

"क्या? क्या कहा तुमने? यहाँ कुछ नहीं बचा है?" केतकी देवी ने प्रतिरोध किया, "तुम्हारे लिए भले ही यहाँ कुछ न हो, लेकिन मेरे लिए अब भी सब कुछ यहीं है, इसी माटी यहाँ की ज़मीन है, अपनी माटी है, ये टूटा-फूटा ही सही, घर है, और सबसे बढ़कर मेरे अपने पति की यादें हैं। तुम्हें मेरी चिंता क्यों होने लगी? तुम मेरे बेटे नहीं, मेरे के हत्यारे हो। तू कैसा बेटा है रे कि मृत्यु शैया पर पड़े को अंतिम बार भी देखने की ज़रूरत नहीं समझी? मैं कहीं जाऊँगी। अंतिम साँस वहीं छोड़ूँगी, जहाँ मेरे पति ने छोड़ी है।

केतकी देवी ने जैसे अपना फ़ैसला सुना दिया।

संपत किसी भी तरह केतकी देवी को समझा-बुझ शहर चलने के लिए राज़ी कर लेना चाहता था। इसकी प्रमुख वजहें थीं। एक तो यह कि प्रदेश की सरकार ने राजधानी बनाने के लिए जिस जगह का चुनाव किया था, उ सड़क, जो अभी कच्ची थी, गाँव की सीमा को छूती हुई गु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। इस कारण वहाँ ज़मीन की क़ीमत अचानक आसमान छूने लगी थी। अपने पिता की बची हुई ज़मीन से उसे अच्छी-ख़ासी रक़म मिलने की उम्मीद थी। दूसरे, लतिका पेट से थी। माँ के शहर चलने से उसकी और बच्चे की देखभाल भी हो जाती। अतएव, उसने लतिका से इशारे से माँ को समझाने को कहा।

लतिका ने माँ को मनाने की कोशिश की, "देखिए माँ जी, सच कहूँ तो आपकी अपराधी मैं हूँ। संपत तो आपका ही बेटा है। यह तो मेरे प्यार में पागल होकर भटक गया था। मैं तो आप से माफ़ी भी नहीं माँग सकती, किंतु आप संपत को माफ़ कर दीजिए और हमारे साथ चलिए। हम आपको...।"

"नहीं बेटी। मुझे तुमसे उतनी शिकायत नहीं है। तुम तो पर की बेटी होकर भी इतना तो समझ सकीं कि कम से कम उनकी निष्प्राण काया से तो आ मिलीं। परंतु ये तो हमारा बेटा है। अपने कोख का जनमा। ये अपना कर्तव्य कैसे भूल गया? मैं इसे माफ़ नहीं कर सकती।"

आलोक साहु ने हस्तक्षेप किया, "भाभी जी, आप अन्यथा न लें, पर मुझे संपत बाबू का फ़ैसला सही लगता है। आप यहाँ अकेली कैसे रहेंगी? अब काया में ताक़त भी तो नहीं बची है। इस अवस्था में सभी को किसी के सहारे की ज़रूरत पड़ती है। हम ये नहीं कहते कि हम गाँव वालों में आपको सहारा देने का हौसला नहीं है, लेकिन कौन कितने दिन किसका मददगार रहेगा, आज की दुनिया में कोई कह नहीं सकता... फिर आप तो माँ हैं। माँ का दिल बहुत बड़ा होता है। आप चाहें तो इन्हें माफ़ कर सकती हैं।"

गाँव वालों ने भी सहमति प्रकट की। केतकी देवी भावों में भरकर फफक पड़ीं। लतिका हौले-हौले उनकी पीठ सहलाने लगी।

घर और ज़मीन के लिए कई खरीददार आये। लोग मुँहमाँगी रक़म देने को तैयार थे, किंतु केतकी देवी के हठ ने संपत को निराश कर दिया। उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया कि वे बाहर के किसी आदमी के हाथों नहीं बेचेंगी। अपने ही गाँव का कोई व्यक्ति ख़रीद सकता है। अंततः आलोक साहु के हाथों अपेक्षाकृत कम दाम में घर और ज़मीन दोनों बेचने पड़े। आलोक साहु ने हाथ जोड़कर केतकी देवी से क्षमा-याचना के स्वर में कहा, "भाभी जी, ऐसा मत समझिएगा कि आपका यहाँ सब कुछ ख़त्म हो गया। ये चीज़ें मेरे पास आपकी धरोहर के रूप में रहेंगी। आप जब चाहें, जितने दिन चाहें, आकर रह सकती हैं।" गाँव वालों ने भीगी पलकों से उनकी विदाई की।

0 0 0

संपत की बात ने लतिका को सपने की स्मृति में धकेल दिया। वह संपत से अलग होती हुई किंचित विस्मित होकर बोली, "अरे हाँ, क्या संयोग है! आज मैंने भी सपने में माँ और बाबू जी को देखा था। बाबू जी हताश, निराश और आक्रोशित लग रहे थे। उन्होंने कुछ नहीं कहा, पर माँ कह रही थीं कि तुम नादान हो, मैं तुम्हें संभालकर रखा करूँ।" फिर वह लगभग विस्मृत हो चुकी स्मृति के खंडहर में घुसती चली गयी-शहर में आकर माँ अपना दुख भुलाने का प्रयास करने लगीं। लतिका की देखभाल अपनी बेटी की तरह करने लगीं। गर्भाधान से लेकर प्रसव तक एक माँ को क्या-क्या कष्ट हो सकता है; क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए; माँ के व्यवहार, आचार-विचार का होने वाले बच्चे पर क्या प्रभाव पड़ता है, इत्यादि ऐसी बातें बतातीं कि स्त्री रोग विशेषज्ञ डॉक्टर लतिका गुप्ता की डॉक्टरी औंधे मुँह गिर पड़ती।

सब ठीक-ठाक चल रहा था कि एक रात नर्सिंग होम से ख़बर आयी कि एक सीरियस पेशेन्ट आयी है। लतिका तेज़ रफ़्तार से जा रही थी कि अचानक कुछ कुत्ते लड़ते हुए बीच सड़क पर आ गये। वह संतुलन खो बैठी और उसकी कार दीवार से जा टकरायी। वह खुद तो बच गयी, पर पेट में पल रहा बच्चा असमय ही कालगति को प्राप्त हो गया। तब से उसकी कोख फिर हरी नहीं हुई थी।

समय अपनी गति से गुज़रता रहा और डॉक्टर दंपति पुनः अपनी दुनिया में रहने लगा। केतकी देवी उपेक्षित महसूस करने लगीं। कोई उनके खाने-पीने तक की सुधि न लेता। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानकर चलते थे कि नौकरानी उन्हें समय पर खाना खिला देती होगी। नौकरानी सचमुच केतकी देवी का ख़्याल भी रखती थी और यथोचित सम्मान की करती थी, लेकिन उसकी अपनी सीमाएँ थीं। ऐसे में माँ का दम उस भव्य भवन में, जिसे डॉक्टर दंपति ने वैध-अवैध लाखों रुपये खर्च करके बनवाया था, घुटता-सा लगता। उन्हें लगता कि बाहर कहीं खुली हवा में साँस लेकर आ जाएँ, खेतों-क्यारियों की सैर कर आएँ, हिलते-मुस्कुराते पौधों-पत्तियों को निहार आएँ, पर ये सब संभव नहीं था।

अब पास-पड़ोस से माँ के विरुद्ध शिकायतें भी आने लगी थीं। कहा जाता कि वे किसी के भी यहाँ समय-कुसमय का ध्यान रखे बिना पहुँच जाती हैं और घंटों बैठकर दिमाग़ खाती रहती हैं। मिसेज जोशी ने शिकायत की कि डॉक्टर संपत की माँ ने जीना हराम कर दिया है। वे प्रतिदिन टी0वी0 पर मन-पसंद धारावाहिक के समय ही आ धमकती हैं और सड़े-गले क़िस्से-कहानियाँ सुनाने लग जाती हैं। वे कहती हैं कि ऐसी गंदी-गंदी फ़ोटो टी0वी0 पर क्यों देखती हैं, मत देखिए।

उस दिन तो हद हो गयी। वकील मित्तल साहब तमतमाते हुए आये और कहने लगे, "देखिए डॉक्टर संपत जी, हम आपकी इज़्ज़त करते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि हम सब कुछ सहते जाएँ और आप चुपचाप तमाशा देखते रहें।"

संपत को सहसा मित्तल साहब का आशय समझ में नहीं आया। उल्टे हैरत में पड़ गया। आज तक तो उन्होंने कभी ऐसी कड़वी बातें नहीं की थीं। उसने शालीनता से पूछा, "क्या हुआ मित्तल जी, इतने ख़फ़ा क्यों हैं?"

"आप अपनी माता जी को नहीं समझाते कि शहर में लोग कैसे रहते हैं?"

दरअसल, मामला कुछ यों था कि केतकी देवी दूसरी मंज़िल पर कॉरिडोर में कुर्सी पर बैठी-बैठी नीचे की सड़क की ओर निर्द्वंद्व भाव से निहार रही थीं। सड़क पर गाड़ियाँ आ-जा रही थीं, लोग आ-जा रहे थे, लेकिन उन्हें किसी से कोई मतलब नहीं था। हाँ, जब कोई मोटरगाड़ी ज़ोर से हॉर्न बजाती हुई निकलती, तो खीझ होती। उसी सड़क पर पैदल जाती हुई एक छरहरी काया पर उनकी नज़र अटक गयी। उन्होंने उसे व्यग्र स्वर में पुकारा, "ऐ लड़की, रुक। इधर आ, इधर ऊपर आ।" उन्होंने हाथ से इशारा किया। वह नवयौवना असमंजसता का भाव लिये सीढ़ियाँ चढ़कर उनके पास आ खड़ी हुई, बोली, "क्या है?" केतकी देवी ने उसे सिर से पाँव तक निहारा और दहकते गोले-से शब्द फेंके, "तुमको शर्म नहीं आती ऐसे कपड़े पहनते हुए? राम-राम! कैसे होते हैं इनके माँ-बाप कि उनके बच्चे नंगे-अधनंगे सड़क पर घूमते रहते हैं और उन्हें तनिक भी चिंता नहीं होती। तुम जवान हो, ये तो दिख ही रहा है, इसे इस तरह दिखाने की क्या ज़रूरत है? आइंदा ऐसे कपड़े पहनकर कभी मत निकलना।"

मित्तल साहब ने चेताया, "आपकी माता जी ने हमारी बेटी और हमारा अपमान किया है। मैं आपकी माता जी और आप पर मानहानि का मुक़दमा दायर कर सकता हूँ। इस पर ध्यान रखें वरना...।"

संपत तिलमिलाकर रह गया था। उस रात आगबबूला होकर उसने केतकी देवी को ख़ूब खरी-खोटी सुनायीं। ललिता के मना करने पर भी वह नहीं रुका, बोलता चला गया और अंत में यह भी कह दिया, "आपको ठीक से रहना है तो रहिए, नहीं तो जहाँ मन चाहे, चली जाइए और हमें सुकून से जीने दीजिए।"

0 0 0

नौकरानी दो कप चाय रखकर चली गयी। दोनों सोफ़े पर आस-पास बैठ गये। संपत ने देखा, चाय के कप में अनगिनत झाड़ियाँ उग आयी हैं। देखते-देखते उन झाड़ियों में नुकीले काँटे उग आये। उन कँटीली झाड़ियों के मध्य ज़मीन पर एक नन्ही असहाय बच्ची चीख रही है। उसके सारे शरीर पर वैसी ही लाल चींटियाँ पसपसा रही हैं, जैसी उसने पिछली रात देखी थीं। उसने उसे ग़ौर से देखा तो पाया, वह और कोई नहीं, उसकी माँ है, जो चीख़-चीख़कर पूछ रही है, "संपू, क्या मेरा कसूर इतना बड़ा था कि तुमने मुझे झाड़ियों के बीच चील-कौओं के खाने के लिए फेंक दिया?"

बाहर बारिश फिर तेज़ हो गयी थी। हवा के झोंकों के साथ मोटी-मोटी बूंदों का एक झोंका उन दोनों तक आ पहुँचा और वे सिहर उठे। वे भीतर कमरे की ओर भागे, पर वहाँ भी शांति नहीं थी। सर्वत्र भयानक झाड़ियाँ ही झाड़ियाँ उग आयी थीं, जो और घनी होती जा रही थीं।

585बी, डी.एस. कॉलोनी, हीरापुर, धनबाद-826001 (झारख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख

गोविंद उपाध्याय

घेवनियाँ गाँव भी खूब बसा है। पक्की तारकोल की सड़क से बिल्कुल लगा हुआ। किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं है, सड़क पर ही बोर्ड लगा है- ग्राम घेवनियाँ। जब गाँव की तरफ़ मुड़ते हैं, तो विधवा की माँग की तरह गाँव के मध्य में खड़ंजा निकला हुआ है, जिसकी ईंटें बीच-बीच से ग़ायब हैं, जिसके कारण बरसात में आने-जाने वाली गाड़ियाँ फँस कर अपनी दुर्गति कराती हैं।

मैं भी एक बार इस सड़क पर अपनी दुर्गति करा चुका था। तब दीपेन्द्र भाई की शादी थी। जीप गड्ढे में फँस गयी थी। हम जीप को निकालने का प्रयास कर रहे थे। मैं पिछले पहिये के पास में ही लगा था। जब पहिया घूमा, सड़क का सारा कीचड़ मेरे ऊपर था। लोग हँस रहे थे और में जेठ में फागुन बना खड़ा था। ख़ैर, वह बीते युग की बात हो गयी है। घेवनियाँ मेरी माँ की इकलौती बहन का गाँव था। मौसी, माँ से आठ साल बड़ी थी। जब मैं छोटा था, तो अक्सर घेवनियाँ चला आता था। वहाँ पर मेरी दो मौसेरी बहनें थीं-कनकलता और मंजूलता, जिन्हें घर में कुन्नी और मुन्नी के नाम से बुलाया जाता था। कुन्नी मुझसे एक साल बड़ी और मुन्नी दो साल छोटी थी। उन दोनों के साथ खेलना मुझे अच्छा लगता था और उनका लगाव ही था कि मैं घेवनियाँ दौड़ा चला जाता था।

अम्मा भी कभी मना नहीं करती थीं। अम्मा यदि किसी बात पर नाराज़ होतीं, तो बस इतना कहना काफ़ी होता—"माई रे मौसी किहाँ जाई?"

अम्मा का गुस्सा काफ़ूर हो जाता, "जा बाबू, जा...और तनि मटर लेले, जा...।" साथ में अम्मा कोई फ़सली चीज़ भी बाँध देती थीं।

घेवनियाँ मेरे गाँव से पाँच किलोमीटर दूर है। बहुत सरल रास्ता... पकिया से जैसे ही गाँव में प्रवेश करेंगे, सबसे पहले निहारन भुंजवे का घर मिलेगा। वहाँ भुंजवे का भन्सार हमेशा ही जला मिलता था। उसके बाद प्राइमरी पाठशाला और थोड़े आगे गाँव का खलिहान है। खलिहान से दस गज बाद ही गाँव शुरू हो जाता। खड़ंजे के दाहिनी तरफ़ भूमिहारों का टोला है। मकान ऐसे बने हैं, मानो हर मकान एक-दूसरे में घुसने के लिए बेताब है। गाँव की अधिकांश ज़मीन इन्हीं के पास है। इनके लड़के शहर में अच्छी नौकरी कर रहे हैं। ज़्यादातर सरकारी महकमों में हैं। आस्ट्रेलिया भी पहुँच गये हैं। स्थानीय राजनीति में इस टोले के लोगों की अच्छी पकड़ है। भूमिहार टोले के लोगों को बाबू साहब कहा जाता है।

बायें हाथ में बाभन टोली है। यहाँ के ज़्यादातर मकान खपरैल के हैं, जो अभी भी अपना वजूद बरकरार रखे हैं। यह आश्चर्य की बात लगती है। उनको देखकर तो यही लगता है कि अगले सीज़न तक ये रहेंगे भी या नहीं। कुछ मकान फूस के भी हैं....एक मकान दीना पाठक का भी है। उसे देखकर संदेह होता कि ग़लती से भूमिहार टोले से छिटककर यह मकान इधर आ गया है। आधुनिक, शानदार और भव्य...बस आदमी देखे और देखता ही रह जाए।

बस यही दीना पाठक मेरी माँ की इकलौती बहन के पति और हमारे मौसाजी हैं। दरअसल, यह मकान दीना पाठक के इकलौते बेटे दीपेन्द्र पाठक ने बनवाया था। सफ़ेद मारबल से सजा यह मकान, बाभन टोले को मुँह चिढ़ा रहा प्रतीत होता। सारी ज़िंदगी मौसाजी बनारस का पंचाग और सत्यनारायण पूजा-विधान की पोथी अपने चीकट झोले में डाले जजमानों के दरवाज़े पर तीज से लेकर शादी-विवाह का दिन बताते तथा उक्त त्योहार के दिन पूजा-संकल्प कराते—'जंबू द्वीपे....आर्यावर्ते....अमुक शर्माहम्....।' दक्षिणा और थोड़ी-सी खेती....बस यही था उनके परिवार के पाँच प्राणियों के जीवकोपार्जन का आधार.....

मौसाजी तब बहुत दीन-हीन लगते थे। जिसकी दान-पुण्य में आस्था नहीं भी होती वह भी कुछ न कुछ दे ही देता। वैसे भी गाँव की करेंसी तो अनाज ही है। मौसाजी की लंबाई भले ही छह फ़ीट से भी ज़्यादा थी, पर थे पूरे सीकिया पहलवान। शायद उनकी इसी दुर्बलता ने उन्हें कमर से थोड़ा आगे की तरफ़ झुका दिया था और पेट पीठ से इतना चिपका हुआ था कि यह लगता था कि उन्हें हफ़्तों से अन्न के दर्शन भी नहीं हुए हैं; जबकि सच इसके विपरीत था। मौसाजी की खुराक औसत से ज़्यादा थी, जो भोज आदि में बढ़कर चार आदमियों के बराबर हो जाती।

दीपेन्द्र भाई का पढ़ाई में बिल्कुल मन नहीं लगता था। मौसाजी भी बस इतना ही चाहते थे कि दीपुआ हमारी जजमानी संभाले।

दीपेन्द्र भैया को संस्कृत के श्लोक आठवीं की पढ़ाई से भी ज़्यादा कठिन लगते। वे मौसाजी के साथ उनका झोला

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पकड़कर जाते और लौटते समय दान-दक्षिणा की गठरी सिर पर लादकर घर आते। दो साल ऐसे ही बीत गये। नव ग्रहों की पूजा कराना तो दूर, सीधा-सादा संकल्प कराना भी नहीं सीख पाए। मौसाजी ने एक बार फिर सिर पीटा, "सरवा गदहवे रह गइल....बाभन के लरिका, पूजा-पाठ ना सीखीत.. सार भीखे माँगी...।"

मौसी के लिए उनका यह नालायक बेटा सौ गुणों की खान था। मौसी की सोच ही सच थी। मौसाजी के शरीर में इतनी ऊर्जा नहीं थी कि वे अपनी पत्नी से शास्त्रार्थ में जीत सकें। मौसी शरीरिक रूप से भी मौसा जी से बीस थीं और वाणी में भी....मौसा जी का जो स्वर बिना माइक के ही भक्तों के कान तक पहुँच जाता...वही मौसी के सामने अपनी तीव्रता खोकर झींगुर की आवाज़ में बदल जाता।

माँ की ममता और आशीर्वाद ने दीपेन्द्र भैया को पुजारी न सही मजमेबाज़ ज़रूर बना दिया। दस-पाँच की भीड़ उनकी बकवास सुनने के लिए हमेशा आस-पास बनी रहती—"त महाराज....दीनौरा में परानपति मिसिर के लरिका के बियाह में का भइल रहे..?"

बस, दीपेन्द्र भाई शुरू हो जाते, अरे भयवा का बताई... एक त दीनौरा अ ऊपर से मिसिर टोला... पचास हजार नगद पर बियाह तय हुआ था। तिलक में त बेटिहवा ठेंगा दिखा दिया- मिसिर जी जोगाड़ नहीं लग पाया। दुआर पर मिल जायेगा। जब बारात दुआर पर पहुँची त फिर बेटिहवा उहे राग जपने लगा। बस फिर का था, मिसिर जी का धीरज टूट गया... ले चलो बारात वापस। अब बारात वैसे तो जाने से रही। दूनों तरफ से लाठी तन गया। दे भनाभन...।"

मौसाजी को लगने लगा कि लडका अब हाथ से निकल रहा है। बस अगले लगन में दीपेन्द्र भैया की शादी तय कर दी गयी।

कहते हैं कि हर बड़ी सफलता के पीछे एक औरत का हाथ होता है। दीपेन्द्र भाई की सफलता के पीछे भी सरला भौजी का हाथ था। पहली रात को ही भौजी को समझ में आ गया कि उन्हें एक अनगढ़ मर्द मिला है। उसे तराशना उनका काम है।

सरला भौजी बला की सुंदर थी। बस यही लगता कि इंद्र देवता के दरबार की कोई अप्सरा ग़लती से दीना पाठक के घर टपक गयी है। दीपेन्द्र भाई की हालत ऐसी थी, जैसे लंगूर के हाथ हूर लग गयी हो। उनका बस चलता तो वे दिन-रात उन्हीं की गोद में पड़े रहते। एक तो फूस का घर, ऊपर से कुन्नी और मुन्नी की उपस्थिति उन्हें अपना मन मारने को मजबूर कर देती।

भौजी की सुंदरता का मैं भी दीवाना था और किसी न किसी बहाने घेवनियाँ पहुँच जाता। पता नहीं, सरला भौजी ने दीपेन्द्र भैया को कौन-सा मंत्र पढ़ाया कि एक बार फिर उन्होंने किताब थाम ली और आठवीं की वैतरणी न पार करने वाले दीपेन्द्र भाई व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में दसवीं पास कर गये। जिस संस्कृत से उनकी रूह काँपती थी, वही उनके लिए वरदान हो गयी। उन्होंने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की और आस-पास के दस गाँवों में अपनी पंडिताई का झंडा गाड़ दिया।

मुझे प्राइमरी स्कूल में मास्टरी की नौकरी मिल गयी थी। गाँव धीरे-धीरे मेरे जीवन से फिसलता चला गया। रोटी और बाज़ार की ऐसे गणित में फँसा कि गाँव बस मेरी स्मृतियों में ही शेष रह गया। शहर और गाँव के बीच की मजबूत डोर अम्मा थीं और अम्मा थीं, तो गाँव पहुँचने पर घेवनियाँ भी चला जाता था।

दीपेन्द्र भैया पंडिताई करते-करते ठेकेदार बन गये थे। उन्होंने बुलेट, बोतल और भ्रष्टाचार की ताक़त को पहचान लिया था। पैसा बरसने लगा था। अब वे कमर में प्वाइंट नाइन बोर का रिवाल्वर टाँगते। शानदार मकान के सामने बोलेरो और बुलेट मोटरसाइकिल उनकी संपन्नता में चार चाँद लगा रही थीं। दीपेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई मौसाजी जैसे ही लंबे थे, ऊपर से अच्छी खिलाई-पिलाई ने उन्हें चलता-फिरता माँस का पहाड़ बना दिया था।

अब मौसाजी के पास कोई काम नहीं था, न ही उनके शरीर में इतनी ऊर्जा थी कि वे गाँव-गाँव जाकर पंडिताई करते। घर के बरामदे में बैठे देश-दुनिया पर अपनी राय आने-जाने वालों पर थोपते या पुराने ज़माने का रोना रोते और नये ज़माने को कोसते। मात्र यही उनके टाइम पास का ज़रिया था। बाकी वे घर के लिए बेकार की वस्तु थे। भोजन के लिए आठ बजे से टेरना शुरू कर देते—"अरे भाई, अभी तक खाना नहीं बना क्या?"

खाना अपने समय से ही बनता था, वह भी दीपेन्द्र भाई या उनके बच्चों की अभिरुचि का और मौसाजी को भी वही खाना होता। कोई वस्तु कम होती, तो मौसाजी तक नहीं पहुँचती और वह बात देर-सबेर मौसाजी तक पहुँच जाती। फिर क्या, मौसाजी का कलपना शुरू—"दीपेन्दर आगरा से पेठा लाये थे। सरवे खूब खाये अउर गोयडा के खेत में हग आये, लेकिन इ नहीं समझे दुआरे पर एक बूढ़ा पुरनिया बइठा है, एकाध टुकड़ा उसे भी दे दिया जाए।"

अंदर सरला भौजी सुन रही होती, तो गनगना जाती—"इ बुढ़वा ना खुद चैन से रही, न दुसरे के चैन से जिए दी। रोटी खइले से पोंकना लाग जाला, अउर जीभ ह कि दिन भ लारे टपकाई...।"

मौसी दीपेन्द्र भाई का वैभव और अपनी दुर्दशा दोनों से बच गयी थीं। मुन्नी की डोली दरवाज़े से उठी और मौसी ने चारपाई पकड़ ली। सरला भौजी मौसी की सेवा तो करना चाहती थी, लेकिन खुद उसके छत्तीस काम थे... सीने के दर्द से कराहती रहीं। पानी के लिए बहू को आवाज़ दी। जब किसी ने नहीं सुना, तो खुद लेने के लिए उठीं....दो क़दम चलीं भी. ..और सीने के दर्द से सदा के लिए मुक्त हो गयीं।

यह दुख भी मौसाजी को था। इन सारे दुखों पर फाहे का काम करती दीपेन्द्र भाई की संपन्नता। मौसाजी को मौक़ा मिलने की देरी भर थी। मकान में लगे पत्थर से लेकर बोलेरो के इंजन तक हर एक की कथा बड़ा रस लेकर सुनाते। दीपेन्द्र भाई की विजय-गाथा सुनाते हुए उनका चेहरा गर्व से दमकने लगता। कुछ समय के लिए ही सही, वह अपनी सारी उपेक्षा भूल जाते।

मौसी के न रहने से अम्मा के लिए घेवनियाँ कोई मायने नहीं रखता था। मौसाजी तो नहीं, सरला भौजी का आकर्षण मुझे कुछ घंटों के लिए सही घेवनियाँ की तरफ़ खींच ले जाता। भौजी समय को मुँह चिढ़ाते हुए अपने सौंदर्य को सँभाले हुए थी। हालाँकि अब वह एक बेटी की शादी कर चुकी थी।इधर दो-तीन बार से मौसाजी से बात करते समय मैं सामान्य न रह पाता। शहर में मेरे पास सरकारी आवास के सिवा कुछ नहीं था। बच्चों की पढ़ाई और पत्नी की अस्वस्थता के कारण मैं सदैव आर्थिक तंगी में ही रहा। यह बात मौसाजी अच्छी तरह से जानते थे, इसके बावजूद वे मुझसे पूछते—"अरे इतने दिन से शहर में कमा रहा है। मकान बनवा लिया है कि नहीं... .। मकान नहीं बनवाया है, तो जमीन ही खरीद के डाल दे। हमार दीपेन्दर तो गोरखपुर में जमीन खरीद लिया है।"

मैं न में सिर तो हिला देता, लेकिन एक हीनता का कीड़ा मेरे दिमाग़ में रेंगने लगता। मौसाजी को मेरी हीनता में मज़ा आने लगा था—"दीपेन्दर को तो हम मना किये थे। गाँव में मकान पर ज्यादा पइसा लगाने की जरूरत नहीं है। शहर में पइसा लगावो, तो उसकी कीमत है। लेकिन नहीं माने... भोपाल, राजस्थान...दुकहां-दुकहां से तो पत्थर मँगाकर लगवाए हैं। रसोईघर में तो काला पत्थर... दुका त कहत हैं... गिरफाइड. .."

मौसाजी के झुर्रिआए चेहरे पर ग़ज़ब की चमक होती। उनके पोपले मुँह से कई-कई बार लार टपककर ठुड्ठी पर चू जाती, जिसे वे अपनी मैली धोती से पोंछ लेते... अंत में, जैसाकि हर बार होता, अपनी बात के समापन पर—"मेरी वात मान, तू भी शहर में अपने लिए मकान बना ले..." कहना न भूलते"

और उस दिन भी ऐसा ही हुआ।

मैं मौसाजी की तरफ़ कातर नज़रों देखता रहा। वे मुसकराए। मैं आवेश में आ गया, "मौसा जी, बस रहने दीजिए। काहे बार-बार मेरी मजबूरियों का उपहास उड़ाते हैं। अच्छा, यह बताइए आज आपके पास इतना सब है। बहुत अभाव था इस घर में...फूस का घर हुआ करता था कभी यहाँ... जिसमें मेरी दो बहनें रहती थीं... मेरी एक बीमार, पर माँ समान मौसी थी। जब मैं घर से आता था, तो मेरी वो बहनें फटाफट चकिया से गेहूँ पीसतीं... पिछवाड़े से भिंडी तोड़कर लातीं... उस रोटी का स्वाद आज भी मेरे मुँह में है। और... आज दो घंटे हो गये, किसी ने अब तक एक गिलास पानी के लिए भी नहीं पूछा। यह कैसी संपन्नता है मौसाजी?"

मौसा जी का पोपला मुँह खुला रह गया। एक बार फिर लार उनकी ठुड्डी पर टपक गयी, लेकिन उन्हें उसे पोंछने का होश कहाँ था। वे मुझसे ऐसे शब्दों की अपेक्षा नहीं करते थे। मैंने बातों को विराम दिया, "छोड़िए मौसाजी.....यह सब तो चलता रहता है। आप तो खुश हैं न..."

मेरी बात अधूरी ही रह गयी। मौसाजी की भर्राई हुई आवाज़ थी—"तू सरवा बहुत पाजी है... सुख पत्थर से थोड़े ही मिलता है..."

मौसाजी की आँखों से आँसू गालों पर लुढ़क आये जिन्हें पोंछने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी....वो आँसू मुझे लंबे समय तक परेशान करते रहे।

जी.वन.टी/257, अरमापुर इस्टेट, कानपुर-208009

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म का असली संकट क्या है?

सुरेश पंडित

लोगों में आजकल जितनी तेज़ी और व्यापकता से धर्म का प्रचार-प्रसार बढ़ता दिखायी दे रहा है, उसके पीछे दो तरह के संकट छिपे हो सकते हैं। इनमें पहला बहुचर्चित संकट नागरिकता का संकट है। यह बार-बार इस तथ्य से पर्दा उठाता है कि जब तक राज्य धार्मिक पहचान को आधार बनाकर लोगों को वस्तुएँ वितरित करता रहेगा, उन्हें विशेष अधिकार प्रदान करता रहेगा, संरक्षण देता रहेगा तथा भेदभाव करता रहेगा, विभिन्न धर्मों में टकराव भी तब तक अनिवार्यतः होते रहेंगे। ऐसे वाक्छलों को हम दुहराते रहेंगे, जिनकी व्यावहारिकता स्वयं हमारी नज़रों में संदिग्ध होगी, जैसे—राष्ट्रीय एकता, सर्व धर्म सम भाव, सांप्रदायिक सद्भावना आदि और अपने धर्म के कट्टरतावादी दुष्ट समूहों का बचाव करते हुए अन्य धर्मों के ऐसे समूहों पर प्रतिबंध लगाने, उन्हें कुचल डालने की ज़बरदस्त माँग करते रहेंगे। कोई ईमानदारी से ऐसी नागरिकता की माँग नहीं करेगा, जो किसी भी प्रकार की धार्मिक मान्यता से स्वतंत्र हो। न ही कोई इस बात के लिए तैयार होगा कि सार्वजनिक नीतियाँ पहचान के इस उलझे हुए जाल से मुक्त हों। इस तरह यह आत्मघाती सर्वजन कल्याण की भावना एक दिखावटी सार्वजनिक नीति के रूप में सदा चलती रहेगी और लोगों को छलती रहेगी।

इसी के साथ दूसरा संकट, जिस पर अब तक बहुत कम चर्चा हुई है, स्वयं धर्म का संकट है। सचाई यह है कि धर्म अपने आप में एक पेचीदा अभिव्यक्ति है, लेकिन इसकी पेचीदगी से जुड़े विवाद को फ़िलहाल दूर रखते हुए हमें यह स्वीकारना है कि धर्म के कारण दुनिया में अनेक प्रकार की दुखद घटनाएँ भी होती हैं। असल में संकट आस्था या समर्पण भाव को लेकर नहीं है, और न ही विभिन्न धर्मों द्वारा अपने कट्टर अनुयायियों को गतिमान बनाये रखने के कारण पैदा हुआ, बल्कि यह संकट अलग-अलग तरह के तीन कारकों से निर्मित हुआ है।

आश्चर्य है, आजकल धर्म की भाषा में धार्मिक विचारों के वे पारंपरिक सूक्त सुनायी ही नहीं देते, जो कभी इसके मूल उद्देश्य हुआ करते थे, जैसे कि वह एक आत्म-बोध का माध्यम है, कि यह विश्व को एक अभेद्य समग्रता का अर्थ प्रदान करता है, कि यह अस्तित्त्व की संवादहीनताओं को मुखर करने का एक तरीका है और मूल्य के रहस्यों को सुलझाने वाला है। इसके विपरीत यह एक जटिल प्रक्रिया के तहत एक ख़ास तरह की जातीय सीमा में बँध गया है। यह एक ऐसी संहिता में बदल गया है, जिसके ज़रिये जातीय सीमारेखाएँ यह दर्शाने के लिए खींची जा रही हैं कि कौन से समूह इनके अंदर हैं और कौन से बाहर हैं। अन्य सब बातों को दरकिनार कर यह अब धार्मिक चेतना का उपनिवेशीकरण करने लगा है। पहचान की भावाकुलता इसके मूल अभिप्राय को विस्थापित कर रही है और धर्म जहाँ एक ओर अधिक स्वाग्रही दिखायी दे रहा है, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक रूप से अर्थहीन हो रहा है। इसलिए, इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल यह हो सकता है कि धार्मिकता के वे कौन से रूप हैं, जो हमें सामूहिक आत्म-मुग्धता के भ्रामक संजाल से बचा सकते हैं।

दूसरा कारक स्वयं धार्मिक सत्ता से जुड़ा है। एक तरीके से यह सत्ता का संकट पहले वाले संकट का ही विस्तार है। केवल जब कोई आंतरिक संकट अचानक उठ खड़ा होता है, तब धर्म को सामने लाया जाता है, ताकि उसे तरह-तरह के समूह अपनी -अपनी दिशाओं में मोड़ने के लिए तैयार कर सकें। हम अक्सर स्वंय को सही बताने के लिए कहते हैं कि वास्तविक इस्लाम हिंसा की वकालत नहीं करता अथवा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ हिन्दू संप्रदाय का प्रतिनिधित्त्व नहीं करता, लेकिन असल में सवाल तो यह है कि किस अधिकार से कोई इस तरह के दावे कर सकता है। हम लगातार यह खोज करने में लगे रहते हैं कि इस्लाम या हिन्दू धर्म या ईसाई धर्म की वास्तविक शिक्षाएँ क्या हैं और अपने आपको आश्वस्त करने की कोशिश करते हैं कि इस्लाम या हिन्दू धर्म वास्तव में इस या उस तरह की शिक्षा कतई नहीं देता। राजनैतिक चुनौतियों का जवाब देने के लिए दिये जाने वाले ये तर्क अक्सर मुसीबत पैदा करने वाले होते हैं। ये तर्क इस आशा पर टिके रहते हैं कि धर्म की एक आवश्यक सच्चाई भी होती है, कि यह सच्चाई हितकर भी साबित हो सकती है और इस आवश्यक सच्चाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जब एक बार समझ लिया जाता है, तो यह उन लोगों को भी प्रभावित कर देती है, जो इस धर्म के प्रति दृढ़ समर्थन का दावा करते हैं।

लेकिन, अब यहाँ ये सच्चाइयाँ क्या है, इसके भी प्रतियोगी दावेदार पैदा हो गये हैं। इन सच्चाइयों का आधिकारिक संरक्षक कौन है? हिन्दू धर्म में यह हमेशा एक उलझन में डालने वाला सवाल रहा है, लेकिन पारंपारिक तौर पर अधिक केंद्रीयकृत धर्म, जैसे इस्लाम और ईसाई धर्म भी अब इस सवाल पर गहराई से विचार कर रहे हैं। 'सिमी' मुसलमानों का प्रतिनिधित्त्व नहीं करती अथवा बजरंग दल पूरे हिन्दुओं की नुमाइंदगी नहीं करता, जैसे बयान एक हद तक ही विश्वास करने योग्य हैं। ये दावे यह घोषित करने के लिए किये जा रहे हैं कि इन समूहों के विश्वासों और कार्यों को संप्रदाय के अधिकतर लोगों की सहमति/समर्थन प्राप्त नहीं है। लेकिन मूल प्रश्न यह नहीं है कि ये समूह किसी का प्रतिनिधित्त्व करते हैं या नहीं, बल्कि इससे भी गंभीर सवाल यह है कि क्या हममें इतना आत्मविश्वास है, हमारे पास इतने संसाधन हैं कि हम इन समूहों के अस्तित्त्व को अनदेखा कर सकें और इनकी गतिविधियों पर रोक लगा सकें। केवल उनके द्वारा अपने संप्रदाय का प्रतिनिधि बनने की उनकी हैसियत को नकारे जाने से इस महत्त्वपूर्ण सवाल को माकूल जवाब नहीं दिया जा सकता।

तीसरा कारक और भी अधिक धूर्तता भरा है। दुनिया के सारे समाजों को कुछ मूल्य और मर्यादाएँ सुनिश्चित करने वाली संहिता की ज़रूरत होती है। इसकी सहायता से वे बाहरी दुनिया के तेज़ होते प्रभाव को रोक सकते हैं और आत्म-नियंत्रण को आधिकारिक मूल्य की प्रतिष्ठा प्रदान कर सकते हैं। जनतंत्र के लिए उचित और अनुचित की चेतना की और क्या वास्तव में मूल्यवान है और क्या नहीं-की समझ विकसित करने की बहुत अधिक ज़रूरत होती है। समाज जितना अधिक स्वतंत्र होता है, उतने ही अधिक नैतिक व व्यावहारिक विवेक-बुद्धि के उपयोग की उसे ज़रूरत होती है। वास्तविक चयन के लिए विवेक-बुद्धि को कोई न कोई आधार लेना होता है, अन्यथा यह क्षणिक इच्छा के मूक निष्कर्ष की एक अभिव्यक्ति मात्र बनकर रह जाती है। लेकिन, इन गुणों को उत्पन्न व विकसित करने के लिए राजनैतिक जनतंत्र का अभ्यास की पर्याप्त नहीं होता। इसके लिए एक आभ्यंतरीकृत नैतिकता-बोध का उत्पन्न व विकसित होना भी ज़रूरी होता है। हमारी शिक्षण संस्थाएँ यह काम करती दिखायी नहीं देतीं और आम लोगों की संस्कृति गंभीर नैतिक विचारों के क्षरण से ग्रस्त हो रही है। अच्छाई या बुराई के लिए कुछ हद तक हम पारिवारिक मूल्यों, धार्मिक संस्थाओं और पारंपरिक अनुशासन के जटिल उत्तराधिकार से अलग ज़िंदगी जी रहे हैं। इन मूल्यों पर ही स्कूल और आधुनिक नागरिक संस्थाएँ निर्मित होती हैं। यह हमारी विरासत विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से भरी हुई एक पिटारी जैसी है। यह कुछ मामलों में दमनात्मक है, लेकिन कुछ ऐसे संसाधनों से युक्त भी है, जो इसे ऊपर भी उठा सकते हैं। लेकिन, इस तरह की बहुत सी संस्थाएँ, जिन्होंने हमें अच्छा या बुरा बनाया है, अब धीरे-धीरे समाप्त हो रही हैं। पता नहीं, इस रिक्त स्थान को आगे कौन भरेगा।

इसे भरने का अंतिम कल्पनात्मक प्रयास वह राष्ट्रीयतावादी आंदोलन था, जो स्वाधीनता के सवाल से भी अधिक मूल्यों और मर्यादाओं की प्रतिष्ठा के सवाल को लेकर व्याकुल था। लेकिन, वह विरासत तो अब आंशिक तौर पर वास्तविक मोह भंग के कारण और आंशिक तौर पर हमारी बनायी हुई दमघोंटू बौद्धिक संस्कृति के कारण ख़त्म हो गयी है। परिणामस्वरूप, हम चाहे इसे पसंद करें या न करें, धार्मिक समूहों के नये-नये रूप अब इस खाली स्थान को भर रहे हैं।

लेकिन, यह अभी स्पष्ट नहीं है कि ये नये रूप किस तरह की आदतें और निष्ठाएँ पैदा करेंगे? यदि भविष्यशास्त्रियों की बातों पर यकीन करें, तो आगे की दिशा गंभीर रूप से चिंतन-प्रधान और भयावह रूप से हास्यापद होगी। इसका सबसे अच्छा पहलू यह होगा कि लोगों का ध्यान अपनी अंतरात्मा को सुव्यवस्थित करने पर अधिक केंद्रित होगा, क्योंकि वे यह सिद्धांत मानने वाले होंगे कि इससे उनका बाह्य जीवन स्वतः सुधर जाएगा। इस विचार में कुछ कमियाँ भी हो सकती हैं, लेकिन यह सवाल फिर भी खड़ा रह जाएगा कि हमारे आत्मज्ञान को रूपाकार देने में धर्म की भूमिका क्या होगी और इसका दुनिया के साथ क्या संबंध होगा? क्या यह उन दायित्वों को समर्थन देगा, जिन्हें जनतंत्र हम पर अरोपित करता है? हमारे समय का संकट इस तथ्य में प्रतिबिंबित होता है कि हम इस सवाल के जवाब में विश्वासपूर्वक 'हाँ' नहीं कह सकते।

383, स्कीम नं0 2, लाजपतनगर, अलवर-301001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जुही की कली' : शृंगार की स्वच्छंद दृष्टि

धीरेन्द्र कुमार पटेल

'जुही की कली' महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की सिर्फ़ एक प्रतिनिधि कविता ही नहीं, बल्कि निराला के समूचे काव्य-विकास की एक निर्णायक, ऐतिहासिक कविता है। इस कविता के आधार पर कहा जा सकता है कि 'निराला' ने केवल छंद के बंधन ही नहीं तोड़े, अपितु समाज की रूढ़िगत परंपराओं के बंधनों को भी तोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया। अपनी नूतन काव्याभिव्यक्ति द्वारा अपने विद्रोही स्वर से सुधी काव्य-पाठकों में नवजागरण उत्पन्न करने का प्रयास किया। यही पुकार वे 'गीतिका' में माँ सरस्वती से करते हैं—''नव नभ के नव विहग वृंद को नव पर नव स्वर दे'' और उनका मुक्त हृदय पुकार उठता है, ''आज प्रिये तू छोड़कर बंधनमय छंदों की छोटी राह'' और फिर उनकी रचनाओं से निरंतर तत्कालीन मानव की पीड़ा, परतंत्रता एवं परवशता के प्रति तीव्र आक्रोश की ध्वनि सुनायी पड़ती है। अन्याय एवं असमानता के प्रति विद्रोह की घोषणा सुनायी पड़ती है।

'जुही की कली' कविता की अंतर्वस्तु पर दृष्टिपात करने से उसमें जो एक वैचारिक फैलाव नज़र आता है, वह रूढ़ एवं जड़ परंपरा के विरोध की दिशा का संकेत करते हुए 'निराला' के क्रांतिकारी स्वभाव को समझने की दृष्टि देता है। यह कविता किसी प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं है, अपितु मुक्ति के संघर्ष का सहज निर्माण करते हुए अपनी परंपरा तथा इतिहास को आगे बढ़ाने में साहित्यकारों की मदद करती है। संभवतः यही कारण है कि डॉ0 रामविलास शर्मा ने निराला को नयी प्रगतिशील धारा का अगुआ भी बताया है।

इस कविता को पढ़ते हुए रीतिकालीन नायिकाओं के शृंगार-भाव के खारिज़ करने की सोच से उपजी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप प्रेम के उदात्त खाँचे में बैठायी गयी द्विवेदी-युगीन 'प्रिय प्रवास' की 'राधा', 'साकेत' की 'उर्मिला' और 'यशोधरा' की 'यशोधरा' की तरफ़ ध्यान जाना स्वाभाविक है। विकास का नियम है—निषेध, यह प्रकृति का नियम है। बीज का निषेध अंकुरण है। मनुष्य की चेतना का विकास निषेध के फलस्वरूप होता है। प्रकृति पूर्ण निषेध करती है, मनुष्य अपनी परंपरा का पूर्ण निषेध नहीं करता। दो संस्कृतियों के बीच एक गैप आता है, क्योंकि हम किसी एक से पूर्णतः संतुष्ट नहीं होते। 'निराला' की 'जुही की कली' में भी न रीतिकालीन परकीया प्रेम ग्राह्य है, न द्विवेदीयुगीन नैतिकता में बँधा शृंगार का आग्रह। यही कारण है कि तत्कालीन आलोचकों को 'जुही की कली' में अराजक भाव भी दिखायी पड़े। वस्तुतः संस्कृति का विषम परिवेश ही अराजक होने को बाध्य करता है और संस्कृति का विषम परिवेश होता है—आम आदमी (जनता) के सहज भाव को नकारना। जनता ही अनगढ़ होते हुए भी अत्यंत सप्राण, समृद्ध और मौलिक होती है। वह साहित्य और कला का एकमात्र स्रोत है। रीतिकाल में भी जनता को नकारा गया और द्विवेदी युग में भी पौराणिक प्रसंगों और पात्रों को जिस बौद्धिकता के खाँचे में बैठाया गया, वे जनमानस के अंग होने के बजाय और अलौकिक हो गये और कहीं-न-कहीं उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक लगने लगे।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि कविता की रचना-प्रक्रिया में कुछ सामान्य तत्त्व होते हैं और सौंदर्य के कुछ परंपरित रूप और मान भी होते हैं, पर साथ-ही-साथ कवि की अपनी निजता भी होती है। यह निजता युग-बोध, स्वभाव-वैशिष्ट्य, पुनर्नवावृत्ति तथा मौलिक प्रयोग-धर्मिता से उसे प्राप्त होती है। इसलिए परंपरित मानदंड बेमानी भी हो जाते हैं। इसीलिए, ''बड़े-बड़े कवियों की कविता से उनका काव्य-संबंधी तथा कलापरक आदर्श खोजना काव्य के स्वभाव को परखने के लिए आवश्यक है।'' (डॉ. भगीरथ मिश्र, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ0-33)।

'जुही की कली' में भी काव्य-संबंधी आदर्श दिखायी पड़ता है और शुरूआती पंक्तियाँ ही 'निराला' के काव्य संबंधी आदर्श को सामने रखती हैं :

'विजन-वन वल्लरी पर/सोती थी सुहाग-भरी स्नेह-स्वप्न-मग्न-
अमल-कोमल-तनु तरुणी—जुही की कली'

(राग-विराग, पृ. 48)

उपरोक्त पंक्तियों से कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि मुक्त छंद का यह अर्थ कि परंपरा का विरोध, बल्कि हृदय के प्रवाह की सीमाबद्धता का जो भाव परंपरा में हैं, उससे मुक्ति और न ही वह पश्चिम के स्वच्छंदतावाद का अंधानुकरण है। वस्तुतः उपरोक्त पंक्तियाँ भारतीय सांस्कृतिक धारा से निष्पन्न पंक्तियाँ हैं। 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में भी दुष्यंत जानता है कि शकुंतला पराधीन (कण्व के अधीन) है- ''जाने तपसो वीर्य साबाला परवतीति मे विदितम्।'' (तृतीय अंक) यही कारण है कि दुष्यंत, शकुंतला से विवाह करता है और भारतीय संस्कृति विवाहिता स्त्री को प्रेम-स्वप्न देखने का अधिकार देती है। शकुंतला स्नेह-स्वप्न में इतनी मग्न है कि दुर्वासा उसे श्राप दे देते हैं और वह इतनी मग्न है कि उसकी सखी प्रियंवदा उसे देखकर कहती है—''पश्य तावत्। वामहस्तोपहितवदना लिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तयात्मा नमपि नैषा विभावयति। किं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनरागंतुकमफ" ('अभिज्ञान शाकुंतलम्', चतुर्थ अंक)—(देखो हमारी प्रिय सखी अपने बायें हाथ पर मुँह रखे हुए चित्रखिंची की भाँति स्थित है। स्वामी के चिंतन में मग्न अपने आपको भी नहीं समझ पा रही है, तो फिर अतिथि को कैसे समझेगी?) सामंती शृंगार के कवि होते हुए भी कालिदास के शृंगार-वर्णन में जन-सामान्य का शृंगार उद्घाटित होता है। 'निराला' के काव्य का आदर्श भी यही है। 'सुहाग-भरी' शब्द के प्रयोग द्वारा पूरी कविता के शृंगार को एक सांस्कृतिक गरिमा भी प्रदान की गयी है, जबकि 'साकेत' की विवाहिता उर्मिला अपने स्वाभाविक स्वप्न को भी दबा रही है। सामंती परिवेश की जकड़बंदी को महाकवि तोड़ नहीं पाते हैं, उर्मिला की याचना किस रीतिकालीन विप्रलंभ शृंगार की मानसिकता को तोड़ पा रही है :

"मुझे फूल मत मारो, मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो।" (साकेत, नवम् सर्ग)

यही द्विवेदीयुगीन काव्य की इतिवृत्तात्मकता है, तो छायावाद में नयी मसृणता, नयी भावुकता। सुहागन 'उर्मिला' की विशेषता 'अबला बाला वियोगिनी' से है, तो 'जुही की कली' की अमल-कोमल-तनु-तरुणी से है। स्पष्ट है कि हमारी उज्ज्वल संस्कृति में सुहागन को प्रेम-स्वप्न देखने का अधिकार है। स्वप्न देखने के बाद भी कली पवित्र है और 'अबला बाला वियोगिनी' स्त्री-शक्ति का प्रतीक नहीं है, एक विवश नारी का आर्तनाद है, जो स्वप्न भी नहीं देख सकती। अति नैतिकता के दबाव में उर्मिला के हृदय में यह भाव बसता है। इसी तरह, 'प्रिय प्रवास' की राधा भी बेचैन है।

"प्यारे आवें सु-वचन कहें,/प्यार से गोद लेवें,
ठंडे होवें नयन दुःख हों/दूर मैं मोदि पाऊँ।"

इस तरह द्विवेदी युगीन नायिकाओं के हृदय का प्रवाह बाधित है।

'जुही की कली' में 'जुही की कली' और 'मलयानिल' के स्वच्छंद शरीरिक व्यापार का अंकन उष्मामय मानवीय संवेदन के धरातल पर किया गया है। कविता में भाव बहुत ही स्वाभाविक धरातल पर आते हैं। स्त्री (जुही की कली) प्रेम की प्रधान पुरोहित है, प्रकृति है और मलय पुरुष है, आवेगमय है। अगर मनोविश्लेषण शास्त्र की दृष्टि से देखा जाए, तो पुरुष प्रकृति को चेतना देता है, इसीलिए पुरुष का प्रेम आवेगमय है, लैंगिक आवेगमय। इसीलिए, प्रवासी मलयानिल की संयोगात्मक उत्तेजना की स्मृति बहुत ही जीवंत रूप में चित्रित है। गत्यात्मक वर्णन है :

"आयी याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आयी याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात
आयी याद कांता की कंपित कमनीय गात,"

(राग-विराग, पृ0-48)

क्या लक्ष्मण को ये स्मृतियाँ नहीं आयीं? अवश्य आयी होंगी, लेकिन 'पंचवटी' के लक्ष्मण से मैथिलीशरण गुप्त कहलाते हैं :

"निर्दय उस नायक ने/निपट निठुराई की
कि झोंको की झाड़ियों से
सुंदर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
मसल दिये गोरे कपोल गोल।" (राग-विराग, पृ0-49)

नायक को 'निर्दय' कहना कवि का लैंगिक उत्तेजना की तरफ़ संकेत है, क्योंकि प्रेम अत्यंत कोमल भाव है। मनोविश्लेषण शास्त्रियों की मानें, तो प्रेम में हिंसा 'काम' का अंग है। उस भाव-दशा में, जिसे नायिका सहज स्वीकार कर लेती है। नायक में भोग-भाव है, इसीलिए 'सुंदर सुकुमार देह' का प्रयोग है। यह स्त्री-देह सामंतवाद के गहरे प्रसंगों से जुड़ी हुई है, चाहे वह द्रौपदी की देह हो या राधा की। रीतिकाल में राधा आराध्य होते हुए भी देह के प्रभाव से मुक्त नहीं है—"जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होय।" (बिहारी) परिवेश का प्रभाव ही था कि तन की शक्ति को बिहारी नकार नहीं पाते हैं और तुलसीदास जब कहते हैं कि 'नारि मोहि न नारि के रूपा' वहाँ भी स्त्री का अस्तित्त्व उसका शरीर ही है और निराला भी स्त्री-शरीर में वे सारे गुण खोज लेते हैं, जो पुरुष को आवेगमय करते हैं। 'बंकिम विशाल नेत्र, सुंदर सुकुमार देह और गोरे कपोल गोल'। इसीलिए, नंदकिशोर नवल को यह संदेह नहीं करना चाहिए कि यह उनकी पहली रचना नहीं है—"उसके ('जुही की कली') शृंगार-वर्णन में जो स्थूलता है, वह भी उसके आरंभिक होने का प्रमाण जान पड़ता है, यद्यपि ऐसा मानना ख़तरे से खाली नहीं हैं, क्योंकि निराला में मांसल शृंगार-वर्णन अंत तक मिलता है।" (निराला की कविताएँ-मूल्यांकन और मूल्यांकन, सं. परमानंद श्रीवास्तव, पृ0-31)। मांसल सौंदर्य के साथ निराला की सौंदर्य-दृष्टि में स्वच्छंदतावाद का उदार मतवाद नहीं है, जो 'तोड़ती पत्थर' में "श्याम तन भर बँधा यौवन" अथवा 'राम की शक्ति-पूजा' के शृंगार-भाव में पूरी सांस्कृतिक गरिमा के साथ व्यक्त है—"पलकों का नवपलकों पर प्रथमोत्थान-पतन काँपते हुए किसलय/झरते पराग समुदय..."।

संवेदना के धरातल पर परखा जाए, तो 'जुही की कली' में दैहिकता रीत्यात्मक है, सामंती सौंदर्य-दृष्टि के प्रति विद्रोह नहीं दिखायी पड़ता। प्रेम-भाव का साहस भर है, क्योंकि 'मादक मलय' का संवेग चुंबन में होता है, जहाँ नायक ने चूमे कपोल और जब काम-भाव में नायक आ जाता है, तब ही कपोल 'गोरे कपोल गोल' हो जाते हैं। हालाँकि परंपरित मानदंड के खाँचों में न देखकर अगर कविता का विखंडन किया जाए, तो मनोविश्लेषणशास्त्रियों की काम-विषयक अवधारणाएँ कविता में दिखायी पड़ने लगती हैं, जो सारे आभिजात्य को तोड़ते हुए प्रेम को मानवीय धरातल पर स्थापित करने के साथ ही समस्त हीन-ग्रंथियों को तोड़कर सूक्ष्म प्रेमाभिव्यक्ति की अवधारणा को स्थापित करती हैं। संभवतः, छायावादी कवियों की यही सूक्ष्म दृष्टि स्थूलता के प्रति विद्रोह करते हुए आलोचना के नये मानदंडों की माँग भी करती है।

रीडर, हिन्दी विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोष्ठी

जयप्रकाश कर्दम

उन लोगों का एक छोटा-सा समूह था और वे सब दलित थे। वे लिखते थे या नहीं लिखते थे, लेकिन वे सब लेखक थे। उनमें एक डा0 के0आर0 गौतम थे, जो स्थानीय स्तर पर प्रकाशित होने वाले एक अति-साधारण स्तर के साप्ताहिक पत्र के संपादक थे। गौतम जी के संपादकीयों में न कोई दृष्टि होती थी, न विचार, न दिशा। वे काम भर के लिए संपादकीय होते थे। हाँ, इस लेखक समूह या इससे इतर किसी लेखक का दलित विषयक एकाध लेख यदा-कदा इस साप्ताहिक में प्रकाशित हो जाता था। दूसरे व्यक्ति बी0एस0निम थे, जिन्होंने कभी कुछ नहीं लिखा था। वे केवल गौतम जी के पिछलग्गू बने, उनके स्कूटर पर बैठकर उनके साथ घूमते रहते थे, लेकिन स्वयं को लेखकों में शुमार करते थे या कहिए वे स्वयंभू दलित लेखक थे। तीसरे एस0पी0 तरुण थे, जो यदा-कदा लिखते थे, लेकिन न तो उनका लेखन दलित-विषयक था और न ही गौतम द्वारा संपादित साप्ताहिक पत्र या इसी तरह के एकाध अन्य पत्र-पत्रिका को छोड़कर किसी दलित पत्र-पत्रिका में उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। वह अपने आप को दलित लेखक कहा जाना पसंद नहीं करते थे। किन्तु, यदि कहीं पर दलित लेखक के रूप में उनके नाम का उल्लेख प्रशंसा या सम्मान के साथ हो जाता, तो इस पर उनको कोई आपत्ति नहीं होती थी। बल्कि, अंदर ही अंदर उनको यह अच्छा लगता था, क्योंकि मुख्यधारा के साहित्य में उनकी कहीं कोई पहचान नहीं थी, यहाँ पर कम से कम उनको एक पहचान तो मिलती थी।

इस समूह के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लेखक और अनौपचारिक रूप से इस समूह के नेता थे डॉ0 सुमन समीपी। वह दलित विषयों पर लिखने वाले लेखक थे। दलित लेखक के रूप में उनकी पहचान भी थी। दलित साहित्य की उनकी दो-एक पुस्तकों भी प्रकाशित हो चुकी थीं। दूसरे कई लोगों की तरह गौतम और समीपी दोनों में से किसी ने भी कोई शोध-कार्य नहीं किया था, लेकिन बड़ी शान से वे अपने नाम के साथ डॉ0 लिखते थे, ताकि उनको स्कॉलर समझा जाए। बहुत से लोग उनके नाम के साथ डॉक्टर जुड़ा देख उनसे प्रभावित भी होते थे। कुछ लोग इस भ्रम का शिकार भी हो जाते थे कि वे किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय में प्राध्यापक होंगे और उनको उसी नज़र से देखते थे। विद्वान दिखने का उनको शौक था और डा0 समीपी इस शौक के सबसे बड़े शिकार थे।

इनके अलावा एक-दो अन्य लोग भी इस समूह से जुड़े हुए थे। दूसरे दलितों की तरह "जय भीम" कहकर एक दूसरे का अभिवादन करने वाले ये सब लोग स्वयं को डा0 भीमराव अंबेडकर का अनुयायी कहते थे। इस समूह के सदस्यों में से किसी ने डा0 अंबेडकर द्वारा लिखित अथवा अंबेडकरवादी विचारों पर शायद ही कोई पुस्तक पढ़ी हो, लेकिन वे सभी स्वयं को अंबेडकरवादी लेखक-विचारक तथा अंबेडकरवाद का पुरोधा या विशेषज्ञ समझते थे।

लेखन या विमर्श से ज़्यादा उनकी रुचि बैठकबाज़ी में थी। लगभग प्रतिदिन शाम को वे कहीं न कहीं पर बैठक लगाते थे और शराब के पैगों के साथ अपनी शामों को सामाजिक बनाते हुए, अन्य बातों के अलावा, दलित समाज, आंदोलन और साहित्य पर भी थोड़ी बहुत चर्चा कर लेते थे। यही उनकी संगोष्ठी थी, यही सेमिनार, जिसमें वे ही वक्ता होते थे और वे ही श्रोता भी। साहित्य-चर्चा में भी साहित्य पर चर्चा कम होती थी। प्रायः साहित्य-जगत् की उठा-पटक और हलचलों पर ही चर्चा होती थी। कब, कहाँ पर दलित-साहित्य पर कोई संगोष्ठी, सेमिनार या साहित्य-सम्मेलन हुआ, उसमें कौन-कौन दलित और ग़ैर-दलित लेखक उपस्थित हुए। किसने अपने भाषण या वक्तव्य में क्या कहा। किस लेखक के किसी अन्य लेखक या लेखिका के साथ कैसे संबंध हैं। प्रायः इसी तरह की बातें उनकी चर्चा के मुख्य विषय होते थे। ये लोग साहित्य-संगोष्ठी या सेमिनारों में बहुत कम जाते थे। इसलिए उनमें भाग लेने वाले अपने संपर्क के लेखकों से सुनकर या समाचार-पत्रों में प्रकाशित रिपोर्ट पढ़कर अपने अनुसार निष्कर्ष निकाल लेते थे कि कौन अच्छा लेखक है, कौन ख़राब है, कौन जेनुइन है, कौन तिकड़मबाज़ है। कौन ईमानदार और प्रतिबद्ध है और कौन छद्मवेशी है। कौन दलित-समर्थक है, कौन दलित-विरोधी। समूह का नेता होने के कारण सुमन समीपी इन गोष्ठियों के मुख्य वक्ता होते थे और अध्यक्षीय टिप्पणी भी उन्हीं की होती थी।

उस शाम वे लोग डा0 समीपी के घर एकत्र हुए थे। उनकी गोष्ठी शुरू होने ही वाली थी कि एक अन्य दलित लेखक कुमार आदित्य वहाँ उपस्थित हो गये। डा0 समीपी जानते थे कि कुमार आदित्य शराब नहीं पीते, इसलिए आज शराब के गिलास न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकालकर उन्होंने पत्नी से कहकर चाय बनवायी। कुमार आदित्य दलित-साहित्य की संगोष्ठियों, सेमिनारों आदि में भाग लेते रहते थे। दलित साहित्यकारों के सामने तो उनकी सम्मानजनक स्थिति थी ही, ग़ैर-दलित साहित्यकार भी उनकी समझ और तार्किकता का सम्मान करते थे, इसलिए दलित-साहित्य में संबंधित संगोष्ठी या सेमिनार में उनको एक वक्ता के रूप में आमंत्रित किया जाता था।

डा0 समीपी की पत्नी चाय के प्याले मेज़ पर रख गयीं। चाय की चुस्कियों के साथ थोड़ी देर समाज और राजनीति की हल्की-फुल्की बातें होती रहीं, फिर साहित्य की चर्चा होने लगी। डा0 समीपी ने औपचारिकतावश कुमार आदित्य से पूछा, "आजकल क्या लिख रहे हैं आदित्य जी?"

"नहीं, काफ़ी दिन से कुछ ख़ास लिखना-पढ़ना नहीं हो रहा है।"

इस बीच अपने समाचार-पत्र की एक प्रति कुमार आदित्य को भेंट करते हुए डा0 गौतम ने अनुरोध किया, "आदित्य जी, आप तो इतना लिखते हैं, हमारे पत्र के लिए भी कुछ लिखिए।"

समाचार पत्र को उलट-पुलट कर देखते हुए कुमार आदित्य ने कहा, "आजकल बहुत व्यस्त हूँ। थोड़ी फ़ुरसत मिलेगी, तो आप के लिए भी कुछ न कुछ ज़रूर लिखूँगा।"

डा0 गौतम ने आग्रह के स्वर में कहा, "हम आपकी व्यस्तताओं को समझते हैं। बहुत बड़ी नहीं, छोटी-सी भी कोई रचना आप देंगे, तो हमारे लिए आपका बहुत बड़ा योगदान होगा।"

"वो तो ठीक है, लेकिन समस्या है कि लिखूँ कब मैं? आए दिन किसी न किसी संगोष्ठी या सेमिनार में भाग लेने के लिए जाना पड़ता है। बिना तैयारी के तो नहीं जा सकते न? दफ़्तर के बाद जो भी थोड़ा बहुत समय लिखने-पढ़ने के लिए निकल पाता है, वह सब इसमें लग जाता है। इन सेमिनारों से राहत मिले तो कुछ लिखूँ" कुमार आदित्य ने अपनी व्यस्तता बतायी।

"यह बात तो है। आप तो इधर-उधर बहुत जाते हैं," डा0 सुमन समीपी ने कुमार आदित्य की व्यस्तता को समझते हुए उनके साथ सहमति जतायी।

कुमार आदित्य ने टोका, "अजी जाता नहीं हूँ, जाना पड़ता है। थकान और समयाभाव के कारण कई सेमिनारों में जाने का बिल्कुल मन नहीं करता, लेकिन यह सोचकर अपनी थकान को मारकर भी जाना पड़ता है कि पता नहीं वहाँ पर लोग किस तरह की चर्चा करेंगे। ग़ैर-दलित साहित्यकार कहीं हमारे दलित लेखकों को भटका न दें।"

"आप बहुत अच्छा करते हैं। दलित-साहित्य और आंदोलन के लिए आप बहुत बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। लेखन से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है यह, बल्कि लेखन से कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। लेखन तो बहुत से लोग कर रहे हैं। और भी बहुत से लोग लेखन कर सकते हैं, लेकिन यह काम सब नहीं कर सकते," सुमन समीपी ने कुमार आदित्य की प्रशंसा करते हुए कहा।

"बड़ी-छोटी तो मैं नहीं जानता। मैं सिर्फ़ इतना जानता हूँ कि हम सब अपनी-अपनी भूमिकाओं में हैं और हमको अपनी भूमिकाओं को पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ निभाने की ज़रूरत है," इतना कहकर कुमार आदित्य ने उनकी ओर देखा।

सब ने लगभग एक स्वर में उनके साथ सहमति व्यक्त की, "एकदम सही बात कह रहे हैं आप।"

डा0 समीपी ने अपनी ओर से जोड़ा, "गोष्ठियों में आपके जाने से दलित आवाज़ वहाँ जाती है, आप जाते रहिए," और कुछ क्षण ठहरकर कुछ याद करते हुए बोले, "पिछले सप्ताह भी तो आप किसी सेमिनार में भाग लेने गये थे?"

"हाँ लखनऊ गया था। वहाँ एक संगोष्ठी थी," कुमार आदित्य ने बताया।

"आपके अलावा कोई और दलित लेखक भी आये थे उस गोष्ठी में?"

"हाँ, भारती जी थे, डा0 चैन सिंह थे।"

डा0 चैन सिंह का नाम सुनकर डा0 समीपी कुछ असहज से हो गये और अपने बैठने की अवस्था में थोड़ा सा परिवर्तन लाते हुए बोले, "डा0 चैन सिंह के बारे में आपकी क्या राय है आदित्य जी?"

कुमार आदित्य कुछ समझ नहीं पाये कि डा0 समीपी क्या कहना चाहते हैं। वे बोले, "मैं कुछ समझा नहीं डा0 साहब, आप किस बारे में बात कर रहे हैं?"

डा0 समीपी ने कहा, "यह चैन सिंह जाटव नहीं लगता।"

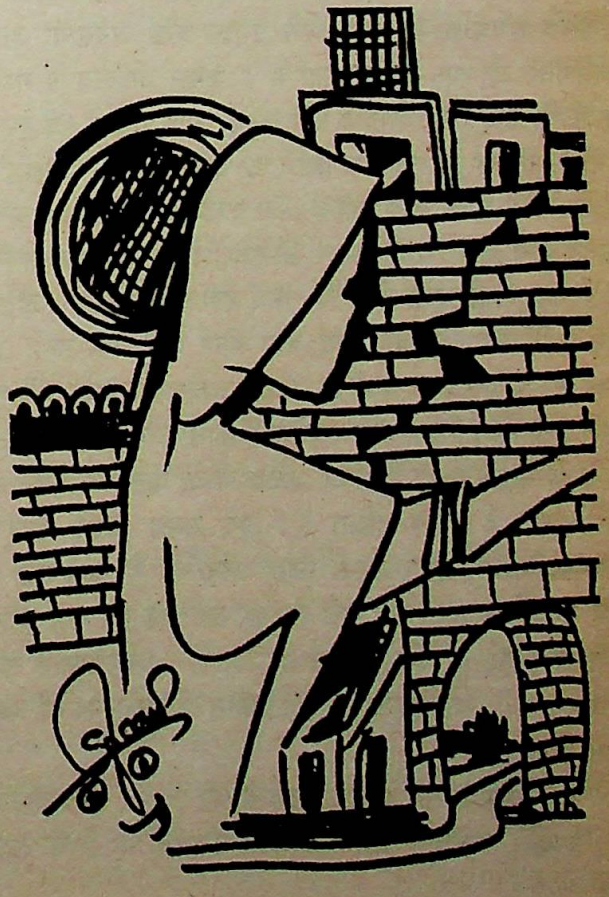

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आपका मतलब?" कुमार आदित्य यह सुनकर चौंके।

कुमार आदित्य को शायद इस बात की उम्मीद नहीं थी कि कोई दलित लेखक इस प्रकार की बातें भी कर सकता है।

डा0 समीपी ने बेझिझक कहा, "वह भंगी लगता है। देखो न अपने प्रत्येक लेख में वह ओमप्रकाश वाल्मीकि का उल्लेख ज़रूर करता है और वाल्मीकि को ही समस्त दलित लेखकों में सबसे ऊपर रखता है।"

कुमार आदित्य को लगा कि डा0 समीपी अपरिपक्व बात कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "डा0 चैन सिंह की अपनी दृष्टि है। उनको जैसा लगता है, वे चीज़ों को जिस रूप में देखते हैं, वैसा लिखते हैं। यह कोई ज़रूरी नहीं है कि किसी एक व्यक्ति के विचार से दूसरे सब लोग सहमत हों। असहमति हो सकती है। चैन सिंह को अन्य दलित लेखकों की अपेक्षा ओमप्रकाश वाल्मीकि का लेखन अधिक प्रभावित करता है, तो इसमें ग़लत क्या है ? आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिए।"

डा0 समीपी ने प्रतिवाद किया, "नहीं, आप नहीं समझते आदित्य जी। यह भंगियों की मुहिम है। वे सब एकजुट होकर दलित-साहित्य के मूवमेंट पर काबिज़ होना चाहते हैं।"

कुमार आदित्य डा0 सुमन समीपी को, बौद्ध और अंबेडकरवादी आंदोलन से जुड़ा होने के कारण समन्वयवादी व्यक्ति समझे थे। डा0 समीपी के मुख से इस तरह की संकीर्णतापूर्ण बातें सुनकर उनको धक्का सा लगा और वे यह सोचने को विवश हुए कि यह कैसा अंबेडकरवाद है ? बाबा साहब अंबेडकर ने जीवन भर जाति-भेद का विरोध किया और वे जाति-विहीन समाज के निर्माण के लिए संघर्षरत रहे, फिर कैसे उनका कोई अनुयायी जातीय संकीर्णता की बात कर सकता है ? कुमार आदित्य नें महसूस किया कि डा0 सुमन समीपी और उनके साथी धुंध में डूबे हुए हैं। कुमार आदित्य ने उनको समझाने का प्रयास किया, "देखिए यह परेशान होने वाली बात नहीं है। जो कोई भी अच्छा काम करेगा, उसका नाम होगा, चर्चा होगी। ओमप्रकाश वाल्मीकि अच्छा लिख रहे हैं, तो उनकी चर्चा होगी ही। क्यों नहीं होनी चाहिए। जो लोग काम नहीं करेंगे, उनकी चर्चा कहाँ होगी और क्यों होगी ?.... किसी भी आंदोलन पर कभी किसी एक व्यक्ति का कब्ज़ा नहीं हुआ करता। जो लोग निष्ठा और समर्पण से काम करते हैं, वे आगे आते हैं। वे ही नेतृत्व करते हैं। फिर जाटव हो या वाल्मीकि इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है। सब दलित हैं। अब समय अपने अंदर के जाति-भेद को भुलाकर उससे ऊपर उठने का है। जब तक हम अपने अंदर का जाति-भेद नहीं मिटाते, तब तक हम एक नहीं हो सकते और एक हुए बिना अपने अधिकारों के लिए सार्थक संघर्ष नहीं कर सकते। यह एकता आएगी आपस के जाति-भेद की दीवार गिराने से।"

डा0 समीपी को कुमार आदित्य का विचार अव्यावहारिक लगा। वे बोले, "लेकिन जहाँ पर आपस में इतना भेद है कि अकेले चमार ही जाटिया, जाटव, धमाड़ आदि न जाने कितनी उप-जातियों में बँटे हैं और परस्पर ऊँच-नीच की भावना के चलते एक-दूसरे के साथ रोटी-बेटी का संबंध नहीं बनाते हैं, वहाँ पर जाटव और वाल्मीकियों के बीच से जाति की दीवार कैसे मिटेगी? यह भेद आसानी से मिटने वाला नहीं है।"

डा0 सुमन समीपी का तर्क सही था, किंतु कुमार आदित्य ने अपना प्रयास जारी रखा, "मैं भी मानता हूँ कि यह भेद आसानी से मिटने वाला नहीं है, पर क्या आसानी से होगा, तभी हम किसी कार्य को करेंगे। किसी कार्य को क्या केवल इसलिए छोड़ देना उचित है कि वह कठिन है। परीक्षा में पास होना भी क्या आसान है, वह भी तो कठिन है। क्या इस कारण से हम पढ़ना-लिखना या परीक्षाएँ देना छोड़ देते हैं ? हम परीक्षाओं में सफल होने के लिए प्रयास और परिश्रम करते हैं कि नहीं ? जब हम निरंतर और कड़ी मेहनत करते हैं, तो सफल होते हैं। हम ईमानदारी से और निरंतर प्रयास करें, तो जाटव और भंगी के बीच भेदभाव को मिटाया जा सकता है।"

डा0 समीपी ने अपना प्रतिवाद जारी रखा, "चलो ठीक है, आपकी बात मानकर हम लोग इस भेदभाव को भुला देते हैं, और सच तो यह है कि हम लोग पहले से ही इस प्रकार के भेदभाव में कोई विश्वास नहीं करते, किंतु क्या हम चार-छह लोगों के बदल जाने से सारा समाज बदल जाएगा ? लोग हमें पागल कहेंगे। नहीं भी कहेंगे, तो कुछ दिन में हम लोग खुद पागल सिद्ध हो जाएँगे।"

कुमार आदित्य ने भी समझाने का अपना प्रयास जारी रखा, "देखिए, परिवर्तन एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया कहीं से भी शुरू हो, अच्छा है। किसी भी प्रक्रिया या मुहिम की शुरूआत कुछ लोगों से ही होती है। बाद में कारवाँ आगे बढ़ता जाता है, लोग जुटते जाते हैं। रही पागल कहे जाने की बात, तो जो भी परंपरा को तोड़ता है, वह परंपरावादियों द्वारा पागल ही कहा जाता है। ईसा, बुद्ध, कबीर—समाज ने किसको पागल नहीं कहा।"

"लेकिन आप जितने आश्वस्त हैं, मामला उतना सरल नहीं है। यहाँ तो अपने आसपास के लोग ही सबसे पहले पैरों पर कुल्हाड़ी चलाएँगे। कैसे चलोगे दो क़दम भी परिवर्तन की राह पर।"

"आपकी सोच निराशावादी है। नकारात्मक ही क्यों सोचते हैं आप, सकारात्मक क्यों नहीं सोचते?"

"केवल सोचने भर से क्या हो जाएगा, जब सच्चाई वही है, जो मैं कह रहा हूँ।"

"क्यों नहीं होगा कुछ भी। सोचने से बहुत कुछ हो सकता है। सोच बदलने से बहुत कुछ बदल सकता है। जब सोचेंगे, तो उसे क्रियान्वित करने की भी कोशिश करेंगे और उसका कोई परिणाम अवश्य निकलेगा।"

"आप से पार पाना मुश्किल है," कुमार आदित्य के तर्कों के समक्ष स्वयं को निरुत्तर और पराजित सा पाकर डा0 समीपी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ खीझ सी हुई, लेकिन अपनी खीझ पर काबू पाते हुए बोले, "अच्छा चलो, हम आपकी बात मान लेते हैं। पर कैसे शुरूआत करेंगे आप इस परिवर्तन की?"

"हाँ, मैं बताता हूँ। सबसे पहले हम भंगी और चमार, सभी पढ़े-लिखे और समझदार लोगों को यह समझाने का प्रयास करेंगे कि हमारी आर्थिक दुर्दशा और सामाजिक पिछड़ेपन का कारण हमारी जाति है। हमें जाति-व्यवस्था का विरोध करना चाहिए। हमारी उन्नति और विकास जाति-व्यवस्था के नाश पर टिका है। हमें जातिवाद से ऊपर उठना चाहिए और इसके लिए हमें चाहिए कि हम अपने अंदर से जाति-भेद की दूरी को मिटाएँ।"

"लेकिन कैसे मिटेगी यह दूरी? कोई न कोई उपाय तो बताना पड़ेगा। केवल कहने भर से तो काम नहीं चलेगा।"

"हाँ, उपाय बताएँगे न। हम लोगों को बताएँ कि वे आपस में रोटी-बेटी के संबंध बनाएँ। रक्त-संबंध बनने से अपने आप नज़दीकियाँ आ जाएँगी।"

"क्या बात कह रहे हैं आप आदित्य जी! अब हम अपने बच्चों की शादी भंगियों में करेंगे... उन लोगों का जो स्तर है, वे तो उससे ऊपर उठने वाले नहीं है। उलटे हमारे बच्चे और उस गड्ढ़े में जा गिरेंगे।"

कुमार आदित्य देख रहे थे कि उनके तर्कों का, उनके समझाने का कोई प्रभाव डा0 समीपी और उनके साथियों पर नहीं पड़ रहा था। वे निरंतर प्रतिवाद करते जा रहे थे। वाद-विवाद में डा0 समीपी ही उलझे थे। डा0 गौतम और बी0एस0 निम अनमने मन से केवल हाँ-हूँ कर रहे थे। चर्चा में उनकी कोई रुचि नहीं थी। वस्तुतः वे कुमार आदित्य को एक मूर्त्त विघ्न की तरह देख रहे थे, जो उनकी शाम को रंगहीन बनाने के लिए आ टपके थे। वे मन ही मन यह कामना कर रहे थे कि कुमार आदित्य किसी तरह यहाँ से चले जाएँ, ताकि वे लोग अपनी अगली बैठक जमा सकें। बी0एस0 निम ने एक-दो बार इशारों में डा0 समीपी से कहा भी कि कुमार आदित्य को जल्दी से चलता करो, किंतु डा0 समीपी ऐसा नहीं कर पा रहे थे।

कुमार आदित्य जानते थे कि ये लोग बाबा साहब अंबेडकर के अनुयायी होने का बहुत दम भरते हैं। शायद बाबा साहब के हवाले से इन लोगों को समझाया जा सके। यह सोचकर अंबेडकररूपी अस्त्र का प्रयोग करते हुए वे बोले, "हम लोग बाबा साहब अंबेडकर के अनुयायी हैं। बाबा साहब ने सदैव जाति-भेद की दीवारों को तोड़ने पर बल दिया था। वे दलित-पिछड़ी जातियों की उन्नति और विकास के प्रबल पक्षधर और प्रवक्ता थे। परस्पर जाति-भेद को मिटाये बिना कैसे होगी उन्नति और विकास?"

इस अस्त्र ने अपना काम किया। डा0 समीपी और उनके साथियों का प्रतिवाद का स्वर कमज़ोर पड़ गया। डा0 समीपी चुप लगा गये। लेकिन डा0 गौतम ने कहा, "बाबा साहब की बात अलग है। उनका उद्देश्य दूसरा था।"

"क्या उद्देश्य था उनका ?" कुमार आदित्य ने प्रश्न किया।

इस प्रश्न का उनके पास कोई उत्तर नहीं था। वे सब चुप हो गये तथा एक-दूसरे की ओर देखने लगे। सैद्धांतिक रूप से वे लोग कुमार आदित्य के विचार से सहमत हो रहे थे, किंतु इसे क्रियात्मक रूप देने को उनका मानस तैयार नहीं हो पा रहा था। इसलिए, अपने स्वर को थोड़ा बदलते हुए डा0 गौतम बोले, "आप समझते हैं कि लोग आपकी बात आसानी से मान जाएँगे?... इतना आसान मामला नहीं है यह, जितना आप समझ रहे हैं।"

"आसान तो नहीं है, यह मैं मानता हूँ। हमें मेहनत करनी पड़ेगी। लेकिन, मेरा विश्वास है कि थोड़ा देर से ही सही, लोग हमारी बात मानेंगे।"

"उसका क्या आधार है आपके पास?"

"यह कि पहले हम लोग पहल करके अपने बच्चों के विवाह भंगी समाज के बच्चों के साथ करें। जब हम स्वयं उदाहरण बनकर सामने जाएँगे, तो हमारे अंदर नैतिक बल आएगा। इससे हमारी आवाज़ में स्वतः ताक़त आएगी और हम दूसरे लोगों को प्रभावित और प्रेरित कर सकेंगे।"

"यह आप कह रहे हैं कि आप अपने बच्चों की शादी भंगी समाज में कर देंगे। क्या आपकी पत्नी और बच्चे भी तैयार होंगे इसके लिए?"

"वे तैयार नहीं होंगे, उनको तैयार करना पड़ेगा। एक तो हमें निरंतर जाति के दोष और उसकी निस्सारता उनको समझानी होगी। दूसरे, परस्पर परिवार-मिलन के माध्यम से उनको भंगी समाज के परिवार और बच्चों के निकट लाने का प्रयास करना होगा। जब जाटव-भंगी-सब दलित लेखक सभा-गोष्ठियों से अलग परिवारों के स्तर पर भी मिलना-जुलना बढ़ाएँगे तो हमारी पत्नियाँ और बच्चे भी एक-दूसरे के निकट आएँगे, एक दूसरे के मित्र बनेंगे। इन मैत्री-संबंधों को विवाह- संबंधों में परिवर्तित करना कठिन नहीं होगा।"

"बात तो आप ठीक कह रहे हैं, लेकिन पता नहीं क्यों मेरा मन नहीं मानता कि यह सब इतना आसान होगा, जैसा आप सुझा रहे हैं।"

"क्यों ? क्या कठिनाई है इसमें ? ज़रूरत तो सिर्फ़ हमको अपने अंदर के उच्चता-हीनता के बोध से ऊपर उठने की है। एक बार यह हो जाए, फिर कुछ भी कठिन नहीं होगा। और, यह सब परस्पर मेल-जोल के बढ़ने तथा विषमता-विरोधी और समतामूलक विचारों के प्रचार-प्रसार से होगा।"

इससे आगे अब उनके पास शायद कोई तर्क नहीं बचा था। कुमार आदित्य के तर्कों के समक्ष उन्होंने समर्पण कर दिया था। फिर भी, डा0 समीपी ने आशंका जतायी, "हम तो अपने बच्चों की शादी भंगी बच्चों के साथ करने को तैयार हैं। लेकिन इस समस्या का क्या करें कि भंगियों में ज़्यादा पढ़े-लिखे लड़की-लड़के मिलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हैं, जबकि हमारे बच्चे, आप जानते ही हैं उच्च शिक्षित हैं।"

"यह कौन कहता है कि आप अयोग्य भंगी लड़के-लड़कियों के साथ अपने बच्चों की शादी करें। योग्य लड़के-लड़कियों के साथ करें।"

"और यदि भंगियों में योग्य लड़के-लड़की न मिलें तो?"

"तो जहाँ जिस जाति में भी योग्य लड़का-लड़की मिले, उसके साथ करें। मूल उद्देश्य जाति के बंधनों को तोड़ना है और इसमें प्राथमिकता भंगी समाज के साथ संबंध बनाने को देनी चाहिए।"

डा0 समीपी के पास भी अब शायद कहने को कुछ बाक़ी नहीं रह गया था। वे बोले, "यह ठीक है। इसमें कोई दिक़्क़त नहीं है। हमारे बच्चे जिस तरह के खुले वातावरण में पढ़-लिख रहे हैं, शायद वे भी अंतर-अंतरजातीय विवाह को पसंद करेंगे।"

डा0 समीपी के इन शब्दों के साथ आज की चर्चा का समाहार हो गया था।

कुमार आदित्य एक ख़ास उद्देश्य से यहाँ आये थे। वे दलित-साहित्य की एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू करना चाहते थे। इसके लिए सहयोग और साधन जुटाने के लिए वे दलित लेखकों और शुभचिंतकों से संपर्क कर रहे थे। डा0 समीपी के घर भी वे इसी उद्देश्य से आये थे, किंतु बातचीत का रुख़ दूसरी ओर मुड़ जाने से पत्रिका के बारे में कोई बात नहीं हो सकी थी।

"अच्छा डा0 साहब, अब चलता हूँ," कहकर कुमार आदित्य ने डा0 समीपी सहित सबसे हाथ मिलाया और डा0 समीपी के घर से बाहर हो गये। डा0 समीपी उनको दरवाज़े तक छोड़ने गये।

कुमार आदित्य के चले जाने के बाद डा0 गौतम, एस0पी0 तरुण और निम ने एक-दूसरे की ओर देखा। लगभग सभी के चेहरों पर इस बात का मलाल झलक रहा था कि आज उनकी गोष्ठी बेमज़ा रह गयी थी। अब पुनः गोष्ठी लगना संभव नहीं दिख रहा था।

चलो, अब चलते हैं। कल बैठेंगे," कहकर वे लोग भी उठ खड़े हुए और अपने-अपने घरों की ओर चल दिये।

बी-634 डी.डी.ए. फ़्लैट्स
ईस्ट ऑफ़ लोनी रोड, दिल्ली-110093

लघु कथा

'बदहाल मानसिकता'

कृष्ण चन्द्र महादेविया

आज फिर युवा बेटी के दर्द शुरू हुई तो लक्ष्मी ने अपने पति को तुरंत गाँव की सयानी दाई के पास भेज बुला लिया। बुढ़ियाई दाई ने आते ही युवा बेटी के पेट पर कई बार ऊपर से नीचे, दाएँ से बाएँ पेट की मालिश की किन्तु पेट का दर्द कतई शांत न हुआ। दाई ने आँखें गोल-गोल घुमाते लक्ष्मी से कहा—"लगता है, तुम्हारी बेटी के पेट में गर्भ है।"

"नहीं-नहीं दाई मौसी, कुँवारी बेटी के पेट में बच्चा कहाँ से आएगा?... आप ध्यान से देखिए न मौसी।" लक्ष्मी गिड़गिड़ाई।

"कई महीनों का है री ऽ ऽ ऽ।" दाई ने पुनः पेट टटोलते अपनी अक्ल दिखाई।

"न ऽ ऽ हीं माँ, नहीं माँ।.... ये झूठ बोल रही है।... झूठ माँ ऽ ऽ।" भीषण दर्द सहते युवा बेटी ने बहुत कठिनाई से कहा।

"मैं झूठी, सच्ची तो ये है।.... मगर मैं कहे देती हूँ इसके पेट में पाप है। बच्चे जनाते-जनाते मैं बूढ़ी हो गई हूँ हाँ ऽ....। मैं चलती हूँ।

दाई भड़कती हुई चली गयी जबकि लक्ष्मी उसे रोकती ही रह गई। बेटी के पेट के दर्द के साथ अब मन में भी दर्द होने लगा था।

लक्ष्मी और उसके शौहर ने आपस में मशविरा करके दर्द में तड़पती बेटी को शहर के अस्पताल में ले जाना ही ठीक समझा और वे उसे पास के शहर के अस्पताल में ले गए। अस्पताल में महिला डाक्टर ने सांत्वना देने के साथ खूब गहराई से जांच की। अल्ट्रासाउन्ड करा कर रसौली होने की बात बताई। ऑपरेशन से रसौली निकाल दी गई और बेटी को असहनीय पीड़ी से निजात मिली। स्वस्थ हो जाने पर वे बेटी को गांव में अपने घर ले आए। पर गाँव में कुँवारी माँ का शोर मच गया था। रसौली की सच्चाई किसी को भी हज़म नहीं हो रही थी। जितने मुँह उतनी बातें। समाज में बदहाल मानसिकता के लिए कौन जिम्मेवार है?... कौन ?

कृष्ण चन्द्र महादेविया
विकास कार्यालय पद्दार, मण्डी हिमाचल प्रदेश-176121

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समयांतर

अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'

वैसे तो उनका पूरा नाम पंडित रामेश्वर तिवारी था, लेकिन आम बोलचाल में लोग उनको छेदा पंडित के नाम से ही जानते थे। उनके छेदा पंडित के नाम से प्रसिद्ध होने के बारे में गाँव-जवार में एक कहानी प्रचलित थी। बताते हैं कि छेदा पंडित से पहले उनके माँ-बाप की दो संतानें पैदा होने के एक साल के अंदर ही मर चुकी थीं। इसलिए छेदा पंडित के पैदा होते ही किसी टोटके के अंतर्गत उनकी नाक तथा दोनों कान छिदा दिये गये। और, इसे संयोग कहें या टोटके का प्रभाव कि छेदा पंडित अकाल मृत्यु से बच गये। बचपन में छेदा के नाम से जाने वाले रामेश्वर तिवारी बाद में छेदा पंडित के नाम से ही मशहूर हो गये।

छेदा पंडित न सिर्फ़ मनियर क़स्बे बल्कि उस क़स्बे के दस-बारह किमी. की परिधि में आने वाले कम से कम दो-ढ़ाई दर्जन छोटे-बड़े गाँवों के सर्वमान्य पुरोहित और पंच थे। उनके प्रभावक्षेत्र के अंतर्गत आने वाले इन सभी गाँवों में सही-ग़लत, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म और सुकर्म-कुकर्म का निर्धारण उन्हीं के श्रीमुख से होता था। वे जिस बात को उचित कह दें, उसे उचित और जिस बात को अनुचित कह दें, उसे अनुचित मान लिया जाता था। छेदा पंडित ने किसी विद्यालय से शिक्षा ग्रहण नहीं की थी और न ही उनके पास किसी विश्वविद्यालय अथवा अन्य संस्थान से जारी किसी प्रकार की डिग्री या प्रमाणपत्र था। फिर भी बड़े से बड़े अधिकारी, नेता और डिग्रीधारी लोग उनके प्रभामंडल के आगे नतमस्तक रहते थे। क्षेत्र में इस बात की ख्याति थी कि छेदा पंडित वेद-पुराण, गीता-रामायण, पत्रा-पंचाग, ज्योतिष तथा यंत्र-मंत्र-तंत्र आदि विद्याओं के पहुँचे हुए जानकार थे। पंडिताई का यह ज्ञान, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा एक विशाल जन समुदाय पर पुरोहिती का एकाधिकार उन्हें अपने पिता स्वर्गीय शिवशंकर तिवारी से विरासत में प्राप्त हुआ था। लब्बो-लुबाब यह कि उस ग्रामीण अंचल के एक काफ़ी बड़े भू-भाग की जनता पर एक धर्मगुरु के रूप में उनका अच्छा-खासा दबदबा था।

छेदा पंडित भले ही किसी विद्यालय में न पढ़े हों लेकिन सामाजिक जीवन की पाठशाला से भलीभाँति पककर कढ़े अवश्य थे। उनकी सबसे बड़ी योग्यता यह थी कि अपने पूर्वजों से मिली विरासत को उन्होंने बख़ूबी सँभाल रखा था। अपनी महत्ता कब, कहाँ और कैसे प्रदर्शित करनी है, लोगों के विश्वास को कब, कैसे भुनाना है, धर्म के चाबुक का कहाँ, कैसे इस्तेमाल करना है—ये सारे लटके-झटके उन्हें बहुत अच्छी तरह आते थे। आम में ख़ास बने रहने, यानी अपनी विशिष्टता स्थापित करने के लिए वे रहते भी बहुत ताम-झाम और नखरे के साथ थे। घुटे, चमकते सिर पर पीछे की तरफ़ लटकी मोटी, लंबी गाँठ बँधी चुटिया; ताँबे-सा दमकता रंग मोटा, थुलथुला शरीर; गले में रुद्राक्ष की मोटी-सी माला; कंधे से होकर बगल में लटकता मोटा-सा जनेऊ; ललाट पर रोली, चंदन का बड़ा-सा त्रिपुंड तथा कमर में साड़ी की तरह बँधी केसरिया रंग की महीन धोती, जिसके आधे हिस्से को वे कमर के ऊपर नंगे शरीर पर आँचल की तरह ओढ़े रहते थे। संक्षेप में, ऐसा था छेदा पंडित का स्वरूप, जिसे देखते ही विशिष्टता का आभास होता था और देखने वाला उस विशिष्टता के आतंक से आतंकित हो उठता था।

क़स्बे की घनी आबादी से थोड़ा अलग उत्तर दिशा में ऊँचाई पर स्थित एक बड़े-से अहाते में छेदा पंडित का आवास था, जो पूरे इलाके में पाठशाला के नाम से जाना जाता था। बताते हैं कि छेदा पंडित के दादा जगन्नाथ तिवारी संस्कृत, ज्योतिष, तंत्र-मंत्र तथा कर्मकांड आदि के प्रकांड विद्धान थे। उस अहाते में वे गुरुकुल परंपरा की एक पाठशाला चलाया करते थे, जिसमें काफ़ी दूर-दूर के ब्राह्मण विद्यार्थी अध्ययन के लिए आया करते थे और वर्षों वहीं रहकर ज्योतिष, कर्मकांड तथा पुरोहिताई आदि की शिक्षा ग्रहण किया करते थे। यद्यपि, जगन्नाथ तिवारी के मरने के साथ ही पाठशाला का स्वरूप बिखरने लगा था, फिर भी छेदा पंडित के पिता स्व. शिवशंकर तिवारी अपने जीवनकाल तक उसे जैसे-तैसे सहेजे रहे। शिवशंकर तिवारी के मरने के बाद पाठशाला तो बंद हो गयी, लेकिन उनकी यजमानी इतनी दूर-दूर तक फैल चुकी थी कि उसे सँभालने के लिए छेदा पंडित ने चार ब्राह्मण युवकों को अपने सहायक के रूप में नियुक्त कर रखा था। वे ब्राह्मण युवक छेदा पंडित के प्रतिनिधि के रूप में उनके यजमानों के यहाँ होने वाले पूजन-हवन, जन्म-मरण तथा शादी-ब्याह आदि कर्मकांडों को संपन्न कराने जाया करते थे और दान-दक्षिणा में प्राप्त आय का एक निश्चित हिस्सा छेदा पंडित को सौंप देते थे।

छेदा पंडित की तंत्र-मंत्र विद्या पर क्षेत्र के लोगों, विशेष रूप से महिलाओं को आगाध विश्वास था, अतः उनके आवास पर ग्रह-नक्षत्रों तथा भूत-प्रेत आदि के कारण परेशान लोगों की भारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीड़ जुटती थी। कुछ तो इस भीड़ के कारण और कुछ अपनी महत्ता बनाये रखने के उद्देश्य से छेदा पंडित अपने आवास से बहुत कम निकला करते थे। पूरे क़स्बे में बमुश्किल दस-बारह ही ऐसे सौभाग्यशाली घर थे, जहाँ पूजा-पाठ या अन्य कोई कर्मकांड संपन्न कराने के लिए छेदा पंडित स्वयं उपस्थित हुआ करते थे, संयोग से मेरा घर भी उनमें से एक था।

यह सन् 1950-52 के आसपास की बात है, जब हम लोग आठ-दस साल के उछलते-कूदते बच्चे हुआ करते थे। वह मेरे दादा जी स्व. ठाकुर शमशेर बहादुर सिंह का समय था। मेरे दादा जी की गिनती इलाके के चंद प्रतिष्ठित लोगों में होती थी, क्योंकि वे क़स्बे के ज़मींदार रह चुके थे। यद्यपि, हमारे होश सँभालने तक ज़मींदारी प्रथा समाप्त हो चुकी थी, फिर भी उनका रौब-दाब काफ़ी हद तक पूर्ववत ही कायम था। दादा जी मोटे गद्दे बिछे तख़्त पर मसंद के सहारे अधलेटे होकर हुक्का गुड़गुड़ाते रहते और पूरे आधा दर्जन नौकरों की फौज उनकी सेवा में लगी रहती थी।

मुझे अच्छी तरह से याद है कि जिस किसी दिन हमारे घर में किसी पूजा-पाठ का आयोजन होता और उसे संपन्न कराने के लिए छेदा पंडित को हमारे घर आना होता, उस दिन घर में एक दहशत का-सा माहौल व्याप्त हो जाता था। हम बच्चों को सख़्त हिदायत होती कि पंडित जी के आगमन के पश्चात न तो हम शोर-गुल, धमा-चौकड़ी करें और न ही पंडित जी के निकट जाने का दुस्साहस करें। सभी के मन में यह भय समाया रहता था कि न जाने कौन-सी बात पंडित जी को नागवार गुज़रे और वे कुपित हो जाएँ। जिस दिन छेदा पंडित का आगमन होना होता, उस दिन बाहर वाले कमरे की गोबर-मिट्टी से अच्छी तरह लिपाई होती, लकड़ी के तख़्ते (आसन), जिस पर बैठकर पंडित जी पूजा कराया करते थे; को गंगाजल मिले पानी से धोया जाता तथा कमरे के अंदर ढेर सारी धूप, अगरबत्ती आदि सुलगायी जाती। बायें हाथ में छाता तथा दाहिने हाथ में अपने पोथी-पत्रा का बस्ता सँभाले केसरिया रंग की आधी धोती कमर में लपेटे तथा शेष आधी को साड़ी की तरह ओढ़े, पैरों में लकड़ी की खड़ाऊँ पहने छेदा पंडित जब खटर-पटर करते अपने आवास से निकलते, तो लोग स्वयं ही रास्ता खाली करके किनारे हट जाया करते थे। उनके पीछे-पीछे एक सहायक चलता था, जो ठाकुर जी की डिब्बी, शंख, घंटा तथा आरतीदान वगैरह का झोला लिये रहता था।

छेदा पंडित के पधारते ही दादा जी, दादी जी और मेरी माता जी से लेकर चाचा, चाची, बुआ और घर के नौकर-चाकर आदि सारे लोग उनके सम्मुख अर्द्ध साष्टांग की मुद्रा में नत हो जाते थे। अनुशासन के डंडे के बल पर हम बच्चों को भी उसका अनुकरण करने के लिए बाध्य किया जाता था। पंडित जी जब तक रहते घर में रहते एक आतंक का सा वातावरण बना रहता था और छोटा-बड़ा, हर कोई उनके सामने एक पाँव पर खड़ा रहता था। पूजा-पाठ के बाद जब तक वे भोजन न करलें और दान-दक्षिणा लेकर वापस न चले जाएँ, तब तक घर का माहौल सामान्य नहीं हो पाता था। उनके जा चुकने के बाद ही घर के लोग खुलकर हँसते-बोलते और अन्न-जल ग्रहण करते थे।

उन्हीं दिनों, यानी मेरे बचपन की ही एक विशेष घटना है, जो मेरी स्मृति में अभी तक ताज़ा बनी हुई है। मेरे गाँव के दक्षिण टोले में मुंशी सत्यनारायण लाल नाम के एक व्यक्ति हुआ करते थे। आमदनी का कोई निश्चित स्रोत न होने के कारण उनके घर की स्थिति बहुत दयनीय थी। अधिकांश खेती बेटियों की शादी में बिक चुकी थी, कुछ रेहन पड़ी थी और जो थोड़ी-बहुत शेष थी वह भी, बँटाईदारों के भरोसे थी। उनके दो बेटे थे, जो क़स्बे के हाईस्कूल से दसवीं तक की पढ़ाई करने के बाद कुछ समय तक बेकार बैठे रहे, फिर रोज़ी-रोटी की तलाश में कलकत्ता निकल गये थे। उन दोनों के कलकत्ता जाने के कुछ महीनों बाद मुंशी जी के नाम कलकत्ता से मनीऑर्डर आने लगा और इस प्रकार धीरे-धीरे उनके घर की हालत सुधरने लगी।

मुंशी जी ने गाँव-जवार में यह प्रचारित कर रखा था कि उनके बड़े बेटे को कलकत्ता के किसी प्राइमरी स्कूल में मास्टरी मिल गयी थी और छोटे बेटे को किसी सेठ ने बतौर मुनीम रख लिया था। अब बेटों की कमाई की बदौलत वे अच्छा खाने-पहनने लगे थे। बदहाल, परेशान मुंशी जी के साथ भले ही किसी की सहानुभूति न रही हो, लेकिन उनकी बदहाली दूर होते देख गाँव के तमाम लोग उनके प्रति ईर्ष्यालु अवश्य हो उठे थे। हद तो तब हो गयी, जब लाल सिंह के हाथों गिरवी रखा अपना कछियाना खेत मुंशी जी ने सूद-ब्याज़ सहित क़र्ज़ा चुकाकर छुड़ा लिया। मुंशी जी अच्छा खाने-पहनने और चैन से रहने लगे, यह बात लोगों की आँखों में चुभने लगी। उनको परेशान करने के लिए अवसर ढूँढ़े जाने लगे और दैवयोग से शीघ्र ही लोगों को अवसर भी मिल गया। गाँव-जवार के पचासों लोग कमाई करने कलकत्ता गये हुए थे। उन्हीं में से कुछ लोगों ने गाँव लौटने पर यह रहस्योद्घाटन किया कि मुंशी जी के बेटे कलकत्ता में न तो मास्टरी कर रहे थे न ही मुनीमी; बल्कि दोनों ने मिलकर कलकत्ता के बड़ा बाज़ार क्षेत्र में किसी गली के नुक्कड़ पर चाय की दूकान खोल रखी थी। बड़ा भाई अँगीठी पर चाय बनाता था और छोटा भाई जूठे गिलास धोने तथा आसपास की दूकानों पर चाय पहुँचाने का काम करता था। इतना ही नहीं, कुछ लोगों का तो यह भी कहना था कि बड़े ने वहाँ किसी विधवा बंगालिन ब्राह्मणी से शादी कर ली थी और दोनों भाई उसी के घर में रहने लगे थे। खुड़पेंची क़िस्म के लोगों के लिए इतना मसाला काफ़ी था। कलकतिया लोगों द्वारा लायी ख़बर देखते ही देखते पूरे इलाके में फैल गयी और हर तरफ़ मुंशी जी की थू-थू होने लगी।

यह सन् 1950-52 के आसपास की बात है, जब बिरादरी के हुक्के-पानी और अपनी नाक की चिंता लोगों की सबसे बड़ी चिंता हुआ करती थी। मुंशी सत्यनारायण लाल के बेटों का कृत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं के लिहाज़ से बहुत ही गंभीर और निंदनीय था। कुछ अति उत्साही लोगों ने इस सामाजिक समस्या पर विचार के लिए पंचायत बुला डाली। क्षेत्र के सर्वमान्य पंच छेदा पंडित की अध्यक्षता में पंचायत जुटी और मुंशी सत्यनारायण लाल को बतौर अभियुक्त कटघरे में खड़ा किया गया। उनके ऊपर मुख्यतः दो आरोप थे। प्रथम तो यह कि सवर्ण बिरादरी के कायस्थ जाति में पैदा उनके बेटे दूसरे के जूठे बरतन धोने जैसा निकृष्ट कार्य कर रहे थे, यानी मनु महाराज की बनायी सामाजिक व्यवस्था का सरेआम उल्लंघन कर रहे थे और दूसरा यह कि उनके बड़े बेटे ने जाति, गोत्र आदि का अतिक्रमण करके दूसरी जाति में शादी की और वह भी एक विधवा औरत के साथ। इस प्रकार, वह खुद तो भ्रष्ट हुआ ही, साथ ही साथ उसने एक विधवा ब्राह्मणी को भी पथभ्रष्ट कर दिया। पंचायत में जिस किसी को भी बोलने का अवसर मिला, सभी ने मुंशी जी के पुत्रों के कृत्य की घोर निंदा की और उनके सामाजिक बहिष्कार की पुरज़ोर माँग की।

घंटों अनर्गल आरोपों और निंदा-प्रस्तावों की बौछार झेलने के बाद जब मुंशी जी अपना पक्ष रखने के लिए खड़े हुए, मर्माहत थे। अपना पक्ष रखने के बहाने उन्होंने अच्छा-ख़ासा भाषण दे डाला—"पंचो! मैं किसी दूसरे देश या प्रदेश से नहीं आया हूँ। यह मेरा पुश्तैनी गाँव है और मैं जन्म से इसी गाँव में आप सभी के बीच ही रहता आया हूँ। मेरे घर की माली हालत किसी से छिपी नहीं है। मेरी बेटियों की शादी के समय मेरी मजबूरी का फ़ायदा उठाकर इसी गाँव के धनाढ्य लोगों ने मेरे खेत औने-पौने में गिरवी रख लिये, तब किसी समाज-सुधारक ने हस्तक्षेप क्यों नहीं किया? मेरे घर में ग़रीबी का तांडव होता रहा, मेरे परिवार में दो जून की रोटी के लाले पड़ रहे थे, उस समय पंचों ने क्यों नहीं हमारी सुध ली? क्या तब पूरे गाँव को इस बात की प्रतीक्षा थी कि मैं भीख का कटोरा लेकर निकल पड़ूँ? मैंने क्षेत्र के हर समर्थ व्यक्ति से मदद के लिए गुहार लगायी, मेरे बेटे छोटा-मोटा हर तरह का कार्य करने के तैयार थे, लेकिन मदद करने के बजाय लोग मेरी ग़रीबी का मज़ाक उड़ाते रहे। कुछ लोगों की निगाहें मेरे बाक़ी बचे खेतों और घर पर लगी थीं। मरता क्या न करता। बहुत मजबूरी में अपने सीने पर पत्थर रखकर मैंने अपने दोनों बेटों को कमाने के लिए कलकत्ता भेजा और मुझे इस बात का संतोष है कि मेरे बेटे वहाँ जाकर चोरी-चकारी, स्मगलिंग-तस्करी या दलाली जैसा कोई ग़लत काम नहीं कर रहे हैं, बल्कि अपनी मेहनत के बल-बूते कमा-खा रहे हैं। वे दूसरों के जूठे कप-प्लेट धो रहे हों या कि सड़क पर झाड़ू लगा रहे हों, मुझे इसका कोई मलाल नहीं। मुझे सिर्फ़ इतना पता है कि उन्हीं बेटों के भेजे मनीऑर्डर की बदौलत मेरे घर की दाल-रोटी चल रही है। यदि मेहनत-मजूरी करना अपराध है और इससे बिरादरी की प्रतिष्ठा पर धब्बा लगता है, तो मैं ऐसी बिरादरी पर लानत भेजता हूँ और खुद उसका परित्याग करता हूँ।

"रही मेरे बेटे द्वारा किसी विधवा बंगालिन से शादी कर लेने की बात, तो मुझे इसके लिए भी किसी प्रकार का अफ़सोस नहीं है। आप, हम—सभी जानते हैं कि भूख, प्यास और नींद की ही तरह शादी भी मनुष्य की एक अनिवार्य आवश्यकता है। मेरी ग़रीबी के चलते बिरादरी के किसी भाई ने तो मेरे बेटों की शादी के लिए पहल नहीं की तो क्या वे कुँवारे बैठे रहते? मुझे तो इस बात प्रसन्नता है कि अपनी शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु इधर-उधर वेश्याओं के यहाँ भटकने के बजाय मेरे बेटे ने शादी करके घर बसा लिया और एक ग़रीब विधवा का उद्धार किया। पंचो, अपने बेटों की करतूतों के लिए मैं बिलकुल भी शर्मिंदा नहीं हूँ....बिल्कुल भी नहीं। जहाँ तक चरित्र और अवैध संबंधों की बात है, तो इस गाँव में अपने को इज़्ज़तदार कहने वाले लगभग हर किसी की फिसलन की कहानियाँ हम सभी को पता हैं। यदि मैं बखान करने लगूँ, तो इस पंचायत में ऊँचे आसन पर बैठे कई महानुभावों को यहाँ बैठना और मुँह छिपाना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए, बेहतर यही होगा कि मेरा मुँह न खुलवाया जाए। ताली दोनों हाथों से बजती है, एक हाथ से नहीं। यदि पंचों को मेरी चिंता नहीं है, तो मुझे भी इस पंचायत और उसके फ़तवे की कोई परवाह नहीं", मुंशी जी ने पंचायत को ललकारते हुए कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंशी जी के जवाब से सभी अवाक रह गये। लोगों को उम्मीद थी कि मुंशी जी आरोपों की सफ़ाई पेश करेंगे, रोएँगे, गिड़गिड़ाएँगे, अपने बेटों को लानत भेजेंगे और पंचों से क्षमा-याचना करेंगे, लेकिन यहाँ तो स्थिति बिल्कुल ही विपरीत थी। मुंशी जी सफ़ाई पेश करने के बजाय न सिर्फ़ आरोपों को स्वीकार कर रहे थे, बल्कि सतर्क उन्हें जायज़ भी ठहरा रहे थे। और तो और, जाते-जाते उन्होंने पूरी पंचायत को चुनौती तक दे डाली थी। उनका यह आचरण खतरे की घंटी समझा गया। पंचों की राय थी कि यदि मुंशी जी के विरुद्ध कड़ा क़दम न उठाया गया, तो उनकी देखादेखी दूसरों में भी पंचायत का भय समाप्त हो जाएगा। अंतिम फ़ैसले के लिए सभी की प्रश्नवाचक नज़रें छेदा पंडित की तरफ़ उठ गयीं। मौक़े की नज़ाकत और पंचों की भावनाओं का ध्यान रखते हुए छेदा पंडित ने अपना निर्णय सुनाया—"हिन्दू समाज में वर्ण, जाति और उनके लिए कार्यों का निर्धारण स्वयं हमारे आदि पुरुष मनु महाराज द्वारा किया गया है। उसका उल्लंघन करना हिन्दू धर्म के विरुद्ध आचरण है। दूसरों के जूठे बरतन धोना शूद्रों का कार्य है, न कि कायस्थों का। इसी प्रकार, अपनी जाति के बाहर दूसरी जाति में शादी भी अक्षम्य है, क्योंकि ऐसी शादी से वर्णसंकर संतानें पैदा होंगी और समाज में गंदगी फैलेगी। और, किसी विधवा स्त्री से विवाह तो महापाप है, क्योंकि हिन्दू धर्म में स्त्री का विवाह केवल एक बार होता है। यहाँ पुनर्विवाह की व्यवस्था नहीं है। अतः, ऐसा करके मुंशी सत्यनारायण लाल के बेटों ने न सिर्फ़ अपना धर्म भ्रष्ट किया, बल्कि एक विधवा ब्राह्मणी को भी धर्मच्युत करने का अपराध किया है। इस महापाप के प्रायश्चित के लिए मुंशी जी को शुद्धिकरण यज्ञ कराना होगा, जिसके समापन पर पूरे गाँव को भोज के साथ-साथ इक्कीस ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देनी होगी। जब तक शुद्धिकरण यज्ञ नहीं करा लेते, तब तक के लिए मुंशी सत्यनारायण लाल को न सिर्फ़ कायस्थ बिरादरी, बल्कि पूरे हिन्दू समाज से बहिष्कृत किया जाता है। कोई भी हिन्दू न तो उनके यहाँ अन्न-जल ग्रहण करेगा, न ही उनसे किसी प्रकार का संबंध रखेगा।

"ईश्वर जानता है कि मेरी आत्मा शुद्ध है और मेरे कर्म शुद्ध हैं, इसलिए मुझे कोई शुद्धिकरण यज्ञ नहीं कराना। ऐसे पाखंडी और हृदयहीन लोगों की बिरादरी में रहने के मुक़ाबले मैं अकेले रहना अधिक अच्छा समझता हूँ। बिरादरी के भात या हुक्का-पानी का कोई लोभ नहीं है मुझे। मैं पंचों का आभारी हूं कि समाज से बहिष्कृत करके उन्होंने मुझे हिन्दू समाज में धर्म के नाम पर प्रचलित तमाम आडंबरों और अंधविश्वासों को ढोने की बाध्यता से मुक्त कर दिया", मुंशी जी ने कहा और भरी पंचायत से उठकर चले गए।

पल दो पल के लिए सभा में सन्नाटा छा गया। फिर मुंशी जी को समाज से बहिष्कृत किये जाने की घोषणा के साथ सभा समाप्त हो गयी।

मेरे पिताजी कानपुर में नौकरी करते थे लेकिन माँ मेरे दादा-दादी के साथ स्थायी रूप से गाँव में ही रहती थीं, इसलिए मेरा बचपन गाँव में ही बीता था। गाँव के विद्यालय से दसवीं की परीक्षा पास करने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए मैं पिताजी के साथ कानपुर चला गया। जैसे-जैसे पढ़ाई का बोझ बढ़ता गया, मेरे गाँव आने-जाने की आवृति कम होती गयी। समय अपनी गति से गुज़रता रहा। मैंने पढ़ाई पूरी की, नौकरी की, शादी हुई, बच्चे हुए और अपने परिवार के साथ शहर में रहने लगा। इस अवधि में मेरे दादा जी, छेदा पंडित, मुंशी सत्यनारायण लाल और उनकी पीढ़ी के सारे लोग एक-एक करके भगवान को प्यारे हो गये। पिताजी सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त होने के बाद स्थायी रूप से गाँव में रहने लगे। सत्यनारायण लाल के बेटे गाँव की सम्पत्ति बेचकर कलकत्ता में ही बस गये और छेदा पंडित की यजमानी उनके दोनों सुपुत्रों सदानंद तिवारी तथा रामानंद तिवारी के मध्य बँट गयी। मेरे घर की यजमानी सदानंद तिवारी के हिस्से आयी थी।

नौकरी में आने तथा परिवार को साथ रखने के कारण मेरा गाँव का आना-जाना काफ़ी कम हो गया था। कभी-कभार गाँव जाता भी, तो एक-आध दिन से अधिक नहीं रुक पाता था। इसलिए, गाँव-जवार के बारे में अधिक जानने-सुनने का अवसर नहीं मिल पाता था। एक बार दशहरे की छुट्टियों में घर गया, तो गाँव में छेदा पंडित की पोती यानी सदानंद तिवारी की बेटी की चर्चा ज़ोरों पर थी। चर्चा यह थी कि सदानंद तिवारी की जवान बेटी अपने पड़ोस के शंभू लोहार के बेटे के साथ भाग गयी थी और महीने भर यहाँ-वहाँ भटकने के बाद वापस आ गयी थी। मन ही मन मैं सोच रहा था कि फिर से वैसी ही पंचायत बैठेगी, पंचायत में सदानंद तिवारी की ऐसी-तैसी की जाएगी और उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया जाएगा, लेकिन आश्चर्य कि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। लोगों ने उस घटना को बहुत हल्के से लिया और हफ़्ते, दस दिनों की चर्चा के बाद बात आयी-गयी हो गयी।

पिता जी के स्वर्गवास के समय मजबूरन मुझे लंबी छुट्टी लेकर गाँव जाना पड़ा। चिता जलने से लेकर तेरहवीं तक सारा पूजा-पाठ और कर्मकांड सदानंद तिवारी ने ही संपन्न कराया। मैली-सी धोती और मैला मुड़ा-तुड़ा कुर्ता पहने, कंधे पर लाल रंग की अँगोछी और पैरों में रबर की हवाई चप्पलें डाले तथा कंधे पर पोथी-पत्रा और सुर्ती, चूना की डिब्बी आदि से भरा सर्वोदयी झोला लटकाये सदानंद तिवारी जब देखो तब मेरे यहाँ उपस्थित रहते। मैंने ग़ौर किया कि गाँव के लोग सदानंद तिवारी को कोई ख़ास तवज्जो नहीं देते थे। मन में आया तो पांयलगी की, नहीं तो वह भी नहीं। उनके हमउम्र लोग बात-बेबात उनका मज़ाक उड़ाते रहते थे, जिसे वे हँसकर टाल जाते थे। सदानंद तिवारी को इस दीन-हीन हालत में देखकर अनायास ही उनके स्वर्गीय पिता छेदा पंडित की स्मृतियाँ ताज़ा हो आतीं।

एक दिन शाम के वक़्त पूजा-पाठ करा चुकने के बाद सदानंद तिवारी मेरे घर के दालान में बिछी चारपाई पर बैठे सुर्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मल रहे थे। मैं भी फुरसत में ही था, इसलिए उनके पास आकर बैठ गया। बातचीत शुरू हुई, तो घर-परिवार की बातें होने लगीं।

"क्यों तिवारी जी, आपके पूर्वजों ने तो बहुत लंबी-चौड़ी यजमानी बना रखी थी। मुझे याद है, आपके पिताजी ने अपनी सहायता के लिए तीन-चार सहायक भी रखे थे। क्या आप अकेले सँभाल लेते हैं पूरी यजमानी?" मैंने पूछा।

"अरे! आप भी कहाँ की बातें करने लगे ठाकुर साहब! अब न तो पहले जैसा समय रहा, न पहले जैसे लोग। अब तो यदि सिर्फ़ यजमानी के ही भरोसे रहें, तो परिवार का पेट भी न भर सके। यजमानी तो कंधे पर रखा जूआ है, जिसे जैसे-तैसे ढोये जा रहे हैं, वरना इसमें रखा ही क्या है?" सदानंद तिवारी एक गहरी साँस लेकर बोले।

"मैं भी पिछले कई दिनों से यही ग़ौर कर रहा था। कहाँ तो आप के पिताजी को साँस लेने तक की फुरसत नहीं मिलती थी और आप जब देखो, तब फुरसत में ही रहते हैं।"

"हाँ ठाकुर साहब! मैंने तो जैसे-तैसे निभा ली, लेकिन अपने बेटों को साफ़ बता दिया कि अगर यजमानी के भरोसे रहोगे, तो भूखों मर जाओगे। सो, समय रहते अपना रास्ता बदल लो।"

"तो क्या आप के बेटे लोग यजमानी का काम नहीं करते?"

"न भैया.....न। अपने तीनों ही बेटों को मैंने इस ढोंग-ढकोसले के पेशे से दूर रखा है।"

"क्या करते हैं आपके बेटे लोग?"

बड़ा तो बाँसडीह तहसील में चपरासी है। वो सुखपुरा के सीताराम लाल के दामाद डिप्टी कलक्टर हैं, उन्होंने ही कोशिश करके चपरासी भर्ती करा दिया था उसको। बीच वाले बेटे ने सिकंदरपुर बाज़ार में जूते, चप्पल की दूकान खोल रखी है और छोटे वाले ने सरकारी लोन लेकर चार-पाँच भैंसे ख़रीद ली हैं और दूध का कारोबार कर रहा है।"

"ऐं...! इतने उच्चकुल के ब्राह्मण और छेदा पंडित जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के पोते होकर चपरासी का काम, जूते-चप्पल और दूध बेचने का कारोबार... आपको अटपटा नहीं लगता?"

"अरे बाबू साहेब! ये कुल-खानदान और मान-सम्मान की बातें भरे पेट वालों के चोंचले हैं। आपने तो ख़ुद बहुत दुनियाँ देखी है... अब आपको क्या बताएँ कि समय की दौड़ में ये सारी बातें बहुत पीछे छूट चुकी हैं। टेंट में पैसा नहीं होगा, तो इज़्ज़त प्रतिष्ठा को चाटेंगे क्या। सुना नहीं है—'भूखे भजन न होई गोपाला।' सो मुख्य मुद्दा पेट भरने का है... बाक़ी सारी बातें बकवास हैं", सदानंद तिवारी ने कहा और बैठे-बैठे दाहिनी तरफ़ को थोड़ा उचककर खिड़की से बाहर पिच्च से थूक दिया।

त्रिवेणी निवास, सी-2 एच पार्क महानगर, लखनऊ-226006

कविता

कुछ इतिहास नहीं है

ओम प्रकाश 'अडिग'

इनती सुस्ती और उदासी।
हँसी हो गयी कहीं प्रवासी।

यादों के विंध्याचल बैठा,
लगता अपना दर्द पुराना।
चिंताओं के इस बीहड़ में,
किसका आना किसका जाना।
कोई रंग नहीं भर पायी,
न्यारी मथुरा, प्यारी काशी।
इतनी सुस्ती और उदासी।

टूटी आशाओं-सी सुब्हें,
औ संध्या की थकी थकानें।
बस इतना ही दिन होता है,
कोई माने या न माने।।
बिना प्रीति की कैसी दुनिया,
ताजी श्वांस हो गयी बासी।
इतनी सुस्ती और उदासी।।
युगों-युगों तक जो चलता है,
वैसा कुछ इतिहास नहीं है।
जिसको दिखलाकर सुख पाऊँ,
ऐसा कुछ भी पास नहीं है।
कुछ भी मोह नहीं जीवन से
बना नहीं फिर भी संयासी
इतनी सुस्ती और उदासी।

रोशनगंज, शाहजहाँपुर-242001 (उ0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघर्षों के बीच

राजेन्द्र परदेशी

लोचना तो शुरू से ही खानदानी पेशा छोड़ चुका था। नाच-गाने में उसकी अभिरूचि थी-सो उसी को अपना लिया। गांव के लोग उसके सामने तो कुछ नहीं, मगर पीठ पीछे उसे मेहरा कहने लगे थे। वह तो अपनी धुन में मस्त रहा करता किन्तु उसके बाप झलकुआ का सर नीचा हो जाता। झलकुआ ने लोचना को बहुत समझाया कि अगर तुझे कुम्हारी का काम अच्छा न लगता हो तो मत कर, पर नाच-गाने वाला काम भी मत कर। कोई दूसरा काम कर। बाप के रोज़-रोज़ टोकने का कुछ असर उस पर शायद पड़ा तभी कुम्हारगिरी में तो नहीं लगा, हाँ, सिनेमा के गानों की किताबें लेकर जमालपुर के बाज़ार में बेचने लगा था।

अब लोचना अपने परिचित पितांबर की चाय की दुकान के पास खड़ा होकर नये कानून की व्याख्या करके उसकी किताबें भी बेचने लगा है। शुरू में तो किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया, लेकिन इधर दो-तीन बाज़ार से उसके चारों ओर भीड़ जुट जाती है। किताब तो लोग कम ही खरीदते हैं, उसकी बातों को ज़्यादा सुनते हैं। कभी-कभार यदि कोई अधिक उत्साही व्यक्ति जानकारी के लिए कुछ पूछता है तो वह कुशल अध्यापक की तरह उसे समझाने भी लगता है। किताब वे ही लोग खरीदते हैं जो ज़रा पढ़े-लिखे होते हैं। अधिकांश लोग तो सुनकर ही जानकारी प्राप्त कर लेते हैं।

धीरे-धीरे कानून की बात गाँव जवार के लोग जान गये थे। जान वही नहीं पाये थे जो जानना नहीं चाहते थे क्योंकि ऐसे लोग आँख मूँद कर परंपराओं का अनुकरण करने वाले थे।

चारलोग जहां बैठते, वहीं कानून की चर्चा करने लगते। दो दिन पहले आत्माराम के चौपाल में नये कानून की बात को लेकर धरीक्षन अहीर और मंगलसिंह में काफी गरमा-गरमी हो गयी।

मंगल सिह का दिमाग पहले जैसा ही था यानि वही बाबू साहब वाला रोब। उन्होंने धरीक्षन को बहुत आंख दिखायी, लेकिन उसका मुंह बंद नहीं हुआ। मंगल सिंह जितना ही गरमाते धरीक्षन भी उतना ही गरज कर बोलता। लगने लगा कि मारपीट होकर रहेगी। परन्तु दो-चार और लोग जो वहां बैठे, बीच-बचाव कर दोनों को शांत किया।

मंगलसिंह बेकार में ही तो बोल रहे थे। जब कानून बन गया तो बन गया। उसमें हेर-फेर तो सरकार ही कर सकती है। नहीं तो अदालत जाओ। बेकार में मुँह लड़ाने से क्या फायदा? यही बात तो भूलासिंह कह रहे थे, लेकिन मंगल सिंह की समझ में आ नहीं रहा था। वह बोले जा रहे थे कि यह भी कोई कानून है कि किसी का पैसा लेकर वापस ही न किया जाये।

भूला सिंह ने समझाया भी कि भाई, कानून तो कानून ही है, चाहे तुम्हें अच्छा लगे या बुरा। मानना तो पड़ेगा ही उसे।

ऐसे कानून को हम नहीं मानेंगे। मंगल सिंह बोले तो भूलासिंह चुप हो गये। वह मंगलसिंह की पीड़ा को समझ रहे थे इसीलिए सोचा कि ज़बान लड़ाने से अच्छा है चुप रह जाना।

लेकिन धरीक्षन अहीर कहाँ चुप रहने वाला! बोला, मंगल सिंह आप मानोगे कैसे नहीं? क्या आपके लिए कोई अलग कानून बनेगा?

बहस चल ही रही थी कि आत्माराम से मिलने गोपाल पहुंच गया था। जब देखा कि उनके द्वार पर बहस चल रही है तो चुपचाप दीवार के सहारे खड़ा होकर बातें सुनने लगा।

मंगल सिंह को यही पीड़ा साले जा रही थी कि अब किसी का काम कैसे होंगा। आजतक तो उन्होंने हल को हाथ से छुआ भी नहीं था। सौ बीघे की जोत थी उनकी। काम मजदूरों के ही सहारे चल रहा था। जिसको मन आता मजदूरी देते, जिसको मन न आता न देते। रतनवा, मंगरूवा और और गोपाल ऐसे लोग डर के मारे कुछ न बोलते। ये लोग कभी बोलने का साहस करते भी तो मंगलसिंह उनके बाप-दादा को बीस बरस पहले दिये रुपये वापस करने की बात चला देते। बेचारों के पास खाने को तो ठीक से था नहीं, रुपया कहाँ से वापस करे।

इस नये कानून ने तो जैसे मंगलसिंह के हाथ ही काट दिये। हाथ कट जाये और पीड़ा न हो, ऐसा तो होता नहीं। लेकिन खाली चिल्लाने से तो कुछ होगा नहीं। कुछ-न-कुछ तो उसके लिए उपचार करना ही होगा। यही बात तो धरीक्षन अहीर कह रहा था कि अब पिछली बातों को भूलकर समय के साथ चलने के लिए समझौता करना ही होगा।

आत्माराम के द्वार पर बहस सुनकर गोपाल समझ तो गया था कि अब मंगलसिंह कानून से कमजोर हो गये हैं। जबरदस्ती बेगार नहीं करा सकते। पर यह जानता था कि आज धरीक्षन अहीर जो मंगलसिंह से इतनी बहस कर रहे हैं, कल उसकी तरफ से बोलना पड़ेगा तो चुप हो जायेंगे। जैसे उनके मुँह में जुबान ही नहीं है। इतना पैसाभी उसके पास नहीं है कि मंगलसिंह से विरोध करके कचहरी जाकर मुकदमा लड़े।

गोपाल इतनी जल्दी हार मानने वाला भी कहाँ था। आत्माराम के द्वार से सीधे मंगरूवा के घर पहुँच गया और आवाज़ लगायी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगरू काका ओ मंगरू काका।

"क्या है रे?" अंदर से मंगरूवा ने निकलकर पूछा।

"काका! तुम कुछ सुन्यो?"

"क्या सुन्यो?"

गोपाल ने आत्माराम के द्वार पर सुनी बात का सार मंगरूवा को सुनाया तो मंगरूवा बोला, क्यों रे गोपाल! तुझे झूठ बोले बिना रहा नहीं जाता क्या?

"नहीं काका! आपकी कसम। मैं बिल्कुल सच बोल रहा हूं।"

"क्यों झूठी कसमें खा रहा है।" मंगरूवा को उसकी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था क्योंकि गोपाल के झूठ बोलने की आदत से मंगरूवा अच्छी तरह परचित था।

"काका! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूं।" सच्चाई की पुष्टि में बोला, "इसी बात को लेकर मंगलसिंह और धरीक्षन अहीर में काफी गरमा-गरमी हो गयी थी। भूलासिंह और दशरथ मिसिर भी वहाँ थे।

भूला सिंह का नाम आया तो मंगरूवा को कुछ विश्वास हुआ क्योंकि वह जानता था कि भूला सिंह ज़्यादा इधर-उधर की बात नहीं करते। बात जो साफ़ होती है, उसे ही कहते हैं, चाहे लोग खुश हो या नाराज़। इसीलिए मंगलसिंह ऐसे लोग कहते भी कि पता नहीं ये कैसे आदमी हैं जो अपने जात-बिरादरी का भी ख्याल नहीं करते। लेकिन सोचा कि ऐसे ही किसी बात पर भूलासिंह बोल पड़े होंगे। शायद गोपाल को समझ न आया हो। भूलासिंह की बात को पकड़ने के लिए पूछा, " भूलासिंह क्या कह रहे थे?"

"भूलासिंह कह रहे थे कि मंगलसिंह का जब कानून बन गया है तो उसे मानना ही पडेगा।" भूलासिंह की बातों को दुहराते हुए गोपाल बोला।

मंगरूवा को भी यही राय थी कि जब कानून बन गया है तो उसे मानना ही चाहिए लेकिन उसके लिए मंगलसिंह का विचार जानना आवश्यक था। इसीलिए फिर पूछा, तो मंगलसिंह ने क्या कहा?

"मंगलसिंह की बातों को ज्यों-क़ा-त्यों रखते हुए गोपाल बोला, "मंगल सिंह ने कहा कि कानून बदलने से क्या होता है" बात भी सही है। मंगलसिंह के लिए कानून से क्या मतलब? ऐसे लोग तो पैसे के बल पर अपना अलग ही कानून चलाते हैं। गाँव के सभी लोग भी तो उन्हीं के तरफ से बोलते हैं। गरीबों की तरफ़दारी कौन करता है? किसी से कुछ कहो भी तो कहेगा कि बड़े आदमी से लड़ने से कोई फ़ायदा नहीं होगा, सिवाय नुकसान के। फिर कमज़ोर आदमी क्या करें, सिर्फ़ चुप रहने के अलावा। मंगरूवा भी इसीलिए चुप हो गया तो गोपाल ही स्वयं बोला, "अच्छा काका! हम चल रहे हैं। जानवरों को चारा देना होगा।"

गोपाल चला गया तो मंगरूवा बैठकर सोचने लगा। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि ऐसा भी कहीं हो सकता है कि मंगलसिंह को पैसा दिये बिना उनसे मुक्ति मिल जाये। असंभव है। पर मन-ही-मन निश्चय किया कि इस बार शहर से प्रकाश आये तो उससे सही बात पूछूँ क्योंकि और किसी से पूछना अच्छा नहीं। दशरथ मिसिर से पूछूँगा तो कहेंगे, "क्यों रे! मंगरूवा नीयत खराब हो गयी न।"

इसमें नीयत खराब होने की क्या बात है। उसने तो कहा नहीं था कि कोई कानून बने। लेकिन जब बन ही गया है तो उसे जानने में हरज ही क्या है?

पर मात्र कानून बनने से क्या होता है। जब तक उस पर अमल न हो। कानून तो दहेज के विरोध में भी बना है। लेकिन कौन मान रहा है। यही हाल इस कानून का भी होगा क्योंकि और चाहे माने या न माने परंतु मंगलसिंह कहाँ मानने वाले हैं। उनको तो जब तक पाई-पाई चुकता न कर दो, तब तक उनसे मुक्ति नहीं।

विरोध करके उनसे कौन दुश्मनी मोल ले। पुराने जमींदार है। लोग कहते हैं कि स्वराज के पहले अंग्रेज अफसर अक्सर पिकनिक मनाने सोन नदी के किनारे आया करते थे। उन लोगों के लिए सब प्रबंध इनके बाप ठाकुर जालिमसिंह ही करते थे। बडे दिलदार आदमी थे। पैसा खर्च करने में संकोच नहीं करते थे। मंगलसिंह के ऊपर भी अपने बाप का कुछ प्रभाव पड़ा है। आज भी कोई हाकिम-मुख़्तार गाँव आता है तो इन्हीं के दरवाज़े पर डेरा डालता है। गांव के लोग भी इसी कारण इनसे डरते हैं। इनसे झगड़ा करके सिर पर मुसीबत क्यों मोल लें। इसीलिए गोपाल को साहस नहीं हो रहा था। वह मंगल सिंह से मुक्ति की बात करे। पर अंदर ही अंदर मुक्ति की कामना उफनाती रहती।

एक दिन मंगलसिंह ने उससे कहा, रे, गोपाला! तू जाकर मंगरूवा और रतनवा से कह आ कि कल भोर में ही खेत में कटनी का काम शुरू कर दें जिससे शाम तक कुछ कटाई हो जाय।

मौका अच्छा है। यही सोचकर गोपाल ने मंगरूवा के पीठ पर बंदूक रखकर दागा, सरकार! मंगरूवा कल किसी कानून की बात कह रहा था।"

"कैसा कानून?" मंगलसिंह ने लापरवाही से पूछा।

अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए गोपाल बोला, "हमको क्या मालूम सरकार! वही कह रहा था कि सरकार ने ऐसा कानून बना दिया है कि कोई किसी से जबरदस्ती काम नहीं ले सकता।"

इसबार ठाकुर के कान खड़े हो गये क्योंकि वह भलीभाँति समझते थे कि अब पहले वाली बात नहीं रही। हाथ तो कट ही गया है। फिर भी अपनी कमज़ोरी जाहिर नहीं करना चाहते थे। कड़ककर बोले, कानून तो रोज़ ही बनता है। क्या सब काम कानून से ही होता है।

"यही तो हम भी कह रहे थे, सरकार।"

तो क्या बोला। आंतरिक रूप से शंकित पर ऊपर से अप्रभावित बने ठाकुर मंगलसिंह ने मंगरूवा के हृदय की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानने के लिए पूछा।

ठाकुर की दृढ़ता को देखकर गोपाल की हिम्मत पस्त हो गयी। सोचा था कानून की बात सुनकर मंगलसिंह टूट जायेंगे, परंतु जब उन्हें चट्टान की तरह अडिग पाया तो बात की दिशा को मोड़ते हुए बोला, वह तो कुछ नहीं बोला सरकार! लेकिन उसका लड़का प्रकाश है न। वह बहुत ऐंठ रहा था। फिर ठाकुर को झकझोरने के लिए कहा, शहर में पढ़ता है सरकार! इसीलिए कानून की बातें ज़्यादा करता है।

कानून और उसका विरोध करने का परिणाम मंगलसिंह अच्छी तरह जानते थे। फिर भी इतनी जल्दी हार मान लेंगे तो खेती कैसे होगी। आज वह खेत काटने नही जायेगा तो फिर कल बोयेगा कौन? यही सोचकर बोले, अच्छा चल! मैं देखता हूँ कैसे नहीं आता।

गोपाल भी यही चाहता था। वह सोचता था कि अगर मंगरूवा बाजी मार ले गया तो उसी की आड़ में वह भी मुक्त हो जायेगा, नहीं तो गुलामी करनी ही है।

मंगल सिंह गुस्से में तुरंत मंगरूवा के घर पहुँच गये। मंगरूवा द्वार पर टूटी चारपाई पर लेटा था। ठाकुर को देखते ही उठ गया और भयभिश्रित आवाज में बोला, बैठिये सरकार।

क्रोध की अग्नि में जल रहे ठाकुर को जैसे मंगरूवा की आवाज सुनायी ही नहीं पड़ी। अपने धुन में बोले, क्यों रे मंगरूवा सुना है तूने कहा है कि अब हमारा काम नहीं करेगा।

एक ओर जहाँ गोपाल ने मंगरूवा के भीतर मुक्ति पाने के लिए चिनगारी जला दी थी वही दूसरी ओर उसका बेटा प्रकाश उस चिनगारी को हवा देकर ज्वाला के रूप में परिणित कर रहा था। लेकिन अभी वह स्थिति आयी नहीं थी जिससे मंगल सिंह ऐसे लोगों को उसमें झुलसाया जा सके। इसीलिए डरते-डरते मंगरूवा बोला, नहीं सरकार! हमने यह थोड़े कहा था।

"तो क्या कहा था" इतना कहकर ठाकुर गोपाल की ओर इस तरह देखने लगे जैसे उसी से पूछ रहे हो कि बोल मंगरूवा ने क्या कहा था।

कानून और प्रकाश के दबाव में आकर मंगरूवा ने मंगलसिंह से स्पष्ट बात कहने को सोच तो लिया था। लेकिन उन्हीं को सामने खड़ा देखकर बोलने का साहस जुटा नहीं पा रहा था कि द्वार पर आवाज़ सुनकर घर में से प्रकाश निकल कर वहीं पास आकर खड़ा हो गया। बेटे को देखकर मंगरूवा को साहस हुआ तो बोला, हमने तो कहा था कि अब बेगार नहीं करूँगा।

कैसी बेगार। मंगल सिंह अंजान बनते हुए बोले!

बेगार नहीं तो और क्या है। हमारे बापू पाँच सौ रुपया बहिनी के ब्याह में लिये थे। आज इतने बरस बीत गये, आपका कर्ज़ ज्यों-का-त्यों बना है।

रुपया वापस करेगा तभी तो चुकता होगा। फिर कुछ सोचकर बोले, लगता है, रुपया देने का विचार नहीं है।

पचीस बरस से आपके यहाँ खट रहा हूँ, इसका कुछ नहीं होगा? मंगरूवा किसी अज्ञात शक्ति के स्रोत से मंगलसिंह के प्रश्नों का जवाब दिये जा रहा था।

मंगल सिंह भी कुशल खिलाड़ी की तरह हार कर भी दाँव पर दाँव लगाये जा रहे थे। वह बोले, तो क्या सूद नहीं देगा? पचीस बरस में आपका सूद ही तो भर पाया हूं। मूल तो पड़ा ही है न? मंगरूवा बोला। क्योंकि उसे कानून का कवच जो मिल गया था।

"और नहीं तो क्या चाहे जो समझो आप! लेकिन बिना मजदूरी के अब काम पर नहीं आ पाऊँगा।" डरते-डरते मंगरूवा ने आखिर अपने दिल की बात कह दी लेकिन अप्रिय घटना घटित होने की शंका से शंकित हो गया।

मंगल सिंह स्थिति की गंभीरता से परिचित हो गये थे। वह समझते थे कि भले ही सभी हाकिम-मुख्तारों के साथ उठना बैठना है, इस बात में उनका पक्ष कोई भी नहीं लेगा। आजकल का समय ही ऐसा है। फिर भी मंगलसिंह, मंगरूवा को अपनी धौंस में लेते हुए बोले—'लगता है, तेरा दिमाग किसी ने खराब कर दिया है, तभी तुम ऐसी बातें कर रहा है।' फिर रुककर कहा, 'देख मंगरूवा। तुझे काम नहीं करना है तो मत कर, लेकिन कल तक सब पैसा वापस कर जा, नहीं तो...।

काफ़ी देर से खड़ा प्रकाश जैसे इसी अवसर की तलाश में था। मंगलसिंह की बातों को बीच में ही काट कर बोला—'नहीं तो क्या होगा ठाकुर?' फिर भयभीत से खड़े पिता की ओर मुखातिब होकर बोला—'बापू! ठाकुर को शायद मालूम नहीं है कि बँधुआ मुक्ति कानून बन गया हैं।'

प्रकाश को बीच में आया देखकर मंगलसिंह समझ गये थे कि युद्ध की कमान अब पुरानी पीढ़ी से हट कर नयी पीढ़ी के हाथों में आ गयी है। वह तो पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहे थे जिसमें संघर्ष की सीमा समाप्त हो गयी थी। रह गया था केवल परंपराओं का अनुकरण।

वह समझ रहे थे कि नयी पीढ़ी स्थापित मान्यताओं को ज्यों-का-त्यों स्वीकारने को कभी तैयार नहीं होगी। बाज़ी भी हार चुके थे। इसलिए टकराव से अच्छा यही होगा कि समय के साथ समझौता कर सम्मानजनक स्थिति कायम रखें।

पुरानी परंपराओं से जुड़े होने के कारण मंगलसिंह जहाँ यह बोले, "देखता हूँ कैसे नहीं पैसे वापस करता", वहीं दूसरी ओर यह बुदबुदाते हुए चले गये—"आज कल के लड़कों को बोलना भी नहीं आता। फिर किसी की इज़्ज़त करना क्या जाने।"

मंगल सिंह के जाते ही मंगरूवा प्रकाश से बोला—"बेटा तू न होता तो शायद हमें इस जिंदगी में मंगलसिंह से मुक्ति न मिलती..." फिर उसको शायद अपनी पीढ़ी के प्रति मोह उमड़ आया था, इसीलिए आगे बोला—"लेकिन तुझे मंगलसिंह से इस तरह बातें नहीं करनी चाहिए थी।"

बी-1118, इन्दिरा नगर, लखनऊ-226016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

राम मेश्राम

1

लाख दलित सरकारी है
'बाभन' सब पर भारी है

पैदाइश ही गाली है
चोरी नाम चमारी है

दप-दप, नख-शिख है दलदल
सत्ता फिर भी प्यारी है

जगज़ाहिर खुद्दार मेरा
रूह तलक दरबारी है

पढ़ना-लिखना बोदापन
सच्ची दुनियादारी है

चरणम्-शरणम् मर जा रे
मिलती स्वर्ग-दुवारी है

शीशे की तो पत्थर से
तेरी किस से यारी है ?

रोएँ सदियाँ, सदियों पर
जात प्रथा हत्यारी है

2

किया-कराया सत्यानाश
अहम् हमारा फोसमफास

दुनिया भर का पागलपन
सिर पर ओढ़ कबीर उदास

गढ़ मन्सूबे चकनाचूर
अक़्ल मेरी चर आयी घास

काली आत्मा वाले का
बीच शहर में पर्दाफ़ाश
हम हैं भाई मौसेरे
आप करें हम पर विश्वास

कहाँ-कहाँ से निकली है
दिल की तह में छिपी भड़ाँस

मियाँ आपने देखा क्या ?
आप अभी से हुए हताश

3

धंधा ही राजनीति है झंडा उठाइए
'जय भीम' कह के ताप-पे कब्ज़ा जमाइए

मुश्किल से हाथ आयी है सत्ता मेरे हुज़ूर
हर जन्मदिन के पर्व पे चंदा उगाहिए

होते ही अपनी मात का अहसास आप तो
दलितों पे ज़ोरो-जुल्म का हल्ला मचाइए

'औलाद हूँ दलित की' ये फ़िक़रा उछालकर
आंबेडकर के नाम पे पैसा कमाइए

हाथी समान पाके जनादेश आप अब
जनता के काम-काज को ठेंगा दिखाइए

सूखे की मौत मर रहे भूखे प्रदेश में
लगवा के अपने बुत नये खुशियाँ मनाइए

आंबेडकर के त्याग के आदर्श बरतरफ़
इतिहास के तनाव से छुटकारा पाइए

4

नयी, रस की भरी का आश्ना है
नयी तितली पे बूढ़ा दिल फ़िदा है

अरे ! अल्शेसियन है बॉस का वो
रकीबों को झपटकर काटता है
कयामत है कि बारिश है, हमें क्या
किसी के घर का क्या-क्या बह गया है

हमें देखो, कि हम वो सर्वहारा
जिन्हें हमदर्द नेता ने ठगा है

लताड़ा था जिसे महफ़िल में जमकर
वहीं दिल आज सम्मानित हुआ है

वो इन्टरनेट ये टी0वी0 के चैनल
जवाँ मन ईडियट-सा देखता है

वो जोगी है तो क्यूँ गाहे-बगाहे
तराने औरतों के छेड़ता है

ये अय्याशी, ये रिश्वत, हाँ ये दारू
यही तो जीनियस का रास्ता है

लिये तलवार नंगी दिल-जमूरा
समूचे आस्माँ से लड़ रहा है।

एफ-115/29, शिवाजी नगर, भोपाल-16

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

वीरेन्द्र 'हमदम'

(1)

पहुँच गया सूबों तक फ़तवा दिल्ली का
अब वज़ीर हो गया है प्यादा दिल्ली का।

शीश नवाने की इस आपा-धापी में
सूरज हो बैठा है कुबड़ा दिल्ली का।

ठंड से कोई नहीं मरेगा अब यारो!
धूप लिये आया कारिन्दा दिल्ली का।

यहाँ हमारे सपने धूल हुए जाएँ
नेता धूल की रस्सी बटता दिल्ली का।

छान लो तुम रंगीन मछलियाँ सपनों की
ताल किनारे बैठा बगुला दिल्ली का।

हर मौसम में अपना रंग दिखाएगा
सूरज लिए है ठीका-पट्टा दिल्ली का

अपनी नींद अगर हम सो और जाग सकें
सपना ही रह जाए सपना दिल्ली का।

(2)

सब कुछ रौशन औ' सब कुछ तारीक नहीं
फिर भी जीवन-जीवन की रट ठीक नहीं।

हाथ हिलाये अपनापन दिखलाए भी
लेकिन उस दरिया का तट नज़दीक नहीं।

दम साधे सब बैठे हैं क्यों बस्ती में
क्या बस्ती से बाहर कोई लीक नहीं।

दिशा तो तय है इच्छाओं की कश्ती की
हवा का रुख़ ही लेकिन है कुछ ठीक नहीं।

उसके पास नहीं है अब मुद्दा कोई
और हमारे पास कोई तहरीक नहीं।

केसर-क्यारी की ही लोगो! बात नहीं
घर का कोई भी कोना रमणीक नहीं।

इन्हें हवाओं का अब खौफ़ डराता है
इस जंगल के शेर भी अब निर्भीक नहीं।

तेरी नज़र में तो सब कुछ आ जाता है
मेरी नज़र लेकिन तुझ सी बारीक़ नहीं।

(3)

यह अच्छी बात है कि क़सीदा पढ़ा गया
क्या वाकई हीरे ही को हीरा कहा गया।

खुद को मैं जोड़ने में लगा हूँ अभी तलक
टूटा हुआ जो आइना कोई दिखा गया।

मेरा पसीना और महक उठ्ठा देखिये
वह अपनी खुशबुओं से तअर्रुफ करा गया।

अब आगे क्या हो देखिये मेरे वजूद का
जिस-जिस कदर मैं तोड़ा गया टूटता गया।

दोनों चिराग़ जैसे जले थे तमाम रात
जाने मैं उसमें या कि वह मुझमें समा गया।

अब एतमाद वो न रहा अपने आप पर
इतना मुझे वो अपना भरोसा दिला गया।

'हमदम' प्रलय से पूछने वाला बचा ही कौन
बस्ती किधर गयी औ' किधर रास्ता गया।

414, इस्माईलपुर, गोरखपुर (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रान्तिदृष्टा भवभूति

रामगोपाल भावुक

महाकवि भवभूति एक क्रांति-दृष्टा कवि एवं नाटककार रहे हैं। संस्कृत साहित्य में अधिकतर परंपराओं का पोषण दिखाया गया है। संस्कृत साहित्य का यह सही-सही मूल्यांकन का अभाव ही कहा जायेगा। महाकवि कालिदास का साहित्य जितना अधिक चर्चित है उतना महाकवि भवभूति का नहीं।

इसका कारण है ब्राह्मणवादी संस्कृति के पोषक, संस्कृत के महापंडितों ने इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। वे महाकवि कालिदास के परंपरावादी साहित्य की चर्चा अधिक करते हैं। इसका एक मात्र कारण यह भी हो सकता है कि महाकवि भवभूति ने परंपरा से हटकर कुछ नई बातें प्रस्तुत की हैं, जैसे राम कथा के परंपरावादी तथ्यों को त्यागकर अनेक स्थानों पर अपनी कल्पना से नये कथ्यों का सृजन किया है। वे महाकवि वाल्मीकि की तरह राम कथा का प्रारंभ राम के जन्म से नहीं करते बल्कि विश्वामित्र के यज्ञ से करते हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि विश्वामित्र के यज्ञ से ही उन्होंने राम-कथा का लेखन प्रारंभ क्यों किया है ?

मुझे तो इसका यही कारण समझ में आता है कि पद्मावती नगरी की परिधि में गिरजोर (गिर्जोरा) के पास आज भी विश्वामित्र की खाड़ी जल से परिपूरित है। भवभूति विदर्भ से पद्मावती नगरी में अध्ययन करने के लिये आये थे। उन्होंने यहाँ के प्रसिद्ध स्थलों का भी भ्रमण अवश्य ही किया होगा। मुझे महावीर चरितम का लेखन प्रारंभ करने में इसी स्थल का प्रभाव दिखाई देता है।

किसी भी लेखक, कवि, कलाकार पर देशकाल का प्रभाव पड़ता ही है। इस स्थल ने ही उन्हें राम कथा लिखने के लिये प्रेरित किया होगा। भवभूति का परिवार परंपरा के अनुसार राम भक्त रहा है। साथ में उन्हें इस स्थल ने इसके लेखन के लिये प्रोत्साहित किया। बस कलम चल पड़ी और उन्होंने विश्वामित्र के यज्ञ से, पद्मावती की धरती पर बैठकर महावीर चरित्म एवं उत्तर रामचरितम् की रचना कर डाली।

महाकवि भवभूति ने राम कथा के परंपरागत कथ्यों में मनौवैज्ञानिक दृष्टि से परिवर्तन एवं परिवर्धन कर डाला है। चाहे वह शम्बूक वध अथवा सीता के अग्नि परीक्षा वाले प्रसंग हों। उनका सोच क्रांतिकारी रहा है। इसी कारण वे संस्कृत मनीषियों की दृष्टि में उपेक्षित हो गये हैं। कालिदास उनसे बहुत आगे निकल गये हैं। कथ्य परिवर्तन के महत्व को संस्कृति मनीषियों ने समझने का प्रयास ही नहीं किया। वाल्मीकि की सीता को परंपरा के कारण धरती में समाना ही है किन्तु भवभूति की सीता परंपरायें तोड़कर मिलन के लिये व्याकुल दिखाई देती हैं... और अंत में मिलन ही होता है। भवभूमि ने सीता का निर्वासन सहज बना दिया है। पात्रों के माध्यम से राम के इस कार्य की भर्त्सनाकर उत्तर रामचरितम् के अंत में रामसीता का मिलन करा दिया है। इस कृति में अग्नि परीक्षा से गुजरी सीता के लिये धरती नहीं फटती बल्कि सुखद मिलन होता है। यों भवभूति ने पाठक के सोच को परंपरावादियों के घेरे से निकालकर उस युग में नये तरीके से जीने का तरीका सिखाया है।

"त्रिलोक के वासी प्राणियो, सावधान! वसु, सूर्य, रुद्र से युक्त साक्षात् इन्द्र साध्वी सीता का अभिनंदन कर रहे हैं जो अग्नि में बैठकर शुद्धता का परिचय दे चुकी है, संसार की मर्यादामयी सीता का आप ! रघुनंदन! आदर करें।" (महावीर चरितम्, सप्तम् अंक श्लोक-3) इस कथन में तीन बार आश्चर्य बोधक का उपयोग हुआ है। इस एक घटना ने नारी जाति के अस्तित्व को कटघरे में खड़ाकर दिया है। युगों-युगों तक यह घटना समाज को दिशाहीन करती रहेगी। मानव जाति में राम के तुलनात्मक गुण अधिक होनें से वे पूज्यनीय तो बन गये हैं किन्तु इससे चरित्रहीन पुरुषवर्ग भी अपनी साध्वी पत्नी को, हरपल अग्नि परीक्षा देने के लिये उसे घेरे में खड़ा करता रहेगा। पता नहीं कैसे राम जैसे व्यक्तित्व से यह भूल हो गई। चाहे कोई कितना ही सोच विचार कर चले, भूलें स्वाभाविक रूप से होती ही हैं।

शिवधनुष भंग होने पर, रावण का सचिव माल्यवान चिंतित हो उठता है। परशुराम को धनुषभंग का वृतांत सुनाकर उन्हें अपनी ओर मिला लेता है जिससे परशुराम कुपित होकर राम का वध करने के लिये मिथिला के लिये चल देते हैं। यहाँ राक्षसों द्वारा परशुराम को उत्तेजित करने का प्रसंग नवीनता लिये हुए है। भवभूति रटे-रटाये प्रसंगों में विश्वास नहीं करते अपितु बौद्धिक विवेक से नये-नये प्रसंगों को जन्म देने में सिद्धहस्त हैं।

भवभूति राम कथा जैसे प्रसंग में संपूर्ण पौराणिक ऐतिहासिक कथानकों को पूरी तरह नहीं तोड़ते किन्तु उनकी शल्य क्रिया करते दिखाई देते हैं। राम की शक्ति का परशुराम को बोध करा देने से प्रसंग की पौराणिकता नही टूटती। इसी तरह वे बाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को रावण का सहायक मानते हैं। रावण का मंत्री माल्यवान बाली को राम से लड़ने के लिये प्रेरित करता है। दोनों में आमने-सामने युद्ध होता है जिसमें बाली मारा जाता है। यों कवि ने इस प्रसंग की भी पौराणिकता नहीं टूटने दी है।

उत्तर रामचरितम् की चित्रवीथिका में सीता को चित्र दर्शन के प्रसंग में, भूतकाल की घटनाओं से प्रत्यक्षीकरण कराते हैं। इससे सीता को पुनः उन स्थलों को देखने की इच्छा हो उठती है। उसी समय संदेश वाहक राम को संदेश देता है। राम जाने से पहले, लक्ष्मण को सीता को वन में भेजने का आदेश देते जाते हैं। घटनाओं को इतनी सहजता से प्रस्तुत किया है कि वे स्वाभाविक रूप से परिवर्तित होती जाती हैं। यह भवभूति की चतुरता का ही परिणाम है।

भवभूति ने शूर्पणखा को मंथरा के रूप में कैकई के हृदय परिवर्तन के लिये भेजा था। माल्यवान द्वारा रचा गया यह राजनैतिक षड्यंत्र उस समय के परिवेश की राजनीति का पर्दाफाश करने का प्रयास है। कैकई के द्वेष का मोचन तथा शूर्पणखा के रूप बदलकर अयोध्या आने से मंथरा पर जो कलंक का टीका लगा हआ था, वह सहज ही धुल जाता है। इस तरह पात्रों के सिर पर जो परंपरागत कलंक का टीका लगा हुआ था, उसे हटाने का भी सार्थक प्रयास किया है। संपूर्ण संस्कृत साहित्य में ऐसा कोई अन्य उदाहरण शायद ही देखने को मिले।

आज के यथार्थवादी परिवेश में भी हम विदूषक की भूमिका का त्याग नहीं कर पा रहे हैं। आज बिना विदूषक के कैसा नाटक! यदि लिखा भी गया तो उबाऊ होगा किन्तु भवभूति के साहित्य में विदूषक का अभाव पाया जाता है। यह भी क्रान्तिदृष्टा सृजन की उद्घोषणा है। भवभूति के नाटकों में ऊब नहीं होती। कथ्य के प्रति रुचि शुरू से आखिर तक बनी रहती है। यों भवभूति ने ऐसी अनेक परंपरायें तोड़कर परिवर्तन का विगुल बजाने का प्रयास किया है। हम हैं कि परंपरावादियों के घेरे में रहकर उस विगुल कर ध्वनि नहीं सुन सके। इसके लिये आज हमें पाश्चाताप है।

भवभूति राम कथा लिखते समय परंपरागत प्रसंगों को नहीं छोड़ पाये हैं किन्तु वे सीता के अग्नि परीक्षा वाले प्रसंग से व्यथित हैं।.... और यही व्यथा उन्हें उत्तर रामचरितम् लिखने को विवश करती है। वे इस कृति के माध्यम से इसी समस्या का समाधान प्रस्तुत करना चाहते हैं। भवभूति की सीता वाल्मीकि की तरह धरती में नहीं समाती वल्कि उनका मिलन होता है।

पौराणिक परंपरा के मोह में पड़कर भवभूति भी शंबूक का राम के द्वारा वध कराते हैं। किन्तु यहीं राम का अपनी बाहु से यह कथन—"हे दक्षिण वाहु, ब्राह्मण के मरे हुए शिशु के जीवन के लिए शूद्र मुनि के ऊपर कृपाण चलाओ। परिपूर्ण गर्भ से खिन्न सीता के निष्कासन में निपुण तुम राम की वाहु हो। तुम्हें भुला दया कहाँ?"

इस वाक्य को गौर से देखें तो महाकवि भवभूति को उस परंपरागत पौराणिक प्रसंग पर संदेह होता है, इसी कारण इस प्रकार का द्वन्दात्मक प्रसंग उन्हें लिखना पड़ा है। वे करुणा से परिपूर्ण हो अपनी भुजा को धिक्कारते हैं। शंबूक वध के समय निर्वासित सीता की स्मृति करके वे महसूस करते हैं उनके हाथ से दूसरा यह अशोभनीय कार्य भी हो रहा है।

इस कथन में राम अपने को धिक्कारते हुये दिखाई दे रहे हैं। यों राम का ही नहीं अपितु इस परंपरागत पौराणिक प्रसंग को लिखते हुए भवभूति का भी हाथ काँपता है।

महाकवि भवभूति नारियों की व्यथा से अधिक व्यथित दिखाई देते हैं। प्रथम अंक के सैंतालीसवे श्लोक में—"सीता के चरणों को नमस्कार करके राम कहते हैं कि हे देवि ! तुम्हारे पद कमलों को राम के मस्तिष्क का यह अंतिम स्पर्श है।" इसे आप अब वारम्वार पढ़कर देखें, काश! राम का यह भाव नारी के प्रति हम ग्रहणकर सकें।

भवभूति के बौद्ध धर्म मानने वालों के प्रति स्नेह के संबंध थे। मालती माधवम् में बौद्ध नायिका कामान्दगी के चरित्र की उत्कृष्टता हमें सोचने के लिये विवश कर देती है कि भवभूति का दृष्टिकोण सभी धर्मों के प्रति सम्मान का था। यदि ऐसा नहीं होता तो वे कामान्दकी का अभिनय स्वयं पात्र बनकर न करते। इस तरह भवभूति ने बौद्ध धर्म के प्रति अपना आदर भाव ही व्यक्त किया है।

मालती माधवम् में भवभूति ने सामाजिक व राजनैतिक परिवेश का खुला चित्रण अंकित किया है। अकेला माधव अनेकों सिपाहियों को मारकर भगा देता है, वहाँ के महाराज छत पर खड़े-खड़े यह दृश्य देखते रहते हैं। जब माधव जीत जाता है तो उसकी वीरता देखकर वहाँ के महाराज उसे अभयदान देते हैं। इस कथा के द्वारा भवभूति ने उस समय के राजनैतिक परिवेश के बारे में क्या नहीं कह दिया ? उस समय के राजा ने इस दृश्य को अवश्य देखा होगा। सोचें—राजनैतिक अव्यवस्था के ऐसे नर्तन का वर्णन करना किसी साधारण से व्यक्तित्व के बस की बात नहीं है। उस समय के राज परिवार की कमियों को रेखांकित करने के लिये ही ऐसे दृश्यों की संकल्पना की गई होगी।

नरवलि की परंपरा, वामाचार के रास्ते, तांत्रिकों की मनमानी उस समय की राजनैतिक अव्यवस्था को उजागर करने के लिए पर्याप्त है। आज की तरह उस समय भी आत्महत्याओं का चलन एवं कमजोर वर्ग के प्राणियों की हत्या उस समय के वामाचारियों द्वारा साधारण सी बात थी। उस समय राजतंत्र का प्रभाव नगण्य दिखाई देता है। यों भवभूति के मालती माधवम् में व्यवस्था की शल्य क्रिया करने का प्रयास किया है। उनकी उसी कृति में नंदन नामक पात्र मालती के साथ विवाह करने के लिये, राजा की खुशामद करके उन्हें अपने पक्ष में कर लेता है। लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है–उस समय राज परिवार का कार्य अपने चाटुकारों की शादी ब्याह कराने तक सीमित रह गया था। उस समय की सामाजिक व्यवस्था का इससे अच्छा आलेख कोई दूसरा नहीं हो सकता।

भवभूति ने नट जैसी जातियों को शिक्षित कर, उन्हें अभिनय के लिये मंच पर स्थान देकर सम्मानित भी किया था।

अंत में इतना ही कहना चाहूँगा कि आठवीं शताब्दी में भवभूति एक क्रांतिदृष्टा साहित्यकार थे। आज नये सिरे से उनका मूल्यांकन करने की आवश्यकता है तभी हम भवभूति के साथ न्याय कर पायेंगे।

कमलेश्वर कॉलोनी (डबरा), भवभूति नगर,
जिला-ग्वालियर-475110 (म0प्र0)

कविता

शब्द जो ब्रह्मांड है

वीरेन्द्र गोयल

तुम बनते हो वही
जो तुम्हें सबसे बुरा लगता है
तुमने चुना है वही
तुम चुने गये हो
उसी के लिए
तुम नहीं जानते
किसलिए
किसके लिए
और क्यों
तुम ये भी नहीं जानते
कि तुम, तुम हो
तुम जानना ही नहीं चाहते
कि तुम, तुम हो
चुने जाने
चुनने और जानने के बीच
कितने दरवाज़े हैं
कोई भी तो एक
खो नहीं पाते
हर बार तुम्हें
उठाकर रख दिया जाता है
तुम समझते हो
तुम चल रहे हो
तुम मानते हो
कि तुम समझते हो
देखे हुए को
देखते हो बार-बार
जिये हुए को
जीते हो बार-बार
कैसे खोजेगे
कैसे साधोगे
कभी सोचो
सोची हुई सोच की ज़ंजीरें तोड़कर
देखी हुई देखने की
भावना छोड़कर
कभी मिटाओ
इस स्लेट को
कि ख़ुद कुछ लिख पाओ
कभी साफ़ करो इस तख़्ती को
कि कोई और न कुछ लिख पाये
यहाँ तक कि कर्त्ता भी
बस रहे झक़्क सफ़ेद
बिना किसी स्याही के
जिसमें होता है शब्द
शब्द जो गूँजता है
शब्द जो फैलता है
शब्द जो सिकुड़ता है
शब्द जो जन्मता है
शब्द जो गुज़रता है
हो जाओ शब्दरहित
शन्य रहित
उससे भी पार
जो अवर्णनीय है
ताकि तुम बन सको
एक ऐसी इबारत
जो ख़ुद को ही
पढ़े जाने की इज़ाजत नहीं देती।

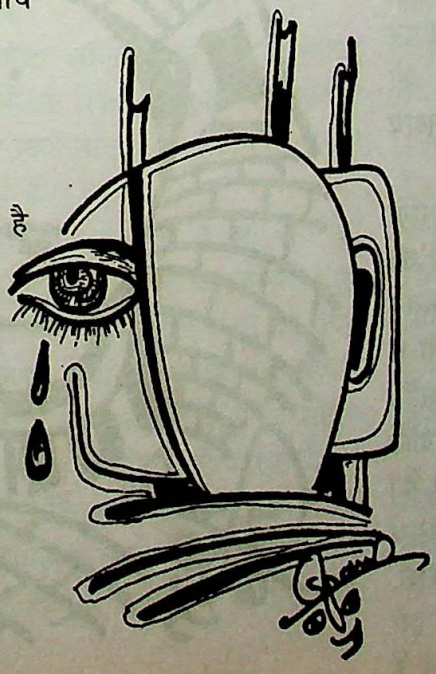

313/31, H-इन्द्रलोक, दिल्ली-110035

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक बदलाव की दिशा में एक ऐतिहासिक फैसला

डा0 कुसुम मित्तल

जुलाई, 2009 में दिल्ली हाईकोर्ट ने एक ऐतिहासिक फैसला दिया जिसके अनुसार दो वयस्क समलैंगिक व्यक्तियों के बीच स्वेच्छा से किया गया यौन संबंध कानूनी अपराध नहीं है। ज्ञातव्य है कि भारतीय दंड संहिता कानून की धारा 377 के तहत अप्राकृतिक यौन संबंध दंडनीय अपराध है जिसके लिये न्यूनतम 10 वर्ष की सज़ा का प्रावधान है। सज़ा आजन्म कैद तक बढ़ायी जा सकती है।

इस निर्णय से सामाजिक उथल-पुथल की स्थिति उत्पन्न हुयी है और अनेक प्रश्न उठे हैं। क्या यह निर्णय समलैंगिक समुदाय-लेसबियन, गे, ट्राँसजेंडर और बाईसैक्सुयल (एल0जी0बी0टी0) के जीवन में वांछित परिवर्तन ला सकेगा ? क्या उन्हें समाज में सम्मानित जीवन जीने का अधिकार मिलेगा ? क्या उनको राजनैतिक अस्तित्व प्राप्त हो सकेगा ? शिक्षा, स्वास्थ्य और उत्तराधिकार आदि के क्षेत्र में उनको पुरुष और स्त्री से अलग निजी अधिकार प्राप्त होगा ? इस समय इस निर्णय का इस समुदाय पर तत्कालीन प्रभाव क्या हुआ है ?

समलैंगिक समुदाय सदियों से सामाजिक, राजनैतिक और कानूनी शोषण व अत्याचार का शिकार रहा है। आज भी विश्व के 86 देशों में समलैंगिक यौन संबंध ग़ैर कानूनी हैं। सात देशों में इस अपराध के लिये मृत्यु दंड का प्रावधान है। ईरान में 2005 से सितंबर 2009 तक ऐसे 800 अपराधियों को मृत्युदंड मिल चुका है। विश्व के अन्य देशों में यह समुदाय सामाजिक तिरस्कार और प्रताड़ना का शिकार रहा है।

विश्व के विकसित देशों में एल0जी0बी0टी0 अपनी माँगों को लेकर संगठित हो रहे थे और समान नागरिक अधिकारों की माँग कर रहे थे। भारत वर्ष में भी 21वीं शताब्दी के आगमन के साथ ही इस समुदाय में चेतना आयी और मुंबई, दिल्ली में समान अधिकारों की माँग के लिये गौरव रैली निकाली गयीं। हिजड़ों के संगठन कुछ समय से बन गये हैं। माननीय कोर्ट के इस निर्णय ने उनमें उल्लास और विजय भावना पैदा की है। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सदियों से शोषित समुदाय, जो अपराध भावना से ग्रसित होकर जीवन बिता रहा था, को नया प्रकाश, खुला आसमान और स्वतंत्रता मिली है। समाज में फैले हुये इस अल्पसंख्यक समुदाय ने खुलकर स्वीकार किया कि वे भिन्न हैं यद्यपि ऐसे व्यक्तियों की संख्या अभी नगण्य है। दिल्ली, मुंबई व देश के अन्य भागों में उन्होंने गौरव व विजय जुलूस निकाले जिसमें सामान्य वर्ग की मशहूर हस्तियों ने हिस्सा लिया। दूरदर्शन पर महत्वपूर्ण चर्चायें करायी गयीं। समाचार पत्रों में प्रभावपूर्ण लेख प्रकाशित हुए। समलैंगिक विवाहों के कतिपय उदाहरण प्रकाश में आये।

दक्षिण भारत में एक ट्राँसजेंडर ने समलैंगिक विवाह पर 'इपाडिक्कूरोज़' नामक टी0वी0 कार्यक्रम प्रसारित किया। होटलों में समलैंगिक युगलों के लिये अलग व्यवस्था की जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके लिये विशेष पब, ब्यूटीपार्लर और यात्रा पैकेज बनाये जा रहे हैं।

प्रगतिशील विचारकों, डाक्टर्स व मनोवैज्ञानिकों ने हाईकोर्ट के निर्णय का स्वागत किया है। उनका मानना है कि वे भिन्न हैं और उन्हें भी अन्य नागरिकों के समान मानवीय जीवन जीने का अधिकार है।

नागरिक अधिकार कार्यकर्त्ताओं के प्रतिनिधियों ने चुनाव आयोग से ट्रॉंसजेंडर्स को अलग चुनावी पहचान देने की माँग की। अभी तक यह समुदाय स्त्री या पुरुष वर्ग में चिन्हित होता आ रहा है। हर्ष की बात है कि चुनाव आयुक्त एस0वाई0 कुरैशी ने उनकी इस माँग को स्वीकार किया। चुनाव आयोग ने चुनावी प्रपत्र में स्त्री-पुरुष के साथ-साथ अन्य वर्ग का भी प्रावधान करने का आश्वासन दिया है। वे चुनाव भी अन्य वर्ग से लड़ सकेंगे। इस प्रावधान से मेयर कमला जान के समान स्त्री या पुरुष कहकर उनके विरुद्ध कानूनी चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस व्यवस्था से उन्हें राजनैतिक अस्तित्व बनाने में सहायता मिलेगी।

उपरोक्त वर्णन एक आशाजनक चित्र प्रस्तुत करता है। सिक्के का दूसरा पहलू भी है-सामाजिक, धार्मिक स्वीकृति। जहाँ तक धार्मिक स्वीकृति का प्रश्न है, विश्व के सभी धर्मों के धर्म गुरुओं ने एक मत होकर समलैंगिक संबंधों को अनैसर्गिक, अनैतिक और ईश्वरीय विधान के विरुद्ध करार दे दिया। भारतीय समाज, जो अशिक्षा, अज्ञानता, ग़रीबी तथा अंधविश्वास के दुष्चक्र में फंसा है, को इस सुधार को स्वीकार करने में कितना समय लगेगा, यह तो भविष्य ही बतायेगा। विदित है कि बाल-विवाह, सती प्रथा तथा विधवा विवाह जैसी समस्यायें लंबे समय से सुधार आंदोलन से जुड़ी होने के बावजूद, आज भी समाप्त नहीं हो पायी हैं।

बड़े-बड़े शहरों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को छोड़कर मध्यम वर्गीय भारतीय समाज ने समलैंगिक रिश्तों व विवाह को स्वीकार नहीं किया है। ऐसे जोड़ों को उनके माता-पिता तथा सगे संबंधी स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।

वैज्ञानिक तौर पर यह सिद्ध हो चुका है कि ट्रॉंसजेंडर भावनात्मक रूप से भिन्न हैं फिर भी नागर समाज का बहुत बड़ा वर्ग इनके आपसी यौन संबंधों को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। उत्तर-प्रदेश में कानपुर तथा वाराणसी के कतिपय मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह रिश्ते मानसिक कुंठा के द्योतक हैं। यह विदेशी संस्कृति का हिस्सा हैं जो भारतीय संस्कृति के विपरीत हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या भारतीय संस्कृति इन रिश्तों से अछूती रही है ? इतिहास साक्षी है कि हिजड़ों और लौंडों का राजा-महाराजा और सामंती समाज में निरंतर स्थान रहा है। पौराणिक कथाओं में किन्नरों के अस्तित्व का पता चलता है। आज भी कुछ राज्यों में लौंडा नाच प्रचलित है।

आलोचकों का मानना है कि कोर्ट के फैसले से समाज में व्यभिचार बढ़ेगा। बच्चों के यौनिक शोषण को प्रोत्साहन मिलेगा। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि माननीय कोर्ट ने धारा 377 को हटाया नहीं है। सिर्फ उसमें सुधार करके वयस्क व्यक्तियों के बीच स्वेच्छा से किया गया यौन संबंध अपराध नहीं माना है।

जहाँ तक कानूनी मान्यता का प्रश्न है इसके लिए संविधान में सुधार करना आवश्यक है। साथ ही पर्सनल लॉ, उत्तराधिकार तथा संपत्ति हस्तांतरण आदि नियमों में परिवर्तन लाना होगा। इसके अतिरिक्त सभी प्रपत्रों में, जिनमें लिंग पहचान के लिये स्त्री/ पुरुष शब्द का प्रयोग किया जाता है, अन्य शब्द को सम्मिलित करना होगा।

सामाजिक व कानूनी वाध्यता के कारण यह समाज पर्दे के पीछे रहा है जिसके कारण स्वास्थ्य संबंधी जागरुकता और सूचना इन तक पहुँचाना कठिन रहा है। परिणामस्वरूप यह समुदाय एड्स तथा संक्रामक बीमारियों से ग्रसित हैं। कानूनी सुधार स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार में सहयोग देगा।

सामाजिक परिवर्तन निरंतर प्रक्रिया है जो शनैः शनै आता है। अतः सामाजिक जागरुकता का प्रयास भी निरंतर होना चाहिये। समाज, पुलिस, स्वास्थ्य कर्मचारी और कानूनी विरादरी को इस समुदाय के प्रति संवेदनशील बनाया जाये यह समय की आवश्यकता है।

लिंग-भेद आजकल चर्चा का अत्यंत लोकप्रिय विषय है जो नारी-विमर्श पर केंद्रित है। माननीय न्यायालय के निर्णय से लिंग भेद का एक अलग मुद्दा प्रकाश में आया है। नागर समाज और बुद्धजीवियों को इस विषय पर व्यापक चर्चा करनी चाहिये कि कब तक हम इस समुदाय के मानवीय अधिकारों का हनन करते रहेंगे।

मीडिया ने इस विषय पर संवेदनशीलता का प्रदर्शन किया है। दूरदर्शन पर इस विषय पर प्रभावपूर्ण चर्चा करायी गयी है। समाचार पत्रों ने अर्थपूर्ण लेख प्रकाशित किये हैं। यह सकारात्मक पहलू है। आवश्यकता है चर्चा को और व्यापक बनाया जाये और इस समुदाय की सामाजिक, राजनैतिक और स्वास्थ्य शिक्षा आदि स्थिति को प्रकाश में लाया जाये। उनकी समस्याओं को मुख्य धारा की समस्याओं से जोड़ा जाये।

कुछ ग़ैर सरकारी संस्थायें इस दिशा में सक्रिय हैं जिनकी गिनती नगण्य है। सामाजिक और पारिवारिक मानसिकता को बदलने के लिये अधिकाधिक काउंसलिंग की आवश्यकता है।

अध्यक्ष, महिला सहायक संघ, अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता

कुसुमाग्रज

सहानुभूति

उँचे प्रासाद स्थित परिसर में
ताँता सा लगता भीड़ का मार्ग में
दीपों के फूल चमकते नभ में
धन की नित चली दिवाली यहाँ

कोने में गुनगुनाता एक दोहा
पंगु वहाँ पर खड़ा था कभी का
लगता पास का नष्ट अंधियारा
उसके मन की शरण में है गया

चीखते चिल्लाते जिव्हा हुई शुष्क
उसमें भी था फाका दिनों का चार
दृष्टि जमी हाथ-पाँव गए फूल
खड़ा क्या वहाँ दीनता का मूर्त रूप?

करे कौन दया परंतु उसकी
कर जाते उपेक्षा उस हाथ की
तभी मजदूर आया वापस कोई
देख उस दीन को मन हुआ दुखी

रहूँ मैं एक दिन भूखा ही सही
कहे मिले इसे दो कौर ही
जेब पलट दी अंजुली में भूखी
गया वो दीनबंधु राह में अपनी

और धनिकों के वाहन रास्ते में
जा रहे थे अपनी ही मस्ती में।

पताई

पगडंडी से दर एक पठार
उस पर एक दरख़्त विशाल
और पद से उसके सटकर
जीर्ण पताई पड़ी है उदास,

उषा जीवन सिंचन करती आए
जग को निशा अँधेरे में छुपाए
खदिरांगार ढाले नभ से सूर्य
बेचारा सहता सब मूक दरख़्त

खिल्ली उसकी उड़ाते पत्ते पेड़ों के
उस पर मुठ्ठी भर घास भी हँसे
जाए कोई राहगीर कुचलकर
पर हमेशा दिखती पताई शांत

बन में उस अंत में एक दिन
इर्द-गिर्द दौड़ आई आँधी क्षुब्ध
दिखी पताई, उसे ही घेरकर
उड़ा दिया कहीं पर दूर-दूर

और बनी जगह रिक्त तल में
फिर होती वर्षा पत्तों की ऊपर से

'विशाखा' कविता संग्रह से
अनुवाद : डा0 शैलजा 'प्रभाक
'गंधबहार', 1, अयोध्यानगरी
आगाशिवनगर, कराड-415110, महाराष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन कविताएँ

सुरेश सेन निशांत

अलीगढ़ के ताले

1.
अभी पिछले दिनों मुझे
चाय की दुकान पर मिला
अलीगढ़ का एक आदमी
जो शायद किसी काम से
आया था पहाड़ पर।
यूँ ही पूछ लिया मैंने उससे
अलीगढ़ के बारे में।

ज़रा सा पूछकर
समझो अलीगढ़ की दुखती रग पर
रख दिया मानो मैंने हाथ।

समझो खोल दिया था मैंने
किसी प्राचीन किले के
दरवाजे पर टंगा
जंग लगा ताला
अब सामने थे बतियाने के लिए तत्पर
ढेर सारे दुख ही दुख।

वह भी था कभी अलीगढ़ में
ताला बनाने वाला
एक कुशल कारीगर कभी
पिछले दस सालों से
काम की तलाश में
भटकता हुआ वह दर-दर।
जब नहीं मिला काम ताले बनाने का
तो पेट की भूख ने बेशर्म बनाकर
ताले तुड़वाने शुरू कर दिए
इस अपराध में पकड़ा भी गया वह
हुई छहः महीने की भी सजा।

उसने सुबकते हुए बताया
वैसे अभी भी उसका हाथ
उतना ही साफ़ है
उतनी ही कला है अभी भी उसकी उंगलियों में
उतना ही पाक है अभी भी उसका मन
उतने ही सुंदर बना सकता है
अभी भी वह ताले।

उसे इस बात का बहुत दुख था
कि जिन तालों को बनाने के लिए
मशहूर था कभी अलीगढ़
उन तालों को तोड़ने के जुर्म में
सजायाफ़्ता मुजरिम है अब
उसी शहर का एक कुशल कारीगर।

इतना कहने के बाद
वह हो गया चुप
पर नहीं रुक रहा था
दुख की उस नदी का वेग
नहीं दब रही थी रुलाई
मैं भी दुखी था बहुत उसके दुख में।

मैंने थपथपाई उसकी पीठ
दिया आपदाओं से लड़ने का हौंसला
समझाया उसे कि अब ज़िंदा बचने के
रास्ते हों सारे बन्द
एक ही रास्ता दिखता हो
और वह भी खुलता हो
किसी अंधी गली में
तो मेरे ख्याल में बचने के लिए
उसी रास्ते निकल जाना ठीक है
ताले तोड़कर गुजर करने का रास्ता
काफी बेहतर
भूखे मरने से तो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर-दर भटकते हैं।

2.
कभी बड़ी-बड़ी जेलों पर
टंगे होते थे मुस्तैद सिपाही सा
बड़े-बड़े कोषागारों का
वही रखते थे ख्याल
बड़े-बड़े चोरों के
हौंसले हो जाते थे पस्त
जब वे देखते थे जड़ा हुआ कहीं
अलीगढ़िया ताला।

देखते ही बनती थी कभी
उन तालों की शान
सालों बाद भी दिखते थे वे नए के नए
एक की चाबी
कभी भी नहीं लगती थी दूजे को
देखते ही बनता था ताले बनाने वाले
उन देसी कारीगरों का हुनर भी।

किसी ताले की चाबी
बनाने में मशगूल निहाई पर झुके
कारीगर से बात करने से
हिचकिचाता था बड़े से बड़ा सेठ।

बड़े से बड़े कारकुन भी
इन कारीगरों से बात करते हुए
रहता था विनम्र
क्योंकि इन तालों की वजह से ही
अकड़ी रहती थी शान से
उसकी क्या इस शहर की भी गर्दन।

अब आप पूछते हैं
कि क्या करते हैं आजकल
उन तालों के कारीगर
वही करते हैं
जो बन्द पड़े करघों के
बुनकर करते हैं
जो उजड़ी हुई मिलों के
मजदूर करते हैं
जो लकड़ी के खिलौने बनाने वाले
बेहतरीन कलाकार करते हैं।

बस्स दो जून की रोटी के लिए

3.
पता नहीं कब और कैसे
इतने लोकप्रिय हो गए
अपने यहाँ वे अलीगढ़ के ताले।

इन पहाड़ों पर
जब देखती किसी ट्रंक पर
अलीगढ़िया ताला तो समझ जाते सब
कि खाता-पीता आदमी है यह।
यहाँ पहाड़ों में कहावत भी रही है
कि आदमी का रुतबा कपड़ों से
और ट्रंक का तालों से।

एक दिन पिता से
गुम गई चाबी उस पुराने अलीगढ़िया ताले की
समझो बेकार हो गया वह ताला
अब लाना पड़ेगा नया ताला
पर पिता की जिद्द थी कि
ताला वैसा ही चाहिए
अलीगढ़ के ताले जैसा।

चालीस साल बाद भी जो
लगे ने का नया।

पिता को कैसे समझाऊं कि
जैसे नहीं मिलता बाजार में
किसी भी दुकान पर अब
उनका वह प्रिय देसी तम्बाखू
नहीं मिलती पीपे में पड़ी
वह गन्ध भरी राब
नहीं मिलती बाजार में अब
माँ के टूटे हुए चरखे की हत्थी
वैसे ही नहीं मिलते हैं
आजकल अलीगढ़ के ताले
पर पिता हैं कि
लगाए हुए हैं उन्हीं तालों की रट
गा रहे हैं उन्हीं के गुण।

द्वारा श्री कुलदीप सिंह हेत
गांव-सलाह, डा0-सुन्दर नगर-1
जिला-मण्डी (हि0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी बेटी

भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज़'

1.
मेरी बेटी जब
टिफ़िन कैरियर
रखकर जाने लगी
तो मैंने कहा—
'बैठो न, जल्दी भी क्या है'
वह बोली—'जल्दी ही रह गयी है
और बचा ही क्या है।'

मैं बोला—'क्या समय आ गया है,
जीवन यंत्रवत् हो गया,'
'जीवन' वह बोली
'कहाँ है, किधर है
मात्र एक यंत्र है
बिना रुके चलना
उसकी नियति है।
जीवन तो चला गया
बचपन के साथ
'क्या आपको ऐसा नहीं लगता ?'
प्रश्न किया उसने।

बात सत्य थी,
क्या उत्तर देता मैं
सुबह पाँच बजे उठकर
उल्टा-सीधा पेट में डालकर
भागती है वह बस-स्टैन्ड तक
बस पकड़ने को
ताकि पहुँच जाए
प्रेयर के पहले तक,
वर्ना मिलेगा उसे
हाज़िरी रजिस्टर में
एक लाल निशान
देर से पहुँचने का।
तीन-साढ़े तीन बजे
जब घर लौटती है,
तो ताला खोलती है,
पंखा चलाती है,
कापियों के चार-पाँच
बन्डल निकालकर
रखती है मेज़ पर
'करेक्शन' करने को
डेढ़ सौ नोटबुकें
कल लौटी हैं
परसों फिर डेढ़ सौ
लाएगी जाँचने के लिए
यह क्रम चलता रहता है
वर्ष भर, दिन-प्रतिदिन
कहाँ विश्राम, जब
नींद ही हराम है।

मैं देखता हूँ
मेरी बेटी, जिसे मैंने
भावी सुख के लिए
पढ़ाया-लिखाया ताकि
आत्मनिर्भर बने,
किसी के सामने न फैलाये
हाथ, वह
कैसी मुरझा गयी
चेहरे पर कोई ताज़गी नहीं
कोई मुस्कान नहीं
यदि कुछ है, तो है
मात्र थकान... थकान...
हँसती है कभी
तो ऐसी फीकी हँसी
ऐसी विद्रूप हँसी
जैसे स्वयं अपने जीवन
पर हँसती हो।
यह मेरी बेटी है,
जिसे मैंने पाला है,
पर अब विवश हूँ
कुछ कर नहीं सकता
मात्र बैठकर खाता हूँ
और देखा करता हूँ
यंत्रवत पुतली को
ऐसी कितनी ही बेटियाँ
जीवन में सुख-दुख का
भार ढोते हुए चली जा रही हैं
नियति के पथ पर...
किसी का प्यार पाने
या प्यार देने की क्षमता
भी समाप्त हो गयी है...
हाय रे समय,
तेरी बलिहारी है।

एफ़-एफ़-4, बी-ब्लॉक
सनपावर फ़्लैट्स, गुरुकुल रोड
अहमदाबाद-880052

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थ के स्तब्धकारी विचलन से आविष्कृत इतिहास

ए. अरविंदाक्षन

आख़िर यथार्थ को रचना में रूपांतरित होना ही पड़ता है और उस रूपांतरण को कुछ क्षणों के लिए मिथकीय दृश्यात्मक स्थिति में संस्थित करें, तो सिसिफ़स की हँसी की ध्वनियाँ निरंतर सुनी जा सकती हैं। इसका कारण है कि हमारा यथार्थ उतना सरल नहीं है, जिसे एक सामान्य समीकरण के रूप में पढ़ा जा सके। जिसके पास सिसिफसियन निर्ममता है, तटस्थ मानवीय संपृक्तिबोध ा है, वह यथार्थ का अपने ढंग से विखंडन कर सकता है। संभवतः वही रचनाकार एक पारदर्शी पहचान को व्यक्त भी कर पाता है। यह फलागम वाली सरल स्थिति नहीं है। यह शब्दों के विराट संसार में घटित होने वाला सार्थक प्रयास है। इसके लिए, प्रथमतः रचनाकार को अपने प्रति अकारुणिक होना पड़ता है। उस करुणाहीन अवस्था में रचनाकार अपने यथार्थ को रूपांतरित कर पाता है। यथार्थ को, उसके बाहर और भीतर समान रूप से उपस्थित रहकर रूपांतरित करना आसान नहीं है। जिस रचनाकार के पास यथार्थ का पारदर्शी इतिहास-बोध सुलभ हो, वही यथार्थ को गड्डमड्ड कर सकता है। यह प्रयोगशीलता का कोई नमूना नहीं है। यह रचना के आंतरिक संचरण का सृजनात्मक स्वरूप है। हिंदी कहानी में प्रेमचंद ने अपनी एकाध कहानियों में यथार्थ को पलट दिया था। यह उनकी सघन रचनात्मक व्याकुलता यानी आत्मसंघर्ष का परिणाम था। कलुषित यथार्थ के अनियंत्रित विस्तार के सामने उनका एक प्रश्नचिह्न था। मुक्तिबोध ने अपनी कहानी 'क्लॉड ईथरली' में यथार्थ को बाहर तथा भीतर से पूरी तरह से झकझोरा था कि हमें इतिहास के कुछ अनपढ़े अध्याय खुले मिले थे। ज्ञानरंजन और काशीनाथ सिंह में भी ऐसी ही काबलियत थी कि उन दोनों ने भारतीय मध्यवर्गीय यथार्थ के आत्मपक्ष एवं वस्तुपक्ष को नये ढंग से पढ़ा। उदयप्रकाश भी अपने देश को लिखते समय यथार्थ में स्तब्धकारी विचलन संभव बनाते हैं, जिससे उनकी कहानियो में इतिहास का एक अवांतर पक्ष मूर्त को उठता है।

यथार्थ का सीखा एकरैखिक विस्तार रचना के लिए अपेक्षित अवस्था नहीं है। यथार्थ से विचलन अत्यंत आवश्यक घटक है रचना के लिए। यथार्थ रचना की पूँजी भी है और उससे विस्थापित होने की दृष्टिसंपन्नता भी। अतः रचना में अपने यथार्थ के स्तब्ध ाकारी विचलन की अनिवार्यता सदैव रहती है। जब यथार्थ अपरिभाषेय और जटिल होता है, तो रचनाकार उसकी ताक़त के सम्मुख अवाक् रह जाता है। कभी-कभी उसे ऐसा भी प्रतीत होता है कि यथार्थ अब उतना जटिल नहीं है। यह जादुई संक्रमण इसलिए दृष्टिगत होता है कि यथार्थ के सरलीकरण की साजिशें भी चलती हैं। सरलीकरण सदैव आकर्षक और प्रलोभनकारी होता है। जटिल और सरलीकृत यथार्थ के बीच खड़े रचनाकार को चयन करना पड़ता है। समय और रचनात्मकता के प्रति समर्पित रचनाकार जटिल यथार्थ का चयन करता है और उसे रूपांतरित करता है। यथार्थ के इस अनपेक्षित अयथार्थ को यथार्थ में रूपांतरित करना आसान नहीं है, उसके लिए पूर्व सूचित सिसिफसियन तल्ख़ अंदाज़ की ज़रूरत है। उदय प्रकाश में यह सिसिफस कार्यरत है निरंतर और निर्बाध। एक तरह की 'रूथलेस सेल्फ एवेयरनेस'।

उदयप्रकाश की कहानी 'पॉल गोमरा का स्कूटर' में राम गोपाल का पॉल गोमरा में परिवर्तित होना हल्का-फुल्का मसखरापन नहीं है। है उस कहानी में मसखरापन। उससे ज़्यादा इतिहास की पहचान से आविष्कृत मसखरापन कहानी के आंतरिक यथार्थ की विपुलता को लक्षित करता है। यह इतिहास हमारे सामान्य इतिहास के समांतर द्रुत गति से विकसित पूँजी-केंद्रित इतिहास है। इसको न अनदेखा किया जा सकता है, न उसे अपठित छोड़ा जा सकता है। उदयप्रकाश अपनी कहानी 'पॉल गोमरा का स्कूटर' के ज़रिये सामान्य इतिहास के यथार्थ को रूपांतरित करके समांतर इतिहास के यथार्थ को बहुवर्णी बनाकर प्रस्तुत कर रहे हैं—आख्यान परंपरा के रूपकों के सहारे। कहानी की बहिरंग छवि आख्यान की वृत्तांतपरकता से समृद्ध है। इस वृत्तांत का एक सर्ग है कहानी में मुख्य पात्र के नाम का परिवर्तन—रामगोपाल का पॉल गोमरा में परिवर्तन। दकियानूसी नामों से भिन्न बाज़ार की अपेक्षाओं से समृद्ध नाम जो लातीनी, अफ़्रीकी या इतालवी नाम का आभास देने वाला है। कहानी के आरंभ का यह वृत्तांत-कथन अपनी सरल डिलिवरी में एक ख़तरनाक छुरा छिपाये हुए है। कुछ प्रश्न यहाँ अपेक्षित हैं—क्या यह उदयप्रकाश का शैल्पिक तंत्र मात्र है? इसी सवाल के साथ एक और सवाल यह पूछा जा सकता है कि क्या कोई शैल्पिक आविष्कार अपने ढंग से संपूर्ण है? क्या उसका कोई अलग अस्तित्त्व है? नहीं, उसका अपना कोई अलग अस्तित्त्व नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वह कहानी के इच्छित यथार्थ का ही आविष्कार है। अतः कहानी के पात्र का नाम-परिवर्तन कौतुक उत्साह भर नहीं है। उदयप्रकाश की कहानी 'पॉल गोमरा का स्कूटर' भूमंडलीकरण के सांस्कृतिक विघटन को बिना किसी कोलाहल के अवतरित करती है। कई चीज़ें बदल रही थीं; कइयों के नामोनिशान मिट रहे थे। रामगोपाल का मिटना या मिटाना अनिवार्य था। यह किंचित मात्रा में समझ में आने वाली बात है, लेकिन कई बातें समझ में नहीं आ रही हैं–"वे देख यह रहे थे कि जितनी तेज़ी से पूर्वी यूरोप में समाजवाद साफ़ हुआ था, उतनी तेज़ी से दिल्ली से निकलने वाली हिन्दी की पत्रिकाएँ और अख़बार साफ़ हो रहे थे। इन दोनों के बीच क्या 'कनेक्शन' है, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था।" "बाज़ार अब सभी चीजों का विकल्प बन चुका था। शहर, गाँव, क़स्बे बड़ी तेज़ी से बाज़ार में बदल रहे थे। हर घर दूकान में तब्दील हो रहा था। बाप अपने बेटे को इसलिए घर से निकालकर भगा रहा था कि वह बाज़ार में कहीं फिट नहीं बैठ रहा था। पत्नियाँ अपने पतियों को छोड़-छाड़कर भाग रही थीं, क्योंकि बाज़ार में उनके पतियों की कोई माँग नहीं थी। औरत बिकाऊ और मर्द बिकाऊ का महान चकाचक युग आ गया था।" इन हालात में रामगोपाल बनकर भला कोई जी सकता है? उसे पॉल गोमरा बनना ही था, सो वह बन चुका था। भूमंडलीकरण का यह सरल अंतस्सन्निवेश मात्र है। भूमंडलीकृत संस्कृति ने हमारी समूह संस्कृति या जनप्रिय संस्कृति को ही प्रभावित नहीं किया है, बल्कि उसने हमारी पारंपरिक संस्कृति को भी ग्रस लिया है। यानी यथार्थ के अंदरूनी हिस्सों में सड़न पैदा करना शुरू कर दिया है, इसलिए पॉल गोमरा में जो आकर्षण है, वह बना रहेगा और बचा भी रहेगा। यह एक बाज़ार-बीज है। बीज मिट्टी के उर्वर होने की प्रतीक्षा में रहता है। समयानुकूल वह अंकुरित होता है। उदयप्रकाश ने हमारे यथार्थ में से इस अनपेक्षित यथार्थ को खोज लिया है।

हिंदी कवि बने रहने के बावजूद रामगोपाल के आत्मपक्ष की उन्मुखता मंडीकृत दृश्यात्मकता में ही अधिक रुचि ले रही है। वह अपनी सहारनपुर वाली पत्नी में हॉलीवुड की ख़ूबसूरत मॉडल को देख रहा है। सलवादोर डॉली के चित्र की घड़ी की तरह सभी दृश्य पिघलते, फिर बहते नज़र आ रहे हैं। पारंपरिक संस्कृति का जनप्रिय संस्कृति में बदलना लघु संस्कृतियों के विघटन का अच्छा-ख़ासा उदाहरण है। पॉल गोमरा के जीवन के वस्तुनिष्ठ पक्ष में भी भूमंडीकरण का असर पड़ा है कि वह एक स्कूटर ख़रीदने का फ़ैसला करता है, जबकि उसे स्कूटर चलाना आता नहीं है। दिलचस्प बात यह है कि उदयप्रकाश ने इस उपभोगवादी संस्कृति-मोह को भी विखंडित किया है कि अब स्कूटर को अनियंत्रित उपभोग-मोह के अंतर्गत परिगणित करना अवैज्ञानिक है। जैसे हर रोग प्रौढ़ावस्था के बाद धीरे-धीरे शरीर में फैलता है, उसी तरह हर रोग हृदय में भी व्यापता है। शरीर और हृदय की रोग-प्रतिरोधक क्षमता होती है। रोग के प्रति शांत एवं उदासीन मुद्रा भी एक तरह की रोग-प्रतिरोधक शक्ति ही है। पॉल गोमरा स्कूटर ख़रीदने की बात को उपभोगवादी संस्कृति का सशक्त प्रतिरोध मानता है–"इस तरह स्कूटर प्रतीकात्मक रूप से इस नव-औपनिवेशिक, भू-मंडलीकृत, उपभोक्तावादी, बाज़ारू साम्राज्यवाद का सशक्त प्रतिरोध है। अगर गाँधी जी को यह मानने की स्वतंत्रता थी कि इंग्लैंड के विशाल मशीनी उद्योगों के विरुद्ध चरखा एक यंत्र नहीं, बल्कि दस्तकारों और बुनकरों या मनुष्यों के हाथ का ही नैसर्गिक विस्तार है, तो हिन्दी भाषा के फक्कड़ कवि पॉल गोमरा को भी यह मानने का अधिकार था कि आज ये युग में स्कूटर, दरअसल, मनुष्य के पैरों का ही अत्यंत मानवीय विस्तार है।"

यथार्थ के रूपांतरण में भाषा की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। उदयप्रकाश भाषा की प्रतिरोधी शक्ति से परिचित कहानीकार हैं। विकराल स्थिति को सामान्य या अतिसामान्य करने की तरक़ीब वे जानते हैं। उसके लिए भाषा के निहितार्थों से परे जाने की भाषिक क्षमता को उदयप्रकाश अपनी कहानी में प्रयुक्त करते हैं। सांस्कृतिक विघटन को उसकी विकरालता में दर्ज़ न करके सामान्यता में दर्ज़ करने की उनकी कथा-दृष्टि विघटन को समग्रता में पहचानने में सहायक है। उनकी कविता-भाषा में भी यह प्रवृत्ति मिलती है।

उदयप्रकाश ने अपने वृत्तांत-कथन के उपसंहार में पॉल गोमरा के त्रासद अंत का दृश्य प्रस्तुत किया है जो हमारी समूह-संस्कृति के विघटन को सूचित करने में सहायक है। हमारी समूह-संस्कृति अब पूरी तरह से भूमंडलीकरण के अधीन हो चुकी है। जीवन के लघु प्रसंगों की बहस उस संस्कृति में इसीलिए अयाचित या अश्लील समझी जाती है। पॉल गोमरा का अचर्चित होना इसी का उदाहरण है। तुड़े-मुड़े जीवन का आख़िर क्या मूल्य? नपे-तुले, पदासीन सज्जनों और शरीफ़ों का प्रतिनिधित्व करने वाले विराट् प्रसंगों की बहस की हमारी समूह-संस्कृति में वांछित समझी जाती है। यह हमारा यथार्थ है। भूमंडलीकृत संस्कृति का यह देसी यथार्थ है।

पॉल गोमरा और स्कूटर इस कहानी में दो प्रतीक मात्र नहीं हैं, जो अपनी-अपनी अर्थवत्ता प्रदान करते-करते कहानी के किन्हीं सीमांतों में अवशेषप्राय हो जाएँ, वे हमारी समूह-संस्कृति की अवस्था की निरंतरता हैं। वे हर युग में अप्रतिरोधी शक्तियों से समझौता करते हैं और एक ग़लत तथा समांतर इतिहास का निर्माण करते हैं। उदयप्रकाश ने यथार्थ के इन तमाम अनपेक्षित पहलुओं को ख़ारिज किया है और वनस्पतिसदृश हमारे मन-मस्तिष्क में व्याप्त सरलीकरण के हल्के हरेपन के प्रति हमारे मोह को टोका है। यह वास्तव में हरापन नहीं है, यह हरेपन का भ्रम है, इसको हटाना है।

279/7 Sandram, Mavelipuram,
P.O. - Kakkanad, KOCHI-682030

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरों पर अगर तब्सिरा कीजिए...

दामोदर दत्त दीक्षित

गिरिराज किशोर हिन्दी के बहुपुरस्कृत और बहुसम्मानित कथाकार हैं। साहित्य एकेडेमी पुरस्कार, व्यास सम्मान, महात्मा गांधी साहित्य सम्मान, भाषा पुरस्कार आदि अनेक सम्मानों से नवाज़े जा चुके हैं। उन्हें पद्मश्री भी मिल चुकी है। वह साहित्य एकेडेमी के सदस्य और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के फेलो भी रह चुके हैं। आजकल गिरिराज जी ने उपदेश देने का अतिरिक्त दायित्व संभाल रखा है। उनके उपदेशों की विशिष्ट बात यह होती है कि वह स्वयं जिस मार्ग के अनुगामी होते हैं, ग़ैर के संदर्भ में उसी की बेखटके, निर्द्वन्द्व भाव से आलोचना करते हैं।

उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा मंत्री रहे आचार्य जुगल किशोर के भान्जे गिरिराज किशोर ने इलाहाबाद में एक सामान्य नौकरी से शुरूआत की, फिर उठते-उठते कानपुर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार बने। बाद में वह आई0आई0टी0. कानपुर में एक ग़ैर एकेडेमिक पद पर आ गए। आई0आई0टी0 में रहते हुए उन्होंने एक अच्छी योजना लागू करवायी जिसके अंतर्गत हिन्दी लेखक कुछ माह तक आई0आई0टी0 में प्रवास करते हुए छात्रों से परिसंवाद करते थे। यह योजना गिरिराज जी की सेवानिवृत्ति के साथ ही समाप्त हो गयी। इस योजना के अंतर्गत हिन्दी के उन लेखकों को भी बुलाया गया जो हिन्दी साहित्यिक जगत् के सामर्थ्यवान और सत्ताधारी के रूप में जाने जाते हैं। कुछ समय बाद गिरिराज जी को उनके उपन्यास 'ढाई घर' के लिए साहित्य एकेडेमी पुरस्कार प्रदान किया गया। इस निर्णय में अहम भूमिका निभाने वालों में वे लेखक भी शामिल थे जिन्हें गिरिराज जी ने आई0आई0टी0 में प्रवास के लिए आमंत्रित किया था।

भाजपा शासनकाल में गिरिराज जी ने डॉ0 मुरलीमनोहर जोशी, डा0 विष्णुकान्त शास्त्री और श्री केसरीनाथ त्रिपाठी जैसे नेताओं से संपर्क साध लिया। अन्य दलों के शासनकाल में भी उनके काम नहीं रुके। यह भी सुनने में आया कि जब वह 'पहला गिरमिटिया' लिख रहे थे, तो तत्कालीन उत्तर प्रदेश सरकार से दक्षिण अफ्रीका यात्रा हेतु आर्थिक अनुदान लेने में सफल रहे।

काम निकल जाने के बाद विद्रोही मुद्रा अख़्तियार कर लेने का गिरिराज जी को अच्छा अभ्यास है। जब भाजपा नेता श्री केसरीनाथ त्रिपाठी उ0प्र0 हिन्दी संस्थान के अध्यक्ष थे, तो गिरिराज जी को उ0प्र0 हिन्दी संस्थान ने 'महात्मा गांधी साहित्य पुरस्कार' प्रदान किया। पुरस्कार प्राप्त करने से पहले नहीं, बाद में गिरिराज जी को इलहाम हुआ कि कार्यक्रम में प्रशस्तिवाचन हो रहा है। वह तुरंत 'बागी' हो गए और 'त्रिपाठी जी, नमस्कार' कहते हुए, सपुरस्कार 'वाक आउट' कर गए। यानी कि प्रशस्तिपरक कार्यक्रम में पुरस्कार भी ग्रहण कर लिया और अपने प्रगतिशील मित्रों पर 'इम्प्रेशन' भी जमा दिया कि वह भाजपा सरकार के कार्यक्रम का बहिष्कार कर, विद्रोह कर आ गए।

गिरिराज जी की साहित्यिक एकेडेमी की सदस्यता का मामला भी अचंभित कर देने वाला है। प्रदेश के महामहिम राज्यपाल विश्वविद्यालय के किसी वरिष्ठ हिन्दी प्रोफ़ेसर को साहित्य एकेडेमी की सदस्यता हेतु नामांकित करते हैं। गिरिराज जी किसी विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रोफ़ेसर नहीं रहे। नियमोचित कार्य करने के लिए विख्यात, तत्कालीन राज्यपाल डा0 विष्णुकान्त शास्त्री ने पात्रता की परिधि में न आते हुए भी सुपात्रों की उपेक्षा करते हुए और नियमों की अनदेखी करते हुए गिरिराज जी को साहित्य एकेडेमी का सदस्य नामांकित कर दिया। सत्ता प्रतिष्ठानों से काम निकालने में गिरिराज जी की कितनी क्षमता है, कितनी पटुता है, इसका अंदाज़ इसी बात से लगाया जा सकता है जब कि स्वाभिमानविहीनता, सम्मानलोलुपता और प्रशस्तिवाचन का आरोप वह दूसरों पर लगाते हैं। भाजपा शासनकाल में ही गिरिराज जी को भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला का फेलो चुना गया।

अपनी प्रगतिशीलता के दावे के बावजूद गिरिराज जी साहित्य एकेडेमी के अध्यक्ष पद हेतु प्रगतिशील बांग्ला कथाकार महाश्वेता देवी का नहीं, उर्दू समालोचक डा0 गोपीचन्द नारंग का समर्थन किया जिन्हें प्रगतिशील नहीं माना जाता। डा0 नारंग विजयी हुए और उन्होंने समर्थन के एवज में गिरिराज जी को हिन्दी का संयोजक बनवा दिया। अपने संयोजकत्व में एक बार तो गिरिराज जी ने अनोखा इतिहास रच दिया। वर्ष 2004 के पुरस्कार हेतु चयनकर्ताओं की नियमविहित बैठक भी नहीं हुई, मात्र टेलीफोन और फैक्स माध्यम को अपनाकर चयन कर लिया गया। इससे गिरिराज जी की नहीं, साहित्य एकेडेमी जैसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शीर्षस्थ संस्था की भी भद्द पिटी। किसी अन्य ने ऐसी कारगुज़ारी की होती, तो गिरिराज जी ने उस पर ख़ूब चाबुक चलाई होती।

साहित्य एकेडेमी के अपने कार्यकाल में गिरिराज जी अध्यक्ष डा0 नारंग के सौजन्य से हिन्दी के संयोजक बने, देश-विदेश की यात्राएँ कीं, संगोष्ठियों-समारोहों में धाक जमायी। जब काफी कुछ प्राप्त कर लिया और डा0 नारंग का कार्यकाल थोड़ा ही बचा, तो विद्रोही होकर डा0 नारंग पर ही पिल पड़े। ठीक उ0प्र0 हिन्दी संस्थान के पुरस्कार समारोह जैसी रणनीति जिसके अनुसार पहले पुरस्कार ग्रहण कर लिया, फिर प्रशस्तिवाचन का आरोप लगाकर 'वाक आउट' कर गए। समर्थक ही नहीं, विरोधी भी डा0 नारंग को चतुर व्यक्ति के रूप में जानते हैं। पर हमारे गिरिराज जी उन पर भी भारी पड़े। इसमें कोई संशय नहीं कि गिरिराज जी का बदलते मौसम जैसा आचरण इतिहास में दर्ज हो गया।

भाजपा शासनकाल में कुछ स्वार्थी और लाभकामी बुद्धिजीवियों ने, जो घोषित तौर पर भाजपा विरोधी थे, रोचक, पर जड़तापूर्ण सिद्धांत गढ़ा, "अटल बिहारी बाजपेयी सही व्यक्ति हैं जो भाजपा जैसी ग़लत पार्टी में हैं।" अगर भाजपा ग़लत पार्टी है, तो उसके शीर्षस्थ नेता अटल बिहारी बाजपेयी सही व्यक्ति कैसे हो सकते हैं ? यह भी कहा जा सकता है कि शीर्षस्थ नेता सही है, तो उसकी पार्टी कैसे ग़लत हो सकती है ? गिरिराज जी ने भी भाजपा शासनकाल में ऐसा ही एक सिद्धांत गढ़ा कि भाजपा तो ठीक नहीं है, परंतु उसके नेता डा0 मुरलीमनोहर जोशी (तत्कालीन मानव संसाधन मंत्री) अच्छे व्यक्ति हैं क्योंकि उनमें इलाहाबाद के संस्कार हैं। अपना काम साधने के लिए वह 'इलाहाबाद के संस्कार' का सिद्धांत ले आए... शायद यह सोचते हुए कि हिन्दी साहित्यिक जगत् न कुछ देखता है, न सुनता है, न समझता है।

एक बार उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव श्री विनोद कुमार मित्तल की अध्यक्षता में लखनऊ में एक समिति की बैठक हुई जिसके सदस्य गिरिराज जी भी थे। किसी वजह से गिरिराज जी देर से पहुँचे। इस पर अध्यक्ष श्री मित्तल ने टोक दिया। इसे गिरिराज जी ने लेखक का अपमान माना और 'इस्यू' बना दिया। पता नहीं किस किताब में लिखा है कि लेखक को बैठक में विलंब से आने का विशेषाधिकार मिला होता है। अगर गिरिराज जी सचमुच गांधीवादी होते, तो देर से आने का कारण बताते हुए खेद व्यक्त कर देते। उनका क़द कुछ और ऊँचा हुआ होता। वैसे अगर गिरिराज जी का लेखक इतना ही 'टची' है, तो उन्हें अफ़सरशाह (जिन्हें वह हेय समझते हैं और निंदा करते रहते हैं) की अध्यक्षता वाली समिति का सदस्य ही नहीं बनना चाहिए था।

राजेन्द्र यादव ने 'हंस' पत्रिका में मध्य प्रदेश सरकार का

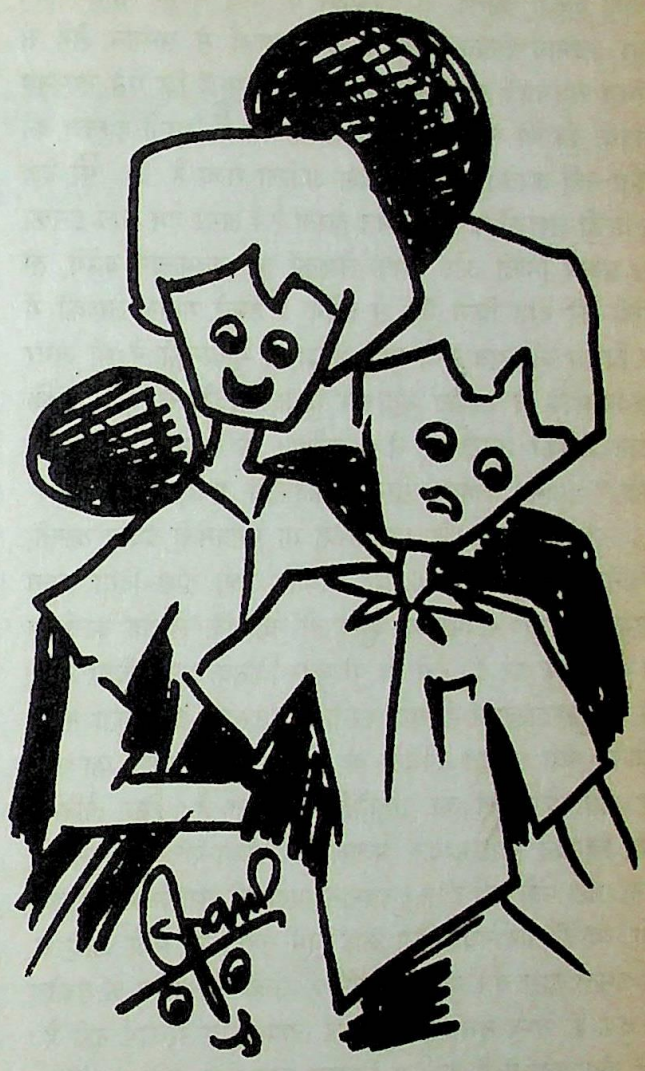

एक विज्ञापन छापा था जिसमें प्रकारान्तर से आर0एस0एस0 की नीतियों का उल्लेख था। इस पर प्रियंवद के साथ-साथ गिरिराज जी ने भी आपत्ति उठायी। तर्क यह रहा कि 'हंस' सम्पादक चूँकि भाजपा-आर0एस0एस0 की विचारधारा को पसन्द नहीं करते इसलिए उन्हें विज्ञापन नहीं छापना चाहिए था। सवाल नीतिगत और व्यावहारिकता का है। अगर पत्रिका का संपादक सभी राजनीतिक दलों के क्रियाकलापों को पसंद नहीं करता (जो आज के राजनीतिक दलों को देखकर बिलकुल संभव है), तब क्या वह सारे सरकारी विज्ञापनों को छापने से इन्कार कर दे ? संपादक विज्ञापन में किये दावों की सच्चाई कहाँ तक और कैसे परखेगा ? क्या इसके लिए विशेषज्ञों की टीम नियुक्त करेगा और वस्तुओं के विज्ञापन के दावों की परख के लिए प्रयोगशाला खोलेगा ? क्या यह संभव है ?

गिरिराज जी ने अपने ब्लाग में लिखा है... अमर उजाला में डा0 केदारनाथ सिंह जी का उत्तर प्रदेश के कैबिनेट, पर वरिष्ठता में जूनियर मंत्री के कर कमलों से भारत-भारती सम्मान लेते हुए फोटो छपा है। केदार जी हमारी भाषा के सम्मानित कवि हैं। उन्हें नगर विकास मंत्री से भारत-भारती सम्मान ग्रहण करते देखकर मन बांसों उछल गया। लेकिन मंत्री जी की अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़्यादा ज़रूरी कारणों से कार्यक्रम के बीच में ही जाना पड़ा। कुछ हतभागे लेखक मंत्री के कर कमलों से सम्मान लेने से वंचित रह गए। हमारे लेखक कितने महान हैं कि ऐसे नए-नए मंत्रियों को भी महानता का तौक पहनाने में अपनी इज़्ज़त की चिंता नहीं करते।... उत्तर प्रदेश अकेला राज्य है, जो पूरे देश के हिन्दी लेखकों को सम्मानित करता है। अगर हम स्वयं इसका इस प्रकार हिन्दी और उसके लेखकों का अवमूल्यन करेंगे, तो हिन्दी की बात किस मुँह से करेंगे ? हमारे महान लेखकों में तो विरोध की ताब बची नहीं, प्रदेश के मुख्यमंत्री ने भी अगर इस नज़रिये से सोचना बंद कर दिया, तो बेहतर यही है कि ड्राफ्ट भेजकर छुट्टी पा लें।। सम्मान के वहम से तो छुट्टी मिले।" (अमर उजाला, मेरठ, संपादकीय, पृष्ठ, 03.03.09)

पुरस्कार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री प्रदान करतीं, तो निश्चय ही बेहतर था, पर कैबिनेट मंत्री द्वारा दिया जाना आपराधिक या आपमानिक कृत्य तो नहीं कि लेखक कार्यक्रम का बहिष्कार कर दें। वैसे भी पुरस्कार किसके हाथों दिया जाए, यह तो पुरस्कारदाता ही तय करता है, पुरस्कार प्राप्तकर्ता नहीं। कैबिनेट मंत्री संयुक्त दायित्व के अंतर्गत पूरी सरकार का और इस नाते पूरे प्रदेश का प्रतिनिधित्व करता है। फिर कैबिनेट मंत्री, जिसका भारी-भरकम मंत्रालय में चौथा-पाँचवाँ स्थान हो, इतना छोटा मंत्री नहीं होता। वर्तमान मायावती सरकार में ज़्यादातर मंत्री नये हैं और नया होना कोई जुर्म नहीं। जो मंत्री आए थे, वह जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि हैं, उच्च न्यायालय के वकील रह चुके हैं, सभ्य-सुसंस्कृत हैं, कोई आपराधिक रिकार्ड नहीं है। उन्हें ख़ामख़याली में हेय या निकृष्ट मान लेना उचित नहीं है। उनके परिवार में किसी की मृत्यु हो गयी थी, इसलिए कार्यक्रम छोड़कर गए थे। आज मंत्री भले ही सामर्थ्यवान हो, पर पारिवारिक जन की मृत्यु टालना उसके वश में नहीं।

यह लेखक का व्यक्तिगत दृष्टिकोण और लोकतांत्रिक अधिकार है कि वह किससे पुरस्कार ले या न ले। पुरस्कार लेने वाले लेखकों को गिरिराज जी ने व्यंग्य में 'महान' और 'हतभाग्य' कहते हुए कहा है कि उनमें विरोध की ताब नहीं बची। पर गिरिराज जी, आपकी महानता के आगे ये लेखक बौने हैं। आप खुद डा0 मुरलीमनोहर जोशी, डा0 विष्णुकांत शास्त्री और केसरीनाथ त्रिपाठी जैसे पुरस्कार-सम्मान-पदवी प्रदाताओं के यहाँ लाबीइंग करें, उनके कसीदे पढ़ें, अभियान चलायें और अन्य लेखकों पर व्यंग्य कसें। हिन्दी में आपसे बेहतर एक दर्जन से ज़्यादा कथालेखक विद्यमान हैं, पर ज़्यादातर पुरस्कार-सम्मान आपकी झोली में गए हैं। क्या रहस्य है इसका ?

गिरिराज जी ने अपनी पत्रिका 'अकार' में टिप्पणी की है, 'गांधी अं0 रा0 विश्वविद्यालय के कुलपति की नियुक्ति के संदर्भ में मेरी आउट लुक में एक टिप्पणी छपी थी। उसके बाद अपने ब्लाग में भी मैंने एक टिप्पणी पोस्ट की थी। वर्धा के कुलपति की नियुक्ति पर व्यक्तिगत रूप से मुझे प्रसन्नता हुई थी। लेकिन सब कुछ व्यक्तिगत नहीं होता। यदाकदा मित्र के रूप में मैंने उनसे मदद भी ली थी। लेकिन सैद्धांतिक रूप से पुलिस अधिकारी और प्रशासनिक अधिकारियों को विश्वविद्यालय का कुलपति बनाकर भेजा जाना मैं अनुचित मानता हूँ। समाज का संदर्भ वृहत्तर होता है।" (अकार, कानपुर, दिसंबर, 08 से मार्च 09, पृ0 8)

गिरिराज जी ऐसा भ्रमजाल बुन रहे हैं जैसे विभूति नारायण राय को पुलिस अधिकारी होने के नाते कुलपति बनाया गया है। विभूति जी को बहैसियत लेखक कुलपति बनाया गया है, उसी तरह जैसे आपको बहैसियत लेखक बहुत सारे पुरस्कार-सम्मान मिले हैं। वह महान् कथालेखक भले ही न हों, पर लेखक तो हैं ही। बरसों तक प्रतिष्ठित पत्रिका 'वर्तमान साहित्य' का कुशल संपादन किया है।

हितसाधन के बाद विद्रोही मुद्रा अपनाना गिरिराज जी की कूटनीति का हिस्सा लगता है। जो कार्य खुद करेंगे, अन्य के संदर्भ में उसी की आलोचना करने में उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं होता। ऐसे में उन्हें ख़ुमार बाराबंकवी का यह शेर नज़र करना मौजूँ होगा :

दूसरों पर अगर तब्सिरा कीजिए,
आईना सामने रख लिया कीजिए।

ए-130, पाण्डव नगर, मेरठ-250003 (उ0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा आलोचना की जनधर्मी परंपरा

शैलेन्द्र चौहान

इन दिनों हिन्दी साहित्य में आलोचना की भारी दुर्गति है। एक ओर विश्वविद्यालयों और उनके अंतर्गत आने वाले महाविद्यालयों के वक्ता, प्रवक्ता इस क्षेत्र में मशीनी गति और प्रवृत्ति से विद्यमान हैं, तो दूसरी ओर कुछ संस्थानी और अख़बारी असाहित्यिक-साहित्यकार महान आलोचक बन बैठे हैं। इसी कारण आज आलोचना भी दो तरह से संपन्न हो रही है। एक तरफ़ वह फ़टाफ़ट कमाई का ज़रिया है, इनकी किताब वर्ष-दर-वर्ष छपती है और लाइब्रेरियों में खप जाती है। हर वर्ष एक किताब, किसी वर्ष दो या तीन भी। ये वक्ता, प्रवक्ता यहाँ निवृत्ता की भूमिका में होते हैं।अपना सारा माल निःसृत कर कूड़ाघर में ठेल देते हैं। मज़ेदार बात यह, इस क्रिया से उनकी खूब कमाई होती है। पुरस्कार, सम्मान पाते हैं और विद्वान कहलाते हैं। दूसरी जो खाँप है आलोचकों की वह अधिक महत्त्वाकांक्षी है। वह प्राध्यापक, आलोचकों का कहीं से कोई विरोध नहीं करती, बल्कि उनका पूरा लाभ सहयोगी आधार पर बटोरकर मीडिया के ज़रिए अपने यश और उपलब्धियों को द्विगुणित कर लेती है। यह खाँप साहित्य का बाजा कुछ इस तरह बजाती है कि श्रोता भ्रम का पूरी तरह शिकार हो जाए और समझे कि बैण्ड और आरकेस्ट्रा दोनों के प्रमोटर यह लोग हैं। हिंदी आलोचना आजकल बैण्ड में तब्दील हो चुकी है। जब चाहें उपयुक्त मानदेय देकर अपने लिए बैण्ड बजवाया जा सकता है। आप चाहें तो नगाड़ा भी बजवा सकते हैं, चाहें तो ढोलक। सूचना और प्रौद्योगिकी के इस भ्रामक युग में पश्चिमी वाद्य तो अधुनातन और प्रगत होने का बहुत सशक्त प्रमाण है।

यदि अब आप इस एकरसता के भयंकर शिकार हो गये हैं, तो कुछ एक अपवाद आप बमुश्किल ढूंढ सकते हैं। जहाँ 'प्रोटो टायप' आलोचना, 'साँचेबद्ध' आलोचना और बैण्ड-बाजे वाली आलोचना से कुछ इतर भी आप पढ़-गुन सकते हैं। धारा के विरोध में बहने वाले विरले ही होते हैं। उन्हें इस दुस्साहस के लिए हमेशा ही प्रताड़ित भी किया जाता है। चाहे राहुल हों, निराला हों, मुक्तिबोध हों, विजेन्द्र हों, रामकृपाल पाण्डेय हों, कर्मेन्दु शिशिर हों या कुछ अन्य, उन्हें आसानी से नहीं स्वीकारा जाता। इधर कुछ लोग अच्छी आलोचना की कोशिश कर रहे हैं-जैसे वीरेन्द्र मोहन, जीवन सिंह, सुलतान अहमद आदि। देखना यह है कि प्रवाह के विरुद्ध ये कितना आगे तक तैर पाते हैं। ऐसे समय में बहुत देशज और जनपदीय तरीक़े से आलोचना के क्षेत्र में कार्यरत, लेखक-संपादक विद्याधर शुक्ल की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है-'प्रेमचन्द की विरासत बनाम हिन्दी कहानी'। यह पुस्तक अपने आप में विरल एवं अद्‌भुत कथ्य और दृष्टि से परिपूर्ण है और अपने ढंग से जनधर्मी एवं जनोन्मुखी कहानी की विरासत को व्याख्यायित-विश्लेषित करती है। आलोचक का मानना है कि 'कहानी लोकप्रिय साहित्यिक विधा है, वह अपनी प्रकृति से ही जनतांत्रिक है। जनविधा, कहानी को जन-सामान्य के दुख-दर्द से जोड़ने का श्रेय प्रेमचन्द को है।' अपनी इस बात को वे प्रेमचन्द के इस कथन से पुष्ट करते हैं कि "साहित्यकार मानवता का, प्रगति का, शराफ़त का वकील है। जो दलित हैं, पीड़ित हैं, जख़्मी हैं, वे व्यक्ति हों या समाज, उनकी हिमायत और वकालत उसका धर्म है। उसकी अदालत समाज है।" इस कसौटी पर प्रेमचन्द की कहानियाँ खरी उतरती हैं या नही यह देखना भी समाज का ही काम है। प्रेमचन्द की वे कहानियाँ जो राष्ट्रीय चेतना और पुनर्जागरण के स्वप्न को चित्रित करती हैं-'लाल फ़ीता, सुहाग की साड़ी, समर यात्रा, जुलूस आदि, जिनमें स्वदेशी, स्वदेश एवं आज़ादी की वकालत है। सामाजिक विषमता का एक सर्वाधिक भयावह रूप भारतीय समाज में रहा है 'नारी दुर्दशा'। उसकी चेतना को समृद्ध करने की बात तब प्रेमचन्द ही समझ सकते थे। कुसुम, शूद्र, नैराश्य लीला, सुभागी के उदाहरण इसके पुख़्ता सुबूत हैं। निश्चित तौर पर आलोचक का यह विश्लेषण एक सुस्पष्ट दिशा की ओर इंगित करता है। निर्विवाद रूप से प्रेमचन्द को सामाजिक चेतना और पुनर्जागरण का एक सशक्त पक्षधर कथाकार होने का गौरव प्राप्त है, इस तथ्य से क़तई इन्कार नहीं किया जा सकता।

प्रेमचन्द्र अपने लक्ष्य और दृष्टिकोण में जहाँ पूरी तरह सुस्पष्ट हैं, वहीं उनके समकालीन भ्रमित हैं। इसलिए उनकी सर्व-स्वीकार्यता और लोकप्रियता अन्यतम है। उनकी विरासत को आगे बढ़ाने वाले (बतौर आलोचक) पहले कथाकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हैं। उनके कहानी-संग्रह 'चिन्गारियाँ', क्रान्तिकारी कहानियाँ, दोज़ख़ की आग, राष्ट्रीय एवं राजनीतिक चेतना को प्रस्तुत करते हैं। इनकी कहानियाँ जनधर्मी एवं प्रगतिशील कहानियाँ हैं पर उनकी सतत उपेक्षा हुई। आलोचकों की चुप्पी का राज़ क्या था, यह जानने की ज़रूरत है। हिन्दी आलोचना की प्रकृति कितनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनधर्मी या जनवादी है यह बात इस तथ्य से स्वतः पता चलती है। प्रेमचन्द की विरासत का अगला पड़ाव यशपाल, राहुल सांकृत्यायान और रांगेय राघव में देखा जा सकता है। सांस्कृतिक समृद्धि रेणु के यहाँ दिखती है। इसके बाद भैरवप्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी, शैलेश मटियानी, मार्कण्डेय, चन्द्रकिरण सोनरिक्सा, अमरकांत, इस विरासत का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ पर आलोचक एक ओर तो मटियानी के साथ हुए अन्याय और उपेक्षा को उजागर करता है, वहीं अमरकांत को मध्यवर्गीय, दुलमुल, बाबू वर्ग का कथाकार निरूपित करता है। मटियानी जी के प्रति सहृदयता समझ में आती है पर अमरकांत के प्रति मुझे यह ज़्यादती लगती है कि उन्हें मात्र दुलमुल मध्यवर्ग का ही कथाकार माना जाय। अमरकांत निम्नमध्यवर्गीय और निम्नवर्ग की संवेदना के अप्रतिम चितेरे हैं। फिर यह तो क़तई ज़रूरी नहीं कि मज़दूर वर्ग पर कहानी लिखने से कोई उनका पक्षधर मान लिया जाय। सवाल यह भी है कि आपकी कुल पक्षधरता किस ओर है। अमरकांत निश्चित रूप से ग़रीबों, दमितों और दलितों के ही पक्षधर हैं न कि साधन-सम्पन्न अमीरों और उच्चमध्यवर्ग के।

कहानी आंदोलन और जातीय विरासत आलेख में आलोचक ने ऐसे आंदोलनों के बरक्स जातीयता को रखा है। यहाँ इन आंदोलनों से तात्पर्य उन भ्रामक प्रवृत्तियों से है जिनमें स्वप्रचार और गुटबाज़ी के कारण कुछ कथाकारों व आलोचकों ने कहानी की जातीय विरासत को नष्ट करने की पूरी कोशिश की। नई कहानी, अकहानी, श्मशानी कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी जैसे भ्रामक नारों और जुम्लों से जातीयता नष्ट होती गयी। यहाँ आलोचक के मुताबिक़ जनवादी हिन्दी कहानी की शुरुआत सन् 1901 में माधवप्रसाद सप्रे की कहानी 'टोकरी भर मिट्टी' से होती है। बंग महिला की 'कुंभ में बहू' जो 1906 में प्रकाशित हुई, दूसरी जनवादी कहानी है। ये दोनों कहानियाँ ही जनवादी जातीय विरासत की प्रस्थान बिंदु हैं। 1916 में प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' के बाद प्रेमचन्द इस विरासत को बहुविध समृद्ध करते हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' दूसरे बड़े राजनीतिक कहानीकार हैं। निराला की कहानियाँ 'देवी' और 'चतुरी चमार' यथार्थवादी कहानियाँ हैं। राहुल सांकृत्यायन की 'सतमी के बच्चे', डीह बाबा, सुमेर, रेखा भगत आदि इस परंपरा की अगली कड़ी हैं। फिर यशपाल, अमृत राय, चन्द्रकिरण सोनरिक्सा, भीष्म साहनी और भैरवप्रसाद गुप्त इस विरासत के जनवादी वाहक रहे। ग्राम्य जीवन पर गहरी पकड़ के लिए शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय और रेणु प्रमुखता से जाने जाते हैं। वहीं हरिशंकर परसाई अपनी व्यंग्यात्मक धार के लिए पहचाने गये। शैलेश मटियानी इस दौर के सर्वाधिक सशक्त जन-कथाकार थे।

नयी कहानी के बारे में आलोचक का मत है कि नयी कहानी की अभिजनवादी धारा को यदि नयी कहानी से घटा दिया जाय तो उसकी उपलब्धियों से इन्कार नहीं किया जा सकता।

'नयी कहानी की अभिजनवादी धारा ने जिस कथात्मक आत्मकेंद्रित गद्य का ईजाद किया उसी 'आत्मालाप' का, साठोत्तरी फ़ैशनपरस्तों ने विकास किया।' अकहानी साठोत्तरी कहानी के फ़ैशनपरस्तों में पुरानी पीढ़ी के निषेध की इतनी तीव्र प्रवृत्ति थी कि उससे माता-पिता भी नहीं बच सके और पति-पत्नी के संबंध, पशुसंवेदना की सीमा तक पहुँच गये। ये लोग अपने मुख्य उद्देश्य में स्थापित होने में कामयाब हुए।

शैलेश मटियानी को आलोचक ने आज़ादी के बाद का पहला कहानीकार माना है। दबे, कुचले, उपेक्षित, बेसहारा लोग मटियानी की कहानी की ताक़त हैं।

मार्कण्डेय अपनी पीढ़ी में भूमि-समस्याओं और भूमि- सुधारों के कहानीकार हैं। उनकी कहानियाँ-कलयानमन, महुए का पेड़, दौने की पत्तियाँ, भू-दान, बीच के लोग आदि भूमिहीनों और भूमिसमस्याओं पर केन्द्रित हैं। इसराईल मूलतः मज़दूरों के संघर्ष-चेतना के कहानीकार हैं। उनकी कहानियाँ मज़दूरों की सामूहिक संघर्षशीलता को द्वन्द्वात्मक तरीक़े से उजागर करती हैं। नीलकांत, सतीश जमाली, विजयकांत क कहानी प्रक्रिया भी यहाँ मथी गयी है।

संजीव का ज़िक्र करते हुए आलोचक ने लिखा है कि अपनी पहली ही कहानी 'तीस साल का सफ़रनामा' से कहानी जगत् में अपनी ज़ोरदार उपस्थिति दर्ज कराते हैं। विगत तीस वर्षों से वे अपनी कहानी के ज़रिए देश के दलित-दमित, प्रताड़ित, अवहेलित जनों की कराह और आक्रोश, जिजीविषा और संघर्ष को निरंतर स्वर प्रदान करते रहे हैं।

कहानी के विगत पच्चीस वर्षों के बारे में आलोचक की राय क़ाबिले ग़ौर है कि आज की कहानी की दशा शोचनीय है। लगभग पाँच सौ कहानीकारों क भीड़ है। कहानियाँ विरल हैं। कहानियों के नाम पर कथात्मक लेखों का अंबार है। ज़ाहिर है कहानियाँ इक्का-दुक्का ही अच्छी आ रही हैं। कारण अनेक हैं। एक कारण आलोचक के ही शब्दों में- 'देह गाथा को कहानी के केंद्र में रखने वाले कहानीकारनुमा सुविधाभोगी अय्याशों को अपनी उछलकूद और गंठजोश से भ्रम हो गया कि कहानी आगे बढ़ी है। प्रश्न उठता है कि पश्चिमी सांस्कृतिक अधःपतन कैसे पैठ गया भारतीय कथा-साहित्य में स्पष्ट है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था में जिसे जहाँ मौक़ा मिला वह अपनी हैसियत बनाने में लग गया। लोगों के मन में सुविधाजनक अधसामंती पूंजीवादी भाव चिपक गये। ऐसे ही प्रतिष्ठित कथाकार बन गये। साथ ही मज़दूर तथ्य यह भी कि यही प्रगतिशील और जनवादी भी हुए। नामवरी आलोचकों ने इन्हीं के राग गाए, नगाड़े बजाए। वर्ग संघर्ष, सर्वहारा और श्रम धीरे-धीरे पर्दे की ओट में चले गये।

34/242, सेक्टर-3, प्रताप नगर,
जयपुर-302033

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल हमारा है'

वशिष्ठ अनूप

'संकल्प-धर्मचेतना' का वाहक और अभिव्यक्ति के सारे ख़तरे उठाकर गढ़ों-मठों को तोड़ने में लगा रहने वाला एक इन्सान अर्थात् कुँवरपाल सिंह। प्रो0 कुँवरपाल सिंह अर्थात् एक ऐसा पारस, जिसके संपर्क में जो भी आया, निखरकर सोना बन गया। लेकिन, कैसी विडंबना है कि ज़िंदगी भर नियति को चुनौती देने वाले, असंभव को संभव कर दिखाने वाले, फौलादी इच्छा-शक्ति वाले कुँवरपाल सिंह के साथ नियति ने अजीब खेल खेला। 25 अक्टूबर, 2009 को उनका अभिनंदन हुआ और 8 नवंबर, 2009 को वे इस दुनिया को, जिससे वह बेइंतहा प्यार करते थे, अलविदा कह गये। वे जीना चाहते थे और इस धरती को सुंदर बनाना चाहते थे, लेकिन इसके लिए यह ज़िंदगी कम पड़ गयी। 'जब तक औरों की सुनूँ, कहूँ अपने मन की; तब तक डोली ले द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा।' (नीरज)

प्रो0 कुँवरपाल सिंह के मित्रों और शिष्यों—प्रो0 प्रदीप सक्सेना, श्री अजय बिसारिया, प्रो0 रामवीर सिंह आदि ने उनके अभिनंदन-ग्रंथ की योजना बनायी और देखते ही देखते सैकड़ों साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों व सामाजिक कार्यकर्ताओं के लेख और संस्मरण पहुँच गये और तैयार हो गया लगभग 500 पृष्ठों का अनूठा अभिनंदन-ग्रंथ, जिसका संपादन किया प्रो0 प्रदीप सक्सेना ने।

इस अभिनंदन-ग्रंथ में दिवाकर शास्त्री, शिवकुमार मिश्र, नामवर सिंह, क़ाज़ी अब्दुल सत्तार, रामदरश मिश्र, रमेश कुंतलमेघ, विश्वनाथ त्रिपाठी, विजय बहादुर सिंह, सुधीश पचौरी, कमला प्रसाद, राम प्रकाश त्रिपाठी, जबरीमल्ल पारख, चमनलाल, विजेन्द्र, ए0 अरविंदाक्षन, मलखान सिंह सिसौदिया, नित्यानंद तिवारी, अली अहमद फ़ातमी, कुमार पंकज, वीरेन्द्र मोहन, राजीव लोचन नाथ शुक्ल और सूरज पालीवाल से लेकर उनके बच्चों-सौरभ और सुमिता तक के संस्मरण व मूल्यांकनपरक लेख शामिल हैं।

इस ग्रंथ में सुप्रसिद्ध कथा-लेखिका और कुँवरपाल सिंह की पत्नी डॉ0 नमिता सिंह ने कुँवरपाल सिंह के सोच, विचारधारा, जीवन-शैली, उसूलों और प्राथमिकताओं की चर्चा करते हुए बताया है कि उनका सब कुछ दूसरों की सेवा के लिए प्रस्तुत रहता था। यहाँ तक की सुबह पाँच बजे, दोपहर ठीक भोजन के समय या रात में किसी भी वक़्त परिचित-अपरिचित लोग आ जाते और वे भोजन छोड़कर उनके साथ मदद के लिए निकल पड़ते। उन्हीं के शब्दों में—". ..और काम क्या? मेडीकल कॉलेज में इलाज उपयुक्त डॉक्टर की व्यवस्था, नौकरी के लिए सिफ़ारिश, गाँव-देहात के लड़कों की विश्वविद्यालयों में एडजस्टमेंट की समस्या, यूनीवर्सिटी में दाखिला दिला दिया, तो फ़ीस की समस्या! कितने लड़के आते... फ़ीस अदा करने की जगह इनसे गारंटी लेटर लिखवाकर ले जाते। कई ऐसे, जो फिर पलटकर नहीं आते। नतीजा... इनकी तनख्वाह से वो रकम कट जाती। हर साल चार-छह ऐसे बेवकूफ बनाने वाले छात्र इनके पल्ले पड़ ही जाते। एक छवि बनी थी कि वे ग़रीब लड़कों की बहुत मदद करते हैं। ऐसे में ग़रीब बनकर आने में क्या दिक़्क़त।" बहरहाल इस बेदर्द दुनियाँ में लोगों की समस्याओं का अंत नहीं और इसलिए के0पी0 सिंह की भाग-दौड़ अनवरत चालू! इस क्रम में एक ऐसे व्यक्ति का भी ज़िक्र आता है, जिसके बीमे का प्रीमियम वर्षों कुँवरपाल जी स्वयं भरते रहे—उस परिस्थिति में भी, जब बेटे के जन्म के समय उन्हें दो सौ रुपये एक मित्र से उधार लेने पड़े। उनके सरोकारों को समझने के लिए एक अंश का ज़िक्र आवश्यक है। नमिता जी ने शादी से पहले मैरिस रोड की एक शाम की चर्चा करते हुए लिखा है कि—'इनका सैद्धांतिक लेक्चर सुनते हुए मैंने मैरिस रोड की उन कोठियों (विशाल कोठियों) की ओर इशारा करते हुए कहा—"तुम्हारा दिल नहीं चाहता कि तुम्हारे पास भी ऐसा ही एक शानदार घर हो... तुम भी आराम से, सुख-सुविधा से रहो? "

- हाँ! लेकिन तब, जब सबके पास ऐसा ही एक घर हो..."

तो, ये थे कुँवरपाल जी के विचार और उनके सामाजिक सरोकार, जिनसे वे आजीवन विचलित नहीं हुए।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक प्रो0 शिवकुमार मिश्र ने कुँवरपाल सिंह के साथ अपने चार दशकों के संबंधों और अनुभवों तथा उनके वैचारिक व सामाजिक संघर्षों का ज़िक्र करते हुए लिखा है—"एक विश्वस्त साथी और निहायत सेक्यूलर मानस के इन्सान के रूप में कुँवरपाल सिंह ने सदैव मेरे मन पर गहरे निशान छोड़े हैं।... कुँवरपाल सिंह ने अलीगढ़ की सारी मूल्यवान विरासत को, उसके सर्वोत्तम को अपनी संवेदनाओं और विचारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जोख़िम उठाकर भी सँजोया-सँभाला है तथा उद्वेलनमूलक, विध्वंसकारी, सतही, घटिया मानसिकता का जो कुछ वहाँ रहा है और है, उससे संघर्ष किया है, उसका प्रतिकार किया है, उसे अस्वीकार किया है। सांप्रदायिकता वह हिन्दू मानस की हो या मुस्लिम मानस की, कुँवरपाल सिंह के लिए चुनौती रही है और वे बराबर उससे जूझे और टकराये हैं, जूझ रहे हैं, टकरा रहे हैं।''

प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक प्रो0 रमेश कुंतल मेघ ने अपने लेख में कुँवरपाल सिंह की जीवन-शैली की विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने उनके घर के परिवेश में 'बहुधा कम्यून जैसी व्यवस्था की छाप' देखी है, जहाँ 'स्वेच्छा से अवैतनिक कार्य करते हुए युवक-युवती अपने-अपने दायित्वों की कमान सँभाले' और 'टीमवर्क' की चेतना के साथ काम करते हुए तथा औरों के लिए प्रेरणा देते हुए मिले हैं। मेघ जी ने उनके परिवार के विषय में लिखा है—''यह सेनापति-दंपति एक हंसों का जोड़ा भी है। कुँवरपाल सिंह ब्रजमंडल के तथा नमिता जी कुमाऊँ की। 'स्याम-गौर किमि कहौं बखानी...।' जब-जब मैं उनके नातिदीर्घ संपर्क में आया, सदैव उन्हें एक साथ पाया। यह उनकी 'कॉमरेडशिप' का गुणसूत्र भी है, जो बेटे (अब विदेश में अध्ययन कर रहा है) तथा बेटी (अब विवाहित है) तक छन-छनकर रिस आया है। तो मेरे तईं 'कुँवरपाल-परिवार' ऐसा ही उजागर होता है।''

वरिष्ठ साहित्यकार प्रो0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने उनके सांप्रदायिकता-विरोधी जनवादी चरित्र और निर्भीक ज़मीनी कार्यकर्ता व्यक्तित्त्व की तारीफ़ करते हुए लिखा है—''मेरी दृष्टि में सर्वाधिक मोहक पहलू है, उनके जैसे विद्वान, बुद्धिजीवी प्रोफ़ेसर का ज़मीनी कार्यकर्ता बने रहना।... वे अलीगढ़ क्षेत्र के आसपास संगठन के काम से गाँव में जाकर दौरा करते रहते हैं। वे इस ज़माने में भी सिर्फ़ बुद्धिजीवी वामपंथी नहीं हैं।... ज़मीनी कार्यकर्ता की ज़िंदगी चुनौती भरी होती है। जो लोग फ़ील्डवर्कर नहीं होते, वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि किसान-मजदूरों के बीच जाकर सांप्रदायिकता से मोर्चा लेने का क्या मतलब होता है। यह काम केवल किताबें पढ़ने से नहीं होता।''

प्रख्यात आलोचक प्रो0 नामवर सिंह ने कुँवरपाल सिंह को नेक इन्सान, अच्छे अध्यापक, सांप्रदायिक सौहार्द को क़ायम रखने वाले तथा हिन्दी-उर्दू वाली संस्कृति के पक्षधर के रूप में चिह्नित किया है। बहुआयामी और श्रेष्ठ सर्जक प्रो0 रामदरश मिश्र ने अपने लेख में प्रो0 सिंह को प्रगतिशील ऊर्जा-संपन्न साहित्यकार बताते हुए लिखा है—''वे उन मार्क्सवादियों में हैं जो मात्र बहस नहीं करते, बल्कि मार्क्सवादी दर्शन को अपने आचरण में उतारते हैं। वे अपनी सहधर्मिणी डॉ0 नमिता सिंह के साथ 'फ़ील्ड वर्क' भी करते हैं। उनके सामाजिक क्रिया-कलापों का क्षेत्र अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय तो है ही, वहाँ का समाज भी है। उनका प्रगतिशील चिंतन विश्वविद्यालय और नगर के प्रगतिशील हिन्दू-मुस्लिम शिक्षकों, रचनाकारों और चिंतकों के विचारों और क्रियाओं से संवाद करता चलता है, ताकि सांप्रदायिक समस्या से उबलते हुए अलीगढ़ शहर में भाईचारा बना रहे।''

कुँवरपाल जी के प्रिय छात्र और अनन्य सहयोगी अजय बिसारिया ने अपने लेख में यह लिखा है कि प्रो0 सिंह अज्ञान तथा सांप्रदायिकता और जातिवाद को देश के लिए सबसे बड़ा ख़तरा मानते थे और आजीवन उन्होंने इनके विरुद्ध हर स्तर पर संघर्ष किया। बिसारिया जी ने प्रो0 सिंह की इस कला की सविस्तार और सोदाहरण चर्चा की है कि किस प्रकार वे अपने आचरण के माध्यम से अपने छात्रों को चुपचाप जीवन का पाठ पढ़ाया करते थे। उनमें से एक वाकया यहाँ प्रस्तुत है—''...इसी क्लास का एक और दिन... डॉ0 साहब नाथ-सिद्ध साहित्य पर लेक्चर दे रहे थे। हमारे पीछे दरवाज़ा खुलने की आहट हुई.. डॉ0 साहब के चेहरे पर अभिवादन की मुद्रा देखी, पर लेक्चर चलता रहा। पीरियड समाप्त होने पर एक भव्य मूर्ति हमारे बाजू से होती हुई सामने (डॉक्टर साहब के पास) वाली कुर्सी पर विराजमान हुई। डॉक्टर साहब ने परिचय कराया—'आप हैं 'आधा गाँव' के लेखक डॉ0 राही मासूम रज़ा... तुम लोग राही साहब से बात करो।'... किसी भी स्थिति में क्लास पढ़ाते रहने और विद्यार्थियों को विभूतियों से साक्षात्कार का अवसर देने का पाठ।''

अशोक तिवारी ने प्रो0 सिंह के सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यों और उनके जुझारू व्यक्तित्त्व की विस्तार से चर्चा करते हुए लिखा है—''मुझे फ़ख़्र है कि मार्क्सवाद का क ख ग मैंने कुँवरपाल सिंह से सीखा।... मैंने जो कुछ उनसे सीखा, वो उनसे हुई मुलाक़ात के द्वारा और उनके व्यवहार से सीखा।'' उन्होंने लिखा है कि एक बार जलेस के एक आयोजन में सांप्रदायिक सद्भाव पर बोलने के लिए आयीं सुभाषिणी अली का हिन्दुत्ववादी सांप्रदायिक ताक़तों ने विरोध किया और प्रो0 के0पी0 सिंह ने उनका डटकर मुक़ाबला किया। इस दौरान् प्रो0 सिंह की आँखों में उन्होंने पिसी हुई लाल मिर्च फेंककर मारी, जिससे वे काफ़ी दिन कष्ट झेलते रहे।

शकील सिद्दीकी ने लिखा है—''तमाम तरह के शोषण-दमन और सामाजिक विसंगतियों के ख़िलाफ़ उनकी प्रतिरोधात्मक सक्रियता अपनी मिसाल आप है।... के0पी0 सिंह का जीवन संकीर्णता की वर्जनाओं को तोड़ते हुए गुज़रा है।'' उनके शिष्य फ़य्याज़ अहमद ने अपने लेख 'बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा' में 1992 में दंगों के दौरान् अफ़वाहों के बीच कुँवरपाल सिंह द्वारा टी0वी0 चैनलों, समाचार-पत्रों और सीधे सामाजिक हस्तक्षेप के माध्यम से किये जा रहे सद्भाव के प्रयत्नों का ज़िक्र करते हुए लिखा है—''ऐसे समय में हिन्दू और मुसलमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों उनकी जान के दुश्मन बन गये थे। मुसलमानों के लिए वे हिन्दू होने के कारण अविश्वास का पात्र थे, तो हिन्दुओं को उनमें मुसलमानियत की बू आती थी। ऐसी विकट परिस्थितियों में भी मैंने उन्हें कभी विचलित होते नहीं देखा।... सिंह सर, पूरी जीवटता से लगे रहे और इन अफ़वाहों को लोगों के मन से निकालकर ही दम लिया और इस तरह अलीगढ़ भयानक दंगों की आग से बच गया।''

इस अभिनंदन-ग्रंथ में कुँवरपाल सिंह की पुस्तकों की समीक्षाएँ, उनके वैचारिक पक्ष पर मूल्यांकनपरक लेख और एक खंड में स्वयं कुँवरपाल सिंह के महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित किये गये हैं, जो कुँवरपाल सिंह को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण और उपयोगी हैं। यह अभिनंदन-ग्रंथ सिर्फ़ कुँवरपाल सिंह को जानने के लिए ही नहीं, प्रगतिशील-जनवादी चिंतन-परंपरा और साहित्य को समझने के लिए भी उपयोगी और ज़रूरी ग्रंथ है। इसके संपादक प्रो0 प्रदीप सक्सेना ने लिखा है कि ''यह अभिनंदन-ग्रंथ उनका मूल्यांकन नहीं है। यह उनको जानने-समझने का एक प्रयत्न भर है।'' इस विनम्र कथन के विपरीत यह एक अत्यंत समृद्ध और सराहनीय प्रयत्न है।

आचार्य, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

■

गूँगी क़लम का मुखर प्रतिरोध

दया दीक्षित

यदि कुछेक बातों को अनदेखा कर दिया जाए, तो डॉ. प्रभा दीक्षित की किताब 'गूँगी कलम का बयान' एक गंभीर विश्लेषणात्मक नारी-विमर्श है। इस वैमर्शिक कृति में वैश्विक परिप्रेक्ष्य में स्त्री-विमर्श की व्यापक संभावनाओं को खँगाला गया है। निस्संदेह विमर्श की यह पुस्तक नारी-विमर्श की पीठिका के साथ ही उसके प्रारंभ, उसके आदि जन्मदाताओं (चाहे वे सीमोन द बोउ आर/जॉन स्टुअर्ट मिल/एलिसश्वेर्जर/मेरी वोल्सटन क्राफ़्ट जैसी विदेशी शख़्सियतें हों या ताराबाई शिंदे/ शृंखला की कड़ियाँ' वाली महादेवी वर्मा जैसी स्वदेशी शख़्सियतें हों) के लक्ष्यों तक जाती हुई तथ्यों के विविध अंगोपांगों का वस्तुपरक चित्रण करती हैं। समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित नारी-विमर्श एवं सामयिक ज्वलंत समस्याओं से संबंधित आलेखों का संकलन है—'गूँगी कलम का बयान'। देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों पर बेबाकी के साथ तल्ख़बयानी से भरपूर इस कृति में एक रचनाकार की वह तड़प एवं छटपटाहट महसूस होती है, जिसमें वह मानव तथा मनुष्यता को बचाना चाहता है, जिसमें वह हर मानव-विरोधी वस्तु, व्यक्ति, कारकों व कारणों की भरपूर मुख़ालफ़त करता हुआ उनसे जूझता भी है और एक सीमा के बाद इनके सामने स्वयं को नाकाफ़ी पाकर कहीं पर संतप्त भी है। सामयिक और ज्वलंत मुद्दों पर तथा नगर प्रशासन और शासन के रूप में प्रकारांतर से ब्यूरोक्रेट्स और सत्ताधीशों की मिलीभगत को तार्किक और प्रभावी ढंग से गहराई के साथ विश्लेषित करता है। भारतीय नारी-मुक्ति संगठनों की दशा और दिशा नामक आलेख में डॉ. प्रभा ने बहुत संतुलित और तर्कसम्मत विश्लेषण किया है, नारी-मुक्ति संगठनों का, चाहे वे लक्ष्योन्मुख संगठन हों या लक्ष्यभ्रष्ट संगठन हों। साथ ही, यह भी कि इन संगठनों की आगामी रणनीति क्या और कैसी होनी चाहिए। जिन कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों में इन संगठनो के कार्यक्रमों की सर्वाधिक ज़रूरत है, वे कारण उन्होंने विस्तार से गिनाये हैं। यह भी रेखांकित करने का प्रयास किया है कि फ़ासीवादी ताक़तों की चालों को समझते हुए नारी-संगठनों को अधिकाधिक महिलाओं को जागरूक बनाना होगा, सैद्धांतिक रूप से प्रशिक्षित करना होगा, ताकि वे प्रतिगामियों के शिकंजे से बाहर निकलकर उन्हें करारा जवाब दे सकें।

लेखिका ने स्त्री समानाधिकारों की प्रस्तावना पर चर्चा करते हुए कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं। चूँकि लंबे समय तक लेखिका 'एपवा' जैसे नारीवादी संगठन से जुड़ी रही हैं, अतः वे महिलाओं के बहुधंधी वर्गों में जाकर उनकी समस्याओं से रू-ब-रू हुई हैं। चाहे ये महिलाएँ घर-घर प्राइवेट कंपनियों का माल बेचने वाली हों या प्राइवेट स्कूलों की मात्र 400 से 800 रुपये तक वेतन पाने वाली अध्यापिकाएँ हों या निगमों के निकायों में ठेके पर नियुक्त कामगार महिलाएँ हों या घरेलू उत्पाद में न्यूनतम दिहाड़ी पर खटती स्त्रियाँ हों या अन्यान्य छोटे-मोटे धरा-उठाई के काम-फ़िटिंग, पैकिंग करने वाली स्त्रियाँ हों—पूरे विस्तार के साथ लेखिका इन महिलाओं की समस्याओं और भविष्य के प्रश्न पर जूझती दिखायी देती है।

किंतु, यह समझ से परे है कि इतनी सहानुभूति के बाद भी लेखिका महिला-आरक्षण का विरोध करती हुई पूरा एक लेख लिखती है कि महिला आरक्षण समस्या का समाधान नहीं। क्या यही बात वे दलित-वर्ग के आरक्षण पर भी कह सकती हैं ? अगर नहीं, तो महिला तो दलितों से भी दलित है—वे यह क्यों न याद रख सकीं ? प्रश्न उठता है कि क्या महिला-आरक्षण का विरोध किसी दलगत राजनीति के तहत है? इसी पुस्तक में एक अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलेख है—'महिला आरक्षण-विधेयक पारित क्यों नहीं हो रहा है?' इन परस्पर विरोधाभासी आलेखों में जिस तरह के अकाट्य तर्कों से लेखिका ने अपनी बात पुष्ट की है, उससे जहाँ उनकी तार्किक प्रतिभा का लोहा माना जा सकता है, वहाँ पुनः पुनः यह प्रश्न उठता है कि 'पार्टनर तुम्हारी पॉलिसी क्या है?' एक अन्य कमी, जो बार-बार खटकती है, वह है तथ्यों का एकाधिक बार दुहराव। यह पुनरावृत्ति पुस्तक की श्रेष्ठता और गंभीरता को घटा देती है। यदि इन कमियों/ विरोधाभासों को हटा दिया जाए, तो 'गूँगी कलम का बयान' एक ऐसी पुस्तक है, जो नारी-विमर्श की सही समझ/जानकारी तो देती है, कई समस्याओं के सार्थक विकल्प भी खोजती है।

128/ 387, वाई-1 ब्लॉक, किदवई नगर, कानपुर उ0प्र0)

गूँगी कलम का बयान, डॉ0 प्रभा दीक्षित, अमित प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, मूल्य : 300/- रुपये

■

ऐतिहासिक धरातल पर सामाजिक संदर्भों की खोज

एम0हनीफ़ मदार

मीरा कांत के क़लम से निकला हालिया प्रकाशित नाटक 'हुमा को उड़ जाने दो' रचनात्मकता के दृष्टिकोण से जितनी मौलिकता लिये हुए है, उतना ही एक नवीन नाट्य-शैली का अनुगमन कराता है। हालाँकि, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये 'तुगलक', 'वैशाली की नगरवधु जैसे कितने ही नाटक हैं, जिनकी कथा में प्राचीन ऐतिहासिक सामाजिक संदर्भ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल हैं। इसके बरअक्स, यहाँ नाटक-लेखन के समय लेखिका का अभीष्ठ अर्वाचीन पर प्राचीन को आरोपित करना नहीं रहा, बल्कि एक कथा की स्वाभाविक प्रगति में वे कारक परिलक्षित होते गये हैं। उसी प्रतिबिंब का बिंब प्रतीक रूप में न होकर कथानक की अंतश्चेतना का प्राणतत्त्व बनकर नाटक में मुखर हुआ है। इस दृष्टि से नाटक को मंचित करते समय इसकी प्रस्तुति निश्चित ही बेहद रंग-चित्रपटीय हो जाएगी। नाटक का कथानक सामान्य नाटकों की तरह सीधी-सपाट कथा नहीं कहता, अपितु अंत दृश्य की स्वाभाविक परिणति से शुरू होता है। जहाँ हिन्दी के कुछ नाटकों में फ़्लैश-बैक शैली का प्रयोग यदा-कदा देखने को मिलता है, वहीं 'हुमा को उड़ जाने दो' में यह शैली पूरे कथानक में ही लगभग तिरोहित सी रहती है, जब लेखिका ऐतिहासिक मरुभूमि में इतिहास के साथ अपनी कल्पना का संधि-स्थल पैदा करती है।

मानव की कुंठाओं, संत्रासों व घुटन के तमाम संदर्भों को लेखिका ने मुग़ल बादशाह हुमायूँ के निजी जीवन व व्यवहार में तलाशने की कोशिश की है। हालाँकि, केवल हुमायूँ ही नहीं, बल्कि लगभग सभी शासकों के प्रति इतिहासकारों का अपना-अपना दृष्टिकोण इतिहास में दर्ज़ है, प्रस्तुत कृति इतिहासकारों की कसौटी पर बने नायक या खलनायकों की किसी भी आकृति को तोड़ने या मिटाने का साहसिक या दुस्साहसिक प्रयास करती नज़र नहीं आती। इसलिए, नाटक को ऐतिहासिक नाटक भी नहीं कहा जा सकता। दरअसल, नाटक के माध्यम से लेखिका मुग़ल साम्राज्य के दूसरे संगे मील बादशाह हुमायूँ को महज एक मानव के रूप में देखने का प्रयास करती है। वह एक शक्तिशाली व्यक्तित्त्व के भीतर बसी साम्राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा के विपरीत प्रेम, त्याग एवं असीम शांति की अंतर्विरोधी टकराहटों से उत्पन्न छटपटाहटों को मानवीय संवेदनाओं के सहारे साकार रूप देती है, जो एक नाटक की शक्ल लेता है।

जहाँ अन्य मुगलिया शासकों से भिन्न सोच रखने वाले हुमायूँ, जिसे बचपन से ही तख़्त के प्रति कोई ख़ास लगाव नहीं था, का मन सूफ़ी-संतो एवं दरवेशों की संगत को तड़पता है, वहीं वह पूरे हिन्दुस्तान को जीतकर अपने बेटे अकबर की झोली में डाल देना चाहता है। सदियों से निरंतरता लिए यही मानवीय विरोधाभास वर्तमान प्रासंगिकता को दर्शाता है।

नाटक हुमायूँ के मरणोपरांत उन सत्तरह दिनों का घटनाक्रम है, जब उसकी मय्यत ज़मींदोज़ होने के लिए इन्सानी कंधों को तरसती रही थी। नाटक से गुज़रते हुए सत्तरह दिन की इन घटना-परिघटनाओं से तात्कालिक राजनैतिक स्थिति का सहज ही आकलन होता जाता है। लेखिका के अनूठे नाटकीय कौशल से मंच पर फ़्लैश-बैक में जीवंत होते हुमायूँ और उसके साथ पात्रों के संवादों से उसके अंतस की मानव-वेदना और छटपटाहट का क्रंदन सहज ही उभर आता है। हुमायूँ के नेकदिल होने की बानगी नाटक के पहले अंक में हमीदा बानो और आमना के संवाद में मिलती है, जब हुमायूँ बादशाह होकर भी हमीदा बानो को अपने साथ निकाह के लिए चालीस दिन तक लगातार पैग़ाम भेजता रहता है और हमीदा बानो निरंतर इनकार करती रहती है। आम समाज में अक्सर भी लड़कियों के अपने हक़ में ख़ुद फ़ैसला लेने का विचार घर के ही पुरुषों को कहीं रास आ पाता है...? वहीं तत्कालीन समाज में हमीदा बानो द्वारा हुमायूँ के निकाह का प्रस्ताव निरंतर चालीस दिन तक ठुकराते रहना अचंभित करता है। क्या नहीं संभव था कि बादशाह हमीदा बानो के इस दुस्साहस के लिए उसका सर कलम करवा देता या ज़बरन निकाह कर लेता? हुमायूँ का यूँ स्त्री के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा-अनिच्छा का सम्मान करना, स्त्री को केवल स्त्री नहीं एक संपूर्ण इकाई के रूप में स्वीकारना दर्शाता है, जो वर्तमान पुरुषवादी ताक़तों को अपनी अंतश्चेतना में झाँकने को विवश करता है। वहीं आमना का संवाद जो हमीदा बानो को बीती बातें याद दिलाने के लिए कहा गया है—"निकाह तो मैं ज़रूर करूँगी... लेकिन उस शख़्स से जिसके गरीबान को में अपने हाथ से छू सकूँ, न कि ऐसे शख़्स से जो बादशाह हो और जिसका दामन थामने की हिम्मत भी न जुटा पाऊँ।" यह संवाद हमीदा बानो के उन पूर्वाग्रहों का टूटना है, जो बचपन से किसी शक्तिशाली पुरुष के लिए उसके मन में बने थे।

हुमायूँ की मृत-देह को छिपा कर राज्य भर में मिथ्या प्रचार, पंजाब से सुदूर पश्चिम की ओर बढ़ते पुत्र अकबर को पिता की मृत्यु की ख़बर देकर वापस न बुला पाने की बेबसी, हिन्दुस्तान में अराजकता फैलने के डर की शंका-आशंकाओं के बीच हमीदा बानो के साथ तरदी बेग द्वारा सत्तरह दिनों तक, हिन्दुस्तान की सत्ता और आवाम को सँभाले रखने की जद्दो ज़हद एवं राजनीतिक पेचीदगी-राजनीति और राजनय की कभी न मिलने वाली दो समांतर रेखाओं का रेखागणित बन जाता है, जो अतीत ही नहीं वर्तमान का भी यथार्थ हैं। नाटक में इन सच्चे यथार्थों को झूठ में बदलकर पेश करने का एक सशक्त माध्यम हमीदा बानो की कनीज़ बनती है, जो अंत तक नाटक में बनी रहती है। यह मानवीय बिडंबना नहीं तो और क्या है कि अपने नाम (हुमा, भाग्यवान) के विपरीत जीवन में ही नहीं, मरने के बाद भी उसके सितारे गर्दिश में ही झूलते रहे।

इन बहुआयामी प्रत्यक्ष-परोक्ष परिस्थितियों को बहुत ही संश्लिष्ट तरीके से नाटक में पिरोकर मुग़ल साम्राज्य के कालखंड की बारीक़ियाँ सहेज कर उकेरना नाटक की ख़ासियत है। जैसे नाटक 'नील दर्पण' के मंचन के बाद भारतीय दर्शक अंग्रेज़ों के शोषण और अत्याचार से परिचित हुए, जैसे 'सैमुअल बैकेट' के नाटक 'वेटिंग फ़ॉर गोदो' से ईश्वर और अस्तित्त्ववाद का चित्रण या शेक्सपीयर के नाटक, जो मनुष्य को अपना आत्म-विश्लेषण करने को विवश करते हैं; ऐसे अनेकायामी संदर्भों को जीते हुए नाटक 'हुमा को उड़ जाने दो' के पात्र भाग्य एवं भाग्यवाद के साथ मंच पर भव्य पाखंड रचते हैं, किंतु मंच से हटते ही पूरा परिदृश्य वास्तविकता के धरातल पर घोर संताप में डूबता प्रतीत होता है। नाटक की भाषा प्रवाहवान है व मन को छू लेने की अतुल क्षमता प्रस्तुत करती है। प्रसंगानुकूल संवादों को चुटीला एवं भावोत्पादक बनाये रखने में संपूर्ण नाट्यकृति बेहद रुचिकर बन जाती है। भले ही नाटक के कुछ संवाद दीर्घ हैं, जैसेकि शेक्सपीयर के नाटकों में ब्रूट्स, किंग लीयर, एंटोनी आदि के स्वगत भाषण दीर्घ रहे हैं। किंतु, नाटक 'हुमा को उड़ जाने दो' के पात्र अपने अंतर्जगत को अभिव्यंजित करते हैं, न कि स्वगत भाषण करते हैं।

अंततोगत्वा वर्तमान समय में जब यह बहस जारी है कि आज हिन्दी नाटकों का टोटा है या हिन्दी नाटक लिखे ही नहीं जा रहे हैं, प्रस्तुति कृति का आना सुखद है, किंतु नाटक का व्यापक फलक शौकिया रंगकर्मियों के समक्ष खड़े हिन्दी नाटक के संकट के परिप्रेक्ष्य में कोई बड़ी भूमिका अदा करता नज़र नहीं आता। इन रंगकर्मियों की नाटककारों से हमेशा अपेक्षा बनी रहती है कम पात्रों के साथ, सीमित संसाधनों में खेले जा सकने वाले नाटकों के लिखे जाने की। किंतु, इस नाटक में पात्रों की बहुलता एवं व्यापक मंच पर विशाल सेट संयोजन के बिना रचनानुकूल सुंदर ताजमहल खड़ा नहीं किया जा सकता। हालाँकि नाटक के संदर्भ में इस बात से असहमत नहीं हुआ जा सकता कि पात्रों की संख्या और विहंगम मंच-परिकल्पना किसी भी ऐहितासिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये नाटक की विवशता भी है। साथ ही, कथानक के अनुरूप संवादों के सहारे हर पात्र को आवश्यक बनाये रखना भी चुनौतीपूर्ण है, जो मीरा कांत के नाटक में बख़ूबी देखने को मिलता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में व्यापक मानवीय सामाजिक संदर्भों को खोजता 'हुमा को उड़ जाने दो' नाटक एक सार्थक क़दम है।

एम0जी0-कंपनी, नागेश मार्केट
यमुना पार, मथुरा-281001 (उ0प्र0)

हुमा को उड़ जाने दो (नाटक), मीरा कांत, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, मूल्य : 90 रुपये

■

आचार्य शुक्ल : अपनों की दृष्टि में

श्रीनिवास शर्मा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समर्थकों-विरोधियों की आज भी कमी नहीं है। किसी भी आलोचक पर शायद ही इतना लिखा गया है। इससे हिन्दी साहित्य तथा साहित्येतिहास लेखन में उनके अवदान का पता चलता है।

शुक्ल जी के आलोचक कई प्रकार के हैं। उनकी दृष्टियाँ भी भिन्न हैं। एक क्षेत्र पर डा0 नगेन्द्र, डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा0 नन्द दुलारे वाजपेयी हैं तो इसे छोर पर डा0 रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, विष्णु चन्द्र शर्मा, मलयज आदि। नए आलोचकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीलकांत, सुधीश पचौरी की एक और श्रेणी है। सुधीश पचौरी उन्हें धार्मिक बताते हैं। नीलकांत के अनुसार शुक्ल जी प्रतिक्रियावादी, भाववादी ब्राह्मणवादी हैं। विष्णु चन्द्र शर्मा उन्हें द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्ध करते हैं। नीलकांत की दृष्टि में वे प्रतिक्रियावादी ही नहीं; साम्राज्यवादी भी हैं।

मधुरेश जी ने सही लिखा है-''परवर्ती आलोचकों हजारी प्रसाद द्विवेदी, नन्द दुलारे वाजपेयी तथा डा0 रामविलास शर्मा की अपेक्षा शुक्ल जी की आलोचना का स्वरूप अधिक शास्त्रीय है।'' नीलकांत की विश्लेषण की पद्धति को मधुरेश 'एकदम एकांगी और तथ्यों को तोड़फोड़ कर प्रस्तुत करने वाली'' मानते हैं। उन्होंने सही लिखा है कि ''शुक्लजी के आलोचना-मूल्य जीवन और जगत् के स्वीकार से निकले, बने मूल्य हैं जबकि ये नव-साम्राज्यवादी साहित्य रूप जीवन के निषेध और अमूर्तन पर पनपे और विकसित हुए हैं।

आचार्य शुक्ल के बारे में नामवर सिंह की स्थिति 'सांप-छछून्दर' की रही है। द्रष्टव्य है उनकी पुस्तकें 'दूसरी परम्परा की खोज' तथा 'मलयज की संघर्ष मीमांसा'। आलोचना पत्रिका के शुक्ल अंक से लेकर 'मलयज की संघर्ष मीमांसा' एक प्रकार से नामवरजी की 'आलोचना की संघर्ष मीमांसा' भी है। इस संदर्भ में 'कविता के नए प्रतिमान' की चर्चा अप्रसांगिक होगी।

आलोच्य पुस्तक में आचार्य शुक्ल के व्यक्ति और कृतित्व संबंधी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का ब्योरेवार ढंग से वर्णन प्रस्तुत हैं। अपने समकालीनों (विशेषकर श्याम सुन्दर दास) द्वारा शुक्ल जी समय-समय पर कितने प्रताड़ित हुए, छले गए-इसका भी प्रामाणिक विवेचन पुस्तक में है। जहाँ तक मार्क्सवाद का प्रश्न है, वे द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी भले ही न हों; प्रगतिशील और समाजवादी अवश्य हैं।

श्याम सुन्दर दास आचार्य शुक्ल की योग्यता, प्रतिभा से आतंकित थे और उनसे भरपूर ईर्ष्या करते थे। शुक्ल जी की बहुत सी महत्वपूर्ण साहित्यिक सामग्रियों का विलोपन उन्होंने ही कराया था।

काशी के प्रतिक्रियावादी तत्वों ने किस प्रकार उन पर लाठी से प्रहार किया था, यह तथ्य छिपा नहीं है। आचार्य शुक्ल ने विद्यार्थियों ने विरोध न जताया होता तो 'हिन्दी दायित्व के इतिहास' ग्रन्थ पर उनका काम भी न होता।

प्रपौत्री मुक्ता ने शुक्ल जी के बारे में शिव मंगल सिंह 'सुमन' का एक उद्धरण दिया है जो निम्न प्रकार है-''हिन्दी साहित्य के प्रेमियों को इस तथ्य से अवगत कराना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक पूरा का पूरा लिखा अध्याय, जिसमें माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, उदय शंकर भट्ट, गुरु भक्त सिंह 'भक्त', दिनकर और बच्चन पर पहली बार, उनके विवेचन के अतिरिक्त निराला और महादेवी पर विस्तार से लिखा गया था, प्रकाश में आने से रह गया।''

सुमनजी के अनुसार शुक्लजी की लिखित सामग्री दो बार गायब हुई थी। निराला और महादेवी पर विस्तार से लिखने की उनकी इच्छा अधूरी रह गयी थी।

मुक्ता के अनुसार शुक्ल जी के निधन के समय ही पेटी में रखी बहुमूल्य साहित्यिक सामग्री गायब कर दी गयी थी। मुक्ता लिखती है—''हम लोगों ने नए लेखकों और कवियों की विवेचना तथा हर 'काल' में बढ़ाई जाने वाली सामग्री जिस पेटी में रखी थी, वह पेटी खाली थी... रात से ही उनके शिष्यों का आना प्रारंभ हो गया था। पुत्रों की अनुपस्थिति में उनके आलेखों की हिफाजत का दायित्व उनके शिष्यों पर था... हिन्दी साहित्य की वह बहुमूल्य सामग्री ऐसी दुःखदायी परिस्थिति में कौन ले गया, यह आज तक मालूम नहीं हो पा रहा है। मुक्ता के शब्दों में, ''नियति ने अनेक प्रकार से अनेक बार कुचक्र रचा है और 'इतिहास' पर ही यह कुचक्र टूटा है'.... शुक्ल जी के मृत शरीर की उपस्थिति तथा उनके पुत्रों की अनुपस्थिति में आधुनिक काल का विशद विवेचन गायब कर दिया गया किन्तु गायब करने वालों की मंशा क्या थी, गोकुलचन्द्र (आत्मज) ने यह नहीं बताया।''

शुक्ल जी केवल साहित्यकार न थे। देश की राजनीति, स्वाधीनता आन्दोलन में गहरी दिलचस्पी लेते थे। कांग्रेस के भीतर चलने वाले समाजवादी गुट के समर्थक थे और और पूरी कांग्रेस को समाजवाद के प्रभाव क्षेत्र में लाना चाहते थे। चन्द्रशेखर आजाद को उन्होंने अपने घर में शरण दी थी। उनसे पुत्रवत स्नेह करते थे। आजाद जिस दिन शहीद हुए, शुक्ल जी ने उस दिन उपवास रखा था।

भारत के तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा मंत्री तथा उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रह चुके डा0 सम्पूर्णानन्द जी ने नेहरू जी को बताया था कि ''रामचन्द्र शुक्ल का साहित्य तो समाजवाद का पूरा आईना है।''

मुक्ता ने लिखा है ''मानसिक आघात, आर्थिक बोझ और स्व लिखित साहित्य के विलोपन ने उन्हें क्रमशः क्षीण बना दिया था।''

आचार्य शुक्ल कविता के समालोचक थे। कविता में भी 'महाकाव्य' के आलोचक। उनकी दृष्टि में 'खंड काव्य' चुना हुआ गुलदस्ता है तो 'महाकाव्य' विस्तृत वनस्थली। महाकाव्य अथवा प्रबंध काव्य की समीक्षा में उनका मन खूब रमा है। 'पद्मावत' (मल्लिक मुहम्मद जायसी) को प्रकाश में लाने का श्रेय आचार्य शुक्ल को है। 'पद्मावत' की प्रस्तावना विलक्षण है। ऐसी प्रस्तावना आज तक हिन्दी के किसी आलोचक ने नहीं लिखी है।

शुक्ल जी का साफ कहना था कि आधुनिक साहित्य का मूल्यांकन रीतिकाल के 'मानदंडों' से संभव नहीं है। यही कारण है कि उन्होंने 'नया मानदण्ड' का प्रकाशन किया था। इसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं है। परंतु 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान' द्वारा इसका विधिवत् प्रकाशन किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्ल जी काव्य को न 'लोकोत्तर' बनाना चाहते थे न 'लोकेतर'। वे कविता को 'लोक सामान्य' की भूमि पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। शुक्ल जी का 'लोक सामान्य' वर्णाश्रयी नैतिकता का कायल नहीं है। शुक्ल जी प्रजातांत्रिक चेतना सम्पन्न समालोचक हैं और उनकी समालोचना का केन्द्र 'लोक सामान्य' है। उनका बल जीवन में 'प्रत्यक्ष पक्ष' और 'उपयोग पक्ष' पर है। शुक्ल जी कविता का उद्देश्य 'पदार्थों के मान भावों के प्रकृत संबंध का प्रत्यक्षीकरण तथा जगत् के साथ हमारी रागात्मिका वृत्ति का सामजस्य' मानते हैं।

शुक्ल जी की सामंत विरोधी इतिहास-दृष्टि और अभिजात्य विरोधी सौन्दर्य दृष्टि साफ है। शुक्ल जी जनता की स्वीकृति को भी काव्य का प्रतिमान मानते हैं। यह उनकी लोकवादी दृष्टि है।

शुक्ल जी जीवन को एक ब्रह्मांडीय क्रीड़ा मानते हैं जिसमें प्रत्येक वस्तु खेल है। चाँद, सितारे, सूर्य, मेघ, वृक्ष, जल के साथ मनुष्य, उसके संयोग-वियोग, सुख-दुख सब खेल हैं। वे ईश्वर के 'लीलाभाव' या 'लीलावाद' को नहीं मानते। यह उनकी वैज्ञानिक सोच है।

शुक्ल जी 'सृजनात्मक राष्ट्रगान' में विश्वास करते हैं। इसका तात्पर्य समाज में सबको समान दर्जा प्रदान करने से है। भारत में जाति प्रथा, यूरोपीय पूंजीवाद, अंधराष्ट्रवाद और नस्लवाद के वे कट्टर विरोधी हैं। अपने एक अंग्रेज़ी निबंध में उन्होंने साफ शब्दों में लिखा है-"The greatest obstacle in the progress of Indian society, since Ramayana period, has been the callous caste or varna (वर्ण) उन्होंने कबीर को 'ज्ञानगाथा', जायसी को 'प्रेमगाथा' तथा तुलसी को 'जीवनगाथा' का कवि कहा है।

शुक्ल जी के समय मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन की पुस्तकें भारत में उपलब्ध न थीं। राहुल जी से उन्होंने पुस्तकें उपलब्ध कराने का अनुरोध किया था। राहुल जी ने स्वीकार किया है कि अपने जीवन काल में मैं शुक्ल जी को मार्क्स, एंगेल्स की पुस्तकें न उपलब्ध करा सका।

'चिंतामणि' भाग चार (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, साहित्य शोध संस्थान, वाराणसी द्वारा प्रकाशित) तथा आलोच्य पुस्तक ने मूल्यांकन के नए गवाक्ष खोल दिए हैं। शुक्लजी के बारे में यह एक अनिवार्य पुस्तक है। कुसुम जी एवं मुक्ता ने पुत्रों द्वारा पूर्व प्रकाशित (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संबंधी) बहुत सी त्रुटियों का परिमार्जन तथा भ्रांतिपूर्ण तथ्यों का प्रामाणिक ढंग से निराकरण किया है।

साहित्य संपादक-'छपते-छपते' हिन्दी दैनिक
26 सी0 क्रीक क्रो, कलकत्ता-700014

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, कुसुम चतुर्वेदी, मुक्ता, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, सूचना भवन, सी0जी0ओ0 कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003, मूल्य : 165 /- रुपये

■

आधुनिक मध्यवर्गीय समस्याएँ–परंपरा की दहलीज़ पर

नम्रता गीतेश्वर

समाज में हर कोई किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं अपने को मजबूर पाता है। कभी खुद के आगे, तो कभी समय या परिस्थितियों के आगे। मगर हर लाचारी में एक संदेश छिपा हुआ है। कभी-कभी ये लाचारी अपनेपन की गरमी में पिघलने लगती है तो कभी आँसू बनकर आँखों से टपकती है।

मंजू वनिता ने अपने प्रथम कहानी-संग्रह 'अपनी-अपनी मजबूरियाँ' में इन्हीं मजबूरियों को बड़े क़रीब से महसूस किया है। जहाँ लाचार माँ लंबे समय बाद अपनी बेटी से मिलती है, तो बस टुकुर-टुकुर देखती हुई अपनी आँखों व चेहरे से वह सब कुछ कह जाती है, जो उसके होंठ चाहते हुए भी बयाँ नहीं कर पाते। उसकी बेबसी बस आँसू बनकर बह जाती है। वहीं दूसरी तरफ़ माँ की बीमारी में कलयुगी बेटा मुँह फेर लेता है। कहीं न कहीं उस पर पाश्चात्य सभ्यता हावी रहती है और शायद यही उसकी मजबूरी है कि वह भूल जाता है कि जिस माँ की ममता की छाँव में उसने चलना सीखा था, उस माँ के प्रति उसका भी कोई फ़र्ज़ बनता है।

'बर्फ़' कहानी के अंतर्गत एक पत्नी के मनोभावों का वर्णन है, कुछ इस तरह से–"मुझमें कमियाँ खोजना, उनका विश्लेषण करना उनकी रोज़ की आदत बन चुकी है, आज भी ऐसा ही हुआ। कुछ ही देर में बाहर की तरह भीतर का भी मौसम बदलने लगा। दिन और रात के अरिहंत में ज़मीन-आसमान का अंतर है। रात में उठी घृणा और अपमान की बेबुनियाद दीवारों में मैं दिन भर क़ैद रहती।"

'अपाहिज' शीर्षक कहानी के अंतर्गत प्रकृति का ख़ूबसूरत ढंग से सौंदर्य-वर्णन किया गया और एक पति को अपनी पत्नी पर शक की नज़र रखने से उसे जोड़ा गया है। एक बानगी देखिए–"मुझे लगा ये पहाड़ियाँ दूर से ही बड़ी सुंदर, आकर्षक लगती हैं। समीप पहुँचते ही इनकी सारी सच्चाई सामने आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है, तब पता लगता है कि कितनी कठोर, कितनी उदास, कितनी जड़, कितनी मजबूर हैं ये अगम, अंतहीन, अपाहिज. ..।

'फ़र्क' शीर्षक कहानी में बेटे-बेटी और अमीर-ग़रीब की मानसिकता का फ़र्क दिखाया गया है। जहाँ एक अमीर और इज़्ज़तदार इन्सान अपनी इज़्ज़त के लिए आवाज़ नहीं उठाता, लोकलाज के डर से चुप हो जाता है, वहीं एक ग़रीब इन्सान आवाज़ उठाने से नहीं हिचकता :

"कितना फ़र्क है मुझमें और इसमें। झूठी प्रतिष्ठा, खोखला बड़प्पन। कितनी कमज़ोर हूँ मैं। इज़्ज़त... बेइज़्ज़ती, समाज का डर हमारे ही पैरों में बेड़ियाँ क्यों डाले है?... शिक्षा और सभ्यता ने क्या नहीं सिखाया... कितने क़ायर, कितने झूठे, कितने बनावटी हैं हम। चाहकर भी क्यों नहीं तोड़ पाते हैं इन शृंखलाओं को। मन की दीवारों से टकराकर हमेशा लौट जाते हैं ये अनुत्तरित प्रश्न। केवल अनुगूँज में ही सुनायी देते हैं ये शब्द।"

'परिंदे' कहानी में एक बेटे का नाकारापन दर्शाया गया है : पशु-पक्षियों की दुनिया इन्सानी दुनिया से ज़्यादा अच्छी होती है।... सिर्फ़ इन्सान ही है जो बेवजह ज़िंदगी भर समाज और भावनाओं के बंधन में बँधा बेमानी रिश्तों को ढोता रहता है... जानवर हमसे लाख गुना अच्छे हैं। शीला मेरी ज़िद और अपने बेटे की बेरुख़ी से विवश थी। मैंने उसे लाख समझाने की कोशिश की।"

'दहेज एक्ट' के अंतर्गत लेखिका ने प्रेम-विवाह और जात-बिरादरी के भेदभाव को दर्शाया है—"जवानी के जोश में अक्सर बाद में क्या होगा, इसका तो उन्हें ध्यान ही नहीं रहता।" 'दहेज एक्ट' में आजकल लड़की वाले दहेज के नाम पर लड़के वालों को फँसाने का कार्य भी करते हैं। इस एक्ट का दुरुपयोग समाज के पहरेदार भी करते हैं।

'बड़े साहब' कहानी में एक अफ़सर किस तरह शर्म-हया बेचकर अपने मातहतों को दिखावे के जाल में फाँसकर उनकी पत्नियों का शोषण करता है और कुछ तो अपनी पत्नियों को अपनी तरक़्क़ी का रास्ता समझ ख़ुद ही बड़े साहब के सामने पेश करते हैं। आज के सामाजिक पतन के बिल्कुल क़रीब जान पड़ती है यह कहानी। 'असंभव' कहानी में पुरुष का बहुरूपिया चेहरा दिखाने की भरपूर कोशिश की गयी है।

'सरकारी बँगला' कहानी राजनीति की अंतरंग पोल खोलती है कि कैसे वहाँ महिलाओं का शोषण होता है, कैसे राजनीति के जाल में फँसकर एक औरत अपनी मान-मर्यादा सब कुछ गवाँ बैठती है।

कहानी 'लखमीचंद' में आरक्षण और जातिवाद की गंदी राजनीति पर कटाक्ष किया गया है। आज हर जगह यही हो रहा है। इन्सान, समाज, लोकतंत्र, राजनीति—सब कुछ जातिवाद में ही सिमटकर रह गया है। इस कहानी का एक छोटा सा अंश—"जो नफ़रत, जो भेदभाव समाज में कल था वही आज है। विद्यार्थी सिर्फ़ विद्यार्थी होता है, ब्राह्मण या शूद्र नहीं! एकलव्य और कर्ण के साथ जो अन्याय हुआ था, उसे सब जानते हैं। वो घोर अन्याय था, ये भी मानते है, फिर भी आज जानबूझकर वही हो रहा है। एक एकलव्य का बदला लेने के लिए पूरे उच्चवर्ग को एकलव्य बनाया जा रहा है।"

संग्रह की सभी कहानियाँ सामाजिक सरोकारों और जीवन मूल्यों से लबरेज हैं, विविधता लिये हुए है। मंजू वनिता ने नारी का संघर्ष, उसका दुख, बेटे-बेटी का भेद, सांप्रदायिकता, आरक्षण का पुरज़ोर विरोध, सवर्ण ग़रीबों की तरफ़दारी, राजनीति में औरतों का स्थान, बलात्कार से पीड़ित महिला का दर्द, पहाड़ों का सौंदर्य, प्रकृति का सुंदर चित्रण, बड़े अफ़सरों का रंगीन मिज़ाज, बालश्रमः बुजुर्ग पिता का दर्द, प्रेमी-प्रेमिका का संबंध- इन सभी पहलुओं का उत्तम चित्रण किया है।

अवंतिका कॉलोनी
रामघाट रोड, अलीगढ़

अपनी-अपनी मजबूरियाँ, मंजू वनिता, शुभदा प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य : 150/- रुपये

हमेशा की तरह 'वर्तमान साहित्य' का मार्च 2010 अंक स्त्री सरोकारों पर केंद्रित होगा। इस अंक में अतिथि संपादक के रूप में प्रो0 सूरज पालीवाल सहयोग करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य क्लब

जीवन भर जिस शख़्सियत ने व्यक्ति और समाज के हित लाभ और स्वस्थ विकास के लिए वैचारिक संघर्ष का अभियान अपनी अंतिम साँसों तक चलाये रखा—ऐसे विलक्षण विभूति प्रो0 कुँवरपाल सिंह जैसे मूर्धन्य संपादक, साहित्यकार का अचानक दिवंगत हो जाना साहित्य-जगत् को हतप्रभ कर गया। यशःकाय प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह केवल स्थूल रूप से हमारे बीच नहीं हैं, उनकी विचार-ऊर्जा हमेशा व्यक्ति और समाज को निश्चय ही मानव-मूल्यों की स्थापना में अपना अनवरत् सहयोग पूर्ववत् देती रहेगी। ये विचार 'वर्तमान साहित्य' क्लब कानपुर की संयोजिका ने प्रोफ़ेसर साहब को अश्रुपूरित श्रद्धांजलि देते हुए 'शोक-सभा' में रखे। यह शोक-सभा दिनांक 10 नवंबर को किदवई नगर, कन्हैया भवन में संयोजिका के आवास पर संपन्न हुई। संगोष्ठी में क्लब के सदस्यों ने प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह को अपनी विनम्र भावांजलि देते हुए कहा कि कुँवरपाल सिंह जी में एक संवेदनशील रचनाकार था, जिसने हमेशा मनुष्य की सभ्यता को बनाये/बचाये रखने की बात अपने कार्यों और विचारों में जीवंत रखी। चाहे समाज हो, साहित्य हो, रचनाकारों के प्रति सरकार का ग़ैर-ज़िम्मेदार रवैया हो या उच्च शिक्षा का अमरीकीकरण हो या प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का निजीकरण और व्यवसायीकरण हो, चाहे भाषा की दुर्गति की बात हो, चाहे पर्यावरण के संतुलन की बात हो या विस्थापितों अथवा आदिवासियों या दलित एवं नारी की दयनीय दशा की बात हो या शोध के गिरते स्तर की बात हो—कुँवरपाल सिंह जी ने इन गंभीर मुद्दों पर एक बेचैनी के साथ अपनी बेबाक और तल्ख़ लेखनी से लोगों का ध्यान आकृष्ट कराया। उनकी चिंताओं में अनवरत रूप से ये प्रमुख मुद्दे थे। संगोष्ठी में शोधार्थी सदस्यों ने कहा कि पत्रिका के प्रत्येक अंक में 'समय संवाद' स्तंभ के तहत समसामयिक विषयों को उठाकर उन्होंने हम सभी को चिंतन का व्यापक अवसर प्रदान किया है। हम शोधार्थियों के लिए तो उनका उपकार अकथनीय है, जिन्होंने हमारी सोच का दायरा विकसित करते हुए हमें एक सकारात्मक दृष्टि प्रदान की। उनका इस प्रकार से अचानक चले जाना साहित्य-जगत् के लिए एक अपूर्णनीय क्षति है। वे भले ही अब न हों, किंतु अपने योगदान के द्वारा वे सदैव याद किए जाएँगे :

"उनकी गहराई छू लेना
मेरे बूते की बात नहीं
बादल में कितना पानी है
बतला सकती बरसात नहीं।"

सदस्यों ने एक स्वर में यह बात रखी कि 'वर्तमान साहित्य' में 'समय संवाद' स्तंभ के अंतर्गत प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह के विचारों और सिद्धांतों से युक्त उनके लेखांश दिये जाएँ, ताकि 'समय संवाद' पहले की तरह आगे भी पाठकों को सोचने-विचार करने की सामग्री देता रहे।

दया दीक्षित, संयोजक वर्तमान साहित्य क्लब, कानपुर

प्रथम राजकमल कृति सम्मान पुरुषोत्तम अग्रवाल को

राजकमल प्रकाशन द्वारा आरंभ किया गया पहला कृति पांडुलिपि पुरस्कार लेखक-चिंतक डा0 पुरुषोत्तम अग्रवाल को उनकी पांडुलिपि—'अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय' के लिए दिया गया।

इस समारोह में डॉ0 पुरुषोत्तम अग्रवाल की इस पुरस्कृत कृति 'अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय' का लोकार्पण भी हुआ। लोकपर्णकता थे प्रसिद्ध फिल्मकार श्याम बेनेगल। समारोह की अध्यक्षता प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह कर रहे थे। संचालनकर्ता थे श्री रवीन्द्र त्रिपाठी। श्री श्याम बेनेगल ने इस पुस्तक की यह कहते हुए सराहना की कि लेखक ने कबीर के आध्यात्मिक पक्ष को बहुत ही तटस्थ दृष्टि से देखा है।

निर्णायक मंडल ने इस कृति को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की कृति—'कबीर' की परंपरा को आगे बढ़ाने वाला स्वीकार किया है। निर्णायक मंडल में प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह, समाजशास्त्री श्री पी0सी0 जोशी तथा प्रख्यात पत्रकार प्रभाष जोशी शामिल थे। डॉ0 पुरुषोत्तम अग्रवाल को मिले सम्मान की संज्ञा—"'कबीर'-हजारी प्रसादद्विवेदी पुरस्कार" है। पुरस्कार ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के बाद 'अकथ कहानी प्रेम की : कहानी की कविता और उनका समय' के लेखक डॉ0 पुरुषोत्तम अग्रवाल ने बताया कि तीन दशकों से भी अधिक समय से वे कबीर की रचना प्रक्रिया और उनकी कविताओं में निहित संदेशों पर चिंतन-मनन करते रहे। अनवरत अध्ययन, मनन एवं लेखन का परिणाम इस पुस्तक के रूप में अब सबके सामने हैं। कबीर का यह अध्ययन आगे चलकर औपनिवेशिक आधुनिकता का अध्ययन बन जाएगा, यह उन्हें नहीं मालूम था। डॉ0 अग्रवाल को पुरस्कार के रूप में एक लाख रुपये का चेक, पंचधातु से निर्मित प्रतीक चिह्न तथा प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया। समारोह की अध्यक्षता कर रहे आलोचक नामवर सिंह ने 'अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय' पर आलोचकीय दृष्टि डालते हुए पुस्तक की खूबियों एवं खामियों पर सधी हुई टिप्पणियाँ कीं तथा रेखांकित किया कि हिन्दी में कबीर पर सैकड़ों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं मगर उनकी दृष्टि में, कबीर पर हिन्दी में लिखी गयी पहली पुस्तक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रचित 'कबीर' है तथा दूसरी पुस्तक डॉ0 पुरुषोत्तम अग्रवाल कृत यह पुस्तक जिसमें कबीर के चिंतन और उनकी कविताओं में निहित संदेशों की मौलिक समझ विकसित हुई है।

प्रस्तुति : अशोक माहेश्वरी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

वाराणसी

इस दौर में कोई तो है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भूमिका के स्मरण करते हुए काफी सशक्त और संगठित हो चुके कारपोरेट जगत (पूँजीवाद) को खरी-खोटी सुना सके, उसके खिलाफ़ जनमानस को आंदोलित और जागृत कर सके। ये बातें जनवादी लेखक संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रो0 शिव कुमार मिश्र ने अपने अध्यक्षीय संबोधन में कही। वह गांधी अध्ययन पीठ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, जनवादी लेखक संघ और भारत-ज्ञान विज्ञान समिति के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित संगोष्ठी में बोल रहे थे। विषय था "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के चिंतन के सामाजिक सरोकार।'

बतौर मुख्य अतिथि प्रो0 वेनीमाधव शुक्ल ने कहा कि साहित्य वही श्रेष्ठ है जिसे जनमानस आत्मसात करे। कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राध्यापक और आलोचक प्रो0 शंभूनाथ ने कहा कि शुक्ल जी कविता को उस चार्जर के रूप में आंकने वाले थे जो संवेदना की ठंडी होती बैटरी को चार्ज कर देती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सामाजिक सरोकार विषय का प्रतिपादन करते हुए प्रो0 चौथीराम यादव ने कहा कि शुक्ल जी बड़े विजन के बहुत बड़े आलोचक थे। कोई उनसे असहमत हो सकता है किन्तु उन्हें खारिज नहीं कर सकता।' इग्नू से पधारे डा0 राजेन्द्र पांडेय ने कहा शुक्ल जी ने आलोचना को स्वतंत्र प्रतिष्ठा दिलाई। उन्होंने लोक तत्व को जितना महत्व दिया उस पर विचार करते हुए उनके व्यापक सामाजिक सरोकारों को समझा जा सकता है।

प्रो0 विपिन बिहारी ठाकुर ने कहा कि परंपरा और मर्यादा का संपूर्ण आदर करते हुए भी शुक्ल जी जाति प्रथा के विरोधी थे। जे0एन0यू0 से पधारे प्रो0 ओम प्रकाश सिंह ने कहा कि शुक्ल जी ने बार-बार कहा कि साहित्य व्यक्ति के संस्कारों का परि मार्जन करता है। प्रकाश चन्द्र तिवारी ने कहा कि बीस वर्ष की आयु में आचार्य राम चन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित लेख 'ह्वाट हैज इंडिया टूडू 1907 में हिन्दुस्तान रिव्यू के डिस्कशन' स्तंभ में प्रकाशित हुआ। यह लेख इतना उपनिवेश विरोधी था कि अंग्रेज सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया। यह निबंध आचार्य शुक्ल के चिंतन के समाजिक सरोकार के वैचारिक आधार को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य में वैज्ञानिक विषयों का अभाव देखकर आचार्य शुक्ल ने जिन पुस्तकों का अनुवाद किया उसमें सबसे प्रसिद्ध जर्मनी के जीव विज्ञानी हैकल के रिडिकल ऑफ यूनिक्स का विश्व प्रपंच नामक अनुवाद है। जो जीव की उत्पत्ति, संवेदना और विचार के विकास को वैज्ञानिक आधार देता है।

संगोष्ठी में डा0 उर्मिला शुक्ल, डा0 अवधेश प्रधान, डा0 चन्द्रकला त्रिपाठी, डा0 कृष्णमोहन मिश्र, श्री संतोष कुमार राय आदि ने विचार व्यक्त किये।

गोष्ठी की संयोजक डा0 मुक्ता ने दोनों सत्रों में भाग लेने वाले विद्वानों के विचारों का सारांश प्रस्तुत किया। संचालन डा0 जितेन्द्र मिश्र एवं डा0 बलराज पांडेय ने किया। धन्यवाद प्रकाश किया कृष्णशंकर रघुवंशी ने।

प्रस्तुति : कृष्ण शंकर रघुवंशी, वाराणसी

'अभिनव बालमन' का विमोचन

अलीगढ़। बाल रचनाकारों की अपनी पत्रिका 'अभिनव बालमन' का स्थानीय राजमंदिर बैंक्युट हाल में दसवीं के मेधावी विद्यार्थियों ने विमोचन किया। मथुरा के श्रीजी बाबा सरस्वती विद्या मंदिर के चन्द्रकांत, डीपीएस अलीगढ़ के सुरभि, उत्कर्षा, अभिषेक अग्रवाल, दयानन्द शिशु मंदिर इण्टर कालेज कासिमपुर पावर हाउस के विवेक सेंगर विमोचन करने वालों में शामिल थे।

साहित्यकार डा0 प्रेमकुमार, डा0 मंजू शर्मा, डा0 इन्दिरा अग्रवाल ने माँ शारदे के चित्र के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित कर पुष्पार्चन किया। जर्जर कश्ती के संपादक श्री ज्ञानेन्द्र साज ने पत्रिका को बाल रचनाकारों के लिए उनके रचनाकर्म व सृजन के लिए श्रेष्ठ मंच बताते हुए पत्रिका प्रकाशन की सराहना की। विज्ञानरत्न लक्ष्मण प्रसाद ने बाल रचनाकारों द्वारा विमोचन कराए जाने को अच्छा व सुखद बताया। साथ ही उन्होंने कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि बाल रचनाकारों ने साहित्य के क्षेत्र में नवाचार किया है।

कार्यक्रम में विमोचनकर्ता मेधावियों को बाल रचनाकार मण्डल की ओर से मैडल, शील्ड व पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया। पत्रिका में प्रकाशित व अन्य बाल रचनाकारों ने अपनी स्वचरित रचनाओं को प्रस्तुत किया जिसमें मुकुल उत्कर्ष ने कहानी सुनायी तो आशीष ने बालमन की अब तक की यात्रा को शब्दों में बाँधकर प्रस्तुत किया। बाल रचनाकार शुभम, देवमित्र, शुभि, रामकुमार, प्रीति, उर्वशी, लखन, रीतिका, गुंजन, नेहा, कादिर, महक फातिमा, मानसी, देवाशीष, इशिता, गुंजन, आशीष कुमार, तुषार, देव ने अपनी कविताएँ प्रस्तुत कीं।

समस्त बाल रचनाकारों के श्रम के लिए उत्साह के प्रति, आगंतुकों के प्रति संपादक निश्चल ने आभार व्यक्त करते हुए बाल रचनाकार मण्डल से जुड़ी कुछ बातों को बताया। साथ ही आगंतुकों से आग्रह किया कि उनके आस-पास महकते बचपन की प्रतिभा को अभिनव बालमन के बगीचे में लाएँ।

प्रस्तुति : आशीष

वनमाली सृजन पीठ का अनूठा प्रयोग 'अंतर्लय'

भक्ति संगीत के अमृत कलश से झरते आध्यात्मिक आनंद और लोकधर्मी आस्थाओं के भाव स्वरों को आत्मसात करने भोपाल के रवीन्द्र भवन में वनमाली सृजन पीठ ने रसिकों को 'अंतर्लय' की अनूठी दावत दी। लोक संगीत संवेदना की ध्वनि स्व0 श्रीमती शारदा चौबे के संग्रह से चुने करीब 20 भजनों को रंगमंच के फलक पर प्रसिद्ध रंगकर्मी श्री मनोज नायर ने अपने कला दल के साथ प्रस्तुत किया। वरिष्ठ कवि-कथाकार श्री संतोष चौबे द्वारा परिकल्पित 'अंतर्लय' को पारंपरिक मौलिक धुनों में सजा संवार कर पेश किया सुपरिचित संगीतकार श्री संतोष कौशिक ने। विषय वस्तु को संवाद की रोचक शैली के साथ दर्शक-श्रोताओं तक कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने पहुँचाया। इस मौके पर हिन्दी के सुप्रतिष्ठित कवि श्री भगवत रावत, मध्य प्रदेश के संस्कृति मंत्री श्री लक्ष्मीकांत शर्मा, तकनीकी संस्थान आईसेक्ट के महानिदेशक श्री संतोष चौबे ने आईसेक्ट स्टुडियो द्वारा श्रीमती शारदा चौबे के लोक स्मृति से जुड़े 26 भजनों के संगीतबद्ध चार सी0डी0 एलबम लोकार्पित किये।

लगभग दो घंटे की इस रोमांचकारी दृश्य-श्रव्य प्रस्तुति में श्री मनोज नायर ने कोरियोग्राफी का अद्‌भुत घालमेल किया है। भजनों में अंतर्निहित कथाओं, घटनाओं, प्रसंगों और आख्यानों को उन्होंने नृत्य गतियों तथा पारदर्शी अभिनय की तमाम संभावनाओं को युवा कलाकारों की प्रतिभा से अर्जित करने का सफल प्रयास किया है। क्षमा मालवीय ने खासतौर पर कृष्ण और राम की महिमा से जुड़े भक्ति पदों में बहुत ही सुथरे ढंग से कोरियोग्राफी का इस्तेमाल किया। स्मिता नायर, एकता गोस्वामी, अर्चना शैलेन्द्र, स्निग्धा पाण्डे, शिव कटारिया, अनुज भाटिया गिरीश और राहुल यादव आदि की भंगिमायें कथा प्रसंगों के अध्यात्मिक अर्थ खोलती रहीं। कमल जैन की प्रकाश परिकल्पना और संचालन तथा प्रशांत सोनी और आशीष पोद्‌दार के तकनीकी नियंत्रण ने पूरी प्रस्तुति को संतुलित और अनुशासी बनाये रखा। 'अंतर्लय' के संगीत पक्ष में गायक-म्यूजिक कम्पोजर श्री राजू राव, उमेश तरकसवार और धर्मेश की बुनियादी भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। सुश्री उमा कोरवार, वीनस तरकसवार, संदीपा पारे तथा श्री शिव राव और कैलाश यादव की गायकी भी भजनों की मुखरता का सुरीला प्रमाण देती है। 'अंतर्लय' का साक्षी बनने भोपाल के प्रबुद्ध सृजनधर्मियों के साथ ही बड़ी तादात में आम रसिकजन भी उपस्थित थे।

वनमाली सृजन पीठ, भोपाल

केदारनाथ की कविताओं में देशी ठाट : नामवर सिंह

"केदारनाथ अग्रवाल एक क्रांतिकारी कवि हैं, जिनको पढ़ने के बाद आँसू नहीं गिरते, मुट्‌ठी बंधती है। उनकी कविता में आम आदमी का देशी ठाट दिखाई देता है।" यह बात वरिष्ठ आलोचक डा0 नामवर सिंह ने महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के इलाहाबाद स्थित क्षेत्रीय केन्द्र के 'सत्यप्रकाश मिश्र सभागार' में केदार व्याख्यानमाला-एक के दौरान कही। उनकी कविता में स्त्री का सौंदर्य, शक्ति और सहभागिता दिखायी देती है। इसी आधार पर कुछ लोग उन्हें रोमांटिक कवि कहते हैं। शहरी जीवन की अछूती चीजों को केदार जी अपनी कविता में सलीके से जगह देते हैं। राजनीतिक कविताएँ जनता की जुबान पर चढ़ जाए, यह आसान काम नहीं है, केदार की कविताएँ मजदूर, किसानों की जवान पर चढ़ी है।

केदार व्याख्यानमाला-एक कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे कुलपति एवं वरिष्ठ कथाकार विभूतिनारायण राय ने कहा कि केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्य धारा की त्रयी के महत्त्वपूर्ण रचनाकार है। विश्वविद्यालय की कोशिश है कि अनेक व्याख्यामालाओं का आजोजन कर हम कविता, कथा और आलोचना के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों को केन्द्र में रखकर उनका पुनर्मूल्यांकन करें। यह सुखद संयोग है कि इसकी शुरूआत साहित्य एवं संस्कृति के लिए अपनी अलग पहचान रखने वाले शहर इलाहाबाद से हो रही है।

कार्यक्रम संयोजक एवं क्षेत्रीय केन्द्र के निदेशक संतोष भदौरिया ने कार्यक्रम का संचालन एवं अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापित किया।

प्रस्तुति : डा0 निधि सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरण : हबीब तनवीर

रंगकर्म समीक्षक और 'रंग हबीब' पुस्तक के लेखक भारतरत्न भार्गव ने महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय केन्द्र में आयोजित कार्यक्रम के दौरान कहा कि हबीब सैद्धांतिक नाटककार थे, व्यवसायिक नहीं। अंग्रेज़ों के आने के बाद भारतीय रंगकर्मी अपनी परंपरा, संस्कृति और विशिष्टता से विमुख होते चले गए किन्तु हबीब तनवीर ने हमेशा अपनी मिट्टी की सोंधी महक और आस-पास के माहौल से सीखा। कार्यक्रम के अध्यक्ष वरिष्ठ नाट्यकर्मी अजित पुष्कल ने कहा कि सृजनात्मकता का क्षेत्रीयता से बहुत गहरा नाता है। ग़रीब गाँवों में भारतीय संस्कृति बसती है, हबीब ने इसे हमेशा अपने जेहन में रखा और पात्रों के माध्यम से थियेटर की भाषा गढ़ी। रंगकर्मी अनिल रंजन भौमिक के अनुसार हबीब साहब के जाने के बाद जो रिक्तता रंगकर्म के क्षेत्र में पैदा हुई है उसे पूरा होने में समय लगेगा। नाट्य कर्मी नंदल हितैषी ने कहा कि हबीब तनवीर को याद करने का मतलब दलित शौर्य और वनवासी स्थितियों को याद करना है। एक दिन में कोई हबीब नहीं बन सकता। इसके लिए वर्षों की कड़ी मेहनत की ज़रूरत है। विश्वविद्यालय के विशेष कर्तव्य अधिकारी एवं नाट्य लेखक श्री राकेश ने कहा कि हबीब तनवीर ने हमेशा हाशिए के लोगों की वकालत की। अन्याय और शोषण के खिलाफ डटकर खड़े रहने वाले रंगकर्मी थे। कार्यक्रम का संचालन क्षेत्रीय केन्द्र के निदेशक संतोष भदौरिया ने किया।

प्रस्तुति : संतोष भदौरिया, इलाहाबाद

जनवादी लेखक संघ बलिया की गोष्ठी

जनवादी लेखक संघ के तत्वावधान में 'उदारीकरण के वर्तमान परिदृश्य में आम आदमी' शीर्षक विषय पर एक विचारगोष्ठी का आयोजन संपन्न हुआ। 'जलेस' बलिया के मंत्री श्री अवध नरायण सिंह ने एक आलेख प्रस्तुत करते हुए उदारीकरण से आमजन के प्रति उत्पन्न हुए ख़तरों को रेखांकित किया। बीज वक्तव्य देते हुए श्री जैनेन्द्र पाण्डेय ने स्पष्ट किया कि आम-आदमी से अभिप्राय किसान, मेहनतकश मजदूर और पिछड़े आदिवासियों से है जो आज संकट में हैं। उदारीकरण वस्तुतः उधारीकरण है। सरकारी नीतियाँ भी पूँजीपतियों को ही लाभ पहुँचाने वाली है। डा0 कृष्ण कुमार सिंह ने अपने सारगर्भित व्याख्यान में कहा कि आर्थिक लोकतंत्र का अभाव राजनैतिक लोकतंत्र को कमजोर कर देता है। श्री रामकृष्ण यादव का विचार था कि उदारीकरण का जनक अमेरिका है और भारत सरकार की नीतियाँ अमेरिका परस्त होती जा रही हैं। अधिवक्ता अजय पाण्डेय ने कहा कि आमजन को उदारीकृत अर्थव्यवस्था से दुष्प्रभावों से बचाने के लिए स्वतंत्र आर्थिक नीति होनी चाहिए। क्यूबा इसका उदाहरण है। डा0 राजीव कुमार ने उदारीकरण को यूरोपीय पूँजीवादी गुटों की साजिश के रूप में व्याख्यायित किया। सिविल वार एसोसियेशन के अध्यक्ष श्री शिशुपाल राय ने न्याय व्यवस्था पर उदारीकरण के प्रभाव पर प्रकाश डाला। डा0 अमलदार 'नीहार', कु0 अर्चना सिंह, कु0 बी0एस0 लक्ष्मी एवं एजाज बलियावी ने अपनी जनवादी कविताओं के माध्यम से आम आदमी के कष्टों को अभिव्यक्ति दी। डा0 जनार्दन राय ने उदारीकरण के घातक परिणाम से आम जनता को जागरुक बनाने में बुद्धिजीवियों की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डाला। श्री सुभाष चन्द्र सिंह ने कहा कि भारत में आर्थिक उदारीकरण अब आक्रामक दौर में पहुँच गया है। आम जनता का जीवन दुश्वार हो गया और अब इसके खिलाफ़ व्यापक जनांदोलन के सिवा दूसरा कोई विकल्प नहीं है। विचारगोष्ठी में संबोधित करने वाले बुद्धिजीवियों में डा0 विश्वप्रकाश मिश्र, डा0 इलियास, डा0 शैलेष पांडेय, अम्बरीश पांडेय, राकेश वर्मा प्रमुख थे। विचारगोष्ठी का संचालन करते हुए डा0 अजय बिहारी पाठक ने कहा कि उदारीकरण और वैश्वीकरण आज के अर्थनीतिक सुधारों के नारे हैं। इनकी आड़ लेकर विकसित देशों का प्रभाव विकासशील देशों पर बढ़ता जा रहा है।

'जलेस' बलिया के अध्यक्ष डा0 ब्रजभूषण श्रीवास्तव ने अपने अध्यक्षीय संबोधन में कहा कि आर्थिक गुलामी ही वस्तुतः राजनैतिक गुलामी होती है। आर्थिक उदारीकरण के दौर में जनता को निर्मम बाजार के हवाले कर दिया गया है।

प्रस्तुति : अवध नरायण सिह, बलिया

डा0 रंजना जायसवाल के नये काव्य-संग्रह का लोकार्पण

गोरखपुर प्रेस क्लब सभागार में डा0 रंजना जायसवाल के नये काव्य संग्रह 'जब मैं स्त्री हूँ' का लोकार्पण प्रख्यात साहित्यकार प्रो0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने किया। लोकार्पण के उपरान्त रंजना ने 'सिर्फ़ कागज़ पर नहीं', 'चाची', 'जब मैं स्त्री हूँ', 'औरत होना', 'जब मैं पुरुष हूँ' तथा 'आर्यावर्त में स्त्री-विमर्श' कविताओं का पाठ किया, जिसे केंद्रित कर 'स्त्री' पर विमर्श शुरू हुआ। विमर्श में डा0 अनिल राय, आलोचक कपिल देव, कहानीकार मदन मोहन, डा0 जनार्दन, शायर महेश अश्क व प्रो0 अनंत मिश्र ने हिस्सा लिया।

सभी वक्ताओं ने रंजना जायसवाल को संवेदनशील कवयित्री बताते हुए स्त्री विमर्श से दूर रहने की सलाह दी। विचारकों द्वारा 'स्त्री-विमर्श को सतही ढंग से परिभाषित, व्याख्यायित व खारिज़ करते देख कवियित्री ने खुलकर स्त्री-विमर्श के पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत किए जिससे संगोष्ठी में विवाद की स्थिति पैदा हो गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यक्रम का संचालन डा0 विमलेश मिश्र ने किया।

प्रस्तुति : डा0 विजय दीक्षित, गोरखपुर

राजभाषा हिन्दी : प्रगति के साठ वर्ष

14 सितंबर को गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की तपोभूमि और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की कर्मभूमि रही विश्वभारती, शांति निकेतन के हिन्दी भवन परिसर में दो दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया। अहिन्दी भाषी प्रदेश होते हुए भी विद्वान वक्ताओं, सुधी श्रोताओं एवं कुशल आयोजन कर्त्ताओं के कारण यहाँ एक व्यक्तिगत एवं सफल कार्यक्रम का आयोजन संभव हो पाया।

दो दिनों तक चलने वाले इस कार्यक्रम का उद्घाटन 'राजभाषा हिन्दी : प्रगति के साठ वर्ष' विषय पर केन्द्रित एक संगोष्ठी से हुआ। सर्वप्रथम विभागाध्यक्ष प्रो0 मुक्तेश्वर नाथ तिवारी ने आगंतुक विद्वानों का स्वागत किया तथा विषय प्रवर्तन किया। संगोष्ठी की शुरूआत करते हुए हिन्दी विभाग, काँचरापाड़ा कॉलेज के अध्यक्ष डा0 राजेन्द्र प्रसाद ने हिन्दी भाषा को जनोन्मुखी बनाने पर जोर देते हुए सरकार द्वारा इसके साथ किए जा रहे सौतेले व्यवहार की तरफ श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट किया। भिलाई शहर से पधारे श्री मलय रंजन खरे ने हिन्दी भाषा के महत्व को रेखांकित किया। प्रो0 हरिश्चन्द्र मिश्र ने हिन्दी शब्दों की समर्थता को बताते हुए सत्ता किस प्रकार भाषा को प्रभावित करती है इसकी ओर ध्यान आकृष्ट कराया। प्रो0 रामेश्वर मिश्र ने हिन्दी दिवस मनाये जाने की सार्थकता पर सवाल खड़े करते हुए भारतवर्ष में भाषा की व्यापकता पर चर्चा की।

केरल के प्रो0 अच्युतन ने भारतेन्दु की पंक्ति 'निजभाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' को उद्धृत करते हुए कहा कि हम अपनी मूल भाषा में ही मौलिक चिंतन कर सकते हैं। मुख्य अतिथि के रूप में पटना विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफ़ेसर जगदीश नारायण चौबे ने 14 सितंबर के दिन को वाणी स्वतंत्रता दिवस के रूप में याद किया। सत्र की अध्यक्षता कर रहे विश्वभारती, विद्या भवन के प्राचार्य और उड़िया साहित्य के जाने-माने साहित्यकार प्रोफ़ेसर नीलाद्रि भूषण हरिचन्दन ने भाषा की गतिशीलता को बनाये रखने की वकालत की।

डा0 सुभाष चन्द्र राय ने पहले दिन के इस संगोष्ठी का सफल संचालन किया और धन्यवाद ज्ञापन अर्जुन कुमार ने किया। प्रथम दिन की संगोष्ठी समाप्त होते ही हिन्दी भवन परिसर में शाम संगीतमय हो उठा। सबसे पहले श्री दाऊलाल कोठारी एवं उनके दल द्वारा हिन्दी रवीन्द्र संगीत की अद्भुत प्रस्तुति हुई।

संगोष्ठी के दूसरे दिन का मंच संचालन का कार्य डा0 शैलेन्द्र त्रिपाठी ने किया। सबसे पहले उन्होंने विभाग के शोध छात्रों को इस विषय पर बोलने के लिए आमंत्रित किया। शोध छात्रों में अभय शंकर द्विवेदी, गोरख नाथ, आसितशील आदि ने राजभाषा हिन्दी से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण सवाल उठाये। खड़गपुर कॉलेज से आये हुए डा0 पंकज शाहा ने राजभाषा हिन्दी की दुर्दशा की ओर विद्वानों का ध्यान खींचा।

डा0 सुभाष चन्द्र राय ने हिन्दी भाषा की उन्नति को सांस्कृतिक आज़ादी से जोड़कर देखा। उन्होंने हिन्दी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखने की बात की। अंत में पटना विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफ़ेसर जगदीश नारायण चौबे ने हिन्दी भाषा की विशेषताओं की ओर श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट कराया और कहा कि हिन्दी भाषा जितनी वैज्ञानिक भाषा है उतनी संसार की कोई अन्य भाषा नहीं। उन्होंने विद्वानों को आश्वस्त किया कि हम राजभाषा हिन्दी के प्रति जितना निराश है; उतनी खराब स्थिति में यह है नहीं। डा0 जगदीश भगत ने अपनी ओर से एवं विभाग की ओर से आगंतुक विद्वान वक्ताओं एवं श्रोताओं को धन्यवाद दिया।

प्रस्तुति : गोरखनाथ, शोध छात्र, शांति निकेतन, प.बंगाल

जनवादी लेखक संघ, समस्तीपुर जिला इकाई

समस्तीपुर जनवादी लेखक संघ ने आज़ादी की बासठवीं वर्षगांठ के अवसर पर 16 अगस्त को जिला मुख्यालय से लगभग 40 कि0मी0 दूर हसनपुर उच्च विद्यालय में "भारत का मुक्ति-संग्राम और प्रेमचंद" विषय पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया। शंभू शरण यादव के संचालन में हुए कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में अपनी बात रखते हुए जलेस जिला सचिव शाह जफ़र आलम ने कहा कि प्रेमचंद ने जिस मुक्ति की बात की थी, भारत की आम जनता को आज़ादी के इतने लंबे अरसे बाद भी वह मुक्ति नहीं मिल पायी। मुख्य अतिथि के रूप में अपना वक्तव्य देते हुए जलेस जिला उपाध्यक्ष रामदेव महतो ने विस्तार से भारत के मुक्ति संग्राम की चर्चा करते हुए एक लेखक के रूप में प्रेमचंद के महत्व को रेखांकित किया। कार्यक्रम में राम प्रकाश यादव, मुद्रिका सिंह तथा रामनरेश मिश्र ने भी अपने विचार व्यक्त किये। रामाधार राय की अध्यक्षता में हुए कार्यक्रम का समापन अधिवक्ता हरिश्चन्द्र सिंह के धन्यवाद ज्ञापन से हुआ।

प्रस्तुति : शाह जफर आलम, समस्तीपुर

शंभु गुप्त को स्पंदन आलोचना पुरस्कार

भोपाल, साहित्य, संस्कृति तथा ललित कलाओं के लिए समर्पित 'संस्था 'स्पंदन संस्था भोपाल' द्वारा स्थापित पुरस्कारों की शृंखला में 'स्पंदन आलोचना पुरस्कार 2009' के लिए सुप्रसिद्ध आलोचक डा0 शंभु गुप्त के नाम का चयन निर्णायक मण्डल-प्रो0 शंभुनाथ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा0 विजय बहादुर सिंह, डा0 खगेन्द्र ठाकुर तथा रवीन्द्र त्रिपाठी-द्वारा सर्वसम्मति से किया गया है।

वर्तमान साहित्य परिवार की ओर से उन्हें बधाई।

प्रस्तुति : डा0 एस0के0 शर्मा / उर्मिला शिरीष, भोपाल

हिन्दी हास्य-व्यंग्य नाटक 'घरघुरन लीला' का शानदार मंचन

राजधानी पटना की सांस्कृतिक संस्था सुलोचना कला मंच के तत्त्वावधान में पटना के कालिदास रंगालय के शकुन्तला प्रेक्षागृह में हिन्दी एवं अंगिका के मशहूर नाटककार, व्यंग्य कथालेखक एवं कवि श्रीकान्त व्यास द्वारा लिखित हिन्दी हास्य-व्यंग्य नाटक 'घरघुरन लीला' का शानदार और दमदार मंचन किया गया। चर्चित रंगकर्मी प्रभात पाण्डेय के निर्देशन में मंचित इस 'घरघुरन लीला' नाटक में कलाकारों ने अपने आंगिक और वाचिक अभिनय से दर्शकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी।

हास्य-व्यंग्य नाटक 'घरघुरन लीला' में बेमेल विवाह का बड़ा ही मार्मिक, सटीक, रोचक और तर्कपूर्ण चित्रण हुआ है। 'घरघुरन लीला' नाटक की कथा एक वृद्ध पात्र घरघुरन पर केन्द्रित है। घरघुरन कामलोलुप व्यक्ति है जो अपने स्वार्थ के लिए किसी भी हद तक चला जाता है। नाटक में एक निर्धन की बेटी धन्नो की दारुण कथा उजागर हुई है। ग़रीबी एक युवती को एक बूढ़े के संग विवाह सूत्र में बँधने को बाध्य कर देती है। यह नाटक एक तरफ एक रोमानी दिलवाले बूढ़े की दिलचस्प और रोमांचक कहानी है तो दूसरी ओर नारी-मुक्ति की खुलकर वकालत भी करता है। वर्तमान समय के कड़ुवे सच को लेखक ने बड़ी कुशलता से उद्घाटित किया है।

नाटक में प्रभात पाण्डेय ने घरघुरन, राधेकृष्ण पाण्डेय ने लुटन, ज्योति गुप्ता ने धन्नो, श्रीकान्त व्यास ने भागो, दिनेश कुमार ने मानिकलाल, समीरकान्त सिंह ने गोलू, उमेश कुमार ने बुधन एवं काजल किशन ने नर्तकी की भूमिका को अपने अभिनय से जीवन्त बनाया। नेपथ्य से प्रवीण कुमार (संगीत), अशोक कुमार चंचल (प्रकाश), उपेन्द्र कुमार (ध्वनि प्रभाव), सुनील कुमार (रूप-सज्जा), डा0 अवधेश प्रसाद (वस्त्र विन्यास), पंकज मिश्रा (प्रस्तुति प्रभारी), पवन एवं संजय (मंच सहायक) ने सराहनीय सहयोग किया।

इस नाट्य मंचन का उद्घाटन एवं स्मारिका का लोकार्पण समाजसेवी श्री अनिल सुलभ ने किया। अपने संबोधन में अनिल सुलभ ने कहा कि नाट्यकला सभी कलाओं में श्रेष्ठ है। इसी श्रेष्ठता के कारण नाटक को पंचमवेद कहा गया है। पटना विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति एवं मंच के अध्यक्ष डा0 एस0एन0पी0 सिन्हा ने भी अपने संबोधन में नाट्य कला की विशेषताओं को रेखांकित किया।

प्रस्तुति : आदित्य प्रकाश सिंह, पटना-8

वर्तमान साहित्य : कमलेश्वर कहानी प्रतियोगिता-2009 का परिणाम

वर्तमान साहित्य : कमलेश्वर कहानी प्रतियोगिता-2009 के लिए **हरपाल सिंह 'अरुष'** की कहानी **''कैम्पस''** का चुनाव हुआ है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कहानियाँ भी निर्णायकों द्वारा पसंद की गयीं :

1. मट्ठा	: वृजलाल कोरी 'विरज', मुरादाबाद
2. काली गाय	: आनंद प्रकाश मिश्र, बिजनौर
3. सांत्वना पुरस्कार	: सिराज खांन बातिश, कोलकाता
4. मेरे लिए जियो पापा	: चन्द्ररेखा ढडवाल, धर्मशाला
5. कांता के बाल	: विजय शर्मा, जमशेदपुर
6. वे अब्हत्तर दिन	: ओमप्रकाश नामदेव, भोपाल
7. रियर व्यू	: रजनी गुप्त, लखनऊ

निर्णायक समिति में श्री विभूति नारायण राय, प्रो0 सूरज पालीवाल और डा0 कमलकुमार थे।

कहानी पुरस्कार 27 जनवरी, 2010 को अलीगढ़ में आयोजित एक समारोह में प्रदान किया जायेगा। (संपादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपभोक्तावाद पर मंदी का साया

गिरीश मिश्र

संक्षेप में कहें, तो उपभोक्तावाद वह सिद्धांत है जो मानकर चलता है कि वस्तुओं और सेवाओं का जितना अधिक उपभोग होगा अर्थव्यवस्था पर उतना ही अनुकूल असर पड़ेगा। माँग की मात्रा में कमी के कारण बिना बिके माल की समस्या उत्पन्न न होगी। यह सिद्धांत वस्तुओं और सेवाओं की माँग उनके उपयोग-मूल्य के कारण करने पर ज़ोर नहीं देता, बल्कि संभावित उपभोक्ताओं को उनके प्रतीक मूल्य या प्रतिष्ठा मूल्य को ध्यान में रखकर ख़रीदारी के लिए उकसाना है।

वस्तुओं का उपभोग न सिर्फ़ उनके उपयोग-मूल्य, बल्कि उनके प्रतीक मूल्य की दृष्टि से करना एक पुरानी चीज़ है। इस विषय का पहली बार विस्तार से विश्लेषण अमेरिकी अर्थशास्त्री थोर्स्टीन वेबलेन ने अपनी पुस्तक 'द थियोरी ऑफ़ द लेजर क्लास' में 1899 में प्रस्तुत किया। उन्होंने इसे प्रदर्शन-उपभोग कहा। उनके अनुसार प्रदर्शन-उपभोग (या प्रतीक मूल्य को ध्यान में रखकर उपभोग) 'सम्मानजनक, मूलतः पराक्रम की निशानी और मानव गरिमा की पूर्वापेक्षा माना जाता था। उन्होंने लिखा, "अवकाशभोगी वर्ग प्रतिष्ठा की दृष्टि से सामाजिक संरचना के शीर्ष पर होता है और इसलिए उसकी जीवन-पद्धति और उसके मानक समुदाय की प्रतिष्ठा के प्रतिमान बन जाते हैं। इन मानकों का मोटे तौर पर अनुसरण सामाजिक सोपान में नीचे स्थित सभी वर्गों के लिए लाज़िमी हो जाता है। आधुनिक सभ्य समुदायों में सामाजिक वर्गों के बीच की विभाजन रेखाएँ अस्पष्ट और अस्थायी बन गयी हैं और जहाँ भी ऐसा होता है, वहाँ उच्चतर वर्ग द्वारा थोपा गया प्रतिष्ठा का प्रतिमान किंचित प्रतिरोध के बावजूद अपना अवपीड़क प्रभाव सामाजिक संरचना में नीचे की ओर निम्नवत् श्रेणी तक डालता है। परिणामस्वरूप, प्रत्येक श्रेणी के सदस्य शालीनता के अपने आदर्श के रूप में अपने से ठीक ऊपर वाली श्रेणी की तत्कालीन जीवन-पद्धति को अपनाते और उसी के अनुकूल अपने को ढालने के लिए अपनी सारी ऊर्जा लगा देते हैं।"

प्रसिद्ध अमेरिकी अर्थशास्त्री हार्वे लीवेंस्टाइन ने 'बैंडवैगन' और 'स्नौब' प्रभावों की अवधारणा द्वारा समझाया कि किस प्रकार किसी व्यक्ति का उपभोग उससे सामाजिक पायदानों पर ऊँचे और नीचे बैठे लोगों द्वारा प्रभावित होता है। कहना न होगा कि उपभोग और माँग केवल आय और क़ीमत-संरचना से ही पूरी तरह प्रभावित नहीं होती, बल्कि अहम् की संतुष्टि की आवश्यकता से भी प्रभावित होती है। उपभोग दिखाने और समाज की अन्य श्रेणियों पर धौंस जमाने के लिए भी होता है। सुप्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान फ़ेरडरिक जेम्सन के शब्दों में उपभोक्तावाद एक 'वास्तविक उन्माद' की स्थिति है, जिसमें बाज़ार के मूल विचार का गला ही... अत्यंत आश्चर्यजनक संतोष के साथ घोंट दिया जाता है। जब से भूमंडलीकरण का वर्तमान दौर शुरू हुआ है, तब से उपभोक्तावाद एक नयी बीमारी 'एन्फ्लुएंजा' के रूप में प्रकट हुआ है। यह ऐसे जीवन-मूल्यों का समुच्चय है, जो मानसिक दबाव बढ़ाता है कि व्यक्ति समाज में अपना रुतबा बढ़ाने के लिए अपने उपभोग की संरचना को बदले। वह मोटरगाड़ी, शानदार मकान, बढ़िया कपड़ों और इलैक्ट्रॉनिक वस्तुओं समेत तमाम नयी वस्तुओं को प्राप्त करने की कोशिश करता है, जिससे ऊपरी तबकों पर उसकी धाक जमे। विज्ञापन के स्वरूप में गुणात्मक परिवर्तन और उसके बढ़ते दायरे ने उपभोक्तावाद को त्वरित किया है। वह ज़माना पीछे रह गया, जब पैसे, मुख्यतया नक़दी की कमी ख़रीददारी में आड़े आती थी। क्रेडिट कार्ड के आगमन ने इस बाधा को दूर कर तब तक ख़रीदारी करने का रास्ता प्रशस्त कर दिया, जब तक थककर गिर न पड़ें। वर्तमान मंदी ने उपभोक्तावाद की तेज़ रफ़्तार को कम ही नहीं किया है, बल्कि तत्काल कुछ हद तक उसके आगे, जहाँ तक नवोदित मध्य वर्ग का प्रश्न है, विराम लगा दिया है। मंदी के कारण सर्वत्र बेरोज़गारों की संख्या तेज़ी से बढ़ी है। इस ख़बर के बावजूद कि उद्योग धंधों एवं सेवाओं के क्षेत्रों पर से मंदी का काला साया हटने लगा है, न कुल बेरोज़गारों की संख्या घट रही है और न उनकी आय में निकट भविष्य में वृद्धि के आसार प्रकट होते दिख रहे हैं। आय में कमी से ख़रीदारी पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादों को अपना कारोबार बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है। इस कारण नये लोगों को काम पर लगाने की बात तो दूर रही, पहले से कार्यरत लोगों की छँटनी की जा रही है। क्रेडिट कार्ड जारी करने वाली कंपनियों ने सख़्ती से काम लेना शुरू कर दिया है। पहले की तरह क्रेडिट कार्ड जारी नहीं किये जा रहे हैं। आज से दो साल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले स्थिति यह थी कि बैंक पकड़-पकड़ कर लोगों, विशेषकर नौजवानों को क्रेडिट कार्ड दे रहे थे। जिन्हें क्रेडिट कार्ड पकड़ाये जा रहे थे, उनके बारे में ज़रूरी सूचनाएँ जुटाने की ज़हमत नहीं उठायी जा रही थी। यह मालूम नहीं किया जा रहा था कि उनकी नौकरी स्थायी है या अस्थायी और उनकी पगार कितनी है। मंदी आने और बेरोज़गारी बढ़ने तथा रोजग़ार प्राप्त लोगों की आय में कटौती से क्रेडिट कार्ड धारकों द्वारा बकाया रक़मों का भुगतान कठिन से कठिनतर होता गया है। अमेरिका, जहाँ क्रेडिट कार्डधारकों की संख्या क़रीब सात करोड़ है, सबसे अधिक मुसीबत में है। वहाँ कार्डधारकों पर दस खरब डालर से अधिक का बकाया है। नतीजन क्रेडिट कार्ड जारी करने की रफ़्तार कम हो गयी और उससे जुड़े नियम-क़ायदे सख़्त हो गये हैं। इससे उपभोक्तावादी प्रवृत्ति घटी है। उन वस्तुओं और सेवाओं के ख़रीदार बहुत कम हो गये हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य उनसे अपनी कोई बुनियादी आवश्यकता को संतुष्ट करना नहीं, बल्कि अपनी प्रतिष्ठा या धाक को दूसरों की नज़र में बढ़ाना रहा है।

व्यावसायिक काम-काज जिस मॉडल के आधार पर चलाया जाता है, उसमें चार तत्त्व शामिल होते हैं—उत्पाद, वितरण, संचार और क़ीमत। अब तक हर व्यवसायी यही कोशिश करता रहा है कि उसका उत्पाद बढ़िया गुणवत्ता का हो और उसका वितरण अविलंब हो, जिससे वह संभावित ख़रीदारों को बिना कोई ख़ास ज़हमत उठाये प्राप्त हो। सुविधाजनक शोरूम और बाजार में वह उपलब्ध हो। इन दोनों से कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण होता है—उत्पाद के विषय में संभावित ख़रीदारों को बतलाना। उसमें अंतर्निहित ख़ूबियों के साथ ही अन्य समान उत्पादों से उसकी श्रेष्ठता के विषय में जानकारी दी जाती है। विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों के ज़रिये उपभोक्ताओं को समझाया जाता है कि उत्पाद विशेष का प्रतीक या प्रतिष्ठा मूल्य कितना ऊँचा है। कौन-कौन से अभिनेता, गायक, खिलाड़ी तथा विशिष्ट व्यक्ति उसका उपभोग करते हैं और अगर आप उसका उपभोग करेंगे, तो आपकी सामाजिक प्रतिष्ठा कितनी बढ़ जाएगी।

इतना धुँआधार प्रचार किया जाता है कि संभावित उपभोक्ता चौथी बात यानी क़ीमत के बारे में सोचना ही बंद कर दे और उत्पाद विशेष के उपयोग मूल्य की ओर ध्यान न दे। वह यह भी जानने की कोशिश न करे कि उसी की तरह के अन्य उत्पादों की क़ीमतें क्या हैं। दूसरे शब्दों में, वह अपने विवेक को ताक पर रखकर ख़रीदारी करे। ज़रूरत हो या नहीं, वह उत्पाद को प्राप्त करने में जुट जाए। अगर क्रय-शक्ति नहीं है, तो क्रेडिट कार्ड का सहारा ले और भविष्य में कभी क्रेडिट कार्ड जारी करने वाली कंपनी को भुगतान की सुविधा के सहारे वर्तमान को भुला दे। एक सर्वेक्षण के अनुसार दुनिया में विलास की वस्तुओं के सबसे बड़े कंपनी-समूह एलवीएमएच ने संभावित उपभोक्ताओं के विषय में कहा था कि हमने इतना ज़ोरदार अभियान हमेशा चलाया है कि उपभोक्ता क़ीमत के विषय में सोचे ही नहीं और उसके उत्पादों की ओर दौड़े आएँ। परिणामस्वरूप, उसने हमेशा 40 से 50 प्रतिशत मुनाफ़ा आमतौर से कमाया है।

किंतु, मंदी के वर्तमान दौर में उपभोक्ताओं का ध्यान उत्पादों की क़ीमतों से हटा पाना बड़ा ही कठिन हो गया है। जो बहुत धनी उपभोक्ता हैं, वे अब भी क़ीमतों की परवाह किये बिना ख़रीदारी करते हैं, मगर उपभोक्ताओं का एक बड़ा तबक़ा क़ीमतों को लेकर गंभीर चिंतन करने लगा है। इस तबके को उधार मिलने में कठिनाई हो रही है तथा बेरोज़गारी एवं क्रेडिट कार्ड कंपनियों द्वारा सख़्ती करने से बेफ़िक्र होकर ख़रीददारी कर पाना मुश्किल हो गया है। बर्नस्टाइन रिसर्च के लुका सोल्का के अनुसार विलासिता की वस्तुओं के बाज़ार की मुख्य आधारशिला यानी (साठ प्रतिशत कुल मांग) अपने से ऊपर के सामाजिक तबके में शामिल होने के महत्त्वाकांक्षी मध्यमवर्गीय लोगों की ख़रीददारी रही है। मंदी ने इस माँग पर बड़ा प्रतिकूल असर डाला है। संभावित ख़रीददार नहीं ख़रीद रहे या अपनी ख़रीदारी अनिश्चितकाल के लिए मुल्तवी कर रहे हैं। बेन एंड कंपनी जैसी कंसलटिंग फ़र्म के अनुसार वर्ष 2009 में विलासिता की वस्तुओं की बिक्री दस प्रतिशत (यानी 225 अरब डालर) घटेगी। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि ख़रीददारों की प्राथमिकताओं में दीर्घकालिक असर दिखेगा। एलवीएमएच के अध्यक्ष बर्नार्ड आरनॉल्ड के अनुसार प्रदर्शन करने तथा दूसरों पर धौंस जमाने की दृष्टि से शायद ख़रीददारी न होगी। जो भी हो, आने वाला समय ही बतलाएगा कि उपभोक्तावाद मंदी के वर्तमान दौर से सही सलामत निकल आता है या उसके चरित्र में गुणात्मक परिवर्तन होता है।

एम-112, साकेत, नई दिल्ली-110

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्पायन द्वारा प्रकाशित

कुँवरपाल सिंह की महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय पुस्तकें

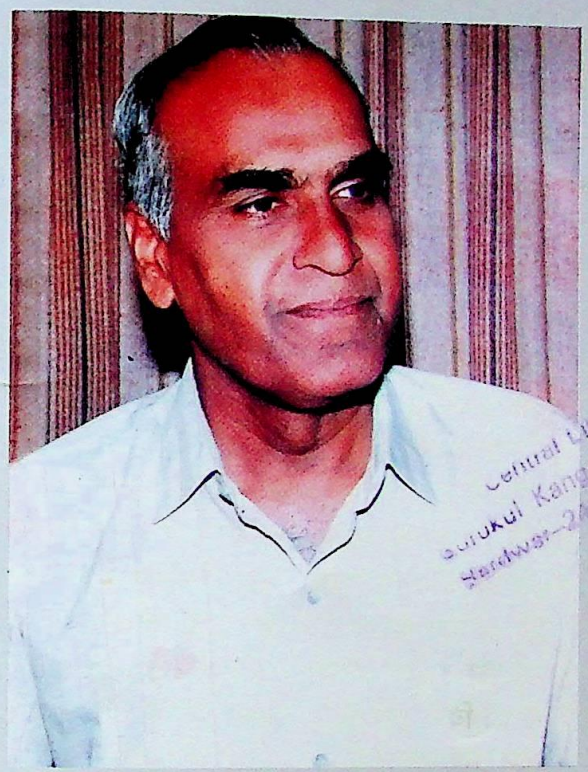

आगामी पुस्तकें

हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना	कुंवरपाल सिंह
समय संवाद	कुंवरपाल सिंह
लिए लुकाठी हाथ	कुंवरपाल सिंह
नवजागरण और हिंदी गद्य	कुंवरपाल सिंह-देवेंद्र गुप्ता

प्रकाशित पुस्तकें

1857 और जन प्रतिरोध	संपा. कुंवरपाल सिंह-नमिता सिंह	400.00
यशपाल : पुनर्मूल्यांकन	संपा. कुंवरपाल सिंह	600.00
राही और उनका रचना-संसार	संपा. कुंवरपाल सिंह	400.00
हिंदी उपन्यास : जनवादी परम्परा	सं. कुंवरपाल सिंह-अजय बिसारिया	225.00
मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी उपन्यास	कुंवरपाल सिंह	200.00

पुस्तकों के लिए लिखें–

शिल्पायन

10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
दूरभाष : 011-22821174, 9810101036
e-mail : shilpayan2005@yahoo.co.in, shilpayanbooks@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सृजन स्मरण

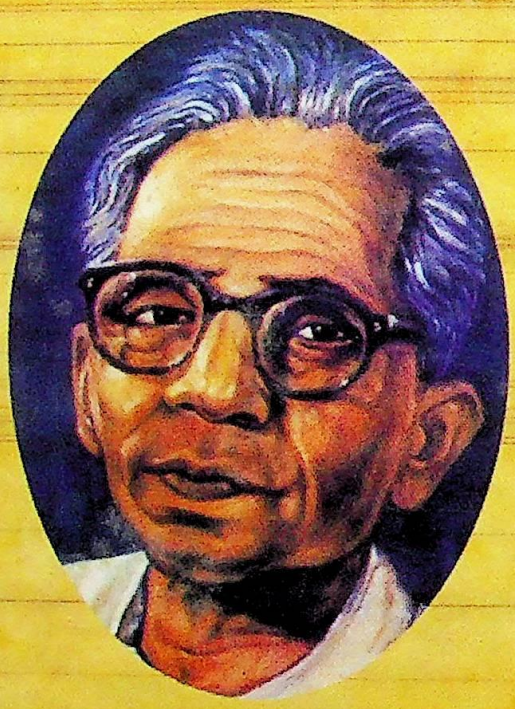

जो साहित्य सबसे उंचे दर्जे का है वह विद्वान के लिए उतना ही सुन्दर है
जितना जन-साधारण के लिये ।

जैनेन्द्र कुमार
(1905 - 1988)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित
28, एम.आई.जी., अवन्तिका-।, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्च, 2010 ■ बीस रुपये

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरवशाली विरासत के स्वर्णिम भविष्य का सृजन

सांस्कृतिक विरासत। हमारी अनमोल धरोहर। हम इंडियनऑयल के लोग इसे भली-भांति समझते हैं। इसलिए प्रति वर्ष, वर्ष भर ललित कला, संगीत और नृत्य में अपनी गौरवशाली परम्परा को पुनः परिभाषित करने तथा उसे नवीन रूप प्रदान करने के लिए हम अपने ढंग से विनम्र प्रयास करते हैं।

हमारा अपना... *अखिल भारतीय कवि सम्मेलन... इंडियनऑयल कला प्रदर्शनी...* इंडियनऑयल संगीत सभा के बैनर तले संगीत सभाएं... विरासत स्थलों की सुरक्षा करना तथा उन्हें प्रोत्साहित करना।

नई प्रतिभाओं का पोषण करने... संस्थाओं को सहायता प्रदान करने... कलात्मक खोज के व्यापक फलक को सहायता देने... समयातीत कला प्रदर्शनियों से - संगीत सभाओं तक, जहां सदियों पुराने रागों की नई व्याख्या की जाती है... हमारे दैनिक जीवन की सांस्कृतिक पच्चीकारी को सुरक्षित रखने और उसे समृद्ध बनाने के अभियान में शरीक है। एक विरासत में प्राप्त सम्पत्ति जो आने वाली पीढ़ियों के लिए हमारी स्नेहपूर्ण भेंट होगी।

इंडियनऑयल

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड

दृष्टि भविष्य की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
विभूति नारायण राय

सम्पादक
नमिता सिंह

सह-सम्पादक
□ अजय बिसारिया □ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

विशेष सम्पादकीय सहयोग : प्रो. प्रदीप सक्सेना
प्रबन्ध सम्पादक : राजीव श्रीवास्तव
सलाहकार : वेद शर्मा, बीकानेर
विशेष सहयोग : परवेज़ फ़ातिमा
शब्दांकन : बिसारत अली
मुखपृष्ठ : दिनेश कुमार शर्मा 'अज्ञात'
रेखांकन : निमिषा अग्रवाल, मुरादाबाद

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

वर्ष 26 □ मार्च, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय
28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com
Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; □ वार्षिक : 230/-; □ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 250/- □ आजीवन : 2000/- □ विदेशों में साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। चैक से भुगतान करने पर तीस रुपये अतिरिक्त जोड़कर भेजें।)

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

Gurukul Kangri Library, Gurukul Kangri University, Haridwar 249404 (U.K.)

इस अंक में

पाठक मंच/2
अपनी बात/5

शताब्दी स्मरण
अग्निसाक्षी स्त्री विमर्श का प्रथम उन्मेष/वी0पी0मु0 कुंज मेत्तर/8

लेख
नारी : प्राचीन धर्म ग्रंथ और इतिहास/ऋतु अग्रवाल/12
भक्तिकालीन मूल्य व्यवस्था और नारी की घुटन/ रवीन्द्र कुमार पाठक/17
आज़ादी और आत्मनिर्णय से लैस नई स्त्री के अक्स/रजनी गुप्त/42
समकालीन मलयालम महिला उपन्यासकार/के0एम0 मालती//62

कविताएँ
रंजना श्रीवास्तव की चार कविताएँ/25
सतू/उपेन्द्र कुमार/39
अंजना बख़्शी की कविताएँ/41
कविताएँ/रजनी मोरवाल/48
भोलानाथ कुशवाहा की कविताएँ/61
बलवाई औरतें/उषा यादव/66

कहानी
विषाद/शुभ्रा उपाध्याय/27
उसने कहा था/जयश्री राय/31
नयी माँ/देवी नागरानी/37

शख़्सियत-एक/दो
देविका रानी : जगमगाता सितारा/विजय शर्मा/46
हिलरी मैंटल : भेड़ियों का दरबार/विजय शर्मा/49

दृष्टिकोण
मैं अनारकली का सलीम.../मेजर रतन जांगिड़/51

देश-देशांतर : अरबी कहानी
फ़ाख़्ता एक औरत है/नुरुल ग़ामदी/53

पास-पड़ोस : मराठी कहानी
दुर्गावतार/हेमा नायक/ 56

पुनर्पाठ
कफ़न : स्त्री पक्षीय दृष्टि/सुधा बी./67

लघु कथा
जंगल/अनुपमा/4
बिवाइयाँ/अनुरूपा चौधुले/36
क़ीमती बात/सत्य शुचि/38
सपना और यथार्थ/अनुपमा/50
शामत के निशान/सत्य शुचि/52
रिश्तों का बाज़ार/सत्य शुचि/60
कड़ुवा सच/अनुपमा/

पुस्तक समीक्षा
कठपुतलियाँ/कमलेश सिंह/69
सहजता ही अनुभूति को कविता बनाती है/विनोद कुमार मंगलम/70
बड़े फलक पर जीवन का सांगोपांग विवेचन/प्रतीक श्रीअनुराग/71
दरकती ज़मीं पर खड़े रहने का संकल्प/मीरा श्रीवास्तव/72

सांस्कृतिक समाचार/74

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोफ़ेसर सिंह पर केंद्रित दिसंबर अंक उनके व्यक्तित्त्व व साहित्य का पूरा ज्ञान कराता है। प्रोफ़ेसर प्रदीप सक्सेना, श्री जीवन सिंह और प्रोफ़ेसर रामवीर सिंह जैसे मित्र और शिष्यों के निबंध और स्वयं श्री कुँवरपाल सिंह जी के संस्मरण व लेख इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। 'अपनी बात' के अंतर्गत आपने उनके सामाजिक व्यक्तित्त्व का सही चित्रण किया है। साहित्य में उनकी उपलब्धि का मूल्यांकन होता रहेगा।

कृष्ण बिहारी मिश्र, नई दिल्ली

कुँवरपाल सिंह के अब न होने का दुखद समाचार मिला। अलीगढ़ में जलेस के सम्मेलन के समय से लगभग 25 वर्षों का मेरा-उनका आत्मीय संबंध था। मैं सचमुच मर्माहत हूँ।

शंभुनाथ, कलकत्ता विश्वविद्यालय

उनका वैचारिक खरापन, उनकी प्रतिबद्धता, उनकी मनुष्यता सचमुच वंदनीय है। आज की दिग्भ्रमित नयी पीढ़ी के लिए वे एक आदर्श थे। उन जैसे व्यक्तियों का तो जैसे अकाल-सा पड़ रहा है। उनके चले जाने से बहुत कुछ खोया है साहित्य ने और समाज ने।

डा0 सावित्री डागा, जोधपुर

'वर्तमान साहित्य' का दिसंबर अंक मिला। के0पी0 की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह प्रयास अत्यंत सराहनीय है। उनके निधन का समाचार हृदय-विदारक था। नियति नटी का नृत्य कभी-कभी भयावह और असह्य हो जाता है। उसे सहने के लिए हम सभी अभिशप्त हैं। विपत्ति में धैर्य ही सहायक होता है। उनके संस्मरण समवेत एक पुस्तक रूप में आएँ तो भाई जान (मेरे लिए वह यही संबोधन प्रयोग में लाते थे) के साथियों और हिन्दी साहित्य का बड़ा हित लाभ होगा। आपका संपादकीय पढ़ते हुए नम आँखों को दिलासा देना कितना तो मुश्किल था। अस्तु....

ललित शुक्ल, नयी दिल्ली

जाने क्यूँ लगता रहा है कि हम लोगों की ज़िंदगी कुछ एक सी चल रही है। तुमसे बहुत प्रेरणा मिलती रही है। घबराने और हारने के लिए हमने संघर्ष का रास्ता नहीं चुना था। सरोकारों के मोर्चे पर निरंतर मुस्तैद जो कुछ हम से छूट रहा है। किनारा करके निकल लेने की प्रवृत्ति से अब निजात पाने का समय आ गया है। दोहरे मापदंडों से कुछ सुविधाएँ हम अवश्य अपनी झोली में डाल पाने में कामयाब हो जाते हैं, मगर क्या यह सुविधापरस्ती हमें उन सबमें भागीदार नहीं बनाती, जिन्हें हम कभी भी उस रूप में नहीं देखना चाहते...? कुँवर भाई का जाना यहीं अकेला कर रहा है... कुँवर भाई जैसे लोग देह को मात्र देह के लिए नहीं जीते, देह को साधन बना उन लक्ष्यों को अर्जित करने के लिए जीते हैं जो मनुष्य को उसके बुनियादी अधिकारों से ही नहीं लैस करते, उसे मनुष्यता की संवेदना से भी आवेष्टित करते हैं, ताकि वह अपने लिए ही नहीं—अन्यों के लिए भी जी सके। जीवन भर वे अन्यों के लिए जिये। जीते हुए ही चले गये।

चित्रा मुद्गल, दिल्ली

तुम तो बहुत हिम्मती और बहादुर हो। इस दुख की घड़ी में भी तुम अकेली नहीं हो। हम सब तुम्हारे साथ हैं।

अवध नारायण मुद्गल, दिल्ली

इस कठिन समय में आपको यही कहना चाहता हूँ कि हम सब आपके दुख में साथी हैं। कुँवरपाल जी से चंडीगढ़ में मिला था, तो हतप्रभ रह गया था कि इतनी उम्र में भी इतनी प्रतिबद्धता के साथ जुटे हुए हैं और वह दस साल पहले की बात है। अपने मुश्किल वक़्त में उनके सरीखे व्यक्तित्त्व से मैंने मन ही मन प्रेरणा ली है और आगे भी लेता रहूँगा।

लालू, हैदराबाद

'वर्तमान साहित्य' का कुँवरपाल सिंह पर केंद्रित अंक मिला। वे गिने-चुने उन वरिष्ठ लेखकों-समीक्षकों में थे, जो नयी पीढ़ी को ज़्यादा प्रेरित एवं उत्साहित करते थे। वे सिर्फ़ शब्दजीवी या मसिजीवी नहीं थे, बल्कि कर्म में भी यक़ीन रखते थे। वे सचमुच आज के काइयाँ और क़ायर समय के बीच प्रतिरोध की सही ज़मीन तलाश करने वाले आदर्श व्यक्तित्त्व थे। उनकी कथनी-करनी में एकता थी। साहित्य उनके लिए परिवर्तन का माध्यम था। वे निर्मल मन वाले सरल-सहज इन्सान थे। मुझसे उनकी जब मुलाक़ात हुई—लखनऊ या दिल्ली में, वे मेरी हौसला अफ़ज़ाई करते रहे। मैं बड़भागी हूँ कि डॉक्टर साहब के छायादार व्यक्तित्त्व की छाँह मुझे भी मिली है।

चंद्रेश्वर, चिनहट, लखनऊ

'वर्तमान साहित्य' का दिसंबर अंक। यह अंक डा0 कुँवरपाल सिंह के व्यक्तित्व और साहित्य की बानगी देने में पूर्ण सक्षम है। प्रमुख लेखकों ने आत्मीय भाव से उनका स्मरण किया है। जनवादी लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रचनाकारों के लिए वे सदैव प्रेरणास्पद बने रहेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

डा0 वेदप्रकाश अमिताभ, अलीगढ़

बहुत दुख हुआ, कुँवरपाल जी का जाना सुनकर। साहित्य और चिंतन की दुनिया ने आम आदमी के पक्ष में बिना किसी लाग-लपेट के, खरी-खरी लिखने, बोलने वाले एक प्रतिबद्ध योद्धा को खो दिया। गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़ ने आत्म कथा में लिखा है: 'जीवन वह नहीं होता जो कोई जीता है, बल्कि वह होता है जिसे कोई याद रखता है।' कुँवरपाल जी आज भी हमारे बीच हैं, और रहेंगे।

उन्मेष कुमार सिन्हा, गोरखपुर

'वर्तमान साहित्य' के पाठकों को परम आदरणीय कुँवरपाल सिंह जी की अनुपस्थिति जो रिक्तता लायेगी, उसका भर पाना शायद संभव न हो। अब आपसे उम्मीद है। हम सब आपके साथ हैं।

भोलानाथ कुशवाहा, मिर्ज़ापुर

कुँवरपाल सिंह जी जबर्दस्त शख़्सियत के धनी थे। वे हमारे जैसे लोगों के लिए प्रकाश स्तंभ थे। 'वर्तमान साहित्य' में सबसे पहले मैं 'समय संवाद' फिर 'अपनी बात' ही पढ़ता हूँ। विशेषकर वे इन दिनों उच्च शिक्षा के गिरते स्तर, व्यवसायीकरण एवं निजीकरण पर बहुत सटीक लिख रहे थे। बस कहना पड़ रहा है.... 'बड़े शौक से सुन (पढ़) रहा था ज़माना तुम्हें, तुम्हीं सो गए दास्ताँ कहते-कहते। (लिखते-लिखते)'

मधुमास चन्द्र, ग्वालियर

वर्तमान साहित्य' के संपादकीय में निजीकरण, भूमंडलीकरण, सामाजिक असमानता और अंतर्विरोध, राजनीतिक विद्रूपता और भाषायी संक्रमण के खिलाफ़ सजग और सक्रिय प्रतिवाद रचने वाले कुँवरपाल सिंह ने अपने पाठकों को जागरुक किया। आप सामाजिक-सांस्कृतिक संगठनों में भी सक्रिय रहे और उन संगठनों के साथ मजदूरों की समस्याओं एवं सांस्कृतिक मुद्दों आदि पर अपनी आवाज़ बुलंद की। मनुष्य की आज़ादी, कौमी-एकता और सांप्रदायिक सद्भाव के वे प्रबल पक्षधर थे। मुझे शिवमंगल सिंह सुमन की वह पंक्तियाँ याद आती हैं-

"तुम जीवित थे तो सुनने को जी करता था।
तुम चले गये तो सुनने को जी करता है।।
जब सिमटे थे तो साँसें सहमी थी।
जब बिखर गये तो चुनने को जी करता है।।"

डा0 अब्दुल लतीफ
रामपुर (उ0प्र0)

कुँवरपाल सिंह जी का निधन ऐसे व्यक्तित्व से मरहूम हो जाना है जो उन जैसे विरल इन्सान में दीखता मिलता था। राही मासूम रज़ा ने यूँ ही 'आधा गाँव' उन्हें अपने 'पूरे दोस्त कुँवरपाल सिंह' को लिखते हुए समर्पित नहीं किया था। उनका न रहना हम सब की समान रूप से क्षति है। उनसे समृद्ध सामाजिकता की क्षति है।

बंधु कुशावर्ती, लखनऊ

भाई कुँवरपाल सिंह जी के निधन से साहित्य की जो क्षति हुई है वह अपूरणीय है। वे प्रखर चिंतक थे, अपने सिद्धांतों के प्रति समर्पित। उनका कार्य निरंतर आगे बढ़ता रहे, यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

हिमांशु जोशी, दिल्ली

'वर्तमान साहित्य' में अब कुँवरपाल सिंह का नाम संपादक के स्थान पर नहीं हैं, यह देखकर बहुत व्यथित हूँ। वर्तमान साहित्य में सर्वप्रथम आप का संपादकीय और स्व0 कुँवरपाल सिंह का 'समय संवाद' पढ़ता था, बाद में अन्य सामग्री। अभी गत अक्टूबर में ही अभिनंदन किया गया और अगले महीने ही वह हमें छोड़कर चले गये, यह कितने दुख की बात है।

आप लोगों ने वर्तमान साहित्य द्वारा जहाँ सांप्रदाकिता और जातीयता से देश बचाया, वही दलितों, महिलाओं और पीड़ितजनों को बलप्रदान कर उनका साहस बढ़ाकर बहुत बड़ी देश सेवा की है। इसके लिए आप लोग प्रशंसा के पात्र हैं। मैं समझता हूँ आपके साथ पाठकों का बहुत बड़ा समूह है सब की शुभ कामनाएँ आप से साथ हैं।

डा0 माता प्रसाद,
पूर्व राज्यपाल, अरुणाचल प्रदेश

डाक्टर साहब के व्यक्तित्व से जुड़ी अनेक छवियाँ सतह पर प्रतिबिंब की तरह-उतरा रही हैं। पिछले वर्षों जब कभी उनसे बातें हुईं, उन्होंने जिस पूर्वाग्रह रहित, मुक्त भाव से मेरे लेखन और जीवनशैली पर दाद दी, मैं अभिभूत और हैरान, दोनों हुई। एक ख़्यातिनाम समीक्षक होने के बावजूद किसी आग्रह-दुराग्रह से पृथक, पूरी तरह पारदर्शी और समदर्शी। उनकी बातों में, किसी की भी चर्चा करते हुए किसी वनावट या कृत्रिमता की बू नहीं हुआ करती थी।

आज से साढ़े तीन दशक पहले 'सारिका' में मेरी पहली कहानी की स्वीकृति के बाद अलीगढ़ में हिन्दी के साहित्य जगत् से पहले परिचय के रूप में आप और डॉक्टर कुँवरपाल सिंह जी ही मुझे मिले थे।

मेरी कहानी 'जीजी' की स्वीकृति कमलेश्वर जी ने अपने हाथों लिखकर भेजते समय 'संयोग से' अपने अलीगढ़ आने की सूचना भी दी थी और यह भी लिखा था कि उनके कार्यक्रम स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि की जानकारी मैं उनके आत्मीय मित्र डा0 कुँवरपाल से ले लूँ। पता ठिकाना लेकर हम पति-पत्नी जब आपके घर पहुँचे थे तो चैत की उस शाम आपकी आयताकार छत पर बड़ी फुर्ती और मुस्तैदी से, पानी के छिड़काव के बाद दरियां चादरें बिछायी जा रही थीं। एक के बाद एक बड़े-छोटे रचनाकार अपनी अपनी रचनाएँ लिये चले आ रहे थे और डाक्टर साहब पुरजोर गर्मजोशी और बेतकल्लुफी से हर आने वाले का स्वागत कर रहे थे, कुशलमंगल पूछ रहे थे। एकाध ने धीमे से उनके पास आकर शायद अपनी रचना कमलेश्वर तक पहुँचाने का अनुरोध किया था तो कुँवरपाल जी ने विशिष्ट पंछाही अंदाज में उसे प्रोत्साहित करते हुए कहा था—'पहिले पंचन में पढ़ौ।'

मुझे यह भी याद है कि आप उसी छत की एक तरफ अपने छोटे बच्चे को कंधे पर थपकते हुए टहल-टहल कर सुला रही थीं और अभ्यागतों के सारे स्वागत सत्कार का भार डाक्टर साहब स्वयं निबट रहे थे।

यद्यपि हम शिरकत नहीं कर पाये थे उस गोष्ठी में कमलेश्वर जी से मिल कर जल्दी ही उठ आना पड़ा था किंतु माहौल की वह सहजता और आत्मीयता हमारे साथ लगी चली आई थी। आज आपसे कह कर अच्छा लग रहा है, वरना तो संवेदना के बहुत सारे शब्द अब बेमानी लगने लगे हैं।

सूर्यबाला, मुंबई

मैं मिला हूँ

मैं अजीब एक, पहचान से मिला हूँ!
मैं गुज़रे हुए इन्सान से मिला हूँ!!
वो ख़ामोश नजर आता है, आज मगर,
मैं उसकी हर बात, हर ज़बान से मिला हूँ!
जिसने सजाया हो, गुलशन दोस्तों से,
मैं ऐसे एक, बाग़बान से मिला हूँ!
आ जाती जो, आफत कभी शहर में,
मैं उस मददगार, मेहमान से मिला हूँ!
न उम्र, न वक़्त ने, रोके कभी कदम,
मैं उस एक, नौ जवान से मिला हूँ!
वो हारा न कभी, हिम्मत और हौसला,
मैं बेदाग़ उस, ईमान से मिला हूँ!
ज़रासा क्या पढ़ा है उसके बारे में,
मैं उसकी हर एक दास्तान से मिला हूँ!
क्या कहूँ मैं, कैसी ज़िंदगी थी उसकी,
कभी दरिया तो, कभी चट्टान से मिला हूँ!
गूँजती है, कुँवरपाल की सदाएँ जहाँ पर,
मैं उस शहर, उस गली उस मक़ाँ से मिला हूँ!

कांबले महेन्द्र कुमार निवृत्तीराव, नांदेड, महा

लघुकथा

जंगल

अनुपमा

हिरणी जवान हो चली थी। अपनी अद्‌भुत सुंदरता को देखकर वह सिहर उठती थी। उसके मित्रगण उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते थे। उसका मन कई तरह की उमंगों और उत्साह से भर उठता। वह यहाँ-वहाँ दौड़ती-फिरती, मस्ती में घूमती रहती। उसे चारों ओर सिर्फ़ अपना ही साम्राज्य प्रतीत होता। धरती की हरी-भरी घास का स्पर्श, उन्मुक्त आकाश सभी उसे अपनी तरफ़ आकर्षित करते प्रतीत होते। सुंदर-सुंदर सपनों की रुपहली दुनिया में वह जी रही थी कि अचानक एक दिन... उसने कुछ भेड़ियों को देखा... वे कुछ बातें कर रहे थे कि अमुक हिरणी को मैं खाऊँगा... दूसरा बोला... नहीं मैं खाऊँगा। चारों तरफ़ भेड़ियों की गुर्राने की आवाज़ें... हिरणी सहम गयी.. उसकी स्वतंत्रता में सेंध लगाने कोई आ पहुँचा था। वह तेज़ रफ़्तार से भागी। जंगल आशियाने में आकर ही दम लिया। अब वह न बाहर निकलती, न कुलाँचें भरती। बस टुकुर-टुकर आसमान निहारा करती। धरती, पेड़-पौधे, आसमान, नदिया का शीतल जल, झरने—जो सब कल तक उसके अपने थे, वे अब अजनबी हो चुके थे। चारों तरफ़ आतंक के साये लहरा रहे थे। उसके साथ था तो अब सिर्फ़ भय—अपनी सुरक्षा का।

484, अजाद नगर, निरंकारी भवन के पीछे, कान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

"औरतें अपने पति की आज्ञा के बिना घर से बाहर नहीं निकल सकतीं। अपने काम, शिक्षा अथवा डॉक्टर के पास जाने के लिए भी उन्हें अपने पति की आज्ञा लेना ज़रूरी है। अपने पति की यौनेच्छा को वे कभी इन्कार नहीं कर सकतीं...."

यह नया क़ानून सात साल पहले स्थापित नये इस्लामी गणराज्य अफ़ग़ानिस्तान का है। पिछले वर्ष मार्च में, चुनाव से पहले अफ़ग़ानिस्तान के राष्ट्रपति हामिद करजई ने इस नये क़ानून को तुरत-फुरत पार्लियामेंट से पास करके संवैधानिक जामा पहनाने की कोशिश की है। यह नया क़ानून पति को अधिकार देता है कि अगर उसकी पत्नी कभी अपने पति की इच्छानुसार सेक्स करने से इन्कार करे, तो वह उसे भूखा रखकर सज़ा दे सकता है। यहाँ परस्पर संबंधों में पत्नी की रज़ामंदी का कोई अर्थ नहीं है। बिल में प्रावधान है कि तलाक के बाद बच्चों पर अधिकार सिर्फ़ पिता अथवा दादा का होगा। माँ को इस अधिकार से वंचित कर दिया गया है। दरअसल, राजनीति के दाँव-पेंच और सत्ता के खेल में भी अंततः बलि स्त्री की ही होती है। अफ़ग़ानिस्तान में तालिबानी हिंसा थम नहीं रही है। अमरीकी सेना की उपस्थिति और उनके द्वारा होने वाले तालिबान के संहार के साथ-साथ निर्दोष नागरिकों का मारा जाना वहाँ के लोगों में उत्पन्न रोष को लगातार बढ़ा रहा है। अतः अपनी हिलती हुई सत्ता की मज़बूती के लिए कट्टरपंथी धार्मिक समूहों के साथ समझौते के प्रयास चल रहे हैं। यह नया क़ानून शिया समुदाय के विवाह, तलाक और उत्तराधिकार के क़ानूनों को अधिक संकीर्ण बनाता है। अफ़ग़ानिस्तान में शिया समुदाय कुल आबादी का दस प्रतिशत है। शिया धार्मिक नेताओं की इच्छानुसार उन्हें अपने अलग 'पर्सनल लॉ' में इस नये क़ानून द्वारा बदलाव करने की छूट दी गयी है। तालिबानी शासन की समाप्ति को अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं, जिनका नृशंस स्त्री-विरोधी रूप सबकी स्मृतियों में दुःस्वप्न की तरह बैठा है। नये राष्ट्र के पुनर्निर्माण हेतु संविधान ने स्त्री-पुरुष को समान अधिकार दिये, लेकिन अब स्त्री-विरोधी इस नयी शुरूआत का कोई अंत नहीं होगा।

पड़ोसी पाकिस्तान में, विशेषरूप से तालिबानी आतंकवादियों के कब्ज़े वाली स्वात घाटी से तो ऐसी स्त्री-विरोधी घटनाओं की सूचनाएँ देर-सबेर दुनिया के पटल पर आती रही हैं। पिछले वर्ष वहीं की एक ख़बर टेलीविज़न पर लगातार प्रसारित होती रही, जिसमें सरेआम बुर्के में लिपटी एक महिला को कोड़े लगाये जा रहे थे और भाई कहे जाने वाले दो मर्दों ने उसके हाथ और पैर पकड़ रखे थे। उसने तथाकथित रूप से स्वात घाटी के तालिबानी फ़रमान का उल्लंघन किया था, जिसके अनुसार कोई स्त्री अपने पिता, पति अथवा भाई के अलावा किसी अन्य पुरुष के साथ घर से बाहर नहीं निकल सकती।

कई साल पहले हमारे यहाँ राजस्थान की भँवरी देवी के समान पाकिस्तान की मुख़्तारन माई का प्रसंग भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संवेदनशील समाजों को बेचैन कर गया था। वहाँ दो क़बीलों के आपसी संघर्ष का ख़ामियाज़ा मुख़्तारन माई को झेलना पड़ा, जिसके साथ क़बीलाई पंचायत ने सामूहिक बलात्कार का फ़रमान जारी किया था।

पाकिस्तान में तालिबानी समूहों का प्रभाव लगातार बढ़ रहा है। वे अब स्वात घाटी से आगे आकर मुख्य क्षेत्र के बड़े शहरों में अपना प्रभाव स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। नतीजा, वहाँ कट्टरपंथी समूहों का प्रभाव शहरों की मध्यवर्गीय जनता पर भी पड़ रहा है। अपने प्रभाव-क्षेत्र के लड़कियों के स्कूल तो वे पहले ही उड़ाकर उजाड़ चुके हैं। अब उनके प्रभाव से पुरुष-समाज, जो लिंग-आधारित असमानता को धर्मसम्मत ठहराता है, पढ़-लिखकर आगे बढ़ने की इच्छा रखने वाले स्त्री-समाज को फिर से बुर्के में या चादर में लपेटकर बंद कर देना चाहता है। इसी स्वात घाटी से कुछ महीने पहले ख़बर आयी थी कि वहाँ पत्थर मार-मार कर तीन लड़कियों को क़ब्र में ज़िंदा दफ़न कर दिया गया। कारण, कि वे अपने लिए तयशुदा आदमियों से शादी नहीं करना चाहती थीं और ख़ुद अपनी पसंद के अनुसार निर्णय लेना चाहती थीं।

तुर्किस्तान में, जहाँ अपेक्षाकृत अधिक खुला समाज है, वहाँ की ख़बर ने भी स्तब्ध कर दिया। वहाँ एक गड्ढा खोदकर और हाथ-पैर बाँधकर ज़िंदा दफ़ना दिया गया था। सूत्रों द्वारा ख़बर मिलने पर, जब उसकी लाश का पोस्टमार्टम हुआ तो, उसके फेफड़ों और पेट में मिट्टी भरी हुई थी, जो सबूत है कि दफ़नाये जाते समय वह पूरे तौर पर ज़िंदा थी। लगभग दो महीने पहले घटी इस घटना के आरोपी उसके पिता और दादा को गिरफ़्तार कर लिया गया, जिन्होंने कहा कि वह बाहर आती-जाती थी और लड़कों से बात करती थी।

स्त्रियों के प्रति होने वाली ये हिंसक घटनाएँ अपने यहाँ भी कम नहीं हैं। गाँव की पंचायतों में आये दिन ऐसे फ़रमान जारी होते रहते हैं। स्त्रियों के प्रति अमानवीय और हिंसक रवैये के मामलों में विभिन्न धार्मिक समूहों में अद्‌भुत एकता है और उनके फ़ैसले एक दूसरे से बढ़-चढ़कर होते हैं। कुछ बरस पहले ससुर द्वारा बलात्कार की शिकार रानी के लिए फ़रमान जारी किया गया कि अब वह पति को छोड़ दे और ससुर की पत्नी बनकर रहे। युद्धबंदी के रूप में लौटे मुहम्मद आरिफ़ की पत्नी गुड़िया को हुकुम मिला कि अपने पति को छोड़कर फिर से पहले पति के साथ रहे, अंततः गुड़िया ने मृत्यु के बाद ही अपनी यातनाओं से मुक्ति प्राप्त की। हरियाणा में हाल ही में सगोत्र विवाह के अपराध में विवाहित युगल के गाँव वापस लौटने पर लड़के की गोली मारकर हत्या कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी गयी। गाँवों में पंचायतों द्वारा ऐसे कितने ही पति-पत्नियों को अलग होने और भाई-बहन के रूप में रहने के राक्षसी फ़रमान जारी होते रहते हैं, कितने ही प्रेमियों की सरेआम हत्या कर दी गयी है।

क्या ये घटनाएँ नये समय की पहचान बन रही हैं? क्या यह नये बदलते समाज की त्रासदी है? क्या पहले का समय—सौ-पचास साल पहले का समय—ऐसी हिंसा से मुक्त था? इन घटनाओं के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की ज़रूरत है। इन सवालों के साथ ही यह सवाल भी उठता है कि हमारी आज की व्यवस्था, चाहे वैश्विक हो अथवा स्थानिक हो; कितनी प्रतिरोधात्मकता पैदा कर पा रही है और अपने प्रतिरोध के प्रयासों में कितनी सफल हो पा रही है।

हमारा समय विरोधाभासों का समय है, विपरीत संस्कृतियों के संघर्षों का समय है। वैश्विक स्तर पर वातावरण भूमंडलीकृत हो रहा है। अर्थव्यवस्था में पूँजी और मानव-संसाधन के रूप में श्रम का वैश्वीकरण अब निर्बाध रूप से गतिमान है। चाहते अथवा न चाहते हुए भी पहली और तीसरी दुनिया के देश इसका हिस्सा बन चुके हैं या बनते जा रहे हैं। यह भूमंडलीकृत व्यवस्था नये उपनिवेश बना रही है और नये बाज़ारों की व्यवस्था के साथ नयी संस्कृति का निर्माण भी कर रही है। एक उपभोक्तावादी समाज का निर्माण कर रही है। यह उपभोक्तावाद हमारी प्राथमिकताएँ बदल देता है, हमारी जीवन-पद्धति को नितांत नये धरातल पर स्थानांतरित कर देता है। हमारे एक परिचित, जो गाँव में रहते हैं और खेती बाड़ी करते हैं; उन्होंने एक आपबीती सुनायी। उनका ट्यूब वैल ख़राब हो गया था और उसे ठीक करवाना था, जिसमें ख़ासे पैसे लगने थे। उन्हीं दिनों घर के अन्य सदस्यों, मसलन बेटा, बेटी, बहू आदि की फ़रमाइश थी कि इस पुराने टी0वी0 की जगह नया रंगीन और बड़े पर्दे वाला टी0वी0 खरीदा जाए। उनके ऊपर जब नये टी0वी0 के लिए दबाव पड़ा, तो उन्होंने अपने परिवारवालों के सामने सवाल रखा कि वे तय करें कि पहले क्या किया जाए—ट्यूबवैल ठीक कराया जाए या नया टी0वी0 लाया जाए फिलहाल वे दोनों काम एक साथ करने में असमर्थ हैं। उन्हें धक्का लगा—जब परिवारीजनों ने एक स्वर में अपनी राय दी कि पहले टी0वी0 ख़रीदा जाए, ट्यूब वैल तो होता रहेगा.... काम तो कैसे न कैसे चल ही रहा है....

तो यह है उपभोक्तावादी संस्कृति, जिसे बाज़ार निर्मित करता है। बाज़ार तय कर देता है कि हमें रोटी नहीं मिलती, तो हम केक खाएँ, बिस्कुट खायें, मैकडॉनल्ड का चिकन बर्गर खाएँ। प्यासे हैं तो कोक-पेप्सी पिएँ। यह बाज़ार हमें यह भी बताता है कि हम कैसे कपड़े पहनें। स्मार्ट लड़की वह, जिसके पीछे लड़के आएँ। स्मार्ट लड़का वह, जिसकी मोटरसाइकिल पर नाममात्र के कपड़े पहने अनजान लड़की कूदकर बैठ जाए... और यह स्मार्टनेस कहाँ से आएगी ? आफ़्टर शेव लोशन से, शैंपू से, पाउडर से, गोरा बनाने वाले सौंदर्य-प्रसाधनों से...विज्ञापन में दिखने वाले ये लड़कियाँ या लड़के 'बहन जी' या 'भाई जी' टाइप नहीं होते। वे भी शक्ल-सूरत, हाव-भाव, बोली-पहनावे से वैश्विक होते हैं। अब छुट्टी मनाने के लिए लोग हिन्दुस्तान के पर्यटन-स्थलों —नैनीताल, शिमला, मनाली, ऊटी जैसी जगहों पर अनायास ही नहीं चले जाते। अब होली डे रिसोर्ट उनके कार्यक्रम तय करते हैं जो हिन्दुस्तान के अलावा सिंगापुर, मलेशिया, दुबई आदि कहीं भी हो सकते हैं। अब परिधान ब्रांडेड और डिजायनर ही होते हैं, जो स्टेटस-सिंबल हैं। विज्ञापनों के ज़रिये अब ऐसा लगता है कि लक्ज़री कारें आमतौर पर लोगों को उपलब्ध होती हैं। इनको इस्तेमाल करने वालों के चेहरे और उनका परिवेश हिन्दुस्तानी नहीं होते, बल्कि ग्लोबल होते हैं। चेहरा-मोहरा, कपड़े और बातचीत से पता ही नहीं चलता कि उपभोक्ता देसी है या विदेशी है। यह ग्लोबल संस्कृति सबको एक सूत्र में बाँधती है। यही ग्लोबल संस्कृति स्त्री-पुरुष संबंधों को भी तय करती है। वह लड़की बन जो बाज़ार की उपभोक्ता न बन सके। विज्ञापित चेहरों की तरह सज-सँवर न सके। लड़कों के साथ दोस्तियाँ न कर सके; फ़िल्मों और सीरियलों में जो नायिकाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं, उनकी तरह का रहन-सहन और व्यवहार न कर सके। इसी तरह, वह नौजवान क्या, जो इस चमकते-दमकते बाज़ार का हिस्सा न बन सके। मोबाइल तो चलो अब सामान्य है, चमचमाती मोटर साइकिल न चला सके। उस पर लड़कियों को बिठाकर फर्राटा न भर सके, यह अलग बात है कि बेकारी की स्थिति में पेट्रोल खरीदना भी उनके लिए एक समस्या हो। बाज़ार ने हमारे सामने नौजवान पीढ़ी के सामने आधुनिकता के प्रतीक प्रस्तुत कर दिये हैं, जो जाने-अनजाने हमारे सोच का हिस्सा बनकर उनको संचालित कर रहे हैं।

लेकिन, नये समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण आयाम हित के नये अवसर भी हैं। कमोबेश हर समाज के लड़के और ख़ासतौर से लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। 1990 तक जहाँ स्त्री-साक्षरता की कुल दर 40 प्रतिशत थी, 2007 में 55-56 प्रतिशत तक पहुँच चुकी थी। हालाँकि सरकारी योजनाओं की यह आंशिक सफलता ही है और इस सफलता में कुछ जेनुइन समाजसेवी संस्थाओं का सहयोग भी है। इस शिक्षा ने लड़कियों में आत्मविश्वास भी पैदा किया है; उन्हें बाहरी दुनिया के क्रियाकलाप, उनके रंग-रूप और गति से भी परिचित कराया है। उन्हें घर से बाहर निकाल कर नये रास्तों की पहचान करायी है और यथासंभव अपनी क्षमता और योग्यता की ओर उनका ध्यान भी दिलाया है। समाज के अन्य घटकों के साथ वे भी आज के आर्थिक संकट से रू-ब-रू हो रही हैं। आज का आर्थिक संकट, विशेषरूप से मध्य और निम्न मध्यवर्ग को आहत कर रहा है, उन्हें किसी न किसी हद तक तोड़ रहा है। ऐसे में ये पढ़ी-लिखी लड़कियाँ अर्थोपार्जन कर परिवार का संबल बन रही हैं और साथ ही अपने भाग्य, अपने जीवन की नियामक भी बन रही हैं। आख़िर, आत्मनिर्भर लड़की को यह हक़ तो होना ही चाहिए कि अगर एक क्षेत्र में जीवन की राह चुन सकती है, तो भविष्य की ज़िंदगी का रास्ता भी चुन सके।

लेकिन, इस भूमंडलीकृत समाज की अपने शर्तें भी हैं। बिना बाज़ार में वही खड़ा हो सकता है, जिसके पास धन है। बिना में पैसा लिए आप बाज़ार में प्रवेश कैसे कर सकते हैं? इसलिए यह बाज़ारवादी संस्कृति उस समाज के लिए है, जिसके पास है... अब पैसा नहीं है, तो कमाओ पैसा... चोरी करो... डाको... घर-संबंधियों का गला रेतो... फ्रॉड करो... खुद को डालो... बहरहाल, कुछ भी करो। राखी सावंत कहती है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए सब कुछ करना पड़ता है। मैं अगर कपड़े नहीं उतारूँगी, तो कोई और उतारेगी... वह ले जाएगी क़ीमत... फिर मैं क्यों नहीं...? आख़िर बाज़ार तो सभी को ललचाता है। गाँव-क़स्बे की एक लड़की को भी वैश्विक संस्कृति का हिस्सा बनने का सपना देता है। लेकिन, वस्तु स्थिति क्या है? यह विलास, यह भोग, यह 'सुंदर-सहज' जीवन... जो बाज़ार का हिस्सा है, वह हर एक के वश में नहीं, हर एक की पकड़ में नहीं। बहुसंख्यक समूह इस वैश्विक बाज़ार की परिधि से बाहर है। सौंदर्य-प्रसाधन, गोरा बनने के उपाय, परिधान जैसे उपादान तो कैसे न कैसे संभव हो जाएँगे, लेकिन बाज़ार तो बहुत बड़ा और चमकीला है... वह सबकी पहुँच से बाहर होता है।

इस बाज़ार में जो समूह खर्च करने की स्थिति में नहीं होते, वे बाज़ार से निकाल दिये जाते हैं या स्वतः बाहर हो जाते हैं। यह बाज़ारवादी संस्कृति एक ओर अंदर का दरवाज़ा खोलती है, तो दूसरी ओर से लगातार एक बड़े समूह को अपनी परिधि से बाहर भी धकेलती रहती है। एक बड़ा जनसमूह है, जो बाज़ार की इस परिधि में प्रवेश पाने में असमर्थ है।

अब यह बाहर धकेला हुआ समूह क्या करेगा? वैश्विक संस्कृति के सामने अब मुक़ाबले के लिए परंपरागत सांस्कृतिक परिवेश अपना स्थान पुनः निर्धारित करने लगता है और दो संस्कृतियाँ आमने-सामने होने लगती हैं। अब बाज़ार के मुक़ाबले हमारे आत्मसम्मान और जातीय गर्व को बनाये रखने के लिए हमारी परंपरा, हमारी 'संस्कृति' और हमारे लोग (जातिगत और क्षेत्रगत) हमारा संबल बनते हैं, इसलिए, आज के समय में जातीय अस्मिता और अपनी धार्मिक पहचान के सवाल प्रमुख हो रहे हैं। हमारी विशिष्ट पहचान बनते हैं।

यह अकारण नहीं है कि एक ओर शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है, लड़कियाँ अपनी खिड़कियों के झरोखे से बदलते, रंगबिरंगे, हंसते-खिलखिलाते, कोलगेटी मुस्कान से लकदक एक नये संसार को देख रही हैं। घर से बाहर निकलने पर उनके सपने उन्हें उस नयी दुनिया की ओर खींचने लगते हैं, तो दूसरी ओर प्रतिबंधित क्षेत्र के समूह उन्हें खींचकर फिर भीतर ले जाना चाहते हैं।

तालिबानी इसीलिए पश्चिम की इस नयी संस्कृति पर भी हमला करते हैं। धार्मिक समूह, परंपरागत धर्म, नैतिक मूल्यों और पुरानी संस्कृति से और मज़बूती से लिपटना चाहते हैं। कौन-सी नैतिकता, कौन-सी संस्कृति, कौन-सी परंपरा...? वही, जो सर्वत्र स्त्री-विरोधी है, स्त्री के प्रति अन्यायपूर्ण है और अमानवीय है, हिंसक है। 'नया ज़माना हमारी औरतों को ख़राब कर रहा है...' यह हर परंपरागत जातिवादी और धार्मिक समूह की शिकायत है। इसी परंपरागत नैतिकता का, धार्मिकता का पाठ हमारे धर्मगुरु नये सिरे से पढ़ा रहे हैं, जो ख़ुद हर तरह से विलासिता और भोग के साधनों से घिरे रहते हैं।

लेकिन, इस परिदृश्य के बाद एक तथ्य संतोष देता है और उत्साह में वृद्धि करता है। स्त्री-हिंसा और उसे पुनः गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ने का विरोध भी निरंतर हो रहा है। स्थानीयता के साथ-साथ विरोध का वैश्विक स्वर भी निर्मित होता जा है। पाकिस्तान में महिला-संगठनों ने अभी अपना तेज बरकरार रखा है। तेज तर्रार लेखिकाएँ मुखर हैं और स्त्री मुद्दों को लगातार उठा रही हैं। शहरों में तालिबानी संकीर्णता के प्रभाव का अंदेशा उन्हें अपने प्रतिरोध में और अधिक सक्रिय बना रहा है। अफ़ग़ानिस्तान की सीनेट में महिला प्रतिनिधियों ने नये बिल का ज़ोरदार विरोध किया और उसमें यथा संभव परिवर्तन का प्रयास जारी रखा। हालाँकि इस दौरान एक महिला सीनेटर को अपनी जान भीं गंवानी पड़ी। तुर्किस्तान में हत्यारे बाप और दादा को गिरफ़्तार करके मुक़दमा चलाया जा रहा है। हमारे यहाँ भी पंचायतों के इन फ़तवों के ख़िलाफ़ राज्य सरकारें सख़्ती से पेश आ रही हैं। हरियाणा की अभी हाल की घटना में लड़की द्वारा पुलिस से शिकायत करने पर पंचायत को अपना निर्णय वापिस लेना पड़ा और सताये गये उसके ससुर से भी माफ़ी माँगनी पड़ी।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को और उदय हो रही इस नयी बाज़ारवादी संस्कृति को हम रोक नहीं सकते। पूँजीवादी व्यवस्था की चरम स्थिति में यह अपरिहार्य है। यह राज्य-व्यवस्था की स्थितियों के कारण, नयी आर्थिक संरचना के कारण उत्पन्न परिस्थितियों के फलस्वरूप निर्मित हुई है। इस नयी वैश्विक संस्कृति के बरअक्स परंपरागत संस्कृतियों का टकराव भी इस वर्ग विभाजित समाज की अनिवार्यता है, जहाँ लगभग 20 प्रतिशत समाज एक ओर है, जो आसमान पर बैठने जा रहा है, चाँद और दूसरे ग्रहों पर ठिकाना बनाने की तैयारी कर रहा; दूसरी ओर, लोगों के जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होतीं। वहाँ भूख ही सबसे बड़ी समस्या है। ऐसे में, किसी भी तरह का संकट हो, स्त्री-समूह सबसे कमज़ोर कड़ी होता है। लेकिन, जो परिवर्तन अनिवार्य है, अपरिहार्य है, समय-गति के साथ है, उसे रोका नहीं जा सकता। ज़रूरत है विवेक की, परिवर्तनकारी शक्तियों को पहचानने की, संगठित कार्य-प्रणाली की और संगठित प्रतिरोध की।

0 0 0

पंजाबी के महत्त्वपूर्ण कथाकार रामस्वरूप अणखी नहीं रहे। 'वर्तमान साहित्य' के सुपरिचित कवि ज्ञानेन्द्र अग्रवाल का भी पिछले दिनों देहांत हो गया। 'वर्तमान साहित्य' परिवार की ओर से इन रचनाकारों को हार्दिक श्रद्धांजलि!

अगले अंक में हम इन दिवंगत रचनाकारों के विषय में विस्तृत सामग्री प्रकाशित करेंगे।

नमिता सिंह

(नमिता सिंह)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निसाक्षी : स्त्री-विमर्श का प्रथम उन्मेष

वी0पी0 मुहम्मद कुंज मेत्तर

केरल में हुए सामाजिक नवजागरण के फलस्वरूप स्त्री-शिक्षा, सामाजिक अधिकार, यौन-अधिकार आदि विषय उपन्यास के केंद्र में आये। परिणामतः अनेक स्त्री-पात्र उपन्यास के केंद्रीय पात्र बने। 'कुंदलता', 'इंदुलेखा', 'इंदुमती स्वयंवरम', 'मीनाक्षी', 'लक्ष्मी केशवम' आदि शीर्षक मलयालम के उपन्यासों की स्त्री-दृष्टि का उत्तम निदर्शन हैं। मलयालम के प्रथम उपन्यास लेखक चंतु मेनन की इंदुलेखा का विचार द्रष्टव्य है—"वेश्यावृत्ति का मूल कारण स्त्री को आज़ादी दिये बग़ैर उसे पशु-समान रखना है। सोचती हूँ कि उसे अभीष्टानुसार पति को लेने और त्यागने की छूट मिलनी चाहिए, तो वह एक प्रशंसनीय क़दम होगा।" इस प्रकार चंतु मेनन ने पहली बार अपने एक स्त्री-पात्र से सामाजिक एवं यौन-अधिकारों की माँग करायी।

यद्यपि मलयालम में स्त्री पात्रों का ताँता-सा लगा और अनेक वीरांगनाओं के बिंब भी बने, तथापि स्त्रियों के प्रति समाज की जो दृष्टि रही, उसमें कोई ख़ास बदलाव नहीं आया। 'परिवार का दीपक', 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' आदि कहकर उसे घर-परिवार के अंदर पुरुष के अधीन ही रखा गया।

मलयालम के सुप्रसिद्ध समालोचक एवं वामपंथी राजनेता प्रो0 जोसफ़ मुण्डश्शेरी ने पचास के दशक में ही 'स्त्री : आधुनिक दृष्टि' (1955) नामक पुस्तक में 'स्त्री : साहित्य में' शीर्षक निबंध में लिखा—"संपूर्ण साहित्य में वर्णित हज़ारों स्त्री-पात्रों में नब्बे प्रतिशत स्त्रियाँ पुरुष-सत्ता के दुष्प्रभुत्व के अधीन दुर्गम होने के लिए अभिशप्त हैं। उनको लेकर सहृदय-संसार का दुख-दर्द भी असीम रहा है। यद्यपि उनकी व्यथा-कथा की वेदना सहते हुए ही पाठक उनको पढ़ते हैं तो भी समाज की उन घिसी-पिटी परंपराओं को हटाने के लिए न कोई तैयार हुआ, न उसके लिए कोई अनुकूल मनःस्थिति पाठकों में पैदा हुई। चूँकि, रचनाकारों ने उत्पीड़नों को उन पात्रों के लिए दुखदायक न बनाकर सुखदायक बनाके चित्रित किया है, इसलिए कोई भी त्रासदी पात्रों के आत्मोत्कर्ष के रूप में आयी, जिसने सहृदयों के मन में भी यही भाव जगाया है। ऐसा भाव रचनाकारों ने क्यों उत्पन्न किया ? उदाहरण के लिए सीता, दमयंती, सावित्री, सुभद्रा, डेस्डीमोना कोरडीलिया आदि के प्रति इससे भिन्न कोई भाव नहीं होता। हज़ारों स्त्रियाँ उनके विरुद्ध बनी न्याय की बलिवेदी पर चढ़ायी गयी हैं। उनके क्रंदन और चीख़ की पुकार अनंतर पीढ़ियों को काव्यानंद का आस्वादन कराती है।"

मलयालम में पुरुष-सत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठाकर पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्था में स्वयं को बलि चढ़ाने वाली प्रथम उपन्यास लेखिका टी0ए0 राजलक्ष्मी (1930-1965) हैं। उन्होंने आत्महत्या में ही अपनी मुक्ति पायी। उनके तीनों उपन्यास स्त्रीवादी हैं जिनमें अंतिम उपन्यास 'कड़ी धूप और नर्म चाँदनी' अधूरा है। उनका प्रथम उपन्यास 'ओरू वषियुम कुरे निषलुकलुम' (एक राह और थोड़ी बहुत परछाइयाँ) अपने समय का बहुचर्चित उपन्यास है। यह रूमानी शैली में लिखा गया है। यह तत्कालीन यथार्थवादी परंपरा से मुक्त होने का विद्रोह भी था। पुरुष-सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था को पृष्ठभूमि बनाने के बदले राजलक्ष्मी स्त्री-दृष्टि से उद्भूत आख्यान-पथ पर बढ़ीं। पुरुष-सत्तात्मक समाज में हाशिये पर गये स्त्री-संसार को पुनः प्राप्त करना इस उपन्यास का उद्देश्य मालूम पड़ता है।

कविता करने तथा परंपरागत सामाजिक क्रम भंग करने से रमणी का जीवन अंधकारमय हो गया। अशांत पारिवारिक वातावरण उसकी बाल-कौमार दशाओं को कलुष बनाता है। उसके विद्यालय-जीवन के प्रणयानुभव ने भी अधूरी इच्छाएँ ही छोड़ दीं। पुरुष-वर्ग की स्वार्थी एवं लाभेच्छु दृष्टि से वेदना सहती हुई वह घर लौटती है। रमणी अपने बाल्यकालीन प्रेमी को, जो क्षयरोगी था, स्वीकार करती है। उस स्वीकार में आत्म-पीड़न था, परंतु उसके द्वारा वह अपने भीतर के जोश को फुर्तीला बना रही थी। यद्यपि, इस उपन्यास में कल्पना का प्राबल्य है, तथापि इसी के द्वारा मलयालम में स्त्री का अनुभव-संसार प्रथमतः अनावृत हुआ। इस रचना में पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्था का मर्मभेदी चित्रण है। कष्ट सहने एवं उत्पीड़न से स्त्री का उदात्त रूप उभरा है। पुरुष-सत्ता से आक्रांत एवं उत्पीड़ित स्त्री-संसार का अंकन करना पचास के दशक में केरलीय समाज में ख़तरे से खाली नहीं था। राजलक्ष्मी का जीवन इसका साक्षी है। राजलक्ष्मी ने अपना जीवनानुभव खुलकर लिखा तो पुरुष-सत्ता ने उसका कड़ा विरोध किया। 'मातृभूमि' साप्ताहिक पत्रिका में किश्तों में प्रकाशित 'कड़ी धूप और नर्म चाँदनी' उपन्यास को बीच में ही रोकना पड़ा था। राजलक्ष्मी की आत्महत्या यह बताती है कि पुरुष-सत्तात्मक समाज में स्त्री का गौरवपूर्ण प्रतिरोधी लेखन उसकी शहादत का कारण बनता है। मलयालम के स्त्रीवादी लेखन के मूल में राजलक्ष्मी का स्थान अक्षुण्ण है।

राजलक्ष्मी के आख्यान में रूमानी यथार्थ ही प्रमुख रहा है, इस कारण स्त्री के अनुभव-संसार से जुड़े राजनीतिक एवं सामाजिक प्रश्न उनके उपन्यास में हाशिये पर चले गये। 'अग्निसाक्षी' (1976) की लेखिका ललितांबिका अंतर्जनम ने हाशिये पर रहे स्त्री के अनुभव-जगत को विशाल फलक प्रदान किया। मलयालम के स्त्रीवादी साहित्येतिहास में 'अग्निसाक्षी' का स्थान अन्यतम है। इसमें पुरुष-सत्तात्मक समाज में स्त्री का स्थान, उसका यौन-अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका राजनीतिक अधिकार आदि प्रताड़ना और उत्पीड़न के पीछे के प्रमुख मुद्दे उठाये गये हैं। अतः, यह प्रथम उपन्यास है, जिसमें नारी-मुक्ति को लेकर किसी लेखिका ने पहली बार अपनी लेखनी चलायी है।

दीपक की बाती की तरह जलती देवकी (देवकी मानंबल्ली, देवी बहन, सुमित्रानंदा) अग्निज्वाला बनकर होमकुंड की तरह बुझ जाती है। उस ज्वाला की लपटों के धधक उठने की साक्षी बनती है-तंकम। 'अग्निसाक्षी' की कथा को नंबूतिरि समुदाय की दुर्दशा या दांपत्य-जीवन की टूटन समझना ठीक नहीं होगा। 'अग्निसाक्षी' में जहाँ एक ओर स्त्री के राग-विराग का आख्यान है, वहीं उसके स्वत्व की तलाश का वर्णन भी है। तथा स्त्री-लेखन को जिन सवालों से रू-ब-रू होना पड़ता है, उनका उल्लेख भी है।

अंतर्जनम की सृजन-यात्रा समृद्ध रही है। उन्होंने उपन्यास केवल एक ही लिखा-'अग्निसाक्षी'। उनका बाल-साहित्य उत्कृष्ट है, यथा-ग्रामबालिका, गोसाईं परंज्याकथा (गोसाई की सुनायी कथा), तेन तुल्लिकल (मधु की बूँदें) कुञ्ञोमना (नन्हीं प्यारी), उनकी कहानियाँ हैं-धीरेंद्र मजूंदारुटे अम्मा (धीरेंद्र मजूमदार की माँ), पवित्र मोतिरम (पवित्र अँगूठी), तकार्न्ना तलामुरा (टूटी पीढ़ी), इरूपतु वर्षत्तिनु शेत्रम (बीस वर्षों के बाद), कण्णीरिन्टे पुंचिरि (आँसू की मुस्कान), कोटुन्काट्टिल निन्नु (आँधी से), किलिवालिलूटे (झरोखे से), अग्निपुष्पङ्ल (अग्निपुष्प), आद्यत्ते कथकल (प्रथम कहानियाँ), मूटुपटत्तिल (पर्दे में), कालनिन्टे एटुकल (काल की पोंथिया), विश्वरूपम् (विश्वरूप), सत्यत्तिन्टे स्वरण् (सत्य का स्वर), तेराञ्ञेटुत्ता कथकल (चुनी हुई कहानियाँ); उनके काव्य हैं-ओरु पोंट्टिच्चिरि (एक ठहाका), भावदीप्ति, शरणमंजरी, निःशब्द संगीतम्; अध्ययन-सीतामुतल सत्यवति वरे (सीता से सत्यवती तक); आत्मकथा-आत्मकथाक्कोरामुखम (आत्मकथा का एक आमुख)।

'अग्निसाक्षी' ललितांबिका अंतर्जनम का एकमात्र उपन्यास है, जो उन्होंने अपने जीवन के 67वें वर्ष में लिखा। उपन्यास-लेखन में क्यों इतने लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, इसका कारण बताते हुए इस उपन्यास के 'परिशिष्ट' में अंतर्जनम ने जो बातें कही हैं, वे लेखन में प्रवृत्त स्त्री की कठिनाइयाँ व्यक्त करती हैं। उनका कथन है-"जीवन की वास्तविक घटनाएँ कल्पना से अधिक चौंकाने वाली होती हैं। अपने अंतरतम में बसी ऐसी कठिनाइयाँ कभी न लिखने की शपथ लेकर बैठी थी, लेकिन रेडियो के लिए 10 किश्तों में प्रसारित 'प्रसादम' नामक कहानी तैयार हुई, तो उसमें स्त्री की उत्पीड़न-कथा, जो दबाकर रखी हुई थी, फूट निकली।" आगे वे लिखती हैं-"उपन्यास जैसे बड़े साहित्य-रूप की परिकल्पना कर उसके समग्र रूप का ढाँचा मन में रूपायित करना ज़रूरी है, जो एक साधना है। इसके निर्वहन के लिए आवश्यक समय यौवन और प्रौढ़ावस्था में मेरे पास नहीं था। केरल की सामान्य घरेलू महिला, जो एक ही समय में माता हो, गृहणी हो और आतिथेय हो; के पास समय ही कहाँ कि वह लेखन को अपना ध्येय मानकर अपना पूरा समय उसमें लगा दे।" (पृ0 147) उनके ये उद्‌गार स्त्री की हैसियत से लेखिका पर पड़े दबाव की सच्ची और ईमानदार अभिव्यक्ति है। उन्होंने न सिर्फ़ लेखन के बाहरी परिवेश पर ही प्रकाश डाला, बल्कि उसके आंतरिक परिवेश पर भी। अंतर्जनम आगे कहती है-"विमाता, जलपिशाचु डुकरिया, उन्मादिनी विमाता-सब मेरे दैनंदिन जीवन के अभिन्न अंग हैं। उन्मादिनी विमाताओं पर सागर फेंककर चोट मारते बुढ़उओं को मैंने देखा है। एक हाथ में छाता पकड़े, दूसरे हाथ में नये कपड़े के दामन थामे सौत के घर में सोते पति से लड़ने-भिड़ने रात में वहाँ पहुँचती उन्मादिनियों को देखा है। उन्हें 'उन्मादिनी-उन्मादिनी' (कामोन्मादिनी) पुकार-पुकार कर आवारा लड़कों को पत्थर मारते देखा है। छूत की आशंका से लड़खड़ाती चलती, तालाब में उतरकर एक हज़ार आठ बार पानी में डूबने के बाद भी स्नान पूर्ण न समझकर बार-बार डूबती-उतराती जलपिशाचु डुकरियों को भी देखा है। (पृ0 152-153)

'अग्निसाक्षी' के प्रतिपाद्य विषय को प्रदीप्त करने वाले दो तत्त्व हैं-पहला पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्था और जातिगत भेदभाव से उत्पन्न वर्जनाओं-नीचताओं की शिकार उन्मादिनियों की दुनिया और दूसरा पुरुष-वर्चस्ववादी व्यवस्था के विरुद्ध लड़ती विधिवत् विवाहिता स्त्रियों की दुनिया।

अंतर्जनम ने बीसवीं शती के तीसरे दशक की कहानी ही कही है। केरल के सामाजिक नवजागरण एवं उसके सांस्कृतिक-राजनीतिक इतिहास में इस युग का महत्त्व है। यह वह समय है जब केरल के नंबूतिरि (ब्राह्मण) समुदाय में 'योगक्षेम सभा' (1909) का कार्य शुरू हो गया था और प्रगतिशील विचार के व्यक्तियों का सामुदायिक नवजागरण के कार्यों में तथा राष्ट्रीय आंदोलन में प्रवेश हो चुका था।

वी0टी0 भट्टतिरिघाट का अटुक्कलचिल निन्न अरङत्तेक्कु (चूल्हे-चक्की से बाहर) (1929), एम0आर0बी0 का मराक्कुटाक्कुल्लिले महानकम (पर्दे के भीतर का घोर नरक) (1930) आदि नाटक, मुत्तिरिडुनोटु भवत्रातन नंपूतिरिघाटु का उपन्यास 'अपूफ़न्टे मकल (अपूफ़न की बेटी) (1932) आदि ने नंपूतिरी जाति की समस्याएँ खोलकर रखीं। ब्लाउज़ पहनना, पर्दा त्यागना, विधवा-विवाह करना आदि नंपूतिरी स्त्रियों के बीच में प्रचलित होने लगे। ऐसे वातावरण में पली-बढ़ी देवकी उर्फ़ तेतिक्कुट्टी को विवाह करके मानंबल्ली के कट्टर पुरातनपंथी परिवार में लाया गया। मानंबल्ली में देवकी की इच्छाएँ-प्रेमाभिलाषा, यौन-तृष्णा, सामाजिक-बोध अधूरी रहीं। विधिवत विवाहित अपने पति को एक रात भी साथ में सोते न पाकर उन्माद की स्थिति तक पहुँची उन्मादिनी वलियात्तेरम्मा की कहानी सुनकर देवकी तंकम् से कहती है-"इस घर में रहूँ, तो मैं भी उन्मादिनी हो जाऊँगी।" (पृ0 33) इस कथन में उसके यौन-दमन की बात स्पष्ट होती है। अपने भाई साहब पी0पी0के0 नंबूतिरी के सामुदायिक सुधार-कार्य को लेकर देवकी को ही भर्त्सना सहनी पड़ती है। 'रामायण' और 'शिवपुराण' का पाठ न करके उपन्यास, कविता और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ना आचार-विरुद्ध माना जाता था। देवकी का पति उण्णी नंबूतिरी पुराण-पाठक एवं सनातनी है-"भाभी कैसे हैं उण्णीजी ? बेचारे जब देखो कोई-न-कोई पूजा-अर्चना या स्नान। न कभी किसी स्त्री का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँह देखा, न किसी स्त्री से बात की। माँ कहती थी उण्णी महाराज कोई साधु बनेगा।'' (तंकम-तेतिक्कुटी (उण्णी की धर्मपत्नी) से, पृ0 25) उनका अभिमत है कि 'दांपत्य भोग के लिए नहीं, त्याग के लिए है। जीवन एक यज्ञ है, अग्निहोत्र है।' (पृ0 30) इच्छाओं का दमन कर स्त्री को उन्मादी बनाने वाली यह प्रवृत्ति गार्हस्थ्य, पौरोहित्य एवं पुरुष-सत्ता की सृष्टि है। उण्णी के चरित्र पर टिप्पणी करते हुए उसकी पत्नी तेतिक्कुटी कहती है—''भाई साहब (पी0के0पी0 नंबूतिरी) कहते थे—जो इस लोक के लिए ठीक नहीं वह उस लोक के लिए भी ठीक नहीं। पर, यहाँ सबको उस लोक की ही चिंता है।'' (तेतिक्कुटी) तंकम से, पृ0 25) यह स्त्री को तथा उसकी देह को पुरुष-सत्ता के अधीन करने वाले साँचे में ढालता है। स्त्री को देवी बताकर घर के भीतर बंद रखा जाता है और दासी के रूप में उसकी सहनशीलता की प्रशंसा की जाती है। व्यवस्था के विरुद्ध किये गये संघर्ष ने देवकी मानंबल्ली को भीतर से बाहर निकाल दिया। देवकी मानंबल्ली की भूमिका में वह कितनी अशांत थी। उसने अपने भाई साहब को लिखा—''मैं निबाहने का प्रयास कर रही हूँ भाई साहब! तड़के नहाती हूँ। संध्या- विधान करती हूँ। रसोई का काम करती हूँ। उपवास रखती हूँ। जलपिशाचु डुकरिया से भी कुतर्क नहीं करती। पर, मेरा दिल रो रहा है। एक अक्षर ही सही, पढ़ने के लिए कुछ भी नहीं। बात करने के लिए भी कोई नहीं। मेरा जीवित रहना और मरना बराबर है। भाई साहब, वे तो देवता हैं। वे मानव नहीं। आपने मुझे मनुष्य की सीख देकर देवता से मेरी शादी क्यों कर दी? क्या हमारा दिल मिलेगा कभी? आप का वक्तव्य मैं पढ़ा करती हूँ, लेख भी। तंकम ला देती है। यदि वह न होती, तो मैं कबकी आत्महत्या कर लेती?'' (पृ0 40)

अंतर-बाहर का संघर्ष 'अग्निसाक्षी' के कथा-शिल्प का एक निर्णायक तत्त्व है। पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था स्त्री-पुरुष का सामाजिक पद तय करती है। कर्मों को आधार बनाकर स्त्री को घर के अंदर और पुरुष को बाहर सीमित करती है। इस विभाजन का आधारभूत तत्त्व स्त्री-देह है, जिसने सैकड़ों विरुद्ध संवर्गों को बनाया है। यथा-घर-बाहर, कोमल-कठोर, नियंत्रित-अनियंत्रित, निजी-सार्वजनिक, परावलंबी-स्वावलंबी इत्यादि। घर, निजता, दुर्बलता इत्यादि से जोड़कर स्त्री को घर के अंदर बाँधे रखने की यह पुरुष-सत्तात्मक नीति है। 'अग्निसाक्षी' की नायिका इस सीमित संसार का अतिक्रमण करती है। इच्छाओं के दमन और उन्माद से भरे दमघोंटू घरेलू वातावरण से निकलकर बाहरी दुनिया में अपने स्वत्व की तलाश करती है। स्त्री के इस स्वातंत्र्य-बोध और स्वत्व-परिकल्पना को स्वाधीनता-संग्राम की चेतना से जोड़कर ही समझना चाहिए। अपने दांपत्य जीवन को लेकर देवकी मानंबल्ली ने तंकम से कहा—''मैं सोचती हूँ कि अगर मैं पुरुष होती, तो अपनी स्त्री को ही नहीं, सभी स्त्रियों की आज़ादी के लिए मर मिटती।'' (पृ0 39) बाद में, सामाजिक नवजागरण के अभियान में भाग लेते समय वह अपना वक्तव्य देती है—''मैं किसी जाति, धर्म या संप्रदाय की प्रतिनिधि नहीं हूँ। तमाम नारी-वर्ग की प्रतिनिधि हूँ मैं, जो सदियों से प्रताड़ना और उत्पीड़न की शिकार बनी हुई हैं। बेपर्दा होकर आपके सामने खड़ी इस सचाई को देखकर आप चाहें तो शाप दें या अनुग्रह, पर स्मरण रहे कि हमारा यह जो दुख-दर्द है, वह आप का दिया हुआ है।'' (पृ0 67-68)

वास्तव में, देवकी मानंबल्ली पुरुष-वर्चस्ववादी व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए आंदोलन चला रही है। यहीं से उसका राजनीतिक जीवन शुरू होता है। वह घर की चारदीवारी छोड़कर बाहर चली आती है, जहाँ वह अपने भाषणों, सामाजिक कार्य-कलापों से राष्ट्र रूपी विराट क्षेत्र में पहुँचती है। सार्वजनिक सभाओं में उसकी निरंतर उपस्थिति उसके व्यक्तित्व को नया आयाम देती है। वह अब 'देवी बहन' नाम से नयी अस्मिता प्राप्त करती है। घर के भीतर से बाहर की ओर उसका प्रस्थान बाद में उसे अध्यात्म के धरातल पर ला खड़ा करता है जहाँ वह योगिनी सुमित्रानंदा के नाम से जानी जाती है। उपन्यास में जो स्त्रीवादी दृष्टिकोण एवं पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्था का विरोध है, वह सब उस हिन्दू मूल्य-पद्धति की यागशाला में समाप्त होता दिखायी देता है, जिसने उस व्यवस्था को जन्म दिया है। परंतु, इसे उसका पीछे जाना नहीं समझना चाहिए।

देवकी के भीतर की आग उसकी जीवेषणा और कामना है। जब वह देवी बहन हो गयी, तब भी वह मांगलिक सूत्र को पकड़कर नाम-जप करती है और अपने साधु-जीवन में परिणय-बंधन के अनुष्ठान स्वरूप औपासनाग्नि की स्मृति में निरंतर अग्निहोत्र करती है। अपने वैरागी जीवन-काल में भी उसका पति-प्रेम बना रहा। उसके अंतरतम में कभी न बुझने वाली कामना थी, जिसे वह दुखियों-पीड़ितों की सेवा में लगा देती है। ग्रामीण स्त्रियों को वह स्वावलंबन का उपदेश देती हैं—''तुम जो चाहो, वह तुम स्वयं कर सकती हो। ईश्वर की यही आज्ञा है। तन-मन और देश को पवित्र रखो। पवित्र स्थानों में ही भगवान निवास करता है।'' (पृ0 15) अंत में, वह प्रकृति की मानक लीला से मुग्ध होकर अध्यात्म की ओर जाती है, लेकिन इस घड़ी में भी उसकी कामना उसका पिंड नहीं छोड़ती। योगिनी सुमित्रानंदा में यह जो अंतःसंघर्ष ज़ोरों से चलता है, उस अध्यात्म-परंपरा की पराजय भूमि है, जो योगिनी के रूप में सुमित्रानंदा को स्वीकार करती है।

सुमित्रानंदा का पति-प्रेम, मांगलिक-सूत्र, औपासनाग्नि आदि प्रतीकों के प्रति आकर्षण स्त्री-कामना का प्रतीक है। संभव है कोई इसकी विपरीत व्याख्या करके इसे पुरुष-वर्चस्व के प्रति उसका समर्पण समझे।

देवकी की पुरुष-कामना उसके यौन-अधिकार और स्त्री-पुरुष संबंध की स्थापित नीति के विरुद्ध है। वह प्रेम-तरलित संघर्षोन्मुख होकर पुरुष-सत्ता केंद्रित सामाजिक नीति से मुठभेड़ करती है—यह पुरुष-वर्चस्ववाद के विरुद्ध है, न कि पुरुष के। 'अग्निसाक्षी' स्त्री की कामना को अभिव्यक्ति देता है।

स्त्री-सशक्तीकरण का जो प्रयास आज चल रहा है, उसका प्रथम प्रवर्तन करने वाली लेखिका हैं अंतर्जनम। घर की अंधी कोठरी से बाहर के आलोकमय संसार में आकर अपने सोच को मुक्त रखना तथा अपनी जैसी असंख्य स्त्रियों को मुक्ति दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका जीवन- ध्येय रहा है। इस क्रांतिकारी अभियान में देवकी मानंबल्ली को देवी बहन तथा योगिनी सुमित्रानंदा की भूमिकाएँ अदा करनी पड़ीं। वह जीवनानुराग तथा पुरुष-कामना से विरक्त होकर आश्रम और तपस्या में शांति नहीं ढूँढ रही थी बल्कि अध्यात्म के अंतिम समझे जाने वाले पड़ाव में भी वह अशांत एवं अस्वस्थ ही रहती है। इस प्रकार, अध्यात्म की पराजय भूमि में ही वह खड़ी होती है।

'अग्निसाक्षी' उपन्यास की विशिष्टता यह है कि इसमें स्त्री-विमर्श के बुनियादी मुद्दों-परिवार, आर्थिक स्वतंत्रता, पितृसत्तात्मक समाज अपने हित साधन के लिए बनायी विवाह-संस्था की पुनर्रचना की आवश्यकता, धार्मिक-सांस्कृतिक जकड़न, घर के बाहर समाज और राजनीति में उसकी भागीदारी आदि पर विचार-विमर्श हुआ है। वास्तव में समकालीन समाज में स्त्री-स्वाधीनता को लेकर जो बहस चल रही है उसके केंद्र में उपर्युक्त बिंदु ही उठाये गये हैं और बार-बार उठाये जा रहे हैं। उपन्यास-लेखिका अंतर्जनम ने इन प्रश्नों पर बहुत ही क्रांतिकारी विचार रखे हैं, जो अत्यंत संयम से परिवार को ध्वस्त किये बिना विवाह-संस्था के जड़-तत्त्वों को नकारते हुए प्रस्तुत हुए हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में जीवन की जिन त्रासद स्थितियों को चित्रित किया गया है, वे हृदय-विदारक हैं और करुण रस से ओतप्रोत हैं। कहानी चाहे केरल के ब्राह्मण समुदाय की हवेलियों के भीतर के दमघोंटू वातावरण में रह रहे प्राणियों की ही क्यों न हो, उसमें मानवीय संवेदना के जो मार्मिक प्रसंग आये हैं, वे आपको रुलाये बिना नहीं रहेंगे। लेखिका ने सन् 1930 के दशक का जो चित्र उतारा है, वह चित्र केरल के मुस्लिम समुदाय का भी रहा है, भले ही मुस्लिम समुदाय में 'रखैल तथा संबंध' का प्रचलन न रहा हो। स्त्री-पराधीनता के अत्यंत दयनीय चित्र वहाँ भी बरबस आपको आकृष्ट करते हैं। मुस्लिम समुदाय में बहुत बाद तक स्त्री को शिक्षा से वंचित रखा गया, विवाह में उसके हित की रक्षा नहीं की गयी, घर की चारदीवारों के बाहर पाँव रखने नहीं दिया गया। धार्मिक अनुष्ठानों में भी उसकी स्वतंत्रता पर प्रश्नचिह्न लगा रहा। यहाँ इस बात का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि 'अग्नि साक्षी' में यद्यपि केरल के सभी समुदायों का कोई-न-कोई उल्लेख, भले ही नाममात्र के लिए हुआ हो; कोई मुस्लिम संदर्भ नहीं आया है। लगता है कि लेखिका मुस्लिम जीवन से अपरिचित थी। ऐसा कहने का अर्थ साहित्य में मुस्लिम के लिए आरक्षण माँगना नहीं है; इसका इतना ही तात्पर्य है कि केरलीय समाज ही शायद अकेला समाज है, जहाँ पुराने समय से ही विभिन्न समुदाय का जीवन अलग-अलग नदी-नालों में न बहकर मिल-जुलकर एक महाप्रवाह बनता चला आया है। अतः किसी भी महत्त्वपूर्ण कृति में सामाजिक जीवन की ऐसी झलक मिलती है, जो पूरे समाज को उस कृति से बाँधती है। इसे प्रस्तुत रचना की कोई त्रुटि न समझकर उसकी गरिमा में चार चाँद लगाने वाले एक गुण का अभाव ही माना जाना चाहिए।

देवकी मानंबल्ली परिवार और समाज के बीच संतुलन लाने में सफल नहीं हुई, लेकिन उसका अभियान स्त्रियों को, विशेषकर ब्राह्मण समुदाय की स्त्रियों को प्रगति-पथ पर बढ़ने में सहायक बना। भौतिक जीवन तथा आध्यात्मिक जीवन के बीच का अंतर्विरोध भी योगिनी सुमित्रानंदा के जीवन से प्रकट होता है।

स्त्री-मुक्ति के नाम पर स्वाधीन भारत में चल रही उच्छृंखलता की एक झलक कल्याणी नामक गांधी-शिष्या के द्वारा दी गयी है। कल्याणी देश की एकता के लिए घर-घर जाकर हिन्दी पढ़ा रही है। देश के स्वाधीनता-संग्राम में स्वजीवन को देश के लिए समर्पित करने वाले महापुरुषों की अनंतर पीढ़ियों को अपने पूर्वजों के त्याग को तिरस्कृत करते देख कल्याणी को गहरा दुख होता है—"देखो मेरे देश का क्या भविष्य हो गया ? मेरा भारत, मेरा स्वराज, प्राणोत्सर्ग कर प्राप्त मेरा रामराज्य, उसका भविष्य कैसे बना ? इसकी स्मृति आते ही वेदना भर जाती है। आज का भारत उन सबका प्रतीक है, जिनका हम डटकर विरोध करते थे। झूठ, चोरी, काला-बाज़ारी, अंतर्संघर्ष, अधिकार के लिए लड़ाई आदि का बोलबाला है। मिसेज़ नायर, आप क्या जानें कि अभी मैंने यहाँ आते रास्ते में क्या-क्या देखा था। स्वतंत्रता की बलिवेदी पर प्राणों का उत्सर्ग करने वाले प्रसिद्ध कर्मवीर योद्धा की पुत्री मद्यपान से मदमस्त होकर एक विदेशी के कंधे पर लटकती हुई पंच सितारा होटल से बाहर निकलती दिखायी दी। वह लगभग नंगी थी। उसने मुझे देखकर पूछा : "हलो ! कल्याणी देवी, कमॉन! कम विद मी! मेरे पिता भूखों तड़प-तड़प कर मर गये। उन्होंने उसे फाँसी पर चढ़ाया। मैं सुखमय जीवन बिताकर मरूँगी। स्वाधीन भारत का मरण! आइए, मेरे साथ आइए।" (पृ0 95)

स्त्रियों के जीवन की दयनीय दशा का चित्र भी कल्याणी देवी तंकम को सुनाती है—"उन दिनों क्या स्त्रियाँ घर से बाहर आ सकती थीं ? क्या वे दूसरों से बात कर सकतीं? स्कूल जा सकतीं ? नायर, ईज़वा, नंबूतिरी, ईसाई क्या एक-दूसरे को छू सकते थे? सामंतों की आज्ञा ही चलती थी, दासों को चुप्पी साध खड़ा होना पड़ता था। राज्यादेश का प्रजाओं द्वारा कड़ा पालन। पुरुषों ने स्त्रियों को मारा-पीटा। मुखियों ने युवकों को मारा-पीटा। इन सबसे बने देश को गोरे अधिकारियों ने मारा-दबोचा। सभी ने सब उत्पीड़नों को सहन किया।" (पृ0 96)

इस प्रकार, राजलक्ष्मी और ललितांबिका अंतर्जनम ने स्त्री-विमर्श का जो पथ प्रशस्त किया, उसका पोषण-संवर्द्धन यथोचित रूप में नहीं हुआ।

विज़िटिंग प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी : प्राचीन धर्म-ग्रंथ और इतिहास

ऋतु अग्रवाल

स्त्री और पुरुष समाज के दो प्रमुख स्तंभ हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्त्व अधूरा है, परंतु भारतीय समाज की विडंबना है कि उसने नारी को पुरुष के समकक्ष कभी नहीं रखा। बाल्यावस्था में उसे माता-पिता के नियंत्रण में रखा जाता था, युवती होने पर पति तथा वेधव्य प्राप्त हो जाने पर वह पुत्रों पर आश्रित हो जाती थी। इस प्रकार, सदैव ही नारी के स्वतंत्र अस्तित्त्व पर अंकुश लगाया गया। प्राचीन नीति-ग्रंथों ने भी स्त्रियों का स्तर, चाहे वह किसी भी श्रेणी की हो, शूद्र के समकक्ष रखा। पितृसत्तामक व्यवस्था ने नारी को पूर्णतः पुरुष के अधीन कर दिया। सामान्यतः धारणा है कि प्रारंभ में नारी की स्थिति दयनीय नहीं थी। समाज में उसे पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे, मगर यह संपूर्ण सत्य नहीं है, क्योंकि यह समानता कुछ ही क्षेत्रों में थी। वास्तव में पुरुष-सत्तामक समाज में वह द्वितीय श्रेणी की नागरिक ही थी।

यद्यपि साहित्यिक ग्रंथों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि ऋग्वैदिक काल (1500 ई0 पू0 से 1000 ई0 पू0) में नारी याज्ञिक कर्मकांडों में पुरुष को सहयेाग प्रदान करती थी और बालकों के समान बालिकाओं का भी शिक्षा-प्राप्ति हेतु 'उपनयन संस्कार' होता था। 'अथर्ववेद' में वर्णित है कि "ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के पश्चात् ही कन्या युवा पति को प्राप्त करती है।" (ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विंदते पतिम्, अथर्ववेद, 11/5/8) कुछ स्त्रियों को वैदिक मंत्रों की रचयिता भी कहा गया है, जिनमें लोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिकिता,यमी, शची, श्रद्धा, सूर्या, ब्रह्मवादिनी जूहू, इंद्रवाणी, अम्भृणपुत्री वाकु, घोषा, अर्चनाना, गौरवीति, अपाला, असंगभार्या, अंगिरा कन्या शाश्वती, गार्गी के नाम गिनाये जाते हैं, परंतु यह सूची अपवादस्वरूप कुछ और नामों को छोड़कर आगे नहीं बढ़ती। आरंभ में स्त्रियों ने वैदिक मंत्रों की रचना भले ही की हो, पर बाद में उनसे वेदाध्ययन का अधिकार भी छीन लिया गया था। यहाँ तक कि "उत्तर-ऋग्वैदिक काल (1000ई0 पू0 से 500 ई0 पू0) में शूद्रों तथा स्त्रियों का वैदिक मंत्रों का उच्चारण करना भी वर्जित कर दिया गया था। इस युग में विवाह के अतिरिक्त उनके सभी संस्कार वैदिक मंत्रों के बिना किये जाते थे।"(राधाकुमुद मुखर्जी, हिंदू सभ्यता, पृष्ठ 172) 'मनुस्मृति' में भी वर्णित है कि " स्त्रियों का संस्कार मंत्रों से नहीं होता, यही शास्त्र की मर्यादा है। स्मृति, धर्मशास्त्र तथा किसी मंत्र पर भी इनका अधिकार नहीं है, इसलिए ये झूठ के समान अशुभ हैं।" (नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिता धर्मेक व्यवस्थितिः। निरिंद्रिया ह्यमंत्राशय स्त्रियोऽनृतभिति स्थितिः।। मनुस्मृति, 9/18) परंतु अपवादस्वरूप यदि स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करती भी थीं, तो उसकी भी एक निश्चित सीमा थी, क्योंकि एक वाद-विवाद के दौरान् याज्ञवल्क्य ने गार्गी से कहा था कि—"हे गार्गी! यदि तुझे मरने की इच्छा न हो, तो अधिक प्रश्न मत पूछ।" (अतो गार्गी मतिप्राक्षीः मर्तुचेत्रेच्छसि, वृहदारण्यकोपनिषद्, तृतीयाध्याये, षष्ठ गार्गी ब्राह्मणम्)। इस तरह याज्ञवल्क्य के निषेध करने पर मस्तक गिर जाने के भय से वाचक्नवी गार्गी मौन हो गयी (याज्ञवल्क्येन निषिद्धा मूर्धपातभायदुपरता सती, वृहदारण्यकोपनिषद्, तृतीयाध्याये, अष्ममक्षर ब्राह्मणम्।)

नारी की सामाजिक स्तर पर हीन दशा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस युग में उसे पांसा एवं सुरा के साथ-साथ तीन प्रमुख बुराइयों में गिना जाने लगा था। समाज में कन्या की प्राप्ति उतनी प्रिय नहीं थी, जितनी की पुत्र की। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में पुत्री को 'कृपण' कहा गया है। इसका भाष्य करते हुए सायण ने लिखा है कि "वह जन्म के समय अपने संबंधियों को कष्ट देती है, विवाह के समय अर्थहानि का प्रकरण बनती है तथा संबंधियों को कष्ट देती है एवं यौवन में अनेक दोषों के कारण कुल को कलंकित करती है" (संबंधि स्वजन दुखकारिका... हृदयदारिका पितुः, ऐतरेय ब्राह्मण, 33/1) 'रामायण' में भी पुत्री को कष्टदायिनी बताया गया है (कन्यापितृत्व .. वरयोदिति कन्यके, रामायण, 7/9/9) तथा 'महाभारत' में कन्या को कष्ट का साकार रूप कहा गया है (आत्मापुत्रः सह भार्या कच्छंतु दुहिता किल, महाभारत, 1/159/11) इसी प्रकार बाण ने लिखा है कि पुत्री उत्पन्न होकर पिता को चिंता में डाल देती है (उद्वेग महावर्ते... सुतापितरम् हर्षचरित्र, पृष्ठ 140-41) इस प्रकार, पुत्र जन्म की लालसा अपनी सारी सीमाओं को पार कर गयी थी। समाज में पुत्री सभी दुखों का कारण तथा पुत्र परिवार का संरक्षक स्वीकार किया गया। उत्तर-ऋग्वैदिक काल तक कन्याओं को यज्ञ करने का अधिकार नहीं रहा था। यह कार्य अब समाज में पुरोहित वर्ग के रूप में उदित एक नये वर्ग ने संपादित करना शुरू कर दिया था। इस तरह, समय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ-साथ नारी-शिक्षा के क्षेत्र में गिरावट आने लगी थी। अब कन्याओं का उपनयन संस्कार किया जाना बंद हो गया था तथा उन्हें गुरुकुल भेजने की प्रथा भी समाप्त हो गयी थी। उन्हें घर पर ही पिता, भाई एवं चाचा के द्वारा शिक्षा दी जाने लगी थी। उनको दी जाने वाली शिक्षा का स्वरूप शास्त्र-संबंधित न होकर गृह-संबंधित था, जिसका एकमात्र उद्देश्य उन्हें गृह-कार्यों में निपुण करना था। ब्राह्मणकालीन ग्रंथों का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि नारी-जीवन का एकमात्र उद्देश्य 'विवाह' था और इसकी पूर्ति हेतु अनेक कठोर नियम बनाये गये थे। विवाह संस्कार के लिए "कन्या के वित्त, रूप, प्रज्ञा और बांधव—इन चार गुणों पर विचार किया जाता था।" (चत्वारि विवाह करणानि वित्त, रूपं, प्रज्ञा, बांधवमिति; भारद्वाज, 1/6)। इसमें वित्त से तात्पर्य कन्या के परिवार की आर्थिक स्थिति से था, रूप से अर्थ था—उसकी शारीरिक सुंदरता, प्रज्ञा से तात्पर्य था—उसकी बुद्धि तथा बांधव से तात्पर्य उसके सगे-संबंधियों से था।

"जैनागम काल तक सुंदरता वधू बनने के लिए आवश्यक हो गयी थी। ऐसी कन्याएँ जिनमें सौंदर्य का अभाव रहता था, अविवाहित ही रह जाती थीं। वे कन्याएँ ही, जो शोभा, वय, त्वचा, लावण्य, रूप एवं यौवन आदि गुणों से संपन्न होती थीं, वधू बनायी जाती थीं। इसके साथ ही कन्या का अविधवा होना वधू बनने के लिए आवश्यक था।" (डॉ0 कोमलचंद्र जैन, बौद्ध एवं जैन आगमों में नारी-जीवन, पृष्ठ 62)। परंतु, इसके विपरीत पुरुषों के लिए विवाह संबंधी कोई योग्यता निर्धारित नहीं थी।

वैदिक काल से ही विवाह को धार्मिक कृत्य मानने के कारण जिन कुरीतियों का जन्म हुआ, उनका सर्वाधिक प्रभाव नारी-समाज पर ही पड़ा। विवाह को अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य मानने के कारण युवावस्था से पूर्व ही कन्याओं का विवाह होने लगा। 'बौधायन धर्मसूत्र' में वर्णित है कि "मासिक धर्म को प्राप्त कन्या का तीन वर्ष तक विवाह न करने से माता-पिता या संरक्षक भ्रूण-हत्या के दोषी होते हैं। (भीणि वर्षाऋतुषती.. दोषमृच्छत्यसंशयम्; बौधायन धर्मसूत्र,4/1/13)। गौतम और पाराशर ने "बारह वर्ष की अवस्था में रजोदर्शन होने पर तुरंत कन्यादान का विधान किया है। ऐसा न करने पर पिता को न केवल दोषी कहा गया है, बल्कि उसे नरकगामी भी कहा गया है।" (....प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्या च प्रयच्छंदोषी, गौतम धर्मसूत्र 18/22)। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय समाज में युवावस्था से पूर्व कन्याओं का विवाह अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य माना जाता था, जिसके परिणामस्वरूप अनमेल विवाह व बहुपत्नी विवाह होते थे।

"30 वर्ष के पुरुष का 12 वर्ष की कन्या व 24 वर्ष के पुरुष का विवाह 8 वर्ष की कन्या के साथ करना शास्त्रसम्मत था।" (आर. सी. मजूमदार, प्राचीन भारत, पृ0173)। कौटिल्य भी "12 वर्ष की कन्या को व्यवहारप्राप्त मानता है" (द्वादशवर्षास्मी प्राप्त व्यवहारा भवति, अर्थशास्त्र, 3/2)। बहुपत्नी-विवाह के चिह्न भी भारतीय समाज में प्रारंभ से ही दिखायी पड़ते हैं। 'अर्थशास्त्र' के अनुसार पुरुष एक से अधिक पत्नियाँ रख सकता था, परंतु इसके विपरीत यदि नारी एक से अधिक पति रखती थी, तो यह निंदनीय कार्य माना जाता था। 'महाभारत' में पाँच पतियों की पत्नी द्रौपदी को कर्ण 'वेश्या' कहकर संबोधित करता है। इसी तरह 'तैत्तिरीय संहिता' में कहा गया है कि "एक यूप मे दो रशनाएँ बाँधी जा सकती हैं, अतः एक पुरुष दो पत्नियाँ रख सकता है, परंतु एक रशना दो यूपों में नहीं बाँधी जा सकती, इसलिए एक पत्नी दो पति नहीं रख सकती।" (एकस्मिन्यूपे द्वै रशने परियन्यति तष्मादे को द्वै जायेविंदते। यनैका रशना द्वयोर्पूयवोः पण्ययति तष्मानैका द्वौ पति विंदते।। तैत्तिरीय संहिता, 6/5/4/1)। 'शतपथ ब्राह्मण' में भी चार प्रकार की पत्नियों का उल्लेख मिलता है—महिषी (प्रधान रानी), परिवृक्ता (प्रभावशाली), वावाता (व्यक्तिगत रूप से प्रिय), पालागली (सबसे निम्न व्यक्ति की कन्या) चतस्रो जया उपक्लृत्ता भवंति। महिषी, वावाता, परिवृक्ता, पालागली ।।, शतपथ ब्राह्मण, . 5/2/2/10, 13/4/1/7)। ऋग्वैदिक काल में भी लोग कई पत्नियाँ रखते थे। (ऋग्वेद, 10/145-149) अंगुतर निकाय में एक व्यक्ति की चार पत्नियों का विवरण मिलता है।

"वास्तव में प्राचीन भारतीय समाज में ब्राह्मण के तीन पत्नियों (ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या), क्षत्रिय के दो पत्नियों (क्षत्रिया, वैश्या) और वैश्य के एक पत्नी का सिद्धांत मान्य था।" (पारस्कर, गृहसूत्र 1/4/8/11)। इस तरह राजपरिवारों के अतिरिक्त "साधारण जनता में भी एक से अधिक पत्नी रखने की प्रथा थी।" (प्राचीन भारत का इतिहास, डॉ0 जयशंकर मिश्रा, पृ0 327)। संस्कृत साहित्य में भी अनेक पत्नीयुक्त पुरुषों के नाम दृष्टिगत होते हैं। "दुष्यंत के शकुंतला के अतिरिक्त अन्य रानियाँ भी थीं" (बहुबल्भाः ही राजानः श्रूयंते, अभिज्ञान शाकुंतलम्, अंक 3) 'ऋग्वेद' में भी एक स्थान पर इंद्र की स्तुति में कहा गया है कि "विद्वान लोग यज्ञ में जिन कर्मों का वर्णन करते है, इंद्र ने उन सभी कर्मों को किया है, वह अवश्य ही वैसे अन्य कर्मों को भी करे। जिस प्रकार समान भाव वाला एक पति अनेक स्त्रियों को पवित्र करता है, उसी प्रकार इंद्र सारे नगरों को पवित्र करे।" (ऋग्वेद,7/26/3)। अतः विवाह प्राचीन भारतीय समाज का प्रमुख आधार स्तंभ होते हुए भी अपने मूल में नारी-शोषण ही था। पुरुष पितृऋण से मुक्ति एवं काम की संतुष्टि हेतु विवाह करता था, परंतु नारी के लिए प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक विवाह का एकमात्र लक्ष्य संतानोत्पति ही रहा तथा धर्मशास्त्रों द्वारा उसे मोक्ष-प्राप्ति हेतु एकमात्र साधन पति-सेवा ही बताया गया। समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य स्त्रियों की दशा तो शोचनीय थी ही, परंतु इससे भी अधिक दयनीय दशा शूद्र स्त्रियों की थी, क्योंकि शूद्र स्त्री के साथ विवाह-संबंध को हेय दृष्टि से देखा जाता था। इसीलिये ब्राह्मण कानून-निर्माताओं ने आदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया कि शूद्र पत्नी केवल भोग-विलास के लिए ली जाती है।" (भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार, के. एम. कपाड़िया, पृ0173)

संपत्ति में भी नारी का कोई अधिकार नहीं माना जाता था। 'ऋग्वेद' के एक मंत्र में कहा गया है कि- "तान्व (औरस) पुत्र के होने पर उसकी बहिन 'रिक्थ' (पैतृक संपत्ति) में कोई भाग प्राप्त नहीं करती। (न जामये तान्वो रिक्थमारैच्चकार गर्भसबितुर्निधानम्, पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जंनसं शग्भयेन मनसा दघन्ये, ऋग्वेद, 3/31/2) । स्त्री संपत्ति की अधिकारी तभी होती थी जब माता-पिता की संतान केवल कन्याएँ हों। भारतीय समाज में उसे संपत्ति को संरक्षिता तो स्वीकार किया गया, स्वामिनी कभी नहीं।

'गुप्त वंश के प्रतापी शासक चंद्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् अल्प वयस्क पुत्रों की संरक्षिका के रूप में शासन सँभाला था" (प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भाग-दो, डॉ0 वी0 सी0 पाण्डेय, पृष्ठ 165) इसी प्रकार, सम्राट हर्ष की बहन राज्यश्री ने भी पति की मृत्यु के बाद कन्नौज का शासन हर्ष के अधीन कर दिया था। प्राचीन भारतीय इतिहास में ऐसी किसी स्त्री का उल्लेख नहीं मिलता जिसने स्वतंत्र रूप से शासन-भार सँभाला हो।

महात्मा बुद्ध जैसे महान् विचारक की दृष्टि में भी नारी का स्थान तुच्छ था। बुद्ध ने नारियों को बौद्ध संघ में प्रविष्ट होने की आज्ञा अनिच्छापूर्वक देते हुए कहा था—"आनंद! यदि तथागत प्रवेशित धर्म विनय में नारियाँ घर से बेघर होकर प्रव्रज्या न पातीं तो यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता, सद्धर्म एक हज़ार वर्ष ठहरता। परंतु नारियाँ घर से बेघर हुई हैं, इसलिए अब यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी न रहेगा, सद्धर्म पाँच सौ वर्ष ही ठहरेगा।" (भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भाग-1, डॉ0 वी0सी0 पाण्डेय, पृ0 336)।

पत्नी के रूप में भी नारी की स्थिति शोचनीय ही रही क्योंकि उस स्त्री को अच्छा माना जाता था, जो पति को जवाब नहीं देती तथा पति के बाद भोजन करती हो। वह न केवल पति की वरन् पति के सगे-संबंधियों की भी देखभाल करती थी।" (आर. सी. मजूमदार, श्रेण्य युग, पृ0 630)। 'मनुस्मृति' में कहा गया है—"स्त्री को सदाचार से हीन, वासनापूर्ण आचरण से युक्त, गुणों से रहित पति की भी देवता के समान सेवा करनी चाहिए।" (विशीलो कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः। उपचर्यः स्त्रिया साध्वया सततं देववत्पतिः।। मनुस्मृति 5/154) 'स्मृति' में स्त्री की हत्या तक का अनुमोदन किया गया है—"जो स्त्री नीची जाति के पुरुष से अवैध संबंध स्थापित करे, उसे कुत्तों से नुचवाकर मार डालना चाहिए।" (भतरिं लधयेता तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता, तां श्रवमिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते। मनुस्मृति, 8/371) मनु के अनुसार—"स्त्री को सदैव पुरुष के अधीन रखना चाहिए। बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में उसे पुत्रों के अधीन रहना चाहिए।" (बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि मोषिता, न स्वातंत्रयेण कर्तव्यं किंचित कार्ये गृहेष्वपि। बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने। पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेटस्त्री स्वंत्रताम्।। मनुस्मृति, 5/147-148)। 'मनुस्मृति' में नारी के चरित्र पर भी प्रश्नचिह्न लगाया गया है, क्योंकि मनु का विचार है—"नारी का स्वभाव शृंगारिक चेष्टाओं के द्वारा लोगों के चरित्र को दूषित करना है। स्त्रियाँ काम एवं क्रोध के वशीभूत होकर मूर्ख अथवा विद्वान पुरुषों को कुमार्ग की ओर प्रवृत्त कर देती हैं, अतः पुरुषों को चाहिए कि वह माता हो या बहन अथवा पुत्री किसी भी स्त्री के साथ एकांत में न बैठे।" (अस्वतंत्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् विषयेषु च सज्जन्तयः संस्थाप्या आत्मनोवशे।।, स्वभावं ज्ञात्वास्य प्रजापति निसर्गजम् परमं यत्रामातिष्ठेत्पुरुषों रक्षणं प्रति।" अनुस्मृति, 9/2-16) इस काल में "नारी की सामाजिक स्वतंत्रता पर भी अंकुश लगना प्रारंभ हो गया था। अब वे सभाओं में भाग नहीं ले सकती थी।" (आर. सी. मजूमदार, भारत का वृहत इतिहास भाग-1, पृष्ठ 37)। 'मैत्रायणी' संहिताकार भी "नारी के सभागमन का निषेध करते है" (तस्मात्युमांसः सभा न यांति स्मियः, मैत्रायणी संहिता, 4/7/44)।

तुलसीकृत 'रामचरित मानस' में भी नारी के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया है। इसमें एक स्थान पर 'समुद्र' कहता है कि "ढोल, गँवार, शूद्र, पशु एवं नारी सभी दंड देने योग्य हैं।" (प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही।। ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।। रामचरितमानस, सुंदरकांड, पृष्ठ 705)। तुलसीदास पार्वती के माध्यम से कहते हैं कि "स्त्री पति की मन, वचन और कर्म से दासी होने पर भी 'ज्ञान' सुनने की अधिकारी नहीं है।" (जदपि जोषिता नहिं अधिकारी, दासी मन क्रम वचन तुम्हारी। रामचरितमानस, 1/10/1)। शबरी का चरित्र भी समाज में पुरुषों की तुलना में नारी की निम्न स्थिति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है कि "वह निम्न जाति की ही नहीं, वरन् स्त्री होने के कारण वह निम्न से भी निम्न है" (अधम से अधम अधम अति नारी। तिन्हमहुं अतिमंद अघारी।। रामचरितमानस, 2/35/2)। इसी तरह, जब शूर्पणखा राम एवं लक्ष्मण के समक्ष प्रेम प्रदर्शित करती है, तब लक्ष्मण उसे अपमानित करते हुए कहते हैं कि "जो पुरुष निर्लज्ज होगा, वही तुम्हारा प्रेम स्वीकार कर सकता है। (पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहि बहुरि पठाई।। लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई।।, रामचरितमानस,3/16/9) और अंततः लक्ष्मण द्वारा उसके नाक-कान काटना यह सिद्ध करता है कि उस युग में कामासक्त नारी के प्रति शारीरिक हिंसा करना अनुचित कर्म नहीं था। राम द्वारा सीता की अग्नि परीक्षा भी यह सिद्ध करती है कि रामराज्य में, जिसकी तुलना जनसाधारण श्रेष्ठतम युगों से करता है, उसमें भी नारी को अपने सतीत्व का प्रमाण देने के लिए पति द्वारा निर्धारित नियमों से गुज़रना पड़ता था। हालाँकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाकार ने राम की मर्यादा को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से यह तर्क दिया है कि "सीता के वास्तविक स्वरूप को राम ने सीताहरण के पूर्व गुप्त रूप से अग्नि के पास सुरक्षित रख दिया था और इस प्रक्रिया द्वारा यह वास्तविक स्वरूप पुनः वापस लिया जा रहा है।" (सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रकट कीन्ही चह अंतर साखी। रामचरितमानस, 6/107/7) परिणामस्वरूप सीता को अग्नि-परीक्षा देने के लिए राम आदेश देते है। परंतु, यदि राम ने गुप्त रूप से सीता को अग्नि के पास सुरक्षित रख दिया था, तो वह वापस लेने की प्रक्रिया भी गुप्त रूप से संपन्न हो सकती थी। समाज के सामने कटु वचनों के साथ इस प्रपंच को करने का एकमात्र उद्देश्य लोगों के समक्ष सीता की पवित्रता को दर्शाना मात्र था। स्पष्ट है कि इस प्रकरण द्वारा समाज को मात्र इतना संदेश देना था कि नारी चाहे कितनी भी पतिव्रता हो, परंतु उसे अपने सतीत्व का प्रमाण माँगे जाने पर देना होगा, भले ही वह राजकुल से संबंधित हो। स्वयं सीता एक स्थान पर अग्नि से प्रार्थना करती हैं कि "यदि मैंने मन, वचन और कर्म से श्रीराम के अतिरिक्त किसी अन्य का ध्यान नहीं किया, तो अग्निदेव आप मेरे लिए चंदन के समान शीतल हो जाएँ" (जौं मन बचक्रम मम उर माहीं। ताणि रघुवीर आज गति नाही।। तौं कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना।। रामचरितमानस, 6/108/4)। 'रामायण' महाकाव्य में भी सभी नारी-पात्र पतिव्रता धर्म का पालन करते दिखाये गये हैं कौशल्या, सुमित्रा, सीता, उर्मिला, मांडवी, मंदोदरी, सुलोचना आदि सभी नारी-पात्रों को महान पतिव्रता की संज्ञा देकर देवी का स्थान दिया गया है, परंतु सामान्य नारी के रूप में उनका कहीं चित्रण नहीं है। राम जैसा पुरुष भी वनगमन करते समय अपनी माता को पतिव्रत धर्म का उपदेश देता है। वास्तव में, इस महाकाव्य में नारी को अनेक कर्तव्यों से युक्त किया गया है, परंतु जहाँ अधिकारों की बात आती है, वहाँ यह मौन है।

कौटिल्यकृत 'अर्थशास्त्र' में भी नारी की स्वतंत्रता का विरोध किया गया—"यदि पत्नी बिना पति की आज्ञा के दूसरी स्त्री से भेंट करने के लिए उसके घर जाती है, तो उस पर छह पण का अर्थदंड लगना चाहिए और यदि वह पुरुष से भेंट करने जाती है, तो बारह पण। पति जब सोया हो या मदिरापान किये हुए हो, ऐसी स्थिति मे यदि पत्नी गृह-त्याग करती है, तो उसको बारह पण का अर्थदंड मिलना चाहिए। स्त्री यदि किसी पुरुष से एकांत में संदिग्ध स्थान पर हास-परिहास करे, तो अर्थदंड के स्थान पर कोड़ों का दंड दिया जाना चाहिए। इसके लिए गाँव के चौराहे पर चाण्डाल द्वारा स्त्री के शरीर पर दोनों ओर पाँच-पाँच कोड़े लगाये जाने चाहिए।" (ए. एल. बॉशम, द वंडर दैट वॉज़ इण्डिया, पृष्ठ 127)

भारतीय समाज में विधवा स्त्री के लिए यह आवश्यक था कि वह सात्विक जीवन व्यतीत करे। प्राचीन क़ानूनों के अनुसार "विधवा को आत्म-संयम और कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।" (आर. सी. मजूमदार, श्रेण्य युग, पृष्ठ 633) 'मनुस्मृति' में विधवा स्त्री के लिए निर्देश है कि वह "पवित्र पुष्प, मूल, फलों के द्वारा निर्वाह करते हुए अपनी देह को दुर्बल भले ही कर दे, परंतु पति के मरने पर दूसरे का नाम भी न ले। पतिव्रता स्त्रियों के सर्वोत्तम धर्म को चाहने वाली विधवा स्त्रियों को मरणपर्यंत क्षमायुक्त नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए।" (कामंतु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः । न तु नामापि गृह्णीयात् पत्यौ प्रेते परस्य तु।। आसीतामराणात्क्षांता नियता ब्रह्मचारिणी। यो धर्म एक पन्तीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम्। मनुस्मृति 5/157-185)। शास्त्रों में कहीं भी विधवा-विवाह की विधि नहीं है। "वैवाहिक मंत्रों में कहीं भी विधवा पुनर्विवाह का विधान नहीं है।" (न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनंपुन, मनुस्मृति, 9/65)। परंतु, यदि स्त्री सात्विक जीवन व्यतीत नहीं कर सकती, तो "उसे पति के साथ सती हो जाना चाहिए।" (वृहस्पति स्मृति, श्लोक 486-84) परंतु, पुरुषों के लिए ऐसा कोई विधान नहीं था। पत्नी की दाह-क्रिया करके पुरुष पुनः विवाह कर सकता था। वास्तव में, विधवाओं के पुनर्विवाह को रोकने के लिए ही सती-प्रथा का जन्म हुआ था। महाभारत काल में महाराज पाण्डु की पत्नी माद्री पति के साथ सती हुई थी। यूनानी डियोडरस कहता है कि भारत मे 'कठ जाति' मे यह प्रथा प्रचलित थी। इसके अनुसार "विधवा स्त्री को उसके मृत पति के साथ जला दिया जाता था।" (मैकक्रिंडिल, इनवेज़न ऑफ़ इन्डिया बाई अलेक्ज़ेंडर, पृष्ठ 279)। यूनानी लेखक अरिस्टोबुलस कहता है कि "316 ई0 पू0 एक भारतीय सेनानायक ईरान में यूमेनीज़ की सेना में लड़ने गया था। वह अपनी दोनों पत्नियों को साथ ले गया था। दुर्भाग्यवश, वह युद्ध में मारा गया, जिस पर उसकी दोनों पत्नियाँ सती होने के लिए आपस में लड़ने लगीं। चूँकि बड़ी पत्नी के गर्भ मे बच्चा था, इसलिए दूसरी पत्नी चिता पर चढ़ गयी और पति के साथ सती हो गयी।" (राधा कुमुद मुखर्जी, चंद्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ0 235-36) परंतु, सती-प्रथा का प्रथम अभिलेखीय प्रमाण गुप्तकाल में मिलता है। "510 ई0 के 'ऐरण अभिलेख' से पता चलता है कि गुप्त नरेश भानुगुप्त का सामंत गोपराज हूणों के विरुद्ध युद्ध करते हुए मारा गया और उसकी पत्नी उसके शव के साथ सती हो गयी थी।"(श्री भानुगुप्तो जगति प्रवीरो, राजा महान्पार्थ समोऽति शूर :। तेनाथ सार्द्धन्विह गोपराजो, मित्रानुगत्येन किलानुयातः।। कृत्वा च युद्ध समुहत्प्रकाशं, स्वर्ग गतो दिव्य नरेंद्रकल्पः। भक्तानुरक्ता च प्रिया च कांता, भार्यावलग्नानुगताग्निराशिम्।। ऐरण अभिलेख)।

"सम्राट हर्ष के पिता प्रभाकर वर्धन की मृत्यु के पश्चात् उनकी माँ यशोमती वैधव्य के कलंक से बचने के लिए सरस्वती के तट पर चिता में जलकर सती हो गयी थी।" (आर0 सी0 मजूमदार, श्रेण्य युग पृष्ठ 112)। यद्यपि, प्रारंभ में विधवाएँ स्वेच्छा से पति के साथ सती होती थीं, परंतु बाद में उन्हें सती होने के लिए बाध्य किया जाने लगा। प्रायः विधवा स्त्री को अफ़ीम आदि नशीला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ खिलाकर नशे की हालत में उसे पति के साथ चिता में जला दिया जाता था और यदि वह पीड़ा के कारण चिता से उठकर भागने का प्रयास करती थी, तो चिता के चारों ओर खड़े लोग भालों एवं पत्थरों से उस पर प्रहार कर उसे भागने से रोकते थे। ऐसे अवसर पर उच्च स्वर में वाद्य-यंत्र एवं करताल बजाए जाते थे, ताकि सती होने वाली स्त्री के तड़पने व चिल्लाने की आवाज़ें उस शोर में दब जाएँ।

पर्दा प्रथा ने भी नारी को अवनति की ओर अग्रसारित किया। हिंदू समाज में पर्दे की प्रथा ईस्वी सन् के प्रारंभ में प्रचलित हो गयी थी, परंतु शुरू में यह राजकुलों तक ही सीमित थी, क्योंकि सार्वजनिक दृष्टि से बचने के लिए पर्दा धारण किया जाता था। बौद्ध काल की कुछ रानियाँ पर्दायुक्त रथों पर यात्रा करती थीं। इसी प्रकार, भास के नाटकों में भी पर्दा-प्रथा का उल्लेख किया गया है।'स्वप्नवासवदत्ता' से पता चलता है कि विवाह के पश्चात् स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं। भवभूति व माघ अपनी रचनाओं में पर्दे का वर्णन करते हैं। इससे स्पष्ट है कि तीसरी शताब्दी के लगभग समाज के कुलीन वर्ग में पर्दा-प्रथा का आरंभ हुआ, जिसका अनुकरण समाज के सामान्य परिवारों में भी किया जाने लगा।

नारी-जीवन की त्रासदी का एक पक्ष वेश्यावृत्ति के रूप में भी सामने आता है। प्राचीन काल से ही यह प्रथा 'देवदासी' के रूप में हिंदू समाज में रही है। "बनारस के दक्षिण में लगभग 160 मील की दूरी पर विंध्याचल की पहाड़ी पर स्थित रामगढ़ की गुफा से धार्मिक वेश्यावृत्ति का प्राचीनतम लेख प्राप्त हुआ है।" (ए. एल. बॉशम, द वंडर दैट वॉज़ इन्डिया, पृ0 132)। मंदिरों में ये कन्याएँ देवदासी के रूप में नृत्यगान करती थीं। देवताओं को समर्पित किये जाने के कारण इनका पुरुषों के साथ वैवाहिक संबंध वर्जित था। "कालिदास ने उज्जयिनी के महाकाल मंदिर में देवदासियों का वर्णन किया है।" (के0 सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, पृ0466) दक्षिण में देवदासी प्रथा सामान्य रूप से प्रचलित थी, जहाँ यह वर्तमान काल तक जारी है। दक्षिण के अनेक अभिलेखों में देवदासियों के प्रसंग आये हैं, जैसे—"चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठम के सेनापति ने अपनी माता की स्मृति में जिस मंदिर का निर्माण किया, उसमें परम सुंदर देवदासियों के लिए निवास-स्थान बने थे।" (ए.ए. बॉशम, द वंडर दैट वॉज़ इन्डिया, पृष्ठ 131)। इसी प्रकार, महात्मा बुद्ध के समय में "आम्रपाली, जो वैशाली के एक धनिक की पुत्री थी, उसके अभूतपूर्व सौंदर्य और गुणों के कारण लिच्छवियों की लोकतांत्रिक सभा में प्रचलित प्रथा के अनुसार यह निश्चय किया गया कि उसका विवाह नहीं होगा और सर्वलोक के भोग के लिए वह गणिका का जीवन व्यतीत करेगी।" (आर. सी. मजूमदार, प्राचीन भारत, पृष्ठ-174)

अतः, यह मानना कि नारी की स्थिति में गिरावट मुस्लिम आक्रमणकारियों के परिणामस्वरूप आयी अथवा मध्यकाल की अपेक्षा प्राचीन भारत में नारी की स्थिति सुदृढ़ थी—सर्वथा भ्रामक है, क्योंकि भारतीय समाज में प्रारंभ से ही नारी को पुरुष के अधीन रखा गया। कन्या का जन्म इतना अप्रिय माना जाता था कि प्रायः जन्म लेते ही उसकी हत्या कर दी जाती थी। नवजात बालिका को उसका पिता या सगे -संबंधी उसके मुख में गाय का गोबर ठूँसकर, अधिक मात्रा में अफ़ीम खिलाकर, पानी से भरे पात्र में डुबोकर या चारपाई के पाये के नीचे उसकी गर्दन रखकर, स्वयं चारपाई पर बैठकर—अनेक अमानवीय कृत्यों द्वारा उसकी जीवन-लीला समाप्त कर देते थे।

इसी तरह, 'स्वयंवर-प्रथा' के संदर्भ में कहा जाता है कि प्राचीन भारत में कन्याओं को अपना पति चुनने का स्वयं अधिकार था। परंतु, वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत थी, क्योंकि कन्या का पिता विवाह के लिए बल, शौर्य, पराक्रम, कुशलता के प्रदर्शन हेतु कोई कठिन लक्ष्य रखता था, जिसे बेधकर कोई भी पुरुष उस कन्या को प्राप्त कर सकता था। चाहे वह पुरुष रोगी, कुरूप, विकलांग, बहुपत्नीधारी अथवा आयु में कन्या के पिता से अधिक ही क्यों न हो। वास्तव में यह विवाह हेतु एक ऐसी-प्रतियोगिता थी, जिसे 'स्वयंवर' नाम दिया गया और इस प्रतियोगिता में विजित पुरुष को शील्ड अथवा पुरस्कार के रूप में कन्या प्रदान की जाती थी। तत्पश्चात्, पत्नी के रूप में वह संतानोत्पत्ति का साधन मात्र थी तथा विधवा के रूप में उसे नारकीय जीवन जीने के लिए विवश किया जाता था । वह भूमि पर सोती थी तथा दिन में केवल एक बार मधु, माँस, मदिरा, मिर्च यहाँ तक कि नमक के बिना भोजन ग्रहण करती थी। रंगीन वस्त्रों, आभूषण एवं सुगंधित पदार्थों का प्रयोग तो उसके लिए वर्जित था ही, उसे सिर के केश भी मूड़ दिये जाते थे। परंतु, समाज में पुरुषों के लिए ऐसा कोई नियम अथवा क़ानून नहीं था। इस तरह, स्त्री पुरुष के वैभव की प्रदर्शिनी मात्र समझी जाती थी और जिस तरह बच्चे के न रहने पर उसके खिलौने फेंक दिये जाते हैं, उसी प्रकार पति के न होने पर पत्नी के जीवन का कोई उपयोग नहीं रहता था। समाज अथवा घर में कहीं सम्मानपूर्वक स्थान नहीं मिलता था। या तो जीवित भस्म करके स्वर्ग में पति के विनोदार्थ भेज दिया जाता था या सांकेतिक रूप से मृत पति का निर्जीव स्मारक बनकर जीना पड़ता था। वास्तव में, प्राचीन भारतीय समाज ने सैद्धांतिक रूप से तो उसे 'देवी' का स्थान दिया, परंतु व्यावहारिक रूप में वह पुरुष की भोग्या ही रही। आदर्श नारी का वास्ता देकर उसे कर्तव्यों से लाद दिया गया। इस प्रकार, भारतीय नारी की स्थिति में गिरावट 'वैदिक युग' से ही दृष्टिगोचर होने लगी थी, उत्तरोत्तर बढ़ती चली गयी।

फ़्लैट नं. 01, मैत्रेयी अपार्टमेंट,
खंड-6, वनस्थली विद्यापीठ-304022, (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिकालीन मूल्य-व्यवस्था और नारी की घुटन

रवींद्र कुमार पाठक

भक्तिकाल का यह पुनर्पाठ मेरी दो धारणाओं का विस्तार है। पहली यह कि भ्रम से मुक्त हो जाने की ज़रूरत है कि 'भक्तिकाल' अतीत की वस्तु बन चुका है और दूसरी यह कि भक्तिकाल किन्हीं संदर्भों में उस काल में भले आधुनिकता रखता हो, परंतु आज हमें उस काल में विकसित हुए या गढ़े गये मूल्यों पर रीझना और भक्तिकाल को सुनहरे लेबल लगाकर पेश करना उचित नहीं लगना चाहिए। कारण यह है कि वह आधुनिकता आज की विज्ञानसम्मत लोकतांत्रिक जीवन-दृष्टि के सामने अपर्याप्त ही नहीं, बल्कि ख़तरनाक भी है; ख़ासकर नारी के संदर्भ में। भक्तिकाल का नारी-दृष्टि से पाठ सभी पाठों से बढ़कर महत्त्वपूर्ण इसलिए है, क्योंकि वह सबसे विशाल जनसंख्या वर्ग (पचास प्रतिशत) के जीवन-मरण या योग-क्षेम से जुड़ा हुआ है। इसलिए, पुनर्पाठ की यह कोशिश लचर हो तो हो, पर सामाजिक प्रतिबद्धता में हर्गिज कमज़ोर नहीं है—यही विश्वास मेरा दम है।

भारत के विशाल भू-भाग में चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक व्याप्त भक्ति की लहर जिसने तत्कालीन समाज के वर्ण/जाति, कुल, मज़हब की सीमाएँ तोड़कर जनांदोलन का रूप धरा था, उसका क्रांतिकारी जोश आज भले कहीं खोजने पर भी न मिले, परंतु (कर्मकांड-जाल और) स्त्री-विरोधी मूल्य-व्यवस्था का जो कचरा वह छोड़ गयी है, उस में ज़रा सी भी कमी नहीं आयी है, बल्कि विज्ञान-उपकरणों पर सवार होकर वह इस तेज़ी से घर-घर में फैल रहा है कि कहना पड़ता है—काश! आस्था, संस्कार, साधना, जागरण जैसे धार्मिक चैनल अहर्निश धर्म की अमृतवर्षा (?) कर रहे हैं और इलेक्ट्रॉनिक राम के जनक रामानंद सागर के वंशजों ने एन.डी.टी.वी. इमेजिन के माध्यम से देश की जनता को पुनः रामायण के घूँट पिलाने का बीड़ा जब उठा लिया है, तो कैसे कह सकते हैं कि भक्तिकाल अब नहीं रहा? एक सर्वे के अनुसार देश में विद्यालयों से भी ज़्यादा मंदिरों की संख्या है। भक्तिकालीन मूल्य-व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के प्रयास (मुरारी बापू, आसाराम बापू, सुधांशु महाराज, अवधेशानंद, ऋतंभरा) न केवल विज्ञान को हर स्तर पर अंधविश्वासमूलक धर्म से पराजित दिखाने की दिशा में होते हैं, बल्कि कहना चाहिए कि जैसे-जैसे उस मूल्य-व्यवस्था का प्रसार होता है, वैसे-वैसे स्त्री को अनुशासित, शासित और परिभाषित करने की मुहिम तेज़ होती है। नतीजा, स्त्री की स्वतंत्रता पर अंकुश लगना शुरू हो जाता है, उसके कपड़ों की बढ़ रही सहजता को बलात्कार का कारण बताया जाता है, घरेलूकारण व घरेलू हिंसा से निबटने के उसके प्रतिरोध को समाज-विरोधी गतिविधि करार दिया जाता है तथा जीवन के हर क्षेत्र में झंडे गाड़ चुकी लड़की से भी अपेक्षा की जाती है कि वह पति के पैर छुए और करवा चौथ करे, खाना पकाये और ससुराल के बड़े-बूढ़ों के अनुचित व्यवहार पर भी जुबान पर ताला लगा के रहे। 'जिमि सुतंत्र होहिं बिगहिं नारी' का विचार क्या अपनी व्यावहारिकता खो सकता है?

यह संभव है कि विचारधारात्मक स्थिति को देखते हुए पूरा भक्तिकाल एक ही प्रवृत्ति के खाँचे में न बैठाया जा सके, परंतु जो चार चर्चित धाराएँ (ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, रामभक्ति, कृष्ण भक्ति) हैं, उनमें से किसी में भी स्त्री को समुचित व्यक्तित्व नहीं मिला। कुछ इक्का-दुक्का अपवादात्मक स्थितियाँ भले बन लें, पर स्त्री को कुलक्षण या विलक्षण मानने की अमानवीयता ही भक्तिकालीन नारी-दृष्टि का सच है। रीतिकालीन आलोचना का यह आरोप भक्तिकाल पर लगाना भले असंगत हो कि कवि नारी के साढ़े तीन हाथ के शरीर में ही चक्कर काटते रहे, परंतु यह तो सच है कि भक्तिकालीन आम दृष्टि में नारी साढ़े तीन हाथ की देह से अधिक नहीं है। रही मीरा की बात, तो यह स्पष्ट कर देना चहिए कि पितृसत्ता और राजसत्ता से स्त्री के संघर्ष की मिसाल बनीं मीराबाई को भक्तिकालीन बोध पचा नहीं सकता था, तभी तो अध्यात्मवाद का दम भरने वाले जीव गोस्वामी को वे संत या आत्मा नहीं, एक देह मात्र (स्त्री) दिखी थीं, जिसके कारण उन्होंने मीरा से मिलने से इन्कार कर दिया था। जब इस कोटि की महिला को जेन्डर-भेद का इतना घिनौना शिकार एक ज्ञानी(?) पुरुष के हाथों बनना पड़ रहा था, तो जहाँ-तहाँ स्वाभाविक रूप से उग आयीं आम स्त्रियों का अनाड़ी पुरुषों द्वारा कैसा सत्कार संभव था—सोचने की बात है। जब किरण बेदी औरत होने की सज़ा भुगत सकती हैं, तो आम स्त्री किस नर्क में होगी—सहज सोचा जा सकता हैं।

विद्रोह के व्यक्तिगत स्तर पर खड़ी भक्तिकाल की मीरा भले इक्कीसवीं सदी की तसलीमा की बहन न हों, परंतु उनकी किसी रिश्ते में नानी ज़रूर होंगी और यही वह तथ्य है, जो भक्तिकाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चार धाराओं में देखने की आदत को झटका देकर पाँचवी के लिए स्पेस बनाता है और वह पाँचवी धारा है—स्त्री की। 'कुलकानि' और 'लोकलाज' को धता बताकर अपनी शर्त पर ज़िंदगी जीने का अपराध मीरा ने किया था, सवर्ण राज परिवार की होकर भी एक शूद्र (रैदास /रोहीदास) को गुरु बनाने का अपराध किया था, स्वयं वरण किये गिरिधर गोपाल को अपना बनाकर 'दूसरो न कोई' का उद्घोष कर एक ही झटके में राजसत्ता व पितृसत्तात्मक मूल्य-व्यवस्था/ विवाह-व्यवस्था के परखच्चे उड़ा दिये थे। मीरा ने स्त्रीत्व के उस मिथक को तार-तार किया था, जो मातृत्व के अलावा किन्हीं अन्य कामनाओं की अनुमति औरत को नहीं देता। फिर, वह मातृत्व भी कितना खंडित मातृत्व! सिर्फ़ बेटे जनने को समर्पित/मजबूर मातृत्व! बेटे-वीरपुत्र! ताकि युद्ध में काम आ सकें। युद्ध कैसे? राजाओं के क्षुद्र अहं या सेक्सुअल फ्रस्ट्रेशन को निकालने हेतु आयोजित जिसके केंद्र में कभी-कभी जवान लड़की की देह होती थी। खुद मीरा का विवाह भी तो एक ऐसे ही युद्ध को टालने के लिए आपद्धर्म के रूप में था और गठबंधन की राजनीति का अंग था। ऐसे थोपे गये पत्नीत्व से इन्कार बहुत बड़ी बात है, भले उस इन्कार का साधन एकदम स्वतंत्र जीवन को न बनाकर वैष्णव भक्तिधारा के सिद्ध प्रतीक कृष्ण के साथ गठजोड़ में दिखता है। मीरा की सीमा यह भी है कि वे सारे पितृसत्तात्मक प्रतिमानों के अपने नकारों के बावजूद कृष्ण को अपना दोस्त नहीं बना पातीं, बल्कि 'पति' ही बना सकी हैं। फिर, उस पति की भक्ति करने, पतिव्रता बनने में भी उन्हें कभी-कभी रस मिलता है। फिर यह भी कहा जा सकता है कि कलियुग की मीरा का द्वापर के कृष्ण से रिश्ता बनाना कितने बड़े अनमेल विवाह का आभास है। परंतु, यहाँ यह कतई नहीं भूलना चाहिए कि कृष्ण मीरा के मन में चिर युवा-हमउम्र बने बैठे हैं। फिर भी, यह वरण तो वास्तविक नहीं ही है, प्लेटॉनिक (अशरीरी) है। यह स्थिति वहीं संभव है, जहाँ जीवन के वास्तविक धरातल पर प्रेम या काम का अस्वीकार हो। भक्तिकालीन मूल्य-व्यवस्था का यह आवश्यक अंग था कि किसी (ख़ासकर स्त्री) के वास्तविक प्रेम या सेक्स करने का अधिकार समादृत तो नहीं ही था, बल्कि स्त्री का अधिकार तो 'आदर्श' या 'ताक़त' से कुचलने में मर्दानगी का जश्न लगता रहा है। आज भी पश्चिमोत्तर भारत की कई पंचायतों द्वारा दिनदहाड़े प्रेमियों की हत्याएँ कर दी जा रही हैं और 'वेलेन्टाइन डे' के हिंसक विरोध का अखिल भारतीय रूप विद्यमान है। ऐसे समय में जब 'जनसत्ता' जैसे बुद्धिजीवी प्रगतिशील अख़बार द्वारा देवराला सती कांड का एक तरह से समर्थन किया जाए[1], तो 'पद्मावत' की नायिकाओं द्वारा वीरप्रसू धरती की लपटों में जल मरने की मूर्खता को महिमामंडित करने अथवा चिता पर स्त्री को जला डालने की इस क्रूरता से नज़रें हटाकर सिर्फ़ अध्यात्म की फ़ाकामस्ती करने वाले भक्तिकाल को कोसने का फिर से मन करने लगता है। कबीर, तुलसी, जायसी, सूर आदि सभी बड़े कवि स्त्री को सती बनाने की घट रहीं व्यापक घटनाओं पर भी चुप्पी लगाये यदि बैठे हों[2], तो यही क्या कम अपराध है? एकनिष्ठ प्रेम के प्रतीकों में 'सती स्त्री' को उपमा बनाकर ये कवि भक्ति का ही नहीं, सती का भी महिमामंडन कर डालते हैं। ऐसे समय में पति की मौत के बाद मीरा द्वारा सती होने से इन्कार ("मीरा के रंग लग्यो हरी की ओर रंग सब अटक परी। गिरिधर गास्यां सती न होस्यां मन मोहयौ घन") एक साहसी क़दम था। शोभा, अलंकरण, मॉडलिंग, फ़ैशन आदि गलियों में भ्रमित और देह-बोध में ही उलझी, पर 'स्वतंत्रता का दंभ करतीं बहुतेरी कॉलेजिएट लड़कियों के लिए भी मीरा आईना दिखला रही हैं कि मुक्त कैसे हुआ जाता है। इन सब फ़ालतू के कूड़ों को उतार डालो और सहजता की धारा में गाती-नाचती बह चलो। इस रूप में लगता है कि मीरा पाँच सौ साल पुरानी वृद्धा नहीं, बल्कि जवान छोरी हैं-आधुनिका। ऐसी स्त्री को पचा न सकने की अक्षमता ही भक्तिकालीन मूल्य-व्यवस्था के स्त्री-निरपेक्ष से बढ़कर स्त्री-विरोधी चरित्र का कच्चा चिट्ठा है। मीरा ने स्त्री-प्रश्नों को भले व्यापक तौर पर न उठाया हो , पर व्यक्तिगत मुक्ति के प्रयत्न किये इसमें कोई शक नहीं, पर उन्हें भी भक्तिकाल का पुरुषवादी अध्यात्मवाद जगह देने में अक्षम रहा।

'भक्ति' का आंदोलन न सिर्फ़ पुरुषकृत है, बल्कि 'भक्ति' की पूरी थीसिस ही पितृसत्तात्मक सामंती फ्रेम में सेट करती है। भक्तों का, संतों का आराध्य ईश्वर चाहे पिता के रूप में हो या पति के रूप में (या थोड़ा-सा सहज होकर दोस्त/सखा रूप में) वह है तो मर्द ही। चाहे जो भी धर्म-समाज भक्ति की धारा बहाये, पर ईश्वर की इस कल्पना को ही मानकर चला गया है। ईश्वर परम पिता है। शाक्त संप्रदाय के इतने प्रयासों के बावजूद ईश्वर जगदंबा नहीं बन सका (सकी?)। यह होता भी कैसे? शाक्त संप्रदाय समेत हर धर्म/भक्ति संप्रदाय को पुरुष ने खड़ा किया है और एक भी प्रमुख संप्रदाय न होगा, जिसका प्रतिनिधित्व स्त्री ने किया हो। स्त्री के रूप में शक्ति की कल्पना से स्त्री का क्या भला हो सकता है? ज़रूरत स्त्री के शक्ति बनने की नहीं, बल्कि शक्तिमान बनने की है। एल.टी.टी.ई. जैसे आतंकवादी मुक्तिकामी संगठनों में क्या महिलाएँ बंदूक धर कर नहीं खड़ी हैं, पर क्या वे शक्तिमान भी हैं? शक्तिमान की जगह बैठा है कोई तो मर्द (प्रभाकरन) ही। भक्ति की दुनियाँ में व्यावहारिक स्तर पर भले ही स्त्रियों की उपस्थिति दिख जाए (हालाँकि उसमें भी संदेह है। केरल के सबरीमाला मंदिर में दस से पचास वर्ष तक की औरतों के प्रवेश से राष्ट्रीय डर है देवता को) पर सच तो यह है कि कोई भी धर्म स्त्री का नहीं है। हर धर्म ने स्त्री को देह से ज़्यादा कुछ न समझा और उसी देह से जन्म लेने के बावजूद धर्म-संस्थापकों को यह कहते शर्म न आयी कि नारी नर्क का द्वार है, माया है। ईश्वर की बाप के रूप में कल्पना हिंदू, ईसाई, मुस्लिम, सबमें है। यह ठीक है कि एक समय का जीव-विज्ञान इतना विकसित न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि समझा सके कि स्त्री युग्मक अंडाणु या डिंब ही भ्रूण रूप में विकसित होता है। शुक्राणु तो सिर्फ़ उसे द्विगुणित या डिप्लायड बनने का हेतु है और क्लोनिंग जैसी प्रौद्योगिकी के बाद उस हेतु की अनिवार्यता से भी मुक्ति मिल चुकी है। यानी सृष्टि-परंपरा के लिए नारी ही पर्याप्त है, नर की ज़रूरत हल्की हो चली है। नारी ही जननी है। पर, इस सत्य से भक्तिकाल वंचित था। लेकिन, सवाल वंचित होने का नहीं है, सवाल इस दिशा में जानकारी के किसी प्रयास की ज़रूरत न समझने का है, जैसा कि इस युग में भी महाविद्वान तक करते हैं। जननी नारी है, इसलिए भक्ति के केंद्र में जो ईश्वर होना चाहिए था, उसे नारी रूप में होना चाहिए था। पर कहाँ है? अपने को ईश्वर की प्रेमिका (पत्नी) मानकर स्त्री-भाव से की गयी पुरुष भक्तों की साधनाओं में बहुविवाही सामंत पुरुष झाँकता है, क्योंकि एक परमात्मा की अनेक आत्मरूपी प्रेमिकाएँ यहाँ है। 'मानस' में तुलसीदास का पूरा भक्तिमय वंदना का तामझाम "वर्णानामर्थ संघाना..." से शुरू होकर "वंदेऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं भजे" पर परिणत होता है। यानी गणेश, सरस्वती, हनुमान और यहाँ तक कि सीता भी तुलसी के लिए केवल इस कारण पूज्य हैं, क्योंकि वे ईश्वर (राम) तक पहुँचाने वाली सीढ़ी हैं। 'रामायण' हो या 'रामचरित मानस'-है तो पुरुष राम की प्रधानत्ता के गर्भगृह पर ही रचा। सीता शक्ति हैं, प्रकृति हैं, माया हैं; राम ब्रह्म हैं। 'रघुवंश' के कालिदास के लिए भी पत्नी तो सिर्फ़ पार्वती हैं; पति (शिव) परमेश्वर की पदवी से विभूषित। तुलसी की वंदना-पद्धति की उसी आधुनिक व्यावहारिकता से तुलना की जा सकती है, जिसमें बॉस तक पहुँचने के लिए उसकी पत्नी को वचन, धन या मन से पटाया जाता है। 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' में रामस्वरूप चतुर्वेदी जी की इस टिप्पणी से सहमत हुआ जा सकता है कि तुलसी ऊपर से विनयी हैं, पर अंदर से जटिल और व्यवहारकुशल। इसी तरह, कृष्ण भक्ति के संप्रदायों में भी परमेश्वर कृष्ण हैं, राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति। यह ठीक है कि सेक्स के प्रति उतना निगेटिव रवैया कृष्णभक्ति काव्यों में नहीं है, क्योंकि आराध्य कृष्ण मर्यादा-रक्षक नहीं, बल्कि लोकरंजन के लिए नयी-नयी मर्यादाएँ बनाते हैं, रक्त-संबंधों की मर्यादाओं पर आदर्शीकृत गृहस्थ जीवन के समानांतर एक ताज़ा दुनियाँ बनाते हैं—स्त्री-पुरुष के प्रेम-संबंधों से बनी। परंतु, समस्या वहाँ भी है। सूरदास के काव्य में नारी 'अवगुन आठ सदा उर रहहिं' से भले मुक्त न हो, परंतु स्त्री-पुरुष समता के तमाम यूटोपियाई (वृंदावनी) समाज के कलरव के बावजूद सूर की सीमा यही है कि बहुविवाही कृष्ण उनकी परमात्म कल्पना का आधार हैं। तुलसी के राम ने पत्नी के साथ पूरा न्याय न किया (और सीता-त्याग जैसा न्यायी मर्दवाद का उदाहरण राम से पेश करवाने से तुलसी बचे रहे), परंतु उस सामंती समाज में किसी स्त्री विशेष के साथ एकपत्नीव्रत के आदर्श की शुरूआत करना ही किसी पुरुष का कितना प्रगतिशील क़दम है! सूर के कृष्ण बहु स्त्री विवाही (भोगी?) की छवि के साथ स्त्री-कल्याण का कितना दम भर सकते हैं? दूसरी बात, सूर में भक्ति के प्रतीक के रूप में सती स्त्री की उपमा देना जारी है :

"देह छिन-छिन होति छीनी दृष्टि देखत लोग
सूर स्वामी सौं विमुख ह्वै सती कैसे भोग?"

उद्धव से प्रतिवाद करती गोपियाँ कहती हैं- "निर्गुण कौन देस को बासी/को है जनक, कौन है जननी, कौन नारी, को दासी।" यानी, प्रतिवाद्य निर्गुण भी रिश्तों में बँध गया—वहाँ भी पुरुष बन गया। उसे पत्नी, दासी-सबकी ज़रूरत पड़ गयी। इसी प्रसंग में इस्लाम पर विचार करना समीचीन होगा। यद्यपि इस विचार से असहमत होने का कोई सवाल नहीं है कि मध्यकालीन अरबी समाज में जहाँ धर्म और राजनीति की अनंत विशृंखलताओं में, क़बीलों के शतधा शोरगुल में किसी 'ऐक्य' की घोर कमी थी, जो किसी भी विकास की मूलभूत अर्हता है। इस्लाम भाईचारे के क्रांतिकारी दर्शन के साथ बड़ी तेज़ी से व्यावहारिक बना और वैसा होना ऐतिहासिक ज़रूरत थी, तो भी, साथ-साथ यह भी मानना पड़ेगा कि स्त्री को न्याय देने में इस्लाम के दर्शन व कर्म पर्याप्त नहीं हो सकते थे। कारण, इस्लाम बहुविवाही/स्त्री-अपहर्ता अरबी समाज के बीच उभरा, पर व्यावहारिक कारणों से उस की स्त्री-विरोधी संरचना को बहुत बदल न सका। बहुविवाह को मर्दों द्वारा चार औरतों तक से ही विवाह तक ला पाया, नवजात कन्या वध का अंत करने तथा एक सीमा तक स्त्रियों को संपत्ति- अधिकार भी दे सकने के बावजूद इस्लाम स्त्री को देह समझने और मर्दों के लिए उसके विनियोग की अंतरराष्ट्रीय परियोजना का अंग बनने से ख़ुद को बचा न सका। जैसे कि तमाम क्रांतिकारिता के बावजूद कबीरदास स्वयं को पितृसत्ता से न बचा सके। इस्लामी दर्शन की छाया में भारतीय अद्वैतवादी धारा जैसी ही किसी प्रेरणा ने सूफ़ीवाद के रूप में आकार ग्रहण किया था। भारत में सूफ़ियों द्वारा प्रेममार्गी काव्य धारा तब अवतरित हुई, जब हिन्दू-तुरक संघर्ष की धार कम हो चली थी और उनमें समन्वय की प्रक्रिया चलने लगी थी। दार्शनिक स्तर पर तो सूफ़ी नारी को नूरे मोहम्मदी (परमेश्वर?) के समकक्ष मानते थे—ऐसा कहा जाता रहा है, पर व्यावहारिक धरातल पर सूफ़ी कवि स्त्री को दोयम दर्जे की बना डालने वाली पितृसत्तात्मक मूल्य-व्यवस्था (पातिव्रत्य, सतीत्व, पुरुष का बहुविवाह, नारी को सौंदर्यमय मानना आदि) के ही शिकार हैं। जायसी के 'पद्मावत' की नायिका पद्मावती को परब्रह्म और रत्नसेन को जीव ठहराने की बिवेचना कितनी व्यर्थ है! क्या ब्रह्म (पद्मावती) द्वारा जीव (रत्नसेन) की (पति) भक्ति अथवा उसके लिए जलकर सती होना संभव है? जायसी नारी-संबंधी परंपरागत विचारों को ही दोहराते हैं—नारी मंदबुद्धि होती है, स्वभाव से चंचल होती है; पर पुरुष को अपेक्षाकृत दृढ़ दिखलाते हैं ये।[3] सूफ़ी कहीं स्त्री को काम वासना का रूप नहीं मानते,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु व्यावहारिक स्तर पर सूफ़ी कवियों ने किसी ऐसे प्रेममार्ग की रचना नहीं की कि जिसमें पुरुष व स्त्री के बीच का प्रेम बराबरी के स्तर पर हुई रागात्मकता का परिणाम है। अन्यथा, नागमती के रहते रत्नसेन किसी कमसिन छोरी (पद्मावती) के पीछे नहीं भागता। नागमती को आठ-आठ आँसू नहीं रोने पड़ते। पति की नालायकी का दंड विवाह के पिंजरे में बंद और वहाँ भी पातिव्रत्य की ज़ंजीर से लाचार नागमती न भोगती तथा विकल्पहीनता की स्थिति का सामना न करती। अधेड़ विवाहित मर्द (रत्नसेन) से नवयुवती (पद्मावती) को बाँध डालने वाली घृणित विवाह-प्रथा न होती। जायसी के ये सारे चित्रण और तुलसी के 'मानस' के चित्रण में क्या कोई अंतर रह जाता है? दशरथ जैसों के बहुविवाह और अनमेल विवाह की तर्कहीन सश्रद्ध स्वीकृति तुलसीदास के पास ही नहीं, बल्कि आज के लोकतंत्र के युग में हमारे पास भी है—यही मुख्य चिंता का विषय है। जायसी द्वारा नखशिख की काव्य-रूढ़ि का इस क़दर पालन कि उसके आगे बिहारी लाल और 'फ़ैशन टी.वी. की मॉडलिंग भी एकबारगी पीछे नज़र आए, क्या किसी स्वस्थ स्त्री-दृष्टि का प्रस्ताव है?[4] 'स्त्री-सौंदर्य' नामक गढ़ा गया मिथ कालिदास युग से आज तक के युग को चला रहा है। स्त्री को प्रतिभा या देह-बल की संभावना से अलग कर उसे देह की अंध गलियों में ही भटकने को मजबूर कर रहा है। स्त्री सदियों से 'सुंदर' होने को मज़बूर की गयी है, तो ऐसे ही छद्म मूल्य के कारण, जिसे 'सौंदर्य' कहा गया है। देह की पुष्टता या स्वस्थ-सहज बनाये रखने लायक परिधानों की जगह बेतुके और भौंडे क़िस्म की लदफद की शिकार बनाते हुए उसे वस्त्राभूषण की दूकान बना रखा है। इस प्रकार, स्त्री की देह का दलन किया है तो इसी हिंसक 'सौंदर्य' ने। इस के रहते स्त्री को सम्मानित करने का हर दावा खोखला है। समय और जान दोनों को खाने वाले सौंदर्य का नखशिखी महिमामंडन प्रेममार्गी काव्यों की स्त्री-विरोधी छवि का एक सशक्त प्रतिमान है। 'मधुमालती' में ससुराल जाती बेटी (मधुमालती) को माँ सीख देती है कि पति की सेवा मन लगाकर करना और सारी रात उस के पैर दबाना। पति से बहुत मान न करना चाहिए, क्योंकि उससे उसका चित्त तुमसे फिर जाने का खतरा है। वह बहुविवाही लत के शिकार राजाओं के युग में बेटी को यह सीख देने पर मजबूर है कि सौत से मित्रता करके रहना, सास के पैर धोना और गाली हँसते-हँसते झेल लेना। जायसी ने वेश्याओं की उस तरह निंदा नहीं की, जिस तरह कबीर ने की; बल्कि उन्होंने उन्हें भी सामाजिक जीवन के यथार्थ का अंग माना। कहना होगा कि इस जगह पर दोनों कवि ग़लती के ही शिकार हैं। जायसी के साथ कबीर वेश्या-समस्या पर कोई सवाल नहीं खड़ा करते, बल्कि वे मर्दों की यौन विक्षिप्त जमात की गिरफ़्त में स्त्री के वेश्या बनने की मजबूरी को ज़रा-सा भी समझने के काबिल नहीं हैं। उनकी दृष्टि में वह एक ऐसी अछूत है, जिससे बचना ही चारित्र्य की निशानी है। यह दृष्टि निश्चय ही नासमझी की है—स्त्री-पीड़ा की मीमांसा से निरपेक्षता का प्रमाण है। इसी के साथ वे पतिव्रता स्त्री के उपमान द्वारा भक्ति की श्रेष्ठता को समझाते हैं। फिर, नारी को (पुरुष की) ज्ञानमार्ग की बाधा और माया मानते हैं। उन्होंने भक्तिकाल के सबसे क्रांतिकारी सामाजिक विचार रखकर भी स्त्री की किसी समस्या (बाल-विवाह, सती-हत्या, घरेलू हिंसा, वेश्यापन) को समझने में नाकामी का परिचय दिया। सही में, उनकी प्रगतिशीलता की सीमा भाईचारा है, इस्लामी सद्भाव की भी यही सीमा है। हिंदू और मुसलमान एक ही ईश्वर की संतान हैं, अतः भाई-भाई हैं—यह बोध अवश्य प्रगतिशील है, पर नारी को न समेट पाने के कारण भाईचारा अधूरी अवधारणा है—सिर्फ़ पचास प्रतिशत की शांति की कल्पना। स्त्री को पुरुष के बराबर न्याय का हक़दार मानने का कोई सोच कबीर के दर्शन में नहीं हो सकता था, क्योंकि वे भी पुरुषवादी अध्यात्मवाद की ज़मीन पर खड़े हैं। "नारी की परछाईं ते अंधो होत भुजंग' कहने वाले कबीर और 'अधम ते अधम अधम अति नारी' के उद्घोषक तुलसीदास में क्या अंतर रह जाता है? कबीर की तरह दादू भी नारी को अविश्वसनीय मानते हैं तथा उसे पुरुष से नीचा दर्जा प्रदान करते हैं।[5] उन के यहाँ भी नारी वासना/माया का रूप है, जिससे नर (मर्दों) को बचना चाहिए। पुरुषों की ईश्वरोन्मुखता की राह में बाधा-रूप में स्त्री को मानना-भक्तिकाल की यह आम प्रवृत्ति नारी-संबंधी अन्याय का समूचा नहीं, तो सर्वोपरि लक्षण अवश्य है।[6] कवियों/संतों को यहाँ तक हो सकता है कि कुछ उन लिंगियों ने पहुँचाया होगा, जो यौन-अस्मिता से भरी या अपने यौन अधिकार को लेकर उठ खडी हुई होंगी, जिन्हें आज तक समाज 'व्यभिचारिणी' कहता आया है, पर असली व्यभिचारियों (बहुविवाही लंपटों) को ईश्वरावतार के बाप की श्रद्धेय पदवी प्रदान करता है। स्त्री-पुरुष में ऐसे विसंगत मूल्यों की रचना में अहम भूमिका निभाने वाले हिन्दी के सुपरहिट महाकवि तुलसीदास और उनके सुपरहिट (फ़िल्म) 'मानस' की नारी-कथा तो हरिकथा की तरह ही अनंत है। 'तीय अधर बुधि', 'जिमि सुतंत्र होहिं बिगरहिं नारि', 'नारी स्वभाव सत्य सब कहहीं', अवगुन आठ सदा उर रहहीं' आदि उद्गारों से उनका मानस लोडेड है। फिर, इस पर भी संतोष न हुआ तो 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी' का मार्शल लॉ उन्होंने ज़ारी कर दिया। पितृसत्ता की आलोचना के सूत्रधार कितनी लक्षणा, व्यंजना, प्रसंग या पाठांतर की दुहाई देते, क्षेपक का बहाना बनाते तुलसीदास को गंगाजल से करा रहेंगे? जब वे साफ़-साफ़ अभिधा में यह फ़रमान जारी करते हैं, तब सब की बोलती बंद हो जाती है :

"वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना।
अंध बधिर क्रोधी अतिदीना।।
ऐसेहु पति कर किए अपमाना
नारी पाव जमपुर दुख नाना।।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी ने स्त्री को साफ़-साफ़ फटकार लगाने के साथ धिक्कार की मुद्रा में भी बहुत कुछ कहा है, जिनसे उनका नारी संबंधी दुराग्रह व्यवस्थित नज़र आता है। उन्होंने पुरुषों की तरह नारियों के भी गुणगत चार विभाग किये—उत्तम, मध्यम, अधम, खल। परंतु पुरुष का विभाग जहाँ उसके स्वार्जित गुणों (दानवीरता, संवेदनशीलता, सत्यनिष्ठा, वैदुष्य, परहितकामी, त्यागी आदि) के अपेक्ष किया, वहीं नारी का विचार गुणों की इस समृद्धि से एकदम काटकर सिर्फ़ यौनिकता/पुरुष-संबंध की दृष्टि से करते हैं और कहते हैं कि उत्तम नारी वह है, जो स्वप्न में भी परपुरुष को नहीं देखती। मध्यम नारी वह है, जो अन्य पुरुषों को भी पिता, भाई, बेटा आदि मानकर संबंध रखती है। अधम नारी वह है, जो पति के संग डर से या विकल्पहीनता की अवस्था में रहती है और खल नारी वह है, जो दूसरी स्त्री के पति के साथ रहे और अपने पति को धोखा दे। वाह! एक स्त्री को त्यागकर दूसरी के साथ मौज उड़ाने वाले मर्दवाद पर तो तुलसी ने सवाल खड़ा नहीं किया, दशरथ की बहुभोगी/बहुविवाही (लंपट) प्रवृत्ति पर तो छींटाकशी न की और अपनी ही मूल्य-व्यवस्था पर अपराधी ठहर हे सुग्रीव व विभीषण, जिन्होंने छोटे भाई की पत्नी से विवाह या उनका वैवाहिक अधिग्रहण कर लिया था, को पाक-साफ़ कर दिया, पर नारी के अपने प्रेम/काम संबंध के चयन के जन्मजात अधिकार को कुचल कर रख दिया। क्या नारी के विदुषी या मूर्खा, आत्मनिर्भर या परजीवी होने का कोई मूल्य नहीं? सिर्फ़ यौनिकता की कसौटी पर स्त्री कसी जाएगी, जिससे पुरुष परम स्वतंत्र है? तुलसी की परिभाषा चले, तो अधिकतर स्त्रियाँ आज अधम-श्रेणी की हैं, जो विवाह-व्यवस्था में घुट रही हैं, विकल्पहीनता में बस सह रही हैं—थोपे गये पतियों को। महादेवी वर्मा स्वतंत्र नारी थीं, यानी तुलसी की दृष्टि में बिगड़ी हुई थीं। तुलसी द्वारा नारियों को अँटाने के लिए बनाये गये ये चार डिब्बे अन्याय के साथ अपर्याप्त भी हैं। परित्यक्ता या विवाह से इन्कार करने वाली, सहजीवन चुनने वाली, अविवाहित स्वतंत्र नारी किस कोटि में होगी? लगता है, भक्तिकाल में ढेर सारी औरतें ताक़तवर या आत्म-निर्णय की क्षमता या यौन-व्यक्तित्व-संपन्न हो चली थीं, जिनसे खीझकर/झल्लाहट में बाबा ने कहा होगा—'यद्यपि स्त्रियों को कमज़ोर और असहाय माना जाता है, किंतु वे असंभव कार्य को सफल बनाने में सक्षम हैं।' तुलसी ने स्वयंवरण की क्षमता से भरी शूर्पणखा को तो दंडित कराया, पर तथाकथित स्वयंवर की प्रथा को सराहना भरे शब्दों में पेश किया, जिसमें बाप, भाई आदि किसी लड़की को अपनी मनमानी शर्तों पर वेदी पर चढ़ा देते थे। वह कथित स्वयंवर अनमेल विवाह की अधिक संभावना से भरा कितना घिनौना था, जिसमें एक तरफ़ कई पीढ़ियों का बूढ़ा (रावण) भी विवाह का उम्मीदवार था, तो दूसरी तरफ़ हमउम्र (राम) युवक को भी उतना ही महत्त्व था। कपास और कपूर की इस समानता के बीच कन्या की स्थिति कितनी विषम थी!

तुलसी ने ऐसी विवाह-व्यवस्था पर घोर सहमति जतायी। कौशल्या, मंदोदरी, सुनयना आदि पतिव्रता यानी पति के प्रति यौन-प्रतिबद्ध नारियों की प्रशंसा की है। 'मानस' में नारी को ही नहीं, पुरुष को भी कहाँ छोड़ा है... ऐसा कहने वाले फ़ैशनेबल विचारक भूल जाते हैं कि तुलसी ने पुरुष की कहीं भी निंदा की है, तो वह गुणगत या व्यक्ति-विशेष की निंदा है, पर नारी की निंदा तो उन्होंने जन्मगत ही की है, नारी जातिमात्र दोषी है बाबा की नज़र में। यदि किसी नारी की प्रशंसा की है, तो वह उसकी व्यक्तिगत प्रशंसा है। वह भी तुलसी-रचित आदर्शपरिधि जेल को स्वीकार कर लेने वाली नारी की प्रशंसा है। इस प्रकार की मूल्य व्यवस्था से भरा हुआ 'रामचरितमानस' विलक्षण लोकप्रियता को प्राप्त है—समस्या यह नहीं है, बल्कि समस्या का विकराल पक्ष यह है कि उसकी लोकप्रियता का मूलाधार रामकथा या सहित्यिकता की अपेक्षा उसमें वर्णित सामाजिक मूल्य-व्यवस्था है, जिसमें नारी और शूद्र के मनुष्य बनने की किसी भी संभावना का गला घोंट दिया गया है। तुलसी या 'आधुनिक तुलसी' रामानंद सागर क्यों हिट होते हैं? पारिवारिक संस्कृति के उस नैतिक फ्रेम को परोसने के कारण ही, जिसमें स्त्री का स्थान पुरुष से एक पायदान नीचे है। परिवार वाद की जय-जयकार से रामायण/मानस भवन गूँज रहा है, जिसमें स्त्री को घरेलू प्रजनन मशीन, अशिक्षित, परजीवी बनाये रखने का एजेन्डा बदस्तूर जारी है। ऐसी व्यवस्था स्त्री की स्वाधीन चेतना को समग्रतः निगल जाती है तथा कॉलेज यूनीवर्सिटी मे आधुनिकतम मेधा के प्रतिमान बनने के बावजूद उसे रसोईघर या पति के बिस्तर पर समर्पित व अवैतनिक नौकरी पर रख लेने को स्त्री-सुरक्षा या संस्कृति का पर्याय मानती है। यही नहीं, बल्कि स्त्री की कायरता/चुप्पी लज्जा को सौंदर्य बताने वाली इस मूल्य व्यवस्था का अगला विकास घरेलू हिंसा के विविध प्रकारों को स्त्री द्वारा चुपचाप सहते जाने के रूप में हो सकता है—हो रहा है! वाह! परमपुनीत भारतीय संस्कृति का यही तो सौंदर्य है।

सेक्स एक ऐसी जगह है, जहाँ नारी का बहुकोणीय दलन होता आया है। भक्तिकालीन मूल्य-व्यवस्था में नारी को व्यक्ति की जगह वासना-पुतली तथा पुरुष के अध्यात्म-मार्ग का रोड़ा समझा गया, तो उसके पीछे मनुवादी स्मृतिकारों का वही विचार है कि नारी में काम-वासना पुरुष से आठगुनी होती है। नख-शिख की रूढ़ि ने तो ('पद्मावत' में) नारी के अंग-प्रत्यंग पर पेज़ दर पेज़ काले करते उसे सेक्स-वस्तु ही करार दिया। सूफ़ी काव्यों में 'पति की संतुष्टि' को एक मूल्य की तरह पेश किया गया है और कहा गया है कि उसके लिए काम आवश्यक है। विवाहित स्त्री के पेट पालने का आधार जब आज भी बड़े पैमाने पर क़ानून सम्मत वेश्यावृत्ति (पति की यौन-दासी बनना) है, तो उस युग में क्या रहा होगा? 'पति-संतुष्टि' एक मूल्य इसलिए था, क्योंकि उसी पर तो अर्थहीन, सामाजिक रूप से लाचार स्त्री की बहुविवाही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषों के तंत्र में सुरक्षा निहित थी। नारी को सेक्सी (यौन-विक्षिप्त व यौन-वस्तु) रूप में चित्रित करते भक्तिकाल से उसकी यौनेच्छा के किसी समादर की उम्मीद कैसे की जा सकती थी, जब आज के पूँजीवादोन्मुख खुल रहे समाज में स्त्री की यौनेच्छा का समादर नहीं है। ब्रह्मचर्य जैसे मूल्य-बोध के शिकार भक्तिकालीन संत कवि सेक्स जैसी सचाई से आँखें मिलाने से कतराते रहे और 'मानस' आदि में प्रेम-वर्णन को हवाई/आध्यात्मिक जैसा बनाते रहे। सेक्स का दलन करते-करते उन्होंने अपने अवचेतन में अप्सराएँ पैदा कर लीं और नारी में सेक्स की आँधी के सिवा कुछ न देख सके, जिसके कारण स्त्री को नियंत्रित रखने की विचारधारा गढ़ी गयी। परंतु वहीं पुरुषों के बहुविवाही भोग, विवाह-निरपेक्ष स्त्री-भोग, अनमेल वैवाहिक/यौन-रिश्तों पर तो थोड़ा-सा भी सवाल नहीं ही उठा, बल्कि पुरुषों के वैसे अमर्यादित आचरण की भी सम्मानित स्वीकृति है, चाहे रामकाव्य हो या कृष्णकाव्य या फिर प्रेममार्गी काव्य। यानी, कोई भी कथा-काव्य हो बात बराबर है। कथाहीन काव्य (निर्गुण मुक्तकों) में होता भी तो कैसे? कोई कैरेक्टर ही नहीं है वहाँ। परंतु उनके विचार-प्रधान पदों में ऐसी किसी मर्दाना हवस को स्त्री-समस्या माना ही नहीं गया। बेशर्म चुप्पी? ब्रह्मचर्य और संन्यास की फ़िक्र में लगा भक्तिकाल हो या आज के पूँजीवादी इन्टरनेटी संत हो—उनसे स्त्री के किसी न्याय की आशा कैसे की जा सकती है? ब्रह्मचर्य व संन्यास की पूरी अवधारणा ही स्त्री-विरोधी व पुरुषवादी है। उसमें एक व्यक्ति के रूप में स्त्री का समादर न करके, उसे सिर्फ़ वासना या मासिक धर्म के कुंड के रूप में समझकर, उससे भागने की मर्दाना हड़बड़ी है। स्त्री को सामने न आने देने अथवा स्त्री के सामने न आने की डरपोक हठवादिता ब्रह्मचर्य कल्पना का मूल तत्त्व है। पुरुष अपनी स्त्री-विषयक कमज़ोरी, वासना लोलुपता से डरकर कभी उससे मुख़ातिब होने से कतराये या जीवनसाथी बन चुकी स्त्री को दगा देकर जंगल का रास्ता ले ले, तो उस भगोड़-वृत्ति का ब्रह्मचर्य व संन्यास के रूप में महिममंडन किया जाता रहा। स्त्री का जितना दलन पुरुषों के भोगवाद ने किया है, उससे कम दलन वैराग्यवाद ने नहीं किया है। दोनों मर्दवाद की अतिवादी विक्षिप्त दृष्टि के परिणाम हैं। ब्रह्मचर्य मर्द-मूल्य है, क्योंकि 'पुत्र-दार-गृहादिषु' (बेटा, पत्नी, घर आदि) से विरक्त होकर चल पड़ने की गीता की सिखावन मर्द के लिए ही तो संभव है। बुद्ध के लिए परिव्राजक बनकर निकल पड़ना आसान है, पर बेचारी यशोधरा क्या करेगी, जिसके पास दूध-पीता बच्चा (राहुल) है? फिर संन्यास की इस कल्पना में स्त्री को कौड़ी के भाव समझा गया। जब मन हुआ, मर्द-स्त्री को ठोकर मारकर चल पड़ा-उसके सिर या पेट पर बच्चे लादकर। 'ब्रह्मचर्य' का शास्त्रीय विवेचन 'स्वप्न में भी वीर्यस्खलन' न होने के गुण के रूप में जब है, तो स्पष्ट है कि पुरुष की विशेष (पर, कल्पित) स्थिति है—ब्रह्मचर्य। ऐसे एकांगी स्त्री-विरोधी मूल्य के फोबिया का शिकार भक्तिकाल स्त्री के बारे में कितना मानवीय हो सकता है?

इसी तरह, सगुण भक्ति साहित्य का अवतारवादी मूल्य भी कितना स्त्री-निरपेक्ष है। प्रभु अवतार लेते हैं, तो बसत्प्रिय प्रभु सुर संत हित।' कभी भी प्रभु ने किसी शूद्र और उससे भी ज़्यादा वंचित दलित नारी के उद्धार के लिए अवतार नहीं लिया। और उनके कल्पक महापुरुषों की दृष्टि में स्त्री की समस्या समस्या जब है ही नहीं, तो प्रभु क्यों अवतार लें? उन्हें तो अवतार लेना है—धर्म की रक्षा के लिए। इस धर्म पर आफ़त तब आती है, जब शूद्र या स्त्री अपने मनुष्य होने का हक़ माँगते खड़े होते हैं, तब पितृसत्तात्मक वर्णवादी समाज-महल की चूलें हिलने लगती हैं। तब बचाने के लिए किसी सवर्ण मर्द को प्रभु बनकर आना पड़ता है और न्याय माँगते अकारण-दंडित समूहों को पुनः दंडित कर असुर-संहार का यश लूटना संभव होता है। इस हिंसक आयोजन के पीछे का कारण बहुकथित 'धर्म' कोई आध्यात्मिक लौ नहीं है, बल्कि वह जड़ सामाजिक व्यवस्था है जिसके द्वारा आत्मा-परमात्मा, पुनर्जन्म, परलोक, कर्मफल आदि का भय दिखाकर सुविधाप्राप्त (सवर्ण मर्द) वर्ग द्वारा समाज की अधिकतर जनसंख्या (स्त्री, शूद्र) को—अभाव, दैन्य, पीड़ा, अपमान और अनीति को चुपचाप सहते चले जाने के लिए प्रेरित किया जाता रहा है। इस तथाकथित 'धर्म' में विश्वास हमें दूसरों के कष्टों के प्रति उदासीन एवं सामाजिक सरोकार से रहित बनाता है, ख़ासकर स्त्री के प्रति। धार्मिक सीरियलों के उद्भव के रूप में आज तो, भक्तिकाल हिंसक रूप से पुनर्जन्म ले चुका है—उसका सबसे बड़ा घाटा यही है कि वह हमें अमानवीय और स्त्री-विरोधी बनाकर छोड़ता है। ऐसे धर्म को यदि मार्क्स ने अफ़ीम कहा, तो ग़लत क्या कहा? पर, उस से भी विकसित सत्य शायद आर्दिन जैन का है—"धर्म अफ़ीम है पुरुषों के लिए। स्त्रियों के लिए तो वह वेश्यालय है।"

पुरुषों की भक्तिमती धार्मिक जमात जो एक स्वर से नारी को माया, वेश्या, व्यभिचारिणी आदि कहकर कोस रही थी तब गुलामी की संरचना में फ़िट हो चुकी (पतिव्रता, सती, पारिवारिक) स्त्रियों को खिताब बाँट रही थी, तो ऐसे विषम समय में दरिया साहब या नानक जैसे एकाध संत कुछ स्त्रीयपक्षीय बातें कह रहे हों, वह स्वर नक्कारखाने में तूती की आवाज़ से बढ़कर न रहा होगा! फिर भी कहने का महत्त्व तो है ही। दरिया साहब की यह फटकार भले पर्याप्त न हो, पर प्रासंगिकता ज़रूर रखती है:

"नारी जननी जगत् की पाल पोस दे तोस
मूरख राम बिसारि कै ताहि लगावे दोस।"

इसी तर्ज़ पर नानक ने भी नारी को इज़्ज़त दी। कारण वही सब को जनम देती है, वही मनुष्य (पुरुष?) की जीवन-संगिनी है। स्पष्टतः यह विचार भी अनजाने में नारी को एक ही भूमिका—माता (गर्भाशय) में अँटाकर उसके सकल व्यक्तित्व का खंडन करता है, परंतु जहाँ हर तरफ़ हिंस्र जानवर हों, वहाँ एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटा-सा सहानुभूति का वाक्य भी उद्धारक-सा लगता है।

सब मिलाकर, भक्तिकाल नारी को न्याय देने में तो पूरी तरह विफल रहा ही, क्योंकि उसने उस समय में मौजूद स्त्री की एक भी वास्तविक समस्या (कन्या/ स्त्री-अपहरण, बाल/अनमेल विवाह, मर्दों का बहुविवाह, वैधव्य, वेश्यावृत्ति, परजीविता, अशिक्षा, गृहदासत्व, पति की प्रजनन-मशीन व यौनोपकरण बनी रहने की बाध्यता, सती-प्रथा और सती-हत्या) पर निगाह न डाली, बल्कि इससे भी बढ़कर उसने स्त्री की चली आ रही सकल वंचनाओं, पीड़ाओं और गुलामियों को तो बनाये ही रखा, वरन् उनमें कुछ नवीन कड़ियाँ भी जोड़ी। भक्ति के व्यापक सोच में मानवता को बाँटने वाली जिन दीवारों को भक्तिकाल ने धक्का दिया, वे जाति मज़हब या धन या कुल की दीवारें थीं, पर लिंग (जेन्डर) की दीवार न थी। स्पष्टतः, वह भक्ति आत्मा का परमात्मा से संबंध न थी, बल्कि मर्द का मर्दों के खुदा (मर्द) से जोड़ा गया रिश्ता था। कण-कण में व्याप्त परम-तत्त्व के बोध का दावा करने वाले वे संत दो घरों की बाह्य टकराहट को तो समस्या मानकर चिंतित हुए, लेकिन घर-घर के भीतर जो दो दुनिया बनी हुई हैं-शोषक (पुरुष) व शोषित (स्त्री) की—उसे न देख सके। क्या इसलिए कि वे हर घर को एक पैकेट की तरह (प्राकृतिक) इकाई मानते थे? क्या इसी से इन पैकेटों (जिन पर लेबल रूप कोई न कोई मर्द है) की आपसी टकराहट मात्र को देखा और भाई-बहन-चारा' की जगह 'भाईचारे मात्र को मूल्यांकित कर सके? फिर उन पैकेटों से धक्का मार कर निकाली गयीं सरेआम—अपहरण/ क़त्ल/दाह की शिकार बनायी गयीं—यौन-हिंसा की संस्थागत स्थिति वेश्यावृत्ति में घुट रही स्त्रियाँ भी उन समाज-दुःखकातर संतों-भक्तों की निगाह में आने से कैसे बची रह गयीं? लगता है, उस दार्शनिक विचारधारा की उपजीव्यता ने उन्हें औरत को मनुष्य समझने से बराबर रोका—जो स्पष्टतः मर्दों द्वारा गढ़ा गया, स्त्री को मर्दों की मुक्ति/सुख का साधन मानने वाला था, चाहे वह भारतीय अद्वैतवादी पुरुष-प्रकृति का दर्शन हो, सिद्ध-नाथों की परंपरा हो या इस्लामी एकेश्वरवाद। फिर भी, भक्तिकाल ने एक स्तर पर नवंजागरण या स्वाधीनता-संग्राम सी स्थिति तो पैदा की है, भले वह मर्दाना ही बनकर रहा। यहाँ यह ध्यातव्य है कि पराधीनता की चाहे जिस कड़ी को धक्का दें, परंतु उससे बाक़ी कड़िया भी झनझनाती ही हैं। भक्तिकाल में भक्ति के बहाने मानव (पुरुष) व मानव (पुरुष) को मिलाने के जोश ने स्त्री को भी थोड़ा-सा मौक़ा दे ही दिया। मीरा, सहजो, दया आदि-भले पितृ-सत्तात्मक मूल्यों का विकल्प वे न तैयार कर सकीं, परंतु भक्ति ने उन्हें जुबान और सामाजिक भेद-व्यवस्था के सचेत या बेखुदी में तिरस्कार का साहस दिया, यह बहुत बड़ी बात थी। फ़ारसी) व शास्त्र (संस्कृत) की भाषा से बहिष्कृत व वंचित शूद्र-वर्ग के साथ स्त्रियों ने भी मातृभाषा में ही बोलना सीखा। यह उपलब्धि थी। पर, इसमें भक्तिकालीन मूल्य-व्यवस्था का कोई योगदान नहीं था, बल्कि उसने तो औरत पर अंकुश ही लगाने की कोशिश की। घर के संत्रास से बचने हेतु स्त्री के लिए चकलाघर का ही विकल्प जब मौजूद था, तब भक्तिकाल ने उसमें एक विकल्प और भी जोड़ दिया- मठ या गिरजाघर का। पर, वहाँ पहले से ही स्त्री को चबाने हेतु भेड़िये या डँसने हेतु नाग जो बैठे हैं, उनसे स्त्री को भक्तिकाल क्या बचा सकता था अथवा आज भी बचा पा रहा है? औरतों के बढ़े हुए बेडौल पेट या कूड़े पर फेंके गये शिशुओं (के पार्थिव शरीरों) को देखिए और अपने आप से पूछिए कि जिन्हें नाज़ है हिंद पर वे कहां हैं?

(1) जनसत्ता के 18 सितंबर, 1987 के अंक में प्रभाष जोशी की यह टिप्पणी देखिए :

"रूपकुँवर किसी के धमकाने या उकसाने पर सती नहीं हुई और न ही उसके अपने जीवन में ऐसी कोई अनोखी निराशा छा गयी थी कि पति के साथ जल मरने के सिवाय उसके पास कोई चारा न बचा हो।....लाखों विधवाओं में से कोई ही सती होने का संकल्प करती है और उसका यह आत्मोत्सर्ग लोगों की श्रद्धा और पूजा का केंद्र बन जाए, यह स्वाभाविक ही है, इसलिए इसे न तो स्त्रियों के नागरिक अधिकार का सवाल कहा जा सकता है और न स्त्री-पुरुष में भेदभाव का। यह तो एक समाज के धार्मिक और सामाजिक विश्वासों का मामला है।... जो लोग इस जन्म को ही आदि और अंत मानते हैं और अपने व्यक्तिगत भोग में ही सबसे सुख देखते हैं, उन्हें सती-प्रथा कभी समझ में नहीं आएगी। वह उस समाज से निकली है, जो मृत्यु को व्यक्ति का सर्वथा अंत नहीं मानता, बल्कि उसे एक जीवन से दूसरे जीवन की तरफ़ बढ़ने का माध्यम समझता है। ऐसा समाज ही सती-प्रथा के उचित या अनुचित होने पर कोई सार्थक बहस कर सकता है।... मगर यह अधिकार उन लोगों को नहीं है, जो भारत के आम लोगों की आस्था और मान्यताओं को जानते-समझते ही नहीं हैं। ऐसे लोग कोई फ़ैसला देंगे, तो उसकी वैसे ही धज्जियाँ उड़ेंगी, जैसी राजस्थान हाईकोर्ट के फ़ैसले और सरकार के आदेश की दिवराला में उड़ी हैं।"

('आदमी की निगाह में औरत' (राजेन्द्र यादव) से साभार)

(2) 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी-भावना' (उषा पांडेय) पुस्तक के पृष्ठ 39-40 पर बर्नियर (ट्रैवल्स इन इंडिया) तथा के. एम. अशरफ़ ('लाइफ़ एंड कंडीशन्स ऑफ़ पीपुल आफ़ हिन्दुस्तानः जरनल रा.ए. बंगाल' 1935, पृष्ठ 258) के उद्धरणों द्वारा, उस युग में बल-प्रयोग द्वारा स्त्री को सती बनाने और वैधव्य की भावी लांछना, तिरस्कार, अभाव आदि परिस्थितियों की बाध्यता से सती बनने की स्त्री की विवशता का उद्घाटन किया गया है। 'फिलहाल' के नवंबर 2007 ई. के अंक में अनुराधा के लेख 'सती-प्रथा, भक्तिकाव्य और हिन्दी मानसिकता' में भी मध्यकाल में नारियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सती बनाये जाने की व्यापक घटनाओं की बात इब्नबतूता, ट्रेवेनियर (वाल्यूम द्वितीय), फ्रांसिस्को पैल्सर्ट (जहाँगीरकालीन भारत), शरत्चन्द्र (नारी-मूल्य आदि को उद्धृत कर कही गयी है।

(3) 'जोगी खंड' में सिंहलद्वीप जाने से पति को रोक रही रानी को रत्नसेन का उत्तर :

"तुम तिरिया मति हीन तुम्हारी/मूरख सो जो मतै घरनारी/राजा भरथरि सुना जो ज्ञानी/जेहि के घर सोरह सै रानी।।
कुच लीन्हे तरवा सहराई। भा जोगी कोऊ संग न लाई।।"

(यानी, तुम स्त्री हो, तुम्हारी बुद्धि अल्प है। जो पुरुष घर में बैठकर स्त्री से सलाह करता है, वह बुद्धिहीन कहा जाता है। राजा भरथरी कितने ज्ञानी थे। उन के घर 16,000 रानियाँ थीं। वे कुचों से उनका तलवा सहलाती थीं, किंतु जब योगी हुए; तो उन्होंने उनमें से एक को भी साथ नहीं लिया)

युद्ध के लिए प्रस्थान करते बादल को नवविवाहिता पत्नी रोकती है, तो बादल उत्तर देता है :

"तिरिया पुहुमी खरग कै चेरी।
जीतै खरग होइ तेहि केरी।।
जेहि कर खरग मूढ़ि तेंहि गाढ़ी।
जहाँ न खड़ग न मोंछ न दाढ़ी।।
तू अबला धनि मुगुध बुधि जानै जाननिहार।
जेहिं पुरुषहिं हिय बीररस भाव न तहाँ सिंगार।।" (यानी, स्त्री और भूमि खड्ग के अधीन रहती हैं। जो खड्ग का विजेता होता है, उसी के वह अधीन हो जाती है। जिसके हाथ में तलवार होती है, उसकी ही मुट्ठी भरी रहती है। जहाँ खड्ग नहीं, वहाँ मूँछ और दाढ़ी भी नहीं रहती। हे स्त्री! तू अबला है, मूढ़ बुद्धि है। तू युद्ध के महत्त्व को नहीं समझती। जिसके हृदय में वीर रस है, उसे शृंगार अच्छा नहीं लगता)

(4) 'पद्मावत' के इन तीन खंडों में स्त्री की जोरदार मॉडलिंग है—'नखशिख वर्णन खंड', 'स्त्री-भेद वर्णन खंड तथा 'पद्मावती रूप-चर्चा खंड'। पद्मावती को बत्तीस लक्षणों से युक्त बतलाया गया है, पर इनमें एक भी लक्षण प्रतिभा/बुद्धि से जुड़े नहीं है—सारे देहगत हैं। पुरुषों के लिए उपभोग्य व्यंजन के रूप में चटखारे ले-लेकर 'नखशिख वर्णन' के बीस पदों में क्रमशः सीस, माँग, लिलार, भौंह, नैन, बरूनियों, नासिका, अधर, दाँत, जीभ, कपोल, कान, ग्रीवा, भुजा-कलाई, उर-उरोज, पेट की रोमावली, पीठ, कमर, नाभि व गुह्य-विवर, नितंब का उत्तेजक चित्रण है। उरोजों के विषय में कहा गया :

"हिया थार कुच कंचन लारू।
कनक कचोर उठे जनु चारू।।"

हृदय रूपी थाल में मानो दो कटोरे या सोने की कचौड़ियाँ हैं। कुचाग्र ऐसे नुकीले हैं कि चोली बेधकर निकल जाना चाहते हैं। ये अंगूर-अनार फल की तरह, न मालूम किसके लिए बने हैं! गुह्य विवर का वर्णन करते कहा गया :

"चंदन मांझ कुरंगिनि खोजू। दहुँ को पाउ, को राजा भोजू।।"—गोविंद त्रिगुणायत के मत से यह स्त्री के गुप्तांग का वर्णन है। कुरंगी का खुर (चिह्न) चंदन-से पेट के निचले भाग पर है। मालूम नहीं, राजा भोज के समान भाग्यशाली वह कौन पुरुष होगा, जो उस का उपभोग करेगा।

'पद्मावत' में जगह-जगह पद्मावती का भोग्या रूप में चित्रण है। 'पद्मावती-रतनसेन भेंट खंड' में रति का वर्णन है। पद्मावती का लाजस्थान (योनि?) ऐसा था, मानो सोने की कली में माणिक जड़ा हुआ है और उसको राजा ने मानो बर्मा से बींध दिया हो। रति क्रीड़ा (स्मर-युद्ध) को राम-रावण युद्ध से उपमित करते हुए कहा गया कि रत्नसेन ने लंका रूपी कमर (लंक) ले ली और पद्मावती रूपी कंचनगढ़ को तोड़ दिया। प्रगाढ़ आलिंगन से उसका शृंगाराभूषण तोड़ दिया :

"लीन्हि लंक कंचनगढ़ टूटा।
कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा।।"

कंचन गढ़ टूटने का स्त्रीपक्षीय अर्थ नायक द्वारा नायिका का योनिच्छद तोड़ना है।

(पद्मावतः शास्त्रीय भाष्य—गोविंद त्रिगुणायत)

(5) बूड़ि रहा रे बापुरे मायागृह के कूप। मोह्या कनकु अरु कामिनी, नाना विधि के रूप।।

दादू नारी पुरिष को, जाणै ते बसि होइ।
पिव की सेवा ना करै, कामणिगारी सोई।।

(दादूदयाल की बानी)

(6) एक कनक और कामिनी, ये दोनों बटमार।
मिसरी की छुरी गर लाय के इन मारा सब संसार।।

(मलूकदास की बानी)

उदर में नरक, नरक अध द्वारन में,
कुचन में नरक, नरक भरी छाती है।
कंठ में नरक, गाल, चिबुक नरक किंब,
मुख में नरक जीभ लालहु चुचाती है।।
नाक में नरक, आँख, कान में नरक बहै,
हाथ पाँउ नख-सिख नरक दिखाती है।
सुंदर कहत नारी, नरक को कुंड मह,
नरक में जाइ परै, सो नरक पाती है।।

(सुंदर-बिलास—सुंदरदास कृत)

(व्याख्याता, हिन्दी विभाग जी.एल.ए. कॉलेज, डाल्टनगंज, झारखंड)
ग्राम-पाठक निगहा, पो0-जम्होर, जिला-औरंगाबाद (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंजना श्रीवास्तव की चार कविताएँ

तुम्हारी दिव्याओं में

मेरे हिस्से में
जैसे ठहरे हो तुम
तुम्हारे हिस्से
नहीं हूँ मैं

अबूझ है बूझे गये
मन का रहस्य
एक नाम, एक दृष्टि,
एक देह
बस इतना-सा परिचय
एक चमक
जो छूकर निकल जाती है
तुम्हारी वासना का छोर
एक दृश्य
जो धुँधलाते बिंबों का संग्रह
तुम्हारे अतीत के वैभव में
मेरी आत्मा का
निर्वसन होते जाना
तुम्हारे प्राणों से
फिसल जाना
मेरी अनुदार साँसों का

मैं एक धूप टुकड़ों में
बँटी हुई
एक काग़ज़ गलते हुए
तुम्हारे पानी में
तुम्हारी दिव्यताओं में
मेरी लघुताओं का
प्रहसन हो जैसे
मैं कहीं नहीं तुम्हारे
शब्दों
तुम्हारी आत्मा के पार
विकर्षण के
पिघलते पहाड़ों से निर्मित
एक चट्टानी नदी
एक लहर
जिस पर खेलती है आग।

एक अदृश्य और अनाम छोर से...

जब तक रोशनी में है दृश्य
दिखायी नहीं देता
उसके भीतर का अँधेरा
एक अदृश्य और
अनाम छोर से
आरंभ होती हैं यात्राएँ
और अनंत तक चलती हैं
हम हँसते हैं
अपने रोने के विरोध में
निषेध के नियमों से ही
जन्म लेता है
प्रतिकार
हर जगह है ठहराव
हमारी गतिशीलता को
अवरुद्ध करता हुआ
और पीड़ाएँ कहाँ नहीं हैं
जब भी धुंध घनी हो
और रुदन करने लगे
आर्तनाद
अपनी आस्था से बना लो
उम्मीदों का कोई ईश्वर।।

आधे स्वप्न के दरमियान...

चुप्पी के शोर में
बैठी है स्त्री
आधी नींद व
आधे स्वप्न के दरमियान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह, घर है
उदासियाँ लेटी हैं जहाँ
पाँव फैलाये
छत पे चढ़ी
लतरों जैसी कामनाएँ
रसोई के नीले अंधकार में
फुसफसाती हुई
उसे थपथपाती हुई
बोलती हैं संवाद
एक झीनी हँसी
बेबसी की चादर में
होठों के कोनों तक
आने को बेचैन
वह खुद ही फँसी हुई है
अपनी देह की परिक्रमा में
दरवाज़े खुले हैं
पर नहीं उठते पाँव
कोई बाँधता नहीं
फिर यह कैसा बंधन है
कैसी बेचैनी
युगों-युगों से उसे थकाती
और हराती हुई।।

एक द्वंद्व अघोषित ढंग से...

एक द्वंद्व अघोषित ढंग से
रचता है युद्ध
सब के सब मारे जाते हैं
यहाँ तक कि
घर, दरवाज़े, खिड़कियाँ
और रोशनदान
घायलों की तरह
कराहते हैं दिन-रात
तिनका-तिनका सुख
और टुकड़े-टुकड़े धूप
निरुपाय से पूछते हैं
एक-दूसरे का हाल

साँझ की पनीली आँखों में
आग उतर रही है
ख़ामोशी के जंगल
जलने लगे हैं चुपचाप
कोई पूछता है सवाल
वह जवाब नहीं देती
कोई गुज़रता है
अपनी हदों के पार
वह उसकी हदें
देखना चाहती है

यह एक अजीब दृश्य है
कि उफनती नदी के
आवेश में
बहता नहीं है उसका गाँव
यातनाओं के कुंड में
खिलखिला रही है स्त्री
पृथ्वी डोल रही है
अपनी धुरी पर
आसमान लुढ़क रहा है
लगातार
एक स्त्री की हँसी से भयभीत हैं
उसके सिपहसलार।।

संपादक-सृजनपथ, श्रीपल्ली, लेन नं0 2, पो0ऑ0 सिलीगुड़ी बाज़ार,
सिलीगुड़ी (पं0 बंगाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषाद

शुभ्रा उपाध्याय

सुबह का सूर्य दोनों हाथों अपनी लालिमा बिखेर रहा था। धूप खिड़की के पर्दे को सरका कर चुपचाप उसके बिस्तर पर पसर रही थी। थोड़ी गरमाई के अहसास से एक बार कुनमुनाकर उसने करवट बदल ली। आँखें जैसे चिपक गयी थीं, खुलने का नाम ही न ले रही थीं। लेकिन, मन पूरी तरह जग गया। उसने उठना चाहा। आँखें मलीं। इधर-उधर देखा... दिन लगभग चढ़ आया था।

पर वह उठ न सकी।

पता नहीं कैसी तो तबीयत हो गयी थी, जैसे शरीर से ऊर्जा की एक-एक बूँद को किसी ने इन्जेक्शन के ज़रिये चूस लिया हो और वह बेजान ढाँचे की तरह बिस्तर पर छोड़ दी गयी हो, रात को सोते समय। तब सब कुछ ठीक था। स्कूल से आने के बाद उसने बर्तन साफ़ किये थे। घर की चीज़ों को व्यवस्थित कर नहायी थी। बच्चों को भी नहलाया था। चूँकि, सुबह की भागमभाग में तयशुदा कामों को ही निबटाना मुश्किल-सा हो जाता है, इसलिए अगले दिन के लिए बच्चों की स्कूल ड्रेस प्रेस करने से लेकर उनकी बैग-पैकिंग तक सारे कार्य वह रात को कर लेना पसंद करती है। यहाँ तक कि दूसरे दिन टिफ़िन में बच्चों को क्या देना है, यह भी सोचकर उसकी पूर्व तैयारी भी रात को ही हो जाती है। उसके बाद रोज़ के कामों को निबटाकर सोते-सोते बारह के घन्टे तो लग ही जाते हैं, लेकिन वह अपने में फ्रेश फ़ील करती है और फिर बिस्तर पर पड़ते ही नींद। सुबह कब हो जाती है, पता ही नहीं चलता। यह तो रोज़ की आदत-सी बन गयी है। इन सब कामों के लिए सोचना-समझना नहीं पड़ता। जैसे हाथ के कौर को मुँह का रास्ता नहीं बताना पड़ता, वैसे इनके लिए कब, क्या, कैसे प्रश्न नहीं उठते।

किसी तरह स्वयं को बिस्तर से खींचकर उसने खड़ा किया और चेतावनी भी दे दी कि 'अभी इस तरह बहाने मारने से काम न चलेगा। चलो जल्दी-जल्दी काम निबटाओ, उसके बाद देखेंगे कि क्या हुआ है।' लेकिन शरीर किसी हठीले बच्चे की तरह धम्म से बिस्तर पर लेट गया और फटी-फटी आँखों से घर को घूरने लगा, मानो कह रहा हो कि 'मैं क्या करूँ? मैं कहाँ बैठना चाहता हूँ? लेकिन न जाने क्यों, मुझसे उठा ही नहीं जा रहा है! अब मुझे घसीटोगे क्या?' और सचमुच उस दिन स्वयं को लगभग घसीटते हुए ही उसने सारा काम किया, फिर किसी तरह कपड़े चेंज कर स्वयं स्कूल पहुँच गयी।

उसका स्कूल घर से काफ़ी दूर था। दो-दो बसें चेंज करनी पड़ती थीं, उसके बाद भी कम-से-कम पंद्रह मिनट की दूरी पैदल चलकर पूरी करनी पड़ती थी। बस स्टैंड से स्कूल के बीच ऑटो रिक्शा न था, न कोई दूसरी सवारी थी। हाँ, स्टैंड के दाहिनी तरफ़ पार्क के पास कभी-कभी इक्का-दुक्का रिक्शे वाले ज़रूर दिख जाते थे। एक बार उसने सोचा भी कि रिक्शा कर ले, लेकिन चूँकि उधर सवारियों की तादाद ज़्यादा न थी, इसलिए वे अनाप-शनाप किराया माँगने लगते। पंद्रह मिनट के लिए पंद्रह रुपये दे देना कई बार बुरी तरह अखर जाता और वह सोचती कि इतने में तो एक किलो आम आ जाएँगे। घर में सब्ज़ी न हो तो हरे-गाढ़े आम से ही रोटियाँ खायी जा सकती थीं। और वह इसी उधेड़-बुन में स्कूल पहुँच जाती।

स्कूल की बिल्डिंग में घुसकर ही उसे अहसास हुआ कि कितनी गर्मी है। बाहर तो जैसे चिनगारियों की बारिश हो रही है। तल-तल चूता पसीना पिघले लावे की तरह शरीर को जला दे रहा था। स्टाफ़रूम में पंखे की हवा ने उसे थोड़ी शीतलता प्रदान की।

स्कूलों में गर्मी की छुट्टियाँ हो गयी हैं। क्लासेज़ सस्पेंड हैं, लेकिन टीचरों को आना पड़ता है। कॉपियाँ करेक्ट करनी होती हैं। ऑफ़िस भी खुला ही रहता है। एक तरह से बुरा भी नहीं लगता। सारा दिन किसी काम में लग जाता है। नहीं तो, घर में वही ढाक के तीन पात। लेकिन आज वह ज़्यादा देर नहीं रुकेगी। उसकी तबीयत ठीक नहीं है। उसने हेडमास्टर को बताया और कॉपियों के बंडल को लॉकर में सहेजकर डॉ. कुलकर्णी के चेंबर पहुँच गयी।

डॉ. कुलकर्णी का चेंबर उसके स्कूल से सटी तीन-चार इमारतों को छोड़कर ही है। इस लिहाज़ से वह काफ़ी पास में है। उसका हमेशा का यह मानना है कि बच्चों के स्कूल और डॉक्टरों के चेंबर ज़्यादा दूर नहीं होने चाहिए। इसीलिए, उनका पड़ोसियाना वह हमेशा प्रीफ़र करती रही है। इसके अलावा डॉ. कुलकर्णी बेहद सुलझे व्यक्तित्त्व के व्यक्ति हैं। उनके पास जाकर उसने हमेशा राहत महसूस की है, जबकि इलाज के नाम पर दो-एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐंटासिड की टेबलेट और विटामिनों के सिवा कुछ भी उनके पर्चे पर नहीं लिखा गया। पिछली बार जब वह उनके पास गयी थी, तब भी उसे ऐसा ही कुछ फ़ील हो रहा था। बला की कमज़ोरी। सुबह उठने के साथ ही साथ लगता, जैसे वह वर्षों से बीमार है, सदियों से उसने कुछ खाया नहीं है और मुँह... जैसे नीम के कड़वे रस से कुल्ला करके आ रही हो। कुछ दिन तो वह इसे नज़रअंदाज़ करती रही, लेकिन तब तक, जब एक या दो बार ऐसा महसूस हुआ और वह भी घंटे-दो घंटे के बाद सब कुछ पूर्ववत्। लेकिन, इधर साल भर से इसकी फ्रीक्वेंसी काफ़ी बढ़ गयी। हर दूसरे-तीसरे सप्ताह उसे वैसे ही कमज़ोरी घेर लेती और वह अजगर की जकड़न में फँसे जानवर की तरह विवश होती चली गयी। सबसे बुरा तो तब लगा, जब उसके बच्चों ने भी कई बार कह दिया, "मम्मी तुम तो हमेशा बीमार रहती हो।" इसमें उनका कोई दोष न था। वही तो हमेशा उनसे कहती रहती, "बेटा, मम्मी की तबीयत ठीक नहीं है न।"

स्कूल और घर के ज़रूरी कामों के अतिरिक्त उसका सारा समय बिस्तर पर बीतता। कभी जागते, कभी सोते। लेकिन, न तो बच्चों के साथ कभी घूमना-फिरना होता और न ही खेल-तमाशा। उनकी ज़रूरतों को छोड़कर और किसी समय को उसने उनके साथ घुल-मिलकर जिया ही कहाँ? वह तो हमेशा थकी और निढाल रहती। जहाँ तक शरीर को ठेल-धकेल कर जोते रखा जा सकता था, वह वहीं तक ऐक्टिव थी, नहीं तो सुस्त, मंद और मरी-मरी।

ऐसे समय में कई बार उसे अपने बचपन के दिन याद आते। दिन भर भागते-दौड़ते, जिनमें थकान शब्द का कोई अर्थ न था। जो जबरन बैठाये जाते और ज़ोर ज़बरदस्ती कर सुलाये जाते थे, नहीं तो हमेशा चौकन्ने चौगड़ों की तरह कुलाचें मारते।

न तो उसे बुखार है और न ही कोई और व्याधि। फिर उसे हुआ क्या है? जब-जब वह डॉ. के पास जाती है, उसे इसका कोई सटीक शब्दों वाला जवाब नहीं मिलता। आख़िर उसके अंदर ऊर्जा-हरण का वह कौन-सा अदृश्य स्रोत है, जो अचानक ही किसी सुबह उसे धर दबोचता है और वह उसकी गिरफ़्त में मच-मचाकर बिल्कुल टूट जाती है। सूखे डंठल की तरह। डॉ. भी तो कुछ क्लीयर नहीं कहते। उसने पूछा था, "डॉ. मुझे हुआ क्या है? आख़िर इस बीमारी का कुछ तो नाम होगा?"

"नहीं, नहीं... आपको कुछ नहीं हुआ है। आप चिंता बहुत करती हैं, इसलिए...।"

"मैं भी तो वही चिंताएँ करती हूँ, जो सब करते हैं... फिर मुझे ही ऐसा क्यों", इस बार उससे अपने आपको सँभाला न गया और इतना कहते-कहते उसकी आँखें डबडबा आयीं।

"अरे! नहीं, रोते नहीं, आप तो बहुत समझदार हैं पढ़ी-लिखी हैं, सर्विस करती हैं। बस थोड़ा ख़ुश रहने की कोशिश करिए।"

न चाहते हुए भी उस दिन डॉ. कुलकर्णी के चेंबर में वह हिचक-हिचक कर रोने लगी थी। तब डॉ. ने हौले से उसके [illegible] पर हाथ रखा था और माथे को सहलाते हुए इतना ही कहा था, "रोलो! जी खोल कर रो लो। रोकना मत। अपना बड़ा [illegible] समझना।"

जब वह चेंबर से चलने लगी थी, तो डॉ. कुलकर्णी ने [illegible] अपने प्राइवेट सेल का नंबर दिया था और फ़ोन करने को कहा [illegible] के साथ मंत्र रूप में एक वाक्य कह दिया था, "हमेशा याद रखना [illegible] समय से पहले और क़िस्मत से ज़्यादा कभी किसी को कुछ मिला [illegible] नहीं है।"

तब से हमेशा उसके मन में ये पंक्तियाँ कौंधती रही हैं। और वह अपने आप से प्रश्न पर प्रश्न उलझती रही है—'आख़िर उसने समय से क्या ऐसा माँग लिया, जो उसकी क़िस्मत की रेखाओं में नहीं अँट पा रहा है?"

बचपन से पिता के मुख से यही सुनती आयी थी कि "बेटा पढ़ो। एक पढ़ने से ही जीवन सुधर जाता है। वह सब कुछ हासिल हो जाता है, जो हम चाहते हैं—एके साधे सब सधै, [illegible] साधे सब जाय" और उसने भी जी-जान से पढ़ाई की थी। पिता की हैसियत इतनी न थी कि पाँचों भाई-बहनों के लिए हर [illegible] नयी-नयी क्लास में नयी-नयी किताबें लाते। लेकिन, जैसे भी हो हमेशा सब कुछ पूरा किया था। अभाव का काँटा कभी चुभने नहीं दिया। पिताजी कहा करते थे, "बेटा अभाव मिटाया जा सकता है, लेकिन असंतोष का गड्ढा कभी भरा नहीं जा सकता।" संतोष का गंभीर पाठ भाई-बहनों ने मिल-बाँट कर ही पढ़ लिया था। लक्ष्य था—सिर्फ़ पढ़ाई। और पढ़ाई के दौरान् स्कूल के टीचर्स को देखकर वह हमेशा अभिभूत होती रही थी। उसे लगता कि ये आम जीवन के व्यक्तित्त्व नहीं होते। ये दुर्लभ होते हैं। कितना इतना कुछ जानते हैं, पढ़ाते हैं। श्रद्धा से उसका मन विगलित हुआ रहता था। जैसे-जैसे बड़ी होती गयी, वैसे-वैसे इसका दूसरा पहलू भी प्रकाशित होता गया। जिसकी रोशनी में उसकी कल्पनाएँ रंगीन होती रहीं और वह हमेशा सोचती 'वह भी टीचर बनेगी, पढ़ाएगी। वह भी घर की अर्निंग मेंबर होगी। उसके पर्स पैसों से भरे रहेंगे। वह शॉपिंग करेगी, जो चाहे ख़रीदेगी। जिसे जो [illegible] देगी। उससे भी कोई माँगेगा। वह भी दे सकेगी। वह भी इनकी तरह होगी- उनकी तरह होगी..... अपने पिता की तरह होगी। घर की औरतों की तरह एक-एक पैसे का हिसाब कोई उससे नहीं माँगेगा। वह अपने मन से खर्च करेगी।'

उसने सिर्फ़ सपने नहीं देखे। उन्हें हक़ीक़त में बदलने के लिए दिन-रात एक किये। रात सबके सो जाने पर कई बार लालटेन की धीमी रोशनी में पाठ याद किये। कभी-कभी तो नींद में पूरा का पूरा उत्तर तक बोल जाती। सभी कक्षाओं में उसके रिजल्ट अच्छे थे। पता नहीं क्या था कि फ़र्स्ट क्लास हमेशा दो-चार-चार नंबरों की रेस से छूट जाती, लेकिन गुड सेकेंड क्लास हमेशा रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह परिश्रमी थी। उसे अपने परिश्रम पर भरोसा था। पिताजी भी कहा करते, "ऑनेस्ट लेबर नेवर गोज़ अनरिवार्डेड" और उसे सहज ही स्कूल सर्विस कमीशन के थ्रू स्कूल में सर्विस मिल गयी थी। फिर भी, उसकी तमन्नाओं की मंज़िल दूर थी। उसने हमेशा कालेज की लेक्चरशिप का ख़्वाब पाला था। अभी भी उसकी हिम्मत टूटी नहीं थी। दिन भर स्कूल में काम करने के बाद में वह रात में पढ़ाई करती। उसने पी-एच.डी. रजिस्ट्रेशन करवाया था। वह डॉक्टर होना चाहती थी और डॉक्टर होकर वह कॉलेज सर्विस की परीक्षाओं को पास करना चाहती थी।

लेकिन, इधर साल भर से वह अपनी तबीयत से ही परेशान थी। जब भी उत्साह से लबरेज़ वह काम शुरू करती, दूसरे या तीसरे दिन जैसे उसकी समस्त उमंग को कोई विषाद के गहरे काले चादर में बाँध लेता और वह बिल्कुल निचुड़ी अशक्त-सी बिस्तर पर पड़ जाती।

पहली बार उसने डॉ. कुलकर्णी को फ़ोन किया। उस समय वे शहर से बाहर किसी हिल स्टेशन पर छुट्टियाँ मनाने गये हुए थे। सहमे हुए स्वर में उसने अपना परिचय दिया और पूछा कि "क्या वह कुछ देर उनसे बात कर सकती हैं।"

ऐसे तो डॉ. कुलकर्णी मरीज़ों द्वारा बाहर डिस्टर्ब किया जाना बिल्कुल पसंद नहीं करते, पर न जाने क्यों उन्होंने एक पल रुकने के बाद जैसे कुछ सोच कर कहा था—"क्यों नहीं?... कहो गीता क्या कहना चाहती हो? मैं सुन रहा हूँ।"

तत्काल वह समझ नहीं पायी कि क्या कहे? उसके मुँह से निकल गया—"यूँ ही बस! आप से बात करने का मन किया।"

डॉ. संजीदा हो गये।

शायद उन्होंने उसकी मनोदशा को तुरंत कैच कर लिया। बड़े प्यार से बोले, 'गीता, तुम बड़ी भोली हो। यही तो तुम्हारी बीमारी है। सच पूछो तो तुम्हें कुछ नहीं हुआ है। तुम जैसों को कभी कुछ हो भी नहीं सकता। तुम्हारी अच्छाइयाँ ही तुम्हारी दुश्मन बन जाती हैं। जीना सीखो गीता। अपने लिए जीना सीखो। अपने लिए जियो। उन्हें सोचो, जो तुम्हें चाहते हैं, जिन्हें तुम्हारी ज़रूरत है। वह करो, जो तुम चाहती हो, जो तुम्हारा मन चाहता है।"

"मुझे बड़ी कमज़ोरी लग रही है। मुझमें एकदम हिम्मत नहीं है। मैं कुछ कर नहीं पाती। मैं हमेशा थक जाती हूँ... सच तो यह है कि मैं हमेशा थकी रहती हूँ। एक बार भी... एक बार भी अपने आप को हल्का-फुल्का महसूस नहीं करती। हर समय जैसे धक्के दे-देकर खुद को चलाना पड़ता है। दो क़दम चलती हूँ तो हाँफ जाती हूँ। एक कौर खाती हूँ, तो उल्टी आती है। मैं कभी ठीक नहीं हो सकूँगी। मैं क्या करूँ सर..." वाक्य पूरा-होते-करते वह सिसकने लगी।

फ़ोन डिस्कनेक्ट हो गया।

थोड़ी देर वह वैसे ही रोती रही। उसके बाद मन थोड़ा हल्का हुआ। उसने सोचा पता नहीं डॉ. क्या सोचेगा। एकदम बच्चों की तरह रोने लगती है। आजकल सचमुच वह वक़्त-बेवक़्त रो देती है। मन बिल्कुल भरा-भरा रहता है। ज़रा-सी छुअन लगी नहीं कि बहने लगा। कभी-कभी बड़ी शर्मिंदगी महसूस होती है। फिर कई दिनों तक आँखें चुराते ही बीतता है। लेकिन वह क्या करे? कितना तो चाहती है कि बिल्कुल बोल्ड रहे। एकदम स्ट्रॉंग। अंतर के भावों को चेहरे पर झाँकने भी न दे, इसीलिए कई बार बिना मतलब के भी हँसने और ज़ोर-ज़ोर से बोलने का भी प्रयास करती है, लेकिन सारी कोशिशें भुरभुरी बालू की भीत की तरह एक हल्के स्पर्श से ही धराशायी हो जाती हैं और वह जस की तस जहाँ की तहाँ खड़ी मिलती है।

उसकी फ्रेंड अनीता ने उससे कहा था, "तुझे कोई शारीरिक बीमारी नहीं है। तू व्यर्थ ही डॉक्टरों के चक्कर लगा रही है। मेरी मान, तो कुछ पूजा-पाठ में मन लगा। तेरा मन अस्वस्थ है। जब वह ठीक हो जाएगा, तो देख सब अच्छा हो जाएगा।"

कोशिश तो उसने कई बार की, लेकिन मन लगता ही नहीं किसी भी चीज़ में। जितना ही वह मन के धागे को लपेटना चाहती है, वह उतना ही हाथ से छूटता जाता है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है, जैसे किसी गहरे कुएँ में लटकी बाल्टी में बैठा मन निरंतर गहरे और गहरे धँसता जा रहा है। उसे पकड़ने का उसका हर प्रयास व्यर्थ हो जाता है। तब उसके पास सिवाय प्रतीक्षा के और कुछ नहीं रहता कि शायद अब... अब उसका मन ठीक हो। और जो उसके चारों और गहरे काले धुएँ का दलदल छा गया है, छँट जाए। कहीं से... कहीं से उत्साह की कोई गुलाबी किरण उसे छेदकर भीतर तक पहुँच सके।

लेकिन, बिना वादे के इंतज़ार-सी उसकी यह चाहत दो-तीन-चार दिन तक अनायास खिंचती जाती है और वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ दर्शक की तरह सिर्फ़ कुछ न कुछ घटित होते देखती रहती है। जैसे सब कुछ उसके साथ न घटकर किसी दूसरी काया पर घट रहा हो और वह निर्लिप्त द्रष्टा की भूमिका में आ खड़ी हो।

पूजाघर में वह नहीं जाया करती। कभी मूर्तिपूजा में उसकी आस्था न थी। बचपन से पारिवारिक पृष्ठभूमि में जिस धार्मिक भावना ने अंकुर लिया था, वह आर्य समाज के विचारों से ओतप्रोत थी, लेकिन कहते हैं न कि वैचारिक कट्टरता तभी तक, जब तक कोई स्वार्थ आड़े न आए। मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे सबके दरवाज़े खटखटा आयी। नियम से पूजा-गृह में ध्यान लगाने की कोशिश करती। हाँ, वह कोशिश ही तो थी। उसे न पूजा करना आता था और न ही विधि-विधानों की कोई जानकारी थी। फूल कब चढ़ाए, धूपबत्ती कब जलाए, कुछ भी तो पता न था। वह शिव की मूर्ति की तरफ़ टकटकी लगाये बैठ जाती। हाथ अनायास जुड़ते और मुँह से कोई शब्द निकले, इसके पहले आँखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से आँसुओं की धारा बह निकलती। मन ही मन वह कहना चाहती—'मृत्युंजय महादेव त्राहिमाम् शरणागतम्, जनम मृत्यु जराव्याधि पीड़ितम् कर्म बंधने, लेकिन शब्द विगलित मन की आँच में पिघलकर आँसुओं के साथ बह जाते। न जाने कितने दिनों के प्रयास के बाद भी वह मंत्र-जाप न कर सकी थी, तो उसने 'नमः शिवाय' को ही मन ही मन दुहराना शुरू कर दिया था।

धीरे-धीरे उसने यह जान लिया कि उसे हुआ क्या है। कुछ भी तो नहीं। वह खुश नहीं है। वह उदास है। वह दुखी है। एक गहरी उदासी ने उसे अपने आगोश में भर लिया है, जिससे न तो वह मुक्त हो रही है और न ही उसको मुक्त होने का कोई उपाय दिख रहा है। वह जलते तवे पर पड़ी बूँद की तरह तड़प उठती है। दिन-ब-दिन उसके अंदर अजीब-सी छटपटाहट भरती जा रही है। हवा भरे गुब्बारे-सा उसका वजूद शून्य में अटका हुआ है। शक्ति-सामर्थ्य का नामोनिशान नहीं है। गले तक जैसे लाल मिर्च का धुँआ भर गया हो। न कछ उगला जा रहा है, न ही निगला। शिराओं में रक्त की जगह तीखी मिर्ची का रस बह रहा है, जिसके ताप से शरीर का पोर-पोर झुलसा जा रहा हो और सब कुछ भस्मीभूत हो गले में अटक गया हो।

डॉ. कुलकर्णी ने पहली बार उसे इस स्थिति में बर्फ़ के टुकड़े चबाने को कहा था। बर्फ़ पिघलकर गले से उतरती, तो थोड़ी देर को कुछ चैन मिलता, उसके बाद फिर जस-का-तस। उसका पूरा फ्रिज आइस ट्रे के अलावा कटोरियों में जमे बर्फ़ से भरा रहने लगा। तौलिये को तहाकर फ्रीजर में रख देती, फिर उसी से पूरे शरीर को पोंछ डालती। ठंडे पानी का स्पर्श कुछ राहत के पल अवश्य ले आता, लेकिन अगले ही क्षण सब भाप।

डॉ. कुलकर्णी ने ही बताया था कि इसे डिप्रेशन कहते हैं और फिर उसके तमाम लक्षणों को स्पष्ट किया था। लेकिन उनके लिए भी यह आश्चर्यजनक था कि उसे डिप्रेशन क्यों?

"डिप्रेशन क्यों होता है?" उसने साँस रोककर पूछा था, न जाने उत्तर में कैसा विस्फोट हो। वह आजकल परिस्थितियों से डरने लगी थी। सुबह से शाम और शाम से सुबह हर वक़्त दिल किसी न किसी आशंका की आतुरता में सिकुड़ता जा रहा था। हर क्षण अनिश्चय के रंग में रँगा। अस्थिरता और क्षणभंगुरता का ऐसा गहरा बोध। जिसने उसके व्यक्तित्त्व को बिल्कुल झिंझोड़ दिया। समय की साधारण से साधारण करवट को भी बर्दाश्त करना मुश्किल-सा हो गया।

"यही तो मुझे भी समझ नहीं आता, बट ऐनी वे... तुम चाहोगी तो बहुत जल्दी इससे उबर आओगी," कहते हुए डॉ. ने बहुत सारी हल्की-फुल्की बातें की और बात ही बात में उसे बताया कि इससे निकलने के लिए 'विल पावर' और 'स्ट्रांग कान्फ़ीडेंस' की ज़रूरत है। सच कहा जाए, तो इसका इलाज मरीज़ में उसका स्वाभिमान और उसमें उसका विश्वास रोपना ही है... उठो, और मेरे लिए एक कप कॉफ़ी बनाओ, मैं जानता हूँ कि तुम कॉफ़ी बहुत अच्छी बनाती हो," अचानक ही डॉ. ने जैसे किसी अंक का पटाक्षेप करते हुए कहा।

"आप को कैसे मालूम?"

"मेरा मन कह रहा है।"

उसने देखा, डॉ. कुलकर्णी की आँखें स्नेह, अधिकार और आकांक्षा से भरी उसे निहार रही थीं। घंटे भर पहले रस निचुड़े गन्ने की खोई-सी पड़ी काया स्नेहसिक्त दृष्टिपात से एकाएक स्फूर्तिवान हो उठी। वह मंत्रचालित-सी उठी और सचमुच उसने ग़ज़ब की कॉफ़ी बनायी।

"पीकर देखो। तुमने कैसी कॉफ़ी बनायी है" डॉ. ने अपने कप से दूसरे में डालकर उसे दिया और बताया, "कभी ज्यादा कमज़ोरी लगे, तो एक कप कॉफ़ी पी लिया करो। लेकिन हाँ, स्वयं बनाकर... क्योंकि इतनी लाजवाब तो और किसी के हाथों बनेगी ही नहीं।"

पहली बार उसे लगा था कि सचमुच वह कॉफ़ी अच्छी बना लेती है। शायद उतनी नहीं, जितनी प्रशंसा डॉ. कुलकर्णी कर रहे थे, लेकिन... फिर भी... और अनायास वह मुस्कुरा उठी।

कितने दिनों बाद! न जाने कितने दिनों बाद वह मुस्कुराई थी। यूँ ही... सहज... किसी की आवभगत में नहीं... अपने लिए... सिर्फ अपने लिए... सोचकर... मन से... अंदर से... हृदय से... उसे लगा जैसे कलेजे पर पड़ी बरसों की गीली मिट्टी को शीतल जल की धार से किसी ने साफ़ कर दिया हो!

सब कुछ स्वच्छ! साफ़ और सुंदर...

उसे अच्छा लगा।

अच्छा लगने के अहसास से वह चौंक गयी। शायद डर गयी। कब तक... कब तक... शायद अगले ही पल वह फिर काले-काले बादलों के अंधकार में खो जाएगी... वह फिर उदास हो जाएगी... फिर वैसे ही... नहीं...

उसने धीरे-से आँखें मूँद लीं और मन-ही-मन कहना शुरू किया, "मुझे कुछ नहीं हुआ है... मैं बिल्कुल ठीक हूँ... मुझे कुछ नहीं हुआ है... मैं बिल्कुल ठीक हूँ...

उसकी आँखों से झर-झर आँसू चू रहे थे, जैसे तेज़ बारिश में बर्फ़ के नन्हे-नन्हे कतरे जिनमें उसका विषाद भी घुला-मिला जा रहा था।

कुछ देर बाद, जब उसने स्वयं को महसूस किया, तो पाया कि भोर की गुलाबी नर्म रश्मियाँ उसे चारों ओर से सँभाले हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा था...

जयश्री राय

खिड़की पर झुके गुलमोहर को वह बिस्तर पर लेटे-लेटे देखती रही थी। कैसा ख़ूबसूरत रंग है, जैसे आग लगी हो! कई दिनों की अनवरत बारिश के बाद आज धूप निकली है। नीला आकाश साफ़ झक् होकर आईने की तरह चमक उठा है। पिछले कई महीनों से जैसे उसने जीवन को खिड़की से ही देखा था—मौसम के बदलते हुए तेवर के साथ क्षण-क्षण रंग बदलते हुए, चेहरा बदलते हुए... मगर उदासी का एक दबा-सा अहसास अंतःसलिला नदी की तरह अंदर ही अंदर चुपचाप बहता रहा था—उसके अस्तित्व को किस्तों में तोड़ते हुए, बिखरते हुए। सतही तौर पर भले ही उसने हँसना—बोलना नहीं छोड़ा था, मगर कहीं गहरे वह जानती है, वह अंदर से टूटती जा रही है, शायद फ़िर कभी न जुड़ने के लिए! यह निःशब्द दरकना और ऊपर से बने रहने का प्रयास... बहुत थका देने वाला था। गहरी साँस लेते हुए उसने खिड़की से दृष्टि हटा ली थी। पहले-पहल यह सब इतना हताशाजनक नहीं था, क्योंकि तब उसके अंदर ऊर्जा चुक नहीं गयी थी। वह मज़बूत थी। अपनों का साथ हो तो इन्सान हर विपदा का सामना कर लेता है। यह अकेलापन ही होता है, जो उसे असमय तोड़कर रख देता है। बीमारी के शुरू-शुरू के दिन उसके लिए बेहद मुश्किल थे। उसके परिवार के लिए भी आसान नहीं रहा होगा, मगर, उन्होंने मिल-जुलकर झेल लिये थे। उसे याद है, जिस दिन उसका कैंसर कन्फ़र्म हुआ था, प्रबीर किस तरह डाइनिंग रूम में देर तक चुपचाप बैठा रह गया था। उसने ख़ुद ही उठाकर मेडिकल रिपोर्ट पढ़ ली थी। दोनों ही कुछ बोल नहीं पाये थे। शाम को बच्चे स्कूल से लौटे, तो दोनों उनके सामने सहज होने के प्रयत्न में बार-बार असहज होते रहे थे। उस रात प्रबीर देर तक बालकनी में खड़ा सिगरेट पीता रहा था। बाद में, वही उसे बिस्तर पर बुला लायी थी। तब सुबह होने में ज़्यादा देर नहीं थी शायद...।

उसके बाद कुछ महीने दुःस्वप्न की तरह बीते थे। दो-दो ऑपरेशन, तरह-तरह के टेस्ट, दवाइयाँ, अस्पतालों के अंतहीन चक्कर और इन सबके बीच एक सर्वग्रासी डर—किसी भीषण अज्ञात का, कुछ सांघातिक घट जाने का! रात-दिन पूरा परिवार अंदर ही अंदर घुल रहा था, मगर ऊपर से एक- दूसरे के लिए सामान्य होने का अभिनय किये जा रहा था। यह स्थिति सबसे ज़्यादा त्रासद थी। एक-एक ऑपरेशन होता, नमूना परीक्षण के लिए लैब भेजा जाता और वे किसी अनहोनी की आशंका में अपने आप में सिमटे-सिकुड़े बैठे रहते। यह प्रतीक्षा उन्हें तोड़ रही थी। हालाँकि कैंसर ज़्यादा फैला नहीं था, मगर कीमोथेरेपी तथा उसके बाद रेडियेशन लेना ज़रूरी था। छोटे-से शहर में ये सुविधाएँ उपलब्ध न होने के कारण उन्हें इलाज के लिए किसी दूसरे शहर जाना था। प्रबीर का अपना व्यापार था, बच्चों के स्कूल थे। समझ में नहीं आ रहा था, क्या किया जाए। बानी दी पूणे में थीं। उन्होंने उसे अपने पास बुला लिया। बानी दी के पास रहकर इलाज करवाने से उनकी कई समस्याओं का हल हो गया था—प्रबीर का काम तथा बच्चों की पढ़ाई निर्विघ्न जारी रह सकती थी। शुरू-शुरू में सब कुछ अपेक्षा के अनुरूप ही होता रहा। वह बानी दी के साथ अस्पताल जाया करती। शनिवार के दिन प्रबीर बच्चों के साथ मिलने आ जाता। पहले-पहल एक-दो कीमो के बाद वह अपने घर भी वापस गयी थी। मगर, सफ़र की तक़लीफ़ें झेल नहीं पायी थी। उल्टियाँ बहुत बढ़ गयी थीं। जी भी घबराता रहता था । फिर, सफ़र में परहेज़ करना भी मुश्किल था। घर पहुँचकर वह कीमो के असर तथा सफ़र की थकान से दिनों तक बीमार पड़ी रही थी। इसलिए, इलाज के दौरान बानी दी के पास ही रहने का फ़ैसला लिया गया था। प्रबीर के लिए भी अपना काम तथा बच्चों की पढ़ाई रोककर बार-बार आना कठिन था। इस व्यवस्था से उसका मन तो बहुत छटपटाया, मगर मन मारकर उसे रहना ही पड़ा।

घर से दूर होकर उसने जाना था कि घर क्या होता है! घर की छोटी-छोटी बातों में कितनी ख़ुशी, कैसा सुख छिपा होता है—इसका अहसास भी उसे पहली बार इतनी शिद्दत से हुआ था। रोजमर्रा के जिन कामों से उसे ऊब होती थी, अब वही उसे सुंदर सपनों की तरह लुभाने लगे थे- सुबह का नाश्ता बनाना, बच्चों को स्कूल के लिए तैयार करना... प्रबीर बच्चों को स्कूल छोड़ते हुए ऑफ़िस जाता था। जाते हुए दोनों बच्चे दूर तक हाथ हिलाते थे- बाय माँ... हस्पताल के बिस्तर पर तरह-तरह के यंत्रों, नलियों से घिरी वह अपने परिवार को याद करती रहती - अभी प्रबीर सुबह की चाय पी रहा होगा, गुड़िया अपने अनगढ़ हाथों से स्कूल की तैयारी कर रही होगी... कभी-कभी एक-एक पल गुज़ारना मुश्किल हो जाता था। रातों को अपेक्षाकृत शांति होती, तो वह चुपचाप रोती रहती। एक बार नाइट ड्यूटी पर आयी नर्स के पूछने पर उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहाना बना दिया था कि आँखों में कुछ पड़ गया है।'दोनों आँखों में?' नर्स कौतुक से मुस्करायी थी। अब वह किसी को क्या बताती कि वह आँखों पर बाँह रखे क्यों सोती है, क्यों लगने पर भी चेहरे से चादर नहीं हटाती, क्यों गर्मी बार-बार चेहरा धो आती है...

शुरू-शुरू में घर से लगातार फ़ोन आते थे, मगर धीरे धीरे भी वह भी कम हो गया था। प्रबीर का काम बढ़ गया था, बच्चों के इम्तिहान भी क़रीब आ रहे थे। उसे हरपल इंतज़ार रहता था, मगर शिकायत करती तो किससे करती!

राउंड पर आये डॉ. विवेक ने एक बार उसे रोते हुए देख लिया था। वह अटपटे बहाने गढ़ने लगी थी—"सर में दर्द है, आँखों का इन्फ़ेक्शन ठीक नहीं हो रहा है.."

डॉ. विवेक मुस्कराते हुए सामने बैठ गये थे—"हूँ! तब तो आपको एक बड़ा सा इंजेक्शन लगाना पड़ेगा मिस पाल... आप झूठ बोल रही हैं न ? मैं नब्ज़ देखकर बता सकता हूँ।"

वह झेंपकर रह गयी थी। "अच्छी किताबें पढ़िए, प्राणायाम तो ज़रूर कीजिए, आपका मन लगा रहेगा, सेहत के लिए भी अच्छा है..."

इसके बाद राउंड पर आकर डॉ. विवेक प्रायः कुछ देर के लिए उसके पास रुक जाते थे। एक बार बेगम अख़्तर का सी.डी. भी दे गये थे। इस तकलीफ़ और अकेलेपन के बीच डॉ. विवेक का थोड़ी देर के लिए उससे हँस-बोल लेना उसे अन्जाने की अच्छा लगने लगा था। अब प्रबीर, बच्चों के फ़ोन के साथ उसे डॉ. विवेक का भी इंतज़ार रहने लगा था। उनके आने का समय होता तो उसकी आँखें अनायास आईने की तरफ़ उठ जातीं। वह कई बार स्वयं को डॉ. विवेक की नज़रों से देखने लगती थी। एक बार उसकी केस फाइल देखते हुए डॉ. विवेक ने आश्चर्य से कहा था- "फोरटी टू! आर यू श्योर मिस पाल? आप तीस से ज़्यादा की नहीं लगती!"

"और क्या, आप से दस साल तो बड़ी होऊँ..."

"अच्छा, आप समझती हैं, मैं मान लूँगा?"

डॉ. विवेक की दोस्ती की वजह से अब दिन कुछ हल्के-फुल्के गुज़रने लगे थे।

अस्पताल की सफ़ेद, नीली दीवारों, पर्दे और एक तटस्थ-सी चुप्पी के बीच एक अनकहे इंतज़ार में रात दिन आते-जाते रहते थे। उसने दिन गिनना छोड़ दिया था, कैलेन्डर की ओर देखना छोड़ दिया था, अपनी घड़ी उतारकर रख दी थी.. हर तरह से इस इंतज़ार से छूट जाने का प्रयत्न किया था, मगर वह जानती थी, यह उसके अंदर बना रह गया है-हर पल, हर क्षण-अच्छे दिनों का इंतज़ार, दर्द-तकलीफ़-डर से छूटने का इंतज़ार, ज़िंदगी का इंतज़ार, खुशियों का इंतज़ार... ठीक से सो नहीं पाती थी, बार-बार उठकर अपना मोबाइल चेक करती थी—शायद प्रबीर का एस. एम. एस. आया हो, शायद गुड़िया ने मिस कॉल दिया हो.. उस दिन दोनों बच्चे मोबाइल छीन-छीनकर एक -दूसरे की शिकायत कर रहे थे-"माँ, दादा ने मेरा कलर बॉक्स डस्टबिन में फेंक दिया....।"

"नहीं माँ, इसने मेरा होमवर्क पहले फाड़ा था, मुझे स्कूल में डाँट पड़ी, पनिश्ड भी हुआ.."

उनको चुप कराते-कराते वह स्वयं अजीब सुख से भरकर रो पड़ी थी- ईश्वर मुझे कुछ नहीं चाहिए, बस मुझे मेरा छोटा-सा घर, मेरी ज़िंदगी वापस दे दो.." इस घर को बनाने में उसने स्वयं को खपा दिया था। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और सपनों की बलि दे दी थी। शादी के बाद पी-एच. डी. के लिए उसका शोधकार्य रुक गया था। मानव पैदा हुआ तो उसने अपनी लेक्चरर की नौकरी भी छोड़ दी। प्रबीर भी यही चाहता था। शादी के बाद उसका परिवार ही उसकी पूरी दुनिया बन गया था। आज उसी परिवार के छूट जाने से जैसे उसके पास कुछ भी नहीं रह गया था, वह खुद भी नहीं! इतना अकेला उसने स्वयं को इससे पहले कभी महसूस नहीं किया था।

इन दिनों जब भी वह उकताकर प्रबीर को फ़ोन करती, वह एक-दो बातें करके व्यस्तता का बहाना कर फोन रख देता था। उसका मन भर आता मगर कुछ कह नहीं पाती। बस, एक अनबूझ दुःख अंदर ही अंदर बना रहता। वह रुक गयी थी, तो क्या उसके साथ दुनिया भी रुक जाएगी...! सबका काम है, ज़िंदगी है। सिर्फ़ एक वह है, जो ज़िंदा तो है, मगर उसके पास ज़िंदगी नहीं है। उसकी ज़िंदगी तो यही ज़िंदगियाँ थीं, जो आज उसे अकेला छोड़ अपनी-अपनी राह चल पड़ी हैं। बच्चों से पूछती, तो यही सुनने को मिलता कि पापा लंच पर घर नहीं आते, होमवर्क नहीं कराते.. पूछने पर प्रबीर न जाने क्यों अकस्मात् चिढ़ गया था-"तुम तो वहाँ जाकर बैठ गयी हो, यहाँ दस झमेले मेरे सर है... क्या-क्या सँभालूँ? रात दिन एक प्रेजेंटेशन की तैयारी में लगा हूँ।"

"मेरा मतलब यह नहीं था..." वह मायूस हो उठी थी, "घर पर लंच नहीं लेते, रोज़-रोज़ होटल का खाना..."

"नहीं, विभा अपने घर से बनवाकर लाती है, वर्ना मेरी तो हालत हो जाती... ऐसी एसिडिटी हो रही थी कि बस..."

"यह तो अच्छा हुआ..." उसने रुँधे गले से कहा था, जैसे स्वयं को ही विश्वास दिलाने का प्रयत्न कर रही हो कि जो कुछ हो रहा है, अच्छा ही हो रहा है। बाद में, गुड़िया ने बताया था पापा चेम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स की मीटिंग में दिल्ली गये हैं। विभा आंटी ने वहाँ से उसके लिए बार्बी डॉल लाने का वादा किया है। इसके बाद कई दिनों तक प्रबीर का फ़ोन नहीं आया। कीमो की वजह से उसे पेट का भयंकर इन्फ़ेक्शन हो गया था। उल्टी, दस्त, बुखार कम होने का नाम ही नहीं ले रहे था। उसे अस्पताल में दाख़िल करवाना पड़ा था। आई. वी. के ज़रिये भारी मात्रा में एंटीबाइटिक्स दिये गये थे। मन और शरीर की दुहरी मार ने आठ-दस दिन में ही उसे बेहद कमज़ोर बना दिया था। बाद में प्रबीर ने उसे बताया था कि मीटिंग के बाद उनकी आउटिंग की व्यवस्था की गयी थी। चाँदनी रात में ताजमहल वाकई अद्भुत दिखता है। विभा ने तो अनारकली के गेटअप में तस्वीर भी खिंचवायी...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने उम्मीद से भरकर पूछा था-"शनिवार को आओगे न? तुम लोगों से मिले बहुत दिन हो गये...."

"नहीं, बहुत काम है... फिर, तुम ठीक भी हो..." बिना ज़िद किये उसने फ़ोन रखकर खिड़की से बाहर देखा था- गुलमोहर के फूल प्रायः ख़त्म हो आये थे। पिछली बार जाते हुए प्रबीर ने उसके आँसू पोंछे थे-"मैं तुम्हें जल्दी घर ले जाऊँगा अपराजिता.." उसने अनजाने ही उँगलियों से क्रॉस बनाया था।

कई दिनों बाद डॉ. विवेक लौटे, तो उसे देखकर चौंक पड़े-"अरे! आप बहुत चिंता करती हैं क्या? मुझे प्रबीर का नंबर दीजिए, बात करता हूँ उनसे!" डॉ. विवेक गणेश-पूजा के अवसर पर अपने गाँव गये थे। उनके परिवार ने उनके लिए कोई लड़की भी पसंद कर रखी थी।

"क्यों डॉक्टर, कोई लड़की पसंद आयी?" उसने मुस्कुराते हुए उन्हें छेड़ा।

"अरे कहाँ मिस अपराजिता, एक तो कोई पसंद नहीं आती, और जो आती है, उसकी शादी हो चुकी है पहले ही..."

"कैसी लड़की चाहिए आपको, कहिए तो मैं ढूँढ दूँ.."

"अपनी जैसी लड़की ढूँढ दीजिए, अभी शादी कर लूँगा।"

उनकी बात सुनकर वह झेंपकर रह गयी थी। उठकर आईने में अपना चेहरा देखा था- आँखों के नीचे स्याह घेरे, ज़र्द चेहरा, नीली-बैंजनी धारियों से भरी बाँहें... सुई, आई. वी. लगा-लगाकर अब हाथ में कोई नस नहीं बची थी।... खुद अपनी ओर नहीं देखा जाता, कोई मेरी जैसी औरत से क्या शादी करेगा...

एक अनाम सुख से भरकर वह सोचती रही थी। प्रबीर की उपेक्षा ने उसे कब से उदास कर रखा था। उस रात कीमो की रंगीन बोतल को देखकर उसे गुलमोहर के पीले-नारंगी फूल याद आये थे... अस्पताल से डिस्चार्ज होकर भी उसे कुछ दिन अकेले ही रहना पड़ा था। बानी दी अपने पति के साथ थोड़े दिनों के लिए मालदीव गयी हुई थीं। वैसे, घर में नौकर-चौकीदार—सभी थे। बीच-बीच में लंदन से बड़े भैया का फ़ोन भी आ जाता था। इन दिनों उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। पूरी शाम टेरेस पर चुपचाप बैठी रहती। आकाश में उड़ते पक्षियों को देखकर मन एक अनाम इच्छा से भर उठता था- सब अपने-अपने घर लौट रहे हैं, वह अपने घर कब लौटेगी.. उसे अपने आँगन का तुलसी-चौरा याद आता, आषाढ़ की भीगी हुई नीली संध्या में हरसिंगार के फूलों की बीच झिलमिलाता हुआ दीया, उसकी सुनहरी लौ में जैसे पूरे आँगन में सुख, स्वप्न की धारा बहती रहती थी। वहाँ खड़े होकर उसने सालों अपने परिवार के लिए मंगलकामना की थी। शाम ढले वह चुपचाप उठकर अपने कमरे में चली आती। सुख-वैभव से भरे घर में एक अनकही उदासी बिछी रहती थी। घर इन्सान और उसके रिश्तों से बनता है, ईंट-पत्थर या वैभव से नहीं—उसने पहली बार इस सच्चाई को इतनी शिद्दत से महसूस किया था। उस रात प्रबीर ने न फ़ोन किया था, न उसका फ़ोन उठाया था। दूसरे दिन पता चला कि प्रबीर को पूरी रात विभा के यहाँ रुकना पड़ गया था। उसकी तबीयत अचानक बिगड़ गयी थी। डॉक्टर ने उसे अकेला छोड़ने को मना किया था। घर में कोई दूसरा था भी नहीं । वह अकेली रहती है।

"बिचारी बहुत डर गयी थी, मेरा हाथ ही नहीं छोड़ रही थी... प्रबीर की बातें सुनकर उसका बदन घुलने लगा था। रात-भर उल्टी होती रही थी। सुबह तक कमज़ोरी बहुत बढ़ गयी थी।

थोड़े दिन बाद हीमोग्राम करवाने वह अस्पताल गयी, तो डॉ. विवेक उसे चाय से लिए कैंटीन ले गये।

"मिस्टर प्रबीर दो महीने से आपसे मिलने नहीं आये...?" चाय पीते हुए उन्होंने गंभीर होकर पूछा था, "मैंने उनसे बात की थी। पता नहीं, अच्छे मूड में नहीं लग रहे थे, कह रहे थे, अपराजिता के जो प्रॉब्लम्स हैं, उन्हें आप सुलझा सकते हैं, मैं नहीं। मैं अपनी जिम्मेदारी निभा रहा हूँ, इतना पैसा खर्च कर रहा हूँ..."

वह चुपचाप चाय पीती रही। कोई भी सफ़ाई देना यहाँ निरर्थक था। डॉ. विवेक उसकी तरफ़ देखते रहे—"आप खुश रहा कीजिए मिस अपराजिता, उदासी आप पर अच्छी नहीं लगती।"

उस दिन उसने आईने में अपना चेहरा फिर देखा था। चेहरा तमतमाया हुआ था, तपेदिक के बीमार की तरह! आज उसे अपने बालों की कमी बहुत साल रही थी। कितने ख़ूबसूरत बाल थे उसके। कीमो के पहले डोज़ के बाद ही झड़ गये थे। सुबह उठकर आईने में स्वयं को देखकर वह देर तक रोती रही थी। गंजे माथे पर बिंदी कितनी अजीब लग रही थी। पीछे बाल जटा में बदलकर लटक रहे थे। प्रबीर ने उसके गंजे सर पर नज़र पड़ते ही झटके से दूसरी तरफ़ नज़र फेर ली थी। सारा दिन वह उसकी तरफ़ देखने से बचता रहा था। बच्चे भी सहम गये थे। एक अजीब क्षोभ और विद्रोह से वह भर उठी थी। दो दिन सर पर रूमाल लपेटकर घूमने के बाद उसने नंगे सर घूमना शुरू कर दिया था। उसे देखकर विभा के सामने जहाँ प्रबीर बिल्कुल अस्वस्थ हो उठा था, वहीं विभा अपनी आँखों की चमक छिपा नहीं पायी थी।

उस रात प्रबीर उस पर बिफर पड़ा था-" तुमने नंगे सर क्यों घूमना शुरू कर दिया, कितना भद्दा लगता है..."

"जो हुआ है, उसमें मेरा तो कोई कसूर नहीं प्रबीर, फिर मैं क्यों छिपती फिरूँ..."

"तुमसे बहस कौन करे.." प्रबीर मुँह फेरकर सो गया था।

चेहरों के बदलने की, रिश्तों के टूटने की वह शुरूआत थी। परिवर्तन की इन ख़ामोश आहटों को सुन वह एक अदृश्य आतंक से भर उठी थी। असुरक्षा की भावना से इन्सान अपने चारों तरफ़ जो दीवार खड़ी कर लेता है, एक दिन उससे घिरकर स्वयं अकेला हो जाता है। खुद के और अपनों के बीच शायद वह खुद ही एक दीवार बनकर खड़ा हो जाता है। न खुद किसी तक पहुँच पाता है, न किसी को अपने पास आने देता है। उपेक्षा के अहसास में ज़्यादा-से-ज़्यादा ध्यान आकर्षित करने के लिए उसकी शिकायतों का सिलसिला बढ़ता ही चला गया था। वह चिड़चिड़ी हो गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर छोटी-मोटी बात पर लड़ पड़ती थी। रातदिन तकलीफ़ों की शिकायत करती रहती, कराहती रहती। अब सोचती है, तो लगता है, उसने सब कुछ पाने के चक्कर में ही सब कुछ खो दिया था। उसने ज़िंदगी को जितना समेटने की कोशिश की, ज़िंदगी उतनी ही बिखरती चली गयी...

अगले शनिवार, जब पूरा परिवार उससे मिलने आया, उसने सब कुछ बदला-बदला पाया। प्रबीर बार-बार बाहर जाकर मोबाइल पर किसी से दबी आवाज़ में बातें कर रहा था। बच्चों से बार-बार 'विभा आंटी' का नाम सुनकर वह और भी मायूस हो उठी—"माँ, विभा आंटी तुमसे भी अच्छा पिज्जा बनाती हैं..." प्रबीर में भी कई तब्दीलियाँ आयी थीं- उसके कपड़े ज़्यादा रंगीन हो गये थे, उसने तरह-तरह के कोलोन, आफ़्टर शेव का इस्तेमाल शुरू कर दिया था। दोपहर को प्रबीर नहाने के लिए बाथरूम गया तो गुड़िया उसका पर्स लेकर चिल्लाने लगी—"भैया देख, विभा आंटी का फ़ोटो..." प्रबीर ने बाहर निकलकर उसके हाथ से अपना पर्स छीन लिया था। वह दूसरी तरफ़ मुँह फेरे अन्जान बनी पड़ी रही थी। आँसू एक आँख से दूसरी आँख तक बहते रहे थे—देर तक। प्रबीर ने झुककर वह जाग रही या नहीं, शायद यही देखने का प्रयत्न किया था।

शाम को टेरेस पर चाय पीते हुए उसने बात छेड़ी थी-"मेरी तबीयत का ये हाल है, बच्चों की बड़ी चिंता होती है..."

"सोचो मत, सब ठीक हो जाएगा.." प्रबीर ने तटस्थ भाव से कहा था।

"मुझे कुछ हो गया तो... माना, विभा बच्चों की बड़ी परवाह करती है, मगर कौन दूसरों को हमेशा सँभालता है...।"

"विभा ऐसी नहीं है, वह हमेशा...' कहते-कहते प्रबीर अचानक रुक गया था। वह उसे एकटक देख रही थी। प्रबीर का चेहरा लाल हो उठा था, वह उठकर अंदर चला गया। आज उसे अपने सारे प्रश्नों के उत्तर मिल गये थे। आस्था-अनास्था के मारक द्वंद्व के बीच जीना कितना कठिन था। आज वह यातना की सारी हदों से गुज़र गयी थी। मन में तूफ़ान के गुज़र जाने के बाद की शांति थी। अब सब कुछ उजड़ चुका था, कुछ उजड़ने की चिंता से वह मुक्त हो गयी थी।

दूसरे दिन जब सब वापस जाने लगे, उसने सहज ढंग से विदा किया। प्रबीर ने हाथ पकड़ा, तो उसने धीरे से स्वयं को छुड़ा लिया- "ठीक रहना प्रबीर.."

प्रबीर उसकी तरफ़ सीधे देख नहीं पा रहा था। कार स्टार्ट करते हुए उसने धूप का चश्मा पहन लिया था। जाती हुई कार को देखते हुए उसके अंदर अजीब-सी चुप्पी थी, जैसे अक्सर अस्पताल के कॉरीडोरों में पसरी हुई मिलती है। अपने अंदर की किसी दीवार में आज उसने खुद को हमेशा के लिए चुनवा दिया था। बहुत जी लिया... उस दिन उसने प्राणायाम नहीं किया, दवाइयाँ भी पड़ी रहीं। दूसरे दिन उसे अस्पताल में दाख़िल करवाना पड़ा। उसका बुखार उतर नहीं रहा था। चार-पाँच दिन कैसे बीत गये, उसे पता भी न चला। प्रबीर घर पहुँचते ही दूसरे दिन एक महीने के लिए विदेश चला गया था। विभा ने गुड़िया से फिर वापी लाने का वायदा किया था। छोटी मौसी घर सँभाल रही थी। शाम को बानी दी उससे मिलने आयी थीं, रजनीगंधा का गुलदस्ता लेकर...

"रजनीगंधा तुझे बहुत पसंद है न ..!" उसने फूलों की तरफ़ देखा तक नहीं।

आज सोनोग्राफ़ी, हीमोग्राम, कार्डियोग्राम, सी.टी. स्कैन, ब्लड टेस्ट—सभी कुछ करवाना था। उसे ख़ून आना शुरू हो गया था, शायद 'ब्लड काउंट' बहुत गिर गया था। कल रात से उसके जबड़े तथा सीने में भी दर्द होने लगा था। डॉ. विवेक के चेहरे पर चिंता साफ़ देखी जा सकती थी। टेस्ट-रिपोर्ट आने पर वे बानी दी तथा जीजा जी को अपने ऑफ़िस में बुला ले गये। दोनों लौटे, तो बानी दी का चेहरा उतरा हुआ था। शायद वह रोती रही थी। उसने उदासीन भाव से पूछा था- "कितने दिन...?"

उसके सवाल पर बानी दी फफक-फफक कर रो पड़ी थीं। जीजा जी ने पूछा था—'प्रबीर को बुला लें?"

"नहीं, नाहक परेशान होंगे... बहुत काम है... बाद में तो आना ही है..."

सुबह के राउंड पर डॉ. विवेक आये, तो वह सामान्य ढंग से मुस्कुरायी थी—"क्यों डॉक्टर, अब भी लड़की ढूँढ रहे हैं?"

"नहीं, मिल तो गयी है, बस वह मान जाए...", उन्होंने गंभीरता से उसे देखा था-"एक और ऑपरेशन होना है, हमें अपनी तरफ़ से कोशिश तो करनी ही है..."

"मैं बहुत थक गयी हूँ, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए...", उसने अपनी आँखें मूँद लीं।

इसके बाद के दिन फिर एक दुःस्वप्न का लंबा सिलसिला बन गये थे, जैसे-ऑपरेशन, टेस्ट, दवाइयाँ, दर्द और दर्द... बिस्तर पर वही जागी-सोयी-सी पड़ी रहती। यथार्थ और कल्पना में फ़र्क करना कठिन हो गया था। कभी जैसे वह अपने घर में होती, कभी आँखें खोलकर स्वयं को डॉक्टर, नर्स, मशीनों, नलियों के बीच घिरा पाती। गुड़िया, मानव को बुला लिया गया था। दोनों उस पर झुके हुए थे- "माँ.... माँ..."

सेडेटिव्स के प्रभाव में वह नशे में डूबती-उतराती रही थी। जैसे लहरों पर तैर रही हो... बड़े भैया भी लंदन से आ गये थे, साथ में भाभी भी। 'प्रबीर जल्द ही आ रहा है'- उससे कई बार कहा गया था। उसने पूछा नहीं था। डॉ. विवेक आसपास बने हुए थे-"मित्र पाल, आपने हौसला क्यों छोड़ दिया...?"

"नहीं, बस, अब कुछ अच्छा नहीं लगता... डॉक्टर, मेरा चेहरा कहाँ गया, मेरा घर कहाँ है", वह हिलक-हिलककर रो रही थी। किसी ने जैसे चुपके से उसके कान में कहा था—"आप ख़ूबसूरत हैं, मेरी नज़र से देखिए... 'उसने चेहरों की भीड़ में डॉक्टर विवेक को ढूँढा था... नहीं, कहीं, कोई नही था! उसे अब मुक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए, ये मोह की मरीचिका उसे कब तक भरमाएगी! उसने गुड़िया की नन्हीं उँगलियों से अपना हाथ छुड़ाया था, मानव को परे धकेला था... तुलसी का दीया अब भी झिलमिला रहा है... भगवान! मेरा घर बना रहे... वह अपनी जबाफूल बनी आँखें झपकाती है - ये मेरा मंगलसूत्र है, ये मेरा बिस्तर है, ये मेरा नाम है-श्रीमती प्रबीर पात... आह! दुःखता है, अब और नहीं! हटा लो ये नलियाँ, ये दवाइयाँ, ये चाकू -छुरियाँ! माँ, माँगो...'

जीजा जी बच्चों को बाहर ले गये हैं, बानी दी सिरहाने रो रही हैं। भैया जीजा जी से कह रहे हैं—'प्रबीर देर रात तक पहुँच रहा है।'

"क्या हमारे पास इतना वक़्त है?" डॉ. विवेक जीजा जी के प्रश्न का कोई जवाब नहीं देते। नर्सों को डाँटते हुए वे अपनी टाई ढीली करते हैं—बड़ी घुटन हो रही है! सबके अंदर एक इंतज़ार- सा बना हुआ है, कुछ घटने का, कुछ न घटने का, न जाने वह अभागा पल कौन सा है...!

दिन भर की अफ़रा-तफ़री के बाद वार्ड नं. 10 अब शांत है। अस्पताल के स्टाफ़ चुपचाप अपनी-अपनी ड्यूटी में लगे हुए। या मौक़ा पाकर इधर-उधर ऊँघ रहे हैं! बीमार नशीली नींद में डूबे हुए हैं। कॉरीडोर में रात दवाई की तरह महक रही है। दूर कहीं रेडियो बज रहा है। पहली मंज़िल पर कोई रुक-रुककर कराह रहा है। नर्स-स्टेशन में फ़ोन की घंटी लगातार बज रही है, मगर कोई फ़ोन उठा नहीं रहा है।

रात के अंतिम राउंड में डॉ. विवेक उसके कमरे में आये हैं। वह जाग रही है। उसके कराहने की आवाज़ आ रही है। डॉ. विवेक ने उसका हाथ पकड़ लिया है। बानी दी एक कोने में भयभीत खड़ी हैं। उनका रोना बंद नहीं हुआ है।

"डॉ. विवेक, लड़की पसंद आयी?" उसके लहज़े में अजीब उन्माद-सा है। वह ढूँढती हुई नज़र से दरवाज़े की ओर देख रही है। बाहर अकस्मात् बारिश शुरू हो गयी है। तेज़ हवा में पेड़-पौधे दुहरे हुए जा रहे हैं। डॉ. विवेक ने उसका हाथ और सख़्ती से पकड़ लिया है- "मिस पाल, मुझे कोई अच्छी नहीं लगती..."

"मगर, उसे तो वह बहुत अच्छी लगती है, पिज्जा भी अच्छा बनाती है...."

"आप अच्छी हो जाएँगी..."

"हाँ, मै भी बहुत जीना चाहती थी, डॉक्टर आपने तो कहा था!" वह शायद रोना चाहती है। मगर, उसके गले से सिर्फ़ फरफराहट की - सी आवाज़ निकल रही है।

"इतनी बारिश में वे कैसे आएँगे?" वह फिर दरवाज़े की तरफ़ देख रही है... "मेरे बाल भी झड़ गये..."

"आप बहुत ख़ूबसूरत हैं, तीस से ज़्यादा की नहीं लगतीं।"

"आपको चश्मे की ज़रूरत है..." शायद वह हँस रही है। उसका शरीर ऐंठने लगा है, चेहरा तमतमा उठा है।

"मैं तो जीना चाहती थी डॉक्टर..." अब वह फिर से रो रही थी शायद...

"मिस पाल! डॉ. विवेक उसे धीरे से हिला रहे हैं। बानी दी रोती हुई बाहर गयी हैं, शायद घर फ़ोन करने। उसने थरथराते हुए डॉ. विवेक का हाथ पकड़ लिया है - "मेरा चेहरा कहाँ गया डॉक्टर? और यह ज़र्द रंग, झुर्रियाँ, नीली स्याह धारियाँ... कितना दुःखता है! ख़ून और ख़ून... मुझे ताजमहल देखना है, चाँदनी रात में!... . ये गहने गुड़िया के लिए, सिर्फ़ मंगलसूत्र मेरा..." बाहर तेज़ बिजली चमक रही है। पूरा कमरा सफ़ेद रोशनी के झमाकों से भर गया है।

"एक भी फूल नहीं बचा..." वह फटी-फटी आँखों से बाहर देख रही है—"कितने फूल थे!"

अचानक तेज़ थकान से भरकर उसने आँखें बंद कर लीं। अंदर परकटे पक्षी-सा कुछ छटपटा रहा है। एक काला भँवर अपने अंदर सब कुछ समोता जा रहा है—उसका चेहरा, गुलमोहर के फूल, गुड़िया की उजली हँसी... प्रबीर ने उसके भीगे बालों में अपना चेहरा छिपा लिया है-"सुबह नहाकर तुम मोंगरे के ताज़े गजरे-सी महकती हो..."

कैसी खुनक भरी मीठी धूप है... "प्रबीर, उठो, ऑफ़िस नहीं जाना?" प्रबीर ने फिर से चादर अपने चेहरे पर खींच ली है। बड़ा आलसी है!... "मेरा हाथ पकड़े रहना, उधर मत देखना..." रस्सी के झूले पर दोनों चल रहे हैं। नीचे अलकनंदा बह रही है। उनकी शादी हुए अभी दस दिन ही हुए हैं। माथे पर कितना सारा सिंदूर दपदपा रहा है!

"तुमने मेरा हाथ क्यों छोड़ दिया प्रबीर। मैं डूब गयी न...!" कितना उपालंभ भरा हुआ है उसके स्वर में!

"मैं आपका हाथ पकड़े हुए हूँ, मिस पाला!"... कौन कह रहा है! वह अपने सूने हाथों को देख रही है।

आह! सब कुछ डूब रहा है—साँसे, आवाज़ें, रोशनी, चेहरे... . कैसा स्याह है ये समंदर! वह चिंघाड़ती हुई लहरों को काटती है, कैसी काली रात...

"सुबह कहाँ ?" वह टटोल रही है- सब कुछ कहाँ खो गया?... मैं हूँ न तुम्हारे साथ!" प्रबीर उसे अपनी बाँहों में बाँधे हुए है। बाहर बहुत तेज़ बारिश हो रही है। रह-रहकर बिजली चमक रही है। उसे बिजली से बहुत डर लगता है।

"मिस पाल, मैं हूँ न..." उसके इर्द-गिर्द ये बाँहें किसकी हैं... ये महक...! वह अपने पर झुके हुए उस भीगे चेहरे को टटोलती है- "उसने कहा था, मुझे घर ले जाएगा..."

"मैं हूँ न..."

"माँ! आ ना..." उसकी नज़रों में एक काला कंबल चढ़ रहा है। आवाज़ें दूर से दूर होती जा रही हैं। शायद ये गुड़िया की आवाज़ है, नहीं! मानव की... उफ़् ! ये ठंडा, काला पानी का रेला कैसे हरहराकर ऊपर चढ़ रहा है! ठोड़ी तक, नाक तक, आँखों तक... ऐसे तो वह पूरी ही डूब जाएगी!... "प्रबीर!" काली नदी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षण-क्षण डूबता हुआ उसका हाथ हिल रहा है- "प्रबीर..!"

"आप मुझसे शादी करेंगी?"

"क्या?... कैसा वाहियात सवाल है!... उससे साँस नहीं ली जा रही है। सीने में, गले में एक काला नाग कुंडली मार रहा है, लिपट रहा है, पेंच कस रहा है।... उसका फेफड़ा सूज रहा है, दम घुट रहा है... थोड़ी हवा, बस थोड़ी हवा... प्रबीर चुपचाप किनारे पर खड़ा है, उसकी बार्बी अपनी लंबी पलक झपका रही है, उसके सुनहरे बाल हवा में उड़ रहे हैं... बाल! सब झड़ गये...अरे! वह तो सचमुच डूब रही है!... उसने मुझसे कहा था...! उसकी आवाज़ में एक परकटे पक्षी की-सी छटपटाहट है। चारों तरफ़ टूटे हुए पंख-ही-पंख फैले हैं।

"आप मुझसे शादी करेंगी?"... ये कौन रो रहा है? उसका माथा भीग गया है। वह उस आँसुओं से तर चेहरे की ओर देखती है-"उसने कहा था...." वह किसी तरह इस बर्फीले पानी से बाहर निकल जाए... अरे, प्रबीर तो मुड़कर जा रहा है!... वह सचमुच मर गयी है... मगर, काले झील में पूरी तरह से डूबते हुए उसका हाथ अब भी हिल रहा था- " प्रबीर...!"

...ये उम्मीद से आगे की कोई चीज़ थी शायद... जो हर इन्सान को अपने भगवान से होता है!

बानी दी दरवाज़े से पास बैठी फफक रही हैं। नर्सें चुपचाप सारे यंत्र, उपकरण हटा रही हैं। प्रबीर अभी तक नहीं पहुँच पाया है... क़फ़न ओढ़ाने से पहले डॉ. विवेक ने झुककर धीरे से जैसे कुछ कहा था और फिर चुपचाप कमरे से निकल गये थे। उन्होंने बार-बार अपराजिता से जो सवाल आज किया था, उसके जवाब की अपेक्षा उन्हें शायद कभी भी नहीं थी... खिड़की के बाहर गुलमोहर के सारे फूल झड़ गये थे...।

तीन माड़, मायना, गोवा-403517

लघुकथा

बिवाइयाँ

अनुरूपा चौधुले

उस दिन सविता ने ऑफ़िस से छुट्टी ले रखी थी। घर की विशेष साफ़-सफ़ाई करनी थी। तकियों के मैले हो आये गिलाफ़, तख़्त की चादर, खिड़कियों के परदे-सब बदलने थे। बच्चों की सूरतें भी सुधारनी थीं। सविता की बड़ी दीदी आने वाली थीं। जीजाजी किसी मल्टीनेशनल कंपनी के बड़े ओहदे पर थे, इसलिए उनका आना मुश्किल था। दीदी भी कार से आकर कुछ ही घंटे रुकेंगी, ऐसा फ़ोन था।

कार का हॉर्न बजते ही बच्चे मौसी-मौसी कहते दौड़ पड़े, लेकिन कार से उतरती मौसी से लिपट नहीं सके। बच्चों और मौसी के बीच विदेशी परफ़्यूम की महक और महँगी साड़ी की चमक आ गयी थी।

दीदी के आगत-स्वागत में सविता के पति अविनाश भी पूरे उत्साह से लगे थे। अविनाश का दौड़-दौड़ कर बाज़ार से नाश्ते-मिठाई का इंतज़ाम करना सविता के मन को ख़ुशी से भर रहा था।

दीदी की इधर-उधर दौड़ती नज़र जब सविता पर टिकी, तो बोलीं, "सवि! ख़ुद की तरफ़ देखा है कभी! बाल कितने बेतरतीब से हो गये हैं। ट्रिमिंग-कटिंग नहीं करवाती क्या? और आई-ब्रोज़ कितनी मोटी हैं? अपने पैरों की तरफ़ देख! कितनी बिवाइयाँ पड़ी हैं।"

दीदी के भाषण से झेंपती सविता साड़ी में अपनी एड़ियाँ छुपाने की कोशिश कर रही थी। दीदी को अविनाश की उपस्थिति का भी ख़्याल नहीं आया।

कुछ देर बाद दीदी का मोबाइल बजा! जीजाजी टूर पर जा रहे थे। रंगीनमिजाज़ी के लिए प्रसिद्ध जीजाजी के साथ उनकी सेक्रेटरी नंदिनी भी थी। फ़ोन रखते हुए दीदी ने तुरंत अपनी आँखों पर बड़े-से गोल फ़्रेम के गॉगल्स चढ़ा लिये थे, लेकिन आँखों की गीली कोरें सविता ने देख ली थीं।

रात को दिन भर की थकी सविता अविनाश के सीने पर सिर रखकर सुस्ताते हुए अपनी फटी और खुरदुरी एड़ियों को देखते हुए सोच रही थी कि दीदी के मन में पड़ी बिवाइयों से तो इनका दर्द ज़रूर ही कम है।

तभी सविता को ध्यान आया कि अविनाश उसके कबसे सहला रहा है।

97, वासुदेव नगर, माणिक बाग रोड, इंदौर (म. प्र.) - 452009

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी माँ

देवी नागरानी

एक ही रात में वह माँ बन गयी। सौतेली ही सही, पर पदाधिकारिणी हुई वह दो बेटियों की। यह वरदान उसे विरसे में मिला। ममता कैसे झोलियाँ भरती है, बच्चे की किलकारियाँ क्या होती हैं, कुछ भी जाने बिना बन गयी वह माँ...नियति का वरदान!!

बड़ी बेटी रचना अपनी नयी माँ के मनोभाव समझ पा रही थी, जो इस महाद्वंद्व के पाटों के बीच कश्मकश के दौर से गुज़र रही थी। कला, हाँ कला ही उसकी नयी माँ का नाम था। सुगठित बदन, गोरा रंग, तीखे नैन-नक्श- एक कलात्मक मूर्ति की छटा व आभा लिये हुए वह अँधेरों में उजाला भरने की क्षमता रखने वाली एक नवयुवती, जो उम्र में उससे आठ साल छोटी और उसकी छोटी बहन कमल से उम्र में आठ साल बड़ी।

रचना बड़ी होने के नाते संबंधों को जानती थी। रिश्तों के बीच के रख-रखाव को पहचानती थी। सगी माँ बीमार थी। इलाज किया गया, पैसा पानी की तरह बहाया गया पर पैसा जीवन दान कहाँ दे पाता है? संसार के तमाम साधन जुटाने में पैसा सहयोग देता है। पैसे के ज़ोर पर पुरानी माँ की मौत के कुछ अरसे बाद ही नयी माँ आ गयी। पिता ने नयी माँ को लाने में जितनी जल्दी की, उतनी ही देर अपनी ही बच्चियों के साथ संबंध जोड़ने में लगा दी। वह मर्यादा जो रिश्तों को जोडती है, वही शायद पिता के जीवन का हिस्सा बन न सकी। रिश्तों का जुड़ना और टूटना एक व्यावहारिक चलन-सा रहा उनके लिए। वे जानते ही नहीं थे कि निबाह करना क्या होता है? अपना बनाना और अपनेपन का साया प्रदान करना उनकी फ़ितरत में शामिल न था—था, तो बस बाहरी लोकलाज, बैठकों में मान-मर्यादा, दिखावे की चमक-दमक और हर वह साधन, जो उनके निजी सुख में बढ़ोत्तरी ला सके।

"रचना कभी-कभी माँ का हाथ बँटा दिया करो, उसे थोड़ा वक़्त लगेगा सीखने में...और तुम...।", पिता का आदेश प्याररहित, अपनेपन से खाली। वो आदेश कम, एक हुकुमनामा था ज़ो न जाने किस रवायत के तहत वो परिवार पर थोपते रहे... हमेशा... पुरानी माँ पर भी।

"आप अपनी नयी बीवी की बात कर रहे हैं...?" रचना ने करारे कटाक्ष के साथ वार किया। जितनी वातावरण में तब्दीलियाँ देखती, उतनी ही बाग़ी सोच होती जाती थी रचना की।

"हाँ तुम्हारी नयी माँ की ही बात कर रहा हूँ।"

"पर, मैं उसे माँ नहीं कहती और न ही मानती हूँ। वह तो उम्र में मुझसे भी आठ वर्ष छोटी है। खूँटे से बाँधकर आपने उससे एक रिश्ता जोड़ लिया है, जाने किस स्वार्थ के कारण..."

"रचना...अपनी सोच को भटकने न दो..." पिता ने अस्पष्ट शब्दों में विरोध किया।

"रिश्ता जोड़ना एक बात है, निभाना एक और बात... और, उसे परिपूर्ण करने के लिए आपको अपने बच्चों का सहयोग लेना पड़े, यह न तो उचित है और न ही शिष्टाचार के लिहाज़ से सही", कहकर रचना बेरुख़ी से चलने को हुई।

"रुको... तुम माँ को माँ नहीं मानतीं, क्या यही तुम कहना चाहती हो।"

"नहीं, कहना तो नहीं चाहती, पर कहे बिना रह भी नहीं सकती। आप मुझे यह अहसास दिलाने की कोशिश न करें कि जो रिश्ते आप मुझ पर थोपेंगे, वे मुझे या कमल को मान्य होंगे... अच्छे-बुरे की पहचान है मुझे, अपना भला-बुरा समझती हूँ और इस घर की बेटी की उम्र से छोटी उम्र की किसी और घर की बेटी को आप ब्याह कर लाये हैं—नयी माँ, उसका अपनी सोच पर पूरा अधिकार होना चाहिए और मैं उस दायरे में कोई दख़ल नहीं देना चाहती.... और आप भी मुझे इस बात के लिए किसी भी तनावपूर्ण स्थिति में न डालें, तो बेहतर होगा।"

माँ की मौत ने रचना के मन को गहरी चोट पहुँचायी और थोड़े ही वक़्त में पिता का नयी माँ को ले आना एक और वार रहा। चोट दर्द का अहसास दे जाती है और यही अहसास बहुत कुछ सिखा भी देता है समय से पहले— प्यार, नफ़रत, ईर्ष्या, स्नेह, घृणा, ममत्व—जहाँ हर चेहरा बेनक़ाब-सा हो जाता है। समझौते के नाम पर रिश्ते नंगे हो जाते हैं। यह रचना की बाग़ी सोच ही उसके अंदर बवंडर उठा रही थी।

"आपकी चाय लायी हूँ"—विनम्र सुलझे हुए स्वर में सुना। मन की कड़वाहट, जो सोच से पैदा हुई, वो गर्म चाय की भाप की तरह रफूचक्कर हो गयी। देखा, कला चाय पास रखे टेबल पर रखकर जाने को मुड़ी।

"सुनो... और उसके आगे रचना कुछ कह न पायी। "जी. .." यह कला का स्वर था, जो अपने ही अंतर्द्वंद्व में उलझी थी कि रचना को कैसे संबांधित करे, कैसे बात करे? कैसे विश्वास दिलाये कि वह उसकी सखी बन सकती है, मन के विचार, दुख-दर्द बाँट सकती हे, पर शायद माँ की श्रेणी में वह सफल न हो पाए।

कला का बचपन बीतने पर, जवानी बिन आहट आयी और बहार आने के पहले पतझड़ साथ लायी....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बेटी अब तू स्कूल न जाया कर, घर का कामकाज सीख ले। आगे काम आएगा", माँ ने कहा था।

"पढ़ना भी तो काम आएगा कि नहीं, माँ घर का काम तो औरत को ता-उम्र करना होता है और, हर लड़की जब औरत बनती है, तो वह सहज ही सीख लेती है", कहकर कला ने पुस्तकें उठायीं और छत पर पढ़ने के लिए क़दम आगे बढ़ाया।

"अरी सुन... अनसुना न किया कर, तेरे बाबूजी कहीं बातचीत चला रहे हैं... अच्छे घर का आदमी है..."

"आदमी..." और कला की चुप्पी में अनगिनत सवालों ने दम तोड़ दिया।

"अरे हाँ, वह सेठ दयालराय, जिसकी पत्नी दो महीने पहले गुज़र गयी। इतना बड़ा कारोबार, हाट-हवेली, दो लड़कियाँ, घर का वारिस नहीं है। कोई तो हो, जो इन सब की बागडोर सँभाल ले। ऐसे ही तो न बीतेगा ये अस्त-व्यस्त जीवन। अगर तेरी बात वहाँ पक्की हो जाए, तो फिर तेरे वारे-न्यारे हो जाएँगे और हम भी सुख की साँस ले पाएँगे...तेरे पीछे दो बहनें और भी तो हैं...मुझे विश्वास है, यह रिश्ता उनके लिये भी स्वर्ग का द्वार खोल देगा...."

छत की ओर जाती सीढ़ी पर पाँव धरा ही न था कि ठिठकी थी कला, कलावती कमलाप्रसाद—यही नाम उसके दाख़िले के वक़्त रजिस्टर में दर्ज हुआ था। यादों की दीवारें शीशों की होती हैं—झीनी-झीनी नाज़ुक; कभी बिना चोट के चूर-चूर होने की तबीयत रखती हैं वे यादें। माँ की ओर देखते हुए सोचती रही। नाम की पहचान क्या सिर्फ़ पिता के नाम से होती है, जन्मदायिनी माँ क्या सिर्फ़ नाम की माँ होती है, जो बच्चों पर अपना सर्वस्व तो लुटाती है, पर अपना नाम तक नहीं दे पाती, उनकी पहचान नहीं बन सकती। यह कैसी धारणा है, कैसी रीति है कि मर्द, सिर्फ़ मर्द ही हर लड़की की पहचान का बायस हो...कभी पिता, कभी भाई, कभी बेटा और कभी पति.....।

"माँ, क्या औरत की पहचान का कोई वजूद नहीं है...." कहना चाहकर भी न कह पायी। सीढ़ी पर पाँव धरते ही सोचा, हर औरत को अपनी पहचान बनाने का, पाने का, सजाने का, संवारने का पूरा अख़्त्यार होना चाहिए...

"अरे भागवान सुनती हो, कल शाम कला का रिश्ता सेठ दयाल राय जी के साथ शगुन के साथ तय होगा। 5 बजे वे आएँगे शगुन लेकर, कोई कमी-कसर न रहे, देख लेना..." कहते हुए कमलाप्रसाद अपनी धोती का पल्लू सँभालते अपने कमरे की ओर गये और कला का पाँव आगे बढ़ने के बजाय जाने कितनी सदियों पीछे की तरफ़ लाँघ आया। ख़ामोश दर्द की सिसकियाँ कौन सुनता है इन रिश्तों के बाज़ार में, जहाँ लेने-देने के सिलसिलों में पिस जाती हैं बेटियाँ, उनका समस्त अस्तित्त्व। उनकी पहचान और ज़िंदगी सिमटकर एक विवाद पर आकर हर जाती है।

"आप भी अपनी चाय यहीं ले आएँ, तो बेहतर होगा"

यह रचना का कोमल स्वर था। नारी-मन अंतर्मन की पीड़ा को, उलझनों के दायरे को शायद भाँप लेता है। कला को लगा कि वह हर सोच से आज़ाद हो गयी हो। मुक्ति के द्वार उसका आलिंगन करने को आतुर थे। लगाकि वह घर में 'नयी' न रहकर पुरानी-सी हो गयी हो।

9-D, Corner View Society, 15/33, Road, Bandra, MUMBAI-400050

लघु कथा

क़ीमती बात

सत्य शुचि

वह सड़क पर इधर-उधर काफ़ी भटका था। लगभग एक घंटा होने को आया, तमाम कोशिशों के बाद भी उसे वह रिश्तेदार नहीं मिला और एकबारगी वह सड़क के किनारे आ लगा।

"भाई साब," एक राहगीर को उसने आवाज़ दी।

"क्या है..." कड़ककर बोला।

"यह गली नंबर, मकान नंबर... प्लीज़, मैं आपका मार्गदर्शन चाहता हूँ", एक चिट उसको सौंपते हुए वह गिड़गिड़ाया।

राहगीर ने दो-तीन पलों तक उस पर्ची को ग़ौर से देखा। तत्पश्चात् वह चहका, "बता मैं दूँगा आपको, लेकिन दस रुपये तो होंगे...."

"किस बात के...?" परेशानी की मुद्रा में था वह।

"क्या बात करने के पैसे नहीं लगते... इस ज़माने में?" पक्के इरादे से वह चीख़ा।

"तो ठीक है..., वो भी दूँगा", उसके स्वर में दृढ़ता थी।

...दो-एक मिनट में इशारों-संकेतों में उसे सारा नक्शा समझाकर राहगीर वहाँ से फूट चुका था।

साकेत नगर, ब्यावर (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्तू

उपेन्द्र कुमार

कौशल और मगध के
घुड़सवारों
और पालकीयुत वाहनों के
अवशेष
चाहे न हों
आज भी पूर्व की
यात्राओं का अपूर्व
विषय है राजनीति

राजनीति से ऊपर भी
कुछ है
और वह है सत्तू

जिसकी सजी हैं आज भी
मौके की जगह
सड़कों के किनारे
दुकानें
तिकोनी
चोटी पर परचम टिकाए
हरी मिर्च
खींचती है ध्यान
बैठे हैं
ज़मीन पर ही
सन्नद्ध
आस्वादक

पूरब में सबसे सहज
सबसे लुभावना
कैसेट का गाना
सत्तू का खाना

अनाज को भूनना पीसना
सही अनुपात में मिलाना
कला है वैसी ही
जैसे पाँच सितारा होटल में
खाना बनाना
अथवा

बनाना ही क्यों
ठीक-ठीक नमक पानी मिलाना
क़ायदे से सानना
चॉप-स्टिक या काँटे-छुरी द्वारा
खाने से
कमतर कला नहीं
हाथ से
सत्तू खाना

भले ही हुसैन की
कामकला से लेकर
चित्रकला तक के
प्रशंसक और कलाकार
मानें या न मानें
मानते हैं इसे सच
भड़-भूँजे से चक्की तक की
सत्तू की यात्रा के जानकार
और बड़े-बड़े कलाकार
जिनमें शामिल हैं–
रामू लोहार
भोलू चर्मकार
दमड़ी बढ़ई
और सरजू कुम्हार

ऐसी यात्राओं में
कभी-कभी तो सत्तू
आ बैठता है एकदम बगल में
किसी पोटली में बँधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी झोले में ठूँसा

अब बौड़म जैसा
सवाल नहीं दागना है
कि पोटली में बँधा है सत्तू ही
कैसे पता
अरे भाई
ताज़ा पीसे सत्तू की सोंधी खुशबू
कभी क़ैद हो सकती है क्या
किसी पोटली या एयर बैग में

सत्तू को
केवल सत्तू
समझने वालों के लिए
ज़रूरी है जानना
कि सत्तू का भी
अपना एक इतिहास है
गौरवशाली और महान
मगध साम्राज्य जैसा

स्वाद लाज़वाब
पौष्टिकता बेहिसाब
न बर्तन-बासन की खटपट
न चूल्हे-चौके की तकरार
न पकाने का झंझट
न पानी
न उबाल
थोड़ा नमक
और हरी मिर्च हो तो बात ही क्या
बस गमछे में ही साना
और खा लिया
निर्विघ्न

सत्तू के इन्हीं गुणों ने
बना डाला था इसे
सर्वोत्तम 'मार्शल फूड'
और मगध साम्राज्य की सेना
इसी के भरोसे निकलती थी
अपने विजय अभियानों पर

बिना सत्तू
जहाँ मुश्किल है ग़रीब का खाना
वहीं ये भी सच है
कि कर नहीं सकते आप शामिल
सत्तू को शाही दावतों में
परन्तु प्रत्येक शाही ताम-झाम
चाहे वह प्रजातन्त्र का ही क्यों न हो
निश्चय ही टिका होता है
सत्तू खाने वालों पर

सत्तू पर पले पेटों का ही दम है
जो दौड़ता चला जाता है
दहकते सूरज की ओर
फाँदता चला जाता है
ठिठुरते कोहरे की दीवारों के पार
मचाता रहता है घमासान
करता है जीना आसान

सत्तू की प्रशंसा
प्रशंसा है इन्हीं करोड़ों की
जिनके लिए सत्तू
महज साधन नहीं है
भूख मिटाने का
सत्तू ब्रह्म है
राम राज्य का
यथार्थ है और
गारण्टी है
कि कमज़ोर आदमी
न केवल रहेंगे
जिन्दा
तमाम अभावों के बरक्स
वरन् जीतेंगे
आने वाले एक दिन
अपनी तमाम हारी हुई लड़ाइयाँ
और उसी दिन लड़ना पड़ेगा
फिर से
मामूलीपन के वेश में
असाधारण संग्राम
सत्तू की पक्षधरता में।

एफ-73, ईस्ट ऑफ कैलास, नई दिल्ली-110065

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

अंजना बख्शी

गुलाबी रंगों वाली वो देह

मेरे भीतर
कई कमरे हैं
हर कमरे में
अलग-अलग सामान
कहीं कुछ टूटा-फूटा
तो कहीं
सब कुछ नया !
एकदम मुक्तिबोध की
कविता जैसा
बस खाली है तो
इन कमरों की
दीवारों पर
ये मटमैला रंग
और खाली है
भीतर की
आवाज़ों से टकराती
मेरी आवाज़
नहीं जानती वो
प्रतिकार करना
पर चुप रहना भी
नहीं चाहती
कोई लगातार
दौड़ रहा है
भीतर
और भीतर
इन छिपी
तहों के बीच
लुप्त हो चली है
मेरी हँसी
जैसे लुप्त हो गई
नाना-नानी
और दादा-दादी
की कहानियाँ
परियों के क़िस्से
वो सूत कातती
बुढ़िया
जो दिख जाया करती
कभी-कभी चंदा मामा में
मैं अभी भी ज़िंदा हूँ
क्योंकि मैं
मरना नहीं चाहती
मुर्दों के शहर में
सड़ी गली
परंपराओं के बीच
जहाँ हर
चीज़ बिकती हो
जैसे बिकते हैं
गीत
बिकती हैं
दलीलें
और बिका करती हैं
गुलाबी रंगों वाली
वो देह
जिसमें बंद हैं
कई कमरे
और हर
कमरे की
चाबी
टूटती बिखरती
जर्जर मनुष्यता सी
कहीं खो गई!

क्रॉस-1

अम्मी की ऊँगलियाँ बुन रही
हैं एक शाल, बिना झोल के
लगातार सिलाई-दर-सिलाई
फँदे चढ़ते और उतरते जाते
एक दूसरे को क्रॉस करते
जैसे क्रॉस करती हैं दो कौमें
और मज़हबी फ़साद के वक़्त
लोगों के वजूद!!

(2)

गूँथकर आटा रस जाने को
रख देती है शबीना
जैसे रख देती थीं माँ
पाँचवी पढ़ते वक़्त बालों
को गूँथकर, लगा गिरि का तेल
वैसे ही गुँथ चला है
सारा संसार
धर्म, संप्रदाय और आतंकवाद
की सियासी ताकतों की
रसदार चाशनी से
ताकि सेकते वक़्त रोटियाँ,
गाढ़ा और कड़ा हो इसका
फुलका।

#207, साबरमती हॉस्टल, जे0एन0यू0,
नई दिल्ली-110067

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज़ादी और आत्म-निर्णय से लैस नयी स्त्री के अक्स

रजनी गुप्त

'उस पार न जाने क्या होगा?' तलाक के बाद की भयावह स्थितियों से गुज़रते हुए न जाने कितनी तरह के तनावों, सामाजिक पारिवारिक दबावों एवं घोषित-अघोषित रूप से दुष्चरित्र ठहरा दी गयी स्त्री की बेबसी देखकर मन कातर हो उठता है। चारों तरफ़ छायी नीरवता, घुप्प अँधेरी रातों के काले साये और अभेद्य चुप्पी के कबूतर चुपचाप एक कोने में दुबककर बैठे हैं। अपने भीतर पसरे अँधेरे से एकाकार बाहरी अँधेरे में कहीं खो गया है उसका वजूद, मगर साफ़-साफ़ क्यूँकर सुनायी पड़ रही हैं वक़्त बेवक़्त पूरे वॉल्यूम पर बजती वे आवाज़ें? जबरन अपराधी ठहराये गये व्यक्ति के बारे में एक से दूसरों की टीका-टिप्पणियाँ.. आरोप-प्रत्यारोप का अंतहीन सिलसिला कभी थमता नज़र नहीं आता :

"इनका क्या? ये तो हैं ही ऐसी ! इनका फ्लर्टिंग नेचर कौन नहीं जानता? बेचारा नीरज! आखिर कहाँ तक, कब तक एडजस्ट करता? इतने सालों तक सहता-निभाता रहा, कोई मामूली बात है?"

"मगर हमने तो सुना है, नीरज को किसी के साथ देख लिया था उसने।"

"सरासर झूठ बोलती हैं, उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे वाली बात हुई ये तो। खुद तो अपने बॉस के संग या दफ़्तर के लोगों के संग घूमती फिरती कहीं भी दिख जाएँगी....।"

"कुछ भी कहो यार, बड़ी बोल्ड लेडी है और दबंग भी। तभी तो अपने बच्चे को अपने दम पर पाल रही है।"

"दबंग के साथ मुँहफट भी कम नहीं। जिस किसी से गाली-गलौज की भाषा में पंगा लेती रहती है। सुना है, हाथापाई की नौबत आ गयी थी, पुलिस केस बन गया था शायद..."

"हूँ काफ़ी कुछ हुआ होगा। बहरहाल, मेरा तो ये मानना है, कुत्ते-बिल्ली की तरह लड़ने से क्या फ़ायदा? इससे अच्छा अपना अलग रास्ता चुन लो। चार दिन की ज़िंदगानी है। सुकून से साँस तो ले सकेंगे अब दोनों....."

जितने मुँह, उतनी बातें। किसी को लड़के से सहानुभूति होती, तो किसी को लड़की से, लेकिन उनके बीच खामहखाँ पिसता है वो निर्दोष मासूम बच्चा। ख़ूब रस्साकसी चलती है दोनों को लेकर। ऐसे मौक़ों पर कसाई आदमी भी मोम का पुतला बनकर नरमी दिखाने की एक से बढ़कर एक तरक़ीबें बताने लगेगा—"मैंने क्या-क्या नहीं किया अपने बच्चे की खातिर। ये तो सोती रहती थी, मैं ही रात-बिरात उठकर बच्चे को टॉयलेट कराने ले जाता था। मेरा इकलौता बेटा छीन लिया इस चुड़ैल ने। देखना, ये खुद तो बर्बाद होगी ही, बच्चे को भी बिगाड़कर गुंडा-मवाली बना देगी। संस्कार नाम की चीज़ नहीं है इसमें। अपने जैसा आवारा बना डालेगी। और क्या उम्मीद करूँ इससे?"

आवाज़ें ही आवाज़ें उभरती और संग में नमूदार हो जाते बीते क्षणों के दृश्य। सब कुछ बनने-बिगड़ने और फिर उजड़ने के क़िस्से। टूटने का अहसास रह-रहकर कचोटने लगता। वजहें जो भी रही हों, लेकिन विपरीत ध्रुवों पर खड़े युगलों की कथाएँ सुनकर पूरी संजीदगी से ऊभ-चूभ करती रही। क़िस्सों के चेहरे अलग-अलग होते, मसलन कभी अभिजात्, अंग्रेजी रंग-ढँग में रँगे मँजे सॉफ़िस्टिकेटेड ब्यूरोक्रेसी में तैनात पति के संग क़स्बाई सीधी-सरल परंपरागत स्त्री का आधुनिक संस्करण खुल जाता, तो कभी इसके विपरीत हालात यानी एकदम आधुनिका पत्नी के संग परंपरागत पितृ-सत्तात्मक मूल्यों को ढोता पति।

स्त्रियाँ चाहे उस ज़माने की हों या इस ज़माने की—वे अक्सर कभी पति के नाम पर, तो कभी बच्चों की खुशियों-सुख-संतोष की ख़ातिर व्रत-उपवास करना कभी नहीं भूल-छोड़ पातीं। आधुनिकता के दंभ में जीते युगल बाहर से अपनी शख़्सियत के प्रति कितने ही जागरूक क्यों न हों, मगर एक-दूसरे के प्रति उनकी अपेक्षाओं की नाभिनाल अभी तक परंपराओं से जुड़ी हैं। सोशलवर्क में शोध करती नेहा को फ़ील्डवर्क हेतु कई शहरों का दौरा करना पड़ता। महिलाओं की जागरूकता हेतु तमाम तरह के सुझाव देती और उनके अंदर सजगता के बीज रोपना चाहती, लेकिन उनकी परंपराप्रियता और पति में सुरक्षा छाँव वाली सोच उसे भीतर तक झिंझोड़ डालती। पति की मार को अपनी नियति समझ जीने वाली स्त्रियों के ढेर-सारे क़िस्से सुनकर मन वितृष्णा से भर उठता।

"क्यों नहीं पुलिस को फ़ोन करती?"

"पति-पत्नी के झगड़े में पुलिस क्या करेगी भला? ज़्यादा से ज़्यादा समझा-बुझाकर चल देगी और पैसा अलग से ऐंठेंगे वो लोग।"

"क्या मतलब?" वह भौंचक्की बनी उनका मुँह ताकती रह गयी। ओफ़्फो! कैसे होते हैं ये क़ानून के रखवाले? रक्षक या भक्षक? अलग-अलग स्थितियों में रहती हर स्त्री की अलग व्यथा-कथा। मज़े की बात तो ये थी कि स्त्रियाँ अक्सर अकेली रहती स्त्रियों को लेकर संशकित बनी रहतीं। गाहे-बगाहे उसी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारे में कुरेद-कुरेदकर पूछती रहतीं।

शोध के साथ-साथ वह 'वसुंधरा' पत्रिका के लिए रिपोर्टिंग का काम भी करती थी। वर्किंग वीमैन्स हॉस्टल में नेहा के साथ एक और रूममेट रहती। कमरे में पड़े रहते दो पलंग, दो मेज़-कुर्सियाँ और नीली दीवारों पर टँगी पेंटिंग। गहराती शाम के धुँधलके में थकान उतारने का सेतु बनती चाय और खुल पड़ती बातों की गठरी, जहाँ थे अनंत अनुभव, कार्यक्षेत्र में होने वाले तनाव और सहयात्रियों की वजह से उपजती आम समस्याएँ। प्रगतिशीलता का मुखौटा पहने आधुनिकता के रंग में पले-बढ़े नकचढ़े एवं बोलचाल में हाय-बाय का प्रदर्शन करते लड़के-लड़कियों के क़िस्से सुनती रहती। फ़ैशन से लकदक आधुनिक पहनावे से लैस गिटपिट अंग्रेज़ी बोलती इन लड़कियों के देह-प्रदर्शन से क्या वाकई भला हो रहा है, हमारी जमात का? आज सेक्स-सिंबल बनने या हॉट लुक देने वाली लड़कियों की विज्ञापन-जगत् में धड़ाधड़ माँग बढ़ती जा रही है। उत्पादन की वस्तु या उपभोक्ता-जगत का इकलौता मोहरा बनती इन लड़कियों की चमक-दमक देख उनके माँ-बाप भी तो ख़ासे हर्षित-उत्फुल्लित दिख रहे हैं। हों भी क्यों न? तमाम अंग्रेज़ी पत्रिकाओं में अपने फूहड़तापूर्ण देह-प्रदर्शन द्वारा वे ख़ूब सारा पैसा जो बटोरने लगी हैं। उन्हें भला क्यों फ़िक्र हो उन सार्थक मूल्यों की, जिन्हें वे न जाने कब अपने से दूर फेंक चुके हैं। जीवन के कठोर यथार्थ से जूझती, खुद को प्रयोज्य वस्तु बनाकर क्या वाकई खुश रह पाती हैं वे? यकीन नहीं होता।

मिनी स्कर्ट पर नैट वाला ख़ूब बड़े और चौड़े गले का सामने से खुला टॉप पहने निकिता के कंधे तक कटे बाल हवा में लहराने लगे। पैरों में हाई हील की चप्पलों की बजती आवाज़ दूर से ही पहचानी जा सकती है।

"ए नीहारिका, लिसिन, टू लैटर्स फ़ॉर यू...", कहते हुए वह अपने कमरे की तरफ़ बढ़ने लगी।

उत्सुकता भरे जिज्ञासु मन के सौ कबूतर फड़फड़ा उठे। ओहो! चिट्ठी और इस नेट के ज़माने में? मगर, चिट्ठी में लिखे शब्द उसके दिलोदिमाग़ में टँकते जा रहे थे। तो ये है चिट्ठी लिखने वाली कल्पना। उसकी राइटिंग को छूते हुए, उसके आत्मीय स्पर्श को महसूसते हुए वह पहुँचती जा रही थी उस गहमागहमी भरे जीवन में। आज अचानक इतने सालों बाद क्यूँकर उसे चिट्ठी लिखने लगी? वर्षों पूर्व शादी करके बेंगलौर शिफ़्ट हो गयी थी वो। अनायास उसकी ढेर सारी छवियाँ आँखों में सतरंगी समाँ बाँधने लगीं। पत्र को उलटते-पुलटते हुए भीतर से छन्न से कुछ टूटने का अहसास हुआ। ओफ़्! कब तक सिलती रहेगी वह जगह-जगह से तार-तार हो चुकी अपनी गृहस्थी की चादर को? कितनी अर्थहीन और नीरस ज़िंदगी जीती रही वह अब तक। उन पलों में डूबते हुए वह अनगिनत कँटीले सवालों से घिरती गयी।

साल-दर-साल बीतते गये, लेकिन स्त्री को आज भी दयनीय और तरस खाने योग्य क्यों समझा जाता है? स्त्री-प्रगति का पहिया इतनी धीमी गति से चल रहा है कि लगता ही नहीं कि वह चल भी रहा है, बल्कि वक़्त तो कहीं ठहरा-सा लगता है। थमा हुआ है सब कुछ, क्या सचमुच जड़ हो गये हैं हम? कल्पना के चेहरे पर विराजी रहती भी एक स्निग्ध मुस्कान। उसकी सौम्यता से टपकता था एक सुकोमल अहसास। कितनी मासूमियत और निर्मलता का आभास देती थी उसकी वो मीठी आवाज़, मानो नींद में सोया, सपनों में खोया कोई मासूम बच्चा बोल रहा हो। पवित्रता का अहसास कराती वो नीली-नीली आँखें। श्वेतवसना कहलाने वाली कल्पना सिर्फ़ और सिर्फ़ धोती पहनने लगी है और आगे की ख़बर पढ़ते ही वे पन्ने उसके हाथ से छूटकर यूँ उड़ते गये गोया जलती मोमबत्ती हाथ से छूटकर ज़मीन पर गिर पड़ी हो।

उसके अवसाद अँधेरे से भी सघन और काले लगने लगे। दुख के काले बादल दिनोंदिन भयानक होते गये। कौन जाने कब पानी में डूबी अदृश्य सीढ़ियों पर पाँव रपट पड़े और अथाह जलराशि में डूब जाए सब कुछ। जितना वह उसके बारे में सोचती जाती, उतनी तीव्रता से आँखों में ख़ौफ़ उतर आता। इतना अपमान और ज़लालत झेलने के बाद भी ज़िंदा कैसे रह पाती होगी वह? उदास आंखें शून्य में आलाप करने लगीं। भय के मारे साँसें उखड़ने लगीं। उफ़्! ताश के पत्तों की तरह भरभराकर बिखरता गया उसका घर-संसार। कुल जमा 5 साल, जैसे न जाने कितने युग बीत गये हों। कब से गिनती शुरू करूँ? क्या वाकई गिन पाएगी वह उसके रौंदे हुए दुख के कतरे-कतरे को?

पी-एच.डी. आधा-अधूरा छोड़कर चल पड़ी थी वह अपने प्रेमी के संग ब्याह रचाने। बागविलास के जादू में जकड़ी कल्पना ने अपने लिए सुनहरे नीड़ का संसार बुनना शुरू कर दिया था। कुछ महीने ख़ूब मज़े में बीते होंगे कि अचानक एक दिन घर से तार आ गया। दूरस्थ गाँव जाने की बात को किसी न-किसी बहाने वह टालता जाता था, तभी किसी ज़रूरी काम से जाना पड़ गया। साथ चलूँगी की ज़िद पर वह ज़बरन पति के संग हो ली, लेकिन वहाँ क़दम धरते ही सबसे पहले जिससे परिचय कराया गया—"ये तुम्हारी बहन जैसी हैं, पैर छुओ इनके।"

यानी जिठानी?

यंत्रवत् वह जैसे ही पैर छूने आगे बढ़ी कि उनकी आँखों से गिरने लगीं वो गर्म-गर्म बूँदें।

"क्या हुआ दीदी?"

"नहीं-नहीं, कोई बात नहीं", कहकर वे उल्टे पैर भीतर वाली कोठरी में घुस गयीं और अंदर से दरवाज़ा बंद कर लिया। अचानक चेहरे की बेचैनी और बदहवास मुद्रा देखकर रोंगटे खड़े हो गये। ये पहली पत्नी हैं उनकी और आप दूसरी... बस यहीं से शुरूआत हुई उस नरक की, जिससे रोज़-रोज़ गुज़रना यानी पल-पल ज़हर का घूँट हलक से उतारना। उसे जो टुकडों-टुकडों में बताया गया, सुनकर लगा जैसे अमावस की काली रात में अकेले चलते-चलते, भटकते-भटकते वह किसी अँधे कुएँ में गिर पड़ी हो। न जाने कब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उसे अँधेरे में रखकर यह सारा खेल यूँ ही चलता रहा-साल दर साल। तभी तो उसके एक बच्चा भी था। उसे छोड़ते, तो पुश्तैनी ज़मीन-जायदाद से हाथ धोना पड़ता, जो उसे गवारा नहीं था। अब इसे सौभाग्य मानूँ या दुर्भाग्य कि इसी दौरान मेरे जुड़वा बच्चियाँ भी हो गयी थीं। बेशर्म इतना कि यह सब सच्चाई जानने के बावजूद मेरे साथ सोना चाहता था। लेकिन वह सब जानने के बाद तो सकते में आ गयी थी मैं तो। सो सब कुछ एक झटके में छोड़कर अपने गाँव आकर एक स्कूल खोल लिया। बच्चियाँ यहीं पढ़ती हैं। बेशक अकेली स्त्री असुरक्षित तो होती ही है, ऊपर से यह डर कि वो कभी भी यहाँ आकर हंगामा कर सकता है। मेरा यह डर निराधार नहीं था। महीनों बाद न जाने कहाँ से पता लगाकर वो यहाँ आ धमका। बच्चों को बरगलाने फुसलाने की नयी तरकीबें निकालता। लेकिन, उसके प्रति मेरा मन पूरी तरह फट चुका था। एक दिन तो उसने पूरा तमाशा खड़ा कर दिया। बच्चियों को अपने संग ले जाने पर अड़ गया, तभी मजबूरन कचहरी जाकर लंबी लड़ाई लड़ने की बात सोची। आए दिन धमकियाँ, देख लेंगे तुम्हें भी, मुँह पर तेज़ाब फिकवा दूँगा। किस ख़सम के बलबूते इतना कूद रही है? बोल? सीधे-सीधे घर आ जा, वरना बच्चियों की वो गत बनाऊँगा कि देख लेना। हाँ कहे देता हूँ... बस तभी आख़िरी रास्ता अपनाना पड़ा। क़ानूनन अलग रहने का फ़ैसला लेना ज़रूरी हो गया था, वरना पता नहीं वो कब तक यूँ ज़लील करता रहता? उस दौरान् कितनी रातें अधसोये या अधजगे या जागते-जागते काटनी पड़ीं। उसके बारे में सोचते ही वह काँपने लगती। सच! बड़ा ख़ौफ़ और ख़ूब घबड़ाहट तारी रहती।

शुरू-शुरू में किसी-न-किसी को साथ लेकर चला आता। कभी कोई समझाने बैठ जाता, तो कभी कोई। बच्चियाँ भी बाप का रौद्र रूप देख चुकी थीं। सो, वे भी अपने बाप के संग जाने को कैसे भी तैयार नहीं होती थीं। एक और वजह भी थी। एक दिन बड़ी बच्ची के साथ अकेले में बतियाते समय उसने पूरी ताक़त से उसे भींच लिया था। उसके होठों पर अपने होंठ भी रख दिये थे कमीने ने। ऐन मौक़े पर कामवाली बाई आ गयी, वरना....उस दिन तो घर में किसी-न-किसी का मर्डर हो सकता था। अब तुम्हीं बताओ, भला उस बहशी-बहमी दरिंदे के साथ कौन रहने की बात सोच सकता था? गाली-गलौज, मारपीट और रोज़-रोज़ की हिंसा से त्रस्त होकर ही हमने अलग रहने का फ़ैसला लिया था। आज़ाद होने के बाद अब उसकी किसी बात से कोई डर नहीं लगता। इतने दुख से गुजरने के बाद किसी होनी अनहोनी का भी डर नहीं रहा अब।

देखो तो कितनी जल्दी मिट गये वो इंद्रधनुषी रंग। कहाँ थे हम सब? क्या-क्या इरादे लेकर आसमाँ लाँघने निकले थे और कहाँ आ गिरे? सुनो, तलाकशुदा औरतों को लेकर हमारे समाज में आम औरत के मन को बड़ा भारी डर, अनजानी क़िस्म की असुरक्षा और नर्वसनेस घेरे रहती। विचित्र विडंबना है कि हमारा ये समाज विधवा स्त्रियों को तो फिर भी सम्मान की नज़र से देख लेगा, मगर घोर आश्चर्य कि पढ़ा-लिखा मध्यवर्ग भी तलाक का ठप्पा लगाये स्त्रियों को तवज्जो नहीं देता, न ही उनकी पीड़ा से एकाकार होकर उसे विश्वसनीय स्त्री का दर्जा दे पाता है। ज़रा-सी टेढ़ी बात सुनी नहीं कि पलटवार करने से किसी को कोई परहेज़ क्यूँकर नहीं होता? जिस किसी बात पर एक ही ताना—'तभी तो नहीं पटी अपने पति से। बड़ी दबंग है ये। बाप रे! कितनी तो मुँहफट है! कितनों को चराती होगी।' इसी तरह के अनर्गल प्रलाप से नहीं चूकते आम लोग।

तभी तो नहीं बनी अपने पति से, ये तो निभाना ही नहीं जानती। बस तोड़ने-फोड़ने वाली बातें करती रहेंगी ये तो। 'भयावह कैंसरस गाली की तरह दिमाग़ को भेदकर आर-पार हो जाती हैं ये बातें। दूसरी तक़लीफ़ तब होती है, जब ज़्यादातर पुरुष उसे सहज सुलभ मानकर सहानुभूति में लिपटे प्रेम के बोलों का रस टपकाने आ पहुँचेंगे। उनकी हर बात शहद में डूबी मीठा रस टपका रही होगी। आते ही वे तारीफ़ों के टनों मक्खन खिलाने बैठ जाएँगे—"क्या बताएँ? आप हैं ही इतनी ख़ूबसूरत, इतनी होशियार, इतनी हुनरमंद, इतनी दबंग, इतनी बोल्ड, इतनी ये... इतनी वो..." सुन-सुनकर ही माथा गर्म हो जाता। मन में आता कसकर डाँट दूँ—"हाँ, अगर इतनी ही अच्छी हूँ तो शादी क्यों नहीं कर लेते मुझसे। मगर ऐसे लोग शादी का नाम सुनकर ही बिदक जाते, "करना तो चाहता हूँ, मगर तुम्हारी बच्चियाँ?..." "अरे! तुमसे अच्छी भला और कौन होगी? क्या करें, घरवाले तैयार ही नहीं हो रहे हैं।"

यहां अब तक वही पुरानी रूढ़ियाँ यानी कुँवारी कच्ची उम्र का मोह और ऊँचे खानदान वाली लड़कियों के प्रति अदम्य आकर्षण के चलते वे केवल फ़्लर्ट करने चले आते, लेकिन शादी की बात बड़े आराम से टाल जाते। पहली नज़र में ही ऐसों की सूरत देखकर मैं उनके मंतव्य को ताड़ जाती। बेशक मैं ख़ुद दुबारा शादी के झमेले में नहीं पड़ना चाहती, मगर उन अनजान अजनबियों की भीड़ को परे झटकने का यही एकमात्र नुकीला औज़ार बचा था मेरे पास, जो सीधे उनके कलेजे के आर-पार हो जाता। कुछेक गंभीर रिश्ते भी आये, लेकिन उनके प्रति मैं ख़ुद को उदासीन पाती। सच तो यह है कि मैंने ख़ुद को बाहरी दुनियाँ में इतना ज़्यादा खपा दिया था कि जब मैं शाम को घर लौटती, तो सिवाय सोने के कुछ और करने के लिए बचता ही कहाँ था? अक्सर सोचती कि मशीन में तब्दील हो चुकी इस देह को कहीं भी पटक दो, क्या फ़र्क पड़ता है? जड़ता ऊब और एकरसता ने जीवन की संगति ज़रूर भंग कर दी है, लेकिन पूरी तरह चुकी नहीं है जिजीविषा। एकांतवासी होती जा रही हूँ और बासेपन का अहसास भी कभी परेशान करता है। दूर-दूर तक ताज़ा हवा का कोई अहसास नहीं होने पाता। हमारे उन भरे-पूरे अहसासों का संसार न जाने कहाँ खो गया? तुम्हीं तो कहती थीं—"सच को हमेशा सापेक्षता में देखा करो। सच कई बार पुनर्नवा होकर नये- नये रूप धरता है।"

"अचानक एक दिन स्कूल लाइब्रेरी से कुछ किताबें लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी। उलटते-पुलटते तुम्हारी तस्वीर और पता देखकर मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। लगा, जैसे झटपट उड़कर कैसे तुरंत तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ? फिर सोचा—क्यों न एक लंबा खत लिखकर सब कुछ उड़ेल दूँ तुम्हारे पास? ज़्यादा लंबी गाथा हो गयी न?'' पढ़ते-पढ़ते सचमुच चेहरे के रंग-ढंग बदलते रहे। आज की इस सुपर फ़ास्ट दुनियाँ में जहाँ हम नैट पर उँगलियाँ चलाते हुए सेकेंड्स में कहाँ से कहाँ पहुँच जाते हैं, मगर स्त्री की दुनियाँ बहुत ज़्यादा बदली नहीं है। तलाक के बाद अकेली रहती स्त्री के प्रति समाज का रवैया ज़्यादा बदला नहीं है। पड़ोसन की लड़की की शादी के छह माह बाद ही तलाक की ख़बर सुनते ही बगल वाली दौड़ी-भागी चली आयी—''पता चला? मेहा ससुराल नहीं जाती। बेचारी रात-रात भर रोती रहती है। कहीं जाती तो है नौकरी करने। बेचारी की उम्र ही क्या है... अभी से.....। इन नौकरियों के चलते ऐसा होने लगा है... औरत की आर्थिक आज़ादी ने उसे और ज़्यादा बिगाड़कर रख दिया है। वह किसी से दबना ही नहीं चाहती...'' बीच में बात काटकर मैं पूछ बैठी—''सारा जीवन तबाह करने से ज़्यादा अच्छा है कि समय से अलग हो जाओ, वरना बीच में अगर बच्चा वगैरह हो जाता, तो और ज़्यादा झमेले होते। काहे को उसे बेचारी बनाने पर आमादा हैं आप?''

''तो क्या शादी तोड़ देना कोई अच्छी बात है?''

''नहीं, मेरा मतलब वो नहीं है। मेरा मानना है कि जिस मुद्दे पर बात तलाक तक जा पहुँची, उस पर साफ़-साफ़ तरीके से बातें होनी चाहिए। खुलकर दोनों अपने-अपना पक्ष रखें और बीच में कोई और न पड़े यानी घर वाले। बातें दरअसल वही लोग बिगाड़ते हैं।''

''फिर तो हो गयी बात? बीच में माँ-बाप नहीं पड़ेंगे, फिर तो हो गयी छुट्टी।''

''देखिए, हरेक के माँ-बाप अपने-अपने बच्चे के प्रति डिफ़ेंसिव होने लगते हैं और यहीं से गुत्थमगुत्था होने लगती है। बातों के मकड़जाल। फिर तो एक मामूली-सी बात के भी नामालूम तरीके से अनर्गल अर्थ निकाले जाने लगते हैं। छोटी-छोटी सी साधारण बातें भी कई बार वाक्युद्ध में बदल जाती है। उससे हमेशा यही अपेक्षा की जाएगी कि वो ख़ामोश रहे, मगर आख़िर कब तक? सच तो ये है कि वर्षों से स्त्रियाँ सदा ख़ामोशी का बाना ही तो पहनती रही हैं, मगर अब और नहीं। अब वे चुप नहीं बैठेंगी, फिर अंजाम चाहे जो हो। इन दिनों नयी हवा चलनी शुरू हो गयी है। उन्हें भी चाहिए पुरसुकून ताज़ा हवा, जिसमें शुमार हो नये फूलों की खुशबू। अब उन्होंने अपना आकाश खोजना शुरू कर दिया है और वो भी पूरा आकाश चाहिए उन्हें। भावात्मक या आर्थिक, किसी भी रूप में किसी पर भी आश्रित होना कतई नहीं सुहाता उन्हें। न ही वे अपने को लाचार या दयनीय बनाकर सहानुभूति बटोरना चाहती हैं। उनकी मुट्ठी में क़ैद है खुदमुख़्तारी, जिसका परचम फहरातीं वे पूरी आन-बान-शान से उड़ने लगी हैं, अपने बलबूते। अब कोई उनकी झूठी तारीफ़ कर उन्हें बरगला नहीं सकता। उन्हें ख़ुद पता है कि वे क्या हैं, सो आत्मविश्वास की जगर-मगर लौ के सहारे वे चहुँओर फैलाती जा रही है अपने ज्ञान, शक्ति, धनबल, मान-सम्मान और स्वाभिमान का अजस्र उजाला उन्हें इस ध्वज के साथ इतराते देख आप क़तई ख़ौफ़ न खाएँ। सचमुच वे वैसी ही हैं, जैसे आप हैं। एक मज़बूत इन्सान के रूप को देखकर आप यूँ हैरत में मत पड़िए कि वे आप जैसी क्यों होती जा रही हैं। दरअसल, वे मूलभूत रूप में वही हैं सदा से। हाँ, उनकी समझ में ये बात आर्थिक आज़ादी ने विकसित की है। संसार का ऐसा कोई काम नहीं, जिसे वे खुद न कर सकें। आज की स्त्रियाँ इस ख़ौफ़ एवं आतंक से मुक्त हो चुकी हैं कि तलाक के बाद ''उस पार न जाने क्या होगा?'' उन्हें बख़ूबी पता हैं, उस पार हैं उनकी आज़ादी, निजता, स्वायत्तता और सच्चे जनतंत्र की बयार, जिसे सूँघने हेतु वे बेताब हो उठी हैं। देखिए, किस क़दर अपनी ख़ुशियों को पाकर वे गमकने लगी हैं, मगर अपनी चुनौतियों से निबटने का दम-खम भी है उनमें। हिन्दी कथा सहित्य में ऐसी स्त्रियों का खुलकर प्रतिनिधित्व किया है युवा कथाकार जयंती ने, जिसके दोनों उपन्यासों में इस नयी स्त्री के जीवन में नित नये बदलावों को पूरी पारदर्शिता और बेबाकी से दर्शाया गया है।

अब लग रहा है कि न मैं अच्छी बेटी बन पायी, न माँ, न ही अच्छी दोस्त या प्रेमिका की कसौटी पर खरी उतर पायी। मैं एक सामान्य गुण-अवगुण सहित औरत हूँ। मैंने कभी दावा नहीं किया कि मैं आदर्श हूँ, कभी न सोचा कि किसी ख़ास ढाँचे में बँधकर जीना है।... अपनी इच्छाओं, उत्तेजनाओं और लालसाओं को मार नहीं पायी, हर सामान्य औरत की तरह।

चर्चित युवा लेखिका जयंती के सद्यः प्रकाशित उपन्यास 'खानाबदोश ख्वाहिशें' से गुज़रते हुए हमें आज की आधुनिक स्त्री का एक नया चेहरा, उसकी सहज आत्मविश्वासी आवाज़ और उसके आधे-अधूरे सपनों का अक्स साफ़-साफ़ दिखायी देता है। तेज़ प्रवाह में बहती चुस्त कथा के भीतर निकलती अप्रत्याशित कथाओं के रेशे-रेशे पकड़ती लेखिका ने बड़ी संजीदगी से पात्रों के नये पनपते सपने, परवान चढ़ते प्रेम-संबंधों की विविधरंगी व्यथा-कथाएँ और इन्हीं के बीच पिसते-चुकते रिश्तों की क्षरित होती संवेदनाओं को पूरी निधड़कता और प्रखर जीवन-दृष्टि के साथ उभारा है। अपने अस्तित्त्व के प्रति उमड़ते आसन्न खतरों के प्रति ख़ासी चौकन्नी इस पीढ़ी की स्त्री अपनी पुरानी पीढ़ी से काफ़ी भिन्न है। इसमें आक्रोश है, आक्रामकता है और अपने ढंग से अपनी ज़िंदगी खुद ही बनाने, मिटाने और तोड़ने-मरोड़ने की जद्दोज़ेहद भी है। महानगरों में उभरती इस नयी जमात की स्त्री के प्रेम, संघर्ष, अंतर्द्वंद्व और विरोधाभासों से भरी तेज़ जीवन-शैली से उपजते अंतर्विरोधों को इस उपन्यास में पूरे पैनेपन से दर्शाया गया है।

18 अधिकारी आवास-3, पी.एन.रोड लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देविका रानी : जगमगाता सितारा

विजय शर्मा

"इससे ख़ूबसूरत आवाज़ न पहले सुनी गयी और न ही इतना सुंदर देखा गया।"

'हमने अब तक जितनी सिनेमा-स्टार देखी हैं, देविका रानी उनमें सर्वाधिक कोमल और मोहक हैं।"

"देविका रानी प्यारी हैं, हॉलीवुड की ढर्रे में बँधी सुनहरे बालों वाली सुंदरियाँ उनके सामने पानी भरती हैं।"

गुलामों की किसी संतान की शायद ही कोई इतनी तारीफ़ करता हो। हाँ, उस समय भारत गुलाम था और देविका रानी की यह पहली फ़िल्म थी। परंतु, लंदन के अख़बार उनकी प्रशंसा से रँगे हुए थे। देविका रानी हिन्दी रजतपट का एक ऐसा शुरूआती जगमगाता सितारा है, जो कभी धूमिल नहीं पड़ेगा।

यह 'अछूत कन्या' विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर की रिश्तेदार थीं। उनकी बहन सुकुमारी देवी की पोती और उनका पूरा नाम देविका रानी चौधुरी था। उनके पिता उस समय के जाने-माने सर्जन एम. एन. चौधुरी थे। उनकी माँ का नाम लीला चौधुरी था। उनके पिता प्रथम इंडियन सर्जन जनरल ऑफ़ मद्रास थे। देविका रानी का जन्म 30 मार्च, 1908 में आंध्र प्रदेश के वाल्टेयर नामक स्थान में हुआ था। दक्षिण भारत में जन्मी यह कन्या नौ साल की उम्र में पढ़ने के लिए इंग्लैंड भेज दी गयी। जहाँ वह अपनी प्रतिभा और सुंदरता के कारण शीघ्र ही अंतरराष्ट्रीय कलाकारों की टोली में शामिल हो गयी। इस टोली में कलाकार, चित्रकार, अभिनेता आदि तरह-तरह के लोग थे। देविका रानी को स्कॉलरशिप मिली थी और उन्होंने रॉयल एकेडमी ऑफ़ ड्रामेटिक आर्ट तथा रॉयल एकेडमी ऑफ़ म्यूज़िक में शिक्षा ग्रहण की और आर्किटेक्चर का अध्ययन भी किया। जल्द ही उन्हें एक टेक्स्टाइल कंपनी में पेसली डिजाइनर के रूप में काम मिल गया, जहाँ वे काफ़ी सफल थीं, पर भाग्य उन्हें कहीं और, किसी और दिशा में ले जाना चाहता था।

वे फ़िल्म-निर्माता हिमांशु राय से मिलीं, जिन्होंने उन्हें एक इंडो जर्मन सह-निर्माण का प्रस्ताव दिया। 'लाइट ऑफ़ इन्डिया' के सेट्स तैयार करने का यह प्रस्ताव शीघ्र ही शादी के प्रस्ताव में बदल गया और देविका रानी चौधुरी देविका रानी राय बन गयी। उनका प्यार से पुकारने का नाम 'ड्रैगन लेडी' था। शादी के लिए वे भारत आयी थीं। इस तरह, टेक्सटाइल की दुनिया से वे फ़िल्म की दुनिया में पहुँच गयीं। देविका रानी की तरह ही हिमांशु का जन्म भी कलकत्ता के एक धनी-मानी घर में 1892 में हुआ था और वे पढ़ने-लिखने के बाद वकालत करने लंदन पहुँचे थे। कलकत्ता यूनीवर्सिटी से उन्होंने लॉ की परीक्षा पास की थी पर, होनी को कुछ और मंजूर था। वे लंदन में प्रारंभ से नाटकों मे रुचि लेने लगे और इस शौक के कारण बिपिन चंद्र पाल के पुत्र निरंजन पाल से उनकी मित्रता हो गयी। निरंजन लिखते थे और हिमांशु अभिनय करते थे। उन्होंने 'चू चिन चाऊ' तथा 'द गॉडेस' नामक संगीत-नाटकों में अभिनय किया। वे सदा बड़े-बड़े ख़्वाब देखते थे। जब फ़िल्म बनाने का विचार किया तो इरादा था कि वे दुनिया के सब महान धर्मों पर फ़िल्म बनाएँगे और इसी विचार से उन्होंने 1942 मे म्यूनिख़ की यात्रा की और वहाँ एमेल्का फ़िल्म कंपनी के अधिकारियों से मिलकर अपनी योजना उन्हें बतायी। इस सौदे में पूँजी और कलाकारों का इंतज़ाम हिमांशु को करना था और प्रोसेसिंग तथा एडिटिंग एमेल्का वालों को। उस ज़माने में उन्होंने भारत में इसके लिए नब्बे हजार इकट्ठे कियें, जो उस ज़माने में भी एक बड़ी राशि थी। इस तरह 'लाइट ऑफ़ एशिया' (प्रेम सयास) का निर्माण हुआ। देविका रानी ने इसके सेट को डिजाइन किया था। इसके यूरोप-वितरण के अधिकार एमेल्का के पास थे। फ्राँस ऑस्टन के निर्देशन में बनी इस फ़िल्म में स्वयं हिमांशु गौतम बुद्ध की भूमिका में थे और नायिका एक ऐंग्लो इंडियन युवती थी। लेखन निरंजन पाल ने किया था। वियना, बुदापेस्ट, वेनिस, लंदन, जिनेवा में अच्छा रिस्पांस मिला, पर भारत में ख़ास न चली। उन्होंने एक और फ़िल्म 'शिराज़' का अनुबंध कर लिया। एक और फ़िल्म कंपनी 'यूफा' के साथ उन्होंने 'ए थ्रो ऑफ़ डाइस' फ़िल्म का अनुबंध किया। इसके नायक वे स्वयं थे। 'ए थ्रो ऑफ़ डाइस' की नायिका देविका रानी थीं और यहीं से दोनों की प्रेम-कहानी प्रारंभ हुई।

1933 में वे हिमांशु के संग 'कर्मा' फ़िल्म में नायिका बनीं, जो एक एंग्लो इंडियन सह-निर्माण था; जिसे हिन्दी और इंग्लिश दोनों भाषाओं में फ़िल्माया गया था। इस का प्रीमियर लंदन में हुआ और देविका रानी रातों-रात स्टार बन गयीं। फ़िल्म-समीक्षकों ने उनकी सुंदरता और अभिनय की संवेदनशीलता से अभिभूत होकर उनकी तारीफ़ों के पुल अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बाँधे। उन्हें हॉलीवुड से काम करने के प्रस्ताव मिलने लगे, पर उन्होंने उन प्रस्तावों को स्वीकार नहीं किया। वैसे, भारत लौटने के फ़ैसले से वे खुश न थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों में इस बात को लेकर विवाद भी चला, पर अंततः वे पति की बात मान गयीं और उनके साथ भारत लौट आने का निश्चय किया। उन लोगों ने यह निश्चय एक ख़ास उद्देश्य से किया था। वे भारत में इंडियन सिनेमा की नींव डालना चाहते थे और उन्होंने यह किया। भारत आकर उन लोगों ने 'बांबे टॉकीज़' का निर्माण किया। बांबे टॉकीज़ अपने आप में निराली बात है। उन दिनों सब कंपनियों के पास छोटे-बड़े अपने स्टूडियो हुआ करते थे। इस दिशा में तकनीकी और व्यवसाय दोनों मामलों में भारत के सितारे उन दिनों बुलंद थे। बांबे टॉकीज़ का शुभारंभ 1934 में हुआ। वैसे इसकी स्थापना उस समय के बंबई के एक पिछड़े इलाके मलाड में हुई थी। यह वह समय था, जब भारत गुलाम था और व्यापार पर अंग्रेजों की सत्ता कायम थी। पूँजी और प्रौद्योगिकी-दोनों भारतीयों के लिए आकाश के तारे थे, पर इसी आकाश के तारे को तोड़ने का इरादा इस युगल का था और वे यह तारा तोड़ लाये। असल में हिमांशु को 'एमेल्का' और 'यूफा' जैसी नामी-गिरामी कंपनियों की कार्य-प्रणाली को निकट से देखने का अनुभव था। इन्हीं अनुभवों के आधार पर उन्होंने इतना बड़ा जोख़िम उठाने का साहस किया। उन्होंने लंदन में फ़िल्म-निर्माण की सूक्ष्म जानकारी हासिल की थी। उन्होंने बांबे टॉकीज़ का आधार सामाजिक रखा। यूफा के यहाँ देविका रानी ने एडिटिंग का काम सीखा और फ़िल्म-निर्माण के अन्य पहलुओं का भी गहन अध्ययन किया जो बाद में उनके काम आया।

वैसे तो अपने फ़िल्मी जीवन में उन्होंने 'कर्मा', 'जवानी की हवा', 'हमारी बात', 'जीवन नैया', 'अछूत कन्या', 'इज़्ज़त', 'सावित्री', 'ममता', 'मियाँ बीवी', 'वचन', 'अनजान' आदि क़रीब एक दर्जन से ज़्यादा फ़िल्मों में काम किया, परंतु उनका नाम 'अछूत कन्या' के लिए अमर हो गया। बांबे टॉकीज़ से पहली फ़िल्म बनी—'अछूत कन्या', जिसने हिन्दी फ़िल्मों को एक सदाबहार हीरो अशोक कुमार से परिचित कराया। यह फिल्म ब्राह्मण युवक और अछूत कन्या के प्रेम पर आधारित है। कहानी निरंजन पाल ने लिखी और संगीत सरस्वती देवी का था। यह फ़िल्म आज भी याद की जाती है। उस समय पार्श्वगायन (प्ले बैक सिंगिंग) का चलन नहीं था, अतः उन्होंने भी अपने गाने गाये। 'अछूत कन्या का उनका एक गाना—'मैं बन की चिड़िया ....' आज भी जब बजता है, तो लोग संग मे गुनगुना उठते हैं। 'अछूत कन्या' गाँधी जी के विचारों से प्रभावित फ़िल्म थी। 'जीवन नैया', 'अछूत कन्या', 'जनमभूमि', 'इज़्ज़त', 'सावित्री', 'निर्मला', 'वचन' और 'अनजान'—आठ फ़िल्मों में अशोक कुमार उनके संग नायक थे।

स्त्री यदि प्रतिभाशालिनी होती है तो उसका जीवन फूलों की सेज नहीं हो सकता। यदि पति-पत्नी दोनों में प्रतिभा हो, तब और मुश्किल आती है। ऐसी स्थिति में अक्सर स्त्री से त्याग-समर्पण की आशा की जाती है। वह सब भूल कर यदि गुमनामी को अपना ले तो समस्या तात्कालिक रूप से बाह्य तौर पर टल सकती है। रिंकी भट्टाचार्य इसका एक उदाहरण हैं। पर क्या समस्या वास्तव में समाप्त होती है? बिरले ही पति-पत्नी एक-दूसरे के पूरक और प्रेरणा बन पाते हैं। देविका रानी जैसी बिंदास युवती क्यों अपने पति और अपनी बनती फ़िल्म को बीच में छोड़कर अपने सह-अभिनेता के साथ भाग निकली, यह सोचने वाली बात है। पति के रूप में हिमांशु राय कैसे थे? क्या वे उन्हें पर्याप्त समय दे पाते थे ? या देविका स्वभाव से रँगीली थीं? शायद दोनों के बीच इग्लैन्ड में ही दरार पड़ गयी थी, जब देविका रानी को हॉलीवुड में काम करने का प्रस्ताव मिला और हिमांशु अपना काम करने के लिए भारत लौटने की जिद कर रहे थे। फ़िल्म 'जवानी की हवा' की शूटिंग चल रही थी, उसी के सेट पर नायक-नायिका भी जवानी की हवा में बह निकले और निर्माण अधूरा छोड़कर बीच में कलकत्ता भाग निकले। फ़िल्म-निर्माण के दौरान फ़िल्म की नायिका देविका रानी नायक नज़मुल हसन के संग कलकत्ता भाग गयीं। शशिधर मुखर्जी समझा-बुझाकर उन्हें बंबई वापस ले आये, पर क्या हिमांशु से उनके रिश्ते सामान्य हो सके होंगे ? हिमांशु ने अपनी फ़िल्म पूरी करने के लिए उन्हें ले लिया था परंतु नायक हसन को दोबारा काम देने से स्पष्ट इन्कार कर दिया था।

हिमांशु भी कम तनाव में न थे। हताशा, निराशा ने उन्हें मानसिक रूप से तोड़ दिया था। 1940 में हिमांशु राय की मृत्यु अकस्मात हो गयी और बांबे टॉकीज़ का सारा भार देविका रानी के कंधों पर आ पड़ा। देविका रानी एक कुशल प्रबंधक थीं या नहीं, पर वे एक कठोर प्रबंधक अवश्य थीं। 1940 से 1945 तक पाँच वर्ष उन्होंने बांबे टॉकीज़ की देखभाल की। इस बीच यहाँ 'पुनर्मिलन', 'आँखें', 'बंधन', 'नया संसार', 'कंगन', 'किस्मत' जैसी यादगार फ़िल्में बनीं। बांबे टॉकीज़ में बनी 'किस्मत' फ़िल्म ने एक समय सारे रिकॉर्ड तोड़े थे। यह कलकत्ता के 'रौक्सी सिनेमा' में पूरे तीन साल हाउसफुल चली थी। 32 साल बाद 'शोले' इसका रिकॉर्ड तोड़ा था।

पर देविका रानी की अन्य लोगों से न पट सकी। एक-एक कर सब पुराने लोग स्टूडियो छोड़ गये। नायक, निर्देशक, एडिटर, तकनीशियन, सब बांबे टॉकीज़ छोड़ गये। लोग कहते हैं कि देविका रानी का लोगों के साथ अपमानजनक व्यवहार इसका प्रमुख कारण था। देविका रानी ने स्टूडियो बेच दिया।

पाँच साल बाद उन्होंने रूसी चित्रकार स्वेतोस्लाव रोरिच से विवाह किया और अभिनय से संन्यास ले लिया। स्वेतोस्लाव रोरिच के पिता प्रोफ़ेसर निकोलस बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने भारत में अपना स्थायी निवास बनाया था। साधु प्रवृत्ति के उनके पिता रोरिच ने पुरातत्त्व और दर्शन के क्षेत्र में बहुत काम किया था। पिता-पुत्र अपनी कलात्मक रुचि के लिए जाने जाते थे। यदि इस कलात्मक रुचि के व्यक्ति की ओर देविका रानी आकर्षित हुई तो कोई आश्चर्य नहीं है। उस समय हिमांशु राय को गुज़रे पाँच साल गुज़र चुके थे। वे कुल्लू में रहने लगीं, बाद में बंगलौर जा बसीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके बाद का उनका जीवन कला को संरक्षण देने में व्यतीत हुआ। उनके दूसरे पति रोरिच की मृत्यु उनके एक वर्ष पूर्व 1993 में हुई।

भारत सरकार ने 1958 में देविका रानी को पद्मश्री पुरस्कार दिया। 1967 में उन्हें भारतीय फ़िल्म का सर्वोच्च पुरस्कार 'दादा साहेब फाल्के सम्मान' मिला। यह सम्मान पाने वाली वे प्रथम व्यक्ति थीं। इस स्वतंत्र विचार वाली स्टार की मृत्यु 8 मार्च को अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के दिन 1994 में बंगलौर में हुई। जब वे गुजरीं, तो उन्हें पूरे राजकीय सम्मान के साथ विदाई दी गयी। भारतीय फ़िल्म-समीक्षकों का मानना है कि ग्रेटा गार्बो भी उनकी बराबरी नहीं कर सकती है।

151, न्यू बाराद्वारी, जमशेदपुर-831001

कविताएँ

रजनी मोरवाल

शहर

कल रात मैंने
छत से शहर को
देखा था
पूरा का पूरा शहर
रंग-बिरंगी
रोशनी से नहाया
नज़र आया था।

चाँदनी से सराबोर
गगनचुंबी इमारतें
और उसमें बसते
बड़े-बड़े लोग
और एक ओर
ऊबाऊ पीली बत्तियों
में डूबी झुग्गियों
की क़तारें,
और उसमें पसरते
छोटे-छोटे लोग।

लोगों की ये जमात
झुग्गियों और इमारतों
का ये फ़ासला
पीली और सफ़ेद
बत्तियों का ये फ़र्क
क्या कभी मिट पाएगा ?

क्या यह शहर
समरूप हो पाएगा ?

मित्रता की नयी परिभाषा

ये मतलब के
बेमानी रिश्ते
जाने क्यूँ जुड़ जाते हैं
और...
वक़्त के साथ
टूटते जाते हैं।

जीवन के कारवाँ में
लोग जुड़ते हैं,
कमतर होते और
बिछुड़ जाते हैं
रह जाती हैं तो बस
यादें...
दर्द....
जो उन रिश्तों के
टूटने से उभरता है
और यह दर्द
उन लोगों की
देन है, जो
मित्रता का
दम भरते हैं;
होठों पर मुस्कराहट
और हाथों में
खंजर रखते हैं।

शायद...
यह मित्रता की
नयी परिभाषा है।

डी-301, पार्थ एवेन्यू, ओ0एन0जी0सी0
अवनि भवन के पास, चाँदखेड़ा
अहमदाबाद-382424

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिलरी मेंटल : भेड़ियों का दरबार

विजय शर्मा

यह वर्ष स्त्री रचनाकारों के लिए विशिष्ट है। 108 साल के नोबेल इतिहास में मात्र 11 स्त्री लेखिकाओं को नोबेल सम्मान मिला। 2007 में डोरिस लेसिंग को साहित्य का नोबेल मिला और एक वर्ष के अंतराल पर पुनः एक महिला रचनाकार को साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इस वर्ष का नोबेल पुरस्कार हेरटा मुलर को मिला है और इस वर्ष का बुकर भी एक महिला को ही प्राप्त हुआ है। 2009 का मैन बुकर पुरस्कार हिलरी मेंटल को उनकी पुस्तक 'वुल्फ़ हॉल' के लिए दिया गया है। लगता है, अचानक पुरस्कार समितियाँ लेखिकाओं पर मेहरबान हो गयी हैं।

मैन बुकर प्राइज़ प्रत्येक वर्ष कॉमनवेल्थ अथवा आयरलैंड के नागरिक द्वारा इंग्लिश भाषा में लिखे मौलिक उपन्यास पर दिया जाता है। 50,000 पौंड का पुरस्कार प्राप्त होते ही उस किताब की प्रकाशकों और पाठकों के बीच धूम मच जाती है। किताब की बिक्री आसमान छूने लगती है। इसके साथ ही वह लेखक बुकर ऑफ़ बुकर्स प्राइज़ की सूची में भी आ जाता है। सलमान रुश्दी को 1981 और 2008 में क्रमशः दोनों ही प्राप्त हुए। रुश्दी के अलावा वी0एस0 नॉयपॉल, नादीन गोर्डीमर, रूथ पी0 झाबवाला, आइरैश मर्डोक, विलियम गोल्डिंग, जे. एम. कोट्ज़ी (दो बार), ए. एस. ब्याट, बेन ओकरी, मार्गरिट एटवुड, अरुंधति रॉय, किरन देसाई जैसे लेखकों को यह मिला है और पिछले वर्ष यह मिला अरविंद अडिगा को।

पंद्रह सौ बीस के दशक के इंग्लैन्ड में हेनरी अष्टम गद्दी पर विराजमान था। उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। कार्डिनल वोल्सी उसका प्रमुख सलाहकार था। पोप तलाक के ख़िलाफ़ था और वोल्सी को तलाक को मान्यता दिलानी थी। इसी काम के लिए पहले पहल वोल्सी के क्लर्क और बाद में उसे उत्तराधिकारी के रूप में थॉमस क्रॉमवेल (1485-1540) का अवतरण हुआ और इसी पृष्ठभूमि पर हिलरी मैंटल का उपन्यास 'वुल्फ़ हॉल' आधारित है। जब उनसे किसी ने पूछा कि क्या वे इस व्यक्ति क्रॉमवेल पर काफ़ी लंबे समय से लिखने की बात सोच रही थीं? तो उनका उत्तर था, "हाँ, मैं इस पर कई वर्षों से लिखना चाहती थी।" यह उनका शुरूआती विचार था। मगर बहुत समय तक केवल विचार ही रहा और दूसरे उपन्यास लिखते हुए जब उन्हें लगा कि यह विचार और इससे संबंधित जानकारी पुख़्ता हो चुकी है, तभी उन्होंने इसे लिपिबद्ध किया।

एक क्रूर लोहार का बेटा क्रॉमवेल राजनैतिक जीनियस, घूसखोर, सम्मोहक, धौंस जमाने वाला, अपनी तरह का अकेला व्यक्ति है। वह जहाँ एक ओर नाज़ुक है, वहीं दूसरी ओर उसे व्यक्तियों और परिस्थितियों को चालबाज़ी और छल से अपने कब्ज़े में करने में हद दर्ज़े का कमाल हासिल है। अपने स्वार्थ के लिए वह किसी भी सीमा तक नीचे गिर सकता है। वह अपने लिए और व्यापक रूप में अपनी राजनीति के लिए अति महत्त्वाकांक्षी है। मैकियवेली के क्रूर पात्र की भाँति थॉमस क्रॉमवेल अपने पूरे राज्य को अपनी और अपने राजा की इच्छानुसार पुनर्निर्मित करने का बीड़ा उठाता है। सत्ता और शक्ति के खेल की जटिल बिसात बिछी हुई है और बहुत सारे लोगों को मोहरा बनना है। एक स्वार्थी पार्लियामेंट की जकड़ और रोमांटिक आवेश और हत्यारे क्रोध के बीच झूलते एक राजा के द्वारा क्रॉमवेल के सुधार के मुद्दे कार्यान्वित किये जाते हैं। धीरे-धीरे वह सब कुछ अपने कब्ज़े में कर लेता है। एक जाने-पहचाने थीम को कुशलता से बुना गया है। उपन्यासकार ने इसमें व्यक्ति के मनोविज्ञान और व्यापक राजनीति को टटोला है और इसे एक महान इंग्लिश उपन्यास की संज्ञा दी जा रही है।

ढेर सारे चरित्रों और घटनाओं से भरपूर यह उपन्यास इतिहास की बखिया उधेड़ता है और दिखाता है कि ट्यूडरकालीन इंग्लैन्ड समाज कितना अधकचरा था। साथ ही साथ, यह समाज अपने आपको बदलने की प्रक्रिया में जोशोख़रोश के साथ लगा हुआ था और उसमें साहस की कमी नहीं थी। इसके साथ ही ट्यूडरकालीन इंग्लैन्ड बहुत कष्ट भी पा रहा था। ट्यूडरकाल में ऐसा क्या है कि यह लेखकों का प्रिय विषय रहा है? इस विषय पर न केवल उपन्यास रचे गये, वरन् ख़ूब सारी फ़िल्में भी बनीं और नाटक भी रचे गये। मैंटल के लिए 'वुल्फ हॉल' लिखना आसान न था, क्योंकि इस विषय पर पहले भी काफ़ी कुछ लिखा जा चुका है, मगर उन्होंने यह चुनौती स्वीकार की। असल में, थॉमस क्रॉमवेल ने उन्हें अपनी गिरफ़्त में इस क़दर ले लिया था कि बिना लिखे छुटकारा न था। हेनरी की कोर्ट में वे किसी और पर नहीं लिखना चाहती थीं। मात्र क्रॉमवेल की नज़रों से लिखने ने उन्हें मोह लिया था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए कई बार लिखा जा चुका विषय भी भिन्न मोड़ लेता है। पूरी कहानी बिल्कुल नयी हो गयी है, एक अलग नज़रिये से रची गयी है।

पाँच साल पहले जब उन्होंने इसे लिखना प्रारंभ किया, तो उनका इरादा क्रॉमवेल की पूरी कहानी रचने का था, परंतु जब उपन्यास आगे बढ़ा, तो बहुत सारी संवेदनात्मक ऊर्जा क्रॉमवेल और थॉमस मोर के संबंधों में प्रवाहित होने लगी और तब मैंटल ने सोचा कि थॉमस मोर की कहानी कहनी चाहिए। इसीलिए, 'वुल्फ़ हॉल' का अंत मोर के अंत के साथ होता है। 'वुल्फ़ हॉल' अपने आप में पूर्ण होते हुए भी क्रॉमवेल के जीवन का केवल एक अंश है। लेकिन, थॉमस क्रॉमवेल की कहानी तो रह ही गयी। मैंटल का इरादा इसे आगे बढ़ाने का लगता है, क्योंकि उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा है कि शायद जब हम क्रॉमवेल से फिर मिलेंगे, वह थोड़ा अलग होगा। उनके मन में अगला प्लॉट घूमना शुरू हो गया है। क्रॉमवेल के उत्थान के पाँच वर्ष, जिनमें एन0 बोलीन का नष्ट होना, हेनरी की बेटी मेरी की बातें, एक विद्रोह, जो तकरीबन गृहयुद्ध है और इंग्लैन्ड के झकझोरने और पुनः निर्माण का काल है—सब आना बाक़ी है। उसे पूरा करने के लिए मैंटल उतावली हैं। जल्दी ही क्रॉमवेल अपने एक नये अवतार में साहित्य के पाठकों के सामने आने वाला है।

'वुल्फ़ हॉल' की रचयिता का जन्म 6 जुलाई, 1952 को ग्लोसोप, डर्बीशायर, इंग्लैन्ड में हुआ और उन्होंने लंदन स्कूल ऑफ़ इकॉनॉमिक्स तथा शीफ़ील्ड यूनीवर्सिटी से क़ानून की पढ़ाई की। सोशल वर्कर के रूप में पाँच साल तक बोत्सवाना और चार साल तक सऊदी अरबिया में रहने के बाद वे इंग्लैन्ड लौट आयीं. जेद्दा पर एक आलेख लिखने के लिए 1987 में उन्हें 'शिवा नायपॉल मेमोरियल प्राइज़' मिला। वे 1987 से 1991 तक 'द स्पेक्टेटर' के लिए फ़िल्म क्रिटिक का काम भी कर रही थीं। जेद्दा की पृष्ठभूमि पर आधारित 1988 में आया उनका उपन्यास—'एट मंथ इन गाजा स्ट्रीट'। इंग्लैन्ड के उत्तर में स्थित एक गाँव में 'फ़्लड' की घटनाएँ चलती हैं। 1989 के फ़्लड को विनिफ़्रेड होआइटबाई मेमोरियल, सदर्न आर्ट्स लिटेरचर, चेटनहाम आदि पुरस्कार प्राप्त हुए। 1992 में आया 'ए प्लेस ऑफ़ ग्रेटर सेफ़्टी' फ्रांसीसी क्रांति का महाकाव्यात्मक चित्रण है, जिसने मैंटल को 'संडे एक्सप्रेस बुक ऑफ़ द ईयर' अवार्ड दिलवाया। एक मिशनरी युगल के अपने बच्चे की होने की गाथा के रूप में 1994 में 'ए चेंज ऑफ़ क्लाइमेट' आया और तीन स्कूल टीचर्स की कहानी है—'एन एक्सपेरिमेंट इन लव', जिसे हॉथर्डन पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'गिविंग अप द घोस्ट' में उनके संस्मरण हैं, जिसमें उनके बचपन से युवावस्था तक की और उनके लेखन की ओर मुड़ने की झलक मिलती है। 'लर्निंग टू टॉक शॉर्ट स्टोरीज़' उनकी एक और पुस्तक का नाम है। मैंटल का उपन्यास 'बियॉन्ड ब्लैक' 2005 में आया, जिसने उन्हे कॉमनवेल्थ राइटर्स तथा ऑरेंज पुरस्कारों के लिए नामांकित कराया और 2009 में आया 'वुल्फ़ हॉल', जिसने उन्हें बुकर पुरस्कार तक पहुँचा दिया।

उन्हें लेखकों का एक दूसरे से स्पर्धा करना दुनियादारी के हिसाब से भले ही अजीब न लगता हो, लेकिन मानसिक स्तर पर अजीब लगता है। वे सदैव ख़ुद से ही स्पर्धा करती हैं। अपने संशयों, हिचकिचाहटों और अपनी सीमाओं से प्रतियोगिता करती हैं। पुरस्कार पाकर हिलेरी मैंटल बहुत ख़ुश हैं, निहाल हैं; साथ ही साथ, इससे वे प्रेरित हैं। उनका अपने ऊपर विश्वास और मज़बूत हो गया है। इसके साथ ही उनका विचार है कि पुरस्कार से लेखक पर भयंकर दबाव पड़ता है। उन्हें लगता है कि लिखते रहना महत्त्वपूर्ण है। अगली किताब पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए और यही वे कर रही हैं।

प्रथम तल, 151 न्यू बाराद्वारी, जमशेदपुर-831001

लघु कथा

सपना और यथार्थ

अनुपमा

कमल की आँखों में न जाने क्या देखकर नीमा सिहर उठी। उसकी बातों की मिठास पल-पल उसे रोमांचित करने लगी। शायद वह उससे प्रेम करता है। वह भी उससे प्रेम करने लगी। आँखों में सुनहरे स्वप्न सजने लगे; शादी, घर, बच्चे—जो हर औरत का सपना होता है। मन ही मन उसने कमल के साथ एक सुंदर दुनिया ही बसा डाली थी। वह ज़मीन पर नहीं, बल्कि उन्मुक्त आसमान में उड़ने लगी थी। इस उड़ान से पार गयी, तो शायद उसके पंख ही न कट जाएँ, लेकिन वह उड़ती ही रही और एक दिन... कमल अपने मित्र से कह रहा था—"यार सबर कर! चिड़िया बस मेरे पिंजरे में फँसने ही वाली है, उसके बाद तो बस ऐश ही ऐश है।"

"और कितना इंतज़ार करवाएगा! मुझसे तो अब रहा नहीं जाता।"

"मैंने उसे अपने शीशे में पूरी तरह से उतार लिया है, देख लेना, अब ख़ुद-ब-ख़ुद कमरे तक चलकर आएगी।"

घायल पंखकटी चिड़िया की भाँति वह आकाश से ज़मीं पर गिरी। यथार्थ के धरातल पर गिरते ही उसके सपनों का घरौंदा तिनका-तिनका बिखर चुका था।

484, अजाद नगर, निरंकारी भवन के पीछे, करनाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अनारकली का सलीम...

मेजर रतन जांगिड़

दुनिया जानती है कि मैं ' अनारकली का सलीम घोषित हो चुका हूँ। वस्तुतः अनारकली मुझे प्यार करती थी और हमारी प्रेम कहानी काल्पनिक नहीं थी क्योंकि 'के. आसिफ' साहब ने इसे पर्दे पर दिखाया है। मेरे 'अब्बू, दी ग्रेट' भी महान आत्मा थे। उनके नाम से पूरी ' हिस्ट्री'भरी हुई है। उन जैसा महान आदमी हमारी प्रेम कहानी का विरोध थोड़े ही करता। अब्बू मुझे प्यार से 'शेखू बाबा' कहकर पुकारते थे उसके पीछे भी छोटा सा राज़ है। वे सलीम चिश्ती साहब के मुरीद थे। वे जिंदगी भर उनकी पूजा करते रहे और मेरे नाम में उन्हें जीवित देखने रहे।

लेकिन मेरी आत्मा आज की प्रेम कहानियों को देखकर विघलित है। यह पूर्ण रूप से सत्य है कि मैंने अनारकली को सच्चे दिल से प्यार किया था। वह कौन थी, मैंने सोचा भी न था। इतिहास में इसका वर्णन कभी नहीं हुआ, यह मेरा दुर्भाग्य था। लेकिन मैंने तो अनारकली के लिए अब्बा हुजूर का ताज तक ठुकरा दिया था। ताज भी ऐसा जिसके ऊपर मोहब्बत का पलड़ा भारी था। मैं तो चाहता था कि 'हिन्दुस्तान ए मलिका' अनारकली बने और इससे बड़ा प्यार का तोहफा भला कोई दे सकता है। क्षमा करें, मुझ पर बेपनाह दौलत का इल्जाम न लगाएँ। मोहब्बत के अर्थ दौलत से कभी भी नहीं आंके जाते ओर यही वजह थी कि मैंने दौलत को शून्य माना और अनारकली को प्यार की दौलत से भी बहुत ज्यादा। वो मेरी जिंदगी की दौलत बन गयी थी।

आज मेरी आत्मा सब कुछ रही हैं। दौलत के पीछे और आगे आज की युवा-मोहब्बत। ज़ोश काफी है इनमें। मोबाइल का जमाना है और इस यंत्र से मोहब्बत का आदान-प्रदान हो रहा है। मूक सी बनी मेरी आत्मा इसे देख रही है। इस यंत्र का कमाल तो यह है कि इसके ज़रिए एक प्रेमी पांच प्रेमिकाओं से अलग-अलग मिलने के लिए 'डेट' तय कर रहा है और प्रेमिकाएं भी कम नहीं हैं। वे भी अपने चार प्रेमियों को 'डेट' दे रही हैं। 'अनारकली आकर देखों, यह क्या हो रहा है।' हिन्दुस्तान की ज़मीं पर प्रेमी-प्रेमिकाओं की यह स्पर्धा इंहें कहाँ ले जाएगी। मैंने तुम्हारे शरीर से नहीं दिल से प्यार किया था लेकिन अब यह प्रेम दिल से नहीं शरीर से हो रहा हैं। क्या तुमने प्री मेरिटल सेक्स के बारे में सोचा था। मुझे याद है, हम पचासों बार अकेले मिले थे। क्या तुम्हें याद है, जब मैं आगरा में अब्बा हुजूर द्वारा बनवाए सलीम चबूतरे पर कबूतर उड़ाया करता था तो तुम मुझे दूर से देखा करती थी और दूर से ही ताली बजाकर उत्साहित करती थी और उसके बाद ज्यों-ज्यों अंधेरा छाने लगता था, तुम धीरे-धीरे मेरी ओर आती थीं। खुदा कसम, मैं उस अंधेरे में भी तुम्हें छूता नहीं था बल्कि मेरे प्यार भरे शब्द तुम्हारा स्वागत करते थे। मैंने कई बार तुझे कहा था, 'सुभान अल्लाह, तुम्हारी यह खुबसूरती हमेशा मेरी आँखों में बसी रहे।' और तुम हंसे बिना नहीं रहती थी, बल्कि इतना हंसती थीं कि चारों ओर एक ही आवाज गूंजती थीं। मैंने गलती से एक बार तुम्हें बाहों में लेने की कोशिश की थी लेकिन तुने ही बात कही थी। 'पहले हमारा निकाह तो हो' और इसी बात के पीछे मुझे अब्बा हुजूर से बगावत करनी पड़ी थी।

लेकिन आज! तुम देख रही हो न। भारतवर्ष की युवा पीढ़ी हमें पहचान नहीं रही। एक छोटे से कर्ण-यंत्र के जरिए क्या-क्या गुल खिलाए जा रहे हैं। ये लोग मां-बाप को कितना धोखा दे रहे हैं। ओह, कितने रिसोर्ट खुल गए हैं। रिसोर्ट के अंदर छोटी-छोटी झोंपड़िया बन गयी हैं और उसके अंदर ये क्या कर रहे हैं? ..... अनारकली, मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही है।

मैं, सलीम ही यह बात कह रहा हूँ। पता नहीं मैंने क्यों ऐसी गलती कर दी कि मेरी आत्मा शहर की गली में बने एक छोटे से अस्पताल में जा घुसी। यह शब्द मुझे कचोट रहे हैं,

" क्या हुआ, मैंने कोई गुनाह नहीं किया है।"

"यह तेरा ममेरा भाई था।'

"डॉक्टर चुप रहो। तुम्हें फीस से मतलब है। मेरी व्यक्तिगत 'लाइफ' से नहीं। मैं रहती हूँ, अपना काम करो वरना ...।"

ग्लब्ज लगाए सहमा डॉक्टर अपना काम करता है। एक भ्रूण हत्या। अगर वही लड़की हुई तो, 'एक और अनारकली ' का खून हो गया है। 'क्यों कर रहे हो वह खून?' मेरी आवाज अस्पताल में गूँज़ जाती है लेकिन दीवारों से टकरा कर ग़ायब हो जाती है।

मैं फिर शहर के अस्पतालों की तरफ मुंह कर लेता हूँ लेकिन कई जगहों पर मुझे अनारकली या उसके भाई का खून होता दिखता है। काश, मेरे अब्बा हुजूर बादशाह-ए-हिन्दुस्तान मेरी आवाज सुन पाते। मैंने ऐसा कोई गुनाह नहीं किया तो फिर मुझसे अनारकली को मिलने क्यों नहीं दिया। मैं भी 'डेटिंग' पर चला जाता तो क्या होता। अब्बा हुजूर, आपने मेरे साथ बेइंसाफी की है। आजतो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान में यह आम बात हो गई है। मां-बाप को कुछ भी खबर नहीं होती और 'डेटिंग' पर जाना कोई अपराध.....। मेरा मतलब मां-बाप अनजान हैं।

अनारकली, सुन रही हो, न। हमारा अपराध तो मात्र मोहब्बत था लेकिन अब तो इसकी परिभाषा बदल चुकी है। यहां के युवा वर्ग ने कपड़े उतार फेंके हैं। आवागमन के साधन बहुत 'फास्ट' हो गए हैं। लाइफ भी फास्ट हो चुकी है। धनाढ्य लोगों के लड़कों के हाथों ए.सी. गाड़िया आ गई हैं और उनमें उनकी प्रेमिकाओं का सफर करना आम हो गया है। वे बड़े शान से गाड़ियों में सफर करते हए कहीं दूर चले जाते हे। इसे ही प्यार की परिभाषा मान लिया है। मध्यम वर्ग के युवा भी पीछे नहीं है। उनके पास मोटर-साइकिल जैसा वाहन है और उसके पीछे मुंह ढकी प्रेमिकाएँ बैठती हैं। वे भी प्यार करने निकलते हैं।

बस, एक ही तकलीफ है, बेचारा 'निम्न वर्ग'। वह सब देखते हुए 'आह' टपकाता है। उसको भी विशेष छात्रवृति मिलती तो वह भी शायद...।

मेरी बदकिस्मती यह है कि मैं अनारकली को मोबाइल भी नहीं कर सकता। कॉलेज एवं स्कूल के बहाने 'पीरियड्स'खाली रहने लग गए हैं, बस ' प्यार' रह गया है। अरे प्यार के बादशाहो, श्रीमान् रोमियो-जूलियट, हीर-रांझा, फरहाद-शीरीं, मजनूं-लैला, शेरा और रेशमा वापस आकर देखो। तुम लोगों ने नाहक ही जान दे दी। ऐश क्यों नहीं किया। रातों रात गायब हो जाते। अरे दिन में भी कौन देखता । दिल के प्यार को असली प्यार समझते रहे। अरे मूर्खो! असली प्यार तो देह में है। शरीर की खुशबू में छिपा है प्यार। सेक्स उमड़ता है उसमें। शादी के पीछे भागते रहे। मनवाते रहे समाज से अपने प्यार का लोहा परंतु आज दिल का प्यार बेवकूफ़ी है। शादी से पहले एकांत का प्यार कोई सेक्स नहीं है। वह तो प्यार है।

अनारकली! मैं, तुम्हारा सलीम, आज दुःखी हूँ। काश मैं भी इसी समय जन्म लेता। तुम्हारे शरीर को तो देख पाता। लेकिन फिर भी एक बद्दुआ मैं आज की इस प्रेम-पीढ़ी को दूंगा कि वे प्यार को खिलौना समझेंगे तो जीवन खिलौना ही रहेगा। जिससे भी शादी करेंगे, कभी खुश नहीं रहेंगे। मेरा यह श्राप उन्हें कचोटेगा। वे इस दर्द को ज़रूर झेलेंगे।

111/400, शिप्रापथ, मानसरोवर, जयपुर (राजस्थान)

लघु कथा

शामत के निशान

सत्य शुचि

उसे एक मुद्दत के बाद वह नज़र आया था, तिस पे बाइक पर था। उसने जोर से आवाज़ लगायी "अरे। भाई साहब, सुनिए-सुनिए... रुकिए" और झट-से गाड़ी की रेस धीमी की। तत्पश्चात् वह रुक गया।

"बहुत टाइम से आप दिखे नहीं," उसने कहा, "क्या कहीं बिज़ी थे?"

"हाँ, था... मगर पहले यह बताइए कि आपने आवाज़ किसलिए मारी", वह गुस्से में फूटा।

"दरअसल, वो दुकान का हिसाब आपका बाक़ी चल रहा था। सोचा याद दिला दूँ"

"तुम्हें ज़रा-सी शरम भी है... सरे राह चलते-निकलते किसी को डिस्टर्ब करना", वह डाँटते - हुए बोला, "अगर उस वक़्त तुम्हारी आवाज़ से मेरी गाड़ी का संतुलन बिगड़ जाता तो...."

"कोई ग़लती हो गयी मुझसे?" एक सहमे स्वर में उसने विस्मय दर्शाया।

"क्या आवाज़ देने या चिल्लाने मात्र से तुम्हारे पैसे मिल जाएँगे?" वह प्रश्नवाचक मुद्रा में उसे घूरता रहा।

"ख़ैर, भाईसाहब.... आप नाराज़ ना हों और प्लीज़, मेरी दुकान का हिसाब चुकता कर दीजिए..." उसने नरमाई बरती।

"कौन-सा हिसाब... जब होंगे, तब दूँगा .... और भविष्य में मेरे संग इस तरह का बर्ताव भूलकर भी न करना, और वह बाइक स्टार्ट कर चुका था।

"यहाँ उधार देकर गोया उससे दुश्मनी मोल ले ली हो उसने। अचानक उसके भीतर कुछ चटका और फिर पलों में खुद को सहेजते हुए बुदबुदाया, "एक उधारिए से उसकी उधारी न आयी तो ग़म खाने के सिवाय कोई चारा भी तो नहीं है... लेकिन, हाँ.... ऐसे लोगों से बचना ज़रूर चाहिए..."

साकेत नगर, ब्यावर (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ाख़्ता एक औरत है

नूरुल ग़ामदी

बहुत सी औरतें सोने से पहले रोती हैं। औरत के लिए बहुत मुश्किल है कि वो उस बात का किसी से गिला करे। हर औरत समझती है कि सिर्फ़ वो ही है, जो रात का एक पहर रोते हुए गुज़ारती है, एक ख़ूबसूरत मगर दुखी कर देने वाला अमल। अगर उनमें से कोई गिला करना भी चाहे, तो कोई भी मर्द चाहे वो कितना भी स्वाभिमानी हो, हमदर्दी नहीं करेगा और न उस पर ध्यान देगा। हो सकता है, तब भी वो यही कहे—"यह तो औरतों की आदत है, ख़ासकर जब सारी दुनिया सो रही होती है, तो उनकी जागती आँखों के ख़्वाब उनके थके हुए ज़ेहन पर गहरा असर डालते हैं।"

"सब औरतें रोती हैं, मगर कुछ औरतों के आँसुओं के सोते खुश्क हो जाते हैं और उनकी आँखों से आँसू निकलना बंद हो जाते हैं," औरत की तेज़ आवाज़ कुछ घट सी गयी, "मुझे यह डॉक्टर ने बताया था। उसने कहा था कि औरतों का रोना कोई अजीब बात नहीं है, अगर वो नहीं रोतीं तो अजीब बात है।"

मैं उसके क़रीब खिसक आयी "तो क्या डॉक्टर ने रोने की वजह और कितने फ़ीसद वक़्त रोना आता है, यह मालूम किये बग़ैर यह सब कहा ?"

उसने मेरी तरफ़ मुड़कर कहा—"क्या हम रोने को नाप सकते हैं?"

औरतों से भरा हुआ कमरा कहकहों से भर गया। एक तेज़ आवाज़ उभरी—"रोने का समय 75 फ़ीसद है, मगर मेरे ख़्याल में यह डॉक्टर उसका ताय्युन करने के सिलसिले में नातजुर्बेकार लगता है।"

हँसी और ज़्यादा बुलंद हो गयी। मैंने दिलेरी से कहा—"हाँ ! रोने का अंदाजा फ़ीसद में होता है, यह एक ख़ास थ्योरी है। रोना एक बीमारी है और उसका एक लंबा इलाज होता है।"

मेरे क़रीब बैठी हुई औरत ने मेरी बात काटते हुए कहा—"असल बात तो यह है कि रोना आता है और दिल उबलता है। दिल एक समंदर है, जो ख़ामोश आँखों के साहिल की तरफ़ लहरों को धकेलता है।"

उसने मेरी तरफ़ देखा और पूछा—"क्या तुम पहली बार नफ़्सयाती डॉक्टर के पास आयी हो ?"

"हाँ पहली बार"

"क्या परेशानी है?"

"ख़ौफ़, डरावने ख़्वाब और रोने की एक अजीब-सी ख़्वाहिश। तुम्हारा क्या मसला है?"

मेरी परेशानी भी तुमसे कुछ ज़्यादा मुख़्तलिफ़ नहीं है, सिवाय एक बात के। हर बार जब मैं डॉक्टर के पास आती हूँ, तो एक ख़ास सवाल पूछती हूँ, जिसको सुनकर वो या तो हँसने लगता है, या कभी टेलीफ़ोन उठाकर किसी से बातों में लग जाता है, कभी वो मुझसे बेतुकी बातें करता है और आख़िर में मुझे मुस्कुराने के लिए कहता है। उससे पहले वो मुझसे दसियों बार पूछता है कि मेरा नाम क्या है। देखो! देखो कोने में जो औरत है, वो अजीब अंदाज़ से रोती है। और, वो जो लड़की है न, एक मिनट में 10 बार उठती है और खड़ी होती है।"

'क्लीनिक औरतों से भरा हुआ था। उसकी बेचैनी फ़ितरी है, मगर मैं बोर हो गयी हूँ। मैंने कहा—"बहुत अफ़्सुर्दा माहौल है, और वैसी ही अफ़्सुर्दा अस्पताल की बू है, मेरा तो दम घुटता जा रहा है!"

"बर्दाश्त करो, मैं यहाँ चार घंटे से आयी हुई हूँ।"

"अगर मुझे एक घंटा और इंतज़ार करना पड़ा, तो मैं पागल हो जाऊँगी। मेरा बेटा घर पर मेरा इंतज़ार कर रहा है। वो बहुत छोटा है और वो मुझसे दूर रहने का आदी नहीं है।"

"उसका बाप कहाँ है?"

"वो कहीं और है।"

"तो क्या इसका मतलब है कि तुम तलाकशुदा हो?"

"तक़रीबन दो साल हो गये।"

"क्या दूसरी शादी करने का इरादा है ?"

"एक आदमी है, जो मुझसे शादी करना चाहता है, मगर मुझे डर है कि मैं अपना बेटा खो दूँगी।"

"उस आदमी से तुम्हारे किस क़िस्म के ताल्लुक़ात हैं... "मँगनी हो गयी है या मुहब्बत है?"

"दूसरी बात सच के क़रीब है?"

"हा ! हा ! हा !"

उसके इस तरह हँसने पर कई औरतों ने नागवारी ज़ाहिर की। एक ने कहा—"लोगों में अब कुछ शरम नहीं रह गयी है।" दूसरी ने कहा "शायद उसे दौरा पड़ गया है।" तीसरी ने कहा—"वाक़ई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पागल है।"

चंद कमउम्र लड़कियाँ उसके साथ ज़ोर से हँसीं और फिर सूझबूझ वाली तजुर्बेदार औरतों समेत सारा ग्रुप हँसी में शामिल हो गया। तीन मिनट बाद सारा कमरा ख़ामोश था। उसने अपने दोनों हाथ अपने तीखे़ नाक-नक्श वाले ज़र्द चेहरे की तरफ़ उठाये और आँखों में आये आँसू पोंछे। वो रो-रो कर हँसती रही और फिर मेरी तरफ़ देखकर बोली—"तुम उसकी बात का ऐतबार करती हो?"

मैं उसका जवाब देने से पहले एक मिनट हिचकिचायी, "कभी-कभी मैं उस पर ऐतबार भी करती हूँ।"

मुझे अपनी कशमकश पर कुढ़न हो रही थी।

"जब मुझे उस पर शक होता है, तो ख़ुद की मलामत करने लगती हूँ कि मैं शायद उससे मोहब्बत नहीं करती। मैं उस पर ऐतबार करती हूँ... जब रात को मैं अकेली होती हूँ और ख़्वाब मुझे कहीं दूर ले जाते हैं, तब मुझे उस पर ऐतबार होता है। मगर जैसे ही सूरज निकल आता है और मेरी आँखें रोशनी से दो-चार होती हैं, तो मुझे लगता है कि जो कुछ गुज़रा था, वो ख़्वाब से ज़्यादा कुछ और नहीं था। कभी मुझे उससे इतनी नफ़रत होने लगती है कि दिल चाहता है कि मेरी याददाश्त खो जाए, ताकि वो कभी मेरे ख़्यालों में भी न आए। मगर तुम मुझसे क्यों पूँछ रही हो, और तुम कौन हो ?"

"मैं... मैं... यहीं की औरत हूँ", उसने कहा, "तुम्हारी ही तरह मैंने बचपन से सीखा था कि एक मर्द औरत के लिए सब कुछ होता है और औरत उसके बग़ैर कुछ भी नहीं... वो हवा में एक तिनके की तरह है। हमारे गाँव में एक आम मुहावरा है कि औरत के लिए शौहर एक कुज़ (तेज़ हवाओं के चलने से रेत के जो टीले बन जाते हैं) जैसा होता है।"

"और क्या हमेशा ऐसा ही होता है?" मैंने पूछा।

"बेचारी तुम, क्या उसने तुमसे कहा है कि वो तुमसे शादी करेगा?"

"नहीं।"

"क्या उसने इस क़िस्म का कोई इशारा किया?"

"नहीं, मगर मुझे यक़ीन है कि वो करेगा।"

"तुमने उससे पूछा क्यों नहीं ?"

"मैं ये कभी नहीं करुँगी।"

"क्या यह तुम्हारा किसी क़िस्म का फ़र्ज़ी उसूल है?"

"नहीं, यह स्वाभिमान है।"

"मैं तुमसे कहे देती हूँ, अक्सर मर्द झूठ बोलते हैं," फिर वो बोली, "मगर मर्द झूठे क्यों होते हैं?"

किसी ने हम दोनों के बीच में अपना सर घुसाते हुए दिलगिरफ़्तां आवाज़ में सरगोशी की—"फ़ाख़्ता से पूछो।"

मैंने अपनी साथी के पास से अपना सर थोड़ा सा खिसकाकर उसके लिए जगह बनायी। उस औरत ने अपना उलझे बालोंवाला सर हिलाते मेरी साथी की तरफ़ घूरते हुए दोहराया—"मैंने कहा था, फ़ाख़्ता से पूछो।"

"फ़ाख़्ता... फ़ाख़्ता। क्या मतलब है तुम्हारा?

उसने छत की तरफ़ मुँह करके गाने के कुछ बोल गाये:

तू... तू.... तू... तू.... तू....
ऊह अहमद अदवी...
मेरी कंघी वापस ला दो...
मेरे बेटे का खिलौना लौटा दो
तू... तू.... तू... तू... तू....
तुम मुझसे अपना सोना वापस ले लो...
तू... तू.... तू... तू.... तू...
ऊह अहमद अदवी...
मेरी कंघी वापस ला दो....

धीमे सुर में उसका यह उदास गाना कमरे के कोने में एक औरत के सर पटकने के हंगामे और शोर की वजह से एक क्षण में बंद हो गया। औरतों में सरगोशियाँ होने लगीं। एक नर्स बीच में पड़ी, दूसरी आयी, तीसरी आयी। कुछ औरतें बाहर चली गयी, कुछ अंदर आयीं। मेरे और मेरी साथी, जिससे कुछ देर पहले ही जान-पहचान हुई थी, के दरम्यान वो अजीब-सा चेहरा फिर नमूदार हुआ।

मेरी साथी ने कहा—"लगता है वे पागल हैं।"

उस अजीब-सी औरत ने धीरे से मुड़कर मेरी तरफ़ अज़ीब अंदाज़ में देखा और बोली "मैं हम्माद की माँ हूँ, फ़ाख़्ता की माँ।"

मैं उठ खड़ी हुई और हकलाते हुए कहा—"फ़ाख़्ता.... फ़ाख़्ता?"

मेरी साथी ने अपने पर्स में हाथ डालकर कुछ गोलियाँ निकालकर अपने मुँह में डालीं।

"तुम मेरी और दूसरी औरतों की तरह बीमार हो, मगर इससे छुटकारा पाने के लिए गोलियाँ खाना सही नहीं है," मैंने कहा।

मगर लगता था कि उसने मेरी बात नहीं सुनी।

"आज सात साल हो गये", उसने कहा "मैं मुख़्तलिफ़ क्लीनिक्स में जाकर डॉक्टरों से ये सवाल पूछती हूँ कि 'मर्द झूठ क्यों बोलते हैं।"

सरगोशियाँ फिर से शुरू हो गयी थीं।

"मैंने तुमसे कहा तो," उस अजनबी अजीब-सी औरत ने फिर कहा, "फ़ाख़्ता से पूछो।"

मेरी साथी मुस्कुरायी, वो मुंतज़िर थी कि मैं उस औरत से बहस करूँगी। मगर वो अजीब-से चेहरे वाली पीछे जाकर दीवार से टेक लगाकर खड़ी हो गयी। कुछ लम्हों के लिए उसके खरटि कमरे में फैल गये। वो जागी और ख़ौफ़ज़दा अंदाज़ में चारों तरफ़ देखा और फिर सो गयी।

मैंने अपनी साथी के क़रीब झुककर कहा—"सिर्फ़ मर्द ही झूठ नहीं बोलते, औरतें भी झूठ बोलती हैं।"

उसने हवा में अपने हाथ लहराते हुए बाआवाज़ बुलंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा–"मगर मर्द बीस साल की उम्र में टूट नहीं जाते, वो पचास साल की उम्र के बाद भी बुड्ढे नहीं होते। यह मर्दों के साथ नहीं होता। सिर्फ़ औरतें रोती हैं। मैं बीस साल से रो रही हूँ। तुमको पता है क्यूँ? मैंने एक मर्द से मुहब्बत की थी। जितनी करनी चाहिए थी, उससे कहीं ज़्यादा। मैंने उस पर ऐतबार किया था, मगर उसके बाद वो सूरज निकलने से पहले हवाओं में अपनी तलवार लहराता निकल गया।

एक बार फिर वो उलझे-उलझे बालों वाला सर हम दोनों के दरमियान नमूदार हुआ, "क्या उसने फ़ाख़्ता की आवाज़ नहीं सुनी?"

सिवाय औरतों की आसाबी तनफ़्फ़ुस आवाज़ के कमरे में ख़ामोशी छा गयी। बाहर मरीज़ों और डॉक्टरों के क़दमों की आहट सुनी जा सकती थी। उस औरत का दर्द भरा गाना फिर शुरू हो गया :

तू... तू.... तू... तू.... तू....
ऊह अहमद अदवी...
मेरी कंघी वापस लॉदो...
मेरे बेटे का खिलौना लौटा दो...
तू... तू.... तू... तू... तू....
तुम मुझसे अपना सोना वापस ले लो...
तू... तू.... तू... तू.... तू...
ऊह अहमद अदवी...
मेरी कंघी वापस ला दो....

मैंने हिम्मत करके पूछा–"अहमद अदवी कौन है ?"

उसने सर हिलाया और अपने पीले दाँतों की नुमाइश करते हुए अजीब-सी मुस्कुराहट के साथ कहा वो–"फ़ाख़्ता का आशिक़ है।"

"फ़ाख़्ता, तुम्हारा मतलब है वो चिड़िया, जो हम दरख़्तों पर देखते हैं।"

उसने अपने सीने पर हाथ बाँध लिए और कहा–"मैं तुमको बताती हूँ। जब दुनिया बनी थी और सारे जानवर बोल सकते थे, फ़ाख़्ता का एक चाहने वाला था, जिसका नाम अहमद अदवी था। फ़ाख़्ता का एक छोटा-सा बेटा था–ख़ूबसूरत परों वाला। वो रोज़ सूरज की रोशनी से बनी हुई एक कंघी से उसके पैरों में कंघा करती थी। ये कंघी उसे बेटे की पैदाइश के दिन एक नजूमी ने दी थी और कहा था कि इसको बहुत हिफ़ाज़त से रखे, क्योंकि उस कंघी से उसके बेटे की जान जुड़ी है। फ़ाख़्ता ने एक पर के नीचे ये कंघी छिपा ली और दूसरे पर में अपने बच्चे को लिपटा लिया। एक शाम अहमद अदवी उसके पास रहना चाह रहा था, मगर उसने इस डर से कि कहीं वो कंघी न खो दे, उसके साथ वक़्त गुज़ारने से इन्कार कर दिया। फ़ाख़्ता ने यह कहकर उसकी बेइज़्ज़ती कर दी कि वो किसी और दुनिया से आया है और वो किसी और दुनिया से है, और दोनों को रास्तबाज़ होना चाहिए। अहमद अदवी को बहुत गुस्सा आया, मगर वो अपने जज़्बात छिपा गया। एक दिन अहमद अदवी ने उससे समंदर के किनारे घूमने के लिए चलने को कहा और वो राज़ी हो गयी। समंदर के किनारे अहमद ने एक बड़ा-सा हार निकाला और उससे कहा कि वो झुक जाए, ताकि वो हार उसके गले में डाल सके। उसने कहना मान लिया और अहमद ने चोरी से वो कंघी उसके पैर के नीचे से निकाल ली और चुपके से समंदर में फेंक दी। जब वो घर वापस लौटी, तो अपने बेटे को मौत के क़रीब पाया। उसने बेटे के चारों तरफ़ अपने पंख फड़फड़ाये, तो ये देखकर ख़ौफ़ज़दा हो गयी कि कंघी ग़ायब है। वो अहमद के पास भागी, मगर वो वहाँ नहीं था। वो अपने बेटे के पास वापस पहुँची, तो वो ख़त्म हो चुका था। तब से हर चीज़ बोलती है, मगर फ़ाख़्ता नहीं बोलती, वो सिर्फ़ रोती है।"

वो आगे झुकी और अपने रूखे, उलझे बाल नोंचने लगी जो मोटे नक़ाब में छिपे हुये थे। उसने सरगोशी की–"फ़ाख़्ता एक औरत है।"

मेरी साथी उठ खड़ी हुई, और अपनी आँखों तक हाथ ले गयी, जैसे वो एक ख़्वाब देख रही थी। उसने कहा–"अब मुझे पता चला।"

मैंने चारों तरफ़ देखा। कमरा तक़रीबन खाली हो चुका था। क्लीनिक बंद हो गया था और औरतें जा रही थीं। मैं उनके पीछे कहते हुए चल पड़ी–"फ़ाख़्ता एक औरत है..."

अनुवादक :
फ़ातिमा ज़ेहरा एवं गुलाम फ़रीद साबरी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अ0मु0वि0, अलीगढ़

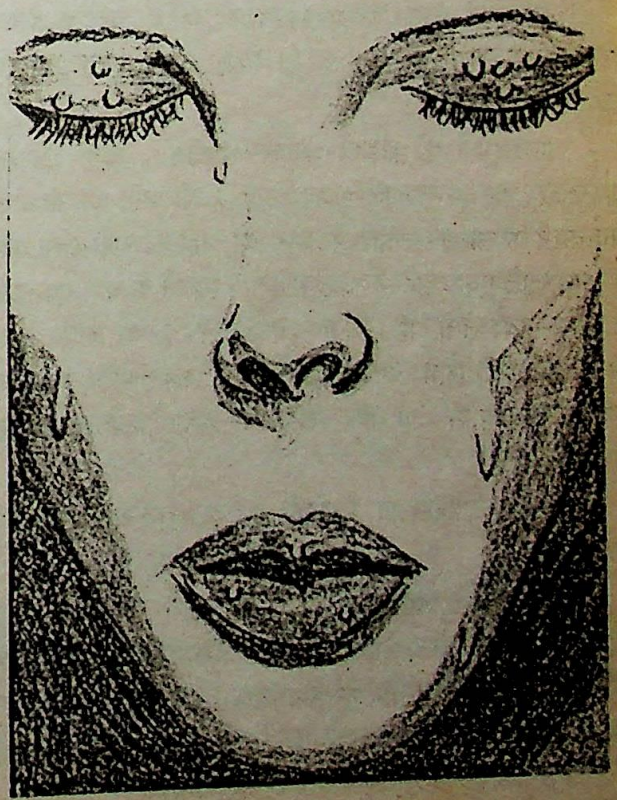

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गावतार

हेमा नायक

आम दिनों की तरह दुर्गी काम पर से घर आ गयी। नहायी, साफ़ धोयी हुई नौ गजी साड़ी पहनी। नहाने के बाद उसे बहुत अच्छा लगा। दिन भर की बदन की थकान अपने आप ग़ायब हुई। दीवार पर लगाये हुए आईने के सामने खड़े होकर माथे पर रोली की बड़ी-सी बिंदी लगायी। अपने-आप पर वह मुस्करायी। बाहर तो दिन ढलने लगा था, लेकिन उसके दिल में उम्मीद का भोर उदित हो रहा था।

इतने में द्वार पर किसी ने दस्तक दी। उस आवाज़ को सुनने के लिए बेताब दुर्गी द्वार की ओर दौड़ते हुए गयी—"रुको, रुको, आ रही हूँ। तुम्हारी ही राह देख रही थी..."

उसने द्वार खोला और उसका मुँह खुला का खुला रहा रह गया—"आं? शांता तुम? मैं समझी.....।"

"क्या समझी थी? आं! किसकी राह देख रही थी दुर्गी?" उसकी अवस्था को देखकर शांता को अचरज हुआ।

"अरी, नहीं जी, किसी की भी नहीं," दुर्गी ने कतराते हुए कहा।

शांता को उसकी बातों पर विश्वास नहीं था, क्योंकि प्रसन्न चेहरा ही सब कुछ बता रहा था कि किसी की राह देख रही थी, नहा-धोकर तैयार थी।

शांता-दुर्गी की सहेली। सहेली मतलब.... दोनों हमउम्र। इधर-उधर काम करने वाली मजदूरनियाँ। कभी-कभी एक ही जगह काम करने के कारण उनकी भेंट होती थी, नहीं तो कभी-कभी काम पर आते-जाते एक दूसरे से टकराती थीं। मिलने के बाद एक-दूसरे की खोज-ख़बर लेती थीं, लेकिन कभी किसी के घर जाकर ख़बर लेने जैसी गहरी दोस्ती उनमें नहीं थी। पर, आज शांता उसके घर हाल पूछने आ गयी थी और उसकी यह हालत देखकर अचंभित हुई थी।

"कहो न, कहो तो, किसकी राह देख रही थी?" शांता ने फिर पूछा।

दुर्गी ने एक लंबी साँस छोड़ते हुए कहा, "अब तुमसे क्या छिपाऊँ? और किसी राह देखूँगी? पिछले दस बरसों से उसकी बाट जोह रही हूँ। आज आएगा, कल आएगा। ऐसे द्वार पर किसी की आहट सुनकर मैं अपने-आपको भूल जाती हूँ। ऐसे लग रहा है कि जिसकी बरसों से राह देख रही हूँ, वह एक न एक दिन आ जाएगा। इसी उम्मीद पर जी रही हूँ और दरवाज़ा खोलते ही यह हालत हो जाती हैं।"

दुर्गी ने बोलते-बोलते आँखों को आँचल से पोंछा।

"च च च च... नसीब अपना-अपना," शांता भी दुखी हो गयी।

"किसलिए आयी थी?" दुखी अवस्था से अपने को सँभालते हुए दुर्गी ने पूछा।

"और किसलिए? ऐसे ही तुम्हारी ख़बर-बात लेने के लिए। बहुत दिन हो गये; दिन नहीं, महीने हो गये, तुम्हारी कोई ख़बर ही नहीं मिली। हमारे घर भी तो पास-पास नहीं हैं, तुम्हारा इस छोर पर, तो मेरा उस छोर पर," शांता ने एक ही साँस में सब कुछ कह दिया और पूछा, "तुम्हारे शौहर का, गणा का कुछ अता-पता मिला है क्या?"

"शांता, पता नहीं क्या हुआ मेरे गणा का। एक रात में जो ग़ायब हुए, तो अब तक वापस नहीं आये। इतने हट्टे-कट्टे इन्सान। किसी ने उनको मार दिया, कि उन्होंने आत्महत्या की—भगवान ही जानता है। एक नहीं, दो नहीं, दस वर्ष बीत गये इस घटना को। ऐसे ही कितने दिन और राह देखूँगी मैं? कितना कुछ सहे एक नारी जीव?" खड़े-खड़े ही वह अपनी छाती पीटने लगी।

शांता ने उसको सँभाला, " धीरज रखो, रोना मत। सालों साल ऐसे ही आँसू बहाओगी? ऐसे निराश मत होना। चुप-चुप!! शांत हो जाओ," शांता ने उसकी बाहों को पकड़कर नीचे बिठाने का प्रयास किया।

"आओ, उस बिस्तर पर बैठते हैं," दुर्गी ने कहा।

"गणा के जाने के बाद तुमने यह बिस्तर जो बिछाया था, वह तब से ऐसे ही यहाँ पर है। ज़रा उस तरफ़ बिछाओ, ऐसे ही द्वार के सामने क्यों? रुको, मैं ही उसे निकालती हूँ," शांता ने बिस्तर को हाथ से पकड़ा।

"नहीं, मुझे अब उस जगह की आदत-सी हो गयी है। दूसरी जगह बिस्तर बिछाने पर नींद ही नहीं आती।"

"अगर ऐसा है, तो रहने दो। अपनी आदत से मजबूर हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ जी! यह सच है।"

दोनों उस बिस्तर पर बैठ गयीं।

"ऐसा बनवास किसी दुश्मन के भी नसीब में न आए। लेकिन सच, एक बात बताऊँ दुर्गी! मुझे दिल से यह महसूस होता है कि तुम्हारे शौहर एक दिन ज़रूर आएँगे। उनको किसी ने नहीं मारा होगा। मारने के लिए कोई उनका दुश्मन थोड़े ही था और उन्होंने आत्महत्या भी नहीं की होगी। उनको किस चीज़ की कमी थी, तुम्हारे जैसी इतनी अच्छी बीवी... वह कहीं तो होंगे।"

"कहीं भी हो, अच्छी तरह से हो, यही भगवान से दुआ करती हूँ।"

"मुझे भी ऐसा ही लग रहा है कि वे अच्छे होंगे और अच्छे होकर लौट आएँगे।"

"अच्छे होकर लौट आएँगे मतलब? क्या वे ठीक नहीं थे?"

"वैसे नहीं कह रही हूँ मैं! वे सेहत से तो ठीक थे, स्वभाव से भी बुरे नहीं थे। शराब का एक व्यसन अगर छोड़ें, तो सब कुछ ठीक था। मैं तो यह कह रही हूँ कि शराब छोड़कर घर आ जाएँ।"

"तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर," दुर्गी ने कहा और उसे लगा कि विषय बदलना चाहिए, "हम तो ठीक हैं, तुम्हारा कैसे चल रहा है। हमारे जीजाजी, तुम्हारे शौहर शंकर जी तो ठीक हैं न?"

"तुम्हें सच बताऊँ दुर्गी, तुम्हारे शौहर के बदले में अगर मेरे ख़सम मुँह काला करके गये होते, तो मैं जनम-जनम के लिए सुखी हो जाती।"

"क्यों ऐसे कह रही हो बहन? तुम्हारे शौहर तो सीधे-सीधे चलने वाले हैं। किसी से न कोई बात, न कोई झगड़ा, सच्ची में, अच्छे तो हैं तुम्हारे शौहर," दुर्गी ने अपना मत उद्घाटित किया।

"अच्छे हैं, मेरे नसीब में ही खोट है। हर रोज़ शराब के नशे में झूमते हुए घर आना, मुझे पीटना; जानवरों के हालात भी हम से बेहतर हैं। एक बार शराब पीने पर वे इन्सान नहीं रहते हैं। घर के भीतर घुसते ही गालियों की बौछार। गालियाँ भी ऐसी कि कान पक जाते हैं।"

"लेकिन गालियाँ क्यों?

"गालियाँ बकने के लिए उन्हें तो कोई भी कारण चाहिए—चावल ज़्यादा क्यों पक गये? सालन में ज़्यादा नमक क्यों डाला? ध्यान कहाँ होता है?... घर को ठीक चलाने के लिए काम पर जाऊँ और यह आदमी मुझ पर हर तरह से आरोप लगाए—इसको देखकर क्यों हँसी थी? उसको क्यों दाँत दिखाये? उसको छुआ, इसको घसीट कर गयी... बाहर काम पर जाने के बाद लोगों को जाने-अनजाने में छूना तो होगा ही। इतनी बात पर गालियों की बौछार?"

"आदमी होते ही ऐसे हैं, संदेह की नज़र से देखने वाले।"

"अन्य आदमियों और मेरे आदमी में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। किसी के सपने में भी न आये, ऐसा है यह मेरा आदमी," शांता की परेशानी न सिर्फ़ उसके चेहरे से, बल्कि माथे की सलवटों से भी प्रकट हो रही थी।

"अरे, नहीं जी। सभी पुरुष एक जैसे होते हैं! औरतों को संदेह की दृष्टि से देखना उनका स्वभाव है," बल देकर दुर्गी ने अपना अनुभव शांता को बताया और कहा—"शांता, तुम एक बात बताओ..."

"क्या?"

"ऐसा कुछ मामला है क्या, जिससे तुम्हारे शौहर संदेह भरी दृष्टि से देखते हैं।"

शांता का ऐसा कुछ चक्कर है, तो उसे सच्ची में जान लेना चाहिए।

शांता की हालत बदन पर छिपकली गिरने जैसी हुई—"अरी दैया, वैसा कुछ होना तो बाद की बात है, लेकिन मैंने ऐसा कुछ सोचा भी, तो ये मुझे सीधे ज़मीन में गाड़ देंगे। मेरे शौहर तुम्हारे शौहर जैसे नहीं हैं। तुम्हारे शौहर तो हीरा थे। इसी तरह के इन्सानों पर ईश्वर की जल्दी कृपा-दृष्टि होती है। वे उनको प्रिय हो जाते हैं।"

उसी क्षण उसे याद आया—"आं, ज़बान जल जाए मेरी, तुम्हारे शौहर को सौ साल की उम्र लगे।"

"एक बात बताओ शांता," दुर्गी गंभीर हो गयी।

"क्या?"

"मेरे ख़सम की तुम जो प्रशंसा कर रही हो, क्या उनको तुम ज़्यादा जानती थीं?" दुर्गी ने शांता को तीख़ी नज़र से देखा।

"बताओ, सच्ची में पूछ रही हूँ।"

शांता हड़बड़ा गयी, "तुम्हारे शौहर को मैं कैसे जान पाऊँगी? हमारी जान-पहचान तो दूर की थी। मैं इसलिए कह रही थी कि तुम्हें अच्छा लगे। वैसे मैंने सुना है कि तुम्हें उसने बहुत सताया है..."

"तुमने सिर्फ़ सुना है शांता, मैंने जो भोगा है, वह तो असीम था," उसका गला सूख गया।

"ऐसे सुना है कि वह बहुत शराब पी रहा था।"

"पी रहा था? पूरा शराबी था।"

"गालियों की बौछार करता था।"

"गालियों से बदन में छेद नहीं होते, लेकिन कानों से सुना नहीं जाता था।"

"क्या पीटता भी था?"

"मैंने जो सहन किया है, इतिहास गवाह है, किसी बंदी ने भी नहीं सहा होगा।"

"ऐसा सुना है कि उसे गंगाराम की वजह से तुम पर शक था," शांता ने कतराते हुए पूछा।

"हाँ जी, सच में, वह बेचारा गंगाराम निरपराध था। बेचारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को इस बात की भनक तक नहीं थी। ये शराब पीकर मुझे भी गालियाँ बक रहे थे और उसे भी।''

''बहुत सहा है तुमने...''

''सहन तो किया, लेकिन कितना सहन करती मैं? मेरा भी एक दिन माथा ठनका, आख़िर मैं भी हाड़-मांस की बनी हुई हूँ. ..''

''हाँ जी, कुछ भी सहन करने की सीमा होती है। एक तो बातों की मार, नहीं तो लातों की मार। दोनों मार बर्दाश्त नहीं हो सकतीं। तुम्हारे मन की पीड़ा को मैं समझ सकती हूँ। तुम अपने शौहर की राह तो देख रही हो, लेकिन मैं जानती हूँ कि तुम नहीं चाहतीं कि वे वापस आएँ। अरे दुर्गी, बताओ तुम ...मन की, दिल की बात बताओ, इसीलिए तो मैं यहाँ आयी हूँ। दिल कड़ाकर तुम अपनी आंतरिक वेदना कह दो। सच्ची में तुम यह चाहती हो कि तुम्हारे शौहर वापस आ जाएँ? क्या तुम उनके लिए सज-धज कर रहती हो? बताओ, बताओ दुर्गी... मुझसे कुछ मत छिपाओ,'' शांता उसकी दोनों भुजाओं को हिलाकर पूछ रही थी। दुर्गी ने महसूस किया कि जैसे उसकी बातों में सहानुभूति है, वैसे ही उसके स्पर्श में भी और सिर्फ़ महानुभूति ही नहीं, विश्वास भी है।

''किसी को बताओगी तो नहीं?''

''अरे नहीं!, कसम से! हम दोनों में गहरी दोस्ती है। इस कान की ख़बर उस कान तक नहीं पहुँच पाएगी... तुम्हारे और मेरे बीच गुप्त बनकर रह जाएगी,'' शांता ने गले की कसम खाते हुए कहा।

''तो सुनो।''

''क्या?''

''मेरे शौहर वापस नहीं आएँगे।''

''क्यों वापस नहीं आएँगें? और वे फिर से लौट नहीं आएँगे, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?... कहाँ जा रहे हैं, यह बताकर गये हैं क्या?'' शांता ने अचरज से पूछा। दुर्गी के साथ-साथ उसकी भी आवाज़ धीमी हो गयी थी। कुछ देर के लिए दुर्गी मौन हो गयी। शांता ने उसको हल्के-से स्पर्श किया, ''बोलो न।''

''वे कहाँ हैं, यह सिर्फ़ मैं जानती हूँ। आज पहली बार तुम्हें बता रही हूँ...''

और... दस वर्ष पहले की एक शाम की घटना को दुर्गी ने बयान किया।

ऐसे ही गोधूलि के वक़्त दुर्गी काम से घर लौटी थी। आज उसने बहुत काम किया था, पूरे दिन। पसीने के तर उसका बदन सूख गया था। उसे लग रहा था कि कब घर आए और वह नहाए। लेकिन, घर में आते ही घर के बिखरे हुए कामों में उलझ गयी थी। सोचा कि रात का खाना बनाकर रखे, क्योंकि घर में घुसते ही शौहर को खाना परोसना चाहिए, नहीं तो वे परेशान करेंगे। नहाने का विचार दिमाग़ से निकाल कर वह खाना बनाने लगी थी। इतने में दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी। दुर्गी बेज़ार हो गयी—''कौन है बाहर?''

फिर से द्वार पर दस्तक...

''मैं पूछ रही हूँ, कौन है?'' अब बेज़ार होने के साथ-साथ क्रोध भी था।

''मैं हूँ गंगाराम।''

दुर्गी ने द्वार खोला। देखा, तो द्वार पर उसके शौहर खड़े थे।

''आँ? और गंगाराम हो, ऐसे झूठ क्यों बोला?'' उसने अचरज से पूछा।

'' तुम्हारी परीक्षा ले रहा था हरामखोर,'' गणा शराब पीकर आया था।

''आते ही गालियों से बातों की शुरूआत...?''

''तो क्या तुम्हारी पूजा करूँ? गंगाराम का नाम लेते ही कितनी प्रसन्न हुई है, देखो तो। कितनी उम्मीद से द्वार खोला। क्या उसी की राह देख रही थी? यह गंगाराम, जो काम पर मिलता है, वह काफ़ी नहीं है? क्या उसे शाम को घर पर भी आना चाहिए...''

उसे बहुत नशा चढ़ा था। पाँव ज़मीन पर टिक नहीं पा रहे थे, लेकिन बातें ऐसी थीं, जैसे जले पर नमक छिड़क रहा हो।

''ज़बान पर लगाम नहीं है, इसलिए कुछ भी बोलते जा रहे हो? मैं काम पर से अभी घर आ रही हूँ। दिनभर मज़दूरी के लिए मरना और ऊपर से तुम ज़बान चला रहे हो...''

''फिर क्या? घर आते ही तुम्हें नहाने के लिए पानी गरम करके रखूँ कि सोने के लिए बिस्तर बिछाकर रखूँ?''

''उतना मेरा भाग्य कहाँ? वह सब प्राप्त करने के लिए नसीब में होना चाहिए। मैं लायी हूँ यह निर्धनता और तुम्हारे जैसा निर्धन शौहर।''

''मैं निर्धन? और वह गंगाराम धनिक?''

''गंगाराम? कौन गंगाराम?''

''अरे वाह! कितनी भोली-भाली बनने का नाटक कर रही है? कौन गंगाराम? जैसे तुम उसे जानती ही न हो। क्या तुम दिन भर उसके साथ और वह तुम्हारे साथ नहीं होता है?''

''पूरे दिन मज़दूरों के साथ काम करना पड़ता है। उन मज़दूरों में होगा कोई गंगाराम,'' दुर्गी ने जवाब दिया।

वैसे तो अन्य मज़दूरों की तरह वह गंगाराम को भी जानती थी, परंतु शौहर के संदेह की बजह से उसने कानों पर हाथ रखा। आगे कहा—''मैं कल पूछताछ करके आ जाऊँगी।''

''पूछताछ करने के बाद क्या उसे कल से घर बुला रही है?'' गणा आगबबूला हो गया।

''घर बुलाऊँ? लेकिन तुम्हारे होते हुए उसे कैसे घर बुलाऊँ? पहले तुम्हें ठिकाने लगाती हूँ और बाद में उसे बुलाती हूँ,'' दुर्गी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपे से बाहर हो गयी।

"हरामखोर क्या कह रही है? मुझे ठिकाने लगाएगी?" गणा तेज़ी से उसके पास गया।

"तो तुम मुझे संदेह की दृष्टि से क्यों देख रहे हो? जो मेरे मन में नहीं है, वह तुम क्यों थोप रहे हो? इसलिए मैं तुम्हारे दिल की बात कर रही हूँ। कल ही उस गंगाराम को ढूँढ निकालती हूँ," दुर्गी ने भी गणा को सताने की ठान ली थी।

'दुर्गी, मैं तुम्हारी क़ब्र खोदता हूँ। मैं जानता हूँ, आज भी तुम्हारी पीठ में खुजली हो रही है, तुम्हारी मार खाने की इच्छा है..."

"मार खाकर मेरी पीठ बहुत कड़ी हो गयी है, लेकिन एक बात बता रही हूँ..."

"क्या बता रही हो? कहानी? किसी सियार की... अरे वाह! कमर में पल्ला खोंसकर तैयार हो गई हो। क्या तुम अपने आपको महिषासुर मर्दिनी समझ रही हो?"

"और तुम ख़ुद को क्या समझते हो, नरसिंह का अवतार? तुम क्या हाड़-मांस के बने हो और मुझे गोबर-मोम की समझ रखा है?" अब तक उसने पल्ला खींच लिया था और नौ गजी साड़ी भी ठीक की थी।

"तुम घबरा रही हो? तुमसे, बीवी से मार खाने के लिए क्या मैंने हाथ बाँध के रखे हैं?"

"और तुमसे, शौहर से मार खाने के लिए मेरे हाथ केले नहीं खा रहे हैं!"

"रुको, दिखाता हूँ, आज ही तुम्हें कब्र में गाड़ता हूँ..." उसके बदन पर हाथ डालने के लिए गणा आगे बढ़ा।

"मैं तुम्हें बताती हूँ गणा, तुमने आज अगर हाथ लगाया, तो इसका अंजाम बुरा होगा। तुम बच नहीं पाओगे," दुर्गी ने उसे अंतिम निर्णय सुना दिया।

"अरे वाह! वैसे तो मेरा नाम लेने में लजाने वाली, अब शौहर को नाम से पुकारने लगी। यह गणा क्या चीज़ है, यह मैं तुम्हें अभी दिखाता हूँ।"

"देखो, मेरे हाथ में क्या है दुर्गी ने कहा,"

"वह कुदाल हाथ में क्यों ली है? वह मेरे काम का औज़ार है।"

"अब फिर से तुम्हें वापस नहीं मिलने वाली," कुदाल को मुट्ठी में भींचते हुए दुर्गी ने कहा।

"क्यों नहीं मिलेगी?"

"क्योंकि आज तुम मेरे हाथों से बच नहीं पाओगे..."

"हरामखोर, मुझे मारने के लिए आगे बढ़ रही हो? रुको, आज तुम्हारी क़ब्र खोदता हूँ और कल उस गंगाराम की," वह दोनों हाथों से दुर्गी को पकड़ने के लिए झपटा।

"देखो, देखो गणा, तुम्हें आख़िरी चेतावनी दे रही हूँ, पीछे हटो," दुर्गी ने उसे बार-बार सावधान किया, उसे ताकीद की फिर भी वह "दुर्गी-रंडी..." कहते हुए उस पर तेज़ी से झपटा। उसी वक़्त दुर्गी कुदाल सहित वहाँ से हट गयी। गणा अपने आपको सँभाल नहीं पाया। उसकी पीठ दुर्गी की ओर थी। उसी मौक़े का फ़ायदा उठाते हुए दुर्गी ने कुदाल की उल्टी नोंक से गणा से सिर पर वार किया। उसने पुकारने के लिए मुँह खोला, लेकिन वह खुला ही रहा गया और ज़मीन से टकराकर वह वैसे ही पड़ा रहा।

"मरो, मर जाओ शैतान, तुम्हें ख़त्म किये बिना मैं चैन से नहीं जी पाऊँगी। मरो, मरो...." दुर्गी उसके सिर पर कुदाल से बार-बार आघात कर रही थी। वह एकदम सचेत थी कि वह क्या कर रही ? वह चाहती थी कि गणा दुबारा खड़ा न हो सके।गणा का शरीर जब एकदम अचेत हो गया, तब उसे विश्वास हो गया कि वह मर गया है। वहाँ से हटकर दीवार से पीठ टिकाये तेज़ी से साँस लेते हुए वह खड़ी हो गयी। अपने आप उसकी आँखें बंद हो गयीं। वह ख़ुद से बोलने लगी... "गया, सच्ची में मर गया... पर, मैं तुम्हारे लिए एक आँसू नहीं बहाऊँगी, क्योंकि रोने के लिए तुमने आँसू बचाकर नहीं रखे हैं। अब तुम्हारा क़त्ल करने के जुर्म में हवालात में सड़ जाऊँगी, सज़ा काटूँगी, लेकिन रोऊँगी नहीं। माँ कसम... ईश्वर कसम... सज़ा काटूँगी, लेकिन रोऊँगी नहीं। अगर रोऊँगी नहीं, तो सज़ा क्यों भोगूँ?... नहीं, वह भी नहीं भोगना... . यहाँ से दूर भाग जाऊँगी... लेकिन कैसे जा सकती हूँ? लोग हैं, पुलिस है, वे कुत्ते की तरह पीछा करेंगे... उससे तो यह अच्छा है कि यह कुदाल अपने सिर पर मारकर आत्महत्या करूँ... लेकिन मैं इसके साथ क्यों मर जाऊँ ?... नहीं... इसके साथ जैसे जीना नहीं, वैसे ही मरना भी नहीं है। मुझे जीना है इसलिए मैंने इसको मार दिया... फिर मैं क्या करूँ?... दुर्गा का मन दस दिशाओं में दौड़ रहा था। उसने उसको क़ाबू में कर लिया।

आँखें खोलकर निश्चय किया। हाथी के बल से वह काम करने लगी। पहले दरवाज़ा बंद किया। ख़ून से सनी हुई कुदाल उठायी और ज़मीन खोदने लगी। गड्ढा खोदने के बाद गणा की लाश अंदर डाल दी। जहाँ-जहाँ ज़मीन पर ख़ून गिरा हुआ था, वह ज़मीन भी खुरचकर निकाली। गड्ढा अच्छी तरह से भर दिया, ऊपर मिट्टी डाली बिना आँसू बहाये उसने सब किया। सब कुछ हो जाने के बाद वह नहायी, माँड बनाया। उसको पीकर उसी क़ब्र पर बिस्तर बिछाकर सो गयी। सुबह जब जागी, तो उसे लगा कि वह एक मृत्यु से जागृतावस्था में आयी है।

दुर्गी ने जिस दिल से उस घटना का बयान किया, उसी प्रकार से शांता से सब सुना और पूछा—"अरी इस क़ब्र पर सोते हुए तुम्हें डर नहीं लगता?"

"किसका डर? जीते जी जिससे नहीं घबरायी, उससे मैं मृत्यु के बाद डरूँगी?"

"तुम्हारे शौहर तो मर गये हैं और तुम सधवा ही रहोगी?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह सधवा ज़िंदगी क्या उसने दी थी? उसके पहले क्या मैं विधवा थी?"

"ठीक कह रही हो भई तुम," शांता को उसकी बात स्वीकार थी।

"किसी से कहना मत..."

"तुमको वचन दिया है.... चलती हूँ," शांता उठकर खड़ी हो गयी। वह इतनी देर तक गणा की क़ब्र पर बैठी है, यह उसने महसूस किया।

"जल्दी-जल्दी क्यों जा रही हो?" दुर्गी ने पूछा।

"मेरे ख़सम के घर आने का वक़्त हुआ है। आम दिनों की तरह अवतार धारण करके आ जाएगा, लेकिन आज मैं उसको नहीं छोड़ूँगी। अपने शौहर को तो तुमने ज़िंदा मार दिया, मैं अपने ख़सम को... और कुछ नहीं, तो अपाहिज़ तो बना सकती हूँ," शांता ने निश्चय से कहा।

इतने में किसी ने दस्तक दी।

"दुर्गी, इस समय कौन आया होगा?" शांता ने संदेह की दृष्टि से पूछा।

"वही होगा," दुर्गी ने नीचे का होंठ दाँतों से दबाते हुए जवाब दिया।

"वह कौन?"

"गंगाराम..."

"मतलब?"

"अब मैंने खुद उसके साथ दोस्ती की है, अब मेरा ठीक-ठीक चल रहा है," दुर्गी ने मुस्कुराते हुए कहा। उसके गाल लाल हो गये थे। फिर से दरवाज़े पर दस्तक हुई।

"रुको, रुको आ रही हूँ", दुर्गी दरवाज़े की ओर दौड़ते हुए गयी।

द्वार खोलकर गंगाराम को अंदर लेने की दुर्गी की कोशिश थी, तो शांता को द्वार खोलकर बाहर निकलने की।

अनुवाद : डॉ. वृषाली सुभाष मांद्रेकर

प्रपाठक, हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

लघु कथा

रिश्तों का बाज़ार

सत्य शुचि

पिछली मर्तबा माँ के मौक़े पर कुछ बर्तन भैया ने अपने घर से निकाले ज़रूर थे, लेकिन इस बार पिताजी की मृत्यु पर भैया का रुख़-रवैया ज़रा ठीक नहीं था। एक तरह से भैया गुमसुम-से बैठे थे।

"...सिर्फ़ एक भगोना ही चाहिए भैया," छुटियल ने भैया को पुनः स्मरण करवाया।

"माँ के वक़्त भगोना मैंने निकालकर दिया था या नहीं," उन्होंने कहा।

"मगर उसकी ज़रूरत आज भी है।"

"तो फिर..."

"ऐसे में उसे देने में आपको क्या हर्ज़ है?"

"परंतु, मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या बर्तन- ठीकरे घिसते नहीं है?"

"एक भगोने का ही तो सवाल है, भैया..."

"आख़िर, तुम ऐसी चीज़ें बाज़ार से क्यों नहीं खरीद लेते..."

"भैया दो-चार दिन के वास्ते ही...घर में बाहर से लोगबाग आये हुए है..."

"यहाँ बात दो-चार दिन की नहीं, बल्कि सिद्धांत की है..."

"क्या सिद्धांत... कैसा सिद्धांत... एक भगोने के लिए..." और वह गुस्से से भरा हुआ भैया का घर छोड़ चुका था।

भगोने भी घिस जाते हैं, वह भैया के कथन पर दुख से भींज उठा। क्या आपसी संबंध भी अब भगोने की माफिक घिसने लगे हैं...। सोचते-सोचते वह बाज़ार की तैयारी करने लगा।

साकेत नगर, ब्यावर (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

भोलानाथ कुशवाहा

'आइस बर्ग' की दास्तान

बर्फ़ की ठंडी चादर के नीचे
डूबते-उतराते
बहते-बहते
लगातार गल रहा आइसबर्ग
एक दिन पूरी तरह
द्रव में
रूपांतरित हो जाएगा

तब शायद
किसी को याद भी नहीं होगा
कि हरे भरे खेतों
लहलहाती फ़सलों-वनस्पतियों
की नसों में प्रवाहित द्रव
आइसबर्ग का है
जिसे दह
कंधों पर लादकर
मौसम की मार से
बचा लाया था

खुले आकाश में
विचरण करने वाले
ओ नन्हें-नन्हें बादलो
तब तुम्हारी गवाही की
ज़रूरत पड़ेगी
तब तुम
धरती पर उतरना
बहना
और बताना
आइसबर्ग की दास्तान

स्थिति सामान्य है !

पहले ने
दूसरे को कहा
दूसरे ने
पहले को कहा
इसके बाद
पक्ष-विपक्ष
उभर आया

एक पक्ष ने
दूसरे पक्ष को कहा

दूसरे ने
पहले पक्ष को कहा

इसी शोर में
तीसरा पक्ष
सामने आ गया

उसने कहा—
'यह हमारी परंपरा
और मर्यादा
के अनुरूप नहीं'

फिर बहस
बिना किसी नतीजे के
रुक गयी

सब कुछ
पहले की तरह
होने लगा
लोगों ने समझ लिया
स्थिति सामान्य है!

न पृथ्वी, न सूरज

एक पृथ्वी है
उसने
अपने गुरुत्वाकर्षण से
बाँध रखा है
सब को

एक सूरज है
उसने
अपने प्रकाश से
जीवित रखा है
सबको

एक आदमी है
वह
न पृथ्वी बन पा रहा
न सूरज

उसने
पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को
निशाना बनाया है
सूरज के प्रकाश को
फँसाने के लिए
जाल बिछाया है

माधो बनाम साधो

माधो को
सीधा-उल्टा
किसी भी स्थिति में
रखा गया,
प्रसन्न दिखा

वह 'मिट्टी का माधो'
गिरकर
दो टुकड़े होने के बाद भी
काम आया

कभी
हथौड़े की जगह
इस्तेमाल हुआ
कभी
बना 'पांचर'
दौड़ता रहा
नमक रोटी
खाकर

दर्द को पीता रहा
जुबान तक
नहीं हिलायी
हर हाल में
मुस्कुराया

उसका पुत्र
साधो
ताज़ा हवा के झोंकों में
बड़ा हुआ
नये अंदाज़ में
खड़ा हुआ

'मिट्टी के माधो' की
परंपरा को तोड़ा
अपने हक़ के लिए लड़ा
बेगारी को छोड़ा।

बाँकेलाल टंडन की गली, बासलीगंज,
मिर्ज़ापुर-231001 (उ0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीन मलयालम महिला उपन्यासकार

के0एम0मालती

समकालीन मलयालम साहित्य में स्त्री-लेखन की सशक्त उपस्थिति है। ललितांबिका अंतर्जनम (1909-1987) और के. सरस्वती अम्मा (1919-1975) के साथ आधुनिक मलयालम कथा-साहित्य में स्त्री पक्ष, चिंतन का स्वर सुनायी पड़ा। माधवीकुट्टी और सारा जोसफ़ समकालीन मलयालम साहित्य की ऐसी लेखिकाएँ हैं, जिनकी लेखनी से स्त्री-मुद्दों का कठोर यथार्थ सामने आया। इन्होंने स्त्री-शक्ति या स्त्री-अस्मिता को सृजन का विषय बनाया। स्त्री होने के नाते स्त्री की समस्याओं को, उसके संघर्ष को और अंतर्द्वंद्व को आत्मविश्वास के साथ अभिव्यक्त करने में वे सफल हुई हैं। ललितांबिका अंतर्जनम जिस नंपूतिरी ब्राह्मण समाज से आयीं, वह आचार अनुष्ठान की पाबंदी और परंपरागत रूढ़ियों से जकड़ा हुआ समाज था। परंपरागत रूढ़ियाँ सामाजिक और वैयक्तिक विकास में अड़चनें बनकर खड़ी हो जाती हैं। अपनी अदम्य इच्छा-शक्ति की ऊर्जा ने ही अंतर्जनम में अंतर्निहित लेखन-क्षमता को बनाये रखा। सामंती संस्कारों के बंधनों को चीरकर बाहर आने में गांधी के विचार से उन्हें प्रेरणा मिली। अंतर्जनम की कहानियों में स्त्री-शोषण का सच्चा चित्र उभरकर आया। सामाजिक बुराइयों की सख़्त आलोचना उनकी कहानियों में है। उनकी कहानियों के केंद्र में सकारात्मक स्त्री-पक्ष चिंतन है। उनके रचनाओं से स्त्री को दकियानूसी परंपरा की ज़ंजीरें तोड़ने की प्रेरणा मिली। सन् 1976 में प्रकाशित 'अग्निसाक्षी' उपन्यास केरल के साधारण नंपूतिरी 'इल्लम' की दीवारें लाँघकर बाहर निकली एक नंपूतिरी युवती की कहानी है, जो समाज सुधार और स्वतंत्रता-आंदोलन में लगी रही और अंत में अध्यात्म की ओर आकृष्ट होकर सन्यासिनी बन गयी। तेतिकुट्टी अग्निसाक्षी होकर मानपल्ली घराने में उण्णि नंपूतिरी की पत्नी बनकर आती है। वहाँ ससुराल में वह देवकी मानपल्ली है। चौबीसों घंटे जप-तप में लगे रहने वाला उण्णिनंपूतिरी ख़ानदानी इल्लम की अंदरूनी परिस्थितियों में फँसा हुआ था। अपनी पत्नी के प्रति वह ग़ैर-ज़िम्मेदार रहा। देवकी मानम्पिल्ली को पत्नी की हैसियत नहीं मिली। वह अपनी उपेक्षा बर्दाश्त नहीं कर पायी। वह घराने की रीति-रिवाज़ की परवाह नहीं करती। देवी बहन के रूप में स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई में भाग लेती हुई सामाजिक कार्यकर्ता बन जाती है। भ्रष्टाचार और बुराइयों के खिलाफ़ लड़ती है। आख़िर अध्यात्म की ओर मुड़ती है, सुमित्रानंदा योगिनी नाम अपनाकर मुक्ति की कामना करती है। आत्मसाक्षात्कार की खोज में लगी सुमित्रानंदा को सहज मातृ-भावना बेचैन करती है। उपन्यास के तंकम नायर, कल्याणी देवी जैसे पात्र बदलते स्त्रीत्व के नमूने हैं। स्त्री के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों, क्रूरताओं और स्त्रीत्व की निरीहताओं की असली तस्वीर इस उपन्यास में देख सकते हैं। अग्नि साक्षी उपन्यास में मुखरित स्त्री-मुक्ति की आवाज़ काल की परतों को चीरती हुई सुनायी देगी। यहाँ केरल के छोटे क़स्बे के एक नंपूतिरी इल्लम की ज़िंदगी को सामाजिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि में व्यापक राष्ट्रीय परिदृश्य में परखा गया है। उपन्यास का विस्तृत फलक रूपायित हो गया है, जिसमें तत्कालीन नारी-जीवन की जटिलता, विषमता एवं संघर्ष मौजूद है। जीवन की समग्रता में स्त्री की सही पहचान की ओर अंतर्जनम की रचना-दृष्टि लगी रही।

पुरुषवर्चस्व वाले मूल्यों की पैनी आलोचना के आक्रामक विचार, के. सरस्वती अम्मा की लेखनी से प्रकट हुए। इन विचारों से मलयालम साहित्य-जगत् में खलबली मच गयी। शायद यही वजह थी कि वे साहित्य-जगत् में लीक से हटकर अकेली रह गयीं। अस्सी से ज़्यादा कहानियाँ उनकी हैं। सन् 1944 में प्रकाशित 'प्रेमभाजनम्' उनका उपन्यास है, जिसमें प्रेम का विश्लेषण वे ख़ास तरीक़े से करती हैं। प्रेम, यानी स्त्री-पुरुष संबंध की पूर्णता का अदम्य भाव-आवेग, जहाँ देह गौण है। लेकिन, वर्तमान संदर्भ में प्रेम का स्वरूप एकदम बदल चुका है। उपन्यास की लूइसा या 'बूनी' ऐसी स्त्री पात्र हैं, जो प्रेमी को निरंतर बदलती रहती हैं। वह सिर्फ़ स्वयं संतुष्टि खोजती हैं, दूसरों की अनुमति या सहमति का इंतज़ार नहीं करतीं। बूनी की दृष्टि में पंचकन्याओं में तारा ऐसी पात्र है—"वह रानी तो एकदम व्यवहारकुशल कूटनीतिज्ञ है न! अपने हक़ का अर्ध सिंहासन छोड़ने लायक़ आदर्श इसमें नहीं है। चाहे बाली हो या सुग्रीव, किसी ख़ास शख़्स में नहीं, सिंहासन पर बैठने की क़िस्मत रखने वाले वानर राजा में ही उसकी पतिभक्ति है। सुविधा के साथ जीने लायक़ पातिव्रत्य।"[1] पुरुषवाद निर्मित लिंगभेद पर आधारित मौजूदा समाज के दायरे के भीतर खड़े होकर स्त्री-जीवन की अंदरूनी समस्याओं पर दख़ल रखने वाली और अपनी ख़ास अंतर्दृष्टि का चयन करने वाली सरस्वती अम्मा मलयालम की प्रमुख स्त्री-पक्षपाती लेखिका थीं।

मलयालम उपन्यास-साहित्य की प्रारंभिक स्त्रीवादी लेखिकाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में राजलक्ष्मी (1930-1965) एक प्रमुख हस्ताक्षर है। इनके असामयिक निधन के कारण मलयालम कथा-साहित्य को बड़ी क्षति पहुँची। स्त्री-मन की भावनाओं का अंतरंग विश्लेषण उन्होंने किया। उनके उपन्यासों में तीख़ी आत्मपरकता और आत्मसंघर्ष है। 'ओरुवषियुम कुरे निषलुकलुम्' (एक राह और कई परछाइयाँ), 'आनेन्नभावम्' (मैं का भाव), 'उच्चवेयिलुम इलम् निलावुम' (दोपहर की धूप और फीकी-सी चाँदनी)—ये उनकी औपन्यासिक रचनाएँ हैं। हाशिये पर धकेली गयी स्त्री की ज़िंदगी की दुनिया को 'एक राह और कई परछाइयाँ' उपन्यास की रमणी के माध्यम से वे रंग देती है। मानसिक रूप से विक्षिप्त माँ की बेटी रमणी के लिए अपना घर, घर नहीं लगता। एक ही पुरुष के स्वार्थ की शिकार माँ और मौसी में छत्तीस का संबंध था, यह बालिका रमणी भाँप लेती है। एक ही माँ की संतानों के बीच में स्वार्थ की भावना से उत्पन्न खाई उन्हें अलग-अलग खड़ा कर देती है। कभी-कभार घर पहुँचाने वाले, पिता कहलाने वाले आदमी से रमणी या उसके भाई गोपू का रिश्ता दूर का रहा। बीमार माँ के कमरे में रोज़ संध्या समय भाई के साथ पहुँचती, तो कभी माँ उनकी ओर देखती, कभी उन्हें सहलाती। ऐसा करने में भैया गोपू का पहला नंबर रहा रमणी की दूसरी बारी थी। मौसी को रमणी बिल्कुल पसंद नहीं करती। मौसी के चिड़चिड़े स्वभाव से वह उससे नफ़रत करती है। उस की बुआ अम्मुक्कुट्टी ने अपने मनपसंद पुरुष के साथ शादी की थी। अपने पिता के क्रोध की तीव्रता रमणी को तब मालूम हुई, जब वह बुआ के बेटे के साथ उसके घर गयी थी। बुआ के लड़के अप्पु और रमणी का स्कूल एक ही था। सयानी होते ही रमणी ने पाया कि चारों तरफ़ मिलिटरी क़ानून जैसे बंदिशों के घेरे ही घेरे हैं। घुटन भरे घर के वातावरण ने रमणी को बेपरवाह बना दिया था। अप्पु और रमणी जनजाने में ही एक-दूसरे के निकट आ चुके थे। आपस में मिलने का कोई चारा नहीं था। विक्षिप्त माँ को तीसरा बच्चा हुआ, तो उस वक़्त रमणी को कुछ नहीं लगा था, बस उसने इतना समझा कि समय के पहले जन्मा यह दूसरा अपना भाई अनामंत्रित मेहमान था। रमणी बड़ी हो गयी, तो उसमें अपने पिता के प्रति घृणा और जुगुप्सा बढ़ती गयी। रमणी को अँधेरे में रखकर पिता ने उसकी सगाई का इंतज़ाम किया, तो वह एकदम काबू से बाहर हो गयी। ख़ामोशी तोड़ती हुई वह बोल उठी कि "यह मेरा मामला है, उसमें निर्णय लेने का हक़ मेरा अपना है। पुरुष-वर्चस्व वाले समाज में स्त्री की बेशुमार समस्याएँ हैं। अपने कालेज के जीवन में रमणी ने देखा कि पुरुष-वर्ग के स्वार्थ की कोई सीमा नहीं है। पुरुष सत्ता के स्वार्थ की दुनिया से ऊबकर अंत में क्षयरोगग्रस्त बाल्यकाल सखा को उसने स्वीकार किया। पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री-जीवन के यथार्थ को, उसके अंतर्विरोधों को वास्तविकता के धरातल पर रेखांकित करने का मनोबल राजलक्ष्मी ने दिखाया। पुंरुष-सत्ता की क्रूरता की शिकार स्त्रियों की पीड़ा को उन्होंने वाणी दी। पुरुष की दमन नीति के विरोध का परिणाम यह था कि मलयालम की इस स्त्रीवादी लेखिका को अपना तीसरा उपन्यास बीच में बंद करना पड़ा। पुरुष-प्रधान समाज की निर्ममता ही उसकी आत्महत्या का कारण बनी। यह सच है कि रचनाकार भोक्ता भी है, दृष्टा भी है।

समकालीन मलयालम महिला उपन्यासकारों में माधवीकुट्टी एक ऐसी शख़्सियत हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री-जीवन के बदलते आयामों को तलाशा है। उनके अनुसार वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में पुरुष द्वारा निर्मित तमाम क़ानून स्त्रियों पर दबाव डालने के लिए बनाये गये हैं। इसमें परिवार, धर्म, समाज और शासन-तंत्र में स्त्रियों को हाशिये पर धकेल दिया जाता है। चूँकि, शासन-तंत्र शक्ति का केंद्र है, इसलिए उस पर आधिपत्य जमाने और उच्च पदों को हासिल करने के लिए इस होड़ में लगे रहने वालों का कोई नैतिक बोध नहीं रहता। स्त्री इनके लिए 'उपयोग' की 'वस्तु' मात्र है। माधवी कुट्टी के 'मानसी' उपन्यास में मानसी, राजनीतिक नेता विजय राजे, प्रधान-मंत्री इन सब पात्रों का कार्यकलाप कोई भी तरीक़ा अपनाकर अधिकार हड़पने का हथकंडा बन जाता है। इनमें अपराध-बोध रंच मात्र भी नहीं है। अपनी यौन-संतुष्टि के लिए विजयराजे पहले मानसी और बाद में मानसी की बेटी सुपर्णा के साथ प्रेम का अभिनय करता है और उनका यौन-शोषण करता है। मर्दवादी विमर्श में मोहब्बत स्त्रियों को मूर्ख बनाने का साधन है। विजयराजे अपनी मर्दानगी का ढोल पीटता रहता है। अपने स्वार्थ साधने के लालच में नेताओं के इर्द-गिर्द घूमनेवाले दलाल कृष्ण जैसे पात्र भी इसमें हैं। ठेके के परमिट और लाइसेंस आसानी से हासिल करने के लोभ में दलाल कृष्ण द्वारा भेजी गयी अनाथालय की एक मूक वधिर लड़की की लाश दिल्ली के अँधेरे गलियारे में पड़ी मिलती है। स्त्री-देह अधिकार प्राप्ति का साधन बन गयी है। शोषित, प्रताड़ित नारी-जाति का यह यथार्थ है। महत्त्वाकांक्षा की इस दौड़ में अपना शरीर किराये पर देने वाली नारी-सभ्यता की ओर उपन्यासकार सचेत करती है। इस उपभोगवाद का विरोध करने वाले अमोलमित्रा और सैरस जैसे पात्र इस जीवन-संघर्ष में अकेले पड़ जाते हैं। वर्तमान संदर्भ में राजनीति के पैंतरे कैसे बदलते हैं, इस ओर बारीक़ी से निरीक्षण किया गया है। राजनीतिक तिकड़मबाज़ी में स्त्री को उपभोग के पदार्थ के रूप में बदलने की मौजूदा साज़िश पर मानसी सवाल खड़ा करती है। सुपर्णा और रोहिणी को स्त्री पर किये जाने वाले बलात्कार और छेड़-छाड़ के खिलाफ़ बोलने की अपनी वाणी मिल गयी है। मिट्टी की तरह स्त्री को अधीनस्थ बनाने के लिए पुरूष द्वारा किये जाने वाले जुल्मों के विरुद्ध विद्रोह की यह आवाज़ है।

पी. वत्सला मलयालम में आदिवासियों के जीवन में स्त्री की हैसियत साबित करने वाली लेखिका हैं। सामाजिक समस्याओं की अंतर्धारा के रूप में स्त्री की समस्या वत्सला के उपन्यासों में आती है। आदिवासियों और पहाड़ी क्षेत्र के जनजीवन की ज़िंदगी के साथ जुड़ी स्त्री-समस्याओं का रेखांकन उन्होंने 'नेल्लु' (धान), 'कूमन कोल्ली' जैसे उपन्यासों में किया है। 'धान' उपन्यास स्त्री-पक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना-यात्रा का एक पड़ाव है। उपन्यासकार को सामाजिक न्याय का जायज़ा लेना ज़रूरी है। वयनाड के तिरुनेल्ली और आस-पास के पहाड़ी इलाके की ज़िंदगी, जंगलों में ठेले गये और वहाँ से खदेड़े जा रहे आदिवासियों की ज़िंदगी 'धान' में है। वयनाड के 'काड़र' (जंगली जनजाति) के जीवन मूल्यों का, उनके शोषण का यथार्थ 'धान' में चित्रित है। मारा, चंपा, कुरुमाट्टी आदि बावली नदी के पूर्व और पश्चिम की पहाड़ियों में घासफूस की झोंपड़ियों में रहने वाली युवतियाँ हैं। शहद के रंगवाली कुरुमाट्टी को कई जादुई विद्याएँ आती हैं। ज़मींदार के कारिंदे नायर को फटकार कर भगा देने वाली कुरुमाट्टी अपनी इच्छा के बिना किसी को अपने पास फटकने नहीं देती। नीचे तराई के बाग़ों में मज़दूरी करने वह गयी। वहाँ से वापस आयी, तो उस पर तराई की हवा लग गयी थी। परिणाम यह निकला कि पति चात्तन से उसकी नहीं पटती। होशियार साहसी युवक मल्लन की आँखें कुरुमाट्टी से लग गयी थीं। जी-तोड़ मेहनत करने वाला पौरुष से युक्त बलिष्ठ युवा मल्लन कुरुमाट्टी को पाना चाहता है। काली चट्टानों के ढलान से बहते झरने में दोनों आलिंगनबद्ध हो डुबकी लगाते। कुरुमाट्टी को अपने अंतःकरण में कुछ ग़लत करने का बोध सताता है। लोक देवी-देवताओं का डर उसके मन में है। मल्लन का क्या कहना! वह कुरुमाट्टी से दूर हो जाता है, इधर मारा से जुड़ता है। एक ही गोत्र के नाम पर मारा को शादी करने की अनुमति मुखिया या मूप्पन से नहीं मिलती। वयनाड की आदिम संस्कृति के तत्त्वों का समावेश उपन्यास में है। वयनाड की ऊँची पहाड़ियों के जैविक पर्यावरण के साथ वहाँ की जनजाति की ज़िंदगी का अंतःसंबंध उपन्यासकार ने दिखाया है। दूसरे उपन्यास 'कूमन कोल्ली' की सुनंदा, गंगा, वसुमती, बंदी और कोंपी ऐसी स्त्री-पात्र हैं जो अपने-अपने ढंग से कूमनकोल्ली की ज़मीन से, वहाँ के परिवेश से, पुरुष वर्चस्व वाले समाज से जुड़ी हैं। कूमन कोल्ली के अँधेरे गलियारे में किसी प्रज्ज्वलित दीप की भाँति सुनंदा विराजमान थी। वहाँ की कुरिच्यर जनजाति की औरतों के सूखे स्तन को चूसते पड़े रहने वाले बच्चे कभी रोते नहीं थे। आदिवासी ज़मीन पर अतिक्रमण करने वाले, शहरों और क़स्बों से आये लोग उनके शुभाकांक्षी, संरक्षक और नेता बनने के ढोंग रचते हैं। बंदी ग़रीबी से मुक्ति मिलने के प्रलोभन से अपने गले की डोरी में श्रीकृष्ण के पदक के बदले यीशू का पदक डालती है। बंदी गिरिजाघर की सिस्टर्स और फ़ादर डानियल की सेवा में लगी रहती है। फ़ादर डानियल के आकार-सौष्ठव और मधुर व्यवहार से बंदी को लगता है कि उनके दीर्घ बलिष्ठ बाहुओं में वह सुरक्षित है। जो होना नहीं चाहिए था वह सब हो जाता है। फादर डानियल वहाँ से कहीं दूर चले जाते हैं, क्योंकि उन्हें अन्य जगह अपनी ज़िम्मेदारी सँभालनी थी। बंदी कभी न आने वाले डानियल के इंतज़ार में बैठी थी। यौन-शोषण की दूसरी शिकार कोंपी सी. आर.पी. कैंप में खाना बनाने जाती थी, जहाँ वह गर्भवती बनी, माँ बनी। कोंपी के गर्भ का ज़िम्मेदार मध्यप्रदेश का कोई फ़ौजी था जिसका तबादला हो चुका था। ट्रकोमा पीड़ित कोंपी अपनी फूस की झोंपड़ी में भूत-सी पड़ी थी। ऐसी स्त्रियों के साथ किये जाने वाले कुकर्म की हद नहीं है। वर्तमान संदर्भ में ऐसी स्त्रियों के दमन और उत्पीड़न के मामले ज़्यादा सामने आते हैं, जो आर्थिक रूप से विपन्न हैं विकास के नाम पर होनेवाले विस्थापन की विद्रूपताएँ इसमें हैं। वत्सला के इस उपन्यास में एक ऐसा वर्ग भी है, जो शहरी शिक्षा ग्रहण कर आधुनिक बनने का प्रयास करता है। उपन्यास का भरत गंगा को देखने पहली बार उसके घर पहुँचा, तो कूमनकोल्ली के उस घर में उषा उत्थुप का की पॉप म्यूज़िक सुनकर उसे आश्चर्य हुआ। गंगा पढ़ी लिखी युवती थी। माँ बनी। वह चाहती है कि अपने बच्चों को शहर के किसी अंग्रेज़ी मीडियम स्कूल में पढ़ाए ताकि, वे धड़ाधड़ अंग्रेज़ी बोल सकें, अंग्रेज़ी गीत गाएँ। घर के देशी चावल खाकर बच्चों की बुद्धि कम न हो, यह डर उसे सताता है। बाहर बाज़ार से सील किये डिब्बों में बंद पौष्टिक दूध पाउडर, आटा, छोटी-छोटी डिबियों में विटामिन की गोलियाँ-ये सारी चीज़ें गंगा की दृष्टि में बच्चों के लिए प्राणवायु हैं। बाज़ारवाद का यह रूप है। बाज़ार का इतना असर है कि आज की उच्च मध्यवर्गीय स्त्री बाज़ार की भाषा में ही अपनी माँग रखती है। विटामिन की गोली अपनी बेटी भारती देवी को दिखाकर गंगा कहती है—"देखा न यह लाल रंग! खून की लाखों बूँद के तुल्य है यह एक गोली!" उपन्यास की वसुमती पति कृष्णन नम्पीशन के साथ कूमनकोल्ली आयी, तो मधुमक्खी की तरह तेज़ी से काम करती थी। स्त्री रूप की छाया खो गयी। वह यंत्रवत् बन गयी। मंदमुद्धि बेटे रवि के प्रति भी कोई विशेष भाव नहीं दिखाती। पति कृष्णन नम्पीशन का संदेह है कि अपने साथ रहने के बाद क्या इसका दिल सुन्न-सा हो गया?[4]

मलयालम उपन्यासकार सारा जोसफ़ स्त्री-मुक्ति अभियान में सक्रिय भागीदारी करती हैं। जनविरोधी नीतियों का विरोध ज़ोरदार तरीक़े से करने वाली लेखिका की रचनाएँ स्त्री-ऊर्जा की पहचान हैं। स्त्री-विमर्श की नयी भाषाई बुनावट सारा जोसफ़ की ख़ूबी है। उनका उपन्यास 'आलाहा की बेटियाँ' (आलाहयुडे पेण्मक्कल्) नगरीकरण के तहत अपनी मिट्टी खो बैठने वाली निरीह जनता की पीड़ा का अहसास कराता है। वर्तमान तृश्शूर शहर के अतीत में छिपी कोकांचिरा की ज़िंदगी की सच्चाइयाँ उसकी अपनी तमाम विद्रूपताएँ इस उपन्यास में झलकती हैं। फ्लैश आनी की यादों के ज़रिये पूरी ज़िंदगी का पुनः सृजन करते हैं। भूत पिशाच को निकट न आने देने वाली आलाहा की प्रार्थनावाली लोरियाँ कल्पना की धुरी में आनी की दादी अपनी बेटियों की ज़िंदगी, अपनी पूरी गृहस्थी की सुरक्षा के घेरे बनाती हैं। कोकांचिरा के चौंतीस परिवारों में एक आनी का है। दादी मरियम पूरे परिवार की मुखिया हैं। आनी का पिता घर छोड़कर कहीं भाग गया था। बरसों से उसका अता-पता नहीं। आनी की माँ सारे अभावों के बावजूद अपनी बेटी के साथ ससुराल में ही रहने में संतुष्टि पाती है। इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की औरतें हड्डी तोड़ मेहनत करती हैं। पुरुष बीड़ी फूँकते, आराम करते या शराब के नशे में कहीं पड़े रहते। आनी की बड़ी बुआ 15 साल की उम्र में विधवा बनी थी। दूसरों के मामलों में टाँग अड़ाने वाली पड़ोसिनों की फुसफुसाहट ने विधवा बुआ को बदचलन साबित किया। आनी की छोटी दो बुआएँ चिन्नम्मु और चिय्यम्मु अविवाहित हैं। ये दोनों बटन कंपनी में काम करती हैं। मज़दूरी नाममात्र की दी जाती, क्योंकि वे लड़कियाँ थी। सारी ज़िम्मेदारी लड़कियाँ उठा रही हैं, फिर भी दूसरों को लगता था कि वे परिवार के लिए बोझ हैं। लड़कियों को दोयम दर्ज़े का नागरिक बनाने वाला यह माहौल था। अविवाहित चिन्नम्मु का गर्भपात कराया गया। चिन्नम्मु की चीख़ने-चिल्लाने की आवाज़ घर की चारदीवारी के अंदर समा गयी थी। घर-परिवार, मान-मर्यादा के नाम पर बहुत कुछ सहा है स्त्रियों ने सारी ज़िम्मेदारी स्त्री के सिर पर थोपी जाती है। उपन्यास में आनी की माँ गिरिजाघर के लिए चंदा देती है, तो आनी के पिता का नाम लिखवाती है। अर्से से वह मर्द ग़ायब है तो भी है घर का मालिक ही! समाज में स्त्री की यही भूमिका रही है। सारा जोसफ़ स्त्री की इस मजबूरी का खुलासा करती हैं। देखते देखते वहाँ खौफ़नाक शहर बन रहा था। आनी के घर में रेडियो आया। नगर के बाजार में कालाबाज़ारी पनपती रही। अनाज में धान की बिक्री चोरी छिपे होने लगी। छोटी झोपड़ियों की जगह बड़े-बड़े मकान उठ खड़े हो गये। महलों के सामने फ़ाटक पर कुत्तों से सावधान वाला बोर्ड टाँगा गया। व्यापारियों और अच्छे ओहदेवाले पदाधिकारियों और उद्योगपतियों के अपने-अपने मकान जायदाद जम गये थे। कोक्कात्रिचरा के पुराने काश्तकारों को जो मुआवज़ा मिला था वह पूरा का पूरा शराबख़ाने में ख़र्च हुआ था। जीवन-शैली में काफ़ी बदलाव आ चुके थे। लड़कियों के लिए माहौल तनावपूर्ण था। आधुनिकीकरण ने स्त्रियों के पारंपरिक रोज़गारों को छीन लिया था। इन बदलते हालात में त्याग और सतीत्व की मूर्ति वाला नारी बिंब टूटने लगा। स्त्री को सामाजिक लांछनाएँ झेलनी पड़ती हैं। वे झेलने के लिए मजबूर हो जाती हैं। सारा जोसफ़ के दूसरे उपन्यास 'माट्टात्ती' की लूसी की माँ ने उसे छोड़ दिया था। लूसी को पालने की ज़िम्मेदारी अविवाहिता आंटी ने ली थी। इसके लिए आंटी को अपने भाइयों का विरोध मोल लेना पड़ा। लड़की को पालने से भविष्य में होने वाले ख़तरे की चेतावनी भाइयों ने दी। समाज यह चाहता है कि लड़कियाँ पैदा ही न हों। लड़की होने के नाते लूसी के लिए हजारों बंदिशें थीं। साज-सँवार पर पाबंदी, बाहर निकलने पर पाबंदी! आंटी हमेशा लूसी के कानों में चारित्रिक शुचिता की रक्षा करने का उपदेश देती रहतीं। लूसी सोचती है कि आख़िर उसके पैरों की ज़ंजीरें कब टूटेंगी?

के.बी. श्रीदेवी का उपन्यास 'यज्ञम' उस दौर की नंपूतिरी स्त्रियों की ज़िंदगी है, जब नंपूतिरी इल्लम की स्त्रियाँ बाहर नहीं निकल सकती थीं। बाहरी दुनिया से कोसों दूर थीं। ये स्त्रियाँ सामाजिक बंधनों में बंद रहती थीं। उपन्यास की नायिका नडेमा जैसे-जैसे बड़ी होती गयी, तो माँ की घबराहट भी बढ़ती गयी। नडेमा मीठी आवाज़ में गाती थी, तो उसे बड़े आनंद से कान लगाकर सुनते थे। एक दिन माँ ने उससे कहा था कि 'अरी, इतनी ऊँची आवाज़ में मत गा।' अपने इल्लम के आँगन में कथकली शुरू होने के पहले जो बाजा बजाने की आवाज़ आयी, तो नडेमा देहली पर खड़ी बाहर झाँकने लगी, तो फिर माँ की आवाज़—'ऐ लड़की अब कैसे बाहर जाएगी तू। अभी तो तुझे सबसे दब-छिपकर रहना चाहिए। नडेमा मायके से ससुराल आयी, तो उसके मन में कई स्मृतियाँ कौधती हैं। वह खुद सोचती भला, वह अलग कैसे बन सकती हैं? नडेमा बाल्यकाल की स्मृतियों में विचरण करती है, तो कहीं वह स्वच्छंद स्वतंत्र दीखती है, तो कहीं विवश-सी लगती है। परिवार में बचपन से ही लड़की की मजबूर ज़िंदगी की शुरूआत होती है। नडेमा के जीवन के अठारह साल की स्मृतियों और अनुभवों को एक ही दिन में कैसे भूल सकती वह? विवाह के बाद एक तरह से लड़की की निजता का अंत होता है। विवाह के बाद वापस जाते समय माँ ने ख़ास तौर से याद दिलाया कि अच्छी तरह ध्यान देना। किसी को कुछ कहने का मौक़ा न देना। शयनकक्ष की बात रसोई में और रसोई की बात शयनकक्ष में नहीं कहनी चाहिए। सतर्क रहना। सच्चाइयों को अपनी अंदरूनी तहों में दबाकर, सँभालकर रखने के लिए मजबूर रहती है स्त्री। नडेमा की छोटी ननद पाप्ती की तक़दीर में विवाह की प्रथम रात में पति का वियोग लिखा था। अपने जीने का हक़ छीनने वाले समाज से पाप्ती सवाल करती है कि अपने दिल के घाव पर नमक छिड़कने वाले समाज के पास अभागिन विधवाओं के प्रति क्या कोई ज़िम्मेदारी निभाना नहीं है? विधवा-विवाह का इतना बड़ा विरोध करने की क्या ज़रूरत? ज़बरदस्ती किसी का विवाह तो नहीं करना है। पुनर्विवाह के लिए तैयार विधवाओं को रोकने का क्या मतलब है? ऐसा करने पर ख़ानदान की नींव हिल जाती है तो हिलने दें... वैसे तो मैं विधवा कैसे बन गयी?

शादी की पहली रात ही सर्पदंश से पाप्ती के पति की मृत्यु हुई थी। उपन्यास के नडेमा, बेटी सावित्री, पाप्ती—ये स्त्री पात्र बंदिशों के कठघरे में खड़े स्त्री-पात्र हैं। स्त्री को सम्मानित ज़िंदगी का अधिकार चाहिए। धोखे से भ्रष्ट आरोपित कुज्जिकुट्टन पर तत्कालीन समाज का दबाव था। पूरे परिवार को इसका दुष्परिणाम झेलना पड़ा। भ्रष्ट आरोपित पिता की बेटी होने में सावित्री का कोई क़सूर नहीं था। नेक नीयतवाली नडेमा की बेटी सावित्री अपनी माँ की पीड़ा समझती है। सावित्री अपनी अस्मिता तलाशती है। वह आत्ममंथन करती है—"मैं कौन हूँ? मेरे पिता कौन हैं? इस इल्लम में ब्राह्मण स्त्री होकर जन्म लेने के बावजूद क्यों उसे यहाँ इन्सान मानने तक कोई तैयार नहीं? अपनी माँ को छूने की स्वतंत्रता क्यों नहीं? ऐसा और कहीं हो सकता है?" नंपूतिरी में भ्रष्ट आरोपित माँ-बाप से जन्मी संतान पर भी भ्रष्ट होने का कलंक लगाया जाता है। सावित्री महसूस करती है कि अपने अस्तित्त्व का इनकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इल्लम के अंदरूनी माहौल में हो रहा है। स्त्री की अस्मिता में उसके अपने अंदर के द्वंद्व की, टकराहट का अनुभव होता है। सावित्री पारिवारिक हितों के दायरे से बाहर निकलती है। वह समाज द्वारा निर्धारित लक्ष्मणरेखा लाँघती है। माँ नडेमा ने सारे द्वंद्व को अंदर ही रहने दिया और उस मानसिक तनाव में प्राण त्याग दिये। बेटी सावित्री अपनी विपरीत परिस्थिति का सामना करती है। अपनी नीरस, उबाऊ और उपेक्षित ज़िंदगी खुद ठुकराती है और उस पुरुष की जीवनसंगिनी बनने का निर्णय लेती है, जो उसे स्वीकार करने के लिए तैयार खड़ा था। नडेमा की पीढ़ी के पास प्रतिक्रिया व्यक्त करने की तीखी वाणी है। समाज की रूढ़ियों के प्रति सावित्री की पीढ़ी ख़ामोश नहीं रह सकती।

समकालीन मलयालम महिला उपन्यासकार दबी और पीड़ित महिला की मुक्ति का स्वर बुलंद करती हैं, पुरुष वर्चस्व वाले मूल्यों का विरोध करती हैं, साथ ही मुक्ति के नाम पर दिशाहीन होकर भटकती नारी को सचेत भी करती हैं।

संदर्भः

1. सरस्वती अम्मा रचनावली, डी.सी. बुक्स-2001, पृ. 873
2. राजलक्ष्मी, ओरू वषियुम कुरे निषलुकलम, करन्ट बुक्स, पाचवाँ सं-2002, पृ. 154
3. पी. वत्सला, कूमनकोल्ली, डी. सी. बुक्स-2000, पृ. 61
4. पी. वत्सला, कूमनकोल्ली, डी. सी. बुक्स-2000, पृ. 171
5. के. बी. श्रीदेवी, यज्ञम्, करन्ट बुक्स-1998, पृ.16
6. के. बी. श्रीदेवी, यज्ञम्, करन्ट बुक्स-1998, पृ.26
7. के. बी. श्रीदेवी, यज्ञम्, करन्ट बुक्स-1998, पृ.91

सौपर्णिका, (पी.ओ.) कुलक्काट्टचाली, (वाया) चेलेम्ब्रा-673634, केरल

कविता

बलवाई औरतें

उषा यादव

औरतें बलवाई हो गई हैं।
पच्चीस रुपये किलो आलू और प्याज,
बिक रहा हो जब दूकान पर।
चाय की पत्ती, चीनी, आटा कुछ भी खरीदें,
पसीना निकल आए, बन आती हो जान पर।
देसी घी की गमक क्या होती है,
अभागिनें अपने किचड़हे-मरियल बच्चों को सुंघाएँ कैसे ?
दो जून की दाल-रोटी का बंदोबस्त भी तो,
अपने लड़खड़ाते बजट में कर पाएँ कैसे ?
इसी हताशा-बेबसी के चलते,
भन्नाई और बौखलाई हो गई हैं।
औरतें बलवाई हो गई हैं।
काश, चूल्हा सुलगता घर का,
सूनी बटलोई में चावल-दाल रंधते।
काश, साल में दो दफे ही सही
रसोई में खुशबू उड़ती, चूरमे के लड्डू बंधते।
खेल नहीं था, मखौल भी नहीं था,
दर्द महसूसती कतार थी औरतों की।
आंधी की तरह उमड़ पड़ी थीं वे,
समूची शर्म-हया तार-तार थी औरतों की।
तभी तो हाथों में झाड़ू और लंबे बांस लेकर,
तमाशबीन से तमाशाई हो गई हैं।
औरतें बलवाई हो गई हैं।

मुनाफाखोरों के खिलाफ़ एकजुट प्रदर्शन का,
खयाल तक ज़ेहन में नहीं आया था उनके।
मीडिया को लुभाकर सुर्खियों में छाने का,
लोभ भी मानस में नहीं समाया था उनके।
किसी लूट-खसोट की मंशा से ऊपर,
आँखों में सिर्फ़ शून्यता झाँक रही थी।
पर गुंडों, शोहदों, उठाईगीरों की फौज,
काइयां आँखों से हालात भाँप रही थी।
इसी हौच-पौच के आलम के चलते,
बेचारी पता नहीं कब जिल्लत में नहाई हो गई हैं।
औरतें बलवाई हो गई हैं।
औरतें भौंचक थीं, ईंट-पत्थर फिंकते थे,
कोल्ड ड्रिंक की बोतलें टूटने का क्रम जारी था।
गुंडों-शोहदों को लूटपाट करते देखना,
औरतों के हिस्से की एक और लाचारी था।
पीड़ित ख़ौफ़ज़दा दूकानदारों ने,
सच बोलने की न हिम्मत, न हिकमत दिखाई।
दंगा-फसाद का ठीकरा औरतों के सिर टूटा,
धुक्का-फ़जीहत उन्हीं के हिस्से में आई।
वारदात के बाद मौके पर पहुँची पुलिस ने हिकारत से कहा,
साली बेहूदी हैं, खेली-खाई हो गई हैं।
औरतें बलवाई हो गई हैं।

70, ईदगाह कॉलोनी, आगरा (उ0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कफ़न' : स्त्री-पक्षीय दृष्टि से

सुधा. बी

'कफ़न' प्रेमचंद की एक चर्चित कहानी है। दलित-शोषण, दलित-चेतना, पर्यावरण आदि कई दृष्टियों से इस पर विचार हुआ है। बावजूद इसके 'कफ़न' के पुनर्पाठ का उद्देश्य उपेक्षित-अपमानित बुधिया के चरित्र को परिधि से केंद्र में लाना है। पूरी कहानी में बुधिया की भूमिका भले ही सीमित हो, लेकिन अपनी छोटी-सी भूमिका से वह कहानी को एक वृहत् आयाम प्रदान करने में सफल हुई है। बुधिया के कारण ही 'कफ़न' कहानी मार्मिक और संवेदनापूर्ण बन पड़ी है। अपनी छोटी-सी भूमिका को लेकर वह संपूर्ण कहानी में छायी हुई है। पूरी कहानी में आच्छादित अमानवीयता की परत को उकेरकर सारे पाठकों के हृदय में मानवता की भावना को अमृत करने में वह सक्षम हुई है।

कहानी का प्रारंभ घीसू-माधव के संवेदनशून्य वार्तालाप से होता है। यह संवेदनहीनता पूरी कहानी में व्याप्त है, जो पाठक को बुरी तरह हॉन्ट करती है। प्रेमचंद की अन्य कहानियों से यह नितांत भिन्न है, क्योंकि इसमें परंपरानुवर्तिता नहीं के बराबर है और इसी वजह से प्रेमचंद की यह कहानी अन्यतम प्रतीत होती है।

हमारे समाज में स्त्री की कराह को कोई सुनता नहीं, यदि वह स्त्री दलित हो, तो पूछो ही नहीं... 'दरी और दारा को झाड़ते रहो तभी वे साफ़ होंगे'—यह उक्ति प्राचीनकाल से चली आ रही है। आज इक्कीसवीं सदी में भी इस उक्ति की सार्थकता धूमिल नहीं होने दी गयी है। हमारे पितृसत्तात्मक समाज ने सदैव यह स्थापित किया है कि स्त्रियाँ, विशेषकर दलित स्त्रियाँ पुरुषों की अंकशायिनी होती हैं। हर कोई उनके साथ मनमानी कर सकता है। अंग्रेज़ी और मलयालम की मशहूर लेखिका कमलादास ने कहा है—"हमारे समय में स्त्रियों का बड़ा शोषण होता था। सामंत मनमानी करते थे। ख़ूबसूरत जवान लड़कियाँ उनकी कमज़ोरी होती थीं। वे उन्हें ज़बरदस्ती उठाकर ले जाते थे और उनकी इज़्ज़त के साथ खिलवाड़ करते थे। जब ये लड़कियाँ गर्भवती होती थीं, तो इन्हें मारकर किसी कुएँ में धकेल दिया जाता था।" कोई भी इस अन्याय के विरुद्ध आवाज़-बुलंद करने की हिम्मत नहीं करता था, क्योंकि उस समय समाज में सामंतों का ही अधिकार चलता था। अतः सामंती-युग में भी स्त्रियाँ इस्तेमाल होती थीं और आज के कम्प्यूटर-युग में भी स्त्रियाँ इस्तेमाल हो रही हैं। शोषण में कोई अंतर नहीं है, स्वरूप ज़रूर बदला है। इस संदर्भ में चित्रा मुद्गल का यह कथन बहुत ही सार्थक लगता है—"पुरुष की कंडीशनिंग हुई है—स्त्री को जिस्म के रूप में लेने की। हमारा देश खेतिहर देश है। गाँव में आज भी यह परंपरा है कि पुरुष या पति मिलेगा, तो दिन में नहीं, रात में; जब सब सो जाएँगे, तब कहीं अटारी में एक कमरा है, वहीं... तो औरत उसके लिए वही रात है। वह रात उसकी मानसिकता से कभी नहीं बीतती। इसलिए, वह स्त्री को सिर्फ़ जिस्म के रूप में ही देखता है।"

बुधिया का गर्भ भी स्त्री को एक जिस्म के रूप में देखने का परिणाम है। इसी वजह से प्रसव की पीड़ा में तड़पती बुधिया की वेदना को अनदेखा कर निष्ठुर बाप-बेटे आलू भूनकर खाने में लगे रहते हैं। घीसू-माधव के अंदर निःसंगता-बोध परिस्थितिजन्य होते हुए भी स्वार्थ भरा हुआ है। घीसू से ज़्यादा दुष्ट और क्रूर माधव है। बुधिया माधव की पत्नी है। जब से वह आयी, खानदान में व्यवस्था की बुनियाद डाली। पिसाई करके, घास छीलकर, वह सेर भर आटे का इंतज़ाम करती थी और इन दोनों बेग़ैरतों का दोज़ख भरती रहती थी। जब से वो आयी, ये दोनों और भी आरामतलब और आलसी हो गये, बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे। वही औरत आज सुबह से दर्द-ज़ह से मर रही थी और ये दोनों शायद इसी इंतज़ार में थे कि कब वह मर जाए, तो आराम से सोएँ। घीसू और माधव क्रूरता की पराकाष्ठा तक पहुँचे हैं। 'पति रक्षति कौमार्ये' वाली उक्ति यहाँ खारिज होती है।

पश्चिम की नारीवादी लेखिका शूलापिथ फ़ायरस्टोन ने अपनी पुस्तक 'द डायलेक्टिस ऑफ़ सेक्स' में कहा है कि "स्त्री और पुरुष के बीच विभाजन का मूल कारण आर्थिक नहीं शारीरिक है। इसमें कोई शक नहीं है कि अपनी शरीर-रचना के कारण ही स्त्री हमेशा पुरुष के अधीन रही है और इसी कारण पुरुष दाता और स्त्री गृहीता बनी है।" पुरुष उसे संतान देता है, स्त्री उसे अपने गर्भ में सुरक्षित रखती है। स्त्री के इस सृजन-कार्य को कोई अनदेखा नहीं कर सकता। पुरुष इस सत्य को भूल जाता है और प्रकृति से स्त्री को प्राप्त इस अनमोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरदान को वह समय और संदर्भ के अनुसार अपमानित करता रहता है।

स्त्री के इस अनमोल वरदान की उपेक्षा प्रेमचंद की कहानी 'क़फ़न' में हुई है। 'क़फ़न' कहानी में घीसू-माधव सबकी संवेदना के पात्र हैं। घीसू-माधव के निःसंग भाव को देखकर आलोचकों ने इन पर कई तरह की आलोचनात्मक टिप्पणियाँ भी की हैं—कि घीसू-माधव शोषित-पीड़ित किसान है, समाज द्वारा सताये गये कि घीसू-माधव की निष्क्रियता परिवेशजन्य है। घीसू-माधव को आलसी और कामचोर बनाने के पीछे समाज का हाथ है, आदि-आदि...। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि घीसू-माधव से ज़्यादा पीड़ित और शोषित बुधिया है। घीसू- माधव समाज द्वारा अपमानित हैं, तो बुधिया अपनों द्वारा अवहेलित है। कहानी का दर्दनाक प्रसंग बुधिया की प्रसव-वेदना से जुड़ा है। बुधिया की कराह को सुनकर माधव का हृदय पसीजता नहीं है और न ही वह व्याकुल होता है, बल्कि वितृष्णा से उत्पन्न माधव के ये वाक्य मृत्यु और जीवन के बीच की टकराहट को उजागर करते है-"मालूम होता है बचेगी नहीं... मरना है, तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती? देखकर क्या करें?" माधव के इस क्रूर कथन के सामने पिता घीसू की यह सहानुभूति थोथी और अर्थहीन लगती है—"तू तो बड़ा बेदर्द है बे! साल भर जिसके साथ ज़िंदगानी का सुख भोगा, उसी के साथ इतनी बेवफाई!" घीसू की झूठी सहानुभूति के उस छोर पर पछाड़ खाती हुई बुधिया है। माधव और घीसू के अमानवीय व्यवहार में आधुनिक ग्लोबल युग की 'यूज़ एंड थ्रो' वाली नीति है। घीसू-माधव आज के उपभोक्ता- संस्कृति के स्वार्थी पुरुषों के समान हैं, जो निजी स्वार्थ के लिए संबंधों को तोड़कर फेंकने में तनिक भी हिचकते नहीं हैं। इसीलिए प्रसव वेदना में तड़पती पत्नी की चीख भी उन्हें सुनायी नहीं पड़ती। कितना निश्चिंत है माधव—बुधिया के प्रति, वही बुधिया, जो एक अवैतनिक दासी के रूप में दोनों की सेवा करती रही। उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी। घीसू- माधव की प्रवृत्ति निंदनीय है। गर्भवती बुधिया की अवहेलना स्त्रीत्व और मातृत्व का अपमान है। जानवरों की तरह काम-क्रीडा कर स्त्री को नाचीज़ मानकर छोड़ देना पशु सुलभ प्रवृत्ति नहीं तो और क्या है? यह मात्र स्त्रीत्व का अपमान नहीं है, बल्कि मानवता का हनन भी है।

बुधिया की मृत्यु कहानी का मूल बिंदु है। इसे एक साधारण-सी घटना मानकर इस पर पर्दा नहीं डाल सकते। बुधिया मरती नहीं है, बल्कि वह अपने पति और ससुर के हाथों मारी जाती है। बुधिया की मृत्यु के उत्तरदायी घीसू और माधव ही हैं। दोनों उसकी मृत्यु का इंतज़ार करते हैं कि कब वो मर जाए, ताकि वे आराम की नींद सो सके। बुधिया के मृत शरीर पर दया की भीख माँगकर क़फ़न खरीदने के लिए घीसू-माधव पाँच रुपये जमा करते हैं। पाँच रुपये देखकर दोनों की आँखें चौंधिया जाती हैं, मति भ्रष्ट हो जाती है और कहते हैं कि कैसा बुरा रिवाज़ है कि जिसे जीते-जी तन ढँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया क़फ़न चाहिए। क़फ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है। उन्हें दैवी प्रेरणा से यह नया दर्शन मिल जाता है। नाम के वास्ते यहाँ-वहाँ पूछकर शाम को दोनों ताड़ी की दूकान में पहुँच जाते हैं और पाँच रुपये की शराब पीकर और स्वादिष्ट भोजन खाकर बाक़ी सब कुछ दान में दे देते हैं। ऐसा लगता है कि घीसू-माधव बुधिया की मृत्यु का जश्न मना रहे हैं। माधव कहता है—"बड़ी अच्छी थी बेचारी। मरी भी, तो ख़ूब खिला-पिलाकर।" माधव के ये विचार निर्मम ही नहीं, बल्कि क्रूर और विकृत भी हैं। भले ही समाज के आघात से वे संवदेनहीन हो गये हैं, लेकिन अपनों के प्रति ऐसी संवेदनहीनता पशुता की निशानी है, जो वर्तमान संदर्भ में ही सार्थक लगती है। घीसू-माधव की ऐसी पशुता-भरी प्रवृत्ति के कारण दो-दो जानें जाती हैं। असह्य वेदना से उठे किंचन तनाव मृत्यु के बाद भी बुधिया के चेहरे पर अंकित हैं—"सुबह को माधव ने कोठरी में जाकर देखा, तो बुधिया ठंडी हो गयी थी। उसके मुख पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। पथराई-सी आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारा जिस्म ख़ाक से लथपथ हो रहा था। उसके पेट में बच्चा मर गया था..."

बुधिया की मृत्यु दैन्य की द्रावक तस्वीर प्रस्तुत करती है। अपनों के होते हुए एक गर्भवती स्त्री का प्रसव-वेदना में तड़पकर मरना एक लज्जाजनक हादसा है। कहानी की परिवेशगत स्वायविकता के साथ एक गर्भवती स्त्री के नाचीज़ होने का नितांत सहज निदर्शन कहानी का सबसे बड़ा क्रूर यथार्थ है।

प्रोफ़ेसर,, कालीकट विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठपुतलियाँ

कमलेश सिंह

मनीषा कुलश्रेष्ठ का नौ कहानियों से सजा कहानी संग्रह 'कठपुतलियाँ' हमारे सामने नौ रंगो एवं प्रभावों को लेकर आता है। इनकी कहानियों के कथानक नवीन एवं मौलिक हैं। लेखिका ने इस संग्रह की एक कहानी मे स्वयं कहा है- ''कुछ मौलिक, कुछ अलग-जो जीवन को विस्तार दे'' (पृ07)। जीवन के विविध आयामों को छूता यह संग्रह भाषा का गत्यात्मक स्वरूप हमारे सामने लाता है। भाषा को संवेदना के अनुरूप बनाना मनीषा के इस संग्रह की विशेषता है जो उनकी भाषागत बारीकियेां को दर्शाता है।

संग्रह की पहली कहानी 'कठपुतलियाँ' एक ऐसी नारी की कथा है जिसे उसकी उम्र से बड़े पुरूष के साथ ब्याह दिया जाता है। घर-गृहस्थी के चक्कर में कठपुतली बनी सुगना जब साँस लेने की कोशिश करती है तो पूर्व-प्रेमी द्वारा गर्भवती हो जाती है, लेकिन सुगना पति के साथ ही रहने का निर्णय लेती है। एक नारी घर-गृहस्थी की माया में किस तरीके से अपनी निजी इच्छाओं को त्याग देती है, यह कहानी इस बात का प्रमाण है। मनीषा ने इस कहानी का अंत तथाकथित नारी-सशक्तिकरण के अनुरूप नही किया, ऐसा आरोप लग सकता है। अगर सुगना अपने प्रेमी के साथ चली जाती तो तथाकथित नारी-सशक्तिकरण वाले इसे एक साहसिक कदम बताते लेकिन एक नरक से दूसरे नरक में जाना कहाँ तर्क संगत है? एक नारी पुरूष के पीछे क्यों भागे? सुगना का पति के साथ रहने का निर्णय एक सशक्त नारी होने का प्रमाण है। सुगना देह के साथ मन को पसारने वाली कठपुतली तो बन नही पायी लेकिन स्वयं एक निर्णय लेने की क्षमता प्राप्त कर लेती है, भले ही बंधने के लिए हो।

फ्लैश बैक शैली में लिखी गयी संग्रह की दूसरी कहानी 'प्रेम कामना' एक उत्तर आधुनिक समय के पहचान की कहानी है जो वरिष्ठ नागरिकों की समस्या को नये ढंग से प्रस्तुत करती है। पिता को छोड़कर बेटे द्वारा उसी शहर में दूसरी जगह रहना एक आम समस्या है लेकिन तिरस्कृत पिता द्वारा अपनी पूर्व स्कालर अणिमा का प्रोफेसर की जिंदगी में आना एक नये रस के आने के समान था। बच्चों का तिरस्कृत बाप कर्तव्य निभाते चुक गया है तथा यह घोषणा करता है-मेरे अकेलेपन को किसी की जरूरत नहीं क्या?इस बार अणिमा को रोक लूँगा'' (पृ037)। इसनिर्णय के बाद प्रोफेसर पुराने बाप की छाया से मुक्त होकर नया जन्म लेता है।

इस संग्रह की तीसरी कहानी रंग रूप रस गंध' है। यह कहानी विधवाओं की समस्याओं के साथ मठों मे व्याप्त कुकृत्यों पर प्रकाश डालती है। जया माई से सात्विक प्रेम करने वाले को तथाकथित धर्म के ठेकेदारों द्वारा मार डालना इस कहानी को त्रासद बना देता है। जया माई मुक्त नहीं होती बल्कि विधवा जीवन जीने के लिए अभिशप्त रहती है। चौथी कहानी 'भगोड़ा' एक ऐसे युवक की कहानी हैजो वायु सेना से भाग जाता है। कोर्ट मार्शल के बाद उसे जेल की सजा होती है। युवक को जेल से छूटने के बाद सामाजिक बहिष्कार की चिंता के साथ भविष्य की भी चिंता सताती है लेकिन वह निर्णय लेता है कि मुँह छिपाकर अतीत के ओट में नही छिपेगा, बल्कि ताकत समेट कर जीवन की दिशा में उड़ना है। कहानी मे समय गत विस्तार ज्यादा हो गया है इस लिये कहानी पर लेखिका की पकड़ ढीली पड़ती दिखाई पड़ती है लेकिन नये विषय के कारण यह कहानी महत्व रखती है। 'परिभ्रांति' कहानी एक ऐसे वरिष्ठ नागरिक की कहानी है जो रिटायर हो चुका है तथा विधुर है। दो बेटों तथा बहुओं के बीच एक पिता की मनः स्थिति का मनोवैज्ञानिक चित्रण करना इस कहानी का मूल उद्देश्य है। बेटों को लगता है कि हमेशा के संयत सजग पापा काफी बदल गये है। वे बहुओं से सेक्स सम्बंधी बातें मजा लेकर करने लगे हैं। लेखिका ने बड़े अच्छे तरीके से फ्रायड के मनोविज्ञान के अनुसार दबी हुई प्रक्रिया बताया तथा साथ में फ्रंटल लोब ट्यूमर को भी कारण बताया जिसके कारण मस्तिष्क का वह भाग संवेदन शील हो जाता है जो हमारी सेक्सुअल इम्पल्सेज को नियंत्रित करता है। कहानी के अंत में बाप ने डायरी के माध्यम से अपनी आत्म-स्वीकृति निम्न शब्दों में दी ''मेरी अपनी इच्छाओं को लेकर मै कभी कोई प्रतिक्रिया करता ही कब था? और शायद वे यही सोचते रहे कि मैं इच्छाओं से रहित इंसान हूँ। दुर्बलता तथा आत्म नियंत्रण की बीच मेरा विवेक टूटे पुल सा झूलता रहता है। मैं अस्थिर हो गया हूँ। (पृ0-85) 'अवक्षेप' कहानी को लेखिका ने विशिष्ट शैली में लिखा है। कैम्पस के अंदर गर्ल्स कालेज एवं हास्टल हैं, जहाँ एक आदिवासी कन्या छात्रावास कैम्पस का उजाड़ कोना है। लेखिका कहानी का फोकस शासकीय आदिवासी महिला छात्रावास पर करते हुए वहाँ रहने वाली लड़कियों की भयावह एवं दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण करती है। आदिवासी लड़की बेनु के माध्यम से लेखिका ने आदिवासी लड़कियों की समस्याओं का वर्णन-मात्र किया है। वे समस्या के मूल मर्म को छू नहीं पायी हैं।

मनीषा अपनी कहानियों की शुरूआत विशेष ढंग से करती हैं। इस संग्रह की कहानी 'कुरजाँ' की शुरूआत एक टीचर तथा डाक्टर के बीच बात से होती है। इसमे टीचर अपनी आप बीती के माध्यम से एक ऐसी स्त्री की दर्द भरी कहानी का बयान करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिसे समाज के तथाकथित ठेकेदारों ने स्वार्थ वश डायन (डाकण) बना दिया । गॉव से एकदम बाहर रहने वाली डायन कुरजाँ की दर्द भरी कहानी अनेक सवालों को उठाती है। साथ में पुलिस और बी. एस. एफ. के जवानों के कृत्यों को भी खोला गया है। टीचर द्वारा कुरजाँ से विवाह करने की इच्छा के बाद कुरजाँ गाँव छोड़कर चली जाती है। कुरजाँ की शादी टीचर से न कराने पर लेखिका पर यथा-स्थिति वादी होने का आरोप लगाया जा सकता है। 'विगड़ैल बच्चे' निबंधात्मक शैली मे लिखी गयी कहानी है जहाँ बच्चे वास्तव में विगड़ैल नहीं है बल्कि लेखिका के लिए नेक फरिश्ते हैं। यह कहानी सराय रोहल्ला स्टेशन से जयपुर तक ट्रेन यात्रा के दौरान की है। लेखिका के साथ दो ईसाई लड़के एवं एक लड़की तथा एक डाक्टर दम्पत्ति सफर मे थे। रास्ते भर उन बच्चों की हरकतों को लेखिका ने निषेधात्मक रूप से लिया था। जब कथावाचिका ट्रेन से गिर जाती है तो यही विगड़ैल बच्चे फरिश्ते बन कर सामने आते हैं। विहिप जैसे संगठन इस कहानी पर आपत्ति कर सकते हैं क्योंकि इसमें ईसाई सेवा भाव को दर्शाया गया है, साथ ही एक मुस्लिम डाक्टर की इंसानियत को तवज्जो दी गयी है। संग्रह की अंतिम कहानी 'स्वाँग' एक बेहद मार्मिक कहानी है। लोक कला एवं कलाकारों की समस्या- को इस कहानी में यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। आज के समय भारतीय संस्कृति के लोक तत्वों का अप्रासंगिक हो जाना, इस कहानी को और त्रासद बना देता है। लोक कलाओं के प्रति सरकार की उपेक्षा पूर्ण नीतियों को पर्दाफाश यह कहानी बखूबी करती है।

इन कहानियों मे बंधन तथा मुक्ति का द्वंद्व हैं। बंधन सड़ी गली परम्परा से तो मुक्ति आधुनिक प्रगतिशील सोच के लिए। लेखिका का कथ्य-विस्तार प्रशंसनीय है। मौलिक अछूते एवं प्रासंगिक विषयों पर लेखनी चलाकर लेखिका ने साहस का कार्य किया है। हाँ, कहीं-कहीं शब्दों-वाक्यों में कसाव नहीं हैं। बीच-बीच में उपदेशात्मक कथनों से कथ्य के प्रवाह में व्यवधान आता है। शिल्पगत कसाव पर मनीषा जी को थोड़ा ध्यान देना होगा।

6-ए, कतरा रोड, इलाहाबाद-211002

कठपुतलियाँ, मनीषा कुलश्रेष्ठ, प्रकाशन : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठः 142

■

सहजता ही अनुभूति को कविता बनाती है

विनोद कुमार मंगलम्

मुक्तिबोध ने एक साहित्यिक की डायरी में अपने दर्द को व्यक्त करते हुए लिखा था कि अधिकांश साहित्यकार अपने समय में उपेक्षित ही रहते हैं। कारण कि उसे मापने का ज़माने के पास जो निकष है, वह यह कि उसके बाल सफ़ेद हैं कि नहीं, उसे कितने राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय तोहफ़े मिल चुके हैं, उसके प्रकाशित ग्रंथों की संख्या कितनी है, वह कितने अकादमिक-सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थानों का सदस्य है... वगैरह... वगैरह। लेकिन, इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता कि उसकी अनुभूति में कितनी ताज़गी है, उसके बिंब कितने टटके हैं, उसकी दृष्टि कितनी क्वाँरी है तथा उसके शब्दों की महक कितनी सोंधी है।

इस दृष्टि से देखा जाए तो राजकिशोर राजन की हाल में प्रकाशित प्रथम काव्य-कृति 'बस, क्षण भर के लिए' न सिर्फ़ समकालीन कविता के स्थापित शास्त्रीय प्रतिमानों को प्रश्नों के कटघरे में खड़ा कर देती है, बल्कि ईमानदार आँखों से देखी एवं जी गयी ज़िंदगी की कविता का नया मुहावरा भी गढ़ती है। ऐसा लगता है मानो कवि किसी यात्रा में हो। यह यात्रा बहुआयामी है। दैनंदिन घटनाओं की कोख से जन्मी कविताएँ पूरे मानवीय सरोकारों के साथ हमारे सामने पसर जाती हैं। इस यात्रा को समझने के लिए कवि के साथ कुछ दूर चलना होगा, कारण कि 'लगता है वक़्त/यह जानने में/कि जो जानता हूँ मैं/ नहीं है जानना कुछ/ कि एक-एक बूँद को थामने में/ कब बह गया जीवन।'

जिस नाम से यह काव्य-संग्रह है, उस नाम की एक कविता भी है, जो एक ही साथ अनुरोध एवं प्रतिरोध दोनों करती है। इस छोटी-सी कविता में वर्तमान की त्रासदी भी है और बेहतर भविष्य का आश्वासन भी। आत्मालाप की मुद्रा में कवि के तेवर को देखें—'बस, क्षण भर के लिए/हँसिए उठाकर/यहीं से आज कीजिए प्रारंभ/ उस दिन के लिए/दाल में नमक की तरह/चाय में चीनी की तरह/पर रखिए बचाकर/कि जब कभी आये हँसी/ आने वाले समय में/अपने आप पर/आप हँस पाएँ, ठठाकर।'

हँसना आज हमारी दिनचर्या से ग़ायब है। हँसते भी हैं तो दूसरों पर। ऐसी स्थिति में कवि स्वयं पर हँसने की बात करता है। इस एक छोटी-सी पंक्ति में अनुभूति का आग्रह भी है और विचारों की प्रखरता भी। कवि लिखता है—'नानी' पर, 'सुपेंदर चपरासी' पर, 'लिपिस्टिक' पर, 'सतीश बाबू के छौड़ा' पर, ' बकुला सिंह' पर, 'फटीचर टेंपू' पर तथा 'रूदल' पर, लेकिन इस भदेस, बेलौस एवं गँवई जाति-व्यक्तिवाचक संज्ञा में ही घूमता रहता है—उसका सूक्ष्म अंतर्मन, जो जीवनानुभव बनकर शब्दों के सहारे पन्नों पर उतरता चला जाता है। 'सुपेंदर चपरासी' में कवि व्यवस्था की कलई जिस धारदार अंदाज़ में खोलता है, वह द्रष्टव्य है। सुपेंदर का वक्तव्य देखें—'आख़िर कैसे! बन गया अफ़सर/हर शनिचर को देह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखलाने वाला /मुखिया जी का बेटा/आख़िर कैसे! बन गया लखपति/हर वक़्त गोली खेलने वाला/रामेश्वर बाबू का छौंड़ा/और हम बहुत बने तो/ रह गये चपरासी।'

राजकिशोर राजन की दृष्टि हर उस आग्रह, दुराग्रह एवं पूर्वाग्रह को अपना निशाना बनाती है, जो कहती है—'किसी रंगीन चिड़िया-जैसी लड़की के संग/कोई लड़का हो/ ज़रूरी नहीं, वह प्रेमी ही हो/ किसी कोने में/ मूँगफली तोड़ने में खोया/ युगल जोड़ा/ज़रूरी नहीं/प्रेमालाप कर रहा हो।'

राजन की कविताएँ परंपरा से पोषित, वर्तमान के प्रति जाग्रत तथा भविष्य के प्रति सचेत करने की एक मुकम्मल कोशिश हैं। ऐसा इसलिए संभव हो सका कि राजन ने अपनी कविताओं में उस हरेपन, भोलापन, तरलता एवं कच्चेपन को बचाये रखा है, जो अक्सर ज्ञान-विज्ञान विचार-दर्शन की आँच में पिघल जाता है। यहीं एक सामान्य पाठक को कवि में संभावना दिखती है। कविता कहने लगती है—'तवे पर रखी टिकिया के बारे में/ कई बार/पूछ चुकी है बिटिया/ हर बार उसके भोलेपन पर/ हँस पड़ती है-माँ/यूँ कुछ-न-कुछ छूट जाता है/ सारी दुनिया के लिए/भोलेपन में।'

कभी-कभी संग्रह में शब्दों की अकारण पुनरावृत्ति खुलती है। वैसे, कुल मिलाकर यह संग्रह एक गंभीर विमर्श की माँग करता है, इस निवेदन के साथ कि—'मास्टर जी बोले थे/आम के पेड़ को उदाहरण मानकर चलना/ जितना संपन्न होना/उतना ही झुकना।'

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कॉलेज ऑफ़ कॉमर्स, पटना-20,
(मगध विश्वविद्यालय)

बस क्षण भर के लिये, राजकिशोर राजन

■

बड़े फलक पर जीवन का सांगोपांग विवेचन

प्रतीक श्री अनुराग

मनोज श्रीवास्तव हिन्दी के उन चर्चित कहानीकारों में हैं, जिनकी हर कहानी में परिवार, समाज और राजनीति की उन विद्रूपताओं और विसंगतियों को सफलतापूर्वक उद्घाटित करने की कोशिश की जाती है, जिन पर साधारणतया कहानीकारों की नज़र नहीं पड़ती। उनकी दृष्टि इतनी सूक्ष्म और व्यापक है कि भले ही वह पारिवारिक जीवन की समस्याओं, परिवार के सदस्यों के बीच अंतर्द्वंद्वों, उनके आपसी संघर्षों और स्वार्थ पूर्ण संबंधों की चर्चा कर रहे हों; वह पात्रों के मनोविज्ञान, उनकी भाषा और उनके चरित्र के सर्वांगीण पहलुओं पर खुलकर प्रकाश डालते हैं। पात्रों के कलुषित इरादों का भंडाफोड़ करते हुए समूचे मानव-समाज को आगाह करते हैं कि एक-दूसरे के प्रति सदाशयता रखकर ही एक स्वस्थ और सभ्य समाज के निर्माण की कल्पना की जा सकती है। परिवार, समाज और राजनीति के भीतर जो गंदी 'राजनीति' खेली जा रही है, उसका कहानी में रोचक उपकथाओं (एपीसोड्स) के माध्यम से विरोध करने में उन्हें जो महारत हासिल है, वह उनकी कहानी-कला का एक विलक्षण पहलू है। जहाँ तक कहानी-कला का संबंध है, वे परंपरा से जुड़े रहना चाहते हैं और जैसाकि वे स्वयं मानते हैं, वे अपनी कहानियों में कहानीपन को बनाये रखने की कोशिश करते हैं।

उनके नवीनतम कहानी-संग्रह 'धर्मचक्र राजचक्र' में कुल तेरह कहानियाँ हैं, जो मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों को रूपायित करती हैं। जहाँ 'एक और प्रह्लाद' शीर्षक कहानी अपने इस देश के प्रति प्रेम की बलवती भावना से सराबोर करती है, वहीं 'मादरे वतन वापसी के बाद' और 'फड़फड़ाहट कबूतर की' शीर्षक कहानियाँ विदेशियों के अपने देश और देशवासियों के प्रति आत्मिक लगाव और मोह का चित्रण करती हैं। उनका अत्यंत मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन करके लेखक ने यह साबित कर दिया है कि एक भारतीय कहानीकार भी पाकिस्तान और अमरीका जैसे राष्ट्रों के नागरिकों की देशप्रेम की भावना को सिद्धहस्तता से उजागर कर सकता है। इन दोनों कहानियों में क्रमशः हरिहर और पीटर नामक पात्र अपने-अपने देशों में व्याप्त राष्ट्रीय संकीर्णताओं और समाज में भेदभावपूर्ण रवैये को झेलते हुए भी अपनी राष्ट्रभक्ति को सर्वोपरि महत्त्व देते हैं। इस संग्रह की पहली कहानी 'डिस्पोज़ेबल आइटम' में लेखक एक उच्च मध्यवर्गीय परिवार में व्याप्त स्वार्थी मनोवृत्तियों की विवेचना जिस मनोयोग और कलात्मकता से करते हैं, वह इस दौर के कथाकारों में कभी-कभार ही नज़र आता है। परिवार के सभी सदस्यों का क्रिकेट-प्रेम परिवार के रुग्ण और वृद्ध मुखिया को मौत की दहलीज़ पर ला खड़ा करता है। यह विडंबना एक कटु सच है कि उन्हें उसकी मृत्यु पर उतना ग़म नहीं होता, जितना कि वर्ल्ड कप मैच में भारत की हार पर। इस कहानी का ताना-बाना और कथानक की बुनावट—सभी कुछ गुज़रे वक़्त के महान कहानीकारों के कथा-कलेवर की याद दिलाते हैं।

संग्रह की दो और कहानियों—'कन्नी और देवा' एवं 'बकरा' के कथानक भी पारिवारिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। 'कन्नी और देवा' में पति-पत्नी के बीच अविश्वासपूर्ण संबंधों, एकल परिवार-व्यवस्था में दंपतियों द्वारा विवाहेतर संबंध स्थापित करने और तलाक के कुछ समय बाद पुनः दोनों के साथ-साथ रहने का मार्मिक विश्लेषण है। इसमें घटित होने वाली घटनाएँ द्रुत गति से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे बढ़ती हैं, जो बेशक एक नाटकीय किंतु सुखद मोड़ पर आकर ठहर जाती हैं। 'बकरा' में पति पर पत्नी के हावी होने और पत्नी द्वारा स्थापित विवाहेतर संबंध की निरर्थकता पर कथाकार ने रुचिकर ढंग से चर्चा की है। स्त्रियों के पुरुषों पर अनैतिक ढंग से बढ़ते वर्चस्व के दुष्परिणाम पर कथाकार की चिंता जायज़ है, क्योंकि बुद्धिजीवी समाज दोनों की समानता पर ही ज़्यादा ज़ोर देता है। निःसंदेह, स्त्री-पुरुष के बीच स्वस्थ संबंध तभी स्थापित हो सकते हैं, जबकि वे एक-दूसरे पर हावी होने की आदतों से बाज़ आ जाएँ।

संग्रह की प्रतिनिधि कहानी 'धर्मचक्र राजचक्र' में ग्रामीण परिवेश में तेज़ी से फैल रही ख़ूनी राजनीति की दानवी छाया के घातक दुष्परिणामों के बारे में पूरे समाज को आगाह किया गया है। धर्म, जातीयता और सांप्रदायिकता के दलदल में वह ग्रामीण जीवन अबाध फँसता जा रहा है, जिसकी सहजता, नैतिकता और भोलेपन पर हमें युगों से नाज़ रहा है। इस कहानी में धर्म को मोहरा बनाकर राजनीतिक लाभ उठाने के दाँव-पेंचों को डॉ0 श्रीवास्तव ने जितनी कुशलता से प्रदर्शित किया है, वह सचमुच श्लाघ्य हैं। समृद्ध भाषा-शैली, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण और ग्रामीण वातावरण का इतना सजीव चित्रांकन बिरले ही देखने की मिलता है। यह कहानी सचमुच एक कालजयी कहानी सिद्ध होगी।

डॉ0 श्रीवास्तव ऐसे कथाकार हैं, जो नगरीय परिवेश में भी कथानक चित्रोपम ढंग से निखारने में सिद्धहस्त हैं। 'बदलना उसकी फितरत में नहीं' शीर्षक कहानी में मानवीय स्वभाव में परिस्थितिवश होने वाले परिवर्तनों का रोचक उल्लेख करते हुए एक ओर दो दोस्तों की उदात्त भावनाओं को उकेरा गया है, तो दूसरी ओर धर्म और मज़हब से ऊपर उठकर इन्सानियत को समाजिक समरसता के मेरुदंड के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मातृत्व की जो मिसाल कहानी की पात्र रज़िया के माध्यम से पेश की गयी है, वह मन में स्थायी रूप से अंकित हो जाती है।

'भगतजी बग़ैर काम नहीं चलता' शीर्षक कहानी में कथाकार ने एक ओर ग्रामीण परिवेश में व्याप्त घातक अंधविश्वासों और घोर पाखंडों में फँसे निरीह ग्रामीणों का चित्रण किया है, तो वहीं कुछ धूर्त ग्रामीण भी हैं, जिनमें भगत नामक पात्र एक बहुरूपिये के रूप में गाँव के जन-जीवन को प्रभावित करता है। इस तरह गाँवों में फल-फूल रही उन काँटेदार झाड़ियों और विषाक्त कैक्टसों की ओर ध्यान आकर्षित कराया गया है, जिनमें उलझकर ग्रामीण जीवन अपनी अस्मिता खोता जा रहा है। कहानीकार ग्रामीणों द्वारा पिये जाने वाले अमृत बनाम ज़हर की उस कड़वी घूँट का उल्लेख करके इस सच का उद्घाटन बड़े जोश से करता है कि आख़िरकार गाँववासी फिर से अंधविश्वासों के दायरे में रहना ही बेहतर समझते हैं।

डॉ0 श्रीवास्तव ने भूख, बेगारी, बेकारी और शोषण के दाँतेदार पहिए में पिस रहे ग्रामीण जीवन का जो यथार्थ वर्णन 'भूख का पुनर्जन्म' शीर्षक कहानी में किया है, वह हमें अपने विकास की उस झूठी कहानी पर आँसू बहाने के लिए मजबूर कर देता है, जिसे हमारे कपटी राजनेताओं ने गढ़ा है। क्षुधाग्नि का शमन करने के लिए गाँव वाले कितनी दुर्दशा के शिकार हैं, पर भूख पर आदमी की विजय न कभी हो पायी है, न हो पाएगी— इस कड़वे सच को भी सामने रखने में कहानीकार को पूर्ण सफलता मिली है।

'सियासत की बाढ़' कहानी में राजनीतिक कुचक्रों की महागाथा को सटीक ढंग से वर्णित किया गया है। वह हमारी भ्रष्ट राजनीति को पूरी तरह बिंबित करती है। कहानी लंबी है, किंतु इसकी कथात्मक रोचकता अंत तक बढ़ती ही जाती है। 'भेड़ की शक्ल में भेड़िया' कहानी हमारे शिक्षक समाज द्वारा किये जा रहे अनैतिकतापूर्ण दुराचार पर प्रकाश डालती है, जबकि 'बी-टेक टिफिन चोर' में पुलिस की बर्बरता और इन्सानियत से रिक्त आदमी को प्रभावशाली ढंग से नंगा किया गया है।

डॉ0 श्रीवास्तव बड़े फलक पर कथानक बुनने वाले कथाकार हैं; किंतु अकथनीय को कथनीय बनाना और वह भी इतने दिलचस्प ढंग से—यह प्रभावित करता है। वे एक परंपरावादी कथाकार होने का दावा तो करते है; परंतु, लोकजीवन के सफल निरूपण में वे जिन शब्दावलियों, शैलियों और पृष्ठभूमि का शोधपरक सृजन करते हैं, वह सभी पाठकों को आह्लादित कर देता है। वे एक परिपक्व कहानीकार हैं, जो अपनी प्रत्येक कहानी में जीवन का सांगोपांग विवेचन करते हैं।

बी-37/170-37, गिरि नगर कॉलौनी, बिरदोपुर, वाराणसी-10

धर्मचक्र राजचक्र, डा0 मनोज श्रीवास्तव, नमन प्रकाशन, 2008

■

दरकती ज़मीं पर खड़े रहने का संकल्प

मीरा श्रीवास्तव

सावित्री का पिता महादेव सहार के सरकारी थाने में बिना नौकरी के थानेदार बेंटिक का विश्वास जीतकर उसके मातहत काम कर रहा है। अपनी शिक्षा, अनुभव, स्पष्टता और वाक्पटुता से उसने बेंटिक को अपना पक्षधर बना लिया था। सावित्री के जन्म के दिन ही अपने ख़िलाफ़ थाने में दर्ज़ पोस्ट ऑफ़िस की शिकायती रिपोर्ट वह बेंटिक के हाथों जलवा देता है। वह सावित्री को ईश्वर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरदान के रूप में लेता है, क्योंकि उसने तो जन्म से पूर्व ही उसे शापमुक्त कर दिया है।

बैंटिक के सहार थाने से चले जाने के बाद बेरोज़गार महादेव बीमार पत्नी, दो-दो बेटियों की देखरेख करते हुए पड़ोसी मनसुख लाल के उलाहने सुनकर चुप रह जाता। गाँव की राजनीति भूख से क्षुब्ध होकर धर्म का हथियार हाथ में थाम, हर किसी को हर दूसरे पर वार करने को उकसाती रहती है। भूखन सिंह और मनसुख लाल राजनीति की बिसात पर बिछे ऐसे ही मोहरे हैं।

सावित्री के बाद महादेव के घर तीन बेटों का भी जन्म होता है। तीनों बेटे शिक्षा के लिए स्कूल जाते हैं। सविता और सावित्री के ऊपर पूरे परिवार की सेवा-सुश्रूषा का भार है। अभाव में जी रहे महादेव के सत्कर्मों का प्रतिफल उन्हें मिलता है, डॉ0 सुबोध के साथ बड़ी बेटी सविता के विवाह के रूप में। सविता के विवाह के पश्चात् अकेली सावित्री अभावग्रस्त परिवार—रुग्ण माँ एवं अपरिपक्व भाइयों—के भविष्य की कल्पना करती और बेचैन हो जाती। पिता का दायित्व-निर्वाह करते हुए परिवार की डांवाडोल स्थिति को समझते-बूझते, वे उसका विवाह दीपक नाथ से कर देते हैं।

नियति दीपकनाथ के पिता राजेश्वरनाथ की आकस्मिक मृत्यु के बहाने मानो सावित्री के जीवन में दुर्भाग्य का दुर्योग रच देती है, ऊपर से दीपक जैसे अर्धविक्षिप्त पति के साथ धीरे-धीरे उसे यह ज्ञात हो जाता है कि उसे यहाँ भी सोना नहीं है, जागना है, खड़े होना है। स्वयं चलना है और चलते ही रहना है। दायित्व-निर्वाह की निष्ठा ने ही घर-समाज—सबके विरोध का सामना करने की हिम्मत उसे दी और स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा को विकास से जोड़ने की मुहिम आरंभ होते ही गाँव की लड़कियों के विद्यालय को चलाने के लिए अपना नाम देने में सावित्री को रंग मात्र भी संकोच नहीं होता। अपने एक-एक पल का हिसाब-किताब उसके मानस-पटल पर दिन के आरंभ होने के पहले ही होता। लेकिन, जब काम की अधिकता उसकी हड्डियाँ को तोड़ने पर तुल जाती, तब आँसुओं को पोंछती वह मन को और कठोर कर लेती, अपने संकल्प के प्रति और दृढ़ हो जाती। सावित्री के जीवन-संघर्ष और गाँव के हर पहलू से जुड़ी राजनीति के विविध रूपों से जुड़े अनेक पात्र एवं उनके जीवन-वृतांत इस उपन्यास में देखने को मिलते हैं, जो हमें इंगित करते चलते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् जो स्थिति गाँव की थी, कमोबेश आज भी है। आज भी हर परिवार में एक सावित्री है, जो अपने जीवन को घर-परिवार के लिए चौठावर करती चलती है। दीपक भी विद्यमान है ग्रामीण पारिवारिक व्यवस्था के भीतर, जो जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे सावित्री के सतत् शोषण का एक कारण बनता है।

पति की मृत्यु के पश्चात् सावित्री को अपना जीवन सूखे मरुस्थल जैसा लगता है। तीनों पुत्र एवं परिवार के अन्य लोगों के लिए पानी की आवश्यकता है। इस मरुस्थल में वह पानी लाए, तो कहाँ से? इसी प्रयास में वह प्रवेशिका की परीक्षा देकर टीचर्स ट्रेनिंग के लिए डुमराँव जाती है और सफलता प्राप्त कर गाँव लौटती है। सावित्री गाँव के लिए उदाहरण के तौर पर उभरती है एवं नारी-शिक्षा की जागरूकता का कारण बनती है। आदर्शों के साथ जीने वाली सावित्री भी स्कूल का निरीक्षण करने आये इंस्पेक्टर को रिश्वत देकर परिस्थिति के अनुरूप आचरण करने में अपनी बेहतरी समझती है, क्योंकि स्कूल की नौकरी ही उसकी संतानों, उसके परिवार की जीविका का आधार है।

परिवार के जिन सदस्यों के लिए सावित्री अपनी अस्थियाँ तक गलाने को तत्पर रही, वही जब उसके मान-सम्मान पर आघात करने लगे, तब उसे ऐसा लगा कि शारीरिक और मानसिक पीड़ा उसके अस्तित्त्व को ही मिटा देगी। इस त्रासद स्थिति में भी सुजीत के हृदय में अपनी माँ के लिए जो भाव हैं, वे उसके लिए संजीवनी का काम करते हैं। सुजीत के लिए उसकी माँ सावित्री, 'धरती से भी बड़ी है और स्वर्ग से भी ऊँची।"

जिस घर को सावित्री ने अपने त्याग और कर्मठता के बल पर अब तक साधे रखा था, उसकी जमीन दरकने लगी। वे परिस्थितियाँ ही उसके शरीर और मन को तोड़ देती हैं, किंतु सावित्री मृत्यु-शैया पर भी, भीष्म पितामह की तरह सुजीत को कर्मठता और प्रारब्ध का महत्त्व बताती है। कर्म से ही उस अलौकिक वृक्ष की उत्पत्ति होती है, जिसकी छाया मन को शांति देती है। प्रारब्ध की शक्ति असीम है, जिसका सामना मनुष्य को अपने दृढ़ संकल्प से करना होता है।

कथानक इतने सारे पात्रों के बीच फैला है कि सबके सब एक जाल की तरह फैल जाते हैं, किंतु कथाकार की प्रशंसा करनी होगी कि वह इस जाल को उलझने नहीं देता। सशक्तता से कथानक को आगे बढ़ाता हुआ वह पात्रों को साथ लेकर चलता है। समय को देखते हुए हर पात्र की भूमिका आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी लगती है। भोजपुर जनपद के बिहिया, पवना, कोइलवर जैसे छोटे-छोटे क़स्बों को भी उपन्यास में वृहद् रूप दिया गया है। जिससे जनपद के सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य से भी पाठकों का परिचय होता है।

द्वारा-पो0 एस0सी0 श्रीवास्तव, राजेन्द्रनगर, आरा (भोजपुर)

सावित्री का सच (उपन्यास), मदन मोहन प्रसाद, वातायन मीडिया एन्ड पब्लिकेशन प्रा0 लिमि0, पटना-800001, मूल्यः 350/- रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज हाशिये के लोग साहित्य रचना कर रहे हैं

वर्तमान साहित्य : पुरस्कार-समारोह संपन्न

"आज हिन्दी कथा-साहित्य में बदलते हुए समाज का प्रभाव स्पष्ट दिखायी दे रहा है। साहित्य सार्थक हस्तक्षेप करता है और सामाजिक प्रवृत्तियों को प्रभावित भी करता है और प्रतिरोध की शक्ति भी पैदा करता है। तुलसीदास ने आम लोगों की अवधी भाषा में रामकथा लिखकर विशिष्ट वर्ग के साहित्य की भाषा के वर्चस्व का विरोध किया और लोक-जीवन में हमेशा के लिए प्रतिष्ठित हो गये"—ये उद्‌गार कथाकार और संपादक-नवीन चंद्र जोशी ने अध्यक्ष पद से बोलते हुए 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका के पुरस्कार-समारोह में व्यक्त किये। मुख्य अतिथि के रूप में 'साहित्य के बदलते प्रतिरूप' विषय पर व्याख्यान देते हुए सुप्रसिद्ध समालोचक प्रो0 निर्मला जैन ने कहा कि प्रेमचंद ने कहा था कि साहित्य समाज के आगे मशाल लेकर चलता है। आज स्थिति दूसरी दिखायी देती है, जहाँ समाज बहुत तेजी से बदल रहा है। इस बदलते समाज, उसके नये मूल्यों और बाज़ारवादी प्रवृत्तियों का प्रभाव साहित्य पर और साहित्यकारों पर भी पड़ रहा है। आज चालू नारों और विमर्शों पर केंद्रित साहित्य रचा जा रहा है, जिसका प्रभाव केवल तात्कालिक होता है। ऐसी रचनाएँ कालजयी नहीं हो सकतीं। इससे पहले 'वर्तमान साहित्य' की संपादक नमिता सिंह ने पुरस्कारों के लिए प्राप्त कहानियों की चर्चा की और कहा कि बदलते सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य में नयी समस्याओं से लोग जूझ रहे हैं। महानगरों में रहने वाले कथाकार इन नयी समस्याओं को अपना विषय नहीं बना पा रहे हैं। आज सार्थक कहानियाँ छोटे क़स्बों, गाँवों और हाशिये के समाज के लोगों द्वारा लिखी जा रही हैं। आज कविता अप्रासंगिक हो रही है, क्योंकि कविता अपनी लय और गीतात्मकता खो रही है, इस पर विचार करने की ज़रूरत है। हरपाल सिंह 'अरुष' की पुरस्कृत कहानी 'कैंपस' समाज में भीतर तक धँसी जाति-भेद और वर्ग-भेद की प्रवृत्ति को प्रदर्शित करती है। इस भेदभाव पूर्ण नीति से आज बन रहा नया कॉर्पोरेट जगत भी अछूता नहीं है। एटा से पधारे डा0 गोपाल कृष्ण शर्मा ने मलखान सिंह सिसौदिया कविता पुरस्कार से सम्मानित कवि डा0 श्रीप्रकाश शुक्ल (बी0एच0यू0) के कविता-संग्रह 'बोली बात' का परिचय देते हुए कहा कि इन कविताओं में लोक-तत्त्व और भाषा की लय इस संग्रह की विशेषता है।

मलखान सिंह सिसौदिया कविता-पुरस्कार आयोजन समिति के दूसरे मनोनीत सदस्य आगरा से पधारे प्रो0 रामवीर सिंह, निदेशक, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा ने इस आयोजन के उद्‌देश्यों पर प्रकाश डाला और कहा कि इसके माध्यम से सार्थक रचनाओं को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

कमलेश्वर कहानी पुरस्कार से सम्मानित श्री हरपाल सिंह 'अरुष' ने कहा कि कोई एक घटना होती है और वह मन को उद्वेलित करती है, तो उस पर मैं अवश्य लिखता हूँ। वह एक घटना मात्र नहीं होती, बल्कि उसके पीछे का यथार्थ जटिल होता है। सीधे-सादे ढंग से कही गयी कहानी प्रभावित करती है। मलखान सिंह सिसौदिया कविता-पुरस्कार से सम्मानित डा0 श्रीप्रकाश शुक्ल ने कहा कि कविता के बहाने रचनाकार का उद्‌देश्य मनुष्य होना है। कविता प्रतिरोधी चेतना से जुड़ी होती है और लोक-चेतना से रिश्ता कायम करती है। कविता की अलोकप्रियता का कारण यह है कि मनुष्य के आपसी रिश्ते और संवेदना समाप्त हो रहे हैं।

अध्यक्ष-मंडल सदस्य के रूप में सुप्रसिद्ध शायर शहरयार ने कहा कि समाज में आने वाली तब्दीलियों को महसूस करके साहित्यकार लिखता है। दूसरे के दुख-दर्द को लेखक जो ज़ुबान देता है, वह सार्थक लेखन है। नये अनुभव और नये रूप से जीवन-व्यापार को देखना भी लेखकों का दायित्व है। सुप्रसिद्ध उर्दू उपन्यासकार प्रो0 काज़ी अब्दुल सत्तार ने कहा कि कहानी आगे है अथवा शायरी, यह लंबी बहस है, लेकिन आलोचना अगर स्वस्थ और सकारात्मक नहीं है, तो उससे रचनात्मक साहित्य का बहुत नुक़सान होता है।

श्री हरपाल सिह 'अरुष' को पुरस्कार के रूप में रु0 11 हज़ार का चैक प्रदान किया गया, जो कमलेश्वर जी के परिवार द्वारा दिया जाता है। डा0 श्रीप्रकाश शुक्ल को डा0 मलखान सिंह सिसौदिया द्वारा स्थापित पुरस्कार के रूप में रु0 10 हज़ार का चैक प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त प्रमाण-पत्र एवं स्मृति-चिह्न भी भेंट किये गये। आमंत्रित अतिथियों को स्मृति-चिह्न 'वर्तमान साहित्य' के सह संपादक डा0 राजीवलोचन नाथ शुक्ल ने प्रदान किये। कार्यक्रम का संचालन 'वर्तमान साहित्य' के सह संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजय बिसारिया ने किया और कहा कि बाज़ारवादी संस्कृति के वातावरण में आज जो लोग लोकधर्मी साहित्य की रचना कर रहे हैं, वे स्तुत्य हैं। 'वर्तमान साहित्य' का उद्देश्य नये और सार्थक रचनाकारों को मंच प्रदान करना है। पूरे आयोजन में 'वर्तमान साहित्य' के संपादक प्रो0 कुँवरपाल सिंह की छाया उपस्थित रही, जिन्हें कार्यक्रम के आरंभ में एक मिनट का मौन रखकर भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गयी।

कार्यक्रम में प्रदीप सक्सेना, वेद प्रकाश अमिताभ, प्रेमकुमार, श्रीराम शर्मा, अब्दुल अलीम, नरेन्द्र तिवारी, सुरेश कुमार, तारिक छतारी, सग़ीर अफ़राहीम, सीमा सग़ीर, वेदवती राठी, संजीव कुमार, पूनम कुमारी, निरंजन कुमार, वेद प्रकाश सहित बड़ी संख्या में लोग उपस्थित थे।

हिंदी विश्वविद्यालय का दूसरा दीक्षांत समारोह

मानवीय मूल्यों से सरोकार रखते हुए बेहतर नागरिक बनने का संकल्प लिए परंपरागत रेशमी गाउन पहने उत्साहित विद्यार्थियों ने देश और समाज के लिए पूर्ण मनोयोग से योगदान करने की प्रतिज्ञा की। इसके साथ ही 09 दिसंबर, 2009 का दिन यादगार बन गया, अवसर था—महात्मा गांधी की कर्मस्थली वर्धा (महाराष्ट्र) स्थित महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के दूसरे दीक्षांत समारोह का।

विश्वविद्यालय के कुलपति और हिंदी के विशिष्ट उपन्यासकार विभूति नारायण राय ने इस अवसर पर मॉरीशस के राष्ट्रपति सर अनिरुद्ध जगन्नाथ को डी-लिट् की मानद उपाधि से विभूषित किया। इस गरिमामय दीक्षांत समारोह के दौरान मॉरीशस के राष्ट्रपति सर अनिरूद्ध जगन्नाथ बतौर विशिष्ट अतिथि, यूजीसी के अध्यक्ष प्रो. सुखदेव थोरात मुख्य अतिथि के रूप में, कुलपति विभूति नारायण राय, प्रतिकुलपति प्रो. नदीम हसनैन मंचासीन थे। समारोह की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के कुलाधिपति और हिंदी के प्रख्यात साहित्य-समालोचक प्रो. नामवर सिंह ने की। समारोह के दौरान् विश्वविद्यालय के विभिन्न संकायों के 31 विद्यार्थियों को स्वर्ण, 42 को रजत, 30 को कांस्य पदक से नवाज़ा गया। साथ ही, पी-एच0डी0, एम.फ़िल, डिप्लोमा व सर्टिफ़िकेट पाठ्यक्रमों के 246 विद्यार्थियों को डिग्री व प्रमाणपत्र दिये गये। भाषा विद्यापीठ के पी. वी. जगन्मोहन को पी-एच0 डी0 की डिग्री प्रदान की गयी।

इस अवसर पर मॉरीशस के राष्ट्रपति सर अनिरुद्ध जगन्नाथ ने भोजपुरी में दिये अपने ऐतिहासिक भाषण में कहा कि मॉरीशस में रहने वाले भारतवंशियों के ख़ून में हिंदी रचती-बसती है। मॉरीशस और भारत का रिश्ता दूध-ख़ून का है। इस रिश्ते को निरंतर मजबूत बनाने में भारत, ख़ासकर वर्धा के महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की बड़ी भूमिका है।

भारत और मॉरीशस के सांस्कृतिक और शैक्षणिक संबधों की चर्चा करते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष प्रो. सुखदेव थोरात ने कहा कि यह विश्वविद्यालय हिंदी के लिए अपने आप में देश का एक अनूठा अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय है। उच्च शिक्षा के स्तर पर हम यह प्रयास कर रहे हैं कि भारत और मॉरीशस के बीच शैक्षणिक आदान-प्रदान हो।

विश्वविद्यालय के कुलाधिपति प्रो. नामवर सिंह ने उपाधि धारण करने वाले छात्रों के बीच मॉरीशस के राष्ट्रपति की उपस्थिति को सुखद और ऐतिहासिक क्षण बताते हुए कहा कि मॉरीशस के राष्ट्रपति की यह उपस्थिति सन् 1975 के प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन की याद को ताज़ा करती है। उन्होंने कहा कि 'कन्वोकेशन' की यह परंपरा पुरानी है। वैदिक गुरुकुल परंपरा में इसे 'समावर्तन संस्कार' कहा जाता है।

विश्वविद्यालय का प्रगति-पत्र प्रस्तुत करते हुए कुलपति विभूति नारायण राय ने कहा कि विश्वविद्यालय के सभी अध्यापक, छात्र और अन्य कर्मी पूरा प्रयास कर रहे हैं कि वे हिंदी समाज की आकांक्षाओं पर खरे उतर सकें। हिंदी को एक अंतरराष्ट्रीय भाषा बनाने के लिए यह आवश्यक है कि ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों की पाठ्य-सामग्री हिंदी माध्यम से विद्यार्थियों तथा शोधार्थियों को उपलब्ध हो सके। विश्वविद्यालय इस समय सामाजिक विज्ञान का एक वृहत् विश्वकोश कई खंडों में निर्मित कर रहा है और आशा है कि जुलाई 2010 ई. तक पहला खंड प्रकाशित हो जाएगा। दुनिया भर में फैले हिंदी के पाठकों के लिए विश्वविद्यालय ने 'हिंदी समय डॉट कॉम' के नाम से एक वेबसाइट प्रारंभ किया है, जिस पर हिंदी में छपी सारी महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होगी।

दीक्षांत समारोह के अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक संध्या कार्यक्रम में लोकगायिका पद्मश्री तीजनबाई ने पंडवानी लोकगायन पारंपरिक ढंग से प्रस्तुत कर समारोह को अविस्मरणीय बना दिया। विश्वविद्यालय की वेबसाइट 'हिंदी समय डॉट कॉम' का लोकार्पण सर अनिरुद्ध जगन्नाथ द्वारा किया गया। समारोह का संचालन नागपुर आकाशवाणी की श्रद्धा भारद्वाज और कमल सागरे ने किया। दीक्षांत समारोह में विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ. के.जी. खामरे, भाषा विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो. उमाशंकर उपाध्याय, अनुवाद एवं निर्वचन विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो. आत्मप्रकाश श्रीवास्तव, संस्कृति विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो. मनोज कुमार, साहित्य विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो. सूरज पालीवाल भी मंचस्थ थे। इस अवसर पर श्रीमती सरोजनी जगन्नाथ, श्रीमती पद्मा राय, डॉ. विमल थोरात, डॉ. विभा गुप्ता, प्रा. अनंतराम त्रिपाठी, हेमचंद्र वैद्य, शिवदत्त मिश्र, मूलचंद बड़जाते, बसंत पाण्डेय सहित विश्वविद्यालय की विद्या-परिषद के सदस्यगण, शैक्षणिक, ग़ैर-शैक्षणिक कर्मी, उपाधि प्राप्त करने वाले छात्र/शोधार्थी, अभिभावक व गणमान्य नागरिक उपस्थित थे।

अमित कुमार विश्वास, शोधार्थी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीन हिन्दी कहानी की दशा-दिशा

संदर्भ : 'वसुधा' का समकालीन कहानी विशेषांक

'वसुधा' का समकालीन कहानी विशेषांक उल्लेखनीय है जो दो भागों में अभी हाल में प्रकाशित हुआ है। डॉ0 कमला प्रसाद युवा पीढ़ी की रचनाधर्मिता पर कई स्थापनायें देते हुये अपने संपादकीय में लिखते हैं कि "चूँकि इतनी समग्रता से नये परिवर्तन, वातावरण की छवियाँ और बिम्ब इस पीढ़ी की कहानियों में आ रहे हैं... सबकी अपनी अपनी दृष्टि और अनुभव हैं जिससे क्षितिज व्यापक बनता है... इसलिये इन पर अलग से विचार-मंथन किये बिना रहा नहीं जा सकता है। स्वयं पाठकों-आलोचकों की समृद्धि के लिये इन कहानियों पर विचार-विमर्श ज़रूरी हो गया है।"

इसी आशय से 'वसुधा' के कहानी विशेषांक के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिन्दी कहानियों पर म. प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मायाराम सुरजन स्मृति-भवन के सभागार में आयोजित चर्चा-संगोष्ठी में वरिष्ठ लेखक और उपन्यासकार पद्मश्री मंजूर एहतेशाम की अध्यक्षता में 'वसुधा' के इस विशेषांक के संदर्भ में युवा रचनाकारों के व्यापक कथा-लेखन को लक्ष्य करते हुये समकालीन हिन्दी कहानियों के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श और वर्तमान साहित्य में उजागर हो रही रचनात्मक प्रवृतियों की दशा-दिशा पर भोपाल के प्रबुद्ध साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण चर्चा की।

कथाकार मुकेश वर्मा ने विषय-प्रवर्तन करते हुये कहा कि 'वसुधा' द्वारा साहित्य की मुख्य और प्रभावी गतिविधियों तथा विषयों पर, उनकी विचारोत्तेजक बहसों पर और प्रश्नाकुल मुद्दों पर निरंतर विशेष अंक प्रकाशित किये जा रहे हैं। इसी श्रृंखला में उल्लेखनीय विशेषांक निकाले जाने के लिये सर्वश्री डा0 कमला प्रसाद, स्वयं प्रकाश, जयनंदन और राजेन्द्र शर्मा वाकई प्रशंसा के पात्र हैं।

सुपरिचित कथाकार सुश्री उर्मिला शिरीष ने अपने आधार-वक्तव्य में 'वसुधा' की सार्थक परंपरा को व्याख्यायित करते हुये स्पष्ट किया कि हिन्दी साहित्य की पत्रिकाओं में वसुधा का निरंतर महत्वपूर्ण हस्तक्षेप संपादकीय सजगता का प्रमाण है। इन कहानियों में आज के समय और समाज की एक मुकम्मल तस्वीर सामने आती है तथा बदलते समय में मूल्यों की टकराहट को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है जिसमें सामाजिक पीड़ा के अलावा नारी मुक्ति, शोषण जैसे मुद्दों को सशक्त रूप से उभारा गया है। विशेषांक में 'वैचारिकी' के अंतर्गत प्रबुद्ध साहित्यकारों द्वारा किया गया रचनाओं का मूल्यांकन महत्वपूर्ण बन पड़ा है। युवा कथाकारों को इससे काफ़ी सीखने और परिष्कृत होने का अवसर मिलेगा। मूल्यांकन में उठाये गये मुद्दों पर बहस निरंतर चलनी चाहिए, लेकिन युवा कथाकारों का जो 'संवाद' है, उसमें गर्वोक्ति झलकती है। इस आत्मतुष्टता और प्रशंसा से इस स्टेज पर उनको बचना चाहिए।

युवा कथाकार श्री मनोज कुलकर्णी के आधार-वक्तव्य में विशेषांक की लगभग सभी कहानियों का पाठकीय मेधा के साथ सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। उन्होंने कथाकारों की रचनात्मकता और उनकी सृजन-धर्मिता को आलोचना के उपादानों पर परखते हुये विचार व्यक्त किया कि निस्संदेह नई जमीन तोड़ी गई है और कहानियों का प्रस्तुतीकरण प्रभावी है। वरिष्ठ कवि बलराम गुमास्ता ने साहित्य के शाश्वत मानदंडों का उल्लेख करते हुए साहित्य की किसी भी विधा के लिये चाहे व कविता हो या कहानी, आवश्यक तत्वों की विवेचना की। उन्होंने कहा कि यदि सच है तो उसका समकालीन सच क्या है? युवा कथाकार सुश्री वंदना राग ने समकालीनता को परिभाषित करते हुये स्पष्ट किया कि समकालीनता में उम्र का कोई पैमाना नहीं है। इस समय जो उल्लेखनीय रूप से लिखा जा रहा है उसमें सिर्फ युवा नहीं हैं बल्कि बहुत सारे महत्वपूर्ण लेखक हैं जो वरिष्ठ भी है तथा निरंतर सार्थक लिख रहे है।

सुप्रसिद्ध आलोचक और 'वसुधा' के प्रधान संपादक डॉ. कमला प्रसाद ने इस संकलन की पृष्ठभूमि को उल्लेखित करते हुये बताया कि इन युवा कथाकारों ने आज कहानी को साहित्य के केन्द्र में रख दिया है। हिन्दी कहानी की परंपरा में आये इस ऐतिहासिक मुकाम की चर्चा की जाना समसामयिक और समीचीन है।

प्रख्यात उपन्यासकार एवं कथाकार पद्मश्री मंजूर एहतेशाम ने अध्यक्षीय उद्बोधन में 'वसुधा' के कहानी विशेषांक को अच्छा और ज़रूरी बताया जो हमारे समय और साहित्य को पहचानने का एक प्रभावी उपक्रम करता है।

अंत में, संगोष्ठी का संचालन कर रहे कथाकार मुकेश वर्मा ने सभी उपस्थित अतिथियों और आमंत्रितों का आभार व्यक्त करते हुये कहा कि हमारी संस्कृति में हर नई चीज के स्वागत की परंपरा है। जैसे हम नये वर्ष, नई धान और नये बादलों का स्वागत करते हैं, वही सम्यक भाव यहाँ भी होना चाहिये।

प्रस्तुति - मुकेश वर्मा
एफ-1, सुरेन्द्र गार्डन, अहमदपुर
होशंगाबाद-रोड, भोपाल-39

गणतंत्र दिवस पर कवि-सम्मेलन संपन्न

गणतंत्र दिवस के अवसर पर पिछले 60 वर्षों से लालकिले में लगातार हो रहे ऐतिहासिक कवि-सम्मेलन की श्रृंखला में वरिष्ठ कवि श्री कन्हैयालाल नंदन की अध्यक्षता में सुबह तक 27 कवियों ने काव्य-पाठ किया।

कार्यक्रम के आरंभ में हिन्दी अकादमी के सचिव प्रो. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचयदास' ने देश के विभिन्न हिस्सों से आये कवियों और पंडाल में बैठे श्रोताओं का स्वागत करते हुए उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कविता के गणतंत्र' को मज़बूत करने की महत्त्वपूर्ण कड़ी बताया। उन्होंने कहा कि कविता की लय स्वाधीनता की लय है, जो हमारे सामाजिक तंत्र को मज़बूत कर गणतंत्र को भी मज़बूत बनाती है।

कवि-सम्मेलन का उद्घाटन दिल्ली की भाषा, स्वास्थ्य, महिला एवं बाल विकास मंत्री श्रीमती किरण वालिया ने किया। दीप-प्रज्ज्वलन के बाद उन्होंने कहा—"अँधेरे से जूझता कवि हम सबको विवेक की ज्योति प्रदान करता है। उसकी आवाज़ में हमारी आवाज़ ही होती है और वह आवाज़ ही भविष्य में परिवर्तन का काम करती है।" हिन्दी अकादमी, दिल्ली के उपाध्यक्ष प्रो. अशोक चक्रधर ने इस कवि-सम्मेलन के ऐतिहासिक पलों को याद करते हुए कहा कि नेहरू जी के आदर्शों को साकार करने का प्रतीक यह कवि-सम्मेलन हमारे गणतंत्र को नयी ऊर्जा और ताक़त प्रदान करता रहा है और करता रहेगा। "गूँजे मन में, महके पवन में हर एक मन में सद्भावना..." गीत गाकर उन्होंने मंच-संचालन वरिष्ठ कवि-गीतकार बालकवि बैरागी को सौंपा।

कमलेश शर्मा, देवल आशीष, मधुमोहिनी उपाध्याय, नौसवा ग़ाज़ी, ने देशभक्ति की कविताओं से, तो अशोक स्वतंत्र, जैनेन्द्र कर्दम, दीपक गुप्ता, विश्वामित्र दाधीच, पवन जैन, सुरेन्द्र दुबे, सूर्य कुमार पांडेय ने हास्य कविताओं से श्रोताओं का भरपूर मनोरंजन किया। हास्य कविताओं के निशाने पर देश के नेता, खेल-आयोजक, भ्रष्टाचार ही नहीं; नयी पीढ़ी का 'मोबाइल प्रेम' और उनके 'प्यार का फटाफट' तरीक़ा भी था। पवन दीक्षित, यश मालवीय, दीक्षित दनकौरी, विष्णु सक्सेना, आलोक श्रीवास्तव ने अपने गीतों-ग़ज़लों से वाह-वाह लूटी, तो वरिष्ठ कवियों—उदय प्रताप सिंह, बालकवि बैरागी, कन्हैया लाल नंदन ने नयी पीढ़ियों से बदलाव लाने के लिए तैयार रहने की मार्मिक अपीलें कीं।

महिला कवयित्रियों में गुना (म.प्र.) से आयीं श्रीमती अंजुम रहबर ने लय में गाये अपने गीतों से श्रोताओं को झूमने पर मजबूर किया। स्वप्निल श्रीवास्तव, सुभाष शर्मा, सदानंद शाही की गंभीर कविताओं को भी श्रोताओं ने पसंद किया। श्रोताओं की माँग पर सम्मेलन का समायोजन कर रहे प्रो. अशोक चक्रधर ने भी अपनी कुंडलियों के साथ कुछ कविताएँ पढ़ीं। कवि-सम्मेलन का समापन 'जन गण मन' के गायन से हुआ।

पूरी रात कवि-सम्मेलन सुनती रहीं मंत्री श्रीमती किरण वालिया और अकादमी के सचिव प्रो. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचयदास' ने अंत में सबको धन्यवाद ज्ञापित किया।

प्रस्तुति : अजय कुमार शर्मा

जनवादी लेखक संघ, हिसार

जनवादी लेखक संघ, हिसार इकाई द्वारा बहबलपुर स्थित डा0 अम्बेडकर कॉलेज में त्रिदिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। पहले दिन कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के रीडर डा0 सुभाष चन्द्र ने 'वर्तमान साहित्य एवं वर्तमान समाज' विषय पर अपना विस्तृत व विश्लेषणात्मक व्याख्यान दिया।

दूसरे दिन जनवादी लेखक संघ, हिसार के अध्यक्ष व सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार-भाषा वैज्ञानिक डा0 मधुसूदन पाटिल द्वारा 'साहित्य विधा' पर विचार रखे गये। उन्होंने गद्य-पद्य-कहानियों, कविताओं, नाटकों आदि की समीक्षात्मक विवेचना की। इसी क्रम में 'साहित्य के उद्देश्य' विषय पर जनवादी लेखक संघ-जींद से पधारे श्री मंगतराम शास्त्री ने भी विचार रखे। सायंकालीन सत्र में स्थानीय रचनाक़ारों ने काव्य-गोष्ठी में शिरकत की तथा डा0 रोशनलाल की अप्रकाशित रचनाओं पर विशेष चर्चा करते हुए इन्हें शीघ्र प्रकाशित करने योग्य ठहराया।

कार्यशाला के तीसरे व अंतिम दिन (सर्च) राज्य संसाधन केन्द्र रोहतक से पधारे प्रमोद गौरी (निर्देशक) ने 'समाज, साहित्य व शिक्षा' पर विचार रखे। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन की शिक्षा को समाज व राष्ट्रीय चरित्र के परिदृश्य में रेखांकित किया।

कार्यशाला की अध्यक्षता जनवादी लेखक संघ, हिसार के उपाध्यक्ष डा0 रोशनलाल ने की तथा मंच संचालन व कार्यक्रम की रूपरेखा व पूरे आयोजन की भूमिका महासचिव मा0 रोहतास ने प्रस्तुत की।

प्रस्तुति : मधुसूदन पाटिल, हिसार-125005

लोक कला-साहित्य संवर्द्धन पुरस्कार

चम्बलांचल की लोक कला-संस्कृति, संस्कार-सभ्यता के अनुसंधाता एवं पोषक स्वर्गीय डा0 भगवान सहाय शर्मा की स्मृति में प्रदान किया जाने वाला राज्य स्तरीय लोककला साहित्य संवर्द्धन पुरस्कार, म0प्र0 आदिवासी लोककला अकादमी के अध्यक्ष डा0 कपिल तिवारी को मुरैना जिले की अम्बाह तहसील में स्थिति, ब्राइट कैरियर एकेडेमी में आयोजित भव्य समारोह में प्रदान किया गया। इस अवसर पर प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने स्व0 डा0 भगवान सहाय शर्मा के अतुलनीय व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला। इस मौके पर पुरस्कार चयन समिति के सदस्यों डा0 वेदप्रकाश शर्मा अमिताभ, डा0 श्रीराम परिहार, डा0 प्रेमकुमार, डा0 सत्येन्द्र शर्मा, डा0 प्रभाकर शर्मा और डा0 श्यामसनेहीलता शर्मा का भी सम्मान किया गया।

प्रथम स्पंदन सम्मान समारोह

दृढ़ संकल्प और आस्था के पावन संगम से पैदा नौनिहाल 'स्पंदन; की प्रथम समारोही पहल अभिभूतकारी सिद्ध हुई। वरिष्ठ आलोचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंदकिशोर आचार्य ने सर्जना और जीवन की आपसदारी पर सारगर्भित विचार रखे।

साहित्य व अन्य कला आयामों की पोषक 'स्पंदन' संस्था के इस पहले दो दिनी सम्मान समारोह वर्ष 2009 का आरंभ कला केन्द्र भारत भवन में हुआ। शीर्षस्थ कथाकार मृदुला गर्ग को स्पंदन कथा शिखर सम्मान, वरिष्ठ आलोचक शंभु गुप्त को स्पंदन आलोचना पुरस्कार, आधुनिक कविता के चर्चित हस्ताक्षर पंकज राग को स्पंदन कृति पुरस्कार, प्रियदर्शन को स्पंदन कथा पुरस्कार तथा चित्रकार आदित्य देव को स्पंदन चित्रकला पुरस्कार से वरिष्ठ कथाकार गोविन्द मिश्र ने बतौर कार्यक्रम अध्यक्ष अलंकृत किया। स्वागत उद्‌बोधन में सुप्रसिद्ध कथाकार तथा स्पंदन की संयोजक डा0 उर्मिला शिरीष ने अगले समारोह से चार अन्य अर्थात् कुल नौ पुरस्कार दिए जाने की घोषणा की। ये नए पुरस्कार नृत्य, सिने गीत लेखन, रंगमंच तथा साहित्य व कला में श्रेष्ठ पत्रकारिता के लिए दिए जायेंगे।

प्रस्तुति : उर्मिला शिरीष

कोई हो गया है मेरा

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा सांस्कृतिक सभागार में प्रसिद्ध ग़ज़लकार विकल 'साकेती' के काव्य-पाठ का आयोजन हिन्दी संस्कृत के विद्वान डा0 राजेन्द्र पाण्डेय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। अतिथियों का स्वागत हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो0 राधेश्याम दूबे द्वारा किया गया। विकल 'साकेती' ने 'लंका जीतकर राजगद्‌दी संभाले राम' शीर्षक मंगल गीत से काव्य-पाठ का आरंभ किया।

उन्होंने अपनी पहली ग़ज़ल प्रस्तुत करते हुए कहा-कोई हो गया मेरा, मेरी कल्पना से पहले/ मेरा देवता मगन है, मेरी वंदना से पहले।

प्रेम के स्वभाव की ओर इंगित करते हुए 'साकेती' जी ने अपनी ग़ज़ल पढ़ी-

जो प्यार में हो जाते हैं विकल/ उनसे ये निवेदन करना है/ जब दर्द पुराना होता है/ तब प्रीति सयानी होती है।।

बतौर संयोजक प्रो0 वशिष्ठ अनूप ने कहा कि दुष्यंत कुमार से पहले जिन लोगों ने हिन्दी में अच्छी ग़ज़लें लिखीं उनमें शमशेर, बलवीर सिंह रंग, रूप नारायण त्रिपाठी, त्रिलोचनशास्त्री, गोपालदास नीरज और विकल साकेती के नाम महत्त्वपूर्ण है। इस काव्य-पाठ का आयोजन विद्यार्थियों को कविता की छांदिक और लयात्मक कविता से जोड़ने-समझने के लिए किया गया है। उन्होंने काव्य पाठ करते हुए सुनाया—

कुछ सकुचाना, कुछ घबराना अच्छा लगता है/ तेरा हँसना फिर शरमाना, अच्छा लगता है/ फास्ट फूड और चमक-दमक वाले इस युग में भी/ अम्मा के हाथों का खाना अच्छा लगता है।

डा0 राजेन्द्र प्रसाद पांडेय ने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि छात्र-छात्राएँ हमारे ज्ञान एवं परिश्रम की थाती हैं उन्होंने यह सुनाया—

हर तरफ पहरे लगे हैं हर तरफ दीवार है/ आदमीयत उस तरफ है आदमी इस पार है/ खून की बोतल लगाये बेन्टिलेटर से जुड़ा

कत्ल की इस रात में बच्चा बहुत बेजार है।

प्रो0 अवधेश प्रधान ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि खड़ी बोली के पूर्व ब्रजभाषा के गीतों की धूम मची थी किन्तु हरिऔध एवं मैथिलीशरण गुप्त, निराला, पंत, नेपाली ने खड़ी बोली की कविताओं को मंच पर स्थापित किया। कालांतर में मधुशाला ने जनता को कण्ठाग्र बनाया। कविता जीवन को जोड़ती है यह समाज के लिए आवश्यक है और बनी रहेगी। संचालक प्रो0 वशिष्ठ अनूप ने एवं धन्यवाद ज्ञापन प्रो0 बलिराज पांडेय ने किया।

प्रस्तुति - पूजा राय, बी0एच0यू0

अपनी धरती पर याद किये गये त्रिलोचन

महाकवि त्रिलोचन शास्त्री के गाँव-कटघरा चिरानी पट्‌टी (तहसील-कादीपुर, जनपद-सुलतानपुर, उ0प्र0) के लोगों ने उनकी द्वितीय पुण्यतिथि पर एक भव्य समारोह आयोजित कर अपने माटी के लाल त्रिलोचन को श्रद्धांजलि अर्पित की। गाँव के त्रिलोचन शास्त्री इण्टर कालेज परिसर में आयोजित इस समारोह को बतौर मुख्य वक्ता सम्बोधित करते हुए युवा आलोचक ज्ञानेन्द्र विक्रम सिंह 'रवि' ने कहा कि—"त्रिलोचन हिन्दी के क्रांतिकारी कवि थे। जनबोध एवं रागबोध से गहरे जुड़ाव के कारण त्रिलोचन की भाषा आश्चर्यजनक रूप से बलशाली है।" ज्ञानेन्द्र ने कहा कि—"त्रिलोचक में भाषा के माध्यम से नए अर्थों के खोज की छटपटाहट हमेशा रही है।" समारोह में संत तुलसीदास स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कादीपुर, सुलतानपुर के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा0 सुशील कुमार पांडेय 'साहित्येन्दु' ने कहा कि—"त्रिलोचन कबीर व सूर की परंपरा के कवि हैं। समाज के अंतिम व्यक्ति तक उनकी सीधी पहुँच थी।" समारोह की अध्यक्षता करते हुये अवधी के वरिष्ठ साहित्यकार डा0 आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप' ने कहा कि-"त्रिलोचन के पास अपनी अनुभूति को व्यक्त करने का एक जमीनी आधार है। यही कारण है कि उनकी कविताओं में यथार्थ दृष्टि हमेशा विद्यमान रहती है।" समारोह का संचालन करते हुये आशुकवि मथुरा प्रसाद सिंह 'जटायु' ने त्रिलोचन से जुड़े अनेक संस्मरणों को सुनाया। उन्होंने बताया कि त्रिलोचन जी एक चलते फिरते शब्दकोश थे।

अपनी धरती पर अपनों द्वारा त्रिलोचन को याद किया जाना एक मिसाल तो है ही, साथ ही साथ प्रतिवर्ष त्रिलोचन जी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थिति पर एक भव्य साहित्यिक समारोह के आयोजन का संकल्प भी कटघरा चिरानी पट्टी गाँव के निवासियों का एक सराहनीय क़दम है।

प्रस्तुति : पवन कुमार सिंह
रानेपुर, पालियागोपालपुर, सुलतानपुर-228131

सच की तलाश ही साहित्य लिखना है

"जब तक सच की तलाश जारी रहेगी तब तक साहित्य लिखा जाता रहेगा", उक्त विचार प्रख्यात आलोचक और चिंतक श्री देवेन्द्र इस्सर ने हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा आयोजित संगोष्ठी "साहित्य क्यों?" पर अपने अध्यक्षीय भाषण में कहे। आगे उन्होंने कहा कि सच पारे की तरह होता है जो लगता तो है पकड़ में आ रहा है लेकिन पकड़ में आता नहीं है। उन्होंने अपने समय को याद करते हुए कहा कि हम साहित्य से दुनिया बदलने का सपना देखते थे.... लेकिन हम बदल गए, दुनिया नहीं बदली।

साहित्य अकादमी के सचिव और प्रसिद्ध कन्नड़ लेखक श्री अग्रहार कृष्णमूर्ति ने बारहवीं शताब्दी के कवि कुमारव्यास की उन पंक्तियों का हवाला दिया जिन्हें आपातकाल के दौरान् प्रयोग में लाया गया। 'साहित्य पढ़ने वाले कभी दुखी नहीं होते', पंजाबी अकादमी के सचिव डा0 रवेल सिंह ने साहित्य को ऐसा उपकरण बताया जिसके जरिए वह एक ऐसी अनदेखी दुनिया की सैर कर सकते हैं। उर्दू अकादमी के सचिव श्री मरगूब हैदर आबिदी ने कहा कि आज की मशीनी दुनिया में हम साहित्य कम लिख रहे हैं और उसको पढ़ने वाले भी कम हो रहे हैं, लेकिन साहित्य समाज की प्रगति के लिए ज़रूरी हैं।

सिंधी अकादमी की सचिव श्रीमती सिंधु भागिया मिश्रा ने सभी कलाओं का आधार साहित्य को बताते हुए कहा कि साहित्य से इसमें अनुभूति पैदा होती है। इन्सान होना साहित्य से ही संभव है। संस्कृत अकादमी के सचिव डा0 सुरेश चन्द्र शर्मा ने साहित्य की शास्त्रीय परिभाषा देते हुए कहा कि साहित्य कल भी था, आज भी है और भविष्य में भी रहेगा।

इससे पहले हिन्दी अकादमी के उपाध्यक्ष प्रो0 अशोक चक्रधर ने कहा कि लिखने के बाद साहित्य लेखक का नहीं रहता बल्कि वह एक ताकत के रूप में पाठक के पास चला जाता है। जब तक इंसान से जुड़ा साहित्य लिखा जाता रहेगा वह ज़िंदा भी रहेगा और लोकप्रिय भी होगा।

हिन्दी अकादमी और मैथिली-भोजपुरी अकादमी के सचिव डा0 रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास' ने कार्यक्रम के प्रारंभ में बीज वक्तव्य देते हुए कहा कि—साहित्य केवल संप्रेषण नहीं है बल्कि आत्मीय संप्रेषण है। साहित्य का लक्ष्य निष्कर्ष पर पहुँचना नहीं होता। साहित्य जीवन अनुभव को अनुभूति में बदलने का कार्य करता है जो एक नई सृष्टि का निर्माण करता है।

अजय कुमार शर्मा

बाज़ार का समय और साहित्य का प्रतिरोध...

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी के हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग ने 'साहित्य : समय एवं बाज़ार' विषय पर एक त्रिदिवसीय (4, 5 एवं 6 फरवरी, 2010) राष्ट्रीय संगोष्ठी का भव्य आयोजन किया। उद्घाटन-सत्र के अध्यक्ष प्रो0 अवधराम (कुलपति, महात्मा गाँधी, काशी विद्यापीठ) एवं मुख्य अतिथि वरिष्ठ कथाकार सुश्री सुधा अरोड़ा द्वारा दीप प्रज्वलन के साथ संगोष्ठी का शुभारंभ हुआ।

विषय-प्रवर्तन में संगोष्ठी के संयोजक प्रो0 सत्यदेव त्रिपाठी ने कालिदास से लेकर कबीर व ग़ालिब आदि के हवाले से हर युग में बाज़ार के समक्ष साहित्य की प्रतिरोधी भूमिका को रेखांकित करते हुए आज के साहित्य की हर प्रमुख विधा में इसकी छानबीन को संगोष्ठी का मक़सद बताया। सुधा जी ने अपने बीज वक्तव्य में कहा कि आज के साहित्य के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है—बाज़ार बनते मूल्यों से टकराने की। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में माननीय कुलपति ने साहित्य : समय व बाज़ार के साथ 'समाज' को जोड़ने का सुझाव देते हुए साहित्य से प्रेरणा लेकर युवाओं से प्रतिरोध की अपील की। अतिथियों का स्वागत किया विभागाध्यक्ष प्रो0 श्रद्धानंद ने। संचालन डा0 निरंजन सहाय ने एवं आभार-ज्ञापन डा0 मुनीन्द्र तिवारी ने किया।

इसके बाद हर विधा के माध्यम से साहित्य में बाज़ार की चुनौतियों के विमर्श के क्रम में पहला सत्र समकालीन कविता पर केंद्रित रहा, जिसमें प्रो0 अवधेश प्रधान द्वारा पूँजी से उत्पन्न विकृतियों के विरोध में खड़ी कविता को सामने रखने के बाद कवि श्री अष्टभुजा शुक्ल ने विश्वास जताया कि सारे बाज़ारवाद के बीच हिन्दी कविता की निजता न बिकी है, न बिकेगी। कविता के प्रति डा0 रामसुधार सिंह के आशापन वक्तव्य के साथ डा0 कमलेश व प्रमोदशंकर पांडेय के हस्तक्षेप को समेटते हुए सत्राध्यक्ष प्रो0 राजेन्द्र कुमार ने 'आज का समय हमारा नहीं, बाज़ार का है' को मानते हुए इसके प्रति बेचैनी पैदा करती कविता के विस्तृत विवेचन द्वारा सिद्ध किया कि संभावनाओं के द्वार खुले हैं। संचालन प्रो0 सुरेन्द्र प्रताप ने किया व धन्यवाद डा0 अनुराग कुमार ने दिया।

'समकालीन कथा साहित्य और बाज़ार' वाले दूसरे सत्र में प्रो0 बलराज पांडेय द्वारा कहानी के समूचे परिदृश्य में बाज़ार से समक्षता की मुकम्मल चर्चा के बाद सुधा अरोड़ा के सार्थक व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमति लाल के अपेक्षाकृत संकुचित वक्तव्य एवं शोधार्थी विवेक जायसवाल के कारगर हस्तक्षेप... आदि का समाहार करते हुए अध्यक्ष डा0 नमिता सिंह ने बाज़ारवादी समय में साहित्य से अपनी प्रतिरोधी परंपरा को क़ायम रखने का आह्वान करते हुए कहा कि आज वही साहित्य टिकेगा, जो बाज़ार के मुक़ाबले सही अर्थों में जनता के साथ होगा। सत्र का संचालन डा0 अनुराग कुमार ने किया व डा0 शिवकुमार ने आभार माना।

तीसरा सत्र 'नाटक एवं कथेतर गद्य-विधाएँ और बाज़ार' पर हुआ। इसमें अरुण पांडेय ने नाटक, श्री हृषीकेश सुलभ ने रंगमंच, श्री गोरखनाथ त्रिपाठी ने अन्य विधाओं, विवेक त्रिपाठी ने महाराष्ट्र-गुजरात के नाट्यसंभार एवं मनोज सोनकर ने व्यंग्य के साथ बाज़ार के रिश्तों की पड़ताल की, जिसमें बाज़ार होते रंगमंच के साथ उससे लड़ते रंगमंच की स्थितियाँ खुलकर सामने आयीं। अध्यक्ष के रूप में गद्यकार काशीनाथ सिंह ने काशी विद्यापीठ के हिन्दी विभाग को बहुत दिनों बाद इतने बड़े व अच्छे आयोजन के लिए साधुवाद दिया उन्होंने 'कथेतर विधाओं' का सार्थक करते हुए अपनी रचना 'कवनो ठगवा नगरिया लूटल हो' के माध्यम से बाज़ार के प्रति एक रचनाकार के रुख़ को सामने रखा और इस सेमिनार के हर सत्र में रचनाकारों के समावेश को सार्थक पहल बताया। संचालन किया डा0 उर्मिला मिश्र ने और चुलबुला आभार व्यक्त किया डा0 रामाश्रय यादव ने।

विमर्श के अंतिम सत्र में डा0 मुनीन्द्र तिवारी के संचालन में 'लोकसाहित्य और बाज़ार' पर डा0 प्रकाश उदय ने और 'भाषा में बाज़ार की भाषा' पर क्षमाशंकर पांडेय ने अपने विचार रखे। डा0 सविता श्रीवास्तव व श्री विजय यादव ने हस्तक्षेप की सार्थकता प्रदान की। प्रो0 चौथीराम यादव ने ब्रिटिश सत्ता के विरोध में खड़े होने वाले लोक साहित्य को बाज़ार से लड़ने में सक्षम बताया। उन्होंने शिष्ट के समक्ष लोक साहित्य को अधिक जीवंत व जीवनोत्सव का अतिथि वक्ता वरिष्ठ कवि श्री अरुण कमल ने साहित्य की प्रतिपक्षी परंपरा को रेखांकित करते हुए कहा कि जिस तरह बाज़ार आज के साहित्य का प्रतिपक्ष है, उसी तरह साहित्य भी स्वभावतः बाज़ार का प्रतिपक्ष है। सत्र के स्थानापन्न अध्यक्ष रहे प्रो0 श्रद्धानंद एवं संचालन किया डा0 शिवकुमार मिश्र ने। अपने धन्यवाद-वक्तव्य में संयोजक प्रो0 सत्यदेव त्रिपाठी ने पूरे आयोजन में छात्रों की सक्रिय भागीदारी को परिसंवाद की सार्थकता माना और भविष्य में इसके उत्तरोत्तर विकास की अपेक्षा जतायी। सबके प्रति उनके आभार-ज्ञापन के साथ संगोष्ठी संपन्न हुई।

प्रस्तुति : विवेक जायसवाल एवं विनीता सिंह

लघु कथा

कड़ुवा सच

अनुपमा

"श्री भूषण लाल बहुत ही ईमानदार व्यक्ति थे। बहुत ही साधारण और सरल स्वभाव के थे। वे कभी किसी से ऊँचा भी नहीं बोले... पर होनी के आगे किसकी चली है। ईश्वर उनकी आत्मा को शाँति दे और उनके परिवार वालों को उनकी जुदाई का ग़म सहने की शक्ति दे।"

भूषण लाल के क्रियाकर्म की समाप्ति पर सभी अपने-अपने घरों को प्रस्थान कर गये। भूषण लाल की पत्नी, पुत्र और मौसी-मौसा बैठे विचार-विमर्श कर रहे थे। अनुकंपा-नियुक्ति के तौर पर नौकरी ली जाए या पाँच लाख की अनुकंपा-राशि। अंत में यही तय हुआ कि नौकरी की लाइन लंबी है, इसमें नंबर आए न आए, उसके बदले यह अनुकंपा राशि ही ले ली जाए। दो महीने के भीतर ही घर सभी तरह की सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण होने लगा। नयी गाड़ी, नया सामान-पुराने घर की तस्वीर ही बदल गयी। घर के लोग घर के मालिक को लगभग भूल ही चुके थे, लेकिन घर का एक प्राणी ऐसा था, जिसे मानो अभी भी अपने मालिक के होने का इंतज़ार था; वह था घर में रहने वाला नन्हा 'रामी', जिसकी दो आँखें बार-बार बाहर ही देखती रहती थीं। ज़रा-सी आहट होने पर उसके कान खड़े हो जाते, वह चौंक-सा जाता। वह अभी भी अपने प्रिय मालिक का दीदार करने को उत्सुक था। अपना प्रिय से प्रिय खाद्य पदार्थ भी उसे भाता न था। वह खाने की वस्तु को बस देखकर छोड़ देता। एक दिन वह कुछ सूँघता हुआ घर से निकल गया और तीन दिन पश्चात वापिस आया और गुमसुम अपनी जगह पर जाकर बैठ गया। अब वह बार-बार बाहर नहीं देखता था। उसे विश्वास हो गया कि उसका प्रिय मालिक अब घर वापिस नहीं आएगा और अगले दो ही दिन में वह भी अपने मालिक की तरह स्वार्थी संसार को त्याग चुका था। उसकी जगह अब एक महँगी नस्ल के नये कुत्ते ने ले ली थी।

484, अजाद नगर, निरंकारी भवन के पीछे, करनाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

dimagheen

A Brain Tonic

- Dimagheen is helpful for physically and mentally busy people of all ages.
- A medicinal and nutritional fruit 'AMLA' the richest source of Vitamin 'C' is main ingredient of Dimagheen. Amla also has calcium and Iron contents.
- It improves concentration and relieves exhaustion.
- It removes foul breathing and improves digestion.
- It is delicious, refreshing with full of energy and vitamins.

ANGOORI

- Restore normal health and energy
- Improve appetite
- Accelerates liver functions
- Improve general Health
- Provides strength and energy

DAWAKHANA TIBBIYA COLLEGE

M.U. ALIGARH-202 001

www.dawakhanaamu.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सृजन स्मरण

फुर-फुर उड़ी फुहार अलक हल मोती छाये री,
खड़ी खेत के बीच किसानिन कजरी गाये री,
झर-झर झरना झरे, आज मन प्राण सिहाये री,
कौन जन्म के पुण्य कि ऐसे शुभ दिन आये री।

भवानी प्रसाद मिश्र
(1913 - 1985)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित
28, एम.आई.जी., अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रैल, 2010 ■ बीस रुपये

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

आंबेडकर जयन्ती पर विशेष सामग्री

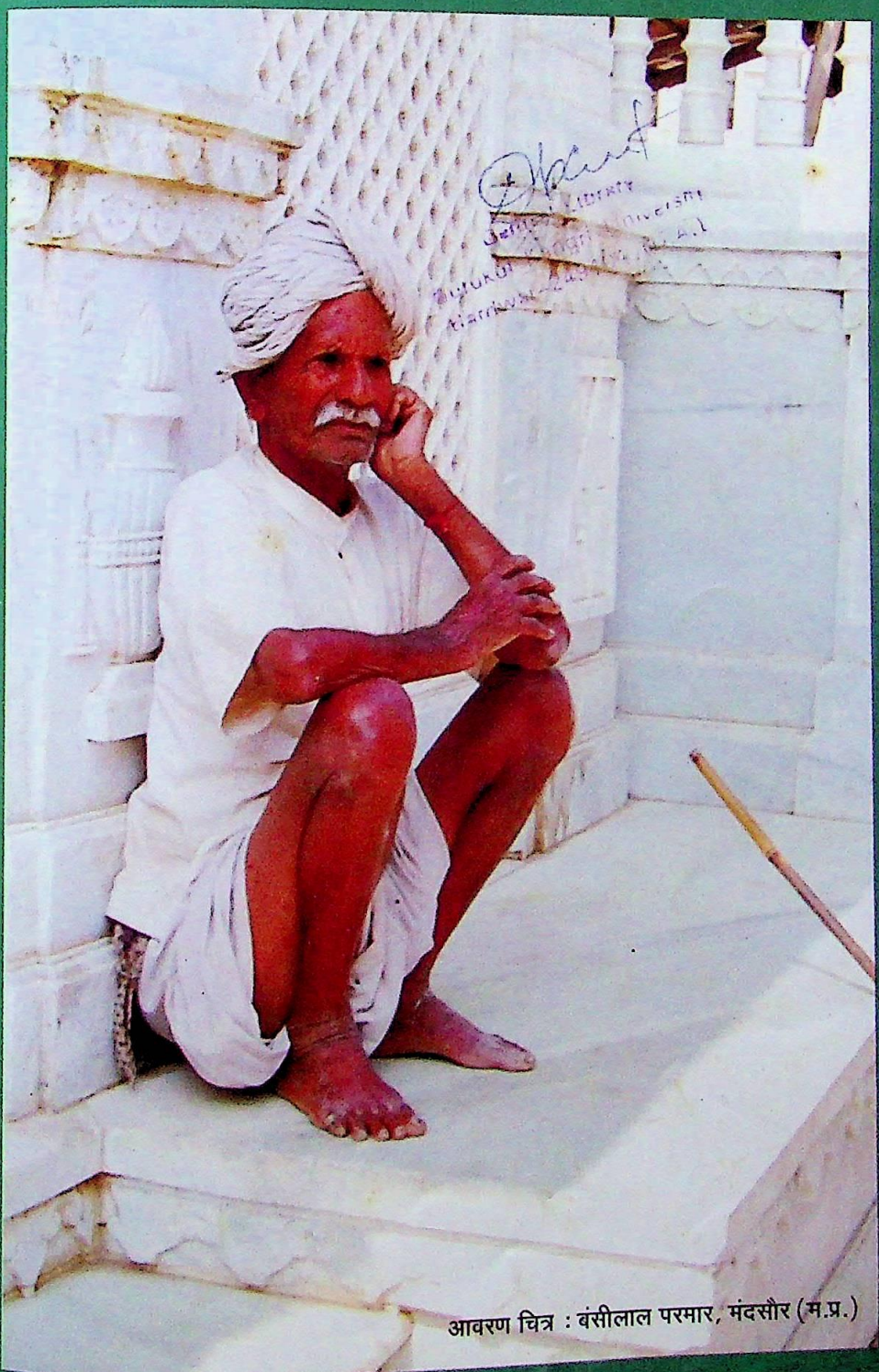

आवरण चित्र : बंसीलाल परमार, मंदसौर (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. भीमराव अम्बेडकर

14 अप्रैल 1891—06 दिसम्बर 1956

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और शोध की पत्रिका

वर्ष 26 ☐ अप्रैल, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय

28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001

टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com

Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; ☐ वार्षिक : 230/-; ☐ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 250/- ☐ आजीवन : 2000/- ☐ विदेशों में साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। चैक से भुगतान करने पर तीस रुपये अतिरिक्त जोड़कर भेजें।)

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

Gurukul Kangri University Central Library Haridwar 249404 (U.A.)

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

कार्यालय सम्पादक

विभूति नारायण राय

सम्पादक

नमिता सिंह

सह-सम्पादक

अजय बिसारिया ☐ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

विशेष सम्पादकीय सहयोग : प्रो. प्रदीप सक्सेना

मुख्य सम्पादक : राजीव श्रीवास्तव

सलाहकार : वेद शर्मा, बीकानेर

विशेष सहयोग : परवेज़ फ़ातिमा

मुखांकन : बिसारत अली

मुखांकन : राजेन्द्र परदेसी, लखनऊ

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

इस अंक में

शब्द मंच/2

अपनी बात/4

गुरु स्मरण

जाना पंजाबी जातीय जीवन के कथाकार का/वेद प्रकाश/7

गीतकार उमाशंकर तिवारी—मगर ये भी तय है कि कुहरे छटेंगे/ वशिष्ठ अनूप/9

अंबेडकर जयंती के अवसर पर विशेष

शिक्षा के नाथद्वारों से मुक्ति/सुभाष गाताडे/11

दलित और साम्राज्यवाद/शंभुनाथ/19

दलित आंदोलन और वर्ग संघर्ष/वी0जी0 गोपालकृष्णन/24

नवगीत

दो नवगीत/आनंद कुमार 'गौरव'/18

वर्तमान साहित्य कमलेश्वर कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत कहानी

कैप्स/हरपाल सिंह 'अरुष'/27

मैं यथार्थ को उकेरने की कोशिश करता हूँ/ हरपाल सिंह 'अरुष'/35

बहुआयामी यथार्थ की कहानियाँ/डॉ0 कमल कुमार/37

कहानी

सांत्वना पुरस्कार/सेराज खान बातिश/38

काली गाय/आनंद प्रकाश मिश्र/43

पहेली/बृजलाल कोरी 'विरज'/46

राजकुमार कुम्भज की कविताएँ/49

कविता/दिवाकर शास्त्री/42

आत्मकथा अंश

शिकंजे का दर्द/सुशीला टांकभौरे/51

दृष्टिकोण

दलित साहित्य को शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में स्थान मिलना चाहिए/ डॉ0 कश्मीरी देवी/57

रंगमंच

रंगमंच पर अंबेडकर और गांधी/कौशल किशोर/59

लघुकथा

छोटे मुँह की बात/जसबीर चावला/23

मजबूरी/नरेन्द्र शर्मा/63

लेख

किस्सा-ए-मेहअफरोज व दिलबर/नसीम फातमा/61

फिल्म

ऑल इज़ वैल : थ्री इडियट्स/दया दीक्षित/65

पुस्तक समीक्षा

नो रिग्रट्स माय लव/डी0एन0 प्रसाद/67

अपनी-अपनी आग/विजय शर्मा/68

धर्म की बेड़ियाँ खोल रही है औरत/निर्झरी मेहता/70

ग्राम्य जीवन का सांस्कृतिक जयघोष करते नवगीत/ आचार्य भगवत दुबे/72

यकीनन : आम आदमी की आवाज़/डा0 हरीश अरोड़ा/73

रेखांकन की दुनिया में भाव का पुट/राज्यवर्द्धन/75

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वर्तमान साहित्य' का फरवरी अंक मिला। इस बार का पत्रिका का मुख्य पृष्ठ तो ग़ज़ब का आकर्षण बन पड़ा है, इस चित्र ने तो जैसे जीवन जीने की स्थिति को जीवंत कर दिया गया है। इसी प्रकार से एक और पत्रिका कवहर आपने बनाया था। जिसमें श्रमिक महिला लकड़ी का गट्ठा पीठ पर लिये खड़ी है, पीठ पर पीछे की ओर उसका बच्चा बंधा है। ऐसे मुख्य पृष्ठ सहज ही जन साधारण का ध्यान आकर्षित करते हैं।

श्री राम मेश्राम जी की 'दलित-अंबेडकर' कविताओं को इस अंक में स्थान देकर (पृ0 47) आपने मध्यप्रदेश को प्रतिनिधित्व देकर समूचे देश के एकीकरण को मान-सम्मान ही दिया है। श्री राम मेश्राम अपने सशक्त प्रयासों से स्वःदुष्यंत की कविता प्रथा को ही आगे बढ़ाते प्रतीत होते हैं। स्वःदुष्यंत आदमी और आदमी के जीवन की ग़ज़लें कहते थे तो वही परिपाटी का निभाव निश्चित ही श्री राम मेश्राम कर रहे हैं।

ओमप्रकाश नामदेव, भोपाल, म0प्र0

'वर्तमान साहित्य' का फरवरी अंक मिला। भाई कुँवरपाल सिंह का अभाव मेरे ऐसे वृद्ध के लिए एक अलग अर्थ रखता है। जुही की कली पर श्री धीरेन्द्र कुमार पटेल का लेख प्रभावी है।

प्रो0 भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज़', अहमदाबाद-52

'वर्तमान साहित्य' का फरवरी, 2010 अंक मिला। आभार। तमाम रचनाएँ पढ़ गया हूँ-श्री जय कुमार कर्दम की कहानी गोष्ठी में दलित साहित्य में भी खिंची लकीरों के साथ यहाँ के सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास है। राजेन्द्र परदेशी की बंधुआ मजदूरी पर अच्छी कहानी है। सुरेश सेन निशांत की कविता 'अलीगढ़ के ताले' अलीगढ़ के ख़त्म होते जा रहे ताला व्यवसाय को बड़ी मार्मिकता से उकेरती है।

श्रद्धेय कुँवरपाल सिंह जी के बाद आपने पत्रिका को लड़खड़ाने नहीं दिया है। इसके लिए साधुवाद।

अशोक 'अंजुम', अलीगढ़

'वर्तमान साहित्य' फरवरी, 2010। पैसा नहीं होगा? अर्थ-धन की, भूख पेट की चिंता, अत्यावश्यक परिवर्तन हेतु विश्वसनीय मानव चेतना का विकास परमावश्यक होगा। मनुष्य संसाधन नहीं, सहअस्तित्व का बहता नीर है जिसके पानी में मिठास है। ''समयांतर'' उत्तरोत्तर बदलाव में तबदील हो रही, अंच्छी कहानी है। दहेज विरोधी भी साफ़ और 90 प्रतिशत जनता भी स्वच्छ। स्वच्छ जनता में दहेज चलन नहीं। ये अपनी भड़ास निकालने, हेतु दहेज कानून का उपयोग करते हैं। 50 प्रतिशत आबादी ग़रीबी रेखा में है जो रोटी, कपड़ा और मकान की जुगाड़ में रहती है, तो दहेज कोई मायने नहीं ?

आधुनिकता में बदलते परिवेश की कहानी है-'पाल गोमरा का स्कूटर'। नये दृष्टिकोण के साथ इस पर अच्छी टिप्पणी है। गिरीश मिश्र का आखिरी पन्ना प्रथम पन्ना हो गया। बाज़ारवादी युग के प्रति घृणा शुरू हो चुकी है। पूरा अंक लाभदायक है। हार्दिक बधाई क्योंकि राठौरों को मारना ही है।

यशवंत मेश्राम, राजनांदगांव (छ0ग0)

कुँवरपाल सिंह जी का निधन ऐसे व्यक्तित्व से मरहूम हो जाना है, जो उन जैसे विरल इन्सानों में दीखता-मिलता था। मुझे याद है कानपुर में हुए जनवादी लेखक संघ के पहले सम्मेलन/अधिवेशन की। आपके साथ वह भोजन परोसने और पूछ-पूछ कर खिलाने में जिस तरह की सौजन्यता और आत्मीयता से लगे थे, अनेक दायित्व को उठाते हुए ऐसे आयोजनों में आश्वासन स्वरूप ही लोग करते हैं। लखनऊ में 'राही मासूम रज़ा अकादमी' के उद्घाटन में वह नहीं आ पाए, पर उनका लिखित आलेख कार्यक्रम में पढ़ा गया तो एक-एक वाक्य में आयोजन में उनकी उपस्थिति को ध्वनित कर रहा था।

बंधु कुशावर्ती

साथी कुँवरपाल जी का न रहना, हम सबके लिए, जो 'आज़ाद' हिन्दुस्तान को सचमुच आजाद देखना चाहते हैं, एक त्रासदी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका इस तरह चले जाना इसलिए तो नुकसानदेह है ...पंथी आंदोलन में उस पीढ़ी के लोग, जिन्होंने अपनी ...क दृढ़ता को कभी कमजोर न होने दिया अपितु अपने ...और व्यवहार में भी सादगी, साथीपन और ज़माने को ...की जिद को विपरीत परिस्थितियों में भी नहीं छोड़ा ...देह को मेडीकल कॉलेज को सौंपना उसी सैद्धांतिक दृढ़ता ...दिली का परिचायक है।

...स्थितियों ने हमें भले ही अलग संगठन बनाकर काम ...की ओर प्रवृत्त किया, लेकिन बुनियादी शिक्षाएँ और देश ...दी क्रांति की अपरिहार्यता के सोच ने हमें एक व्यापक ...रखा। मैं आज इस सच्चाई को पूरी समझदारी के साथ ...चाहूँगा कि आपने व कुँवरपाल सिंह जी ने इस दौरान ...व्यापक वैचारिकता को निभाया, वह अपने आपमें एक ...है। इस संदर्भ में 'दुख ही जीवन की कथा रही' (दिसंबर ...संस्मरण में साथी दूल्हे खां का यह वक्तव्य बेहद महत्वपूर्ण ...है-"कामरेड, किसान-मजदूरों की पार्टी बुर्जुआ मार्ग ...लेगी तो क्या होगा। अवसरवादिता से कम्युनिस्ट नहीं ...करेंगे तो कौन करेगा।" सव्यसाचीजी के चले जाने के ...वही थे, जिनसे अपने मन की बात और वैचारिक ...बुलकर की जा सकती थी। उन्होंने जिस तरह साहित्य ...संघर्ष चेतना को जीवित रखा, मूढ़ जी जैसे जन-कवियों ...लाये, वह अब दुर्लभ ही कहा जायेगा। हाँ, इसमें ...नहीं कि उन्होंने अपनी लेखनी और व्यवहार से ...लोगों को प्रभावित किया है, उनकी प्रेरणा से अब ...रह गये कार्यों को पूरा करना होगा।

महेन्द्र नेह, कोटा

...संवाद' के माध्यम से आदरणीय डा0 के0पी0 सिंह जी ...प्रखरता व सामाज़िक सरोकारों के प्रति वैचारिक ...जो परिचय हुआ, उसके कारण उन जैसे भावप्रणव ...के महाप्रयाण पर घोर दुख होना स्वाभाविक है। ...अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग ऐसे ...व प्रतिबद्ध विभागाध्यक्ष को पाकर निश्चित ही ...रहा। गत शताब्दी के पाँचवे दशक में मैं स्वयं वहाँ ...थी, कक्षाएँ पुराने भवन में ही चलती थी। अतः ...होना अस्वाभाविक तो नहीं और जैसा कि मैंने पढ़ा ...व्यक्तिगत पारिवारिक परिवेश-परिधि की कोई सीमा ...। समाज के उचित मार्गदर्शक रूप में अब उनकी शक्ति को समर्थ बनाना है।

श्रीमती सत्या शर्मा, उदयपुर

आदरणीय भाई कुँवरपाल सिंह जी के स्वास्थ्य के संबंध में मिल रहे चिंताजनक समाचारों के बीच उनका शानदार अभिनंदन ग्रंथ पाकर कुछ सुकून मिला। वास्तव में यह अभिनंदन ग्रंथ उनके साथियों और उनके शिष्यों के द्वारा कुँवरपाल सिंह जी को समर्पित श्रद्धांजलि है। मैं अभिनंदन ग्रंथ के लिये भाई प्रदीप सक्सेना जी, भाई अजय बिसारिया जी को बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। आपको मालूम ही है कि मेरा भाई कुँवरपाल सिंह जी से 25 वर्षों से भी अधिक का संपर्क है, जैसा कि ग्रंथ में एक जगह बिसारिया जी ने उल्लेख भी किया है।

दिवाकर शास्त्री, वनस्थली विद्यापीठ-304022

न जान सका मैं पहले
मोती की कीमत
जाती कैसे पहचानी
बिना पारखी के
किसने है कीमत पहचानी
पहचान नहीं पाया मैं
आँसू मोती है या पानी
मैं आँसू को समझा समुद्र का खारा पानी
पहचाना तो निकला सीपों वाला मोती
आँसू दग्ध हृदय की कविता
मानव की करुण कहानी
पहचानोगे तो समझोगे
आँसू मोती हैं या खारा पानी।

ईना शर्मा, वनस्थली विद्यापीठ

'वर्तमान साहित्य' का फरवरी, 2010 अंक देखा तो श्रद्धेय कुँवरपाल सिंह जी के निधन का दुखद समाचार मिला। करीब तीस वर्ष पहले की आगरा में हुई कुँवरपाल जी के साथ एक छोटी-सी मुलाकात याद आई, और याद आए 'वर्तमान साहित्य' के धारदार और प्रेरक 'संपादकीय' लेख।

इस गहन दुख में हम सब आपके और वर्तमान साहित्य के साथ हैं।

मधुवेश, दिल्ली-94

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

यह साल ख़त्म होते-होते अनेक छोटी-बड़ी पत्रिकाओं ने हमेशा की तरह अपनी साहित्यिक जागरूकता को बरकरार रखते हुए वर्ष भर में विभिन्न विधाओं पर जो पुस्तकें छपीं, उनका ब्यौरा दिया है। ज़ाहिर है, जितने नाम सर्वेक्षणकर्ताओं की नज़रों में आये, वे सूची में शामिल हो गये। अपने समय को प्रस्तुत करने और उसे व्याख्यायित करते हुए भविष्य को इंगित करने का काम कहानी, उपन्यास जैसी विधा बखूबी करती हैं। वैचारिक ग्रंथों को आमतौर पर इन सूचियों में शामिल नहीं किया जाता, जो मेरी राय है, करना चाहिए। साहित्य-समाज में लेखन और चिंतन दोनों ही साथ-साथ चलते हैं। इन सूचियों में शामिल कथा-साहित्य पर नज़र डालें, तो समाज का व्यापक जनजीवन, बहुसंख्यक जनता की आशा-आकांक्षाएँ, जय-पराजय, उनके सुख-दुख अब दिखायी नहीं देते। जिस तरह आधुनिक राजनीति और समाज़-व्यवस्था विकास के नये मानक गढ़ रही है, उसी तरह अब चिंतन भी सिमट रहा है। लोगों के संघर्ष और संवेदनाएँ भी आज संकुचित हुई हैं, खानों में बँट गयी हैं। बौद्धिकता की परिभाषा सूक्ष्मता में, माइक्रो स्टडीज़ के दायरे में खिसक गयी है, जो बिंदुवार अतल गहराई तक तो जाती है, लेकिन अपने व्यापक परिवेश से बिछुड़ने लगती है। अब न तो साहित्य में और न चिंतन में बहुआयामी परिदृश्य दिखायी देता है और न ही शायद आधुनिक व्यवस्था में मानवीय सरोकार इसकी इज़ाज़त देते हैं। मौजूदा राजतंत्र के सामाजिक सरोकार अब कहीं पीछे छूट गये हैं। सत्ता की राजनीति और समाज का कॉरपोरेट-संरचना आधारित मूल्य-व्यवस्था में तब्दील होते जाना न सिर्फ़ सामाजिक असंतुलन पैदा कर रहा है, बल्कि मानव-मूल्यों और व्यापक जन-संवेदनाओं को भी नष्ट कर रहा है या उन्हें कहीं और निचले धरातल पर धकेल रहा है।

अभी यह ख़बर पढ़कर तो हिन्दुस्तान के लोगों का मस्तक निश्चित ही गर्व से ऊँचा हुआ होगा कि हमारे मुकेश अंबानी दुनिया के चौथे सबसे अमीर आदमी हैं। उनके भाई अनिल अंबानी, अज़ीम प्रेमजी सहित अन्य हिन्दुस्तानी भी हमेशा की तरह अपनी जगहों पर सुशोभित हैं और विश्व-स्तर पर भारत की समृद्धि और विकास को प्रदर्शित कर रहे हैं। लेकिन, कैसा है यह विकास-जहाँ तैंतीस प्रतिशत लोग भूख से जूझ रहे हैं, रोटी ही जिनकी सबसे बड़ी समस्या है। भला हो हमारे धार्मिक विश्वासों का, कि सर्दी, गर्मी और बरसात की विभीषिका के कारण होने वाली मौतें दैवीय प्रकोप के कारण मान ली जाती हैं। उघड़े बदन रहने को हम जनजातीय संस्कृति कहकर छुट्टी पा जाते हैं।

कॉरपोरेट जगत का फैलता जाल समाज और राजनीति सभी को अपने शिकंजे में कस रहा है। सरकारी सूचनाओं में दबे-ढके ख़बर आती है कि 250 लाख टन अनाज गोदामों में पड़ा हुआ है। विकास और योजनाओं का यह हाल है कि गेहूँ के भंडार खुले में पड़े-पड़े सड़ जाते हैं। टनों चीनी बंदरगाहों पर पड़ी ख़राब हो जाती है, उसे उठाने वाला कोई नहीं होता। राजनीति की यह संवेदनहीनता आज चरम पर दिखायी देती है। सत्ता-वर्ग को तो फ़ुर्सत नहीं कुर्सी की खींचतान से। वह संतुष्ट है कि उसे विकास का सर्टिफ़िकेट अमरीका से मिल रहा है। दिक़्क़त हमारी उन राजनीतिक पार्टियों की ओर से है, जिनका मुख्य एजेंडा जनवाद है या समाजवादी समाज का निर्माण है। भूख से होने वाली मौतें या विस्थापन के कारण उजड़ रहे समाज या विकास के नाम पर बनने वाले मॉल्स और रास्तों के लिए लहलहाती फ़सलें देने वाली ज़मीनों का छीना जाना उनकी ओर से क्यों नहीं किसी आंदोलन का विषय बनता। उत्तर प्रदेश में हज़ार करोड़ रुपये की लागत से भव्य और विशाल स्मृति-स्थल बनाया जाना और फिर कुछ ही वर्ष के अंतराल में उसे तोड़ना और नये सिरे से बनवाना... उत्तर प्रदेश में विकास किस तरह जर्जर हालत में है, छिपा नहीं है। टूटी-फूटी सड़कें, बिजली-पानी की दुरवस्था .. इतिहास के नायक लोक-स्मृति में बसते हैं, पत्थरों और पार्कों में नहीं। इतिहास किसी का बंधक नहीं होता। लेकिन, विकास के ये मुद्दे जन-आंदोलन नहीं बनते। अब तो साहित्य का हिस्सा भी नहीं बन रहे। विरोध और आंदोलन अब जनहित के सवालों पर नहीं, राजनीति और गठबंधन के आधार पर, चुनाव और वोट की संभावनाओं के आधार पर तय किये जाते हैं। साहित्य के पुरस्कारों-सम्मानों की संभावना के आधार पर विषय का निर्वाह होता है, इसीलिए साहित्य की राजनीति भी विमर्शों में बँटकर रह गयी है। आज बाज़ार भी स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श का है। भला हो प्रेमचंद का, उनका समय ब्रिटिश साम्राज्यवाद का था। पूरा जन-मानस उनके उपन्यासों में प्रतिबिंबित होता है। भारतीय समाज, उसका हर अंग-प्रत्यंग लेखन का विषय बनता था। उनके यहाँ बड़ा ज़मींदार राय अमरपाल है, छोटा किसान होरी है, भूमिहीन होकर मज़दूर बनता गोबर है, पंड़ित दातादीन, मातादीन हैं; सिलिया है, झुनिया है, धनिया है, तो रानी इन्दु भी है मेहता है, तो मालती भी है... असंख्य पात्र। खानों में बँटा विमर्श नहीं है। समग्र समाज है और व्यापक सरोकार हैं... विस्तार पाती दृष्टि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह लिखते समय पुण्यतिथि के अवसर पर राही मासूम रज़ा याद आ रहे हैं। उनका 'आधा गाँव' याद आ रहा है। 'आधा गाँव' ग़ाज़ीपुर के एक छोटे से गाँव गंगोली के बाशिंदों की कहानी है। उसमें भी उजड़ रहे पुराने रईस हैं, जमींदारी ख़त्म होने के बाद के नये हालात हैं। पुरानी पीढ़ी है और नयी पीढ़ी की नयी चेतना के नौजवान लड़के-लड़कियाँ हैं। वे तालीम पा रहे हैं, आधुनिक बन रहे हैं और नयी सियासत के नये रंग भी सीख रहे हैं। राजनीति की नयी चाल में क्षेत्रवाद है, जातीय अहम् है, भाषा-बोली के पुराने लहज़े और नयेपन के अंतर्द्वंद्व हैं। इसीलिए, गंगोली सिर्फ़ ग़ाज़ीपुर का नहीं रहता, वह पूरे देश का प्रतिनिधि बन जाता है। नये विकास की धारा प्रवाहित हो रही है। कासिमाबाद में स्वतंत्रता-समारोह के दौरान् आज़ादी की लड़ाई में शहीद हुए लोगों का स्मरण किया जा रहा है। सभी हिन्दू शहीदों को याद किया जा चुका है। लंबे इंतज़ार के बाद आखिर फुन्नन मियाँ को खड़े होकर कहना ही पड़ता है—"ए साहिब, यहाँ एक ठो हमरहू भाय मारा गया रहा। ऐसा जान रहा कि कोई आपको ओका नाम बताइस। ओका नाम मुनताज रहा।"

तो विकास मंतव्यों में नीयत का खोट कैसे आ जाता है! विकास की अवधारणा सर्वजन हिताय क्यों नहीं होती? हर विकास-योजना कुछ ख़ास लोगों के खाने-कमाने का धंधा क्यों बन जाती है? खाद्य-सुरक्षा क़ानून को ठीक से लागू किये बिना हर वर्ष समय पर भुखमरी से होने वाली मौतों को नहीं रोका जा सकता। जल-जंगल-ज़मीन पर आश्रित जनजातीय समूह विस्थापन झेलते हुए लगातार उपेक्षा और शोषण का शिकार बनते आ रहे हैं और इन्हें लगातार हाशिये पर धकेला जाता रहा है। मेधा पाटकर जैसी आंदोलनकर्मी विस्थापित समूह की आवाज़ उठाती हैं, तो सरकार तो विरोध में आती ही है, सामाजिक चेतना वाले संगठन और जनवादी पार्टियाँ भी साथ नहीं आतीं, क्योंकि उन पार्टियों की राजनीति-प्रेरित कार्यवाही का विरोध भी मेधा पाटकर करने लगती हैं जहाँ उन्हें लगता है कि अन्याय हो रहा है।

आज बड़े पैमाने पर यह प्रचारित किया जा रहा है कि 2050 तक नक्सलवादी समूह देश के बड़े हिस्से पर अधिकार कर लेंगे। नक्सलवाद भी भूख, शोषण और वंचना से पैदा हुआ दर्शन है। समस्या-आधारित अन्याय, ग़रीबी और शोषण से इन इलाकों को मुक्त करके ही इस समस्या का समाधान हो सकता है। नक्सलवादी हिंसा इस संगठन की समतामूलक समाज निर्माण की अवधारणा को प्रभावहीन बना रही है। एक ओर बुर्जुआ लोकतंत्र है, जिसकी विकास की अवधारणा अंततः पूँजीवाद के विकास के साथ ही जुड़ी होती है, तो दूसरी ओर सोवियत रूस द्वारा अपनाया गया मॉडल जहाँ केंद्रीकृत जनतंत्र अंततः तानाशाही में तब्दील होकर रह गया है। जनता की व्यापक भागीदारी और जन-समर्थन प्राप्त आंदोलन के ज़रिये ही सामाजिक बदलाव संभव है, लेकिन इसमें भी सामाजिक न्याय और अनुशासन आवश्यक होगा। तर्कहीन हिंसा तो आतंकवादी माहौल ही निर्मित कर सकती है।

शिक्षा और स्वास्थ्य पर सरकारी बजट कभी भी मेहरबान नहीं रहा है। यह भीषण महँगाई और खाद्य-पदार्थों की अनुपलब्धता एक कुपोषित बीमार पीढ़ी ही तैयार कर सकती है। जहाँ सार्वजनिक वितरण-प्रणाली को और प्रभावी बनाने की लगातार ज़रूरत महसूस की जाती रही है, वहीं इस बार बजट में 400 करोड़ रुपये की अतिरिक्त कटौती इस मद में की गयी है।

विकास का यह मॉडल ऐसा क्यों बन रहा है, जहाँ समाज लगातार दो हिस्सों में बँटता जा रहा है। मुकेश अंबानी एक छोर पर हैं, तो दूसरी ओर दुनिया में जहाँ ग़रीबी और भुखमरी सबसे ज़्यादा है, भारत वहाँ भी अग्रणी स्थान रखता है। इसी तरह, विश्व-स्तर पर सर्वे में कुपोषण और स्वास्थ्य-सुविधाओं की अनुपलब्धता के मामले में भी वह अफ़्रीका और एशिया के दूसरे मुल्कों के समकक्ष हो जाता है। किसी भी मुल्क में जब राज-व्यवस्था को संचालित करने वाली शक्तियों में धार्मिक आस्था या राष्ट्रवाद जैसी शब्दावली हावी होने लगती है, तो यह अपने आप में खानों में बँटा समाज निर्मित करने लगती है। इसमें जहाँ कुछ समूह केंद्रीय स्थिति ग्रहण करने लगते हैं, तो दूसरी ओर कुछ समूह उपेक्षित होते हैं, हाशिये की ओर धकेल दिये जाते हैं।

अभी पिछले दिनों मनगढ़ की घटना झकझोरने वाली है। धार्मिक आस्था पर जान देने वाले ऐसे ही भगदड़ का शिकार होते हैं। आज के समय में धार्मिकता को व्यापार और सत्ता का माध्यम बना कर समानांतर सामाजिक व्यवस्था एक नये रूप में दिखाई देने लगी है। जहाँ महज दस कंबलों को झपटने और मुफ़्त के भोजन के लिये हज़ारों भूखे, ग़रीबों की भीड़ उमड़ आती है और कुचले जाकर उन्हें अपनी जान गंवानी पड़ती है। ग़रीबी और असहायता का यह भी एक नज़ारा है।

उदारीकृत राज-व्यवस्था पर लगातार दबंग अमीर देशों की दादागिरी पूरी अर्थ-व्यवस्था को इस रूप में संचालित करने की कोशिश करती है, जहाँ 'सामाजिक न्याय' और 'समानता' जैसे शब्द अर्थहीन हो जाते हैं, फिर, चाहे किसानों की आत्महत्या जैसे मामले हों, संसाधन रहित क्षेत्रों में अकाल और भुखमरी की स्थिति हो या पर्यावरण के मामले हों। जैसा कि अभी कोपेनहेगेन सम्मेलन में हुआ, वहाँ दो तरह के प्रस्ताव पारित किये गये। पर्यावरण-प्रदूषण से निपटने के प्रयासों में पश्चिमी अमीर देशों के लिए एक तरह का प्रस्ताव और शेष दुनिया के लिए दूसरे तरह के आदेश और प्रस्ताव।

विकास की अवधारणा जब तक ऐसे दोहरे मानदंडों से निर्मित होगी, तब तक आर्थिक असंतुलन भी रहेगा और जीवनयापन की स्थितियों में ऐसा ही आकाश-पाताल का अंतर रहेगा, बात चाहे देश-समाज की हो या वैश्विक स्तर की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

0 0 0

इस अंक में डॉ0 भीमराव अंबेडकर को उनकी जयंती के अवसर पर स्मरण करते हुए हम विशेष सामग्री दे रहे हैं। भारतीय समाज में विकास की सार्थक और यथार्थवादी अवधारणा की जो शुरूआत ज्योतिबा फुले ने की, डा0 अंबेडकर ने उसे सुसंगठित आंदोलनकारी रूप प्रदान कर ऊँचाई तक पहुँचाया। हज़ारों साल से चली आ रही, घृणा और अमानवीयता पर आधारित समाज व्यवस्था से टकराना और उसे खंडित करना आसान नहीं था। राजनैतिक फैसले तो लिये जा सकते हैं लेकिन उस सामाजिक मूल्य व्यवस्था के सदियों पुराने शिलाखंडों के नीचे वृहद् मानव समूह को जीवाश्म बना देने की मंशा रखने वाली मानसिकता और परंपरा को विखंडित करना मानो सूर्य का पथ विचलन करना हो। महत्त्वपूर्ण चिंतक और लेखक श्री सुभाष गाताडे और प्रो0 शंभुनाथ अंबेडकर के अवदान पर और वर्तमान संदर्भों में उसके स्वरूप पर डा0 वी0जी0 गोपालकृष्णन समग्र चर्चा कर रहे हैं। यह भी संयोग है कि वर्तमान साहित्य : कमलेश्वर पुरस्कार से सम्मानित श्री हरपाल 'अरुष' की कहानी 'कैंपस' भी लगभग इन्हीं बिन्दुओं पर अपनी बात कहती है।

वर्तमान व्यवस्था का स्वरूप जो देश और समाज को कॉर्पो हाउस में तब्दील कर रहा है, जहाँ ग़रीब और ग़रीबी देश कर्णधारों के एजेंडा से गायब हैं, वहाँ आज फिर एक अंबेडकर ज़रूरत है जो जाति, धर्म और वर्ण की दीवारों को ध्वस्त कर को एक सूत्र में बांधे और आंदोलनकारी स्वरूप प्रदान को। भूख जैसी आधारभूत समस्या दूर होगी, विकास के समान सबके लिये बनेंगे। वर्ना अपनी-अपनी ढपली अपना अपना .. इस शोर में कोई आवाज़ नहीं सुनाई देगी।

0 0 0

मराठी के सुप्रसिद्ध कवि और ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्म बिन्दा करंदीकर का पिछले दिनों निधन हो गया। 'व साहित्य' परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि।

नमिता

(नमिता

मलखान सिंह सिसौदिया कविता पुरस्कार-2010

हेतु प्रविष्टियाँ आमंत्रित हैं।

नियमावली :

1. पुरस्कार की राशि रु. 10 हजार होगी।
2. वर्ष 2010 के पुरस्कार हेतु 31 मई 2010 तक प्राप्त प्रविष्टियाँ ही मान्य होंगी।
3. 31 मई, 2010 को 50 वर्ष की आयु तक के रचनाकार ही इस पुरस्कार के लिए मान्य होंगे।
4. पुरस्कार हेतु काव्य कृति/ कविता संग्रह का प्रकाशन 31 मई, 2005 के उपरांत हुआ हो।
5. काव्य कृति / कविता संग्रह की तीन प्रतियाँ कवि के संक्षिप्त परिचय के साथ 'वर्तमान साहित्य' के संपादकीय पर भेजी जायें।
6. कविता की मूल भावना जनोन्मुखी एवं धर्म निरपेक्ष हो।
7. पुरस्कार हेतु समिति चुनी गयी काव्य कृतियाँ/ कविता संग्रह तीन सदस्यीय निर्णायक मंडल को भेजी / भेजें जायें
8. निर्णायक मंडल के अभिमत के आधार पर पुरस्कार की घोषणा यथासंभव सितंबर, 2010 तक कर दी जायेगी।
9. निर्णायक मंडल का अभिमत अंतिम एवं मान्य होगा।

संपादक : वर्तमान साहित्य

28-एम.आई.जी., अवन्तिका-प्रथम, रामघाट रोड, अलीगढ़

Fax 0571-2742038, E-mail : vartmansahitya@gmail.com, vartmansahitya@yahoo.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना पंजाबी जातीय जीवन के कथाकार का

वेद प्रकाश

पंजाबी कथा-साहित्य के सुप्रसिद्ध रचनाकार रामसरूप अणखी हमारे बीच नहीं रहे। 14 फरवरी, 2010 की रात को अणखी जी ने अंतिम साँसें लीं। अगले ही दिन उनके सुपुत्र डा0 क्रांतिपाल का जन्मदिन था, जिसके लिए अणखी जी ने उन्हें अलीगढ़ जाने से रोक लिया था।

रामसरूप अणखी जी का जन्म 28 अगस्त, 1932 को पंजाब के मालवा क्षेत्र जिला-बरनाला के धौला गाँव में हुआ। यह मालवा अंचल आजीवन उनके रक्त में डूबा रहा। उनकी रचनाओं के केन्द्र में मालवा व्यापक रूप में अभिव्यक्त हुआ। इस बात का उदाहरण है कि एक क्षेत्र विशेष किस तरह व्यापक होकर विश्व साहित्य बनता है।

अणखी जी जीवन के अंतिम क्षण तक लेखन के क्षेत्र में सक्रिय रहे। इन दिनों वे अपना सोलहवाँ उपन्यास पूरा करने में लगे थे, जिसके 24 अध्याय पूरे हो चुके थे। हिन्दी पाठकों का बहुत बड़ा वर्ग उनके लेखन से सुपरिचित है। इन पाठकों के लिए अणखी जी ने अपनी अनेक रचनाओं का अनुवाद स्वयं किया। जिनकी कहानियों को छापने से 'सारिका' पत्रिका रचनात्मक उत्कर्ष पर पहुँची, उनमें रामसरूप अणखी भी थे। उनके तेरह संग्रहों में दो सौ से अधिक कहानियाँ संकलित हैं। उन्होंने पंद्रह उपन्यास लिखे हैं। कविता, कहानी, उपन्यास के अतिरिक्त उन्होंने संस्मरण, आत्मकथा, यात्रा-वृत्तांत आदि विधाओं में भी लिखा। 'कोठे खड़क सिंह' उपन्यास के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह उपन्यास हिन्दी में 'कहानी एक गाँव की' नाम से प्रकाशित हुआ। वे सत्तरह वर्ष से पंजाबी की प्रसिद्ध पत्रिका 'कहानी पंजाब' का संपादन कर रहे थे।

अणखी जी ने अपनी साहित्यिक-यात्रा का आरंभ कविता से किया। उनके पाँच कविता-संग्रह प्रकाशित हैं। फिर वे कहानी लिखने लगे। आगे चलकर मुख्यतः उपन्यास को उन्होंने उसके लिए चुन लिया, जिसे वे कहना चाहते थे। ज़ाहिर सी बात है कि उनके पास कहने के लिए बहुत-कुछ ऐसा था, जो कविता-कहानी में नहीं अँट सकता था। उन्होंने अपने उपन्यासों में महाकाव्यात्मक ग्रामीण जीवन को अभिव्यक्ति दी। मालवा का ग्रामीण जीवन, उसकी जटिलता, छोटे किसानों की स्थिति, संयुक्त परिवार के टूटने के कारण और परिवर्तित होते गाँव उनकी दृष्टि के केन्द्र में रहे। उनकी रचनाएँ पढ़ने पर पता चलता है कि पंजाब के गाँवों की कथा केवल पंजाब के ही नहीं पूरे भारत के गाँवों की कथा है। उनका 'सल्फास' नामक उपन्यास, संभवतः पहला ऐसा उपन्यास है, जिसमें किसानों की आत्महत्या को विषय बनाया गया है। आत्महत्या की मनोवृत्ति को सरलीकृत रूप में क्षणिक, अनैतिक आवेग कह दिया जाता है। इस उपन्यास में आत्महत्या के जटिल अंतः संबंधित कारणों का चित्रण किया गया है। इन कारणों के सामने संघर्ष करने की उपदेशात्मकता धरी रह जाती है। उपन्यास का मुख्य पात्र संता प्रकृति की मार, सूदखोर बनियों, सरकारी कर्ज़, पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के बीच फँसा छोटा किसान है, जो आत्महत्या में ही मुक्ति पा सकता है और पाता है। सल्फास की गोलियाँ उसकी फ़सल को सुरक्षा देती हैं और उसे यातना से मुक्ति। इस उपन्यास में संता के रूप में आज के असंख्य किसानों की मनःस्थिति और अनुभवों का मार्मिक चित्रण है। इस संदर्भ में याद आता है संत का वह चित्र, जिसमें अपनी छह एकड़ ज़मीन में से एक एकड़ गिरवी रखते समय उसके हाथ काँपते हैं। यह एक ट्रैजिक उपन्यास है। इसे पढ़ते हुए 'गोदान' की याद आती है। संता का जीवन-संघर्ष होरी के जीवन-संघर्ष के मेल का है मृत्यु भी। अणखी जी ने प्रेमचंद की परंपरा का विकास किया। प्रेमचंद के समय का गाँव आज कितना बदल गया है, इसे उन्होंने व्यंजित किया। आज संता जैसे किसानों को कर्ज़ देने वाली संस्थाएँ, साहूकारों, महाजनों तथा बनियों से अधिक क्रूर हो गयी है—दूसरी ओर उन्होंने संकेत किया। अपने एक अन्य उपन्यास 'कणकां दा कत्लेआम' में अणखी जी ने पूँजीवाद की अंधी दौड़ में कत्ल होते कणक (गेहूँ) का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। हम विकास कर रहे हैं, लेकिन यह विडंबना है कि इस विकास के कारण जल प्रदूषित हो रहा है, खेती नष्ट हो रही है। रामसरूप अणखी का रचना-संसार विविधरूपी, व्यापक एवं विश्वसनीय है। उन्होंने पंजाबी साहित्य को अनेक अविस्मरणीय स्त्री-पुरुष पात्र दिए हैं। उन्होंने पंजाब के जाट किसान की मोहक, परंपरागत छवि को तोड़कर उसके जीवन-संघर्ष, वास्तविक रूप को उभारा है। उनके उपन्यासों में ग्रामीण सामुदायिकता के टूटने के कारणों को भी खोजा जा सकता है। इस रूप में उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य का समाज शास्त्रीय महत्त्व भी है। पी०साईनाथ, जो कार्य अपने वैचारिक लेखों के माध्यम से कर रहे हैं, लगभग वही कार्य अणखीजी ने अपनी कृतियों में साहित्यिक-संवेदना से लैस होकर किया है।

पिछले दिनों अणखी जी का एक उपन्यास 'भीमा' आया। इस उपन्यास में बिहार से आकर पंजाब में बस जाने वाले खेत-मजदूर भीमा की कथा है। यह कथा जीवन के अद्भुत-अनकहे रूप को पकड़ती है। वह रूप हमारे देश तथा समाज के लिए सदैव एक मूल्य का कार्य करता रहा है, जिसकी हमें आज और अधिक ज़रूरत है। भीमा बचपन में पंजाब आया और एक परिवार में काम करते हुए बड़ा हुआ, बूढ़ा भी। भीमा पंजाबी जाट-परिवार का रक्त-संबंधी हो गया। उसने इस परिवार को उबारकर समृद्धि के शिखर पर पहुँचा दिया। केवल परिवार को ही नहीं गाँव को भी। गाँव में पुस्तकालय खुलवाना, लोगों में चेतना फैलना, ईमानदारी-सदाचार का प्रचार करना—ये काम ऐसे काम थे मानो पंजाब के उस गाँव में नवजागरण का नया दौर आ गया हो। एक प्रवासी बिहारी मज़दूर द्वारा पंजाब की समृद्धि में योगदान की ऐसी कथा संभवतः इससे पहले नहीं कही गयी। भीमा पंजाब के लिए जीता है और मरता है। गाँव में उसकी प्रतिमा लगती है। सिख परिवार के बच्चों को बताया जाता है—यह प्रतिमा तुम्हारे बाबा की है, इन्हें प्रणाम करो। यह उपन्यास आज के समय में उस परंपरा का उद्घाटन करता है, जिसकी उपेक्षा या विस्मृति के कारण सांप्रदायिकता नए-नए रूपों में प्रकट हो रही है। आज देश में फिर से क्षेत्रवादी संकीर्णता के रूप में शुद्धतावाद की प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ने लगी है। अणखी जी इस उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं कि यह जातिगत क्षेत्रीय अभिमान हास्यास्पद है, इसको कोई तर्क नहीं है। यहाँ याद आता है, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन, "हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का परिणाम है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है।"

रामसरूप अणखी साहित्य-संस्कृति के सक्रिय प्रसार के लिए भी सदैव याद किये जायेंगे। उन्होंने अपने ढंग की अविस्मरणीय, अनौपचारिक गोष्ठियों का आयोजन 'कहानी पंजाब' की ओर से किया। पहले वे 'दीया बले सारी रात' नाम से पंजाबी कहानी-गोष्ठी करते थे। बाद में उन्होंने इसे व्यापक बनाकर हिन्दी और उर्दू से भी जोड़ा। पिछले छह-सात वर्षों से वे पंजाबी-हिन्दी-उर्दू भाषाओं के कहानीकारों, युवा आलोचकों को आमंत्रित करके सफल गोष्ठियों का आयोजन कर रहे थे। इस कार्य में वे अपने मित्र प्रसिद्ध कथाकार-चित्रकार श्री मनमोहन बावा का सहयोग लेते थे। इन्हीं गोष्ठियों के दौरान अणखी जी के व्यक्तित्व का परिचय मिला। रचनाकार का एक रूप उसके लेखन से बनता है और एक रूप वास्तविक होता है। कभी-कभी ये दोनों अंतर्विरोधी भी हो सकते हैं। अणखी जी के इन दोनों रूपों में कोई भेद नहीं था। सादगीपूर्ण रहन-सहन, तुरंत आकर्षित कर लेने वाला व्यक्तित्व, छोटों से आत्मीयतापूर्ण, खुलकर निश्छल ढंग से किया जाने वाला व्यवहार, प्रभावित करने वाली आवाज़। जाना-पहचाना लगने वाला, पंजाब की जातीयता को मूर्त रूप देने वाला व्यक्तित्व। उनका जाना साहित्यिक-क्षेत्र की तो बहुत बड़ी क्षति है ही, उनसे जुड़े लोगों को एक बड़े मनुष्य का जाना भी हमेशा खलेगा। 'कहानी पंजाब' का निकलते रहना अणखी जी का सर्वस्व था। कुछ समय पहले इसके संपादन का भार उन्होंने अपने योग्य पुत्र क्रांतिपाल को सौंप दिया था। निश्चित ही क्रांतिपाल ने 'कहानी पंजाब' का कुशल संपादन किया है। आशा है कि आगे भी वे इस पत्रिका की यात्रा को जारी रखेंगे। अणखी जी के पौत्र मुबारक के शब्दों में "कहानी पंजाब" नयी बुलंदियों को छुएगा।"

रीडर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

विज्ञप्ति

वर्ष 1954 में जन्मे चर्चित कथाकार कृष्ण प्रताप की स्मृति में 'कृष्ण प्रताप कथा-सम्मान' हेतु वर्ष 2009 के लिए 28 फरवरी, 2010 तक, वर्ष 2006 से 2009 के मध्य तक प्रकाशित कहानी-संग्रह दो प्रतियों में आमंत्रित किये जाते हैं। 'कृष्णप्रताप कथा-सम्मान' में सन् 1960 के बाद जन्मे कथाकार शामिल होंगे। कथाकार की उम्र सीमा 50 वर्ष होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतकार उमाशंकर तिवारी
मगर ये भी तय है कि कुहरे छटेंगे

वशिष्ठ अनूप

हिन्दी नवगीत के संवेदनशील रचनाकार तथा बहुअधीत व अनुभव संपन्न आलोचक डॉ0 उमाशंकर तिवारी का चुपचाप चले जाना बहुत भीतर तक आहत कर गया। वे एक ज़िंदादिल और शालीन व्यक्ति थे। सन् 1986 में 'नवगीत दशक : दो' में उनके गीत पढ़कर उन्हें पत्र लिखा था। संयोग से उसके कुछ दिन बाद कवि देवेंद्र कुमार 'बंगाली' के साथ उनके दर्शन हो गए। हमने गोरखपुर विश्वविद्यालय के गौतम बुद्ध छात्रावास में उनका काव्य-पाठ कराया था। उस समय अतिक्रांतिकारिता के आवेग में कुछ मित्रों ने उनके 'हम ठहरे मिट्टी के माधो' जैसे गीतों पर काफ़ी नाराजगी दर्ज़ की थी जिनके जवाब उन्होंने बड़ी संजीदगी से दिये थे। पिछले 28 अक्टूबर को बनारस के एक अस्पताल में उनका निधन हो गया। उनका जन्म 31.7.1940 को गाज़ीपुर में हुआ था। तिवारी जी हिन्दी के अध्यापक थे और डी0सी0एस0के0 महाविद्यालय, मऊ के प्राचार्य भी रहे। उनके नवगीतों के तीन संग्रह—'जलते शहर में', 'धूप कड़ी है' तथा 'तोहफे काँच घर के' प्रकाशित हैं। इधर उन्होंने और भी कई स्तरीय गीत लिखे हैं। उनकी ग़ज़लों का एक संग्रह वाणी प्रकाशन से छप रहा है।

उनकी दृष्टि में 'नवगीत भारतीय काव्य-चिंता का सहज विकास है, जीवित संस्कृति की लय है। उसके साथ सांस्कृतिक संवेदन, जातीय अस्मिता तथा मानवोचित संस्कार जुड़े हुए हैं। उनका मूल 'ओरल पोइट्री' है, उसके कंसर्न शेयर्ड हैं और उसका सरोकार उस आदमी का है जो अपनी संपूर्ण बेबसी और लाचारी के बावजूद एक कुंठा रहित इकाई है।' नवगीतकारों में उमाशंकर तिवारी की दृष्टि सर्वाधिक आधुनिक रही है। वे अपने परिवेश, संस्कारों और अपनी संस्कृति से बड़े गहरे स्तर पर जुड़े हैं। वे परंपरा के श्रेष्ठ मूल्यों, ग्राह्य संस्कारों और वरेण्य आदर्शों का सम्मान करते हैं और उन्हें साथ लेकर चलना चाहते हैं। उनका यह प्रेम कभी पर्वों-त्योहारों से जुड़ाव के रूप में लक्षित होता है, कभी प्रकृति और परिवेश के प्रति लगाव में और कभी भारतीय संस्कृति में चले आ रहे प्रेम, बंधुत्व, परोपकार, करुणा, आस्था, सामूहिकता आदि के प्रति सम्मान के रूप में। सारे संस्कारों को समाहित किए हुए गाँव अपनी संपूर्णता के साथ उनके मन-प्राणों में बसे हुए हैं। गाँव की सोंधी गंध, हवा, शिष्टाचार, बातचीत का ढंग, बच्चों की दूधिया हँसी-सब किसी मायानगर से कम नहीं है।

स्वाद सोंधी गंध का, पुरवाइयाँ लहरें, मिल
गयी जैसे नदी, लंबे सफ़र के बाद
बोलती आँखें, उमगते लोग, ठिठके पाँव, भेंटने
को दौड़ते-से गाँव-घर लखराँव
आज पहली बार कुछ ऐसा लगा मुझको,
प्यार के ताबीज के मानिंद मेरा गाँव

उमाशंकर जी गाँव और परंपरा से जुड़े होने के साथ ही आधुनिक भी हैं। लेकिन उनकी आधुनिकता भारतीय ढंग की है, जो नवगीतों की ख़ासियत है। गाँवों में पाश्चात्य ढंग की आधुनिकता के विस्तार को वे स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं। आज की यह कड़वी सच्चाई है कि आधुनिकता की अंधी दौड़ में शामिल गाँव से लेकर शहर तक के लोग अपने परंपरागत श्रेष्ठ मूल्यों से कटकर अपनी वास्तविक पहचान खोते जा रहे हैं। शहरों की बुराईयाँ गाँवों में जड़ जमाती जा रही हैं। गाँवों का विद्रूप रूप उन्हें स्वीकार नहीं है। गाँवों का विकारग्रस्त होकर शहर और बाज़ार में बदलना उन्हें परेशान करता है—

ये शहर होते हुए से गाँव, पहचाने नहीं जाते।
दाँव पर अंधी सियासत के हुए गिरवी सभी चौपाल
ख़ून के रिश्ते हुए गुमराह, चलते हैं तुरुप की चाल
तेज नख वाले नये उमराव, पहचाने नहीं जाते।

यह युग उत्तर आधुनिकता और बाज़ारवाद का है। पहले हर चीज नीचे से क्रमशः ऊपर तक पहुँचती थी, किंतु आज स्थितियाँ एकदम उल्टी हैं। इस उत्तर आधुनिक पूँजीवादी समय में सब कुछ मुनाफे के गणित से संचालित और प्रायोजित किया जा रहा है। आज आवश्यकताएँ आविष्कारों को जन्म नहीं दे रही हैं, बल्कि आविष्कार और वस्तुएँ विज्ञापनों के माध्यम से ज़बरन ज़रुरतों को पैदा कर रही हैं। आज के बाज़ारों में सब कुछ बेचा और खरीदा जा रहा है। इस कड़वे यथार्थ को उमाशंकर जी ने एक गीत में बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है—

एक अदद शब्द के लिए, चलिये, बाजार तक चलें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौसम का हाल पूछने, ताज़ा अखबार तक चलें
ज़िस्म मेमने का क्या हुआ, बेतुका सवाल छोड़िये
स्वाद के नशे में झूमते, भेड़िये को हाथ जोड़िये
जुर्म की शिनाख़्त के लिए, आला दरबार तक चलें।

उमाशंकर तिवारी के गीत-संग्रहों में प्रेम और सौंदर्य के सुंदर उदाहरण दिखायी पड़ते हैं। कहीं ये भाव प्रकृति के माध्यम से प्रकट हुए हैं, कहीं संवादों के माध्यम से और कहीं एकांत-अनुभूतियों के रूप में।

- मादकता चम्पे की; लचक बेत की/ तुम हो ओ मेरी केतकी

बहता जाता इतना रूप, किधर से किधर को/मैं किसको बाँहों में बाँधूँ/ तुमको या अपने को (वन को या घर को?)

- आज की यह रात! पागल रात, देखें कौन सोता है/ दोनों तरफ़ है एक सी बरसात, देखें कौन सोता है

- यह तो अनुबंधों की रात है, मत जाओ, नूतन प्रतिबंधों की रात है, मत जाओ।

उमाशंकर तिवारी के गीतों में प्रकृति से गहरा लगाव लक्षित होता है। उनकी दृष्टि प्रकृति के प्रत्येक परिवर्तन पर है। खिलते हुए फूलों, घिरते हुए बादलों, बहती हुई नदियों, उन्नत पहाड़ों, लहलहाती फसलों और सुबह की लाली को देखकर वे प्रसन्नता से चहक उठते हैं।

अब अँधेरा विदा ले रहा, बज उठी है किरन-बाँसुरी
आज अपने अजाने लगे, दर्द सारे बहाने लगे,
यह झुका माथ, बंदी चरण, रोशनी में नहाने लगे,
थरथराने लगी वादियाँ, बज उठी है किरन-बाँसुरी।

यथास्थिति को बदलने का प्रयत्न उमाशंकर तिवारी के गीतों की ख़ास विशेषता है। यह देखते और समझते हुए कि आज की राजनीति छल, कपट, स्वार्थ और अवसरवाद से भरी हुई है तथा वर्तमान व्यवस्था का रूप बहुत विद्रूप हो चुका है और सकारात्मक मूल्य बहुत तेज़ी से क्षरित होते जा रहे हैं, वे निराश नहीं हैं। आशा का एक स्वर उनके गीतों में लगातार फूटता रहता है। ये पंक्तियाँ इस बात की गवाह हैं —

पिछली सारी बातें, बीत गयीं, आने वाले दिन की बात करो।
मगर ये भी तय है कि कुहरे छटेंगे, जहाँ रात बीती सबेरा तो होगा
इन्हीं ओस भीगी हुई फुनगियों पर, परिंदों का आख़िर बसेरा तो होगा
उजाले का रंगीन खत बाँटता-सा, कहीं डाकिया हाथ तेरा तो होगा
महज उस सुबह के लिए हम जियेंगे।

तिवारी जी के कई गीत, नवगीत से जनगीत तक की यात्रा करते हैं। वे इस बात को बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि वे लोग जो खेतों में ख़ून-पसीना बहाकर अनाज पैदा करते हैं और फैक्ट्रियों में हर वस्तु का उत्पादन करते हैं, उन्हें यदि उनका वास्तविक अधिकार नहीं मिला तो वे एक जुट होकर अपने हक के लिए निर्णायक और क्रांतिकारी संघर्ष करने से भी नहीं हिचकेंगे। यह जनवादी तेवर उनके एक गीत में बहुत स्पष्ट ढंग से व्यक्त हुआ है,

वे लोग जो काँधे हल ढ़ोते/ खेतों में आँसू बोते हैं/ उनका भी एक हक है फ़सलों पर /अब भी मानो तो बेहतर है/जिनके सपने बेगैरत हैं/अक्सर जो चुप रह जाते हैं /झिड़की ख़ाने के आदी हैं/फुटपाथों पर सो जाते हैं/वे लोग बड़े गुस्से में है/रुख पहचानो तो बेहतर है।

इस प्रकार गाँव से लेकर महानगरों तक को समेटते हुए उमाशंकर तिवारी के ये गीत ज़िंदगी के विविध रंगों को समेटे हुए हैं। ये गीत लंबे समय तक हिन्दी जगत को उनकी याद दिलाते रहेंगे।

प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग,
बी0एच0यू0, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा के नाथद्वारों से मुक्ति

सुभाष गाताडे

"हर एक के गुरू होते हैं, वैसे मेरे भी हैं। मेरे पहले और सर्वश्रेष्ठ गुरू बुद्ध हैं।... आज भी बौद्ध धर्म का प्रभाव मेरे मन पर क़ायम है और मेरा साफ़ मानना है कि विश्व का कल्याण सिर्फ बौद्ध धर्म के जरिए ही हो सकता है। दूसरे गुरू कबीर हैं। मुझे लगता है कि कबीर को बुद्ध के धर्म का मर्म समझ में आया था। मैंने कभी किसी को बड़ा महात्मा नहीं माना, गांधी को भी मैंने महात्मा कह कर संबोधित नहीं किया क्योंकि कबीर ने कहा है कि 'मानुस होना कठिन है तो फिर महात्मा कैसे हो सकता है।'

मेरे तीसरे गुरू जोतिबाफुले हैं। गैरब्राह्मणों के असली गुरू फुले ही हैं। दर्जी, कुम्हार, नाई, कोली, महार, माँग, चर्मकार आदि को इन्सानियत की शिक्षा फुले ने ही दी। कोई कहीं भी जाए लेकिन हम जोतिबा के रास्ते पर ही जाएँगे। साथ में भले ही मार्क्स को ले लें या और किसी को अपना लें। मगर जोतिबा का रास्ता हम नहीं छोडेंगे।"

(डा अंबेडकर, बंबई के नागरिक अभिनंदन समारोह के व्याख्यान में, 28 अक्तूबर 1954)

1.

इतिहास के साथ एक नयी मुलाकात का दौर है। सदियों निम्नवर्गीय स्थिति में डाल दिये गये तबके, हाशिये पर ढकेले गये समूह-समुदाय अपनी तमाम आवाज़ों के साथ उपस्थित हैं। यह कि साफ़ है हम अपने बीते दौर के स्थापित कहे गये कथनों की नयी जाँच पड़ताल करने के लिये अभिशप्त हैं चाहे वह हमें कितना भी प्रिय-अप्रिय लगे। इस मायने में जो औपनिवेशिक काल में खड़े सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन राष्ट्र की अवधारणा, भारत का कथित गौरवशाली अतीत, उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष की अपनी वर्णाश्रम की परिधि आदि इन सवालों से मुठभेड़ कराते हैं, हमारे अपने समय के लिए महत्वपूर्ण सबक देते हैं जिन पर अभी तक ज़्यादा ध्यान नहीं दिया जा सका है।

औपनिवेशिक हुकूमत का दौर भारत के राजनीतिक-सामाजिक तथा बौद्धिक जगत में मची हलचलों के लिए लंबे समय तक जाना जाता रहेगा। एक तरफ जहाँ औपनिवेशिक शासन के खातमे के लिए राजे रजवाड़ों, आदिवासी समूहों या किसान कारीगर समुदाय की व्यापक हलचलें चलीं वहीं साथ ही साथ सात समुंदर पार से आये अंग्रेजों की जीत से अचम्भित समाज के अग्रणियों के बीच उनकी जीत के कारणों को जानने के लिए गहन विचारमंथन भी निरंतर जारी रहा। प्रतिरोध और प्रतिक्रिया के इस सिलसिले में किसी किस्म की चीनी दीवार नहीं थी। एक 'स्पेक्ट्रम' जैसी स्थिति उपस्थित थी जहाँ अगर एक छोर पर महज प्रतिरोध में लगी ताकतें खड़ी थीं तो दूसरे छोर पर वे विचारक थे जो भारतीय समाज को सड़ांध से निकालने के लिये रास्ते की तलाश में थे जिसने उसे इस दारुण हालत में पहुँचाया था। इनमें वे समाजसुधारक भी शामिल थे जो भारतीय समाज की अपनी कमियों को दूर करने के लिये प्रयासरत थे।

यह सही है कि राजनीतिक विद्रोहियों, नेताओं की अगुआई में चले व्यापक जनांदोलनों के समानांतर या कहीं साथ-साथ चलीं समाजसुधारकों/सामाजिक विद्रोहियों की दखल ने ही भारतीय समाज को उस मुक़ाम तक पहुँचाया जहाँ वह आज खड़ा है। लेकिन यह भी उतना ही सही है कि समाजसुधारकों का काम निश्चित ही उतना आसान नहीं था। राजनीतिक-आर्थिक आंदोलनों के निशाने पर मुख्यतः बाहरी ताकतें थीं लिहाजा विदेशी बनाम देशी के द्वंद के आधार पर व्यापक जनसमुदाय को गोलबंद करना उनके लिये सापेक्षतः आसान साबित हुआ । इसके बरअक्स समाजसुधार के कामों की जटिलता यह थी वहाँ उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष में संलग्न अपने ही समाज में व्याप्त मध्ययुगीन, तर्कविरोधी, गैरजनतांत्रिक मूल्यों, संस्थाओं के खिलाफ आवाज़ बुलंद करनी थी जिसे भारत के वर्णाश्रम पर टिके विशिष्ट इतिहास ने बेहद जटिल बना दिया था।

लेकिन समाजसुधारकों के विभिन्न प्रयासों की भी अपनी अपनी विशिष्टताएँ-भिन्नताएँ थीं तथा सभी के लिए रास्ता उतना दुश्कर नहीं था। कुछ कोशिशों में जहाँ धार्मिक संप्रदायों के गठन के जरिये इसे अंजाम दिया जा रहा था (आर्य समाज, ब्राह्मो समाज, प्रार्थना समाज आदि) तो कहीं उन्हें महज परिवार तक सीमित रखा गया था। लेकिन इन सबमें सबसे रैडिकल हस्तक्षेप उन सामाजिक - सांस्कृतिक विद्रोहियों का था जिन्होंने भारतीय समाजसंरचना में निर्णायक पुरोहितवादी/ मनुवादी/ मुल्लाकेन्द्रित व्यवस्था को अपना निशाना बनाया अर्थात यहाँ के व्यापक समाज की पुनर्रचना और पुनर्संगठन के रूप में इस काम को अपने हाथों में लिया। जातिभेद का उन्मूलन' नामक अपनी ऐतिहासिक रचना में डा0 अंबेडकर 'परिवारकेन्द्रित' सुधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवम-समाजकेन्द्रित' सुधारों में मौजूद इसी फर्क की बात करते हैं। कुल मिला कर जहाँ पहली तथा दूसरी धारा में यहाँ के समाज में विशेषकर उच्च जाति के तबकों में व्याप्त बुराईयों को दूर करने का लक्ष्य रखा गया मसलन बालविवाह, विधवाविवाह पर रोक आदि प्रथाएँ उसके एजेंडे पर रहीं वहीं तीसरी रैडिकल धारा ने जातिप्रथा की समाप्ति का बीड़ा उठाया, स्त्री मुक्ति के प्रश्न को जुबाँ दी ।

इस तरह जहाँ पहली दो धाराओं ने जनसमुदाय को एक 'अच्छे हिन्दू' के तौर पर तराशने की कोशिश की और हिन्दू धर्म की स्थापित परंपराओं या अन्य किसी सुधरी शाखा में उसके आत्मसातीकरण को बढ़ावा दिया वहीं तीसरी धारा ने अपने अतीत के गौरव की पुनरुत्थानवादी गल्प को खारिज करते हुए तर्कबुद्धि पर खड़े एक नये इन्सान को गढ़ने का प्रयास किया। इसके अंतर्गत तमिलनाडु में खड़े हुए पेरियार रामस्वामी नायकर के नेतृत्ववाले आंदोलन ने तो ईश्वर को भी नकारा तथा नास्तिकता की हिमायत की। अगर पीछे मुड़ कर देखें तो इस धारा में हमें उन तमाम आधुनिक आंदोलनों के बीज मिल सकते हैं जो बाद के दिनों में पुष्पित-पल्लवित हुए। फिर वह चाहे नारी मुक्ति आंदोलन हो, स्वायत्त दलित आंदोलन हो या मजदूर आंदोलन हो। यह अकारण ही नहीं कि सत्यशोधक समाज की कार्यकर्ती ताराबाई शिन्दे को, पितृसत्ता को कठघरे में खड़ा करने वाली उसकी रचना 'स्त्री पुरुष तुलना' के चलते पहली नारीवादी सिद्धांतकार के सम्मान से आज नवाज़ा जा रहा है ।

यूँ तो इस रैडिकल धारा का विशेष जोर पश्चिमी भारत तथा तत्कालीन मद्रास प्रांत में था लेकिन अन्य सूबों में भी इस धारा के साथ खड़े लोग बिखरे हुए थे। स्थूल रूप में कहा जाये तो 1848 में स्त्रियों-शूद्रों-अतिशूद्रों के लिये स्कूल की शुरूआत करके महात्मा ज्योतिबा फुले तथा उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले इस रैडिकल धारा की नींव डालते दिखते हैं। उसके बाद सौ साल तक अविरल चली इस धारा में कई सारे नाम चमक उठते हैं जो अपने समझौताविहीन संघर्ष और प्रयासों से उसी मार्ग को और रौशन करते हैं-फिर वह चाहे ताराबाई शिन्दे हों, शारदा सदन की निर्मात्री तथा स्त्री शिक्षा की कार्यकर्ती रमाबाई हों, अपनी रियासत में शूद्रों, अतिशूद्रों के लिये शिक्षा तथा रोजगार के अवसरों में आरक्षण लागू करने वाले दूरंदेश राजा शाहू महाराज हों, तमिलनाडु के ज्योति थास हों, वर्तमान केरल में जन्मे दलितों के नेता अय्यनकली हों, स्वाभिमान आंदोलन की नींव रखने वाले रामास्वामी नायकर हों, संयुक्त प्रांत के स्वामी अछूतानंद हों या सबसे बढ़ कर दलितों के अपने स्वायत्त आंदोलन का आगाज़ करनेवाले बाबासाहेब अंबेडकर हों ।

2

जहाँ तक दलितों की शिक्षा का सवाल है तो हम पाएँगे कि समाजसुधारकों की विभिन्न धाराओं में ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान जिन रचनात्मक कामों को अंजाम दिया गया उसमें भी उन्हें स्थान अवश्य मिला। गांधी के नेतृत्व में पहले अछूतोद्धार और फिर हरिजन आंदोलन का जो कार्यक्रम हाथ में लिया गया उसमें यही लक्ष्य रखा गया था। लेकिन जिस तरह समाजसुधारकों की पहली दो धाराओं ने वर्णाश्रम की चौखट को स्वीकार किया था उसी तरह गांधी का परिप्रेक्ष्य भी इस मामले में सीमित था। प्रख्यात इतिहासकार सुमित सरकार अपनी चर्चित किताब 'आधुनिक भारत' (पेज 350, राजकमल प्रकाशन) में ठीक ही लिखते हैं कि "...गांधीजी के अन्य जनांदोलनों की भाँति इस आंदोलन में भी विस्तार के साथ नियंत्रण भी था, क्योंकि गांधीजी ने जानबूझकर हरिजन आंदोलन को सामाजिक सुधार तक सीमित रखा था और किसी भी प्रकार की आर्थिक माँगों से अलग रखा था। साथ ही उन्होंने समग्र रूप में जातिव्यवस्था की भर्त्सना करने से इंकार कर दिया।" वैसे ग्रामीण समाज के निम्नतम और सबसे शोषित वर्गों को, जिनमें दलित जातियों की बहुतायत थी, देश के बड़े भागों में कॉंग्रेस के प्रति पारंपारिक निष्ठा की भावना से बाँधने में ये कदम भले ही सहायक सिद्ध हुए हों लेकिन "जातिव्यवस्था नष्ट किये बिना अछूतों के उद्धार" की ये कोशिशें कुल मिला कर इस दिशा में कोई निर्णायक असर नहीं डाल सकीं।

आर्य समाज (जिसका उत्तर भारत के कई इलाकों में प्रभाव रहा) के प्रयासों की इस मामले में विवेचना करें तो हम पाएँगे कि उसने शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कामों को बेहद महत्व दिया जिसको अंजाम देने के लिये उसकी अगुआई में डी.ए.वी. शिक्षासंस्थानों की श्रृंखला खड़ी कर दी गयी। इसके बारे में विस्तृत अध्ययन निश्चित ही हुए होंगे कि इन संस्थानों में दलितों को कितना स्थान मिला। लेकिन इन कोशिशों की सीमाएँ शुरू से ही स्पष्ट थीं। उसने भी हिन्दू धर्मियों के आचार-विचार में शामिल विभिन्न रीतियों, प्रथाओं का विरोध तो किया लेकिन अन्य सभी धर्मों पर वेदों पर आधारित हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का दावा भी प्रस्तुत किया। और इस तरह "...समाजसुधार का विशिष्ट लक्ष्य एक प्रभुत्वपूर्ण अखिल हिन्दू पुनरूत्थानवाद की रूपरेखा में समाहित हो गया।" (वही, पेज 92)

गौरतलब है कि "सुधार आंदोलनों और पुनरुत्थानवाद में मात्रा की ही भिन्नता थी, गुणात्मक भिन्नता नहीं थी। ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाज जैसी 'आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों या यंग बंगाल या विद्यासागर के आंदोलन जैसे अधिक धर्मनिरपेक्ष आंदोलनों की संरचना भी न केवल पूर्णरूपेण हिंदू थी, बल्कि कुछ अपवादों को छोड़ दें तो इनके पीछे भी 'मुसलमानों की निरंकुशता अथवा 'अंधकारपूर्ण मध्य युग की संकल्पना ही कार्यरत थी।" वही, पेज 94)

अगर रैडिकल सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन के साथ समाजसुधार की इन कोशिशों की तुलना भी करें तो उनमें व्याप्त जमीन आसमान का अंतर साफ़ हो जाएगा । इस मायने में देखें तो यह रैडिकल धारा भविष्योन्मुखी थी, अलबत्ता यह भी सही है कि इसे अपने समय में समाजसुधार की अन्य धाराओं की तरह उतना सम्मान नहीं मिल सका।

अगर हम हिन्दुओं में चले इन समाजसुधार आंदोलनों के साथ भारतीय इस्लाम पर नज़र डालें तो वहाँ पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...वाद और पुनरुत्थानवाद का संघर्ष साफ नज़र आता है। ...लिम आंदोलन की अगुआई करने वाले सर सैयद अहमद ...ज्ञान को अपने ढंग से परिभाषित करते और स्वतंत्र गवेषणा ...विवाद) पर तथा कुरान के दिव्य ज्ञान और आधुनिक विज्ञान ...छोने गए प्राकृतिक नियमों के बीच तथाकथित समानताओं ...र देते दिखते हैं तो देवबंद आंदोलन गवेषणा के बजाय ...विदिता पर जोर देता है। अलबत्ता सर सैयद की अगुआई ...ता अलीगढ़ आंदोलन मुस्लिम समुदाय में मौजूद दलित-पिछड़ी ...यों के शिक्षित होने को लेकर सवर्ण हिन्दू समाजसुधारकों ...ख ही अख्तियार करता है। अपनी रचनाओं में सर सैय्यद ...इस बात से 'चिंतित' दिखते हैं कि अंग्रेजों के जमाने में ...वे जातियाँ भी पढ़ने लगी हैं।

3

यूँ तो हर वर्गों में बंटे हर समाज में शासितों को दमित ...के लिए शासकजमातें तरह-तरह का छल करती हैं लेकिन ...तीय उपमहाद्वीप में मौजूद सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं ...अपनी खासियतों ने इसे एक विशिष्टता प्रदान की थी। ...तौर पर प्राचीन परंपराओं वाले हमारे इस मुल्क में तो ...अतिशूद्र तथा स्त्री को ज्ञान से दूर रखने को ही धार्मिक ...यों में शामिल किया गया। 'स्त्री, शूद्र अगर वेद सुनें तो ...के कानों में गरम सीसा डालो' या 'ढोर गंवार शूद्र पशु नारी, ...ब ताडन के अधिकारी' आदि विभिन्न उक्तियों के जरिये ...तों के व्यापक हिस्से के लिए निर्धारित दण्डविधान इसी ...के परिचायक थे कि उनकी हालत क्या थी ? गौरतलब ...कि व्यापक हिस्से को शिक्षा से वंचित करने वाली धार्मिक ...प्राप्त व्यवस्था सदियों से यथावत चली आ रही थी। ...ता और प्रदूषण पर टिकी तथा श्रेणीबद्ध ऊँच-नीच अनुक्रम ...विधिसम्मत घोषित करने वाली यह व्यवस्था श्रम के नहीं, ...श्रमिकों के विभाजन पर आधारित थी। दुनिया में ...ही ऐसा कोई अन्य धर्म होगा जिसने इतने नंगे तरीके ...अपने उपासकों के बड़े हिस्से को मानवाधिकारों से वंचित ...था।

ऐसा नहीं था कि इस समूची स्थिति को दलित-शोषित-...जनता चुपचाप बरदाश्त किये जा रही थी। वह अपने ...विरोध भी करती थी, आवाज़ भी उठाती थी या ब्राह्मणवाद ...तहत हेय माने गये शारीरिक श्रम के इदारों में अपनी ...त्मकता, कलात्मकता का जौहर दिखाती थी। चूंकि धर्म ...पकड़ बहुआयामी थी इसलिये उनका यह विरोध भी उन्हीं ...में प्रगट होता था। भक्तिआंदोलन ऐसा दौर है जब उनका ...प्रतिरोध काफी संगठित रूप में सामने आया। जानने योग्य ...कि भक्ति आंदोलन के ज़्यादातर संत शूद्रों-अतिशूद्रों या स्त्री ...से थे। उसके तमाम सन्तों को देखिये, वे खुद शारीरिक ...का काम करते हैं। कोई चमड़े का काम करता है (संत ...) तो कोई बुनकर है (कबीर) तो कोई दर्जी (संत नामदेव) ...कोई गाँव की रखवाली (चोखामेला)। कुल मिला कर अपने ...में ही नहीं बल्कि आचरण में भी वे ब्राह्मणवाद का विरोध करते हैं।

इसके बावजूद कहना पड़ेगा कि समूची स्थिति में निर्णायक फर्क फिरभी मुमकीन नहीं हो सका था। शुद्धता और प्रदूषण पर टिकी, मनु के विधान को लागू करनेवाली प्रथा ज्यों की त्यों बरकरार थी। पुणे के पेशवाओं के राज में शिक्षा का हक मिलना तो दूर, दलितों के लिए दिन का समय तय था जब वे सड़क पर निकला करें ताकि उनकी छाया भी सवर्णों तक न पहुँचे या केरल की पुलया जाति के दलित तो पेड़ों पर रहते थे और सवर्णों से निश्चित दूरी से ज़्यादा नज़दीक आने पर उनको सीधे मारने का हुक्म था। अंग्रेजों के आगमन ने ही इस स्थिति में एक गुणात्मक फर्क डाला।

इस मायने में देखें तो 19वीं सदी का उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध हिन्दोस्ताँ की सरजमीं पर तमाम तरह की हलचलों के लिए चर्चित रहा। अंग्रेजों की हुकूमत के खिलाफ सियासी, आर्थिक मामलों को लेकर उठी जबरदस्त जन तहरीक से लेकर अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक मसले इसी दौरान जोरदार तरीके से एजेंडा पर आये।

0 0

19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में तत्कालीन बंबई प्रांत ने उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के शुरूआती दौर के अलावा रैडिकल सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन की एक सशक्त धारा के निर्माण की भी पृष्ठभूमि तैयार की।

भारत में अंग्रेजों का शासन शुरू होने से पहले प्रजा को शिक्षा देना सरकार का दायित्व नहीं माना जाता था। महात्मा फुले के जन्म से पहले राजसत्ता तथा धार्मिक सत्ता ब्राह्मणों के हाथ में होने के कारण सिर्फ उन्हें ही धार्मिक ग्रंथ पढ़ने का अधिकार था। निम्न जाति के जिन व्यक्तियों ने पवित्र ग्रंथ पढ़ने का प्रयास किया तो उन व्यक्तियों को मनु के विधान के तहत कठोर सजायें मिली थी। दलितों की स्थिति जानने के लिए पेशवाओं के राज पर नज़र डालें तो दिखेगा कि वहाँ दलितों को सड़कों पर घूमते वक्त अपने गले में घड़ा बाँधना पड़ता था ताकि उनकी थूक भी बाहर न निकले। वे सड़कों पर निश्चित समय में ही निकल सकते थे क्योंकि उनकी छाया से भी सवर्णों के प्रदूषित होने का खतरा था। जाहिर सी बात है कि दलितों के लिए शिक्षा के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था। वर्ष 1813 में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा जारी आदेश के तहत शिक्षा के दरवाजे सभी के लिए खुल गये। वैसे सरकार ने भले ही आदेश जारी किया हो लेकिन जमीनी स्तर पर स्थिति बेहद प्रतिकूल थी। ब्राह्मणों के लिये ही एक तरह से आरक्षित पाठशालाओं में जब अन्य जाति के छात्रों को प्रवेश दिया जाने लगा तब उसका जबरदस्त प्रतिरोध हुआ था।

यह कहना अनुचित नहीं होगा कि 1848 में महिलाओं के लिये खोले अपने पहले स्कूल के जरिये फुले दंपति ने उस सामाजिक विद्रोह का बिगुल फूंका जिसकी प्रतिक्रियायें 21 वीं सदी में भी जोरशोर से सुनायी दे रही हैं। 1851 तक आते आते महिलाओं, शूद्रों, अतिशूद्रों के लिये उनके द्वारा खोले गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूलों की संख्या पाँच तक पहुँची थी जिसमें एक स्कूल तो सिर्फ दलित महिलाओं के लिए था। जैसे कि उस समय हालात थे और ब्राह्मणों के अलावा अन्य जातियों में पढ़ने लिखने वालों की तादाद बेहद सीमित थी, उस समय इस किस्म के 'धर्मभ्रष्ट' करनेवाले काम के लिये कोई शिक्षिका कहाँ से मिल पाती। ज्योतिबा ने बेहतर यही समझा कि अपनी खुद की पत्नी को पढ़ लिख कर तैयार किया जाये और इस तरह 17 साल की सावित्रीबाई पहली महिला शिक्षक बनीं। फातिमा शेख नामक दूसरी शिक्षित महिला ने भी इस काम में हाथ बंटाया। इस बात के विस्तृत विवरण छप चुके हैं कि शूद्रों, अतिशूद्रों तथा स्त्रियों के स्कूल चलाने के लिए इस दंपति को कितनी प्रताड़नायें झेलनी पड़ीं। यहाँ तक कि सनातनियों के प्रभाव में आकर ज्योतिबा के पिता गोविंदराव ने उनको घर से भी निकाला।

महात्मा फुले ने अपने काम को महज शिक्षा तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने कई किताबों के जरिये ब्राह्मणवाद से उत्पीड़ित जनता को शिक्षित और जागरूक करने की कोशिश की। 'गुलामगिरी', 'किसान का कोड़ा', 'ब्राह्मण की चालबाजी' आदि उनकी चर्चित किताबें हैं। अपने रचनात्मक कामों के अंतर्गत उन्होंने वर्ष 1863 में अपने घर में ही 'बालहत्या प्रतिबंधक गृह' खोला। जानने योग्य है कि विधवा-विवाह के निषेध के कारण विशेषकर ब्राह्मण जाति की तमाम महिलाओं को काफी प्रताड़ना झेलनी पड़ती थी। अगर किसी के भुलावे में आकर वे गर्भवती हुईं तो बदनामी से बचने के लिये उन्हें उसके मारने के अलावा कोई चारा नहीं बचता था। ज्योतिबा-सावित्री ने महिलाओं को इस दुर्दशा से बचाने के लिये अपने घर में ही ऐसे गृह की स्थापना की। इसको लेकर समूचे पुणे में हैण्डबिल भी बाँटे गये थे। बालविधवाओं के बाल काटने से रोकने के लिये उन्होंने पुणे के नाईयों को संगठित भी किया था।

अपने कार्यों को सुचारू रूप से आगे बढ़ाने के लिये ज्योतिबा ने 1873 में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की और अपने दो मित्रों के साथ मिल कर 1873 में 'दीनबंधु' नामक अख़बार का प्रकाशन शुरू किया। 'स्त्री पुरुष तुलना' की रचयिता ताराबाई शिन्दे हों या पुणे के सनातनियों से प्रताड़ित पंडिता रमाबाई, दोनों की मजबूत हिफ़ाजत ज्योतिबा ने की।

जानने योग्य है कि सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ता तथा फुले के सहयोगी श्री नारायण मेघाजी लोखंडे ने बंबई की पहली ट्रेड यूनियन बॉम्बे मिल हैण्डस एसोसिएशन की स्थापना की थी तथा उन्हीं के आंदोलन की अन्य कार्यकर्त्री ताराबाई शिन्दे अपनी किताब 'स्त्री पुरुष तुलना' के चलते एक तरह से पहली नारीवादी सिद्धांतकार मानी गयी हैं। उनके अन्य सहयोगी भालेकर ने ज्योतिबा की ही प्रेरणा से किसानों के संगठन का बीड़ा उठाया।

इस तरह हम देख सकते हैं कि स्त्री, शूद्र, अतिशूद्र के उत्पीड़न का प्रश्न रहा हो या उनकी शिक्षा का, जनता को सचेत करने के लिये अख़बारों, पत्र, पत्रिकाओं के प्रकाशन मामला रहा हो या सेठों और ब्राह्मणों द्वारा साधारण जन के लिये रचे गये छलकपट का, सभी की मुख़ालिफ़त में वे हमेशा आगे रहे। लेकिन उनका सबसे बड़ा योगदान यही कहा जाएगा कि उन्होंने वर्णाश्रम पर टिकी ब्राह्मणवाद की चौखट को जबरदस्त चुनौती दी और यह साबित किया कि ऊँच-नीच अनुक्रम पर टिकी यह प्रणाली इन्सान को जोड़नेवाली नहीं है, तोड़ने वाली है। यह स्वाभाविक ही था कि नवोदित उपनिवेश विरोधी संघर्ष द्वारा गढ़ी जा रही राष्ट्र की अवधारणा उन्होंने प्रश्नों के घेरे में खड़ी की। उनका साफ़-साफ़ सवाल था कि जातियों में बँटा यह समाज कैसे एक राष्ट्र हो सकता है।

महात्मा फुले के विचारों और कार्यों की इन्हीं विशिष्टता के कारण दलितों के पहले महान नेता डा0 अम्बेडकर ने बौद्ध और कबीर के अलावा 'भारत के इस महान शूद्र' को अपना गुरू घोषित किया।

अगर स्त्री, शूद्रों, अतिशूद्रों को शिक्षित करने के उन्हें प्रयासों पर फिर लौटे तो हम पाएंगे कि उन्होंने शोषितों को शिक्षित करने के साथ साथ शिक्षा का एक वैकल्पिक माडल भी प्रस्तुत करने की कोशिश की। मैकॉले के शिक्षा की फिल्ट्रेशन पद्धति के माडल के बरअक्स अर्थात शिक्षा ऊँचे तबकों को प्रदान की जाये तो वह छन-छन कर निचले तबकों तक आएगी, महात्मा फुले ने निचले तबकों को सबसे पहले शिक्षित करने पर जोर दिया। आज कल चर्चित 'पड़ोस में स्कूल' (neighbourhood schools) की नीति की। भी उन्होंने हिमायत की यहाँ तक कि शिक्षा में सरकारी हस्तक्षेप का आग्रह किया। भारतीय जनमानस पर प्रगट रूप में कायम मनु के विधान को चुनौती देते हुए उन्होंने दलितों, शोषितों के लिए विशेष अवसर प्रदान करने की भी कोशिश की। उनकी मौत के चन्द साल बाद ही उनकी यह इच्छा कोल्हापुर के महाराजा शाहू महाराज ने पूरी की जो उन्हीं के आंदोलन से जुड़े थे। (1902)

1882 में अंग्रेज सरकार द्वारा शिक्षा संबंधी समस्याओं को जानने के लिए नियुक्त हंटर आयोग के सामने प्रस्तुत अपने निवेदन में फुले के इन शिक्षा संबंधी विचार और ठोस रूप में मिले दिखते हैं। वे साफ़ कहते हैं कि "मेरी राय है कि सभी को, प्राथमिक शिक्षा कमसे कम 12 साल तक अनिवार्य कर देनी चाहिए"। उनका यह भी प्रस्ताव था कि ब्राह्मणों की दलित जातियों की पढ़ाई के रास्ते में खड़ी की जा रही बाधाओं को देखते हुए उनकी बस्ती में अलग स्कूल बनाने चाहिए। शिक्षा तथा अन्य स्थानों पर शोषित तबकों को वरीयता देने की बात करते हुए वे इसमें यह भी लिखते हैं कि अध्यापकों को ठीक तनखाह मिलनी चाहिए तभी वे ठीक से पढ़ा पाएंगे। लेकिन उनका सबसे रैडिकल सुझाव शिक्षा के पाठ्यक्रम को लेकर है जो उनके मुताबिक "महज क्लर्क और शिक्षक तैयार करने की उपयोगिता तक सीमित है"। प्रचलित माध्यमिक शिक्षा को सामान्य लोगों की दृष्टि से अव्यावहारिक और अनुपयोगी घोषित करते हुए उसका विकल्प तलाशने की माँग करते हुए

4

आज भले ही विभिन्न समाजसुधारकों तथा लंबे कम्युनिस्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंदोलन के कारण केरल के दलितों को तमाम तरह के अधिकार देते हों लेकिन 19 वीं सदी तक उन्हें जानवरों से बेहतर नहीं समझा जाता था। उनसे न केवल बंधुआ मज़दूरी करायी जाती थी बल्कि सवर्णों से निश्चित दूरी रख कर ही उन्हें चलना होता था। किसी नायर (एक सवर्ण जाति) से पुलया (एक दलित जाति) की दूरी कमसे कम 64 फीट तय की गयी थी और अगर कोई पुलया इसका उल्लंघन करता दिखे तो चातुर्वर्ण्य के नियमों के तहत नायर को यह अधिकार दिया गया था कि वह उसे मार डाले। यहाँ तक कि नये कपड़े पहनने की भी उन्हें इजाज़त नहीं थी और अगर नये कपड़े पहनने हो तो उस पर कोयला या राख छिड़ककर ही उसे पहना जा सकता था। सड़कों पर स्वतंत्रता से घूमने पर भी रोक थी और रास्ते में चलते वक्त विशेष आवाज़ करनी पड़ती थी ताकि सवर्ण लोग जानें कि कोई पुलया जा रहा है। इस पूरी प्रणाली में महिलाओं के साथ सबसे ज़्यादा बुरा बर्ताव होता था। उन्हें अपने स्तन ढकने की इजाज़त नहीं थी। एक कहानी प्रचलित है कि एक बार कोई गरीब औरत अपने स्तनों को ढंक कर किसी रानी से मिलने गयी। रानी ने ख़फा होकर उसके स्तन वहीं कटवा दिये। ज़ाहिर सी बात थी कि पढ़ना लिखना तो मना था ही, सार्वजनिक स्थानों पर उनका प्रवेश वर्जित था। यहाँ तक कि बाज़ारों में भी उन्हें घुसने नहीं दिया जाता था।

इस समूची पृष्ठभूमि में देखें तो केरल के दलितों को शिक्षा तथा अन्य मानवाधिकार दिलाने का तिरूअनंतपुरम के पास पुलाया नामक दलित जाति में जन्मे अय्यनकली (जन्म 1864) के नेतृत्व में चला संघर्ष उत्पीड़ितों के शिक्षा के लिए चले आंदोलन में अपनी विशेष अहमियत रखता है। पुलया जाति के बच्चों को उन दिनों सरकारी स्कूलों में भी प्रवेश नहीं दिया जाता था। अय्यनकली जो खुद किसी तरह थोड़ा पढ़ लिख पाये थे उन्होंने इसका रास्ता वैकल्पिक स्कूलों को शुरू करके निकाला (1904)। ये ऐसे स्कूल थे जिसमें ब्लैकबोर्ड भी नहीं थे। ज़मीन पर पड़ी बालू ही बच्चों की किताब थी तथा उनकी उंगलियाँ ही पेन्सिल का काम करती थीं । इस तरह दलितों ने एक स्वाभिमान भरा कदम उठाया तथा सवर्णों द्वारा बनाए इस संहिता को चुनौती दी कि दलित पढ़ नहीं सकते हैं। वेंगनूर नामक जगह पर इस तरह का पहला स्कूल शुरू हुआ। सवर्णों को यह कदम कतई बरदाश्त नहीं हुआ और उन्होंने हमला करके इस स्कूल को नष्ट कर दिया।

उसके कुछ समय बाद 1907 में अय्यनकली के नेतृत्व में 'साधु जन परिपालन संगम' (SJPS) नामक संगठन की नींव डाली गयी। 'संगम' की तरफ से सरकार को कई दरखास्त दी गयीं कि वह दलित छात्रों को भी स्कूल में पढ़ने दे । इन आवेदनों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करके सरकार ने आदेश दिया कि दलित छात्रों को भी पढ़ने दिया जाये। हालाँकि त्रावणकोर रियासत का दीवान इस मांग के पक्ष में था लेकिन नीचे के स्तर के अफसरों ने इस आदेश को लागू नहीं होने दिया। इस आदेश का पता लगने पर अय्यनकली ने शिक्षा विभाग पर भी दबाव डाला कि वह इस दिशा में सख्त कदम उठाये। मगर अधिकारियों के कानों पर जूं नहीं रेंगी। अय्यनकली ने उन्हें चेतावनी भी दी कि वे इस माँग को मान लें वर्ना उनके खेत खाली रह जाएंगे । फिर अय्यनकली के आह्वान पर पुलया तथा अन्य जाति के दलित मजदूरों ने एक ऐतिहासिक हड़ताल शुरू की जिसमें प्रमुख माँगें थीं कि बच्चों को स्कूलों में प्रवेश दिया जाये, मजदूरों के साथ मारपीट बंद की जाये तथा उन्हें झूठे मामलों में फंसाना बन्द किया जाये। एक महत्वपूर्ण माँग यह भी थी कि दलितों को सड़कों पर आजादी से टहलने पर जो मनाही थी उसे भी खत्म किया जाये।

हड़ताल काफी दिनों तक जारी रही । जमींदारों को लगा कि भुखमरी का शिकार होने पर पुलया लोग काम पर लौट जाएंगे। मगर वे अडिग रहे। दलितों को भुखमरी से बचाने के लिए अय्यनकली ने इलाके के मछुआरों से संपर्क किया तथा उनसे सहयोग माँगा। सवर्णों के उत्पीड़न से परेशान मछुआरों ने खुशी खुशी उनकी मदद की। अन्ततः स्थिति बिगड़ती देख कर रियासत के दीवान की मध्यस्थता में दलितों के साथ समझौता हुआ जिसमें उन्होंने मजदूरी बढ़ाने तथा स्कूल में प्रवेश दिलाने और आज़ादी से घूमने फिरने की माँग मान ली । निश्चित ही यह दलितों की ऐतिहासिक जीत थी मगर अभी भी कई बाधाएँ पार करनी थी।

इस समझौते के तहत जब अय्यनकली अपने बेटे को प्रवेश दिलाने के लिए स्कूल पहुँचे तब वहाँ पर सवर्णों के साथ मुठभेड़ हुई। इस घटना से उत्तेजित दलितों का आंदोलन बेहद उग्र हुआ। त्रावणकोर रियासत के इतिहास में इस कालखण्ड को 'पुलया दंगा' के तौर पर संबोधित किया गया। गौरतलब है कि बीसवीं सदी की समूची दूसरी दहाई में दलितों को अन्य मानवाधिकार दिलाने के साथ शिक्षा का भी अवसर प्रदान करने का यह आंदोलन जारी रहा जिसे दूसरी दहाई के अंत में सफलता मिली ।

इस बात को भी रेखांकित करना यहाँ जरूरी है कि अय्यनकली जिन दिनों समाजसुधार की अपनी मुहिम में व्यस्त थे उन्हीं दिनों भारत में आज़ादी का आंदोलन गति पकड़ रहा था। सामाजिक विद्रोह के कामों में अपनी जिन्दगी खपा देने वाले अय्यनकली से जब पूछा गया कि राजनीतिक कामों में उनकी क्यों अरूचि है ? उनका जवाब दिलचस्प था : " किसके खिलाफ संघर्ष करें ओर किसके साथ जुड़ें ? क्या वे उन लोगों के साथ कंधा मिलायें जो आबादी का तीसरा हिस्सा उनके लोगों पर परंपरा के नाम पर जुल्म ढाते हैं ?" उनका साफ कहना था कि वे उन लोगों के साथ हाथ मिलाने के लिये तैयार नहीं हैं जिनके लिए उनके अपने लोगों का दर्शन भी प्रदूषणकारी है।" हालाँकि इसके बावजूद उन्होंने अपने संपर्क में आये तमाम नौजवानों को आजादी के आंदोलन में जुड़ने के लिये प्रोत्साहित किया।

वर्णाश्रम की परिधि में सिमटी राष्ट्र की अवधारणा के तहत आकार लेता उपनिवेशवादविरोधी संघर्ष और दूसरी तरफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समूचे आन्दोलन से बिल्कुल अलग वर्णाश्रम की चुनौती में खड़ी रैडिकल सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन की धारा के बीच यह एक ऐसा द्वंद्व था जो बार बार चुनौती बन कर उभरनेवाला था।

5

शिक्षा को शोषित-दलित समाज की प्रगति का प्रभावी साधन मानते हुए और इस बात को देखते हुए कि भारतीय समाज का वर्चस्वशाली तबका उनकी शिक्षा के बारे में गंभीर रहा है, डा0 अंबेड़कर ने लोगों में शिक्षा का प्रसार करने के लिए कई साधनों को आजमाया। छात्रावासों को शुरू करने से लेकर महाविद्यालय तथा संबंधित शिक्षण संस्थाएँ खोलने पर उन्होंने भरपूर जोर दिया। अपने राजनीतिक-सामाजिक जीवन के शुरूआती दौर से ही वह इसके प्रति सक्रिय थे। इसके दोनों आयाम थे, एक तो सरकार पर दबाव बनाना कि वह अधिक से अधिक शिक्षा संस्थान खोले तथा दूसरे, अपने स्तर पर ऐसी सांगठनिक प्रक्रियाओं को मजबूती देना ताकि शिक्षा के नए संस्थान बन सकें।

बम्बई विधान परिषद के सदस्य के तौर पर बजट पर चर्चा के दौरान (24 फरवरी 1927) डा0 अंबेडकर ने शिक्षा व्यवस्था के मौजूदा स्वरूप और उसकी भविष्य की रूपरेखा के बारे में विधिवत अपने विचार प्रगट किये थे। उन्होंने कहा "शिक्षा का प्रबंध इस तरह होना चाहिए कि साधारण जनता को शिक्षा सुलभता से प्राप्त हो। निम्न वर्ग के लोगों के लिए शिक्षा बहुत खर्चीली नहीं होनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि निम्न वर्ग को उच्च वर्ग के स्तर पर लाने के लिए उन्हें सहूलियतें देनी चाहिए।

उन्होंने आगे जोड़ा "शिक्षा एक पवित्र संस्था है। पाठशाला में मन सुसंस्कृत होते हैं। पाठशाला का मतलब होता है - नागरिक तैयार करनेवाला पवित्र क्षेत्र। यह एक राष्ट्रीयता, मानवता तथा अज्ञानरूपी अंधकार दूर करने का उदात्त कार्य है। स्कूल में समबुद्धि वाले, उदात्त, निःपक्षपाती और विशाल हृदय वाले अध्यापक होने चाहिए। अध्यापक वर्ग राष्ट्र का सारथी है क्योंकि उसके हाथ में शिक्षा की लगाम होती है। इसलिए समाजसुधार की दृष्टि से देखने पर शिक्षक कौन है, जैसा महत्वपूर्ण दूसरा कोई प्रश्न नहीं है।' (डा अम्बेडकर जीवन चरित, धनंजय कीर से उद्धृत, पेज 81)

वर्ष 1927 में दो चरणों में संपन्न महाड सत्याग्रह को भी देखें तो पता चलता है कि वह शिक्षा के मसले को किस कदर जनान्दोलन की माँग बनाने के प्रति सचेत थे।

एक क्षेपक के तौर पर इस ऐतिहासिक सत्याग्रह की चर्चा करना समीचीन होगा।

विलायत से लौटे डा0 अंबेडकर तथा अपने राजनीतिक सामाजिक कामों को सुचारू रूप से चलाने के लिये उनके द्वारा गठित 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की तरफ से ऐतिहासिक महाड सत्याग्रह की तैयारी के तौर पर विशाल सम्मेलन का आयोजन किया गया था। (19-20 मार्च 1927)स्थानीय वीरेश्वर सभागार में आयोजित इस सम्मेलन में चार हज़ार से ज्यादा लोग उपस्थित थे जिनमें महिलायें भी अच्छी खासी संख्या में शामिल थीं। अपने भाषण में बाबासाहेब ने कहा था कि "..कोई भी प्रगति संभव नहीं है जब तक हम अपने आप को आत्मशुद्धि की तिहरी प्रक्रिया से गुजारने के लिए तैयार न हों। हमें न केवल अपने पहनावे, अपनी बातचीत को ठीक करना होगा बल्कि अपने विचारों को भी नवजीवन देना होगा।" सभा में उपस्थित जनसमुदाय से उन्होंने अपील की कि "...मैं चाहता हूँ कि आज की तारीख से आप मरे हुए जानवरों का माँस खाना छोड़ दें। अब समय आ गया है कि हम अपने दिलोदिमाग से उच्चनीच की भावनाओं को मिटा दे और यह फैसला करें कि किसी के द्वारा फेंके गये टुकड़े हम नहीं खायेंगे। हम आत्मोन्नति तभी हासिल कर सकते हैं जब हम खुद की सहायता करने के लिए तैयार हों, अपना आत्मसम्मान हासिल करें और आत्मज्ञान प्राप्त करें।" अपने भाषण के अंत में उन्होंने लोगों को झकझोरते हुए कहा कि "मातापिताओं और जानवरों में कुछभी अन्तर नहीं रह जायेगा अगर वे अपनी सन्तानों को अपने से बेहतर स्थिति में लाने के प्रयास में नहीं जुटते।"

प्रस्तुत सम्मेलन में कई सारे महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये। जंगल की ज़मीन दलितों को खेती के लिये दी जाय, उन्हें सरकारी नौकरियाँ मिलें, सरकार न केवल शिक्षा को अनिवार्य करे बल्कि 20 साल के छोटे लड़कों तथा 15 साल से छोटी लड़कियों की शादी पर भी पाबन्दी लगाये... आदि विभिन्न आर्थिक सामाजिक मसलों पर प्रस्ताव मंजूर हुए । सरकार से अपील की गयी वह शराबबन्दी लागू करे तथा मरे हुए जानवरों का माँस खाने पर पाबंदी लगा दे । सम्मेलन में उच्चवर्णीयों का भी आह्वान किया कि वे अछूतों को उनके नागरिक अधिकार दिलाने में सहायता करें, उन्हें नौकरियाँ दें, अपने मरे हुए जानवरों को खुद दफनायें।

सम्मेलन के दूसरे दिन फिर वह घड़ी भी आयी जब दोपहर की चिलचिलाती धूप में बाबासाहेब अंबेडकर के नेतृत्व में हज़ारों लोगों का वह जनसमूह चवदार तालाब की ओर चल पड़ा। समूचे महाड कस्बे की जनता 'अछूतों' की इस 'मनबढ़पन' को आँखें फैलाये देख रही थी। हकीकत यही थी कि उपरोक्त तालाब से सभी धर्मों के लोगों को पानीं पीने या ले जाने की इजाज़त थी, यहाँ तक कि जानवरों के भी उस तालाब से पानी पीने पर रोक नहीं थी लेकिन जहाँ तक 'अछूतों' का सवाल था तो पानी के स्पर्श से उन्हें वंचित किया गया था। बाबासाहेब के नेतृत्व में उन हज़ारों दलितों तथा उनके तमाम समर्थकों ने भी पानी पिया। सम्मेलन में बाबासाहेब के भाषण की बातें गोया सभी के कानों में गूंज रही थी।... 'क्या हम यहाँ इसलिये आये हैं कि हमें पीने का पानी नहीं मिलता ?... नहीं, अपना इन्सान होने का हक जताने हम यहाँ आये हैं।"

सत्याग्रह के दूसरे चरण में वहीं महाड में विशाल जनसम्मेलन किया गया। 25 दिसंबर को चार बजे हजारों जनसमूह की भीड़ के बीच सम्मेलन की शुरूआत हुई। प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन के लिए महज़ महाड और उसके आसपास से ही नहीं बल्कि समूचे महाराष्ट्र से जातिभेद के उन्मूलन में रुचि रखनेवाले लोग जुटे थे। सम्मेलन के अपने शुरूआती वक्तव्य में बाबासाहेब ने प्रस्तुत सत्याग्रह परिषद का उद्देश्य स्पष्ट किया—"अन्य लोगों की तरह हम भी इन्सान हैं इस बात को साबित करने के लिए हम तालाब पर जाएँगे। अर्थात यह सभा समता संग्राम की शुरूआत करने के लिए ही बुलायी गयी है। आज की इस सभा और 5 मई 1789 को फ्रांसीसी लोगों की क्रांतिकारी राष्ट्रीय सभा में बहुत समानताएं हैं।" सभा में चार प्रस्ताव पारित किये गये जिसमें दूसरा प्रस्ताव मनुस्मृतिदहन का था जिसे सहस्त्रबुद्धे नामक एक ब्राह्मण जाति के सामाजिक कार्यकर्ता ने प्रस्तुत किया था। प्रस्ताव में कहा गया था कि "शूद्र जाति को अपमानित करनेवाली, उसकी प्रगति को रोकनेवाली, उसके आत्मबल को नष्ट कर उसके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गुलामी को मजबूती देनेवाली मनुस्मृति के श्लोकों को देखते हुए... ऐसे जनद्रोही और इन्सानविरोधी ग्रंथ को हम आज आग के हवाले कर रहे हैं।"

शाम को सभास्थान पर पहले से तैयार किये गये एक यज्ञकुण्ड में मनुस्मृति को आग के हवाले किया गया। यज्ञकुण्ड के आसपास 'अस्पृश्यता नष्ट करो' 'पुरोहितशाही का विध्वंस करो' जैसे बैनर लगे थे। सभा के दूसरे दिन स्थानीय कलैक्टर ने अदालत की ओर से जारी उस स्थगनादेश की प्रतियाँ सम्मेलन को सौंपीं जिसमें कहा गया था कि 'फ़िलहाल तालाब पर यथास्थिति बनायी रखी जाय अर्थात उसमें दलितों को वहाँ का पानी छूने से मना किया गया था। निश्चित ही वह एक बेहद नाजुक का समय था। एक तरफ सत्याग्रहियों का विशाल जनसमूह था जो चवदार तालाब पर सत्याग्रह के लिए तैयार था और जिसके लिए जेल जाने के लिए भी तैयार था, दूसरी तरफ था सरकार का वह आदेश जिसके तहत इस पर पाबंदी लगा दी गयी थी। रात भर विचारविमर्श चलता रहा। अन्त में सत्याग्रह स्थगित करने का कटु फैसला लिया गया। 27 दिसम्बर के अपने भाषण में डा0 अंबेडकर ने कहा कि "मुझे आपकी ताकत का अंदाज़ा है। लेकिन अपनी शक्ति का उपयोग समय, स्थान देख कर किया जाना चाहिये, ऐसा मुझे लगता है... सवर्णों ने सब तरफ से दमन का चक्र चलाया है। व्यापारियों ने बाज़ार बंद किया है। भूस्वामी (खोत) खेत नहीं दे रहे हैं। किसान लोग जानवरों को उठा ले जा रहे हैं।"

मनुस्मृति का दहन भले ही प्रतीकात्मक कार्रवाई थी, लेकिन उसके निहितार्थ स्पष्ट थे। इसी को आधार बना कर सवर्ण समाज ने शेष शूद्र-अतिशूद्र जातियों एवम स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा था। महाड सत्याग्रह एक तरह से इन मान्यताओं के खिलाफ़ बग़ावत का ऐलान था।

मालूम हो कि महाड सत्याग्रह की अगुवाई करनेवाली बहिष्कृत हितकारिणी सभा को जून 1928 में विसर्जित करके बहिष्कृत वर्गों में शिक्षा का प्रसार करने के लिए 'भारतीय बहिष्कृत समाज शिक्षण प्रसारक मंडल शुरू करने का निर्णय लिया गया। इस बात को मद्देनज़र रखते हुए कि अपनी सन्तानों की शिक्षा पर खर्च करने की अस्पृश्य समाज की क्षमता नहीं है, लिहाजा ऐसे लड़कों की सुविधा के लिए 'दलित वर्ग शिक्षण संस्था' की तरफ से छात्रावास खोलने का कार्य हाथ में लिया गया। इसके लिए तत्कालीन सरकार से भी अपील की गयी एवम् सहायता ली गयी।

अम्बेडकर की इस शिक्षणसंस्था को सन 1861 के 'चैरिटेबल सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट' क्रमांक 21 के अनुसार स्वीकृति प्राप्त हुई। चूंकि पाँच छात्रावासों को चलाने के लिए सरकार की तरफ से महज़ नौ हज़ार रुपए का अनुदान मिल रहा था, इसलिए डा अम्बेडकर को इन छात्रावासों को सुचारू रूप से चलाने के लिए फण्ड इकट्ठा करने पड़े। स्पष्ट है कि स्पृश्य हिन्दुओं की संस्थाएं इस संस्था के कार्य के प्रति उदासीन रहती थीं। सवर्ण समाज की इस बेरूखी के प्रति उनकी पीड़ा पारसी धर्मादाय संस्था संचालित करनेवाले एन0एम0 वाडिया को लिखे आवेदन-पत्र में भी स्पष्ट थी। पत्र में उन्होंने कहा कि, 'संस्था का यह अनुभव है कि अस्पृश्य वर्ग की दरिद्रता और उच्च-वर्गीय हिन्दुओं में अस्पृश्यों के प्रति उदासीनता या नैसर्गिक प्रेमाभाव के कारण इन दो वर्गों से निधि इकट्ठा करना बहुत मुश्किल है। इस वास्ते अनायास ही हमारी संस्था के माथे पर इस छात्रावास के प्रबंध के कारण कर्ज का बोझ बढ़ गया है।'

मालूम हो कि अपनी सियासी-समाजी ज़िंदगी के शुरू से ही शिक्षा के प्रचार-प्रसार में मुब्तिला डा0 अंबेडकर ने बम्बई ही नहीं मराठवाड़ा जैसे निज़ाम की हुकूमत वाले इलाकों में भी विभिन्न शिक्षण संस्थाओं की नींव डाली और छात्रावासों का निर्माण किया। आज़ादी के बाद नेहरू मंत्रिमण्डल में विधि मंत्री के तौर पर कार्यरत डा0 अंबेडकर को उन दिनों भी सिद्धार्थ महाविद्यालय की अपनी कक्षा याद रहती थी और वह हर सप्ताहांत दिल्ली से मुंबई पहुंच जाते।

6

उत्तर अम्बेडकर काल के दलित आंदोलन के सबसे चर्चित नारों में से एक है—'शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो' का नारा। आज जबकि संविधान लागू होने के साठ साल बीत चुके हैं और भारत में शोषित उत्पीड़ित तबकों में से अलबत्ता एक छोटा-सा हिस्सा शिक्षा ग्रहण कर चुका है और शासन-प्रशासन में निर्णयकारी पदों पर विराजमान है, तब मुमकिन है कि इस नारे की उतनी अहमियत मालूम न होती हो। लेकिन हमारे बीते कालखंड पर एक सरसरी निगाह डालने से ही पता चल सकता है कि इस नारे को संभव बनाने के लिए कितने सारे सामाजिक विद्रोहियों ने अपनी बेशकीमत ज़िंदगी लगायी, सत्ता तथा सम्मान में ऊँचे पदों पर विराजमान निहित स्वार्थी तत्वों की मुख़ालिफ़त झेली। शिक्षा पाने की इस जद्दोज़हद पर एक अन्य वजह से भी निगाह डालना जरूरी है क्योंकि जैसा कि विदित है, शिक्षा जगत पर बाहरी और आंतरिक खतरे बढ़ते जा रहे हैं इस समय इस पूरे कालखंड का सही मूल्यांकन हमें चन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरी बातों पर सोचने के लिए मजबूर कर सकता है।

इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि अंबेडकर के गुज़र जाने के बाद उनकी अगुआईवाले राजनीतिक-सामाजिक आंदोलन का जिस तरह से विकास हुआ है, उसमें शिक्षा का एजेंडा पीछे छूट रहा है। क्या ऐसे आमूलचूल बदलाववाले आंदोलन की कल्पना भी की जा सकती है कि मुल्क के भविष्य के कर्णधारों की तालीम का सवाल उनके एजेंडे से लगभग गायब है। इस मामले में सभी किस्म की परिवर्तनकामी ताकतों में एक विचित्र किस्म का 'एका' दिखता है। चाहे फुले, अंबेडकर को माननेवाले लोग हों या मार्क्स के अनुयायी, दोनों के लिए राजनीतिक सत्ता हासिल करने का मसला इतना केन्द्रीय रूख अख्तियार कर चुका है कि आज की तारीख़ में लोगों की तालीम का मसला राज्य सरकार, एनजीओ या विभिन्न किस्म के दक्षिणपंथी संगठनों के नियंत्रण में है। अकेला संघ परिवार हजारों की संख्या में स्कूल चलाता है, ईसाई या मुस्लिम संगठनों ने भी अपनी बात लोगों तक पहुँचाने के लिए हजारों स्कूल, मदरसे कायम किए हैं।

क्या इस मसले पर इन ताकतों की शीतनिद्रा टूट सकेगी, क्या अंबेडकर की विरासत को आगे बढ़ाने के प्रति गम्भीर लोग इसपर कोई निर्णायक कदम उठा पाएँगे, इसका जवाब भविष्य के गर्भ में ही छिपा है।

एच 4, पूसा अपार्टमेण्ट, रोहिणी–सैक्टर-15, दिल्ली-110089

नवगीत

दो नवगीत

आनंद कुमार 'गौरव'

1

बाँट दिये घट-तट पनघट सब
भाव वेग तन-मन बाँटे हैं
आँगन घर उपजे काँटे हैं।

हम अनैतिहासिक अनुश्रुति से
हैं अनुस्यूत अनूतर कृति से
सदाचार के हाट सजाये
बैठे अथक अनैतिक भृति से
लिये त्राटकी अश्रु निवेदन
सबने निजी स्वार्थ छाँटे हैं।

सरोकार सब व्यापारी से
विस्तृत हुए महामारी से
गीत-गात सद्भावों के स्वर
आहत गूँगी लाचारी से
पुनः अहिल्या पाहन जैसी
राम आस पथ सन्नाटे हैं।

आवाहन अब नहीं जागते
सुर-चेतन भी नहीं रागते
राम-लखन-सीता-रामायण
अब चौबारे नहीं बाँचते
नंगी पीठों को आयातित
आर लगे पैनी साँटे हैं।

2

चाह स्वर्णिम भोर की
आकार बौने जागरण के
प्रावधानों की उलझती
भीड़ जीवन हो गई है।

कृत्य काले दृश्य उजले
देह भस्मीली दिशा हैं
नृत्य बेड़ी में लपेटे
घूमती फिरती ऋचा हैं।
पीर दूजों की चुराती
मानवी रुत सो गई है।

नींद ओढ़े बिजलियाँ हैं
रतजगे पर तितलियाँ हैं
अब स्वयं को पूजने की
आरती हैं तालियाँ हैं
जो धरा पूजे सजाये
वह जवानी खो गई है।

हैं पराजित खोज सारी
गीत स्वर मृदु सोच सारी
अब सुगंधों से विमुख हैं
मूर्छित हैं फूल-क्यारी
सद-सुधा आवाहना
बेहद जरूरी हो गई है।

पो.बॉ. 311, मुरादाबाद (उ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलित और साम्राज्यवाद

शंभुनाथ

दलितों के साम्राज्यवाद से रिश्ते के प्रश्न पर 1857 याद आता है। ऐसा नहीं है कि दलित समाज हमेशा दया का पात्र था, साम्राज्यवाद के प्रतिरोध की उसकी कोई परंपरा नहीं है। मातादीन भंगी ने सिपाही मंगल पांडे से पानी पीने का लोटा माँगने का साहस दिखाया था। मंगल पांडे के फटकारने पर मातादीन ने उसकी ख़बर ली थी, "बहुत जल्दी तुम्हारी पंडिताई निकल जाएगी, जब तुम दाँत से सुअर और गाय की चर्बी से बने कारतूस काटकर बंदूक से चलाओगे।" सिपाहियों को भड़काने के जुर्म में मातादीन भंगी को फाँसी दे दी गई। उपर्युक्त घटना में मातादीन भंगी और मंगल पांडे वर्ण व्यवस्था के स्तर पर आमने-सामने खड़े दिखायी देते हैं—परस्पर विरोधी। इसके बावजूद, मातादीन भंगी का फाँसी पर चढ़ना और विद्रोह के बाद मंगल पांडे का फाँसी पर चढ़ना साम्राज्यवाद के दौर में एक ही नियति की सूचना है।

मातादीन भंगी ही नहीं, इतिहासकारों के हवाले से झलकारी बाई, लोचन मल्लाह, महाबीरी देवी और पासी जाति के वीरों की प्रेरणादायक भूमिका का पता चलता है। ऐसा नहीं है कि उनकी 1857 के योद्धाओं से कोई निजी हमदर्दी थी, वस्तुतः वे स्वाधीनता संग्राम में अपना एक नया भविष्य खोज रहे थे। यह सिलसिला महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने वाले राष्ट्रीय आंदोलन में भी बना हुआ था।

यह सही है कि ज्योतिबा फुले ने 1857 के स्वाधीनता संग्राम का समर्थन नहीं किया, क्योंकि ब्रिटिश राज में ब्राह्मण दलितों का उत्पीड़न कर रहे थे। फुले सोचते थे कि इसकी क्या गारंटी है कि नाना राव पेशवा, जो महाराष्ट्र में इस संग्राम के नेता हैं, विदेशी शासकों के जाने के बाद ब्राह्मण होने के अधिकार से यही जुल्म नहीं करेंगे। उनको लगता था कि ब्राह्मणों के शासन से ब्रिटिश शासन बेहतर है। 'दयालु ब्रिटिश शासन' ने शूद्रों को शिक्षित करने में अग्रणी भूमिका निभाई है। इस तरह महाराष्ट्र के समाज सुधारक फुले का नज़रिया हिन्दी पट्टी के दलित शहीदों से भिन्न था। उनके मन में प्रथम स्वाधीनता संग्राम के नेतृत्व के प्रति जो संदेह था, वह स्वाभाविक था। इसके साथ यह भी कहा जाना चाहिए कि भीषण साम्राज्यवादी दमन के दौर में दलितों की सामाजिक मुक्ति की परियोजना को यदि फुले अंग्रेज़ी राज की आलोचना से थोड़ा भी जोड़ते हैं तो यह बड़ी बात है।

फुले ने 'किसान का कोड़ा' में दलित सोच को कई मुद्दों पर साम्राज्यवाद-विरोध से जोड़ा। 'किसान' दरअसल 'दलित' से बड़ी कैटेगरी है, इसमें फुले बेहिचक प्रवेश करते हैं। उन्हें इसका दर्द है, "किसान खेत छोड़कर जहाँ जीविकार्जन हो सके, वहाँ जा रहे हैं।" (महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली)। दूसरी तरफ़, अंग्रेजी शासन की दशा है, "सरकारी गोरे अफ़सर आमतौर पर ऐशो-आराम में मदहोश रहते हैं। इस वजह से उनको किसानों की वास्तविक स्थिति के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए फुरसत ही नहीं मिलती।" (वही)। फुले चुनौती देते हैं कि यदि ब्रिटिश सरकार ने फिजूलखर्ची बंद करके दुर्बल शूद्र किसानों के विद्यादान का व्यापक प्रबंध नहीं किया, 'इस जुल्म का अंज़ाम अच्छा न होगा।' फुले अंग्रेजी सरकार को 'न्यायप्रिय सरकार', 'दयालु सरकार' कह कर संबोधित करते हैं। वह उसके साम्राज्यवादी शोषण की भी शिनाख़्त करते हैं, 'जो किसान सभी देशवासियों को सुख के आधार हैं, उनके इतने बुरे हाल हैं। उनको समय पर पेट भर रोटी और तन भर कपड़ा भी नहीं मिलता। उनकी गरदन पर सरकारी लगान देने की तलवार लटकी रहती है। उनकी दुर्गति को साहब लोगों का शिकारी कुत्ता भी नहीं सूँघता।' (वही) ब्राह्मणों के पाखंड और निर्दयता के साथ किसानों के शोषण के संदर्भ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आलोचना फुले की बहुआयामिता का चिह्न है।

अंबेडकर का दलितों के लिए संघर्ष अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक-सामंती व्यवस्था से भारतीय जनता के संघर्ष का एक अंग था। वह कभी नहीं चाहते थे कि अंग्रेज़ भारत पर राज करें। निश्चय ही हम स्वाधीनता आंदोलन और दलितों के बीच दूरी पैदा करने के साम्राज्यवादी प्रयत्नों से वाकिफ़ हैं। अंग्रेज़ी राज के एक अफ़सर सर लीपेल ग्रिफिन का विचार था कि विद्रोह को फैलने से रोकने के लिए जाति प्रथा एक बहुत अच्छी चीज है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन जब उभार पर था, यह स्वाभाविक था कि अंग्रेज भारत के सामाजिक अंतर्विरोधों का अपने हित में अधिक से अधिक उपयोग करते। उतना ही यह भी स्वाभाविक था कि दलित हिन्दू वर्ण व्यवस्था को चुनौती देते, क्योंकि इसके बिना वे पूरी तरह स्वाधीन न हो पाते। हिन्दू समाज व्यवस्था की आलोचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मनुवाद से विद्रोह किये बिना दलितों के लिए भारत की आज़ादी का ज़्यादा मतलब न था, जिस तरह महाजनी-ज़मींदारी व्यवस्था से संघर्ष किये बिना किसानों के लिए भारत की आज़ादी का ज़्यादा मतलब न था।

भारत की राजनीतिक व्यवस्था में केंद्रीकरण हमेशा एक बड़ी समस्या रहा है। यही वजह है कि हाशिए के लोगों को अपनी आवाज़ मुखर करने के लिए 'पृथकता' का रास्ता बार-बार चुनना पड़ा। अंबेडकर ने हिन्दुओं की वर्णाश्रम व्यवस्था को चुनौती देते हुए हिन्दू धर्म पर प्रहार किए। ये प्रहार कबीर के प्रहार से ही नहीं, 19वीं सदी के हिन्दू समाज सुधारकों के प्रहार से भी भिन्न प्रकृति के थे। फिर भी अंबेडकर मानते थे कि हिन्दुओं में विवेकबुद्धि से संपन्न लोग हैं, 'लाहौर के जाति-पाँत तोड़क मंडल का कार्य सराहनीय है।' वे यह भी कहते थे कि ऐसे व्यक्ति ज़्यादा नहीं हैं (जाति प्रथा का विनाश)। इसलिए कुछ प्रांतों में हिन्दू धर्म का विरोध दलितों के अस्तित्व का प्रश्न बना।

ब्राह्मणवाद के विरोध का एक अर्थ धार्मिक कूपमंडूकता का विरोध करके बुद्धिवाद की ओर बढ़ना है, राष्ट्रीयता और जनतंत्र की ओर बढ़ना है। अंबेडकर ने यह स्पष्ट किया था, 'हम ब्राह्मणों के विरुद्ध नहीं हैं। हमारा आक्रमण ब्राह्मणवाद पर है। हमें ब्राह्मणवाद-ग्रस्त ब्राह्मणेतर आदमी दूर प्रतीत होता है और ब्राह्मणवाद-रहित ब्राह्मण नजदीक लगता है' (भाषण अंश)। ब्राह्मणवाद के विरोध का अर्थ ब्राह्मण जाति के सभी लोगों का विरोध नहीं हो सकता। ब्राह्मणवाद सिर्फ़ ब्राह्मणों की देन नहीं है। प्राचीन काल से ही ब्राह्मणवाद की संपूर्ण निर्मिति में राजसत्ता का योगदान है। ब्राह्मणवाद किसी भी सत्ता विमर्श में मौजूद हो सकता है, हालाँकि ब्राह्मणवाद से अधिक सटीक शब्द मनुवाद है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि वर्तमान समय में ब्राह्मणों का अपना कोई स्वतंत्र अत्याचार और पाखंड-तंत्र नहीं है। ब्राह्मणवाद बाजारतंत्र का एक साधारण अंग बन चुका है। इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि सवर्णों के मनोभाव में इन सौ वर्षों में काफ़ी परिवर्तन आया है और लगातार आ रहा है। ऐसे लोगों में धर्मनिरपेक्षता की भावना पनपी है। ब्राह्मणवाद का संपूर्ण सार इस समय हिन्दुत्ववाद में समाया हुआ है। हिन्दुत्ववाद और साम्राज्यवाद में जबर्दस्त मिली भगत है। भारतेंदु ने कहा था, 'हिन्दू चूरन इसका नाम, विलायत पूरन इसका काम।' इसलिए ब्राह्मणवाद का विरोध करते हुए जब कोई हिन्दुत्वाद से समझौता करता है, तब लगता है कि वह कहीं हवा में तो मुक्का नहीं भांज रहा है।

यह एक वास्तविकता है कि आज भी सबसे अधिक दलित हिन्दू धर्म और देवी-देवताओं को मानते हैं। ऐसे दलितों की संख्या आज भी कम हैं जो धर्मांतरण करके ईसाई या बौद्ध हुए हैं। इसके अलावा, यह भी स्पष्ट है कि न वैश्वीकरण एक जाति को लेकर चल सकता है और न जनतंत्र एक जाति को लेकर चल सकता है। इसमें संदेह नहीं है कि हिन्दू लोगों में आज भी कूपमंडूकता है, उनके मन में दलितों के प्रति हेय दृष्टि है और हिंसा की घटनाएं होती हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि सभी हिन्दू ऐसे हैं। समय तेजी से बदल रहा है, हिन्दू भी बदल रहे हैं। इसलिए नई स्थितियों में दलितों को भी कुछ नया सोचना है।

हमारे समाज में सदियों बाद एक गुणात्मक परिवर्तन यह आया है कि दलितों में एक तीव्र अहसास पैदा हुआ है कि उनकी ज़िंदगी में बदलाव ज़रूरी है। उन्हें आत्मसम्मान के साथ जीने का हक है। सबसे महत्वपूर्ण बात है, वे अपने मुक्ति के रास्तों की खोज में हैं। यह भी देखना होगा कि दलित जीवन में उत्थान के नाम पर इन दिनों राजनीतिक तौर पर जो कुछ घटित हो रहा है, वह व्यक्ति-पूजा से बँधे होने के कारण निराशाजनक अधिक है। दलित वैश्वीकरण और सामाजिक पृथकता की राजनीति के बीच सैंडविच बन गए हैं। धर्म और धर्मांतरण की तरह वैश्वीकरण भी एक छद्म आशा है। इसके मायालोक में दलितों की आवाज़ गूँज रही है और खो भी जा रही है।

दरअसल साम्राज्यवाद और सामंतवाद से 19वीं-20वीं सदी के ऐतिहासिक संघर्ष की स्मृतियाँ जितनी क्षीण होंगी, उसकी बौद्धिक-सांस्कृतिक उपलब्धियाँ समाज से उतनी ही खोती जाएंगी। वैश्वीकरण और सामंतवाद को हमारे देश में मिथ्या सामाजिक भिन्नताओं को पोषित करने का तब उतना ही सहज अवसर मिलेगा।

इस समय फुले, अंबेडकर या गांधी आ जाते, निश्चय ही वे सिर्फ अपनी मूर्तियाँ नहीं लगा रहे होते, पार्कों पर अपना नाम नहीं खुदवा रहे होते। वे सिर्फ प्रतीक बनकर ठिठुर नहीं रहे होते। इससे भी समझ में आ सकता है कि उनके समय के महान आंदोलन आज किस दशा में है।

हमारे देश में प्रातिनिधिक जनतंत्र की जगह सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व की माँग बढ़ी है। इन दिनों सांस्कृतिक अंतर्मिश्रण की भारतीय परंपराओं की उपेक्षा करके सांस्कृतिक भिन्नताओं के उत्खनन का अभियान तेज है। कहा जा रहा है कि दलितों का अलग सांस्कृतिक राज्य है, पिछड़ों का अलग, हिन्दुओं का अलग, मुसलमानों और सिखों का भी अपना अलग-अलग और इसी तरह अनगिनत क्षेत्रीय सांस्कृतिक राज्य हैं—एक 'गाँव' में कई राज्य हैं।

इस पृष्ठभूमि में साम्राज्यवाद से भारतीय लड़ाई का अर्थ है अपने राष्ट्र को इतना समावेशी बनाना कि उसमें सांस्कृतिक विविधता के लिए सम्मान हो। उसमें जाति-दंभ और भेदभाव न हो। आज़ादी के बाद की सबसे बड़ी बिडंबना यह है कि भारत के लोग भारतीय नवजागरण और जनतंत्र के उच्च आदर्शों से धीरे-धीरे विच्छिन्न होते गए। प्रेमचंद ने कभी स्वराज्य की केंद्रीय अवधारणा को दलित, स्त्री और किसान से जोड़ा था, जो हाशिए पर थे उन्हें वाणी दी थी। कभी निराला ने कहा था, 'भारतवर्ष का यह युग शूद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति के उत्थान का युग है और देश का पुनरुद्धार उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा है" (चाबुक, 1929)। निराला जैसे व्यक्तियों ने कभी यह नहीं सोचा कि वे ब्राह्मण हैं। वे ऊँचे हैं, यह बिल्कुल नहीं सोचा। उनके भीतर निश्चय ही अंतर्विरोध थे, पर वे अपने अंतर्विरोधों से लड़ रहे थे। ब्राह्मण होकर भी उन्होंने लिखा, 'आज ब्राह्मण-विचार, पुरानी परिपाटी जितने अंशों में यहाँ है, देश उतने अंशों में पराधीन है, और नवीन मानव धर्म जितने अंशों में है, देश उतने ही अंशों में स्वाधीनता-प्रेमी है" (1939)। वे पराधीनता के सामंती स्रोतों की ओर इशारा करते हैं और 'मानव' होने की बात करते हैं। निश्चय ही कोई मनुष्य खुद अमानवीय होकर इतिहास की अमानवीयताओं से नहीं टकरा सकता। इतिहास की अमानवीयताओं से टकराना खुद भी मानवीय होना है।

यह ज़्यादा कहने की ज़रूरत नहीं है कि हिन्दी समाज इस समय पृथकता और घृणा-प्रतिघृणा का अखाड़ा बना हुआ है। हर तरफ़ घृणा का उत्सव है। जिधर देखो, उधर लोग तीतर-बटेर की तरह लड़ रहे हैं। इस समय हिन्दी पट्टी में जाति भेदभाव चरम सीमा पर है। इसका एक रूप दलित-पिछड़ा की राजनीतिक लड़ाई है। इसके अलावा अन्य भी कई स्तरों पर सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व की राजनीति है। हर तरफ प्रतीक-युद्ध है, जनता को सिर्फ़ प्रतीकों से संतुष्ट रहने के लिए कहा जा रहा है। यह समूचा मामला वैश्वीकरण के रास्ते से साम्राज्यवाद को पुनः निमंत्रण-जैसा है।

निराला ने, कहा था, 'धोबी, पासी, चमार, तेली /खोलेंगे जो अँधेरे का ताला/ एक पाठ पढ़ेंगे टाट बिछाओ।' वह 'पाठ' साम्राज्यवाद-सामंतवाद विरोध का था। उस 'पाठ' के अब टुकड़े किए जा रहे हैं। मनुष्य के सपनों का वह टाट चिंदी-चिंदी हो रहा है। दरअसल जाति को राजनीतिक हथियार बनाते ही उसके भीतर से सैकड़ों अंतर्विरोध दौड़ने लगते हैं। जातिवाद 'दूसरों' को भस्म करने के लिए दौड़ता भस्मासुर होता है। ऐसे अनगिनत छद्म अंतर्विरोध पैदा हो जाते हैं, जो साम्राज्यवाद-विरोध और धर्मनिरपेक्षता की लड़ाई को कमजोर करते हैं। जाति के भीतर से जाति निकलने लगती है। जाति के खिलाफ़ जाति खड़ी होने लगती है। मुख्य संघर्ष हाशिए पर चला जाता है। किसी को इस समय प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' की याद आ सकती है। लखनऊ में ईस्ट इंडिया कंपनी की फौजें बढ़ी आ रही थीं। यह जानकर भी मीर और मिर्जा शहर से दूर शतरंज खेल रहे थे। इस दौरान किसी मक़ाम पर उन्होंने एक-दूसरे पर तलवारें उठा लीं और वे आपस में ही मर गिरे। प्रेमचंद ने टिप्पणी की, 'वे कायर नहीं थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था।'

आज के राजनीतिक शोरगुल में वही चीज दिखती है, नेताओं में राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया है। इसलिए एक बुनियादी ज़रूरत 'राजनीति के राजनीतिकरण' की है, जो उसका 'मानवीयकरण' भी है। निश्चय ही ऊपर से आए ब्राह्मणवाद को चुनौती देकर पुनः 'नीचे से ब्राह्मणवाद' को उभारना राजनीतिक भाव का अधःपतन ही है। यह ऐसा बिखराव लाने वाला क़दम है, जो हमें साम्राज्यवाद के आगे निरंतर बेध्य बना देता है। देखा जा रहा है कि इस समय हर विभाजित गुस्सा साम्राज्यवाद के लिए हवामिठाई है।

साम्राज्यवाद सदा से केंद्र और हाशिए और हाशिए तथा हाशिए के बीच तनाव पैदा करता आया है। वह आज भी पश्चिमी संस्कृति के प्रसार के साथ मिथ्या स्थानीय प्रभेद फैला रहा है, जिसका एक रूप जातिवादी वर्चस्व के लिए होड़ है। दुनिया में धर्म, रंग, जाति पहले भी राजनीतिक भेदभाव और सत्ता के हथियार बने हैं और मानवता आक्रांत हुई है। इस बार खासकर एशियाई देशों में पृथकतावाद किसी ज्वालामुखी की तरह लावा बरसा रहा है। कुछ साल पहले डरबन सम्मेलन में पृथक मतदाता मंडल की माँग की तरह दलित प्रश्न को नस्लीय भेदभाव के दायरे में ले जाने की कोशिश हुई थी। इधर दलित और दलित के बीच में खाई कम नहीं बढ़ी है। दलित का स्त्री के प्रति संकुचित नजरिया सामने आ चुका है। देखने की ज़रूरत है कि दलितों का जीवन सिर्फ ब्राह्मणवाद से आक्रांत है या साम्राज्यवाद भी उन्हें रौंद रहा है।

आज दलित विमर्श में परंपरा के विखंडन की उत्सुकता जितनी गहरी है, साम्राज्यवाद से मुठभेड़ की नहीं। अतीत के हिन्दुत्ववादी महिमामंडन और दलितवादी विखंडन के अतिवादों ने अस्मिता के सवाल को एक प्रायोजित मामला बना दिया है। साम्राज्यवाद जब भी आता है वह सबसे पहले इतिहास को छेड़ता है। वह आदमी को अतीत में जो कुछ श्रेष्ठ है उसे भूलने और जो कुछ निकृष्ट है, उसे याद करने के लिए उकसाता है। इसी असर में दलित अतीत को पूर्णतः छोड़कर आगे बढ़ना चाहते हैं या सिर्फ़ उसके कड़वे प्रसंगों को याद करते हैं। अतीत उनकी नज़र में बाकी समाज से उन्हें अलग करने के लिए एक धारदार कुल्हाड़ी है। वह कहीं से भी फटी जगहों को सीने की सुई नहीं है। एक तरह से हिन्दुत्ववादी और दलितवादी दोनों ही अपने-अपने तरीकों से अतीत की मानवीय उपलब्धियों को खो देते हैं। ये अतीत का एकांगी चित्र इस तरह सामने लाते हैं, जैसे उन्होंने अतीत को अंतिम रूप से जान लिया है।

यह स्वाभाविक है कि काँचा इलैया अपने मानवीय आत्मसम्मान की खोज करते हैं और बताते हैं, 'मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ।' उन्होंने दलित और पिछड़े का भेद मिटाकर 'दलित बहुजन' की एक विस्तृत धारणा दी। इसके अलावा, शूद्रवाड़ों की लोक संस्कृति की विशिष्टता की ओर भी ध्यान खींचा। हिन्दुओं के नायक कृष्ण हैं, जो अर्जुन को अपने ही सगे-संबंधियों की हत्या करने के लिए प्रेरित करते हैं, जबकि शूद्रवाड़ों में स्थिति उलट है। इलैया बताते हैं, 'प्रकृति के साथ उनके रोजाना के व्यावहारिक रुख से उनके चरित्र का निर्माण होता है। वह बुरा आदमी माना जाता है, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्हीं कारणों से अपने सगे-संबंधियों की हत्या करता है या कोई अपराध करता है। जो दूसरों को हत्या करने के लिए उकसाता है उसे भगवान नहीं, शैतान माना जाता है।'' (मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ, 1995)। वे ठीक ही ऊँची जाति के असमान और अमानवीय हिन्दू सांस्कृतिक मूल्यों की आलोचना करते हैं, दलित बहुजन संस्कृति का भारत की एक महत्वपूर्ण विरासत के रूप में अध्ययन प्रस्तुत करते हैं और दलित बहुजन को उत्पादक वर्ग के रूप में देखकर उसे मानवीय गरिमा देते हैं।

काँचा इलैया का यह मत भी उल्लेखनीय है कि आज़ाद भारत में हिन्दुत्व एक ब्राह्मणवादी आधुनिकता है। वे संप्रदायवाद के ख़तरे को समझते हैं। वे 'ब्राह्मण' और 'बनिया' की दो कैटेगरी ठीक ही बनाते हैं, पर 'ब्राह्मण' की कैटेगरी को जितना विस्तार देते हैं, 'बनिया' की कैटेगरी को विस्तार नहीं दे पाते—इसका संबंध पूँजीवाद, ईस्ट इंडिया कंपनी और वैश्वीकरण से जोड़ नहीं पाते। हम जानते हैं कि टाटा हिन्दू नहीं है, फिर भी 'बनिया' है और उनका पूँजीवाद से संबंध है। पूँजीवाद और नव-पूँजीवाद के दलितों पर पड़े सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव का मूल्यांकन भी काँचा इलैया के यहाँ मौजूद नहीं है। इस बिन्दु पर यह समझने की ज़रूरत है कि आदमी की जाति स्थिर हो और अभी टूटी न हो, पर खुद आदमी आज न आर्थिक स्तर पर स्थिर है और न सांस्कृतिक स्तर पर। फ़िर भी काँचा इलैया की पुस्तक 'मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ' मुख्यतः हिन्दू राष्ट्रवाद का दलित जवाब है और धर्मनिरपेक्षता की परियोजना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

काँचा इलैया की एक नई पुस्तक 'पोस्ट हिन्दू इंडिया' (2009) आई है। इसमें वे देखते हैं कि सैकड़ों सालों से आध्यात्मिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित दलित बहुजनों की जागरुकता के कारण ईसाई, बौद्ध और इस्लाम धर्मों में एक नया आध्यात्मिक और जनतांत्रिक विस्तार आया है। उन्हें लगता है कि भारत में ये धर्म ही विस्तार पाएँगे और हिन्दू धर्म धीरे- धीरे मर जाएगा। काँचा इलैया वस्तुतः हटिंगटन की 'सभ्यताओं की टकराहट' की अवधारणा को भारत के गृह युद्ध में हिन्दू धर्म की मौत के रूप में विकसित करते दिखायी देते हैं।

एक खास आर्थिक समय में ईसाई, इस्लाम और बौद्ध धर्मों में अध्यात्म, विज्ञान, जनतंत्र पनपेगा और हिन्दू धर्म को मरना होगा, यह एक अनोखी कल्पना है। ब्राह्मण, बनिया, नव-क्षत्रिय और दलित बहुजन की जातिवादी श्रेणियों में ज़्यादा बँध जाने की वजह से काँचा इलैया अपने पहले के धर्मनिरपेक्ष झुकावों से भिन्न रास्ते पर जाकर अपनी एक धार्मिक पोजीशन बना डालते हैं, क्योंकि वे पूरी दुनिया को सिर्फ धर्मों में बंटा देखते हैं। उन्हें अमेरिका का कोई ख़तरा नज़र नहीं आता। उन्हें आतंकवाद और हिन्दुत्ववाद नजर नहीं आते। उन्हें हिन्दू धर्म की तरह ही ईसाई, इस्लाम, बौद्ध आदि सभी धर्मों में नए सिरे से बढ़ता पाखंड नजर नहीं आता। उनका कहना है, आदि शंकर से लेकर विवेकानंद, अरविंद और राधाकृष्णन तक सभी ने अंततः हिन्दू धर्म को मौत की तरफ ढकेला। भारतीय अतीत का ऐसा इकहरा मूल्यांकन इसी निष्कर्ष तक पहुँचाएगा कि दलितों की मुक्ति सिर्फ हिन्दू धर्म की मौत में है। कहना होगा, धर्म इस तरह नहीं मरा करते।

यह चिंताजनक है कि उपर्युक्त ढंग के दलित विमर्श में अमेरिकी साम्राज्यवाद और वैश्वीकरण को लेकर कोई 'कंसर्न' दिखायी नहीं देता। क्या एक बार फिर इतिहास अपने को दुहरा रहा है ? हर परंपरा पर कीचड़ उछालो और हर आधुनिकीकरण को आँख मूँद कर मान लो! आधुनिकता पर अमेरिकी संस्कृति और साम्राज्यवाद का कब्ज़ा बढ़ता जा रहा है, इस संबंध में दलित रुख का खुलासा होना अभी बाकी है।

सामाजिक न्याय एकरेखीय मामला नहीं है। सामाजिक न्याय की लड़ाई में यदि गुजरात नरसंहार जैसी घटनाओं और अमेरिका-ब्रिटेन के नए साम्राज्यवाद को लेकर सक्रिय चिंता नहीं है, वह एकांगी है। कहना न होगा कि सामाजिक न्याय का नारा लगाने वाले गुजरात नरसंहार के प्रश्न पर एक समय चुप थे और अमेरिका की तरफ पहले की तरह उनके पलक-पांवड़े बिछे हैं। सामाजिक न्याय की लड़ाई का अर्थ राजनीतिक मोलभाव और जातिघृणा नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय को विलंबित न्याय के हकदारों तक पहुँचाते हुए इसे अंतत जातिनिरपेक्षता, धर्मनिरपेक्षता और साम्राज्यवाद-विरोध तक ले जाना है। सामाजिक न्याय की बुनियाद में जाति घृणा को स्थापित करने का एक ही नतीजा होगा। पहले से बनी दीवारों के अलावा पिछड़े-पिछड़े के बीच, पिछड़े-दलित के बीच, दलित-दलित के बीच भी घृणा की कुछ नई दीवारें उठ जाएँगी। घृणा बूमरेंग करेगी। यह राजनीतिक बर्बरता को महिमामंडित करना और उसे सामाजिक वैधता प्रदान करना कहा जाएगा। जाति-राजनीति का ही यह वरदान है कि अपराध ही अब राजनीति का मुख्य दरवाजा है। जाति आश्रय में हर अपराधी को एक सांस्कृतिक वैधता मिल जाती है। आज कुछ प्रेमी युगल ही हैं, जो जाति तोड़ रहे हैं, अन्यथा जाति आज सत्ता की घिनौनी राजनीति का हथियार बनी हुई है।

हिन्दी क्षेत्र में दलित विमर्श एक विलंबित विमर्श है। इसमें फिलहाल फुले, अंबेडकर और दलित पैंथर्स के दौर की ऊँचाइयाँ नहीं हैं। आज के दलित विमर्श में कुछ सच्ची पीड़ाओं के बावजूद उत्तेजनात्मक बातें अधिक हैं। यह विमर्श हिन्दी क्षेत्र में आज भी आंदोलन का रूप नहीं ले पा रहा है। यह भी स्पष्ट है कि दलित विमर्श और राजनीति के बीच फाँक है। आज की दलित राजनीति में न दलित समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और अन्य निर्बुद्धिपरकताओं के उन्मूलन पर जोर है, न नए-पूँजीवादी जीवन की खुदगर्ज़ी और कृत्रिमता से मुक्ति को बैचेनी है और न दलित स्त्री की मुक्ति का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। दलित राजनीति में दलित-जाप ज़्यादा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलितों को शोषणमूलक स्थितियों से मुक्त करने के लिए क्रांतिकारी परिवर्तन की कोशिशें नहीं झलकतीं। दलित राजनीति में आयी राजनीतिक विकृतियाँ आ गयी हैं, जो लोकतांत्रिक कहे जाने वाले दलों को पहले ही खा चुकी हैं। कुछ सच्चा है तो वह अपमानना की आग, जिसमें दलित हज़ारों साल से जलते रहे हैं और आज भी जल रहे हैं। वे अभी भी सामाजिक अत्याचारों की दुनिया से बाहर नहीं आ पाए हैं।

हम 1857 में मातादीन भंगी और मंगल पांडे की एक मिसाल देख चुके हैं। अतः दलितों के सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि उनका बुद्धिवाद, जनतंत्र और साम्राज्यवाद-विरोध से आज क्या संबंध है, क्योंकि इसी पर निर्भर करता है कि उनका अन्य सामाजिक वर्गों और समुदायों से कोई रिश्ता हो सकता है या नहीं हो सकता। मुक्तिबोध ने कहा था, 'कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती, यदि वह है तो सबके साथ है।' दरअसल दलितों की मुक्ति तभी संभव है जब प्रचलित राजनीति से हटकर इसके लिए एक नयी शुरूआत होगी। दलित या कोई समुदाय अकेले कभी मुक्ति हासिल नहीं कर पाएगा। निश्चय ही दलितों का 'अन्य' से संबंध सुदूर अतीत को देखकर नहीं भविष्य को देखकर बनना चाहिए, क्योंकि तभी आने वाले दिनों में वे साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष को नेतृत्व दे सकेंगे, जिसकी उनमें अपार संभावना है।

389, जी.टी. रोड, हावड़ा-711106

लघु कथा

छोटे मुँह की बात

जसबीर चावला

बात बात-बात में बहुत बढ़ गयी। अब लोग कह रहे थे, तो उसे भी मानना पड़ रहा था कि छोटे मुँह से निकली है। चाहती तो थी एक बार देख आये जाकर, कैसा होता है छोटा मुँह, जो बड़ी-बड़ी बात निकाल लेता है; और कैसी होती हैं उसकी छोटी-छोटी बातें! पर जाए कैसे ? वह बड़ी हो चुकी थी। निकलते ही भाइयों ने उसे बड़ी कर दिया था—"बड़ी बात है! बड़ी है...!"

'बड़ी-बड़ी' सुनते उसे उतना बुरा नहीं लगता था, जितना तब जब मुँह कोसते थे—"छोटा! छोटा!" आख़िर इसमें कौन-सा पाप है, अगर बिना बड़े हुए कोई वैसी निकाल दे? आख़िर बात तो बस बात होती है, उसके दाँत या नाख़ून तो होते नहीं कि किसी को नोंच दे या काट खाए! फिर उससे इतनी घबराहट क्यूँ फैल रही थी? छोटा मुँह कहीं नज़र आना भी बंद हो गया था। वह कहीं अकेले जंगल में जा छुपा था या कलाली में दफ़न हो गया था। बड़ी बात उसे ढूँढ रही थी। न मिलने पर खीझ रही थी। कभी गुस्सें में कई छोटी-छोटी बतकड़ियों में टूट रही थी। भाई उसे खींच रहे थे।

अचानक उसे वही मुँह मिला। बड़ी बात को देखते ही वह रुआँसा हो गया। बात उसके गले लगना चाहती थी, पर मुँह को अपने आकार की हीनता-ग्रंथि थी। वह और छोटा हो गया। बात उसके पास रहना चाहती थी, पर मुँह ने सिर हिला दिया।

"तुम वाकई बहुत छोटे हो!" बात फट पड़ी और कंधे पर सुबकती रही । फिर कभी नहीं आयी।

वह बड़े मुँह के पास गयी। उसमें से बास आ रही थी। छोटी बातों की पीक से भरा था वह। लंबी पिच्च के साथ छोटी बात निकलती ।

"तुम बड़े मुँह हो!", बड़ी बात बोली—"मैं तुम्हारे साथ रहूँगी।"

मुँह ने सिर हिलाया—"न.... न, तुम मुझसे नहीं निकलीं।"

"तुम बड़े मुँह हो! छोटी बातें तुम्हें शोभा नहीं देतीं! मैं बड़ी हूँ, दुनिया कह रही है। तुम्हारे साथ रहूँगी।"

"न बाबा, न। जहाँ से निकली हो, वहीं जाकर रहो। तुम्हारा बोझ कम से कम मैं नहीं उठा सकता।"

बात हतप्रभ हो गयी रुआँसी भी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि किस मुँह से दुनिया के मुँह लगे? कैसे मुँह दिखाए?

123/1 सेक्टर-55, चंडीगढ़-160055

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलित आंदोलन और वर्ग-संघर्ष

वी.जी. गोपालकृष्णन

दलित आंदोलन की दशा-दिशा के बारे में आजकल ज़ोरो से चर्चा चल रही है। इस चर्चा में भाग लेने वाले लोग प्रायः अपने पक्ष को सही और दूसरे पक्ष को गलत सिद्ध करने का प्रयास करते रहते हैं। ऐसी चर्चाओं में प्रायः वर्तमान सामाजिक स्थितियों के आधार पर दलित को परिभाषित करने और उसकी सामाजिक हैसियत को आँकने का प्रयत्न किया जा रहा है। दलित-जीवन के ऐतिहासिक परिवेश को प्रायः अनदेखा छोड़ दिया जाता है। यदि इतिहास का सहारा लिया जाता है, तो भी अपनी सुविधानुसार अपने लिए उपयोगी पक्ष को ही उजागर किया जाता है। इतिहास को समग्रता से देखने परखने की दृष्टि के अभाव में दलितों को समग्रता से संबोधित करता दिखायी नहीं देता। खंडित रूप में ही वर्तमान दलित आंदोलन चल रहा है। दलितों के ही उच्च और मध्य स्तर के दलितों की मुक्ति के संघर्ष के रूप में यह सीमित हो गया हैं। इसके स्थान पर सभी स्तर के दलितों के मुक्ति आंदोलन के रूप में दलित-आंदोलन को विकसित करना है। वर्तमान दलित आंदोलन की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह दलित की वर्तमान शोचनीय स्थिति की जड़ों की तलाश नहीं करता। यदि करता है तो भी वह जाति केंद्रित रह जाती है। इसलिए, दलित की जातिगत वर्णगत मुक्ति के रूप में तथा दलित अस्मिता की स्थापना के संघर्ष के रूप में दलित आंदोलन सीमित हो गया है। भूमंडलीकृत समाज में ब्राह्मणीकृत दलितों की दृष्टि से संघर्ष चलाने वाला दलित, असल में ग़रीब दलितों की निर्धनता, ग़रीबी और फ़ाके के कारणों को नज़र अंदाज़ कर रहा है। यदि कोई कारण प्रस्तुत करता है, तो वह जातिगत भेदभाव का है। इसलिए उसका आंदोलन जाति-भेद और छुआछूत से मुक्ति आंदोलन के रूप में संकुचित रह गया है।

किसी भी आंदोलन को रूप देने से पहले समस्या की एक ऐतिहासिक समझ रखना ज़रूरी है। इतिहास की सही समझ के बिना कोई भी आंदोलन सफल नहीं हो सकता। दलित अपनी परंपरा की खोज करते हुए भी इतिहास को सही मायने में देखने, परखने और मूल्याँकन करने का प्रयास करते दिखायी नहीं देता। जातिगत और वर्णगत भेदभाव को ही वह अपने पिछड़ेपन का कारण मानता है। छुआछूत को वह सबसे बड़ा दुश्मन मानता है। जाति-वर्ण भेद से अपने मन में उपजी हीन-भावना से वह मुक्त होना चाहता है। उसके विचार में, जातिगत भेदभाव को मिटाकर ही वह समाज में मान्यता प्राप्त कर सकता है। इसलिए दलित के सामाजिक एवं साहित्यिक आंदोलनों में जाति पर आधारित भेदभाव और छुआछूत को तोड़ने की बात मुखरित दिखायी देती है। विडंबना यह है कि जाति के नाम पर सवर्ण जातियों द्वारा अवर्ण जातियों पर हो रहे अत्याचारों और ज़्यादतियों से मुक्ति प्राप्त कर सामाजिक हैसियत प्राप्त करने का स्वप्न देखने वाला दलित ही विभिन्न जातियों के आधार पर संगठित हो रहा है। अपनी जातीय अस्मिता की खोज करने वाला दलित सिर्फ छुआछूत से मुक्त होकर सामाजिक मान्यता प्राप्त करना चाहता है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के संस्थापक ब्राह्मणों को गाली देते वक्त भी दलित ब्राह्मणों के बराबर ही होना चाहता है, बल्कि उस शोषणकारी ब्राह्मण्य व्यवस्था को नष्ट करने की बात प्रायः नहीं उभरती। जाति व्यवस्था को तोड़कर एक जाति-रहित व्यवस्था की स्थापना का स्वप्न तक वह नहीं देख पाता। दूसरे शब्दों में कहें, तो ब्राह्मणवादी व्यवस्था के षड्यंत्र का शिकार होकर उसी के द्वारा निर्धारित संघर्ष ही दलित आज भी चला रहा है। ब्राह्मणों के जातिवाद के शिकंजे में पड़कर, जातिगत गुलाम मानसिकता के कारण, जाति से स्वतंत्र होने की बात तक वह नहीं सोच पाता। यानी मेहनत करने वालों की एकता को तोड़ने के लिए ब्राह्मणों ने जिस जाति-व्यवस्था को स्थापित किया था, उसी व्यवस्था को बरकरार रखकर उसमें ही दलित अपनी जातिगत गरिमा प्राप्त करना चाहता है, अर्थात् जाति से परे होकर दलित सोच भी नहीं पाता। यही दलित आंदोलन की सबसे बड़ी त्रासदी है। 'मनुस्मृति' और चातुर्वर्ण्य व्यवस्था पर आक्रमण कर अपनी जाति को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कराने के रूप में दलित आंदोलन को सीमित करना उसकी बड़ी कमजोरी है।

इतिहास बताता है कि सभी प्रकार के सामाजिक भेदभाव का मूल आधार अर्थ है। आर्थिक असमानता के मूल में शोषण है। शोषक व्यवस्था का आधार ही विभाजन है। जन समाज को विभिन्न स्तरों में विभाजित कर उसे दुर्बल बनाना उसकी नीति है। अक्सर यह माना जाता है कि जनता को कई खेमों में विभाजित कर सुगम ढंग से शासन करने की नीति सबसे पहले अंग्रेजो ने अपनायी थी। लेकिन यह धारणा गलत है। जिस समाज में आर्थिक असमानता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है, वहाँ जनता का विभाजन भी बना रहता है। क्योंकि शासक सत्ताधारी वर्ग अपने अधिकार और उससे हासिल सुख-सुविधाओं को बनाये रखने के लिए निरंतर प्रयास करता रहता है, दूसरी ओर, जो वर्ग इससे वंचित रहता है, वह उसे प्राप्त करने के लिए निरंतर संघर्ष करता है। सत्ता प्राप्ति से अपने जीवन के बेहतर होने की आकांक्षा में संघर्ष करते रहने वाले वर्ग को दुर्बल बनाकर अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने की कोशिश सत्ताधारी वर्ग करता रहता है। इस वर्ग-संघर्ष को मिटाकर अपने एकछत्र शासन को बरकरार रखने के लिए एक ओर कठोर नियमों के अरिये उसके शब्दों को दबा दिया जाता है, तो दूसरी ओर जनता के बीच भेदभाव पैदा करके उसे आपस में लड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस तरह किसी भी शोषक का व्यवस्था में मेहनतकश वर्ग को दमन और विभाजन से जोड़कर उसके मुक्ति संघर्ष को नाकाम बना दिया जाता है। इस दृष्टि से देखें, तो सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्ष को दुर्बल बनाने के लिए ही प्राचीन भारत के सत्ताधारी आर्यो ने जाति-व्यवस्था की रचना की थी। इस ऐतिहासिक समझ के अभाव के कारण ही दलित आंदोलनकारी वर्ग-संघर्ष को दुर्बल बनाने के लिए ही प्राचीन भारत के सत्ताधारी आर्यो ने जाति-व्यवस्था की रचना की थी। इस ऐतिहासिक समझ के अभाव के कारण ही दलित आंदोलनकारी वर्ग-संघर्ष का विरोध कर जाति-संघर्ष से जुड़ा हुआ है। किसी भी समस्या को कार्य कारण संबंध के वैज्ञानिक बोध से विश्लेषित करता है। जिसमें यह वैज्ञानिक बोध नहीं होता, वह समस्याओं का सही समाधान नहीं निकल पता। उसकी लड़ाई नकली होने की संभावना है। अक्सर साम्यवाद ही समस्याओं को इस दृष्टि से विश्लेषित करने में सफल दिखायी देता है।

मानव सभ्यता के विकास का इतिहास हमें यह बता देता है कि जंगल में विचरण करके अपना जीवन-यापन करते आदिम मनुष्य के बीच न जाति-भेद था, न वर्ण-भेद। जब मनुष्य ने खेती करना शुरू की और सामूहिक रूप में बसना प्रारंभ किया, तब से ही एक सामाजिक व्यवस्था शुरू हो जाती है। जब खेती से ज़्यादा अनाज मिलने लगी, तो भविष्य में उपयोगी करने के लिए उसे संचित भी रखना पड़ा। इसके संरक्षण का दायित्व कुछ लोगों को सौंपना पड़ा। लोगों को आवश्यकता के अनुसार अनाज बाँटने का काम भी इनके ऊपर आ गया। कालांतर में खाद्य सामग्रियों के संचयन और वितरण को वे अपना अधिकार मानने लगे। साथ ही इसका भी दायित्व जैसा बन गया कि दूसरे लोग मेहनत करके अनाज पैदा करें, खजाने में उसे पहुँचा दें और वितरण केंद्र से ले जाएँ। इस प्रकार, संपत्ति के आधार पर मेहनत का विभाजन होने लगा। यह भी प्रारंभकालीन समाज में जाति-वर्ण भेद कायम नहीं था, सिर्फ संपत्ति के केंद्रीकरण और उस पर अधिकार स्थापित करने के लिए समाज में सभी लोग एक जैसे काम करते थे। प्रकृति और मौसम की चपेट से कोई भी मुक्त नहीं था। जब सभी लोग एक जैसे वर्ण के थे, तो वहाँ वर्ण-भेद की कोई गुंजाइश नहीं थी। जब संपत्ति-तत्कालीन समाज में खाद्य-सामग्री- का केंद्रीकरण होने लगा, तब समाज में आर्थिक असमानता पैदा होने लगी। संपत्ति के संरक्षक शरीरिक मेहनत से मुकर कर सुख-सुविधाओं में लीन होने लगे। घर के भीतर आराम से जीवन बिताने वाले अवकाश भोगियों और प्रकृति से निरंतर संघर्ष कर मेहनत करने वालों के बीच रंग-भेद पैदा हो जाना स्वभाविक है। मेहनतकश वर्ग की शारीरिक मेहनत का शोषण कर भोग-विलास में लीन सुविधा-भोगियों के खिलाफ़ आवाज उठाने वालों को, उनके रंग के नाम, उनकी नौकरी के नाम पर नीचा दिखाने की प्रथा भी शुरू हुई होगी। यानी मेहनतकश वर्ग के संघर्ष को दबाने और दुर्बल बनाने के लिए सत्ताधारी वर्ग द्वारा कालांतर में की गयी साजिश का परिणाम है भारत की जाति-वर्ण-व्यवस्था। भारतीय जनता को टुकड़ों में विभाजित कर उन्हें आपस में लड़कर दुर्बल होने के लिए छोड़ने वाली शोषणकारी वर्ग-व्यवस्था की समझ के बिना जाति-वर्ण-व्यवस्था का उन्मूलन संभव नहीं होगा।

शोषक व्यवस्था में सत्ताधारी वर्ग धन और अधिकार की दृष्टि से ताकतवर है, जबकि संख्या दृष्टि से अल्पसंख्यक है। मेहनतकश वर्ग धन और अधिकार से वंचित है, जबकि वह समाज में बहुसंख्यक है। यह बहुसंख्यकता ही उसकी ताकत है, शोषक वर्ग में मेहनतकश वर्ग की इस ताकत के प्रति हमेशा डर बना रहता है। वह इस भय से आतंकित है कि मेहनतकश वर्ग एकजुट को जाएँ और उसकी ओर बढ़ जाएँ तो अपनी सत्ता को बचाये रखना असंभव है। इसलिए, अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए उसने सुविधाभोगी जीवन में प्राप्त शिक्षा, ज्ञान और बुद्धि को अशिक्षा और अज्ञान के अँधेरे में पड़े जन-सामान्य के खिलाफ़ प्रयुक्त किया। 'मनुस्मृति' आदि ग्रंथों की रचना द्वारा मेहनतकश वर्ग को विभिन्न वर्णो और जातियों में विभक्त कर, भेदभाव पैदा कर उसके एक जुट होकर संघर्ष करने की संभावना को सत्ता वर्ग ने नष्ट कर दिया। ब्राह्मणवादी सत्ता वर्ग की इस साजिश की समझ के बिना कोई भी दलित आंदोलन मर्म पर आक्रमण नहीं कर सकता और इसलिए ही सफल नहीं हो सकता क्योंकि दलित आज भी, विभाजित कर शासन चलाने वाली सत्ता की साजिश का शिकार है। इसलिए ही 'दलित-अस्मिता' का आंदोलन विभिन्न खेमों द्वारा विभिन्न मोर्चो पर चल रहा है। ये आंदोलनकर्ता एक मंच पर आना नहीं चाहते, क्योंकि वे अपनी 'अस्मिता' के लिए लड़ रहे है। जाति-भेद और छुआछूत के कारण जिस हीन-भावना का शिकार है दलित, वह उस हीन-भावना से मुक्ति के लिए अपनी जाति को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता, बल्कि सवर्णो द्वारा प्रदत्त उस 'हीन-जाति' की 'संस्कृति' का संरक्षण करना चाहता है। असल में वह अपनी जाति को छुआछूत और अवहेलना से मुक्त करा 'ब्राह्मणत्व' के स्तर तक पहुँचा कर गर्व का अनुभव ही करना चाहता है। साथ ही, शायद,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह एक ऐसी जाति की कामना भी करता होगा, जो अपने से निम्न हो जिस पर वह अपना शासन चला सके।

दलित आंदोलन अक्सर जाति-भेद को ही संबोधित करता हे, वर्ग-भेद को नहीं। मानव की भूख, ग़रीबी, फाके आदि का कारण सिर्फ जाति-वर्ण-भेद नहीं है। इन भेदों को मिटाने मात्र से मनुष्य की रोटी की समस्या दूर नहीं हो जाएगी। मनुष्य की मेहनत को चुराकर आर्थिक दृष्टि से मनुष्य को दो वर्गो में बाँटने वाली शोषक व्यवस्था को नष्ट करने पर ही उसकी रोटी की समस्या का हल हो पायेगा। इसलिए समाज के सर्वहारा वर्ग को जाति-वर्णादि सारे भेद भावों को भूलकर, एकजुट होकर, धनाधिकार केंद्रित सत्ता पर आक्रमण करना है। राजसत्ता और धर्मसत्ता की मिली भगत का पर्दाफाश कर कार्ल मार्क्स ने यह समझाने की कोशिश की थी कि धर्म मनुष्य के लिए अफीम है, उससे मुक्त हो जाओ। धर्म ने भक्ति के साथ अपने भक्तों को जाति की अफीम भी खिलायी और उन्हें अपना गुलाम बनाया। इस नशे में ही दलित आंदोलनकारी आजकल अपने आंदोलन में साम्यवादियों को जगह नहीं देते, बल्कि उन्हें गाली देते हैं। आजकल दलित का संघर्ष शोषक सामंतवादी जमींदारी, पूँजीवादी, साम्राज्यवादी व्यवस्था के खिलाफ़ नहीं, बल्कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ़ है। दलित का संघर्ष मुख्यतः अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए नहीं, बल्कि जातिगत दृष्टि से सामाजिक हैसियत प्राप्त करने के लिए है। इसलिए आरक्षण के जरिये शिक्षा और नौकरी हासिल कर मध्यवर्गीय जीवन बिताने वाले दलित को 'दलित ब्राह्मण' कहकर उनका उपहास किया जाता है। स्पष्ट है कि धन ही सामाजिक प्रतिष्ठा और सामाजिक तिरस्कार का आधार है। वर्तमान भूमंडलीकृत दुनिया में यह यथार्थ और भी प्रखर दिखायी दे रहा है। अतः दलित की लड़ाई की दिशा में परिवर्तन अनिवार्य है। उसकी लड़ाई सिर्फ छूआछूत से मुक्ति की लड़ाई के रूप में सीमित न रहे बल्कि उसकी लड़ाई चौतरफा शोषण के खिलाफ़ तथा सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक न्याय के लिए भी हो। लेकिन यह लड़ाई अकेले दलित नहीं लड़ सकता क्योंकि सत्ता इतनी ताकतवर है कि आसानी से वह उसकी लड़ाई को तोड़ सकेगी। दूसरी ओर यह यथार्थ भी है कि दलितों के जैसा कष्टमय जीवन बिताने वाले किसान हैं, मजदूर है, कर्मचारी हैं, बेरोजगार हैं, बेघर हैं, निर्धन हैं। वे भी अपने -अपने मोर्चे पर लड़ रहे हैं- बेहतर जीवन के लिए, सामाजिक न्याय के लिए। दलित का संघर्ष इनके संघर्ष से अलग नहीं है, क्योंकि ये लोग भी अपनी ज़िंदगी में दलितों के ही समान अपमान, अवहेलना, पीड़ा, दमन आदि के शिकार है। इसलिए नहीं कि वे निम्न जाति के हैं, बल्कि इसलिए कि वे ग़रीब हैं, निर्धन हैं, समाज के पिछड़े वर्ग हैं।

एक विशाल देश को राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक वर्चस्व के जरिये अपने कब्जे में बनाये रखने वाले एक वर्ग के खिलाफ़ जब तक सर्वहारा वर्ग का एकजुट संघर्ष नहीं होगा, तब तक अन्य छोटे-मोटे आंदोलन छोटे-मोटे परिवर्तन तो ला सकते हैं; किन्तु बुनियादी तौर पर शोषक व्यवस्था को बदल नहीं सकेंगे। अतः शोषक वर्ग की असली शक्ति की समझ रखने वाला साम्यवादी सिद्धांत ही दलित सहित सर्वहारा वर्ग को एकजुट कर मुक्ति संघर्ष चला सकता है। दुनिया भर के मेहनत कश लोगों से एकजुट हो जाने का जो आह्वान कार्ल मार्क्स ने किया था, उसे समाज के दलित-पीड़ितों को कंठस्थ करना पड़ेगा। एकता में ही शक्ति है। सर्वहारा वर्ग की एकता से ही वर्ग-विभाजित समाज को नष्ट कर समाजवादी समाज की स्थापना संभव है। समाजवादी समाज की कल्पना ही ऐसी है कि उसमें जाति या वर्ण पर आधारित भेदभाव के लिए कोई गुंजाइश न रह पाएगी। ऐसा समाज ही बाद में साम्यवादी समाज में परिणत हो जाएगा।

अतः दलित आंदोलनकारी के लिए यह ऐतिहासिक समझ अनिवार्य है कि वर्ग विभाजन के बाद ही समाज में वर्ण-जाति विभाजन स्थापित हो गया था। इसलिए वर्ण-जाति भेद को मिटाने मात्र से वर्ग-भेद नहीं मिट जाएगा, सामाजिक न्याय की स्थापना भी नहीं हो जाएगी। शोषण पर आधारित शोषक-शोषित के वर्ग भेद के मिट जाने के साथ ही, उस पर स्थापित जाति-वर्ण-भेद भी मिट सकेगा। जब समाज के सभी नागरिकों को आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की प्राप्ति होगी, तब अन्य सभी प्रकार का भेदभाव मिट जाएगा। यानी साम्यवाद के द्वारा ही दलित सहित सर्वहारा वर्ग की मुक्ति साध्य है। अतः दलितों को अपने मुक्ति संघर्ष को व्यापक जन-संघर्ष से जोड़ना पड़ेगा।

हिन्दी विभाग

श्रीशंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल-683574

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैंपस

हरपाल सिंह 'अरूष'

फ़ेशनल शिक्षा देने वाला संस्थान। गर्ल्स हॉस्टल का रीडिंग रूम कम लाइब्रेरी। खिड़कियाँ और दरवाजों को छोड़कर ...से सटी हुई अलमारियाँ। बीच में एक बड़ी मेज। मेज़ के ...ओर कुर्सियाँ। मेज़-कुर्सियाँ इसलिए लगायी गयी हैं कि ...अध्ययन कर सकें। अध्ययनशील लड़कियाँ पुस्तकें इश्यू ...अपने कमरे में ले जाकर पढ़ती हैं। रीडिंग रूम डिस्कशन ...में तब्दील हो चुका है। कई-कई लड़कियाँ आमने-सामने बैठ ...हैं। किसी भी टॉपिक पर बहस चल पड़ती है। व्यंग्य, तल्ख़ी, ...उपहास—किस-किस रस का संचार नहीं होता वहाँ। अपने ...से संबंधित बात तो शायद ही कभी कोई लड़की उठाती ...कई फ्रेंड्स एक साथ होती हैं तो बहसबाज़ी के बहाने से मन ...बातें हो जाती हैं। यदि एक-दो लड़कियाँ अन्य फ्रेंडस ...की होती हैं, तब विषय कोई भी हो—वह उपहास और व्यंग्य ...लेकर ही अवतरित होता है। जब सालिया, विदिशा, प्रज्ञा ...कृत्तिका एक हों, तब क्या मजाल कि इनके सामने कोई और ...सके; भले ही अपने आपको धुरंधर डिबेटर मानने वाली ...कियों का ग्रुप ही क्यों न हो। यदि एक-दो लड़कियाँ ही सामने ...तो शामत बार-बार उनके सिर पर झपटती रहती है।

एक दिन। शाम का समय। यही कोई चार बजे होंगे। ...का महीना। पढ़ाई भले ही ज़ोरों पर थी, परंतु रीडिंग रूम ...को देखकर नहीं लगता था कि पढ़ाई को गंभीरता से ...जा रहा है। सालिया ने टाइट जींस-टॉप पहन रखा था। बॉब ...वालों को कृत्रिम रूप में लच्छेदार बनवाकर आयी थी। प्रज्ञा ...वाले टॉपिक पर विराम लगाने की सोचकर कहा, "अरे, ...सीरियस टॉपिक पर सोचने से दिमाग़ चल जाएगा। सालिया, ...ग़ज़ब करती है।"

सभी लड़कियों का उधर जाना स्वाभाविक था। आस-पास ...लड़कियाँ बैठी थीं। वे चुपचाप डिस्कशन को सुन रही थीं। ...भी समझ लिया था कि प्रज्ञा ज़रूर कोई न कोई रोचक और ...टॉपिक उठाने वाली है। सब लड़कियाँ जानती थीं कि ...विषय-प्रवर्तन मात्र प्रवर्तन ही नहीं होता, वह विषय-प्रवर्तन ...सभी को चकित कर देती है।

सालिया ने गंभीर होकर प्रज्ञा की ओर देखा। वह सोच रही थी कि पता नहीं विषय किस ओर मुड़ जाए! प्रज्ञा ने कहा, "तेरे इशारे पर कितने लड़के मर-मिटने को तैयार हो सकते हैं, इतना तो शायद तुझको भी पता न हो।"

सालिया मात्र मुस्कुराकर रह गयी। इस मुस्कुराहट से प्रज्ञा के गंभीर चेहरे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सका। विदिशा भी अपने आपको प्रज्ञा से कम एक्सपोज़ नहीं करना चाहती थी, उसने और भी अधिक गंभीर होकर कहा, "कितने ऐसे होंगे, जो अपने रकीबों का ख़ून पीने के लिए तैयार हो जाएँगे।'

"अच्छे-अच्छों को चक्करघिन्नी कटा दी है तूने", कृत्तिका ही क्यों पीछे रहती, उसने भी अपनी ओर से जोड़ दिया।

प्रज्ञा ने फिर कहा, "यह तो हर एंटीने के साथ एडजस्ट कर लेती है।"

अब जाकर सालिया ने मुँह खोला, "ऐ, एक ऐंटीने वाली। ज़्यादा चबर-चबर क्यों कर रही है? जिस दिन तेरे स्क्रीन पर नो सिगनल आएगा, उस दिन तेरी एकनिष्ठता का पता चलेगा, कितने पानी में है।"

कृत्तिका ने प्रज्ञा को कहा, "धत, इन्नोसेंट कहीं की।"

"क्यों, मूर्ख नहीं कह सकती ? अंग्रेज़ी में गाली देने से क्या उसमें कुछ एडवांसनेस आ जाती है?" विदिशा ने प्रज्ञा और कृत्तिका दोनों की एक साथ खिंचाई कर दी।

"आप लोग चाहे पागल कहें या मूर्ख। मैं यहाँ से वहाँ और वहाँ से कहीं और फ़्लाइट करती हुई नहीं घूम सकती," प्रज्ञा ने गंभीर होकर इस प्रकार कहा, मानो उसकी शेष तीनों सहेलियाँ जीवन के प्रति गंभीर नहीं हो सकतीं।

"ऐसा क्यों है माई फ्रेंड, हमें नाराज़गी की नहीं, तेरे चीयरफुल क्लेरिफ़िकेशन की ज़रूरत है", सालिया ने उपहासात्मक मनुहार के रूप में मुँह फुलाकर कहा।

प्रज्ञा और अधिक गंभीर हो गयी। उसने क्लीयर किया", आख़िर में लैंडिंग तो कहीं न कहीं करनी ही पड़ेगी।"

शेष तीनों लड़कियों ने भी गंभीरता ओढ़ ली। उनका ऐसा करना भी हास-परिहास के अंतर्गत ही आता था। भीतर ही भीतर मुस्कान फूट रही हो, तो भी दिखाने के लिए अत्यंत गंभीरता। प्रबंधन के कोर्स में यही तो सिखाया जाता है। प्रोडक्ट में चाहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाममात्र के गुण हों, उसका प्रेजेंटेशन इस प्रकार किया जाएगा, जैसे इस क्षेत्र का यही सर्वोत्तम प्रोडक्ट है। दूसरे की जेब में से पैसे निकालकर ऐसा प्रदर्शित किया जाएगा, जैसे उलटा अहसान कर दिया हो।

सभी फ्रेंड्स ऐसी थीं कि पाँच मिनट भी चहचहाये बिना नहीं रह सकतीं। सभी चाह रही थीं कि चुप्पी को भंग कर दिया जाए। अपने आप को कमज़ोर कौन दिखाये? जब एक ऐसा प्वाइंट हाथ न लग जाए, जिस पर बोलना बेहद ज़रूरी हो, तब तक कौन बोले? भीतर से बोलने का उछाल आ रहा हो, टॉपिक ढूँढने के लिए दिमाग़ की अलमारियाँ खंगाली जा रही हों, तो टेंशन तो आ ही जाता है।

विदिशा ने अपने आपको चुप रखने में असमर्थ पाकर कहा, "हम ऐसे समय में जी रहे हैं, जिसमें नया तो घुस आया है, पुराने ने अपना कब्ज़ा नहीं छोड़ा है। दोनों एक साथ रह रहे हैं। एक-दूसरे को घूरते हुए। ऐसा टेंशन कि क्या सरफ़ेस टेंशन, क्या स्ट्रिंग टेंशन।" उसने घूरकर प्रज्ञा को देखा।

"क्या दोनों के बीच एडजस्टमेंट नहीं किया जा सकता?" सालिया ने पूछा।

"प्रज्ञा ने बिना एक क्षण भी गँवाये कहा, "तू तो दो क्या, चार टेंशंस के बीच में एडजस्टमेंट करने की कोशिश करेगी।"

"सालिया तो हैजेमनी क्रिएट करने में एक्सपर्ट है। इसके पार पाना हम सब के भी बस का नहीं", कृत्तिका ने उसकी इस क्षमता को श्रेय-सा देते हुए कहा।

"सालिया ने बातों का रुख़ मोड़ने की सोचकर कहा, "अरे विदिशा! तुझे तो कमेंट्रेटर का कोर्स करना चाहिए था। ऑफ़िस मैनेजमेंट में तो फ़ेल हो जाएगी।"

"क्यों होऊँगी फ़ेल ? एट्टी परसेंट से कम मार्क्स आएँ तो तेरी टाँग के नीचे से निकल जाऊँगी", विदिशा ने आत्मविश्वास प्रदर्शित कर दिया।

"इससे क्या होगा?" कृत्तिका ने तिरछी आँखें करके पूछा।

विदिशा के तब जाकर समझ में आया, जब सभी लड़कियाँ हँस पड़ीं कि उसकी बात का कुछ और भी अर्थ निकलता है।

हँसी के बाद बनावटी चुप्पी पसर गयी।

"मैंने कहा कुछ था, कृत्तिका! तुमने सोचा कुछ यही वजह है कि हमारे देश की फ़ैमाइन इमेज का इतना डिस्टॉर्शन हो रहा है", विदिशा ने आरोप-सा लगाते हुए कहा।

"छोड़ो, डोंट वरी एबाउट इमेज... सुन विदिशा, माई फ्रेंड, चाहे तू नाइंटी फ़ाइव परसेंट एचीव कर लेना... जब वर्चुअली ऑफ़िस में बैठकर मैनेज करेगी, तब रिज़ल्ट बिलो डिग्निटी ही रहेगा", सालिया ने गंभीर होकर कहा।

"प्रज्ञा ने तत्काल जोड़ दिया, "हर कोई हाई प्रोफ़ाइल परफ़ोर्मेंस चाहता है।"

"कृत्तिका नें कहा, "इसके ब्रेन में सेटेलाइट लगा है... पता है... यह होती कहाँ है, इमेज कहाँ की उतारती है।"

"हमने इसके दिमाग़ को फ़्लैट थोड़े ही समझ रक्खा है? यह सालिया की तरह थोड़े ही है कि कोई भी हैलीकॉप्टर कभी भी लैंड कर जाए", प्रज्ञा ने इतना कहकर लक्ष्य की दिशा बदल दी।

"इसका अपना नेटवर्क है। अपनी वेबसाइट है। अपना प्रोडक्शन है, और डायरेक्शन भी अपना ही है। सेल्फ़ डिपेंडेंट है, इन आल रेस्पैक्ट्स", कृत्तिका ने कहा।

प्रज्ञा ने विदिशा और सालिया के बीच बात को खड़ा करते हुए कहा, "दोनों को तुलनात्मक ढंग से नहीं लिया जा सकता। मैं ऐसा महसूस करती हूँ कि दोनों के सोच में बहुत ज़्यादा फासला है।" इतने में एक लड़की बरतिका भी आकर बैठ गयी।

कृत्तिका ने कहा, "मैं नहीं मानती। तेरी सोच में हो सकता है कि फ़ासला हो। स्पेस हो।"

बरतिका ने भी अपना पाँव अड़ाते हुए कहा, "स्पेस नापने का कोई स्केल है, तेरे पास? कह तो दिया कि स्पेस है।"

प्रज्ञा को आश्चर्य में घुमेरे खाते हुए देखकर विदिशा ने स्पष्ट किया, "स्पेस माइन्यूट हो या वाइड, होता एब्सट्रेक्ट ही है। फ़िलॉसफ़र बनना चाहती है, तो भाषा की समझ पैदा कर।"

प्रज्ञा का चेहरा लाल हो गया। जब तक वह दूसरों पर व्यंग्य-बाण छोड़ती रहती है, तब तक ही प्रसन्न रहती है। वह अपना उपहास सहन नहीं कर पाती। उसका ब्राह्मणत्व ऐसी स्थिति में फनफनाकर जाग जाता है। बोली, "कृतिका गुप्ता फ़िलॉसफ़ी में तो अब एस.सी. एस.टी. वालों को ही सिर देने दो। हमें तो फ़ाइनेंशियल एचीवमेंट की सोचनी है।"

"हाँ, प्रज्ञा भार्गव! आप ठीक कहती हैं। प्रोग्रेस के लिए पढ़ाकू होना ही काफ़ी नहीं है", कृतिका ने भी समर्थन में अपना कहा।

"बेचारी एस.सी. जो है। सोचती है कि पढ़-लिखकर ब्राह्मणों की बराबरी करने लगेगी", प्रज्ञा ने टोंट कसते हुए मुस्कुराना उचित समझा।

प्रायः यही होता। हँसी- ठट्ठे का आरंभ तो सामान्यतौर पर लाइट मूड में होता, पर धीरे-धीरे व्यक्तिगत आक्षेप के माध्यम से व्यंग्य-उपहास सीढ़ियाँ चढ़ने लगता। सभी लड़कियाँ आपस में घुल मिलकर रहती हुई लगती थीं। लोहे का कितना सख़्त पर्दा बीच में है—इस बात का पता तब चलता, जब व्यक्तिगत बातें जातिगत आधार प्राप्त कर लेतीं। प्रज्ञा की लाचारी यह थी कि उसमें अहं और उत्कृष्टता-बोध कूट-कूटकर भरा था। उसके पिता संस्कृत के प्रकांड विद्वान माने जाते थे। बहुत बड़े और संपन्न मठ के पुजारी के पद को वे वंशानुक्रम के आधार पर सँभाले हुए थे। कृतिका के पिता प्रशासनिक अधिकारी थे, संवैधानिक परिधि को पहचानते थे। अतः उनके परिवार में जातिगत अहंभाव उत्कृष्टता-बोध के स्तर तक विकसित नहीं हुआ था। कृतिका उदार, सहनशील और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रास्ट करके चलने वाली लड़की थी। रही बात सालिया की, वह हिंदू परिवार से आयी थी। उसके किसी पूर्वज ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। वह अपने आपको ओपन हार्टेड मानती थी। उसको लेकर ही अधिक टिप्पणियाँ की जाती थीं। वह मिलनसार और सहनशील थी। बरतिका का असली नाम वर्तिका था। नाम में विकृति भी एक अध्यापक की मानसिक विकृति की छाया के रूप आ गयी थी। बरतिका छत्तीसगढ़ के वनांचल के आदिवासी परिवार में जन्मी थी। उस क्षेत्र में नक्सलवादी गतिविधियाँ चलती रहती थीं। उसका पिता एक क़बीले का प्रभावशाली आदमी था, जिसके प्रति पुलिस को यह आशंका हो चली थी कि वह नक्सलवादियों को शरण और संरक्षण देता है। किसी दिन दाँव लगाकर पुलिस उसको पकड़कर थाने ले गयी। चूँकि वह नक्सलवादियों के संपर्क में नहीं था, तो उनका क्या भेद देता। पुलिस बौखला गयी। एनकाउंटर दिखाकर उसी के क्षेत्र में, उसकी लाश को फेंक आयी।

बरतिका का भाई सेतनाथ एक स्थानीय नेता से मिलने रायपुर में चला गया, जहाँ उसने ऐसा प्रदर्शन किया, जैसे उसके पिता को नक्सलवादियों ने ख़त्म कर दिया हो। ऐसे वातावरण में उसके परिवार की ज़िंदगी और ठिकाना दोनों उजड़ सकते थे। धीरे-धीरे उस नेता के संरक्षण में वह विशेष धार्मिक प्रचार करने लगा। हनुमान और शिवजी के लॉकेट बाँटता। हनुमान चालीसा का एकल और सामूहिक गायन संचालित करता। हिंदू धर्म से संबंधित राजनीतिक कार्यवाहियों में भाग लेता। इसके लिए उसको मासिक पारिश्रमिक भी मिलता और स्थानीय व्यापारी और ठेकेदार उसको काम की चीज़ समझकर कुछ-कुछ आर्थिक सहायता करते रहते। उसकी यह बहन उससे सत्रह-अट्ठारह वर्ष छोटी थी। वह उसको निकटस्थ कस्बे के प्राथमिक स्कूल में प्रवेश दिलाने ले गया, जो किसी संस्था ने आदिवासियों में हिंदू संस्कृति, शिक्षा और विचार का प्रचार करने के उद्देश्य से खोला था। सेतनाथ पढ़े-लिखे लोगों की सेवा में रहता था। उसने शिक्षा के महत्त्व को शायद जान दिया था। जब वह अपनी बहन को प्रवेश दिलाने स्कूल में ले गया, तब उसने प्रवेशार्थिनी का नाम पूछा गया। सेतनाथ ने अपने स्थानीय उच्चारण के अनुसार बरतिका बतला दिया। उस अध्यापक ने जिसको आचार्य जी कहा जाता था, पुष्टि करने के लिए 'भरतिका' कहकर सही करने की कोशिश की। इस पर लड़की ने ही आचार्य को बताया, "भैंस वाला नहीं बकरी वाला 'ब'!" आचार्य ने मुस्कुराकर लड़की की ओर देखा। तब सेतनाथ ने बताया, "दीये बरतिका।" इस पर आचार्य ने स्वीकृति में इस प्रकार सिर हिलाया, मानो वह अब ठीक-ठीक नाम लिख लेगा। दीये की बरतिका को उसने 'वर्तिका' समझने या लिखने का कष्ट नहीं किया। प्राथमिक स्तर पर उसके साथ बरता गया यह बौद्धिक दुर्भाव जीवन भर साथ लगा रहेगा। पढ़े-लिखे अध्यापक पता नहीं कितने बच्चों के नाम प्रथम प्रवेश के समय बिगाड़ते रहे हैं। आज भी अनपढ़ दलित, पिछड़े और आदिवासी समाजों के अभिभावक, जो नाम का शुद्ध उच्चारण नहीं जानते या अपने समाज या क्षेत्र के अनुसार जो भी उच्चरित कर देते हैं, कुछ सनकी अध्यापक वही नाम अंकित कर देते हैं जिसको जीवन भर झेलना पड़ता है।

हॉस्टल में बरतिका एकमात्र जनजाति की लड़की थी, उसका सोशल सर्किल कैसे बनता? एस.सी. लड़कियाँ तो काफ़ी संख्या में थीं, उनकी अपनी-अपनी फ्रेंड्स थीं, अपने -अपने सर्किल्स। विदिशा एस.सी. थी, अतः उसका फ्रेंड्स सर्किल कई जगहों पर था। प्रज्ञा, कृतिका और सालिया के साथ उसकी पटरी काफ़ी दूर तक बैठ जाती थी। वह थी तो सर्विस क्लास मध्यम परिवार से, इंगलिश मीडियम में पढ़ी थी, रहन-सहन में एकदम आधुनिक। सोच में भीतर से भले ही कैसी हो, किंतु अपने सर्किल के अनुसार प्रदर्शन करने में कभी पीछे नहीं हटती थी। विदिशा और बरतिका एक ही कमरे में रहती थीं। एक दूसरे का सम्मान करती थीं। दोनों यह भी जानती थीं कि विदिशा की अनुपस्थिति में एस.सी. पर टिप्पणियाँ की जातीं तथा बरतिका की अनुपस्थिति में एस.टी. पर। दोनों इन बातों को भारतीय समाज के सामान्य यथार्थ के रूप में लेती थीं।

अप्रैल का महीना था। परीक्षाएँ निकट थीं। स्टूडेंट्स स्टडी पर अधिक ध्यान लगाने लगी थीं। इतने पर भी गपशप करने के लिए समय निकाल लिया जाता था। वर्ष के वर्ष पाँचों फ्रेंड्स बैडमिंटन खेलती रही थीं। शाम को एक-दो घंटे देकर मूड फ्रेश कर लेती थीं। खर्चीला गेम होने के कारण विदिशा और बरतिका दोनों मिलकर एक चौथाई खर्चा ही दे पाती थीं, अतः इन दोनों को मिलाकर एक खिलाड़ी के रूप में अवसर मिलता था। न इनको ऐतराज़ था, न अन्यों ने इसको मानवीय आधार पर ही लिया। जब पैसे की बात आती है, तब मानवीयता को पीछे धकेल ही दिया जाता है।

हॉस्टल के कोने वाले कमरे में कैफ़े था। उसमें बैठकर गप्पे हाँकना सभी स्टूडेंट्स का शगल बन गया था। अध्ययन के कारण आयी थकान को उतारने के लिए कॉफ़ी और गप्प का सहारा लिया जाता था। फ़ैकल्टीज से लेकर स्टूडेंट्स तक का वेशभूषा, विचारों और शोबाज़ी पर पोस्टमार्टम किया जाता था। राजनीतिबाज़ों से लेकर फ़िल्मों से जुड़ी सैलीब्रिटीज़ को भी खँगाला जाता था। यहाँ तक कि मीडिया वालों के भी काल्पनिक और अकल्पनीय कारनामों और प्रदर्शनों की सीवनें उधेड़ी जाती थीं। लड़कियों के द्वारा कई बार ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता था कि बेशर्म पुरुष भी सुनकर लज्जा में पड़ जाए।

"कोर्ट का लेस्बियन रिलेशंन पर कैसा चटकदार फ़ैसला आया है", सालिया ने उत्साहित होकर कहा।

"वह तो होमो रिलेशंस पर आया है", विदिशा ने संशोधन प्रस्तुत किया। वह कई बार ऐसा संशोधन प्रस्तुत कर देती है कि सभी को स्वीकार करना पड़ जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रज्ञा को इंडियन एन्शिएंट कल्चर की चिंता अधिक सताती है। उसने अपनी नाक, भौंह और माथा ऊपर की ओर सिकोड़कर कहा, "डिसीज़न एंटीकल्चर है।"

"किसने कहा है?" सालिया ने जान-बूझकर पूछा।

"सारे धर्मगुरु कह रहे हैं। धर्मशास्त्रों के विरुद्ध है यह फ़ैसला", प्रज्ञा को पारंपरिक तरीके से अपने पक्ष को जस्टीफ़ाई करने की आदत जो है। वह प्रमाण के तौर पर साधु-संतों और धार्मिक ग्रंथों का सहारा लेती है।

अब की बार बरतिका ने अपना नंबर ले लिया। उसने पूछा, "ये साधु-संत और धर्मगुरु कहाँ रहते हैं?"

इस पर सभी ने उसको इस प्रकार देखा, जैसे इतना भी न जानती रही हो।

"आश्रमों में रहते हैं? क्यों?" प्रज्ञा ने सगर्व उत्तर दिया, जैसे इसके चाचा-दादा ही साधु-सत हों और उन महान लोगों के रहने का स्थान आश्रम बहुत ही पूजनीय स्थल होता हो।

"सब पुरुष ही पुरुष रहते हैं आश्रम में?' बरतिका ने अपने इस कथन की पुष्टि कराने के लिए सभी की ओर देखा।

"हाँ... क्या साधु-संतों के बीच स्त्रियों को भी रखना चाहती हो?" प्रज्ञा ने लगभग घृणा प्रदर्शित करते हुए पूछा।

"नहीं, मिसेज प्रज्ञा, ऐसा नहीं। मैं तो यह चाहती हूँ कि सभी साधु-संतों का मैडिकल चैकअप हो जाए", बरतिका ने गंभीरता प्रदर्शित करते हुए कहा।

समझ तो सभी गयी थीं कि किस आशंका को देखते हुए मैडिकल चैकअप की बात की थी बरतिका ने। सालिया ने आस-पास बैठी लड़कियों की उत्सुकता को भाँपकर अधिक स्पष्ट करने की सोचकर पूछा, "किस बात का मैडिकल चैकअप करा रही हो?"

'ब्रह्मचर्य का', बरतिका ने अति गंभीर होते हुए कहा।

प्रज्ञा और कृतिका के चेहरे लाली ले गये। कुछ लड़कियाँ ऐसी भी थीं, जिनको अपनी भावनाओं के आहत होने का अहसास होने लगा था। कई ऐसी भी थीं, जो इस वार्तालाप में हास-परिहास खोजकर भीतर ही भीतर खिल रही थीं।

"नास्तिक, कैसा सोचती है! हमारे साधु-संतों को अमेरिका के पादरियों की तरह का समझ रखा है क्या? साधु-संत हिंदू आस्था के सेंटर हैं। कैसी बात करती है। तभी तो मैं तुझे नक्सेलाइट कहती हूँ", प्रज्ञा आपे से बाहर हो गयी।

कई लड़कियाँ अब तक अपने-अपने ग्रुप में बैठी न्यायालय के इस निर्णय पर चटखारे ले-लेकर बातें कर रही थीं, वे भी इस जोशीले कार्नर पर सिमट आयीं। उनमें से किसी ने कहा, "क्या रसदार टॉपिक है... ये पगलियाँ उसमें आग लगाने को तैयार बैठी हैं।"

बरतिका ने कहा, "कोई दूसरा बोल दे, तो प्रज्ञा फुँकती है।

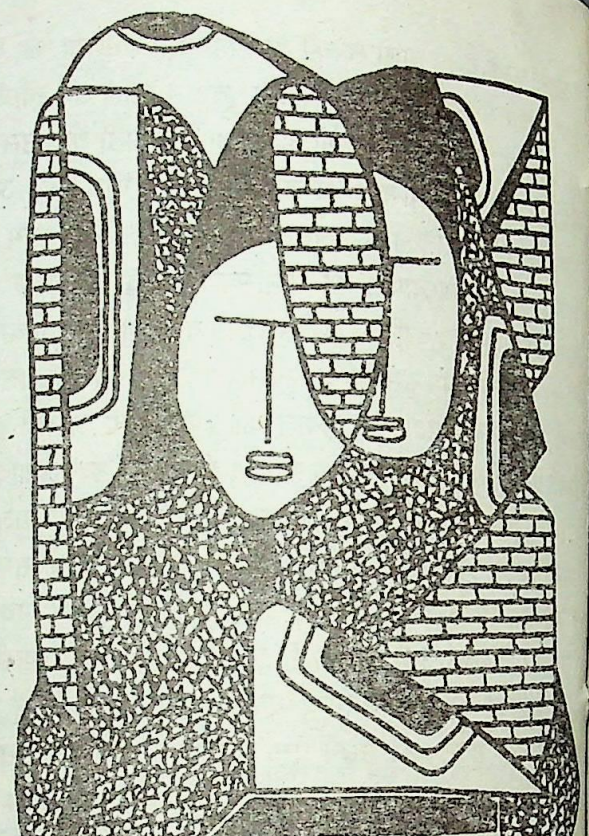

यह बोलती है, तो सब का फ़र्ज़ बनता है कि सुनें... ध्यान लगाकर सुनें। विश्वास और करें ऊपर से। जो यह बोलेगी वह वेद-ऋचा, कोई ओर बोलेगी, तो कामसूत्र... ऐसा सोचती है। सालिया, तू हुह ले। ऐंज्वायमेंट और मौजमस्ती को सेक्रीफ़ाई करके स्टडी कर हूँ। मेरा एडमीशन मैरिट से हुआ है। प्राउड है मुझे इस पर। एम. टी. हूँ--इस पर भी प्राउड है। फ़ाइनल एग्ज़ाम के बाद पता चलेगा कौन किस स्टेटस पर आएगा। हज़ार बार नक्सलवादी कह ले, हूँ। जिस दिन नक्सलाइट हो जाऊँगी... समझ ले रायफ़ल बैरल एक मीटर का होता है।" उसके साँवले चेहरे का रंग ताँबे हो गया था। उसके मज़बूत और सुडौल हाथ अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए हवा में घूम जाते रहे थे। गोल भरे हुए चेहरे पर टँकी हुई काली आँखें रुआब से सराबोर हो गयी थीं।

प्रज्ञा ने एक धर्मांध उन्मादी की तरह प्रतिवाद किया, "जाए मैरिट में... पहले नंबर पर भी आ जाए... एस.टी. है, रहेगी... सोशल इक्वलिटी तो सपना है, सपना ही रहेगा।"

"मैरिट में बीसवें, तीसवें या पचासवें नंबर पर भी रहूँगी भी साढ़े तीन सौ से ऊपर ही रहूँगी", बरतिका ने कहा।

कृतिका ने सभी लड़कियों से कहा, "आप सभी अपनी-अपनी जगह बैठकर कॉफ़ी-चाय, जो भी हो, पीती रहें... हमारी तो रोज़ाना की बहसे हैं।"

लड़कियाँ मन मारकर अपनी-अपनी जगहों की ओर लगीं। किसी ने कहा, "अधकाल में ही नाटक का पटाक्षेप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया।"

अन्य ने कहा, "इस प्रकरण को भी कोर्ट में ले जाओ।"

"कोर्ट तो हमारी बहसों को भी होमो डिस्कशन कहकर मान्यता प्रदान कर देगा," पहले वाली ने यह कहकर सब हो हँसा दिया।

सभी ने समझ लिया था कि बात आयी-गयी हो गयी। बरतिका समझे तब न। वह कई दिन तक न तो रीडिंग रूम में गयी, न कैफ़े में ही। दोनों जगहों पर उसके बिना बातों का वह आनंद नहीं रहता था, जो उसकी उपस्थिति में होता था। प्रज्ञा दो तीन दिन तक तो इस उपेक्षा को सह गयी। इसके बाद उसके मन में उछाल आने लगा। उसकी बेचैनी इसलिए भी बढ़ गयी थी कि समुदायगत और जातिगत आक्षेप करने का आधार ही खिसकता दिखायी दे रहा था। पीठ पीछे भले ही किसी के बारे में टिप्पणी कर ली जाए, पर जो आनंद आमने-सामने रहकर टिप्पणी करने में है, उससे वंचित रहना प्रज्ञा को नहीं सुहाता था। उसने कई लड़कियाँ को साथ लेकर मनाने के बहाने से बरतिका के कमरे पर पहुँच जाने का कार्यक्रम बनाया।

ऐसा कई बार हो जाता है कि विरोध और मनामनाई का संतुलन साधकर रहना पड़ जाता है। कई बार भावनाओं के स्तर पर और कई बार जान-बूझकर व्यक्ति ऐसा करता है। भावनाओं में बहकर ऐसा करने वाले को चतुर नहीं कहा जा सकता, उनको भोला कह सकते हैं। सोच-समझकर ऐसा करने वालों को बौद्धिक रूप से चपल माना जा सकता है। प्रज्ञा दूसरी श्रेणी में आती थी।

जब लड़कियाँ बरतिका के कमरे में पहुँची, तब वह पॉकेट ट्रांजिस्टर से विश्व-परिदृश्य पर एक वार्ता सुन रही थी। उसने वार्ता सुनना जारी रखते हुए संकेत से सभी को बैठने के लिए आमंत्रित किया।

पुरानी खटास-मिठास को भूलने और नये सिरे से साथ रहने का कोई ज़िक्र नहीं आया। कई दिन से बरतिका एकांत-सेवन क्यों कर रही है, इसका स्पष्टीकरण चाहने की आवश्यकता नहीं समझी गयी।

प्रज्ञा ने सड़ाक देनी चाबुक-सा मार दिया, "पचास साल पीछे है। अभी भी ट्रांजिस्टर सुनती है।"

आने वाली लड़कियाँ खुलकर मुस्कुरा दीं।

"जिसका कोई नहीं, उसका ट्रांजिस्टर', कृतिका ने बात को नयी दिशा देने की कोशिश करते हुए कहा।

प्रज्ञा अपने से आगे किसी को निकलने दे तब न। उसने बात को अपने विचार के केंद्र की ओर मोड़ते हुए कहा, "यूँ क्यों नहीं कहती, जिसकी हैसियत कुछ नहीं, उसके पास ट्रांजिस्टर। साफ़-साफ़ कहने में क्या तेरी जीभ उधड़ती है?"

"इस तरह बोल रही है, जैसे अभी-अभी मिर्ची खाकर आयी हो", विदिशा ने भी अपना कमेंट प्रसारित किया।

प्रज्ञा ने विदिशा को टोकते हुए कहा, "तू तो है ही दिग्भ्रमित, सही कैसे बोल सकती है?"

विदिशा को आवेग आ गया। उसके चेहरे और आँखों में आये विकार को सभी ने ताड़ लिया थी। कहीं बात उल्टी न पड़ जाए, यह सोचकर प्रज्ञा ने हास्य का सहारा लिया, "वि प्लस दिशा इज़ इक्वल टू विदिशा। जैसे विफल, विद्रूप आदि।'

जिनको हिंदी या संस्कृत का कामचलाऊ ज्ञान था, वे तो समझ गयीं, शेष शायद अपने ज्ञान की सीमा पहचान गयी हों।

कृतिका ने बात को असली खूँटे से बाँधने की सोची। उसने कहा, 'अरे छोड़ो। हाँ, वर्तिका ! माई फ्रेंड! शायद कल्चर पर कोई वार्ता चल रही थी?"

"हाँ, इंडियन कल्चर एन्ड वर्ल्ड सिनेरियों पर वार्ता थी", उसने उत्तर दिया।

"इंडियन कल्चर इज़ सुप्रीम कल्चर", प्रज्ञा ने उत्साहित होकर कहा। इस पर बरतिका ने गंभीर होकर प्रतिवाद किया," "इंडियन कल्चर ऐसा दिखायी देता है, जैसे किसी पुराने मकबरे की दीवारों में आयी तरेड़ों को भर दिया गया हो। जहाँ-जहाँ टूट-फूट हो गयी हो, उसकी मरम्मत कर दी गयी हो।"

"क्या ऐसा नहीं लगता कि पुराने सामान से नया स्ट्रक्चर गढ़कर खड़ा करने की कोशिश भर है इंडियन कल्चर," विदिशा ने भी अपनी बात कही।

प्रज्ञा ने फिर अपना कमेंट दिया, 'यह तो ऋषियों द्वारा बताये रास्ते से भटकाव है। इस तरह इंडियन कल्चर डिफ़ाइन नहीं की जा सकती।"

सभी लड़कियाँ इस इंतज़ार में दत्तचित्त होकर बैठ गयीं कि प्रज्ञा अब इंडियन कल्चर पर कोई गंभीर व्याख्यान देगी, परंतु प्रज्ञा कहाँ ऐसा करने वाली थीं। वह तो ज्ञान को अपने पास समेटकर रखने वाली थी। इस पर भी उसने अपने मन की भड़ास निकालते हुए कहा, "एस.सी. और एस.टी. के लोग इंडियन कल्चर को कोसते हैं, तो जी भर के कोस लें। कुत्तों के भौंकने से हाथी के रुतबे में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। जो ग्रेट है, वह ग्रेट है। ईश्वर ने जिसको ग्रेटनेस अपने हाथों से सौंप दी है, उससे कोई नहीं छीन सकता।"

अब जाकर बरतिका ने प्रज्ञा का नाम लिया, "प्रज्ञा भार्गव, क्या तुम्हें नहीं लगता कि कल्चर का ज़िक्र करना नयेपन से कन्टेस्ट करने की कोशिश भर है?'

प्रज्ञा ने "नो, नो, मैलाफ़ाइड इंटरप्रिटेशन' कहकर खारिज़ कर दिया। जैसे स्वीकार्यता और अस्वीकार्यता का अधिकार उसी के पास सुरक्षित हो।

"क्या ऐसा नहीं लगता कि कल्चर के नाम पर नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच बायलॉजिकल सेपरेशन का बेस तैयार किया जा रहा है?" कृतिका ने भी अपना प्रश्न सुझाव की तरह प्रस्तुत किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक लड़की अंजना ने कहा, "जेनरेशन की कंटीन्युटी को काटकर टुकड़े किये जा रहे हैं। प्रवृत्ति, पसंद, नापसंद और इमोशन्स को काटकर फ़ासले पर रखने की कवायद की जा रही है। उस बनावटी फ़ासले को 'जेनरेशन गैप' कहा जा रहा है। यूथ कल्चर को सब कल्चर कहकर समझाया जा रहा है, जबकि कल्चर गैस्टाल्ट कॉन्सेप्ट होती है कि नहीं ?"

हरियाणे की इस लड़की अंजना चौधरी को सब लड़कियाँ जानती थीं। गंभीर और कम बोलने वाली थी, परंतु उसके प्रश्न का उत्तर शायद ही किसी के पास होता हो। किसान पृष्ठभूमि से आने वाली इस लड़की में ग्लैमर के स्थान पर रफ़नैस होने के कारण इसको ठेठ की श्रेणी में रखा जाता था।

यहाँ पर भी प्रज्ञा ने अपनी बौद्धिक चतुराई से काम लिया। उसने कहा, "लाइफ़ अपने आप में एक टफ़ कंप्टीशन है। हर एक अपने आपको प्रेज़ेन्टेबल बनाने की कोशिश करता है, जिसमें ग्लैमर का बहुत बड़ा हाथ होता है।"

बरतिका ने कहा, "प्रेज़ेन्टेबल का मतलब... परोसने लायक?"

इतना सुनना था कि प्रज्ञा के चेहरे पर हवा सरसराने लगी। कृतिका ने बात को सँभालते हुए कहा, "प्रेज़ेन्टेबल का मतलब एक्ज़ीबिट करना भी तो लिया जा सकता है?"

अंजना ने फटाक देनी तीर मारा, "कमोडिटी है या एस्सेट, जो एक्ज़ीबिट हो सकेगी ?"

बरतिका ने समर्थन किया, "ओमपुरी को देखो, प्रेज़ेन्टेबल तो इसे कहते हैं। ग्लैमर के फ़ील्ड के सारे योद्धा उसके सामने धूल चाट गये।"

प्रज्ञा ने अपनी झेंप उतारते हुए कहा, "सारे बखेड़े इसलिए हो रहे हैं कि फ़िलॉसफ़ी को एक ओर रखकर ज़िंदगी चलायी जा रही है।"

"फिर आउटडेटेड बात उठा ली। अब तो फ़िलॉसफ़ी ज़िंदगी में से निकलकर आती है। वह ज़माना बीत गया, जब रिटिन फ़िलॉसफ़ी के अनुसार ज़िंदगी चलायी जाती थीं,' बरतिका ने आत्मविश्वास के साथ कहा।

"कैसे?" प्रज्ञा ने इस प्रकार पूछा जैसे वह अपनी प्रतिद्वंद्वी को पराजित कर देगी।

"यहीं से देख लो... इसी कैंपस में कितनी लड़कियाँ हैं, जो डेट्स पर जाती हैं... लिव इन रिलेशंस को एंज्वाय करती हैं", कहकर बरतिका ने सभी लड़कियों की ओर देखा। जैसे वह सभी तो तयकर देखना चाह रही हो, "आप लोग कहेंगी, यह अपसंस्कृति है", उसने अंपने होठों को गोल करके बांग्ला भाषा के टोन में कहा।"

"इसमें सबको यूरोप की कल्चर दिखायी देती है। इंडियन कल्चर में पहले से ही ऐसा हैं", "इतना नहीं जानते। ये कल्चर के पैरोकार दुनिया को जानेंगे, अपने देश को नेग्लेक्ट करेंगे। हमारे आदिवासी कल्चर में लड़का लड़की के घर आकर खूब कमाता है। अपने व्यवहार और क्षमता से लड़की के साथ लड़की के घरवालों के मन को जीतने का जी-भर प्रयास करता है। उसकी एक प्रकार से परीक्षा होती है। पास हो जाएगा, तो वह लड़की उससे शादी करेगी, नहीं तो वह अपने घर, लड़की अपने घर। अब बताओ, सारी दुनिया में डेटिंग और लिव इन रिलेंशस कहाँ से गयी?"

बरतिका के इस तर्क का किसी के पास कोई जवाब नहीं था। इतने पर भी प्रज्ञा को अपना पैर तो ऊपर रखना ही था। उसने कहा, "तू और तेरी सोच जीवन के मामले में एक्सक्लूसिव हैं... एक्सक्लूसिव ही रहना चाहती है।"

"और तू टोटली रेडिकल है! दूसरों को ज़ीरो समझती है, फ़ंडामेंटलिस्ट है", बरतिका के चेहरे पर तार्किक घृणा अपने पूरे आवेग के साथ झलक आयी थी।

वातावरण गंभीर होने लगा था। अंजना ने सोचा कि इतना भारी बोझ कौन उठाये, अतः आँखें तो प्रज्ञा की ओर कीं तथा दाहिने हाथ का इशारा बरतिका की ओर कर दिया। क्षण भर को उसके इस अजीब प्रदर्शन से सभी सकते में आ गयीं। उसने कहा, "यू ग्रेंड नक्सेलाइट, सिक्सर पर सिक्सर मार रही है। चाय-कॉफ़ी कुछ नहीं..."

इतना सुनते ही विदिशा खड़ी हो गयीं। "कन्साइनमेंट मिस वर्तिका!" विदिशा ने बैरे की तरह स्टाइल दिखाते हुए पूछा, "रूम नंबर 39। कॉफ़ी ऐन्ड ...' कहकर वह प्रतीक्षा करने लगी।

बरतिका ने सभी लड़कियों को गिना, "वन, टू थ्री... सेवन एंड एट। ऑनली एट कप्स ऑफ़ कॉफ़ी... नथिंग मोर।"

अंजना ने कहा, "कृतिका, मुझे कॉफ़ी की तलब लगी हुई थी। यू रिगार्डेड मी। थैंक्स।"

कृतिका ने अपना दर्शन-ज्ञान बघारा, "आवश्यकता आविष्कार की जननी है।"

बरतिका ने तत्काल झाड़ दिया, "वह जमाना लद गया, जब आवश्यकता आविष्कार की जननी होती थी। अब तो आविष्कार इसलिए किये जाते हैं कि आवश्यकताएँ क्रिएट की जा सकें।"

अंजना ने बहस को रोकते हुए कहा, "देखो, मिस वर्तिका सभी को कॉफ़ी ऑफ़र कर रही है। यह अब हमारी रेसपेक्टेड ड्यूटी है, या हो गयी है। इससे कोई बहस नहीं चलेगी। नो डिस्कशन नो आरग्यूमेंट।"

सभी लड़कियाँ शांत बैठी रहीं। विदिशा अपने साथ कॉफ़ी लिवा लायी। एक-एक कप सभी के हाथों में आ गया।

किसी ने कहा, "कितनी अच्छी है वर्तिका। सोफ़्यस्टिकेटेड कल्चर्ड। सभी का रिगार्ड करती है। सुनो, ऑल द गर्ल्स लिसिन।"

सभी ने अपना कप होठों से हटाकर उस लड़की की ओर देखा। उसने भरोसे के साथ कहा, "अब से कोई वर्तिका को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेक्सलाइट नहीं कहेगी। हँसी-ठट्ठे में भी नहीं, उपहास में भी नहीं।"

इस कथन में छिपे व्यंग्य को बरतिका न समझ सकी हो, ऐसा नहीं था। फिर भी उसने धैर्य से काम लेते हुए कहा, "किसी के कहने से मैं नेक्सलाइट नहीं हो जाऊँगी। जब हो जाऊँगी, तब कोई कहने का साहस नहीं कर सकेगा।"

कमरे में शांति इसलिए नहीं छा सकी, क्योंकि कॉफ़ी पीने से होने वाली सिप ने ही काफ़ी शोर कर रखा था। बरतिका ने ही कहा, "कोई प्रज्ञा भार्गव को पोंगी पंडित कहने लगे या कृतिका को तुरखोर बक्काल रहे या फिर अंजना को भोंदू कहने लगे, क्या होना है?"

"व्यावहारिकता सामाजिकता का तकाज़ा है कि हम सब आपसदारी से काम लें", अंजना ने कहा।

"येह, इट्ज़ राइट,' विदिशा ने जैसे अध्यक्ष की मोहर लगा दी हो।

उसी तरह बहसें होतीं। सम-विषम संबंध बनते। डिबेट्स के चलते समय बीतता रहता। पारस्परिकता कभी कठोर और कभी तरल होकर अपना अस्तित्त्व सँभालती रहती। कभी हल्का-फुल्का तनाव, कभी प्रगाढ़ता अपने-अपने रूप दिखाकर वातावरण को गतिशील बनाने में योग करते रहते।

एक दिन इंस्टीट्यूट में नोटिस लगा कि मल्टीनेशनल कंपनी की ओर से स्टूडेंट्स की प्लेसिंग के लिए एग्ज़ाम कंडक्ट किया जाने वाला है, सभी स्टूडेंट्स तैयारी में जुट जाएँ। इस नोटिस का ऐसा ग़ज़ब प्रभाव पड़ा कि चहल-पहल, कैफ़े और रीडिंगरूम की बहसें हवा हो गयीं। प्रत्येक लड़की के चेहरे पर गंभीरता पैर जमाकर अड़ गयी। पारस्परिक संबंधों में मौन तनाव पसर गया । ऐसा लगने लगा मानो प्रत्येक लड़की का अपने ही साथ वाली से कंपीटीशन हो। हर कोई किताब पर झुकी हुई नज़र आती। हरेक के हाथ में कोई न कोई पत्रिका होती। सोशल और एकेडेमिक विषयों पर तो बात करना ऐसा हो गया, जैसे प्रतिबंधित हो। अध्ययन ही अध्ययन। जो लड़की आधा-पौना घंटा मोबाइल फ़ोन कान से चिपकाये रहती थी, वह भी स्विच ऑफ़ करके रखने लगी। ऐसा होता भी क्यों न? कैरियर का सवाल जो सामने पहाड़-सा अड़ा हुआ खड़ा था। प्रोफ़ेशनेलिटी का टेस्ट होना है। एप्टीट्यूड की जाँच अलग होगी। नॉलेज और केपेसिटी को परखना भी ऐसे कंपीटीशन्स का उद्देश्य होता है। विचारधारा और समर्पण भावना के साथ सामाजिक-बोध की भी थाह ली जानी होती है। मेंटलेफ़िटनेस की तो आज के उदारवादी वातावरण में अनुदारता के स्तर तक आवश्यकता होती है। शायद इसीलिए, लड़कियाँ अपने आपको मल्टी डायमेंशनल पर्सनेलिटी में डवलप करने के प्रयास में जुट पड़ी थीं।

निर्धारित तिथियों में रिटिन टेस्ट हुआ। मेरिट लिस्ट के साथ रिज़ल्ट भी नोटिस बोर्ड पर चिपका दिया गया। बरतिका ने टॉप किया था। उसकी फ्रेंड्स उससे कई-कई क्रम नीचे रह गयीं। चार सौ लड़कियों में से बीस टॉपमोस्ट का चयन होना था। इसके लिए मैरिटलिस्ट में से आरंभिक अस्सी लड़कियों को कॉल किया गया।

तीन दिन बाद काउंसलिंग होनी थी। इस अवधि में क्या-क्या हवा पर नहीं तैरता रहा। जैसे—कोई प्लेसिंग-व्लेसिंग नहीं होगी. .. कौन जाने प्लेसिंग के लिए जो टीम आयी है, वह घोषित कंपनी की है भी या नहीं... इंस्टीट्यूट वाले अपना विज्ञापन कर रहे हैं, प्लेसिंग का नाटक करके... अरे भई, कहाँ का कंप्टीशन, कहाँ की काउंसलिंग, प्लेसिंग तो पहले ही हो चुकी है... देख लेना, औद्योगिक घरानों से ताल्लुक रखने वालों की ही प्लेसिंग होगी, बाक़ी तो एड़ी उठाकर देखते रह जाएँगे कि प्लेसिंग किधर से आ रही है...

समस्त अफ़वाहों, हवाओं, शंकाओं, संदेहों और आशंकाओं के चलते काउंसिलिंग का काम निर्धारित तिथि को आरंभ हो गया।

काउसिलिंग टीम के अध्यक्ष को कंपनी का एंप्लायमेंट डायरेक्टर बताया जा रहा था। बहुत कम स्टूडेंट्स इस बात पर भरोसा कर रही थीं कि वह बोर्ड ऑफ डयरेक्टर्स का सदस्य हो सकता है। वह नौजवान और आकर्षक-चुलबुल व्यक्तित्व का धनी लग रहा था।

सब से पहला नंबर बरतिका का ही पड़ना था। उससे पूछे गये प्रश्न और उसके द्वारा दिए गए उत्तर इस प्रकार थे.:

प्रश्न- तुम्हारा नाम ?

उत्तर- बरतिका, सर !

प्रश्न - बरतिका का मीनिंग ?

उत्तर - बरतिका सर, दीये की बाती।

प्रश्न - नाम अशुद्ध क्यों रखा गया?

उत्तर - मेरे गार्जियंस अनपढ़ हैं। जो टीचर ने लिख दिया, सो लिख दिया। यह तो टीचर को देखना था कि नाम शुद्ध लिखे।

प्रश्न - आप किस क्षेत्र से बिलोंग करती हैं?

उत्तर - सर, छत्तीसगढ़।

प्रश्न- वहाँ नक्सेलाइट प्रॉब्लम है ?

उत्तर- हाँ सर, वह एक सोश्योपॉलिटिकल प्रॉब्लम है।

प्रश्न- नो इकनोमिक प्रॉब्लम ?

उत्तर- याह, इकनोमिक प्रॉब्लम इज़ इटसेल्फ ए सोशल प्रॉब्लम।

प्रश्न-नक्सेलाइट वॉयलेन्स के बारे में कैसे सोचती हो ?

उत्तर-वॉयलेन्स इज़ वॉयलेन्स सर! इट इज़ इनह्यूमन एन्ड अनसोशल।

प्रश्न- मिस, आपका साँवला रंग आपकी एडमिनिस्ट्रेटिव केपेसिटी को तो प्रभावित नहीं करेगा ?

इस प्रश्न पर बरतिका हकदम रह गयी। उसको ऐसा तो लगता कि जैसे भारत में जाति-वर्ण का भेद है, क्षेत्रीय भेदभाव भी यहाँ पर है। भाषायी भी है। पर, रंगभेद भी है, यह नहीं जानती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने पढ़-सुन रखा था कि रंग-भेद तो योरोप में है। जहाँ पर प्रोफ़ेशनेलिटी काउंट होती हो, वहाँ पर अधिक से अधिक कमा कर दे सकने की क्षमता का मूल्यांकन होना चाहिए। चेहरे पर आये असमंजस और उद्विग्नता को शायद भाँप लिया गया था। उससे आगे का प्रश्न भूमिका बाँधकर पूछा गया।

प्रश्न-गोरी लड़की मुस्कुराएगी। फेयर कंप्लेक्शन का अटैक करेगी। कैस परस्यु करेंगी ? जरा बताना।

उत्तर - आय डोंट थिंक सो।

प्रश्न-यदि आपका बॉस फ़ेयर कंप्लेक्शन का एडमायरर हुआ, तो आप उसको कैसे सैटिस्फाई करेंगी ? एन एटरेक्टिव एन्ड ग्रेसफुल स्माइल कहाँ से लाओगी ?

उत्तर - माई रिज़ल्ट एन्ड एचीवमेंट।

प्रश्न - हाऊ?

उत्तर - बाई नॉलेज़ एन्ड लेबर।

अध्यक्ष ने बरतिका को 'थैंक्स' कहा, तो सभी समझ गये कि काउंसलिंग पूरी हो चुकी ।

वह अभिवादन करके खड़ी हो गयी। धीरे से कमरे के दरवाज़े की ओर इस प्रकार बढ़ गयी जैसे आत्मविश्वास से लबालब हो।

एक-एक करके उन सभी स्टूडेंट्स का साक्षात्कार संपादित हो गया, जिनके नाम काउंसिलिंग की सूची में थे।

अगले दिन उन बीस नामों की सूची बोर्ड पर प्रदर्शित कर दी गयी, जिनका चयन कर लिया गया था। फ़ाइनल एग्ज़ाम का परिणाम आने के बाद चयनितों को जॉब पर कॉल कर लिये जाने की संभावना व्यक्त की गयी थी।

फ़ाइनल एग्ज़ाम होने में एक महीने से अधिक समय शेष था। जिन स्टूडेंट्स का वरीयता सूची में नाम नहीं था, ऐसी तीन सौ अस्सी स्टूडेंट्स थीं। उनको अपना कैरियर बनाने की चिंता थी। वे घनघोर तैयारी करने में संलग्न हो गयी थीं।

जिन लड़कियों को चयन न हो पाने का दुख था, उनमें तीन प्रमुख थीं। टॉपर बरतिका, दसवें क्रम पर रही विदिशा और सोलहवें क्रम पर रहने वाली अंजना। तीनों मिलकर इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर के पास अपनी शंका का समाधान करने पहुँचीं, तो डायरेक्टर महोदय ने मासूम बनते हुए बतलाया, "फ़ैमिली बैकग्राउंड की इंपोर्टेंस भी तो होती है। जिनका वातावरण बिजनेस या नौकरी का होगा, उनसे ही अच्छा काम कर सकने की उम्मीद की जा सकती है।"

इस पर बरतिका ने कहा, "मैं आदिवासी फ़ैमिली से आयी हूँ, मुझे शायद इसीलिए नेग्लेक्ट किया गया। टॉप पर आने का क्या फ़ायदा हुआ?"

इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर को उन तीनों का मुँह ताकने के अलावा कुछ नहीं सूझा। बरतिका ने आगे बताया, "विदिशा भले ही एस.सी. है, फ़ैमिली बैकग्राउंड तो सर्विस क्लास की है। इसके पिता सरकारी नौकरी में हैं और यह रही अंजना, यह फार्मिंग बैक ग्राउंड से आती है। हम सभी में जितना भी, जैसा भी टेलेंट है, वह मैरिट लिस्ट बता रही है। हमारे साथ अन्याय हुआ है, ऐसा महसूस होता है..."

डायरेक्टर ने हाथ से गेटआउट का संकेत करते हुए कहा, "व्हाट कैन आइ डू? आइ कांट हैल्प यू! प्राइवेट कंपनी है, खुद अपनी मालिक है, जैसे चाहे करती है।"

तीनों लड़कियाँ ऑफ़िस रूम से बाहर निकल आयीं। बरतिका ने बरामदे में आकर कहा, "फ़ैमिली बैकग्राउंड के माने जाति। यानी आपकी बिरादरी क्या है? यह देखकर नौकरी दी जाएगी!"

अंजना ने निराश होते हुए कहा, "हायर फ़ैमिली बैक ग्राउंड वालों के बराबर पैसा खर्च करो, उनसे अधिक मैरिट लाओ, फिर भी नौकरी में पीछे रहो!"

तीनों लड़कियाँ हॉस्टल की ओर चल दीं।

विमल कुंज, आदर्श कॉलोनी
मुज़फ़्फ़रनगर-251001

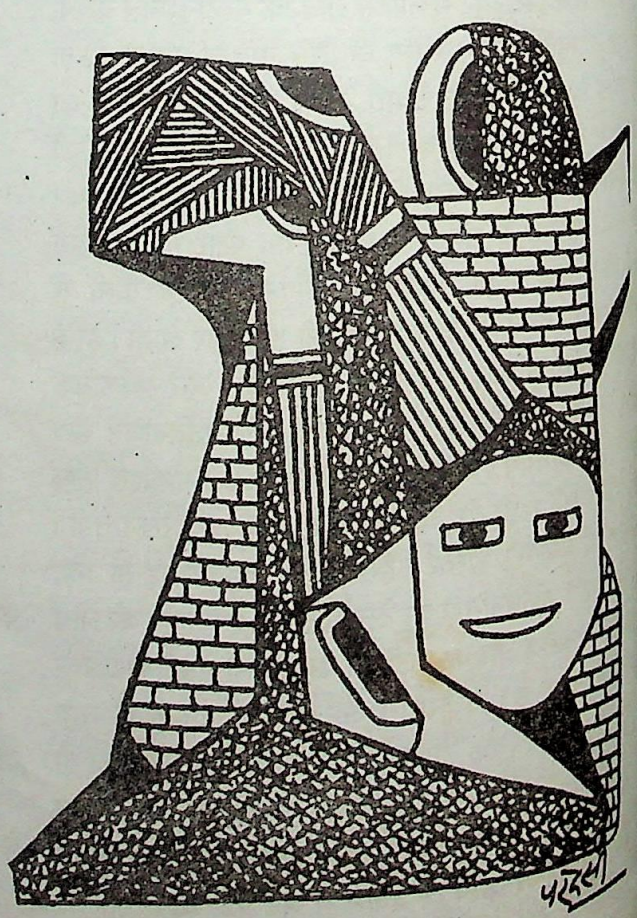

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(समान साहित्य : कमलेश्वर कहानी पुरस्कार के आयोजन के अवसर पर 31 जनवरी, 2010 को पढ़ा गया वक्तव्य)

मैं यथार्थ को उकेरने की कोशिश करता हूँ

हरपाल सिंह 'अरुष'

कई बार मुझसे मेरी रचना-प्रक्रिया के विषय में पूछा जाता है। मैंने कभी इस बारे में नहीं सोचा कि रचना-प्रक्रिया क्या होती है। मैंने कभी जान-बूझकर इस बारे में जानने की कोशिश भी नहीं की। हाँ, इतना मैं कह सकता हूँ कि मेरे चारों ओर प्रतिदिन घटनाएँ घटती हैं। भले ही अपने कस्बे-मुहल्ले में रहूँ या यात्रा पर अथवा किसी नई जगह पर रहूँ। घटते हुए देखना, सुनना और मीडिया के द्वारा घटनाओं की जानकारी मिलना हरेक के लिए आम बात है। मेरे लिए भी। जो घटना मुझे प्रभावित कर जाती है, उसके विषय में मेरी व्यग्रता मुझे सोचने पर मजबूर कर देती है। घटनाओं में अन्तर्निहित द्वंद्व, विरोधाभास और विपर्यस्त मुझको अपनी ओर खींच लेते हैं। मेरे मस्तिष्क में ऐसी घटना, जो किसी विशेष प्रकृति के द्वंद्व की उपज होती है, हलचल सी करती रहती है। यहीं पर कहानी का बीजारोपण हो जाता है। जब चिंतन में निष्कर्ष आकार लेने लगता है, तब द्वंद्व अंकुरित हो जाता है। इस प्रकार जन्मने आई आकस्मिक घटना, स्थिति या प्रतिकूलता अपनी प्रभावशीलता में मुझे प्रभावित कर जाती है। तब एक कहानी शक्ल अख्तियार कर लेती है। यदि कहानी भीतर तो कसमसा रही होती है, लेकिन बाहर आकर नहीं आ पा रही होती है तो उसका लेखन स्थगित होता चला जाता है। कई बार ऐसा भी हो जाता है कि कहानी का आरंभ करना बहुत कठिन दिखाई देने लगता है। ऐसी स्थिति में कहानी भीतर तो पकती रहती है, परंतु उसकी शुरूआत नहीं हो पाती। ऐसा इस कारण होता है कि उसकी शुरूआत करने का ढंग ही हाथ नहीं आता। कईबार तो अंत को न साध पाने के कारण कहानी लंबे समय तक अधूरी लिखी हुई ही रह जाती है। कईबार ऐसा बानग बन जाता है कि एक ही सिटिंग में कहानी पूरी हो जाती है। उसके विपरीत ऐसा भी होता है कि कई-कई सिटिंग्स में कहानी पूरी हो पाती है। मस्तिष्क में कई कहानियाँ ऐसी भी उभरकर आई हैं जो कई-कई सिटिंग्स के बाद भी पूरी नहीं हो सकीं। कईबार भीतर से उबाल आता है कि कहानी पके आम की तरह मस्तिष्क से टपक जाती है। कभी-कभी पाल में लगाए गए आम की तरह धीरे-धीरे पकती है।

अब रही बात लेखन की। यह मेरी कमजोरी मानी जाए या मेरे स्वभाव का प्राकृतिक गुण माना जाए, इसकी मुझे चिंता नहीं रहती। मैं शिल्प खड़ा करने में सोच-समझकर काम नहीं करता। करता क्या, कर ही नहीं सकता। जैसी घटना होगी, जैसा द्वंद्व होगा, जैसा इंपैक्ट मेरे मस्तिष्क पर उसका पड़ा होगा, जैसे कहानी भीतर से उगकर आएगी, उसी प्रकार का शिल्प अपने आप खड़ा हो जाएगा। और होता भी है। मैं पत्रिकाओं में शिल्प के विषय में, स्ट्रक्चर के विषय में, रूप के विषय में पढ़ता हूँ तो बहुत बोरियत महसूस होती है। ऐसा मेरी सीमा के कारण होता है या शिल्प, स्ट्रक्चर और रूप-विधान के विषय में बघारी गई अतिबौद्धिकता की नीरसता के कारण होता है, नहीं कह सकता। जब कहानी का लेखन शुरू हो जाता है तब उसका शिल्प और रूपाकार अपने आप विकसित होता चला जाता है। कईबार ऐसा भी होता है कि अपनी लिखी हुई कहानी स्वयं पढ़ने पर मेरे कहानीकार को ज्ञात-अज्ञात कारणों से पसंद नहीं आती। वैसे सचाई तो यह है कि मेरा कहानीकार अपनी किसी भी कहानी से अभी तक पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं हो सका है। जिन कहानियों को दुबारा पढ़कर असंतोष का पक्ष अधिक मुखर हुआ होता है, उनको एकाधिक बार पुनः लिखना होता है। इस प्रकार बार-बार लिखने में, उस कहानी में परिवर्तन, परिवर्धन, संपादन और संशोधन होता रहता है। अंतिम लेखन के सामने पहले वाले लेखन हास्यास्पद लगने लगते हैं, जबकि कहानी की घटना और अंतर्वस्तु के तत्त्वों में कोई विशेष बदलाव नहीं हुआ होता। कई बार प्रारंभिक लेखन और पुनर्लेखन में वर्षों का अंतराल आ जाता है। ऐसे में कहानी में बड़ा परिवर्तन होने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।

दैनिक जीवन के यथार्थ से मानवीयता की संभावनाओं को तलाशने की कोशिश करता हूँ। समाज को मानवीय मूल्यों के समुच्चय के रूप में स्वीकारने से यथार्थ के स्वरूप का मूल्यांकन और निर्धारण करने में मानवीय गरिमा को सुरक्षित और संरक्षित करने में सहूलियत रहती है। परंतु मेरी दृष्टि को, सहूलियत को सरलीकरण द्वारा प्राप्त कर सकना, संभव प्रतीत नहीं होता। सहूलियत भी किसी-न-किसी मुश्किल में से निकल ही आ सकती है। मेरा यह भी मानना है कि बिना मुश्किल को पार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किए सहूलियत को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह तभी संभव है जब यथार्थ की आकस्मिकता को सामाजिक संदर्भ में देखा जाए। मैं अनायास या सायास, जैसा भी कोई समझे यह मानता हूँ कि यथार्थ का स्थूल रूप जो इंद्रियगम्य है उसको ही संपूर्ण यथार्थ नहीं माना जा सकता। वह तो यथार्थ का मात्र संज्ञानात्मक पक्ष होता है। मैं उसमें संवेदनात्मक पक्ष की खोज करने का प्रयास करता हूँ। इस प्रकार मेरी बेचैनी बढ़ जाती है। मैं यथार्थ में संभावनाएँ तलाश करने की कोशिश करता हूँ। कारणों और परिणामों की संभाव्यताएँ मेरे मस्तिष्क में घुमड़ने लगती हैं। समाज के यथार्थ द्वारा समाज को प्रभावित करने की स्थितियों और क्षमताओं के चक्र को सँभालने का प्रयत्न करता हूँ। यथार्थ के अगोचर पक्ष मेरे भीतर उद्वेलन भर देते हैं। उनको गोचर करने का प्रयास मुझको चैन से नहीं बैठने देता। इस आंतरिक द्वंद्व से पार पाने के लिए दृश्य यथार्थ, जीवनानुभव और रचनात्मकता का सहारा लिया जाता है। ऐसा शायद इसलिए होता है कि यथार्थ को आकस्मिक नहीं माना जा सकता, क्योंकि वह भले ही अचानक उद्घाटित हुआ हो, वह विकासक्रम, इतिहास और वैचारिक धरातल पर विचरने वाले भविष्य-स्वप्न के योगफल जैसा कुछ होता है। घटना चाहे कितनी भी आकस्मिक क्यों न हो, उसमें अवधारणात्मक संबोध, सांस्कृतिक- सामाजिक संदर्भ और भविष्य के बीज सदा विद्यमान रहते हैं।

मुझको ऐसा लगता है कि यथार्थ का अपना विशेष साम्राज्य होता है जिसमें कला, साहित्य और संभावनाएँ सहज विकास को वहन करके बढ़ने की प्रक्रिया का हिस्सा होती हैं। यथार्थ समाज के भीतर जन्मता, संघर्ष करता और जीवित रहता है। यही कारण है कि यथार्थवादी कलाएँ मानवीय आदर्शों को संभालती हैं, उनमें संशोधन करती रहती हैं। उनमें निरंतरता बनी रहती है। उनमें सातत्य होता है। इस अग्रसरता को आभिजात्य सोच वाले लोग परिवर्तन की संज्ञा देकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। आभिजात्य नियंत्रण प्रणालियों वाली व्यवस्था से मुक्त होने की आकांक्षा और प्रयत्नों को उच्छृंखल नहीं माना जा सकता। मुक्ति मानव स्वभाव का विशेष गुण है। इसी मुक्ति के लिए छटपटाते समाज में से बहुविध यथार्थ निकलकर आता है। यथार्थ कितना भी सरल लगे, एकांगी लगे या एकफलकीय प्रतीत हो, परंतु इस लगने और होने में जमीन-आसमान का अंतर होता है। समाज में कोप्लेनर फोर्सेज क्रियाशील रहती हैं, जिनके कारण यथार्थ, बहुफलकीय, संश्लिष्ट और जटिल होता है। यथार्थ को बिंबित करने वाली कहानियाँ एकांगी नहीं हो सकतीं। यहाँ पर यह समझ लेना समीचीन होगा कि कुछ अभिजनवादी सोच के लोगों द्वारा निम्न या मध्य वर्ग के लोगों को असभ्य या असंस्कृत मान लेना एक सोचवादी त्रासदी के रूप में लिया जाना चाहिए। यह अनुभव में आया है कि उच्च सभ्यताएँ अमानवीय होती देखी गई हैं। मानव की क्षति और शोषण के सारे कुकृत्य प्रायः अधिक सभ्य लोगों की बर्बरता के परिणाम रहे हैं। इतिहास साक्षी है कि अधिक उन्नत मानव के लघु समूहों ने प्रकृत रूप से जीवनयापन करते आ रहे बड़े समूहों का दमन सदा ही किया है।

आज विश्व के विभिन्न समाजों पर पूँजी का दबाव बढ़ रहा है। इसी कारण जनसाधारण पर एक अतिरिक्त बल अपनी धौंस जमाने लगा है। ऐसे में सामाजिक यथार्थ को उकेरने में रचनाकार को अधिक कठिनाई का अनुभव होने लगा है। प्रत्येक रचनाकार के सामने विषयवस्तु के रूप में असंख्यता है तो उसको अंतर्वस्तु के रूप में ढालने के लिए अनुभव और संवेदना का संतुलन साधने में पसीने छूट रहे हैं। यथार्थ को उकेरने वाला लेखक आत्मप्रशंसा, आत्ममुग्धता और आत्मप्रयोजन के करीब नहीं फटकता। उसको तो बार-बार ऐसा महसूस होता है कि वह यथार्थ के असली स्वरूप, प्रयोजन और आंतरिकता को उकेरने में सफल नहीं हो सका है। यही कारण है कि वह यथार्थ से बार-बार टकराता है, संवाद करता है। उसका निरीक्षण, परीक्षण और पर्यवेक्षण करता है। वह औत्सुक्य और कुतूहल पैदा नहीं करता, अपितु उसमें से ही इनको खोजकर लाता है।

कुछ लोग एक रेखा खींच लेते हैं और अपने द्वारा खींची गई इसी रेखा को लाँघने में वे अपनी हेठी समझते हैं। यह रेखा अपने द्वारा परिभाषित-निर्धारित संस्कृति की होती है। उनको अपने द्वारा निर्धारित-स्वीकृत संस्कृति के सापेक्ष हर नई चीज पर शक होता है। उनको चिंता यह रहती है कि उनके द्वारा निर्धारित और स्वीकृत-संरक्षित संस्कृति सुरक्षित रहे। वे इस बात को स्वीकार करने से कतराते हैं कि नया विचार, नई सोच या नई चीज पुराने में से ही निकलकर आती है। कुछ दिन बाद इस नए को भी पुराना हो जाना है। पुराने के प्रति आग्रहशील लोग जहाँ अपनी मान्यताओं में हठ की हद तक आस्था रखते हैं, वहीं वे पुराने में से लुप्त हो गए हिस्सों को याद करके अपना वह संदेह पुष्ट करते हैं जो उनके मन में नए को देखकर उपजता है। कुछ के खोने का अहसास उनको नोस्टेल्जिया में धकेल देता है। इतने पर भी सोच और चीजें हमेशा अगले प्रस्तर पर पहुँचती रहती हैं। यदि हम इस बात को जान लें तो प्रतिगामिता, मूलगामिता और संस्कृति में समाई जड़ता के कारणों को खोजने की सामर्थ्य जुटा सकते हैं। प्रगतिशीलता, जनसामान्य की सोच की गहनता और मानव के प्रति मानवीय संवेदनता को समझने का प्रयास कर सकते हैं। यथार्थ का चित्रण हमको इन शक्तियों की पहचान कराने में समर्थ हो सकता है। भले ही वह कितना ही भदेस हो, वीभत्स हो, विद्रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। आज पिछड़े, दलित आदिवासी और स्त्री समूह संवाद करने का साहस करने लगे हैं। बहसें करने लगे हैं। जिनके मुँह पर ताला लगा हुआ था, वे बोलने लगे हैं। लिखने लगे हैं। यह इनके भीतर कसमसाती आकांक्षा और यथार्थ से परिचय का परिणाम है।

मैं अपने बारे में इतना कह सकता हूँ कि अपनी कहानियों में रचनात्मकता और सपाटता के अनुपात पर ध्यान नहीं देता। न ही इस क्षेत्र में काम कर सकने का कौशल ही मेरे पास है। जिस प्रकार कहानी का शिल्प अपने आप उभरकर आता है, उसी प्रकार संवेदना और रचनात्मकता अपना स्थान लेती हुई विराज जाती हैं। हो सकता है, कहीं किसी को शिल्प अधिक सधा हुआ लगे, कहीं शिथिल। कहीं सपाटता लगे, कहीं रचनात्मकता का अतिरेक। इन सबसे बेफिक्र होकर मेरा कहानीकार मानवीय मूल्यों की खोज में संलग्न रहता है।

मेरी दृष्टि में चरित्रप्रधान कहानी लिखने का औचित्य नहीं के बराबर है। यदि हम ऐसा करेंगे तो हम दो कृत्रिम स्थितियों से गुजरेंगे। पहला, ऐसा व्यक्ति खोजना होगा जो हमारे संकल्पित चरित्र के साँचे में ढला हुआ हो। खोज की सफलता और असफलता की आवृत्ति थकान और निराशा अधिक देंगी। दूसरी, हम अपनी इच्छा का चरित्र घड़ने में ऊर्जा का व्यय करने लगेंगे। इससे सामाजिक यथार्थ की तदनुरूपता में विकृति आने की संभावना अधिक रहेगी। घटना प्रधान कहानियों में सामाजिक यथार्थ का बहुफलकीय रूप सामने आता है, जिसमें विचार और चरित्र अंतर्वस्तु के रूप में विद्यमान रहते हैं। ऐसे में कहन, पढ़न और सुनन के गुणों की अन्विति अपने आप समा जाती है। ऐसी रचना को पढ़ने पर किसी के मन में कुतूहल, किसी के मन में आश्चर्य, किसी के मन में आक्रोश, किसी के मन में विचार, किसी के मन में प्रतिरोध की प्रेरणा और किसी के मन में मुक्ति की कामना जन्म ले सकती है।

विमल कुंज, आदर्श कालोनी
मुजफ़्फ़रनगर-251001 (उ.प्र.)

बहुआयामी यथार्थ की कहानियाँ

ये कहानियाँ जीवन अनुभवों के बहुआयामी यथार्थ की कहानियाँ हैं। संरचना की दृष्टि से इनमें रचनात्मक विविधता भी है। 'कैंपस' कहानी वर्जनाओं को ध्वस्त करती युवा लड़कियों की सोच और अलग रंग की कहानी है। साथ ही सामंतवादी सोच और वर्ग तथा जाति भेद के कारण उपजे एम.टी.एस.सी. वर्ग के कटु अनुभवों, उनके खुरदरे यथार्थ और उनके प्रति होने वाले अन्याय को भी दर्शाती है। क्रूर और उत्पीड़क नीतियों और दोहरे मानदण्डों को बताती है।

'सांत्वना पुरस्कार' अपनी रचनात्मकता, कथ्य, भाषा और सरोकारों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें वैचारिक संवेदना का तीखापन है। साहित्यिक पुरस्कारों की राजनीति और पुरस्कार पाने वालों की स्थिति पर व्यंग्य है। 'काली गाय', 'मट्ठा' जैसी कहानियाँ जाति व्यवस्था के कारण समाज में दमन और उत्पीड़न की कहानियाँ हैं। 'वे अठहत्तर दिन' जीवन में अप्रकाशित यथार्थ की अज्ञात छवियों की कहानी है।

ये सभी कहानियाँ आज के परिदृश्य में जीवन के बहुअर्थी यथार्थ की अभिव्यक्ति की कहानियाँ हैं।

डॉ. कमल कुमार
(सदस्य निर्णायक मण्डल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांत्वना पुरस्कार

सेराज ख़ान बातिश

मीर हसन साहब का मानना है कि साहित्यकार लोग प्रायः व्यवहार से थोड़ा खिसके हुए होते हैं, वे अपने जीवन की विफलताओं, प्रेम की कुंठाओं को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाते हैं। उनका कोई चित्रकार मित्र बता रहा था कि ये जोगेन चौधरी अपनी नंगी, कामुक सेक्सी चित्रों में अपनी नाकाम सेक्सुअल लाइफ़ को चित्रित कर संतुष्ट होते हैं। एक प्रकार से अपनी प्रेमिका से वे इंतकाम लेते हैं।

लेकिन, हसन साहब एक सद्गृहस्थ, व्यवहारकुशल, एक बेटी और एक बेटे के पिता हैं, उन्हें अपने परिवार से बेहद लगाव है। उनके लिए पहली प्राथमिकता उनका परिवार है। वे प्राइमरी स्कूल में बुनियादी शिक्षा दिलाते हैं। वे कहते हैं कि बुनियादी शिक्षा ही सबसे कठिन और श्रमसाध्य कार्य है। लेकिन, भारत में यह पूरी शिक्षा-पद्धति ही गड़बड़ है। जितने सरकारी बुनियादी स्कूल हैं, वे बंद हो रहे हैं। कारण है, शिक्षा-विभाग की लापरवाही। वैसे जितना हो पाता है, वे करते हैं। पर, इस पूरे बिखरे माहौल रूपी भाड़ में वे अकेले चना-स्वरूप ही तो हैं। एक हैड मास्टर साहब हैं। पूरे स्कूल में वही एकमात्र शिक्षक, चपरासी, दरबान, झाड़दार, जो कह लीजिए, वही हैं। जिस दिन वे किसी कारणवश नहीं आ पाते हैं, स्कूल नहीं खुलता। वे शिक्षा-विभाग को लिख-लिखकर थक गये कि यहाँ से दो-दो शिक्षक रिटायर हो चुके हैं, कोई टीचर यहाँ नियुक्त किया जाए, मगर कौन सुनता है? वे अकेले एक से चार तक की कक्षाएँ लेते हैं। परीक्षाओं के चार-चार प्रश्नपत्र बनाते है। स्वयं परीक्षा लेते हैं। सब कॉपियाँ देखते हैं... पर कौन है उनका दुख समझने वाला? हसन साहब को साहित्यकार होने का कोई दंभ नहीं है और न ही कोई महत्त्वाकांक्षा। अपनी पूँजी लगाकर दो-दो कथा-संकलन प्रकाशित करा चुके हैं और अब भी अपने लेखन से निरंतर जुड़े रहते हैं।

दो दशकों से निरंतर प्रकाशित होते रहने के बाद वे कथा-जगत के धुरंधर कथाकारों में अपनी कोई अलग पहचान तो नहीं बना सके, लेकिन बहुत अजान या अनाम भी नहीं हैं। हाँ, उन पर अलोचकों की तवज्जोह नहीं है। उर्दू में कहा जाए, तो वे तन्क़ीदी बेतवज्जही और बेरहरवी के शिकार हैं। उनको इसकी चिंता भी नहीं है और न ही अपनी लगन व उत्साह में कमी की आने दी है।

कोई उन्हें माने या न माने उनका नवीं कक्षा का पुत्र नदीम ज़रूर अपने पिता पर गर्व करता है। उनकी नज़र में उसके पिता देश के बड़े कथाकरों में हैं। वह अपने मित्रों को भी बताता रहता है तथा प्रकाशित कहानियों की कटिंग्स उन्हें दिखाकर उन पर प्रभाव डालता है।

मीर हसन साहब की उस एक बात की समीक्षा कर आज लोग सोचने को मजबूर है और उनके विरोधी भी आज उनसे सहमत हैं।

जब मुस्लिम बहुल दरिया बस्ती के नुक्कड़ पर बिरला मंदिर बनने लगा, तो मुसलमानों के एक गिरोह ने इसका बहुत विरोध किया था। उनका कहना था कि परिवेश ख़राब हो जाएगा। रहना मुश्किल हो जाएगा। लोग सदा तनाव में रहेंगे। हिंदुओं का वर्चस्व हो जाएगा। मुसलमान असुरक्षित हो जाएँगे...

लेकिन, मीर हसन साहब ने सबको चुप करते हुए कहा था कि ऐसा कुछ भी नहीं है। कोई हंगामा, दंगा नहीं होगा। हम पहले से अधिक सुरक्षित हो जाएँगे। करोड़ों रुपये की इबादतगाह बन रही है। इस मरे-मरे से इलाके में एक दिन चहल-पहल हो जाएगी। यहाँ रौनक बढ़ जाएगी। यहाँ के लोगों का भी लाभ होगा। पार्किंग, खाना, फूल, धूप-बत्ती... चाय, पानी, जूस सब तो यहाँ के लोग ही जुटाएँगे, जिस प्रकार कश्मीर में बर्फ़ानी बाबा के दर्शनार्थ जाने वाले श्रद्धालुओं के प्रति वहाँ के काश्मीरी मुसलमान जुटाते हैं। फिर छड़ी मुबारक उत्सव में हिंदू...

मगर, कुछ लोग हसन साहब से नाराज़ हो गये। उन्हें हिंदू-हिमायती कहकर अन्य लोगों की निगाह से गिरा दिया गया ...

आज, जब हसन साहब बिरला मंदिर की ओर से आ रहे थे तो उन्हें पिछली बातें याद हो आयीं। हसन साहब ने महसूस किया कि इन दस वर्षों में कितना कुछ बदल गया है। अब किसे पता है कि यह गुलज़ार-सा इलाका कभी सुनसान और निर्जन था। कितनी खुदरा दुकानें लग गयी हैं। आज, उधर गौसिया बुक डिपो खड़ा हो गया है, जिस में गीता प्रेस से प्रकाशित धार्मिक पुस्तकें भी मिलती हैं। एक तरफ़ अजमल पहलवान की सत्तू की दुकान चल रही है। कुछ दूरी पर हलचल भारती फ़्लॉवर शॉप खुशबू बिखेर रहा है। यह हलचल भारती अपने समय के मशहूर कव्वाल थे, अब बिरला मंदिर में फूल बेचकर गुज़ारा कर रहे हैं, लेकिन उनके होठों पर कोई न कोई कव्वाली का बोल चढ़ा रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन मंदिर में कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम था। कोई भजन गायक जब 'झूम बराबर झूम' की तर्ज पर भजन गाने लगा और बेमौक़ा-बेतुक पंचम सुर में अलापने लगा, तो हलचल को बड़ी कोफ़्त होने लगी। दिल में आया कि उसके बगल से हारमोनियम छीनकर कोई अच्छी-सी कव्वाली छेड़ दें... मगर उन्हें अपनी हैसियत की याद हो आयी... और वे बुझ गये...

अरे! गफ़्फ़ार मछली वाला भी यहाँ जूस की दुकान लगा बैठा। वो देखिए, जब्बार कसाई फ्रूट की दुकान लगाये बैठा है। चलो पेशा तो बदला। इस सावन के महीने में हिंदुओं के कई तीज-त्योहार मनाये जाते हैं। उनके यहाँ तो फल-फूल... साग सब्ज़ी की ही अधिक शीरनी (प्रसाद) बंटती हैं। यह तो मुसलमान लोग हैं, जो पका-पकाकर मिठाइयाँ-हलवा, खीर-पूड़ी बनाकर (शीरनी) प्रसाद बाँटते हैं। दरअसल, शीरनी के मायने भी तो मीठा ही होता है।...

मीठा बाँटना अर्थात् मुहब्बत-प्रेम बाँटना, फल-फ्रूट बाँटना अर्थात् प्रकृति-संस्कृति बाँटना... जीवन-जगत् के लिए दोनों ही ज़रूरी हैं।

हसन साहब ने ग़ौर किया कि क़रीब पचास-एक दुकानें बिरला मंदिर के प्रकोष्ठ में लग गयी हैं।

इसकी स्थापना से सैकड़ों मुस्लिम परिवारों का भरण-पोषण हो रहा है। चलो ठीक है, मरहूम प्रोफ़ेसर एज़ाज़ अफ़ज़ल जैसे बोल रहे हों—यहाँ से गुज़रेंगे अहले ईमाँ, तो उनको भी रौशनी मिलेगी।

कई बार हसन साहब ने सोचा है इस प्लॉट पर कोई कहानी लिखने को, मगर कहाँ लिख पाए।

एक बार एक आलोचक ने उनसे पूछा कि वे उर्दू में क्यों नहीं लिखते हैं? जिस प्रकार प्रेमचंद से गणेश शंकर विद्यार्थी ने इसके उलट पूछा था कि वे हिंदी में क्यों नहीं लिखते? वे क्या बताते कि उन्हें उर्दू नहीं आती। मगर, प्रेमचंद ने तो कहा था कि उन्हें हिंदी अच्छी तरह नहीं आती, लेकिन वे आज तक आलोचक महोदय का आशय नहीं समझ पाए।

उन्हें एजाज़ साहब की पहली पंक्ति याद हो आयी— 'जलाये हैं बुतक़दों की चौखट पे काफ़िरों ने चराग़' लेकिन—हसन साहब अपने शुद्ध इस्लामी संस्कृति वाले इस नाम से भी परेशान रहते हैं। अभी भी उन्हें मोटे अक्षरों में हिंदी कथाकार लिखना पड़ता है, जिस प्रकार पार्क सर्कस के प्रसिद्ध मुस्लिम रेस्टोरेंट में कोष्ठ में 'नो बीफ़' लिखना पड़ा है। फिर भी, कुछ भारत भारती और जाफ़रानी ज़ेहन के लोग उस रेस्टोरेंट के स्वादिष्ट भोजन से अपने को महरूम रखते हैं। पता नहीं कैसे भाइयों ने अमीर खुसरो को हिंदी का आदि कवि स्वीकार कर लिया... पिछले दिनों जब वे दिल्ली गये थे, तो हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के मज़ार पर भी गये। उसी प्रांगण में स्थित अमीर खुसरो के मज़ार को भी उन्होंने देखा। मगर वहाँ जो खुसरो हैं, वे हिंदी के आदि कवि नहीं, सूफ़ी संत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य हज़रत अमीर खुसरो रहमतुल्लाह अलैह हैं, जिनके मज़ार पर लोग भक्ति लेकर आते हैं, साहित्यिक श्रद्धा लेकर नहीं ... उस प्रांगण में और कई ऐतिहासिक क़ब्रें हैं, मगर कोई उनकी ओर ध्यान नहीं देता। कई पक्की मरमर की ख़ूबसूरत क़ब्रें तो वहाँ के मुज़ाविरों के लिए अलमारी के तौर पर काम आती हैं। एक क्षुब्ध ख़ादिम ने बताया कि-हुज़ूर क्या बताऊ, सब अक़ीदत की बात है। कौन किस की क़ब्र है ख़ुदा जाने। बस जिसकी चल गयी, वही जगता है—पीर है। यह देखिए, इधर हज़रत पीर के भाँजे की क़ब्र है। वह जो बैठे पंखा कर रहे हैं, यह उनकी जागीर है। लेकिन, यहाँ बड़ी मंदी है.... भूले-भटके लोग ही यहाँ आते हैं और बिना चिराग़ी दिये चले जाते हैं।

सब बाज़ार हो गया है। यह पूरा प्राँगण ही क़ब्रगाह है... उधर मीर अमर देहलवी की क़ब्र की ओर किसी की ख़ास निगाह नहीं जाती। इसके बाहर ग़ालिब की क़ब्र पर चले जाइये। कोई रौनक नहीं। वीरान सूनी पड़ी है। ग़ालिब की क़ब्र इसे आप ग़ालिब की ख़ुशकिस्मती भी कह सकते हैं कि वे इस हंगामे, फरेब और छली ख़ादिमों की गिरफ़्त से बाहर हैं।

उसी दौरे में हसन साहब ने मुग़लों और अंग्रेज़ों की दिल्ली को आँखें फाड़-फाड़कर देखा। लाल क़िले की भव्य विशाल प्राचीर को देखते हुए किताबों में पढ़ी मुग़लों की शान-शौकत, तबो-ताब जैसे छन-छनकर दृश्यों में मूर्त रूप लेने लगी... तलवारें खनक उठीं हैं... बख़्तरबंद फ़ौजें.... ज़ीन कसे हुए घोड़े... घोड़ों की टाप, कड़कती आवाज़ें.... बाअदब बा मुलाहिज़ा होशियार... जहाँगीर... आलमगीर जलवा अफ़रोज हो रहे हैं... दीवान-ए-ख़ास, दीवान -ए- आम, हम्माम... बस निशानियाँ रह गयी हैं। शायद अब मुग़लों की रूहें भी यहाँ नहीं हैं... बहादुर शाह ज़फ़र पर मुक़दमा उनके ही क़िले में चल रहा है। उनके ही सामने उनकी बहू-बेटियाँ बेपर्दा... बेइज़्ज़त खड़ी हैं। भूख-प्यास से लथपथ शाही लोग, दस्तरख़ान पर कभी अकेले नहीं खाते थे... आज ख़ुशबूदार लज़ीज़ व्यंजन नोश फ़रमाने वाले दाने-दाने को तरसते, बादशाह और उनके जांनशीन।

मानो इतिहास बोल रहा हो और वर्तमान चुप हो। बहादुर शाह के इतिहास से उन्हें याद आया— बुश, अमरीका और सद्दाम-इराक़ का दर्दनाक घटनाचक्र। हाँ-हाँ, यही लोग तो थे लालक़िले में... अदालतें लगाकर ज़फ़र को बेवतन करने वाले हाँ-हाँ ये ही लोग थे, सद्दाम को उन्हीं के मुल्क इराक़ में फाँसी देने वाले... जुल्म, नफ़रत, बेईमानी, छल... कहाँ वक़्त की रफ़्तार में बदला... वह हर दौर में अपनी उसी काल सच्चाई, सियाहपोशी के साथ वजूद में रहा...

उन्होंने इधर-उधर कई जगहों पर खंडहर, अवशेष, गिरी-ढही क़ब्रें, इमारतें देखीं। कई गुंबदों-मेहराबों वाली ख़ूबसूरत हवेलियों पर नज़रे गयी... मन बाग़-बाग़ हुआ। उन्होंने महसूस किया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास को वर्तमान में देखना जितना रोमांचित और गौरवान्वित करता है, उतना ही कष्ट भी देता है।

ऐतिहासिक जामा मस्ज़िद के दो नंबर गेट पर बाबे-जहाँगीर को देखकर मीर हसन साहब का दिल रोमांच और विरासत के अहसास से भर उठा—"कितना विराट-विशाल शानदार कुशल भवन है। देश में तो हज़ारों-हज़ार मस्ज़िदें हैं, फिर क्यों इस मस्ज़िद से इस क़दर लगाव है। मेरा आख़िर क्या रिश्ता है मुग़लों से... हम क्यों गौरवान्वित होते हैं उनके द्वारा निर्मित भवनों, अवशेषों को देखकर?... एक साथ ऐसे कई प्रश्न उनके ज़ेहन में घूमने लगे। हिंदी स्वभाव के मीर हसन साहब को लगा कि मुनष्य चाहे जितना भी प्रगतिशील, वामपंथी, नास्तिक, उदार हो जाए, उसकी आत्मा में उसका जन्मजात धर्म-संस्कार अपना कोमल उजास लिए सदा प्रवाहित रहता है। मीर हसन साहब भी उसी प्रवाह में बह रहे थे।

जामा मस्जिद का किसी आम दर्शनीय स्थलों, इमारतों, खंडहरों, संग्रहालयों की भाँति पर्यटकों द्वारा देखा-घूमा जाना अच्छा नहीं लगा। इबादतगाह है, कुछ तो इसकी पवित्रता का ख़्याल रखना चाहिए... लोग मस्जिद के सेहन में बैठकर गप्पें मार रहे हैं। औरतें-मर्द हाथ में हाथ डाले रूमानी मूड में घूम रहे हैं। जैसे मिलेनियम पार्क में घूम रहे हों। अंदर मस्ज़िद में दाख़िल होने से पहले ही जूते-चप्पल निकालने हैं। यदि वहाँ वह बूढ़ा छड़ी लिये आते-जाते लोगों के समक्ष पत्थर पर छड़ी मार-मार कर नंगे पाँव अंदर प्रवेश करने की गुहार न लगाता होता, तो लोग मिंबर तक जूते-चप्पल लिये घूम आते।"

मीर हसन साहब मिंबर के पास आकर कुछ देर तक खड़े रहे, मानो वे शाहजहाँ, औरंगज़ेब को नमाज़ पढ़ते देख रहे हों। उन्हें लगा 15वीं-16वीं सदी का इतिहास मेहरौली से चलकर लाल क़िले के विराट प्राँगण में फैल गया है।

उन्होंने मस्ज़िद के सहन से लाल क़िले की भव्यता को देखा, तो लगा कि शाहजहाँ मीना बाज़ार को पार करते हुए चले आ रहे हैं... मीनाबाज़ार की क़ौमी एकता दंगल सोसाइटी के विषय में पहलवान छेदी उस्ताद बताते हैं कि यह दंगल-कुश्ती हर रविवार को उसी शानो-शौकत से होता है, जिस प्रकार मुग़लों के समय में हुआ करता था। बस, मुग़लों के समय का यही एक कसरती खेल शेष रह गया है, जिसे उनके पूर्वज और वे बड़ी कोशिशों से आज तक ज़िंदा रखे हुए हैं।

मीर हसन साहब का यह दिल्ली दौरा भी बड़ा दिलचस्प था। उनकी एक कहानी 'क्रास' ने यहाँ तक उन्हें सम्मान दिलाने में अपनी ज़बरदस्त भूमिका निभायी। कोई सरकारी संस्था है, जिसे यह प्रकाशित कहानी पसंद आ गयी और एक दिन हसन साहब को सूचना मिली कि उन्हे सांत्वना पुरस्कार के लिए दिल्ली आना है। पहले तो उन्हें यकीन न हुआ कि ऐसा भी हो सकता है। फिर सोचा-पुरस्कारों की बड़ी जोड़-तोड़ होती है... चलो सांत्वना ही सही. ... फिर पत्र-पत्रिकाओं में ख़बरें छपने लगीं। पुत्र नदीम तो फूला न समाया। उसे तो बस यही लग रहा था कि उसके पिता को जैसे पद्मश्री मिल रहा है, लेकिन हसन साहब समझ रहे थे इस पुरस्कार की हैसियत। फिर, यह क्या कम था कि आने-जाने के ख़र्च, रहने-सहने के सरकारी इंतज़ामात। यह उनके जीवन का पहला और शायद आख़िरी भी भव्य स्वागत-सम्मान था। अब पुरस्कारों की पारदर्शिता के प्रति उनके मन में बैठी संकीर्ण मैल की चादर साफ़ हो गई थी। उन्हें समझ आ रहा था कि देश-समाज प्रदूषित है। पर्यावरण की समस्या से विश्व-समुदाय जूझ रहा है, हमारी साहित्य-संस्कृति भी इससे अछूती नहीं है। फिर भी सच्चाई, ईमानदारी, लेखकीय गौरव, उसके प्रति निष्ठा रोटी पर नमक के बराबर ही सही, लेकिन है।

देश की चुनिंदा दस प्रकाशित कहानियों पर उनके कथाकारों को राज्यपाल सम्मानित कर रहे थे। मीर हसन साहब सोच रहे थे कि शब्द—सार्थक सोच कभी व्यर्थ नहीं जाते। पत्रकार कृपाशंकर चौबे की पुस्तक 'चल कर आए शब्द' की सार्थकता समझ में आ रही थी। क्या 'क्रास' पर यह सम्मान उन्हें आश्वस्त नहीं करता कि रचनाकार को अपनी रचना-प्रक्रिया में लगे रहना चाहिए। समय आएगा, तो वे अवश्य अपना अस्तित्व क़ायम कर लेंगे। इसके लिए किसी प्रकार की राजनीति करने की ज़रूरत नहीं है। जोड़-तोड़ से बहुत दूर तक नहीं बढ़ा जा सकता।

ज़िद तो उनका पुत्र नदीम भी कर रहा था, उन्हें सम्मानित होते हुए देखने की। मगर उसके सामने परीक्षाएँ थीं और पत्नी अस्वस्थ... दिल्ली के सारे अख़बार इस सम्मान-समारोह की तस्वीरों और ख़बरों से अँटे पड़े थे।

मीर हसन साहब को सांत्वना ही सही, उन्हें भी अन्य पुरस्कारों की भाँति सम्मान-समारोह में आमंत्रित किया गया था, यही उनके लिए बड़ी बात थी। उन्हें जब मंच पर बुलाया गया और माइक से जब वे रू-ब-रू हुए, तो भावुक मन प्रवाहित हो गया और ख़ुशी के आँसू निकल आये... उन्होंने हाथ जोड़ते हुए कहा—"मेरी यह 'क्रास' कहानी आपको भी प्रभावित करेगी, मैंने सोचा ही नहीं था। यह मेरी बिटिया की अपनी ज़िंदगी पर आधारित है। सच, लेखक का अपना दुःख उल्लास दूसरे का भी हो सकता है—आज मुझे पूर्ण विश्वास हो गया। बस, लेखक में कहने, अपने भावों को सशक्त रूप में व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए।

-यूँ साहित्य-जगत में यह कोई बहुत बड़ा उत्कर्ष नहीं था। उत्साहित-चमत्कृत कर देने वाली घटना नहीं थी, यह मीर हसन भी जानते थे। मगर, उन्हें भी अंदर से थोड़ी राहत, ख़ुशी मिल रही थी। उनके मन में अन्य बड़े पुरस्कारों के पाने की एक हल्की-सी इच्छा जाग उठी।

बेटा नदीम सर्टिफ़िकेट, मोमेंटो, पुरस्कृत राशि वाले चेक शाल व भेंट की गई पुस्तकों को कई दिन तक देखता रहा।अख़बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कटिंग्स के फोटो में बार-बार अपने पिता को छुपे, खड़े अर्धलक्षित देख-देख रोमांचित होता, तो कभी ख़बरों की अंतिम पंक्तियों में पिता का नाम पढ़ झुँझलाता, तो कभी पूछता कि पापा आप की छवि सबसे ऊपर क्यों नहीं है? इस रिपोर्ट में आपका नाम ही नहीं है.... इसमें है, तो एकदम अंत में और इस में तो मीर की जगह 'मोर' हसन हो गया है.... आप दिल्ली पुरस्कार लेने गये थे। यह क्या कम बड़ी बात है... अच्छा आप से भी बड़ा कोई लेखक आया था क्या? आपने तो कितना लिखा है।

मीर हसन साहब अपने हिंदी साहित्य के अल्पज्ञ जिज्ञासु विद्यार्थी पुत्र को किस प्रकार समझाते कि यह कोई बड़ा पुरस्कार नहीं था, जिसका ख़ूब ज़िक्र किया जाए। वह क्या जाने कि साहित्य के बड़े फलक पर ऐसे पुरस्कारों की कोई हैसियत नहीं होती। वह क्या जाने कि बहुत कुछ लिखने-पढ़ने के बाद लोग कहीं कुछ स्थान बना पाते हैं। बहुत तो यूँ ही चले जाते हैं। हो सकता है, कोई विकल्प न रहा हो... सो इस अजान-अनाम को यह पुरस्कार देना पड़ा।

नदीम शायद स्कूल में भी अपने पिता की इस उपलब्धि की धौंस जमाकर हिंदी की कक्षाओं में सबको प्रभावित करना चाहता होगा। पत्नी को तो बस इतने से ही ख़ुशी थी कि उसके लिए दिल्ली से पाँच-छह सूट आ गये थे। लड़की को इन सब बातों से कोई मतलब नहीं था। वह भूगोल के अपने विशेष अध्ययन में व्यस्त रहती, नक़्शे पर सदा देश-विदेश और भारत की दुर्गम दिशाओं को देखती रहती। उसका प्रिय विषय इतिहास या साहित्य नहीं था, भूगोल था—भूगोल, जिससे किसी देश, समाज, व्यक्ति की स्थिति का पता लगता है। मनुष्य पहली दृष्टि में अपनी भौगोलिक अवस्था से ही आदर पाता है। उसका तो मानना था कि गांधी जी अपनी भौगोलिक अवस्था के कारण भी अंग्रेज़ों द्वारा बहुत बार उपेक्षित किये गये थे। उसकी नज़र में भारत भौगोलिक अवस्था से नहीं, अपनी राजनैतिक स्थिति के कारण भूख, दरिद्रता एवं अमानवीयता से जूझ रहा है।मीर हसन साहब भी ऐसी स्थिति को महसूस कर चुके हैं। कल पत्नी ने कहा--"सिलाई मशीन का तेल नहीं है, सोचती हूँ दिल्ली वाला एक सूट सी लूँ।"

हसन साहब यूँ ही लुंगी-चप्पल में निकल गये उस नुक्कड़ वाली दुकान पर, तेल लेने के लिए। लेकिन, वह बददिमाग़ बदज़ुबान, जैसे मशीन का तेल नहीं अंबानी भाइयों का पेट्रोल बेच रहा हो। हाथ से प्लास्टिक पैकेट छीनते हुए कहने लगा, "जाइए, नहीं दूँगा... क्या कर लेंगे। हाँ-हाँ मुफ़्त वाला ही है... बेच रहा हूँ, जाइए केस कर दीजिए।"

मीर हसन साहब हक्के बक्के रह गये। बस उन्होंने यही तो पूछा था--"अरे भाई! यह तो सिंगर मशीन के साथ मुफ़्त मिलता है और आप इसे बेच रहे हैं। यह ग़लत है।"

वह बहुत ग़ुस्सा और ग़मगीन होकर लौट रहे थे कि रास्ते में एक और दुकान नज़र आयी। उन्होंने मन मारकर कुछ सहमे हुए, बुझे हुए पूछा, तो उस मरियल अनपढ़ से दिखने वाले दुकानदार ने एक बड़ी सी बोतल से कुछ तेल एक प्लास्टिक के कार्क में डालकर देते हुए कहा—"ले जाइए, देखिए अगर अच्छा लगे, तो एक बोलत या आधा यहाँ से खरीद लेंगे। अगर इतने से काम हो जाए, तो कोई बात नहीं।"

बहुत आग्रह करने पर भी उसने तेल का पैसा नहीं लिया. .. मीर हसन साहब का बुझा, आहत, दुखी, क्षुब्ध मन खिल गया। कैसी दुनिया है, ज़हर के बगल में अमृत है।

पत्नी ने तीन सूट सी लिये थे—एक बेटी के लिए और दो अपने लिए...

उस दिन पुत्र नदीम बहुत व्यस्त था। वह पुरस्कार की ख़बरों, तस्वीरों को अख़बार से काट-काटकर फ़ाइल बना रहा था। लेकिन, मीर हसन साहब तेल की घटना को यादकर दुखी हो रहे थे। उस उजड्ड, बददिमाग़, बदज़ुबान की शक्ल बार-बार सामने आ-जा रही थी और बीच-बीच में राहत, सांत्वना देने वाली; मरियल-सी दिखने वाली दुकानदार की सूरत भी। वे सोच रहे थे कि अगर उस रोज़ उस दुकानदार की सांत्वना का संबल नहीं मिला होता, तो शायद वे बीमार पड़ गये होते, लेकिन यह भी तो ठीक नहीं है। इतनी कोमलता-भावुकता मनुष्य में नहीं होनी चाहिए। कुछ ढीठ, बेहया, बेगरज़ भी आदमी को होना चाहिए। डॉक्टर बताते हैं कि भावुक व्यक्ति को हृदयाघात का अधिक भय रहता है। उन्हें भी कभी-कभी यह अहसास होता है।

मीर हसन साहब सोचते-सोचते दिल्ली पहुँच गये। ग़ालिब की गली कासिमजान, बल्ली मारान। मगर कहाँ है आज यहाँ ग़ज़ल की नाज़ुकी। मशीनों का उठता शोर, रिक्शे की घंटियों की टनटनाहट-चिल्ल-पों... फिर एक दृश्य पर उनकी नज़र अटक गयी—गोश्त की एक दुकान में एक केंद्रीय मंत्री की दुकानदार के साथ दीवार पर लटकती हुई फ्रेमजड़ित तस्वीर। मीर हसन भाई ने दृश्य से ख़ुद को मोड़ना चाहा, मगर बार-बार उनका मन उसी अवचेतन में पहुँच जाता... और बार-बार उस से मुक्त होना चाहते। तभी नदीम ने हिंदी पढ़ते हुए पूछा—"पापा आपकी कहानी भी तो अब कोर्स में पढ़ायी जाएगी...?"

मीर हसन साहब चुप हो गये। वे कुछ बोलना नहीं चाह रहे थे। फिर लड़के ने कहा—"आपकी कहानियाँ तो किताबों में लगी कहानियों से भी अच्छी हैं और अब तो आप गवर्नर के हाथों पुरस्कार पा चुके हैं..."

मीर हसन साहब खीजकर बोले—"अरे बेटा, कोर्स में लगना कोई खेल-तमाशा नहीं है। हमारे जैसे लाखों लोग लिख रहे हैं और यह सांत्वना पुरस्कार क्या है? तुम इसे लेकर ज़्यादा उत्साहित, गौरवान्वित मत होओ, यह कोई बड़ी बात नहीं है। आगे पढ़ो तो साहित्य की ऊचाइयाँ समझ में आएँगी। इसका दाँव-पेंच समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाओगे... बहुत लिखना पड़ता है... प्रेमचंद के विषय में पढ़ो तो जानोगे।''

मगर, लड़के ने बड़ी मासूमियत से कहा—'उसने कहा था' के लेखक ने एक ही कहानी से अपनी धाक जमा ली... मुझे तो वह कहानी समझ ही नहीं आयी और आपकी कहानी 'क्रास' कितनी स्पष्ट है। एक बार में ही समझ में आ जाती है। हमारी टीचर ने भी इसे पढ़कर प्रशंसा की है...''

मीर हसन साहब के चेहरे पर संतोष और सांत्वना की हल्की सी लाली खिंच गयी, लेकिन वे लड़के को डपटते हुए पढ़ाई में ध्यान देने को कहने लगे, जैसे किसी शरारती पुत्र को पिता लाड़-प्यार में डाँट रहा हो...

3-बी, बंगालीशाह वारसी लेन, दूसरा तल, फ़्लैट नं.4, खिदिरपुर, कोलकाता-700023

कविता

कविता

दिवाकर शास्त्री

रंग जमा
राग जमा
समां बंधा
और फिर
समां ही समां रहा
गायक गीत श्रोता कुछ नहीं
बस समां ही समां रहा
धीरे-धीरे छाने लगी धुँध
समा पता नहीं कब धुँध में समा गया
उस धुँध में चारों ओर
पता नहीं
असली है या नकली
रोज की आपा-धापी में सब कुछ समा गया
न रंग रहा
न राग रहा
न समां रहा
पर यह क्या
यह चमकता मोती
और जिसकी यह आब
यह मोती कौन लाया
किसी महा सागर की गहराई से लाकर
किसी सीप की कृपा से पाया
या अनायास कोई सीपी
अथाह सागर से
उछल कर
धरती पर आई
मानों रंग, राग, समां से अभिभूत
भेंट करने आयी है
मोती वाली पर कृपा
मोती वाली के पास तो बहुत मोती हैं!
लेकिन यह अनोखा मोती!
मोती वातावरण पर छा जाता है
मोती वाली मोती पर मुग्ध
क्या करे ?
मेले में बहुत आते है
मोती के बारे में न जानने वाले भी
विस्मय भरी नज़र डालते हुए निकल गये है
मोती के पारखी आते हैं
पर वे मोती का क्या करेंगे,
रखेंगे
या छोटे-बड़े मोतियों के साथ इनको बीन्ध कर इसका हार बनायेंगे
पर बीन्धे मोती की अपनी आब ?
या कोई सौदागर आयेगा जो मोती को पहचानेगा लेकिन
उसके हाथ से
एक, दो, तीन कितने हाथों में यह मोती पहुँचेगा
इसका क्या होगा और फिर किसी के हाथ से यह मोती गिरा
बिखरा
मिट्टी के मोल हो जायेगा
या फिर कोई अनुरागी
मोती बिना बीन्धे
उसे उर्वशी पर चमकायेगा
तों पर वारों उरबसी
सुन राधिका सुजान
तों मोहन के उर बसी
व्है उरबसी समान।

अध्यक्ष, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काली गाय

आनंद प्रकाश मिश्र

सुगनी का मन भँवरी की तरह नाच रहा था। घर के नाम पर मिट्टी के इकलौते कमरे की दीवार से झूलती मँड़ई के अँधेरे में कभी उसे रूखा-सूखा खाकर सोये बच्चों का चेहरा कौंधता, तो कभी थका-माँदा बल्ली। ज़रा-सा कलेजा काठ कर लेती, तो घर में राशन रहते हुए बच्चे पेट सिकोड़कर नहीं सोते। उसने अँधेरे में पिंटू के पेट पर हाथ फेरते हुए अफ़सोस किया। सब खेल तो तक़दीर का है, बच्चों का क्या दोष ? इहे हरामजादी नाही फूटी रही तो ददनी (एडवांस) के रकम से जइसे-तइसे खरीदी भैंस खूँटा से खोल जाती। कितना उछाह से खरीदे थे सुरसतिया के बाऊ। कहते थे–"का फिकिर कर रही, दो साल में ददनी उतार देंगे।"

मरद-मेहरारू दोनों इहै खातिर तो हाड़-तोड़ मेहनत कर रहे थे। जब से भैंस आयी, चार बजे भोर में ही भट्ठा पर जाना और आधा-एक घंटा देहर तक खटना खुशी-खुशी चल रहा था। मुनीम जी गिनते हुए बताते–"हरे बलीया! आज तो पचास ईंटा जीयादा पाथा है रे।"

उनका चेहरा दमक उठता, अगले दिन भी ज़्यादा का संकल्प।

कहाँ होंगे सुरसतिया के बाबू? क्या सिधरी काका की बात सही थी या नहीं ? भंईस ना छूटी तब ? लेकिन भग्गन, सीता गोंसाई और मनीर चा के रहते कैसे ना छूटेगी ? एतना अँधेर थोड़े फैला है, जो हमरी भंईस को खूँटा में बान के कोई अपना कह देगा। पर कलजुग का क्या भरोसा ? ना मिली तो क्या होगा? पूँजी के साथ बच्चे के अरमान भी डूब जाएँगे। दस साल की बेटी खुरपा-खाँची उठाये दिन रात डोली फिरती है, पिंटू उनकी गैरमौजूदगी में सानी-पानी-गोबर करता है। बस! दूध-दही के लालच में! खरीद के खाने की कहाँ बिसात! खरीदो भी, तो पाँच रुपिया में पोटा भर दही, बकरी की मूत बराबर दूध मिलता है।

"शनिचरा बाबा की जय!" पूरब दिशा में अँधेरे को चीरते उठे जयकारे ने उसके विचारों पर विराम लगाया। अनायास ही हाथ जोड़े उठ बैठी–"बाबा! बच्चों का सउख पूरा करना।" इतना ही सोच पायी थी कि मन में अपराध बोध आ जमा–'काहे पूरा करेंगे हरामजादी! जाने कौन गुमान में पोखरा से माटी निकाल के बाबा की बेदी बनाने की मजूरी माँग बैठी। हर साल दूसरा कोई बनाता था क्या ? ऊपर से 'आज पूजा चढ़ेगी' इसका भी ध्यान नहीं धरा।'

स्वयं के इस निष्कर्ष ने स्तब्ध कर दिया–"ज़रूर बाबा का शराप लग गया है। हे बाबा! अभागिन को मांफ कर दो। अगिले बरिश हम दोनों अकेले बेदी बनाएँगे।" स्वीकारोक्ति ने न सिर्फ़ मनौती माँगने का साहस भरा, बल्कि 'माफीनामे' की ख़ातिर कुछ चढ़ाने के लिए बाँस की खटिया से उतर गयी। पूरब दिशा का उजाला और ढोलक की थाप के सहारे क़दम उस ओर बढ़ चले। पूजा ख़त्म होने के बाद रात भर चलने वाला निरगुन हो रहा था।

दक्षिणी रास्ते से चलकर आयी सुगनी मंत्रमुग्ध देखती रह गयी। निर्जन में खड़े विशाल बरगद का आधा हिस्सा दूसरी ओर गाते-बजाते लोगों के बीच जल रहे पेट्रोमैक्स की रोशनी में नहाया हुआ था। इस ओर बेदी पर अरगबत्तियों के गुच्छे, कनैली फूलों का ढेर, पुजारी के लिए बने ईंट के आसन के इर्द-गिर्द चने-चावल नम हो चुकी ज़मीन पर बिखरे पड़े थे। हवा में झूलती ज़ड़ों से बँधे रंग-बिरंगे पतंगे लहरा रहे थे। रोशनी की झर रही छाया में उसकी नज़र बेदी से नीचे आये स्याह खून की धार पर जा ठहरी। इससे बढ़कर और क्या चढ़ावा होगा? मदोन्मत्त सुगनी ने आगे बढ़कर आसन पर बायाँ हाथ फैलाते हुए आँखें भींच ली। दाहिनी हाथ से ईंट का प्रहार तर्जनी फोड़ने में सफल रहा। लौटती सुगनी की फूटी उँगली में तीखी चुभन हो रही थी, पर 'यह 'अर्घ्य' उसके परिवार को मुसीबतों से मुक्ति दिला देगा' का अडिग विश्वास हो चला था।

बल्ली उर्फ़ सुरसतिया का बाबू मजूरी के सहारे परिवार चल रहा था। अक्सर काम का टोटा या बँधी- बँधायी मजूरी से रोज़ राशन खरीदकर पेट की आग बुझाने के क्रम ने सपनों के लिए दरवाज़े बंद कर दिये थे। चूल्हे में आग जले' यही लक्ष्य और ख़्वाब था। अनेकानेक कारणों से जब इसमें भी दुश्वारियाँ नज़र आने लगीं तब भट्ठे की मजूरी की ओर रुख़ किया। कबीरपंथी होकर स्वर्ग सिधारे बाप हमेशा 'माटी, माटी (देह) को लील लेगी' कहते हुए इस धंधे के ख़िलाफ़ रहे। बल्ली ने भी टी0बी0, पीलिया से कइयों को मरते हुए देखा था. पर कुछ कमाकर दूसरी रोज़ी थामने की चाल ने देखे को अनदेखा बनाया।

बीवी-बच्चों के साथ खेत के गड्ढों में ईंटा पाथते साल दर साल गुज़रे। नियमित मेहनत की बदौलत साख जमी और इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साख से पाँच हज़ार रुपये की 'ददनी' लेने में वह कामयाब हुआ था। पैसे आने के बाद पूँजी छोटी, धंधे मुश्किल नज़र आने लगे। घूम-फिरकर मन बाप के भैंस पालने के स्वप्न पर जा टिकता, जिसे देखते-देखते वो मर गये थे।

भैंस आयी और सपने भी, क्योंकि गाभिन भैंस के बियाते ही बहुत कुछ बदल जाने वाला था, पर क़िस्मत साथ नहीं रही, एक रात चोरी हो गयी। आस-पास खोजने के बाद भट्टे पर लौटा बल्ली सिधारी यादव को देखते ही भोकड़ा फाड़कर रोने लगा, मानो वज्र टूट गिरा हो। सिधारी ने भरपूर मदद का आश्वासन दिया। दरअसल, आज ईंट-भट्टे पर पहरेदार बने सिधारी का इस क्षेत्र में दबदबा था—एक दबंग चोर के रूप में। बेटे के निकटस्थ स्कूल में शिक्षक बनने के बाद चोला बदला, पर चोरी-चमारी के मामलों में इलाके को यथासंभव सेवा प्रदान करते रहा। चोरों की दिशा पकड़वाने में कंपास जैसा था। देखा जाए, तो एक ही भट्टे पर काम करने के नाते यह चोरी उन्हें चुनौती दे रही थी। चौबीस घंटे के भीतर पता लगा लिया—"बिरजू मलाह की गोल है चोरी में और भंईस तीन कोस उत्तर जीत्तनपुर में बँधी है।"

बल्ली सुनकर उछला, फिर गर्दन झुकाकर जाने किस सोच में डूब गया। भाँप कर सिधार बोले—"धत् साला! क्या मेहरारू जइसा मुँह लटका रहा है। हम दो ठो चेला भेजेंगे तेरे साथ, छुड़ाने खातिर। बाकी इंतजाम तू कर।"

बल्ली के अपनों में केवल मनीर चाचा थे।

भैंस की वापसी के लिए निकली चार लोगों की टोली गंतव्य से पहले दो शक्लों में बँट गयी। भग्गन और बल्ली जानवरों के खरीदार बने, मनीर 'लड़का' खोजता बाप, जिसके साथ सीता गोसाईं थे।

घाघरा से निकली नहर पार करते ही जीत्तनपुर का सिवान शुरू होता है। सर्पीले खड़ंजे के एक ओर परती जैसी ज़मीन पर कतारबद्ध बने पक्के कमरों और फील्डनुमा घिरे अहाते का स्कूल। दूसरी ओर, दूर-दूर तक फैले धान के खेत, जिनके बीच कच्चे पक्के मकानों की आबादी। नहर के पुल को पारकर झोंपड़ी वाली दुकान में बैठे लोगों से मनीर ने पूछा—"इ अंसारों का मोहल्ला किधर है?"

एक ने बाहर निकलकर दिखाया—"सीधे जा के दाहिने।"

गाँव में इस तरह घुसने की योजना रास्ते में बनी थी, सो मियाँ को रिश्तेदारी खोजने का ध्यान नहीं रहा। खैर, एक अंसार के घर बैठने की जगह मिल गयी, बदने में पानी और प्लेट में गुड़ गया। अपने झूठ के भय से मियाँ ने रोज़े (छूटे रोज़े की एवज में रखा जाने वाला रोज़ा) का बहाना कर लिया, ताकि आगे की खातिरदारी रुक सके।

बाक़ी दो को पड़ोस के गाँव से यहाँ आने में दोपहर हो गयी। भग्गन बल्ली को आगे बढ़ने का इशारा कर नहर में नहा- खेल रहे बच्चों के झुंड के पास हाथ-पाँव धोने के बहाने चला गया। देर तक

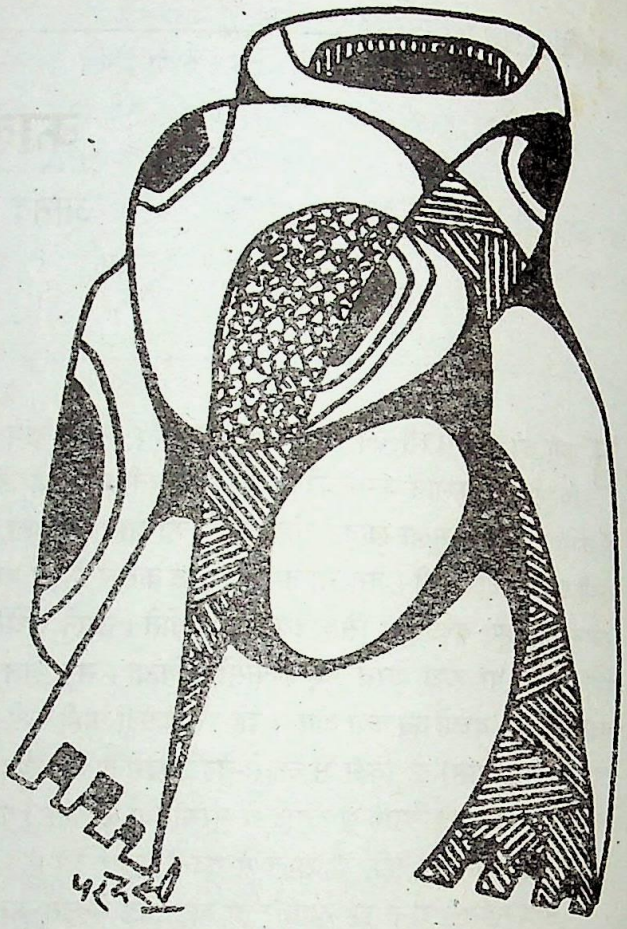

चुलबुली बातों के बाद वो 'तैराकी में दूध के महत्त्व, और फिर 'भैंस' पर आया। किसी के घर भैंस खरीदकर नहीं आयी थी और न ही गाँव में। पर हाँ! कुछ बच्चों ने स्कूल के पीछे बँधी एक नयी भैंस को देखा था। बल्ली मैदान होने के बहाने पिछवाड़े जाकर देख आया। भैंस उसी की थी। दोनों सोच-विचारकर प्रधान के घर पहुँचे। गोसाईं और मियाँ से भी यही तय हुआ था। गोसाईं एक बार गाँव घूमने के चक्कर में प्रधान का दुआर झाँक चुके थे।

प्रधान जानवरों को भूसा डाल रहे थे, जब दोनों पहुँचे। बाहर पड़े तख़्त पर दो लोग बैठे उनसे बतिया रहे थे।

"सलाम परधान जी," भग्गन पगड़ी उतारकर हाथ में लेते हुए बोला।

"सलाम... सलाम। हम पहचान न रहे हैं भइया... परिचय दीं," सानी लगा हाथ धोते हुए परधान ने कहा।

"हम लोगों का घर मऊ जीला में है। एक ठो बिनती ल के आये हैं," भग्गन ने बात आगे बढ़ायी।

"अरे आई सभे, बइठीं-बइठीं। कहीं, हम कौन सेवा कर सकते हैं," तख़्त पर बैठने का इशारा कर एक लड़के को मीठा पानी लाने के लिए चिल्लाये। भग्गन तख़्त पर, बल्ली जानवरों की पक्की नाँद पर बैठ गया।

"बताइए कइसे आना हुआ हमारे गाँव में?"

"देखीं परधान जी, इ बल्ली है, मजूरी करके पेट पालता है, परसों इसकी भंईस खुल गयी है," भग्गन पूरी तरह संयत होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदरपूर्ण लहज़े में बोला।

"....."

"बात अइसन है परधान जी, की भंईस आपकी गाँव में बँधी है।"

"हमारी गाँव में ? कहाँ ??"

"स्कूल में,"

"का ! बाबू साहेब के स्कूल में!!"

इस रहस्योद्घाटन से सबको साँप सूँघ गया। फिर, 'स्कूल में कैसे बँधी है ?'... 'बाबू साहेब को पता है?' इत्यादि प्रश्न दबी ज़बान से उठे। देर की ख़ामोशी के बाद सब चोरों को ग़रीब की भैंस खोलने के लिए धिक्कारने लगे। अंत में, गंभीर लहज़े में प्रधान ने कहा—"देखीं, बात तो बड़े शरम की है, पर हम अपने धरम की मरजाद रखेंगे। आप सब निश्चिंत होके रुकें... और कोई साथ में हो तो...?" कहते हुए उन्होंने प्रश्नसूचक नज़र से दोनों को देखा।

"ज़ी, दो लोग और हैं। संसार टोला में होंगे," भग्गन ने उत्तर दिया।

"हम बोलवा ले रहे हैं, खाने-पीने का भी इंतजाम हो जाएगा।"

एक लड़के को भेजकर प्रधान जी इंतज़ाम में जुट गये। बल्ली के चेहरे पर छायी मुर्दानगी हट गयी, उठकर तख़्त के पास आ खड़ा हुआ। वो बिना बात अपनी ग़रीबी, 'काका-चाचा' कहते हुए बैठे लोगों व प्रधान की बड़ाई करने में जुट गया। मियाँ और गोसाईं के आने पर वह खुशी-खुशी पाँव छूकर बोला—"मिल गयी काका, मिल न गयी। परधान जी देवता हैं, देवता।"

खुशी से झूमते, बकबकाते बल्ली को परधान ने 'ऊँच-नीच' समझाकर शाँत कराया। 'सुबह बाबू साहेब की कोठी पर जाने तक मामला इतने लोगों तक सीमित रहे, तभी काम बनेगा'—इस पर सब सहमत थे। बड़े लोगों के मूड का क्या ठिकाना ?

बाबू साहेब के दुआर पर ढेर सारी कुर्सियाँ बिछी थीं, जिन पर बैठते हुए प्रधान ने नौकर से भीतर संदेश भिजवाया। थोड़ी देर बाद वो 'कइसे हो परधान' कहते हुए आये। सबने उठ कर नमस्कार किया और उनके बैठने के बाद सारा हाल सुना गये। सुनकर बाबू साहेब हँसते हुए भीतर चले गये, लौटे तो चाय की केतली-कप लिये पीछे-पीछे नौकर आया।

"बहुत दूर की से आये हैं इ लोग, खाना-पीना तो कराया होगा न प्रधान जी ?" पालथी मारकर बैठते बाबू साहेब ने थोड़ा साख़्त स्वर में पूछा।

"जी बाबू साहेब"

"ठीक है। पुलिस चौकी में फ़ोन करके इंचार्ज साहेब का बुला लिया हूँ, आते होंगे," कहते हुए उन्होने बारी-बारी सबको देखा। सबके सहमने और सन्नाटा छाने की बारी थी।

"मालिक! इ काम तो आपे निपटा दें, कीरपा होगी," समझदार गोसाईं सन्नाटा तोड़ते हुए बोले।

"वही कर रहे हैं, इंतजार करीं पाँच मिनटै", 'अब के उनकी गर्दन धमकाने के लहज़े में उपर-नीचे हुई। कुछ और निवेदन आये, इससे पहले बुलेट की भक्-2 गूँजने लगी। एक बार फिर सब लोग खड़े हुए, नमस्कार का दौर चला।

हाल-चाल के बाद बाबू साहेब ने प्रधान की बात को दोहरा दिया। दारोगा थोड़ा सोचने के बाद बोले—"तो इसमें दिक्कत का है? चल के मौका-मुआयना कर लिया जाए। ठीक है? किसकी भैंस है...? अच्छा तेरी। पहचान लेगा न ?"

"जी हजूर," बल्ली ने कमर से झुककर कहा।

"ऐ बद्री। इसे लेकर बाबू साहेब के स्कूल पर जाओ... आराम से... जीयादा हो- हल्ला न हो, " दारोगा ने साथ आये सिपाही की ओर मुख़ातिब होकर आदेश दिया।

उनके जाने के बाद वो बिगड़ती क़ानून-व्यवस्था पर चर्चा करने लगे।

वापस आने पर बल्ली से पूछा—"वही भैंस है तुम्हारी?"

बल्ली का चेहरा भय से स्याह हो गया था, उत्तर में बाबू साहेब का पाँव थामकर रोते हुए कहने लगा—"बहुत ग़रीब हैं मालिक, पेट पर लात मत मारो। हमारा परिवार मर जाएगा, हम करजा भरते-भरते तबाह हो जाएँगे...।"

उसके बिलखने के बीच औरों ने वहाँ 'काली गाय' होने की बात सुनी और दारोग़ा को गुस्से में सिपाही से डंडा छीनकर बल्ली पर झपटते देखा।

"सालो! चोर! व्यापारी और लइका खोजने वाला बन कर गाँव का भेद लेने आये थे। डकैती कराओगे। जमानत नहीं होगी मादर... सब गवाह हैं हमारे पास। शरीफ़ आदमी पर इल्जाम लगाते हो बहन...."

पिटते बल्ली की चीख़ और दारोग़ा का चिल्लाना गड्मगड् हो रहे थे।

धामपुर सुगर, धामपुर, बिजनौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मट्ठा

वृजलाल कोरी 'विरज'

फागुन का महीना था। आसमान साफ़ था। जाड़े का दिन गुज़र चुका था। सूर्य देवता अपनी प्रचंड किरणों से थरथराती धरती की सिकुड़न दूर कर रहे थे। वसंत का उत्सव चारों ओर अपने चरम पर था। फ़सलों का योग भरपूर दिखायी दे रहा था। आम, महुआ के दिन भी लौट आये थे। अब लोगों के शरीर पर ऊनी वस्त्रों के स्थान पर एक बनियान या धोती ही देखी जा सकती थी। बाहर निकलने पर माथे पर पसीने की बूँदें आ जाना बड़ी बात नहीं थी। जहाँ मौसम सुहाना था, वहीं गर्मी का ज़माना भी आ चुका था। ग़रीब से लेकर अमीर तक सभी अपनी फसलों को काटने का इंतज़ार कर रहे थे। वहीं ज़रूरतमंद लोगों ने फ़सलों की कटाई शुरू भी कर दी थी।

आज मिश्राइन बड़े सबेरे ही जजमानी को निकल गयी थीं। जजमानी में मिश्राइन जब एक बार निकल आती, तो उनका लौटना बड़ा ही भारी पड़ता। कारण, जहाँ भी वे जातीं, कुछ न कुछ उन्हें अवश्य ही मिलता। पूरे बारह गाँवों के पुरोहित मिश्रा जी हीं तो थे, जिन्हें लोग कथा, पूजा, मुंडन, संस्कार, तेरहीं, बरहीं—कुछ भी हो, बुलाते थे। उनकी गाँव में बड़ी आवभगत थी। उनका बड़ा सम्मान था। मिश्रा जी कर्मकांड़ी होने के साथ-साथ झाड़-फूँक के भी जानकार थे। सुबह-शाम उनके घर पर झाड़-फूँक के लिए भीड़ लगी रहती थी। झाड़-फूँक में प्रत्येक जजमान से सवा पाँच रुपये एक सीधा, एक भेली गुड़, चावल, दाल, तेल, घी ही उनका पारितोषक था। पहर दिन चढ़े तक मिश्रा जी झाड़-फूँक करते, इसके बाद स्नान, फिर पूजा-पाठ, भोजन करते, फिर जजमानी के लिए निकल जाते—कथा-पूजा करने। आते फिर पहर रात बीते।

मिश्रा जी की मिश्राइन सिर पर बड़ा-सा गट्ठर लिये पसीने से लथपथ लाला के बाग़ में पहुँचीं। वहीं एक पेड़ के नीचे नीमर चमार की पत्नी घास काटकर सुस्ता रही थी। मिश्राइन ने पेड़ के नीचे पहुँचकर हाँफते हुए उसे बुलाया और सिर से गठरी उतारने के लिए कहा। दोनों वहीं बैठकर सुस्ताने लगीं।

मिश्राइन काकी आज बड़ी ज़बर गठरी जजमानी में मिल गयी है। आप कैसे इतनी दूर लेकर चली आयीं। बहुत वज़न है।"

"क्या करूँ दुलहिन, जजमानी है। अगर कोई कुछ देता है और न लूँ, तो जजमान यही कहेंगे कि मिश्राइन मोटी हो गयी हैं। हम जजमानों का दिया हुआ कुछ लेती ही नहीं। जजमान नाराज़ न हों, इसलिए लेना पड़ता है।"

"फिर काकी, काम भी तो अपना जजमानी से ही चलता है। न लो, तो काम कैसे चले? सुस्ता लो, बहुत पसीना हो गया है। पसीना मर जाए, तो जाना।"

"नहीं दुलहिन, जल्दी जाना है। कितने बजे होंगे?

"क़रीब दस बजे होंगे काकी।"

"पंडित जी आज जजमानी नहीं गये होंगे। जगदंबा बाबू के यहाँ कई दिनों से बुलावा आ रहा था। उनकी दुलहिन हमें बहुत मानती है। सो, आज मैं ही जजमानी चली गयी थी। बहुत हीरा आदमी है। उनकी दुलहिन तो बहुत ही हीरा है। यह देखो इक्कीस रुपये दिये, सीधा और धोती भी दी।"

"काकी, आप तो जजमानी से पा जाती हैं, हम ग़रीबन को तो कहीं का कोई सहारा नहीं। आज पंद्रह दिन से नमक-रोटी, चटनी-रोटी खाते-खाते जी ऊब गया है। अरहर, चना तो अब पैदा नहीं होता। कहीं काम करो, तो गेहूँ की ही मज़दूरी मिलती है। पहले वाला ज़माना थोड़े ही है कि लोग चना, अरहर मज़दूरी में देंगे, जिससे रोटी भी बने और दाल भी।"

"अब तो दुलहिन ज़माना बदल गया है। चना, अरहर तो सोना हो गया है। बड़े-बड़े घरों में भी यह सब अब ढूँढने पर नहीं मिलता, फिर तुम लोगों को कहाँ से मिलेगा? अच्छा एक काम करना, कल सुबह हमारे घर चली आना। मै तुम्हें मट्ठा दूँगी। उसी से कल का काम चला लेना।"

"बनी रहो काकी, अब तो मट्ठा भी कोई भी नहीं देता। जब से डेरी फ़ार्म खुला है। तब से सभी अपना-अपना दूध बेच लेते हैं। फिर मट्ठा कहाँ से बने!"

"नहीं दुलहिन, मैं तो कभी दूध नहीं बेचती। दही जमा कर मट्ठा बना लेती हूँ। जो घी निकलता है, घर के काम में आ जाता है, बेचने को कहाँ बचता है? मट्ठा मैं तो बाँट ही देती हूँ। कल तुम भी चली आना। भूलना नहीं। अब मेरी गठरी उठा दो। मैं चलती हूँ।"

मिश्राइन के चले जाने के बाद नीमर की पत्नी घास काटते हुए अपने और मिश्राइन के भाग्य के बारे में सोचती हुई मन ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन चिंतन-सा करने लगी। यह समाज, यह व्यवस्था भी क्या चीज़ है, किसी को तो बुला-बुलाकर खाने-पीने की चीज़ें, वस्त्र, उपहार आदि मिलता है। लेने वाला भी इतना पाता है, कि वह बेमन से स्वीकार करता हुआ प्रसन्नता व्यक्त करता है। वस्तुओं की क्वालिटी भी देखता है और उसी के अनुसार अपना आशीर्वाद व कृपादृष्टि जजमानों पर करता है। इस ज़माने में ऐसे भी लोग हैं, जिनको लोग एक पाव चावल भी उधार कहकर देते हैं। उधार लेते समय सवाई लगा देते हैं। मज़दूर-ग़रीब लोगों को दो वक़्त की रोटी के भी लाले पड़े रहते हैं, कपड़े-लत्ते की कौन पूछता है? जैसे-तैसे गुज़र कर रहे हैं ग़रीब लोग। यह व्यवस्था है या ऊपर वाले की नियति!

ग़रीब-ग़रीब ही रहता है, अमीर-अमीर होता जा रहा है। अब ग़रीबों की न तो समाज सुन रहा है और न ही ऊपर वाला। आख़िर, इन ग़रीब लोगों ने ऊपर वाले का क्या बिगाड़ा है। मिश्राइन की तो फोकट में ढोते-ढोते ऐसी-तैसी हो रही है और हम ग़रीबों की ऐसी-तैसी ढोते-ढोते। यह विषमता कब पटेगी, ऊपर वाला ही जाने!

हम लोग रात-दिन खटते रहते हैं। एक-एक पैसे के लिए रिरियाते रहते हैं। जितने प्राणी हैं, सभी काम में लगे रहते हैं। कोई एक दिन के लिए भी नहीं बैठता। काम खोजना, मज़दूरी करना हम लोगों की नियति बन गयी है, फिर भी अभाव की ज़िंदगी ही जीनी पड़ती है। ईमानदारी और मेहनत का अब ज़माना ही नहीं रहा। जो जितनी मेहनत कर रहा है, उतना ही दुखी है।

जो दंद-फंद, चार सौ बीसी, धोखाधड़ी से कमा रहा है, वही सुखी है। वही सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ भोग रहा है। हम ग़रीब लोगों के बस में तो यह सब दुनियादारी भरा बवाल है नहीं। एक समय खाएँगे; चटनी-रोटी, नोन-रोटी खाएँगे। मोटियाँ महीन पहनेंगे। उसी में ख़ुश रहेंगे...

पीछे मुड़कर देखा, तो अब तक वह काफ़ी घास काट चुकी थी। दोपहर हो चुकी थी। उसने जल्दी-जल्दी घास इकट्ठी की और पास के खेत में घास काट रही एक औरत को बुलाकर घास उठवायी और चल दी घर की ओर, क्योंकि नीमर के काम से लौटने का समय हो गया था।

कल्लू कहार मिश्रा जी के यहाँ बटाई पर खेती करता है, उसकी औरत बीमार थी। लड़का ननिहाल गया हुआ था। आज सुबह ही उसे लौटना है। कल्लू लड़के के लौट आने की उम्मीद से ईख काट रहा था। बह अकेले ही काटता फिर पत्ती निकालता। क़रीब आठ बजे तक वह दो-तीन बोझ ईख कोल्हू पर रख चुका था। इसी बीच नीमर का लड़का बटलोई लिए हुए मट्ठा लेने मिश्राइन के यहाँ आया।

"मिश्राइन आजी, पाय लागी। आजी मट्ठा बन गया है क्या ? माई ने मट्ठा लेने के लिए भेजा है", दरवाज़े पर मिश्राइन को देखकर नीमर का लड़का बोला।

"हाँ-हाँ मट्ठा बन गया है। तू नीमर के यहाँ से आया है न?" मिश्राइन ने पूछा।

"हाँ आजी, उन्हीं के घर से आया हूँ।"

"अच्छा बेटा, देख खेत में कल्लू ईख काट रहा है, वह खेत में है कि नहीं, पता कर।"

"अच्छा आजी, अभी दौड़कर जाता हूँ", लड़का खेत पर गया और फिर लौटकर आया।

"आजी, वह तो खेत पर नहीं है।"

"अच्छा बेटा, देख भुल्लुर कुर्मी के घर में है कि नहीं। हो, तो बुला लाना, मुझे बता देना।"

"अच्छा आजी, अभी आता हूँ।"

थोड़ी देर में लड़का भुल्लुर कुर्मी के साथ आया।

"क्या बात है काकी, कैसे बुलाया? आते हुए भुल्लुर बोला।

"बेटा, कलुआ कहीं चला गया है। तब तक मेरा बैल जोड़ दे। यह लड़का हाँक देगा। थोड़ा रस निकलवा लूँ। पंडित जी बिटिया के यहाँ जा रहे हैं। जल्दी में हैं। थोड़ा रस लेते जाएँगे।"

"अच्छा काकी, जोड़ देता हूँ... मैं भी जल्दी में हूँ।"

भुल्लुर बैल जोड़कर चला गया। मिश्राइन ने लड़के से कहा, "लो एक ईख ले लो, चूसते रहना और बैल हाँकते रहना। लेकिन, मारना नहीं, नहीं तो मेरा रस तुमसे छूकर अशुद्ध हो जाएगा। ध्यान रखना, भूलना नहीं। केवल डाँटते रहना। बैल चलता जाएगा, मारना नहीं।"

लड़का मट्ठा लेने आया था, लेकिन यहाँ उसे मिश्राइन का कोल्हू हाँकना पड़ रहा है। बैल को मारना नहीं, यह बात उसे बराबर याद रखनी पड़ रही है। बैल चल रहे हैं। कोल्हू चल रहा है। मिश्राइन ईख लगा रही हैं। रस बाल्टी में गिर रहा है। एक बोझ ईख कोल्हू में पिरा ली गयी है। बाल्टी भरने वाली है। अभी तक कल्लू लौटकर नहीं आया है। इसी बीच बायीं ओर का बैल कुछ इधर-उधर झनकारने लगा। बैल का झनकारना देख लड़के ने उसे चलने के लिए डाँटने के बजाय हिदायत भूल कर जो ईख चूस रहा था उसी से मार दिया। उसके मारते ही उसके अंदर की छूत निकल कर ईख से होती हुई रस की धार के साथ मिश्राइन की बाल्टी में धड़ाम से गिर पड़ी। छूत के गिरने की आवाज़ सुनकर मिश्राइन चिल्ला पड़ीं। लड़का सहम गया।

"अरे ! यह क्या किया तूने? सब तो नाश कर दिया। सारा रस अशुद्ध हो गया। खड़ा हो, तेरी टाँग तोड़ दूँगी", कहते हुई एक मोटी-सी ईख लेकर उसे मारने दौड़ पड़ीं। लड़का हाथ जोड़ता हुआ भागा", "आजी, ग़लती हो गयी। मैंने जान-बूझकर नहीं मारा। बैल ठीक से नहीं चल रहा था, इसीलिए, मैंने उसे भूल से मार दिया। मैंने तुम्हारा रस तो नहीं छुआ है।"

"खड़ा हो, मैं अभी बताती हूँ कि रस छुआ है कि नहीं। आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरी बलि दे दूँगी। बिटिया के यहाँ रस भेजने वाली थी। चमार का छुआ रस कैसे हमारी बिटिया पियेगी? बाल्टी भर रस बर्बाद कर दिया। आज मैं तेरा ख़ून पी जाऊँगी।"

लड़का आगे-आगे भागता जा रहा है। मिश्राइन अपनी इकहरी धोती घुटनों तक चढ़ाये उसके पीछे-पीछे भागी चली जा रही हैं। हाथ में मोटी ईख अभी तक है। गालियाँ भी बकती जा रही हैं।

"माफ़ कर दो आजी, अब ऐसी ग़लती कभी नहीं होगी। मैंने जान-बूझकर तुम्हारा रस नहीं छुआ। मुझसे जो कहोगी, वही करूँगा। मुझे माफ़ कर दो आजी", लड़का भागता हुआ जा रहा है। रोता हुआ जा रहा है। मिश्राइन पीछे-पीछे लगी हैं। लड़का कभी खेतों में होकर भागता है, कभी मेंड़ों से होकर। उसके पैर में कई खूँटियाँ भी लग चुकी हैं। ठोकर से पैर का अँगूठा फूट गया है। पैर से ख़ून बह रहा है। लड़का हाँफ रहा है। पीछे दौड़ते-दौड़ते मिश्राइन की हालत भी पस्त हो चुकी है। भागते-भागते कई बार लड़का गिर पड़ा। मिश्राइन भी कई बार गिर पड़ीं। अब वे खिसिया-सी गयीं, लड़के को पकड़ नहीं पा रही थीं। रास्ते में जाते हुए लोगों से पकड़ने के लिए कहतीं, लेकिन बच्चे की हालत देखकर उसे कोई नहीं पकड़ता। कई लोगों ने मिश्राइन को रोककर पूछने का प्रयास भी किया कि क्या बात है, लेकिन गुस्से और नुकसान के आगे उन्हें कुछ भी सुनने का मौक़ा कहाँ था? अनाप-शनाप बड़बड़ातीं और 'आज इसे जान से मार डालूँगी, इसका ख़ून पी पाऊँगी, इसकी टाँग तोड़ डालूँगी, इसने हमारा धर्म नष्ट कर दिया, बाल्टी भर रस बर्बाद कर दिया, आज इसे नहीं छोड़ूँगी' कहती जा रही थीं।

दिन चढ़ता जा रहा था। गर्मी बढ़ती जा रही थी। बिना कुछ खाये-पिये ही लड़का मट्ठा लेने आया था। मिश्राइन ने भी दातून नहीं किया था। बासी मुँह ही थे दोनों। धूप से दोनों का बुरा हाल हो रहा था। लड़के को प्यास लगी थी। उससे अब भागा नहीं जा रहा था। वह बिल्कुल लाचार हो गया था। पैर अब नहीं उठ रहे थे। पैर की खूँटिया दर्द कर रहीं थीं। वह भागते-भागते बीच सिंवार में चक रोड पर गिर पड़ा।

फिर क्या था, हाँफते-हाँफते मिश्राइन गिरे हुए लड़के के पास पहुँचीं। गुस्से में उसे लात-घूसों से मारना शुरू कर दिया। यह नहीं देखा कि बच्चे की हालत इस समय कैसी है। उन्हें तो अपना नुकसान चुकाना था। अपना धर्म बचाना था। अपने को पवित्र करना था। नीमर कहीं काम पर चला गया था। उसकी पत्नी घर में अकेली थी। वह घर के काम में लगी हुई थी। लड़के को देखते-देखते वह आज घास लेने भी नहीं गयी। इसी बीच कोई आकर उससे मिश्राइन के यहाँ की सारी बात बता गया। सुनते ही वह हड़बड़ाकर मिश्राइन के घर की ओर भागी। जब वहाँ मिश्राइन को नहीं पाया, तो वह लोगों की बताये दिशा में गयी; जहाँ पह सिंवार में मिश्राइन लड़के पर शेरनी की तरह टूट पड़ी थीं। उसने मिश्राइन को लड़के को मारते हुए दूर से देखा।

"अरे काकी, अब मत मारो। बच्चा मर जाएगा। मैं कहीं की नहीं रहूँगी", बेतहाशा चिल्लाते हुए नीमर की पत्नी लड़के की ओर भागी।

मिश्राइन ने मारते-मारते उसे अधमरा कर डाला था। नीमर की पत्नी बच्चे को देखकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। इसी बीच नीमर भी किसी से ख़बर पाकर उसी ओर भागा चला आया। धीरे- धीरे लोगों की भीड़ लग गयी।

नीमर ने पहुँचते ही लड़के को गोद में उठा लिया और उसे अस्पताल की ओर लेकर चल दिया। लड़का बेहोश था, उसकी हालत देखकर डॉक्टर ने इलाज करने से मना कर दिया। कहा कि पहले इसकी रिपोर्ट कराओ, इसके बाद ही दवा होगी। नीमर लड़के की हालत देखकर रोने लगा, बोला, "सरकार लड़का मर जाएगा। मैं कहीं का नही रहूँगा। यही तो घर का चिराग़ है, इसे बुझने से बचा लो... डॉक्टर बाबू इसे बचा लो, पैर पकड़कर गिड़गिड़ाया।

डॉक्टर को रहम आया। कुछ काग़ज़ी खानापूर्ति के बाद उसने इलाज करना शुरू किया, किंतु गुम चोटें बहुत ही बुरी थीं। अतः उसने सरकारी, अस्पताल को भेज दिया।

सरकारी अस्पताल में कई दिनों तक इलाज चलता रहा। आर्थिक तंगी के कारण वह लड़के को कहीं बाहर नहीं ले जा सका। भूखे-प्यासे दोनों प्राणी ज़िंदगी की आस में दिन-रात बच्चे को निहारते रहे। उसे ख़ून की उलटियाँ आनी शुरू हो गयी थीं, जो बंद नहीं हो रहीं थीं। रह-रहकर वह बेहोश हो जाता था। एक दिन उसकी हालत बहुत नाज़ुक हो गयी। डॉक्टरों की लाख कोशिशों के बावजूद उसे बचाया नहीं जा सका।

नीमर के घर का चिराग़ बुझ गया। उसकी दुनिया उजड़कर अँधेरे में बदल गयी। दोनों विलाप करते हुए मृतक बेटे की लाश लिये घर की ओर चल पड़े। दोनों दुखी थे, मिश्राइन के नुकसान से। उनके धर्म के नष्ट हो जाने से...

बंबा रोड, नगर बहजोई, मुरादाबाद

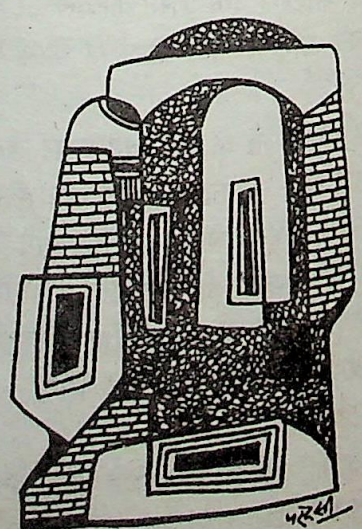

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार कुम्भज की कविताएँ

1. मौसम नहीं बदलते हैं

नहीं, नहीं
मौसम नहीं बदलते हैं
बदलते हैं हम ही
बदलते हैं चेहरे हमारे ही
बदलते हैं सद्-गुण हमारे ही
हम में से ही निकल आता है कोई चोर,
कोई उचक्का, कोई डाकू, कोई हत्यारा,
कोई संत, कोई भक्त, कोई नेता,
कोई मंत्री, कोई चिकित्सक, कोई बढ़ई,
कोई कुसाई, तो कोई दर्ज़ी
और वह कौन जो रफू करे दुःख सबके ?
नहीं, नहीं
मौसम नहीं बदलते हैं
बदलते हैं सिर्फ तेवर धधकते-बुझते
तो ठीक है फिर यही करते हैं और वही-वही
कि मौसम के स्वागत में मरते हैं।

2. मौन नहीं मौसम या रक्ताभ

हम नहीं थे कायर
सिर्फ एक लंबी काली रात थी पास हमारे
और हम सब एक-दूसरे की तलाश में
एक-दूसरे के अगल-बगल
जितनी कि सुबह
हम में से कोई भी घायल नहीं था
नहीं था पायल का शौक़ीन भी
हमने सीखी थी फ़क़्त आज़ादी
कि लड़ेंगे हर मौसम
कि तोड़ेंगे हर बंधन
कि खोलेंगे हर कर्कश
कोई भी एक जीवित वस्तु अथवा आकांक्षा
बंजर भूमि में भी करती है सामना
मौन नहीं मौसम या रक्ताभ
सब झन-झन।

3. अगर वाक़ई बदल जाएँगे मौसम

अगर वाक़ई बदल जाएंगे मौसम
तो सच-सच बताईए कि तब आप कहाँ जायेंगे?
कुंदनलाल सहगल के सुर में सुर मिलाएंगे
या कि सोनू निगम
या फिर हिमेश रेशमिया की
कव्वाली गाएंगे?
बताएं, बताएं, आप अपने दुखड़े में
किस सुखड़े को पाएँगे ?
अगर वाक़ई बदल जाएँगे मौसम
तो कुछ भी नहीं पाएँगे
सिर्फ़ आएँगे-जाएँगे और फ़ना हो जाएँगे
कोहरा घना पाएँगे।

4. उफ़! ये मौसम भी आख़िर क्या बला है ?

एक दर्द है, सर्द है
दारू की गुलामी में जीता है एक कवि
कवि को चाहे जितनी दो गालियाँ
मगर प्यार करो कविता से
कविता तो बेटी है तुम्हारी
यहाँ इस मौसम में
किसी भी अनावश्यक भिड़ंत में मत जाओ
गा सको तो गाओ नींद-गीत-मृत्यु
एक दिन ऐसा भी आता है
जब, सब कुछ निरर्थक हो जाता है
रिश्ता सोचता हूँ तो
रिश्ता सोचते सोचते बूढ़ा हो जाता हूँ
उफ़ ! ये मौसम भी आख़िर क्या बला है
कि सब झनक-झनक ?

5. सिर्फ़ मौसम और समय

मिठास नहीं,
थोड़ा नमक चाहिए भाई
ताकि भींच सकूँ जीवन
न युद्ध, न युद्ध-विराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ़ मौसम और प्रेम और समय
या कि तुम।

6. और ये ख़राब मौसम

सुबह तीन बजे का वक़्त है
सुबह तीन बजे के कठिन वक़्त में
कैसे खुल सकती है घड़ी या खिड़की
बारह बजे की ?
झील की दासता सिर्फ़ झील जानती है
और मरने वाला ही जानता है स्वाद मृत्यु का
प्रधानमंत्री जी से क्यों पूछते हो भूख का पता
वहाँ से तो कुछ दूर ही रहती है वह
सिर्फ़ योग्यतम ही पैदा नहीं करते हैं भूचाल
कभी-कभी कुछेक मूर्खताओं से भी
बदल जाता है ये संसार, ये परिचय
और ये ख़राब मौसम।

7. मौसम ख़ुश-ख़ुश

मौसम ख़ुश-ख़ुश
तो उदास-उदास भी हुआ जाता है
सद्भावनाएँ दे जाती हैं धोखा भी
हो जाती है तमाम ग़लत-फ़हमियाँ भी
टूट जाते हैं सपने सब
बहुत बड़ा हुआ जाता है दुःख, कुछ करो
ये दिन, ये रात बदलनी चाहिए
इस गंदगी से ही कोई गंगा निकलना चाहिए
मौसम ख़ुश-ख़ुश
है तो कितना ?
बख़ूबी हो गई है बाक़ायदा कमी
आश्चर्य करने वालों की
इन दिनों

8. मिलते हैं तो सिर्फ़ मौसम

मौसम की हवाएँ
अकेले-अकेले ही नहीं आती हैं कभी
साथ-साथ ले आती हैं बहुत-सी बातें
ख़ूबसूरत स्त्रियों के स्वभाव की तरह
मधुमक्खियों से घबराते हैं सब
फिर भी चाटते हैं शहद
बंद और खाली पड़ी खंडहर इमारतों में
न तो आदमी रहते हैं और न ही कोई विचार
मिलते हैं तो सिर्फ़ मौसम

9. मौसम-दर-मौसम बदल जाने से पहले

बग़ैर राजनीति
संभव नहीं है इस समय का
साधारण जीवन, साधारण प्रेम
और साधारण भोजन आदि
फिर भी मैं चाहता हूँ
कि कविता में रहूँ
किसी एक वृक्ष में रहूँ
और अगर बहता मिलूँ
तो किसी नदी में
मुझे मेरे हिस्से का एकांत चाहिए
मौसम-दर-मौसम बदल जाने से पहले
और बग़ैर राजनीति

10. और असंख्य मौसम भी

हर बार यह एक टीस है
हर बार यह एक भिड़ंत मृत्यु से
हर बार यह एक समूचा संसार
बार-बार विचार के लिए
काश ! मौसम की तरह बदलता संसार
कितना अच्छा होता
किसिम-किसिम के फूल होते
किसिम-किसिम की होती ख़ुशबू
किसिम-किसिम के होते रंग
किसिम-किसिम की होती आवाज़ें
आकाश में चमकते असंख्य तारों की तरह
असंख्य विचार होते जगमगाते
और असंख्य मौसम भी

11. मनुष्य हूँ जैसे मौसम

देने वाले कुछ और दे दुःख
ताकि मैं सह सकूँ, सीख सकूँ सहना और-और
और ये साबित कर सकूँ कि देवता नहीं हूँ मैं
मनुष्य हूँ, जैसे मौसम

जवाहर मार्ग, इन्दौर-452002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिकंजे का दर्द

सुशीला टाकभौरे

माँ हम बहनों को हमेशा अपनी आँखों के सामने रखती। कोई आदमी बुरी नज़र से देखता, तो हमको अपने पास बुला लेती। गाँव में नानी और माँ को सब जानते थे। माँ हमारी सुरक्षा के लिए हमेशा सतर्क रहती थी। हमें कहीं अकेले नहीं जाने देती थी। माँ-नानी के साथ सुरक्षा की छत्रछाया में रहते हुए कुछ नया देखने-समझने का अवसर नहीं मिला।

जिस दिन मैं खेत-खलिहान में जाती, उस दिन कक्षा में गैरहाज़िर रहती। कक्षा में सबको पता चल जाता, मैं क्यों नहीं आयी। दूसरे दिन शिक्षक और लड़कियाँ मुझे दयाभाव और सहानुभूति से देखते थे। तब मैं चुपचाप अपनी पढ़ाई करती रहती थी। माँ और नानी से ही अधिकतर जानकारियाँ मिलती थीं। अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर वे हर बात हमें समझाकर बतातीं। मैं उनकी बातों पर विश्वास करती थी।

नानी कहती थी—"अंग्रेज़ों ने रेलगाड़ी चलायी है, जब पहली बार रेल चली थी, तब पूरो गाँव देखने गयो थो।" माँ-नानी और पिताजी हमेशा कहते थे—"गोरे बड़े दयावान थे। सबको समानता की नज़र से देखते थे। उन्होंने हमसे कभी भेदभाव नहीं किया। अपने देश के लोगों के मन में हमारे लिए कभी ऐसी भावना नहीं रही। अंग्रेज़ों के आने से ही हमारे बच्चों को पढ़ने-लिखने का मौक़ा मिल सका है। नहीं तो हमारे देश के बामन-बनिये कभी उन्हें स्कूल में नहीं पढ़ने देते।"

रेलवे लाईन का 'सात मोरी का पुल' बनाया गया था, तब मैं छोटी थी। मैं हमेशा सुनती और देखती थी कि लोग अपने छोटे बच्चों को घर में छिपाकर रखते थे। अकेले कहीं बाहर नहीं जाने देते थे। औरतें रहस्य बताने की तरह धीरे से कहतीं—"सात मोरी के पुल में जिन्दे बच्चों को डाल देते हैं, बच्चों की बलि देने के बाद ही पुल बनते हैं, नहीं तो बनते-बनते टूट जाते हैं।" यदि किसी के घर के आदमी शाम तक न लौटें या बच्चे देर तक दिखायी न दें, तब लोगों को यही शक होता था कि नाबालिग के रूप में कहीं उन्हें सात मोरी के पुल की नींव में तो नहीं डाल दिया? पुरानी कथाओं में ऐसी नरबलि की बहुत कहानियाँ हैं। नरबलि ग़रीबों और अछूतों की ही दी जाती थी। बेचारों के पास अपनी जान से बढ़कर और कुछ नहीं था। वे अपने लोगों के जी-जान की फ़िक्र करते थे।

दिन में आने-जाने वाली गाड़ी की आवाज़ सुनते ही मैं घर के बाहर खड़े होकर देर तक गाड़ी देखती थी। पैसेंज़र गाड़ी और लंबी गाड़ियों के डिब्बे गिनती थी। डिब्बे गिनकर खुश होती थी। अँधेरी रात में घर के पास रेल की सीटी-इंजिन की चीख़ और पहियों की धड़धड़ सुनकर हमारे दिल धड़कने लगते थे।

बचपन में मैंने टंट्या भील की कहानी सुनी थी। लोग कहते थे अंग्रेज़ों के शासनकाल में टंट्या भील बेईमान धनवानों को लूटकर उनका धन ग़रीबों में बाँट देता था। पिछड़े, अछूत और आदिवासी उसका अहसान मानते हुए उसे भगवान समझते थे। टंट्या भील ने ग़रीबों-आदिवासियों के लिए देश के शोषक अत्याचारियों से अधिकारों की लड़ाई लड़ी थी। खंडवा-बुरहानपुर के बीच पुलिस मुठभेड़ में वह मारा गया था। वहाँ रेलवे लाइन के पास उसकी समाधि है। माँ और नानी बताती थीं कि समाधि-क्षेत्र के पास से जाने-आने वाली ट्रेन अपने आप रुक जाती थी। तब यह नियम बनाया गया था—ड्राइवर स्वयं ट्रेन रोककर समाधि के पास जाकर, वहाँ अपनी टोपी रखकर नमस्कार करेगा। तब से हर ट्रेन का ड्राइवर वहाँ गाड़ी रोककर नमस्कार करने जाता था।

मैं सोचती हूँ कि इन बातों में ज़रूर सच्चाई होगी। दलित-उत्पीड़ितों की लड़ाई लड़ने वाला टंट्या भील महान शक्ति-सामर्थ्यवान होगा, तभी उसके भय, आतंक से ट्रेन रुक जाती होगी। लोग उसकी कर्तव्यनिष्ठा, संघर्षनिष्ठा, क्रांतिकारी विद्रोह और बलिदान के सामने सिर झुकाते थे। समता-स्वतंत्रता पाने के लिए हमारे क्रांतिकारी वीरों ने अपनी जान की बाज़ी लगायी थी—यह प्रेरणा की बात थी। मगर, हमारी जाति के लोग गुमराह थे और अंधविश्वास में भटक रहे थे। वे क्रांति और विद्रोह की बातें नहीं समझे, लोगों के बहकावे में आकर इन्हें चमत्कार और पूजा की बात मानते रहे।

इतना अंधविश्वास हमारे जीवन में कहाँ से आया? हमारे लोग नहीं जान सके। अंधविश्वास की छोटी-बड़ी बातों में उलझे रहकर वे अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण समस्याओं को न तो समझ सके, न ही उन्हें हल कर सके। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यही स्थिति चलती रही। धार्मिक-पौराणिक कथा-कहानियाँ उन्हें अधिक मूर्ख बनाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। भोले अनपढ़ लोग इन्हीं बातों में उलझे रहते थे।

घर के पीछे गुराड़ के पेड़ पर रात में घुग्गू बोलता, तब माँ, नानी छोटे बच्चों को रोने और बोलने नहीं देती थीं। कहती थीं कि घुग्गू आवाज़ पकड़ लेता है। अपने कहे शब्दों को दोहराने लगता है। दोहराने से बोलने वाला मर जाता है। घुग्गू को तंत्र-मंत्र का ज्ञाता और अपशकुन मानकर लोग उससे डरते थे। अंधविश्वास अधिक होने के कारण लोग कही-सुनी बातों पर पूरी तरह विश्वास करते हुए उनसे भयभीत रहते थे।

मैं गुराड़ के पीछे प्रकृति का अलग ही सौंदर्य देखती थी। शाम के समय पश्चिम दिशा में छिपने के पहले सूरज काँसे की बड़ी थाली के बराबर दिखता था; तब मुझे सूरज, आसमान और धरती सब सुंदर लगते थे। सब तरफ़ फैली सिंदूरी आभा मन को मोह लेती थी।

शुक्ल पक्ष की चाँदनी रात में चमकते चाँद और तारों को मैं देखती, तब हृदय आनंद से भर जाता था। मैं दूर तक आकाश में फैले तारों को गिनती थी। हर चीज़ को जिज्ञासा से देखती। हर बात को ध्यान से सुनती, मन ही मन सोच-विचार भी करती थी। लेकिन, यह सुख-सौंदर्य का भाव मन में कुछ देर ही ठहर पाता था। यथार्थ जीवन बहुत कठोर था।

हमारे अभावग्रस्त जीवन में भूख बहुत पीड़ादायक रही है। छोटे भाई और मैं कभी रोकर, कभी खेलकर इस पीड़ा को सहते थे। मगर, बड़े भाई इससे निपटने का कुछ न कुछ इंतज़ाम कर ही लेते थे। घर के पीछे सरदारों के खेतों में अक्तूबर-नवंबर में गन्ने की फ़सल लहलहाती थी। मई-जून में बगीचे के कलमी आम के छोटे पेड़ों पर ख़ूब आम फलते थे। शंकर भैया चौकीदार की नज़र बचाकर खेत से गन्ने उखाड़कर लाते। आम तोड़कर ले आते। तब हम सब बहन-भाई गन्ने चूसते थे। कच्चे-पक्के कलमी आम खा लेते। कभी माँ शंकर को गालियाँ देती और ऐसा करने से मना करती थी—"ठढरी बँधे, कोई दिन बे-मौत मर जायेगो। सरदार देख लेंगे, तो काट के फेक देंगे। खाने के पीछे कोई दिन हाथ पाँव तुड़वायेगो.... ।" कभी माँ चुप रह जाती थी।

भैया चिंता के साथ हमारे सुख-दुख और भूख-प्यास का ख़्याल रखते थे। घर के पीछे छिंदोले के पेड़ थे। बड़े पेड़ से थैली भरकर पकी मीठी जामुन तोड़कर लाते, सामने की अमराई से आम तोड़कर लाते, जिससे भूख से राहत मिलती थी। इस तरह, जो मिल जाता, हम उसी में खुश हो जाते। रुपये ख़र्च करना और बाज़ार से ख़रीदकर खाना हमारे लिए मुश्किल था। कभी आम-जामुन के साथ झगड़े भी आते। लोग उलाहना देते हुए हमारे घर तक लड़ने आते थे। तब माँ-पिताजी शंकर भैया को डाँटते और मारते थे। हम बहन-भाई माँ-पिता का आदर करते हुए उनकी हर बात मानते थे। रोटी न रहने पर पानी पीकर पेट भर लेना सामान्य बात थी। भूख लगने पर मैं इमली के पेड़ के नीचे गिरी इमली चुनकर खाती थी।

भूख से राहत पाने के लिए और रोटी का इंतज़ाम करने के लिए हर संभव प्रयत्न किये जाते थे। पिता और भाइयों को मैं कड़ी मेहनत करते हुए देखती थी। 'गाँव में अनाज के बोरे ढ़ोना है'—यह पता लगने पर पिता और दोनों बड़े भाई वहाँ जाते। एक आना या दो आना प्रति बोरे के हिसाब से वे अधिक बोरे ढोने की कोशिश करते थे। बोरे पीठ पर लेकर दूर तक चलते। कभी स्टेशन से माल गोदाम तक, कभी माल गोदाम से सेठों के गोदाम तक, कभी अड्डा-बाज़ार से आढ़तिया-दलाल की दुकान तक। चलते-चलते पाँव थक जाते, पीठ दुखने लगती, कभी पेट दुखता। उन्हें देखकर मेरा मन दुखी हो जाता था। ऐसा लगता था कि उनके सिर और पीठ पर लदा बोझ मैं भी ढो रही हूँ। उनकी थकान मुझे अपनी थकान लगती। दिन भर में उन्हें दो-चार रुपये ही मिल पाते थे। उसी में उन्हें संतोष मिल जाता। उस दिन माँ मछली, मटन की तरकारी बनाकर पेटभर खाना खिलाती थी। मेहनत के रुपये खाने-पीने में ही ख़र्च हो जाते थे।

बानापुरा रेलवे स्टेशन पर मालगाड़ी से लंबी, मोटी, गोल और चौकोर इमारती लकड़ी उतारी जाती। गाँव के सेठ और सरदार थोक भाव में लकड़ी खरीदकर चिल्लर महँगे दामों में बेचते थे। मालगाड़ी के वैगन से मोटी बल्लियाँ और बड़े लठ्ठे उतारे जाते। मोटे लठ्ठों के नीचे छोटी लकड़ियाँ लगाकर उठाया जाता। उन्हें कभी हाथ ठेले पर, कभी ट्रक में चढाया जाता। पिता और भाई मोटी बल्लियाँ कंधों पर लेकर चलते। वे एक-दूसरे का ध्यान रखते। चलते समय पसीना बहता। लकड़ी कंधो पर लेकर दूर तक चलना पड़ता। अधिकतर सरदारों के खेत और बगीचे की तरफ़ मैदान में लकड़ियों की थप्पी लगायी जाती। रोज़नदारी के हिसाब से मज़दूरी मिलती। कभी पूरी लकड़ियाँ उठाने का ठेका दे दिया जाता। और भी लोग काम करते थे। दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद पिता और भाइयों को 2-4 रुपये ही मिल पाते थे। हमारे लिए उन दिनों उतने रुपये बहुत होते थे।

एक बार दो आदमियों ने एक भारी बल्ली उठायी। सामने वाले ने लकड़ी का सिरा दायें कंधे पर रखा, पीछे वाले ने बायें कंधे पर। इस पर किसी का ध्यान नहीं गया। लकड़ी दायीं तरफ़ नीचे गिराते समय पीछे वाले की कनपटी से टकरायी। चोट लगते ही वह बेहोश होकर गिर गया। मैंने यह घटना अपनी आँखों से देखी थी। तब मैं बहुत डर गयी थी। ग़रीब की चिंता कोई नहीं करता। ठेकेदार और मालिक ने उसकी कोई चिंता नहीं की और उसे गालियाँ दीं—"काम करना नहीं आता, तो क्यों करते हो? मरना है तो कहीं और जाकर मरो, हमारे सिर पर क्यों मरते हो?"

दूसरे मज़दूरों ने बेहोश मज़दूर को सँभाला। पानी छिड़कते रहे। थोड़ी देर बाद उसे होश आया। सब अपने काम से लग गये, वह सिर थामे बैठा रहा, उसका सिर चकराता रहा। पता नहीं उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

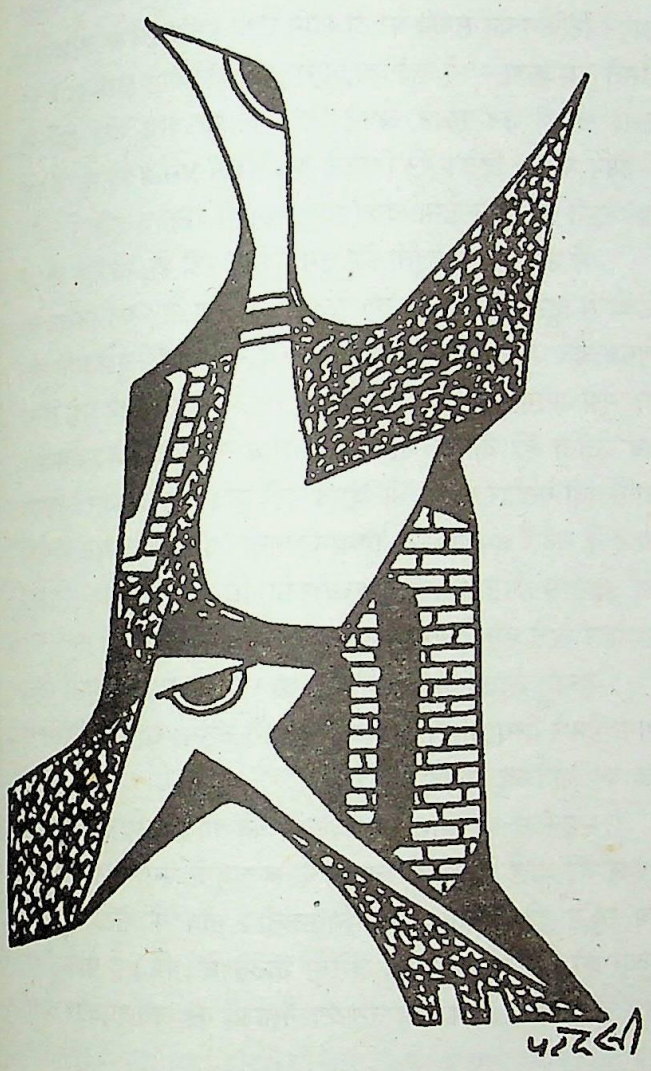

उस दिन की मज़दूरी मिली या नहीं।

यह ख़बर सुनकर माँ और नानी बहुत चिंतित हुई थीं। दुर्घटना कभी भी, किसी के भी साथ हो सकती है। बड़े भाई और पिता जी भारी लकड़ी ढोते थे। अनाज के भारी बोरे पीठ पर रखकर ढोते थे। हाथ और पैर में चोट लगती, कभी पेट और पीठ में दर्द होता। रुपये कमाने के लिए, रोटी के लिए माँ उन्हें ऐसे काम पर भेजती थी। वही उनकी चिंता करती हुई कहती—"इन्हें कभी कोई तकलीफ़ न हो।"

मैं भी अपने पिता और भाइयों की हमेशा चिंता करती थी।

रोज़ी-रोटी कमाने के लिए मेहनत-मजूरी का काम करने ग़रीब पिछड़े वर्ग के लोग भी आते, परंतु वे जाति-भेद के आधार पर स्वयं को बड़ा या ऊँचा मानते। पिता और भाइयों का छुआ वे कभी खाते-पीते नहीं थे। काम करते समय भी दूरी बनाये रखते थे। नज़दीक आने पर झिड़ककर कहते थे—"कैसा काम कर रहे हो यार? तुम तो छाती पर चढ़े आ रहे हो।"

भाई भी उन्हें डाँट देते—"क्यों? इतनी छियाछीत लगती है, तो क्यों आते हो हमारे साथ काम करने? बड़े बनकर घर में रहो...।"

ऐसे समय पिता जी दोनों को समझा देते—"चल भाई, काम कर। दिन भर की मजूरी को क्यों खोटी करता है?" शाम को पिता जी घर आने पर उन्हें गालियाँ देते थे—"हगते-मूतते समय उन्हें छीत नहीं लगती, हमसे छीत लगती है। घर में भूँजी नहीं, रईसी बताते है। मजूरी करेंगे, भीख माँगेंगे, पर जात के बड़े होने का घमंड नहीं भूलते। पता नहीं, किस बात में बड़े हैं?"

पिता की बातें सुनकर मुझे भी उन लोगों पर गुस्सा आता था। ऐसी बातें सुनते हुए, जाति-भेद का अपमान सहते हुए भी हम काम करते थे।

डामर रोड बनाने के लिए डामर की कोठियाँ ट्रकों में दूसरी जगह से हमारे गाँव आतीं। उपयोग होने के बाद खाली कोठियों को लुढ़काते हुए कभी सिवनी से बानापुरा, कभी बानापुरा से सिवनी ले जाते। कभी बानापुरा-सिवनी के बीच के पेट्रोल पंप पर इन्हें इकट्ठा करके रखा जाता। ऐसे काम के लिए ग़रीबों और अछूतों के बच्चों को बुलाया जाता था। डामर की एक कोठी पहुँचाने के दो पैसे, कभी चार पैसे दिये जाते। बच्चे कोठी हाथ और पैर से लुढ़काते हुए, उसके पीछे भागते हुए चलते। काम सरल रहता, मगर दो-ढ़ाई किलोमीटर जाना और आना पड़ता। दिन भर में कई चक्कर लगाते थक जाते। चलते-दौड़ते पैर की नसें अकड़ जातीं। मेरे भाई यह काम भी करने के लिए तैयार रहते। मेहनत की कमाई के एक-दो रुपये मिल जाएँ, तो घर-ख़र्च में काम आएँ—इस भावना से वे अपने कष्ट की परवाह नहीं करते थे। मैंने भी बचपन में यह काम किया है। माँ और भाई मुझे यह काम करने से मना करते थे।

काम कोई भी हो, मेहनत तो लगती ही थी। बिना पसीना बहाये पैसे नहीं मिलते थे। मेरे भाइयों ने मेहनत के किसी काम से इन्कार नहीं किया। भाई कभी काम पर जाने में आना-कानी करते, तब माँ उन्हें ख़ूब बातें सुनाती थी—"खाने को नहीं रहेगा, तो क्या हमारे हड्डे खाओगे? जाओ, अपना मुँह मत दिखाओ। मेहनत नहीं करोगे, तो कौन खिलाएगा तुम्हें? भूखे रहोगे, तब पता चलेगा कि पेट के लिए क्या-क्या करना पड़ता है?"

हमारे दिन कठिन मेहनत करके ही गुज़रते थे। माँ ने ख़ुद मेहनत की, पिता और भाइयों से भी मेहनत करवाई, तब कहीं हम खा-पहन सके। उस समय सब कुछ सस्ता था, मगर पैसों के अभाव में हम ख़रीद नहीं पाते थे। मेहनत करके भी अभाव का जीवन जीते थे। रुपया न होने के कारण कष्ट उठाते थे। पिता को रेलवे की तनख़्वाह मिलती थी। कुछ खाने-पीने में खर्च होती, कुछ उधारी के रुपये ब्याज सहित लौटाने में चली जाती। बोझा ढोने और मेहनत-मजूरी के काम कभी-कभी मिलते थे। परिवार बड़ा था, ख़र्च अधिक थे। अधिकतर समय भूख, कष्ट, अभाव की वेदना सहते हुए बीतता था। कभी-कभी ये दुख हृदय को बहुत व्यथित कर देते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरी कक्षा में माँ ने मेरे लिए नयी फ़्रॉक सिलवायी थी। कपड़ा कम था, टेलर ने कम घेर की ऊँची फ़्रॉक सी दी। मैं वह फ़्रॉक पहनकर स्कूल गयी। लड़कियाँ मेरी फ़्रॉक देखकर हँसीं। उनकी फ़्रॉक मेरी फ़्रॉक से ज़्यादा ऊँची थीं, मगर अधिक घेरदार होने के कारण उनकी फ़्रॉक लहराती, बल खांती-सी लगती थीं। उनके सामने मेरी फ़्रॉक बाण्डी-बूची-सी लग रही थी। मुझे तब अपने आप पर बहुत क्षोभ हुआ। दुख भी हुआ—मैं भी उनकी फ़्रॉक जैसी घेरदार-झालरदार फ़्रॉक क्यों नहीं पहन सकती?" तब अपने अभावग्रस्त जीवन पर आँसू बहाने के सिवा और कोई चारा नहीं था। ग़रीब होने की अपेक्षा ग़रीबी का अपमान सहना ज़्यादा बुरा होता है। अपमान तब ज़्यादा महसूस होता है, जब लोग हमें शुरू से अपमान के लायक ही मानकर चलें। ऐसी सामाजिक मानसिकता से मिला अपमान मेरे जीवन में ज़्यादा पीड़ादायक रहा है।

बचपन में घर में पहनने के कपड़े फटे-पुराने ही रहते थे। स्कूल जाना हो, सिवनी या कहीं बारह जाना हो, तब थोड़े अच्छे कपड़े पहन लेते थे। एक बार देर होने के कारण स्कूल जाने की जल्दी में, घर में पहनी पुरानी फ़्रॉक पहने हुए मैं स्कूल चली गयी। फ़्रॉक में पैबंद लगे थे। मेरी फ़्रॉक देखकर लड़कियाँ हँस रही थीं। स्कूल में ख़राब कपड़े पहनकर आने पर सजा मिलती थी। उस दिन मुझे गुरुजी ने पूरी कक्षा के सामने अपनी टेबिल के पास घुटनों पर खड़े रहने की सज़ा दी। तब मैं पाँचवी कक्षा में पढ़ती थी। स्कूल के सवर्ण-संपन्न बच्चे एक से बढ़कर एक सुंदर और महँगे कपड़े पहनकर आते थे। उस दिन मुझे अपने कपड़ों पर और अपने आप पर बहुत लज्जा महसूस हुई थी, बहुत दुख महसूस हुआ था। आँखों से आँसू बहे थे। घुटनों के बल खड़े रहकर मैं अपने आँसू पोछती रही थी।

दुख के ऐसे दिन क्यों देखने पड़े? अपमान के ऐसे क्षण क्यों सहने पड़े। क्यों मेरा बचपन ऐसा बीता ? हृदय की कोरी स्लेट पर लिखी इस इबारत का कुछ तो असर होगा? इन्हें याद करके मेरा हृदय आज भी दुखी होता है। ये बातें भुलाई नहीं जातीं। अभावपूर्ण जीवन में अपमान की पीड़ा और जाति-भेद के दंश लगातार मिलते रहे। विरोध न कर पाने की अलग छटपटाहट होती थी।

1965 में पाँचवी कक्षा में रजनी अग्रवाल ने अपने खेत पर पिकनिक मनाने के लिए लड़कियों को आमंत्रित किया था। मुझे भी कसम देकर आने के लिए कहा था—"सुशीला, तुझे विद्या की कसम है, ज़रूर आना।" कसम देते समय लड़कियाँ अक्सर विद्या की अथवा माँ की कसम देती थीं।

मैं लड़कियों के साथ बस में बैठकर होशंगाबाद रोड पर रजनी के खेत पर गयी। लड़कियाँ अपने टिफ़िन में तरह-तरह के पकवान लायी थीं। माँ ने मेरे टिफ़िन में दो पराँठे और आलू की सब्ज़ी रख दी थी। मैं वहाँ गेहूँ के खेत में घूमी, बगीचे में घूमी। चौकीदार ने कच्चे, हरे गेहूँ की उम्मी भूनकर, कूटकर शक्कर के साथ हमें खाने के लिए दी। खाना खाते समय मैं अलग बैठकर अपने टिफ़िन का सब्ज़ी-पराँठा खाने लगी। तब रजनी अग्रवाल ने हँसते हुए कहा—"ऐ सुशीला, ऐसे नहीं चलेगा। चल इधर आ, इधर खा।" उन सबने अपने डिब्बे के पकवान थोड़े-थोड़े मेरे टिफ़िन में रख दिये। मेरे टिफ़िन का सब्ज़ी-पराँठा किसी ने कहीं खाया, न लिया न लेना चाहा! मेरे मन में संकोच हुआ।

मैं उनसे कैसे कहती कि तुम मुझे दे रही हो, तो तुम भी मेरे डिब्बे से कुछ लो, मेरे घर की रोटी-सब्ज़ी खाओ। यह विवाद का विषय बन जाता। मेरे कहने पर भी वे नहीं लेतीं, मुझे पता था। तब मुझे अपमान का घूँट पीना पड़ता। उनका अपनापन मुझे मिला, तब उतना ही काफ़ी था। उस समय गाँव के विषमतावादी, जातिवादी माहौल में यह भी संभव नहीं था। कुछ कहकर अपमान सहने के बदले चुप रहकर अपमान सहना आदत थी। मन में पीड़ा का अहसास होता था। दबी-कुचली मानसिकता के साथ, लगातार भयभीत रहते हुए इसके विरुद्ध कुछ करना कठिन था।

हमारा जीवन शोषित-पीड़ित था। इसके साथ हमारा स्कूल जाना हमारे लिए प्रगति के पथ पर आगे बढ़ना था। मैं शिक्षा के पथ पर आगे बढ़ती रही।

स्कूल में हर साल 2 अक्टूबर को गांधी जयंती और 14 नवंबर को बाल दिवस के रूप में नेहरू जयंती मनायी जाती थी। तब स्कूल की प्रभात फेरियाँ निकलतीं। गाँव के सेठ स्कूल के बच्चों को बूँदी के लड्डू या जलेबी बाँटते थे। मिठाई पाकर हम ख़ुश हो जाते थे। हम हाथ उठाकर नेताओं की जयजयकार करते थे।

मई, 1964 में पं. जवाहरलाल नेहरू का निधन हुआ। तब सब तरफ़ राष्ट्रीय शोक छा गया था। गाँव में शोकसभाएँ हुई थीं। बाद में, देश के प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री बने थे। तब गाँव-गाँव से ट्रक भर-भरकर लोग नारे लगाते हुए आते-जाते दिखायी देते थे। 'जय जवान-जय किसान' का नारा गूँजने लगा था। गाँव के लोग लालबहादुर शास्त्री को देश के ग़रीबों और किसानों का नेता कहते थे।

उस समय शासन में कांग्रेस का प्रभुत्व था। अछूत, पिछड़े और मुस्लिम समुदाय के लोग कांग्रेस पार्टी के प्रति विश्वास और निष्ठा रखते थे। 15 अगस्त और 26 जनवरी के समय स्कूल में आयोजित कार्यक्रम में कांग्रेसी नेताओं के भाषण होते थे, तब मुझे देश प्रेम की अनुभूति होती थी। 'भारत माता की जय' कहते हुए और सुनते समय हृदय उत्साह से भर जाता था। पिताजी और भाई देश प्रेम और देशभक्ति की बातें हमें समझा कर बताते थे। स्कूल जाने के बाद मैं इन बातों को समझने लगी थी। फिर भी, हमारी दुनिया अलग थी, जहाँ भूख, अभाव, अपमान और प्रतिदिन की अनेक समस्याएँ थीं। हम अपनी समस्याओं से जूझते रहते थे।

प्राइमरी स्कूल में गोकुल प्रसाद ठाकुर गुरु जी हमें पी.टी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(व्यायाम) सिखाते थे। टूर्नामेंट के समय हमारे खेलकूद की प्रेक्टिस करवाकर तहसील सिवनी मालवा के स्कूल में प्रतियोगिता के लिए ले जाते थे। खेलकूद में मेरी बहुत रुचि थी। मैं हर साल खेलों में भाग लेती। 'लंबी दौड़', 'कुर्सी दौड़' में मैं हमेशा प्रथम आती। गुरु जी खो-खो टीम का कैप्टन मुझे ही बनाते थे। मेरे कारण हमारी टीम हमेशा जीतती थी। गुरु जी मेरी प्रशंसा करते हुए कहते थे—"सुशीला के कारण हमारे स्कूल का नाम ऊँचा होता है।" सिवनी मालवा तहसील के सभी स्कूलों से हम जीतकर आते थे। खेलों में जीतने पर मुझे पुरस्कार मिलते थे, गाँव में मेरी प्रशंसा होती थी। तब घर के लोग भी खुश होते थे।

पाँचवी कक्षा में हमारी खो-खो टीम मेरे कारण जीती थी। मैं अन्य खेलों में भी प्रथम आयी थी, तब गुरु जी ने बहुत प्रशंसा की थी। शांति बहन जी हमारे साथ थीं। ठाकुर गुरु जी सिवनी में ही रहते थे। उन्होंने शाम को सबके भोजन के लिए दाल-बाटी बनवायीं। हम सबको घर ले जाकर खिलाया। मुझे सबसे अलग देखकर गुरु जी ने डाँटा था और सबके साथ बैठाकर खाना खिलाया था। उस दिन मेरे हृदय में अपने गुरु जी के लिए श्रद्धा-भाव जागा था। ठाकुर गुरु जी मेरे गुणों की क़द्र करते थे। खेलकूद की प्रतिभा और कठिन श्रम, दौड़भाग करने की मेरी क्षमता को देखकर वे मुझे बढ़ावा देते थे। फिर भी मैं संकोच के कारण पीछे रहती थी। इसका कारण था—लगातार उपेक्षा, अपमान; जाति-भेद के कारण प्रताड़ित किये जाने का भय। इतनी छोटी उम्र में बचपन से कोमल हृदय ने इतनी चोट सही थी कि सम्मान का भाव मिलने पर भी अविश्वसनीय लगता था। ऐसे कुछ लोग ही हमारे प्रति सद्भावना रखते थे, अधिकतर सभी के मन में हमारे प्रति घृणा और उपेक्षा का भाव रहता था।

प्रत्येक समय में जीवन के सभी पहलू साथ-साथ चलते रहे। सामाजिक, धार्मिक शैक्षणिक, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक —सभी बातें व्यक्ति और समाज को लगातार प्रभावित करती हैं। हमारा जीवन भी उनसे प्रभावित था। हम आश्चर्य के साथ उन बातों को सुनते थे। संशय और चिंता के साथ उन पर विचार करते थे।

उस समय देश की राजनीतिक स्थिति में उथल-पुथल थी। युद्ध के बादल छाये थे। आकाश में लाल-हरे-पीले-सफ़ेद लाइट चमकाते हुए हवाई जहाज़ उड़ते दिखायी देते। तब बड़े भाई हमें समझाकर बताते थे कि लाइट से संदेश दिये जाते हैं। भारत-पाकिस्तान के बीच युद्ध चल रहा था। नेता काश्मीर पर अपने अधिकार की बात करते थे और देश के गौरव-गरिमा को बताते हुए भाषण देते थे। स्कूल में बच्चों को इकठ्ठा करके देश के विषय में जानकारी दी जाती थी। देशभक्ति और देश की सुरक्षा के लिए त्याग-बलिदान की बातें कही जाती थीं।

देशप्रेम और देशभक्ति की बातें करने वाले लोगों के मन में भी हमारे प्रति जाति-भेद और छूआछूत की भावना मौजूद थी। गाँव में लोगों की बातों को हम दूर खड़े रहकर सुनते थे। रेडियो पर लगातार समाचार आते थे। भाई अखबार पढ़कर युद्ध- संबंधी बातों की जानकारी देते। ताशंकद समझौते की बात चली थी। लोग आपस में कहते थे कि देश के प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री समझौते के लिए ताशंद गये थे, वहाँ उनकी मृत्यु ज़हर से हुई। 1966 में पूरा देश दुख में डूब गया था। दो अक्टूबर को गांधी जयंती के साथ शास्त्री जयंती भी मनायी जाने लगी थी।

परीक्षा के दिनों में मैं रात-दिन पढ़-पढ़कर पूरी किताबें याद कर लेती थी। मेरे मन में पढ़ाई के प्रति बहुत रुचि और लगन थी। छठवीं कक्षा से मेरी यूनीफ़ॉर्म सफ़ेद शर्ट और नीला स्कर्ट थी। लड़के सफ़ेद शर्ट, खाकी हाफ़-पैन्ट पहनते थे। सब लड़के और शिक्षक गांधी टोपी पहनते थे। उस समय गांधी टोपी पहनना ज़रूरी माना जाता था। गाँव में इसका चलन था। मैं यूनीफ़ॉर्म को बहुत जतन से रखती। साफ़-सुथरे कपड़े पहनकर स्कूल जाती। अक्सर बच्चे एक दूसरे की सफ़ेद शर्ट पर स्याही छिड़क देते थे। मेरे साथ ऐसा होने पर मैं दुखी होती थी।

कक्षा में लकड़ी की डेस्क-बेंच रहती थीं। डेस्क के एक कोने में स्याही के लिए छोटा गड्ढा रहता था। चपरासी प्रतिदिन कक्षा शुरू होने पर उसमें स्याही भरता था। हम निब-जीभ वाले पेन को स्याही में डुबोकर लिखते थे। मैंने स्याही भरने वाले पेन बाद में देखे थे। छठवीं, सातवीं, आठवीं कक्षा में गोयल जी हिन्दी, पाठक जी अंग्रेज़ी, पुरोहित जी गणित-विज्ञान, मक्खनलाल गुरु जी संस्कृत पढ़ाते थे। मक्खनलाल गुरु जी का पढ़ाने का और बातचीत का ढंग सबसे अलग था। वे उत्तर प्रदेश के ब्राह्मण थे। हर बच्चे को ग़ौर से, बारीक़ी के साथ देखते थे और तीखे अंदाज़ में उनकी आलोचना करते थे। मैं कक्षा में पीछे की बेंच पर बैठती थी। आठवीं कक्षा की परीक्षा में गणित-विज्ञान के साथ मेरे कुल अंकों का योग सबसे ज़्यादा था। तब सभी शिक्षकों ने मेरी प्रशंसा की थी, लेकिन मुझे दुख था कि मैं अंग्रेज़ी की पढ़ाई नहीं कर सकी थी।

उन दिनों शिक्षा के क्षेत्र में एक अलग घटना थी। 1967-68 में हमारे यहाँ 'अंग्रेज़ी हटाओ' आंदोलन शुरू हो गया था। इसके फलस्वरूप आठवीं कक्षा में हमें अंग्रेज़ी नहीं पढ़ाई गयी, न ही अंग्रेज़ी का पेपर हुआ था। सवर्ण-संपन्न लोग अपने बच्चों को ट्यूशन लगाकर अंग्रेज़ी पढ़ा रहे थे। यह सुविधा हमारे लिए सुलभ नहीं भी, न ही संभव थी। ट्यूशन की फ़ीस देना हमारे बस की बात नहीं थी। मैंने आगे की परीक्षाएँ अंग्रेज़ी के बिना ही पास की थीं। कक्षा में अंग्रेज़ी न पढ़ाया जाना मेरे लिए दुखद रहा।

आठवीं कक्षा में पुरोहित गुरु जी मुझे सुशीला हरिजन के बदले सुशीला सरस्वती कहते थे। हाज़िरी के समय वे मुझे इसी नाम से पुकारते थे। वे कहते थे—"सुशीला को हरिजन क्यों कहते हो? वह तो कक्षा में सबसे ज़्यादा होशियार है। उसे हरिजन नहीं, सरस्वती कहा करो।" तब उनके प्रति मेरे मन में श्रद्धाभाव बढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता था। मैंने आठवीं कक्षा विज्ञान और गणित में विशेष योग्यता के साथ पास की थी।

9वीं कक्षा में श्रीवास्तव सर भूगोल पढ़ाते थे। वे कक्षा में हमेशा ऊँघते रहते थे। बच्चे ज़्यादा शोर करते, तब पढ़ाने लगते थे। 9वीं कक्षा में थापक जी हमें हिंदी पढ़ाते थे। कक्षा में प्रश्न पूछते समय उसकी नज़र मुझ पर ही रहती थी कि उत्तर मुझे ही देना चाहिए। उन दिनों जुलाई, 1969 में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 14 प्रमुख बैंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा की थी। बैंकों के राष्ट्रीयकरण की बात पर बहुत चर्चा होती थी। एक बार थापक जी ने चपरासी पर नाराज़ होते हुए कहा था—"बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो रहा है, चपरासियों का राष्ट्रीयकरण कर देना चाहए।" तब हम बहुत हँसे थे।

9वीं कक्षा में तिवारी जी गणित पढ़ाते थे। वे गणित विषय पर बहुत ध्यान देते थे। कठिनाई पूछते रहते थे । उनके प्रति मेरे मन में हमेशा सम्मान और श्रद्धाभाव रहा। दसवीं कक्षा में दशमलव-पद्धति का नया गणित था। गणित पढ़ाते समय कठिनाई होने पर तिवारी जी हमारे पास बैठकर गणित करते थे, फिर पूरी कक्षा को समझाते थे। कक्षा में त्रिलोक मोदी, सुनील अग्रवाल और मैं होशियार माने जाते थे। ऐसे समय तिवारी जी मुझे बहुत सम्मान देते थे। शिक्षकों द्वारा अपनापन और सम्मान मिलने पर भी मैं डर और संकोच के कारण पीछे रहती थी। निरीह अछूत लड़की जानकर मुझे दया, सहानुभूति के साथ सहयोग दिया है—ऐसा महसूस होता था।

दीक्षित सर नौवीं, दसवीं कक्षा को भौतिक शास्त्र पढ़ाते थे। वे मुझे हमेशा कामुक दृष्टि से देखते थे। वे लड़कियों से मीठी-मीठी बातें करते थे, मगर अछूत लड़कों की जमकर पिटाई करते थे। कुटिल मुस्कान के साथ ज़रा-सी बात पर उनके कान उमेठकर उन्हें रुई जैसे धुनकते थे। मैं उनसे डरती थी। लगातार डरते रहने से से डरने की आदत बन गयी थी। जातिवाद मानने वालों से अधिकतर उपेक्षा और अपमान के दंश ही मिलते रहे। उनके अत्याचार से हम भयभीत थे।

यदि बचपन से मुझे निडरता सिखायी जाती या समतावादी व्यवहार पाने की आदत डाली जाती या भेदभाव-अपमान के बदले विद्रोह करने की बात बतायी जाती, तो यही मेरा आचरण बनता और मैं हर अपमान का बदला क़दम-क़दम पर लेती रहती। तब क्या होता, यह अलग बात है कि इससे मेरे परिवार को मुसीबतों का सामना करना पड़ता। तब हम अकेले थे। हमें किसी ताक़त और सत्ता का सहयोग नहीं था। किसी का सही मार्गदर्शन भी नहीं था। मेरी पढ़ाई बंद कर दी जाती। मुझे दुष्टता और कठोरता का सामना करना पड़ता, शायद दुर्घटनाओं का शिकार भी बनती।

यदि मैंने ऐसा कुछ किया होता और कठोर दंड पाया होता, तो मैं गर्व के साथ उसका उल्लेख करती। मगर ऐसा नहीं हुआ।

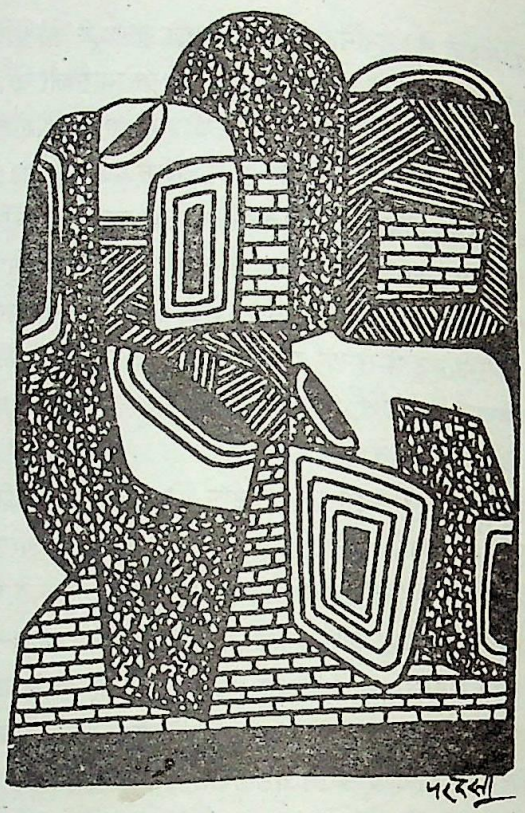

इसका मुझे अफ़सोस है। तब जीवन लिज़लिज़े केंचुए की तरह था—मिट्टी के कीड़ों जैसा, जो कभी भी पैरों तले रौंदे जा सकते हैं। वह कालखंड ही ऐसा था, देश में सवर्णों का विरोध करने की हिम्मत नहीं थी। स्वतंत्रता के बाद भी हमें अपने समता-सम्मान के अधिकार प्राप्त नहीं थे। उस समय पूरे भारत में यही माहौल था। अछूतों का जीवन झुका, दबा और अपमान-अन्याय सहने के लिए मजबूर था। उन दिनों उत्तर और मध्य भारत में अछूतों पर अन्याय की घटनाएँ अधिक घटती रहती थीं, जिससे अछूत-वर्ग सिर उठाने की और विरोध-विद्रोह करने की हिम्मत ही नहीं कर पाते थे। बस्तियाँ जला देना, सामूहिक जनसंहार जैसी घटनाएँ आम बात थीं। बच्चे, जवान, बूढ़े सभी डरे-सहमे रहते थे। अछूत स्त्रियों पर तरह-तरह के अन्याय-अत्याचार होते रहते थे।

महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश इतने नज़दीक रहने के बाद भी बाबासाहब भीमराव अंबेडकर की चेतना और ऊर्जा का संदेश वाल्मीकि-भंगी जाति-समुदाय को नहीं मिल सका था जबकि पहले नागपुर मध्यप्रदेश की राजधानी थी। स्वतंत्रता के पहले और स्वतंत्रता के बाद चलाये गये बाबा साहब के आंदोलनों की जानकारी गांधी जी के षडयंत्रों के कारण हमें नहीं मिल सकी थी। हम गांधीजी के हरिजन, गांधी के ही गुण गाते रहे और दया, सहानुभूति के साथ दिये टुकड़ों को पाकर ही धन्य होते रहे। ऐसा था हमारा उस समय का जीवन और दबी-कुचली मानसिकता। तब स्वाभिमान और अभिमान की बात हम सोच भी नहीं पाते थे।

नागपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलित साहित्य को शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में स्थान मिलना चाहिए

डॉ0 कश्मीरी देवी

(दलित एवं स्त्री-विमर्श की सशक्त हस्ताक्षर डॉ0 कश्मीरी देवी लेखन के क्षेत्र में एक जाना पहचाना नाम है। राजकीय महाविद्यालय, महम (रोहतक) में हिन्दी प्राध्यापिका पद पर कार्यरत डॉ. कश्मीरी देश की समस्त लब्ध प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज़ करवाती रही हैं। श्री वीरेंद्र सिंह यादव द्वारा उनसे लिये गये एक साक्षात्कार के आधार पर उनके विचार इस लेख में प्रस्तुत हैं—संपादक)

शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में दलित-साहित्य की सार्थकता पर ध्यान क्यों नहीं दिया जा रहा है? क्यों नहीं, ऐसे विषयों को शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में डाला जाता, जो दलितों की व्यथा-कथा कहते चलें और सामाजिक असमानता, शोषण एवं उत्पीड़न की समस्या से मुक्ति मिले; पर सवर्ण वर्ग क्यों चाहेगा कि ऐसा हो और उसके गुलामों को उससे मुक्ति मिले ? उन्हीं द्वारा रचित जुगुप्सित वर्णव्यवस्था का तो यह परिणाम है कि दलित सदियों से इस अमानवीय व्यवस्था को भोग रहा है। इस संदर्भ में मैं यह भी मानती हूँ कि कुछ सहृदय बुद्धिजीवी तथा मानव-मूल्यों के सच्चे पोषक विद्वान (विश्वविद्यालयी स्तर पर, बोर्ड, निगम) अवश्य चाहेंगे कि दलित-साहित्य का भी मूल्याँकन हो और इसे शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में स्थान मिले।

अब प्रश्न उठता है कि यदि यह सही है, तो अभी तक दलित-साहित्य को वह स्थान क्यों नहीं मिला है? बिन रोये तो माँ भी अपने बच्चे को दूध नहीं पिलाती, तो फिर दलित-साहित्य को बिना संघर्ष किये कहाँ से वह स्थान मिलेगा ?

दलित वर्ग के प्रति ब्राह्मण का यह सुचिंतित षडयंत्र ही था कि इस वर्ग को मुख्यधारा में लाया गया तो उसका सुख चैन छिन जायेगा। इसका यह षडयंत्र सफल भी होता आया है, किंतु दलित भाइयों की ही आँखें कम खुली हैं। आज़ादी के 60 वर्षों बाद भी उन्हें डॉ. अंबेडकर के इस नारे, 'संघर्ष करो, शिक्षित बनो और संगठित रहो', का अर्थ समझ में नहीं आया है, जो उन्हें नई ज़िंदगी देता है और उनकी अस्मिता की सुरक्षा भी करता है। ब्राह्मण की उस जुगुप्सित सामाजिक व्यवस्था को वह समझता कैसे ? ब्राह्मण द्वारा घृणित समाजशास्त्रों एवं धर्मशास्त्रों की जो रचना की गई है, उन्हीं के कारण वर्णव्यवस्था का यह कीड़ा भी आज तक पोषित है, वरना ऐसे प्रश्नों से टकराने की बजाय हम आर्थिक विकास के पहलुओं पर ही अधिक चिंतन कर रहे होते और आज भारत महाशक्तियों का शिरोमणि होता।

पुनः मैं उन्हीं मूल बिंदुओं पर आपका ध्यान आकर्षित करती हूँ, जो मेरे मन के दमित आक्रोश को भी कुछ सीमा तक शांत करेंगे; क्योंकि दलित-साहित्य की उपयोगिता के संबंध में किसी हित चिंतक ने पूछा तो सही, शेष इसकी उपादेयता पर हर्ष होगा, जब इसे अपना उचित स्थान मिलेगा।

संदर्भित मामले में दलित शिक्षाविद् कुछ सकारात्मक प्रयास ही नहीं कर रहे हैं, वरना अच्छा साहित्य तो शैक्षणिक पाठ्यक्रम में सम्मिलित हो ही जाता। इस वर्ग को जितना मिले, उसी में संतुष्ट रहने की आदत सी पड़ गई है। महाविद्यालयी स्तर पर शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की ज़मात होती ही नहीं। इसलिए हमारी असमर्थता स्वयंसिद्ध है। कहीं ऐसी श्रेणी होती भी होगी, तो उन्हीं वर्चस्व अधिकारियों की जूठन खाती भी रही होगी या उन्हीं मानदंडों को वह अपनाती भी रही होगी, जो इनके अपने हैं।

दलित-साहित्य के अलग धारा में बहने के पीछे दलित-चिंतकों का कोई बौद्धिक विलास नहीं, अपितु उनकी दलित-चेतना ही उसकी जड़ में कार्य कर रही है। बौद्धिक शगल तो तब उत्पन्न होता है, जब मन में शीतलता एवं संतोष हो। ऐसा शांति-संतोष इस वर्ग से कोसों दूर चला ही गया है, तो बौद्धिक विलास कहाँ से उत्पन्न होगा, यह आपके लिए भी विचारणीय है और मैं तो इस संबंध में चिंतित ही हूँ कि इस वर्ग के लिए कब ऐसी समानताएँ स्थापित होंगी और कब वह बौद्धिक विलास से परिपूर्ण साहित्य का भी सर्जक बन पायेगा?

भारतीय समाज में अनेक कुरीतियाँ और विकृतियाँ भरी पड़ी हैं। दलित समाज के विषय में तो आप पूछिए ही मत ! यों कह लीजिए कि भारतीय समाज-व्यवस्था व जाति-पाँति आधारित जब भी कोई प्रश्न पूछ लिया जाता है, तो मन में शोषण, दमन एवं भेदभाव से भरे ढेरों स्वर आक्रोश से भर उठते हैं।

कोई लेखक मनोरंजनकारी साहित्य रच सकता है, जिसके दिल पर छुरियाँ, चाकू, तलवारें, खनखनाती हों; उनकी आँखों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ उनकी बहू-बेटियों को सरेआम नंगा कर भरे बाज़ार-गलियों में घुमाया जाता रहा हो? छोटे-छोटे दोषों के लिए जीप, ट्रक, मोटर साइकिल आदि वाहनों से बाँधकर मानव को तब तक बड़ी बेरहमी से पीटा-घसीटा जाता रहा हो, जब तक उसके देह-प्राण एकमेक न हो जायें। कितनी ही दारूण-करूण पीड़ाओं एवं यातनाओं का बखान करूँ, जिससे ज़ल्लाद से सवर्णों का मन पिघल जाये। किंतु यहाँ भी भाग्य की ही विडंबना है कि सवर्ण, दलित के लिए पीड़ाओं, दलन की नई-नई अन्वेषणा-गवेषणा ही करता रहता है। तब ऐसे में मेरा विचार और भी पुष्ट हो जाता है कि सामाजिक संदर्भों को ध्यान में रखकर दलित-चिंतक दलित-साहित्य की रचना करे। उसे बौद्धिक विलास की आवश्यकता नहीं, वह सामाजिक परिवर्तन की बात करे। तभी साहित्य परिवर्तन कामी भी होगा और सार्थक भी क्योंकि समय के अनुसार जो कृति जीवन की गहराई एवं संवेदनाओं को मूर्त्त रूप देती है, वही महत्त्वपूर्ण होती है। अतः उस अर्थ में भी दलित-साहित्य, दलित हेतु है। जो साहित्य जीवन-हितैषी हो, वही सच्चा साहित्य है। सामाजिक संदर्भों को समझे बिना, जो साहित्य लिखा जाता है, वह साहित्य समाज में कोई प्रगति और नया चिंतन नहीं ला सकता। अतः बौद्धिक शगल नहीं; दलित-चिंतक को सामाजिक परिवर्तन के लिए ही लिखते रहना है। तभी नया समाज और नई चेतना का विकास होगा।

जाति आधारित शोषण संबंधी मुख्य मुद्दे उठाकर और बढ़े खतरे मोल लेकर भारतीय इतिहास में जो संपूर्ण क्रांति की आवाज बुलंद की गई, उसका श्रेय केवल डॉ0 अंबेडकर की ही विचारधारा को जाता है।

अछूत समाज के लिये खतरे उठाकर जो संघर्ष उन्होंने किये, शायद ही इतिहास में दूसरा अंबेडकर पैदा हो। महद तालाब सत्याग्रह, कालाराम मंदिर प्रवेश क्या इतने आसान थे, जो भुलाये जायें? 25 दिसंबर, 1927 को 'मनुस्मृति' जला दी गई, क्या उसको जलाना इतना आसान रहा होगा। जरा कल्पना कीजिये। इतना ही नहीं, डॉ0 अंबेडकर भारत के राजनीतिज्ञों में से एक थे, जिंहोंने भारत की राजनीति में सक्रिय भाग लिया और आरंभ से लेकर जीवन पर्यंत अछूतों एवं दलितों के लिये ही संघर्ष करते रहे और संविधान की रचना कर उन्हें जीवन जीने की राह दी। उन्होंने पृथक चुनाव के लिये संघर्ष कर बोट नीति का अधिकार दलितों को दिलाया। दलितों के लिए स्कूल-कॉलेजों की स्थापना की। हिन्दू परंपराओं से संघर्ष करते हुए भटके अछूतों को बौद्ध धर्म का रास्ता दिखाया। इतना ही नहीं, वे अनुदार साम्यवादियों से भी टक्कर लेते रहे और धर्म के मूल में समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व-भावना के सिद्धांतों में भी दृढ़ आस्था एवं विश्वास जगाते रहे। इसलिये मैं तो उनको ही दलित-साहित्य का पोषक-चिंतक मानती हूँ, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानवतावादी दृष्टिकोण की मजबूत नींव दे गए। उनकी विचारधारा से ही दलित-साहित्य की सकारात्मक सोच को साहित्यिक ऊर्जा और प्रगतिशील दृष्टिकोण मिला है, जो अनुपम एवं श्लाघ्य है।

अब प्रश्न उठता है कि दलित-साहित्य का भविष्य क्या है? जिस साहित्य का प्रणेता इतना प्रगतिशील और क्रांतिकारी हो, जिन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए, जिन्होंने समानता, स्वतंत्रता और भाईचारा जैसे मानवतावाद दृष्टिकोण की स्थापना की हो, उस साहित्य का भविष्य क्या आप धूमिल समझ सकते हैं। भले ही महर्षि अंबेडकर जैसी ऊर्जावान् क्रांति एवं जी-तोड़ संघर्ष न किये जायें, किन्तु दलित चिंतक क्रांतिकारी ऊर्जा से दूर बिल्कुल नहीं भागेगा। मगर, हाँ उसके लिए इतना अवश्यभावी है कि वह दलित-समाज के परिदृश्य पर ही रहकर लिखे और उसी के बारे में चिंतन-मनन करे। उससे दूर भागने की चेष्टा तथा इससे परे सोचने की दशा में इसका भविष्य सुरक्षित नहीं, अपितु अंधकारमय ही अधिक होगा।

संतोष चौबे डा0 सी0वी0 रमन विश्वविद्यालय के कुलाधिपति नियुक्त

भोपाल, आईसेक्ट के महानिदेशक श्री संतोष चौबे को पुनः डॉ0 सी0वी0 रमन विश्वविद्यालय का कुलाधिपति नियुक्त किया गया है। छत्तीसगढ़ के महामहिम राज्यपाल द्वारा डॉ0 सी0वी0 रमन विश्वविद्यालय के कुलाधिपति हेतु उनके नाम की लगातार द्वितीय कार्यकाल हेतु मंजूरी दी गई।

तीन वर्ष की लघु समयावधि में डॉ0 सी0वी0 रमन विश्वविद्यालय ने इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधन के क्षेत्र में अपना नाम प्रमुखता से स्थापित किया है और छत्तीसगढ़ एवं आसपास के पिछड़े क्षेत्रों के छात्रों हेतु शिक्षा के क्षेत्र में सेवा कार्य कर रहा है। यह एआईसीटीई, एनसीटीई और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा एक मान्ता प्राप्त संस्था है।

प्रस्तुति : अमिताभ सक्सेना, निदेशक, आईसेक्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगमंच पर अंबेडकर और गांधी

कौशल किशोर

रंगमंच पर इतिहास के दो बड़े नायकों को ज्वलंत सामाजिक सवालों पर संवाद करते, समस्याओं से भरे इतिहास के उस कंटित दौर में आगे की राह तलाशते तथा वैचारिक रूप से गुत्थम-गुत्था होते देखना एक नया अनुभव है। ऐसा ही अनुभव राजेश कुमार का नाटक 'अंबेडकर और गांधी' देता है। अस्मिता थियेटर ग्रुप, नई दिल्ली ने इस नाटक का मंचन लखनऊ के संत गाडगे प्रेक्षागृह (उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी) में किया, जिसकी परिकल्पना व निर्देशन अरविंद गौड़ का था।

आज हमारा भारतीय समाज जिन समस्याओं से रू-ब-रू है, उनमें बहुत सारी अतीत की देन हैं या उनके जड़ें हमारे इतिहास में हैं। कहने के लिए लोकतांत्रिक व धर्मनिरपेक्ष राज्य है, जिसके पास अपना संविधान है और वह नागरिकों को संवैधानिक अधिकार भी प्रदान करता है, लेकिन यथार्थ में जो सामाजिक व्यवस्था है, वह वर्णाश्रम की व्यवस्था है। इसका वैचारिक दर्शन ब्राह्मणवाद है तथा जीवन-पद्धति कर्मकांड पर आधारित है। इसी ने वह ज़मीन तैयार की है, जिस पर सामंती अवशेष टिका है और यही पिछड़ेपन और पुनरुत्थानवादी विचारों का मूल स्रोत है। जाति-व्यवस्था इसी की देन है।

राजेश कुमार का नाटक 'अंबेडकर और गांधी' इसी विषय-वस्तु को उठाता है। अंबेडकर और गाँधी भारतीय राजनीतिक इतिहास के दो बहुप्रतिष्ठित नायक रहे हैं। शूद्र जहाँ अंबेडकर के लिए दलित हैं, वहीं गांधी की नज़र में वे 'हरिजन' हैं। जाति, वर्ण, अस्पृश्यता, धर्म जैसे मुद्दों पर गांधी व अंबेडकर के बीच बहसें होती हैं। हिन्दू सवर्णों के द्वारा शूद्र समाज को अपमानित व उपेक्षित किये जाने वाली स्थितियों को दोनों समाप्त करना चाहते हैं तथा शूद्रों का उद्धार और सामाजिक प्रतिष्ठा चाहते हैं। लेकिन, हिन्दू धर्म में व्याप्त वर्णाश्रम-व्यवस्था इस व्यवस्था के उन्मूलन के सवाल पर गांधी और अंबेडकर के बीच तीखे द्वंद्व को उभारती है।

अंबेडकर का मत है कि दलितों का कोई 'होम लैंड' नहीं है और देश की आज़ादी दलितों की मुक्ति से जुड़ी है। दलित-समस्या का समाधान तभी संभव है, जब मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन हो और इस समुदाय को संवैधानिक अधिकार दिये जाएँ। जातिगत भेद-भाव और अस्पृश्यता जैसी समस्या को समाप्त करने के लिए ज़रूरी है कि हिन्दू धर्म की वर्णाश्रम-व्यवस्था समाप्त हो। अंबेडकर ने दूसरी गोल मेज़ कॉन्फ्रेंस (1931) में दलितों के लिए अलग निर्वाचन आवंटित किये जाने का प्रस्ताव किया था।

वहीं गांधी हृदय-परिवर्तन में विश्वास करते हैं। उनका मानना था कि मनुष्य के अंतर्मन में होने वाला बोध और परिवर्तन ही सुधार का वास्तविक माध्यम है। सवर्णों के मन में छोटी जातियों व हरिजनों के प्रति अस्पृश्यता का जो भाव है, हृदय-परिवर्तन के द्वारा इसमें सुधार संभव है। उनके अनुसार, हरिजन हिन्दू समाज के अंग हैं, इसीलिए, दूसरी गोल मेज़ कॉन्फ्रेंस में उन्होंने अंबेडकर के प्रस्ताव का विरोध किया था। उनका मत था कि वर्ण-व्यवस्था हिन्दू समाज की रीढ़ ही नहीं है, बल्कि यह हमारी संस्कृति व सभ्यता का आधार भी है और इसे समाप्त करने से हिन्दू समाज का विनाश हो जाएगा।

नाटक में अंबेडकर और गांधी के बीच बहसें होती हैं। विभिन्न मुद्दों पर उनका अपना नज़रिया सामने आता है। वे एक-दूसरे को अपने विचारों से प्रभावित करना चाहते हैं। गांधी चाहते हैं कि अंबेडकर उनके हरिजन-प्रेम और हरिजन-उद्धार के विचारों को समझें, उनका समर्थन करें। और, वैचारिक उत्तेजना चरम बिंदु पर पहुँच जाती है, फिर भी व्यक्तिगत स्तर पर कटुता नहीं आती और संवाद जारी रहता है।

अंबेडकर दलितों के लिए अलग निर्वाचन की अपनी माँग पर डटे रहते हैं। अंबेडकर के विचारों की जब कोई काट गांधी के पास नहीं बचती, ऐसी स्थिति में वे अपने अनशन के हथियार का प्रयोग करते हैं। गांधी की हालत ख़राब होने लगती है। उनके पुत्र देवदास गांधी प्राण बचाने का अनुरोध लेकर अंबेडकर के पास आते हैं। अंबेडकर के लिए ये द्वंद्व से भरे क्षण हैं। एक तरफ़ उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता है, तो दूसरी तरफ़ गांधी की प्राण-रक्षा का सवाल है। नाटक में यह दृश्य अत्यंत प्रभावशाली है, जब अंबेडकर की जीवन-संगिनी रमा बाई उनसे कहती हैं कि लोग अपनी जान बचाने के लिए महात्मा के पास जाते हैं, लेकिन आज आपको उनकी जान बचाने का मौक़ा मिला है, जिन्हें लोग महात्मा मानते हैं। अंबेडकर राजनीति से दूर सीधी-सरल रमा बाई के विचारों की गहराई से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। उनका द्वंद्व समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है और वे गांधी से मिलने के लिए तैयार हो जाते हैं।

गांधी की प्राण-रक्षा और कांग्रेसियों के दबाव की वजह से अंबेडकर और गांधी के बीच ऐतिहासिक पूना समझौता होता है, फिर भी वर्णाश्रम-व्यवस्था और धर्म, जाति, अस्पृश्यता आदि के मुद्दे पर उनके वैचारिक मतभेद बने रहते हैं और ऐतिहासिक विकासक्रम में ये दोनों विपरीत दिशा ग्रहण करते हैं। नाटक 'अंबेडकर और गांधी' में इन दोनों पात्रों के विचारों का चरम मार्मिक रूप सामने आता है, जहाँ अंबेडकर यह कहते हुए सामने आते हैं कि उनका जन्म हिन्दू के रूप में हुआ, इसके लिए वे जिम्मेदार नहीं थे, लेकिन वे एक हिन्दू के रूप में मरें, यह उन्हें स्वीकार नहीं और वर्णाश्रम-व्यवस्था के विरोध में अंततः वे धर्म-परिवर्तन कर लेते हैं। गाँधी की अभिलाषा अगले जन्म में किसी भंगी महिला की कोख से पैदा हाने के रूप में अभिव्यक्त होती है।

गांधी की हत्या कर दी जाती है। यह अंबेडकर को आहत करने वाली ख़बर थी। वे कहते है कि गांधी जी के विचारों से उनकी कभी भी सहमति नहीं रही, लेकिन बहस और संवाद चलता रहा। लेकिन, जिस हिन्दू धर्म की एकता और वर्ण-व्यवस्था की रक्षा के लिए गांधी जी तर्क देते रहे, जिसके पक्ष में सारी ज़िंदगी काम करते रहे, उसी हिन्दू धर्म की संकीर्णता को उनका उदारवाद और धर्म-निरपेक्षता बरदाश्त नहीं थी और उन्हें हिन्दू धर्म की सांप्रदायिकता और कट्टरता का शिकार होना पड़ा। नाटक हिन्दू सांप्रदायिकता के असहिष्णु व फ़ासीवादी रूप को भी सामने लाता है, जहाँ विचार, विरोध, तर्क, संवाद जैसे शब्द बेमानी हो जाते हैं।

नाटक के दो प्रमुख पात्र हैं--अंबेडकर और गांधी। पूरा नाटक इनके इर्द-गिर्द चलता है। नाटक में ये दोनों पात्र आज के अंबेडकर और गांधी--जो प्रतिमाओं में क़ैद हैं--से अलग हैं। ये न 'महात्मा' हैं और न 'मसीहा', बल्कि मनुष्य हैं, जिनमें ख़ूबियाँ हैं, तो मानवीय दुर्बलताएँ भी हैं। लेकिन, आज की पीढ़ी इन्हें महात्मा और मसीहा के रूप में ही ज़्यादा जानती है, क्योंकि इनका परिचय बहुत कुछ इसी रूप में कराया गया है, जहाँ पूजा-भाव अधिक है। नाटक इस इमेज को तोड़ता है और नयी पीढ़ी के अंदर इतिहास को फिर से जानने-समझने की उत्सुकता पैदा करता है।

राजेश कुमार का यह नाटक विचार-प्रधान है। इसका सारा ताना-बाना बहस और संवाद पर आधारित है। चूँकि, यह बहस आज भी जारी है, इसलिए यह असमाप्त संवाद है। आमतौर पर हिन्दी में संवाद पर आधारित राजनीतिक नाटकों का अभाव रहा है। इस तरह के नाटकों के साथ सपाटता और उबाऊपन का ख़तरा बना रहता है।

अरविंद गौड़ के निर्देशन और परिकल्पना की प्रशंसा की जानी चाहिए कि उन्होंने नाटक की प्रामाणिकता की रक्षा करते हुए संवादों पर केंद्रित इस नाटक में कथा-तत्त्वों, गीत-संगीत व दृश्यों का बेहतर संयोजन प्रस्तुत किया, जिसने नाटक को गतिमय बनाये रखा। इस नाटक में अवतार सिंह पाश की कविताओं 'हम लडेंगे साथी' तथा 'सबसे ख़तरनाक होता है सपनों का मर जाना', शंकर शैलेंद्र, भूपेन हज़ारिका व बॉब दायलान के गीतों का बहुत सुंदर इस्तेमाल हुआ है। दो दर्जन से अधिक कलाकार जब इन कविताओं और गीतों के साथ कोरस प्रस्तुत करते हैं, तो इतिहास और अतीत का संघर्ष दर्शकों के सामने सजीव हो उठता है। गांधी की भूमिका में वीरेन बसाया, अंबेडकर के रूप में बजरंग बली सिंह, रमा बाई की भूमिका में शिल्पी मारवाह के साथ क़रीब तीस से अधिक कलाकारों से सजे इस नाटक की संगीत-रचना डा0 संगीता गौड़ ने की।

एफ-3144, राजाजीपुरम्, लखनऊ-226017

हमारे समय के सुप्रसिद्ध कथाकार मार्कण्डेय नहीं रहे। वे पिछले कुछ वर्षों से अस्वस्थ चल रहे थे। 'वर्तमान साहित्य' परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि। उन पर विस्तृत सामग्री हम अगले अंक में देंगे।

—संपादक
वर्तमान साहित्य

हिन्दी में अपने शोधपूर्ण लेखों के लिए प्रसिद्ध लेखक डा0 भवदेव पाण्डेय की पत्नी का पिछले दिनों निधन हो गया। 'वर्तमान साहित्य' परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि।

नमिता सिंह
अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क़िस्सा-ए-मेह्रअफ़रोज़ व दिलबर"

नसीम फ़ातमा

"तज़किरा मखजन-उल-गरायब" में आता है: "दर ज़बाने हिंदी कि मुराद उर्दू अस्त"। यहाँ 'हिन्दी' शब्द उर्दू का समानार्थी है तो दूसरी तरफ़ हिंदी के सूफी कवि नूर मुहम्मद ने कहा है "हिंदू मग पर पाँव न राख्यौ, का बहुतै जो हिंदी भाख्यौ।" यहाँ इस शब्द का प्रयोग हिंदी के लिए है। मुल्ला वजही, सौदा, मीर आदि ने अपने शेरों को हिंदी शेर कहा है। ग़ालिब ने भी अपने पत्रों में कई स्थानों पर हिंदी-उर्दू को समानार्थी रूप में प्रयुक्त किया है। अनुमान है कि 19 वीं सदी के प्रथम चरण में अंग्रेज़ों की विशेष भाषा नीति के कारण ही इन दोनों को अलग-अलग भाषाएँ माना जाने लगा। उर्दू को मुसलमानों से जोड़ दिया गया तो हिंदी को हिंदुओं से।

19 वीं शताब्दी में जब दिल्ली केंद्र टूट गया तो यहाँ के साहित्यकार लखनऊ और हैदराबाद चले गए। कुछ समय बाद लखनऊ की नवाबी समाप्त हो गई और इन कवियों और शायरों का एक मात्र आश्रय स्थल हैदराबाद ही हो गया। दिल्ली और लखनऊ के दरबारों मे रंडियों और भाँड़ों का जमघट लगा रहता था। एक दिन यह महल ढह कर गिर पड़ा। लखनऊ और दिल्ली की बुलबुलें उड़ गईं और अपने लिए दूर-दूर आशियाने खोजने लगीं। रामपुर और हैदराबाद में बुलबुलें चहकने लगी। इनमें से हैदराबाद कलाकारों का अच्छा आश्रय बन गया।

17 वीं, 18 वीं सदी तक इस भाषा में खूब साहित्य रचा गया।

'क़िस्सा-ए-मेह्रअफ़रोज व दिलबर 'उत्तर भारत की हिंदी-उर्दू भाषा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्राचीनतम कथा-कृति है जिसकी एक मात्र हस्तलिखित प्रतिलिपि हैदराबाद-निवासी श्री आग़ा हैदर हसन के निजी पुस्तकालय की निधि है। इसके मुख पृष्ठ पर लेखक का नाम 'ईस्वी खाँ बहादुर' लिखा हुआ है। यह पांडुलिपि श्री आग़ा हैदर हसन को सन् 1929 ई0 में ग्वालियर में हज़रत जी की दरगाह से प्राप्त हुई थी।

ईसा खाँ और मूसा खाँ का परिवार दिल्ली के प्राचीनतम रईस घरानों में से एक था। इनके संबंध में 'मिर्ज़ा फरहतुल्ला बेग' ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं कि—"यह परिवार तुग़लक़ सम्राटों के समय मे 'हिरात' से भारत आया था। यहाँ आने पर उनमें से बड़े भाई को 'मूसा खाँ' और छोटे भाई के 'ईसाखाँ' की पदवी प्रदान की गई। इसके पश्चात दिल्ली पर अनेकों सम्राटों का आधिपत्य रहा परंतु इस परिवार में बड़े भाई मूसा खाँ और छोटे भाई ईसा खाँ की पदवी को स्मरण किया जाता रहा। 'आज़ाद' ने "शहनसीर" के ज़िक्र में इनका यह लतीफ़ा दर्ज़ किया है।

"ईसा खाँ और मूसा खाँ दो भाई दिल्ली में थे। माल व दौलत की वजह से दोनों में झगड़ा हुआ। ईसा खाँ नाक़ाम हुए। मूसा खाँ ने कुछ अदालत के ज़ोर से, कुछ हुकूमत से, सारा माल मार लिया। शाहसाहब ने बतौर ज़राफ़त चंदशेर का कतह कहा, एक मिसरा याद है—

"हुई आफ़ाक में शोहरत कि ईसा खाँ का घर भूसा"

लुत्फ़ यह कि दोनों भाई शायर थे, एक का तख़लुस 'आफ़ाक' और दूसरे का 'शोहरत' था।

उपर्युक्त परिवार का क़िस्सा मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' की रचना 'आबेहयात' में भी उपलब्ध है।

मुग़ल शासक शाह आलम द्वितीय के समय में 'ईसा खाँ' और मूसाखाँ में वैमनस्य हो गया और बड़े भाई मूसा खाँ ने छोटे भाई ईसा खाँ की समस्त पूँजी हस्तगत कर ली। इस घटना के संबंध में तत्कालीन प्रसिद्ध उर्दू कवि शाहनसीर ने अपनी कविताओं में वर्णन किया है। इन तथ्यों के अतिरिक्त अधिकारिक रूप से प्रमाण प्रस्तुत करने की लिए कृति और कृतिकार के संबंध मे कुछ और विचार प्रस्तुत करना कठिन है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि इस कृति पर लेखक का नाम 'ईस्वी खाँ' लिखा गया है न कि 'ईसा खाँ'। किंतु 'ईसा ख़ाँ और ईस्वी खाँ' तथा 'मूसा ख़ाँ' और मूसवी ख़ाँ नाम दोनों रूपों में प्रचलित थे।

'किस्सा-ए-मेह्रअफरोज' लाल किला दिल्ली की झलकियों से भरा पड़ा है- फव्वारे, पानी की चादरें, नदी, हौज़, दालान, पच्चीकारी, हर तरह से किले की अक्क़ासी की गई है। किस्से में लेखक ने एक जगह महताब का ज़िक्र किया है—"दिलबर खुर्शीदबानो से कहती है, कि महताब बाग़ में चाँदनी की तय्यारी कर।"

इस बाग के बारे में सरसय्यद अहमद ख़ाँ यूँ कहते हैं-

"किसी समय में यह बाग़ बहुत सुंदर और बहुत तय्यार था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर अब बिल्कुल वीरान और ख़राब है।'' इस बाग़ की तफ़सील ''वाक़्यात दारूल हुकूमत दिल्ली'' में बशीरउद्दीन अहमद देहलवी ने इन शब्दों में दी है—''ये बाग़ किसी समय में देखने के क़ाबिल था मगर मुद्दतें हुईं कि उजड़ गया है। चप्पे-चप्पे पर नहर और हौज़ थे।'' लाल क़िले की तीसरी झलक किस्से में पृ0 8 पर मिलती है जहाँ जश्ने-महताबी (रासलीला की अनुकृति) का और लाल क़िले के ''महताब बाग़'' का वर्णन किया गया है। इस उत्सव में शुभ्र वसन, शुभ्र चाँदी के आभूषण, शुभ्र पुष्पों से सुसज्जित होकर एवं शुभ्र आसनों पर विराजमान होकर चतुर्दशी के चंद्र उत्सव का आनंद प्राप्त किया जाता था। यहाँ उल्लेख करना युक्तिसंगत होगा कि इस उत्सव का जन्मदाता मुग़ल सम्राट शाहजहाँ था एंव इसका पुनरारम्भ लगभग पचहत्तर वर्ष बाद मुहम्मदशाह के समय में हुआ। हमें इस तथ्य के आधार पर कृति के काल-निर्धारण में सहायता मिलती है।

चूँकि क़िस्सा हातमताई का अक्स ''किस्सा मेह्रअफरोज़ में मिलता है इसलिए मुहम्मदशाह के आख़िरी दौर या अहमदशाह के समय के ईस्वी ख़ाँ ने जिनका लाल क़िला देहली से गहरा ताल्लुक़ रहा है, फ़ारसी दास्तान से प्रभावित होकर यह सबसे पहली कोशिश उर्दू ज़बान में की होगी। इस दास्तान में दो किरदारों के नाम हूबहू ख़ानदान तैमूरिया के नामों पर है। एक जहाँआराए और दूसरा शाहआलम। जहाँआरा शाहजहाँ की चहेती बेटी थी जो उसकी मृत्यु के बाद सन् 1680 तक जिंदा रही। शाहआलम अव्वल, औरंगज़ेब के जानशीन बहादुरशाह अव्वल (1808-1812) का भी लकब था।

अगर हम शाहआलम अव्वल और सानी दोनों के समय को समाप्त कर दें तो इस निर्णय पर पहुँचते है कि ईस्वी ख़ाँने यह क़िस्सा 1800 से 1832 की बीच लिखा होगा।

यह 'क़िस्सा' एक मौलिक कृति है। मौलिक इन अर्थों में कि कृतिकार ने फ़ारसी दास्तानों से प्रभावित होते हुए भी उनका अनुकरण नहीं किया और कथानक की आत्मा की मौलिक बनाए रखा। इसके पात्रों में प्रचलित प्रथानुसार बादशाह-बादशाहज़ादे, वज़ीर, वज़ीरज़ादे, पीर, फ़क़ीर, देव-देविनियाँ हैं जो उर्दू की कम दास्तानों में मिलते हैं। परंतु अन्य दास्तानों के समान इसमें जादूगर इत्यादि का वर्णन नहीं है। इस क़िस्से का कथानक सामान्य है, जिसमें एक बादशाह है जो निःसंतान होने के कारण निराश होकर फ़क़ीर हो जाता है। जंगल में एक फ़क़ीर के आशीर्वाद से संतान की उसे प्राप्ति होती है। बादशाहज़ादे का बड़ा होना और वज़ीरज़ादे के साथ आखेट के लिए जाना और एक पक्षी के पीछे तिलिस्म में फँस जाना, वहाँ पर परियों के बादशाह की बेटी का पता चलना। वहाँ एक बहुत सुंदर बाग़ है। चारों तरफ फव्बारे उछल रहे हैं, रंग बिरंगे फूल खिल रहे है। सुंदर स्त्रियाँ नहा रही हैं, पास जाके देखता है तो वे सब पत्थर की थीं, कहते है स्वर्ग जो ज़मीन पर सुना था, सो यही है। बाग़ में खुर्शीदबानो परी आती है। पूछती है-तुम कौन हो, कहाँ से आए हो। इस कोहकाफ़ में तुम किस तरह आए। वज़ीरज़ादा सारी बात बताता है।

परी बादशाहज़ादे पर मेहरबान होती है। बादशाहज़ादा पूछता है-तुम कौन हो, यह बाग़ किसका है। परी ने कहा कि ''ऐ! बादशाहज़ादे, हुस्नाबाद एक शहर है। वहाँ 'जहाँ बख़्श' नाम का परियों का बादशाह है, जिसकी बेटी 'दिलबर' है, जिसका यह बाग़ है। इस बाग़ का नाम 'मौहब्बत अफ़ज़ा' है। दिलबर को यह जगह पसंद आयी। उसी ने यह बाग़ तैयार करवाया है। आज वह बाग़ देखने को आयेगी। मैं इसकी नौकरों में हूँ। वह इतनी सुंदर है कि उसकी सुंदरता देखने की ताकत न रहेगी। उसने अभी तक किसी मर्द को देखा नहीं है। उसकी सवारी करीब है। उसके साथ तमाम देव-देबिनियाँ हैं। तुझे कोई भी देखेगा तो मार देंगे और परी ने दोनों को छुपा दिया। बादशाहज़ादा और वजीरज़ादा देखते क्या हैं कि जो परियों साथ में थीं, कोई 12 वर्ष से कम न थीं। सब बहुत सुंदर थीं, जो कोई उन्हें देखता, तो देखता रह जाता। रंग बिरंगे कपड़े पहने तालियाँ बजा-बजाकर दौड़ती हैं और आपस में हँसती-खेलती हैं। पेड़ों की डालों को पकड़कर गाना गाती हैं। आपस में मज़ाख़ करती हैं। यकायक दिलबर का हीरे जड़ाऊ लात से बना तख़्त आता है जिसके चारों तरफ परियाँ हैं। उस तख़्त पर सूरज के समान सुंदर स्त्री है। जैसे सूरज के तेज को कोई नहीं देख सकता वैसे ही उसकी सुंदरता के आगे कोई टिक नहीं सकता। दिलबर जो सूरज है, ये सब परियाँ उसकी किरनें हैं। जिस समय वह आयी उसकी सुंदरता की ज्योति ऐसी हुई कि लगा अब सूरज उगा है। नाम तो उसका दिलबर है लेकिन हर एक अंग उसका दिलबर है। बाल उसके काली घटा की समान है। तरह-तरह की उपमायें देकर कृतिकार ने उसकी सुंदरता का वर्णन किया है। उसकी सुंदरता को देखकर बादशाहज़ादा पछाड़ खाकर बेहोश हो जाता है। जब होश आता है तो हाय! दिलबर, हाय! दिलबर कहता है और रोता है। फिर पीर-फ़क़ीर के पास जाता है और उसके पैर पकड़ लेता है। फ़क़ीर दुआ और तसल्ली देता है कि ईश्वर की जात से ना-उम्मीद मत हो। फिर एक सौदागर मिलता है जो बादशाहज़ादे को एक तस्वीर दिखलाता है। बादशाहाज़ादा सौदागर को बहुत इनाम देता है। इसी तरह जब दिलबर शहज़ादे को देखती है तो वह भी आसक्त हो जाती है। उसने भी इतना सुंदर शाहज़ादा कभी नहीं देखा था। दिलबर की सखियाँ उसका दिल बहलाती हैं पर वह भी तड़पती है।

जहाँआरा, बादशाह को राज़ी करके ब्याह मुकर्रर करती है। ख़ूब शहर सजाया जाता है। रोशनियाँ की जाती हैं। नाच-गाने होते हैं। तरह-तरह के बाजे बजते हैं। जैसे पहले गम पड़ा था अब उतनी ही ख़ुशी होती है।

क़िस्से में एक और बादशाह एवं उसकी प्रेमिका का वर्णन है। इन दोनों कथाओं का अंत सुखांत है। क़िस्से में ज़्यादातर नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचलित हैं। मसलन फ़कीर आरजू बख्श है। जंगल का नाम फ़ैज़िस्तान है। बाग़ का नाम मोहब्बत अफ़ज़ा, शहर का नाम इश्क़ाबाद है और अक़लीम हिंदुस्तान का भी वर्णन है। बादशाहों के नाम आदिलशाह, शाहआलम, नजम आलम, मुनावरशाह, शाहज़ादे मेहअफ़रोज़ और नूर आलम हैं। शहज़ादियों, परियों के नाम नौ बहार बानो, गुलज़ार बानो दिलबर, दिलरूबा हैं। इसी तरह वज़ीर जहाँ दानिश हैं तो वज़ीरज़ादा नेकअंदेश हैं। इनके अलावा देव-देविनियाँ और परियाँ हैं।

इस क़िस्से का महत्व इसके भाव पक्ष की अपेक्षा इसकी साहित्यिक एवं सरल शैली में है। हिंदी-उर्दू कथा साहित्य में इससे सरल एवं साहित्यिक रचना अब तक उपलब्ध नहीं है। संपूर्ण क़िस्सा बोलचाल की भाषा में लिखा गया है। यह भी अनुमान किया जा सकता है कि तत्कालीन प्रथानुसार यह क़िस्सा स्वयं लिखा नहीं गया है वरन् रचनाकार ने बोलकर लिखवाया है। इसकी वाक्य रचना की शैली लेखन की नहीं भाषण की है।

स्त्री सौंदर्य का वर्णन करते समय हिंदी काव्य एवं परंपरागत प्रचलित नियमोंका पालन किया है जिसका प्रयोग कृतिकार ने हिंदी धर्म-कथाओं का जानकार होने के नाते किया है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह क़िस्सा क्षीण होती हुई मुगलकालीन संस्कृति की चित्रशाला है। उस युग की सामंतवादी परंपरा के अनुकूल इसमें राजसी जुलूस, राजसी भोज हैं जिसमें केवल पुलाव के दस प्रकार के विवरण हैं। सभा तथा युद्ध का वर्णन भी मिलता है।

यह बात विचारणीय है कि ईस्वी ख़ाँ के समय हिंदी अथवा उर्दू-गद्य का कोई उदाहरण नहीं था। उसकी गद्य-शैली स्वयं उसके द्वारा निर्मित है। उसके समक्ष दो प्रकार की साहित्यिक शैलियाँ थीं। एक ओर तो फ़ारसी साहित्य का भण्डार और दूसरी ओर हिंदी काव्य की शैली का भण्डार। दोनों के ताने बाने से उसने अपनी शैली का निर्माण किया। क़िस्से की भाषा अस्त व्यस्त होने के बावजूद कल्पना की अपूर्व सामर्थ्य रखती है और कृतिकार भाषा को कुम्हार की तरह नए आकार-प्रकारों में ढालता चला जाता है।

इसमें नवीनता, कल्पना शक्ति की गहराई, दृष्टि, सरलता का अपूर्व सामन्जस्य है। कृतिकार जो कहना चहता है कह जाता है, जो दिल चाहता है दिखा जाता है। वास्तव में क़िस्से की भाषा के रूप में भारत में निर्मित हो रही हिंदी -उर्दू का साहित्यिक स्तर पर व्यापक प्रयोग है। इसलिए ईस्वी खाँ का स्थान एक शैली-निर्माता का भी है।

इस क़िस्से की एक और विशेषता यह है कि अन्य किस्सों की भाँति लेखक उपदेशक के रूप में उपस्थित नहीं होता। नग्नता (मॉसल सौंदर्य) दर्शन की भी प्रवृत्ति इसमें से लुप्त है यद्यपि तत्कालीन दास्तानों में विशेषतः "बोस्ताने ख्याल" में रंग बहुत चोखा है। इसी प्रकार इस्लाम के प्रचार की यह भावना जो अन्य दास्तानों का आवश्यक अंग रही है इस 'क़िस्से' से बिल्कुल लुप्त है। यह स्वयं इस बात का प्रमाण है कि इस रचना के निर्माण के समय दिल्ली के लाल किले से औरंगज़ेबी भावना प्रस्थान कर चुकी।

ए0एम0यू0 सिटी हाई स्कूल
अलीगढ़

लघु कथा

मजबूरी

नरेन्द्र शर्मा

सर्दियों का मौसम था। ठिठुरन बहुत थी। श्रीमती शर्मा अपने घर में सफ़ाई का कम कर रहीं थीं। वह ठिठुरन से बहुत परेशान थीं। जब वह सफ़ाई करते-करते अपने दरवाजे पर पहुँची तो उन्होंने देखा कि सामने वाली कोठी में दो छोटी बच्चियाँ भी सफ़ाई का काम कर रही हैं। उनका काम करने का तरीका किसी बड़ी चतुर औरत जैसा था। बड़ी बच्ची झाड़ू लगा रही थी तो छोटी साथ-साथ पौंछा लगाती चली आ रही थी।

आश्चर्य चकित सी श्रीमती शर्मा ने बड़ी बच्ची से पूछा—"बिटिया, तुम तो मुझ से भी अच्छी तरह सफ़ाई का काम कर रही हो। यह सब तुम्हें किसने सिखाया है?"

"मजबूरी ने, आंटी!" बड़ी बच्ची ने अपने हाथ को चालू रखते हुए धीमे से उत्तर दिया।

ग्राम व डा0 मंगलपुर, तहसील-नरवाना, जिला-जींद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संविधान

सुरेश उजाला

भारतीय संविधान
विस्तृत
एवं विशाल
लिखित संविधान है–
विश्व का

जो
श्रेष्ठ है
अन्य संविधानों की अपेक्षा–
दुनिया के

जिसका
एक-एक आखर
गौरव-गान है–
सम्मान है-इतिहास का
मूल्यांकन है-धरती पर
इन्सानियत का
हमारी-संस्कृति
और
सभ्यता पर आधारित–
मर्यादा का

जो
परिवर्तनीय है
विशेष प्रक्रिया द्वारा
आवश्यकतानुसार–
जन-हित में

अतः
लचीलापन
विशेषता है–
भारतीय संविधान की।

जिसकी
मूलभावना
सार और सारतत्त्व है–
न्याय-समता-स्वतंत्रता
और बंधुता

जो-बनाती है
आदमी को आदमी–
बिना लिंगभेद के

जिसका
महान उद्देश्य है–
संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न
समाजवादी पंथ-निरपेक्ष
लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना

जिसके अंतर्गत
सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक तौर पर
निहित है–
न्याय-विचार-अभिव्यक्ति-
विश्वास -धर्म
और
उपासना की स्वतंत्रता

इसके अतिरिक्त
प्रतिष्ठा,
अवसर की समानता
और व्यक्ति की गरिमा
मुख्य
विशेषता है–
भारतीय संविधान की–

बंधुता की ख़ातिर
राष्ट्र की एकता
और अखंडता बनाये रखना

जो
अंगीकृत-
अधिनियमित
और
आत्मार्पित है–
दृढ़ संकल्प के साथ
संविधान के निमित्त
नियानुसार,
विधिवत्,
मानव-कल्याणार्थ।

संपादक, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग,
लखनऊ (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऑल इज़ वैल : थ्री ईडियट्स

दया दीक्षित

इधर कुछ समय से और कुछ निर्माताओं, अभिनेताओं की सार्थक क्रियेटिविटी से यह उम्मीद की जा सकती है कि हिंदी सिनेमा एक युग के बाद 'भेड़चाल' से स्वयं को मुक्त करने की कोशिश में लगा हुआ है। इसी कोशिश का परिणाम है कि दर्शक एक बार फिर अच्छी सोद्देश्य और मनोरंजक फ़िल्मों की चाहत में छविगृहों के भूले-बिसरे द्वार की ओर बढ़ने लगा है। उसकी यह चाहत तुष्ट भी होती दिखायी पड़ती है। हालाँकि, इसके ठीक पहले के फ़िल्म निर्माता-निर्देशकों का जो रवैया था, वह यह कि फ़िल्म 'हल्ला बोल' जैसे कुछ संवादों का इस्तेमाल करके हर तीन महीने बाद नयी फ़िल्म देते रहो। जब तक दर्शक कुछ समझें, तब तक पैसा अंदर कर लो। जहाँ इस तरह की धन-केंद्रित दृष्टि हो, वहाँ भला सामाजिक, पारिवारिक या राष्ट्रीय समस्या-केंद्रित या मिल वृत्तियों के स्वस्थ विश्लेषण से संबंधित फ़िल्में कैसे बन सकती हैं? इस धन-केंद्रित दृष्टि की परिणति यह हुई कि एक बड़ा दर्शक वर्ग चलचित्रों और सिनेमाघरों से लगभग दूर हो गया। ज़ाहिरकार, फ़िल्म निर्माता-निर्देशकों की नयी/पुरानी पीढ़ी को यह समझ में आ ही गया कि आज के इस दौर के दर्शकों को अगर छविगृह तक वापस खींचना है, तो रचनात्मक और सार्थक मैसेज वाली फ़िल्में लानी ही होंगी, क्योंकि दर्शक/उपभोक्ता आज पहले जैसा भोंदू नहीं रहा। आज वह वक़्त और पैसे की क़ीमत समझ चुका है। रचनात्मक सक्रियता पहले की अपेक्षा दर्शक में आज अधिक है, ऐसे में निरी फूहड़, हास्य या ऊटपटाँग मसाले वाली फ़िल्में नहीं चल सकतीं।

यही कारण है कि जब संगठन-शक्ति या टीम-भावना की महत्ता से भरपूर 'चक दे इंडिया' फ़िल्म आयी, तो दर्शकों ने उसे हाथों हाथ लिया। इसी तरह, व्यवस्था-परिवर्तन का युवा जज़्बा लेकर बनी 'रंग दे बसंती', बाल मनोविज्ञान से संबंधित 'तारे ज़मीं पर' तथा 'थोड़ा प्यार थोड़ा मैजिक', आतंकवाद की त्रासदी एवं विकल्प पर बनी 'ए वैडनस डे', दो संप्रदायों के आपसी सौहार्द, विश्वास और एकता पर बनी ऐतिहासिक फ़िल्म 'जोधा अकबर', नुक्कड़ नाटकों की प्रभावी उपादेयता के साथ 'बाइट' एवं 'लाइव' के निर्मम नशे में चूर इन्सान की हैवानी क्रूरता पर आघात करती 'हल्ला बोल' तथा जीवन-जगत और ईश्वर के बीच तालमेल का मैसेज देती फ़िल्म 'ओ माई गॉड तुसी ग्रेट हो' आदि चलचित्रों को दर्शकों ने तहेदिल से अपनाया। दरअसल, दर्शक और वोटर में एक बड़ा साम्य यह है कि मजबूरी के चलते जो विकल्प सामने हैं, उन्हीं में से चयन करना है।

बहरहाल, आज का परिदृश्य सिने जगत से बहुत उम्मीदें जगाता है। इस संदर्भ में निर्माता राजकुमार हिरानी का नाम लिया जा सकता है। हिरानी ने उस तरह की फ़िल्में बनायी हैं, जिनमें एक ख़ास क़िस्म की सामाजिकता दिखायी पड़ती है। "मुन्ना भाई एम. बी. बी. एस.', 'लगे रहो मुन्ना भाई', से राजकुमार हिरानी ने अपनी ख़ास जगह बनायी है बॉलीवुड में। वही नये मुहावरे और चलन उनकी फ़िल्मों के प्रभाव के रूप में हमारे सामने आये हैं। 'एक और मुन्नाभाई' एक विशेष प्रकार के लोगों का लाक्षणिक प्रयोग बनकर पत्र-पत्रिकाओं में आये दिन देखा जा सकता है। इसी तरह, गाँधीगीरी को लोगों/ कार्यालयों/नेताओं/हड़तालियों ने अपना विशिष्ट अस्त्र बना लिया है। निस्संदेह, ये दोनों नये मुहावरे राजकुमार हिरानी की फ़िल्मों की सफलता और प्रसिद्धि के वाचक शब्द बन गये हैं।

इधर राजकुमार हिरानी की एकदम ताज़ातरीन पेशकश है—'थ्री ईडियट्स'! यह फ़िल्म लगातार कई शहरों में निरंतर हाउसफुल जा रही है। संवेदनशील लोगों में विशेष रूप से यह चर्चा के केंद्र में है। इस फ़िल्म में भरपूर हास्य-व्यंग्य है, लेकिन उस तरह उद्देश्यहीन क़तई नहीं, जिस तरह 'बड़े मियाँ छोटे मियाँ', 'एक और एक ग्यारह', 'वेलकम' या 'आंटी नं. वन' या इस तरह की दूसरी फ़िल्मों में है। ऐकेडेमिक मूड की यह बेहतरीन फ़िल्म है। निश्चित रूप से इसका थीम स्तरीय रचनाकार ने तैयार किया है। कभी आई आईटियन रहे और अब पेशे से इंजीनियर चेतन भगत एक बेहतर कथाकार हैं। अंग्रेज़ी में लिखने वाले इस कथाकार की एक अन्य कथा पर भी फ़िल्म बन चुकी है। प्रभात प्रकाशन से उनकी अंग्रेज़ी की किताबों का हिंदी तर्जुमा भी प्रकाशित हो चुका है।

उपन्यासों पर फ़िल्में पहले भी बनीं और बेहद सफल रहीं—'तीसरी कसम', 'झील के उस पार', नदिया के पार जैसी ख्यातिलब्ध फ़िल्में उपन्यासों पर आधारित हैं। भगत के अंग्रेज़ी नॉवेल 'फाइव प्वांइट सम वन' पर आधारित यह थ्री ईडियट्स फ़िल्म राजकुमार हीरानी की पिछली फ़िल्मों से अलग है। ऐकेडमिक कल्चर पर आधारित इस फ़िल्म में ऐसे मुद्दों पर वैश्विक सवाल हैं, जो सीधे-सीधे हमारी शिक्षानीति को अपनी परिधि में घेरते दिखाई पड़ते है। किन कारणों से हमारी असाधारण युवा प्रतिभाएँ आत्महत्या करने पर बाध्य हो जाती हैं? ऐसे कौन से कारण हैं जो बड़े महत्वपूर्ण प्रौद्योगिक संस्थानों के छात्रों के जीवन को लील लेते हैं? इन प्रश्नों से उलझी हुई फ़िल्म यह प्रभावी मैसेज देती है कि 'कामयाबी' से बढ़कर 'काबिलियत' हासिल करने के पीछे दौड़ना होगा, तभी इंसान का इंसानियत के साथ बचना संभव हो सकता है।'

आज हमें 'शिक्षा सूचनाओं' से ज़्यादा 'ज्ञान के अनुभव' की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता है। यह पुरअसर मैसेज मनोरंजक शैली में दूध और पानी की तरह एकमेक करके इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि दर्शक समझ ही नहीं पाता कि कब हास्य-व्यंग्य की फुहारों के बीच यह मैसेज उसके दिल दिमाग में घर कर गया। बेहद साफ़ सुथरी यह ऐसी फिल्म है जिसे पूरा परिवार मिल बैठ कर देख सकता है। गीतों मे 'दृश्य संवादात्मकता' का नया प्रयोग पहली बार दिखाई दिया है जो प्रभावित करता है। आइटम सांग या डांस जैसी कोई चीज नहीं है। सारे पात्रों का अभिनय जानदार है।आमिर खान ने एक बार फिर अपनी अभिनय क्षमता दिखला दी है। निर्माता के रूप में 'तारे जमीं पर' जैसी श्रेष्ठ सार्थक फिल्म बनाकर उन्होंने बेस्ट फ़िल्म मेकर का खिताब हासिल कर ही लिया है।

'थ्री ईडियट्स' इसलिये भी यादगार है कि केवल समस्या की गंभीरता पर ही विमर्श नहीं करती, समस्या कैसे हल हो सकती है, इसका वैकल्पिक सुझाव देती हुई प्रौद्योगिक संस्थान का एक आइडियल मॉडल भी दृश्यांकित करती है जिसमें अलग तरह की शिक्षण-प्रशिक्षण विधियों से विद्यार्थियों को (ज्ञान की सूचनाओं, आँकड़ों से नहीं) अनुभव से प्राप्त ज्ञान में दक्ष किया जाता है। काश कि हमारे शिक्षा शास्त्री यह फिल्म देखकर प्रेरित हो सकें। फिल्म की कहानी अधिकतर फ्लैशबैक में चलती है। इसकी शुरूआत होती है दो मित्रों से, जब उन्हे वर्षो से गुम अपने मित्र का पता मालूम पड़ता है। दोनों अपने उस तीसरे मित्र रणछोर दास चांचड़ (रैन्चो) वे मिलने चल पड़ते है। इस यात्रा में वे अपने अतीत को याद करते हैं कि किस तरह वे इंजीनियरी की पढ़ाई के लिये पहली बार उस इंजीनियरिंग इन्स्टीट्यूट में आए थे। किस प्रकार से उनकी रैगिंग की जा रही थी और उसी दौरान रैन्चो ने भी प्रवेश किया था। उनकी रैगिंग लेने के लिये तैयार सीनियर्स रैन्चो द्वारा साइंस फार्मूले के लागू किए जाने के कारण उल्टे मुसीबत में पड़ गए। यही से रैन्चो का रोब ग़ालिब हो गया। रैन्चो एक बेहद प्रतिभाशाली और ऐसे रचनात्मक विचारों वाला छात्र है जो रटंत विद्या से ज़्यादा अंक प्राप्त करने की जगह, अनुभव से प्राप्त काबिलियत पर विश्वास रखता है। तथ्यों को सहज तरीके से प्रस्तुत करने/ देखने में यकीन करता है। अपने इसी रवैये की वजह से वह इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर से कई बार भिड़ता है। डायरेक्टर वीरू एक कट्टर प्रशासक ही नहीं एक ऐसा अड़ियल निदेशक है, जो अपनी इसी हिटलरशाही की वजह से कई प्रतिभावाली होनहार छात्रों की मौलिक क्रियेटिविटी को बजाय निखारने सँवारने के, बराबर खारिज करता चला जाता है, परिणामतः कोई हताश छात्र आत्महत्या कर लेता है तो कोई बहुमंजिले हॉस्टल की छत से कूद पड़ता है। रैन्चो उस छात्र की गंदी मानसिकता को सबक सिखाना चाहताहै, जो परीक्षा के दौरान अन्य लड़कों का पढ़ाई से ध्यान हटाने के लिए 'तिकड़म' करता है। ऐसा करने में उसकी मंशा यह कि न पढ़ने के कारण औरों के नंबर कम आने से उसका परसेंटेज खुदबखुद ज्यादा हो जायेगा। यह बाज़ार के नियम के अनुसार है। रैन्चो ने उस रट्टू छात्र के 'लिखित भाषण' में ऐसी दो-एक तब्दीलियाँ कर दीं कि अर्थ का अनर्थ हो गया। इस स्थिति से उत्पन्न विशुद्ध हास्य की रचना इस कथा को अन्य फिल्मी कथानकों से अलग करती, स्वस्थ मनोरंजन देती है। साथ ही बिना 'अर्थ' जाने, तोता रटंत की परिपाटी पर चलने वालों पर भी तीखा व्यंग करती है। इस सारे वाकये से डायरेक्टर वीरू सहस्त्रबुद्धे जिसे विद्यार्थी 'वाइरस' कहते हैं, रैन्चो के दोनों मित्रों के परिवारीजनों को पत्र लिखकर सूचित कर देता है कि आपके बेटे इंजीनियर नहीं बन पायेंगे 'रैन्चो' की कुसंगति के कारण। दोनों परिवार इन थ्री ईडियट्स को बुलाकर अच्छीखासी खुराक पिलाते हैं। यहीं रैन्चो को मालूम होता है कि उसका मित्र वाइल्ड लाइफ फोटोग्राफर बनना चाहता था, लेकिन माँ-बाप की इच्छा उसे जबरन इंजीनियर बनाने की दिशा में ढकेले हुए है।

रैन्चो के सद्प्रयासों से उसका मित्र बेहतरीन वाइल्ड लाइफ फोटोग्राफर बन जाता है। यहाँ उन अभिभावकों पर करारा प्रहार है जो अपने बच्चों पर अपनी अतृप्त महत्वाकाँक्षाओं का भारी बोझ डालकर उन्हे उनके मनचाहे क्षेत्र में नहीं जाने देते और उनके साथ अन्याय करते हैं। नायक काबिलियत का उपयोग यथाअवसर करने की सूझ और जज़्बा देता है। अच्छे और बुरे की तमीज सिखाता है। वैक्यूम क्लीनर के 'सक करने की फोर्स' को एक खास प्वाइंट पर केंद्रित करके 'प्रसव' जैसा भीषण जोखिम भरा संवेदनशील काम को अंजाम देता है। सेवा, परोपकार और ज्ञान का परिस्थिति अनुसार विशिष्ट प्रयोग, ये सारी बातें इस फिल्म के प्रेम को अन्य फार्मूला फिल्मों में वर्णित प्रेम से अलग हटकर देखने को विवश करती हैं। यहीं से फ्लैश बैक ख़त्म कर कथा वर्तमान में प्रविष्ट होती है। वे मित्र रैन्चो की खोज करते करते चांचड़ निवास पहुँचते हैं। एक अन्य मुद्दे की गंभीरता को चित्रित करने में फिल्म की कथा सफल हुई है। अक्सर किसी के स्थान पर कोई अन्य परीक्षा पास कर लेता है।इस तरह से एक प्रतिभाशाली छात्र दूसरे अयोग्य छात्र को अपनी डिग्री और सर्टिफिकेट देकर स्वयं गुमनामी की गर्त में चला जाता है, ठीक रणछोरदास चांचड़ यानि रैन्चो की तरह! इस प्रकार के जघन्य कृत्य हमारे देश की रक्त मज्जा को विषाक्त और खोखला बना देने में अहम हैं। रणछोरदास के पिता को दिया हुआ वचन निभाने के लिए डिग्री उसे सौंप कर रैन्चो उस सारे परिदृश्यों से दूर बहुत दूर तिब्बत में अपना एक तकनीकी वैज्ञानिक संस्थान खोल लेता है। वादे के अनुसार अपने बीते हुए कल से किसी तरह का ताल्लुक न रखते हुए वह अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों से दुनियाँ के बड़े-बड़े देशों मे नाम कमाता हुआ जिंदगी बसर कर रहा है। दोनों मित्र और रैन्चो की प्रेयसी अंततः रैन्चो, जिसका नाम फन्सुख बांगडुडू है, उसे खोज ही लेते हैं। अब यहाँ भी कथा अन्य फिल्मों में हट कर है। दोनों मित्र जब उसे खोज निकालते हैं, तो बजाय गले मिलने के उसकी खूब ठुकाई करते हैं। यहाँ तक कि प्रेमिका भी उसे पीटती है। यह ठीक उसी तरह है जैसे कोई बेहद अजीज़ सप्रयास लापता हो जाये और परिजन उसकी खोज में भूखे प्यासे रातदिन एक करके अंततः जब उसे ढूँढ निकालते हैं तो उसके द्वारा बजाय प्रेम प्रीति की गर्मजोशी के, मारे गुस्से के तड़ातड़ घूँसों चप्पलों से उसकी धुनाई कर दी जाय, और में भले अंतरंगतापूर्वक सब गले मिल लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नो रिग्रट्स माय लव!

डी.एन.प्रसाद

उपन्यास लिखना और उपन्यास कहना दोनों दो बातें है। कथा, गल्प और तिलिस्म की कहानियाँ कभी न ख़त्म होने वाली जिज्ञासा को और जिज्ञासु बना देती है। कभी न ख़त्म होने वाली वाचिक-कथा का कसाव इतना सम्मोहन पैदा करता है कि अनगिनत पात्रों और षड्यंत्रों के बीच भी रोमांच का आनंद अगले दिन की प्रतीक्षा करवाता है और शाम ढलते ही नानी-दादी के पास शांत श्रोता की तरह बैठने की प्रतीक्षा होने लगती है।

कथा की लिखित शैली से ज़्यादा प्रभावी कथा की वाचिक-शैली होती है। ग़ौर से देखें तो प्राचीनतम साहित्य की वाचिक-परंपरा काफी समृद्ध रही है और इससे मनुष्य की स्मरण-शक्ति और श्रोता की पार्वती-शक्ति का संधान भी होता रहा है। उपन्यास की जो स्थापत्य-कला है उसे विश्वासपूर्वक स्थापित करना ही उपन्यासकार की विलक्षणता है। चाहे वह कथा वाचिक हो या लिखित! 'प्रेम की भूतकथा' विलक्षण उपन्यासकार श्री विभूतिनारायण राय का अद्यतन उपन्यास है जिसमें विभूतिबाबू उपन्यास लिखते नहीं है, उपन्यास कहते है। उपन्यास कहना भी एक अनोखा कथा प्रयोग है। 1952 में प्रकाशित धर्मवीर भारती का उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' इसी तरह के वाचिक कथा-शिल्प का प्रयोग था। ठीक सैंतालीस वर्ष बाद 2009 में वाचिक कथा-शिल्प का अनोखा प्रयोग विभूतिबाबू ने किया है। नानी-दादी की कहानियाँ शाम ढलते अँधेरे से कथाक्रम में आगे बढ़ती हैं। ठीक उसी वाचिक-परंपरा में प्रेम की भूत कथा का कथाक्रम रात अँधेरे में ही प्रतिकृत होता है और अपनी निष्पत्तियों तक पहुँचते-पहुँचते नीमअँधेरे में गुम हो जाता है, अगले क्रम को पकड़ने की प्रतीक्षा में और यह रहस्य बना ही रह जाता है कथांत तक पहुँचने में कि जेम्स का हत्यारा कौन था और एलन उस लड़की का नाम क्यों नही बताना चाहता जिसका बहाना लेकर वह अपने को निर्दोष करार देना चाहता है? पाठक (श्रोता) एक भूतकथा-प्रसंग के बाद इसी कथा से निःसृत दूसरे कथा-प्रसंग की प्रतीक्षा में आवश्वस्त होकर प्रतीक्षित हो जाता है। यहाँ उपन्यासकार उपन्यास कहता चलता है और पाठक (श्रोता) निर्लिप्त भाव से आगे की कथा-प्रवाह में निमग्न हो जाता है।

कथाकार विभूति नारायण राय कथा की युक्ति को संपन्न कराने के लिए एक मज़बूत पत्रकार पात्र का सृजन करते हैं और यहीं तक नहीं, श्री राय कथा की 'मैं' शैली अपनाकर अपने कथाकार और पत्रकार मन को रिलैक्स देते है।

1909 में घटी घटना की पूर्णाहुति 2009 में होती है, ठीक 100 साल बाद! एक निश्छल प्रेमकथा की हत्या का सौवां वर्ष! उस प्रेमकथा की श्रद्धांजलि है प्रेम की भूतकथा! एक फौजी की प्रेमकथा। लड़की का कहना, "मुझे पता है," चन्द्रधर शर्मा गुलेरी फौजी की प्रेम कहानी 'उसने कहा था' में लड़के का कहना, 'तेरी कुडमाई हो गयी?' की याद ताजा कर जाती है।

1909 में गाँधी को अपने भीतर की आग को निकालने के लिए स्वयं को जलाना पड़ा। हिन्द स्वराज की कथात्मक साक्षात्कार शैली गाँधी की 'में' शैली का एक सफल प्रयोग है। अपने भीतर की चिंतना को गाँधी व्यक्त करना चाहते थे। उसके साथ समस्या यह थी कि सारी बातें वे स्वयं गद्यात्मक शैली में व्यक्त कर अपने ऊपर सबकुछ लेना नहीं चाहते थे। गाँधी को अखबारनवीसी का चस्का इंग्लैंड में वकालत की पढ़ाई के समय ही लग गया था। उन्होंने संपादक-पाठक-संवाद के बहाने साक्षात्कार की 'में' शैली में वह सबकुछ कह डाला जो उन्होंने अपनी कालगत अनुभूतियों से पाया था। हिन्द स्वराज में पाठक और संपादक कोई और नहीं, स्वयं गाँधी का दो धारी विवेक सम्मत आचार-विचार का परिपाक है। गाँधी स्वयं पत्रकार-संपादक की भूमिका निभाते हैं। पत्रकारिता केन्द्रित उपन्यास 'प्रेम की भूतकथा' में कथाकार भी अपने अख़बार के लिए स्टोरी की तथ्यात्मक सत्यता की तलाश में एक निष्ठावान पत्रकार की भूमिका निभाता है। स्टोरी की घटना 1909 में घटती है और पूरी स्टोरी प्रिंट-मीडिया के समक्ष ठीक सौ साल बाद 2009 में आती है नया ज्ञानोदय में। 'प्रेम की भूतकथा' की या 'भूत की प्रेमकथा' का कथाकार कथात्मक कसाव को कसने में पाठक (श्रोता) को कुछ कहने या पूछने या पढ़ते-पढ़ते रुकने या सोचने का मौका ही नहीं देता है। उसने उपन्यास की जिस स्थापत्यकला को स्थापित कर दिया, वही सत्य है; इसका भान करा देता है। 'भूत' का द्वि-अर्थी बिंब बोधित हो जाता है। कथा की सर्जना में परिकल्पना के उन तमाम शिल्पों का प्रयोग कथाकार की शिल्प-दृष्टि को स्पष्ट करता है। मसूरी के उन सभी स्थलों का मुआयना और दस्तावेजों के तथ्यगत आधार पर निकोलस, कैप्टन यंग, रिप्ले बीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के 'भूत' कथाकार की परिकल्पना को पुष्ट करते हैं और वह अपने इन भूत मित्रों से कथासूत्र लेकर परिणाम तक पहुँच जाता है। इन भूत मित्रों की परिकल्पना के सहारे भूतों के अज्ञातभय को लेखक ने निर्मूल करते हुए इतिहास में विलुप्त हो चुकी प्रेमकथा के प्रवाह को धार दे दी है। यह इस कथा रचना की अनोखी कला है। भूत के अस्तित्व को सहजता से नकार कर कथाकार ने भूत के भय को समाप्त किया है और भूत-मित्र की परिकल्पना से एक सुखद अनुभूति करायी है। वहीं 'स्त्री भूत' को जो लोक में प्रचलित अभद्र व गाली जैसे प्रतीक (भूतनी, चुड़ैल) से ऊपर उठकर सहज मानवीय बोध का संस्पर्श कराया है और उसे भी भूत-मित्र ही बनाया है। हिन्द स्वराज का शताब्दी वर्ष भी 2009 है। दोनों में साम्य है और यही उपन्यास की विलक्षणता है। लेखक का निम्न कथन लैंगिक भेदभाव से उपर उठकर स्त्री-संवेदना की मानवीय अनुभूति करा देता है और यह आज के स्त्री-विमर्श को व्याकरणिक भेदभाव से मुक्त करता है, "लैंगिक भेदभाव से भरे हमारे समाज में स्त्री का शरीर अक्सर गाली-ग़लौज के काम आता है। हम शायद ही किसी पुरुष को गाली देते समय भूत शब्द का इस्तेमाल करते हों पर भूतनी स्त्रियों के लिए जरूर गाली देने के काम आती है। जो भूत मेरे लिए इतने मित्रवत हैं, उन्हें ऐसा संबोधन देने की मैं कैसे सोच सकता हूँ जिससे वे अपमानित महसूस करें।" लेखक का यह सहोदर भाव मानवीय चिंतन की पराकाष्ठा की ओर ले जाता है।

"नो रिग्रेट्स माय लव!" यह एक आदर्श सूत्र-वाक्य कथा-गीथिका में गूँजता रहता है और कथा का फलक खुलता जाता है। प्रेम की भूतकथा के फौजी का भी उत्सर्ग 'नो रिग्रेट्स माय लव' सौ साल बाद भी पूरी मसूरी में गूँजता है। उपन्यास में छोटे बड़े छः शीर्षकों से कथा आगे बढ़ती है, फ्लैश बैक में जाती है और फिर एलन की निष्पाप हँसी में उलझ जाती है।

एक दिलचस्प बात यह है कि लेखक का भूतप्रेम उसे बचपन में अपनी नानी की किस्सागोई से मिलता है और वह भूतमित्र की परिकल्पना नाम से आप्लावित होता है। ज़ाहिर है नानी-दादी की कथा कहानियों में भूत दादा या भूत अंकल अज़ीबो-ग़रीब रहस्य का खजाना खोलते है और समस्या का समाधान भी करते हैं। इतिहास के आइने में रस्किन बांड की पुस्तक 'मसूरी ऐंड लैण्डोर : डेज़ ऑफ वाइन ऐंड रोजेज' से लेखक अपने भूतमित्र के सन्निध्य में इस प्रेमकथा की गवेषणा करते हुए उत्सर्ग की पिरामिड पर पहुँच जाता है--"नो रिग्रेट्स माय लव"! ऐसी कथारचना स्वभाव से अनुसंधानपरक व्यक्तित्व और एस्थेटिक वृति का परिशोधक ही पूर्ण कर सकता है। इस कथा रचना में जेल और फौज के साथ-साथ सिविलियन में भी चर्चा-परिचर्चा के उत्सर्ग-वर्ष का स्वरूप निर्मित होना लाजिमी है।

महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

प्रेम की भूतकथा, विभूति नारायण राय, भारतीय ज्ञानपीठ

■

अपनी-अपनी आग

विजय शर्मा

अस्सी वर्ष की उम्र में कोई कहानियाँ लिख रहा है, यह जानकर अच्छा लगता है। लंदन में बसे महेंद्र दवेसर 'दीपक' यह कर रहे हैं। उनकी सक्रियता देखकर युवाओं को अवश्य प्रेरणा मिलेगी। 'अपनी-अपनी आग' के आमुख में कहानीकार महेंद्र दवेसर 'दीपक' कहते हैं कि साहित्य-रचना के पीछे अनुभवों का भंडार होता है। जब कोई कहानीकार अपनी उम्र के आठवें दशक में रचना करता है, तो ज़ाहिर-सी बात है कि उसके पास अनुभव का एक बहुत बड़ा ज़खीरा होता है। दवेसर अपने इसी अनुभव संसार को, अपने आसपास गुज़री घटनाओं को भाषा प्रदान करते हैं। वे स्वयं स्वीकारते हैं कि उनकी कहानियाँ भावना-प्रधान कहानियाँ होती हैं। लेकिन, उनकी कुछ कहानियाँ हल्के-फुल्के अंदाज़ में भी हैं। इस संग्रह में विभिन्न मिजाज़ की कहानियाँ संकलित हैं। इनमें मानवीय भावनाओं और जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण हुआ है।

स्त्री चाहे हिंदुस्तान में रहे, पाकिस्तान में या फिर इंग्लैंड में। उसकी मुसीबतों का अंत नहीं है। और उसकी ज़्यादातर मुसीबतें दूसरी स्त्रियों की ओर से आती हैं। यह दूसरी औरत माँ, बहन, सास, ननद, जिठानी, बुआ, दोस्त, सपत्नी या कोई अजनबी स्त्री हो सकती हैं। 'बीस पाउंड' की समीना अख़्तर को एक रात में कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। उसकी अपनी बुआ उसकी शादी अपने पचास वर्षीय तलाकशुदा देवर के संग कराना चाहती है। कहाँ कॉलेज, यूनीवर्सिटी के सपने देखती समीना और कहाँ छह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमात पढ़ा अरशद, जिसके बच्चे समीना की उम्र के हैं। इंग्लैड में पली-पुसी समीना कैसे अचानक पाकिस्तान के एक गाँव में एडजस्ट करेगी, किसे चिंता है? समीना के माँ-बाप को अरशद की तीस एकड़ ज़मीन दीख रही है। साथ ही, बच्ची पाकिस्तान में अपने लोगों के बीच रहेगी, यह सकून है। वह अपनी सहेली बलजीत से सलाह माँगने जाती है, लेकिन बलजीत भी इसी नाव में सवार है। वह जिस लड़के को पसंद करती है, उसे उसके पिता देखना नहीं चाहते हैं। वह अकेली स्थिति का सामना करने का फ़ैसला करती है और पिकेडिली सर्कस चली आती है। मगर, बिना पैसे के एक अकेली लड़की शहर में कहाँ और कैसे रह सकती है? एक पत्रकार योगेश की निगाह उस पर पड़ती है। वह उसे एक रात के लिये अपने घर पर आश्रय देना स्वीकार करता है। वहाँ उसकी पत्नी प्रीति भरी बैठी थी। वह समीना को 'रंडी' का ख़िताब देती है। समीना यह सुन लेती है और आधी रात को चुपचाप उनके घर से निकल पड़ती है अनजान राहों पर। योगेश का दिया बीस पाउंड वह वहीं टेबिल पर छोड़ जाती है। मगर, प्रीति को इस बात से कुछ लेना-देना नहीं है, उसका वाक्य है—'चलो अच्छा हुआ... छुट्टी मिली।' ऐक स्त्री दूसरी स्त्री के प्रति कितनी निर्मम हो सकती है, इस एक वाक्य से पता चलता है।

विदेश में रह रहे लड़के से बेटी की शादी करके लोग बहुत खुश होते हैं। नाते-रिश्ते वालों को ऐसी लड़की से ईर्ष्या होती है, मगर विदेश में रह रहे ऐसे लड़कों और उनके माता-पिता का नज़रिया संकुचित हो, तो लड़की की ज़िंदगी कितनी तबाह हो जाती है। मृदुला के शरीर पर एक कार-दुर्घटना के निशान थे। इसी दुर्घटना में उसका भाई चल बसा था। ये निशान उसके इंग्लैड निवासी और व्यापारी पति को उसकी बदचलनी लगते हैं और वह उसे छोड़ देता है। मृदुला स्वयं ही अपनी परिस्थितियों से लड़ने का फ़ैसला करती है और बहुत समझाने तथा मिन्नतें करने पर भी जब उसका पति मनोज वास्तविकता नहीं समझना चाहता, तो मृदुला अपने तरीक़े से उससे बदला लेती है। मनोज अपनी दुर्दशा के बारे में किसी से कुछ नहीं कह पाता है, लोगों के प्रश्न के उत्तर में केवल चीख़ता है। 'नहीं' कहानी का अंत स्वाभाविक लगता है, मगर क्या 'प्रपोक्ड' की पत्नी ने अपने वास्तविक जीवन में अपने पति के दुष्कर्मों की सज़ा उसे नहीं दी थी?

'अतिथि' तथा 'चक्कर ही चक्कर' हल्की-फुल्की कहानियाँ हैं, जिन्हें पढ़कर मुस्कुराया जा सकता है।

प्राकृतिक आपदाएँ कुछ दिन पहले तक कैसे लोगों के जीवन को तबाह कर देती थीं, मानवीय त्रासदी का बायस बनती थीं—कहानी 'प्यासे प्रश्न' इसका एक उदाहरण है। कुछ साल पहले तक जब फ़ोन की डायरेक्ट डायलिंग अथवा मोबाइल की सुविधाएँ न थीं (और भारत की डाक-सेवा तो सदा से माशा अल्लाह रही है) तब कैसे सब कुछ बनते-बनते बिखर जाता था, जिसका जुड़ना फिर कभी संभाव नहीं हो पाता था—यही इस कहानी का कथ्य है।

मगर, आज विज्ञान के इतने आविष्कारों के बावजूद आदमी प्रकृति के सामने असहाय है। हाल में आयी सुनामी इसका सर्वनाशी रूप हमारे सामने छोड़ गयी है, लेकिन उससे भी भयंकर है—आदमी का संकुचित नज़रिया। आदमी की सीमित मानसिकता केवल स्वार्थ देखती है और धर्म के नाम पर मानवीय संबंधों की बलि लेती है। 'ईबू' की शेफाली और सुंदरी विमान बदलते हुए मेडान होते हुए मोलबो पहुँच जाती हैं, मगर शैफाली की संवेदनाओं का गला एक कट्टरपंथी की संकीर्ण मनोवृत्ति घोंट देती है। "जिस तरह सुनामी की तबाही के विस्तार और मानवीय कष्टों का कोई ओर-छोर नहीं था, उसी तरह इस कहानी में अहसास की सरहदें नहीं हैं। एक ज़िंदगी कैसे बनते-बनते नहीं बन पाती है, उसकी कसक पाठकों को न केवल एक लंबे समय तक विचलित करेगी, बल्कि सोचने पर मजबूर करेगी कि उस लावारिस बच्चे को ठिकाना और प्यार मिलते-मिलते भी न मिला। उस मासूम बच्चे की मानसिकता और भविष्य क्या होगा? यह कहानी मानवीय अड़चनों, क़ानून और धर्म को लेकर इस तरह इन्सानियत की घेराबंदी करती है कि मन विद्रोही हो उठता है।" (फ्लैप से)

संग्रह की कहानियों में बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है, अतः कहानियाँ सहज और सरल बन पड़ी हैं। इन कहानियों में महेंद्र दवेसर की आस्था नज़र आती है, उनके विश्वास दीखते हैं। ऊपर वाला क्रूर से क्रूर सज़ा दे सकता है, मगर उसे दोष नहीं दिया जा सकता। वे कहते हैं—"वह जो संसार में क़यामत तक ला सकता है, जो हर पाप-पुण्य से ऊपर है, उसे कौन दोषी कहे?" स्त्री अपनी संतान का प्रेम-प्यार किसी के संग नहीं बाँट पाती है। दूसरी ओर ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो अपने बच्चे के हिस्से का प्रेम-प्यार निःस्वार्थ भाव से किसी दूसरे बच्चे पर लुटा देती हैं। मानवीय संबंधों की इन्हीं जटिलताओं की परतें खोलती है—'अपनी-अपनी आग' संग्रह की यह शीर्षक-कथा। यह मार्मिकता से एक स्त्री के ममत्व को उजागर करती है।

मुनष्य चाहे किसी देश में रहे, उसकी मूल आवश्यकता और जीवन से उसकी अपेक्षाएँ एक जैसी ही रहती हैं। वह प्रेम, आदर का भूखा होता है और जब उसे ये नहीं मिलते, तो वह जीवन की त्रासदी भोगने को मजबूर होता है। यही बात कहानियों को देश-काल की सीमा के बाहर ले जाकर उन्हें सार्वभौमिक बनाती है। लंदन में बैठकर लिखी गयी इन कहानियों में पाठकों को वहाँ के परिवेश की झलक मिलेगी, साथ ही, मानव-जीवन की कुछ कटु सच्चाइयों को ज़ानने-परखने का अवसर भी मिलेगा।

अपनी-अपनी आग (कहानी संग्रह), महेंद्र दवेसर (दीपक), मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, मूल्यः रु. 200.00

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म की बेड़ियाँ खोल रही है औरत

निर्झरी मेहता

श्रीमती नीलम कुलश्रेष्ठ द्वारा संपादित इस किताब का शीर्षक, जो कि थोड़ा-सा लंबा महसूस हो सकता है लेकिन यह पुस्तक एक विभावनाविशेष की लौ से आलोकित विशिष्ट अनुभूति को हमारे सम्मुख प्रगट कर रही है। यह विभावना की लौ का प्रागट्य कैसे हुआ यह भी अनूठी साहित्य घटना कही जा सकती है।

प्राचीन महाकाव्य महाभारत-रामायण और अन्य प्राचीन ग्रंथ जैसे कि वेद, पुराण, उपनिषद् कथाएँ इन सब में स्त्री चरित्रों को निश्चित किये गये नियमों के विधान से गुजरने में काफी त्रासदी से गुजरना पड़ा है। आधुनिक नारी जो कि नारी देह की सीमा रेखा से बाहर निकलकर मानव संवेदना के स्तर पर जीना चाहती है, उन सभी परिस्थितियों जिनमें से प्राचीन नारी-चरित्रों को गुजरना पड़ा, उसी कारण आधुनिक नारी छटपटाहट महसूस करती है। छटपटाहट की तीव्र सर्जकसंवेदना में से अनायास ही बड़ोदरा की 'अस्मिता' (अस्मिता महिला साहित्यक मंच) की सदस्यों की रचनाएँ उभरीं। इस साहित्य पुरुषार्थ में मल्लिका साराभाई, प्रीती सेन गुप्ता, नमिता सिंह, कार्तिक साराभाई, अनामिका, रमणिका गुप्ता, अर्चना वर्मा और अन्य अनेक ख्यातनाम अतिथि सर्जकों का सहयोग प्राप्त हुआ। 'अस्मिता' को समर्पित यह पुस्तक चार खंडों में विभाजित है।

प्रथम खंड में समाविष्ट है। अस्मिता की सर्जक सदस्यों की रचनाएँ। इस चौपाल में देखते हैं, कौन-कौन से प्राचीन नारी चरित्र उतर आये हैं। यहाँ है तारामती, सीता, उर्मिला, अहल्या, सत्यवती, गांधारी, कुंती, द्रौपदी, यशोधरा, अनसूइया, मेनका, पूर्णिमा आदि। हर संवेदन अपने आप में अनूठा है। डा0 उमा देशपांडे आदि कवि वाल्मिकी की रामायण में सीता की अग्नि परीक्षा और पूर्णगर्भावस्था में किये गये त्याग की घटना के समय के मूल श्लोकों का उल्लेख कर कहती है कि ये दृश्य राम की मर्यादा पर ही नहीं उस समय के उन सारे पुरुषों की मर्यादा पर प्रश्न चिह्न लगाता है कि सीता को बचाने एक भी पुरुष आगे नहीं आया (पृ0 22) डा0 रानू मुखर्जी कहती हैं—मैं भी बन सकती हूँ, सीता, पर नहीं बनूँगी। अब की बार राम से भी वह विश्वास का वरदान माँगेगी। "धोवी की बातों से फिर कभी सीता का न हो अपमान" (पृ0 30)

मधुमालती चौकसी की तारामती कहती है कि हरिश्चंद्र ने सप्तपदी के मंत्रों को भी हास्यास्पद बना दिया है। डा0 रचना निगम जी की अहल्या को सुनते हैं, "यदि तुम पाषाण हृदय गौतम को सहृदय न बना सको तो उस पत्थर को पत्थर बना दो।" (पृ0 30) निर्झरी महेता की 'परिपूर्णमना' स्त्री के अस्तित्व के अलग ही परिमाण को उजागर करती है। नारी देह को सौंदर्य, देह ही लज्जा, नारी देह की सीमा में सदियों से आज दिन तक बँधी नारी का इन परिधि से अपने आप को ऊपर उठाना , परिपूर्ण मनुष्यत्व पाने की इंखना को चरितार्थ करके यहाँ उजागर किया है। (पृ0 45) "'नारी आत्मा भई अनावृत' अनमनी भयी प्रसन्न मना, दिकवसना भयी परिपूर्णमना।' उन्हीं की दूसरी कविता 'सत्यवती की आह (पृ0 35) में सत्यवती कहती है कि 'भीष्म प्रतिज्ञा' के पद से विभूषित अमर भीष्म-आप तो शब्द अर्थ के दास थे। भारत वर्ष ने झेला वह महाभारत, आप के प्रतिज्ञा के अर्थ के जड़ दासत्व की वजह से जन्मा था।

भिक्षा यशोधरा की' में वंदना भट्ट कहती है—"मैं स्वयं मिट्टी हूँ, आग हूँ, हवा हूँ, पानी हूँ, मुझसे ही तो बने हैं आप।" (पृ0 43) और भी कई अनूठी संवेदना इस विभाग में हम काव्य-कहानी लेख के रूप में पाते हैं। इस किताब की यही तो है जन्मस्थली।

दूसरे खंड में है अतिथि सर्जकों की रचनाएँ। इस खंड में प्राचीन स्त्रीचरित्रों को नवीन संवेदना के परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त करती हुई कहानियाँ, नाटक, कविताएँ हैं। इस भाग में कविता की बजाय कहानियाँ और लेख प्रभावी हैं।

डा0 नमिता सिंह की कहानी 'कोख' में पांडु और धृतराष्ट्र की जन्मदात्रियों की छटपटाहट व्यक्त होती है। नियोग से पांडुकुल की विधवाओं को पुत्र प्राप्ति करना है। जैसा तय होता है उस के लिए वह कहतीं है "और यहाँ एक नई जंगलगाथा हो रही है।" (पृ0 95) इस कहानी के अंत में लेखिका की नौकरानी की इस कथा पर टिप्पणी तो पढ़िए "औरत जात तो मादा है। चाहे अंबिका, अंबालिका या उन जैसी और रही हों, या अब ये हमारी गाय-भैंसें। सब एक बरोबर।" (पृ0 97) रमणिका गुप्ता की कहानी 'अप्सरा मेनका' में अप्सरा मेनका अपने समय को 'मेनका युग' कहती है। आधुनिक समय और 'मेनका युग' का अनुसंधान बे बार-बार बखूबी करती रहती है।

'स्वयंवर मेरा था, निर्णय मेरे पिता का था। मेरे हाथों का फूलहार दिखावा था, मैं स्वयं फूलहार थी।" (पृ0 71) डा0 अर्चना वर्मा की कहानी 'नेपथ्य' विषय-वस्तु की संरचना में एक अलग, विलक्षण प्रयोग है। 'अभिज्ञान शकुंतलम' नाटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मंचन के समय मंच पर ही नटी विद्रोह करती है। अपने तरीके से कहानी गढ़ती है। 'असली किस्सा' नामक नाटक में वही पात्र नामाभिधान पर आधुनिक समय के परिवेश, चरित्र रचना का विनियोग करता है। परित्यक्त शकुंतला डाकूरानी और पुत्र भरत सिंह डाकू में परिवर्तित है, और दुष्यंत के राज्य को वह दुत्कार देती है। अंत में नटी का नट के प्रति व्यंग्य कहानी की सिरमौर चोट है, 'सच कहना, यह सारा दर्द कालिदास और उनकी शकुंतला के लिए है या इसलिए कि आज का खेल तुम्हारा नहीं, मेरा था।" (पृ0 87)

गीरा भट्ट 'उर्मिला' काव्य में कहती है—"उर्मिला देहलीज पर खड़े रहने से तुम्हें क्या मिला, हो जा थोड़ी सयानी।" (पृ0 104)

इस खंड की रचनाएँ काफी ध्यानाकर्षक और सशक्त हैं। नवीन विभावना, नवीन आकृति विधान इस खंड में सराहनीय है।

तीसरा खंड है—"धर्म"। धर्म की बेड़ियाँ जब औरतें खोल रही हैं, तो धर्म में स्त्री का स्थान कहाँ था यह जानना भी अत्यंत आवश्यक है। इस खंड में पारसी धर्म, इस्लाम धर्म, स्वामीनारायण संप्रदाय की शिक्षा पत्री, ईसाई, सिख धर्म आदि में स्त्री के स्थान, कर्तव्य के बारे में क्या-क्या निर्देश हैं, उन मुद्दों पर आधारित शोधलेख हैं। इस पुस्तक के केन्द्रवर्ती अभिगम को इन सब शोधलेख तथा इस खंड की लघुकथाएँ कविताएँ दृढ़ता प्रदान करते हैं।

गुजरात की निवासी नीलम जी इस खंड का आरंभ गुजरात में गरबा के एक साथ घूम रहे स्त्री-पुरुषों के उल्लेख से करती है। गुजरात में स्त्री का स्थान भारत की औसत स्त्री के मुकाबले कम दयनीय है। ऐसा वह महसूस करती हैं। किरण बेदी की भक्ति में यह बात नहीं आती कि कुछ पाने के लिए भगवान के सामने स्त्रियाँ गिड़गिड़ाती हैं, इसमें क्या तुक है।

इस खंड का ध्यानाकर्षक शोध लेख है अनामिका का-'समन्वित नारीवाद और भारतीय देवियाँ' (पृ0 105) सीता, द्रौपदी, पार्वती, शूर्पणखा, सरस्वती, अहल्या आदि प्राचीन नारी पात्रों के जीवन में घटी निर्णायक घटनाओं में उन सबका व्यक्तित्व कठपुतली-सा नहीं था, परिस्थिति की माँग के अनुसार उन्होंने मौलिक निर्णय, अभिगम लेती हैं। सती का पिता के सामने विरोध और आतिथ्य-धर्म की आवश्यकता जानकर सीता का लक्ष्मण-रेखा को लांघना, सरस्वती का पिता के द्वारा ही की गई बेइज्जती के बाद भी गौरवशाली व्यक्तित्व बनाये रखना उनकी कृतियों में विशिष्ट व्यक्तिमत्ता को प्रकट करता है। पूरे लेख में कुछ नवीन अभिगम से विचारणा हुई है। बुद्धिमती स्त्री मध्ययुग में क्षम्य ठहरायी जाती थी। उसी को याद करते हुए वह अंत में कहती हैं, "आज भी स्थिति बहुत बदली नहीं है।' पढ़ी-लिखी, तेजस्वी-स्त्रियाँ बहुत-सी आजीवन अकेली रह जाती हैं। लोग उनसे खार खाते हैं और उनके साथ कटखनी कटुता का जो मिथ जोड दिया जाता है, वह डायनपने के आरोप से बहुत भिन्न तो नहीं।" (पृ0 112)

नीलम जी की लघुकथा 'अवतार' में आये दिन दब्बू, कामकाज और पति की ज़ोरतलबी के बीच फँसी अँगूठा छाप औरत कनलाबाई नवरात्रि में माता का अवतार आने पर पति को चाँटा भी लगा देती हैं और वी0आई0पी0 सेवा भी पाती हैं। पाकिस्तानी लेखिका किश्वर नाहीद की आत्मकथा-'एक बुरी औरत की कथा' से लिए गये अंश-'पहला सजदा' में उनकी किताब की काफी भर्त्सना हुई थी। खुद की मर्ज़ी से हुई उनकी शादी पर उनको लताड़ा गया था। वह कहती हैं—"बचपन की यादों में परियों की कहानियाँ या अलिफ़ लैलवी शाहज़ादियों के किस्से कम और खौफ़ के ताज़ियाने (कोड़े) ज़्यादा हैं।" (पृ0 118)

आशारानी व्होरा भारतीय संस्कृति में 'अर्धनारीश्वर की अवधारणा' नामक शोधलेख में कहती हैं कि इस दृष्टि से स्त्री न पुरुष की अनुगामी है न उसकी समकक्ष, वह पूरक है। स्त्री और पुरुष मिलकर एक महत्त्वपूर्ण इकाई बनाते हैं।" (पृ0 125)

उनकी राय में यह परिकल्पना समाज के परिष्कार व उन्नयन की झलक है।

पुस्तक का चतुर्थ खंड छोटा सा है। पर वह 'आज' को उजागर करता है। पुस्तक में अस्मिता से शुरूआत हुई। समापन में भी अस्मिता के सर्जक द्वारा 'आधुनिक स्त्री की परिभाषा में हमें सरसरी निगाहों से ली गई झलक पाते हैं। तीन कविताएँ और एक लघुकथा इसमें है।

'प्रश्नचिह्न लग गया था मेरी उस भूल पर जहाँ मैं भी एक मनुष्य थी।" नलिनी पुरोहित (पृ0 171)

"आप यह भूल गये हैं कि, आप जहाँ खड़े हो, आपके पैरों तले जमीं, हमारे कंधे हैं... हमें आपसे कुछ नहीं चाहिए, सिर्फ हमारा कंधा खाली करो।" वंदना भट्ट (पृ0 172)

नीलम जी की लघुकथा 'रचयिता' में एक कॉलेज कन्या कहती है—"आप हमें द्रोपदी जैसी कमज़ोर स्त्री बनाना चाहते हैं। कोई हमारा चीरहरण करने की चेष्टा करे और हम कृष्ण को पुकारें। (पृ0 174)

नये ज़माने की आधुनिक नारी-नवीन नारी के मानस की यहाँ झाँकी हम देख सकते हैं। इस विषय और द्रोपदी का चरित्र तो शायद अलग स्वतंत्र पुस्तक के काबिल है।

यह पुस्तक, उसकी केन्द्रवर्ती 'सोच' की विशिष्ट मिसाल है। यहाँ पूरे प्राचीन भारत और विदेश की भी 'आधी दुनिया' जिसके अस्तित्व के 'मानव' अंश को नकारा गया है... सदियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से, इन पुस्तक के पन्नों पर उसकी नयी विभावना, संवेदना, सोच से सनी अभिव्यक्ति हुई है। समाज की सोच में, व्यवहार में लग गयी जंग या समाज के रक्त में, धमनियों में जम रहे क्लॉट का इसी तरह सामना किया जा सकता है। अन्यथा नवयुग, इक्कीसवीं सदी भी Old Wine in New Bottle की परिस्थिति में ही ठिठुरकर रह जायेगा। सहस्राब्दि की गिनती से हम कुछ हासिल नहीं कर पायेंगे। उसके सूखे, पत्ते, पेड़ को झिंझोड़कर गिराने होंगे। इस दौर में संपादक का यत्न सही यत्न है। उसे प्रशंसनीय साहित्यिक यज्ञ आहुति कह सकते हैं।

इस सशक्त पुस्तक "धर्म की बेड़ियाँ खोल रही है औरत" के आकलन के बाद नीलम जी से ऐसी ही अन्य सशक्त, सक्षम पुस्तक की चाह है।

302, कॉर्नर रेज़ीडेन्सी, निकट-बालाजी हॉस्पिटल
सुभानपुरा, वडोदरा-390023

धर्म की बेड़ियाँ खोल रही औरत, संपादक नीलम कुलश्रेष्ठ, नवचेतन प्रकाशन, जी-5, गली नं. 16, राजपुरी, उत्तमनगर, दिल्ली-110059, मूल्य : 200 रुपये

■

ग्राम्य जीवन का सांस्कृतिक जयघोष करते नवगीत

आचार्य भगवत दुबे

श्री रामकिशोर दाहिया के सद्यः प्रकाशित एक सौ बान्नवे पृष्ठीय नवगीत संग्रह 'अल्पना अँगार पर' ने काव्यजगत में अपनी दमदार उपस्थिति दर्ज़ करायी है। कटनी जिले के विकास की जीवनधारा महानदी एवं इसकी सहायक झिरगिरी नदी के आस-पास बसे सैकड़ों गाँवों में बोली जाने वाली, बघेलखंड की आँचलिक बोली में लिखे इस संग्रह के नवगीतों में ग्राम्यजीवन का सांस्कृतिक जयघोष है। यह नवगीत संग्रह हमें संथाली लोकभूमि पर लिखे ठाकुर प्रसाद सिंह के नवगीत संग्रह 'वंशी और मादल ' की याद दिलाता है।

नवगीत का स्वरूप 1958 में संग्रह के रूप में सर्वप्रथम राजेन्द्र प्रसाद सिंह द्वारा संपादित "गीतांगिनी" के माध्यम से सामने आया। यद्यपि 1956 में इलाहाबाद में आयोजित परिमल की एक गोष्ठी में डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने नवगीत की चर्चा विस्तार से की थीं। सन् 1964 में अलवर (राजस्थान) से प्रकाशित तथा ओम प्रभाकर एवं भगीरथ भार्गव द्वारा संपादित "कविता 64" नवगीत के पहले प्रामाणिक समवेत संकलन के रूप में चर्चित हुआ। उसके बाद 1969 में श्री चन्द्रदेव सिंह द्वारा संपादित 'पाँच जोड़ बाँसुरी में' नवगीत अपनी पूरी सजधज के साथ उपस्थित हुआ। तब से अब तक नवगीतकारों के शताधिक नवगीत संग्रह प्रकाशित हो चुके चुके हैं।

समीक्ष्य गीत संग्रह की रचनाएँ दो खंडों में विभक्त हैं। प्रथम खंड 'महानदी उतरी' तथा द्वितीय खंड 'पाले पेट, कुल्हाड़ी ' शीर्षक से इन गीतों को क्रमबद्ध किया गया है। प्रथम खंड में महानदी एवं उसकी सहायक झिरगिरी के आस-पास के गाँवों के खेतिहर श्रमिकों, वनवासियों एवं छोटे किसानों की ग़रीबी और भुखमरी से जूझते बदहाल लोगों की सांत्रासिक पीड़ाओं एवं समस्याओं का यथार्थवादी चित्र है। दाहिया जी के इन गीतों में लोकचेतना अपनी मौलिकता के साथ मुखरित है।

इस समीक्ष्य कृति के गीतों में, फूल-कछारों पर सूरज की किरणें बिखरकर नये सबेरे की दस्तक देती हैं। धान, बाज़रा, ज्वार की निपसतीं फसलें, चून-तमाखू खाकर हल चलाता हरखू है। मथनी से दधिविडोलन कर नवनीत का लौंदा लोकती प्रसन्नचित्त भौजी है। मवेशी ढीलकर सार का कीच-काँदा साफ़ कर पिछवाड़े कंडे थापती माता हैं। 'कुहँकी पड़ी मकाई' नामक गीत में बरसात के चारों महीनों के परिवर्तन के प्रभावकारी चित्र हैं। महानदी जब खेतों के मध्य उतरती है तो खेती हरी फरिया पहन लेती है। झिरगिरी के माध्यम से जमीन के भीतर घटते जल स्तर एवं पर्यावरण विनाश के संकेत देखिये... नदिया के वजूद को/लील रही रेत है। धारा की जमीन पर/लोट रहा प्रेत है"।

समीक्ष्य कृति के दूसरे खंड 'पाले पेट, कुल्हाड़ी में आदमी के दुहरे चरित्र, भोली सूरत के पीछे छिपे घिनौने रूप एवं यातनाओं के पाँवों तले दबी कराहती दूब है, खाते-बही पर लगे अनपढ़ अँगूठे, कर्ज़ से लदी ज़िंदगी, बालश्रम कानून को धता बताती बँधुआ हरवाही, दूध से धुले तथाकथित संभ्रांत लोगों के भीतर भरी कालिख, माल गुजारों की बँधुआ मजदूरी और आज सविधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मिलने वाली नौकरी का यथार्थ वादी साम्य देखिये... "रोजगार के / वे मन्सूबे/बल अजमाये/व्यवसायों में/ बने संविदा/जीवन ऊबे/अंतर कितना/ आज नौकरी/मालगुजारी के बँधुआ में"।

बैशाखू की मड़ैया आज भी जस की तस है। मजदूरों के शोषण से, धन्नासेठों की तौंदे चौड़ी हो रही है। बुधिया के पास आज भी पूरा तन ढँकने को कपड़े नहीं हैं। उसे नून-तेल भी जुटा पाना दूभर है। आज़ादी के पूर्व के औपन्यासिक चरित्रों के मिथक दाहिया जी के गीतों को प्रासंगिकता प्रदान करते हैं। वनवासी जहाँ आज भी कुल्हाड़ी के बूते वनसंपदा से अपनी गुज़र-बसर कर रहे है वहाँ भी अर्थपिशाचों के खूनी पंजे एवं बलशाली हिंसक जबड़े अपना शोषणकारी आतंक फैलाने लगे हैं। तस्करों, चोरों एवं जमाखोरों की धनलिप्सा देश को ही बेच खाने पर उतारू है।

समीक्ष्य कृति में उपरोक्त सारे तथ्य ग्राम्य बोली में बड़ी बेबाकी के साथ उजागर किये गये हैं। कृति के सारे गीत समय के यथार्थ का काला चिट्ठा प्रस्तुत करते हैं। ग्राम्य जीवन एवं लोक संस्कृति के ऐसे चित्र अन्यत्र दुर्लभ हैं, किन्तु इन गीतों का एक दोष यह भी है कि ये क्षेत्रीयता में सिमटकर रहगये हैं। क्षेत्रीय बोली की इतनी भरमार है कि देश व्यापी व्यापक पठनीयता एवं ग्राह्यता संदिग्ध सी हो गई है। उदाहरणार्थ-निगडौरे, खुम्हरी, च्यांड़, भेलैंया, मैर, छरता, दुमचर्रे, दबाहिल, नँधेगा, अधौने, बिंगुए, उपरवार जैसे और भी क्षेत्रीय बोली के अनेक दुरूह शब्द कथ्य को बोझिल बनाते हैं। यद्यपि दाहिया जी ने इन शब्दों के अर्थ गीत के अंत में दे दिये हैं तथापि दिमाग पर जोर दिये बिना पाठक भावार्थ समझने में अटकता ही रहेगा। विशुद्ध बघेली की गँवई बोली में उर्दू का वजूद जैसा शब्द भी खटकता है।

इस कृति की मुख्य विशेषता यह भी है कि सभी गीत समतुकांत एवं कसे हुये छंदों में हैं। इन गीतों की प्रतीकात्मक बिम्ब योजना बेजोड़ है। अनुभूतिपरक बिंब नयनाभिराम हैं। यथा-ओढ़े साल अलमानें फसलें। झूम रही फिर हरियर खेती/ फरिया पहिन हरी। कातते किनारे है/पानी का सूत रे। उपज अनूठी सिरजन सुतरी/ चित ढेरा पर कात रही हो—जैसी उत्प्रेक्षा कवि की आलंकारिक संज्ञानता की द्योतक है। झाँझ मजीरे पर्ण बने हैं/ टिमकी छत-छानी—जैसी अनूठी उपमा इन गीतों को जीवन्त बनाते हैं।

नवगीतकारों की लंबी कतार में श्री रामकिशोर दाहिया का ऊँचा कद अलग से दिखाई देता है। लोकचेतना के इस समर्थ संवाहक को मेरा सारस्वत आर्शीवाद।

संपादक-दीपशिखा (त्रैमासिक)
पिसनहारी-मढ़िया के पास जबलपुर-482003 (म.प्र.)

अल्पना अँगार पर, रामकिशोर दाहिया (कटनी, म. प्र.), उद्भावना, जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110032 मूल्य : 100/-

■

यक़ीनन : आम आदमी की आवाज़

डॉ. हरीश अरोड़ा

भारत भूषण आर्य का यह पहला ग़ज़ल संग्रह 'यक़ीनन' वास्तव में आम आदमी की आवाज़ को अपनी पूरी शक्ति के साथ अभिव्यक्ति देता है। इस ग़ज़ल संग्रह में शायर ने यहाँ वर्तमान समाज की मूल्यहीनता पर प्रकाश डला है वहीं वह इसके कारण आम-आदमी के संघर्षपूर्ण जीवन की त्रासद स्थितियों को अभिव्यक्ति देते हुए उसे संघर्ष की प्रेरणा भी देता है।

भारत भूषण आर्य ग़ज़ल की किसी परंपरा से बँधे हुए शायर नहीं हैं। बदलते हुए माहौल और अपनी सोच के अनुरूप उनकी ग़ज़लों में मोहब्बत की कशिश भी है और कसक भी; माहौल का तनाव भी है और उससे बाहर निकलने का संघर्षपूर्ण जज़्बा भी। यह शायर की ख़ूबी ही है कि वे ग़ज़ल के पारंपरिक अंदाज़ में जितनी मासूमियत से अपनी बात कह जाते हैं वहीं अपनी तहजीब को बचाने के लिए इसकी बुनियाद को खोखला करने वालों पर तल्ख टिप्पणियाँ करने से भी नहीं चूकते।

आर्य की ग़ज़लों में जहाँ सामाजिक विसंगतियों की सच्चाई अपनी पूरी शक्ति के साथ उभरती है वहीं कहीं-न-कहीं उस विसंगतिबोध से घिरे आम-आदमी के जीवन का सच भी पूर्णता के साथ दिखाई देता है। खास बात यह है कि शायर भारत भूषण आर्य स्वयं अपने माध्यम से ही उस आम-आदमी की ज़िंदगी की सच्चाई से रू-ब-रू होते हैं और सभी को उससे साक्षात्कार भी कराते हैं। वर्तमान परिस्थितियों के कारण समाज का सामान्य व्यक्ति जिन त्रासदियों के बीच भयभीत है वहीं वह अविश्वास के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरातल पर अपनी ही सच्चाई से डरने लगा है। 'यक़ीनन' का पहला ही शेर आम-आदमी को इस सच का सामना कराता है-

खुद से कितना डर गया हूँ/जब से मैं खुद से मिला हूँ।

लेकिन यह भय शायर का खुद का भय नहीं है, बल्कि समाज पर हावी होती दानवी शक्तियों का भय है जो हर इन्सान के भीतर दिखायी देता है। इसीलिए शायर को इस भय की छाया हर ओर दिखायी देती है—

मतपूछो क्या मंज़र देखा/ सूरज को शब के घर देखा।
मौसम कितना बदला-बदला/घर-घर में बैठा डर देखा।

समाज इस सच को जानकर भी उससे लड़ने की बजाए उससे भागना चाहता है लेकिन शायर को यह शायद पसंद नहीं। इसीलिए वह समाज जिससे भाग रहा है वह समाज की अपनी ही कमजोरी का परिणाम है—

तोड़ने से आइना कब मिट सकी सच्चाईयाँ/जख़्म मेरे हाथ के मेरा पता देने लगे।

शायर को इस बात का दर्द है कि जिस परंपरा ने वर्तमान और भविष्य की नींव रखी आज समाज उसी से भागना चाहता है। तभी तो वह चीत्कार कर कह उठता है—

कहाँ चश्मा, कहाँ हुक्का, कहाँ अम्मा की गठरी वो
भला इस दौर में कोई इन्हें रखता-रखाता है।

यह 'अम्मा' परंपरा का ही प्रतीक है और उसके सभी संसाधन सामाजिक-मूल्य। सामाजिक-मूल्यों की वास्तविकता पूरी तरह से परिवार नामक संस्था पर ही टिकी रहती है लेकिन संयुक्त परिवार में विघटन का परिणाम आज समाज के विघटन के रूप में दिखाई दे रहा है। संबंधों में टूटन समाज में बिखराव की स्थिति को जन्म दे सकती है—

बिखर जाता है घर 'भूषण' यक़ीनन/अगर बुनियाद हिस्सा माँगती है।

हर तरफ ये हादसों का दौर कैसा है/ रात में सोते हुए मैं खुद से डर जाऊँ।

लेकिन भारत भूषण आर्य अपनी पूरी बेबाकी के साथ नई जीवन धारा की चुनौतियाँ का सामना करने के लिए आतुर हैं। यक़ीनन इस अराजकता और असंगत स्थितियों से संघर्ष का माद्दा शायर भारत भूषण आर्य की शायरी में गहरे तक मौजूद है।

हश्र अपना जानते थे आँधियों के सामने
हम दिये फिर भी उन्हें अपना पता देने लगे।

शायर जानता है कि विपरीत परिस्थितियों में ही इन्सान की परीक्षा होती है। समाज की दुर्दमनीय परिस्थितियों ने हमेशा समाज में क्रांतिधर्मी चेतना को जन्म दिया है।

परकटों का हौसला/ एक दिन उड़कर रहा
थी बग़ावत खून में/वो कहाँ बनकर रहा।

यह हौसला ही इंसान को अपने लक्ष्य तक पहुँचने की शक्ति देता है। इसीलिए वह स्वयं अपने शायर से ही कह देता है कि —

गीत लिक्खो या कहो कोई रूबाई तुम
आग की इनमें कहानी छोड़कर जाना।

यह आग कहीं-न-कहीं इन्सान के भीतर एक ऐसी ज़िद को पैदा कर देता है कि वह अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व के लिए विजय प्राप्त होने तक संघर्षशील रहता है—

आँधियों ! कब तक बुझाओगी मुझे
क्या दिये की ज़िद का अंदाज़ा नहीं।

यक़ीनन यह मुक्तक ज़िंदगी की वास्तविक शायरी है। इसमें जहाँ महानगरीय जीवन का संत्रास बोध स्पष्ट अभिव्यक्त हो रहा है तो वहीं वह समय निकालकर प्रेम के अनछुऐ पलों के एहसास को भी जी लेता है।

ज़िंदगी में बस एक यही काम कर जाऊँ
प्यास के होठों पे शबनम सा बिखर जाऊँ। (1)
धूप कहती है रंग क्या है/तू बहारों का पता है।
धूप उतर पर आ गई है/ नाम जब तेरा लिया है। (2)
ग़ज़ल की शाम हो जाए/तुम्हारे नाम हो जाए
नज़र से तू जिसे छू ले/ वहीं ख़ैयाम हो जाए। (3)

बीच-बीच में प्रेम की अनुभूति के ये क्षण शायर को जीवंतता प्रदान करते हैं। इन्हीं प्रेमिल सपनों से गुजरकर ज़िंदगी की कटु-सच्चाईयों से संघर्ष कर पाने में शायर समर्थ होता है।

संवेदना और बुनावट के स्तर पर देखा जाए तो ये 'यक़ीनन' की ग़ज़लें आम साधारण ग़ज़लें है। इनमें ज़िंदगी का हर रंग शामिल है जिसे आम इन्सान अपनी ज़िंदगी के किसी-न-किसी पन्ने पर जी लेता है। चंद शब्दों को छोड़ दिया जाए तो ये ग़ज़लें की भाषा आम-बोलचाल की भाषा के निकट है। निश्चित रूप शायर समय की नब्ज़ पर हाथ रखकर ही अपनी भावनाओं संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देकर समाज के अधिक निकट पहुँच सकता है। विशेषणों के अभिनव प्रयोगों ने भी ग़ज़लों को अधिक प्रभावशाली और संप्रेषणीय बना दिया है।

भारत भूषण आर्य की ग़ज़लें मुख्य रूप से जन-जीवन संघर्ष को मुखरता प्रदान करती हैं और दुष्यंत की परंपरा को बढ़ाती हैं। एक ही ग़ज़ल में अनेक शेड्स उनकी ग़ज़लों को वजनी बनाने में सहायक होते हैं।

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सां.), दिल्ली विश्व विद्यालय, नेहरू नगर, नई दिल्ली-65

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखांकन की दुनिया में भाव का पुट

राज्यवर्द्धन

'सदीनामा' विशेषांक रेखांकन विशेषांक है।

इसमें 16 कलाकारों की लगभग 50 रेखांकनों को प्रकाशित किया गया है। रेखांकन आज स्वतंत्र विधा के रूप में समादृत है। बिना रेखांकन के आज साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं की कल्पना नहीं की जा सकती। हंस, नया ज्ञानोदय, वागर्थ, वसुधा, अक्षर पर्व, वर्तमान साहित्य समेत अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं में साहित्यिक कृतियों के साथ-साथ रेखांकनों को भी यथेष्ट स्थान दिया जाता है। यह अलग बात है कि रेखांकन करने वाले को लेखकों व साहित्यकारों की तरह लोग नहीं जानते। जो चर्चित कलाकार हैं वे भी रेखांकन करते हैं। परंतु पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन के लिए नहीं के बराबर देते हैं, क्योंकि उनकी कृतियों की कीमत ज्यादा होती है। पत्र-पत्रिकाओं में रेखांकन करने वाले बहुत कम ही कलाकार प्रशिक्षित होते हैं।

सदीनामा में बासु कुमार (अंडमान) के चार रेखांकन प्रकाशित हैं। वे लयात्मक रेखाओं द्वारा बने रेखांकन के अलावा यथार्थवादी शैली में भी रेखाचित्र बनाते हैं। राघवेन्द्र तिवारी (भोपाल) के रेखांकन स्त्री पर केंद्रित हैं। अपुष्ट रेखाओं द्वारा वे महिला समूह को रचते हैं तथा आधी दुनिया के अंतर्द्वन्द्व को भी रेखांकित करते हैं। प्रभात (कोलकाता) कवि व चित्रकार हैं। संभवतः छद्म नाम से रेखांकन करते हैं परंतु चित्रित विषय-वस्तु संप्रेषणीय है। पंकज दीक्षित (अशोकनगर, भोपाल) का प्रकाशित लैंडस्केप-रेखांकन आकर्षण है। वक्र रेखाओं से बनी आकृतियाँ प्रभावशाली हैं। राजेन्द्र परदेशी (लखनऊ) के रेखांकन में धनबाद का प्रभाव है। परदेशी लेखक व चित्रकार भी हैं। ओमप्रकाश कादयान (हिसार, हरियाणा) के रेखांकन में रेखाओं की लय देखते ही बनती है। वक्र व सरल रेखाओं से बनी आकृतियाँ भी सुंदर प्रतीत होती हैं। सुलोचना सारस्वत (कोलकाता) मूल रूप से चित्रकार हैं। उन्होंने वक्र रेखाओं द्वारा नारी के संसार को सृजित किया है। विवेक कुमार (झालावाड़, राजस्थान) लेखन के साथ-साथ रेखांकन भी करते हैं। मोटी रेखाओं द्वारा सृजित रेखांकन अपेक्षित प्रभाव नहीं छोड़ पाती है। चर्चित साहित्यकार सिद्धेश्वर (पटना) भी रेखांकन करते हैं। उनके रेखांकन में यथार्थ व अभिव्यंजना दोनों है। विनोद कुमार राज (चतरा, झारखंड) के रेखांकन अत्यंत भावपूर्ण है। दिनेश (आरा) के रेखांकन में अमूर्तता का भाव है जबकि प्रवीण श्रीवास्तव (मऊ) अपने रेखांकन में रेखा का गतिशील उपयोग करते हैं। नंद किशोर (कोलकाता) के मानव चेहरे रेखांकन के मुख्य विषय हैं लेकिन ये पशु-पक्षियों को भी रेखांकित करते हैं। पीयूष पारीक (जयपुर) ने कमलेश्वर के व्यक्ति-चित्र बनाए हैं। संजीवनी (देवास, प0प्र0) कवियित्री के साथ-साथ रेखांकनकार भी हैं। आशीष मारू मुखौटों को चित्रित करते हैं। दरअसल उनके मुखौटों को रेखांकन नहीं कहा जा सकता है। सदीनामा के इस अंक का संयोजन नंद किशोर व सुलोचना सारस्वत ने किया है और इसे आधुनिक चित्रकला के प्रणेता राजा रवि वर्मा को समर्पित किया है। इस अंक में राजा रवि वर्मा पर सुलोचना सारस्वत का लेख भी प्रकाशित है। 'रेखांकन : जीवन रहस्य' शीर्षक से विवेक कुमार मिश्र का लेख भी है।

संपादक (जितेन्द्र जितांशु) ने अपने संपादकीय में लिखा है कि वर्षों से हसरत थी कि रेखाओं की रहस्यमयी व पारंपरिक दुनिया पर एक विशेषांक निकाला जाए। वर्षों की हसरत के बाद भी सदीनामा का यह अंक कुछ विशेष नहीं बन पाया। अच्छा होता कि इसमें रेखांकन के इतिहास को समेटते हुए मौजूदा दौर के रेखांकन करने वाले कलाकारों का विस्तृत ब्यौरा भी दिया जाता। रेखांकन, चित्रकला से भी प्राचीन विधा है। मानव सभ्यता के विकास के क्रम में चित्रकला विकसित हुई परंतु रेखांकन प्रगैतिहासिक काल (50,000-10,000 ई0पू0) से ही स्पेन, फ्रांस, दक्षिण रोडेशिया, पेरु, अलास्का, लौसेक्स व भारत आदि देशों के गुफाओं में विद्यमान है।

आधुनिक काल में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने रेखांकन से भारतीय कला को समृद्ध किया। भाऊ समर्थ की चर्चा के बिना तो रेखांकन का इतिहास लिखा ही नहीं जा सकता। लघु पत्रिकाओं को अपने रेखांकन से वे सदा प्रोत्साहन दिया करते थे।

राज्यवर्द्धन (कला-समीक्षक), 2-एल0 बेडियाडांगा फर्स्ट लेन, कोलकाता-39

'सदीनामा' पत्रिका का ताजा विशेषांक (जनवरी 2009) रेखांकन विशेषांक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतोष चौबे के दो कविता संग्रह लोकार्पित (रंगमंच पर रौशन हुई कविताएँ)

भोपाल। नव उदारवादी संस्कृति के इस दौर में जब कविता के हाशिए पर चले जाने का भ्रम फैल रहा है, ऐसे में संतोष चौबे की कविता जीवन के जटिल प्रश्नों के सहज उत्तर खोजने का जतन करती है। विचारधारा के सीमित दायरे से निकलकर वे इस संसार को समग्रता में देखने तथा जीवन के प्रति अपार प्रेम और उम्मीद का कविता कर्म करते दिखाई देते हैं।

इस आशय के उद्‌गार भोपाल स्थित बहुकला केन्द्र भारत भवन के अंतरंग सभागार में प्रसिद्ध कवि श्री संतोष चौबे के दो कविता संग्रहों 'कोना धरती का' तथा 'इस अ-कवि समय में' का लोकार्पण करते हुए आलोचकों ने व्यक्त किए। वनमाली सृजन पीठ द्वारा 'सरोकार' और 'पहले-पहल' की साझेदारी में हुआ यह समारोह कविता कृतियों के बहाने एक सार्थक साहित्यिक विमर्श और सृजन-संवाद साबित हुआ। मुख्य अतिथि के रूप में राजस्थान के वरिष्ठ आलोचक श्री सुरेश पंडित उपस्थित थे। अध्यक्षता ख्यातनाम कवि-नाटककार श्री राजेश जोशी ने की। अन्य वक्ताओं मनोहर वर्मा, रमेश दवे, रामप्रकाश त्रिपाठी तथा अरुणेश नीरन ने श्री चौबे की लोकार्पित पुस्तकों पर अपने समीक्षात्मक वक्तव्य दिए। इस मौके पर श्री चौबे ने संग्रह की कविताओं 'जीवन वृत्त', 'अम्मा का रेडियो', 'भूत बंगला' तथा 'इस अ-कवि समय में' का पाठ करते हुए इन रचनाओं की पीठिका पर प्रकाश डाला। समरोह का संचालन श्री विनय उपाध्याय तथा श्री बलराम गुमास्ता ने किया। श्री मुकेश वर्मा, महेन्द्र गगन, रेखा कस्तवार आदि ने अतिथियों का स्वागत किया।

कविता के पाठ की परंपरा हालाँकि नई बात नहीं लेकिन जब कविताओं का मिजाज़ जीवन की विविधताओं के मखमली और खुरदरे अहसासों को समेटे हो तो उन्हें मंच पर संवाद तथा अभिनय के ज़रिए प्रकट करने की चुनौती होती है। संजय मेहता ने चयन और मंचन दोनों स्तरों पर सम्प्रेषण की कसौटी पर खरा उतरने की कोशिश की। यह संतोष चौबे की बेशुमार कविताओं का एक चयनित गुलदस्ता था जिससे महकती खुशबुओं में दर्शकों ने जैसे अपने ही भूले-बिसरे या भोगे जा रहे यथार्थ की पड़ताल की। संजय ने काम के क्षण, जूता, गर्वीली माँ, वार्तालाप, प्रेम, दीपक, क्रांतिकारी, बदलेगा समय, बस थोड़ा एकांत सहित उन रचनाओं को उद्‌धृत किया जिनमें भौतिक जीवन की तमाम जद्‌दोजहद से घिरे मनुष्य को अंततः गहरे प्रेम, विश्वास और विजय की राह दिखायी देती है। मंचन से पूर्व कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने कविता और रंगमंच की रचनात्मक नातेदारी पर वक्तव्य दिया। कवि श्री चौबे ने संजय मेहता का स्वागत करते हुए इस प्रयोग को अपने लिए एक अनोखी उपलब्धि बताया। वरिष्ठ आलोचक प्रो0 कमला प्रसाद, श्री सुरेश पंडित, रंगकर्मी श्री जावेद ज़ैदी और राकेश सेठी ने श्री मेहता को गुलदस्ता भेंट करते हुए साधुवाद दिया।

प्रस्तुति : वनमाली सृजन पीठ द्वारा जारी

वर्तमान साहित्य क्लब, कानपुर

फरवरी के अंक पर वर्तमान साहित्य क्लब कानपुर की गोष्ठी किदवई नगर कन्हैया भवन में संपन्न हुयी। संपादकीय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए आरती त्रिपाठी ने कहा कि 'राठौर' तो प्रतीक बन गया है अनाचार, अनीति और बर्बरता का। ऐसे में आराधना जैसी मिसालें भी जिंदा हैं, जो इस समाज को रहने लायक बनाये हुए हैं। संध्या मिश्रा का कहना था जब तक हम इन गुण्डे, माफ़िया और पुलिस से भयभीत रहेंगे तब तक सम्मान से जीना-मुश्किल है। बीना सिंह ने कहा समाज में चेतना अवश्य है पर भावों को अतिरेक व आत्म विश्वास से ही न्याय मिलता है।

संयोजिका दया दीक्षित ने कहा कि राठौर जैसे अराजक और प्रतिगामी तत्वों से लड़ने के लिए आराधना तथा रुचिका के माता-पिता जैसी दृढ़ संघर्षी प्रवृत्ति और इच्छा शक्ति की दरकार है। अन्यथा संघर्ष अथवा दृढ़ता के अभाव में न जाने कितनी पीड़ित स्त्रियाँ नीलम शुक्ला (कानपुर गैंग रेप की शिकार युवती) जैसी शिकार होती रहेंगी। फादर कामिल बुल्के को याद करते हुए आरती त्रिपाठी का कहना था कि फादर बुल्के के व्यक्तित्व में मानवीय करुणा की दिव्य चमक थी। सदस्यों द्वारा सभी कहानियाँ सराही गयीं। विशेष तौर पर 'नाटक के बाद' तथा 'गोष्ठी'। संध्या मिश्रा का कहना था कि सेराज खान ने जिस तरह किशोरी लाल के चरित्र को गढ़ा यह उनकी संवेदनशीलता का प्रतीक है। अस्मिता को बचाने के लिए मस्जिद या मंदिर को लोग ध्वस्त कर डालते हैं पर अपने ही अस्तित्व को नहीं बचा पाते। 'समयांतर' कहानी पर चर्चा करते हुए बीना सिंह ने कहा यह कहानी बदलते समय की दस्तक है जहाँ जाति-बिरादरी के झूठे आडंबरों का बहिष्कार हुआ है। संयोजिका दया दीक्षित ने कहा कि सारी कहानियाँ अपने मैसेज को देने में सफल रही हैं और तन्त्रियों को खोलने वाली है। 'नाटक के बाद', 'घनी होती झाड़ियाँ', 'सुख', 'गोष्ठी' तथा 'समयांतर' संघर्षों की मार्मिक कथायें हैं।

रामगोपाल भावुक के लेख पर संध्या मिश्रा का कहना था कि भवभूति की क्रांतिकारी विचारधाराओं को प्रतिबिंबित करता लेख उनकी रचनाओं को पुनः पढ़ने पर विवश कर रहा है। डा0 कुसुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्तल के लेख पर विचार व्यक्त करते हुये आरती त्रिपाठी का कहना था कि प्रथम दृष्टि में लगने वाले अप्राकृतिक, अनैतिक एवं व्यभिचारी संबंध शायद उतने भी अनैतिक नहीं हैं, न ही ये विदेशी संस्कृति का हिस्सा है'। कोणार्क के मंदिरों की पुरातत्व कला इस बात की साक्षी है कि पूर्व में भी भारत से ऐसे संबंध रहे हैं। इसी संदर्भ में बीना सिंह का कहना था कि समलैंगिकता को मीडिया ने सकारात्मक सोच का मुद्दा बनाया है जो सामाजिक बदलाव का सूचक है। डा0 दया दीक्षित ने कहा कि हमारा शासन और प्रशासन पूर्णतः लोक तांत्रिक मूल्यों में विश्वास रखने वाला है, जो व्यक्ति को मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए विधि-विधान तय करता है और यही प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था को मजबूत आधार प्रदान करने वाली खासियत है।

दृष्टिकोण स्तंभ के संदर्भ में संध्या मिश्रा का कहना था कि दामोदर दत्त दीक्षित जी ने जिन बिन्दुओं को उठाया है, हो सकता है वह सत्य हों किंतु साहित्य-समाज में इस तरह के वाक्युद्ध तो शुरू से चले आ रहे हैं। इन सब बातों से आखिर सिद्ध क्या होता है।

संयोजिका दया दीक्षित का वक्तव्य था कि कृतित्व की चर्चा पाठकों के लिए लाभदायक होती है। सकारात्मक पक्षों को भी देखा जाना चाहिए था। दया दीक्षित ने कहा कि कविताएँ एवं ग़ज़लें अच्छी है। राम मेश्राम को उनके प्रखर तेवरों व खरी-खरी के लिए बहुत-बहुत बधाई। राम मेश्राम के ये दिनकराना तेवर ऐसे ही रहें। गोष्ठी के अंत में सभी सदस्यों ने डा0 रामेश्वर वर्मा को उनके कुशल चित्रांकन के लिए बहुत-बहुत बधाइयाँ दीं।

प्रस्तुति : बीना सिंह, कानपुर

विश्वम्भर नाथ चतुर्वेदी 'शास्त्री' स्मृति समारोह समिति

मथुरा-हिन्दी व संस्कृत के यशस्वी विद्वान विश्वम्भर नाथ चतुर्वेदी 'शास्त्री' की स्मृति में गत 8 वर्षों से निरंतर जारी स्मृति-समारोह में "यह दौर और कविता" विषय पर परिचर्चा, जनकवि महेन्द्र नेह के कविता संग्रह 'थिरक उठेगी धरती' का लोकार्पण, साहित्यिक अंताक्षरी की प्रस्तुतियाँ तथा कविता पोस्टर प्रदर्शनी का भव्य आयोजन संपन्न हुआ। का0 धर्मेन्द्र स्मृति सभागार में आयोजित साहित्यिक समारोह में साहित्यकारों के साथ-साथ बड़ी संख्या में ब्रज-क्षेत्र के प्रमुख रचनाकार, बुद्धिजीवी एवं सामाजिक कार्यकर्ता उपस्थित हुए।

समारोह के मुख्य अतिथि सुप्रसिद्ध समीक्षक डा0 जीवन सिंह ने अपने उद्बोधन में कहा कि वर्तमान दौर में समाज की उत्पादक शक्तियों-किसानों, मजदूरों व आम आदमी का जीवित रह पाना कठिन हो गया है। मीडिया नये-नये भ्रमों की सृष्टि करके मानवता के इस संकट को बढ़ा रहा है। जन कवि महेन्द्र नेह के कविता संग्रह 'थिरक उठेगी धरती' का लोकार्पण करते हुए उन्होंने कहा कि ये कविताएँ व्यवस्था की जकड़बंदी के विरुद्ध प्रतिरोध जगाती हैं। सुप्रसिद्ध रंगकर्मी एवं 'अभिव्यक्ति' के संपादक शिवराम ने कहा कि शास्त्री जी के जीवन में जो भाव व मूल्य बोध था, वह उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक सक्रियता की बुनियाद था।

दिल्ली से पधारे वरिष्ठ साहित्यकार 'अलाव' के संपादक राम कुमार 'कृषक' ने परिचर्चा में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि हिन्दी की समकालीन कविता में आधुनिकता के नाम पर जीवन की वास्तविकताओं से पलायन व जन पक्षधरता नष्ट होने की आशंकायें बढ़ रही हैं। दिल्ली के युवा कवि रमेश प्रजापति ने 'थिरक उठेगी धरती' में शामिल कविताओं को वर्तमान दौर में प्रकृति समाज और संस्कृति की धड़कनों को व्यक्त करने वाली क्रांति-धर्मी कविताएँ बताया। कार्यक्रम का संचालन करते हुए शिवदत्त चतुर्वेदी ने कहा कि शास्त्री जी की स्मृति में आयोजित यह समारोह नगर की मूल्यवान परंपरा और प्रगतिशील जनवादी संस्कृति का साझा अभियान बन गया है। कवि महेन्द्र नेह ने अपने नये काव्य-संग्रह 'थिरक उठेगी धरती' से प्रतिनिधि रचनाओं का पाठ करते हुए कहा कि मेरी कविताऐं यदि इस धरती और लोक की व्यथा और इसकी गौरवशाली स्वातंत्र्य चेतना की अभिव्यक्ति बन पाती हैं तो मैं समझूँगा कि मैं इस माटी व समाज के प्रति अपने ऋण और दायित्व को चुका रहा हूँ। समारोह की अध्यक्षता कर रहे साहित्यकार डा0 अनिल गहलौत ने कहा कि महेन्द्र नेह की कविताएँ इस दौर में धन की लिप्सा और उसके प्रभुत्व को चुनौती देने वाली प्रेरणादायक कविताएँ हैं।

समारोह में कानपुर से पधारे परेश चतुर्वेदी एवं आस्था चतुर्वेदी ने महेन्द्र नेह की कविताओं की कलात्मक प्रस्तुति की। उपेन्द्र नाथ चतुर्वेदी, विपिन स्वामी एवं पं0 रूप किशोर शर्मा ने साहित्यिक अंताक्षरी के युग को जीवित करते हुए श्रेष्ठ कविताओं की सस्वर प्रस्तुति से श्रोताओं को रोमांचित कर दिया। राजस्थान के प्रसिद्ध चित्रकार रवि कुमार द्वारा बनाये गये कविता पोस्टरों ने कार्यक्रम स्थल को जन पक्षधर कविता व चित्रकला का आधुनिक तीर्थ बना दिया। अंत में 'वर्तमान साहित्य' के संपादक, जनवादी साहित्यकार डा0 के0पी0 सिंह व जन कवि हरीश भादानी के निधन पर गहरा शोक व्यक्त किया गया एवं उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

प्रस्तुति : उपेन्द्र नाथ चतुर्वेदी, सचिव

पुस्तक 'आधुनिक भारत में पिछड़ा वर्ग' का लोकार्पण

विगत दिनों साहित्य अकादमी सभागार नई दिल्ली में रमणिका फाउंडेशन तथा शिल्पायन के तत्वावधान में संजीव खुदशाह द्वारा लिखित पुस्तक 'आधुनिक भारत में पिछड़ा वर्ग' का लोकार्पण समारोह आयोजित किया गया। जिसमें मुख्य अतिथि 'हंस' पत्रिका के संपादक श्री राजेन्द्र यादव थे।

श्री रमेश प्रजापति द्वारा पुस्तक पर समीक्षात्मक आलेख का पाठ किया गया जिसमें उन्होंने बताया कि वैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय आधार पर संजीव खुदशाह की पिछड़ा वर्ग पर पहली किताब है जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सराहनीय है। वरिष्ठ आलोचक एवं समाज सेवी श्री मस्तराम कपूर ने कहा पिछड़े वर्ग की समस्या पर चर्चा करने से पूर्व पिछड़ा वर्ग को परिभाषित करना आवश्यक है। विशिष्ट अतिथि श्री मैनेजर पांडेय ने अपने वक्तव्य में कहा जातिवाद देश के अतीत से भी जुड़ा है और देश के भविष्य से भी।

मुख्य अतिथि श्री राजेन्द्र यादव ने अपने वक्तव्य में कहा कि चार-पाँच ऐसी जातियाँ हैं जो न दलित है, न पिछड़ी हैं, जिन्हें त्रिशंकु जातियाँ भी कह सकते हैं। इसकी पड़ताल होनी चाहिए जो इस पुस्तक में "विवादित जाति" शीर्षक में की गई हैं। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ कवियत्री एवं पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी' की संपादिका सुश्री रमणिका गुप्ता ने कहा कि ये सुखद है कि 'आधुनिक भारत के पिछड़े वर्ग' की जांच पड़ताल लेखक संजीव खुदशाह ने एक अलग दृष्टिकोण से की है। विडंबना ये है कि हमारा पढ़ा-लिखा समाज भी आज तक अपनी जाति नहीं छोड़ पाया है, तो हम अनपढ़ समाज से इसकी उम्मीद कैसे कर सकते हैं जो सदियों से जाति की गुलामी को ढोता आ रहा है।

अंत में पुस्तक के लेखक संजीव खुदशाह ने अपने लेखकीय वक्तव्य में कहा कि फुले एवं पेरियार पिछड़ा वर्ग के ही थे लेकिन पिछड़ों ने उन्हें न मानकर दलितों ने माना एवं तरक्की की। कार्यक्रम का संचालन रमणिका फाउंडेशन के मीडिया प्रभारी श्री सुधीर सागर द्वारा किया गया।

प्रस्तुति : सुधीर सागर, नई दिल्ली

दलित साहित्य ही समाज का वास्तविक आइना है

साहित्य अकादमी, सभागार, नई दिल्ली में भारतीय दलित अध्ययन संस्थान एवं दलित लेखक संघ के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित कार्यक्रम संपन्न हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रो0 सुखदेव थोरात (चेयरमेन, यू0जी0सी0) एवं प्रो0 एस0एस0नूर (उपाध्यक्ष, साहित्य अकादमी) थे। विशेष अतिथि के रूप में प्रसिद्ध मराठी दलित साहित्यकार व आंदोलनकर्मी लक्ष्मण गायकवाड़ उपस्थित थे।

यह कार्यक्रम तीन सत्रों में विभाजित था। पहले सत्र में भारतीय दलित अध्ययन संस्थान (आई0आई0डी0एस0) द्वारा प्रकाशित हिन्दी वर्किंग पेपर सीरीज़ का विमोचन प्रो0 सुखदेव थोरात एवं प्रो0 एस0एस0 नूर द्वारा किया गया। यह वर्किंग पेपर सीरीज़ दक्षिण एशिया के देशों नेपाल, बांग्लादेश व श्रीलंका में हाशिए पर रहे समुदायों के प्रति हो रहे जातिगत व अन्य प्रकार के भेदभावों के अनुसंधान परक अध्ययन पर आधारित है।

इस अवसर पर प्रो0 थोरात ने अपने वक्तव्य में समाज शास्त्र और दलित साहित्य के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा करते हुए कहा कि समाज शास्त्र व दलित साहित्य दोनों का उद्देश्य समाज की वास्तविक स्थिति को उजागर करना है।

प्रो0 एस0एस0 नूर ने समाज में व्याप्त विषमताओं के लिए ब्राह्मणवाद को जिम्मेदार बताते हुए कहा कि समाज परिवर्तन के लिए हो रहे आंदोलनों में दलित वैचारिकी को समाहित करना अति आवश्यक है। भारत में केवल दो ही जातियाँ हैं एक ब्राह्मण दूसरी दलित। हमें यह तय करना होगा कि हम किसके पक्ष में खड़े हैं।

भारतीय दलित अध्ययन संस्थान के निदेशक प्रो0 सुरिन्द्र सिंह जोधका ने कहा कि हमारा उद्देश्य बहिष्कृत समाज पर हो रहे भेदभावों का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना है जो आंदोलनकर्मियों के लिए मददगार साबित होगा।

दूसरे सत्र में डा0 सूरज बड़त्या को दलित साहित्य व आंदोलन में उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए महाराष्ट्र की लोक सूर्या मल्टीपर्पज सोसायटी द्वारा वर्ष 2009 का साहित्य सम्मान प्रो0 सुखदेव थोरात, श्री लक्ष्मण गायकवाड़, प्रो0 एस0एस0 नूर एवं डा0 अनिल सूर्या द्वारा प्रदान किया गया। इस अवसर पर डा0 सूरज बड़त्या की नई पुस्तक 'सत्ता संस्कृति और दलित सौन्दर्यशास्त्र' का भी लोकार्पण किया गया।

तीसरे सत्र में कार्यक्रम के विशेष अतिथि प्रसिद्ध मराठी दलित साहित्यकार व आंदोलनकर्मी श्री लक्ष्मण गायकवाड़ ने दलित साहित्य व आंदोलन से जुड़े अपने अनुभव साझा करते हुए दलित आंदोलन की विशेषताओं एवं कमियों पर प्रकाश डाला। अंग्रेज़ों ने भारत की घुमंतु जातियों को आपराधिक जातियों की श्रेणी में रखा था लेकिन आज भी भारतीय सत्ता एवं समाज में इन घुमंतु जातियों के प्रति अपराधिक दृष्टिकोण बना हुआ है, जो बहुत निंदनीय है। उत्तर भारत में दलित आंदोलनकर्मियों व संगठनों को आपस में मतभेदों को मिटाकर संगठित ताकत के साथ दलित वैचारिकी को आत्मसात करके आंदोलन को विकसित करने की दिशा में काम करना होगा।

कार्यक्रम की अध्यक्षता दलित लेखक संघ की अध्यक्ष प्रो0 विमल थोरात ने की। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में सामाजिक विषमताओं के खिलाफ़ हो रहे आंदोलनों पर चर्चा करते हुए कहा कि भारतीय समाज में दलित समुदायों के शोषण का आधार जाति ही रहा है इसलिए दलित आंदोलन का आधार भी जाति ही होगा। समस्या का निदान समस्या की मूल जड़ों को दूर करने से ही होता है। संचालन अरुण गौतम ने किया और धन्यवाद दिलीप कठेरिया द्वारा किया गया।

प्रस्तुति : दिलीप कठेरिया, नई दिल्ली

कथा समय-2010

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा में साहित्य विद्यापीठ की ओर से तीन दिवसीय 'कथा समय' का आयोजन किया गया। 'कथा समय' को तीन महत्वपूर्ण विषयों 'हिन्दी कहानी के दो दशकों की यात्रा', 'हिन्दी उपन्यासों के दो दशकों की यात्रा' तथा 'हिन्दी आलोचना के दो दशकों की यात्रा' पर केन्द्रित किया गया। इस गोष्ठी में देश-विदेश के तमाम प्रतिष्ठित कहानीकार, उपन्यासकार, आलोचक और बुद्धिजीवियों ने भाग लिया। गोष्ठी के प्रथम सत्र का उद्घाटन वरिष्ठ साहित्यकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्री ने किया। सुप्रसिद्ध कथाकार और नाटककार असग़र ने कहा कि आज भी कथा साहित्य अभिव्यक्ति का आधार बना हुआ है। उन्होंने साहित्य में विचारहीनता अपनी चिंता जाहिर की और कहा कि नई रचनाओं से को जो ऊर्जा मिलनी चाहिए, वह नहीं मिल रही है। की अध्यक्षता कुलपति श्री विभूति नारायण राय ने की। साहित्य के आंदोलन विहीन हो जाने की स्थिति पर चिंता करते हुए कहा कि कुछ साहित्यकार हैं, जो हमारी नई को तैयार करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे साहित्य विद्यापीठ के अधिष्ठाता और कथा समय के समन्वयक नूज पालीवाल ने कहा कि कथा समय की परिकल्पना को सामाजिक पक्षधरता के केंद्र में रखकर देखने की को समृद्ध करने के लिये की गई है।

गोष्ठी की अगली कड़ी के रूप में चर्चित कथाकार तेजेन्द्र एस0आर0 हरनोट, महुआ माजी और अमरीक सिंह 'दीप' ने कहानियों के पाठ के माध्यम से श्रोताओं को कहानियों के परिवेश की यात्रा कराई। चर्चित कथाकार संजीव ने अपनी विश्लेषण क्षमता के माध्यम से कहानियों पर सूत्र वाक्यों में राय व्यक्त की। उन्होंने कहा कि आज उन्हीं की चर्चा ज़्यादा है जो किसी न किसी माध्यम से प्रमोट किए जाते हैं, जबकि लोग भी हैं जो अच्छी कहानियाँ लिख रहे हैं लेकिन उनकी नहीं होती।

गोष्ठी के दूसरे दिन 'हिन्दी उपन्यासों के दो दशक की पर आलोचक वीरेन्द्र यादव ने उपन्यास में आए बदलाव उसकी दिशा पर संपूर्णता में अपनी बात की। कहानीकार राग ने अपनी आलोचना की दृष्टि से दो दशक के उपन्यासों बोलते हुए कहा कि आज का गाँव बदल गया है, पहले की अब संबंध नहीं रहे इसलिए साहित्य का स्वरूप बदल रहा प्रो0 गंगा प्रसाद विमल ने उपन्यासों के बदलते शिल्प और की पड़ताल की। चर्चित उपन्यासकार अब्दुल बिस्मिल्लाह कहा कि उपन्यास का स्वरूप बदल गया है। शाम को प्रसिद्ध कार असग़र वज़ाहत के नाटक 'जिस लाहौर नहीं देख्या ओ जन्माई नई' का श्री राम रंग सेंटर नई दिल्ली की टीम द्वारा किया गया। गोष्ठी के अंतिम दिन आलोचना सत्र में आलोचना के दो दशकों की यात्रा' पर बोलते हुए प्रो0 पालीवाल ने कहा कि आलोचक तो पाठक और रचनाकार पुल का काम करता है। आलोचक को जीवनानुभावों का होना चाहिए तभी वह साहित्य के मर्म की सही पहचान सकता है। अब्दुलबिस्मिल्लाह ने कहा कि आज के लेखक लन से विमुख हो गये हैं। आंदोलन से विमुख होने का अर्थ लेखकों से मुक्त होना। आज का समय साहित्यकारों के आत्म लोचन का समय है। अध्यक्षीय वक्तव्य में कुलपति श्रीविभूति राय ने कहा कि प्रेमचंद ने वर्ण व्यवस्था, सूदखोरी, कारी महाजनी सभ्यता जैसी समस्याओं पर लिखा। ये समस्याएँ भी विद्यमान हैं। इन पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। के पहले सत्र का संचालन विशेष कर्त्तव्याधिकारी श्री राकेश ने किया। दूसरे का अहिंसा एवं शांति अध्ययन विद्यापीठ के श्री राकेश मिश्र तथा तीसरे सत्र का संचालन साहित्य विद्यापीठ के व्याख्याता श्री सुनील सुमन तथा चौथे सत्र का संचालन अरुणेश नीरन ने किया।

प्रस्तुति : राम नरेश राम, साहित्य विद्यापीठ

गोष्ठी रपट

'काशी का अस्सी' के माध्यम से 'काशी' ने 'अस्सी' को विस्तृत साहित्यिक फलक पर स्थापित किया। 'काशी का अस्सी' के जीवन्त पात्र प्रत्येक शाम इकट्ठे होते हैं, यहाँ की चाय की एक दुकान में। 1 जनवरी 2010 की शाम भी 'असियाटिक सोसाइटी' के दिग्गज एकत्र थे। मौका था प्रख्यात कथाकार काशीनाथ सिंह के 74वें जन्मदिन का। जन्म की असली तारीख तो अपने काशीनाथ जी को भी नहीं मालूम। पर इससे क्या फर्क पड़ता है। जन्मदिन के बहाने ही साहित्यिक और गैर साहित्यिक लोगों का जमाबड़ा हुआ और बाक़ायदा 'लाउडस्पीकर' खंभे में बाँधकर साहित्य चर्चा शुरू हुई। जाहिर है कि चर्चा के केन्द्र में काशीनाथ सिंह थे।

Gurukul Kangri Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404

अध्यक्षता का जिम्मा डा0 सत्यदेव त्रिपाठी को सौंपा गया। संचालक डा0 आशीष त्रिपाठी ने सबसे पहले शशिभूषण तिवारी को बुलाया जिन्होंने कहा कि बनारस के समाजशास्त्रीय मध्ययन में काशीननाथ जी की पुस्तकें सहायक होंगी। शशि कुमार सिंह ने कहा कि काशीनाथ सिंह की रचनाओं में गाँवों के टूटन का दर्द मुबरित हुआ है। डा0 चन्द्रशेखर सिंह ने अपने संबोधन में कहा कि काशीनाथ जी अपनी भाषा, कहानीपन एवं फक्कड़पन के चलते औरों से अलग हैं।

प्रो0 चौथीराम यादव ने कहा कि काशीनाथ सिंह को कविता की भी पूरी समझ है। 'विपक्ष का कवि : धूमिल' धूमिल को समझने के लिए अनिवार्य दस्तावेज हैं। इनकी भाषा का अनुकरण कठिन है। अस्सी के 'डीह' गया सिंह की वक्तृव्य क्षमता से कौन 'मूरख' अपरिचित होगा। उन्होंने कहा कि काशीनाथ सिंह सदैव वएपन की कोशिश करते हैं। उनकी रचनाओं में ग़ज़ब की ज़िंदादिली है।

अपने उद्बोधन में काशीनाथ सिंह ने कहा कि अस्सी के लोगों का मैं आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे बनाया। प्रशंसकों के प्रेम से नई ऊर्जा मिलती है। अस्सी में परंपरा और आधुनिकता एवं शास्त्र तथा लोक साथ-साथ चलते हैं। अध्यक्षीय उद्बोधन के साथ ही चूड़ामटर एवं मुगदल की मिठाई का पैकेट बँटना शुरू हो गया था। कार्यक्रम में प्रो0 नलिराज पांडेय, डा0 वाचस्पति, अलिन्द उपाध्याय, शैलेन्द्र शुक्ल, रिपुंजय सिंह, राम इकबाल कुशवाहा, नृपेन्द्र सिंह, सुजीत कुमार सिंह एवं रमेश यादव मौजूद थे।

प्रस्तुति : शशि कुमार सिंह, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर0के0 भगत के काव्य संग्रह का लोकार्पण

चण्डीगढ़ : साहित्य संस्था 'मंथन' के सौजन्य से रंधावा ऑडिटोरियम, पंजाब कला भवन, सैक्टर-16, चण्डीगढ़ में कवि आर0के0 भगत के काव्य-संग्रह 'तुमने कहा कुछ मैंने कहा' का लोकार्पण समारोह सुप्रसिद्ध साहित्यकार डा0 रमेश कुंतल मेघ की अध्यक्षता में संपन्न हुआ, जिसमें मुख्य अतिथि के तौर पर श्रीमती उर्मि कृष्ण, कथाकार व संपादक-'शुभ तारिका', अंबाला, विराजमान रहीं। मंच संचालन कवियित्री उर्मिला कौशिक 'सखी' ने किया।

काव्य-संग्रह पर पहला पर्चा पढ़ते सुशील 'हसरत' नरेलवी ने कहा कि 'तुमने कहा कुछ मैंने कहा' का कवि आर0के0 भगत चुनौतियों के उस पार डटे रहने का ज़ज़्बा एवं प्रीत-प्यार से दुनियावी उलझनों व समस्याओं को सुलझाने में यकीन रखता है। दूसरा पर्चा पढ़ते हुए डा0 कैलाश आहलूवालिया ने अपने विचार कुछ यूँ रखे-''तुमने कहा कुछ मैंने कहा'' की कविताएँ एक छलना रहित और साफ़ दिल वाले प्रेमी कवि का भावपूर्ण प्रणय संवाद है। इन कविताओं में सामाजिक चिंतन भी है। मुख्यअतिथि श्रीमती उर्मि कृष्ण ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि 'हित सहित हो वह साहित्य है। भगत जी की कविताएँ सीधी, सरल व आकर्षित करने वाली हैं। अध्यक्षीय टिप्पणी करते हुए सुप्रसिद्ध साहित्यकार डा0 रमेश कुंतल मेघ ने कहा कि 'कवि की मुक्तछन्द में अच्छी पकड़ है। समाज के विभिन्न विषयों को छूती आर0के0 भगत की कविताओं की कैनवास विस्तृत है।

प्रस्तुति : सुशील 'हसरत' नरेलवी, चण्डीगढ़

शचीन्द्र भटनागर की दो काव्य-कृतियों का लोकार्पण संपन्न

महानगर की साहित्यिक संस्थाओं–विप्रा कला साहित्य मंच', परमार्थ, अक्षरा के संयुक्त तत्वावधान में लोकार्पण समारोह संपन्न हुआ जिसमें मुरादाबाद के वरिष्ठ साहित्यकार श्री शचीन्द्र भटनागर की दो काव्य-कृतियों 'ढ़ाई आखर प्रेम के' (गीत संग्रह) तथा 'अखंडित अस्मिता' (मुक्तक संग्रह) का भव्य लोकार्पण हुआ।

कृतियों पर चर्चा एवं विमर्श के दौरान डा0 योगेन्द्रनाथ 'अरुण' ने मुक्तक संग्रह 'अखंडित अस्मिता' के संदर्भ में कहा कि 'शचीन्द्र जी नवीनतम कृति 'अखंडित अस्मिता' इस राष्ट्र की अजेय संस्कृति और अमृत चिंतन को मुखरित करने के लिए की गई उनकी अक्षर साधना तो है ही, साथ ही साथ उन्होंने युगांतरकारी, मानवतावादी और विश्व एकात्म की साधना को काव्य रूप में ढाला है। वरिष्ठ नवगीतकार डा0 माहेश्वर तिवारी ने कहा कि सद्यः प्रकाशित शचीन्द्र जी के गीत संग्रह 'ढाई आखर प्रेम के' गीतों की यात्रा किसी विशेष काल खंड की न होकर गीत की अनवरत यात्रा की पर्याय है। डा0 गिरिराज शरण अग्रवाल ने कहा कि शचीन्द्र जी के गीत परंपरावादी प्रेमगीत के रूप में संग्रहीत किए गए है। डा0 अजय अनुपम ने कहा कि 'अखंडित अस्मिता' का काव्य भारतीय जीवन दर्शन में अंतर्निहित मूल्यों का दिग्दर्शन कराने वाला निर्देश काव्य है। 'वरिष्ठ कवि ब्रजभूषण सिंह गौतम 'अनुराग' ने कहा कि 'शचीन्द्र जी के गीतों में प्रेम सौंदर्य श्रृंगार, प्रकृति एवं समर्पण की वाणी में हिन्दी भाषा का अनुपम श्रृंगार है। डा0 अवनीश सिंह चौहान ने कहा कि शचीन्द्र जी के गीत संग्रह 'ढाई आखर प्रेम के' में जहाँ प्रतिकूलताओं में अडिग रहने की प्रेरणा देने वाले गीत हैं। अम्बरीश गर्ग ने कहा कि शचीन्द्र जी के प्रेम गीतों का यह गुलदस्ता गीत संग्रह के रूप में गीत साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

कार्यक्रम में प्रख्यात संगीतज्ञ बाल सुंदरी तिवारी ने शचीन्द्र के गीत की संगीतमय प्रस्तुति हुई तथा शचीन्द्र जी का एकल काव्यपाठ भी हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता डा0 माहेश्वर तिवारी ने की, तथा संचालन आनंद कुमार 'गौरव' ने किया। आभार अभिव्यक्ति विवेक 'निर्मल', आनंद 'गौरव' तथा योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' ने संयुक्त रूप से प्रस्तुत की।

प्रस्तुति : आनंद गौरव, मुरादाबार

तार-तार परिवार, आओ करें विचार

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के जन्म दिन पर 'सामर्थ्य' पत्रिका जो कानपुर से प्रकाशित हो रही है के तत्वावधान में 'परिवार एवं समाज का संवेदनात्मक विघटन' पर एक काव्य एवं विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। यह गोष्ठी फर्रूखाबाद जिले के गाँव खिनमिनी में आयोजित हुई। साहित्यक गोष्ठी की विशेषता थी कि पहली बार शहरी सभागारों से निकलकर साहित्यिक वर्ग ने गाँव के किसानों, मजदूरों की भीड़ के बीच पहुँचकर अपनी काव्य रचनायें एवं विचार जनभाषा में व्यक्त किये। गोष्ठी के आयोजक सतीश चन्द्र 'सतीश' ने पत्रक छपवाकर क्षेत्रीय ग्रामों में वितरित किये। स्थल पर सामर्थ्य पत्रिका का वैनर लगाकर विषय प्रवेश करवाते हुये गोष्ठी की शुरूआत की तथा एक संक्षिप्त आलेख पढ़ा। संचालन श्याम निर्मोही ने किया। सभा की अध्यक्षता पत्रिका से जुड़े दिनेशचन्द्र अग्निहोत्री ने की, जमुर्रत बेगम, चेतराम चंदनडुरामकृष्ण राजपूत, सतीश चन्द्र 'सतीश', रमेश मिश्र आदि कवियों ने ग्रामीण परिवेश से जुड़ी काव्य रचनायें सुनायीं। डा0 श्याम निर्मोही, डा0 विनोद कुमार गुप्ता सुरेश राजन, योगेन्द्र यादव एवं पत्रिका की स्वामी प्रकाशक डा0 गीता सिंह ने व्यवस्थाजन्य आर्थिक विषमतामूलक नीतियों के कारण ग्राम्य जीवन के साथ ही समस्त श्रमजीवी समाज का और पिछड़े जाना तथा उसकी संस्कृति को तहस नहस करने के विश्लेषणात्मक विचार विस्तारपूर्वक रखे।

प्रस्तुति : सतीश चन्द्र 'सतीशद्ध खिनमिनी, फर्रुखाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास की राह पर सब बढ़ते हैं साथ

मध्यप्रदेश में विकास के नये सफर में समाज का हर वर्ग शामिल है। पं. दीनदयाल उपाध्याय की अवधारणाओं पर आधारित एक व्यवस्था बनी है, जिसमें समाज के सबसे अंतिम व्यक्ति की भी चिंता हो रही है। सामान्य निर्धन वर्ग कल्याण आयोग, इसी प्रक्रिया का हिस्सा है।

मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने **दीनदयाल अंत्योदय योजना, मजदूर सुरक्षा योजना, लाड़ली लक्ष्मी योजना, दीनदयाल अंत्योदय मिशन, दीनदयाल रोजगार योजना,** जैसी योजनाओं में जाति, धर्म, वर्ग के भेद मिटा कर इन्हें गरीबों तक पहुंचाया है। निर्धनों का कल संवारने, शिक्षा और रोजगार की योजनाएं शुरू हुई हैं।

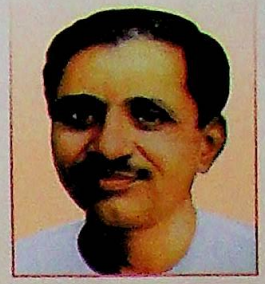

"पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पेड़ से पैसा नहीं लेते। हम तो अपनी ओर से पूंजी लगाते हैं और जानते हैं कि पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगे ही। समाज के हर व्यक्ति का विकास भी इसी प्रकार का विनियोजन है। विकसित व्यक्ति समाज और राज्य के लिए काम करेगा ही।"

पं. दीनदयाल उपाध्याय

व्यक्ति निर्धन परिस्थितियों से होता है, न उसकी क्षमता कम होती है, न इच्छाशक्ति। हम प्रदेश के विकास में हर निर्धन व्यक्ति को जोड़ना चाहते हैं।

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय

राज्य सामान्य निर्धन वर्ग कल्याण आयोग

- **सामान्य निर्धन वर्ग के छात्रों को छात्रवृत्ति** – शासकीय स्कूलों में कक्षा 6वीं, 7वीं और 8वीं में पढ़ रहे सामान्य निर्धन वर्ग के छात्रों को सालाना 200 रुपये तथा छात्राओं को 300 रुपये सालाना की छात्रवृति मिलती है।
- **स्वामी विवेकानंद प्री मेट्रिक छात्रवृत्ति** के रूप में शासकीय स्कूलों में कक्षा 9वीं और 10वीं में पढ़ रहे सामान्य वर्ग के समस्त छात्रों को 300 रुपये और छात्राओं को 400 रुपये प्रतिवर्ष की छात्रवृति मिलती है।
- **स्वामी विवेकानंद पोस्ट मेट्रिक प्रावीण्य छात्रवृत्ति योजना** के तहत प्रदेश के शासकीय विद्यालयों में 10वीं की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ग्यारहवीं में तथा 11वीं की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर 12वीं में पढ़ने वाले छात्रों को 500 रुपये प्रतिवर्ष तथा छात्राओं को 550 रुपये प्रतिवर्ष प्रावीण्य छात्रवृति दी जा रही है।
- **सुदामा शिष्यवृत्ति योजना** के तहत उत्कृष्ट विद्यालय में अध्ययन करने वाले और छात्रावास में रहने वाले सामान्य वर्ग के निर्धन छात्रों को 500 रुपये प्रतिमाह और छात्राओं को 550 रुपये प्रतिमाह की शिष्यवृति 10 माह के लिये दी जा रही है।
- **डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम मेधावी छात्र प्रोत्साहन योजना** के तहत प्रत्येक जिले के शासकीय विद्यालयों में 12वीं कक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण होने वाले प्रत्येक संकाय के सामान्य वर्ग के निर्धन छात्र/छात्रा को 5000 रुपये की प्रोत्साहन राशि मिल रही है।
- **व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में विक्रमादित्य निःशुल्क शिक्षा योजना** के तहत शासकीय इंजीनियरिंग, मेडिकल, डेण्टल, आयुष, कृषि, वेटनरी, उद्यानिकी, वानिकी महाविद्यालयों तथा पॉलीटेक्निक तथा आई.टी.आई. में संचालित सभी पाठ्यक्रमों में सामान्य वर्ग के निर्धन परिवारों के छात्र-छात्राओं को निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराई जा रही है।
- **निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें** – विद्यार्थियों के बीच भेदभाव समाप्त करने और सामान्य और पिछड़ा वर्ग के सभी विद्यार्थियों को सुविधा के उद्देश्य से शासकीय शालाओं में 9वीं से 12वीं तक अध्ययन करने वाले समस्त विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तकों का निःशुल्क वितरण होता है।
- **वीरांगना लक्ष्मीबाई सायकिल योजना** के तहत कक्षा 6वीं में प्रवेश लेने वाली ऐसी सभी बालिकाओं को सायकिल उपलब्ध कराई जा रही है, जिन्हें पढ़ाई के लिए अपने ग्राम से दूसरे ग्राम जाना पड़ता है। इसी प्रकार हाई स्कूल एवं हायर सेकेण्ड्री में पढ़ने वाली ऐसी सभी बालिकाओं, जिनके ग्राम में हाई स्कूल/हायर सेकेण्ड्री स्कूल नहीं हैं, को सायकिल वितरित जा रही है।
- **सांदीपनि संस्कृत भाषा प्रसार योजना** के तहत प्रत्येक विकासखण्ड में संस्कृत के अध्यापन के लिए संविदा शिक्षक वर्ग-3 का एक पद स्वीकृत किया गया है।
- **माँ सरस्वती योजना** – निर्धन किन्तु प्रतिभावान एवं मेधावी छात्रों को उच्च शिक्षा की सुविधा मिल सके, इस दृष्टि से उच्च शिक्षा ऋण गारंटी योजना प्रारंभ की गई है।
- **आचार्य विद्यासागर गौ संवर्धन योजना** के तहत 10,000 महिलाओं को गौ संवर्धन योजना से लाभान्वित किया जायेगा। दुग्ध संघों के अंतर्गत मिल्क रूट्स पर 637 महिलाओं को गाय दी चुकी हैं।

सीमित समय में इन सभी योजनाओं के माध्यम से वर्ष 2008-09 में 12.75 लाख हितग्राही लाभान्वित हुए हैं। उन्हें शासन द्वारा 32.95 करोड़ रुपये की सहायता उपलब्ध कराई गई है, जो सराहनीय कदम है।

सबकी तरक्की के ईमानदार प्रयास मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसंपर्क द्वारा जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सृजन स्मरण

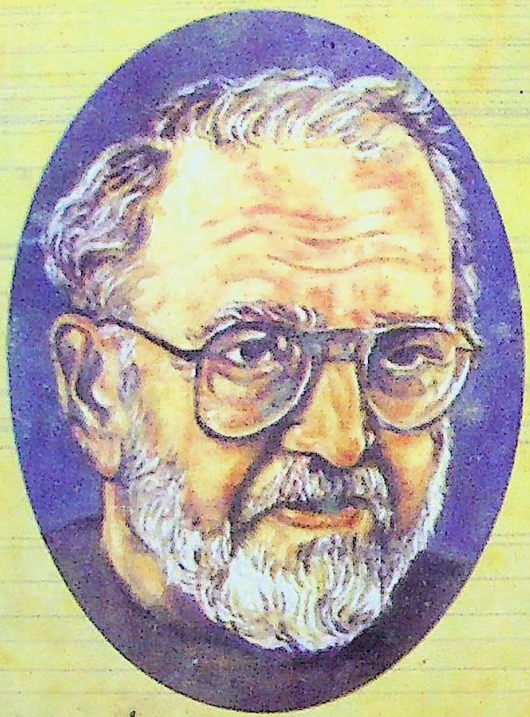

"साँप! तुम सभ्य तो हुए नहीं-
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ– (उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा डँसना-विष कहाँ पाया?"

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'
(1911 - 1987)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार
सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित तथा 28, एम.आई.जी., अवन्तिका-1, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल सिं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मई, 2010 ■ बीस रुपये

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

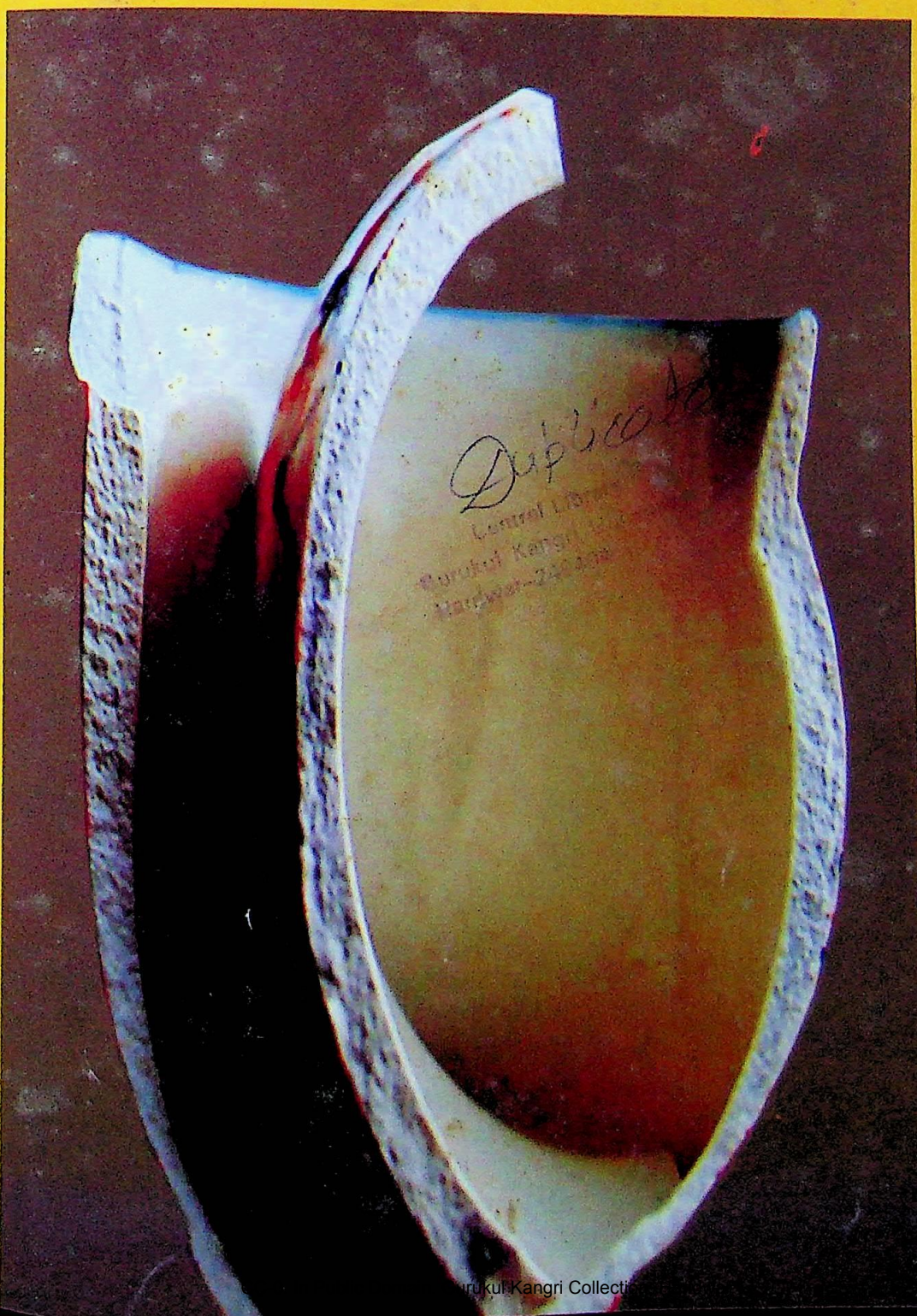

Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्पायन द्वारा प्रकाशित

कुँवरपाल सिंह की महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय पुस्तकें

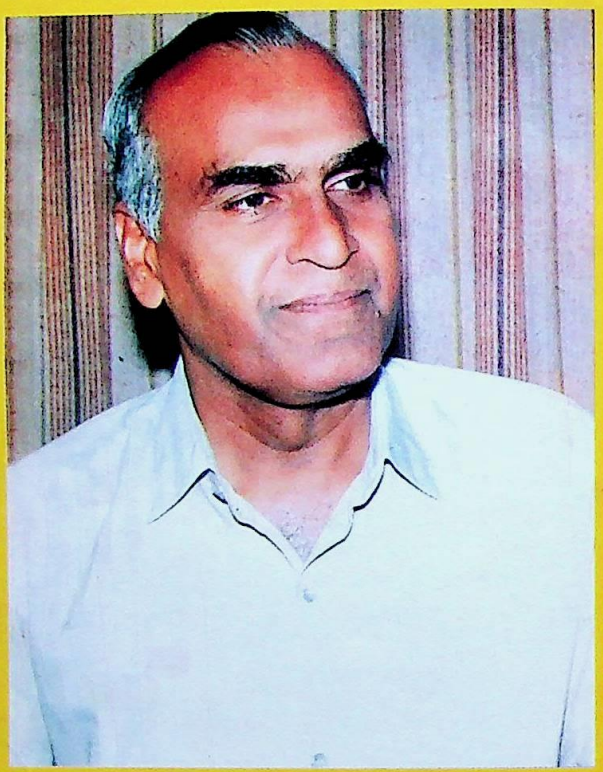

आगामी पुस्तकें

हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना	कुंवरपाल सिंह
समय संवाद	कुंवरपाल सिंह
लिए लुकाठी हाथ	कुंवरपाल सिंह
नवजागरण और हिंदी गद्य	कुंवरपाल सिंह-देवेंद्र गुप्ता

प्रकाशित पुस्तकें

1857 और जन प्रतिरोध	संपा. कुंवरपाल सिंह-नमिता सिंह	400.00
यशपाल : पुनर्मूल्यांकन	संपा. कुंवरपाल सिंह	600.00
राही और उनका रचना-संसार	संपा. कुंवरपाल सिंह	400.00
हिंदी उपन्यास : जनवादी परम्परा	सं. कुंवरपाल सिंह-अजय बिसारिया	225.00
मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी उपन्यास	कुंवरपाल सिंह	200.00

पुस्तकों के लिए लिखें–

शिल्पायन

10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
दूरभाष : 011-22821174, 9810101036
e-mail : shilpayan2005@yahoo.co.in, shilpayanbooks@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
विभूति नारायण राय

सम्पादक
नमिता सिंह

सह-सम्पादक
अजय बिसारिया ☐ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

विशेष सम्पादकीय सहयोग : प्रो. प्रदीप सक्सेना

प्रबन्ध सम्पादक : राजीव श्रीवास्तव

सलाहकार : वेद शर्मा, बीकानेर

विशेष सहयोग : परवेज़ फ़ातिमा

अध्यांकन : बिसारत अली

आवरण चित्र : वंशीलाल परमार, मंदसौर

रेखांकन : राघवेन्द्र तिवारी

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

वर्ष 26 ☐ मई, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय
28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com
Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; ☐ वार्षिक : 230/-; ☐ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 250/- ☐ आजीवन : 2000/- ☐ विदेशों में साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। चैक से भुगतान करने पर तीस रुपये अतिरिक्त जोड़कर भेजें।)

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

इस अंक में

...क मंच/2
...नी बात/5
...त सिंह को स्मरण करते हुए
...लों की खुशबू को आज़ादी का इंतजार/विनीत तिवारी/7
...करण-1
...की अपनी राह अलग थी/डॉ0 विजय बहादुर सिंह/9
...करण-2
...के सामने सदैव राह ही हारती रही/वीरेन्द्र जैन/11
...विता
...विताएँ/सुनीता जैन/13
...विताएँ/प्रेमरंजन 'अनिमेष'/14
...विताएँ/माहे तिलत/45
.../केशव शरण/47
.../अर्जुन प्रसाद सिंह/48
...विताएँ/यादवेन्द्र शर्मा/55
...नंद वियोगी की मैथिली कविताएँ/57
...कुमार आत्रेय की कविताएँ/58
...विता/ओमप्रकाश मिश्र/61
...लैंड के कवि राजमोहन की कविताएँ/46
...नी
...गी मेरे घर जाना/देवाँशु पाल/16
...लिये जियो पापा/चंद्ररेखा ढडवाल/19
...पीछे की तरफ़ ऐ गर्दिशे अय्याम तू/नग़मा जावेद/22
...हत्तर दिन /ओमप्रकाश नामदेव/33
...नी : देश-देशांतर-(यू0के0)
...कैसरा शिराज़/40

मई 1857 को याद करते हुए
दफ़्न हुई बहस क्यों जी उठी है /प्रदीप सक्सेना/25
1857 के शहीदों के नाम/अहमद फराज़/29

पुनर्पाठ
मुक्तिबोध की तीन कहानियाँ : सच पर पलस्तर/विनीता रघुवंशी/30

लेख
कैफ़ी, कैफ़ियत और 'कैफ़ियात'/एहसान हसन/49
कबीर : परिस्थितियों की उपज/के0 श्रीलता विष्णु/52

लघुकथा
साइन/खेमकरण 'सोमन'/18
टैक्नीकल हैण्ड/खेमकरण 'सोमन'/21
दुनियादारी / बेदखल/अशफ़ाक कादरी/28

रंगमंच
पार्टनर तुम्हारी पॉलीटिक्स क्या है?/सुनील कुमार मानव/59

पुस्तक समीक्षा
मध्यवर्गीय जीवन के इर्द-गिर्द बुनी गई कविताएँ/महेश चन्द्र पुनेठा/62
अटका हुआ पानी : मूल्यों के टकराहट की कहानियाँ/विजय शर्मा/63
शिकम की आग लिये फिर रहे हैं शहर-ब-शहर/डॉ0 कमलानंद झा/65
मुक्तिकामी लहर की कविता/डॉ0 सुभाष चन्द्र/67
तलाश : जन जीवन का यथार्थ/लव कुमार लवलीन/69
मालवा के माच एवं अन्य लोक कलाओं..../गफ़ूर स्नेही/70

सांस्कृतिक समाचार/72

आख़िरी पन्ना
भारतीय अर्थव्यवस्था का भविष्य/गिरीश मिश्र/79

Central Library Gurukul Kangri University Hardwar 249404 (U.A.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□

जनवरी अंक में नये वर्ष की शुभकामनाएँ भी हैं। हिन्दी की ये तीन ठिठुरती कहानियाँ तेंदुलकर की 'कानी का ब्याह', प्रेमचंद की 'पूस की रात', निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात' की याद दिलाती हैं। वेद राही की एक और ठिठुरती कहानी भी है, जहाँ श्रीनगर से ऊधमपुर तक एक युवक ट्रक में लदे मुर्दों के साथ चिपटकर यात्रा करता है। कुँवरपाल सिंह जी की वसीयत केवल परिवार का ही नहीं, बल्कि सभी लेखकों-पाठकों का भी मार्ग-निर्देशन करेगी।

परेश, चंडीगढ़

□

'वर्तमान साहित्य' के फरवरी अंक में दामोदर दत्त दीक्षित का दृष्टिकोण 'दूसरों पर अगर तब्सिरा कीजिए...' जो हिन्दी के कथालेखक गिरिराज किशोर पर केन्द्रित है पढ़कर मुझे अच्छा लगा। मेरे लिए हैरानी की बात यह है कि गिरिराज जी के स्वभाव और प्रकृति में एक भारी अंतर्विरोध है और साहित्य अकादमी के अपने संयोजकत्व काल में उन्होंने अकादमी जैसी प्रतिष्ठित संस्था की गरिमा को अपने चहेते को पुरस्कृत करके न केवल नीचे गिराया बल्कि उसे संदिग्ध भी बना दिया। हिन्दी का पाठक यह जानकर हतप्रभ होगा कि इसी लेखक ने गांधी जी की जीवनी 'पहला गिरमिटिया' लिखा है। यह सब कुछ मुझे दुखद लगता है।

भारत भारद्वाज, दिल्ली

□

'अपनी बात' के माध्यम से रुचिका कांड के बहाने समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर इंगित किया गया है। चाहे शिक्षा-राजनीति हो या क़ानून-हर जगह भ्रष्टाचार है, लेकिन हम उनका विरोध क्यों नहीं कर पाते हैं? डा0 वीणा रानी श्रीवास्तव का जन्म शताब्दी के अवसर पर बाबा कामिल बुल्के को स्मरण करना अच्छा लगा।

इस बार की कहानियाँ अच्छी लगीं। 'नाटक के बाद' कहानी (सेराज ख़ान बातिश) बहुत अच्छी लगी। 'घनी होती झाड़ियाँ' भी एक सकारात्मक संदेश देती कहानी है। कहानी 'गोष्ठी' में जयप्रकाश कर्दम ने सही संकेत किया है कि जातिगत भेदभाव मिटाने के लिए हमें सबसे पहले शुरूआत घर से करनी चाहिए। पुस्तक समीक्षा में 'गूँगी कलम का मुखर प्रतिरोध' में दया दीक्षित ने बताना चाहा है कि प्रभा दीक्षित द्वारा रचित ये पुस्तक नारी-विमर्श का एक अहम रूप है।

विभा सिंह, कानपुर

□

रुचिका कांड के माध्यम से आपने उन समस्त संगठनों पर जो उँगली उठायी, वह स्वागतयोग्य है। आज सत्ता और शक्ति के मद में अंधे राठौर जैसे न जाने कितने हैं, जो जनता को अपनी कठपुतली समझते हैं। अन्याय के ख़िलाफ़ केवल शोषित ही नहीं, बल्कि जन-समूह को भी खड़ा होना पड़ेगा।

डा0 कुसुम मित्तल का समलैंगिकता पर लेख अच्छा लगा। हम सब की तरह वे भी इन्सान हैं और उन्हें भी जीने का अधिकार है। गिरीश मिश्र का 'उपभोक्तावाद पर मंदी का साया' समाज के आर्थिक ढाँचे के ग्राफ़ को दिखाता है। उपभोक्तावाद का यह सोच कि "उपभोक्ताओं को उनके प्रतीक-मूल्य या प्रतिष्ठा-मूल्य को ध्यान में रखकर ख़रीददारी के लिए उकसाने की प्रवृत्ति की अपेक्षा यदि व्यवसाय के मुख्य तत्वों को ध्यान में रखा जाए, तो मंदी के प्रभावों से कुछ हद तक बचा जा सकता है। कितना ही अभाव क्यों न हो, आवश्यकताओं की पूर्ति हर व्यक्ति करता है। वर्तमान मंदी ने व्यवसायी और उपभोक्ता की (मध्यवर्गीय) आँखों पर बँधी पट्टी को खोल दिया है। सभी कहानियाँ अच्छी हैं, जिसमें 'नाटक के बाद' कहानी अधिक प्रभावी है। बाबरी मस्जिद जैसी घटनाओं का व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ा-सेराज ख़ान बातिश ने बड़े ही संजीदा तरीके से किशोरी लाल के रूप में उड़ेल दिया है।

राम मेश्राम की ग़ज़लें बहुत अच्छी लगीं।

संध्या मिश्रा, कानपुर

□

'वर्तमान साहित्य' समकालीन साहित्य का सार्थवाह है। साहित्यकर्मियों के लिए यह एक ज़रूरी पत्रिका है।

फरवरी अंक में जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'गोष्ठी' ने ध्यान खींचा। दलित साहित्यकारों की मानवीय कमज़ोरियों को उद्घाटित करती हुई यह कहानी साहसिक तरीके से आत्मालोचन और नये संकल्पों की ओर बढ़ती है। डा0 कुसुम मित्तल और दामोदर दत्त दीक्षित के आलेख भी अपनी सूक्ष्म दृष्टि और बृहद नैतिक कोण से सच्चाई और छद्म की गहरी पड़ताल करते हैं। प्रो0 कुँवरपाल सिंह के उदात्त व्यक्तित्त्व और सृजनात्मक- आलोचनात्मक कृतित्व को जानने के लिए उनके अभिनंदन ग्रंथ 'कल हमारा है' को पढ़ना अपने स्थान पर है, लेकिन डा0 वशिष्ठ अनूप द्वारा इसकी समीक्षा पढ़कर ही उनके मानवीय गुणों और कार्यों तथा संवेदनशीलता की गहरी पहचान हो जाती है। बहुत ख़लता है प्रो0 कुँवरपाल सिंह का चला जाना।

केशव शरण, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□

...लते हैं कि हमारा समाज आज काफ़ी उन्नति कर रहा है। बावजूद ...के हमारा समाज कई वर्गों में बँटा है। कई तरह से भेदभाव ...या जाता है। इतने समाज- सुधारकों ने आकर समाज को ...लने का प्रयत्न किया और नये धर्म स्थापित किये, परंतु परिणाम ...ा हुआ? नये-नये धर्म स्थापित हुए व समाज संप्रदायों में बँटता ...या। धर्मगुरु जिन सामाजिक बुराइयों को नष्ट करना चाहते ...वे और बढ़ने लगीं। आज हमारे सामने अनेक समस्याएँ हैं, ...-सांप्रदायिकता, भाषावाद, क्षेत्रवाद, लिंग-भेद आदि। समाज ...हर कुरीति एक स्त्री को ही सर्वाधिक प्रभावित करती है।

कुछ सफल महिलाओं की दुहाई देकर हम स्त्रियों की असली ...नहीं छुपा सकते। स्त्रियों के प्रति समाज को अपना नज़रिया ...लना होगा। उसे संपत्ति न मानकर, एक स्त्री मानना होगा। ...ज उसे लक्ष्मी या दुर्गा के रूप में पूजता है और वह उससे ऐसी ...ेक्षा रखता है कि वह ग़लती न करे और पुरुष वर्ग ग़लती करता ...रहे, वह उसे मांफ़ करती रहे। क्यों हम आज जीवन को आम ...ान की तरह नहीं जीते। देवी-देवता कहाँ से बीच में आ गये।

'मनुस्मृति' व कबीर-तुलसी के ग्रंथों में कितनी ही उपयोगी ...तें हैं, परंतु उनका अनुसरण किसी ने नहीं किया; मगर जहाँ ...-विरोधी बातें की गयीं, उनका अनुसरण किया। स्त्रियों की दशा ...परिवर्तन करने के लिए सरकार को लड़की की विवाह-योग्य ...यु 18 से बढ़ाकर कम से कम 23-24 वर्ष कर देनी चाहिए, ...कि लड़की को भी अपना कैरियर बनाने का मौक़ा मिल जाए।

अंकिता पँवार, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखंड)

□

...पाल सिंह जी के जाने के बाद आपने जिस तरह से अपने ...को और 'वर्तमान साहित्य' को संभाला है; वह अनुकरणीय है। ...विलास जी की एक कविता है—'किसान, कवि और उसका ...। उसकी कुछ लाइनें आपके लिए भेजता हूँ :

मेरी अंध निराशा का यह गीत नहीं है।
मन बहलाने को मोहक संगीत नहीं है।
जीवन की इस मरण व्यथा को सहना होगा,
अंतर में यह व्यथा छिपाये रहना होगा।
काल-रात्रि में चार प्रहर अविराम जागरण,
यही व्यथा का पुरस्कार है अति साधारण।
बँध न सकेगा लघु सीमाओं में लघु जीवन;
लघु जीवन से अमर बनेगा बहु-जन जीवन!
अडिग यही विश्वास, क्षुद्र है जीवन चंचल।
अनजानी है राह यही साहस है संबल
यह मानव का हृदय क्षुद्र इस्पात नहीं है।
भय से सिहर उठे वह तरु का पात नहीं है।

विजय मोहन शर्मा, नई दिल्ली

□

आरती त्रिपाठी (कानपुर) के पत्र पर कहना चाहूँगा कि साहित्य-इतिहास में गांधी युग, प्रेमचंद युग फेविकोल से चिपका है, पर अंबेडकर युग फाड़ दिया गया। फेविकोलों में दम नहीं ?

बेहद जटिल कहानी है—'न कहने का अधिकार'। जानने का प्राधिकार देहमुक्ति से संभव नहीं। सरल अभिव्यक्ति वी0आर0एस0 में है, परंतु जटिलतम परिस्थितियाँ अग्निहोत्री ने पैदा कीं। अंत तो अति टेंशन में होगा ही। कट्टरपंथियों को प्रत्येक व्यक्ति आतंकी ही दिखायी देगा। उनके ग्रंथ अमानवीय संदर्भ से भरे पड़े हैं। 80 प्रतिशत जनता मुल्क में नहीं गिनी जाती, क्योंकि 10 प्रतिशत की मुख्यधारा और शेष 10 प्रतिशत सहप्रायोजक हैं, ताक़तवर है। कॉमरेडों को मीर जाफर-जयचंद घोषित करने का कारण किसान, मज़दूर आंदोलन हँसिया-हथौड़ा समेत ढीला पड़ गया। 'ध्वंस' में पाक रिश्ता काहे का ? मज़हबी जाति में सभी आँखें नापाक जलती दानव हैं। गुलेरी जी की कहानियों से नयी जानकारी मिली। भूमंडलीकरण के तहत मज़दूरों के प्रति उदारवाद आकाश में है या पाताल में है? विप्लवी हरिकृष्णराय की समीक्षा पठनीय रही।

नमिता जी ने स्त्री-विमर्श हेतु नये मुद्दों को सामने लाकर स्त्रियों हेतु सुलझन पैदा की, धन्यवाद!

यशवंत, शारदा चौक, राजनांदगाँव

□

अपनी बात के माध्यम से फरवरी अंक में संपादिका ने समाज, सत्ता के नाम पर होने वाले अपराधों-षडयंत्रों, राजनीति में फैली अराजकता तथा समाज में रहने वाले ग़रीब किसानों, दलितों, स्त्रियों आदि की समस्याओं को उठाया है, जो राठौर जैसे लोगों की प्रताड़ना का शिकार होते हैं। सेराज ख़ान बातिश की कहानी समाज की नाटकीयता का एक अंक है, जिसमें समाज का प्रत्येक प्राणी जी-जान से पात्र बना हुआ है।

रूपलाल बेदिया की कहानी 'घनी होती झाड़ियाँ' दर्द के मंजर से पनपती मन को व्याकुल कर देने वाली है कि क्या सच में आज लोग आधुनिकता की चमक व तेज़ रफ़्तार की दौड़ में अपने संस्कार व अपनी ममता के दायरों को भूलते जा रहे हैं।

अखिलेश श्रीवास्तव चमन की कहानी 'समयांतर' बदलते परिवेश तथा आडंबरों व अंधविश्वासों का बहिष्कार करती है, जो जाति व धर्म के नाम पर लोगों को पीड़ा ही देती आयी है। राजेन्द्र परदेसी की कहानी 'संघर्षों के बीच' अच्छी लगी। जहाँ संघर्ष है, सफलता भी वहीं है। गिरने के बाद व्यक्ति उठने के लिए प्रयास करता है और वह सफल भी होता है।

कृष्ण चन्द्र महाबेदिया की लघुकथा 'बदहाल मानसिकता' अशिक्षा से उत्पन्न मानसिकता के कुविचारों को दर्शाती है। 'आज की बात' में डा0 कुसम मित्तल का 'सामाजिक बदलाव की दिशा में एक ऐतिहासिक फ़ैसला' पढ़कर आश्चर्य हुआ कि समाज में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समलैंगिक संबंधों को क़ानून ने स्वीकारा और लोग भी स्वीकार कर रहे हैं। पर क्या किसी ने यह सोचा है कि दांपत्य-जीवन का क्या होगा ? पति-पत्नी का अस्तित्त्व कहाँ जाएगा ? पुस्तक समीक्षा में दया दीक्षित का 'गूँगी कलम का मुखर प्रतिरोध' राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों से जूझता हुआ स्त्री-विमर्श नज़र आता है; जिसमें लेखिका मानवता को बचाना चाहती है। 'आख़िरी पन्ना' में गिरीश मिश्र का 'उपभोक्तावाद पर मंदी का साया' आधुनिकता की चपेट में आ चुका है, जिसको उपभोक्तावाद तथा बाज़ारवाद ने अत्यधिक प्रभावित किया है। मंदी जहाँ ऊँचाइयों को छू रही है, वहीं ग़रीब जनता भुखमरी का शिकार भी हो रही है। अंक संग्रहणीय है।

बीना सिंह, कानपुर

□

मार्च, 2010 का अंक। संपादकीय को पढ़ने से एक बार फिर यह सिद्ध हो गया कि विश्व की विविध संस्कृतियाँ और सभी मायनों में भले विलक्षण एवं भिन्न हों, किंतु स्त्री के संबंध में सभी की मानसिकता लगभग समान है। स्त्री के प्रति वही बर्बरता व अमानवीयता सर्वत्र विद्यमान है। ऋतु अग्रवाल का लेख शोधपरक लेख है, जिसमें उन्होंने प्राचीन धर्मग्रंथों का हवाला देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पुरुष सत्तात्मक समाज ने प्राचीन काल से ही नारी के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया है। सदियों से चले आ रहे इस क्रूरता के चक्र को तोड़ने में अब कुछ समय तो लगेगा ही। कहानियाँ तीनों अच्छी हैं। थोड़ी सी प्रशंसा सुनकर स्त्री का आत्मविश्वास बहुत अधिक बढ़ जाता है, पर हमारे भारतीय परिवारों में स्त्री की प्रशंसा पुरुष के अहं को ठेस पहुँचाती है, तभी पूरे समर्पण के बाद भी अंदर ही अंदर वह कुंठित होती रहती है। देवी नागरानी की कहानी 'नई माँ' में कला हो या रचना-दोनों ही पुरुष के स्वार्थ व उपेक्षा-भाव का शिकार हैं। जयश्री राय की कहानी 'उसने कहा था...' सबसे ज़बरदस्त कहानी है। जिसके लिए शब्द नहीं है, पर पढ़ते-पढ़ते स्वतः ही भावनाओं का ज्वार उफन पड़ता है। रजनी मोरवाल की दोनों कविताएँ अच्छी हैं, जो समाज के समक्ष कुछ प्रश्न छोड़ती हैं। 'पुनर्पाठ' स्तंभ के अंतर्गत सुधा बी0 ने प्रेमचंद की चर्चित कहानी 'कफ़न' का स्त्री को विचार बिंदु में रखते हुए पुनर्पाठ किया है तथा पाठकों को बहुत कुछ सोचने पर विवश किया है। सुधा बी0 की इस समीक्षा से निस्संदेह साहित्य-जगत् में कुछ नये निष्कर्ष निकलेंगे, जो उसकी अस्मिता तथा समाज में उसकी स्थिति में सुधार के बायस बनेंगे। लघुकथाएँ भी पठनीय हैं, जो जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करती हैं। यह अंक उपलब्ध कराने के लिए आपका आभार।

आरती त्रिपाठी, कानपुर

□

पृथ्वी से
दूसरे घर में
जाने के बाद
कुँवरपाल
तुम वैसे ही हो यहाँ शेष
हम सबके बीच।

प्रेम में
बसे हो प्रेम की तरह
विश्वास में
ठहरते हो विश्वास बनकर
अपनेपन में
बसते हो अपनेपन की तरह
विचारों में
सुनायी देते हो शक्ति बनकर
सहयोग शब्द को
अभी मिलती है तुमसे शक्ति
दोस्तों में
गूँजता है तुम्हारा ही दोस्ताना
तुमसे मिलने के लिए लोग
मिलते हैं—तुम्हारे दोस्तों से

तुम्हें सुनने के लिए लोग
सुनते हैं नमिता को
तुम्हें देखने के लिए लोग
देखते हैं नमिता को
नमिता की आवाज़ में
गूँजती है—तुम्हारी ही ध्वनि

तुम!
कहीं गये नहीं कुँवरपाल
हम सबमें बस गये हो
कहीं—
'विचार' बनकर
कहीं—
संवेदना होकर

पुष्पिता अवस्थी
P.B. 1810, 1810 KB Alkmaar
The Netherlands

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

महिला आरक्षण बिल आखिरकार संसद में प्रस्तुत हो गया और राज्य सभा में पारित हो गया। इस महिला आरक्षण बिल के अनुसार संसद में तथा राज्य विधान सभाओं में महिलाओं के लिये 33 प्रतिशत सीटों के आरक्षण का प्रावधान है। वर्तमान में संसद में महिला प्रतिनिधियों की संख्या पूरी 10 प्रतिशत भी नहीं है। राज्यों की विधान सभाओं में महिला प्रतिनिधित्व इससे भी कम है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज में महिलाओं का नेतृत्वकारी भूमिका में आना आसान नहीं है। घर-परिवार के बंधनों से मुक्ति पाना स्त्री के लिये एक संघर्षपूर्ण अभियान रहा है। सार्वजनिक जीवन में और राजनीति में भी यह आगे बढ़ने की यात्रा कितनी कठिन और पूर्वाग्रहों से भरी है, यह इस दौरान हुई विरोध की राजनीति से स्पष्ट है। 12 सितंबर 1996 में देवगौड़ा सरकार ने सबसे पहले इस बिल को संविधान में संशोधन के लिये लोकसभा में प्रस्तुत किया था। 1996 से लेकर अब तक हर बार महिला आरक्षण विधेयक के कागज़ात विरोधी दलों द्वारा छीने गये, फाड़े गये, धक्का मुक्की हुई, मारपीट तक हुई और संसद में आरक्षण बिल समर्थक और विरोधी दल आमने-सामने हुए। यही मारपीट का दृश्य इस बार भी देखा गया जब राज्य सभा अध्यक्ष, उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी इस बिल को प्रस्तुत करने की प्रक्रिया पूरी कर रहे थे।

सितंबर 1996 में देवगौड़ा सरकार ने यह बिल प्रस्तुत किया था, लेकिन तीव्र विरोध के कारण इसे संयुक्त संसदीय कमेटी को आगे प्रस्तुति के लिये सौंप दिया गया था। इस कमेटी की अध्यक्ष गीता मुखर्जी थीं, जिन्होंने इस पर रिपोर्ट दिसंबर 1996 में प्रस्तुत कर दी। एन0डी0ए0 सरकार द्वारा 1998, 1999 और 2002, में भी यह बिल प्रस्तुत हुआ। हर बार बिल के कागज़ फाड़े गये और उग्र विरोध हुआ। 2003 में अटल बिहारी बाजपेई सरकार द्वारा फिर दो बार इस विधेयक को लाने की असफल कोशिश की गयी। 2004 में यू0पी0ए0 सरकार द्वारा इस बिल को न्यूनतम साझा कार्यक्रम में शामिल कर पुनः 2005 में और 2008 में लाया गया लेकिन नतीजा वही ढाक के तीन पात। एक बार तो महिला और बाल कल्याण मंत्री रेणुका चौधरी को समाजवादी सांसद अबू आसिम आज़मी को इसलिये धक्का देना पड़ा कि वह बिल प्रस्तुत करने जा रहे कानून मंत्री भारद्वाज के कागज़ न छीन सकें। श्री भारद्वाज स्वयं भी अपनी और अपने कागज़ों की सुरक्षा के लिये, खतरों को भाँपते हुए दो महिला मंत्री कु0 शैलजा और अंबिका सोनी के बीच सीट पर जा बैठे तथा सामने की पंक्ति में जयंती नटराजन और अलका बलराम क्रिय उनकी सुरक्षा में रहीं।

यह पूरा परिदृश्य क्या साबित करता है? आधी आबादी की एक तिहाई उपस्थिति भी देश की शासन-व्यवस्था चलाने वाली संस्था में पुरुष समाज को स्वीकार्य नहीं है। इससे पहले पंचायतों और स्थानीय निकाय में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण पर ऐसा ही बवाल मचा था। पंचायतों में निर्वाचित महिलाएँ अधिकांशतः इन पदों पर काबिज़ पुराने खिलाड़ियों की पत्नी, बहू या अन्य रिश्तेदारीजन थीं। महिलाओं की जगह उनके पति, ससुर या पुत्र आदि मीटिंगों में बैठते और फैसले लेते थे। लेकिन धीरे-धीरे स्थिति में सुधार हुआ। अनपढ़ पंचायत महिला सदस्यों को साक्षर बनाने, शिक्षित करने के अभियान चलाये गये। उन्होंने धीरे-धीरे कामकाज अपने हाथ में लेना शुरू किया। कई जगह पर महिला प्रतिनिधियों ने आगे बढ़कर पहल की और विकास के काम कराये और अपने क्षेत्र की काया पलट कर दी।

सामाजिक परिवर्तन की एक निश्चित प्रक्रिया होती है। कानून बन जाने से रातों-रात स्थितियों में बदलाव नहीं हो जाता। विशेष रूप से जब मामला केवल व्यवस्था परिवर्तन का न हो बल्कि मानसिकता परिवर्तन का हो। वह मानसिकता जो हज़ारों साल से स्त्री विरोधी है, उसे मूर्ख और जाहिल कहती है और पैर की जूती समझती है। इसलिये जब भी स्त्रियों के हित के लिये कोई क़दम उठाया गया, ऐसा कोई कानून बना, तब हमेशा ही ऐसा बावेला मचा। सती प्रथा पर रोक, बालविवाह निषेध कानून, विधवा विवाह समर्थन कानून... तब इनको अपने धर्म, संस्कृति और परंपरा के विरुद्ध हस्तक्षेप माना गया और तीव्र विरोध हुआ। आज लगभग डेढ़ सदी से ऊपर हो गया है लेकिन मूल भाव में बदलाव नहीं हुआ है। आज कभी महिला प्रतिनिधित्व को 'कटे बालों वाली महिलाओं' की बात कहकर तो कभी उनके पीछे 'सीटी बजाने' की बात कह कर खिल्ली उड़ाई जा रही है। यह भी कहा जा रहा है कि महिला आरक्षित सीटों पर विशिष्ट वर्ग की महिलाएँ काबिज़ हो जायेंगी और जनसाधारण से महिलाएँ आगे नहीं आयेंगी।

देश के कर्णधार, राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दलों के इन नेताओं के मुख से ये बातें उनके पाखंडी मंतव्यों की पोल खोलती हैं। विशेष रूप से ये वे दल प्रमुख हैं जिनका वोट बैंक जाति विशेष पर आधारित है। बिना आरक्षण कानून के इन राजनीतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलों ने अपनी पार्टी से कितनी महिलाओं को प्रतिनिधित्व करने का मौका दिया। लालू जी को सत्ता छोड़ने के विकल्प में केवल पत्नी राबड़ी जी नज़र आईं तो मुलायम सिंह जी के सामने केवल अपनी बहू ही महिला प्रतिनिधि के रूप में थी। यह भी सच है कि आज संसद में (और विधान सभाओं में भी) अधिकांश महिला सदस्य किसी न किसी राजनेता से, उसके परिवार से संबंधित हैं। लेकिन क्या इसी डर से महिलाओं के सार्वजनिक जीवन में आगे बढ़ने के रास्ते नहीं खोले जायेंगे। जो दल इस बिल का विरोध कर रहे हैं और आरक्षण के 33 प्रतिशत में विभिन्न सामाजिक वर्ग की महिलाओं के लिये कोटे का प्रावधान चाहते हैं, उनमें से किसी ने पिछले चौदह सालों में चुनाव के समय टिकट बाँटते वक्त महिला प्रतिनिधित्व के मामले में कोई नज़ीर नहीं प्रस्तुत की। गिनी-चुनी महिलाओं को ही टिकट दिये जाते रहे हैं, वो भी किसी दिवंगत, भूतपूर्व नेता के परिवार की महिला को। सभी राजनीतिक दलों ने महिलाओं के प्रति कर्तव्य को दल का महिला विंग बना कर पूरा कर लिया जिनका काम सिर्फ़ जुलूस, प्रदर्शन में जमावड़ा करना या अपने शीर्ष नेताओं के निर्वाचन (या अन्य सफलता) पर सड़कों में नाचते हुए खुशी का इज़हार करना है। अपने महिला विंग की सदस्यों को भी नेतृत्वकारी भूमिका प्रदान कर आगे लाना, इन राजनैतिक दलों का न उद्देश्य रहा है और न ही नीयत रही है।

जहाँ तक विरोध करने वाले दलों के द्वारा कोटा की माँग करने का सवाल है, यह काम तो वे स्वयं अपने संगठेन के स्तर पर कर सकते हैं। दरअसल परेशानी यह है कि विभिन्न चुनाव क्षेत्रों में जो परंपरागत नेतृत्व की पंक्ति चली आ रही है, वह भंग हो जायेगी। एक बड़े राष्ट्रीय नेता ने अंततः कह डाला कि महिला आरक्षण बिल लागू हो गया तो हम पुरुष कहाँ जायेंगे। फिर बाहुबलियों का क्या होगा जिन्हें विभिन्न राजनीतिक दल उनका समर्थन पाने के लिये खड़ा करते हैं। इन सबके अवसर संकुचित हो जायेंगे। इसलिये 33 प्रतिशत महिला आरक्षित सीटों में विभिन्न वर्गों (दलित, पिछड़ा वर्ग, मुस्लिम) की महिलाओं के लिये अलग कोटा राजनीतिक दलों के भीतर का अपना मामला है जिसे उन्हें अपने स्तर पर लागू करना चाहिये। दलित आरक्षित सीटों पर दलित महिला को चुनाव का टिकट देने की ज़हमत कोई दल नहीं उठाता। आरक्षित सीट पर इक्का दुक्का महिलाएँ ही क्यों दिखाई देती हैं।

महिला आरक्षण बिल के कुछेक प्रावधानों पर पुनर्विचार हो सकता है। उदाहरण के तौर पर आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों को प्रत्येक आम चुनाव में बारी-बारी से बदलने की बात कही गयी है। बिल का यह बिन्दु भी क्षेत्र के पुरुष नेतृत्व के गुम हो जाने के भय को दिखाता है। इस का संशोधन ज़रूरी है। हर बार आरक्षित चुनाव क्षेत्र बदलने से नेतृत्व की जवाबदेही खत्म हो जाती है और एक सशक्त महिला नेतृत्व उभरकर नहीं आ सकता।

वर्तमान स्थितियों में 131 संसदीय क्षेत्र पहले से ही अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन जाति के लिये सुरक्षित हैं। यह कहने में कोई संकोच नहीं कि इस आरक्षण से विभिन्न क्षेत्रों में सशक्त दलित नेतृत्व का निर्माण हुआ है और सार्वजनिक जीवन में दलित सशक्तीकरण की प्रक्रिया में इसका योगदान है। यही प्रक्रिया महिलाओं के लिये आरक्षण व्यवस्था से संभव हो सकती है। 137 सीटें इस बिल के माध्यम से महिलाओं के लिये सुरक्षित हो जायेंगी। महिला सशक्तीकरण की दिशा में यह एक छलांग साबित होगी।

किसी भी समाज अथवा समुदाय के सशक्तीकरण के लिये विभिन्न दिशाओं से आगे बढ़ने के प्रयास किये जाते हैं। घर-परिवार में बराबरी का दर्जा उन्हें समाज में, सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिये आत्म विश्वास प्रदान करता है। कभी यह प्रक्रिया विपरीत दिशा से भी हो सकती है। सार्वजनिक जीवन में महिला की सक्रिय उपस्थिति, राजनीति में नेतृत्वकारी भूमिका, पूरे परिवेश के मानसिक बदलाव का साधन भी बन जाती है। इसे हमने पंचायतों में महिलाओं की उपस्थिति में देखा है। नाम मात्र की उपस्थिति और महिला पति, पुत्र, ससुर आदि द्वारा महिला के पद का काम संभालने का दृश्य आज से कई साल पहले दिखाई देता था। अंगूठा छाप, घूंघट काढ़े, 'सरपंच' या 'प्रधान' महिला घर के काम काज में व्यस्त रहती थी। महिला निर्वाचित हुईं तो फिर उनके लिये साक्षरता के कार्यक्रम चलाये गये। सरकारी मीटिंगों में उनका सम्मिलित होना अनिवार्य किया गया। ग्रामीण विकास योजनाओं में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाने लगी। इससे उनके व्यवहार और कार्यशैली में अंतर आया है। बाहर सम्मान मिलेगा, मान्यता मिलेगी तो घर में भी उनका व्यक्तित्व स्थापित होगा, आत्म विश्वास बढ़ेगा। पहले ये उसी तरह उपहास को पात्र बनती थीं जैसा आज महिला आरक्षण विधेयक के संबंध में हो रहा है। पुरुष वर्चस्व का समाज इतनी आसानी से न तो लगाम ढीली करेगा और न ही अपने हाथ का वह कोड़ा फेंकेगा जिसे वह युग-युग से फटकारता आया है।

स्त्री की संघर्ष गाथा सदियों से चल रही है। राज्य सभा में महिला आरक्षण बिल पारित हो गया है। अभी अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिये इसे लंबी यात्रा करनी है, कई बाधाएँ पार करनी हैं। चौदह साल पहले की गयी यह पहल कब अपनी पूर्णता को प्राप्त होगी, देखना होगा।

नमिता

(नमिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़यालों की ख़ुशबू को आज़ादी का इन्तज़ार

विनीत तिवारी

सन् 1925 में हुए काकोरी बम कांड के बाद क्रांतिकारियों का दल हिन्दुस्तानी प्रजातांत्रिक संघ बिखरा हुआ था। भगतसिंह ने उस संगठन के बिखरे टुकड़ों को इकट्ठा कर संगठन का नया नाम रखा–हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ। एक शब्द का यह जोड़ भारत के क्रांतिकारी आंदोलन की वैचारिकता का एक अहम् संकेत है। फिर अंग्रेज़ों के काले, दमनकारी, जनविरोधी कानूनों के खिलाफ़ असेंबली में बम फेंककर भागने के बजाय गिरफ़्तार होने का फैसला और फिर जेल में किये गये आंदोलन, हड़तालें और लिखे गये तमाम गंभीर लेखादि भगतसिंह के उसी वैचारिक विकास और राजनीतिक सूझबूझ का उत्स है।

आज़ादी के पहले के उस दौर में अंग्रेज़ों व अंग्रेजों के देशी दलालों ने काफ़ी कोशिशें कीं कि भगतसिंह और उनके साथियों के पक्ष में जनसमर्थन न जुटने पाए। उन्हें आतंकवादी और खतरनाक अपराधी साबित करने की कोशिशें भी की गईं, लेकिन विचारों की सान पर तेज हुई तलवार की चमक को कालकोठरियों का अंधेरा रोक नहीं सका। खुद गांधी जी और कांग्रेस के तत्कालीन नेतागण भगतसिंह के विचारों से सहमत नहीं थे, लेकिन इन नौजवानों के लिए देश की आम जनता अपना दिल खोलकर सड़कों पर निकल आयी थी। असहमतियों के बावजूद इस तथ्य का उल्लेख कांग्रेस के इतिहासकार बी0 पट्टाभिसीतारमैया को 'दि हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन नेशनल कांग्रेस (1885-1935)' में लिखना पड़ा कि, 'यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उस वक़्त भगतसिंह का नाम पूरे भारत में उतने ही व्यापक तौर पर जाना जाता था और उतना ही लोकप्रिय था, जितना गांधी जी का।...

भगतसिंह की शहादत को भले ही इस देश की जनता ने याद रखा हो, लेकिन भगतसिंह की एक और पहचान को सत्ता की चालाक ताकतों ने 75 वर्षों से छिपाने की ही कोशिश की है। वो पहचान भगतसिंह के विचारों की पहचान है, जिसका ज़िक्र शुरू में किया गया। उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व की समाप्ति से लेकर, लाला लाजपतराय जैसे वरिष्ठ नेता को भी गलतियों पर दो टूक कह देने जितनी साफगोई और धर्म को मनुष्य की अज्ञानता व ईश्वर के अनस्तित्व संबंधी भगतसिंह के विचार आज़ादी के बाद देश की बागडोर संभालने और संसदीय राजनीति में भागीदारी करने वाली अधिकांश राजनीतिक पार्टियों को हजम नहीं हो सकते। कांग्रेस, भाजपा को तो हर्गिज ही नहीं हो सकते और खुद वाम को भी भगतसिंह को अपना बनाने के लिए अपने भीतर झाँकना होगा। इसीलिए भगतसिंह की ज़्यादा से ज़्यादा जो छवि आज़ाद हिन्दुस्तान में प्रचारित की गई, वो एक क्रांतिकारी और शहीद की है, न कि एक नास्तिक या एक कम्युनिस्ट विचारक की।

23 बरस की उम्र के आख़िरी हिस्से में भगतसिंह उपलब्ध पुस्तकों के ज्ञान के आधार पर और अपनी गहरी विश्लेषणात्मक क्षमता के चलते मार्क्सवादी समाजवादी बन चुके थे, कम्युनिज़्म में उनका विश्वास प्रबल था, सोवियत रूस की सर्वहारा क्रांति उन्हें भारत का अभीष्ट लगती थी और धर्म तथा ईश्वर पर आस्था के अकाट्य और प्राचीनतम कहे जाते विश्वासयुक्त (कु) तर्कों को उन्होंने "मैं नास्तिक क्यों हूँ" शीर्षक के अत्यंत प्रसिद्ध लेख में तिनकों की तरह बिखेर दिया था। पक्के आर्य समाजी, सिख, फिर अराजकतावाद से होते हुए समाजवाद तक का तूफ़ानी सफर उन्होंने मात्र 23 वर्ष की आयु में पूरा किया, और यह सब किसी भावुकता, आवेश या आवेग की वजह से नहीं, बल्कि सतत् अध्ययन, आत्मालोचन, विचार, विश्लेषण की ठोस बुनियाद पर। उनका कहना था–"पढ़ो, आलोचना करो, सोचो और अपने विचार बनाओ।"

अंग्रेज़ों की गुलामी से देश को आज़ाद करवाने के लिए किये गये हर संघर्ष और कुर्बानी को बेशक बेमिसाल कहा जा सकता है, लेकिन भगतसिंह की जगह इसलिए अहमतरीन है क्योंकि वे आज़ादी के शब्द को मायना दे रहे थे। "लड़ाई तब तक लड़ी जाती रहेगी, जब तक हम इस समाज व्यवस्था को बदलकर नयी व्यवस्था नही कायम कर लें। एक ऐसी समाज व्यवस्था, जहाँ सारी जनता खुशहाल होगी और हर तरह का शोषण ख़त्म हो जाएगा।" (भगतसिंह, 20 मार्च 1931, शहादत के तीन दिन पहले)। भगतसिंह के लिए आज़ादी का मतलब न केवल अंग्रेज़ों से मुक्ति थी, बल्कि देश के भीतर मौजूद शोषक जमींदारों, राजे-रजवाड़ों, बनियों-बक्कालों, जाति-धर्म के झगड़े बढ़ाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले पंडितों-मौलवियों से भी मुक्ति थी।

1925-26 में भगतसिंह की घनिष्ठता कानपुर के ट्रेड यूनियन आंदोलन व कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के साथ हुई। तब से लेकर जेल में मिले वक्त में किये गये अध्ययन-चिंतन तक भगतसिंह ने लगातार वैचारिक विकास और क्रांति के प्रयोग किये। जेल में ही 1930 में भगतसिंह का लिखा लेख "मैं नास्तिक क्यों हूँ?" 76 वर्ष बाद भी न केवल प्रासंगिक है बल्कि तर्कहीन आस्था आधारित बहुलांश भारतीय समाज की पीठ से कुतर्कों की गर्द झाड़ने में वो अभी भी कोड़े की सी फटकार का असर पैदा करता है। भगतसिंह ने उस सच्चाई को पहचान लिया था, कि धर्म समताआधारित समाज के निर्माण में एक बड़ा रोड़ा है। इस चुनौतीपूर्ण सच्चाई से आज बहुत से प्रगतिशील कहे जाने वाले व्यक्ति अपनी लोकप्रियता में ख़तरा बनते देख कन्नी काट लेते हैं। जबकि धर्म की उत्पत्ति के, ईश्वर की कल्पना के मूल कारणों पर चोट किये बग़ैर, इन अंधविश्वासों को हटाये बग़ैर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार भला किस तरह संभव हो सकता है? इस मायने में भगतसिंह भारत के क्रांतिकारी आंदोलन के वैचारिक उत्कर्ष के प्रतीक हैं।

आमतौर पर आज़ादी की लड़ाई की जो खाँचेबंद समझदारी देश की जनता को हासिल हुई है, उसमें आज़ादी की लड़ाई लड़ने वालों को दो समूहों में बाँट दिया जाता है। एक वे जो हिंसा के रास्ते से आज़ादी के लिए लड़ रहे थे और दूसरे वे, जो अहिंसक आंदोलन के ही पक्ष में थे। दरअसल यह वर्गीकरण बहुत गलत और भ्रामक है। इससे यह ध्वनित होता है मानो पहले समूह के लोग हिंसा के अलावा संघर्ष की कोई प्रक्रिया अपनाते ही नहीं थे, सिर्फ़ बम-पिस्तौल का ही काम करते हों। जबकि सच ये है कि उनमें अनेक ऐसे थे, जो हिंसा का सहारा आखिरी विकल्प के तौर पर ही लेते थे। असेम्बली में बम फेंकते समय भी उसे एक निर्जन कोने में फेंकने का निर्णय और बाद में जेल में की गयीं कितनी ही अहिंसक हड़तालें, अनशन, आंदोलन... साफ़ उदाहरण हैं कि ये क्रांतिकारी हिंसा को अंतिम विकल्प की जगह ही स्थान देते थे और जनान्दोलन में अहिंसा के महत्व को बखूबी जानते थे।

आज के दौर में यह वर्गीकरण दुरुस्त करना और भी ज़रूरी है क्योंकि यह वर्गीकरण केवल इतिहास की समझ को ही विकृत नहीं कर रहा है, बल्कि वर्तमान को भी घायल कर रहा है। आज मनुष्य की गरिमा और जीवन पर उसके अपने अधिकार को लेकर राज्य के आतंक, अन्याय व दमन से लड़ रहे किसी भी व्यक्ति या समूह को सरकार, पुलिस प्रशासन और मीडिया नक्सलवादी कहकर आसानी से झपट्टे में ले लेता है। इन्हीं शोषक ताकतों ने मिलकर नक्सलवाद को इतना गलत प्रचारित किया है, मानो नक्सलवादी होना बेगुनाहों को मारने वाले के जैसा होना हो। नतीजा यह होता है कि एक बार किसी को नक्सलवादी या आतंकवादी का ठप्पा लगा दिया तो उसकी बेगुनाही के प्रति जुट सकने वाली जन सहानुभूति भी नहीं हासिल होती। यही कोशिश नेपाल में राजा के शोषण से जनता को मुक्त कराने के संघर्ष में लगे माओवादियों के साथ हुई। यही भारत में अनेक नक्सलवादियों और जनतांत्रिक आंदोलनकारियों के साथ हो रहा है, और यही अंग्रेजों ने भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, आज़ाद, बिस्मिल, अशफाक़ जैसे तमाम अन्याय के खिलाफ़ लड़ने वालों के साथ किया था।

बर्टोल्ट ब्रेष्ट के प्रसिद्ध नाटक "गेलीलियो" में गेलीलियो का शिष्य कहता है-"अभागा है वो देश, जहाँ नायक नहीं होते।" जवाब में गेलीलियो कहता है—"नहीं, अभागा वो देश है, जिसे नायकों की ज़रूरत पड़ती है।" हम अपनी परिस्थितियों के मद्देनज़र कह सकते हैं कि अभागा वो देश भी है जो अपने इतिहास के नायकों के साथ सही सलूक नहीं करता। दो बरस पहले वामपंथी साहित्य का प्रकाशन-वितरण करने वाली दिल्ली की सुनीता को महाराष्ट्र के पास चन्द्रपुर में पुलिस ने प्रतिबंधित साहित्य बेचने का इल्जाम लगाकर तीन दिन तक पूछताछ हेतु रोक रखा और उनकी किताबें जब्त कर लीं। हालाँकि उनमें प्रतिबंधित किताब कोई नहीं थी और आखिरकार पुलिस ने सुनीता को छोड़ा भी। लेकिन सुनीता से उस दौरान पुलिस ने जो सवाल पूछे, उनमें से एक सवाल हमारे आज़ाद भारत के शासन-प्रशासन व जनता के अंतर्संबंध को समझने के लिए काफ़ी मददगार है। सवाल था—"जब देश आज़ाद हो गया, तो भगतसिंह की किताबें काहे को बेच रही हैं ?"

ज़ाहिर है शासक वर्ग को भगतसिंह के आज़ादी के अर्थ से अभी भी गहरा ख़तरा महसूस होता है, लेकिन भगतसिंह को ख़तरा ऐसे आधे-अधूरे प्रशंसकों से भी है, जो 76 बरस तक उनके शहीद होने की तो याद करते रहे, लेकिन उनके खयालों की ख़ुशबू को फैलने से रोके रहे। भगतसिंह आज जीवित होते तो सौ बरस से ज़्यादा के होते लेकिन जैसा कि उन्होंने कहा था—"हवा में रहेगी मेरे खयाल की खुशबू, ये मुश्ते-खाक है फानी, रहे न रहे।" उनके खयालों की खुशबू फैलाने और अपने नायक के साथ सही सलूक कर इस देश को अभागा बनने से बचाने की जिम्मेदारी उन सबकी है, जो इस वक्त में हैं।

2, चिनार अपार्टमेंट्स, 172, श्रीनगर एक्सटेंशन, इन्दौर-452018

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी अपनी राह अलग थी

डॉ0 विजय बहादुर सिंह

कवि मुकुट बिहारी 'सरोज' तीन-चार कारणों से बेहद महत्वपूर्ण हैं। मानता हूँ पहला कारण तो यही कि वे एक मौलिक और सच्चे कवि थे, लकीर पर चलने और उसे पीटने वाले नहीं। इस बहस में न जाते हुए कि काव्यगत सच्चाई और मौलिकता क्या होती है इतना ही याद दिलाऊँगा कि जीवन के गहन और सूक्ष्म अनुभवों की पकड़ और अभिव्यक्ति का सौंदर्य उनमें था। कबीर इसे 'आँखने देखी' और तुलसी 'सत्य' का साक्षात्कार और बयान कहते रहे हैं। इसे सरल किया जाये तो आँखो के देखे जीवन सत्य की कथा। कुछ लोग कविता लिखने ज़रूर हैं पर सत्य उनकी पकड़ में कभी नहीं आता। कवि सबसे पहले इसी सत्य की साधना करता है। सरोज जी की कविता यही करती रही।

उनका यह सत्य जितना राजनीतिक था उतना ही सामाजिक भी। इसी आधार पर सांस्कृतिक भी। आज़ादी के बाद का जीवन जिस मूल्य-पतन या कहिए, अपकर्ष की ओर बढ़ रहा था, कवि सरोज उसे ग़ौर से लक्ष्य कर रहे थे और चिंताग्रस्त होते जा रहे थे। वह ज़माना प्रयोगवादियों और नए माने जाने वाले कवियों का था जो यह दावेदारी लेकर आए थे कि कविता मध्यवर्ग की अपनी निजी मुश्किलों, मनोवैज्ञानिक उलझनों, गूढ़ बौद्धिकता, गद्यवृत्तात्मकता और अर्थ की लय का नाम है। एक ऐसा विशिष्ट पर्यार्थ जिसका संबंध उस आम नागरिक आबादी से नहीं है जिसे पहले के लोग और आज के आलोचक जन-समाज कहते हैं। सरोज जी कभी भी इस ओर नहीं गए, न ही यह मंजूर किया कि आज़ादी का मतलब चुनिंदा मध्यवर्ग की आज़ादी है। एक ऐसा मध्यवर्ग जिसके अपने सुख-दुख ही राष्ट्रीय हैं। वे इस विश्वास में दृढ़ रहे कि स्वतंत्रता संघर्ष में केन्द्रीय और आधार भूमिका आम आदमी की थी इसलिए कविता की जिम्मेदारी यही है कि वह उसकी भावनाओं, विश्वासों और सपनों की रक्षा करें। ...संघर्ष विमुख, अवसरवादी मध्यवर्ग के पक्ष में जाने के विरुद्ध वह उस आत्मविश्वासी, जुझारू और नैतिक जन समूह के प्रति अपनी प्रतिबद्धता ज़ाहिर करे जिससे भारत की पहचान बनती है। यह वही रास्ता था जो प्रेमचंद्र का था। उन तमाम कवियों और लेखकों का था जो इस विशाल जन समूह के प्रति समर्पित थे।

सरोज की कविता की राजनीति यही थी। वह अपने श्रोताओं को गुदगुदाने या मुग़ालतों में रखने का काम कभी नहीं करती थी। बजाय इसके वह हमेशा उनकी राजनीतिक सोच को तोड़कर सचेत किया करती थी। उन्हें उन सदमों और ख़तरों से आगाह करने का काम करती थी जिनसे सामाजिक जीवन और लोकतांत्रिक मर्यादाओं को भी भारी ख़तरा था।

एक कवि के रूप में उन्होंने शायद ही कभी अपने श्रोताओं को किसी सत्ता राजनीति की तरफ़ जाने के लिए बरगलाया हो जैसे कि कुछ कथित नामधारी कवि इन दिनों कर रहे हैं। सरोज तो उस राजनीति की बात किया करते थे जिसमें व्यापक समाज का मूल्य बोध और उसका उत्कर्ष-विधान शामिल था। वे लोकहित जिनसे कोई कविता लोक के भरोसे की चीज बनती है। सरोज की कविता में ये भरोसे आज भी सुरक्षित हैं। वह बार-बार हमें उन मूल्यों के प्रति सजग करती है जो बिला हैं और उन पर हमलावर दिखती है जो वस्तुतः अपमूल्य हैं। कवि की एक कविता है—इन्हें प्रणाम करो ये बड़े महान हैं—कविता में व्यंग्य की धार बहुत तेज है और उस विवेचना का सौंदर्य ऐसा कि पनपती हुई छद्म महानता की कलई खुलती चली जाती है। मिथ्या सत्यों को उघार कर लोक का ध्यान उन सचमुच के सत्यों की तरफ़ ले जाना जिससे सांस्कृतिक जीवन की रक्षा होती है।

व्यंग्य शैली के लिए आधुनिक कवियों में सबसे ज़्यादा चर्चा नागार्जुन की होती है। उन्होंने इस काम को बखूबी किया भी है और विस्तार से। सरोज जी ने इतने विस्तार से तो यह नहीं किया है। वे ज़्यादातर एक शिक्षक-कवि के रूप में सामने आते हैं जिससे व्यंग्य भी उनकी मदद करता है। 'भीड़-भाड़ में चलना क्या कुछ हटके हटके चलो'... जैसी कविताएँ केवल उपदेश नहीं हैं, शिक्षा भी हैं। किन्तु जैसे ही 'एक ओर परदों के नाटक एक ओर नंगे, जैसी कविता के पास हम पहुँचते हैं, कवि के आशयों के पीछे सक्रिय करूणा और उससे उपजे क्षोभ का अंदाज भी स्वतः लग जाता है। उन अपेक्षाओं का भी जिन्हें समझने के लिए राममनोहर लोहिया का यह कथन ही पर्याप्त होगा कि ज़िंदा कौमें पाँच साल तक इंतजार नहीं करतीं। सरोज की एक कविता में यह आशंका दृढ़ विश्वास और संकल्प में ढली हुई मिलती है—मरहम से क्या होगा यह फोड़ा नासूरी है, अब तो इसकी चीर-फाड़ करना मज़बूरी है। इस पंक्ति में फोड़े का जो बिंब रचा गया है और चीड़-फाड़ की मजबूरी की बात कही गई है उसे समकालीन भारत को समझाने की जरूरत तो शायद पड़े और उन्हें तो समझाया ही नहीं जा सकता जो मुट्ठियों में रामबाण लिए बेहद आश्वस्तकारी मुद्रा में बैठे हैं कि जिस दिन भी उनका राज आएगा सारे दुख-दारिद्रय मिट जाएँगे। सरोज की कविता से काफी पहले एक कवि ने लिखा था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उथल-पुथल मचनी ही चाहिए। सरोज के बाद भी कवियों की एक विरादरी इस बात में यकीन रखती है कि सारे मरहम बेअसर हो चुके हैं, क्रांतिकारी बदलावों की ज़रूरत है। पर सिद्धांतों से चिपके हुए कवियों को न मरहम उपयोगी जान पड़ता है, न चीर-फाड़ जरूरी लगता है। वे सब जीवन यथार्थ का कुरूक्षेत्र छोड़कर सिद्धांतों की राजधानियों में धृतराष्ट्रों के साथ आ बैठे हैं और जीवन की स्वार्थपूर्ण व्याख्याओं के घूरे तैयार कर रहे हैं। उत्प्रेरणा का सौंदर्य उनकी काव्य-प्रतिज्ञा नहीं है। 'सर्वहारा' उनके यहाँ एक ठस्स और जड़ अवधारणा है और क्रांति एक किताबी सपना। सरोज को ऐसे सपनों और उन्हें देखने वालों से भारी चिढ़ थी।

जिस अन्य कारण से सरोज महत्वपूर्ण लगते हैं वह उनकी जन-संप्रेषणीयता और जनोन्मुखी काव्य-विवेक है। उन्हें पता है कि भारत की आम आबादी कैसे काव्य की अपेक्षा कर रही है। यह भी कि उसके काव्य बोध में कबीर, सूर, तुलसी, मीरा के साथ-साथ भी ग़ालिब की रेख्ता शायरी भी शामिल है। वे लिखी हुई पंक्ति से अधिक कही हुई काव्य पंक्ति में सौंदर्य देखने के आदी हैं, वह बोली या ज़ुबान जिसके काव्य मुहाबरे ज़िंदगी में जहाँ-तहाँ चल फिर रहे हैं। सरोज की कविता में यह मुहावरेदानी ख़ूब है। ठीक भवानी मिश्र की तरह 'जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ' जैसी कविताओं की तरह। कथित नव-वाम कविता के लिए ये मुहावरे अनुपयोगी से हो उठे हैं। वह आम बोलचाल की लय से दूर खड़ी है और उस धर्म का निर्वाह कर रही है जिसे चतुराई का धर्म कहते हैं। उसकी मंशा कभी भी यह नहीं है कि वह आम भारतीय आबादी का मार्मिक और प्रामाणिक बयान बने। विपरीत इसके उसकी दिली मंशा उस सत्ता साहित्य में है जिसके समीप होने से कविता कवि के लिए एक ख़ूबसूरत कैरियर या अवसर बन जाती है। सरोज ने हमेशा इन अवसरों को नकारा और झुठलाया और विकसित किया जो लोक समादृत हो। अपनी इस अनूठी काव्य-दृष्टि को उन्होंने जिन छंदों में लयबद्ध किया, उनमें वार्तालाप का सौंदर्य भरा हुआ है। कविता जैसे एक जन-संवाद हो। जिन काव्य-पंक्तियों को पहले के पन्नों पर उद्धृत किया है उन पर नए सिरे से गौर कर यह सहज कथन किया जा सकता है कि सरोज एक संवाद प्रिय कवि हैं। वे अपनी सारी गहरी और ज़रूरी बातें बातचीत की लय में रखते हैं। कविता और उसके श्रोताओं के बीच यही एक शैली है जो ऐसा सेतु रचती है जिस पर दोनों पक्षों की आवाज़ ही सुगम और सुखद हो सके।

हमारे बहुत सारे कवि जो स्वयं को जन-समर्पित कहते हैं, इस बात की रंचमात्र भी परवाह नहीं करते कि लोग, कॉमन या आम कहे जाने वाले भले ही ऊँची डिग्रीधारी न हों पर उनकी हृदयता की मात्रा में कोई कमी नहीं है। ऐसा अगर होता तो हर बाद वे सरकारों की इस तरह अदला बदली नहीं करते। धर्म, सुंदर-असुंदर, हित-अनहित, स्वार्थ-परमार्थ की उनकी ेयाँ बहुत गहरी और बारीक हैं। कबीर की तरह स्कूल से बाहर रहकर भी वे एकलव्य की तरह अपने शर-संधान में निपुण हैं। उनकी काव्य चेतना में सूर, तुलसी, कबीर समाए हुए है। वेद-उपनिषद के सार-सत्य भी। जो जन-समूह लोकतांत्रिक तौर पर इतना आत्म सजग है वह अपने कवियों के अयोग्य और उनकी कविता के लिए अपात्र है, ऐसी समझ सिर्फ़ उन्हीं की होगी जो इस देश की काव्य-विरासत और जन-चेतना से अपरिचित हैं। जिनका 'कॉमन मैन' आस-पास के जीवन में नहीं, किन्ही बड़ी मानी जाने वाली किताबों से चलकर आता है या जिसे वे उस दुरूह और गूढ़ कल्पना शक्ति से गढ़ते हैं जिसका चरित्र अभिजात-धर्मी है। अभिजातधर्मी साम्यवाद।

ये कवि उस प्रकृति भावुकता को बहुत कम हृदयंगम कर पाए जिससे कोई कविता सामाजिक विस्तार पाती है। अपने-अपने समय में इसे कई कवियों ने समझा जैसे कि दुष्यंत कुमार। खुद रघुवीर सहाय भी। यह कहना बेमानी है कि रघुवीर सहाय की काव्यभाषा में उनकी पत्रकारिता का योगदान है। तब पूछना पड़ेगा कि उनकी पत्रकारिता में जो भाषा है उसमें किसका योगदान है। क्या उसी जनसंवाद का नहीं जिसके स्रोत आम आबादी में है? पत्रकारिता को अपनी उस आम आबादी तक पहुँचाने के लिए जिन मुहावरों की ज़रूरत पड़ती है उसी आम आबादी तक पहुँच पाने की साधना कविता को भी क्यों नहीं करनी चाहिए? हाँ, मुझे यह मानने में और कहने में कोई परेशानी नहीं कि पत्रकारिता सतह के यथार्थ की और कविता गहरी सतहों की भाषा है। दोनों को एक करके समझना बौद्धिक है। कविता चाहे जितना पोस्टरबाजी तक उतरे फिर भी रहना तो उसे कविता होकर ही पड़ेगा।

कवि सरोज का मानस इन सब बातों को लेकर एकदम साफ़ था। वे इस मुगालते में भी नहीं थे कि वे पंत, निराला, बच्चन और दिनकर के प्रतिद्वंद्वी हैं। वे तो उस गँवई घरेलू चिराग की तरह थे जो अपने हिस्से के भूगोल के अँधेरों से लड़ने के लिए जी-जान से जीता है। उसे यह पीड़ा नहीं सताती कि वह पाँच सौ या हज़ार वॉट का क्यों नहीं है। उसे तो बस जलना और जलते जाना है। सरोज अपने समय के अँधेरों के बीच ऐसे ही एक चिराग थे जिन्हें किसी द्वापरवासी ईश्वर से कहीं अधिक उस आदमी पर भरोसा था जो सचमुच अपना भाग्य विधाता था, जो 1857 से 1947 तक निरंतर लड़ता और कुर्बानियाँ देता आ रहा था, जिसे न्यायपूर्ण जीवन सबसे श्रेयकारी सपना लगता था और सत्य और स्वतंत्रता जीवन के सबसे बड़े मूल्य।

ऐसे कवि को याद करना उस विरासत और आदर्श को याद करना है जिससे मानवीय गरिमा की रक्षा होती है और पाश्विक मर्यादाएं सकते में आने को विवश दिखती हैं।

संपादक-वर्तमान
भारतीय भाषा परिषद, 36-ए, सेक्सपियर सरणी
कोलकाता-700071

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके सामने सदैव राह ही हारती रही

वीरेन्द्र जैन

शील जी के दर्शन सबसे पहले मैंने वाराणसी में किये थे। 1984 में जनवादी लेखक संघ का दूसरा राष्ट्रीय सम्मेलन था। मैं जब तक सम्मेलन हॉल में पहुँचा, तब तक उद्घाटन कार्यक्रम प्रारंभ हो चुका था। अध्यक्ष-मंडल में जो लोग मंच पर थे, उनमें एक नाम मन्नू लाल 'शील' का भी था। उस सम्मेलन में मेरा उनसे इतना ही परिचय हुआ कि मेरे दिमाग़ में उनका क़द स्थापित हो गया। पर, मैं उनकी प्रतिभा और रचना-कर्म से अभी अनजान था। सम्मेलन समाप्त होते ही उनसे औपचारिक भेंट भर हुई थी। उन दिनों मैं मध्य प्रदेश के हरपालपुर नामक बहुत छोटे से क़स्बे में पदस्थ था। इसके बाद मैं बैंक में इंन्सपेक्टर बना दिया गया, जिससे घर-परिवार, अपने पैतृक मकान दतिया में स्थापित कर, मैं नौकरी-नगारी द्वारे-द्वारे भटकने के लिए निकल पड़ा था। इस दौरान मैं एक साल से अधिक मथुरा, गया, भागलपुर, बदायूँ, बिल्सी, कानपुर, बाराबंकी आदि शाखाओं के निरीक्षण में बिताये। उन्हीं दिनों मेरे बैंक 'हिंदुस्तान कॉमर्शियल बैंक' पर रिजर्व बैंक ने मोरेटोरियम लगा दिया व सारे इंन्सपेक्टरों को हैड ऑफ़िस कानपुर बुलाकर विभिन्न स्थानीय शाखाओं में लंबित काम को पूरा कराने के लिए भेज दिया गया। इस आदेश से बैंक के खातों का पूरा लेन-देन बंद हो गया। यहाँ तक कि वेतन आदि खर्चे भी रिजर्व बैंक की अनुमति के बाद नगद भुगतान किये जाने लगे।

ऐसे ही एक दिन एक बुजुर्ग सज्जन जो पैंट पर कुर्ता पहने थे बैंक काउंटर के बाहर किसी से कुछ पूछ रहे थे। उस दिन इस शाखा के सब-मैनेजर छुट्टी पर थे और मैं सब-मैनेजर की कुर्सी पर बैठा हुआ था। मुझे उन सज्जन की शक्ल कुछ जानी पहचानी लगी और स्मृति पर ज़ोर डालने पर याद आया कि ये तो शील जी हो सकते हैं। मैं उठकर उनके पास गया और पूछा कि क्या शील जी ही हैं। उनके 'हाँ' कहने पर मैं उन्हें अंदर ले आया और कुर्सी आने तक उन्हें अपनी कुर्सी पर बैठने के लिए कहा। उन्होंने कहा, "नहीं! यह तो आपकी कुर्सी है" और पास ही पड़े एक सोफ़े पर बैठ गये। मैंनें उन्हीं के पास खड़े होकर जब उन्हें अपना परिचय दिया और बताया कि मैं जनवादी लेखक संघ से हूँ और आपसे वाराणसी में मिल चुका हूँ, तब उस वयोवृद्ध चेहरे पर कृतज्ञता के भाव आये, उसकी स्मृति मुझे आज भी रोमांचित करती है। मैंने जब उन्हें उक्त शाखा में होने का कारण बताया, साथ यह चर्चा भी सामने आयी कि बैंक के लेन-देन बंद होने से लोगों का वेतन-खाता भी बंद है; तब उन्होंने केवल मुलाकात में ही अपनी पैंट के अंदर की जेब से चार सौ रुपये निकाले और मुझे देते हुए बोले कि इस परदेश में तुम्हें परेशानी हो रही होगी। इस स्नेह और संगठन के व्यक्ति होने भर के रिश्ते से अपनी महीने भर की पेंशन देने का आग्रह करने वाले व्यक्ति की आत्मीयता देखकर मेरी आँखें भर आयीं। वे 'ए' श्रेणी के स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी थे और हर महीने उन्हें पेंशन मिलती थी, उसी को निकालकर ला रहे थे। मैंने उन्हें बताया कि वेतन तो मिल रहा है, पर वह नगद मिल रहा है, इसलिए पैसे का कोई संकट नहीं है। मेरी बात पर उन्हें तब विश्वास हुआ, जब उन्होंने अपने एक परिचित—बैंक के बहुत वरिष्ठ ट्रेड यूनियन लीडर जे0डी0 मिश्रा से उसकी पुष्टि कर ली, जो उनके पुराने साथी थे। उन्हें लग रहा था कि मैं संकोच में उनसे ऐसा कह रहा हूँ। उसके कुछ ही दिनों बाद कानपुर में जनवादी लेखक संघ का ज़िला सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें मथुरा से प्रो0 सव्यसाची आये, तो मैंने उन्हें पूरी घटना सुनायी। तब उन्होंने मुझे शीलजी के बारे में विस्तार से बताया, जिसे सुन कर मैं रोमांचित हो उठा। मुझे लगा कि मेरा कितना बड़ा दुर्भाग्य था कि मैं उस व्यक्तित्त्व के विराट रूप से बिल्कुल ही परिचित नहीं था।

शील जी वे व्यक्ति थे, जिनका लिखा गीत 'देश हमारा धरती अपनी, हम धरती के लाल, नया इन्सान बनाएँगे, नया संसार बसाएँगे', आज़ादी के बाद देश के हिंदी भाषी क्षेत्र के हज़ारों स्कूलों में प्रार्थना के रूप में गाया जाता रहा है। यह गीत ही असल में ऐसा गीत है, जो धर्मनिरपेक्ष देश के स्कूलों में गाया जाना चाहिए था और तब इसका चुनाव करने वालों ने सही चुनाव किया था। पर, पता नहीं कैसे कुछ स्कूलों में इसकी जगह 'हे प्रभो, आनंद दाता ज्ञान हमको दीजिए ने ले ली। उन्होंने बताया था कि वे एक बार किसी सम्मेलन में किसी क़स्बे में गये हुए थे, तो सुबह-सुबह उन्होंने पाया कि उनके कमरे की खिड़की से स्कूल के बच्चे झाँक-झाँक कर भाग जाते थे। बाद में, मालूम करने पर उन्हें पता लगा कि स्कूल के अध्यापक ने उन्हें बताया होगा कि 'धरती के लाल' आये हैं और उनको देख भर लेने की जिज्ञासा ही बार-बार खिड़की से झाँक लेने को उकसा रही थी। वहाँ के स्कूल में वही प्रार्थना गायी जाती थी।

शील जी ने स्कूली शिक्षा बहुत अधिक नहीं पायी और वे कम उम्र से ही कम्युनिस्टपार्टी से जुड़ गये थे, इसलिए उनकी शिक्षा पार्टी की कक्षाओं और व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर ही हुई। कम्युनिस्ट पार्टी ही ऐसी पार्टी है, जिसमें राजनीतिक प्रशिक्षण के लिए नियमित रूप से कक्षाएँ लगती हैं और प्रत्येक सदस्य का कक्षाओं में भाग लेना ज़रूरी होता है। वे उन बिरले लेखकों में से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे, जो आंदोलन में पचासों बार जेल गये और रोचक यह है कि वे जितनी बार आज़ादी के पूर्व जेल गये, उतनी ही बार आज़ादी के बाद भी जेल गये।

शील जी बताते थे कि उनकी शादी भी हुई थी, पर वह बहुत ही बचपन में हुई थी। गाँव में फैली किसी बीमारी के कारण उनकी पत्नी का निधन हो गया। जब वे फ़िल्मों में गीत लिखने मुंबई गये, उस दौरान उनका प्रेम प्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेत्री गीता बाली से चला, पर किसी आंदोलन के दौरान वे जेल चले गये और तभी उसने शम्मी कपूर से शादी कर ली। उन्होंने सव्यसाची जी को कभी बताया था कि वे एक बार कार में बैठे गीता बाली से बातें कर रहे थे। तब गीता बाली कुछ अधिक ही रोमांटिक बातें करने लगी थी, पर जब उन्होंने अगली सीट पर बैठी उसकी बहन की ओर इशारा किया, तो वह बोली कि वह तो गूँगी और बहरी है।

देश के जन-नाट्य के इतिहास में 'पृथ्वी थियेटर' का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाता है। उन्हीं पृथ्वीराज कपूर ने शील जी के लिखे नाटक 'किसान' के आठ सौ से ज़्यादा शो किये। बाद में यह नाटक आकाशवाणी ने बिना उनसे अनुमति लिए प्रसारित कर दिया। इस पर शील जी ने आकाशवाणी के ख़िलाफ़ मुक़दमा दायर किया, जिससे अंत में आकाशवाणी को समझौता करना पड़ा और समझौते के अंतर्गत अन्य शर्तों के अलावा उन्हें एक साल के लिए आकाशवाणी के सलाहकार बोर्ड का सदस्य भी बनाया गया था। शील जी को 'ए' ग्रेड स्वतंत्रता-सेनानी होने के कारण कानपुर की किदवई नगर जैसी महत्त्वपूर्ण कॉलोनी में एक बड़ा प्लाट मिला था और महँगी ज़मीनों वाले किदवई नगर में वह अकेला प्लाट ऐसा था, जिस पर निर्माण नहीं हो सका था। बमुश्किल उन्होंने उस पर एक बेढंगा-सा कमरा बनवा लिया था, जिसमें फ्लश वाला शौचालय तक नहीं बना था। पर, उन्होंने मेरे देखते-देखते आनन-फानन में तब शौचालय बनवाया, जब उनके यहाँ कर्णसिंह चौहान आने वाले थे और उनके पास ही रुकने वाले थे। दिल्ली के प्रोफ़ेसर कर्णसिंह चौहान ही वह व्यक्ति थे, जिन्होंने शील जी के बिखरे साहित्य को एकत्रित करवाकर प्रकाशित करवाया था। पर, उस बार कर्णसिंह नहीं आ सके थे।

उनके उक्त घर में पहुँचने पर वे बहुत ही ख़ुश होते थे और एक मिनट में आने को कहकर पता नहीं कब बाहर निकल जाते और ढेर सारी खाने-पीने की सामग्री लेकर आ जाते थे। मुझे शर्म आती कि यही लाना था, तो मुझ से कह देते, मैं जाकर ले आता। उसके बाद स्वयं ही स्टोव जलाकर चाय बनाते और वहीं फ़र्श पर ही बैठकर खाया पिया जाता।

जून, 1995 के 'नया पथ' में शिवमंगल सिंह सुमन का एक लेख छपा था, जिसमें उन्होंने उन्हें गहरी आत्मीयता से याद करते हुए लिखा था कि "शील एक बड़े और, सच्चे जन कवि थे।" वे कहते है कि "हमारी मुलाकात सन 1942-43 में बंबई के एक कवि-सम्मेलन में हुई थी, विक्रम संवत 2000 पूरा होने के अवसर पर। तब एक बहुत बड़ा जलसा हुआ था, जिसमें आयोजित कवि-सम्मेलन लगातार तीन दिन तक चलता रहा था। उन दिनों शील मंच पर बेहद लोकप्रिय कवि हुआ करते थे। उसके बाद तो हमने ऐसे अनगिनत कवि-सम्मेलन किये, जिसमें शील, सुमन, प्रदीप और गोपाल सिंह नेपाली साथ-साथ रहे। हम लोगों के साथ ही सरदार जाफ़री, कैफ़ी आज़मी, जाँ निसार अख़्तर और मजाज़ लखनवी हुआ करते थे। पर, शील में पार्टी और विचाराधारा के प्रति अद्‌भुत समर्पण था। वे कानपुर में कार्मिकों के नेता भी थे, उनकी कविता में आग थी। 42-43 में ही कानपुर में मज़दूरों की हड़ताल के प्रमुख नेता के रूप में काम करने वाले शील ने कवि-सम्मेलन का आयोजन भी करवाया, जिसमें राहुल सांकृत्यायन और कैफ़ी आज़मी भी पहुँचे थे। उसमें कैफ़ी ने सुनाया था—'तुझे बुझते हुए चूल्हों की कसम, कल चिमनी में आग न खिले।' सुमनजी लिखते हैं कि "उस कवि -सम्मलेन में उन्होंने उन दिनों की अपनी प्रसिद्ध कविता 'मास्को अब भी दूर है' सुनायी थी, पर शील जी ने जो कविता सुनायी, उससे वे छा गये थे।"

शील ने कविता और कर्म दोनों ही तरह से काम किया। नागार्जुन, शील और केदारनाथ अग्रवाल की त्रयी में शील जी ही थे, जिन्होंने बाकायदा मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता ली रखी थी। वे न केवल नियमित रूप से लेवी देते थे, अपितु पार्टी के सारे अभियानों मे भागीदारी करते थे।

मेरी एक कविता उन्हें बहुत पसंद आयी थी और जब [illegible] उनकी अध्यक्षता में मैंने कविता-पाठ किया, तो उन्होंने वह कविता सुनाने का आग्रह ज़रूर किया। मेरी समझ में नहीं आया कि वह कविता उन्हें क्यों पसंद आयी है, सो एक दिन मैंने उसका कारण भी पूछ लिया। वे बोले कि उस कविता में बिंब साफ़ बनता है और कविता में यही होना भी चाहिए। यह सन् 1986 की ही बात है। उन्हें बिहार के हजारीबाग से निमंत्रण मिला था और वे चाहते थे कि मैं भी उनके साथ चलूँ। स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी के नाते जो उच्च श्रेणी का पास मिला था, उसमें दो व्यक्ति यात्रा कर सकते थे। पर, मैं किसी उलझन में था और नहीं जा पाया। जब वे लौटकर आये, तो उन्होंने बताया कि कार्यक्रम तो अच्छा रहा, पर [illegible] से उन्हें पाँच सौ रुपयों की जो राशि मिली थी, वह रास्ते में किसी ने निकाल ली। उन दिनों पाँच सौ बहुत होते थे। मुझे सचमुच अफ़सोस हुआ, पर उन्हें कोई परवाह नहीं थी, वे हँसते रहे।

उनके कोई दूर के रिश्तेदार उन दिनों बहुत आने लगे थे। तब उन्होंने बताया था कि उनकी निगाह इस प्लॉट पर है, वे इसे पार्टी को देकर जाऊँगा। अंत समय में वे कैंसर से पीड़ित हो गये थे। तब उनके रिश्तेदार ने आना बंद कर दिया था। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने ही उनके अंतिम समय में साथ दिया। वे इस विराट व्यक्तित्व मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को विरासत में देकर विदा हुए।21 शालीमार स्टर्लिंग रायसेन रोड अप्सरा टॉकीज़ के पास, भोपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

सुनीता जैन

ने चुना
ने घर के लिए चुना आँगन
उसे लीपा

ने मन के लिए चुना
और उसे रोपा

ने उड़ने के लिए चुना
काश बहुत छोटा

ने गीत के लिए चुना
काश अपने प्रिय का

गाना–
चार धाम
ने जाना !

लाया
गया
रह के उपकरण
छोटी डिब्बी में
रंग,
को लाया वह
सा गोल पिघलाकर।

लाया थोड़ी सी चाँदी कूटकर
लौना
कर
का सूत भी
लाया कात कर

सब से अंत में
वह लाया
अपने नाम का एक हिस्सा
स्त्री के नाम संग गाँठ कर।

अब स्त्री की बारी थी
देने की
बदले में कुछ।

स्त्री का देना–
नहीं–देते जाना
चुका नहीं है
आज तक

जीवन भर की आग

नहीं मन में
मन चपल रहा
अंगों में नहीं
राग–

दो मुट्ठी भी
राख हुई न
जीवन भर की आग।

सी-132, सर्वोदय एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017

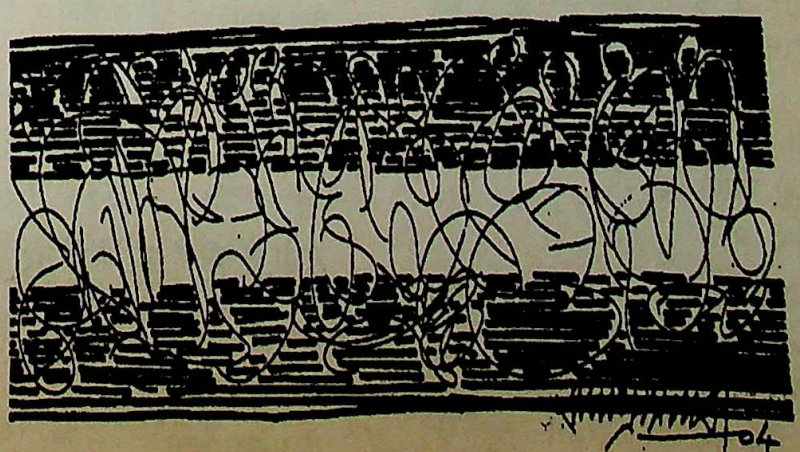

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

प्रेम रंजन अनिमेष

अनुपस्थिति

:1:

एक जोड़ी
चप्पलें हो गयी हैं खाली
पिता अब चल नहीं पाते
पहन नहीं पाते उन्हें

एक छड़ी
घर में होते हुए
आधी हो गयी है अकेली
कभी कभी
हाथ में उसे थामे
बैठते हैं
दवा या खाना खिलाये जाते समय
चल तो नहीं पाते उसके भी सहारे
किसी के सहारे

बिस्तर पर भी
कैसे सिमट गये हैं
यह शय्या भी
सूनी होने ही वाली
पर हममें से कोई नहीं चाहता
सोच में भी नहीं सोचता
कौन लेगा उनकी जगह

लेकिन वे
क्या चाहते होंगे
अभी अगर
सोचते होंगे

शायद इतना ही
कि रहें
हृदय में हमारे
जहाँ अब भी हैं....

अनुपस्थिति

:2:

एक डायरी
और कलम
हर नये साल
देता उन्हें
सबसे पहली
अबकी भी दी
आने वाले साल भी
ले आऊँगा
उनकी देने के लिए

हालाँकि पिछले सालों से
कुछ लिख पढ़ नहीं पाते

जो आदमी इतना पढ़ता लिखता था
अक्षरों को केवल तकता

अब इनका
क्या होगा
कहती माँ
दिखलाकर
दराज में रखी डायरियाँ

सादी लगती हैं पर जो हैं नहीं...

दी हुई सौगात
वैसे भी कोई कैसे
ले सकता भला
मुझे भरोसा है
एक सुबह उठकर देखूँगा
सारे के सारे पन्ने
भरे होंगे
और उनमें जगमगा रही होगी
पिता की जीवनी...

माँ की याद

एक बच्चा उनके भीतर
रहा हमेशा

जरा सा
ज्वर ताप दुख
कोई रोग
कोई पीर

गुहारने लगते
माई... माई...!

कोई अंतर्द्वंद्व
कोई असमंजस
अपनी फिक्र
दुनिया की चिंता

मन सीधे माँ पुकारता

पर इन दिनों
सब भूल गये
कोई सुध नहीं
जैसे किसी शून्य में खोये
कोई दुख चिंता आशंका नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत मार्मिक था
पिता से माँ ने पूछा-
क्यों अब नहीं पुकारते
माँ क्या नहीं आतीं
याद में... सपने में....?

माँ की याद : 2:
दूर की दृष्टि
साफ़ है अब भी
निकट की
धुँधला गयी

पहली स्मृतियाँ
अमिट हैं अब तक
कोई बरसों पहले का
सामने आ जाये
तुरंत उसे
पहचान लेते

पर अभी
हाल की
बातें बिसर जातीं

जैसे कि दवा ले ली है
खाना खा लिया
गुसलखाने नहीं गये...
लगता है
पागल हो जायेंगे
कभी कहते
पर हम आश्वस्त हैं

जैसे अंदेशा है अहसास है
अपने बावलेपन का
वह कतई वैसा
नहीं हो सकता

[illegible]
बच्चों के साथ
[illegible] उन्हें भी उठाया जाता
कि बिस्तर न हो गीला

[illegible]

जीवन का शिखर
इख्तियार
अपने पानी पर

बचपन यहाँ तक
पहुँचा जाता
उसके जाते
पीछे-पीछे
चला आता बुढ़ापा..

निहोरा
बूढ़ा भी तो
बच्चा ही

बच्चे की तरह
देखना भालना
पोसना पालना

हाँ कभी-कभी
डाँटना भी

पर ठेलना झटकना
मत हाथ उठाना
कभी भूले

हाँ हाँ
नहीं तो
काँपेंगे हाथ तुम्हारे
बुढ़ापे में

ऐसे क्या देख रहे
जैसे कभी
उमर होगी नहीं...

समझावन
अब जो कुछ होंठों से फूटता
एक तंज उसमें होता
बासी जी की खटास
उसकी तिक्तता

बैठे बैठे अगोरते
धोते रोते धोते
चिड़चिड़ी सी हो गयी

माँ सब मानते
बहुत तुम पर
बोझ पड़ गया
पिता लाचार हुए
जबसे

पर इस तरह
इस वितृष्णा के कुंठ में
डूबते उतराते
कैसे चलेगा

कब तिरेगी
कब फिरेगी मिठास
जब उड़ जायेगा चिड़ा...?

विश्वास है मिठास
और मिठास में
जीवन की ओस
जीवन की आस

हालाँकि जानता हूँ
आसान है समझाना
और सचमुच मुश्किल जीना...

एस-3/226,
रिज़र्व बैंक अधिकारी आवास,
गोकुलधाम, गोरेगाँव (पूर्व) मुंबई-400063

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़िंदगी मेरे घर जाना

देवाँशु पाल

मैं एक साहित्यिक मासिक पत्रिका के संपादक के पद पर कार्यरत हूँ और नलिनी इस शहर से निकलने वाले एक दैनिक अख़बार की रिपोर्टर है।

इस वक़्त मैं कॉफ़ी हाऊस में नलिनी के आने का इंतज़ार कर रहा हूँ। अक्सर हम दोनों शाम के वक़्त इसी कॉफ़ी हाऊस में मिला करते हैं। पिछली मुलाकात बुधवार को हुई थी और आज सोमवार है।

नलिनी और मैंने एक साथ, एक ही कॉलेज से राजनीतिशास्त्र में एम.ए. किया है। कॉलेज के दिनों में वह काफ़ी डरी-डरी-सी और शर्मीली-सी रहती थी। मुझे याद है उन दिनों की बात, जब कॉलेज छोड़ने के कुछ ही महीने के पश्चात एक दिन नलिनी से मेरी मुलाकत एक मेडिकल दुकान पर हुई थी।

"हेलो नलिनी, कैसी हो"? मैंने उसके पास जाकर कहा। वह एकाएक मुझे देखकर आश्चर्यचकित हुई, मैंने सहज होकर कहा—"मैं प्रीतिश हूँ।"

"जानती हूँ," नलिनी मुस्कुराकर बोली।

"और कैसी हो?"

"ठीक हूँ।"

"तुम बबली को तो जानती हो। हमारे साथ ही पढ़ती थी। वह पिछले पंद्रह दिन से ज़िंदगी और मौत से जूझ रही है। पति और ससुराल वालों ने उसे जलाकर मार डालने की कोशिश की थी, पर वह मरी नहीं है। लेकिन, उसका शरीर बुरी तरह से झुलस गया है। तुम चलोगी उसे देखने?"

नलिनी कुछ पल यूँ ही सोचती रही। मैंने उसे साहस दिलाने के लिए कहा—"ऐसे वक़्त पर उसे तुम्हारी ज़रूरत हो सकती है. ...।"

वह चलने के लिए तैयार हो गयी।

जब हम दोनों बबली को देखकर अस्पताल से लौट रहे थे, उस वक़्त नलिनी काफ़ी सीरियस लग रही थी।

बस स्टॉप पर मैंने उससे कहा—"हमें बबली के लिए कुछ करना होगा। अगर हम उसकी मौत को इसी तरह स्वीकार कर लेंगे, तो उसके साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा..."

नलिनी चुप थी। हम दोनों साथ-साथ चल रहे थे। मैंने कहा—"वह किस तरह तुम्हारा हाथ पकड़कर रो रही थी। जैसे हम लोग अभी भी उसके लिए कुछ कर सकते हैं। एक उम्मीद अभी भी उसकी आँखों में बची है, वह ज़िंदगी नहीं चाहती, न्याय चाहती है..."

नलिनी ने सिर हिलाया। शायद वह कुछ कहना चाहती थी। इससे पहले मैंने कहा—"हमें अख़बार में बबली के साथ हुए इस अन्याय के ख़िलाफ़ आवाज़ उठानी होगी। बबली से इन्टरव्यू लेकर हमें अख़बार में प्रकाशित करना होगा। शहर के सारे लोगों को यह बताना होगा। तभी हम कुछ कर सकेंगे। और यह काम तुम ही कर सकती हो...।"

"मैं," नलिनी आश्चर्यचकित होकर बोली।

"हाँ तुम ! मुझे मालूम है, तुम कॉलेज की पत्रिका में अक्सर लिखा करती थीं।"

उस दिन नलिनी बड़ी मुश्किल से मेरी बातों से सहमत हुई थी और बबली से इन्टरव्यू लेकर हम लोगों ने उसे अख़बार में छपवाया था। बबली की मौत के तीन दिन पहले प्रकाशित वह इन्टरव्यू बबली को न्याय तो नहीं दिला सका, लेकिन पूरे शहर में इस इन्टरव्यू को लोगों ने काफ़ी गंभीरता से लिया, ख़ासकर प्रेस ने, जिससे नलिनी को प्रेस लाइन में नयी पहचान मिली।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद एक दिन मैं नलिनी से मिलने उसके घर चला गया। दरवाज़े पर मुझे देखकर एकाएक वह झिझक-सी गयी। उसकी झिझक को दूर करने के लिए मैंने अपने चेहरे पर मुस्कुराहट लाकर कहा—"तुमसे मिलने यूँ ही चला आया. ..।"

नलिनी मुझे अंदर आने का इशारा करते हुए बोली—"अच्छा किया।"

"बबली की मौत ने एक बार फिर हम लोगों को अलग कर दिया। अब तो तुम भी नहीं मिलती हो।"

नलिनी चुप थी। शायद उस वक़्त वह अपने आप को समेटने में लगी थी। तभी मैंने कहा—"तुम कुछ लिखती क्यों नहीं, किसी अख़बार में..."

वह चुप थी।

"आज मैं तुम्हें एक अच्छी सलाह देने आया हूँ और वह यह है कि तुम किसी अख़बार से जुड़ जाओ..."

नलिनी मेरी बातों को महज़ मज़ाक समझकर बोली—"छोड़ो भी..."

"यह मज़ाक नहीं है, तुम लिख सकती हो.."

उस दिन मैं नलिनी से अपनी बातें मनवाने में सफल हो गया था और नलिनी का दूसरा लेख एक दैनिक समाचार-पत्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित हुआ, जिसे सभी ने सराहा। उसी वर्ष उसके क़रीब सात-आठ लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इस बीच हम दोनों की मुलाकातें भी बढ़ने लगी थीं। नलिनी मुझसे पूरी तरह जुड़ने लगी।

एक दिन की बात है, वह मेरे साथ दैनिक अख़बार के कार्यालय गयी, जहाँ सिटी रिपोर्टर के साक्षात्कार हेतु उसे बुलाया गया था। कुछ दिन पश्चात, जब मैंने उसे बताया कि तुम्हें अख़बार में रिपोर्टर की नौकरी मिल गयी है", वह ख़ुशी से उछल पड़ी थी। उस दिन मुझे उसकी ख़ुशी देखकर यह आभास हो गया था कि नलिनी कोई साधारण लड़की नहीं है।

. . .

एक शाम नलिनी कॉफ़ी हाउस में मुझसे कहने लगी—"आज मैंने एक रिर्पोटिंग तैयार की है, कल सुबह देखना शहर के प्रेस में कैसी खलबली मचेगी..."

उस वक़्त मुझे नलिनी की बातों पर ग़ुस्सा आ रहा था और दया भी। वह साधारण-सी लड़की आज असाधारण लड़की बनकर शहर के नामीगिरामी लोगों के ख़िलाफ़ अपने अख़बार में लिखने लगी थी।

नलिनी किसी भी चुनौती से डरा नहीं करेगी, यह बात मुझे उस दिन ही समझ मे आ गयी थी, जिस दिन उसकी माँ मुझसे कह रही थी—"तुम ज़रा समझाओ न नलिनी को, वह किस तरह पुरुषों का काम करने लगी है। वह भूल गयी है कि वह एक लड़की..."

उस दिन उसकी माँ को झूठा दिलासा देकर मैं लौट आया था।

आज नलिनी आने में काफ़ी देर कर रही है। इससे पहले कभी इतनी देर तक मुझे इंतज़ार नहीं कराया। 'शायद आज वह कामों में कुछ ज़्यादा ही व्यस्त हो गयी हैं—यह सोचकर उसे मोबाइल पर फ़ोन करने लगा कि अचानक उसे तेज़ क़दमों से कॉफ़ी हाउस में आते देखा।

"सॉरी! देर हो गयी," नलिसी कुर्सी पर बैठते हुए बोली।

"पूरे पैंतीस मिनट," मैंने घड़ी देखकर कहा।

नलिनी साड़ी में बहुत सुंदर लग रही थी। मैंने कहा—"आज तुम बहुत ख़ूबसूरत लग रही हो..."

"रियली! मगर अफ़सोस, इससे पहले भी तुम कई बार मेरी तारीफ़ कर चुके हो। तुम अच्छी तरह से जानते हो कि मेरी शादी तुमसे नहीं हो सकती, क्योंकि तुम बंगाली हो। यह फ़ैसला मेरी ममी का है..."

"और तुम्हारा?"

"प्रीतिश, यह मज़ाक का वक़्त नहीं है, मैं तुमसे कुछ सीरियस बातें करना चाहती हूँ और तुम मुझे बोर कर रहे हो", नलिनी बोली।

मैं उसकी उसकी तरफ़ देखकर मुस्कुराया और बोला—"बोर नहीं। एंटरटेन कर रहा हूँ।"

'प्रीतिश आज मैंने प्रेस की नौकरी छोड़ दी है।'

"क्या?" अचानक नलिनी के इस निर्णय को सुनकर मैं हतप्रभ रह गया।

"क्या तुमने यह निर्णय स्वयं लिया है?" मैंने पूछा।

"हाँ मैंने यह निर्णय स्वयं लिया है और मैंने यह भी निर्णय लिया है कि अब मैं शादी कर अपने पारिवारिक जीवन के कर्तव्यों का निर्वाह करूँगी।"

"यह तुम क्या कह रही हो? आख़िर इस तरह के फ़ैसले तुम अकेले कैसे ले सकती हो?"

मैंने नलिनी को समझाने की कोशिश की।

नलिनी ने कहा, "तो क्या करती प्रीतिश। मैंने तुम्हें इससे पहले भी कई बार कहा है कि मैं उस बिल्डर और उस नेता के ख़िलाफ़ लड़ तो सकती हूँ, लेकिन जिन लोगों के लिए लड़ रही हूँ, आख़िर उन्हीं लोगों ने मेरा साथ छोड़ दिया है। वर्षों से जिस ज़मीन पर वे लोग रह रहे हैं, किस तरह चंद पैसे वाले ताक़तवर लोग उन्हें उस ज़मीन से बेदखल कर उनकी झोंपड़ियों को तोड़कर उस पर मल्टी नेशनल काम्प्लेक्स बनाने लगे हैं..."

मैंने आज नलिनी को पहली बार टूटते हुए देखा है और हारते हुए भी। इस वक़्त मैं उसे और ज़्यादा परेशान करना नहीं चाहता था, इसलिए चुप ही रहा। तभी वह बोली-"प्रीतिश! अगर तुम मेरे साथ न होते, तो शायद मैं आज इस मुकाम तक नहीं पहुँच पाती। मैं तुम्हारा यह अहसान ज़िंदगी की आख़िरी साँस तक नहीं भूल पाऊँगी।"

यह कहकर वह उठ खड़ी हुई, फिर हल्की-सी मुस्कुराहट चेहरे पर लाकर जिस तेज़ी से अंदर आयी थी, उसी रफ़्तार से बाहर निकल गयी। इस क्षण मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं दुनिया का सबसे अकेला आदमी हूँ।

. . .

कुछ क्षण आँखें बंद कर मैं यूँ ही बैठा रहा कि एकाएक किसी की आवाज़ सुनकर मैंने आँखें खोलीं, तो देखा कि एक ख़ूबसूरत लड़की मेरे सामने खड़ी थी। मैंने उसे पहचानने की कोशिश की, पर पहचान नहीं पा रहा रहा था। तभी वह मुस्कुराकर बोली—

"शायद! आप मुझे पहचान नहीं पा रहे हैं, लेकिन मैं आपको पहचान गयी। आप प्रीतिश जी हैं न 'अलग' पत्रिका के संपादक और मैं नेहा हूँ।"

"बैठिए", मैंने कहा।

वह बैठ गयी मेरे सामने वाली कुर्सी पर और बोली—

"सर! शायद आपको याद हो कि मैंने एक बार आपकी पत्रिका में छपा आपका संपादकीय पढ़कर आपको फ़ोन किया था। मैं आपसे मिलना चाहती थी और आपने मुझे इसी कॉफ़ी हाउस में मिलने के लिए कहा था। यह बात सात-आठ माह पहले की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने आपसे मिलकर आपकी पत्रिका से जुड़ने की बात की थी। आपने कहा था कि मैं किसी साहित्यिक पत्रिका से जुड़ने की बजाय पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करूँ, किसी अख़बार से जुड़ जाऊँ। तभी आपने 'टाइम्स' अख़बार के संपादक से मिलने के लिए कहा था और मैंने आपके मार्गदर्शन के अनुसार काम किया। आज मैं उसी अख़बार में काम कर रही हूँ..."

"यह तो बहुत अच्छी बात है, लेकिन इस लाइन से ज़्यादा दिन तक जुड़े रहना सबसे बड़ी चुनौती है...", मैंने समझाते हुए कहा।

"मुझे पता है सर! चुनौती और जोख़िम दोनों से निपटने की कोशिश करती हूँ। यह भी जानती हूँ कि मैं एक लड़की हूँ और मुझे जन्म देने वाली मेरी माँ स्वयं एक आर्मी अफ़सर है। माँ के ही कहने से मैं आतंकवाद से निपटने के लिए इस क्षेत्र में काम करना चाहती हूँ..."

"यह तुम्हारी आँखे बता रही है कि तुम्हारे अंदर कितना आत्मविश्वास है..."

एक पल के लिए मुझे लगा कि शायद नलिनी में इसी बात की कमी थी। उसका आत्मविश्वास ज़्यादा मज़बूत नहीं था। वह टूटने लगती थी और मैं उसे जोड़ने की कोशिश करता था।

. . .

हम दोनों बहुत देर तक कॉफ़ी पीते रहे। जब बाहर निकले, उस वक़्त सड़कों की बत्तियाँ रोशनी फैलाने लगी थीं।

गायत्री विहार, विनोबा नगर, बिलासपुर, छत्तीसगढ़-485001

लघु कथा

साइन

खेमकरण 'सोमन'

बड़े साहब काम में व्यस्त थे और एक ग़रीब सी महिला अपने पंद्रह वर्षीय बेटे के साथ खड़ी थी, हाथ में एक काग़ज़ लेकर।

बड़े साहब ने इस बार घूर कर देखा उसे। फिर गुस्से में बोले, "अरे मेरी माता! जाती क्यों नहीं? एक घंटे से सिर खा रही है। कह दिया न, कल करा लेना साइन। देखती नहीं है, काम कर रहा हूँ।"

महिला बेचारी सहम गयी। तभी एक व्यक्ति ने बड़े साहब के कमरे में प्रवेश किया।

"ओ हो ! सहाय जी!" बड़े साहब ने आने वाले व्यक्ति की ओर देखकर कहा, "आइए-आइए, आज कैसे आना हुआ?"

"बस आ ही गये" सहाय जी कहने लगे, "यह ग़रीब बन्दा एक साइन करवाने के बहाने आपको याद करता हुआ आ ही गया।"

"तो ये लो!" कहते हुए बड़े साहब ने झट साइन कर दिया।

प्रथम कुंज, ग्राम व पोस्ट-भूरारानी, रूद्रपुर, जिला-ऊधमसिंह नगर, उत्तराखंड-263153

केदार सम्मान एवं व्याख्यान माला

प्रकाशकों, रचनाकारों एवं उनके शुभ चिंतकों से 'केदार सम्मान' 2009 हेतु वर्ष 2006 से 2009 के मध्य प्रकाशित कविता संकलन आमंत्रित हैं। यह अनिवार्य है कि कवि वैज्ञानिक चेतना का हिमायती हो, उसकी रचनात्मकता में केदार नाथ अग्रवाल की परंपरा का अनुगमन एवं विकास हों। यह सम्मान वर्ष 1947 के बाद जन्मे रचनाकारों के लिए है। संकलन 31.10.2010 तक प्राप्त हो जायें।

नरेन्द्र पुंडरीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे लिए जियो पापा

चंद्ररेखा ढडवाल

दोपहर में प्रसारित होने वाले कुछ धारावाहिक उसे देखने ही होते हैं, पर आज वह बहुत व्यस्त है। आदी स्टेशन गये हैं—मिट्ठू को लेने, और उनके घर पहुँचने तक वह बेटे की पसंद का खाना तैयार कर लेना चाहती है। उसके आ जाने पर तो उसी का काम होगा। बैग से उसके गंदे कपड़े निकालकर धोने को रखना। नहाकर आने पर उसे चाय के साथ सूजी का गर्म-गर्म हलवा खिलाना। फिर, पास बैठकर उसके हॉस्टल और कॉलिज के आलतू-फ़ालतू क़िस्से सुनना। बेशुमार बातें होती हैं बेटे के पास, माँ को सुनाने के लिए....। पिता से वह काम की ही बात करता है। जैसे पढ़ाई ठीक चल रही है, थोड़ी सैर वह सुबह-सुबह ज़रूर कर लेता है, देर रात तक नहीं जागता और खाली समय में उनकी दी हुई किताबें पढ़ लेता है, ग़ैरह-वग़ैरह। वैसे वक़्त कम ही होता है। यह कहकर वह उनके सामने से हट जाता है। कतराता है कि कहीं पिता उन किताबों पर उससे बातचीत न शुरू कर दें, जो असल में उसने पढ़ीं ही नहीं होती। ऐसा नहीं है कि आदी कोई बहुत सख़्त क़िस्म के आदमी हैं, पर मिट्ठू खुला ही नहीं उनसे। माँ से सब अगड़म-बकड़म कह देता है। उसी ने बताया था कि पापा यूँ ही पैसा खर्च करते हैं हर बार किसी नयी किताब पर। वह कहाँ पढ़ पाता है ऐसी मोटी-मोटी व बोझिल किताबें। कभी-कभी किसी पढ़ने के शौकीन को दे देता है और चाय-कॉफ़ी पीते उसकी समरी सुन लेता है कि बात चले तो वह कुछ कह पाए और पापा को तसल्ली हो।

आदी आये, पर उनके साथ मिट्ठू नहीं था। मुर्दा चेहरे वाला, दहशत में डूबा एक नीम पागल उनके पीछे-पीछे भीतर आया और बिना उससे बात किये गुसलखाने में घुस गया। पति को कंधों से पकड़कर हिलाते हुए पूछा नहीं, चीख ही पड़ी वह—"हुआ क्या है इसे ?"

"पहले इसे सँभालो तुम। मैं थाने में रिपोर्ट लिखाने जा रहा हूँ।"

"कैसी रिपोर्ट ?"

"पाँच-छह लड़कों ने पिछली पूरी रात एक बंद कमरे में इसके साथ ज़बरदस्ती की है," पति ने पत्नी से आँखें मिलाये बग़ैर फुसफुसाते हुए कहा। वह धम्म से तख़्तपोश पर बैठी नहीं, गिर गयी और पति कमरे से बाहर हो गये... उसने उठने की कोशिश की, तो लगा कि टाँगें भारी हो गयी हैं। इतनी कि वह उठ नहीं पाएगी। उसकी जीभ में सलवटें पड़ने लगी हैं... नहीं जीभ भीतर सरक रही है.... क्या करे वह ? मिट्ठू गुसल से निवृत्त नहीं होगा और आदी थाने से नहीं लौटेंगे। एकाएक झटके से उठ बैठी वह। जैसे अचानक सब ठीक हो गया हो या उसे कोई समाधान मिल गया हो।

आधे-घंटे में ही लौट आये आदी, पर इतने से समय में बहुत कुछ सोच लिया था उन्होंने। पत्नी और बेटे को लेकर किसी अच्छे से पहाड़ी स्टेशन पर चले जाएँगे, कुछ दिनों के लिए। तीनों एक साथ रहेंगे—पल-पल। किसी को कोई काम नहीं होगा। उनका दफ़्तर नहीं। पत्नी की रसोई नहीं और मिट्ठू की पढ़ाई... दरवाज़े की घंटी तक पहुँचा उनका हाथ थमा रह गया... "ट' टमाटर तो खा लिया। 'ठ' ठेले का क्या करूँ पापा।"... हिन्दी की वर्णमाला सिखाती दीप्ति हँसते-हँसते बुरी तरह खाँसने लगी थी। तब तो बता दिया था कि 'ठ' ठेले पर सामान ढोते हैं, पर आज यदि मिट्ठू पूछे कि "'प' पढ़ाई से क्या होता है पापा ?" तो क्या कहेंगे। कुछ होता, तो वे पाँच पढ़े-लिखे तथा कथित अतिरिक्त प्रतिभासंपन्न लड़के अपनी ही उम्र के एक लड़के के सामने नंगे नहीं होते। पढ़ाई से यदि कुछ हो पाता, तो उन्हें थाने में रिपोर्ट के दौरान् आँखों ही आँखों में बेहया हँसी हँसते हवलदार पर आपे से बाहर होकर चिल्लाना न पड़ता...। घंटी लगातार बज रही थी, पर दरवाज़ा नहीं खुला, तो घबराहट में उन्होंने ज़ोर से धक्का दे दिया। मुँह के बल गिरते-गिरते बचे। दरवाज़ा भीतर से बंद था ही नहीं। बंद करता कौन ? मिट्ठू अभी तक गुसलखाने में था और दीप्ति पँखे से बँधी रस्सी से झूलती सौ-सौ गुना बड़ी आँखों से घूर रही थी। उसकी नब्ज़ टटोलते उन्हें जैसे इस अनहोनी के कारण की भनक मिली...। मिट्ठू कपड़ों समेत शॉवर के नीचे, घुटनों पर सिर टिकाये बैठा, थरथर काँप रहा था। तौलिये से उसका सिर-मुँह ढाँककर कमरे को लगभग भागकर पार करते हुए उन्होंने उसे कार की पिछली सीट पर लिटाया, पर दो मोड़ बाद सामने सड़क नहीं, पत्नी की फूली-फूली आँखे दिखने लगीं तो उनके हाथों में ऐंठन होने लगी। स्टेयरिंग सँभालना मुश्किल हुआ, तो अपने निर्णय पर पछताने लगे... "दस मील दूर है मिट्ठू की नानी का घर... कैसे पहुँचेंगे?. .. इसे शायद डॉक्टर की ज़रूरत है..." बच्चे की चिंता ने ताक़त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी... । सत्रह साल के बेटे को कंधों पर उठाये आदी घर में दाख़िल हुए, तो देवयानी बरामदे में मिली उन्हें।

"लड़कों की रैगिंग से डर गया है। घर पहुँचकर घंटों शॉवर के नीचे बैठा भीगता रहा है। सर्दी लग जाएगी। तौलिये से बदन पोंछकर, कपड़े बदलवाकर, ढक-लपेट कर सुला दो... इसका कुर्ता-पायजामा तो होगा यहाँ ?"

क्या मैं नहीं जानती कि बच्चे को ऐसी हालत में क्या करना चाहिए... जीजा जी को इतना विस्तार से समझाने की ज़रूरत क्यों पड़ गयी... यही कहने के लिए कह रहे हैं या कुछ छिपाने के लिए यह सब बोले जा रहे हैं... सोचते-सोचते बैठक में पड़े दीवान पर लेटे मिट्ठू को देखा, तो देखती रह गयी देवयानी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था और होंठ नीले हो रहे थे। उसकी खुली आँखें कुछ देखती हुई नहीं लग रही थीं। मिट्ठू का बदन सुखाते, पोंछते और कपड़े बदलवाते कुछ पूछा नहीं उसने। मन ही मन सवाल करती रही और जवाब भी देती रही.... दीदी घर में नहीं होंगी... वे बेटे को इस हाल में देखकर डर जाएँगी, शायद इसी से यहाँ ले आये जीजा जी उसे... फिर मिट्ठू को भीतर अम्मा के साथ वाले बिस्तर पर लिटाकर वह चाय बनाने रसोई में चली गयी।

अम्मा कुछ पूछतीं, इससे पहले ही आदी ने कहा—"गाड़ी में हवा लग गयी। शायद बुखार भी है। थोड़ा आराम करके अच्छा हो जाएगा..."

देवयानी चाय लेकर आयी, तो वे कमरे में नहीं थे। उन्हें पुकारते बरामदे तक पहुँची, तो देखा पोर्च में गाड़ी नहीं थी। डर गयी वह। कुछ हुआ है। जो दिख रहा है, उससे कुछ ज़्यादा हुआ है...। मिट्ठू की आँखों में हरारत थी। चाय से पहले उसे ठंडे पानी के साथ क्रोसिन की गोली खिलायी। दीदी की हिदायत है कि दवा की गोली कभी भी गर्म पानी से मत खिलाओ। फिर चम्मच से चाय पिलाने लगी। वह भी छोटे बच्चे की तरह मुँह खोलता और बंद करता रहा। बिस्तर में घुसकर उसने मिट्ठू को बाँह से घेरकर अपने साथ सटा लिया। हल्की-हल्की सुबकने की आवाज़ की ओर ध्यान नहीं दिया, बस धीरे-धीरे उसका माथा सहलाती रही। थोड़ी देर में वह सो गया। बच्चे की ओर से निश्चित हुई, तो प्रश्न फिर सताने लगा... "आख़िर क्या हुआ है?... अब नहीं रोक पायी वह अपने को। आनंदी कॉलोनी पहुँची, तो दीदी के घर के बाहर भीड़ थी, पर पलक झपकते ही उसके लिए रास्ता बन गया, लेकिन बरामदे में खड़ी दीदी की पड़ोसिन और सहेली मिथिला ने ज़बरन हाथ पकड़कर उसे भीतर जाने से रोक लिया। थोड़ी ही देर में पुलिस की जीप और एंबुलैंस वहाँ पहुँच गयी। क़रीब आधे घंटे तक पुलिस के लोग अंदर रहे और सैकड़ों लोग बिना एक भी शब्द बोले बाहर खड़े रहे। पर, पुलिस और एंबुलैंस के जाते ही भीड़ भी छँटने लगी। मुश्किल से दस-बारह जन ही भीतर जाने को तत्पर दिखे...। मिथिला अब स्वयं उसे कंधों से घेरकर भीतर ले गयी। पंखे से झूलती रस्सी और लुढ़की पड़ी कुर्सी ने बहुत कुछ बता दिया, पर देवयानी ने मानना नहीं चाहा। घर के हर कमरे में दीदी को खोजकर वह लौटी, तो मिथिला के पति ने उसे एक किनारे ले जाकर धीमी, परंतु अधीर और सख़्त आवाज़ में कहा—"तुम्हारी दीदी नहीं रहीं, पंखे से झूलकर आत्महत्या कर ली उन्होंने... अब तुम यह सोचो कि तुम्हारे जीजा जी कहाँ हैं?"

"क्यों, वह दीदी के साथ नहीं गये?"

"नहीं ! मुझे उनका फ़ोन आया था कि ऐसा हुआ है और उन्होंने पुलिस को इत्तिला दे दी है। यहाँ पहुँचकर मिथिला को साथ लेकर मैं घर में दाख़िल हुआ, तो उसकी चीख़ कॉलोनी के बाहर की सड़क तक पहुँच गयी... ये इतने लोग इसी से इकट्ठा हो गये...।"

इतनी तकलीफ़ में भी वह उनकी सफ़ाई देने की कोशिश भाँप सकी... कुछ सालों से यही हो रहा है उसके साथ। वर्तमान उसके दिल-दिमाग़ से परे हो जाता है। परे भी नहीं कहा जा सकता, बस उस पल के सुख-दुःख की पराकाष्ठा की संवेदना उसे नहीं छूती। दर्शक की तरह देखती है और चिंतक की तरह सोचती है... मिथिला ने उसे कितना कसकर पकड़ा... सच ही नहीं चाहती थी कि वह भयावह दृश्य वह देखे या मात्र औपचारिकता निभा रही थी... फिर उसके पति की बात के सच को पकड़ने की कोशिश... यह वह इस पल भी कर पा रही थी, जब उसकी दीदी के शरीर को पुलिस पोस्टमार्टम के लिए ले गयी है... वह दीदी, जिसके बिना वह रह ही नहीं सकती थी। जानती है बहुत मुश्किल होगा... यही हुआ था बाबू जी के समय भी... डॉक्टर ने जब उन्हें देखने के बाद सिर हिला दिया, तो अम्मा ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी थीं और दीदी ने उनसे भी ऊँची दहाड़ मारी थी... पर वह केवल सोच रही थी कि बाबू जी अब नहीं रहेंगे... इतनी तकलीफ़ झेलते रहने का कोई औचित्य है भी नहीं... फिर आज तो सब है... कैनेडा से भाई-भाभी भी दस दिन पूर्व ही पहुँचे हैं... अब यदि यह नहीं होता, तो वे लोग ज़्यादा रुक नहीं पाएँगे... बाद में सब धीरे- धीरे सामान्य होने लगे तो वो उखड़ गयी पटरी से । दो-चार रोज़ बाद माहौल कमोबेश ख़ुशनुमा-सा होने लगा था। रिश्तेदार आते, तो थोड़ी देर रोना-धोना... बाबू जी की तारीफ़, फिर इधर-उधर की बातें। अम्मा ज़रूर चुप-सी रहतीं... बाकी सब में तो जैसे होड़ लग गयी थी अगले-पिछले क़िस्से सुनाने की। बाबू जी ने यह कहा... बाबू जी ने वह कहा... कहीं-कहीं उसे लगता कि यह नहीं कह सकते मेरे बाबू जी... पर अब क्या हो सकता था... झूठ-सच, जो जिसके जी में आये, कहता हे... आने वाला जब अम्मा को दिलासा देते कहता, "आप ने कोई कसर नहीं छोड़ी... अब क्या दुःख मनाना... आगे-पीछे जाना तो सभी को है।" या भाई से कहता "बेटा बड़ा पुण्य किया था तुम्हारे पिता ने, जो तुम विदेश से यहाँ पहुँचे उन्हें मुखाग्नि देने को;" तो अम्मा और भाई दोनों के चेहरों पर संतोष दिखायी देता। दीदी ढेरों बातें सुनाती... अपने पति की इस-उस डाक्टर से जान-पहचान से शुरू होकर मिट्ठू की नाना के प्रति श्रद्धा-भक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर पहुँचते वह विभोर और भावुक हो जाती और आँखों को दुपट्टे के छोर से रगड़कर लाल कर लेने के बाद एकाएक उठ खड़ी होती रसोई आदि देखने... एक वही थी, जो सिर से पाँव तक पछतावे और विरक्ति में डूब गयी थी... कुछ कहने-सुनने ओर देखने में रुचि नहीं रही... लगता था कि ज़िंदगी अब पुराने ढ़र्रे पर नहीं लौटेगी। असल में, आज तक लौटी भी नहीं। भाई-भाभी कैनेडा लौट गये। दीदी जीजा जी व मिट्ठू में खो गयी। बुझी-बुझी उदास जीवन जी चुकी अम्मा के साथ अकेली रह गयी वह। मिथिला देवयानी को कंधों से पकड़कर झकझोर रही थी—"हिम्मत रखो.. .यूँ पत्थर बनी सोचती मत रहो। रो लो बहना... अपना दुःख रो लो...

"किसके लिए रोऊँ?" उसके मुँह से निकला, तो हैरान-सी देखती रह गयी मिथिला.... आदी का कहीं कुछ पता नहीं लग रहा था। अपना मोबाइल वे यहीं छोड़ गये थे। कहीं किसी एस0टी0डी0 बूथ से फ़ोन किया था। वहाँ का पता लगाने का भी कोई मतलब नहीं, क्योंकि अभी तक वे वहीं पर तो रुके नहीं होंगे। थाने से बार-बार फ़ोन आ रहा था। कुछ औपचारिकताएँ पूरी करने के बाद ही वे लाश दे सकेंगे... तभी किसी के दिमाग़ में अँधेरे में जुगनू की तरह समाधान कौंध गया...। बेचैन इधर-उधर गाड़ी दौड़ा रहे होंगे... क्या पता थक-हारकर सड़क किनारे किसी ढाबे या चायघर पर रुकें.... या क्या पता किसी दोस्त या परिचित के यहाँ बैठे हों। स्थानीय चैनल से संदेश भेजते हैं उनके लिए.... कुछ देर बाद आदी की फ़ोटो के साथ संदेश प्रसारित होने लगा, आप जहाँ भी हैं, जल्दी घर पहुँचें। दीदी का मृत शरीर पुलिस आप ही को देगी—देवयानी' हर पाँच-दस मिनट के बाद संदेश आ रहा था, पर सब इस तरह सुन रहे थे, मानो पहली बार आ रहा हो या इसे सुनते-देखते ही आदी घर पहुँच पाएँगे... देवयानी भी सबकी देखादेखी यही कर रही थी। आदमी कैसी भी और कितनी भी भयानक परिस्थिति में चैन का छोटा ही सही, एक बिंदु ढूँढ लेता है। डूबते को तिनके का सहारा बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया मुहावरा नहीं है, बल्कि कम करके ही कहा गया है। देवयानी फिर सोचने लग गयी थी कि संदेश के शब्दों ने उसे चौंका दिया—'मेरे लिए मेरे साथ जियो... लौट आओ पापा—मिट्ठू...' बावलों की तरह रो पड़ी वह... इस तरह बेहाल तो वह बाबू जी की मृत्यु पर भी नहीं हुई थी और उस आदमी के छोड़ जाने पर भी नहीं, जिसे वह अपने से भी ज़्यादा चाहती थी... उसके साथ-साथ कमरे में बैठा हर कोई सिसकने लगा... मिटठू ने जान लिया और सह भी लिया कि उसकी माँ नहीं रही। कितना बड़ा हो गया वह... और कितना हिम्मती भी.... थोड़ी ही देर बाद आदी का फ़ोन आया कि वह सीधे पुलिस थाने पहुँच रहे हैं। दो-तीन पड़ोसी भी उठ गये थाने पहुँचने के लिए... सत्रह साल के चेहरे पर सत्ताइस साल की गंभीरता ओढ़े मिट्ठू ने अपनी ओर लपकती रोती-बिलखती मिथिला आंटी को सहेजकर कुर्सी पर बिठाया और भौंचक सूनी आँखों से उसे देखती मौसी के बगल में बैठकर उनकी पीठ सहलाने लगा... ठीक उसी लय और गति से, जैसे थोड़ी देर पहले वह उसका माथा सहला रही थी... मिट्ठू को भरपूर आँखों से देखकर देवयानी ने अपना चेहरा घुटनों पर टिका दिया... "अब मैं दीदी के लिए रो सकती हूँ", अस्पष्ट से शब्द निकल गये।...

227/श्यामनगर (धर्मशाला), हिमाचल प्रदेश-176215

लघु कथा

टैक्नीकल हैण्ड

खेमकरण 'सोमन'

काम की तलाश उसे भी थी और मुझे भी। हम दोनों ही औद्योगिक आस्थान में एक फैक्ट्री से दूसरी फैक्ट्री के चक्कर लगाते रहे।

"तो क्या आप टैक्नीकल हैण्ड हैं?" संयोग हम दोनों का एक ही फैक्ट्री में इण्टरव्यू हो रहा था। तब मेरे बायो-डाटा पर ऊपर से नीचे तक नज़र फिराकर उस कंपनी में कार्यरत एक अधिकारी ने पूछा-'और आप किस ट्रेड से?"

मैंने कहा—"सॉरी सर।"

इस तरह मैं मास्टर डिग्री धारक एक बार फिर नौकरी पाने में असफल रहा और मेरा दोस्त जो कि दसवीं पास था परंतु टैक्नीकल हैण्ड, उसकी नौकरी लग गयी।

दस-पंद्रह दिनों बाद वह मुझे मिला। मैंने पूछा-"कंपनी में क्या काम करते हो?"

वह बोला-"काम बड़े मजे का है। बस बिस्कुट पैक करता रहता हूँ।"

यह सुनकर मैं एक बारगी बुरी तरह चौंका। फिर सोचने लगा-तो क्या बिस्कुट पैक करने के लिए भी टैक्नीकल हैंड की ज़रूरत है?

प्रथम कुंज, ग्राम व पोस्ट-भूरारानी, रूद्रपुर, जिला-ऊधमसिंह नगर, उत्तराखंड-263153

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौट पीछे की तरफ़ ऐ गर्दिशे अय्याम तू

नगमा जावेद

उसने चिक उठाकर चुपके से लाइब्रेरी में झाँका। पप्पा हस्बेमामूल क़ानून की मोटी-सी किताब में खोये हुए थे। वह दबे पाँव अंदर दाखिल होकर ऐन उनके सामने जा खड़ी हुई। कुछ देर तक तो पप्पा उसकी मौजूदगी से क़तई बेख़बर रहे... फिर वर्क उलटते हुए अचानक उनकी नज़र नासिरा पर पड़ी।

"अरे बेटी! तुम कब से यहाँ खड़ी हो?" किताब मेज़ पर रखते हुए उन्होंने पूछा।

"कुछ ही देर हुई।" नासिरा ने हौले से जवाब दिया।

"कोई ज़रूरी बात....?"

"पप्पा! परसों मम्मा दार्जिलिंग जा रही हैं।"

"तो आप इस वक़्त यह ख़बर देने के लिए हमारे पास आयी थीं?"

"नहीं तो पप्पा!" वह रुआँसी हो गयी ।

एजाज़ साहब की ख़ूबसूरत गिलाफ़ी आँखों में उलझन के आसार नुमायाँ हो गये। वे समझ चुके थे कि उनकी बेटी कोई अहम बात कहने के लिए ही उनके पास आयी है। यूँ भी वे घरेलू मामलात में क़तई दिलचस्पी नहीं लेते थे। ये सारे काम तो उन्होंने अपनी बेगम हिना के सुपुर्द कर रखे थे।

"तुम कुछ परेशान-सी दिखायी दे रही हो, आख़िर बात क्या है? साफ़-साफ़ कहो, डरो नहीं," उन्होंने शफ़क़्क़त से बंटी को देखा।

"पप्पा। क्या आप हमारे साथ, नहीं जाएँगे?"

"नहीं बेटे! हम अपने आबाई वतन आज़मगढ़ जाएँगे। तुम्हारी दादी साहब की तबीयत नासाज़ है। उन्होंने हमें बुला भेजा है। इस बार हम तुम्हारे साथ कैसे जा सकते हैं? अम्मी हुज़ूर को देखने के लिए हमारा दिल भी बेताब है। तुम मम्मा के साथ घूम आओ। दार्जिलिंग बड़ी फ़िज़ा जगह है।"

"मैं आपके साथ वतन जाना चाहती हूँ, पप्पा।"

एजाज़ अहमद ने अपनी उन्नीस साला बेटी को बड़े ग़ौर से देखा, जो काफ़ी संजीदा दिखायी दे रही थी। "हिना बेगम, तुमने तो कभी अपने ससुराल वालों को पसंद नहीं किया, लेकिन आज तुम्हारी यह बेटी वहाँ जाना चाहती है, तो मैं उसे क्यों रोकूँ ?" यह बात उन्होंने अपने आप से कही थी और उनके होंठों पर मुस्कुराहट फैल गयी।

"वहाँ गर्मी का मौसम बहुत सख़्त होता है, शायद तुम सह न पाओ," उन्होंने टटोला।

"जानती हूँ... लेकिन मुझे दादी अम्मा से मिलने की बेहद आरज़ू है, बचपन में उन्हें देखा था।"

"अगर तुम हमारे साथ जाना चाहती, तो हमें कोई ऐतराज़ नहीं... अलबत्ता अपनी मम्मा को राज़ी करना तुम्हारा काम है," एजाज़ अहमद ने सिर से लेकर पैर तक अपनी इस निराली बेटी को देखा।

"अब मैं बच्ची तो नहीं हूँ, कुछ फ़ैसले करने का हक़ मुझे भी है। बचपन से मम्मा का ही कहना मानती चली आ रही हूँ", अटल इरादे की लौ उसकी आँखों में जल रही थी।

नासिरा के चले जाने के बाद एजाज़ अहमद गहरे सोच में डूब गये। फ़र-फ़र अंग्रेज़ी बोलने वाली, बचपन से ही बोर्डिंग में रहने वाली उनकी यह मँझली लड़की अपनी मम्मा से क़तई मुख़्तलिफ़ है। वह वहाँ बसदे शौक जाना चाहती है, जहाँ उसकी माँ ने कभी ख़ुशी से जाना पंसद नहीं किया। अगर कभी शादी-ग़मी में जाना भी पड़ा, तो मजबूरन... पता नहीं, पहली बार उन्हें एक अजीब-सी ख़ुशी का अहसास हुआ।

हिना बेगम ने हमेशा अपने ससुराल वालों को देहाती, उजड्ड, गँवार ही समझा। गो यह बात वे कभी ज़बान पर नहीं लायीं, लेकिन एजाज़ अहमद 'बच्चे' तो नहीं थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि उनकी नफ़ीस व नाज़ुक तबीयत बेगम को हवेलियों के साये में परवान चढ़ी एक मख़्सूस तहज़ीब—जो किसी हद तक दकियानूसी भी कही जा सकती थी—ज़र्रा बराबर भी पंसद नहीं थी। चुनांचे ससुराल वालों से उनका रब्त-ज़ब्त बस रस्मी-सा था। एजाज़ साहब बेहद सुलहपसंद थे। इसीलिए किसी भी मौक़े पर टकराव या तकरार की नौबत नहीं आयी। वे हर साल किसी न किसी मौक़े पर अपने वतन ज़रूर हो आते थे। बेगम का जी चाहता तो कभी-कभार साथ चली जातीं, वरना तो अक्सर ख़राबी-ए-तबीयत का उर्ज पेश कर देती थीं। वह समझते हुए भी अनजान बने रहते। एक ख़ास वज अदारी, शराफ़त और रखरखाव उन्हें अपने बुजुर्गों से विरासत में मिला था।

हिना बेगम पर पश्चिमी तहज़ीब का गहरा रंग चढ़ा हुआ था। उनकी तबीयत में बनावट, तसन्नो और दिखावा रच-बस गया था। अपने से कम दर्जे के लोगों से मिलना उन्हें गवारा न था। दौलत के तराज़ू से वे शराफ़त को तौलती थीं।

एक बार उनकी सगी चचाज़ाद बहन सायरा, जो घूमने के लिए बंबई आयी थी, उनके बँगले पर पहुँची तो बड़ा सर्द बर्ताव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...वा-टैक्सी ड्राइवर की बीवी-भला वे उसे अपनी बहन कैसे ...तातीं? एजाज़ अहमद के आने से पहले ही उन्होंने किसी तरह ...इस बिन बुलाई आफ़त' को चलता कर दिया था।

घटियापन से उन्हें हमेशा से चिढ़ थी। औलाद की तरबियत ...में उन्होंने इस बात का ख़ासतौर पर ख़्याल रखा था कि उनमें ...टियापन पैदा न हो। इसीलिए वे अपने बच्चों को ददिहाल भी ...कभार ही लेकर गयी थीं। उन्हें खौफ़ सताता था कि उनके ...सुस व नाजुक मिजाज़ बच्चों में दहकानियत (देहाती) का रंग न ...जाए।

बज़ाहिर सब कुछ ठीक-ठाक, उनकी मर्ज़ी के ऐन मुताबिक ...था। उनकी बड़ी बिटिया शमआ अपनी मम्मा से दो क़दम आगे ...निकल रही थी, अगरचे मँझली बेटी की तरफ से वे कुछ ज़्यादा ...नविन' न थीं। इसकी वजह यह थी कि वह बचपन से ही कुछ ...जी बाली व लापहरवाह वाक़े हुई थी। उनका अपना ख़्याल था ...इसमें ददिहाल का असर है जिसे वे गँवारपन से ताबीर करती ...। क़ुदरत की इस सितमजरीफ़ी पर उन्हें मलाल भी होता था, ...सरबे लफ़्ज़ों में बेटी को समझाने की कोशिश भी करती थीं, ...लेकिन पता नहीं वह किस मिट्टी की बनी हुई थी—ज़र्रा बराबर ...रस से मस न होती थी, बल्कि बारहा यह होता कि वह कुछ ...बिदक जाती था, जैसे घोड़ा चाबुक मारने पर बिदक जाता है।

"मम्मा! हम पप्पा के साथ उनके आबाई वतन आज़मगढ़ ...हे है।"

गोया बम का धमाका हुआ हो, बेगम एजाज़ के हाथों से ...ला गिर पड़ा, लेकिन अपनी इस घबराहट को उन्होंने बड़ी ...लूती से यह कहते हुए छिपा लिया—"न बेटी न! वहाँ की ...अलामां अलहफ़ीज़-मेरी कली मुर्झा जायेगी, ख़ुदा न ख़्वास्ता ...गयी तो—मेरा दिल तो हौलने लगा है यह सुनकर।"

"मम्मा! हमारा फ़ैसला अटल है, इस बार हम वतन ज़रूर ...," नासिरा के लहज़े की पुख़्तगी से पता नहीं क्यों एजाज़ ...द को गूना ख़ुशी हुई।

"आप नासिरा को समझाते नहीं, आप तो जानते हैं कि यह ...के सर्दो-गरम झेलने की आदी नहीं हैं," डूबते को तिनके ...हारा भी बहुत होता है, उस वक़्त एजाज़ साहब के हाथों में ...वार सौंपने में उन्होंने आफ़ियत समझी।

"बेगम! आप यह क्यों भूल जाती हैं कि नासिरा अब ...अल्लाह बालिग हो गयी है, अपनी छोटी-मोटी ख़्वाहिशें पूरा ...का इख़्तियार उसे हासिल हो गया है। हम कब तक अपने ...पर अपने हुकुम नाफ़िज़ करते रहेंगे? हमें उन्हे आज़ादी देनी ...। अगर नासिरा जाना चाहती हैं, तो मुझे कोई ऐतराज़ ...," एजाज़ अहमद ने अपने मख़्सूस अंदाज़ में कहा।

"नासिरा बेटी! दिवाली की छुट्टियों मे हम ख़ुद आपको ले ...। इस वक़्त मौसम बहुत सख़्त है। हम आपके भले के लिए ...रहे हैं, मान जाइए," बेगम ने बाज़ी हारते देख एक नया पैंतरा बदला।

"आपकी बेटी इतनी कमज़ोर और छुईमुई नहीं है," नासिरा समझ चुकी थी कि मम्मा टालने की गरज़ से ही एक सिरा पकड़ने की कोशिश कर रही हैं।

"तुम बहुत ज़िद्दी और खुदसर होती जा रही हो," काफ़ी कोशिश के बाबजूद वे अपने गुस्से को दबा नहीं पायीं।

"सॉरी! लेकिन जाने का इरादा तो मैं रद्द नहीं कर पाऊँगी," उसके लहज़े में बला की संजीदगी थी।

0 0 0

गोरी-चिट्टी ख़ूबसूरत चेहरे वाली दादी साहब उसे इतनी अच्छी लगीं कि उसे अफ़सोस हुआ कि वह यहाँ आने का फैसला पहले क्यों नहीं कर पायी । पोते-पोतियों से बिछड़ी दादी तो नासिरा पर वारी-सदके हुई जा रही थीं। कितनी सादगी और मासूमियत थी उसके अंदाज़ में। बनावट का नामोनिशान भी न था।

"दुल्हन आ जातीं तो..." दादी साहब की आरज़ू कितनी बार अल्फ़ाज़ में लिपटी।

नासिरा को हवेली का रंग ऐसा भाया कि वह पूरी तरह उसमें डूब गयी। चम्मच-काँटे से खाने वाली हाथ से दाल-भात खाने लगी, तो एजाज़ साहब को फ़िक्र लाहक़ हो गयी, कि कहीं ये रंग पुख़्ता न हों-बेगम साहिबा क्योंकर सह पाएँगी...

एक दिन उन्होंने बेटी को टोक ही दिया, "नासिरा तुम्हारे और यहाँ के कल्चर में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है, लेकिन तुम यहाँ की तरज़े ज़िंदगी में डूबती जा रही हो, मुझे अंदेशा है कि तुम्हारी मम्मा को यह सख़्त नागवार गुज़रे।"

"पप्पा। हिंदुस्तानी कल्चर को छोड़कर अंग्रेज़ी तहज़ीब की पज़ीराई करना एक दम हिमाक़त है।"

एजाज़ साहब कहकहा लगाकर हँस पड़े—"यहाँ आकर तो तुम उर्दू भी अच्छी बोलने लगी हो, मुझे ख़ुशी है कि मेरी बेटी आजकल के यंगस्टर से मुख़्तलिफ़ सोच रखती है।"

"हम अपनी दादी साहब को कुछ दिन के लिए बंबई ले जाना चाहते हैं।"

"कहकर देख लो, बेटा! हमें उम्मीद नहीं है कि वे चलने पर आमादा हो जाएँ।"

"हम मना लेंगे अपनी दादी साहब को," उसने बड़े वसूक से कहा।

एजाज़ साहब मुस्कराते हुए लॉन मे चले गये। उन्हें अपनी बेटी पर फ़ख़्र हो रहा था, वरना तो नयी पौध बूढ़ों को ख़ातिर में कहाँ लाती है?

एक दिन वह दादी की चोटी बनाते हुए बड़े प्यार से उनके गले में बाँहें डालकर बोली—"दादी साहब ! एक वायदा कीजिए, हम जो कहेंगे, आप मानेंगी, इन्कार नहीं करेंगी।"

"मानने जैसा होगा, तो ज़रूर मानेंगे अपनी लाड़ो की बात", उन्होंने ममता भरी निगाहों से पोती को देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दादी साहब! अब आप हमारे साथ बंबई चलेंगी।"

नासिरा की बात सुनकर एक साया-सा उनके चेहरे पर से गुज़र गया। उन्हें बरसों पहले का वाक़या याद आ गया। एजाज़ बड़ी मिन्नत करके उन्हें बंबई ले गये थे, लेकिन बेगम को उनका आना एक आँख नहीं भाया था। दकियानूसी-सा पहनावा और रहन-सहन देखकर वे कटकर रह गयी थीं। भला क्या कहेंगे अड़ोस-पड़ोस के लोग। कैसे गँवार खानदान से इनका ताल्लुक है।

बड़ी बेटी के पास होने पर पार्टी दी गयी थी। शमआ ने तुनककर माँ से कहा था—"मम्मा! दादी को देखकर मेरी सहेलियाँ क्या सोचेंगी ? इतना लंबा कुर्ता, चाँदी के बटन लगे हुए, चूड़ीदार पाजामा, चुना हुआ मलमल का दुपट्टा—आजकल इन कपड़ों का ज़रा भी फ़ैशन नहीं हैं, आउट ऑफ़ फ़ैशन समझे जाते हैं ऐसे कपड़े। पता नहीं, ये बूढ़े अपने आपको बदलते क्यों नहीं? बड़ा ऑड लगता है यह सब कुछ। क्यों चली आयी हैं गाँव से मेरी इन्सल्ट कराने के लिए?"

"मुझे तो कोई बुराई नज़र नहीं आती उनके लिबास में। बल्कि मैं भी अबके वैसा ही ड्रैस बनवाऊँगी", आठ साला नासिरा ने कहा, तो माँ दहलकर उसका मुँह देखने लगीं—पूत के पाँव पालने में नज़र आते हैं, शायद मेरी नाक कटवाने के लिए ही ये मेरे घर में पैदा हुई है।

"मम्मा! दादी से कहो ऊपर के कमरे में ही ठहरें, नीचे न आएँ, "शमआ ने ऊँची आवाज़ में कहा था।

एक दिन हाथ से चावल खाने पर मेहमानों के सामने उनकी सुबकी हुई थी। और, इसी तरह की बहुत सी बातें थीं—दोनों माँ-बेटियाँ उनके उठने-बैठने, चलने-फिरने के ढंग को लेकर कुढ़ती रहती थीं। सोफ़ेस्टीकेटेड लबो लहज़े में बातचीत करना उन्हें कहाँ आता था?

"दादी साहब! आप ख़ामोश क्यों है? आपको हम ज़रूर ले जाएँगे," नासिरा ने लाड़ से कहा।

"बेटा! अब मेरी उम्र सफ़र करने की नहीं है, जी घबराता है कहीं आने-जाने के नाम से ।"

"दादी आपकी पोती अब बड़ी हो गयी है, आपको वहाँ ज़रा बराबर भी तक़लीफ़ नहीं होगी। मैं आपकी ख़िदमत करूँगी।"

"खुदा तुम्हें उम्रे दराज अता फ़रमाए, दादी की आँखें न जाने क्यों भीग गयी थीं। नासिरा सोच रही थी, बुजुर्ग तो छतनार दरख़्त की तरह होते हैं। कितना सुख, कितनी राहत और सुकून मिलता है उनकी छाँव मैं बैठकर! पता नहीं उसकी मम्मा को दादी क्यों नहीं अच्छी लगतीं? उसका तो पोर-पोर दादी की बेलौस मुहब्बत से भीग गया है। बनावटी ज़िंदगी और मुलम्मा हमें ज़िंदगी के कितने असली, जानदार और ख़ूबसूरत रंगों से महरूम कर देता है... कैसे बतायें वह यह बात अपनी मम्मा को...

रीडर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, एम. एन. डी. टी. युनीवर्सिटी, मुम्बई-20

मलखान सिंह सिसौदिया कविता पुरस्कार-2010

हेतु प्रविष्टियाँ आमंत्रित हैं।

नियमावली :

1. पुरस्कार की राशि रु. 10 हजार होगी।
2. वर्ष 2010 के पुरस्कार हेतु 31 मई 2010 तक प्राप्त प्रविष्टियाँ ही मान्य होंगी।
3. 31 मई, 2010 को 50 वर्ष की आयु तक के रचनाकार ही इस पुरस्कार के लिए मान्य होंगे।
4. पुरस्कार हेतु काव्य कृति/ कविता संग्रह का प्रकाशन 31 मई, 2005 के उपरांत हुआ हो।
5. काव्य कृति / कविता संग्रह की तीन प्रतियाँ कवि के संक्षिप्त परिचय के साथ 'वर्तमान साहित्य' के संपादकीय पते पर भेजी जायें।
6. कविता की मूल भावना जनोन्मुखी एवं धर्म निरपेक्ष हो।
7. पुरस्कार हेतु समिति चुनी गयी काव्य कृतियाँ/ कविता संग्रह तीन सदस्यीय निर्णायक मंडल को भेजी / भेजें जायेंगे।
8. निर्णायक मंडल के अभिमत के आधार पर पुरस्कार की घोषणा यथासंभव सितंबर, 2010 तक कर दी जायेगी।
9. निर्णायक मंडल का अभिमत अंतिम एवं मान्य होगा।

संपादक : वर्तमान साहित्य

28-एम.आई.जी., अवन्तिका-प्रथम, रामघाट रोड, अलीगढ़

Fax 0571-2742038, E-mail : vartmansahitya@gmail.com, vartmansahitya@yahoo.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह दफ़्न हुई बहस क्यों जी उठी है?

प्रदीप सक्सैना

1857 की डेढ़ सौवीं जयंती आ जाने से एक फ़ायदा तो हुआ ही कि तमाम अर्द्ध सरकारी और एन0 जी0 ओ0 तंत्रों तक को उत्सव धर्मिता के लिए ही सही कुछ ऐसे काम करने पड़े जिससे मीडिया के माध्यम से लोगों को अपने स्वाधीनता संग्राम की जानकारी हो गई। कुछ इतिहास विभागों और स्वतंत्र संस्थाओं की नींद भी टूटी और कुछ प्रोजेक्ट और शोध और सेमीनार हुए। कहते हैं सरकार ने 300 करोड़ रुपया इसके लिए अलग रख दिया था। उसे कहते हैं, सरकार ने ख़र्च भी कर लिया। अब यह अलग बात है कि ख़र्च उसी तकनीक और पद्धति से किया जैसे वह दूसरी योजनाओं पर करती है। इस बुरी नीयत के बावजूद यह काम अच्छा हुआ कि इस स्वाधीनता संग्राम का प्रचार-प्रसार हुआ और कुछ पैसा बौद्धिक-अकादमिक गतिविधियों पर भी खर्च हुआ, जिससे कितने ही दस्तावेज़, नये तथ्य, विचार, दृष्टिकोण और मूल दस्तावेजों की उपलब्धता सामने आयी। मेरी उस धारणा की पुष्टि भी हुई जो 1996 में मैंने अपने पहले ग्रंथ "1857 और भारतीय नवजागरण" में व्यक्त की थी कि अभी तो उर्दू-फ़ारसी के लगभग एक लाख दस्तावेज टटोले भी नहीं गये हैं। लगभग 2 से 3 लाख पृष्ठ अपने उपयोग की प्रतीक्षा में और संरक्षण के अभाव में गल रहे हैं। मैंने 1996 में लेखकों, विचारकों, इतिहासकारों और 1857 को प्रथम स्वाधीनता संग्राम मानने वालों का ध्यान इधर खींचा था कि ये अब तक अपठित, अप्रकाशित और अप्रयोगित सामग्री और दस्तावेज़ हैं, इनसे गुज़रे बिना हम कैसे इतिहास के पठन-पाठन-लेखन और इतिहास-चेतना के विकास का काम कर सकते हैं, जबकि हमें मालूम था कि 1957 में बावजूद पूरे जोश और संकल्प के पं0 नेहरू, उनकी पार्टी और सरकार ने सिवाय एक सरकारी इतिहास तैयार कराने के दूसरा कोई काम नहीं किया। सब जानते हैं सुरेन्द्रनाथ सेन के इतिहास को। इतिहास में उसकी क्या जगह बनी? और कौन सी इतिहास की मान्यताएँ उन्होंने विकसित कीं? पं0 नेहरू 1937-9 में ही अपना निर्णय दे चुके थे और मृत्यु पर्यंत वे उस पर क़ायम रहे। पुनर्लेखन, प्रथम उपनिवेश विरोधी संग्राम, हमारे पुरखों का बलिदान आख़िर क्यों, उसके सबक़ वग़ैरह की दृष्टि से पं0 सुंदरलाल और मौलाना आज़ाद ने 1857 पर अपनी गुहार लगायी और उसके विस्तृत अध्ययन और गहन विश्लेषण की माँग की।

वे तंत्र नहीं थे। वे तो कांग्रेस के भीतर की दूसरी परंपरा थे। लेकिन मार्क्सवादी इतिहासकारों ने पं. नेहरू की परंपरा का अनुगमन किया; न कि पं0 सुन्दरलाल या आज़ाद की। फिर 50 वर्ष तक इतिहास का पुनर्लेखन तो दूर 1857 के दस्तावेज़ों की सुध तक नहीं ली गयी। उन्हें संरक्षित करने के बारे में बिल्कुल नहीं सोचा गया। केवल उर्दू-फ़ारसी-के दस्तावेज़ों की संख्या ही 80,000 के आसपास थी। लखनऊ, दिल्ली, पटना, रामपुर, अलीगढ़, भोपाल तक के बहुज्ञात केंद्रों की भी छानबीन नहीं की गयी। इन स्रोतों की ओर तभी कुछ ध्यान जा सका है जब 150वीं जयंती के अवसर पर जनाब विलियम डैलरिम्पल साहब ने 1857 के स्वाधीनता संग्राम, कृषक क्रांति या जनक्रांति या महाविद्रोह या महाविप्लव की जगह "इस्लामिक सभ्यता" की टक्कर की थ्योरी दी और 'सभ्यताओं के संघर्ष' के रूप में 1857 पर उनकी प्रतिष्ठापूर्ण पुस्तक 'दि लास्ट मुग़ल' सामने आयी। उन्होंने बताया कि "देहली में उर्दू और फ़ारसी के बीस हज़ार प्राथमिक अभिलेख-मूल स्रोत मौजूद हैं, जिनसे इस विप्लव को अविश्वसनीय विस्तार और सूक्ष्मता के साथ समझा जा सकता है।" इन मूल स्रोतों को उन्होंने 'विद्रोह का कैटलॉग' कहा और यह भी दावा किया कि उन्होंने पहली बार इनका उपयोग अपने ग्रंथ में किया है। उन्होंने यह भी बताया कि "इन अभिलेखों में लालकिले के न्याय-प्रलेख कार्यालय के काग़ज़ात हैं, सिपाही-रेजीमेंटों के रिकार्ड हैं। देहली के न्यायालयों के रिकॉर्ड हैं। दिल्ली के कोतवाल के और पुलिस थानों के काग़ज़ात हैं। यह गली-कूचों का अविश्वसनीय रूप से समृद्ध अभिलेखागार है" जिसका उनके मत में कोई इस्तेमाल अब तक नहीं हो सका है। यह बात जब मैंने 1996 में रखी तब हिन्दी की ओर से रखने के कारण हिन्दी-वालों ने ही इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। फिर उनकी समझ से डॉ. रामविलास शर्मा जब इस विषय पर अंतिम रूप और दृष्टि से, यहाँ तक कि 'एकमात्र सही दृष्टि' से काम कर चुके हैं तो मैं अब और क्या करके रख दूँगा? उधर अंग्रेजी माध्यम और मानसिकता वाले मार्क्सवादी इतिहासकारों समेत सभी इतिहासकार जब डॉ. रामविलास शर्मा के काम को ही काम नहीं समझते तो मेरे काम को क्या समझते? औपनिवेशिक मानसिकता का यह खुला प्रदर्शन 150 वीं जयंती पर कुछ कम हुआ है, यही मेरे लिए कुछ राहत की बात है। यह दूसरी बात है कि तिकड़मों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संबधों के आधार पर यात्राएँ, सेमीनार-प्रवचन, विदेश भ्रमण करनेवालों की 1857 के पुनर्मूल्यांकन के इस अवसर पर बल्ले-बल्ले हो गयी। ये लोग सदैव ज्ञान के बाज़ार में छाये रहते हैं। उनका ही क़ब्ज़ा है मान्यताओं पर।

लेकिन दिल्ली में हैं ये एक लाख दस्तावेज़ और दिल्ली में तथा आस-पास रहने वाले इतिहासकार और डॉ. शर्मा जैसे विचारक इनसे दूर रहे और दूर रहने की प्रशंसा पायी और अंतिम मान्यताओं पर डटे रहे और स्कॉटलैंड से आकर डैलरिम्पल ने जब इन्हीं का उपयोग कर डाला तो उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। मुझे आई. सी. एच.आर., आई.सी.एस.एस.आर. और यू.जी.सी. ने एक दूसरे की तरफ भगाकर अंतिम निष्कर्ष यही दिया कि "हिन्दी-विभाग और हिन्दी-माध्यम से इतिहास में काम करने पर कोई सहायता नहीं दी जा सकती।" लेकिन ज्ञान की दुनिया में ऐसे अंतरविभाजन अब उपयोगी नहीं होंगे और कभी भी मानव जाति की प्रगति के हित में नहीं हैं। इन सब बातों को देखते हुए 150वीं जयंती का अवसर बहुत महत्वपूर्ण रहा; क्योंकि एक बार फिर मूल स्रोतों की ओर विद्वानों का ध्यान गया है। यह कितनी दिलचस्प बात है कि इनका ग़लत-सलत अनुवाद करके ही अंग्रेजों ने अपनी प्रगतिशीलता की थीसिस पेश की। इन अनुवादों से ही ब्रिटिश इतिहास लेखन को वैधता प्राप्त हुई। उनके कारनामों के प्रति विश्व-मनीषा सिर झुकाने लगी। सभ्यता को अभूतपूर्व ऊँचाइयाँ प्राप्त हुईं और लोग मानने लगे वास्तव में यह कितनी महान सभ्यता है जिसमें सूरज कभी डूबता नहीं! 100 वर्ष तक यही आलम रहा।

चार्ल्स बाल, जी.डब्ल्यू, फॉरेस्ट, टी. आर. होम्स, एम. इन्स, जे. डब्ल्यू. के., जी. एफ. मैकमन, जी. बी. मैलेसन, सी. टी. मैटकॉफ और अर्ल रॉबर्ट्स सभी ने अपने इतिहासों में ईस्ट इंडिया कंपनी के दार्शनिक लबादे को उतार कर 'इस सूरज' के दर्शन कराये। यह सूरज नहीं डूबा क्योंकि इसके घोड़े "राष्ट्रीय" नहीं थे, "ग़दर" के थे। वे अपने प्रधानमंत्री डिज़रेली तक का दृष्टिकोण स्वीकार नहीं कर रहे थे। ठीक वैसे ही जैसे हमारे मार्क्सवादी स्वयं मार्क्स का दृष्टिकोण स्वीकार नहीं कर सके थे। शायद यह 'राष्ट्रीय ज़रूरत' थी कि किसी भी हाल में किसी भी छोटी या बड़ी सशस्त्र क्रांति का समर्थन नहीं किया जाये। वरना यह स्पष्ट विभाजन कभी न होता कि पं. नेहरू के बरक्स ग़दर पार्टी के नेता, तथा तत्कालीन वीर सावरकर, भगतसिंह और मन्मथनाथ गुप्त 1857 के सशस्त्र संग्राम से भारत के स्वाधीनता संग्राम की प्रेरणा पायें और पं. नेहरू और मार्क्सवादी इतिहासकार और चिंतक और नेतागण इसे प्रतिक्रियावादी बतायें। इस भयानक बौद्धिक दुर्घटना के पीछे मुझे दो कारण अधिक सक्रिय प्रतीत होते हैं—एक, भारत के संदर्भ में मार्क्सवादी इतिहास-चेतना का मूल वर्गों से अलगाव के चलते उच्च स्तरीय विकास न होना या यांत्रिक होना और दूसरे 1857 के बारे में ब्रिटिश औपनिवेशिक दृष्टिकोण की निरंतरता का बना रहना जो अपने देशी स्रोतों, भाषाओं, लोगों से बनी ज्ञान की निरंतरता के प्रति एक तीव्र हिकारत की भावना से निर्मित है।

कहना चाहता हूँ कि हमारी इतिहास-चेतना में कई दरारें हैं।

अन्य प्रगति-विरोधी और जनविरोधी इतिहास चेतना की बात यहाँ नहीं की जा रही है। यहाँ प्रगतिशील, जनवादी मार्क्सवादी और वैज्ञानिक चेतना की बात की जा रही है। यदि केवल 'मार्क्सवादी' इतिहास-चेतना के प्रत्यय को ही लिया जाये तो मार्क्स की मान्यताओं की समझ और व्याख्या में ज़मीन और आसमान का अंतर दिखायी पड़ता है और यह अंतर क्योंकि विभिन्न वर्गों और व्यक्तियों के मंचों और प्रकाशनों पर उभरता है तो ख़ासा बेहूदा प्रतीत होता है कि एक ही विचार, दर्शन दल, ग्रुप, देश आदि के संदर्भों में यह अंतर मार्क्सवादी शब्दावली में अत्यंत सरलीकृत और मार्क्सवाद विरोधी निष्कर्षों के रूप में प्रकट होता है। उदाहरण के लिए, 1957 के पहले के स्थापित मार्क्सवादियों की दृष्टि में 1857 का स्वाधीनता संग्राम का महज "सिपाही विद्रोह" प्रतीत होना। रिवोल्ट, रेबेलियन, इंसरेक्शन से लेकर रेवोल्यूशन तक अवधारणाओं का क्रम विकास 1957 से 2007 के बीच की इतिहास-चेतना-यात्रा है। अब तो ख़ैर लोग 'कृषक- क्रांति' और 'पीपुल्सवार' तक जा पहुँचे है।

हम जानते है कि पं. नेहरू ने जब स्पष्ट रूप से यह घोषित किया कि यह "ख़ास तौर से एक सामंतवादी विद्रोह था, जिसके अगुवा सामंतवादी सरदार या उनके साथी थे" और यह कि उनकी पराजय अनिवार्य थी क्योंकि "इतिहास में वे अपना काम कर चुके थे।" तो राष्ट्रीय संघर्ष का यह ऐसा दौर था जिसमें सशस्त्र संघर्ष को इज्ज़त की निगाह से कोई भी कांग्रेसी देख नहीं सकता था। और जब कम्युनिस्ट नेता और पार्टी की लाइन भी यही थी कि अंग्रेज एक प्रगतिशील शक्ति थे क्योंकि पूँजीवाद की प्रवंड शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे और भारतीय विद्रोही सामंतवादी थे जो पतनशील शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे तो 1857 जैसे सशस्त्र संग्राम का क्या महत्व उभरता?

प्रो. इरफान हबीब ने 2006 में एक बार फिर अपना सुचिन्तित लेख लिखा "1857 : राष्ट्रीय विद्रोह की कहानी।" अपने पिता के मत के विपरीत उस लेख के पहले हिस्से के उपशीर्षक ही यही दिया कि—"मार्क्स ने कहा यह राष्ट्रीय विद्रोह है।" मैंने अन्यत्र भी यह मान्यता रखी है कि "समाजवादी अध्ययन केंद्र" के सदस्यों को मार्क्स के इन लेखों की जानकारी थी। यह समय 1934-38 का था। अभी 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' लिखी जानी थी। उस दौर में सोशलिस्ट बुक क्लब के प्रकाशन के 4 के रूप में मुल्कराज आनंद के हस्ताक्षर से मार्क्स के ब्रिटेन संबंधी लेखों का संकलन सामने आया था। इस संकलन को तैयार करने में प्रख्यात कम्युनिस्ट नेता और चिंतक रजनी पाम दत्त, ई-जेंट रिक्वार्ड, पं. जवाहर लाल नेहरू, सज्ज़ाद ज़हीर, पी. सी. जोशी और जेड-ए-अहमद ने सहयोग किया था। इतिहासकार डी.डी. कोसांबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने भी यही मत व्यक्त किया था। अतः कहना न होगा कि पं. नेहरू ने जब अंग्रेजों के प्रगतिशील होने ओर 1857 के योद्धाओं के प्रतिक्रियावादी होने के पक्ष में अपनी मुहर लगायी तब वे युवा तुर्क भी थे; मार्क्सवादी भी और मार्क्स के 1857 संबंधी लेखों से अवगत भी। कम्युनिस्ट नेता रजनी पाम दत्त ने भी जब यही लाइन ली तो 1947 तक के मार्क्सवादी चिंतकों ने बिना दुविधा के इसी लाइन का अनुसरण किया। इन सब चीजों का प्रामाणिक अध्ययन किया जाना चाहिए। केवल कॉ. पी. सी. जोशी की डॉ. राम विलास शर्मा की भर्त्सना को 'प्रामाणिक आलोचना' नहीं मानना चाहिए। पी. सी. जोशी को ही यह श्रेय जायेगा कि वे पहले कम्युनिस्ट थे जो 1857 पर अपना गहन, स्वतंत्र, महत्वपूर्ण और बहस तलब रुख अपना सके।

तो यहाँ न केवल दरारें हैं उनको भरने का प्रयास भी नहीं किया गया है। बस इतना लाभ लिया गया है कि वे सब गलत थे। "केवल हम सही हैं" ये आग्रह हिंदी में इतने प्रबल थे और हैं कि जब मैंने 1996 में उन मार्क्सवादियों को रेखांकित किया जिन्होंने 1857 का सकारात्मक मूल्यांकन किया था तो भावुक और आग्रही हिंदी मानस ने मेरा तो दूर इन रूसी- चीनी-ब्रितानी और भारतीय मार्क्सवादियों का नामोल्लेख करना तक गवारा नहीं किया। कभी-कभी ये दरारें एक शब्द से भी पड़ गयी हैं जैसे कि स्वाधीनता संग्राम तो यह था ही लेकिन 'प्रथम' था या नहीं, यह भी इतिहास-चेतना का मसला रहा। मैं पाता हूँ कि 1959 में जब सोवियत संघ के मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान द्वारा मार्क्स एंगेल्स के 1857 संबंधी लेखों का संकलन प्रकाशित हुआ और वह संस्करण भारत पहुँचा तो यहाँ के विद्वानों ने जिनमें मार्क्सवादी भी थे, उसके शीर्षक को बहुत प्रेरक पाया। उसका शीर्षक था—"दि फर्स्ट इंडियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस : 1857-1859" जिससे प्रेरित होकर हमारे अधिकांश इतिहासकारों ने "दि फर्स्ट" शब्द अपना लिया और इसे "प्रथम स्वाधीनता संग्राम" के रूप में देखना शुरू कर दिया। कब यह शब्द लपक लिया गया और कब लपककर सावरकर से जोड़ दिया गया, कहा नहीं जा सकता। सावरकर ने कभी भी उसे "प्रथम" नहीं कहा था। उनके ग्रंथ का नाम था—"सत्तावन चें स्वातंत्र्य समर" सत्तावन (च्या) स्वातंत्र्य समर" शायद "का" की तर्ज़ पर "च्या" एडजस्ट कर दिया गया है।

यहाँ यही निवेदन है कि इतिहास-लेखक के लिए इतिहास-दृष्टि का होना और विकसित करना बहुत ज़रूरी है, नहीं तो शब्द से लेकर अवधारणा तक बहुत भटकन होगी। किस स्रोत को कितना महत्व दिया जाये, यह भी इतिहास दृष्टि से ही तय होगा। किस घटना, व्यक्ति, वस्तु और पदार्थ तक को क्या स्थान दिया जाये यह भी गंभीर इतिहास लेखकों की तैयारी से जुड़ी हुई बात है। उदाहरण के लिए 'लोटा' और 'पण्डीज़' शब्दों पर 'के' और 'मैलीसन' ने पूरा पूरा चैप्टर लिखा है जबकि बाद के इतिहासकारों ने उन पर कोई ध्यान नहीं दिया। मेरी समझ में क्योंकि इन पर ध्यान नहीं दिया गया, लिहाजा मंगल पाण्डेय को सही स्थान नहीं मिल सका जबकि उसे प्रथम शहीद माना जाना चाहिए, न कि महज ब्राह्मण, तिलक छाप कोई सिपाही मात्र! क्योंकि हम लोकप्रिय धारणाओं से निकल नहीं पाते, अतः यह काम रह जाते हैं। सटीक अवधारणात्मक शब्द का चुनाव इतिहासकार के लिए सदैव बड़ी समस्या रही है, क्योंकि वहाँ से इतिहास मोड़ लेता है। मोड़ भी यह दिल्ली की सड़कों की तरह का है। ग़लत मुड़ते ही 20 किलोमीटर की सैर ग़लत दिशा में। जैसे कि "प्रगतिशीलता" की अवधारणा का मोड़ जो 1857 के इतिहास-लेखन की सबसे प्रचंड दुर्घटना साबित हुआ है। जिस प्रगतिशील भूमिका की इतनी बात की गयी है, उसी के संदर्भ में यह भी पूछा जा सकता है कि अगर भूमिका अंग्रेजों की प्रगतिशील नहीं थी तो किस तरह की थी? यह इतिहास-चेतना की कितनी बड़ी दरार है कि विद्रोहियों और अंग्रेजों दोनों की भूमिकाएँ अगर प्रतिक्रियावादी हैं तो फिर प्रगतिशील भूमिका है किसकी? हाथ पर हाथ धरे मौज मारने वालों की, निष्क्रिय लुम्पेन तत्वों की या सामंतों और सरदारों की ? यह भी तय करना चाहिए कि 1857 में प्रगतिशीलता का क्या वही अर्थ था जो 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के लिए था? शायद ज़रूरत है इतिहास के विभिन्न दौरों में 1857 के प्रति दृष्टियों को जानने की। विभिन्न इतिहास दृष्टियों और व्यक्तियों के वर्गाधार को समझने की। यानी एक सुसंगत परिप्रेक्ष्य बनाने की।

मार्क्स का परिप्रेक्ष्य तो इतना बड़ा है कि वे इसे योरोपीय क्रांति से, योरोपीय देशों से तथा संयुक्त राष्ट्र अमरीका में चलने वाली प्रक्रिया पर पड़ने वाले प्रभावों के क्रम में तथा ब्रिटिश हस्तक्षेप कारियों की लूट-खसोट की नीति तथा औपनिवेशिक शोषण के उनके बर्बर तरीकों के परिणाम के रूप में देखते हैं, फौरी और गहन कारणों को अलग-अलग दर्शाते हैं। उपनिवेशों और औपनिवेशिक शासकों, यूरोप और एशिया, विशेष रूप से इंग्लैंड बनाम भारत और चीन के संदर्भों में विश्लेषित करते हैं, जबकि हमारे अधिकांश 1857 के चिंतकों के दायरे में पूरा हिंदुस्तान तक नही रहा। या, उभरा भी तो दक्षिण-उत्तर के रूप में, पंजाब और सीमा प्रांत, मद्रास और बंगाल रेजीमेंटों के रूप में, पुरबिया बनाम सिख या गुरखों के रूप में, निजाम, मराठे और अंग्रेजों के रूप में, जड़ और मूर्ख, जातिग्रस्त, धर्मत्रस्त, लस्त-पस्त भारत के रूप में जिसकी न कोई प्राचीन सभ्यता थी, न संस्कृति, न साहित्य, न शौर्य। केवल एक अंधकार में डूबा हुआ मूल्यहीन देश जो ईस्ट इंडिया कंपनी के सूरज के आलोक में नहा गया। हिंदू-मुस्लिम-सिख सब जड़ समुदाय थे। हर वक़्त परस्पर लड़ते रहते थे। ईसाइयों ने नया ज्ञान दिया, मित्रता सिखायी। यानी भारत एक अपरिवर्तनीय अनम्य ढांचा था जो बंगला बनाम हिंदी, मराठी नव जागरण में ढल सका। उनका भी पहला या आखिरी चरण बनकर। इन अध्ययनों में व्यक्तिवादिता का इतना बोलबाला रहा है कि अपने से पूर्व किये गये कामों और व्यक्तियों का नामोल्लेख तक नहीं हुआ है। यद्यपि मान्यताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी ग्रहण की गयी हैं। अत्यंत सारहीन वक्तव्य और कृतियों की गोष्ठियों में धूम रही। अनुशासनहीन ज्ञान अख़बारों-पत्रिकाओं में पसरा रहा। डॉ. राम विलास शर्मा की एक कायदे की समीक्षा तक नहीं सामने आयी। यह अलग बात है कि अन्यों के योगदान को वे भी अक्सर नकारते रहे हैं। उनके आलोचक वही रास्ता क्यों पकड़ रहे हैं।

लेकिन आकार लेते बौद्धिक वर्ग में कुछ गंभीर हलचलें भी दिखायी पड़ी हैं। देशी बनाम अंग्रेजी के बीच कुछ आवाजाही भी हुई है। हो रही है। लेकिन न्याय के लिए यह काफ़ी नहीं है क्योंकि 1857 से 1957 के बीच दृष्टिकोणों के विकास का परिप्रेक्ष्य स्पष्ट नहीं है। देशी भाषाओं में उन बहसों का अनुवाद नई बहसों को जन्म दे सकेगा। दस्तावेज़ों के प्रामाणिक पाठ निर्णय करने में मदद करेंगे। उनका संरक्षण और आलोचनात्मक अवलोकन ज़रूरी है। कुछ ने अपनी मान्यताएँ साल-दो साल में ही बदली थीं जैसे कि सुरेंद्रनाथ सेन ने। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से मौलाना आज़ाद का और मार्क्सवादी दृष्टिकोण से कॉ. पी. सी जोशी का बहस को अत्यंत स्वस्थ ढंग से आगे बढ़ाने में तथा मार्क्सवाद को लागू करने में, उस दौर में मार्क्सवादियों से काम करवाने और लोक गीतों का अनुवाद कर अंग्रेज़ी माध्यम के चिंतकों के सामने एक नये मूल स्रोत के रूप में पेश करने में अप्रतिम योगदान है। प्रथम प्रतिश्रुति। इतिहास-चेतना की दरारों को भरने का प्रयत्न। 1857 को एशिया का सबसे बड़ा संघर्ष मानने, सशस्त्र संघर्ष, सर्वश्रेष्ठ संगठनात्मक लोकतांत्रिक गतिविधि के रूप में देखने जैसे परिप्रेक्ष्यों की पूरी फाइलें अप्रयोगित पड़ी हैं। इटली की विशेषकर, जिनका कोई उपयोग अभी तक नहीं हुआ है।

जब तक हम अपने अतीत में किये गये संघर्षो का चरित्र निर्धारण नहीं करते, हम भविष्य में अपने संघर्षो का चरित्र भी नहीं समझ सकते।

यदि 150 वर्षों में उस संघर्ष की आभा मंद नहीं पड़ी है और हज़ारों उसके अध्ययन किये गये हैं तो वह भुलाने लायक संघर्ष तो नहीं हैं। उसका चरित्र निर्धारण करने में विविध-दृष्टियों और पक्षों वाले लेखों से उसे आर-पार देखने में सहायता मिलेगी। नयी सूचनाएँ, तथ्य और विश्लेषण ही ज्ञान क्षेत्र में उथल-पुथल कर सकते हैं। उन्हीं में किसी भी संघर्ष और संकल्प को बल देने की क्षमता होती है। बढ़ें इस पथ पर। हम सब। क्योंकि 1857 एक मृत अतीत नहीं है। वह तो भविष्य के संघर्ष की एक ऊर्जा है। वह नया जन्म लेता भारत भी है। 1857 का उत्तर समय।

पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़-202002

लघु कथा

दुनियादारी

अशफ़ाक कादरी

"आप लोग कैसे आदमी का अभिनंदन कर रहे हैं, जिसकी समाज में कोई इज़्ज़त नहीं है, एक नंबर का 'फ्राड' है, ऐसे आदमी से मुझे सख़्त एलर्जी है" वे नगर के नामी लेखक घृणा व क्रोध से आयोजकों पर बरस रहे थे, जिन्हें उन्होंने एक समाजसेवी के बारे में लिखने का अनुरोध किया था। हक्के-बक्के आयोजकों ने उनकी प्रतिक्रिया पर सहमते हुए सफाई देनी चाही, तभी वे संयत होकर कहने लगे "ख़ैर आप क़ह रहे हैं तो मुझे उसके बारे में लिखना पड़ेगा। वह हमारे समाज का आदमी जो ठहरा, समाज में रहकर दुनियादारी तो निभानी ही पड़ेगी" वे उस समाजसेवी की प्रशंसा में शब्द बुनने लगे।

बेदखल

"मैं तुम सबको तबाह करके रख दूँगी, पूरे खानदान को जेल पहुँचाकर दम लूँगी" बहू के इन वचनों से पूरा परिवार सकते में आ गया। मुहल्ले भर में अपनी शराफत के लिए प्रसिद्ध परिवार की बहू ने इज़्ज़त मिट्टी में मिलाने का ऐलान कर दिया।

बेटा किंकर्तव्यविमूढ़ कभी बहू की ओर देख रहा था, तो कभी थरथराते पिता की ओर। कातर नज़रों से बीमार माँ पर नज़रें ठहर गयीं जिन्हें अपने से ज़्यादा ससुराल में सुखी बेटियों के बेवजह जेल जाने की आशंका सता रही थी।

आखिर में वकील की सलाह से उन्होंने अख़बार में विज्ञापन देने में भलाई समझी-

हमारा बेटा और बहू हमारे कहने सुनने में नहीं हैं और रोज हमसे झगड़ा करते हैं इसलिए हम उन्हें अपने परिवार से बेदखल करते हैं। इनसे हमारा कोई संबंध नहीं है।

अब बहू के साथ बेटा भी खानदान से बेदखल हो चुका था।

मौहल्ला चूनगरान, बीकानेर-334005 (राजा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1857 के शहीदों के नाम

प्रस्तुति : प्रदीप सक्सेना

मानव सभ्यता के इतिहास में जो बड़ी घटनायें घटती हैं वे उनकी स्मृति में लगातार जीवित रहती हैं। आने वाले संतति कई बार उनका पुराणीकरण कर मिथक रचती है तो कई बार उनसे प्रेरणा प्राप्त कर अपने वर्तमान की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ती है और आने वाले कल के निर्माण की आधारशिला भी रखती है। हिन्दुस्तान के इतिहास में 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम ऐसी ही बड़ी घटना है। ये हिन्दुस्तान की जनता की स्वाधीनता की आकांक्षा को कार्यरूप में परिणत करने वाली परिघटना भी है। हिन्दुस्तानी मेधा के लिये यह परिघटना प्रबल आकर्षण की वस्तु रही है। काव्य वस्तु के लिए भी यह अत्यंत संभवनाशील विषय क्षेत्र है। इस स्वाधीनता संग्राम के संकल्पनाकार अजीमुल्ला खाँ के प्रयाण-गीत 'हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा' से लेकर इस संग्राम के सैकड़ों कवि/ शायर योद्धाओं ने उस संघर्ष के दौरान रचनायें की थीं। इस परंपरा में बहादुरशाह जफ़र के नाम से सभी सुपरिचित हैं। इन रचनाकारों ने अपनी कलम के भाव से सारतत्व के रूप में इतिहास लिखा और तलवार से इतिहास भी बनाया।

आज 1857 की इस महान परिघटना को 153 वर्ष हो चुके हैं। अब भी यह कवि और शायरों के लिए दुर्निवार आकर्षण की वस्तु है। वे इस परिघटना में अपने पूर्वजों की स्वाधीनता की कामना / चेतना की धड़कने सुनते हैं और उनकी शहादत के प्रति श्रद्धावनत भी होते हैं। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की साझा स्मृति में यह बहुत गहरी जड़ें जमाये हुए है। इस पर पाकिस्तान के अज़ीम शायर अहमद फराज़ ने अपनी सुप्रसिद्ध नज़्म 'शुहदा-ए- जंगे आज़ादी : 1857 के नाम' में अपने पूर्वजों को श्रद्धा सुमन अर्पित किये हैं। 10 मई को 1857 की क्रांति के 153-54 वर्ष पूरे हो रहे हैं। 1857 के शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में अहमद फराज़ की नज़्म प्रस्तुत है:

शुहदा-ए-जंगे-आज़ादी 1857 के नाम[1]

तुम ने जिस दिन के लिए अपने जिगर चाक किए
सौ बरस बाद सही दिन तो वो आया आख़िर

तुम ने जिस दश्ते-तमन्ना[2] को लहू से सींचा
हम ने उसको गुलो-गुलज़ार[3] बनाया आख़िर
नस्ल-दर-नस्ल[4] रही जहदे-मुसलसल[5] की तड़प
एक इक बूँद ने तूफ़ान उठाया आख़िर
तुम ने इक ज़र्ब[6] लगाई थी हिसारे-शब[7] पर
हम ने हर जुल्म[8] की दीवार को ढाया[9] आख़िर
वक़्त तारीक ख़राबों[10] का वो अफ्रीत[11] है जो
हर घड़ी ताज़ा चरागों का लहू पीता है
जुल्फे-आज़ादी[12] के हर तार से दस्ते-अय्याम[13]
हुर्रिय्यतकेश[14] जवानों के कफ़न सीता है
तुम से जिस दौरे-अलमनाक का आग़ाज़[15] हुआ
हम प' वो अहदे-सितम[16] एक सदी बीता है
तुम ने जो जंग[17] लड़ी नंगे-वतन[18] की ख़ातिर[19]
माना उस जंग में तुम हारे अदू[20] जीता है
लेकिन ऐ जज़्बे-मुक़द्दस[21] के शहीदाने-अज़ीम[22]
कल की हार अपने लिए जीत की तम्हीद[23] बनी
हम सलीबों प' चढ़े ज़िंदा गड़े फिर भी बढ़े
वादी-ए-मर्ग[24] भी मंज़िल-गहे-उम्मीद[25] बनी
हाथ कटते रहे पर मशअलें[26] ताबिंदा[27] रहीं
रस्म जो तुम से चली बाइसे-तक़्लीद[28] बनी
शब के सफ्फाक[29] खुदाओं को ख़बर हो कि न हो
जो किरन क़त्ल हुई शो'ला-ए-खुर्शीद[30] बनी।

प्रस्तुति : प्रदीप सक्सेना

1. 1857 की क्रांति में वीरगति को प्राप्त होने वालों के नाम, 2. इच्छा के उद्यान, 3. हरा-भरा, 4. पीढ़ी-दर-पीढ़ी, 5. निरंतर प्रयत्न, 6. चोट, 7. काला घेरा, 8. अत्याचार, 9. गिराया, 10. अंधेरी बुराइयों, 11. देव, 12. स्वतंत्रता की लटें, 13. समय के हाथ, 14. स्वतंत्रता चाहने वाले, 15. रंज के समय का आरंभ, 16. अत्याचार का समय, 17. युद्ध, 18. जन्म भूमि की लाज, 19. वास्ते, 20. शत्रु, 21. पवित्र भावना, 22. महान शहीद, 23. भूमिका, 24. मृत्यु घाटी, 25. आशा की चरम सीमा, 26. मशालें, 27. चमकती, 28. स्वीकार करने योग्य, 29. अत्याचारी, 30. सूर्य का टुकड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिबोध की तीन कहानियाँ : सच पर पलस्तर

'सतह से उठता आदमी', 'क्लाड इथरली' और 'ब्रहाराक्षस का शिष्य' पर पुनर्दृष्टि

विनीता रघुवंशी

मुक्तिबोध का काव्य और गद्य-दोनों अपने समय, समाज और व्यक्ति के भीतरी बदलाव की ख़ासी पड़ताल करते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी भारतीय समाज के लिए राजनैतिक विचाराधाराओं के बदलाव का नया अनुभव, सामाजिक जीवन में नयी धारणाओं का आकर्षण, पारिवारिक जीवन के भीतर नयी स्थितियाँ लेकर आयी थी। विश्व-परिदृश्य पर दो महायुद्ध लड़े जा चुके थे, जिनके कारण व्यक्ति का सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन प्रभावित हुआ। व्यक्ति को अपने अस्तित्त्व पर मँडराते ख़तरे महसूस होने लगे। इससे उत्पन्न चिंता ने उसे नितांत स्वार्थी बना दिया। उसकी चिंता का दायरा सिमट गया। यद्यपि, ये युद्ध यूरोप की धरती पर लड़े गये, किंतु परिणाम की व्यापकता ने भारतीय परिवेश को भी प्रभावित किया। भारत बिट्रेन का उपनिवेश था, इसलिए यूरोपीय घटनाओं का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा। दूसरी ओर, भारत में आज़ादी के लिए चल रहे आंदोलन समाज को प्रभावित कर रहे थे। उन्नीस सौ सैंतालीस में मिली आज़ादी और विरासत में मिला-विभाजन का दुख। इन दोनों ने भारतीय जन-मानस को प्रभावित किया। गांधी की हत्या और विभाजन की त्रासदी के अवसाद की स्थितियों ने सामाजिक धारणाओं और विश्वासों को झकझोर दिया।

सामाजिक जीवन में गरिमा और छिछोरेपन की झलक एक साथ दिखायी पड़ने लगी। ये एक सिक्के के दो पहलू हो गये। जीवन के प्रति गहरी आस्था उपहास का कारण बनी। छल और कपट जीवन-शैली बन गये। पारस्परिक संबंधों में दग़ाबाजी भर गयी। भारतीय जीवन-शैली का सौंदर्य बैठक 'ड्राइंग रूम' में और रसोई 'किचन' में बदल गयी। स्वतंत्रता के कुटिलार्थ गढ़े जाने लगे। अंग्रेज़ी जीवन-शैली, सभ्यता-संस्कृति की नकल जीवन का असल मक़सद बन गयी। संयुक्त परिवार की अवधारणा एकल परिवार में बदली। भारतीय समाज के मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष अपने केश-विन्यास और वेश-विन्यास में परिवर्तन करके अपने को स्वतंत्र महसूस करने लगे। यह परिवर्तन आज़ादी का भ्रम मात्र था, आज़ादी के असल अर्थ गुम हो गये।

समाज में सार्वभौम मूल्यों की संज्ञा वही रही, किंतु प्रमाण बदल गये। प्रेम जैसे सर्वस्वीकृत सार्वभौम मूल्य की आड़ में कपट और चतुराई पनपे। प्रेम के कवच को पहनकर समाज में वेश्यावृत्ति और लंपटता बलवती हुई। सेवा के पैसे वसूले जाने लगे। त्याग का मूल्य आँका जाने लगा। सात्विकता की परीक्षा ली जाने लगी। आस्था को शंका की निगाह से मापा गया। इस प्रकार, आज़ादी के बाद का मध्यवर्ग अपने समग्र सचेतन में जड़, स्वार्थजीवी और लोभी हो गया।

मुक्तिबोध की कविता की तरह ही उनका गद्य भी गंभीर चिंतन की माँग करता है। मुक्तिबोध की कहानी 'सतह से उठता आदमी' भी सन साठ से सत्तर के मध्य बदलते मध्यवर्गीय समाज का खाका हमारे सामने प्रस्तुत करती है। यह तीन मित्रों की कथा है। इसे पढ़ते हुए कई मर्तबा बेताल कथा का स्मरण हो जाता है। इस कहानी के तीनों मित्रों में कृष्णस्वरूप और कन्हैया, मध्यवर्ग के अधिवासी हैं, जबकि रामनारायण उच्च मध्यवर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। इन तीनों की जीवन के प्रति अलग-अलग धारणाएँ हैं। कृष्णस्वरूप जीवन-नीति की प्रणालियों को खोजते-खोजते प्रत्येक दर्शन के कोने-कोने में झाँकता है, उनकी पड़ताल करता है और प्रयोग की परख पर उन्हें आजमा कर भी देखता है और जीवन की कसौटी पर खरे न उतरने पर उनसे मुँह फेर लेता है। उसे लगता है कि जीवन सिद्धांत नहीं है। वह निग्रह से जीवन की शुरूआत करता है, किंतु संयम से फिसल जाता है। वह जीवन- धर्म को जानने की कोशिश करता है, किंतु भूख की आँच उसके संयम को पिघला देती है।

कृष्णस्वरूप बी.ए. है और सरकारी नौकर। वेतन के नाम पर सवा सौ रुपये पाता है, जिसमें गृहस्थी की गाड़ी खींच पाना असंभव है। हिसाब से गाड़ी खींचता है, किंतु भूख हिसाब नहीं जानती है। घर का हर आदमी आँखों ही आँखों में पूछता है कि तुमने हमारे लिए क्या किया? कृष्णस्वरूप के हृदय में भी यह सवाल खटकता है। उत्तर भी स्पष्ट है—"पैसों की कमाई।" कृष्णस्वरूप मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है। मध्यवर्ग के किसी भी व्यक्ति की खोज पैसे से शुरू होकर पैसे कमाने के रास्ते पर ही ख़त्म हो जाती है।

उसकी जीवन-नीति की तलाश के स्वप्न में जीवन के आदर्श पुरुष धर्ममेरु शंकराचार्य, कर्ममेरु महात्मा गांधी और स्वप्नदर्शी जवाहरलाल नेहरू भी समाये हैं। वह स्वतंत्र-चेता व्यक्तियों के बीच भी जाकर खड़ा होता है। कृष्णस्वरूप इन स्वतंत्र-चेता व्यक्तियों से प्रभावित होता है और अपने आदर्श के रूप में स्वीकार भी करता है, किंतु ये सारे के सारे उसे बिकने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयार दिखते हैं। सवाल क़ीमत का है। यही विडंबना है। सब अपनी चेतना की क़ीमत माँगने वाले अख़बारनवीस हैं। स्वरूप जीवन-निर्वाह की नीति की तलाश में है, जो मूल्य-नीति बन पाती। निर्धनता के घेरों से वह निकल जाता है, किंतु जीवन-मूल्य उसके सामने कठिनाई पैदा करते हैं। कन्हैया ग़रीबी उसकी विद्रूपता, ग़रीब के धर्म और दर्शन को जानता है। वादी दर्शन में आत्म-नियंत्रण, आत्म-दृढ़ता और आत्म-गौरव की पशुता से मुक्त करने के लिए बहुत कुछ उपयुक्त गांधीवाद के सहारे अभावजन्य आत्म-संतुष्टि की जा सकती

यहीं मुक्तिबोध विवेक के भीतर संवेदना का बीजारोपण हैं। व्यक्ति की जीवन-नीति की तलाश क्या पैसों की पर ही ख़त्म हो जाती है? सतह सिर्फ़ निर्धनता ही है? संपन्नता में बदलना ही सतह से उठना है? यहीं वे सवाल खड़े होते हैं, जो जीवन-विवेक और संवेदना की करते हैं। कृष्णस्वरूप में मध्यवर्ग की धूर्तता, वाक्पटुता, तता, अनुशासन का बनावटीपन, आज्ञापालन और नुस्ख़े के जीवन चलाने वाली प्रवृत्ति का समावेश है।

रामनारायण भद्र समाज का प्रतिनिधि है, जो व्यवस्थाओं भीतरी अनुशासन की सच्चाई को जानता है। रामनारायण शिक्षित है और उसका बौद्धिक स्तर भी उच्चकोटि का है, व्यवस्थाओं के प्रत्येक स्तर और स्वरूप से उखड़ा हुआ है, व्यवस्था के बदले नयी व्यवस्था कैसी और क्या होना चाहिए, नहीं जानता। उसका यह न जानना ही उसे भारतीय द्धिजीवियों का प्रतिनिधि बनाता है, जिससे फ़िक्र होती है। रायण का यह विरोध-दर्शन सतही है। उसकी यह बौद्धिकता क्रोध को जन्म देती है। एक ऐसा आक्रोश, जो आत्मघातक दिशाहीन है। उससे निकलकर एक नयी समाज-स्वीकृत, हितकारी व्यवस्था का नक्शा नहीं बनता। इसलिए, विरोध रामनारायण जैसे बुद्धिजीवियों की दिशाहीनता को र्ड जीनियस' (भ्रमित बुद्धिजीवी) कहते हैं। केवल व्यवस्थाओं ने या उन पर क्रोधित होने से नयी व्यवस्थाएँ नहीं बनतीं। ी के शीर्षक में ही क्लू भी है—सतह से क्या तात्पर्य? घरातल की बात ? प्रगति का पैमाना क्या? मनुष्य-जीवन स्तर को उठता हुआ देखने की इच्छा? क्या धन? क्या साधन? क्या उच्च भौतिक दर्शन? इन सवालों के भीतर ना का स्फुरण होता है। एक ऐसी चेतना, जो विवेकपूर्ण से भरी है। यह संवेदना कोरी भावुकता नहीं, उचित अनुचित के बीच फ़र्क़ पैदा करने की क्षमता से भरी है। इन दोनों पात्रों के बीच तटस्थ है। अपने जीवन के और पूर्णता से संतुष्ट है। सतह है, जिस पर वह विवेक में अपने मार्ग का संधान करता है। वह कृष्णस्वरूप क़ी से चमत्कृत है, किंतु उसके मन में प्रलोभन नहीं है। उसके मन में कृष्णस्वरूप के भौतिक साधनों की इफ़रादी देखकर लालसा जागती है कि उसे भी इन्कम टेक्स ऑफ़िस में नौकरी मिली होती, पर यह केवल क्षणिक इच्छा है। कन्हैया मानता है कि सभ्यता की विकृति का कारण मनुष्य की 'चाहिए', 'चाहिए' की मनोवृत्ति है, जिसने मनुष्य-समाज के समग्र अंतःसंबंधों को विकृत कर दिया हैं। कृष्णस्वरूप और कन्हैया के माध्यम से मुक्तिबोध जीवनव्यापी संघर्ष को उजागर करते हैं। मनुष्य की लोभ की प्रकृति का विस्तीर्ण उद्घाटन करते हैं। कन्हैया का संबंध रामनारायण से भी है। रामनारायण का व्यवस्थाओं के विरोध का बेतुकापन उसे आकर्षित तो करता है, किंतु प्रभावित नहीं करता। कहानी के अंत में कृष्णस्वरूप की जीवन-नीति पर कन्हैया की प्रतिक्रिया ही पूरी कहानी की संवेदना को अभिव्यक्त करती है। कन्हैया का 'गटर में थूकना' ही कहानी के मूल्यार्थ पर पहुँचना है। कृष्णस्वरूप की उम्दा जीवन-नीति की तलाश का ख़त्म हो जाना है।

मूल्यहीन होकर उससे प्रगति के मुकाम को पाना ही जीवन नहीं है। केवल धन या क्रोध ही असल जीवन नहीं है।

कन्हैया की प्रतिक्रिया संवेदना के दो सवाल निकालकर पाठकों के सामने उपस्थित करती है—पहला, मनुष्य जीवन से नीति और मूल्य का विदा हो जाना ही क्या असल तरक़्क़ी है? दूसरा, क्या आर्थिक प्रगति ही मनुष्य-जीवन की कुल जमा उपलब्धि है? मूल्यों को छोड़कर भौतिक तरक़्क़ी स्तर उठने का प्रमाण है या गिरने का?

कन्हैया गटर में थूककर कृष्णस्वरूप की मूल्यहीन प्रगति पर अपनी तीख़ी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इस कहानी का अंत मनुष्य-यथार्थ पर चढ़े पलस्तर को गिराता है।

मुक्तिबोध की दूसरी कहानी है—'क्लाड इथरली।' क्लाड इथरली कहानी का वह पात्र है, जिसने धन के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान के हिरोशिमा नगर पर परमाणु बम गिराये, जो विश्व की पहली नृशंस त्रासद घटना थी। क्लाड इथरली अमेरिका की सेना का विमानचालक है। मुक्तिबोध अपनी कहानी में फ़ेंटेसी के ज़रिये विवेक और चेतना को उभारते हैं। मुक्तिबोध कहानी की शुरूआत बड़े रहस्यमय वातावरण के चित्रण से करते हैं। वे दृश्य को चेतना के लिए उपयोग करते हैं। सी.आई.डी. में कार्यरत स्त्रीतुल्य पुरुष से लेखक की भेंट होती है, दोनों के बीच वार्तालाप आज़ादी के बाद के भारतीय समाज का सर्वेक्षण उजागर करता है। अमेरिका एक पूँजीवादी देश है, भारत एक विकासशील देश है। अमेरिकी पूँजी भारत में अमेरिकी समाज के मूल्य-स्थापन का कार्य कर रही है। यह पूँजी अपना प्रभाव साहित्य, समाज, रीति-रिवाज़, परपंराओं पर डाल रही है। सी. आई.डी. कर्मचारी और लेखक के वार्तालाप में यह तथ्य बार-बार उभर कर आता है कि 'हिंदुस्तान भी अमेरिका ही है'।

क्लाड इथरली भी अमेरिकी समाज का बाशिंदा है। पूँजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने अमेरिकी समाज को बर्बर बना दिया है। क्लाड इथरली अपने समाज की तरह शांति के लिए युद्ध चाहता है। अपने उद्योगों के लिए कच्चा सस्ता माल पाने के लिए औपनिवेशिक साम्राज्यवाद का हिमायती है। उसकी चेतना, विवेक और संवेदना पूँजी से निर्मित हैं, किंतु जब वह परमाणु बम हमले के बाद हिरोशिमा को देखता है, तो उसके भीतर अपने कृत्य के प्रति पहली बार घृणा का भाव उत्पन्न होता है, जबकि अमेरिकी समाज और सत्ता उसे इस कृत्य के लिए 'वार हीरो' की उपाधि से सम्मानित करती है। इसके लिए उसे इनाम देती है। किंतु, वह इस कृत्य को जघन्य मानता है और पहली बार उसकी आत्मा में करुणा का संचार होता है। उसकी चेतना इसे नृशंस मानती है। वह इसके लिए इनाम नहीं दंड चाहता है।

अमेरिका का समाज पूँजी-केंद्रित समाज है। उसकी मूल्य-चेतना भी धन से ग्रस्त है। पूँजी अपनी मूल्य-चेतना स्वतः गढ़ती है। क्लाड इथरली का जीवन-विवेक भी पूँजी की प्रचुरता और लालसा ने नष्ट कर दिया है। जब मुक्तिबोध कहानी में हिन्दुस्तान के अमेरिका हो जाने का तथ्य उभारते है, तो यह कथन सामान्य होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है।

अमेरिका हो जाना यानी संवेदना पर पूँजी (धन) का बरक चढ़ जाना, समग्र सामाजिक सरोकोरों का संचालन-संवर्द्धन धनात्मक होना है। अमेरिकी समाज की संवेदनशून्यता भारतीय समाज में भी व्याप्त हो रही है। समाज में केंद्रीय भूमिका में पैसा ही है। जीवन-मूल्य और जीवन-नीति—सब धन-केंद्रित हैं। क्लाड इथरली जब हिरोशिमा पर परमाणु बम से हमला करता है, उस समय वह चेतना-शून्य है, विवेक-शून्

य है, संवेदना-शून्य है; किंतु धीरे-धीरे वह अपने समाजव्यापी युद्धवाद, पूँजीवाद, और समझौतावाद से मुक्त होता है। यही मुक्ति उसे मुनष्य बनाती है। यह करुणा ही उसमें चेतनात्मक विवेक जगाती है। ऐसा जीवन-विवेक, जो संवेदना को जगाता है। यही संवेदना अपने व्यापक स्वरूप में प्रकट होकर हमें समझाती है कि निरपराध-मासूम लोगों पर हमला करना पागलपन है। उनके प्रति संवेदनशील होना पागल होना नहीं है। जो अपने प्रत्येक कृत्य में आत्मा के विवेक की आवाज़ सुनकर बेचैन होते हैं, वे पागल नहीं हैं। जो विचार-शून्य होकर, पागल होकर पाप को, जघन्यता को, नृशंसता को, हिंसा को सही मानते हैं—वे सब पागल हैं। ज़माने की चाल उल्टी है। सच समझने वाला, सच बोलने वाला और सच जीने वाला इस दुनिया में पागल समझा जाता है। उसे पागलखाने में डालकर दुनिया निश्चिंत होकर समझौता करती है। साम्राज्यवादी होती है। पूँजीवाद का परचम फहराती है। युद्धोन्माद फैलाती है। यही अंशाति का कारण है—आध्यात्मिक अशांति का कारण।

भारतीय समाज, जो अपने आध्यात्मिक दर्शनों के कारण संवेदनशील समाज है; उसकी आत्मा में भी पैसा समा गया है। भारतीय समाज के विवेक-संवेदना को भी पूँजी का प्रलोभन दिशाहीन बना रहा है। यह विचार-शून्यता समाज के अंतः संबंधों में जघन्यता-नृशंसता को जन्म दे रही है, जोकि चिंताजनक है। सच पर चढ़े इस पलस्तर की पहचान करना बहुत ज़रूरी है।

मुक्तिबोध की तीसरी कहानी 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' है। कहानी में फैंटेसी की रहस्यमयता है। भारतीय शिक्षा-पद्धति में जड़-मूर्ख शिष्य की प्रयत्नशीलता उसे ज्ञान-संपन्न बनाती है। ज्ञान की यह परंपरा औदार्य से परिपूर्ण है, जिसमें पवित्रता है, निर्मलता है, अहंकार नहीं है। गुरु के भीतर देने की भावना है और शिष्य में जानने की इच्छा। इन दोनों का तालमेल ही वास्तव में ज्ञान-प्राप्ति की उदारता है। ज्ञान एक परंपरा है। ज्ञान एक दायित्त्व है। ज्ञान देने और लेने की निरंतरता का नाम है। इसलिए ज्ञान उत्तम है। इसी में गुरु और शिष्य दोनों की मुक्ति निहित है। ज्ञान व्यवसाय नहीं है। ज्ञान प्रकाश है। ज्ञान जीवन-विवेक, जीवन-नीति और जीवन-दर्शन का नियमन करता है, इसलिए भारतीय परंपरा से प्राप्त ज्ञान में गुणवत्ता है। किंतु, औपनिवेशिक मानसिकता ने इस परंपरा की पूर्णतः उपेक्षा की है। यह भारतीय ज्ञान-परंपरा ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। कहानी बहुत छोटी-सी है, किंतु फैंटेसी के रचाव में गंभीर दुरूहता का चित्रण करती है। यह कहानी एक ऐसे मार्ग की ओर संकेत करती है, जो समाज-निर्माण की सच्ची दिशा है।

प्रताप कॉलोनी, चाल के पीछे, हरदा (म.प्र.)

विज्ञप्ति

बाँदा की 'शबरी' संस्था द्वारा चतुर्थ प्रेमचंद स्मृति कथा सम्मान हेतु कहानी संग्रह जो पिछले तीन वर्षों में प्रकाशित हुए हों आमंत्रित किये जाते हैं। रचनाकारों की आयु 1 अप्रेल, 2010 को पचास वर्ष से अधिक न हो।

यह सम्मान हिन्दी कहानी के लिये है। उन्हीं रचनाकारों को वरीयता दी जायेगी जो प्रेमचंद के लेखन की परंपरा के हों। प्रवृष्टियाँ भेजने की अंतिम तिथि 30 जून, 2010 है।

संपर्क : मयंक खरे (संयोजक)

'शबरी' प्रेमचंद स्मृति कथा सम्मान समिति, ए-56, इंदिरा नगर, बाँदा-210001 फोन : 9410169406

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे अठहत्तर दिन...

ओमप्रकाश नामदेव

सुना था कि दो बलशाली पशु जब जीवन-मरण के साथ द्वंद्व युद्ध में रत होते हैं, तो उनकी मुठभेड़ में जाने कितने छोटे-मोटे जीव-जंतु अकारण ही पिसकर मारे जाते हैं। मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही हो रहा था। उस बार लड़ने वाले बलशाली पशु नहीं, बल्कि सभ्य समाज के प्रभावशाली व्यक्ति थे, जो शासन की उच्च सत्ता पर विराजमान शासन के आधार स्तंभ थे, जिनके हाथ में अनेक लोगों का भविष्य बदलने की क्षमता थी। उनके बीच मैं अकारण ही पिस रहा था।

प्रथम आधार-स्तंभ-संरचना का मुख्य अधिकारी था, तो दूसरा आधार-स्तंभ भी उसी के समकक्ष तो था, मगर उससे निचली पायदान पर था। उन दोनों के बीच में न जाने किस प्रकार का, कैसे विरोधाभास का कारण या स्थिति निर्माण हुआ कि दोनों के बीच में टकराव होने लगा। इसमें पहला आधार-स्तंभ योजना बनाकर जानबूझकर टक्कर देता था, तो दूसरा आधार-स्तंभ उस टक्कर को इस प्रकार से तह दे देता था कि वह टक्कर प्रभावहीन होकर रह जाती थी। दूसरा

आधार-स्तंभ पहले आधार-स्तंभ का सहायक था और जिस पद पर प्रथम आधार-स्तंभ था, उसके लायक भी था और संभावना शत-प्रतिशत थी कि उसे विभाग प्रमुख बना दिया जाएगा किंतु यह व्यक्ति उसके स्थान पर आ गया था। वह व्यक्ति साफ़-स्वच्छ, लोकप्रिय व्यक्ति था। अकारण की चापलूसी, मक्कारी करना उसे पसंद नहीं था, जबकि पहला आधार-स्तंभ उससे न जाने क्या चाहता था कि वह उस दूसरे अधिकारी के साथ सत्ता, अधिकार और प्रभाव का नंगा खेल खेलने पर आमादा हो गया था।

पहले आधार-स्तंभ के साथ कभी मैंने काम किया था, तब वह इसी संरचना का प्रशासकीय अधिकारी था और अब, जब दूसरी बार वह संरचना का प्रमुख बनकर आ गया था, तो उसके साथ दुबारा काम करने का मौका पाकर मैं खुश था। कारण कि परियोजना की नौकरी के दौरान जब परियोजना के लोग मेरे विगत पद से कार्यमुक्त करने में आना-कानी कर रहे थे, तब इसी व्यक्ति ने मेरी उपस्थिति तिथि को निरंतर आगे बढ़ाने में सहायता की थी, ऐसा मैं मानता था। केवल इतना ही नहीं, एक बार जब मैं इस आधार-स्तंभ के घर पहुँचा था, तब उसने मुझसे बहुत अच्छा व्यवहार किया था और न्यू मार्केट तक पहुँचाने में सहायता भी की थी। कुल मिलाकर, मैं उसकी उस समय की गयी कृपा के प्रति भी आभारी था और उसके साथ काम करने में स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रहा था। बार-बार ऐसा महसूस करता था कि मुझ मेरा आदमी मिल गया है, किंतु पद-परिवर्तन के साथ आदमी में किस प्रकार का परिवर्तन आता है, उसे तब मैं कहाँ समझता था। और, तब कहाँ समझता था कि प्रशासकीय अधिकारी जब संरचना प्रमुख बन जाएगा, तो उसका व्यवहार ही बदल जाएगा। कुल मिलकार, मैं स्वयं को उसके क़रीब का व्यक्ति समझने लगा था। मगर, इसी व्यक्ति ने जब मुझे जमकर झटका दिया, तो समझ में आ गया था कि दूसरे लोग, जो उसके बारे में नकारात्मक बात कहते हैं, वे सही हैं, यानी कि वह किसी का नहीं हो सकता। निहायत उलझे, अस्थिर दिमाग़ वाला व्यक्ति, जो अपना ही कहा भूल जाए और ख़ुद का लिखा हुआ न पढ़ सके। शादी-विवाह आदि की पार्टियों में जहाँ उसे अनदेखा कर दिया जाए, तब भी मैं उस समय उससे आभार-भाव के साथ मिलता रहा, जबकि वह संरचना से बाहर था। अधिकांश पार्टियों में वह अकेला ही बना रहता था और अपने सहज संबंध बने रहने की कल्पना में डूबा रहता था।

दूसरे कार्यालय से जब वह इस कार्यालय में आने वाला था, तब मैं ख़ुश था कि चलो अपना पुराना पहचान वाला अधिकारी आ रहा है, उसके कारण अपना कुछ भला हो न हो परंतु, व्यक्तिगत स्थिति तो मज़बूत बनेगी। कार्यालय में आते ही उसने 'पूरे घर को बदल डालूँगा' वाली शैली में काम किया। कार्यालय में कार्यरत तीनों स्टेनोग्राफ़रों का पहले तो पूल बनाया फिर अनुशासन के नाम पर डंडा चलाना आरंभ किया। समय से कार्यालय आओ—भले ही यहाँ मक्खी मारते रहो। बेमतलब के काम, अनुशासन के नाम पर आतंक उत्पन्न किया, कंजी आँखों के भारी आवाज़ वाले उस पाँच फुट के आदमी ने अनेकों का रक्त-प्रवाह उच्च कर दिया। मगर, मैं तब भी इस बात से भयमुक्त था कि 'सैंया भये कोतवाल तो अब डर काहे का।' 'सैंयाजी ने डाका डाला'—नयी क्राकरी, जिसे विभागीय अधिकारी लाकर देते रहे थे, परंतु मैं ले आया था, यह सोचकर कि विभागीय अधिकारियों से पैसे प्राप्त हो जाएँगे या कि वही व्यक्ति पैसे दिलवा देगा, किंतु सीधे हज़ार रुपये इस तरह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डूबे कि वे कभी ऊपर नहीं आ सके। यहाँ तक कि यह व्यक्ति सेवानिवृत भी होकर चला गया, मगर पैसों को नहीं मिलना था, तो नहीं मिले। सारे संबंधितों के सामने रो-गाकर चुप हो गया और मन को धीरज बँधाया कि श

ायद वह व्यक्ति 'उसके द्वारा की गयी मेहरबानियों का दाम' इस प्रकार से वसूल कर गया है। अपने मन पर मैंने पत्थर रखकर उसे दबा दिया था।

विभाग में वैसे भी मेरी स्थिति न ख़ास थी, न आम थी। विभाग में रहने न रहने का कोई मतलब नहीं था। मेरे पद का उपयोग करना अधिकारियों को आता ही नहीं था। यही कारण था कि समय पड़ने पर मुझसे छोटे पदीय व्यक्ति अपना मनमाना काम अधिकारियों से करवा लेते थे, मगर मैं विभाग प्रमुखों के पास रहकर भी अपने लिए धेले का काम भी नहीं करवा पाया, दूसरों के कामों की बात तो छोड़िए।

फिर एक घटनाक्रम घटा—दूसरे आधार-स्तंभ ने मुझे फ़ोन पर सूचित किया था कि सा'ब को बतला देना कि मैं आज छुट्टी पर रहूँगा... यह बात मुझे अपनी ओर से पहले आधार- स्तंभ को बतला देनी चाहिए थी, मगर अपनी ही व्यस्तताओं में कुछ इस क़दर डूब कर रह गया था कि पहले आधार-स्तंभ को बतला नहीं सका, तो उसने इस बात को प्रतिष्ठा का सवाल बना लिया और मुझे निलंबित करने का मन वह बना चुका था।

कहने को बात मामूली हो सकती थी या नहीं हो सकती थी, मगर मेरी तरफ़ से ग़लती तो हुई कि मैंने दूरभाष-संदेश को यथासमय अवगत क्यों नहीं कराया। इसका मतलब मैंने 'गेम' खेला था, जबकि 'गेम' क्या होता था, इसे तो वे लोग भली भाँति समझते थे, जो शासन-स्तर पर खेला करते थे। जीवन भर मुझे गेम खेलना कभी नहीं आया। मेरा एक ही गेम था, समय पर कार्यालय आओ और मौका पड़े, तो कार्यालय से देरी से जाओ। ग़लती हुई, बल्कि उसे मेरी लापरवाही कहिए वह हुई, जिसे मैं प्रथम आधार-स्तंभ के सामने स्वीकार कर चुका था। इसके बाद भी वह मुझे निलंबित करने पर अड़ गया था। उधर, दूसरा आधार-स्तंभ भी यह मान चुका था कि मैंने उसके द्वारा दिये गये दूरभाष संदेश को जानबूझकर नहीं बताया और उसके भी संदेह का मैं शिकार हुआ।

नियम यह कहता था कि निलंबन किसी प्रकार की प्रशासनिक सज़ा नहीं होती है, मगर मैं इस बात से सहमत नहीं था। निलंबन आखिर निलंबन ही होता है, पता नहीं कब तक दूसरे कार्यालय में जाकर उपस्थिति देनी पड़े और पता नहीं कब तक निर्वाह-भत्ते के सहारे जीवन जीना पड़े और बाद में भी न जाने किस प्रकार अंतिम फ़ैसला हो, जिसके लिए न जाने किन-किन लोगों के सामने सिर झुकाने के लिए बाध्य होना पड़े। कुल मिलाकर स्थिति उलझी हुई थी, उसके सुलझाव का कहीं कोई रास्ता दिखायी नहीं देता था। लोगों ने चोर विभाग से ढेरों पैसा कमाया-बनाया था और मैं अपनी नौकरी दाँव पर लगाने के सिवाय कुछ नहीं कर पा रहा था।

प्रथम आधार-स्तंभ यह भी मान चुका था कि मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती है। मैं 'एब्सेंट माइंड' व्यक्ति हूँ, इसलिए मुझे लंबा अवकाश ले लेना चाहिए। इस बात को निलंबित करने के पूर्व भी वह कई बार दोहरा चुका था। तब मुझे यह भी लगा था कि वह चाहता था कि मैं उसकी नज़रों से दूर हो जाऊँ और निश्चित ही इसके सिवाय कोई उपाय भी नहीं था, वर्ना उसने तो निलंबन करने की बात ठान ही ली थी।

अठहत्तर दिनों का अर्जित अवकाश अकारण आवेदित किया गया। ऐसा होता है जब कि कोई अधिकारी-कर्मचारी नहीं भी चाहता है, तब भी उसे ज़बरन अवकाश पर भेजा जाता है; कैसे भेजा जाता है, इस बात का पता पहली बार चला। यह भी पता चला कि आदमी को सज़ा देने का भी यह एक तरीका होता है। मेरे पास ऐसा कोई काम नहीं था कि मैं अठहत्तर दिनों का अवकाश लूँ और काम में लग जाऊँ। मेरे सामने तो स्थिति यह थी कि मैं पल भर भी बिना काम के नहीं रह सकता था, फिर सोचकर ही इस बात से परेशान था कि मैं अठहत्तर दिन क्या करूँगा?

अवकाश स्वीकार भी हो गया और मैं प्रस्थान सूचना देकर अपने घर आ गया। घर में कोई काम नहीं था। कार्यालय जाना बंद था, क्यों बंद था, पहले तो पत्नी ने ही जानना चाहा था, बाद में आसपास के लोगों ने जानना चाहा था कि मैं आजकल घर में रहकर क्या कर रहा हूँ? क्या बताता कि क्या कर रहा हूँ? बस, कुछ भी बहाना बना देता और बगलें काट जाता। अठहत्तर दिनों में एक-एक दिन बिताना भारी प्रतीत हो रहा था, कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? घूमने फिरने के लिए समय था, मगर पैसा चाहिए... वह मेरे पास था, मगर इतना नहीं था कि उसे घूमने-फिरने के नाम पर खर्च कर डालता। खाली समय में रेडियो, पुस्तकालय की किताबें मेरी मित्र थीं, मगर वे भी मेरा मन नहीं बदल पा रही थीं।

दिमाग़ में आया कि नर्मदा-किनारे चला जाए, नर्मदा-किनारा, बरमान घाट ने कब और कैसे मेरे दिमाग़ मे जगह बना ली थी, पता नहीं। पता यह था कि मैं उस मार्ग से पहले कभी दो-चार यात्राएँ कर चुका था और यात्रा के दौरान उस स्थान

से प्रभावित हुआ था, इसलिए उसे देखने की अभिलाषा मन में सँजोये हुए था। इसलिए, अपने घर से निकलकर उस स्थान पर पहुँचने की बात मैंने सोच ली थी।

हर नर्मदे, नमामि देवी नर्मदे... पतित पावनी, मोक्ष दायिनी, कितने ही नाम वाली नर्मदा; सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यक्तिगत विरासत का आधार बनी नर्मदा, कितने ही परिश्रम करने वालों को परिश्रम का फल देने वाली नर्मदा और जो इसके किनारे केवल इसका नाम लेकर भिक्षायापन कर निठल्ले बने हुये साधु-सन्यासी-सन्यासिनें हैं, तो मठाधीश स्वादु हैं, उनको पालने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती नर्मदा सदियों ने अनेक कवियों, कलाकारों, विचारकों को प्रभावित और आकर्षित करने वाली नर्मदा। इसी नर्मदा किनारे बसे बरमान घाट आ गया। साधारण गाँव, मगर ढंग का बसा हुआ गाँव। एक पट्टी, यदि रोड किनारे पूर्व में चली गयी है, तो दूसरी पट्टी दोराहे रोड की ओर चली गयी है। नर्मदा किनारे के पक्के घाट, सामने विशाल सुंदर मठ, पुराने मंदिर, पास में ही सूरज कुंड, पूर्व दिशा में बना पुल, उसके नीचे से निकलती नर्मदा और पुल के उपर से गुज़रते-भागते वाहन । आगे चलो, तो नर्मदा की सतधारा, कुल मिलाकर सुंदर स्थान था। नर्मदा अपने आप में सुंदर है, कहीं भी चले जाओ, कभी भी चले जाओ, दिन-रात बदलते समय के साथ प्रकृति परिवर्तित होती हुई प्रतीत होती है। मगर, ऐसा तब होता है, जब मन में उमंग हो। मन में अगर ढेर-सारी अकारण संभावनाएँ, उलझनें हों, तो स्वर्गलोक भी फीका-सा प्रतीत होता है। बरमान घाट आ तो गया था, मगर यहाँ भी मेरा मन अस्थिर था। क्या करूँ? आसपास देखने योग्य इतने सीमित स्थान हैं कि उन्हें देखने के लिए एक दिन ही पर्याप्त है, तब फिर इसके बाद कहाँ चला जाए? उससे भी तो समस्या यह भी है कि यहाँ कोई अपना परिचित भी नहीं जिसके सहारे से रुकने-रुकाने-ठहरने की कुछ व्यवस्था हो सके। कहीं कुछ समझ में नहीं आने के कारण हताश-निराश-सा होकर मैं घाट पर पड़े एक तख़त पर बैठ गया हूँ। तख़त के ऊपर एक मंडप बना हुआ है, जिससे सूरज की तपिश से बचा जाता है, बरसात हो जाए, तो वह मंडप शायद ही पानी रोक सकेगा... सूटकेस, जिसमें कुछ किताबें हैं, रेडियो, पहनने के कपड़े-लत्ते हैं, उन्हें तख़त के पाये के पास रख दिया है और दिमाग़ तेज़ी से ऊहापोह-विचार करने में लगा है।

ढलते हुये सूरज की सीधी रोशनी मेरे ऊपर पड़ रही थी, इस क्षण गर्मी भी बहुत लग रही थी। लगता आँच लग रही हो। शरीर जल जाएगा। पसीने के पनाले बह रहे थे, बदन चिपचिपा हो आया था। उससे बचने के लिए अपनी कमीज़ उतारकर मैंने पास रख ली थी और तब मैं केवल पैंट और बनियान पहने हुए तख़त पर बैठकर अपने-आप में तल्लीन बना रहा था। तब भी मेरे सामने जैसे कहीं कुछ नहीं था—न वे स्थान, जिनका मैंने पहले उल्लेख किया है, न वे स्त्री-पुरुष-बच्चे, जो नर्मदा की सीढ़ियों पर बैठकर नहाने-धोने या कपड़े सुखाने में लगे है, पूजन-पाठ करने में लगे हैं। बस मैं हूँ और मेरा दिमाग़ है, जो कालातीत बन कर रह गया है और तेज़ी से सोचे जा रहा है, बस सोचे जा रहा है। ऐसे में भूख-प्यास का भी कहीं कुछ पता नहीं चल रहा है।

होते-होते सूर्य अब क्षितिज में खिसकने लगा था। उसकी रोशनी में तब भी कोई कमी नहीं आयी, किंतु धीरे-धीरे अँधेरा घिरने लगा है, लगता है कुछ देर में शाम हो जाएगी, घाट की बत्तियाँ जल जाएँगी। रात हो जाएगी, तो भी मैंने तय कर लिया था कि मैं कहीं नहीं जाऊँगा। बस, इसी तख़त को ही अपना बिस्तर बना लूँगा। अगर कोई हटाएगा, तो घाट की सीढ़ियों पर ही सो जाऊँगा। सुबह होगी, तब फिर सुबह देखा जाएगा। यह मेरा लिया गया पहला निर्णय था, अभी तक मैं सिर्फ़ सोच-विचार में डूबा था।

होते-होते शाम हुई, रात घिर आयी। बत्तियों का तेज़ उजाला घाट को रोशन करने लगा। घाट पर हो रही चहल-पहल, रौनक में फिर भी कोई कमी नहीं। अब मैं स्वयं को संयत कर चुका था और कुछ भी सोच-विचार नहीं करना चाहता था। बल्कि, उससे बचना चाहता था, क्योंकि जो कुछ भी मेरे साथ हुआ है और जिसे मैं छोड़कर यहाँ तक आया हूँ, वह मेरे लिए दुखदायी है, उससे अब बचना चाहता था। इसलिए, मैं अपने आसपास के वातावरण से तादात्म्य स्थापित कर लेना चाहता था, ताकि स्वयं को भूल जाऊँ। मैंने रेडियो निकाल लिया और उसे चालू कर दिया। समाचार मेरे कानों में पड़ने लगे। लगातार सोच-विचार करते-करते अब थकान-सी भी लगने लगी थी, इसलिए रेडियो पर कब रात 11 बजे जयहिंद कहा गया, पता ही नहीं चला। मैं नींद में खो चुका था और रेडियो चलता रहा, यहाँ तक कि मुझे यह भी ध्यान नहीं रहा कि मेरे साथ सूटकेस भी है, जिसमें कपड़े-लत्ते हैं, जो तख़त के नीचे पड़ा हुआ है।

रात में अच्छी नींद आयी। दिन जितना गर्म था, रात में नर्मदा की उमस भरी हवा तन को सुखद आभास कराती रही थी। शायद सुबह देर तक सोता रहता, मगर प्रातः चार बजे ही घाट पर लोगों का आवामगन बढ़ता चला गया था और सूरज निकलते-निकलते घाट पर लोगों की भारी भीड़ हो आयी थी। ऐसे में कोई मेरे क़रीब आकर पूछ रहा था—"कौन हो भैया, कहाँ से आये हो?"

"मुसाफ़िर हूँ, बाहर से आया हूँ।"

"कौन जात?" इस प्रश्न ने अब मुझे पूरी तरह से चैतन्य बना दिया था, न चाहते हुए भी मैं अपने स्थान से उठकर बैठ गया और प्रश्नकर्ता को ध्यान से देखा। मुझे मालूम है कि छोटे स्थानों पर आज भी जाति का चलन बहुत अधिक है। मुझे याद है कि चंदेरी-प्रवास के दौरान प्यास लगने पर कुएँ पर पड़ी रस्सी-बाल्टी से मैंने पानी खींचने के लिए हाथ

लगाना चाहा था कि अचानक ही यक्ष-प्रश्न हुआ था—"कौन ठाकुर हो भैया..?" वैसे में निकृष्ट जाति का व्यक्ति नहीं हूँ, मगर स्वयं को ब्राह्मण या ठाकुर भी नहीं कह सकता था। अगर मैं निम्न जाति का मान लिया जाता, तो हो सकता था कि यक्ष-प्रश्नकर्ता इसके बाद तत्काल मेरी माँ-बहन से नाता जोड़ता और पूछता—"बता इस कुएँ पर चढ़ने की तेरी हिम्मत कैसे हुई और अगर हिम्मत की, तो फिर रस्सी-बाल्टी में किससे पूछकर हाथ लगाया?"

कभी-कभी स्थिति ऐसी आ जाती है कि आदमी झूठ बोलता है, तो मुसीबत है, सच बोलता है, तो मुसीबत में पड़ता है। इसलिए, इस अप्रिय प्रश्न को टालने की दृष्टि से अपना प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालने के प्रयास में मैंने ही प्रतिप्रश्न कर दिया था—"आपको मैं कौन-सी जाति का दिखता हूँ? अगर मैं छोटी जाति का होता, तो इस तख़्त पर सोता?"

मेरी इस बात का प्रभाव प्रश्नकर्ता पर जमकर पड़ा और वह अगला प्रश्न करना जैसे भूल गया। मैंने भी उस व्यक्ति को निहारा। अधेड़ व्यक्ति निश्चित ही ब्राह्मण जाति का था, क्योंकि उसके सिर की चोटी अलग ही हवा में फहरा रही थी, कपाल पर तिलक लगा था, कमर से नीचे धोती और कमर के ऊपरी भाग पर रामानंदी चादरा पड़ा था। कुछ देर की ख़ामोशी के बाद वह खुद ही बोला—"वैसे देखने-दिखाने में तो अच्छे घर-परिवार के लगते हो, यहाँ कैसे आये?"

मैंने वातावरण को और हलका बनाने की कोशिश करते हुए कहा—"बस से"

"क्यों मज़ाक करते हो महाराज, मेरा मतलब आप समझते होंगे, किसी काम से आये हो क्या?"

"नहीं, ऐसे ही घूमते-फिरते चला आया।"

"यहाँ कब तक रुकोगे?"

"जब तक मन लग जाए"....

"तो ठीक है, अभी तुम जब तक रहते हो, मेरी जगह सँभालो। मैं आ जाऊँ, तब चले जाना... कुछ खाया-पिया?"

"नहीं, कल भी नहीं खाया था।"

"ऐसे काम नहीं चलेगा उठो, चलो नहाओ और तैयार हो जाओ, तब तक मैं आया..."

सुबह किये जाने लायक सभी आवश्यक काम मैंने किये। इसके पहले तख़्त के नीचे झाँककर देख लिया था, मेरा सूटकेस सुरक्षित था। नहाकर, धुले कपड़े पहन, तख़्त पर फिर से आ बैठा। वह व्यक्ति दुबारा मेरे पास आया। तब वह सफ़ेद लुंगीनुमा कपड़ा, घिसा हुआ चंदन ले आया। आकर मुझे लुंगीनुमा कपड़ा बँधवाया, कपाल पर, दोनों बाहों पर, पेट पर, जगह-जगह त्रिपुंड बना दिया और पूरी तरह से मुझे धार्मिक रूप देकर तख़्त पर बैठाकर मेरी जाँच-पड़ताल की और स्वयं आश्वस्त-सा होकर बोला—"हाँ, अब ठीक है... बस बैठे रहना, कहीं जाना नहीं, भोजन मैं भिजवा दूँगा।"

पता नहीं, ब्राह्मण को सब कुछ ठीक क्या लगा था, अलबत्ता मेरा व्यक्तित्त्व ठीक था। दोहरा भरा हुआ शरीर, हल्का-सा निकला हुआ पेट, गोरा रंग, चौड़ा-भरा हुआ चेहरा, उच्च कपाल। ब्राह्मण तख़्त वाले स्थान को देखने आये होंगे कि कोई उनके तख़्त को उठाकर तो नहीं ले गया या उसके स्थान पर किसी ने कब्ज़ा तो नहीं कर लिया। मुझे देखकर न जाने उन पर क्या प्रभाव पड़ा हो, पता नहीं, परंतु आज सुबह अनायास घटी इस घटना ने मेरे अंदर कौतूहल का भाव उत्पन्न कर दिया था। मुझे लग रहा था, जैसे कुछ विशेष घटने वाला है। जो घटने वाला है, कम से कम वह नुकसान पहुँचाने वाला तो नहीं है। अपने आप में आश्वस्त होकर मैंने अपने आसपास अब अच्छी तरह से निगाह फेंकी। सूर्य पूरी तरह खिल आया था, घाट पर चहल-पहल बढ़ती जा रही थी, लोगों का आना जाना हो रहा था। उस पार के बरअउआ किसान फल, सब्ज़ियों के टोकरे नावों में ढोकर इस पार ला रहे थे, जहाँ से वे हाट-बाज़ारों में उनको पहुँचाने का काम करेंगे। नदी के उस पार रेत में कंडे जल रहे थे, जिनमें लोग दाल-बाटी चूरमा बना रहे थे। कंडे का धुआँ वातावरण में आकाशी रंग को और उभार रहा था। नर्मदा की धारा में नाव पर सवार होकर कुछ आर-पार की यात्रा भी कर रहे थे। अब मुझे अपने चारों ओर कुछ अच्छा-सा लग रहा था। हो सकता है कि नींद पूरी हो जाने और शरीर-दिमाग़ की थकान मिट जाने के कारण ऐसा लग रहा हो। कुल मिलाकर, बात यह थी कि अच्छा लग रहा था। मैं पालथी मारकर बैठा था। घाट पर पड़े अन्य तख़्तों के पंडे-पुजारी नहाकर आते हुए यात्रियों के कपालों पर तिलक लगाने ओर दक्षिणा पाने की उम्मीद में पीछा कर रहे थे, जबकि मैं ऐसा न कुछ कर रहा था, न करना चाहता था। मुझसे यह काम होने वाला भी नहीं था कि 'जजमान चंदन लगवाते जाओ...' जीवन जीने के कई तरीकों में एक तरीका धार्मिक स्थानों पर इस प्रकार का भी पाया जाता है।

सुबह चाय पीने की मेरी आदत कभी नहीं रही, अलबत्ता कुछ खाने को मिल जाए, तो उससे परहेज़ नहीं। समय आगे बढ़ने के साथ भूख लगने लगी थी। दस बजे के लगभग तो ऐसा लगने लगा कि अब भूख सहन नहीं होगी, सोचा कि घाट पर बने अस्थाई भोजनालय से भोजन ख़रीदकर खा लिया जाए, मगर अपने मन को थामे रहा, क्योंकि ब्राह्मण देवता ने घर से खाना भेजने की बात जो कही थी। ठीक 11 बजे देवता के घर से खाना बनकर भी आ गया। खाना लाने वाला किशोर वय का बालक था, जिसने आकर मेरे पैर छुए थे। मैंने उसका नाम पूछा। उसके बारे में पता चला था कि वह देवता का एकमात्र पुत्र था। पता चला था कि देवता की चार पुत्रियाँ हैं, जिनके रिश्ते-नातों के चक्कर में ब्राह्मण लगे हुए हैं। घर की हालत ग़रीबी की है, पिता की कमाई से घर साधारण तरीके से चलता है। बालक बहुत देर तक पास बैठा रहा, मैं उससे बहुत-सी बातें करता रहा। यहाँ तक कि उसकी शिक्षा, स्कूल, घर-परिवार के बारे में बातें करता रहा। उद्देश्य था, समय व्यतीत करना, जबकि ऐसा लगता था कि उस बालक को साथ में बैठने के लिए ही भेजा गया था, ताकि पिता के बाद वह उस स्थान को सँभाल सके इसके लिए उसे अभी से प्रशिक्षण प्राप्त कर लेना था। खाना खाकर तृप्त हुआ, लगा शरीर में जान आयी हो। लगा कि ब्रह्म ही अन्न है और अन्न ही जीव है। निश्चित ही खाना खाने लायक था या फिर कि भूख के कारण उसका स्वाद बढ़ गया था।

ब्राह्मण नहीं आये। सुबह के आवश्यक प्रारंभिक कामों को निपटाकर पुनः तख़्त पर आसीन हो गया। आज मुझे किशोर बालक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने सजाया है। हम दोनों ने पाया कि कुछ लोग हमारी ओर बढ़ रहे हैं। लड़का मेरे पास से उठकर मेरे पीछे इस प्रकार से खड़ा हुआ, जैसे वह मेरा चेला या सेवक हो... पास आने वाले में अधेड़ स्त्री-पुरुष, नवयुवक-युवती और कुछ बच्चे थे। पास कर सबसे पहले अधेड़ व्यक्ति ने, फिर उसकी स्त्री ने मेरे चरण किये... फिर विनीत भाव से युवक को पैर छूने के लिए कहा। ने चरण-स्पर्श किये...। अंत में उस युवती ने पैर छूए।

"महाराज, हमारे बेटा-बहू हैं, नर्मदा स्नान के लिए लाये हैं, वंश-बेल फले-फूले, आशीर्वाद दो... कहकर मेरे पैरों में , रुपये रख दिये थे...

मैंने इतना ही कहा था—"परमात्मा सब भला करेगा भैया. नर्मदा की तुम सब पर दया बनी रहे..." कुछ देर रुककर भाव से वे लोग वहाँ से चले गये।

इसके बाद तो दिन-प्रति-दिन लोगों की कतार लगती चली देखते न देखते मैं सिद्ध और दिव्य पुरुष मान लिया गया। अपनी सज-धज मैं स्वयं अपने हाथ से कर लेने का आदी हो था, बल्कि दिन-प्रति-दिन उसे मैं अधिक से अधिक र्षक बनाता चला गया, जैसे सावन के महीने में महाकाल को तरह-तरह से सजाया-सँवारा जाता है, वैसा ही मैं स्वयं ने करने लगा। पहली बार में मेरी सज-धज लोगों को रुकने विवश करती। महिलाएँ तो निगाह गड़ा-गड़ा देखतीं, भाव से पैर छूतीं, हाथ जोड़तीं। कोई कुछ दे रहा है, नहीं है, कुछ नहीं है, तो लोग उनके घरों या खेतों में होने वाले फल आदि ही चढ़ा रहे हैं, मगर आशीर्वाद सब ले रहे हैं। चढ़ौती और सामानों को सहेजने में लगा रहता और मैं यह देखकर अचंभित होता रहता कि आख़िर यह क्या है... मैं तो नहीं हूँ, मेरे पास कोई सिद्धि नहीं, न मैं कोई पहुँचा हुआ पुरुष हूँ, तो फिर यह क्या हो रहा है? किशोरवय ब्राह्मण-पुत्र गया था, भेद खोलने वाले अंदाज़ में बोला-"आप सोचते हैं महाराज जी, यह नर्मदा किनारा है महाराज, यहाँ होने में देर लगती है? आप किसी के पीछे नहीं भागते हैं, सब लोग आपको सिद्ध और पहुँचा हुआ पुरुष समझते हैं" मैं मन ही मन हँस पड़ा हूँ, सिद्ध पुरुष और मैं... अपनी को और विस्तार देने के लिए, लोगों को प्रभावित करने के कर बैठ जाता हूँ। अधिक थकान होने पर आँखें बंद कर तो दूसरे देखने वालों को लगता है कि मैं ध्यानमग्न हो

"महाराज आप सचमुच पहुँची आत्मा हैं, मैंने तो पहली बार का अनुमान लगा लिया था। सब आपकी कृपा है..." उसने भाव के साथ कहा था। पता नहीं, मैंने उसके साथ कृपा क्या काम किया था? हाँ यह ज़रूर हो रहा था कि अन्य जो जजमानों के पीछे लपकते थे और दिन भर में कुछ पैसों की चिल्लर और नोट गिन पाते थे, वहाँ पर महाराज के यहाँ देखते-देखते पैसों का संग्रह हो चला था।

"नहीं भाई, सब नर्मदा माई की कृपा है," मैंने कहा।

"अभी तो आपकी कृपा है महाराज, आपके कारण मेरे घर-परिवार की हालत बदल गयी। मेरी लड़कियों की शादी भी ढंग से हो जाएगी। बस आपकी दया बनी रहे इस ग़रीब ब्राह्मण पर। अब आप हमें छोड़कर कहीं मत जाना महाराज, आपके सहारे से हमारी ज़िंदगी पार हो जाएगी..."

ब्राह्मण भावावेश में थे, उनकी बातों का कोई जवाब हो नहीं सकता था, मैं चुप रहा।

इसके बाद तो दिन पर दिन बीतते गये। कितने ही लोग मेरे चरण-स्पर्श करते रहे, कितने भेंट-उपहार मिलते रहे। नर्मदा किनारे आयोजित होने वाले कितने ही भंडारों की प्रसादी मुझे खाने को मिली, कितना दाल-बाटी-चूरमा-हलुआ मैंने पचाया, उसका हिसाब नहीं। दाढ़ी-मूंछों में चेहरा छिप गया था। व्यवस्था में ब्राह्मण परिवार सन्नद्ध था, बल्कि वह सतर्क भी था। मैं अब उनके लिए सोने का अंडा देने वाली मुर्गी बन गया था, इसलिए वे अब इस बात के प्रति सावधान थे कि मैं कहीं भाग न जाऊँ या कोई मुझे भगा न ले जाए या कोई दूसरा प्रतिद्वंद्वी मेरी हत्या न कर दे। ब्राह्मण दिन-प्रति दिन धनाढ्य होता जाता था। दोनों हाथों से पैसा समेट रहा था। उससे मुझे कोई अंतर नहीं पड़ रहा था, जानता था कि वह सब योग-संयोग की बात है, अगर पैसा आ रहा है, तो वह उस परिवार के लिए आ रहा है। मुझे तो पैसा मेरी नौकरी से ही मिलेगा, क्योंकि इस तरह के काम करने के बारे में तो कभी सोचा ही नहीं था कि मैं इस प्रकार से पुजने लगूँगा। लोग थे कि उनकी माँगों का अंत नहीं था। किसी को धन, किसी को संतान, किसी को पद, न जाने किस-किसको क्या-क्या चाहिए था, जैसे मेरे पास सबके लिए खजाना सुरक्षित हो। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि जिन लोगों की माँगें पूरी हो रही थीं, वे मेरा सर्वाधिक प्रचार-प्रसार करने में लगे रहते। नये-नये लोगों की उपस्थिति मेरे सामने होती। उधर मैं मन ही मन दिन गिनता कि अठहत्तर दिनों में और कितने दिन बाक़ी रह गये हैं। परिवार की कुशलता दूरभाष से पता करता रहता, अपने बारे में बताता कि मैं कहाँ पर हूँ, कैसा हूँ। और, जब अपनी वास्तविक स्थिति मैंने बतायी, तो घर के लोग हँसे बिना नहीं रहे कि जिस व्यक्ति ने कभी पूजा-पाठ न किया हो, वह आज साधु-महात्मा के रूप में पुज रहा है।

पहले यह सब कुछ कौतुक-सा प्रतीत होता था। ऐसा लगता था कि मैं लोगों को साधु वेश में ठग रहा हूँ। ऐसा करना मन को अच्छा नहीं लगता था, मगर धीरे-धीरे मैं उस स्थिति का आदी होता चला गया। मुझे भी मज़ा आने लगा था, लगता था कि मेरे जीवन का परम सत्य यही है। नौकरी को छोड़ो, नौकरी में क्या रखा है। उससे ज़्यादा तो यहीं पर मिल जाएगा। मगर, वहीं पर दिमाग़ ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर पलटी खायी थी, वह फिर सोचने पर उतर आया था कि तुम पक्के गृहस्थ आदमी हो, तुम्हाते पत्नी-बच्चे भोपाल में रहते हैं, जो कुछ तुम कर रहे हो या हो रहा है, क्या वह उचित है? ठीक है, समय बिताने के लिए तमाशा अच्छा है, मगर क्या तुम इस तमाशे के भाग बनाना पसंद करोगे, जैसाकि तुम्हारी कॉलोनी के व्यक्ति ने किया था, जिसने न जाने कितने सरकारी फर्ज़ीवाड़े किये थे, रोकड़ पुस्तिका के पृष्ठ फाड़कर एक दिन घर से जो गया, तो फिर उसकी तलाश में उसके घर वाले भटकते रहे। कॉलोनी के लोग भी बस स्टैंड, रेलवे स्टेशन पर सोते हुए लोगों के चेहरों पर से कपड़ा हटा-हटाकर देखते रहे, मगर वह बंदा हाथ नहीं आया। सारी खोज-बीन व्यर्थ रही। बाद में पता चला कि वह साधु हो गया है और देवास जिले में विशाल मंदिर बनवा रहा है, जहाँ वह सिद्धपुरुष के रूप में पुजता है। अंत में, यह भी पता चला था कि जिस विशाल मंदिर का वह निर्माण करवा रहा था, उसी मंदिर में पड़े नंगे बिजली के तार पर पाँव पड़ जाने से करेंट लगकर उसकी मौत भी हो गयी है। इससे भी दर्दनाक पहलू यह था कि वह व्यक्ति पुलिस को, घरवालों को किसी को नहीं दिख रहा था, दूसरो को ज़रूर दिख रहा था। यही कारण कि जब तक वह जीवित रहा, तब तक घरवालों से वह दूर रहा, घर वाले उससे दूर रहे और जैसे ही मरा, उसके तीसरे दिन उसका मृत्यु प्रमाणपत्र घरवालों को मिल गया और पुलिसवालों ने भी अपने यहाँ से सारी खोज दाखिल-ख़ारिज कर दी. .. क्या तुम भी ऐसा ही करोगे, क्या तुम भी सिद्ध पुरुष बनना पसंद करोगे? क्या तुम भी विशाल मंदिर बनवाओगे? नहीं, तुम जो कुछ कर रहे हो, उसमें क्या तुम लोगों को धोखा नहीं दे रहे हो? उन्हें छोड़ो, क्या तुम अपने आपको नहीं छल रहे हो? तुमने केवल सरकारी नौकरी की और अगर किया है, तो पिपलानी में बैठकर अंशकालीन काम किया है, जिसमें मेहनत के दो पैसे पाकर भी तुम्हारे चेहरे पर मुस्कराहट उभर आयी है, जिसे पाने के बाद तुम कहते हो कि मैंने स्वयं मेहनत की रोटी खायी है और अपने बच्चों को मेहनत की रोटी खिलायी है। नहीं, यह सब कुछ ठीक नहीं। उठो, और अपने इन अठहत्तर दिनों हिसाब लगाओ, फिर से तुम्हें वापिस उसी परिवेश में जाना है, जिससे तुम भागकर यहाँ पर आये हो। भले ही निलंबित हो जाना, अगर हो सके, तो उस पागल आदमी के पाँव पकड़ लेना, जो तुम्हें निलंबित करने पर आमादा है, मगर यहाँ से अब जाओ, बहुत हो गयी। उठो, उठो नर्मदा के किनारे पर लोग पुण्य कमाने आते हैं और तुम यह कौन-सी पाखंड भरी माया का फैलाव करने लगे? उठो, आगे बढ़ो, अपने परमात्मा को पुकारो, इस नर्मदा के चरणों में सिर झुकाओ कि माँ मुझे बचाओ... या तो उस व्यक्ति के पास से मेरा स्थानांतरण करवाओ या उस व्यक्ति का ही स्थानांतरण करवाओ... फोकट का, पाप का अन्न काफ़ी खा लिया, खूब निखर गये हो, जटा-जूट-दाढ़ी बढ़ाकर तुम अपनी असलियत दूसरों से ही नहीं स्वयं से भी नहीं, छिपा सकते हो। अब नहीं... अब नहीं, बस, अठहत्तर दिनों को गिनो, कितने दिन बाक़ी हैं? भागो, अभी पुज रहे हो, कल के दिन लोगों को तुम्हारा वास्तविकता पता चल गयी कि तुम कौन हो, क्या हो, तो क्या लोग तुम्हें तब भी पूजेंगे? सिर खोल देंगे। भीड़ की प्रशंसा और भीड़ का आक्रोश-दोनों ही ख़तरनाक होते हैं। यहाँ से भागो।

लगा था कि जैसे मेरे अंदर जो कुछ भी था, वह सब अपने-आप ही ख़त्म हो गया है। जैसे गुब्बारे की अचानक अपने-आप हवा निकल जाए, ऐसी ही कुछ मेरी भी हालत हो गयी थी। अब उन सब कामों को मैं कर तो रहा था, लेकिन वह सब अब मज़ेदार नहीं था। लोग मुझे बुलवाने की कोशिश करते, मगर मैं अधिकांश समय ख़ामोश बना रहता। मेरी आँखें जो पहले लोगों पर केंद्रित बनी रहती थीं, वे अब आकाश में न जाने क्या-क्या तलाश करती रहतीं। लोगों को मेरी यह अदा भी ख़ूब पसंद आयी।

"महाराज आजकल आप बड़े उदास से हैं, क्या बात है?"

मैं अपने अंदर के द्वंद्व का भाव उस व्यक्ति को कैसे बतलाता, जिसे मेरी किसी भी स्थिति के बारे में न तो कुछ पता था, न वह जानता ही था। अगर जानता भी, तो वह उसका कार्यक्षेत्र नहीं था। मामूली पढ़ा-लिखा आदमी, जो अपने बच्चे को स्कूल न भेजकर अभी से घाट पर कमाई के लिए तैनात कर देना चाहता है। मैं इस आदमी को क्या जवाब दूँ? इससे साफ़-साफ़ कह दूँ कि पंडित जी, आपको छोड़ने का समय आ गया है?

तो क्या यह मेरी इस बात को मान जाएगा और क्या आसानी से मुझे यहाँ से जाने देगा?

मैं एकदम चुप हो गया हूँ। किसी व्यक्ति की किसी बात का कोई जवाब नहीं देता, बल्कि अपने चारों तरफ़ घबराये हुए शिकार की तरह से रास्ता खोजता, जहाँ से भागने का अवसर मिल सके। जितना मैं ख़ामोशी धारण करता, लोग उतना अधिक मेरे पैरों में बिछते जाते। मुझे सुख-सुविधा पहुँचाने में लोग तत्पर बने रहते। मुझे खीज आती, तो मैं उपहार में आयी वस्तुएँ, पैसे सब कुछ छिन्न-भिन्न कर देता। अपने अंदर बहुत गुस्सा-सा आने लगता, किंतु उसे व्यक्त नहीं कर पाता। मन में आता कि उन सबको चीख़कर कहूँ कि बंद करो यह तमाशा, बहुत हुआ, अब मुझे छोड़ो, अपने घर जाने दो। मगर, स्वयं को व्यक्त नहीं कर पाता। यहाँ तक कि मैं अब दिन में कई बार तख़त पर ही लेट जाता, तब भी लोग मेरा पीछा नहीं छोड़ते।

मैं गंभीर से गंभीर होता चला गया। शांत हूँ, चुप हूँ, अपने अंदर निश्चय कर चुका हूँ, जो होगा देखा जाएगा, अठहत्तर दिन बाद मुझे अपने काम पर उपस्थित होना है।

उसके अगले दिन—"महाराज, मैं समझ गया, आप इस बात से नाराज़ होंगे कि मैं आपको कुछ नहीं देता हूँ..." ब्राह्मण को जैसे अपनी भूल का आभास-सा हुआ था।

"आपने क्या नहीं दिया पंडित जी, रहने के लिए इतना सुंदर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान, समय पर भोजन, मेरी देख-रेख—सब कुछ तो आपने किया, मुझे कुछ नहीं चाहिए...''

''नहीं आप चिंता मत कीजिए, अभी तक जितना चढ़ावा आया है और आएगा, उसमें अपना आधा-आधा कर लेते हैं। आप बिल्कुल चिंता मत कीजिए, मैं आज ही हिसाब करता हूँ। जब भी रुपए चाहें, ले लें।

''पंडित जी, मेरे पास बहुत है, बल्कि जो कुछ मिला है उसकी आपको अधिक आवश्यकता है, आपको अभी बहुत काम करने हैं। भगवान ने आपको यह सब इसलिए दिया है कि आप अच्छा काम करें। मुझे पैसों की चिंता नहीं, यह सारा पैसा आपका ही है, आप ही सँभालिए...''

पंडित जी हैरान-परेशान। मैं उनके लिए अबूझ पहेली-सा बन गया। सोचा कि पंडित जी को अपने बारे में सब कुछ बतला दूँ कि मैं कौन हूँ, कहाँ का हूँ, क्या काम करता हूँ, यहाँ किन परिस्थितियों में आया था; मगर मुझे मालूम है कि पंडित जी अब मेरी किसी बात पर विश्वास नहीं करेंगे, इसलिए मैं इसके बाद चुप हो गया था।

मैं शांत हूँ। वे मेरी गंभीरता का न जाने क्या अर्थ ले रहे हैं। कुछ देर के लिए वे मुझे अकेला छोड़ गये हैं, क्योंकि इसके बाद खाना लाकर देंगे। मैंने अपना स्थान त्याग दिया है, नर्मदा की उस सीढ़ी तक जा पहुँचा हूँ, जिस पर पाँव रखने से पाँव भीगने लगते हैं। मैं उसी सीढ़ी पर बैठ गया हूँ। लगता है, अपनी माँ की गोद में बैठा हुआ छोटा-सा बच्चा हूँ। मेरी आँखें भीग आयी हैं, अंदर से रुलाई आ रहा है—'माँ मुझे माफ़ करो, तुम्हारी शरण में इसलिए नहीं आया था कि मैं यह पाखंड-माया फैलाऊँ... मैंने तो ऐसा कुछ करना ही नहीं चाहा माँ कि लोगों से झूठ-सच बोलकर पैसा कमाऊँ... मुझे क्षमा करो... अगर मेरे लिए कुछ कर सकती हो, तो इतना अवश्य कर दो माँ कि वह व्यक्ति, जो मेरे जीवन को चौपट करने पर आमादा है, उसका स्थानांतरण हो जाए या फिर मेरा स्थानांतरण हो जाए... और मैं फूट-फूट कर रो पड़ा हूँ।

नर्मदा में प्रतिदिन कितने ही आँसू कितने ही प्रकार से उसके प्रवाह में बहते जाते हैं।

रात का भोजन किया। ब्राह्मण मेरे मन की थाह लेते रहे, मैं अनजान बना रहा। ब्राह्मण चले गये, मैं पूरी रात बेचैन बना रहा। आँखों में नींद नहीं आ सकी। अँधेरे में नर्मदा की धारा विलीन थी। पुल के ऊपर बने मंडप के कारण तारे इक्का-दुक्का दिखायी देते थे। घाट पर सन्नाटा छाया हुआ था। बहुत से परिक्रमावासी या तीर्थयात्री बेफ़िक्री के साथ घाट की सीढ़ियों पर पसरे हुए थे। यहाँ-वहाँ कुत्ते भी गोलमोल होकर पड़े हुए थे, जो घाट पर फेंकी गयी जूठन के सहारे पलते थे। मैं दबे पाँव उठा। मैंने धीरे से अपना सूटकेस खींचा और रेडियो, जूते आदि सब कुछ उठाकर, दबे पाँव ही ऊपर की ओर सीढ़ियाँ तय करने लगा। किशोर वय लड़का पीछे सोता रह गया। समूचे वातावरण में निस्तब्धता छायी हुई थी। रात्रिचर पक्षी कहीं दूर बोल रहा था, ऊपर आकर मैंने पाँव में जूते पहने, सूटकेस में रेडियो रखा, एक निरापद स्थान पर खड़े होकर कपड़े बदले, लुंगी वहीं पर पटकी, फिर मुख्य बस-स्टैंड पर आ गया। थोड़ा अलग हटकर खड़ा हो गया, ताकि मुझे कोई पहचान न ले। उम्मीद थी कि राष्ट्रीय राजमार्ग होने के नाते कोई न कोई वाहन यहाँ-वहाँ जाने वाला मिल ही जाएगा। वाहन देर तक नहीं मिला, उजाला फैलने की संभावनाएँ प्रतीत होने लगी थीं। अगर उजाला फैल गया, तो फिर यहाँ से निकलना नहीं हो सकेगा, इसलिए कहीं भी जाऊँ, मगर इस स्थान को शीघ्रातिशीघ्र छोड़ना आवश्यक है। मैं पैदल ही चल दिया और जितना संभव हो सकता था, तेज़ चलता गया। संयोग से, आगे तक पहुँच गया था। पता नहीं, मेरे बाद वहाँ क्या हुआ होगा ? ब्राह्मण पर क्या गुज़री होगी? मगर, वह सब कुछ अब पीछे छूट गया था या छोड़ दिया गया था, उसके बारे में सोचने से काम चलने वाला नहीं था।

करेली पास का रेलवे स्टेशन था। करेली में आकर सबसे पहले अपनी दाढ़ी बनवायी, हलका-फुलका खाया पिया, फिर वहाँ से रेलगाड़ी पकड़कर इटारसी के लिए रवाना हो गया। इटारसी से भोपाल के लिए साधन शत-प्रतिशत मिलना ही था।

भोपाल आ गया हूँ, अभी मेरा अर्जित अवकाश समाप्त होने में दो दिनों का समय बाक़ी है। निलंबन का भूत फिर से मेरे सिर पर सवार होने लगा है। पाँव पकड़ने से भी क्या वह अधिकारी मानेगा? दिन अस्थिर-सा बीता। जैसे-तैसे अपने दिन भर के कामों में लगा रहा और रात तो फिर सोने के लिए होती ही है, परंतु यह नहीं जानता था कि यह वह रात होगी, जो मुझे बहुत हलका-फुलका कर देगी और शांति भरी नींद का आधार बनेगी। ठीक आठ बजकर चौदह मिनिट पर मेरा फ़ोन बजा ''...जी हैं?''

''जी हाँ, बोल रहा हूँ... सुनाइए कैसे हालचाल हैं?''

''वही बताने के लिए तो फ़ोन किया... यार मान गये, तुम बहुत पहुँच वाले आदमी हो...''

''क्यों, मैंने क्या किया?''

''बनो मत, एच0ओ0डी0 का ट्रान्सफर करा दिया और कहते हो कि मैंने क्या किया? क्या ग़ज़ब का गेम खेला है यार!''

उफ फिर वही गेम...

''भैया, मैंने कुछ नहीं किया। यकीन करो, मुझे तो कुछ पता भी नहीं, कहाँ एच0ओ0डी0, कहाँ मैं थर्ड क्लास कर्मचारी....

''हाँ... ऐसा तो कहोगे ही... चलो बधाई हो... मिठाई पक्की रही...'' और फ़ोन बंद हो गया।

2/156 एस0आर0जी0 कांप्लेक्स, महर्षि स्कूल के पास, कल्पना नगर, रायसेन रोड, भोपाल (म0प्र0)-462 021

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गूँगा

कैसरा शेराज़

शुक्रवार की एक दोपहर गाँव के बच्चे चिल्ला रहे थे—"गूँगा आया-गूँगा आया।" गाँव के बीचों-बीच बनी मस्जिद से अजान देने की आवाज़ गूँज रही थी। घरों में केवल महिलाएँ और बच्चे थे। सभी आदमी सभी ईमान वाले शुक्रवार का स्नान करने के पश्चात् मौलवी साहब का ख़ुत्बा सुनने और नमाज़ पढ़ने गये हुए थे।

अपने घरों के आँगन की नीची-नीची दीवारों से कुछ औरतें बाहर झाँक रही थीं। उनके गाँव का अकेला गूँगा व्यक्ति गूँगा वापस आ गया था। उन्होंने पाँच वर्षों से उसे नहीं देखा था। गूँगे का पीछा करने वाले बच्चों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। चालीस वर्ष का बूढ़ा दिखने वाला व्यक्ति, जिसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, अपनी बगल में कपड़ों की एक गठरी दबाये हुए था। मामून के मुस्कराने से उसके चेहरे पर बेवकूफ़ी और असहजता के भाव आ गये थे। दो बड़े बच्चे जिन्हें वह अब भी याद था, जिन्होंनें सबसे पहले गूँगा-गूँगा चिल्लाना शुरू किया था, सोचते थे कि उन्हें गूँगे का परिचय देने का अधिकार है, केवल इसलिए, क्योंकि वह बेवकूफ़ और पागल दिखता है।

गाँव के रास्ते में, उनके बीच खड़े होकर मामून अब भी मुस्करा रहा था। वह बच्चों के चेहरों को उत्सुकता से ताक रहा था—शायद, वह इन्हीं के बीच हो।

कुछ समय में वह नेमत अली के घर पर पहुँचा। गूँगे के वापस आने की बात पूरे गाँव में फैल चुकी थी। नेमत अली की पत्नी आमिना मिट्टी के चूल्हे पर चपातियाँ बनाकर उठी ही थी कि उसने गूँगे का नाम सुना। उसका हृदय तीव्रता से धड़कने लगा।

कुछ देर में दरवाज़ा खुला और मामून ने प्रवेश किया। आमिना अब अपने नियंत्रण में थी। वह उठी और मुस्कराते हुए उसका स्वागत किया। उसने सांकेतिक भाषा में उसका हाल पूछा, फिर उसके लिए कुर्सी खींची। बच्चों की वह टोली, जिसमें आमिना के बच्चे भी थे, उन दोनों की शांत बातचीत को आश्चर्य और मनोरंजक ढंग से देख रही थी। उन बच्चों ने कभी ऐसे व्यक्ति का सामना नहीं किया था, जो बोल न सकता हो। यह उनके लिए अनोखा अनुभव था। गूँगे ने अपनी छाती की ओर संकेत करके आमिना से कुछ पूछा। वह समझ गयी और उसने सिर हिलाते हुए सिद्दीक़ की ओर इशारा किया।

मामून तेज़ी से उन दोनों बच्चों में से एक को देखने के लिए घूमा, जो आँगन में बजरी से बने खंबा के पास खड़े थे। छह वर्षीय सिद्दीक़ ने भी पलटकर उसे देखा।

भावुकता से मामून की आँखों में आँसू आ गये। उसका सीना गौरव और प्रेम से फूल गया। उसका सिद्दीक़ अब एक सुंदर लड़का बन गया था। बिना कोई विचार किये, वह कुर्सी से उठा उसे छूने और अपने गले लगाने के लिए। वह लड़के की तरफ़ बढ़ा।

सिद्दीक़ भयभीत हो गया। इससे पहले कि गूँगा उसे छू पाता, वह डरकर पीछे हट गया और भागकर अपनी माँ के पीछे छिप गया। गूँगा खंभे के पास खड़ा था, आत्म-नियंत्रण के लिए उसने हाथ खंभे पर रख लिया। उसके जीवन के पिछले तीस सालों में जो दूसरे लोग उसके साथ नहीं कर पाये, वह उसके अपने बेटे के इन्कार ने कर दिया।

वह उन हँसी उड़ाने वाले बच्चों से दूर जाकर, किसी अँधेरे कमरे में फफक कर अपने दुख को दबाना चाहता था।

गाँव के दूसरे बुजुर्गों, औरतों और आमिना से मुलाक़ात करना उसे बहुत दुखदायी और कटु लगने लगा; जो कभी उसके प्रिय हुआ करते थे। वह जानबूझकर सिद्दीक़ को देखने में अरुचि दिखाते हुए आँगन से बाहर आ गया। आमिना ने उससे भोजन करने और नेमत अली से मिलने के लिए कुछ देर और ठहरने का आग्रह किया। उसने हाथ से इशारा करके इन्कार किया और अपने घर के रास्ते की तरफ़ चल पड़ा।

जो लोग उसे मिले, उन्हें अनदेखा कर दिया। आमिना के पीछे छिपे हुए सिद्दीक़ की झलक उसकी आँखों में बस गयी, जिसने उसकी अंतरात्मा को जैसे काट-सा दिया हो। बच्चा भय और घृणा से उसकी ओर से पलट गया। क्या वह कभी उसे अपना पिता समझेगा?

अपने पिता के साथ सिद्दीक़ के ऐसे व्यवहार ने आमिना के हृदय को झिंझोड़ दिया। वह भारी हृदय से कुर्सी पर बैठ गयी। उसका मन यह कल्पना कर रहा था कि मामून को कैसा प्रतीत हुआ होगा ? लेकिन, एक बच्चे से कोई क्या आशा रख सकता था—उसने अपने आप से पूछा।

जहाँ तक सिद्दीक का संबंध था, आमिना और नेमत अली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उसके माता-पिता थे। वह उनके ही परिवार का एक सदस्य था। उसका पालन भी उनके अपने बच्चे रफ़ीक़ के साथ हुआ था। बिल्कुल जुड़वाँ बच्चों की तरह। फिर, सिद्दीक़ कैसे किसी अपरिचित से नहीं घबराता—वह भी एक गूँगे व्यक्ति से?

एक घंटे बाद नेमत अली मस्जिद से वापस लौटे।

"ठीक हो अमिना बीबी, क्या तुमने सुना कि हमारा गूँगा वापस आ गया? क्या वह अंदर है?" उसने अपनी पत्नी से पूछा। उसने कभी मामून को इस नाम के अलावा किसी नाम से नहीं पुकारा था।

"हाँ", आमिना ने दबी हुई आवाज़ में जवाब दिया। उसने आँखों से इशारा करके आगे कुछ न कहने को कहा। उसने सिद्दीक़ की तरफ़ इशारा किया, जो बरामदे मे पंखे के नीचे बैठा खाना खा रहा था।

नेमत अली ने अपनी आवाज़ को धीमा कर लिया।

"क्या उसने सिद्दीक़ को देखा?"

"श... श! हाँ, बच्चा काफी डर गया था।"

"क्यों?"

"मामून अंदर आया, उसने बच्चे को सराहने की कोशिश की। सिद्दीक़ घबराकर भाग गया। बच्चे के व्यवहार से मामून बहुत दुखी हो गया और फ़ौरन चला गया, बिना ख़ुदा-हाफ़िज़ किये।"

"बेचारा! या अल्लाह ! उसे कैसा महसूस हो रहा होगा! शायद वह सिद्दीक़ को देखने के लिए व्यग्र रहा होगा।

...उसका प्यारा बेटा, उसके सभी जीवित रिश्तेदारों में अकेला और उसका उत्तराधिकारी।"

"पता नहीं क्यों मुझे डर लग रहा है नेमत अली, यह ऐसा है, जैसे हमने उसके साथ ग़लत किया।"

"धीरज रखो आमिना बीबी। ऐसी ग़लत बात मत कहो। तुमने यह अपने लिए नहीं किया। बच्चा अपनी माँ के बिना नहीं रह सकता था।'

"शायद आप ठीक कहते हैं। लेकिन, मामून कई सालों तक बच्चे से दूर रहा और जब वह लौटा, तो बच्चे ने उसे पहचाना नहीं, यह हमारी ग़लती है। हमने जैसे उसके पिता होने का हक़ छीन लिया।"

"मैं नहीं जानता कि तुम औरतों का दिमाग़ कैसे काम करता है, लेकिन तुम जानती हो कि हमने सिद्दीक़ को उसका हक़ दिया, उसे एक बेटा समझकर... और तुम एक अच्छी माँ सिद्ध हुई, जोकि उसकी हो सकती थी।"

"शश्श, वह आ रहा है।"

वे चुप हो गये, जब तक कि सिद्दीक़ अपने दोस्तों के साथ बाहर खेलने नहीं चला गया।

मामून अपने टूटे-फूटे घर के एक छोटे से अँधेरे कमरे में बैठा था। बाहर अँधेरा हो गया था। अँधेरे ने उसे वह सहारा दे दिया, जो उसका दुखी मन चाहता था।

वह अपने खोये हुए बेटे, अपनी मृत पत्नी और अपने गूँगे अस्तित्त्व के लिए रोता रहा।

गारे से चुनी दीवारों पर सफ़ेदी किया हुआ पलस्तर छूटकर कर गिर गया था। उसकी पत्नी के कुछ बर्तन एक कोने में पड़े थे, जिन पर धूल-मिट्टी और जाले छाये हुए थे। अधिकतर फ़र्नीचर ग़ायब हो चुका था। कुछ अधिक था भी नहीं—एक पुरानी-सी कुर्सी, एक निवाड़ की चारपाई और एक पैर रखने वाला स्टूल कमरे में था। मामून की धूमिल आँखें उस अँधेरे कमरे को देख रही थी, जैसेकि वह अपने उन दिनों को याद कर रहा था, जब वह अपनी पत्नी गूंगी के साथ वहाँ रहा करता था।

वह हमेशा सोच था कि वह भाग्यशाली है, कि उसकी भी एक पत्नी है। वह भी एक गूँगी है, वरना कौन एक गूँगे को अपनी बेटी देता, जिसका स्थान समाज में नीचे से नीचा था, जिसकी अपंगता एक बड़ी रुकावट थी? गाँव वालों के विचार में उसकी बोलने की अयोग्यता उसकी बुद्धि की अयोग्यता के समान थी। जब वह उत्तेजित या भावुक होता, तो शब्द उसके मुख से निकलना चाहते, जिसके कारण उसके चेहरे पर असामान्य भाव आ जाते थे। जब गूँगा और गूँगी इशारों से एक-दूसरे से बातचीत करते, तो गाँववालों के लिए यह एक मनोरंजक स्थिति होती। वे यह कैसे कर लेते हैं? मुश्किल परिस्थतियों में वे कैसे एक-दूसरे तक अपने विचार प्रकट करते हैं?

गाँववाले उन्हें चिढ़ाते थे और वह बेचारा बदनसीव जोड़ा हँसी का पात्र बन गया था। मामून और उसकी पत्नी नईमा उनके चिढ़ाने को सहजता से सहन कर लिया करते, जबकि वे इस खुली निर्दयता से दुखी होते थे। उन्होंने अपने चेहरे पर एक दूसरा चेहरा लगा लिया था, इस बाहरी समाज की खीस के कारण। इसके बिना वे तंगे थे। लोग मानते थे कि ये बोल नहीं सकते, तो कुछ महसूस भी नहीं कर सकते। जब मामून सड़क से गुज़रता, तो बच्चे 'गूंगा-गूंगा' कहकर उसका खुला मज़ाक उड़ाते, तो ये लोग बस बच्चों को भगा देना ही अपना सबसे बड़ा कर्तव्य समझते थे।

कितनी ही बार उसने अल्लाह से शिकायत भरी दुआएँ कीं—इस अन्याय के लिए, जिसने उसे बोलने से वंचित रखा। बिना वाणी के वह एक अधूरा व्यक्ति था।

वह कड़वाहट तब भी उसे महसूस हो रही थी, जब औरतें उसकी गर्भवती पत्नी की तरफ़ बेशर्मी से इशारे करती थीं। गूँगे की आम छवि इस तथ्य से मेल नहीं खाती थी कि वह भी आम लोगों की तरह बाप बनने वाला था। अगर औरतें उन्हें मक्कारी से चिढ़ाती थीं, तो आदमी खुलेआम ऐसा करते थे। कभी-कभी मामून सोचता था कि दूसरे लोगों की गर्भवती पत्नी के बारे में ऐसे ही लोग बातें करें, तो उन्हें कैसा लगेगा?

अंततः, जब गूँगे की पत्नी ने एक लड़के को जन्म दिया, तो पूरा गाँव आश्चर्य में पड़ गया। कसम से, गूँगे ने एक बेटी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, बल्कि एक बेटे को जन्म दिया—इस बात ने किसी प्रकार गूँगे को सामान्य व्यक्तियों की श्रेणी में खड़ा कर दिया।

'गूँगे के घर एक लड़का हुआ है'—ये शब्द समूचे गाँव मे ढोल की तरह बजने लगे। कुछ लोगों ने, जिनमें नेमत अली और उसकी पत्नी आमिना भी थे, सहृदयता से उसकी प्रसन्नता में भाग लिया। नईमा आमिना के घर के कामों में हाथ बँटाती थी। गाँव में मिठाई बाँटी गयी। बच्चे के जन्म पर हिजड़े भी नाचने आये। मामून की प्रसन्नता उसके मुख पर दीख रही थी। वह बार-बार घर के अंदर-बाहर हो रहा था और एक क्षण को भी अपनी पत्नी और बच्चे को अकेला नहीं छोड़ना चाहता था। नईमा भी बेहद प्रसन्न थी, जबकि ज़चमी के कारण काफ़ी कमज़ोर थी। अब वे एक संपूर्ण परिवार थे। अब उनका एक सुंदर बेटा था, जो प्राकृतिक ढंग से रोता था। उसके रोने का शोर माता-पिता को उल्लास से भर देता था। गर्भ के पूरे समय वे दोनों भयभीत रहे कि उनकी अपंगता कहीं बच्चे को भी विरासत में न मिल जाए।

मामून की खुशी केवल कुछ क्षणों की थी। तीन दिन बाद बच्चेदानी में रक्तस्राव के कारण उसकी पत्नी की मृत्यु हो गयी। मामून किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। वह अत्यधिक दुख से चीख़ा-चिल्लाया, जिससे गाँववाले एकत्रित हो गये। वे सब भी दुखी हुए। उस समय वह जंगली हो गया, अपना सिर दीवार में मारने लगा। उन सबने उसे सहानभूति देने की कोशिश की, परंतु विफल हुए। इस भयावय दृश्य से उसका आँगन गाँववालों से भर गया।

वह उसके बच्चे के रोने की आवाज़ थी, जिसे सुनकर मामून अपने होश में आया। उसने सावधानी से बच्चे को उठाकर अपने सीने से लगा लिया, जब तक कि वह मासूम चुप न हो गया। अब यह हक़ीक़त उसने सामने थी कि उसे बेटे को पालना है। बच्चा रोये जा रहा था, वह उसे गोद में लेकर आगे-पीछे हिला रहा था। एक महिला ने आँगन से बढ़कर बच्चे को उससे ले लिया और दूध पिलाने के लिए परेशान थी, क्योंकि गूँगी ने पिछले दो दिन से बच्चे को अपना ही दूध पिलाया था। वह परेशान थी कि अब मामून क्या करेगा। उसका कोई परिवार नहीं था। वह खुद पास के एक गाँव का अनाथ था। बच्चे को एक माँ की ज़रूरत थी। वह... एक आदमी... कैसे बच्चे का ख़्याल रखेगा? कैसे उसे दूध पिलाएगा?

गूँगे के घर उन औरतों की भीड़ में एक चार महीने के बच्चे की माँ—आमिना—मौजूद थी। मामून की इस दुर्दशा पर उसका हृदय भर आया। वह उस औरत के पास गयी, जो बच्चे को लिये हुए थी। उसने बच्चे को लिया और कमरे के एक कोने की तरफ़ चली गयी। खुद को चादर से ठीक तरह ढाँककर बच्चे को दूध पिलाना शुरू कर दिया। बच्चा एकदम चुप हो गया और कमरे मे शांति छा गयी। सब उस महिला की तरफ़ देख रहे थे, जिसका सिर बच्चे के ऊपर झुका हुआ था।

मामून ने सांकेतिक भाषा में आमिना को धन्यवाद दिया। उसने सिर हिलाया और बच्चे को दूध पिलाती रही। कुछ मिनट बाद उसने बच्चे को वापस कर दिया। मामून ने बच्चे को गोद में लेकर हिलाया और फिर टहलने लगा। गाँव की औरतें आँखों में आँसू लिये अपने-अपने रास्ते चली गयीं।

जीवन में पहली बार उन्होंने अपने गूँगे के जज़्बात को समझा। वह तैंतीस वर्ष का एक जवान आदमी था और उसके आसपास की पूरी दुनिया डूब गयी थी।

मामून के अगले कुछ दिन तो ऊहापोह की स्थिति में गुज़र गये। दफ़न के वक़्त से लोगों का आना-जाना लगा हुआ था। रीति के अनुसार महिलाएँ 'कुरआन' पढ़ने के लिए एकत्रित हुईं। बच्चे को दूध पिलाने और उसके कपड़े बदलने के लिए आमिना लगातार आती रही। मामून उसका बहुत आभारी था और वह इसे प्रकट करने की जितनी कोशिश कर सकता था, करता था, पर उसे कुछ हिचकिचाहट भी होती थी। वह हमेशा अपनी पत्नी को अपने बेटे को दूध पिलाते हुए देखना चाहता था। उसे यह असहज लगता था कि उसका बेटा पलने के लिए आमिना पर निर्भर था।

कुछ दिन बाद मामून ने महसूस किया कि बच्चा आमिना के पास ही रहना चाहिए, ख़ासतौर पर, जब रात को वह रोता है। इससे आमिना की बार-बार उसके घर आने की परेशानी भी ख़त्म हो जाएगी। मामून यह नहीं चाहता था कि उसका बच्चा बोतल का दूध पिये और बीमार पड़ जाए। दो सप्ताह बाद उसने बच्चे को लिया और आमिना से उसे अपने घर पर ही रखने का निवेदन किया और कहा कि वह वहाँ आता रहेगा। उसने वादा किया कि वह बच्चे की अच्छी तरह देखभाल करेगी और कहा कि वह दिन में किसी भी समय बच्चे को देखने आ सकता है। आमिना के घर से निकलने के बाद मामून बाहर खड़ा होकर रोने लगा। उसे लगा, जैसे उसने अपने बेटे को खुद से दूर कर दिया। इन दिनों वह बच्चे के पास लगातार आता रहा, लेकिन दिन ब दिन उसका आना कम होता गया। जैसे-जैसे समय बीतता गया, उसे अपने बच्चे के पास रहना असहज लगने लगा। आमिना उसकी परेशानी समझती थी। जब कभी भी वह आया, उसने हर प्रकार से उसे सहानुभूति दी। उसने और नेमत अली ने उस बच्चे का नाम सिद्दीक़ रखा। वह बच्चे को उसके हवाले करती और फिर खुद घर के कामकाज में व्यस्त हो जाती। वह देखता था कि बच्चा हमेशा साफ़-सुथरा रहता और अच्छे कपड़ों में होता, जो वह खुद नहीं पहना सकता था।

लेकिन, उसके सीने से वह कष्ट नहीं निकलता था, जिसका स्वप्न उसने अपने बच्चे और पत्नी के लिए देखा था। अंततः, जब वह यह अधिक दिनों तक सहन नहीं कर पाया, तो उसने अपने जीवन से नाता तोड़ने और शहर में रहने का निर्णय कर लिया। उसका यह कष्ट धीरे-धीरे उसे मृत्यु की तरफ़ खींच रहा था।

एक सुबह, मामून अपने भारी मन से नेमत अली और आमिना के घर गया। उसे इस तरह सुसज्जित ढंग से देखकर वे दोनों आश्चर्य में पड़ गये। उसका सारा निजी सामान भी रस्सी से बँधा उसके साथ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने जो नाश्ता दिया, उसे खाने के बाद मामून ने अपने बेटे को देखने की इच्छा प्रकट की। वह उसे अंदर कमरे में ले गयी, जहाँ बच्चा आराम से सो रहा था। मामून काफ़ी समय तक खाट के पास खड़ा रहा। वह बच्चे को उठाना चाहता था, लेकिन उसने उसे जगाना उचित नहीं समझा। अंततः, वह सहन नहीं कर पाया और रो पड़ा।

उसे रोते हुए देखकर आमिना ने फ़ौरन बच्चे को उठा लिया, ताकि इस तरह रोने से वह घबराकर उठ न जाए और फिर उसे मामून के हवाले कर दिया।

उसने मामून से बच्चे के साथ बिस्तर पर बैठने को कहा और स्वयं दरवाज़ा बंद करके चली गयी। मामून ने बार-बार अपने बेटे के चेहरे को चूमा और कसकर उसे अपने सीने से लगा लिया। अगर बच्चा बड़ा होता, तो वह ख़ुद उसे पाल सकता था, लेकिन एक चार महीने के दूध-पीते बच्चे को पालना उसके बस की बात नहीं थी। क़रीब एक घंटे तक वह बच्चे के साथ रहा, उसका आँसुओं से धुला चेहरा यह ज़ाहिर कर रहा था कि बच्चा अब आमिना का है। उसके बाद वह वहाँ से चला गया। फ़ौरन बाद, आमिना ने बच्चे को जाकर उठाया और उसे स्नेह से गले लगा लिया। अल्लाह उसका गवाह है, वह बच्चे की देखभाल अपने बच्चे से भी अच्छी तरह करेगी। बच्चे के पास तीन सौ रुपये रखे थे, जो मामून छोड़ गया था—आमिना और नेमत अली के लिए... धन्यवाद के रूप में।

यह आख़िरी बार था, जब उन्होंने मामून को देखा, जब तक कि वह दुबारा लौटा। उसने कई अलग-अलग जगहों पर—लाहौर की कई बड़ी कोठियों में—काम किया था।

बाद में, जब आमिना मामून को खाना देने शाम को उसके घर गयी, उसने देखा कि वह घर के आँगन के एक कोने में पड़ा आसमान को देख रहा था। उसने धीमे स्वर में कहा—"मामून, यहाँ आओ...क्या कर रहे हो वहाँ अँधेरे में पड़े हुए?...रोशनी जलाओ... मुझे उम्मीद थी कि तुम आकर खाना खाओगे...आओ मामून..."

मामून ने कष्टभरी दृष्टि से आमिना की तरफ़ देखा। अँधेरे में किसी ने ध्यान नहीं दिया कि एक छोटा सा सिर दरवाज़े से अंदर झाँक रहा था। सिद्दीक़ अपनी माँ का पीछा कर रहा था। वह आश्चर्य में था कि उसकी माँ गूँगे आदमी के यहाँ क्यों जा रही है? वह जानने के लिए बाहर खड़ा रहा। वह अभी भी उस आदमी से डरा हुआ था।

आमिना उस पुराने स्टूल पर बैठी थी, जबकि मामून अब भी आसमान कि तरफ़ देख रहा था। वह उसे अनदेखा कर रहा था। वह उससे कहना चाहता था कि वह वापस चली जाए और उसे अकेला छोड़ दे, ताकि वह अपने अतीत में डूब सके। वह बहुत थका हुआ था।

"मामून, मेहरबानी करके इसे अपने दिल पर मत लो, सिद्दीक़ एक छोटा बच्चा है। वह कुछ नहीं जानता। उसने कभी किसी गूँगे आदमी को नहीं देखा।"

अब जाकर मामून ने उसकी तरफ़ देखा। उसकी धूमिल आँखें उसे चुभ-सी रही थीं। वे बहुत कुछ कह रही थीं। वह उसका कुछ दर्द बाँटना चाहती थी, उसने सिद्दीक़ के व्यवहार के लिए एक बार फिर तसल्ली देने की कोशिश की ।

"मामून तुम्हारा बेटा नहीं जानता कि तुम उसके बाप हो, वरना मुझे यकीन है कि वह तुम्हारे पास ज़रूर आता।"

वह कहते-कहते रुक गयी, क्योंकि उसे किसी के क़दमों की आहट लगी। उसने मुड़कर देखा और फिर बात शुरू की। उसे अंदाज़ा भी नहीं था। कि सिद्दीक़ अपनी जगह से वापस भागा है।

जब वह घर लौटी, तो सिद्दीक़ नहीं था। उसने इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। बाद में, जब उसे याद आया, तब सिद्दीक़ के बारे में पड़ोसियों से पूछा कि शायद किसी ने उसे देखा हो। नेमत अली उसे ढूँढने के लिए लोगों को भेजने वाला थे कि सिद्दीक़ उदास चेहरा लिये अंदर आया। उसने उन लोगों के आश्चर्य पर कोई ध्यान नहीं दिया। जब उससे पूछा गया कि वह इतने समय कहाँ था, तो उसने उत्तर दिया कि वह खेल रहा था।

वास्तव में, वह बाहर खेतों में एक पुराने कुएँ के पीछे बैठकर उसे समझने की कोशिश कर रहा था, जो उसने सुना था। उसने कुछ नहीं खाया और जल्दी ही सोने चला गया। लेकिन, देर रात तक जागता रहा। उसकी आँखें अँधेरे की तरफ़ टिकी हुई थीं वह भिखारी-सा, वह गूँगा उसका पिता था। यह नहीं हो सकता... पहले तो उसे बहुत दुःख हुआ फिर उसके अंदर विश्वासघात की भावना उत्पन्न हो गयी। उसने जो कुछ सुना था, उसके कारण वह अपनी माँ का सामना नहीं कर पा रहा था। इस बात का पता चलने से उसे केवल शर्म ही लग रही थी। अच्छा हो, किसी और को पता न चले कि उसे कैसा महसूस हो रहा है।

अगली सुबह मामून पुराने कुएँ के पास एक बड़े पेड़ की छाया में कटे हुए पेड़ के ठूँठ पर बैठा था। बच्चे उसका मज़ाक उड़ाने के लिए इकठ्ठे होने लगे, और अपने हाथों से उसकी हरकतों की नकल करने लगे।

मामून दूर से उन्हें देख रहा था—वे बच्चे हैं। तभी उसने उस भीड़ में एक बच्चे का चेहरा देखा। वह ऐसे चौंक पड़ा, जैसे बिजली का करंट लगा हो। बच्चा उसे देख रहा था, उसकी आँखों में घृणा थी। गूँगा अपनी सुध-बुध खो बैठा। उसकी चेतना उसके चेहरे पर पूर्णरूप से व्यक्त हो रही थी। वह उसका बेटा था... वह उससे घृणा करता था... बच्चा अब भी नहीं जानता, नहीं जान सकता कि वह कौन है... सिद्दीक़ के मज़ाकिया शब्द—गूँगा-गूँगा —एक छह वर्ष के बच्चे के शब्दों से कुछ अलग प्रतीत होते थे। उन शब्दों ने मामून के इन्सान होने की मान-मर्यादा को ध्वस्त कर दिया।

वह उस ठूँठ से उठ खड़ा हुआ और उन बच्चों की भीड़ से दूर चला गया, यहाँ तक कि वह एक बड़े पत्थर से आगे निकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। सिद्दीक़ के अलावा शेष समूह अभी भी उसी हँसी उड़ाते और चिल्लाते हुए पीछा कर रहा था। सिद्दीक़ ने देखा कि गूँगा और बच्चे चले गये। उसने जमीन से दो कंकड उठाये और उन्हे कुएँ में फेंका। अब अचानक उसे पिछली शाम से बेहतर लगने लगा।

जब वह घर को लौटा तो एक पत्थर से ठोकर खाता हुआ गूँगे का चेहरा उसकी आँखो में घूमने लगा। यह ख़्याल जाता ही नहीं था। घर लौटकर उसने बैठकर कुछ किताबें पढ़ने की कोशिश की। कुछ देर बाद उसने नेमत अली को यह कहते सुना कि मामून फिर गाँव छोड़कर चला गया और इस बार बिना अलविदा कहे चला गया।

सिद्दीक़ यह सब बहुत ग़ौर से सुन रहा था। आमिना हड़बड़ा गयी, उसने नज़रें झुका लीं और बेवजह अपने आप को कुछ बहुत बुरा करने के लिए दोषी समझने लगी।

उस शाम के बाद किसी ने गूँगे के बारे में बात नहीं की और वह लौटा भी नहीं।

साल बीतते गये और सिद्दीक़ बड़ा होता गया, लेकिन उसका सोच उसे कचोटता रहा कि उसने खुद उस आदमी को गाँव के बाहर खदेड़ दिया। उसे गोद लिया गया था, यह बात उसे अब भी खाये जाती थी और वह अपने माँ-बाप का बेटा नहीं है, यह बात उन्हें कभी प्रकट नहीं होने दी। वह अपने असली माँ-बाप के बारे में जानना चाहता था, लेकिन कभी पूछने की हिम्मत नहीं कर पाता था।

अपनी माँ गूँगी के बारे में उसे आमिना से पता चला। आमिना ने उसे उसकी माँ के बारे में इतने प्रेमपूर्ण शब्दों में बताया कि वह हमेशा रोना चाहता था। उसने उसे एक तस्वीर भी दिखायी। वह अधिकतर उसे दराज़ से निकालकर देखा करता, इसके बाद उसे पता चला कि उसकी क़ब्र कहाँ पर है। वह जुमे के दिन एक-दो बार वहाँ जाया करता था।

यह आम दिनों की भाँति ही एक दिन था, जब एक ट्रक की आवाज़ ने गाँव की शाँति भंग की, जिसमें गाँव का ही एक आदमी भी था। गाँव में ट्रक के आने का सबब बस दो बातों से होता था—एक तो बैलों के निर्यात के लिए या किसी लाश को वापस गाँव मे पहुँचाने के लिए। इस बार उसका कारण बाद वाला था। मरा हुआ व्यक्ति गूँगा था।

कुछ ही क्षणों में बात पूरे गाँव में फैल गयी। आदमी-औरतें अपने घरों से दौड़ते हुए पहुँचे।

आमिना और नेमत अली सबसे आगे-आगे ट्रक के निकट पहुँचे। आमिना बहुत भयावह स्थिति में थी। उसके तीनों बेटे सिद्दीक़ सहित उसके पीछे पहुँचे। उस खाट को जिस पर मृत गूँगा पड़ा था, चार व्यक्तियों ने उठाया और गाँव के पतले गली-कूँचों से होकर नेमत अली के घर ले गये। गूँगे और नेमत अली के बीच बहुत पहले का नाता था।

खाट आँगन के बीच में रखी गयी और हर कोई गूँगे को क़रीब से देखने की चेष्टा करने लगा। वे सब जानना चाहते थे कि आख़िर उसके साथ क्या हुआ था? वह कैसे मरा ? बेचारा, बड़ा दुबला दिखता था।

जल्दी ही उन्हें ज्ञात हुआ कि वह शहर में एक जगह से दूसरी जगह फिरकर बड़े कष्टों में रहा था और बीमार पड़ गया था। भाग्यवश, जिस आदमी को वह इस दयनीय स्थिति में मिला, वह गाँव का ही रहने वाला था। वह उसे अस्पताल भी ले गया, जहाँ गूँगे ने न्यूमोनिया से दम तोड़ दिया।

अगली सुबह मस्जिद में उसके दफ़न की तैयारियाँ हुईं। रात के समय कुछ आदमी और औरतें लाश के पास बैठे रहे। वे 'कुरआन' पढ़ते रहे। वे बेचारे अभागे गूँगा और गूँगी के बारे में बातें करते रहे, जबकि पूरे जीवन वे उसे चिढ़ाते रहे, उन्होंने कभी उसे प्रेम नहीं किया और शायद उन्हें उसकी कमी भी नहीं खली। अगली सुबह मामून की लाश को रीति के अनुसार गुसल कराने के लिए मस्जिद ले जाया गया।

उसकी 'नमाज़ ए जनाज़ा' इमाम और कुछ लोगों के साथ मस्जिद में ही पढ़ी गयी। मामून की लाश चार व्यक्तियों-दो इमामों और गाँव के दो वृद्ध व्यक्तियों द्वारा क़ब्रिस्तान तक ले जायी गयी, जो गाँव के बाहरी इलाके में था। बच्चों और औरतों का समूह भी पीछे-पीछे था।

औरतों के समूह में सबसे आगे आमिना और आदमियों में सबसे आगे नेमत अली थे। थोड़ी देर में समूह क़ब्रिस्तान पहुँच गया। मौलवी साहब ने 'कुरआन' के पाठ पढ़ने शुरू किये।

दफ़न हो चुका था और आदमी गाँव की तरफ़ चले ही थे कि कुछ अजीब घटना हुई ।

सिद्दीक़, जिसने अचंभित कर दिया, क़ब्र की तरफ़ दौड़ पड़ा और घुटनों के बल पड़कर तेज़ आवाज़ में रोने लगा। उसके रोने की चीख़ वातावरण में बिखर गयी। हर किसी को एक झटका-सा लगा। क्या इसका मतलब यह है कि सिद्दीक़ जानता था कि गूँगा उसका पिता था? नेमत अली और आमिना टूट गये। उन्हें यह ज्ञान हो गया कि सिद्दीक़ जान चुका था कि वह दोनों उसके असली माता-पिता नहीं हैं। अपने बेटे को क़ब्र पर झुका हुआ देखकर, उसके कष्ट से उनका दिल भर आया।

आमिना ने उसे बाहों मे लेकर गले से लगा लिया। सिद्दीक़ उससे हाथ छुड़ाकर अलग हो गया।

"मुझे अकेला छोड़ दो।"

उसने देखा कि लोग उसको देख रहे थे, जब वह क़ब्र पर झुका था।

"सब लोग दूर रहो ! तुमने हमेशा यह किया उसके साथ. .. क्या नहीं किया तुमने?... तुम्हारा गूँगा, जिसका तुम बड़े प्रेम से मज़ाक उड़ाते थे! लो आज से मैं हूँ तुम्हारा गूँगा... उसका बेटा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह दुख से सबके चेहरे देख रहा था। उसके बाद वे कड़वे शब्द उसके मुख से फूट पड़े, उसे नहीं पता... कहाँ से।

"हाँ, मैं ही उसका बेटा हूँ। और सभी बच्चों की तरह मैंने भी उसका मज़ाक उड़ाया। वह मैं था... उसका बेटा... जिसने उसे गाँव के बाहर खदेड़ दिया," उसका गला फँसने लगा, उसके शब्द लड़खड़ाने लगे, "मैं कभी नहीं भूल सकता उसके चेहरे को... मैंने भी उसका मज़ाक उड़ाया... वह मेरा बाप था," उसने उन लोगों की तरफ़ आँखें तरेरीं, जो उसकी ओर अचंभित निगाहों से देख रहे थे और क़ब्र की तरफ़ हाथ लहरा कर बोला, "सब लोग इधर देखो, ये मेरे पिता हैं। आज मैं उनका मुँह हूँ... उनकी आवाज़... उनका बेटा... एक बेटा, जिसे उन्होंने ख़ुद से अलग कर दिया और फिर बाद में बिल्कुल छोड़ दिया, क्योंकि उसके अपने बेटे ने उसे नहीं समझा। अब मैं किसी को अपने पिता के विरुद्ध कुछ नहीं कहने दूँगा... क्या तुम सब लोग सुन रहे हो..." वह कुछ देर को चुप हो गया, उसका ज़िस्म हिचकियों से काँपने लगा। कुछ गाँववाले भी रोने लगे।

दफ़न के बाद वह अपनी माँ के साथ घर लौटा। बाद में, बिना कुछ बोले वह घर छोड़कर अपने पिता के घर गया और वहाँ चारपाई पर पड़ गया, उस बिस्तर पर, जहाँ उसकी माँ ने उसे जन्म दिया था।

आमिना और नेमत अली जानते थे कि वह कहाँ है, लेकिन उसे वापस लाने के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया। उसी एक दिन में उन्होंने केवल अपना गूँगा नहीं खोया था, बल्कि अपना बेटा भी खो दिया था।

मूल अंग्रेजी से अनुवाद

अम्मार असलम स्नातकोत्तर विद्यार्थी
अंग्रेज़ी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालसय, अलीगढ़

कविताएँ

माहे तिलत

जुदाई के लम्हे

तेरे मेरे दरम्यान
जुदाई के ये लम्हे
कुछ ऐसे वक़्त में आए हैं
कि जब हम-दोनों को
ज़रूरत एक-दूसरे की थी,
अब एक-एक पल
सदियों पे भारी लगता है
कोई हमदर्द नहीं कोई शनासाँ नहीं अब तो
दिल है कि पल-पल का हिसाब चाहता है,
आँखें प्यासी हैं, राह खाली है
अब न गुलशन है न वो माली है,
तेरे मेरे दरम्यान
जुदाई के ये लम्हे
कुछ ऐसे वक़्त में आये है
कि जब ज़रूरत हम-दोनों को
एक दूसरे की थी।

'ज़ख़्म'

गहरे ज़ख़्मों को भरने में
वक़्त तो लगता है
कैसे कोई अपना समझे
उसको जो बेगाना है
कैसे अपने राज़ बता दे
उससे जो अन्जाना है
अन्जाने रिश्तों को अपनाने में वक़्त तो लगता है
दूर हुए सब अपने देखो
जैसे सब बेगाने थे
दूर हुआ दिल से हर रिश्ता
जिसके हम दीवाने थे
हर बिगड़े काम बनाने में कुछ वक़्त तो लगता है।

105/ 184, प्रेम नगर, कानपुर (उ0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीदरलैंड के कवि राजमोहन की कविताएँ

माँ

माँ,
लाना तो
अपना पुराना दुःख
पूजा-उतरे फूलों के साथ
बाँधकर
सिरवा आयें
सागर की छाती पर।

देखें तो
वह भी
इतना दिन
सह पाता है क्या!

ममता की आँच में

तुम्हारी ममता की आँच से
चूल्हा अगियाता है।
तुम्हारे आँचल की हवा से
आँख लग जाती है।
तुम्हारी आँखों की चमक से
उजाला दमकता है।
तुम्हारे कंगन की धुन से
उषा जागती है।

सोच-विचार कर गौना हो गया
हो गये अटूट एक साथ से
देह का स्वर्ण
देह की आँच में पिघलता रहा
मैं चुपचाप हिलगा रहा तुमसे
झूले के बगल में यह सोच
कब फिर हम साथ झूलेंगे ?
और कब हवा हमें झुलायेगी ?

तुम्हारी हाथ की रेखा के सहारे
मेरी तकदीर बहती है।

बुढ़ापा

परिवार कफन बाँधकर
अगोरता है सिर्फ
उसे यह अनुमान नहीं है अभी
कि यह बूढ़ा
सिर्फ नज़र से निहारता है-
जवान पेड़ की
उमगी हरी फुनगी

साँस

तुम्हारे बारे में सोचते हैं जब-जब
एक-एक बात
सुनायी देती है
तुम्हारी।

सुबह ही चौंककर जागते थे जब-तब
साँस की आवाज़
अपनी धड़कनों में
सुनायी देती थी
तुम्हारी।

कहाँ गये वे दिन और वे रातें
जब आँखों से कहते थे
अपनी मन की बातें।
साँसों से तुम्हारी
चुपके से चुरा लेते थे तब
तुम्हारे मन की बात।

कहाँ वे दिन
कहाँ वे रात।

अनुवादिका : पुष्पिता अवस्थी
P.B. 1810,
1810 KB Alkmaar
The Netherlands

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

केशव शरण

:: एक ::

अजब क्या ग़म की पैदाइश न हो तो
गुनाहों की जो गुंजाइश न हो तो

बना देंगे जहाँ को अपने दिल-सा
ज़माने की अगर साजिश न हो तो

मुहब्बत आपको हमसे नहीं है
हमें भी आपकी ख़्वाहिश न हो तो

तमाशा ख़त्म हो जाये उसी दम
अगर एक और फ़रमाइश न हो तो

पिघल सकते नहीं दिल पत्थरों के
अगर इस अश्क़ में आतिश न हो तो

जिसे हमने निकाला पर्वतों से
नहर बेकार है बारिश न हो तो

:: दो ::

रखा उस यार की महफ़िल में क्या है
नहीं मालूम जिसके दिल में क्या है

किसी का दिल दुखेगा रो पड़ेगा
भला इसके सिवा खिल-खिल में क्या है

परिन्दा इक नया पिंजरे में आया
अब इस बीमार-से चोटिल में क्या है

नज़ारे, शाम, मौसम, दोस्त, दुनिया
निकल बाहर, हवा खा, बिल में क्या है

ठहरना ही नहीं है एक दिन जब
मिली मंज़िल भी तो मंज़िल में क्या है

:: तीन ::

ज़रा औक़ात करके देखते हैं
हम उससे बात करके देखते हैं

नतीज़ा क्या रहा है हसरतों का
हम इक दिन-रात करके देखते हैं

नरम या सख़्त किसका दिल है कितना
यहाँ आघात करके देखते हैं

ज़नाज़े से हैं लौटे ख़ुद के गोया
ये हम बारात करके देखते हैं

मुहब्बत में कभी तो शह हो उनकी
स्वयं को मात करके देखते हैं

जुदाई ने उसे बदला है कितना
उसे फिर साथ करके देखते हैं

तुम्हारा मंत्र अब हम भी पढ़ेंगे
हवा में हाथ करके देखते हैं

:: चार ::

राह वही दूनी लगती है
तुम बिन जो सूनी लगती है

इक प्रेमी का दिल जलता है
सबको जो धूनी लगती है

लाल अधर, करतल, नख, चूनर
मूरत वो ख़ूनी लगती है

प्यार नहीं तो संसार नहीं
ये बात जुनूनी लगती है।

एस 2/564 सिकरौल, वाराणसी-221002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

अर्जुन प्रसाद सिंह

:1:

कहने की आज़ादी है।
शब्दों की बर्बादी है।।

बाजारों में सिमट गई,
ये पूरी आबादी है।

खूब अंधेरा फैल गया,
घर-घर में अब खादी है।

जीवन जीने की ज़िद में,
सारा जगत जिहादी है।

झूठा है संसार तो फिर,
तू क्यों सच का आदी है।

कंगूरों से हल न हुआ,
यह मसला बुनियादी है।

मेरे अविचल निर्णय ने,
उनकी नींव हिला दी है।

:2:

पिता बना आकाश महान।
धरती का है पुत्र किसान।।

खेतों की प्रयोगशाला में,
यह साधे श्रम का विज्ञान।

चिड़िया चुगे या ढोर चरे,
भरा रहे फिर भी खलिहान।

रोम-रोम वात्सल्य भरा,
हर बूटा इसकी संतान।

खड़ा बिजूके-सा घर में,
लछमी जी से खींचा-तान।

बीज खा गई धरती तो,
बाजारों में पिटती शान।

भले चाँद पर चढ़ आए,
भूल न पाए हम 'गोदान'।

:3:

सब कुछ गड़बड़ झाला है।
फिर भी मुँह पर ताला है।

अंधकार छाया चहुँदिश,
कहता बहुत उजाला है।

बिकती, लुटती घुटती, मिटती,
अपने गाँव की बाला है।

उसकी बांछें खिली-खिली,
अपने शहर का लाला है।

खंडन करता फिरता था,
अब क्यों जपता माला है।

मनका-मनका विखरा है,
जाने कैसी माला है।

उपदेशी सौदाई यह
मन का कितना काला है।

कठपुतली-सा नाचे हम,
उपर वाला आला है।

जवाहर नवोदय विद्यालय, पाटन नीम का थाना
जिला-सीकर (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैफ़ी, कैफ़ियत और 'कैफ़ियात'

एहसान हसन

उर्दू की प्रगतिशील काव्य-धारा के चर्चित शायरों में कैफ़ी आज़मी की गणना होती है। कैफ़ी का जन्म उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ जनपद के मिजवाँ ग्राम में 15 अगस्त, सन् 1918 ई0 को, एक ज़मींदार परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सैय्यद फ़तेह हुसैन रिज़वी था। कैफ़ी का वास्तविक नाम सैय्यद अतहर हुसैन रिज़वी था, बाद में शायरी के सिलसिले में उन्होंने अपन उपनाम 'कैफ़ी' रख लिया और फिर इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। कैफ़ी के परिवार में सब बहुत पढ़े-लिखे और ऊँचे ओहदे वाले थे। घर में तालीम और तहज़ीब का माहौल था। अक्सर काव्य-गोष्ठियाँ हुआ करतीं। बचपन से ही कैफ़ी का रुझान शेर-ओ-शायरी की तरफ़ हो गया था और उन्होंने ग्यारह वर्ष की उम्र में अपनी पहली ग़ज़ल कही, जिसके दो शेर प्रस्तुत हैं :

इतना तो ज़िंदगी में किसी के ख़लल पड़े,
हँसने से हो सुकून न रोने से कल पड़े।

मुद्दत के बाद उसने जो की लुत्फ़ की निगाह,
जी खुश तो हो गया मगर आँसू निकल पड़े।

कैफ़ी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई और बाद में मौलवी की ग़रज से उन्हें लखनऊ के एक मदरसे 'सुल्तानुलमदारिस' में दाख़िल करा दिया गया। शीघ्र ही, यहाँ की दकियानूसी और पुरातनपंथी व्यवस्था के ख़िलाफ़ कैफ़ी ने आवाज़ उठाना शुरू कर दिया। अपने साथियों की मदद से मदरसे के प्रबंध-तंत्र के ख़िलाफ़ बाक़ायदा तौर पर आंदोलन छेड़ दिया। विरोधों और धरना-प्रदर्शन में कैफ़ी अपनी जोशीली व इन्कलाबी नज़्में सुनाया करते। इसी दौरान कैफ़ी अली अब्बास हुसैनी, सैय्यद एहतेशाम हुसैन और अली सरदार जाफ़री के संपर्क में आये। इन लोगों की सोहबत से कैफ़ी के विचारों को न सिर्फ़ प्रोत्साहन मिला, बल्कि प्रखरता और स्पष्टता भी प्राप्त हुई। यहीं से उस नींव का निर्माण हुआ, जिससे कैफ़ी की राजनीति, समाज और साहित्य की वैचारिक संरचना स्थापित हुई। मदरसे से कैफ़ी का संबंध टूट गया। इस बात को उर्दू की लेखिका 'आयशा सिद्दीक़ी' ने अपने एक लेख में कुछ यूँ लिखा है :

"कैफ़ी साहब को उनके बुजुर्गों ने एक दीनी दर्सगाह में इस ग़रज़ से दाख़िल किया था कि वहाँ ये फातेहा पढ़ना सीख जाएँगे। कैफ़ी साहब उस दर्सगाह में मज़हब पर फ़ातेहा पढ़के निकल आये।"

बाद में कैफ़ी ने लखनऊ और इलाहाबाद यूनीवर्सिटियों से प्राइवेट परीक्षाएँ देकर उर्दू, फ़ारसी और अरबी की कई डिग्रियाँ हासिल कीं।

अली सरदार जाफ़री, जो उस वक़्त 'स्टूडेन्ट फ़ेडरेशन ऑफ़ इंडिया' (एस. एफ़. आई.) में सक्रिय थे, कैफ़ी को कानपुर की मज़दूर-सभाओं और ट्रेडयूनियनों में ले गये, जहाँ पर कैफ़ी ने श्रमिक वर्ग की समस्याओं को क़रीब से देखा और हक़ व इन्साफ़ की लड़ाई में उनके साथ शामिल हो गये। यहीं पर कैफ़ी कम्युनिस्ट लिटरेचर से भी वाक़िफ हुए और फिर आगे बाक़ायदा तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ गये। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि कम्युनिस्ट विचारधारा पूँजीवाद एवं ज़मींदारी के बिल्कुल ख़िलाफ़ होती है और एक ज़मींदार परिवार का युवक कम्युनिस्ट होने में इस स्वीकारोक्ति के साथ कि "अब मुझे वह रास्ता मिल गया, जिस पर मैंने ज़िंदगी का इतना लंबा सफर तय किया" गर्व महसूस करता है।

धीरे-धीरे कैफ़ी की गतिविधियाँ बढ़ती गयीं और वे प्रगतिशील लेखक संघ से भी जुड़ गये। अली सरदार जाफ़री और सैयद एहतेशाम हुसैन वग़ैरह इस संघ के प्रमुख लोगों में थे। बढ़ती रुचि और काम करने की लगन कैफ़ी को बंबई (मुंबई) खींच ले गयी और वहाँ पर वे समान रूप से 'प्रगतिशील लेखक संघ' तथा कम्युनिस्ट पार्टी की गतिविधियों में सक्रिय हो गये। यह सन् 1943 ई0 का समय था। ऐसा माना जाता है कि तत्कालीन 'प्रगतिशील लेखक संघ' कम्युनिस्ट पार्टी का साहित्यिक प्रकोष्ठ था, जिसके अधिकांश सदस्य पार्टी मेंबर भी थे और 'प्रगतिशील लेखक संघ' की वैचारिकता, रचनात्मकता, अभिव्यक्ति-शैली आदि-आदि प्रखर कम्युनिस्ट विचारधारा पर आधारित होती थी। उस समय बंबई इन सब के केंद्र की हैसियत ले चुकी थी। कैफ़ी की नज़्में कम्युनिस्ट पार्टी के अख़बार 'कौमी जंग' में प्रकाशित हो रही थीं। उन दिनों में कैफ़ी की साहित्यिक सरगर्मी की तरफ़ इशारा करते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं :

"बंबई में कई बार साथियों ने 'मार्क्सवाद और साहित्य' पर बोलने के लिए आमंत्रित किया। अनेक बार मैं आगरा से बंबई गया। इस्मत चुगताई के घर पर बैठकें होती थीं। वहाँ ज़्यादातर उर्दू के लेखक आते थे। कैफ़ी आज़मी इनमें आगे बढ़कर हिस्सा ले रहे थे।"

वर्ष 1947 ई0 में हैदराबाद में 'प्रगतिशील लेखक संघ' का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मलेन आयोजित हुआ, जिसमें अली सरदार जाफ़री, मजरूह सुल्तानपुरी, साहिर लुधियानवी वग़ैरह के साथ कैफ़ी आज़मी भी शामिल हुए। इस सम्मलेन में एक मुशायरा भी हुआ और कैफ़ी ने अपनी नज़्म 'ताज' सुनायी, जो बहुत सराही गयी। ख़ासतौर से नज़्म की पंक्ति 'ये वो कश्कूल-ए-गदाई है जो भरता ही नहीं'' पर बहुत वाह-वाह हुई। दरअसल, यह नज़्म निज़ाम हैदराबाद का सांकेतिक रूप में विरोध थी और फिर तो कैफ़ी की हिम्मत व बेबाकी के चर्चे शुरू हो गये। इसी मुशायरे में एक मोहतरमा अपने भाई के साथ आयी हुई थीं। कैफ़ी से वे कुछ अधिक ही प्रभावित हुईं, जिसका अहसास कैफ़ी को भी हो गया। दोनों ने एक-दूसरे की भावनाओं को समझा और बात आगे बढ़ गयी। थोड़े ही दिनों बाद उन मोहतरमा की कैफ़ी से शादी हो गयी और वे 'शौकत कैफ़ी' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

शादी के बाद कैफ़ी के साथ शौकत भी उसी कमरे में रहने लगीं, जो कमरा कम्युनिस्ट पार्टी ने बंबई के अँधेरी कम्यून में कैफ़ी को रहने के लिए दे रखा था। वो दिन ही अजब थे, परेशानी और तंगदस्ती के, लेकिन साथ ही साथ जोश के जज़्बे और कर्मठता के भी। उन दिनों को याद करते हुए शौकत कैफ़ी लिखती हैं : ''दरअसल, मैं पार्टी मेंबर नहीं थी, इसलिए पार्टी मेरे खाने के तीस रुपये नहीं देती थी। कैफ़ी को कमाने पड़ते थे। चूँकि, कैफ़ी होलटाइमर थे, इसलिए पैसे कमाने के लिए ज़्यादा वक़्त नहीं दे सकते थे। उन्होंने उर्दू के एक डेली पेपर 'जमहूरियत' मे पाँच रुपया रोज़ पर एक तन्ज़िया-मज़ाहिया नज़्म लिखना शुरू किया। रोज़ उन्हें कोई न कोई नया मौजूअ सोचना पड़ता था। वे बेचारे रोज़ सुबह पाँच बजे उठकर किसी दरख़्त के नीचे बैठ जाते और लिखने लगते। उन्हें इस तरह लिखते देखकर मेरा दिल कट-सा जाता, लेकिन मैं उनकी कोई मदद नहीं कर सकती थी।''

कैफ़ी आज़मी और शौकत का पहला बच्चा एक बेटा था, जो अधिक दिनों तक जीवित न रहा। बीमारी की वजह से उसकी मौत हो गयी। दूसरे बच्चे के रूप में शबाना बिटिया थी। संयोग देखिए कि पहले बच्चे के जन्म के समय कैफ़ी बंबई से लगभग तीस मील दूर भिवंडी में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के ऐतिहासिक सम्मलेन के आयोजन में व्यस्त थे और शबाना की पैदाइश के वक़्त कैफ़ी भूमिगत चल रहे थे। इन विकट परिस्थितियों का शौकत ने बड़ी दिलेरी से सामना किया। इन तमामतर झंझावातों में कैफ़ी विचलित न हुए और निरंतर अपनी कर्मठता व सक्रियता बरकरार रखी; चाहे वह पार्टी के स्तर पर रही हो या फिर साहित्य-सृजन व 'प्रगतिशील लेखक संघ' के स्तर पर। कैफ़ी की मेहनत और उनके महत्त्व को समझते हुए उन्हें 'इप्टा' का अध्यक्ष और फिर 'अपना अदब' का संपादक बना दिया गया। इन दोनों ही भूमिकाओं के साथ कैफ़ी ने लगन व परिश्रम से पूर्णतया न्याय किया। बाद में, आर्थिक दुश्वारियों ने कैफ़ी को फ़िल्मों की तरफ़ मोड़ दिया, जहाँ गीतों के साथ-साथ पटकथा और संवाद-लेखन में भी उन्होंने अपना कमाल दिखाया। फ़िल्म 'गर्म हवा' के लिए कैफ़ी को राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला।

कैफ़ी की ज़िंदगी में एक अहम मोड़ उस वक़्त आया, जब 9 फरवरी, 1973 ई0 को उन पर फ़ालिज का ज़बरदस्त हमला हुआ और वह मौत के क़रीब पहुँच गये। लेकिन, अदम्य जिजीविषा से भरे कैफ़ी ने मौत को मात दी, हालाँकि इस संघर्ष में उनका एक हाथ और पैर लकवाग्रस्त हो गया। इसके बाबजूद कैफ़ी सक्रिय रहे और विभिन्न मुशायरों, गोष्ठियों, सम्मेलनों और पद-यात्राओं में अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराते रहे। सन् 75-76 के दौरान 'प्रगतिशील लेखक संघ' को पुनरुज्जीवित करने के सिलसिले में अली सरदार जाफ़री और मजरूह वग़ैरह के साथ देश के विभिन्न हिस्सों की यात्रा की। कैफ़ी ने अपनी शारीरिक मजबूरी को कभी अपनी कर्मठता और सक्रियता पर हावी न होने दिया। जीवन के आख़िरी हिस्से में कैफ़ी ने अपने गाँव 'मिजवाँ' की सुध ली और उसकी कायापलट कर दी। 'मिजवाँ' को तमामतर बुनियादी सुविधाओं, मसलन बिजली, पानी, सड़क, अस्पताल, स्कूल, डाकघर, टेलीफ़ोन आदि-आदि से सुसज्जित कर दिया। यह उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और अपनी मिट्टी से लगाव का अनूठा नमूना है। कैफ़ी अपने एक लेख 'और शायरी' में लिखते हैं : ''अपने बारे में यक़ीन के साथ सिर्फ़ इतना कह सकता हूँ कि मैं महकूम हिंदोस्तान में पैदा हुआ, आज़ाद हिंदोस्तान में बूढ़ा हुआ और सोशलिस्ट हिंदोस्तान में मरूँगा।''

उनकी यह ललक पूरी हुई या नहीं, क्या कहा जा सकता है! काम और कलाम का यह कर्मठ व्यक्तित्त्व 10 मई, सन् 2002 ई. को इस संसार से विदा हो गया।

'कैफ़ियात' कैफ़ी आज़मी का समग्र रूप में काव्य-संकलन है, जिसके अध्ययन से कैफ़ी की शायरी के विभिन्न पहलुओं को समझा जा सकता है। यहाँ संक्षेप में कुछ प्रमुख पहलुओं पर रोशनी डाली जा रही है।

कैफ़ी आज़मी की शायरी में विरोध का स्वर प्रमुखता से दिखायी पड़ता है। कैफ़ी ने मेहनतकश-मज़दूर वर्ग के समर्थन में, उनके हक़ की लड़ाई में, पूँजीपति-धनाढ्य वर्ग का विरोध किया। उनकी नज़्म 'धुआँ' की ये पंक्तियाँ देखें :

साथ उड़ती हुई ले के अँगड़ाइयाँ
घड़घड़ाती मशीनों की परछाइयाँ।
दामन-ए-तार पर जाबजा नक़्शगीर
ख़ून-ए-मज़दूर की आड़ी-तिरछी लकीर।

इसी तरह, कैफ़ी की नज़्म 'ताज महल' में भी बड़े संवेदनशील ढंग से विरोध का स्वर मुखर है :

दोस्त! मैं देख चुका ताजमहल..... वापस चल,
ख़ुद-ब-ख़ुद फिर गये नज़रों में अंदाज़-ए-सवाल,
वो जो रस्तों पे पड़े रहते हैं, लाशों की तरह,
ख़ुश्क होकर जो सिमट जाते हैं बेरस एसाब,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूप में खोपड़ियाँ बजती हैं ताशों की तरह।
दोस्त! मैं देख चुका ताजमहल... वापस चल

विरोध के समानांतर ही कैफ़ी के यहाँ जन-जागरण का नारा भी सुनायी पड़ता है। जनता की जागृति और उठ खड़े होकर लड़ने की ललकार का स्वर भी उनकी शायरी का प्रमुख विषय बना। कैफ़ी की नज़्म 'जगावा' की ये पंक्तियाँ देखें :

बेदाद के हाथों मे कड़कती है कमां देख,
मैदान में इन्सान के लाशं हैं तपां देख,
उठ रंग-ए-फ़लक, रंग-ए-ज़मीं, रंग-ए-जहाँ देख,
भारत के जवाँ ऐ मेरे भारत के जवाँ देख।

कैफ़ी की शायरी में स्त्री-विमर्श और नारी-जागरण के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। 'जीवन-संगिनी' शब्द की सार्थकता सिद्ध करती उनकी नज़्म 'औरत' इसका एक उत्कृष्ट नमूना है:

गोशा गोशा में सुलगती है चिता तेरे लिए,
फ़र्ज़ का भेस बदलती है कज़ा तेरे लिए,
क़हर है तेरी हर इक नर्म अदा तेरे लिए,
ज़हर ही ज़हर है दुनिया की हवा तेरे लिए,
रुत बदल डाल अगर फूलना-फलना है तुझे,
उठ मेरी जान! मेरे साथ ही चलना है तुझे।

कैफ़ी के यहाँ हमें प्रगतिशील दृष्टिकोण से प्रेरित सौंदर्यबोध प्रमुखता से मिलता है। मेहनत और कर्मठता से युक्त सौंदर्य उनके यहाँ आदर्श रूप में स्वीकृत है। कैफ़ी की नज़्म 'नया हुस्न' की ये पंक्तियाँ देखें :

ज़िंदगी चलती रही काँटो पे, अंगारों पर
जब मिली इतनी हंसीं, इतनी सुबुक चाल तुझे,
अब न झपकेगी पलक, अब न हटेंगी नज़रें,
हुस्न का मेरे लिए आख़िरी मेयार है तू।

इन सब बातों के अलावा कैफ़ी की शायरी देश-प्रेम और स्वाधीनता के भावों को भी प्रभावी रूप में प्रस्तुत करती है। 'कैफ़ियात' की अधिकांश नज़्में किसी न किसी रूप में मुल्क के प्रति कैफ़ी की मुहब्बत, फ़िक्रमंदी और उनके प्रगतिशील विचारों का प्रतिनिधित्व करती हैं। नज़्म 'माहौल' की ये पंक्तियाँ देखें:

मेरे मुतरब न दे लिल्लाह मुझको दावत-ए-नग़मा,
कहीं साज़-ए-गुलामी पर ग़ज़ल भी गायी जाती है?

नज़्म 'नौजवान' की ये पंक्तियाँ :

हम बसाएँगे सजाएँगे सँवारेंगे तुझे,
हर मिटे नक़्श को चमका के उभारेंगे तुझे,
अपनी शह रग का लहू दे के निखारेंगे तुझे,
दार पर चढ़के फिर इक बार पुकारेंगे तुझे,
राह अग़यार की देखें ये भले तौर नहीं,
हम भगत सिंह के साथी हैं कोई और नहीं।

कैफ़ी ने अपने समय के राजनीतिक मुद्दों को अपनी शायरी में प्रमुखता से प्रस्तुत किया; चाहे वह रूस को लेकर हो या भारत को या फिर संपूर्ण अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य को लेकर। कम्यूनिस्ट इकाई के टूटने पर 'आवारा सजदे' जैसी नज़्म कही। इसी प्रकार, 'लेनिन', 'रूसी अवाम और जंग', 'रूसी औरत का नारा', 'मक़्तल-ए-बेरूत', 'बंग्ला देश', 'नज़र-ए-कराची', 'आख़िरी जंग', 'तेलंगाना' जैसी नज़्में भी राजनीतिक विषयों पर आधारित हैं। कैफ़ी ने देश के नाज़ुक सियासी हालात को देखते हुए बाक़ायदा तौर पर एक मसनवी 'ख़ाना जंगी' की रचना की। इसी तरह, उनकी नज़्म 'इबलीस की मजलिस-ए-शूरा, दूसरा इजलास' तत्कालीन अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य की पड़ताल करती है।

कैफ़ी के यहाँ सामाजिक कुरीतियों पर भी नज़्में मिलती हैं, जिसकी बेहतरीन मिसाल के तौर पर नज़्म 'बेवा की ख़ुदकुशी' का नाम लिया जा सकता है। कैफ़ी ने अपनी शायरी में सांप्रदायिकता का बहुत ही संवेदनशील तरीके से विरोध किया। उनकी नज़्में 'सोमनाथ', 'साँप', 'दूसरा बनवास' वग़ैरह जिसकी सशक्त अभिव्यक्ति हैं। इन सब सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ कैफ़ी की शायरी में प्रेम की निजता और उसकी घनीभूत पीड़ा भी है। यहाँ भी क़ुर्बानी नज़र आती है। समर्पण है, यह समर्पण अपने आदर्श प्रेम के प्रति है। कहीं कोई भ्रम की स्थिति नहीं है, भटकाव नहीं है; अपितु एक दृढ़, किंतु शालीन स्थायित्व है। उनकी ग़ज़लें सशक्त अभिव्यक्ति हैं :

जो वो मेरे न रहे मैं भी क़ब किसी का रहा,
बिछड़ के उनसे सलीका न ज़िंदगी का रहा।

और यह शेर :

पाया भी उनको खो भी दिया चुप भी हो रहे,
इक मुख़्तसर सी रात में सदियाँ गुज़र गयीं।

कैफ़ी आज़मी ज़िंदगी की आग में तपकर कुंदन की मानिंद हो गये थे। यही वजह थी कि अत्यंत विवशताओं में भी वे अपने काम में लगे रहे। उन्होंने ज़िंदगी को बहुत क़रीब से देखा था और एक ऐसा इन्सान, जो जीवन की कटु वास्तविकताओं से रू-ब-रू होता रहा है, उसके अंदर एक स्थायित्व आ जाता है। यह स्थायित्व हिम्मत और दिलेरी का होता है, अर्थात् न तो ख़ुशी उसे सरमस्त कर देती है और न ही ग़म उसे विचलित कर पाता है। कैफ़ी ऐसे ही थे। परिस्थितियाँ उनको अधिक प्रभावित नहीं कर पाती थीं। उनका जो ध्येय था उसकी प्राप्ति हेतु वह निरंतर प्रयत्नशील रहते। उनकी शायरी में भी अप्रत्यक्ष रूप से उनका यह स्वभाव मौजूद है। कृश्न चंदर ने इस सिलसिले में क्या ख़ूब कहा है :

"कैफ़ी की शायरी, दरअसल, पत्थर की शायरी है, यानी जब शायर अपना सीना पत्थर कर लेता है और जुल्म की दीवार से टकराकर शायरी का शरर पैदा करता है, लेकिन कैफ़ी की शायरी सिर्फ़ पत्थर की शायरी ही नहीं है, वह एक नरम दिल इन्सान की भी शायरी है। कैफ़ी ने एक गुदाज़ दिल की शायरी भी की है और सिर्फ़ वही शख़्स ऐसी शायरी कर सकता है, जिसने पत्थरों से सर टकराया हो और सारे जहाँ के ग़म अपने सीने में समेट लिये हों।"

उर्दू विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-211002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर : परिस्थितियों की उपज

के. श्रीलता विष्णु

विद्वानों का मत है कि वास्तविक हिन्दी साहित्य का आरंभ निर्गुणिया संत-भक्तों के समय से माना जाना चाहिए। इन संत-भक्तों की श्रेणी में महात्मा कबीरदास का स्थान सर्वोपरि है। कबीर जन्मजात प्रतिभा से संपन्न थे और यह प्रतिभा अत्यंत प्रखर भी थी। विश्व के प्राचीनतम तीर्थ नगर काशी में वे रहते थे। अपने चारों तरफ़ वे विविध रंग-ढंग के धर्म-साधकों और भिक्षुओं को देख-देखकर बड़े हुए थे। उन्होंने गंगा के स्नान-घाटों पर बैठे पंडे-पुजारियों को देखा था; सड़कों के पास पीपल, वट और अन्य वृक्षों के तले बैठकर श्रद्धालु तीर्थयात्रियों को प्रवचन देने वाले मूँड-मुँडाए संन्यासियों को देखा था और भस्म-लेप करके भेष बनाकर अद्‌भुत चमत्कार दिखाने वाले जटिल कपालधारी सिद्धों को देखा था। उनमें दंडधारी भी थे, त्रिशूलधारी भी थे, गेरुआ पहनने वाले थे, दिगंबर थे, गृहत्यागी अवधू थे, सिद्ध वैरागी थे, गोरखपंथी अवधूत थे, शैव योगी थे तथा सिद्ध-परंपरा के कवि और गायक थे, इधर-उधर मद्य, माँस आदि पंचमकार का सेवन करने वाले साक्त (शाक्त) थे और रामायण के पारायण में लगे पाठक (कवि) एवं भक्त थे। एक ओर मौनव्रती साधक थे और दूसरी ओर, गाँव-गाँव घूमते रहने वाले भिखारी योगी थे। कबीर प्रातः स्नान करके मंदिरों की परिक्रमा करने वाले और नाम जप के बहाने उँगलियों पर माला फेरते चलने वाले, पर मस्जिद से घृणा करने वाले हिन्दू भक्तों को एक तरफ़ देख रहे थे और दूसरी तरफ़ इनके ठीक विपरीत मस्जिदों में नमाज़ पढ़ने वाले किंतु मंदिरों की निंदा करने वाले मुसलमानों को देख रहे थे। पहले प्रकार के लोग दूसरे प्रकार के लोगों को म्लेच्छ मानते थे और दूसरे प्रकार के लोग पहले प्रकार के लोगों को काफ़िर कहते थे। कबीर ने अपने सामने मस्जिदों में बाँग देने वाले और धार्मिक आचरण के उपदेश देने वाले किंतु गाय और बकरी को निर्ममता से काटने वाले मुल्लों और क़ाज़ियों को अकड़कर चलते देखा था और निरीह प्रेमी भक्तों और रहस्यवादी सूफ़ी फ़कीरों को देखा था। जहाँ कहीं भी कबीर पर्यटन करते रहे, वहाँ सब-कहीं प्रायः यही स्थिति थी।

कबीर के लिए यह आँखों-देखा वातावरण था। इस प्रत्यक्ष से ज़्यादा सत्य के लिए वेद-पुराण या अन्य किताबों का कोई साक्ष्य या प्रमाण उनको आवश्यक नहीं लगा था। उनके सामने चलते-फिरते इन लोगों में अधिकांश बाहर-बाहर धार्मिकता का मुखौटा लगाये हुए थे, किंतु अंदर-अंदर ढोंगी और पापिष्ठ थे। वे भोली श्रद्धालु जनता को भ्रमित करके उनको चूसने की ताक में रहते थे। इन पाखंडियों के बीच यत्र-तत्र सच्चे आचार्य और गुरुओं को भी कबीर ने अवश्य देखा होगा, उनकी शिष्य-मंडली में बैठकर यदा-कदा उनके उपदेशों को उन्होंने सुना भी होगा।

इन गुरुओं में सिद्ध अवधूत या योगी रहे होंगे, हिन्दू संन्यासी रहे होंगे और सूफ़ी फक़ीर भी रहे होंगे। कबीर ने जयदेव और नामदेव के बारे में सुना होगा, गुरु गोरखनाथ के बारे में भी सुना होगा और उनके सिद्धांतों के विषय में उपदेश सुने होंगे। संभव है, वे स्वामी रामानंद से भी मिले हों और उनके मुँह से रामनाम की महिमा के साथ अहैतुक भाव-भक्ति का महत्त्व भी सुना हो। झूँसी वाले शेख़ तकी से कभी कबीर की भेंट हुई हो, यह भी असंभव नहीं है। हो सकता है, इनमें से किसी को या किन्हीं को उन्होंने अपना सद्‌गुरू मानकर सच्चा आदर भी दिया हो।

अपने इन सद्‌गुरुओं के जीवन के निरीक्षण से और उनके उपदेशों के श्रवण से प्राप्त धार्मिक आदर्शों पर कबीर ने स्वयं मनन-चिंतन किया और साधना की। उनकी यह साधना सच्ची थी। अतः तज्जन्य उनकी धर्मानुभूति भी काफ़ी गहरी और सच्ची थी। इसी अनुभूति से प्राप्त अंतर्ज्ञान के प्रकांश में कबीर ने अपने परिचित प्रत्येक वर्ग के धर्म-साधकों को बहुत निकट से देखा, उसी अंतरानुभूति की कसौटी पर प्रत्येक वर्ग को कसकर परखा और खरे-खोटे का निर्धारण किया। अवधूत योगी या वैष्णव भक्त ऐसे एक दो वर्गों के कुछ साधक की कबीर की दृष्टि में सच्चे धार्मिक दिखायी दिये थे। अन्य सब मिथ्याचारी, झूठे या असत्य के प्रचारक दिखायी दिये थे। कबीर ने उनकी निर्मम निंदा की। यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिए, जैसाकि ऊपर सूचित किया गया है, कबीर ने विविध धर्मों के अपेक्षाकृत अभिज्ञ, पेट पालने के लिए बाह्य दिखावा करते चलने वाले लोगों को ही अधिकतर अपने परिवेश में देखा था। उनको ही उन वर्गों और धर्मों के प्रतिनिधि मानकर कबीर ने उनकी भर्त्सना या तिरस्कार किया था। उन्होंने हिंसालु और धर्म के बाह्याचारों पर ज़ोर देने वाले या आंतरिकता को ज़रा भी महत्त्व न देने वाले मुल्लों और क़ाज़ियों को ही इस्लाम धर्म के नेता के रूप में देखा था और वैसे ही काशी के दशाश्वमेघ जैसे स्नान-घाटों पर सच्चे ब्राह्मणत्व को किनारे-किनारे ही छोड़कर धर्म-भीरु लोगों को फँसाकर उदरपूरण के निमित बैठे निम्न स्तर के जीवों को ही कबीर ने ब्राह्मण नाम से जाना था। उनके धरातल के ऊपर रहने वाले सच्चे मुस्लिम विद्वानों या ब्राह्मण पंडितों से कबीर बहुत कम मिल पाए होंगे। फलतः, अपने आँखों-देखे उपर्युक्त पाखंडियों को ही कबीर उन वर्गों का प्रतिनिधि मान बैठे, तो आश्चर्य नहीं। यही कारण है कि कबीर ब्राह्मणों या मुल्लों आदि का उपहास या खंडन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते समय यह सोचते दिखायी नहीं देते कि "अपने प्रतिपक्षियों के पास भी कहीं कुछ युक्तियाँ या सिद्धांत हो सकते हैं।"

इस प्रसंग में श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन उल्लेखनीय है कि "पौराणिक हिन्दू मत को दूर पर बैठे हुए दर्शक की भाँति ही उन्होंने देखा था। इस बात की उन्होंने कोई परवाह ही नहीं की कि उसके भीतर भी कोई आध्यात्मिक तत्त्व है या नहीं।"

वास्तव में, कबीर के युग की विविध परिस्थितियों के विश्लेषण और सूक्ष्म अनुशीलन के बिना कबीर-विषयक बहुत सी बातों का रहस्य नहीं खुलता। कबीर के विचारों में लक्षित होने वाले परस्पर विरोधी तत्त्वों का रहस्य तभी स्पष्ट होगा। भक्तियोग के माध्यम से कबीर कृत उन तत्त्वों के अविरोधी समन्वय का स्वरूप भी दूसरे प्रकार से स्पष्ट नहीं होता। परिस्थितियों को उचित महत्त्व न देने की स्थिति में नाना किंवदंतियाँ, अन्य साक्ष्यों के अभाव में सत्यों के बदले प्रतिष्ठित नहीं की जा सकतीं। फिर भी, कबीरदास के विषय में ऐसे कई प्रवादों को सत्य अथवा अर्धसत्य के रूप में उपस्थित किया गया है और उनके आधार पर अनुमानमूलक निष्कार्षों को निकाला गया है। फलतः, ऐसे कई निष्कर्षों के बीच संगति बैठाना बड़ा कठिन हो गया है। एक अन्य दुष्परिणाम यह हुआ है कि कई जनश्रुतियों पर सत्य का रंग चढ़ा दिया गया है और इस कारण कुछ महत्त्वपूर्ण प्रसंग भी एक प्रकार की दैविकता या अतिमानवीयता के धूमिल परिवेश में आ गये हैं, जो कबीर के यथार्थ मूल्यांकन के लिए बाधक हो गये हैं। इससे कहीं-कहीं ऐसा विवरण भी चल निकला है कि जो इस महात्मा के लिए अपमानजनक भी कहा जा सकता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट की जा सकती है। कबीर के जन्म के विषय में यह जनश्रुति है कि वे एक विधवा ब्राह्मणी को रामानंद जी द्वारा 'भूल से ' पुत्रवती होने के आशीर्वाद दिये जाने से पैदा हुए थे और पैदा होते ही लोकलाज से माता द्वारा वे लहरतारा तालाब के पास छोड़ दिये गये थे, जहाँ से नीरू दंपतियों को शिशु रूप में वे प्राप्त हुए थे। इस किंवदंती का विवरण कबीर पर लिखे प्रायः सारे ग्रंथों में दिया गया है। किसी-किसी ने कबीर के "लहरतारा तालाब के विकसे एक सुंदर कमल पर आकाश-मंडल से उतरने" के कबीर-पंथियों में प्रचलित विश्वास को भी लिख करके पहले वाली कथा को अधिक युक्तिसंगत और प्रामाणिक कहा है। इन विद्वानों को आधार मानकर सारी पाठ्यपुस्तकों मे कवि-परिचय का आरंभ अनिवार्य रूप से इस कथा के विवरण से होता है। छात्रगण इस सरस कथा मात्र को स्मरण में रखता है और बाक़ी सब भूल जाता है।

कबीर के व्यक्तित्त्व की गरिमा दर्शाने के लिए अथवा उन पर हिन्दू धर्म के प्रभाव को समर्थित करने के लिए उनका जन्म से ब्राह्मण होना आवश्यक समझकर यह कथा किसी ने बनायी थी। इसकी कल्पना करने वाले को यह भी याद नहीं रहा कि एक हिन्दू विधवा को प्रथम दर्शन से ही पहचान न सकने वाला स्वामी कैसा त्रिकालदर्शी है? अथवा दिव्य शिशु के जन्म से उसकी माता को लोकलाज की भावना कहाँ हो सकती थी? वस्तुतः, यह कथा रामानंद जैसे महापुरुष और कबीर जैसे धर्मगुरु दोनों के लिए अपमानजनक है। ऐसा होने पर भी विद्वान लोग इस कथा को छोड़ना नहीं चाहते। "जो हंसा मोती चुगै कांकर क्यों पतियाय" मालूम नहीं होता।

स्वामी रामानंद और कबीर के गुरु-शिष्य संबंध की बात भी कुछ ऐसी ही है। इन महापुरुषों के जन्म के लगभग दो सौ वर्ष बाद किंवदंतियों के आधार पर रची गयी 'भक्तमाल' की एक-दो उक्तियों को और उनको आधार बनाकर लिखित कतिपय अन्य रचनाओं की पंक्तियों को प्रमाण रूप से स्वीकार करते हुए उपर्युक्त संबंध की कल्पना की गयी है। रामानंद और कबीर के विषय में प्राप्त साक्ष्यों के प्रकाश में यही बताया जा सकता है कि दोनों की विचारधाराओं और भक्ति-पद्धतियों के बीच गहरा अंतर है। दूसरे भी कई तथ्य ऐसे हैं, जिनसे निष्कर्ष रूप से यह बताया जा सकता है कि इन महात्माओं के बीच गुरु-शिष्य संबंध नहीं रहा था। फिर भी, हमारे अधिकांश विद्वान पूर्वोक्त ग्रंथों के प्रभाव में आकर इस गुरु-शिष्यत्व की कल्पना को सत्य रूप में प्रतिष्ठित करना ही चाहते हैं। लेकिन, आश्चर्य इस बात का है कि ऐसे विद्वान ही अन्यत्र यह भी लिखते हैं कि कबीर का हिन्दू धर्म-विषयक ज्ञान दूर बैठे दर्शक की स्थिति से बढ़कर नहीं था। ये विद्वान इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दे पाते कि रामानन्द जैसे वैष्णवाचार्य का शिष्य हिन्दू मत के आध्यात्मिक तत्त्वों से क्यों परिचित न हो सका। वास्तव में, कबीर की वैष्णव धारणाएँ किसी गुरु से प्राप्त नहीं थीं, प्रत्युत तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों से उपार्जित थीं।

वैसे ही, सिकंदर लोदी और कबीर के समागम से संबद्ध किंवदंतियों के आधार पर कबीर के जन्मकाल के दो तीन शताब्दियों बाद रची पुस्तकों के अत्यंत संदिग्ध साक्ष्यों को प्रश्रय देने से कबीर के काल-निर्णय में काफ़ी दिक़्क़त आ गयी है। इतना ही नहीं, कबीर को लोदियों के समकालीन मानने के कारण ही डॉ. रामकुमार वर्मा जैसे विद्वानों को संतों के निराकर ब्रह्म के विश्वास के लिए भी कारण ढूँढना पड़ा है। वर्मा के अनुसार, इसके पीछे पठानों के आक्रोश से बचने की एक योजना थी। वे लिखते हैं कि संत संप्रदाय का आविर्भाव दिल्ली के लोदी वंश के राज्य काल में हुआ। लोदी वंश के शासक विशेष रूप से असहिष्णु थे तथा मंदिर और मूर्तियों को तोड़ने में उनकी राजनीति सक्रिय थी। पठानों के आक्रोश से सुरक्षित रखने के लिए ही संत संप्रदाय ने अपने धार्मिक रूप को स्थूल होने से बचाया। अपने आराध्य को कवलाकांत, सारंगपानी, रघुनाथ, गोपाल आदि नामों से पुकारते हुए भी संत कबीर ने उनके अवतारों का तथा उनकी मूर्तियों का घोर विरोध किया। लोदियों की आँख बचाने के लिए सगुण के नामों को लेते हुए निर्गुण की भक्ति और अवतारों और उनकी मूर्तियों के घोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोध की उक्ति से वर्मा जी क्या बताना चाहते हैं, मालूम नहीं होता।

वस्तुतः, कबीर की वाणियों में प्रकट होने वाले उनके साहसी, निर्भीक और संवेदनशील कवि-व्यक्तित्त्व का तद्युगीन राजनैतिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में विश्लेषण करने के बजाय प्राचीन कहे जाने वाले कतिपय परस्पर-विरोधी दोहों के पीछे पड़े रहने से कबीर के जीवन-काल के विषय में भी अनेकानेक मत प्रस्तुत किये गये हैं।

हिन्दी के कबीर-विषयक प्रायः सारे ग्रंथों में कबीर की राजनैतिक परिस्थितियों का जो संक्षित वर्णन प्राप्त होता है, वह सब इब्नबतूता, बर्नी जैसे इतिहासकारों के आधार पर है। किंतु इन इतिहासकारों के दृष्टिगत पक्षपात से अवगत होने से और साथ-साथ नये साक्ष्यों की उपलब्धि से नवीन इतिहासकार तुग़लक काल से संबंधित नये तथ्यों को प्रकाश में लाये हैं। इन तथ्यों के आधार पर कबीरकालीन राजनैतिक स्थितियों पर पुनर्विचार करना है। कबीर के आविर्भाव के लिए तुग़लक राजत्वकाल सबसे उचित रहा था। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि कबीर का जन्म सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में नहीं हुआ था। वास्तव में, ऐसी कल्पना ही असंगत है, क्योंकि किसी भी महान कवि का आविर्भाव उसकी युगीन परिस्थितियों की अनुकूलता में ही संभव होता है।

कबीर मूलतः धर्माचार्य और भक्ति-साधक थे, अतः उन्होंने धर्म-विकास के प्रतिबंधक तत्त्वों का तीव्र विरोध किया था। इन तत्त्वों में समाज में रूढ़मूल भेद-भावनाएँ कबीर को सबसे अधिक खटकी थीं। वह भेद-भावना मुख्यतः दो प्रकार की थी-एक जातिगत और दूसरी धर्मगत। कबीर दोनों के विरुद्ध जन्म भर जूझते रहे। इस बात में कबीर ने जैसी निर्भीकता, आत्मविश्वास और एकोन्मुखता का परिचय दिया है, वह भारत के इतिहास में अपूर्व और अनुपम है। वस्तुतः, कबीर की क्रांतिकारिता का यथार्थ पहलू यही है। उनके हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यविधान के प्रयत्न के मूल में भी भेद-खंडन की यह प्रवृत्ति सक्रिय रही थी।

व्यक्ति-जीवन के विविध मानव-मूल्यों के प्रक्षेपण के लिए कबीरकृत चेष्टा को भी उपर्युक्त धर्म-साधना के अंग रूप में देख लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त, लोगों में राष्ट्रीयता का प्रचार करना, सती-प्रथा आदि सामाजिक दुष्प्रथाओं का उच्चाटन करना—जैसी सुधारात्मक बातें कबीर के साधना-क्षेत्र के बाहर थीं। अतः इन बातों में वे अपने युग की धारणाओं के अनुकूल ही चले थे। वास्तव में, समाज-सुधार की बातें आधुनिक युग की ही उपज हैं। उनको कबीर पर आरोपित करने की चेष्टा उचित नहीं कही जा सकती ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रसिद्ध फ्रांसीसी समालोचक टेन का मत उद्धृत करते हुए बताया है कि "किसी भी व्यक्ति का निर्माण तीन वैयक्तिक उपादानों से होता है— उसकी वंश-परंपरा, उसकी पारिपार्श्विक स्थिति और उसके युग की विचाराधारा और विश्वास।" सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर मालूम होता है कि द्वितीय उपादान में तृतीय का भी अंतर्भाव होता है, क्योंकि युग की विचाराधारा और विश्वास पारिपार्श्विक स्थितियों द्वारा ही व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। महात्मा कबीरदास के विषय में कहना पड़ता है कि उपर्युक्त उपादानों में प्रथम अर्थात् वंश-परंपरा का महत्त्व बहुत कम है, क्योंकि कबीर के वंश की 'ना हिन्दू ना मुसलमान' वाली स्थिति थी। फलतः, इन दोनों प्रबल धर्मों का कबीर पर जन्मजात प्रभाव नगण्य ही हो सकता था। विद्वानों का अनुमान है कि कबीर की जाति या तो कोई सद्य धर्मांतरित मुसलमान जाति थी या धर्म-परिवर्तन की राह में स्थित कोई हिन्दू जाति थी। यह जाति अत्यंत निम्नस्तर की थी और इसलिए उसमें जातिगत असंतोष हो सकता था। इस असंतोष की तीव्र अनुभूति कबीर में लक्षित भी की जा सकती है। ब्राह्मण जैसी उच्च जातियों के प्रति कबीर का आक्रामक रवैया उपर्युक्त असंतोष का सूचक भी कहा जा सकता है। परंतु, कबीर की जाति को आश्रम-भ्रष्ट योगी अथवा बौद्ध-परंपरा से संबंध होने की कल्पना करके कबीर की योगसाधना विषयक जानकारी के मूल में कुलगुरु-परंपराओं का प्रभाव मानना न तो संगत है और न अपेक्षित ही।

वस्तुतः, कबीर के विचारों में अथवा व्यक्तित्त्व में लक्षित अधिकांश विशेषताओं के पीछे युगीन परिस्थितियों से प्राप्त विश्वास और विचाराधारा क्रियाशील रहे हैं। अतः कबीर के विषय में इन परिस्थितिजन्य प्रभावों का विश्लेषण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वे पूर्णतः परिस्थितियों की ही उपज थे। अपनी परिस्थितियों से ही उन्होंने तथ्यों और विचारों को ग्रहण किया था और अपने गृहीत उन तथ्यों के ही आधार पर अपने समय के लोकजीवन का मूल्यांकन करते हुए एक जागरूक और चिंतनशील कवि और धर्मोपदेशक के रूप में उन्होंने अपनी प्रतिक्रियाओं और धारणाओं को उन्मुक्त भाव से अभिव्यक्त भी किया था।

मलयालम के समालोचक स्व. कुट्टिकृष्णसागर ने एक स्थल पर लिखा है कि उदात्त काव्य के अध्ययन और आस्वादन के लिए प्रसिद्ध तीन तलों (शब्दतल, अर्थ तल एवं भाव तल) के अतिरिक्त एक चौथा संस्कृति-तल भी होता है। किसी भी उत्तम रचना का पूरा महत्त्व संस्कृति-तल तक उतर कर ही प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुतः, इस महत्त्व के कारण ही कोई कवि अपने युग के साथ भविष्य के लिए भी नवीन मूल्य-बोध का प्रतिष्ठापक बन जाता है। महात्मा कबीर का काव्य निस्संदेह ऐसा ही अमर काव्य है, जिसका मूल्यांकन संस्कृति-तल में उतर कर करना अपेक्षित है। उसके लिए कबीर की युगीन प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में उनके काव्य के सूक्ष्म अनुशीलन के सिवाय दूसरा मार्ग नहीं है।

रीडर, हिन्दी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय,
प्रादेशिक केंद्र, तिरुवनन्तपुरम-35, केरल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

यादवेन्द्र शर्मा

फिर पहाड़ पर

एक बार फिर आना चाहता हूँ मैं पहाड़ पर
पर्यटक की तरह नहीं
एक मासूम बच्चे की तरह उत्सुक और आह्लादित
होना चाहता हूँ पहाड़ के रू-ब-रू
एक बार फिर देखना चाहता हूँ
वे चीड़ के शांत वन
महसूस करना चाहता हूँ फेंफड़ों में ठंडक
और वह भूख
जो स्कूल से लौटते हुए
धूल-भरे रास्ते पर लगती थी...
नीली पहाड़ी गोलाइयों से घिरा
क्या सोचा करता था उन दिनों
मैं फिर जानना चाहता हूँ।

मैं किताब खोल
उड़ जाना चाहता हूँ
फिर किसी लोक-कथा के भीतर
पहुँचना चाहता हूँ उस राजकुमार के पास
जिसने सहे अनेक कष्ट
पर अडिग रहा
और अंत में सफल हुआ...
मैं उन लड़कियों से मंदिर में
फिर मिलना चाहता हूँ
जिन्होंने मेरे किशोरमन में काम-भावना
जगा दी थी...
वे स्त्रियाँ जिन्हें बदचलन कहा गया
मैं उनका किल्टा उठाने में
मदद करना चाहता हूँ
मैं उनके छिल गये हाथ से
पीना चाहता हूँ एक लोटा ठंडा जल
और उनकी सुंदर हँसी
मन में छिपा लेना चाहता हूँ...

मैं लाना चाहता हूँ पहाड़ से
घास की खुशबू धूल, धूप
और आहटें...
इनसे मैं अपना एकांत सजा देना चाहता हूँ

मैं आना चाहता हूँ पहाड़ पर
देवदारों के बीच गुनगुनाना चाहता हूँ
और कुछ देर अपनी नज़रों में
खुद पहाड़ हो जाना चाहता हूँ।

सेब

ओ लड़की
मुझे याद आते रहेंगे ये सेब
दरअसल, यह तुम्हारा प्यार ही तो है
जो ढल गया
इन ख़ूबसूरत सेबों में।

अब जब कभी आएगी
कहीं पकते सेबों की खुशबू
आएँगे ही याद
मेज़ पर रखे ये सुंदर सेब
और इनकी पृष्ठभूमि में प्रेममय
लहकता तुम्हारा चेहरा।

यह आज का दिन
हमेशा याद रहेगा।

मेरा देवता

एक छोटी पहाड़ी पर
जहाँ है वृक्षों का झुरमुट
वहीं एक छोटे मंदिर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता मेरा देवता

बाहर हवा आँवले गिराती रहती है
पंछी टहनियों पर फुदकते
पशु धूप में चरते रहते हैं
नालू से बह जाता है
हज़ारों लीटर पानी
मेरा देवता बैठा रहता चुपचाप
निराकार ईश्वर की तरह

उसके आँगन में मेले नहीं लगते
न जयकारा बोलने आते
गाड़ियों पर श्रद्धालु
न बहुत चढ़ावा
दरअसल, मेरा देवता बहुत छोटा है
इसे सिर झुकाते मामूली लोग
पता नहीं कब किसी दुखी जन ने
इसे यहाँ स्थापित कर डाला
तब से सुनता आ रहा यह
मनुष्य के दुखों का अनंत कोलाहल

पत्थर का है मेरा देवता
लेकिन दिल नहीं इसका पत्थर

भोले लोग

भोला होता है बचपन
पर कुछ लोगों की जवानी भी
भोली होती है
और कई बार तो बुढ़ापा भी

सांसारिक उपलब्धियों जैसा
कुछ नहीं होता इनके पास
हरियाली बिखेरते वृक्षों की तरह
होते हैं ये लोग
इन्हें कड़ी धूप करती तो है विचलित
पर ये इसे चुपचाप सह जाते हैं
कितनी ही खरोंचे ज़माने भर की
दर्ज होती हैं इनके भीतर
पर ये किसी को नहीं दिखा पाते
राशन या बिल की लाइन में लगे हुए
ये अपनी बारी का इंतज़ार करते हैं
और चुप हुए रहते हैं
इनकी हँसी उड़ाते हैं चुस्त लोग
जो इस या उस पार्टी की टोपियाँ पहने रहते हैं

जिनके लिए यह संसार
लूट-खसोट का शानदार उत्सव है
देखते हैं उन्हें
हाय-तौबा नहीं मचाते
बस गऊ बने रह जाते हैं भोले लोग
ईश्वर को याद कर लेते हैं कभी-कभी
चले जाते हैं संसार छोड़कर
पर शराफ़त नहीं छोड़ते

म0न0 117/6, लोअर बाड़ी, सुंदर नगर, हि0प्र0-174401

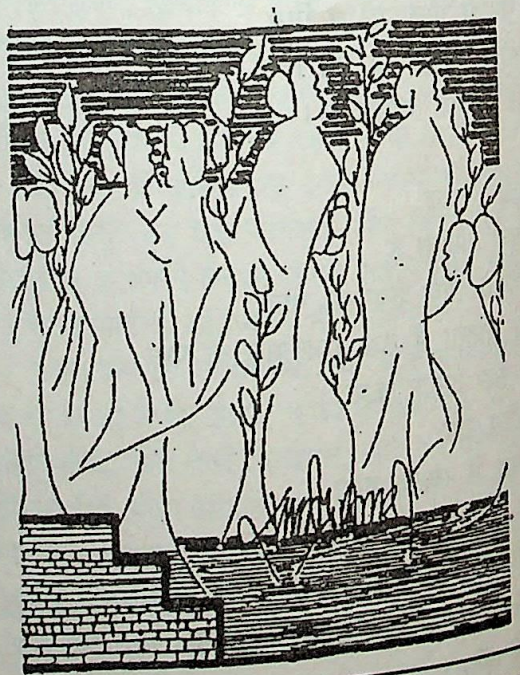

- जिन सदस्यों / संस्थाओं की सदस्यता अवधि समाप्त हो गयी हो वे तुरंत नवीनीकरण हेतु सदस्यता राशि भेजें।
- केवल ड्राफ्ट, मनीऑर्डर तथा लोकल चैक ही स्वीकार किये जायेंगे।
- चैक तथा ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से हों।

संपादक–वर्तमान साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारानंद वियोगी की मैथिली कविताएँ

सुनो पद्म संभव

ख़ूब गहराई से जोड़ना भैया मकान की नींव
एक-एक ईंट ख़ूब जतन से जोड़ना
मकान जो यह बनेगा मजबूत
तुम्हारी भी मजबूती इसी से नापी जाएगी।

धुएँ की जो होती है उदास लकीर
वह भी रच सकती है इतिहास अजेय।
गहरी अँधेरी रात ही बहुधा
रोशनी की माँ हुआ करती है।

भविष्य की क्या कभी हो सकती है कोई सीमा ?
कण-कण में बसती है जो आत्मा अधीरा
अपने संबंध में किसी भी तरह की,
किसी भी संभावना से डरती नहीं है।

सुनो पद्मसंभव!
ख़ूब सतर्कता से चढ़ना सीढ़ी,
बढ़ना अनंत
एकोध्यान लगाकर ज़िंदगी की माला गूँथना।
ज़िंदगी वह नहीं, जिसे जिया तुमने आज तक
ज़िंदगी वह है, जो जियोगे आज के बाद।

अपने-अपने घरों में सोये
लोगों के लिए वे धरती रचते हैं,
जिस पर सुबह उठकर वे चल सकेंगे।

चिथड़े-चिथड़े हुए सपनों की
मरम्मत में वे
सारा दिन-सारी रात एक किये रहते हैं।

कभी वे लिखते हैं कविताएँ
कभी महाविनाश के विरुद्ध अनशन करते हैं।

अँधेरे ने उन्हें राह चुनने का कोई हक़ नहीं दिया,
अतः
कभी वह फ़सल की जड़ में डालते हैं
'उठो जागो' का मंत्र
जिसे कि हमारे बच्चे खाएँगे,
कभी फूलों को प्यार से देते हैं सलाह
कि वे मौसम बदलने तक खिले रहें।

हर जगह... हर जगह
गहन अँधेरा है,
मगर वह पूरी ताक़त से सिरजते हैं प्रकाश।

वे विनाशशील देश के जुगनू हैं।

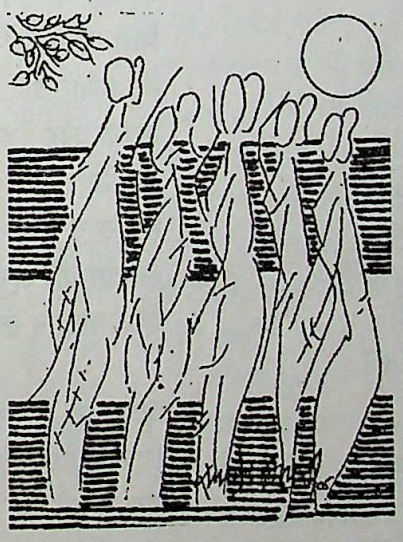

अनुवाद-अविनाश
बदरिकाश्रम, महिषी, सहरसा

भूल सुधार

फरवरी, 2010 अंक में मुखपृष्ठ के कलाकार **दिलीप कुमार शर्मा 'अज्ञात'**, कोलकाता हैं। त्रुटिवश इनका नाम दिनेश कुमार शर्मा 'अज्ञात' छप गया।

इस भूल के लिए खेद है।

संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार आत्रेय की कविताएँ

विघटनकारी ताकतें

उन्होंने तुड़वा डाले सभी शीशे
और इंजीनियरों को बुलाकर
आदेश किया
कि वे ऐसे शीशों का निर्माण करवाएँ
जो उनकी उजली-धुली छवि को दिखलाएँ
उनका कहना था
कि पहले वाले सभी शीशे
बार-बार रगड़े और पौछे जाने के बावजूद
दिखला रहे थे
उनके चेहरे पर चिपका कालिख का धब्बा

उन्हें बू आ रही थी किसी षड्यंत्र की
कि जल के सभी स्रोत
हो गए है उनके विरुद्ध एकजुट
इसलिए उन्होंने निर्णय किया कि
मीठे और ताजे जल का किया जाएगा अब आयात
क्योंकि जल के स्रोत कर रहे थे उन्हें बदनाम
कि पेट में अपच होने कें कारण उनके मुँह का
उनके मूँह का हो गया है स्वाद ख़राब
इसीलिए उन्हें लग रहा है जल बेस्वाद

बोतल बंद
शीतल और सुगंधित हवाएँ भी अब तो
मँगवाई जायेंगी उनके लिए स्विट्जरलैंड से
क्योंकि यहाँ की बासी और दुर्गंध युक्त हवाएँ
दोष निकालने लगी थीं उनके नासा-छिद्रों में
कि उन नासा-छिद्रों को शऊर ही नहीं आता
हवाओं से व्यवहार करने का

इस तरह विघटनकारी ताकतों पर
विजय पाने का प्रबंध करके
वे अब हो गये हैं निश्चिंत

हत्यारे की तलाश

कहीं पढ़ा था
कि हत्यारे का चेहरा
होता है एक विशेष प्रकार का
उस चेहरे पर
उग आई होती है
क्रूरता की नागफनी
पर यह भी सच है
जिसे जाना है मैंने अपने अनुभव से
कि हत्यारे का
अपना कोई चेहरा नहीं होता
वह छिपा रहता है
हम सभ्य लोगों के बीच
अंतर्तम की अनुभूति की तरह
जिस पहचान कर भी पहचाना नही जा सकता

आज बस शैल्टर की दीवार पर हत्यारे की तलाश में
चिपके एक विज्ञापन में
एक हत्यारे का चेहरा देखने के उपरांत
जब मैंने घर आकर
शीशे में अपना चेहरा देखा
तो लगा कि मैं ही हूँ वह हत्यारा
जिसकी तलाश में
चिपका हुआ था वह विज्ञापन
जाने क्यो पुलिस मुझे नहीं पकड़ती

म0 नं0-864, ए/12, आज़ाद नगर
कुरूक्षेत्र- 136119

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्टनर, तुम्हारी पॉलीटिक्स क्या है?

सुनील कुमार मानव

"भूल-गलती
आज बैठी है जिरहबख़्तर पहनकर
नक़्क़ा पर दिल के
चमकते हैं खड़े हथियार उसके दूर तक
आँखें चिलकती हैं नुकीले तेज पत्थर-सी,
खड़ी है सिर झुकाये
सब कतारें
बेजुबाँ बेबस सलाम में
अनगिनत खंबों व मेहराबों—थमे
दरबारे-आम में।"

13 जनवरी को लखनऊ के संत गाडगे जी महाराज प्रेक्षागृह में 'सत भाषै रैदास' नाटक का मंचन अचानक रोक दिया गया। डॉ0 राजेश कुमार द्वारा लिखित एवं निर्देशित इस नाटक के मंचन की लगभग सभी तैयारियाँ हो चुकी थीं, तभी संस्कृति विभाग की महानिदेशक श्रीमती इन्दु सिन्हा ने आकर फ़रमान सुनाया कि नाटक नहीं हो सकता। ख़ाब नहीं हो सकता, तो नहीं हो सकता, सरकारी फ़रमान है। कारण बताया जाना आवश्यक नहीं है।

ज्ञात हो कि यह नाटक शाहजहाँपुर की 'अभिव्यक्ति' नाट्य-संस्था द्वारा देश के प्रसिद्ध स्थानों पर 18 बार मंचित हो चुका था। तमाम पुरस्कारों के साथ ही मोहन राकेश सम्मान से सम्मानित भी किया जा चुका है। कानाफूसी पर ध्यान दें, तो नाटक का मंचन इस कारण रोक दिया गया कि इसमें ब्राह्मणों का अपमान किया गया है। यहाँ पर यह भी बताता चलूँ कि इस मंचन के मुख्य अतिथि श्री सुभाष पांडेय, माननीय मंत्री, संस्कृति विभाग, उ0 प्र0 के साथ ही अवनीश कुमार अवस्थी, निदेशक एवं सचिव, संस्कृति एवं पर्यटन विभाग, उ0 प्र0 एवं नीलम अहलावत अपर निदेशक, संस्कृति, उ0 प्र0 आदि थे।

इस घटना के बाद मुक्तिबोध के वे उद्‌गार अनायास ही स्मरण हो आए, जो उन्होंने नेहरू जी की मृत्यु पर व्यक्त किये थे—"पार्टनर, अब फ़ासीवाद आया समझो।" आख़िर कब तक बनाये जाते रहेंगे अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध, आख़िर कब तक यह फ़ासीवादी ताक़तें सच के सामने दीवार उठाती रहेंगी।

दलितों की हिमायती सरकार... कहीं यह भी तो फ़ासीवाद नहीं, जो आज नये रूप में रचनाकार के सामने खड़ा हो गया हो। एक सोचने की बात है कि ऐसा किस कारण हुआ? इसमें वर्तमान सरकार की राजनीति के बड़े निहितार्थ तो नहीं छिपे हुए हैं?

हम वस्तुतः अभी तक जिस फ़ासीवाद की बात करते आ रहे हैं, आज उसका स्वरूप बदल चुका है। यह 'फासीवाद' एक प्रकार मात्र है। आज के संदर्भ में विचार किया जाए तो हम पाएँगे कि जिसके हाथ में ताक़त है, सत्ता है, वही नये फ़ासीवाद की परिभाषा गढ़ रहा है। यह फ़ासीवाद किसी भी वर्ण, धर्म अथवा सत्ता का फ़ासीवाद हो सकता है।

ख़ैर! यह तो विमर्श का विषय है। हम बात करते हैं नाटक सत भाषै रैदास, की। किस कारण से इस नाटक का मंचन रोक दिया गया, इसका पता तो नाटक की पृष्ठभूमि में जाकर ही चल सकता है ।

आज राजनीति का क्षेत्र हो या साहित्य का, दलितों की मुक्ति और उनकी स्वतंत्रता और समानता के संघर्ष की चर्चा हर तरफ़ है। जितना नज़रअंदाज पहले किया जा चुका, अब संभव नहीं है। सवाल यह भी है कि आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी यह सवाल बरकरार है, इसका हल नहीं हो सका, बल्कि यह मुख्य मुद्‌दा बन गया है। कहीं ऐसा तो नहीं कि इसे कोई हल करना ही नहीं चाहता, बल्कि चालाकी से किसी सोची-समझी योजना के तहत घालमेल कर हाशिये पर डाल देना चाहता है, क्योंकि जो लड़ाई आज़ादी के पूर्व निरंतर लड़ी जाती रही है, उसका हल न हो पाना कदाचित् इसी ओर इशारा करता है। लेकिन, कोई सवाल कब तक दबाकर रखा जा सकता है? आप दबाएँगे तो वह कहीं और से उठेगा, आप जवाब नहीं देंगे, तो कोई और देगा और आज एक नहीं देश में कई जगहों से यह सवाल एक साथ कई लोग उठा रहे हैं और हल के प्रयास में लगे हैं।

राजेश कुमार ने यही प्रश्न उठाकर दर्शकों की जागृत बेचैनी में उसका जवाब तलाशने का प्रयास किया है और कहानी न कहकर भी वे इसमें पूर्ण सफल रहे हैं। वास्तव में, यह नाटक रैदास की केवल जीवनी नहीं है। कहाँ जन्म हुआ, कहाँ पले, कौन इनके माता-पिता हैं—इन सब बातों का सुनाना-दिखाना इस नाटक का उद्‌देश्य नहीं है। यह नाटक रैदास के जीवन की कुछ घटनाओं का, लोक-कथाओं का कोलाज़ है, जिसमें से उनकी वैचारिकता का स्पष्ट आभास मिलता है। वे अपनी ज़िंदगी में वर्णवादी व्यवस्था, धार्मिक कट्टरता, आर्थिक विषमता से किस तरह जूझते रहे—यही दिखाना नाटक का परम उद्‌देश्य है और इस उद्‌देश्य को प्राप्त करने के लिए राजेश किंवदंतियों, लोककथाओं, जीवनीपरक ग्रंथों तथा रैदास के साहित्य की धुँधली, स्पष्ट और चटख रेखाओं से एक ऐसा नाट्य-चरित्र रचते हैं, जो न केवल मध्यकालीन, बल्कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान में फैले वर्ण-श्रेष्ठता के दंभ और उससे उपजी अमानवीय व्यवस्था के ख़िलाफ़ एक आंदोलनकारी के रूप में खड़ा होता दिखायी देता है, जाने-अनजाने हमारे पारंपरिक मिथकों को खंड-खंड करता चलता है।

यह सत्य है कि मध्ययुगीन समाज की बर्बर और अमानवीय वर्ण-व्यवस्था के ख़िलाफ़ भक्तिकालीन निर्गुण संतों ने जो आंदोलनकारी साहित्य-सर्जना की, उसकी एक सामाजिक भूमिका को छिपाकर उसे उदार मानवतावादी धार्मिक विचारों का नाम दे दिया गया। एक सोची-समझी साजिश के तहत किंवदंतियाँ उनके साथ ऐसे जोड़ दी गयीं, जो उन्हें वर्ण-व्यवस्था का पोषक न सिद्ध कर सकें तो विरोधी भी न कहने दें। पाठ्य-पुस्तकों में भी इन समाजिक आंदोलनकारियों के लिए ऐसे वृत्तांत रचे गये, जो उन्हें महिमा-मंडित तो करते हैं, पर असल सच्चाई को पर्दे के पीछे ढँक देते हैं। उनके आध्यात्मिक पक्ष को बड़ी गहराई से विश्लेषित करके उन्हें वेद-सम्मत प्रमाणित करने का प्रयास किया जाता है और सामाजिक दृष्टिकोण को या तो उठाया ही नहीं जाता या फिर उसे इस प्रकार व्याख्यायित किया जाता है कि वह उनकी तथाकथित आध्यात्मिकता हो ही पुष्ट करता प्रतीत होता है। उनके विप्लवी कथनों पर सर्वभूत समभाव और मानवतावाद का मुलम्मा चढ़ाकर आध्यात्मिकता और वेद-सम्मतता की वाहवाही में उनकी तीव्रता कुंद कर दी जाती है और इस तरह, एक क्रांतिकारी साधक-चिंतक यथास्थितिवादी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। शायद ऐसी ही परिस्थितियों में पाश ने कहा होगा—"क्यों मेरे चीख़ने को/बार-बार कविता कह दिया जाता है।"

नाटककार जब इस सच्चाई को हमारे सामने लाता है, तो मनोमस्तिष्क में संजोये हुए पवित्र मिथक रेत की भीत की तरह भरभरा जाते हैं। हमारी संस्कृति और सुखमय रुचि पर ज़बरदस्त आघात लगता है, पर जब नाटककार अपने पक्ष में सबल तर्क और इतिहास के गहन विश्लेषण के पश्चात कुछ सर्वमान्य अवधारणाएँ प्रस्तुत करता है, तो सच्चाई को स्वीकारने के अलावा रास्ता ही नहीं बचता।

यह नाटक स्वयं को रैदास के जीवन की घटनाओं पर केंद्रित नहीं करता, बल्कि उसके आस-पास के समाज और प्याज़ के छिलकों जैसे ढके-छुपे यथार्थ को परत-दर-परत उघाड़ता चलता है। नाटक का कथासार इस प्रकार है कि रैदास की प्रतिष्ठा जैसे-जैसे होती जाती है, वर्णवादी सत्ता के साधकों में बेचैनी बढ़ने लगती है। उन्हें अपनी धार्मिक और सामाजिक श्रेष्ठता संकट में पड़ती दिखायी देने लगती है। जब वे प्रयास करके हार जाते हैं, तो अघोरनाथ उन्हें नया रास्ता सुझाता है—लोहे से लोहे को काटने का। वे निर्गुण काव्यांदोलन के बरख़िलाफ़ उस सगुण भक्ति का प्रचार करते हैं, जो निराकर, निरंजन और निर्विकार निर्गुण का खंडन करके मठ, मंदिर और मूर्तिपूजा को महिमा-मंडित करें। यहाँ नाटककार मुक्तिबोध की इस मान्यता से प्रभावित दिखायी देता है कि भक्ति आंदोलन मूलतः उच्चवर्गीय जातियों के ख़िलाफ़ निम्नवर्गीय जातियों का एक आवश्यक विद्रोह था। मुक्तिबोध यह स्थापना देते हैं कि यद्यपि "भक्ति आंदोलन में ऊँच और नीच—दोनों प्रकार के संतो का योगदान रहा, पर जहाँ तक सामाजिक भेदभाव या मानव की मूलवर्ती एकता का सवाल है, निम्न कहे जाने वाले संतों का योगदान अधिक भास्वर है" और भक्ति आंदोलन के बिखरने और वास्तविक ताप खो देने के सवाल पर वे कहते हैं कि "सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में निम्नवर्गीय भक्ति मार्ग के जनवादी-संदेश के दाँत उखाड़ लिए गये। संतों को सर्ववर्गीय मान्यता प्राप्त हुई किंतु उनके संदेश के मूल स्वरूप पर कुठारा घात किया गया और जातिवादी पुराण-धर्म पुनः निश्शंक भाव से प्रतिष्ठित हुआ" और इस तरह उच्च वर्ग का प्रभाव बढ़ने के साथ ही भक्ति आंदोलन की धार कुंद होने लगी।

अंततः, काशी के पंडे अघोरनाथ के नेतृत्व में काशी नरेश के दरबार में पहुँचते हैं और सनातन धर्म और शास्त्रों की दुहाई देकर रैदास को रोकने की गुहार करते हैं। रैदास को बुलाया जाता है। रैदास और अघोरनाथ में लंबी बहस होती है। अघोरनाथ शास्त्रार्थ करने का प्रस्ताव रखता है। इस पर रैदास जवाब देता है कि पूरा-का-पूरा शास्त्र तो शूद्रों के विपक्ष में रचा गया है, वे किस आधार पर शास्त्रार्थ करें। अंततः, बहस का हल निकलता न देख काशी नरेश घोषणा करते हैं कि वास्तव में जो सच्चा प्रभु-भक्त है, अपनी भक्ति से दरबार में रखी कृष्ण की मूर्ति को अपनी गोद में बिठाकर दिखाये। इस मुक़ाबले में रैदास की विजय होती है।

यहाँ पर नाटककार कहानीपन बनाये रखने के लिए रैदास के संबंध में प्रचलित किवंदतियों और चमत्कारपूर्ण घटनाओं का भी प्रयोग करता दीखता है। शालिग्राम को गंगा में तैराना भी ऐसी ही घटना है। समस्त प्रयासों के बावजूद जब वर्णवादी वर्चस्वता के समर्थक रैदास के प्रभाव और मनोबल को तोड़ पाने में समर्थ नहीं होते, तो वे कटार के स्थान पर कहानी का प्रयोग करते हैं और रैदास को पूर्व जन्म का ब्राह्मण घोषित कर देते हैं। इसी प्रसंग में नाटककार कबीर और रामानंद को मंच पर प्रस्तुत करता है और यह मिथक कि 'कबीर जैसे निम्न वर्ग के भक्त को उदारवादी रामानंद ने अपनी शिष्यता प्रदान की थी' को खंडित कर देता है। यहाँ कबीर रामानंद को चेतावनी देने वाले वर्णवाद के ज़बरदस्त विरोधी भक्त के रूप में प्रदर्शित किये गये हैं, जो गंगा-घाट की सीढ़ियों पर इसलिए लेट गये थे कि वे खुद का स्पर्श करा रामानंद के वर्णवादी दंभ को तोड़ सकें और यह नयी सूझ नाटककार की कल्पना की उड़ान मात्र नहीं है। इसके लिए वह 'भक्तमाल' की उस घटना का आधार ग्रहण करता है, जहाँ रामानंद और कबीर की भेंट के समय उनके बीच में एक पर्दा रखे जाने की बात की गयी है, ताकि कबीर की छाया पड़ने से रामानंद अपवित्र न हों।

रैदास की भक्तिधारा विरोधियों के रोड़ों के बावजूद अविरल प्रवाह की भाँति विकसित होती जाती है, यहाँ तक कि मीराबाई उन्हें गुरु-दीक्षा हेतु राजस्थान आमंत्रित करती हैं। वहाँ वे भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंजश्याम मंदिर में आरती का पद गाते हैं, जिसे सुनकर ब्राह्मण क्रोधित हो जाते हैं और उनकी हत्या कर देते हैं और इस हत्या को पूर्व जन्म के ब्राह्मण रैदास के देह-त्याग और परलोक-गमन और मोक्ष-प्राप्ति के पाखंड से जोड़कर इतिहास को किस तरह बदल दिया जाता है, यही इस नाटक का अंत प्रदार्शित करता है।

नाटक अपनी वैचारिक ओजस्विता और पदों में छिपी सच्चाई को उभारकर दर्शक के हृदय में बेचैनी पैदा करने में पूर्ण सफल कहा जा सकता है। पूरे नाटक में नाटककार की वैचारिक प्रतिबद्धता स्खलित नहीं होने पायी है। यहाँ तक कि मंच-सज्जा और पात्र-सज्जा में भी नाटककार ने प्रतिबद्ध दृष्टि का परिचय दिया है। आडंबरहीन वेश-भूषा और साज-सज्जा दर्शकों पर सफल प्रभाव पैदा करती है, पर यह प्रभाव कभी-कभी जड़ीभूत और पूर्वाग्रहमुक्त मानसिकता वालों के लिए उलटा भी पड़ सकता हे। जो लोग रैदास और कबीर की रूप-सज्जा के लिए जप-माला छापा-तिलक आवश्यक समझते हैं, उनके लिए कबीर मुहल्ले टाइप नेता जैसे दिख सकते हैं।

पूरे नाटक में कहीं भी, कुछ भी ऐसा नहीं है कि उसे प्रतिबंधित किया जाए, फिर भी उस पर प्रतिबंध लगाया गया है। है न यह एक नये प्रकार का फ़ासीवाद!

वस्तुतः, नाटक न तो ब्राह्मणों के विरोध में लिखा गया है और न ही किसी वर्णगत-जातिगत राजनीति के वशीभूत होकर। नाटक को लिखने का उद्देश्य महज़ रैदासकालीन उस अस्पृश्यता को नये संदर्भों में उद्घाटित करना है, जो आज तक चली आ रही है। इसका जीता-जागता सबूत नाटक के मंचन को रोका जाना है।

आज चाहे जितना भी कहा जा रहा हो कि सब बराबर हैं, सबको समानता का अधिकार है; लेकिन वास्तविकता तो यही है कि आज भी वर्णवाद का सिरमौर ब्राह्मणवाद (न कि ब्राह्मण) किसी न किसी रूप में राज कर रहा है, जो अभिव्यक्ति पर ताला लगा देना चाहता है। फिर भी, इस राजशाही, सामंतशाही, ब्राह्मणशाही से लड़ना ही होगा और इन ताक़तों से केवल एक रचनाकार ही लड़ सकता है, उसे चुनौती दे सकता है—

"अब अभिव्यक्ति के सारे ख़तरे
उठाने ही होंगे
तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब।"

द्वारा - डॉ. मो0 अरशद ख़ान
हिन्दी विभाग, जी. एफ. कॉलेज, शाहजहाँपुर

कविता

ओमप्रकाश मिश्र

प्रणय याचना

हे प्रिये
किन शब्दों में निवेदित करूँ
अपनी प्रणय-याचना
मैं जो कहूँगा
संभव है पहले कह दिया गया हो
किसी विज्ञापन की भाषा में
मुझसे अच्छे ढंग से/मैं लिखूँगा प्रेमपत्र
मेरे दोस्त हँसते-हँसते
लोटपोट हो जाएँगे
तुम्हारी सहेलियाँ खिल्ली उड़ाएँगी
इक्कीसवीं सदी में पत्र/वह भी प्रेमपत्र!

अनेक बातें मन में/उमड़-घुमड़ रही
फूल के बगुलों की तरह
हृदय में उठ रहा कुछ-कुछ
ये होंठ फड़फड़ा रहे
ये उँगलियाँ काँप रहीं धीरे-धीरे
मैं जो कहूँगा/सांकेतिक भाषा में
मुमकिन है कुछ लोगों ने
अपहत कर लिया हो उसे
कूट संदेश भेजने के लिए
और तुम भाव संदेश
पढ़ने से महरूम हो जाओ

सैकड़ों-चैनलों की रंग-बिरंगी दुनिया में
हज़ारों आइकानों के द्वारा
हज़ारों तरीक़ों से दिये जा रहे प्रेम संदेश
मेरा प्रणय निवेदन
विशाल जंगल में अकेली चिड़िया की मानिंद
भटकता रहेगा इस छोर से उस छोर
शब्दों की इस विशाल भीड़ में
मुझे नहीं मिल रहे कुछ सही शब्द
और मैं समझ नहीं पा रहा
किन शब्दों में निवेदित करूँ
अपनी प्रणय याचना।

महुली निवास, गर्ल्स स्कूल के पीछे
डी0एम0 कोठी रोड, आरा-802301

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यवर्गीय जीवन के इर्द-गिर्द बुनी गई कविताएँ

महेश चंद्र पुनेठा

'पहली बार' संतोष कुमार चतुर्वेदी का पहला कविता संग्रह है। इसमें कवि की पचास कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ मध्यवर्गीय जीवन के इर्द-गिर्द बुनी गई हैं। कवि ने पूरा प्रयास किया है कि वह जीवन के विविध पहलुओं को अपनी कविताओं में व्यक्त करते हुए मध्यवर्गीय जीवन का एक समग्र चित्र प्रस्तुत करे। कवि की इच्छा रही है कि–लिखना है सब कुछ/पोर-पोर में छिपा अँजोर/चांदनी में गुम रातें घनघोर/चहुंओर बिखरी हुई/रिश्तों की डोर /लिखना है सब छूटा-फटका /नये अनुभव से होकर आना है/बार-बार।

ये नये अनुभव कवि द्वारा देखे-भोगे जीवन के अनुभव हैं। कवि जो कुछ अनुभव करता है उसे अपने कवित्त विवेक की कसौटी पर कसता है और सहज रूप में व्यक्त करता है। कवि को यह बात कचोटती है कि कवि या कलाकार जिस पात्र को अपनी विधा की अंतर्वस्तु बनाता है उस पात्र की स्थिति तो अपनी जगह ज्यों की त्यों बनी रहती है पर कवि या कलाकार प्रसिद्धि पा जाता है। संग्रह की पहली कविता इसी भाव से ओतप्रोत है। इस कविता के माध्यम से कवि यहाँ प्रकारांतर से साहित्य की प्रासंगिकता का प्रश्न खड़ा करता है। कविता और जीवन का अंतर्विरोध यहाँ प्रकट होता है। कवि कहता है कि दुःखी बूढ़े पर कविता लिखी गई जिसने काफी प्रशंसा बटोरी, चित्र बनाया गया जो प्रतियोगिता में अव्वल चुना गया तथा फ़िल्म बनी जो ख़ूब चली लेकिन बूढ़ा उदास का उदास ही रहा, नहीं हुआ उसके दुःख का अंत । यहाँ दुःख और उदासी से मुक्ति का स्वर कविता में सुनाई देता है। वास्तव में, साहित्य या कला के किसी भी माध्यम की सार्थकता तभी है जब वह मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करे।

संतोष की कविताएँ प्रेम, सच्चाई, ईमानदारी, प्रतिरोध जैसे शाश्वत मानवीय मूल्यों को स्थापित करती हैं। इन कविताओं में कवि की दुनिया का बेहतरीन इंसान बनने की आकांक्षा व्यक्त होती है। निश्चित रूप प्रेम ही वह भाव है जो व्यक्ति को बेहतरीन इन्सान बनाता है। कवि मानता है कि प्रेम ही है जिसने बचाया है दुनिया को-सरसों के फूलों जैसा ताजा प्रेम/और प्रेम की गरमाहट /सर्द हवाओं और पृथ्वी की परिक्रमाओं के साथ /बचाये हुए है दुनियावी बुनियाद। कवि का विश्वास है कि अकेला प्रेम/कितना बदल देता है/दुनिया को। ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा है इतिहास। संतोष का मानना है-एक-दूसरे से जूझ रहे हैं /जब सब / प्रतियोगी संसार में /कवि लिख रहे हैं/प्रेम कविताएँ /धरती के भरोसे के लिए। कवि की प्रेम में गहरी आस्था है। यह आस्था बनी भी रहनी चाहिए क्योंकि प्रेम ही है जिसके चलते तमाम विसंगति-विडंबना एवं क्रूरता के बावजूद इस दुनिया की सुंदरता बनी हुई है। दुनिया रहने लायक बची हुई है। यह प्रेम केवल स्त्री-पुरुष के बीच का न होकर किसी भी प्राणी मात्र के बीच का है।

संतोष कुछ संज्ञाओं तथा क्रियाओं को नए अंदाज में देखते हैं। वह चाहे झुकना हो, सच्चाई हो या फिर दूरियां। दूरी किसी को भी अच्छी नहीं लगती है पर संतोष का कवि मन कुछ इस तरह से देखता है-दूरियों में बची रहती हैं स्मृतियाँ /दूरियों में बचे रहते हैं संबंध/दूरियाँ भर देती हैं गहरे जख़्मों को /ग़जब की क्षमता होती है इनमें जुड़ने की/कुछ फासले बचाए रखते हैं/हमारे रिश्तों की लचक को /कुछ दूरियाँ और संजीदा बना देती है/प्यार को। संतोष सच्चाई को चादर की तरह देखते हैं। दरअसल सच्चाई को इस तरह देखना बताता है कि मानवीय मूल्य आज कैसे वस्तु की तरह हो गए हैं जिनका मनुष्य अपनी ज़रूरत की तरह इस्तेमाल कर काम निकलने पर परे धर देते हैं। पुराना पड़ गया है सच्चाई का मॉडल-धराऊ कपड़े की तरह पहन लेते हैं लोग /रिश्तेदारियों में जाते समय। यह मूल्यों के अवमूल्यन पर कवि की चिंता को व्यक्त करता है। कवि कहता है- सच बोलना अब बिल्कुल मना है /जो बोलेगा वह ठिठुरेगा/सड़क के किनारे पागलों की तरह/लोग चिढ़ाएँगे उसे / फेंकेंगे पत्थर। पर ऐसा केवल आज ही नहीं सच बोलने के हमेशा से ये ख़तरे रहे हैं। पर लोग फिर भी सच बोलते रहे। उसकी एवज़ में बड़े से बड़े ख़तरे उठाते रहे हैं। भले ही ऐसे लोग किसी भी काल में बहुत कम रहे हैं।

सांप्रदायिकता की राजनीति करने वालों की चालों को भी कवि ख़ूब समझता है। कवि को पता है इन ताकतों द्वारा लोगों को जोड़ने के नाम पर कैसे तोड़ने की राजनीति की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गुजरात-2002' कविता में कवि लिखता है-नियम, नाटक और हकीकत में /वे इतना घालमेल कर देना चाहते हैं/ कि समझ न पाए /कोई कुछ भी। अपने सुनहले अतीत की बातें करके वे लोगों को बरगलाने का प्रयास करते हैं पर कवि अपील करता है कि अतीत में न लौट कर /अतीत से सबक लेने की आवश्यकता है। अच्छी बात है लोग कवि की इस बात को समझ रहे हैं और -जारी है एक सतत विरोध/हार न मानने वाला। कवि 'अयोध्या-2003' के माध्यम से सांप्रदायिकता के कुफल को बताता है—अयोध्या जो, कभी रही होगी राम की राजधानी/आज बची है /जनपद से भी छोटे प्रारूप में ...यह बेबाक राय थी अयोध्या के उस राम के बारे में / जो ख़याल रखते थे /क़दम-क़दम पर मर्यादा का /लेकिन अब हर जगह उद्दंडता पसर रही है/लोगों को अब वही अयोध्या /बुरी तरह अखर रही है। कवि सांप्रदायिकता की इस राजनीति का प्रतिरोध कुछ इस तरह से करता है- हम न उतरे उस जमीन पर /जिस पर बहुत नाज़ था कभी राम को। लेकिन हमें यह भी मानना होगा कि प्रतिरोध का यह तरीका पर्याप्त नहीं है।

संतोष की कविताओं में हमें लड़ने की इच्छा और उम्मीद की किरणें दिखाई देती हैं - लाजिमी है अब/जहालतों से दो-दो हाथ करने /हाथों को मुट्ठी बनाने /और उसे उठाने का /घासों का आँधियों में न उड़ना/उम्मीदें हैं /अभी भी बहुत कुछ/अपने जमाने से। कवि आह्वान करता है- हमें पूरी करनी है वसीयत /अपने उन पुरखों की /जिन्होंने रचा अपना वितान/तमाम विरोधों के बावजूद। उनका विश्वास इन पंक्तियों में झलकता है- तुम्हारा भोर का सपना /सच होगा सारोवीवा / जरूर एक दिन। ये सारी चीज़ें मिलकर संतोष चतुर्वेदी की कविता में अपने समय और समाज का एक कोलाज बनाती हैं जिसमें अलग-अलग कोणों से कभी चटख तो कभी धूसर रंगों में जीवन दिखाई देता है कभी आशा तो कभी उदासी प्रकट होती है। यहाँ कुछ चीजें विशेष रूप से फोकस हुई हैं जैसे समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, मूल्यों का अवमूल्यन, राजनीति का अपराधीकरण, अमानवीय होती दुनिया आदि। कवि इस बात से बहुत परेशान है कि चीजें अपने मूल स्वभाव को छोड़ रही हैं। सब उल्टा-पुल्टा हो रहा है। जिस आग को चूल्हे में होना था वह रिहायशी इलाकों में चहलकदमी कर रही है। जिन बच्चों को गिनती सीखनी चाहिए थी वे बंदूकें चला रहे हैं। उसको इस बात का डर है कि कहीं ऐसा न हो/कि मैं भी उसी तंत्र का हिस्सा बन जाऊँ /जिससे लड़ने का जज़्बा जुटाता रहता हूँ अभी/हर पल हर छिन। कवि मानता है-डर ने बनाया हमें आदमी/डर ने दिखायीं हमें राहें / हमारे होने में डर का उतना ही हाथ है/ जितना प्रेम का /संघर्ष का। कवि अपने समाज के प्रति चिंतित है। अपने भीतर के इंसान को बचाए रखने के लिए सचेत है। निश्चित रूप से एक कवि को यह प्रयास आजन्म करते रहना चाहिए क्योंकि यदि एक कवि के भीतर इंसान नहीं है तो उसकी कविता का कोई मतलब नहीं रह जाता है। कविता लिखना ख़ुद की चौकसी करते रहना भी है। हम देखते हैं जिन कवियों ने कविता को इस रूप में बरता है वही कालजयी कविता लिख पाए हैं।

संतोष की कविताओं को लेकर उन्हीं की कविता की कुछ पंक्तियों के रूप में कहा जा सकता है -कि लिखने के बाद भी लिखना है उन्हें /अभी बहुत कुछ/बिखरा हुआ-छूटा हुआ/चलता हुआ-रुका हुआ/अपना समय।

आशा की जानी चाहिए कि संतोष कुमार चतुर्वेदी की कविताएँ नये अनुभवों के साथ और अधिक संश्लिष्टता, द्वंद्वात्मकता एवं सुसंगति लिये हुए होंगी तथा समाज के हाशिए की आवाज़ अधिक स्थान पा पाएगी।

जोशी भवन निकट, लीड बैंक,
चिमस्यानौला
पिथौरागढ़ 262501

पहली बार (कविता संग्रह), संतोष कुमार चतुर्वेदी,
भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली -110003, मूल्य : 120 रुपए

■

अटका हुआ पानी : मूल्यों के टकराहट की कहानियाँ

विजय शर्मा

आज हिन्दी लेखन वैश्विक हो गया है, विभिन्न देशों में रहने वाले भारतीय हिन्दी में लेखन कार्य कर रहे हैं। ब्रिटेन में ही दस लाख से अधिक भारतीय निवास करते हैं। इन्हीं प्रवासियों में से कई हिन्दी में लेखन कार्य कर रहे हैं और एक सुखद बात यह है कि आज प्रवास में सबसे ज़्यादा हिन्दी साहित्य ब्रिटेन में रचा जा रहा है।

ब्रिटेन के ही एक कहानी लेखक गौतम सचदेव का दूसरा कहानी संग्रह 'अटका हुआ पानी' उपासना पब्लिकेशन से आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। 'अटका हुआ पानी; गौतम सचदेव की इक्कीस कहानियों का संग्रह है। गौतम सचदेव कई दशकों से लंदन में रह रहे हैं और उनके इस दूसरे कहानी संग्रह की अधिकाँश कहानियाँ उनके ब्रितानी जीवनानुभवों का परिणाम हैं। उनके अधिकतर पात्र भारतीय मूल के हैं और अपने मूल्यों, विश्वासों और संस्कारों के साथ वे कहानियों में उपस्थित हैं। उन्हें इंग्लैंड के रीति-रिवाज़ों, संस्कारों से बार-बार चोट पहुँचती है, मगर उनकी मजबूरी है कि वे अपना परिवेश नहीं बदल सकते हैं। लौटने का अब प्रश्न नहीं उठता है। इन कहानियों में मूल ब्रिटिश लोग भी हैं। जो काले और गोरे दोनों हैं। उनकी आस्थाएँ, उनके विश्वास उनका रुख बहुत अलग है। ख़ासकर बाहर से आकर इंग्लैंड में बसने-रहने वालों के प्रति. टकराहट मात्र विचारों की ही नहीं बल्कि कभी-कभी शारीरिक भी हो जाती है।

जो पिछली पीढ़ी भारत में इग्लैंड गई है और आज जो पीढ़ी जा रही है, दोनों के नज़रिए में बहुत फर्क़ है। पहले की पीढ़ी 'पार्टनर वही क्यों' के जुगल की तरह 'ख़र्चे पानी' की रकम अदा करके लंदन में जमी थी जबकि आज का भारतीय युवा ज़्यादा योग्यताओं से लैस है। शान से इंग्लैंड जाता है और लंदन के जीवन में मजे में घुलमिल जाता है। फर्जी शादी करके लोग स्त्री-बच्चों को विदेश ले आते हैं। यह एक आम रिवाज़ बन गया है। जुगल भी अपने भाई के मरने पर सहायता के विचार से छोटे भाई की विधवा शोभा को फ़र्जी शादी करके उसे और उसके बच्चों को लंदन ले जाता है। लेकिन उसकी पहली पत्नी यह सहन नहीं कर पाती है। जुगल को कहीं भी अपनी गलती नज़र नहीं आती है, हाँ उसे मलाल ज़रूर होता है जब उसकी पत्नी सुरेखा एक काले व्यक्ति के साथ रहने लगती है। वह अपनी जिद से कई ज़िंदगियों को बरबाद करता है।

एक बार इंग्लैंड जाने के बाद ये लोग लौट कर वापस चाहे भी तो नहीं आ पाते थे क्योंकि उन्हें लगता था लोग पूछेंगे तो क्या जवाब देंगे? 'अटका हुआ पानी' एक ऐसे ही व्यक्ति समीर की कहानी है। समीर अपनी प्रेमिका को शादी के बाद भी नहीं भूल पाता है। जब वह तलाक लेकर लंदन से वापस दिल्ली आ जाती है तो उसे उसके दो बच्चों के साथ अपना लेता है। समीर पम्मी के साथ लंदन आता है। यहाँ रहने और जमने के लिए तरह-तरह के काम करता है। लेकिन पम्मी फिर उसे छोड़ कर अपने पूर्व पति के पास चली जाती है क्योंकि आख़िर वह उसके बच्चों का पिता था। समीर उसके इस व्यवहार को नहीं समझ पाता है मगर उससे संबंध नहीं तोड़ पाता है। पम्मी के बल पर ही वह लंदन में स्थाई रूप से बसने की सोच रहा है। पता नहीं यह उसका स्वार्थ है या पम्मी के प्रति प्रेम कि वह कुछ निर्णय नहीं कर पा रहा है। दिल्ली में समीर का जमा जमाया पारिवारिक व्यापार है लेकिन वह दिल्ली नहीं लौट पा रहा है, क्योंकि उसके एक पड़ौसी ने उसे बैरागिरी करते देख लिया था।

जो पीढ़ी भारत से ब्रिटेन गई है जो वहीं जन्मी पली बढ़ी है दोनों के जीवनमूल्यों में अंतर होना स्वाभाविक है। यह अंतर स्पष्ट रूप से 'क्यों...', 'कच्ची गिरियाँ', 'ब्रह्मा की दूसरी बेटी' आदि कहानियों में दिखाई देती है। इसी कारण 'ब्रह्मा की दूसरी बेटी' की शिम्मी अपने लम्पट पिता के अंत्योष्टि में नहीं जाती है जबकि उसकी माँ सब जानते समझते हुए अपने पति के मरने पर उसके अंतिम संस्कार में शामिल होती है। शिम्मी की मम्मी शिम्मी से प्रश्न करती है, अपने पति से नहीं। वह खुद मरने की धमकी देती है, पति को नहीं मार पाती है। आज ग्लोबलाइज़ेशन के कारण कहिए या टीवी इंटरनेट का प्रभाव है 'ब्रह्मा की दूसरी बेटी' अथवा 'क्यो...' जैसे घटनाएँ हर देश में घटती नज़र आती हैं।

'क्यों...' का पिता बेटे के बस्ते की तलाशी लेने लगता है और आपत्तिजनक चीज़ दिखने पर उस पर हाथ उठाता है। उसका बेटा चूँकि विदेश में पला बढ़ा है उसे वहाँ के नियम-कानून मालूम हैं। वह जानता है कि बच्चों पर हाथ उठाना कानूनन जुर्म है अतः वह अपने पिता से कहता है कि पुलिस बुलाएगा। अपनी जड़ों से कटे हुए एवं विदेशी सभ्यता-संस्कृति में पले-बढ़े बच्चे जाने-अनजाने में ऐसी हरकत कर बैठते हैं कि उनके अभिभावकों की संवेदना को बहुत आघात पहुँचता है। ब्रिटेन में रहते हुए भी 'कच्ची गिरियाँ' की अस्मिता किशोरावस्था में गर्भवती होती है तो उसकी माँ अपना सिर दीवाल से फोड़ने लगती है। पिता उसे पीटने का उद्दत हो जाते हैं। भाई उसके प्रेमी को जान से मारने निकल पड़ता है। लड़के इयन से ज़्यादा वे अस्मिता को दोष देते हैं क्योंकि वह लड़की है। यह कहानी यौन कुंठा और यौन स्वच्छंदता का एक क्रिटिक रचती है।

जो लोग दूसरे देश में जाकर सफल नहीं हो पाते हैं वे कुंठित हो जाते हैं। ऐसा ही होता है 'एकलव्य' के मनविन्दर का। वह पढ़ा लिखा नौजवान था जब वह भारत से ब्रिटेन गया था। उसे भारत में शिक्षण का भी अनुभव था लेकिन विदेश की शिक्षा व्यवस्था में वह फिट नहीं हो पाता है। यहाँ के छात्रों और वहाँ के छात्रों के व्यवहार में बहुत अंतर है। शिक्षण विधियाँ भी भिन्न हैं। उसे लगता है कि मैनेजमेंट, छात्र और उनके अभिभावक सब उसके खिलाफ़ साजिश कर रहे हैं अंततः उसे नौकरी छोड़नी पड़ती है।

एक बार जो विदेश की भौतिक सुख-सुविधा का आदी हो जाता है, उसे देश में लौटने पर सब कुछ ख़राब नज़र आता है। यहाँ तक कि रात को कुत्तों का भौंकना भी। 'वापसी' का विनय और उसकी पत्नी तारा को यहाँ सब कुछ बुरा लगता है। अंत में तारा वापस लंदन जाने का निश्चय करती है क्योंकि वहाँ कॉम्प्लीमेंटरी कार है, इलाज़ की बेहतर सुविधाएँ हैं। सड़कों पर सधा हुआ ट्रैफिक है। सारे दिन वहाँ भी घर का काम करना पड़ता है। मगर मेड मिलने का झूठा आवश्वासन नहीं होता है। 'हत्यारे' के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुलाल और सुशीला को जब ज्ञात हुआ कि उनकी चौथी संतान भी लड़की ही होनी है तो वे उसे भारत आकर नष्ट करना चाहते हैं। मगर उनका एक मित्र जो निःसंतान है उनसे आग्रह करता है कि वे लोग बच्ची को जन्म लेने दें और जन्मते ही वह बच्ची ले लेता है। जब बाद में लड़की उन लोगों से सवाल-जवाब करने लंदन पहुँचती है तो अपने पाप को स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि उनको इसकी भरपूर सजा मिली है।

संग्रह की अंतिम कहानी 'कर्ण का पुनर्जन्म' की शैली भिन्न है। यह डाक्यूमेंट्री शैली में बनाई गई है जिसे लेखक अपने एक मित्र के घर में बैठ कर देख रहा है। इसमें भारत के जो अनाथ बच्चे गोरे लोगों के द्वारा गोद लिए जाते हैं उनके विषय को आधार बना कर चलचित्र बनाया गया है जिसमें भारत की ग़रीबी, अनाथालयों की अमानवीय परिस्थितियों का चित्रण है। वृतचित्रों में आम तौर पर दिखाई जाने वाली भारत की कई अन्य कमजोरियों को दर्शाती यह फिल्म इन गोद लिए बच्चों की अन्य मानसिक और नस्लीय परेशानियों पर भी ध्यान केंद्रित करती है।

ग़रीब घरों की लड़कियों को विवाह के नाम पर छल से विदेश ले जाना भारत में एक आम बात है। यह पंजाब और आंध्र प्रदेश में ख़ासतौर पर होता है। इस असलियत को गौतम सचदेव ने 'बंद दरवाजे खुले कमरे' में चित्रित किया है। दिल्ली के एक ग़रीब परिवार की चार लड़कियों में से एक ऊषा को लंदन का धरमबीर ब्याह कर ले जाता है। लंदन जाकर वह पाती है कि उसका पति नशीले पदार्थों की बिक्री करता है और ज़रूरत पड़ने पर ग्राहकों को लड़कियाँ भी सप्लाई करता है और इसीलिए वह खुद से बाइस-तेइस वर्ष छोटी ऊषा को विवाह का दिखावा कर लंदन लाया है। वह ऊषा का पासपोर्ट भी उसे नहीं देता है। लेकिन ऊषा धरमबीर की उम्मीद पर पानी फेर कर अपने पैरों पर खड़ी होती है। उसे एक अन्य भारतीय स्त्री सहायता देती है और वह दस-दस घंटे सफाई कर्मचारी का काम करके ज़िंदा रहती है मगर वह उदास है। उदासी के बावजूद वह हताश नहीं है क्योंकि कहानी के अंत में उसे अपने नए पासपोर्ट बनवाने की कोशिश करता दिखाया गया है।

विदेश में रहने की जो क़ीमत चुकानी पड़ती है, जो पापड़ बेलने पड़ते हैं, 'अटका हुआ पानी' संग्रह की कहानियाँ उनका खुलासा करती है। दूर के ढ़ोल सुहावने लगते हैं, मगर एक बार ढ़ोल गले पड़ जाए तो उससे छुटकारा पाना आसान नहीं होता है।

संग्रह की कुछ कहानियाँ का स्थान भारत है। वे पूरी तौर से भारत में घटित होती है। गौतम सचदेव की पहचान एक प्रवासी हिन्दी लेखक के रूप में है। प्रवास पर लिखी गई कहानियाँ हिन्दी साहित्य के परिवेश का विस्तार करती हैं। और इसी लिए वे हिन्दी की अन्य कहानियों से भिन्न भी है।

प्रथम तल-151, न्यू बाराद्वारी, जमशेदपुर-831001

अटका हुआ पानी तथा अन्य कहानियाँ, गौतम सचदेव,
उपासना पब्लिकेशंस, डी-10/1061, खजूरी खास, दिल्ली-110094, मूल्यः 250 रुपये

■

शिकम की आग लिए फिर रहे है शहर-ब-शहर

डॉ0 कमलानन्द झा

बदशाह हुसैन रिज़वी का ताजा उपन्यास 'मैं मुहाजिर नहीं हूँ' विभाजन की गहरी पीड़ा और चुभते दंश की सरल-सहज अभिव्यक्ति है। अविभाज्य हिंदुस्तान के कथा नायक शमीम, लाहौर में रेलवे के बड़े अधिकारी हैं। 14 अगस्त 1947 की उस मनहूस रात को उन्हें ख्याल होता है कि वे हिन्दुस्तान नहीं पाकिस्तान में हैं। बस्ती के एक छोटे-से गाँव हिल्लोर वासी रेलवे अधिकारी शमीमुल हसन रिज़वी से शमीम से एक बार यह पूछने की ज़रूरत भी महसूस नहीं की जाती है कि वे हिंदुस्तान में रहना चाहते हैं या पाकिस्तान में। इस विकल्प-विहीनता की स्थिति में पाकिस्तान छोड़ने का मतलब था नौकरी से हाथ धो बैठना। दिल पर पत्थर रखकर शमीम लाहौर में रुक जाते हैं किंतु उनका 'सब कुछ' बस्ती के उस छोटे-से गाँव हिल्लोर में ही छूट जाता है। 'सब कुछ' मतलब उनका अपना घर-परिवार, दोस्त, हिल्लोर की आबोहवा, वहाँ की ख़ूबसूरती-बदसूरती, अच्छाई-बुराई, मन की भावनाएँ, प्रेम, ईर्ष्या, सुख, दुख..... सब कुछ। विभाजन की त्रासदी पर शोध कर रहे शोधार्थी को अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए शमीम कहते हैं, "वक़्त और लीडरों की सियासत ने मुझ जैसे बहुत सारे लोगों को उनके माँ-बाप, भाई-बहन, पत्नियों, तमाम रिश्तेदारों से, उनकी अपनी सरज़मी से अलग कर दिया। मेरी ही मिसाल ले सकते हो, पैसे रहते हुए भी मैं अपने घरवालों के लिए कुछ नहीं कर सकता था। जब-जब उनके बारे में सोचता दिल कट के रह जाता। माँ-बाप बड़ी लावारिसी की ज़िंदगी गुजार के इस दुनिया से गुज़र गए। मैं इतना बदनसीब था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुढ़ापे में उनकी सेवा-टहल तो दूर, उनका आख़िरी दीदार भी नहीं कर सका।''

वर्षो बाद कथानायक शमीम अपने नाती के साथ हिल्लोर आते हैं। पूरे उपन्यास में शमीम कभी विगत यादों में खो-से जाते हैं, कभी लंबे अंतराल में हुए परिवर्तन को छोटे बच्चे की तरह चकित-भाव से देखते हैं। उपन्यास में शमीम वह बाइस्कोप हैं जहाँ से पूरे हिल्लोर के विगत और वर्तमान को देखा जाता है।

उपन्यासकार हुसैन रिज़वी की स्पष्ट धारणा है कि ''विभाजन के पीछे अपने ही देसी लीडरों का हाथ था।'' मज़े की बात तो यह है कि इन लीडरों ने कौम को दो हिस्सों में बाँट भी दिया और देशभक्ति का ख़िताब भी पाया। विभाजन के समय आबादी की अदला-बदली की मुहिम जोर पकड़ती चली गई, आज़ाद हिंदुस्तान में इस मुहिम ने नई शक्लें अख़्तियार कर लीं। सांप्रदायिक ताकतों ने अपनी-अपनी क़ौमें बाँट लीं। स्वयं तय कर लिया कि हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ हिंदू समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं और मुस्लिम लीग तथा जमात-ए-इस्लामी मुस्लिम समुदाय का। जिन्हें यह बँटवारा पसंद नहीं था वे राजेश जोशी के शब्दों में 'मारे जायेंगे, मारे भी गए। आश्चर्य तो यह कि बँटबारे की एवज़ में इन दलों को महिमामंडित भी किया गया।

'मैं मुहाजिर नहीं' गंगा-जमुनी संस्कृति को अधिक से अधिक पुख़्ता करने की नीयत से लिखा गया उपन्यास है। यह ठीक है कि औपन्यासिक कला की दृष्टि से यह उपन्यास वह ऊँचाई प्राप्त नहीं कर पाता है जिसमें झूठा-सच, तमस, 'सत्ती मैया का चौरा' और 'आधा-गाँव' आदि उपन्यासों को शामिल किया जाता है किंतु यह उपन्यास हिंदू-मुस्लिम एकता और सह-संबंध की डोर मज़बूत तो करता ही है साथ ही, अद्‌भुत रूप से आम पाठकों को कनविंस भी करता है। उपन्यासकार इस संबंध की संवेदनशीलता को उद्‌घाटित करने के लिए हिंदू घर में एक विवाह का दृश्य खींचता है। उस 'बरहमन' के यहाँ शादी में घरातियों और बरातियों में कई मुसलमान थे और वो भी अपनी पूरी पहचान के साथ। कथा नायक शमीम इस संस्कृति पर रीझकर नाज़ करते हुए कहते हैं, ''नुसरत यही है हिंदुस्तान की असली पहचान। जिस पर कभी आँच नहीं आ सकती। ज़माना जो भी कर ले। इस पर जितना भी नाज़ किया जाए कम है।'' आगे मुहर्रम के दृश्यों के बहाने तो मीरा बाबा की प्रकृति के बहाने उपन्यासकार ने इस मिली-जुली अनूठी संस्कृति को अत्यंत विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत किया है।

उपन्यास मुस्लिम समाज में व्याप्त अंधविश्वास, पिछड़ेपन, अशिक्षा, और परंपरावादिता की तीखी आलोचना करता चलता है। इस अंधविश्वास की जड़ की तलाश करते हुए उपन्यासकार इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि ''दरअसल हम लोगों को 'इल्यूजन' में रहना ज़्यादा अच्छा लगता है और यही आधार है, मिथकों के ज़िंदा रहने का।'' (पृ.43) इस 'इल्यूजन' या भ्रम के शिकार अशिक्षित मुसलमान ही नहीं बल्कि पढ़े-लिखे और विदेशों में ऊँचे ओहदे पर काम करने वाले मुसलमान भी हो जाते हैं। वास्तव में मुस्लिम समाज के विकास में यह 'इल्यूजन' बाधक के रूप में हाज़िर होता है।

इस उपन्यास ने एक ओर अमरीका की दहशतगर्दी और दूसरी ओर उच्च मुस्लिम समाज का अमरीकी संस्कृति के प्रति बढ़ते मोह के अंतर्द्वंद्व को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। जिस 'कॉमेंट्री शैली' में अमेरिका के साम्राज्यवादी कूटनीतिक षड़यंत्र का पर्दाफ़ाश उपन्यासकार ने किया है, वह ग़ौर-तलब है- ''इजरायल जैसा दहशतगर्द मुल्क, जो एटमी हथियारों से लैस है, उसकी बेशर्मी की हद तक हिमायत कर रहा है और मोहलिक (घातक) हथियारों को तलाश करने का बेबुनियाद बहाना बनाकर अपने हिमायती मुल्कों की फौज के साथ इराक़ पर हमला करके पूरे इराक़ को गड्‌ढे में तब्दील कर दिया। खोदा पहाड़ और चुहिया भी नहीं निकली।'' (पृ.91) इत्तफ़ाक ही है कि इस उपन्यास के प्रकाशन वर्ष (2009) में ही शुएब मंसूर निर्मित-निर्देशित पाकिस्तानी फिल्म 'ख़ुदा के लिए' में इस इकतरफा रोमांचकारी जंग को अद्‌भुत प्रतीकात्मक ढंग से दिखाया गया है। यह फिल्म मुस्लिम आतंकवाद, धार्मिक फिरकापरस्ती पर तीखी टिप्पणी भी प्रस्तुत करती है। फिल्म का दो टूक संवाद 'दीन में दाढ़ी है, दाढ़ी में दीन नहीं' मुस्लिम समाज से आत्मालोचन की माँग करता है। रिज़वी साहब का उपन्यास भी इस आत्मालोचन के दौर से गुज़रता है- ''मज़हबी कट्‌टरपंथी तालिबानी निज़ाम क़ायम करना चाहते हैं। फौज की सरपरस्ती में दहशतगर्दी के सैकड़ों कैंपो में खुदकुश बमबारों और दहशतगर्दी के ट्रेनिंग कैंप चल रहे है। (पृ.92) 9/11 की दुर्घटना के बाद से अमरीका मुस्लिम मात्र को आतंकवादी ही नहीं समझता है बल्कि सिर्फ संदेह की बिना पर घोर यातना भी देता रहा है। 'ख़ुदा के लिए' ने इस भयानक यातना को अत्यंत जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। संगीत प्रेमी मंसूर अमरीका में संगीत का प्रशिक्षण ले रहा होता है, अचानक अमरीकी सरकार द्वारा 'रेशियल प्रोफाइलिंग' का शिकार हो जाता है। उसे ग़ैर औपचारिक रूप से उठा लिया जाता है और महीनों कैद में असहनीय यातनाएँ दी जाती है। 'मैं मुहाजिर नहीं' अमरीका की दादागिरी की पोल को परत-दर-परत उधेड़ता चलता है। इस लिहाज़ से उपन्यासकार की यह व्यंग्यात्मक टिप्पणी ग़ौर करने लायक़ है ''दुनिया का सबसे बड़ा दहशतगर्द चला है दुनिया से दहशतगर्दी मिटाने'' (पृ.91) वाकई 'सौ चूहे खाकर बिल्ली चली हज को' मुहावरा अमरीका पर सौ फ़ीसदी सही बैठता है।

युवा इस्लामिक पीढ़ी पर अमरीकी संस्कृति की सेंध की ज़ायज़ चिंता लेखक को हैं, इस 'हाइब्रिड संस्कृति' को लेखक 'इस्लाम मेड इन अमेरिका' की संज्ञा देते हैं। गंभीरतापूर्वक देखा जाए तो इसमें इस्लाम के अंतरराष्ट्रीय संगठन और उसकी विचाराधारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पान-इस्लामिज़्म) भी कम दोषी नहीं है। पाकिस्तान के लोकप्रिय पत्र 'हेराल्ड' (करांची, जनवरी 1996) में एस. अकबर की चिंता उपन्यासकार की चिंता से मिल जाती है जब वे लिखते हैं कि "पाकिस्तान के शहरी मध्य वर्ग में उर्दू का चलन बहुत कम रह गया है। आश्चर्य यह है कि पढ़ा-लिखा तबका एक वाक्य भी बिना अंग्रेजी शब्दों के सहारे नहीं बोल सकता है। उसने स्वयं को अपने अतीत से बिल्कुल अलग कर लिया है। पाकिस्तान बनने के बाद वहाँ का शहरी मध्य वर्ग, अमेरिका में अपना भविष्य खोजता रहा है।"

उपन्यास की सबसे बड़ी सीमा यह है कि लेखक विषय-वस्तु को उचित कथात्मकता प्रदान नहीं कर पाये। डाक्यूमेंट्री की तरह उपन्यास आगे बढ़ता है। अच्छे उपन्यास लेखन के लिए जिस व्यापक औपन्यासिक 'विजन' की आवश्यकता होती है उसका अभाव इस उपन्यास में स्पष्ट देखने को मिलता है। रिज़वी के वैचारिक आग्रह कथा में कला की दृष्टि से गुंफित नहीं हो पाये है। यह उपन्यास एक सामाजिक स्टेटमेंट की तरह है जो भारतीय समाज में धर्मनिरपेक्ष संभावनाएँ पैदा करना चाहता है। यह उपदेशात्मक अधिक रचनात्मक कम बन पाया है। इसमें दो राय नहीं कि उपन्यासकार का उद्देश्य एक धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील भारत का निर्माण करना है। भाषा की दृष्टि से इसमें सहज, सरल उर्दू का प्रयोग किया गया है। जहाँ कहीं कठिन उर्दू के शब्द प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ कोष्ठक में हिंदी का समानार्थी शब्द प्रयुक्त हुआ है। उपन्यास में कहीं-कहीं उत्तर प्रदेश की बोलियों का प्रयोग सुखकर लगता है-"अरे काका आप! दिल्ली कब अवा गय रहा। उतर के हमारा इंहा आवैक लगा रहत है। अच्छा, ई बताई कमवा भवा?" उत्तर भारत के मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज को जानने-समझने में यह उपन्यास काफ़ी कारगर है। क्योंकि समान्यतया मुस्लिम समाज मुख्यतः उर्दू रचनाओं में विन्यस्त होता है या फिर हमें उसके अनुवाद से इस समाज को जानने-समझने में मदद मिलती है। इस उपन्यास का अकादेमिक महत्व मुस्लिम समाज के समाज़शास्त्रीय विश्लेषण में है। कथात्मकता, चरित्र-चित्रण आदि औपन्यासिक तत्व तलाशने वालों को इस उपन्यास से थोड़ी निराशा हो सकती है।

हिंदी विभाग, सी0 एम0 कॉलेज, दरभंगा

मैं मुहाजिर नहीं हूँ (उपन्यास), बादशाह हुसैन रिजवी, सुनील साहित्य सदर, नई दिल्ली-2, मूल्य : 150/- रुपये

■

मुक्तिकामी लहर की कविता

डॉ0 सुभाष चन्द्र

जब साहित्य जगत में और साहित्य के बाहर आंदोलनकारियों में भी निराशा के स्वर हों वहाँ महेन्द्र नेह के 'थिरक उठेगी धरती' कविता संग्रह की कविताएँ आशा जगाती हैं कि अभी सब कुछ ठहर नहीं गया है और जनता ने अपनी बेहतरी के लिए संघर्ष करने बंद नहीं किये हैं। कविताओं में व्यवस्था के सताए ग़रीब आदिवासी, श्रमिक, किसान व अन्य मेहनतकश तबकों की पीड़ाएँ हैं, तो उनसे उड़ते हुए संगठित जनसमूह भी हैं। व्यवस्था की चालबाज़ियाँ हैं तो उसे पलटने की हिम्मत रखने वाले क्रांतिकारी भी हैं इस संग्रह की कविताओं का मुख्य स्वर यही है जो सत्तर के दशक की गर्जन-तर्जन वाली कविताओं की याद ताज़ा करवा देती हैं, तो वैश्वीकरण के दौर की समझ पैदा करने वाली कविताएँ भी हैं।

महेन्द्र नेह का कवि अपने आसपास हो रहे परिवर्तनों को तथा संघर्ष कर रहे लोगों को निरंतर देख ही नहीं रहा, बल्कि उनका हिस्सा भी है। किस महानगर में बैठे और अपने में ही घुसे रचनाकार या व्यक्ति को यह आशावाद अति-उत्साह या यूटोपिया भी लग सकता है। अपनी निराशा व हिम्मतपस्ती को वह सामाजिक परिस्थितियों पर आरोपित करके उनको भुला सकता है, जो बेहतर भविष्य के लिए संघर्ष में लगे हैं। लेकिन 'धरती थिरक उठेगी' के कविता के पास निराशा व हताशा के लिए कोई स्वान नहीं है। उसने अभी सुनहरे भविष्य के सपने लेना बंद नहीं किया, बल्कि वह उन्हें साकार होते हुए भी देख रहा है। उसे संघर्षरत लोगों पर पूरा भरोसा है। जो रचनाकार जनता से जुड़े हैं वह कभी निराश नहीं होते, क्योंकि इतिहास का अंत नही होता और संघर्षशील सामाजिक शक्तियाँ कभी अपनी बेहतरी के संघर्ष को नहीं छोड़ सकती।

कवि ने अपनी कविताओं को संघर्ष करते लोगों को समर्पित किया है।

अब उन्हीं के लिए यह कविता/जिनके हाथों से/छीन लिए गए औजार/ये कलम उन्हीं के लिए/सच्चाई ओर न्याय के/ रास्ते पर चलने के जुर्म में/ कत्ल कर दिया गया जिन्हें /दर्ज़ कर दिया गया जिनका नाम/बग़ावत करने वालों की/ काली सूची में।

रचनाकार बेशक किसी प्रकार की गफ़लत में नहीं है। वह सत्ता की ताकत को कम करके नहीं आँकता, लेकिन उसे जनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शक्ति में भी पूरा भरोसा है और यह भरोसा ही वह पाठक में पैदा करता है जो आज के समय की सर्वाधिक ज़रूरत है। वह जुलूस में शामिल लोगों की हिम्मत से वाकिफ़ है, मजदूरों-किसानों के जुलूस को गुज़रते देखती 'ग्लोबल समय, जुलूस और शांता चाची की शांता चाची' के दिल में चल रही ऊहा-पोह को भी वह पढ़ रहा है। शांता चाची बेशक अभी जुलूस का हिस्सा नहीं बनी है, लेकिन उसे देखकर जो विचार उसके मन में कौंधा है, वह अधिक समय तक उससे बाहर नहीं रह सकती।

महेन्द्र नेह की कविताओं में श्रमिक वर्ग की दुर्दशा व शोषण के कारुणिक चित्र नहीं हैं, बल्कि शोषण के खिलाफ लड़ते हुए लोगों के संगठित समूह हैं। शोषण की प्रतिक्रयाओं को पलटने का संकल्प लिए जत्थेबंदियाँ हैं। यही स्वर महेन्द्र नेह को एक अनूठा व संपूर्ण रचनाकार बनाती है। वह वर्तमान का खुलासा करते हुए भविष्य की शक्तियों की भी पहचान करवा रहे हैं।

वैश्वीकरण ने मेहनतकश जनता के लिए संकट बढ़ाए हैं। शोषण की प्रक्रिया को तेज़ किया है। बाज़ार में सभी चेहरे हँसते हुए नज़र आते हैं, लेकिन बाज़ार उनकी मानवीयता को लील रहा है। सामान बेचता-सेल्समैन या कि बाज़ार में किसी तरह का काम करता अफ़सरनुमा मजदूर तमाम परेशानियों के बाद भी हँसता हुआ चेहरा लिए रहता उसके चेहरे की मुस्कान के नीचे छुपा दर्द कोई संवेदनशील व व्यवस्था के क्रूर चेहरे का पारखी ही समझता है।

'थिरक उठेगी धरती' के कवि के लिए कविता महज चंद शब्दों का जोड़-तोड़ खाली बैठे समय का शगल या सौंदर्य की कोई अनाम गहराई नहीं है। यहाँ कविता-कर्म संघर्ष से अलग कोई चीज़ नहीं हैं। कविता यहाँ जीवन का स्थानापन्न भी नहीं हो जाती। इसलिए कविता को पारिभाषित करने और उसे बचाने के लिए कोई संकल्प नहीं करता। संघर्ष से जुड़े व्यक्ति को कविता की बारीकियाँ चाहे नहीं गढ़नी आती, चाहे वह कविता के सूक्ष्म सिद्धांतों को व्यक्त नहीं करता और न ही उसकी परवाह करता है। लेकिन इस बात से बखूबी वाकिफ़ है कि जीवन बचेगा तो कविता बचेगी इसलिए जीवन के लिए संघर्ष करना उसको बचाना ही है और जीवन रहित कविता का स्यापा करने के लिए उसके पास समय नहीं है। मध्यवर्गीय समाज में कविता पर वहाँ ख़ूब-विमर्श हैं, लेकिन जीवन के लिए संघर्ष नदारद है। महेन्द्र नेह जैसा संघर्षशील लोककवि ही कविता को ताज़गी प्रदान करता है, उसे बासी बिंबों, प्रतीकों और शब्दों से वही आज़ाद करता है। समाज के समक्ष आ रही समस्याओं से जूझते हुए वही कविता का नये संसार से परिचय करवाता है और कविता को नया जीवन प्रदान करता है। मिल में मजदूरी के लिए गई माँओं के बच्चों के ऐसे चित्र वही दे सकता है, जो इस जीवन को निकट से देख रहा है। ऐसे चित्र पूरी परिस्थिति को सामने रख देते हैं और स्थायी प्रभाव अंकित करने की क्षमता रखते हैं। हर रोज़ दिखायी देने वाले इन दृश्यों को कविता में लाकर महत्वपूर्ण कार्य किया है।

मिल के दरवाज़े के बाहर एक पेड़ है
पेड़ में फल नहीं लगते
फूल नहीं खिलते
पेड़ में बच्चे लटकते हैं
अपने कफ़न बराबर कपड़ों में बँधे कीचड़ में सने, नंगे।

महेन्द्र नेह को अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए अलग से भाषा की तलाशने की ज़रूरत नहीं पड़ती। आम बोलचाल की भाषा ही उनकी कविताओं की भाषा में ढल जाती है। कविता चूँकि संघर्षो से उपजी है, इसलिए वह अपने लिए उसी को ही काफ़ी समझती है। इसीलिए नई शताब्दी की चाल व परिवेश को व्यक्त करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी के जो शब्द आम बोलचाल का हिस्सा बन गए हैं वे कविता का हिस्सा भी बने हैं। महेन्द्र नेह की कविताओं में अतिरिक्त विस्तार है, शोषक-वर्ग का चरित्र उद्घाटित करने के लिए उसके लिए अतिरिक्त विशेषण लगाने का मोह नहीं छोड़ पाते और वंचित-पीड़ित वर्ग की स्थिति को अत्यधिक दयनीय और विश्वसनीय बनाने के लिए भी जो अतिरिक्त शब्दों को खर्च करते है, उससे दोहराव होता है और कविता का कसाव ढीला पड़ता है। शब्दों के चुनाव से लेकर कविता के दूसरे औजारों के प्रभावी प्रयोग के लिए उनको माँजने की फ़ुर्सत कवि को नहीं है। आंदोलनरत कवि के पास संघर्षरत जनता में विश्वास ही कविता की सबसे बड़ी शक्ति है, उसी से कविता में जीवंतता आती है और उसी से ही वह सार्थक होती है। वह किसी काव्यशास्त्री के सर्टीफिकेट की मुँहताज नहीं होती। महेन्द्र नेह की कविता कवियों, लेखकों या सिद्धांतकारों के साहित्य विलास को सामग्री बेशक न जुटाती हों, लेकिन वे जनता की चहेती हो जाती हैं और अपना दायित्व निभा जाती हैं। जिनके लिए ये कविताएँ रची गई हैं उन तक ये बिना किसी बिचौलिये की सहायता के पहुँचती हैं।

थिरक उठेगी धरती (कविता संग्रह), महेन्द्र नेह, शब्दालोक, शादलपुर विस्तार, दिल्ली-94, मूल्यः 125 रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलाश : जन-जीवन का यथार्थ

लव कुमार लवलीन

नाटक और रंगमंच की परस्परता, अविभाज्यता, नाट्यलेखन की संभावनापूर्ण दिशा एवं दृष्टि और मौलिक सृजनात्मक क्षमता की विशिष्टता के कारण हिन्दी के कई कवि और कथाकार अपनी मूल रचना विधा को लाँघकर नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में आ गये हैं तथा अपनी कवित्व शक्ति एवं कथाकार व्यक्तित्व का रचनात्मक उपयोग रंगमंचीय संदर्भ में तीव्रता से करने लगे हैं। शोधपरक निबंध और कहानियाँ लिखने के बाद राज नारायण राय भी अपने नाटक 'तलाश' के साथ सामने आये हैं और अनेकानेक ज्वलंत समस्याओं की जड़ को अन्वेषित-उद्घाटित करने की कोशिश की है जिनसे हमारा समाज और देश निरंतर संघर्ष करते हुए, भोगने-टकराते और अभिशप्त ज़िंदगी जीने के लिए विवश है। यथास्थिति की बेड़ियों को तोड़ने वाली यह संदेशमूलक रचना पारिवारिक संबंध को देखने-समझने की नयी दृष्टि देती है और बेटे-बेटों में भेद-दृष्टि रखने वाले माता-पिता को अनुभव को गहरी सीख भी देती है।

नाट्यवस्तु संक्षिप्त एवं युगबोध संपन्न है। दामोदर एक कर्तव्यपरायण शिक्षक है जो सेवा निवृत्त होने के पश्चात पेंशन से संचित होने के कारण भीषण आर्थिक तंगी एवं दाने-दाने को मोहताज हो जाते हैं। उसकी एक पुत्री और चार पुत्र है जिनको आर्थिक अभाव एवं असमर्थता के कारण अधिक उच्च शिक्षा नहीं दिलाई जा सकी। भ्रष्ट प्रशासन और सामाजिक स्थिति के कारण उन्हें सामान्य नौकरी भी उन्हें मिल पायी। अफसर और नेता भी बाहर से गुरु भक्ति का दिखावा करते हैं पर किसी प्रकार की क्रियात्मक अथवा आर्थिक सहयोग करने में असमर्थता ही प्रकट करते हैं। असमर्थता और विवशता के दौर से गुजरते हुये ऐसे माहौल और ऐसी स्थिति की प्रतिक्रिया उन लड़कों पर यह होती है कि वे सारा दोष अपने माता-पिता पर डालते हैं और अधिक संतान उत्पन्न करने के लिए उन्हें भला-बुरा कहते हैं। तनाव और आक्रोश से वे न्यायालय की शरण लेकर माता-पिता को आजीवन कारावास की सजा दिलवाते हैं फिर भी अपने भाग्य की आड़ी-तिरछी रेखाओं को बदल नहीं पाते हैं। इस समय उनके माता-पिता की सहायता के लिए उनकी बड़ी बहन और बहनोई ही सामने आते हैं जिन्हें प्रेम विवाह करने के कारण कभी उन लोगों ने तिरस्कृत कर दिया था। मानवता के नाते और संबंध की लाज बचाये रखने के लिए वे कारावास से मुक्ति दिलाकर उनकी सेवा का भार उठाते है और नाटक समाप्त होता है।

निस्संदेह आधुनिक समाज में पुत्रों के हाथों माता-पिता की दुर्गति और उपेक्षा की अनेक घटनाएँ घटित होती दिखायी देती हैं, संपत्ति के बंटबारे के प्रश्न पर मुकदमेबाजी के समाचार सुनायी देते हैं पर अधिक संतान उत्पन्न करने के अपराध में माता-पिता के विरुद्ध न्यायालय का दरवाजा खटखटाना और उन्हें आजीवन कारावास की सजा दिलाने के संभावित खतरे की कल्पना मात्र हृदय को मर्माहत करने वाला है। नाटककार राय ने उनकी उपेक्षा और दुर्दशा के लिए उन्हें स्वयं भी किसी हद तक उत्तरदायी ठहराने का प्रयास किया है। अपनी आर्थिक दशा और दयनीय स्थिति के बावजूद बच्चों को ईश्वर की देन मानकर निरंतर संतानोत्पत्ति में लगे रहना उनके भावी नारकीय जीवन की पृष्ठभूमि बन जाती है। साधन-सुविधा संपन्न होने पर सामर्थ्यानुसार संतानोत्पत्ति करना भी कोई स्वस्थ चिंतन नहीं है। भविष्य में देश के समक्ष, अभाव बेरोजगारी और भ्रष्टाचार की समस्या उत्पन्न करने वाले ऐसे माता-पिता को नाटककार राय ने अप्रत्यक्ष रूप से चेतावनी दी है। रचनाकार का दायित्व अपनी रचना के माध्यम से व्यक्ति और समाज को उसकी वास्तविकता से परिचित कराना और आनेवाले खतरों से सतर्क करना है। अंततः इस दिशा में अग्रसर होना और बचने का प्रयास करना तो सामाजिक कार्य है।

नाटक को दृश्यकाव्य कहा गया है-ऐसा काव्य जिसमें दृश्य होने का गुण हो। इसलिए मात्र विषय-संदर्भ और समसामयिक चेतना को स्पर्श करने के कारण ही नाटक की प्रासंगिकता पूरी नहीं हो जाती जब तक कि उसकी मंचीय प्रस्तुति के प्रति आश्वस्त नहीं हुआ जाय। इस दृष्टि से समाज के अनाचार, भ्रष्टाचार, पारिवारिक संबंधों के विघटन, नैतिक मूल्यों के पतन और समकालीन अनेकानेक विसंगतियों को एक साथ नाट्यालेख से पिरोकर प्रस्तुत करना कठिन कार्य है। नाटककार ने इस चुनौती को स्वीकार कर उसे निर्बाध संप्रेषित करने का साहस भी दिखाया है परंतु सूच्य एवं प्रासंगिक घटनाओं के विधान न होने और प्रतीकोपकरणों तथार दृश्यावयवों के अभाव से नाटक का आंतरिक रंगमंच उभर नहीं पाया है।

नाटककार राय ने समीक्ष्य नाटक में कथ्य का शाब्दिक संप्रेषण का प्रयास अधिक किया है, इसलिए स्थिति एवं परिवेश से उभरकर दृश्य बिंबों का निर्माण अपेक्षाकृत कम किया जा सका है। ऐसी दृश्य-घटनाओं और प्रसंगो का विधान भी नहीं किया गया है जिससे तथ्य को दृश्य समर्थन मिलता। नाटक की सारी बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवादों के माध्यम से ही स्पष्ट होती है जो इसकी एक सीमा है। हालांकि नाटक में रोचकता बनाये रखने के लिए उन्होंने समकालीन प्रसंगों को उभारा है और नाट्यानुभूति के संप्रेषण के लिए अर्थगर्भित संवादों का विधान किया है। संवाद मर्मस्पर्शी, चुटीले और तीखे हैं जिनके माध्यम से पात्रों के आंतरिक क्षोभ तथा आक्रोश को प्रकट किया गया है। पात्रों के पारस्परिक नामकरण के बावजूद उन्हें आधुनिक संदर्भों में उपस्थित कर उनसे नकारात्मक आचरण करवाने का प्रयोजन भी बड़ा व्यंजक और गूढ़ है। दामोदर और सावित्री अदूरदर्शी तथा अविवेकी माता-पिता के प्रतिनिधि हैं। जनसेवा के नाम पर स्वार्थ सिद्ध करने वाले नेता और अफसरों का चारित्रिक उद्घाटन सटीक है। इसी प्रकार शिक्षक के घर पर नेता और अफसर के आने तथा चारों पुत्रों के थाने जाने का दृश्य प्रभावशाली है जबकि न्यायालय का पूरा दृश्य सजीव एवं मर्मस्पर्शी है। नेपथ्य, संगीत, अंधकार और प्रकाश तथा पात्रों की वेशभूषा आदि के निर्देशों से कथ्यानुभूति की संप्रेषणीयता बढ़ी है किन्तु लघु आकार वाले इस नाटक में भी छोटे-छोटे दृश्य और दृश्यों की अधिकता ने नाट्यानुभूति के आस्वादन में व्यतिक्रम उत्पन्न किया है। समीक्ष्य नाटक राज नारायण राय के नाट्यलेखन की आंतरिक तड़प को उभारता है। ऐसे ही विषयों और संदर्भों को लेकर भविष्य में उनसे और अधिक सुगठित नाटक की अपेक्षा करना गलत नहीं होगा।

ग्राम-दुर्गापुर, पोस्ट-गढ़बनैली
जिला-पूर्णिया (बिहार) 854325

तलाश, राज नारायण राय, जानकी प्रकाशन, अशोक राजपथ, चौहट्टा, पटना-800004, मूल्यः 200/- रुपये

■

मालवा के माच एवं अन्य लोक-कलाओं के विविध आयामों को समेटता एक महत्वपूर्ण ग्रंथ

गफूर स्नेही

अंकुर मंच, उज्जैन द्वारा प्रकाशित एवं रंग समीक्षक डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा द्वारा संपादित मुख्य रूप से माच पर आधारित पुस्तक 'मालवा का लोक-नाट्य और अन्य विधाएँ', महत्वपूर्ण कृति है। संपादकीय में माच को एक संपूर्ण नाट्य और मालवा अंचल का मूर्त स्वरूप माना गया है। पुस्तक में सम्मिलित लेखों ने मालवा के लगभग सभी लोककला आयामों को समेट दिया है।

भारतीय लोक-नाट्य और माच में देवीलाल सामर ने भरत मुनि के लिखित भाषायी स्वरूप को जटिल नियमबद्ध कहा तो लोक बोली को सरल-सहज लोक-नाट्य में समाहित बताया है। इसके स्रोत रामायण, महाभारत प्रमुख हैं। लोक-नाट्य की विशेषताओं और तुर्रा-कलंगी का विस्तार से वर्णन है। तुर्रा शक्ति और कलंगी पुरुष (शिव) का प्रतीक है। मालवा की माच परंपरा के संवाहक सिद्धेश्वर सेन ने माच के खेल रचे भी हैं। उज्जैन से प्रारंभ इस गाथा के नायक गोपाल गुरु हैं तो बाद में बालमुकुंद जी। 'माच का दर्शन' में डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित ने संस्कृत ग्रंथों से बात प्रारंभ की है जहाँ कालिदास का नाट्य दर्शन भी हैं। उन्होंने सांख्य दर्शन से वही पुरुष-प्रकृति के बीज को माच' में प्रस्फुटन होते दर्शाया है। 'राजस्थान और मालवा का ख्याल माच' में डॉ. महेन्द्र भानावत ने मालवा-राजस्थान को भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से नजदीक बताया है। इसमें विदूषक संस्कृत नाटकों की तरह अनिवार्य था।

डॉ. श्यामसुन्दर निगम ने तुर्रा-कलंगी को नौटंकी से एकदम पृथक् बताया है। लोकानुरंजन है, किंतु लोक आदर्श के साथ। मंच, बोली, वेशभूषा, गीत-संगीत, लय-नृत्य तक की बारीकियों का उल्लेख किया है। डॉ. जगदीशचन्द्र शर्मा माच को सीधे मचान से जोड़ते हैं। परवर्ती प्रांतों के साथ मालवा में केंद्रित माच गीतों से परिपूर्ण है। मालवा की नकल, स्वांग कला, सवाल-जवाब का सिलसिला, सूझ और दर्शन के साथ इतिहास और लोकजीवन से सम्मिश्रित है। इनमें गणेश, हनुमान भी लोक स्वरूप में हैं

डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा ने उज्जैन की माच परंपरा पर केंद्रित लेख में मालवा को विक्रमादित्य और कालिदास से लेकर भोज-मुंज काल तक सांस्कृतिक वैभव से पोषित बताया है। अन्य लेखों में उज्जैन के माच गुरुओं का ब्यौरा अधिक है। सरल-सहज शैली में वे अंकुर मंच तक वृत्तांत पूर्ण करते है।

डॉ. शिव चौरसिया माच के पैरोकार हैं। उन्होंने माच को सीधे लोक-नाट्य कहा है। इसकी तुल्यता गरबा, तमाशा, नौटंकी, गबरी के समकक्ष है। डॉ. शिवकुमार मधुन ने माच को लोक-संस्कृति के विविध रंगों से चित्रित बताया है। माच को लोक जीवन का अपना साहित्य भी कहा है। वैवाहिक पद्धति का चित्रण और हल्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत से भोजन तक का परिदृश्य उकेरा है। डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा ने अपने तीसरे संकलित आलेख में सामाजिक समरसता के महत्वपूर्ण सूत्र माच में तलाशे हैं। वेदकालीन संदर्भ से तुलसी काल तक दृष्टिपात करते हैं। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र से लोक-नाट्य माच तक नज़र दौड़ाते हैं। उन्होंने मालव सीमा, उसे लगे राजस्थान के ख्याल का प्रभाव और उज्जैन को माच भूमि निरूपित किया है। जाति एवं समाज संबंधी समस्या पर भी माच सुधारक दृष्टि रखते रहे हैं। वे माच को सच्चा साहित्य कहते हैं जो मूलतः सामाजिक-वैचारिक क्रांति का मार्ग प्रशस्त करता है।

मालवी माच में चिंतन की यात्रा में नरहरि पटेल ने इसे लोकरंजक बताया है। इसमें 68 रंगतें (धुनें) बतायी हैं, जो 24 लोक धुन पर आधारित हैं। स्वयं सिद्धेश्वर सेन ने 24-25 रंगतें साधी थीं। इस पर शोध की पर्याप्त संभावनाएँ हैं।

अशोक वक्त ने 'माच उर्फ़ शबे मालवा' में थिरकती संस्कृति में बात पूरी की है। उन्होंने माच की अलग-अलग रिवायतें भी बताई हैं। क्षेत्रों का उल्लेख करते हुए तकनीक और स्वरूप मंच साज-सज्जा अभिनय सहित मालवी वैभव का कोश माच हैं।

मालवी कवि झलक निगम माच के ढोलक तान फड़क के संदर्भ में सांगीतिकता पर बल देते हैं। बालमुकुंद जी से सिद्धेश्वर सेन और युवा अनिल पांचाल तक की माच यात्रा को श्री निगम ने सँजोया है। माच और काबुकी के तहत राजेंद्र चावड़ा ने इतिहास में 300 वर्ष की यात्रा की है। अभिनय, गायन और संगीत का परिपाक माच है। काबुकी मे तत्कालीन राजा-महाराजाओं का जीवन चरित्र है। ये जापान के समुराई हैं, जो संस्कृति के रक्षक हैं। सहिष्णुता से माच व्यापक होता गया है।

डॉ. धर्मनारायण शर्मा ने तुर्रा-कलंगी को सांस्कृतिक, धार्मिक समन्वय का माध्यम माना हैं जो यथार्थ के सन्निकट है। उन्होंने ब्रह्म और माया का आधार तुर्रा-कलंगी परंपरा में दिखायी है। यह कबीर और सूफ़ी विचारों से प्रभावित है। इस संदर्भ में विशद चर्चा की गई है।

पूरन सहगल ने यायावरी शोध से 'दशपुर-मालवांचल की माच परंपरा' को अहम चर्चा का विषय बनाया। माच के उद्भव-विकास में चंदेरी का योग बताते हुए जयसिंह राठौर, शाहअली और तुकनगरी गुँसाई की अनिवार्य उपस्थिति दर्ज़ की, जो तुर्रा-कलंगी के मूल में है।

सुरेन्द्र शक्तावत नीमच पर केंद्रित तुर्रा-कलंगी अखाड़ों के इतिहास की प्रामाणिक व्याख्या करते हैं। उन्होंने तुर्रा-कलंगी के प्रमुख खिलाड़ियों की सूची और कुछ चित्र भी दिऐ है।

ललित शर्मा की कलम से झालावाड़ की माच परंपरा की संक्षिप्त सारगर्भित प्रस्तुति की गई है। 'मालवा की लोककलाएँ और लोक विधाएँ' लेख में डॉ. आलोक भावसार ने मांडना, गोदना, संजा, चित्रावण, लोकगीत, नृत्य, माच की चर्चा की है। ये सभी वसुधैव कुटुंबकम् का समर्थन करते हैं।

'मालवा में लुप्त होती लोक विधा-बेकड़ली' लेख में डॉ. धमेन्द्र वर्मा ने बेकड़ली की चर्चा की है, जिसे बेजड़ी (घालमेल) भी कहा जाता है। इसमें छल्ले गाते हैं माँगते हुए। एक प्रकार से लाँगूरिया के निकट है। 'मालवी हीड़ लोक काव्य' लेख को रमाकांत चौरड़िया ने सिद्धेश्वर सेन की पंक्तियों के साथ प्रारंभ किया है-मोती की मनवार मालवी, ममता भरयो टिपारो, धन-धन या मालव की धरती, धन है मनक जमारो। हीड़ बगड़ावत वीर गाथा है। पशुचारण काल में जन्मी हीड़ में हेऽऽऽ... की टेर और लोकदेवताओं की स्तुति समाहित है।

पुस्तक में 'मालवा की चित्रकला-शैलचित्रों से चित्रावणतक- (डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित), मालवा-निमाड़ एवं अन्य अंचल के पारंपरिक लोकचित्र (बसंत निरपुणे), मालवा की चित्रावण विधा (डॉ. लक्ष्मीनारायण भावसर), मालवा की लोककलाः मांडना और संजा (कृष्ण वर्मा) आदि महत्वपूर्ण और सारगर्भित लेख भी हैं। अस्सी का माच मेला- प्रयोजन एवं अनुभव, मालवा माच महोत्सवः खुली आँखों का सपना (हफीज खान), मालवा माच महोत्सवः विविध रंगी माच प्रस्तुतियाँ (डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा) मालवा माच महोत्सव अपनी पहचान को बचाए रखने का सार्थक उपक्रम (राजेन्द्र चावड़ा) 'बाल माच प्रदर्शन और लोक संस्कृति संरक्षण की कोशिशें' में पंकज आचार्य उम्मीद जगाते हैं। अंत में, लोकरंग श्री सम्मान से विभूषित विभूतियों का विवरण है। यह ग्रंथ मालवी संस्कृति और माच के संरक्षण का सुदृढ़ चरण है।

सी-79, अर्पिता एंक्लेस
नानाखेड़ा, उज्जैन (म. प्र.)

मालवा का लोकनाट्य माच और अन्य विधाएँ, डा0 शैलेन्द्रकुमार शर्मा, अंकुर मंच, फव्वारा चौक, उज्जैन, मूल्यः 100 रु.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैचारिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे मार्कण्डेय

प्रेमचन्द के बाद ग्रामीण पृष्ठभूमि से जुड़ी कहानियों को सामने लाने का काम फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय और शिव प्रसाद सिंह ने किया। अपने से छोटों को बात रखने का पूरा मौका देना और उनकी अच्छी बात पर आगे बढ़कर शाबासी देना मार्कण्डेय की विशेषताओं में शामिल था। उभरते कथाकारों को मंच दिलाने के लिये भी उन्होंने प्रयास किया। मार्कण्डेय की कृतियो का पुनर्मूल्यांकन करना होगा। सच कहा जाय तो वह वैचारिक स्वतंत्रता के समर्थक थे।'' वरिष्ठ आलोचक मैनेजर पाण्डेय ने अपने 30 वर्षों के कथाकार साथी मार्कण्डेय की स्मृति में महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के इलाहाबाद के क्षेत्रीय केन्द्र में आयोजित स्मृति सभा में व्यक्त किये। इलाहाबाद की कथात्रयी अमरकांत/ मार्कण्डेय/ शेखर जोशी के बीच की एक कड़ी का टूटना, वरिष्ठ कथाकार शेखर जोशी की संवेदना में अपने साथी के बिछड़ने का दर्द शामिल था। उन्होंने कहा कि 'गुलरा के बाबा' की जो छवि उनकी कहानी में है, उसी लीक पर मार्कण्डेय स्वयं चलते थे। उन्होंने मार्कण्डेय को श्रेष्ठ संपादक के साथ बड़ा कथाकार भी बताया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के पूर्व अध्यक्ष एवं बहुवचन पत्रिका के संपादक प्रो0 राजेन्द्र कुमार ने कहा कि प्रेमचंद के बाद मार्कण्डेय गाँव को अपनी रचनाओं में जीते रहे। उनकी 'कथा' पत्रिका आज भी हमारे लिये 'मानक' है। उन्होंने संपादक के लोकतांत्रिक दायित्व का निर्वहन तो किया ही, नई पीढ़ी के रचनाकारों में उसी उत्साह से अपने को तलाशते भी रहे। कथा लेखिका अनीता गोपेश ने कहा कि वह जिस भी कार्यक्रम में होते थे उस पर प्रगतिशील का कलेवर जरूर चढ़ता था।

समकालीन जनमत के संपादक रामजी राय ने कहा कि मार्कण्डेय कथाकार के साथ अद्भुत किस्सागो थे। वे गंभीर बातों को भी बड़ी आसानी से अपनी बातों में प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी बातों में नए विचार होते थे, नीरसता नहीं। नई पीढ़ी के साथ उनका गहरा जुड़ाव था। कामरेड जिया उल् हक ने कहा कि उन्होंने हमेशा अपने को जन आंदोलनों से जोड़े रखा। वह एक बेहतर इंसान थे।

स्मृति सभा के अंत में शोक प्रस्ताव पढ़कर अपने प्रिय कथाकार एवं साथी को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। कार्यक्रम का संयोजन क्षेत्रीय केन्द्र के निदेशक संतोष भदौरिया ने किया और संचालन युवा कवि विवेक निराला द्वारा किया गया। स्मृति सभा में अजय जैतली, हरिश्चन्द्र पाण्डे, सुभाष गांगुली, प्रणय कृष्ण, लालसा यादव, संतोष चतुर्वेदी, अनिल रंजन भौमिक, प्रवीण शेखर, आमोद माहेश्वरी, दिनेश ग्रोवर, सतीश अग्रवाल, नीलम शंकर, के0के0 पाण्डेय, असरार गांधी, सुरेश कुमार शेष, अरविन्द बिन्दु, अनुपम आनन्द, प्रकाश त्रिपाठी, कमलेश सिंह, प्रेमशंकर, रविनंदन सिंह, नन्दल हितैषी, श्री प्रकाश मिश्र, हीरालाल, सुधांशु मालवीय, रश्मि मालवीय, उर्मिला जैन, महेन्द्र राजा जैन, मीनाराय सहित नामचीन से लेकर नई पीढ़ी तक के रचनाकार, रंगकर्मी एवं बुद्धिजीवी मौजूद थे।

प्रस्तुति : निधि सिंह, इलाहाबाद

हिन्दी विश्वविद्यालय में 'कथा-समय'

पूरे विश्व परिदृश्य में जो परिवर्तन हुए हैं, उनकी छाया कथा साहित्य में भी देखने को मिलती है। इस व्यापक वैश्विक परिवर्तन को रेखांकित करने तथा हिन्दी कथा साहित्य में आए परिवर्तनों की पड़ताल करने के लिए महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा में त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी 'कथा समय' का आयोजन विश्वविद्यालय के साहित्य विद्यापीठ की ओर से किया गया। 'कथा समय' के प्रथम अकादमिक सत्र में 'हिन्दी कहानी के दो दशकों की यात्रा' द्वितीय सत्र में 'हिन्दी के उपन्यास के दो दशकों की यात्रा', तृतीय सत्र में 'हिन्दी कथा आलोचना के दो दशकों की यात्रा', पर हिन्दी साहित्य की तीन पीढ़ियों के उपन्यासकार, कथाकार व आलोचकों ने विचार-विमर्श किया। 'कथा समय' के उद्घाटन समारोह में बीज वक्तव्य देते हुए सुप्रसिद्ध कथाकार और नाटककार असगर वज़ाहत ने कहा कि आज अभिव्यक्ति के माध्यम के लिए अख़बारों में स्थान नहीं मिल रहा है, आज भी अभिव्यक्ति का आधार कथा साहित्य है। विचार को किनारे रखने वाली रचनाएँ आ रही हैं जबकि नई रचनाओं से आंदोलन को जो ऊर्जा मिलनी चाहिए थी वह नहीं प्राप्त हो रही है।

उद्घाटन भाषण देते हुए से0रा0 यात्री ने कहा कि रचनाकार अपने कथ्य के साथ अपने शिल्प में भी एक विशेष किस्म का अलगाव अथवा भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। कथ्य के साथ कथन का स्वरूप भी रचनाकार के व्यक्तित्व को रेखांकित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कुलपति विभूति नारायण राय ने कहा कि समाज का आईना साहित्य का आंदोलन विहीन होना चिंतनीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान पूरा साहित्य आंदोलनों के झंझावतों से जूझ रहा था। लेकिन आज हम कैसे विमुख हो रहे हैं, इस पर हमें सोचना होगा। विषय प्रवर्तन करते हुए साहित्य विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो0 सूरज पालीवाल ने कहा कि हिन्दी का कथ्य और उसके लोक दर्शन की परिकल्पना केवल इसलिए नहीं की गई है कि केवल कहानियों पर चर्चा की जाए, बल्कि इतिहास के जिस मोड़ पर हम खड़े हैं वह कितनी ख़तरनाक स्थिति में है इसी बात को सारगर्भित करने के लिए 'कथा समय' का आयोजन किया गया है।

'हिन्दी कथा साहित्य के दो दशक' विषय पर आयोजित सत्र की अध्यक्षता करते हुए साहित्यकार प्रो0 गंगा प्रसाद विमल ने कहा कि पिछले दो दशक पिछली शताब्दी के अंतिम दशक के निष्कर्ष और नये शताब्दी के प्रवेश दशक के निष्कर्ष का युग्म है। कथाकार संजीव ने कहा कि साहित्य को जीवित बचाए रखने के लिए आलोचनात्मक दृष्टिकोण ज़रूरी है और हमें आत्ममुग्धता से बाहर आना पड़ेगा। कथाकार वंदना राग ने युवा कथाकारों द्वारा आंदोलन से दूर हटने की बात को खारिज करते हुए कहा कि यह पीढ़ी मध्यवर्ग से आयी हुई है। आज की पीढ़ी के समक्ष बाज़ारवाद का वातावरण है। डा0 महुआ माजी ने कहा कि वैश्वीकरण के कारण भारत की अपनी अर्थव्यवस्था डावांडोल हो गई है। तेजेन्द्र शर्मा ने सवाल उठाया कि भारत के बाहर रचे जा रहे साहित्य को प्रवासी साहित्य का नाम दिया गया है, आखिर क्यों ? वीरेन्द्र मोहन ने कहा कि समकालीन हिन्दी कहानी जीवन को समग्रता में कह पाने में सक्षम है।

'हिन्दी उपन्यास के दो दशक' विषय पर आयोजित सत्र की अध्यक्षता करते हुए साहित्यकार भगवान दास मोरवाल ने कहा कि नई पीढ़ी लेखन को कैरियर के रूप में ले रही है। वीरेन्द्र यादव ने कहा कि विगत कुछ वर्षों से सांप्रदायिक शक्तियों का तेजी से उभार हुआ है। हाशिए के लोग केन्द्र में आ रहे हैं।

'हिन्दी कथा आलोचना के दो दशक' विषय पर आयोजित सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रो0 असग़र वजाहत ने कहा कि आलोचना रचना, समय और पाठक के बीच में रहती है, एक-दूसरे से पारस्परिक रिश्ता बनाती है पर आज ये काम हमारी आलोचना नहीं कर रही है।

विश्वविद्यालय के साहित्य विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो0 सूरज पालीवाल ने बतौर वक्ता के रूप में कहा कि रचना यदि संपूर्ण नहीं है तो आलोचना भी संपूर्ण नहीं हो सकती। नई पीढ़ी के रचनाकारों में निरंतरता का अभाव देखा जा रहा है। विशेष कर्तव्याधिकारी राकेश ने विमर्श में हस्तक्षेप करते हुए कहा कि उपन्यास भी अपने आप में औद्योगीकरण का एक उत्पाद है। कहानी किसी आकस्मिक कारणों नहीं बल्कि समाज के सरोकारों से बदल रही है। प्रोफ़ेसर राकेश मिश्र ने कहा कि आज ज़्यादातर आलोचनाएँ पसंद से लिखी जा रही हैं। वंदना राग ने कहा कि आलोचना साहित्य की सबसे सम्माननीय और वस्तुपरक विधा है। आज आलोचना वस्तुपरक न होकर व्यक्तिपर हो गई है। साहित्यकार महेन्द्र ने आलोचना पर बहस छेड़ते हुए कहा कि युवा साहित्यकारों को अपने चश्में से आलोचना को देखने की ज़रूरत है। एस0आर0 हरनोट ने कहा कि विकास के नाम पर आज जो पर्यावरण क्षति हो रही है इस पर साहित्यकारों का ध्यान क्यों नहीं जाता ?

'कथा समय' के समापन सत्र में बतौर मुख्य वक्ता के रूप में साहित्यकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने कहा कि आज के लेखक आंदोलन से मुक्त हो गए हैं। सारे आंदोलन विचार की उपज से हुए हैं। आंदोलन से मुक्त होने का अर्थ है विचारों से मुक्त होना।

समापन समारोह की अध्यक्षता करते हुए कुलपति विभूति नारायण राय ने कहा कि प्रेमचंद ने वर्णव्यवस्था, सूदखोरी, शोषणकारी महाजनी सभ्यता जैसी समस्याओं पर लिखा, ये समस्याएँ आज भी विद्यमान हैं। इन समस्याओं पर आज साहित्यकारों को ध्यान देने की आवश्यकता है। समारोह में देश-विदेश से आए साहित्यकार, वि0वि0 के शैक्षणिक, ग़ैर-शैक्षणिक कर्मी, शोधार्थी, विद्यार्थी उपस्थित थे।

प्रस्तुति : अमित कुमार विश्वास
शोधार्थी (जनसंचार विभाग)
म0गां0अं0हिन्दी वि0वि0, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

'ख़याल के फूल' का लोकार्पण समारोह

यह किताब इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि इसकी उद्धरणशीलता अद्‌भुत है। प्रायः हर शेर पढ़ने के साथ ही स्मृति में अंकित हो जाता है और जिसकी उपस्थिति स्मृति में बनी रहे वही कृति कालजयी रचना कहलाने योग्य है। आम जन-जीवन के सरोकारों से लेकर वैश्विक सवालों यानी अपने समय और समाज की तमाम हलचल, मेयार 'सनेही' के इस पहले ग़ज़ल संग्रह 'ख़याल के फूल' में शायरी के शऊर और सलाहीयत के साथ दर्ज़ है और यही काबिलियत उनकी शायरी को नज़ीर, मीर, ग़ालिब और फिराक़ जैसे बड़े शायरों की पाँत में रखती है। ये विचार सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार एवं आकाशवाणी दिल्ली के निदेशक लक्ष्मीशंकर वाजपेयी ने बनारस के शायर जनाब मेयार सनेही के पहले ग़ज़ल संग्रह 'ख़याल के फूल' के लोकार्पण के अवसर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखते हुए कहा कि मेयार सनेही के इस ग़ज़ल संग्रह से ग़ज़ल विधा और समृद्ध हुई है।

जाने-माने समाजकर्मी और विचारक सुरेश पंडित ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि अब ग़ज़ल को लोकप्रिय विधा कहकर बच निकलना मुश्किल है। ग़ज़ल, हिन्दी साहित्य में विमर्श की विधा बन चुकी है और इसके पीछे दुष्यंत कुमार से लेकर मेयार सनेही तक ग़ज़ल लिख रहे हैं।

इस समारोह एवं साहित्यिक संस्था 'नया आयाम' के संयोजक विनय मिश्र ने मेयार सनेही की शायरी को संवेदनहीन होकर सूखते समय की जड़ों पर सिंचन करने वाला जल बतलाया।

विद्वान समीक्षक प्रो0 जयप्रकाश व्यास ने मेयार सनेही की शायरी की साफगोई को सराहते हुए कहा कि रचनाएँ वहीं टिकती हैं जो सादगी का असरदार तरीका अपनाते हुए बात करती है। मेयार जी शायरी में यह ख़ासियत मौजूद है। विशिष्ट अतिथि एवं दिल्ली से पधारी शायरा ममता किरण ने मेयार जी की ग़ज़लों में उपजे सामाजिक सरोकारों का विस्तार से विश्लेषण करते हुए बताया कि उनकी ग़ज़लों में अपने समय का यथार्थ पूरी व्यंजना के साथ उपस्थित है।

समारोह की अध्यक्षता डॉ0 दरवेश भारती एवं संचालन विनय मिश्र ने किया।

हिन्दी का लोक वैविध्यपूर्ण व रचनात्मकता से है भरा-कुलपति राय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा में 'हिन्दी का लोक' पर त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई। संगोष्ठी में 'लोक भाषा और मानक भाषा का अंतर्संबंध एवं अंतर्द्वंद्व', 'लोक का साहित्य और साहित्य का लोक', 'प्रदर्शनकारी लोककलाएँ और आज का समय', 'लोक की प्रतिरोधी चेतना और आज का समय' विषयों पर आयोजित सत्र में देशभर से आए हिन्दी लोक चिंतकों ने विचार विमर्श किया। उद्‌घाटन वक्तव्य में विश्वविद्यालय के कुलपति विभूति नारायण राय ने कहा कि भोजपुरी, अवधी, मैथिली, ब्रज आदि बोलियों से हिन्दी समृद्ध होती है। इन बोलियों से हिन्दी ऊर्जा प्राप्त करती है, साथ ही ये बोलियाँ हिन्दी के लिए खाद की तरह काम करती हैं। हिन्दी का लोक बहुत ही वैविध्यपूर्ण व रचनात्मकता से भरापूरा संसार है। लोक कला के बोल कुछ ही दूरी पर बदल जाते हैं पर उनका कथ्य प्रतिरोध की चेतना को साकार करती दिखाई पड़ती है। आज हिन्दी को खंडित करने की कोशिश नहीं की जानी चाहिए क्योंकि हिन्दी में लोकतांत्रिक चेतना निहित है। हमें हिन्दी के पक्ष में खड़े होने की ज़रूरत है। हम अवधी, छत्तीसगढ़ी का विरोध नहीं करते, ये तो हिन्दी के लिये खाद की तरह काम करती हैं।

प्रमुख वक्ता के रूप में मध्यप्रदेश कला अकादमी के कपील तिवारी ने कहा कि हिन्दी के साथ 35 जनपदीय भाषाएँ सहयात्रा कर रही हैं, यही हिन्दी की संस्कृति है। भाषा का प्रश्न संस्कृति का भी होता है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो0 अमरनाथ ने कहा कि इतने वर्षों के बाद भी हिन्दी भाषा ज्ञान की भाषा नहीं बन पायी। स्वयं गद्य का विकास नहीं हुआ है तो मेडिकल, इंजीनियरिंग की पढ़ाई की बात सोचना कहाँ तक जायज है।

'लोक भाषा और मानक भाषा का अंतर्संबंध एवं अंतर्द्वंद्व' विषय पर आयोजित सत्र में विश्व भोजपुरी सम्मेलन के अंतरराष्ट्रीय महासचिव अरुणेश नीरन ने प्रमुख वक्ता के रूप में कहा कि आज हम 'हिन्दी का लोक' पर विमर्श कर रहे हैं, जबकि हिन्दी का कोई क्षेत्र ही नहीं है। अध्यक्षीय वक्तव्य में विश्वविद्यालय के अनुवाद विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो0 आत्म प्रकाश श्रीवास्तव ने कहा कि मानकीकरण किसी भाषा को क्षेत्रीयता से मुक्त करता है। यह क्षेत्रीयता सांस्कृतिक तौर पर क्षेत्र विशेष से विस्तारित होते हुए आगे बढ़ती है। प्रो0 राज नारायण पाठक ने लोक भाषा और मानक भाषा के अंतर्संबंधों को उल्लेखित करते हुए कहा कि मानक भाषा बड़े समाज की भाषा होती है।

'लोक का साहित्य और साहित्य का लोक' विषय पर आयोजित सत्र की अध्यक्षता करते हुए विश्वविद्यालय के साहित्य विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो0 सूरज पालीवाल ने कहा कि हिन्दी में लोक साहित्य को जिस तरीके से दोयम दर्ज़े का मान लिया गया है उससे लोक में फैली हुई विपुल साहित्यिक संपत्ति का नुकसान हो रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लोक में विद्यमान साहित्य को उठाकर उसका मूल्यांकन किया और उसे साहित्यिक श्रेणी में रखा। लोक बहुत ही समृद्ध होता है इसलिए उसका साहित्य भी प्रतिरोध से भरा हुआ तथा चेतना से संपन्न होता है।

प्रमुख वक्ता के रूप में छपरा विश्वविद्यालय के डा0 लालबाबू यादव ने कहा कि वर्तमान समाज में भी लोक साहित्य की प्रासंगिकता बनी हुई है। डा0 अरुणेश नीरन ने कहा कि बिना प्रतिरोध के साहित्य का कोई अर्थ नहीं होता है और उसे यह शक्ति मिलती है लोक से। कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रो0 अमरनाथ ने कहा कि इस समय हिन्दी की कई बोलियाँ संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल होने की माँग कर रही हैं। क्या खड़ी बोली हिन्दी का साहित्य ही हिन्दी का साहित्य होगा?

'लोक की प्रतिरोधी चेतना और आज का समय' विषय पर आयोजित सत्र की अध्यक्षता करते हुए विश्वविद्यालय के संस्कृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो0 मनोज कुमार ने कहा कि भूमंडलीकरण के दौर में ग़रीबी प्रदर्शन ड्राइंग रूम की शोभा की वस्तु बन गई है। हरिओम राजौरिया ने लोक पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि लोक कलाकारों की ताकत व आत्मबल गाँवों में टूट रही है। भारतीय फिल्म संस्थान, पुणे के निदेशक पंकज राग ने लोकचेतना के लिए 1857 के विद्रोह को सबसे सटीक बताते हुए कहा कि उस समय जीवनशैली के साथ ही जीवन का संघर्ष शुरू हुआ था। लूटपाट उन्हीं लोगों की हो रही थी जिन्होंने औपनिवेशिक सत्ता से कुछ प्राप्त किया था। लोक गीतों में लूट के लिए उल्लास के भाव होते थे। आज फिर से नव उपनिवेशवादी शक्तियाँ हम पर हावी होती जा रही हैं। साहित्यकार डा0 बसंत त्रिपाठी ने कहा कि लोक के लिए आज बातचीज और विचार की जगह हस्तक्षेप की ज़रूरत है। सत्र का संचालन करते हुए डा0 संतोष भदौरिया ने कहा कि आज़ादी के पाँच दशक के बाद भी हम गाँव में गांधी के चरखे व खादी को नहीं पहुँचा सके। बाजार हमें मनुष्यमात्र नहीं अपितु उपभोक्ता मानकर चलता है। इस अवसर पर देशभर के हिन्दी लोक के चिंतक विद्वान, विश्वविद्यालय के शैक्षणिक, गैर-शैक्षणिक कर्मी, शोधार्थी व विद्यार्थी उपस्थित थे।

प्रस्तुति : अमित कुमार विश्वास
शोधार्थी (जनसंचार विभाग)
म0गा0अ0हि0वि0, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

विश्व हिन्दी संग्रहालय एवं अभिलेखन केंद्र

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन की हिन्दी अध्ययनशाला में स्थापित विश्व हिन्दी संग्रहालय एवं अभिलेखन केंद्र में संग्रहकार्य, सर्वेक्षण एवं दस्तावेजीकरण जारी है। विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हिन्दी के बहुकोणीय रेखांकन के लिए फरवरी-2007 में स्थापित इस संग्रहालय एवं अभिलेखन केंद्र में विगत एक हज़ार वर्षों के हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण पक्षों को प्रस्तुत करने के साथ ही साहित्यकार चित्र दीर्घा, रचनाकारों के हस्तलेख, दुर्लभ साहित्यिक एवं शोध पत्रिकाएँ, महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिकाओं के विशेषांक, देश-विदेश के विभिन्न भागों से प्रकाशित हिन्दी समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ, प्रकाशन सूचियाँ, अनुसंधान सूचनाएँ एवं अन्य आधार सामग्री को सँजोया गया है।

विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के विश्व हिन्दी संग्रहालय एवं अभिलेखन केन्द्र के समन्वयक तथा हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा ने बताया कि यहाँ स्थापित श्री गुरुनानक अध्ययन पीठ की दृष्टि से भारतीय भाषाओं में भक्ति साहित्य एवं गुरुनानक देव के साहित्य के साथ ही श्री गुरु ग्रंथ साहिब, महत्वपूर्ण पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ सँजोयी गई हैं। बसव समिति, बेंगलोर द्वारा अर्पित साहित्य, स्त्री एवं दलित विमर्श, राजभाषा एवं प्रयोजनमूलक हिन्दी से संबद्ध प्रकाशनों को भी संग्रहीत किया गया है। प्रदर्शनकारी एवं रूपंकर कलाओं, संस्कृत साहित्य से संबद्ध सामग्री, बाल साहित्य, पर्यटन साहित्य, स्वाधीनता आंदोलन पर केंद्रित साहित्य भी यहाँ सँजोया गया है। हिन्दी की साहित्यिक एवं लघु पत्रिकाओं के दुर्लभ अंको के साथ ही वर्तमान में प्रकाशित हो रही तीन सौ से अधिक पत्र-पत्रिकाओं के अंक भी यहाँ अवलोकनार्थ उपलब्ध हैं।

संग्रहालय में हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकारों पर एकाग्र वृत्तचित्रों के साथ ही लोक भाषाओं में निबद्ध गाथा, कथा तथा गीतों की ऑडियो-वीडियो सीडी सँजोयी गयी हैं, जिनका समय-समय पर प्रदर्शन किया जाता है। इसी प्रकार प्रमुख साहित्यकारों के चित्र हस्तलेख पत्र आदि के डिजिटलीकरण की दिशा में भी कार्य जारी है। संग्रहालय में विभिन्न साहित्यकारों एवं साहित्य रसिकों द्वारा भी महत्वपूर्ण सामग्री अर्पित की जा रही है। हाल के दशकों में विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में एक साथ कई शोध दिशाओं में कार्य हुआ है, जिनमें हिन्दी भाषा-साहित्य एवं संस्कृति के विविध आयामों के साथ ही हिन्दी कंप्यूटिंग, वेब पत्रकारिता, दृश्य जनसंचार माध्यम, मशीनी अनुवाद, राजभाषा हिन्दी आदि के अधुनातन संदर्भ उल्लेखनीय हैं। यहाँ विश्वभाषा हिन्दी के साथ ही लोकभाषा मालवी के साहित्य एवं संस्कृति को लेकर महत्वपूर्ण काम हुआ है और आज भी जारी है। मालवी और उसकी उपबोलियों-सोंधवाड़ी, रजवाड़ी, दशोरी, उमठवाड़ी, निमाड़ी आदि, के साथ ही बुंदेली, हाड़ौती, मेवाड़ी, भोजपुरी, हरियाणवी, अवधी, ब्रजभाषा, निमाड़ी, भीली, बारेली, सहरिया, गोंडी आदि पर भी काम हुआ है। मालवी लोक-संस्कृति के विविध पक्षों, यथा-व्रत, पर्व उत्सव पर केंद्रित लोक-साहित्य लोक-देवता साहित्य पर्यावरण श्रृंगारपरक लोकगीत, हीड़ काव्य, माच-परंपरा, संजा पर्व, चित्रावण, मांडणा, विरद बखाण, गाथा साहित्य, लोकोक्ति आदि पर भी महत्वपूर्ण अनुसंधान एवं अभिलेखन हुआ है।

विश्व हिन्दी संग्रहालय एवं अभिलेखन केंद्र में मालवी लोक-संस्कृति को लेकर विशेष कार्य जारी है। इस हेतु मालवी संस्कृति के समेकित रूपांकन एवं अभिलेखन की दिशा, में प्रयास जारी हैं। यहाँ हिन्दी एवं मालवी के शीर्ष रचनाकारों के परिचयात्मक विवरण, कविता एवं चित्रों की दीर्घा सँजोयी गयी है। चित्रावण, संजा, मांडणा, कठपुतली कला सहित मालवा क्षेत्र के विविध कलारूपों को भी इस संग्रहालय में सँजोया गया है। हिन्दी और उसकी क्षेत्रीय बोलियों, विशेषतः मालवी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विविध पक्षों से संबद्ध साहित्य, लेख एवं सूचनाओं का दस्तावेजीकरण इस केंद्र में किया जा रहा है। मालवी, बुंदेली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाड़ौती, मेवाड़ी, भोजपुरी, हरियाणी, अवधी, ब्रजभाषा, निमाड़ी, भीली, बारेली, सहरिया, गोंडी जैसी बोलियों के अभिलेखन की दिशा में कार्य जारी हैं हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन हिन्दी के साथ ही भारत की विविध बोलियों के लोक-साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में कार्य के लिए कृत संकल्पित है और इस दिशा में रचनात्मक सुझावों का स्वागत करेगा। इस प्रथम विश्व हिन्दी संग्रहालय एवं अभिलेखन केंद्र के समुचित विकास की दिशा में संभावनाओं के द्वार खुले हुए हैं।

प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा
समन्वयक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष
विश्व हिन्दी संग्रहालय एंव अभिलेखन केन्द्र
हिन्दी अध्ययनशाला
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

नई धारा

'त्रिकोण के तीनों कोण' के माध्यम से कथाकार-पत्रकार हरीश पाठक ने हिन्दी में रघुवीर सहाय की परंपरा को आगे बढ़ाने का काम किया है। इनकी रचनाओं में मानवीय संवेदना पाठको को झकझोरती है। कमलेश्वर, तीजनबाई, प्रमोद महाजन आदि पर लिखीं इनकी रचनाएँ बार-बार पढ़ने का मन करता, हैं।

ये बातें प्रख्यात कथा-लेखिका चित्रा मुद्गल ने चर्चित कथाकार-पत्रकार हरीश पाठक की पुस्तक 'त्रिकोण के तीनों कोण' का लोकार्पण करते हुए कहीं। प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा आयोजित इस समारोह की अध्यक्षता वरिष्ठ आई0ए0एस0 अधिकारी एवं कथाकार व्यासजी ने की, जबकि संचालन कवि-समालोचक डॉ. शिवनारायण ने किया। विशिष्ट अतिथि के रूप में बोलते हुए सुप्रतिष्ठित लेखक एवं बिहार के पूर्व गृह-सचिव जियालाल आर्य ने कहा कि हरीश पाठक हिन्दी के उन सजग पत्रकारों में हैं, जिनका लेखन देश की छोटी बड़ी घटनाओं को मानवीय संवेदना की फूँक से विराट फलक दे देता है। समालोचक डॉ. शैलेश्वर सती प्रसाद ने पुस्तक की भाषा की प्रशंसा करते हुए कहा कि हरीश पाठक की पत्रकारिता की भाषा जन-सापेक्ष होने के कारण हिन्दी में अज्ञेय, रेणु आदि की परंपरा को विकसित ही नहीं करती, उसे मानवीय भी बनाती है। कथाकार डॉ0 कलानाथ मिश्र ने इस अवसर पर कहा कि हरीश पाठक की पत्रकारिता सृजनात्मक रचनाशीलता की ज़मीन तैयार करती है। 'नई धारा' के संपादक डॉ. शिवनारायण ने इस अवसर पर कहा कि 'त्रिकोण के तीनों कोण' के पहले खंड 'सिलसिला' के सारे लेख 'धर्मयुग' के चर्चित स्तंभ 'सुर्खियों के पीछे' में 1987 से 1996 तक लिखे गए। अन्य वक्ताओं में मीरा मिश्र, कमलेश पाठक, कथाकार ए0 एन0 नन्द, डॉ0 ध्रुव कुमार आदि ने भी पुस्तक की सराहना करते हुए हरीश पाठक के पत्रकारिता कर्म को रेखांकित किया।

प्रस्तुतिः आरती सिंह
305, अमन अपार्टमेंट, शांति निकेतन कॉलोनी
भूतनाथ रोड, पटना-800026

आनंद हर्षुल का कहानी संग्रह

'अधरवाया फल' लोकार्पित

कथाकार आनंद हर्षुल के तीसरे कहानी संग्रह 'अधरवाया फल' का लोकार्पण प्रसिद्ध कथाकार काशीनाथ सिंह ने किया। प्रगतिशील लेखक संघ रायपुर द्वारा महंत घासीदास संग्रहालय के सभागार में आयोजित एक समारोह में काशीनाथ ने सिंह आनंद हर्षुल के कथा-कर्म को कविता, कहानी और चित्रकला का अद्भुत रसायन निरूपित करते हुए कहा कि उनकी कहानियों में दृश्यात्मकता की महत्वपूर्ण भूमिका है। उनका कथ्य बहुत मुखर नहीं है क्योंकि वे गहरी संवेदना के साथ अंडरटोन में अपनी बात कहते हैं

छत्तीसगढ़ प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष, कथाकार रमाकांत श्रीवास्तव ने कहा कि आनंद की कहानियों का वैशिष्ट्य उनके सजग शिल्प में ही निहित नहीं है, बल्कि उनके यहाँ कथ्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है। वे यथार्थवाद की रूढ़ियों को तोड़ते हैं लेकिन सामाजिक यथार्थवाद से पलायन नहीं करते।

कथाकार जयशंकर ने कहा कि आनंद की कहानियाँ जितनी मेहनत के साथ लिखी गई हैं, पाठक से भी उतनी ही मेहनत की माँग करती हैं। वे इतिहास को अपने ही ढंग से रचती हैं तथा मानवीय विडंवनाओं से रेखांकित करती हैं।

डॉ. राजेद्र मिश्र ने कहा कि आनंद की कहानियाँ विचारधारा के दबाव से अलग अपनी विशिट भाषा के जरिए विजन प्राप्त करती हुई मंथर गति से आगे बढ़ती हैं।

सियाराम शर्मा ने आनंद को घटनाओं का नहीं बल्कि स्थितियों का कहानीकार बताया। वे यथार्थ की ऊपरी सतह को भेद कर सतह के नीचे के यथार्थ को उद्घाटित करते हैं।

समारोह का संचालन जय प्रकाश ने तथा संयोजन सुभाष मिश्र ने किया। स्वागत उद्बोधन में सुभाष मिश्र ने आनंद हर्षुल के कथा-संदर्भ पर परिचयात्मक टिप्पणी दी। समारोह के अंत में लोकार्पित पुस्तक में संकलित कहानी 'कैमरे की आँख' के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाट्य-रूपांतरण का मंचन योग मिश्र के निर्देशन मे 'नेपथ्य' टुंगी के कलाकारों ने किया। इस प्रस्तुति में संजीव मुखर्जी, लाल बाबू तथा नीतेश ने प्रभावी अभिनय किया।

प्रस्तुति : जीवेश प्रभाकर

राजा राधिकारमण की श्रेष्ठ कहानियों का लोकार्पण

दरभंगा नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया द्वारा प्रकाशित और कमलानंद झा द्वारा सद्यः संपादित पुस्तक 'राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह की श्रेष्ठ कहानियाँ' का लोकार्पण कवयित्री कथाकार पद्माशा झा ने किया। विगत माह साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था 'अभिव्यक्ति' की ओर से लक्ष्मेश्वर पब्लिक लाइब्रेरी में हुए इस आयोजन की अध्यक्षता हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान प्रो0 प्रभाकर पाठक ने की। पुस्तक विमोचन के बाद ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय की कवयित्री कुलपति पद्माशा झा ने कहा राजा राधिकारमण ने हिंदी को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। कमलानंद ने उनकी चुनिंदा कहानियाँ प्रस्तुत कर पाठकों के साथ नए सिरे से उनका रिश्ता जोड़ा है पुस्तक की समीक्षा करते हुए प्रो. सतीश कुमार सिंह ने कहा कि राजा साहब की कहानियों से रू-ब-रू हुए बग़ैर हिंदी-कथा की विकास-यात्रा का आकलन संभव नहीं है।

इग्नू के क्षेत्रीय निदेशक डा0 शंभूशरण सिंह संपादक के इस अभिमत से सहमत नहीं थे कि राजा साहब की कहानियाँ युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त नहीं करती। उन्होंने कहा कि उन कहानियों में तात्कालिकता की जगह सर्वकालिकता को प्रधानता दी गई है। संपादक डा. कमलानंद झा ने कहा कि आलोचना की समग्रता के अभाव में कई समृद्ध रचनाकार उपेक्षित रह जाते है। पूर्वाग्रही आलोचना की वजह से राजा साहब को भी वह महत्व नहीं मिला जिसके वे अधिकारी थे।

अध्यक्षीय उद्बोधन में डॉ. प्रभाकर पाठक ने संपादक की रचनादृष्टि और संपादकीय विवेक की सराहना की। उन्होंने उम्मीद जताई कि यह संकलन राजा साहब की कहानियों पर विमर्श के नए अवसर उपलब्ध कराएगा। कार्यक्रम का संचालन संस्था के अध्यक्ष डॉ. कृष्ण कुमार ने किया। स्वागत भाषण किया डॉ. अमर कांत कुमार ने।

प्रस्तुतिः किशोर कुमार कुशवाहा
नागेन्द्र झा महिला महाविद्यालय
लहेरियासराय, दरभंगा

स्व0 सुदीप बनर्जी और विष्णु खरे 'भवभूति अलंकरण' से अलंकृत

मूल प्रवृत्तियों और प्रकृति के ठेठ आग्रहों के बावजूद हिन्दी कविता जब-जब किसी शून्यमिश्रित गहरे भ्रम का शिकार हुई, उसे समुचित दिशा-दशा देने की गरज लिए कुछ फरिश्ताई कवियों ने अवतार लिया। मन और मानक बदलने वाले इन अवतारी काव्यशिल्पियों के संघर्ष ने सौहार्द का अनूठा मुहावरा ही नहीं गढ़ा, बल्कि समाज व कविता को जोड़ने वाली उबड़-खाबड़ राहों पर अनपत्व का मखमल भी बिछाया।

मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सुप्रतिष्ठित 'भवभूति अलंकरण' जलसे में अलंकृत स्मृतिशेष कवि सुदीप बॅनर्जी के काव्य अवदान को स्मरण किया गया। दूसरे दिन 2009 के भवभूति से विभूषित यशस्वी कवि साहित्यकार विष्णु खरे की कविताई प्रत्यक्षता से स्मृतिवान बनी। वनमाली सृजनपीठ उत्सव का सहयोगी घटक रहा।

स्व0 सुदीप बनर्जी पर केंद्रित पहली शाम समारोह के मुख्य अतिथि तथा शीर्ष साहित्यकार श्री केदारनाथ सिंह ने श्री सुदीप को भाषाई मौलिकता का ऐसा कवि बताया किसने दीगर दीगर भाषाओं के आमफहम शब्दों का बखूबी और सार्थक प्रयोग किया। वरिष्ठ साहित्यकार विष्णु नागर की दृष्टि में स्व0 सुदीप सत्ता के महत्त्वपूर्ण घटक होने के बावजूद शोषित व हाशिए पर खड़े-पड़े लोगों के पक्ष में आंदोलन की प्रमुख आवाज़ बने। कवि-लेखक विष्णु खरे का आग्रह था कि स्व0 सुदीप की कविताओं में पसरी गहरी चुप्पी तथा उदासी का विश्लेषण बहुत ज़रूरी है। सर्वश्री भगवत रावत, आग्नेय, लीलाधर मंडलोई, चंद्रकांत देवताले, अजेय कुमार, मनोहर वर्मा, पूर्णचंद्र रथ ने भी मंतव्य प्रकट किए। स्व0 सुदीप के सुपुत्र गौरव बॅनर्जी ने भावविह्वल होकर कहा-जीवन भर साथ रहने वाले इन क्षणों में मैंने बाबा (स्व0 सुदीप) के कई अनछुए पहलुओं को महसूसा है। यशस्वी रंगकर्मी आलोक चटर्जी ने स्व0 सुदीप की चुनिंदा कविताओं का पाठ किया। इस मौके पर स्व0 सुदीप की काव्यकृति 'उसे लौट आना चाहिए' और स्व0 सुदीप के रचनाकर्म पर एकाग्र प्रो0 कमला प्रसाद, श्री विष्णु नागर, श्री चंदकांत देवताले तथा श्री राजेन्द्र शर्मा द्वारा संपादित 'आसमान का समकालीन' और विष्णु खरे द्वारा संपादित 'जीवन के वे सभी प्रश्न कमोवेश' किताबों का लोकार्पण भी किया गया। सम्मेलन की अध्यक्षता प्रो0 अक्षय कुमार जैन ने की।

यशस्वी कवि साहित्यकार विष्णु खरे को समारोह की आखिरी शाम श्री केदारनाथ सिंह और श्री देवताले ने 'भवभूति' अलंकरण से नवाजा। अध्यक्षीय उद्बोधन में श्री केदारनाथ ने कहा—'नाटकीयता से ओतप्रोत विष्णु खरे की कविताओं को सुनना सचमुच बड़ी उपलब्धि है। वे राजनीतिक दृष्टि से सजग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा प्रतिबद्ध कवि हैं।' वरिष्ठ आलोचक डा0 मनोहर वर्मा की नज़र में श्री विष्णु खरे ऐसे काव्य शिल्पी हैं जिन्होंने निबंध की बंधनहीनता को कविताई तासीर में पूर्णतः मर्मस्पर्शी बनाकर पेश किया। मुख्य अतिथि श्री चंद्रकांत देवताले ने श्री खरे की पचास सालाना काव्य यात्रा को स्वयं के लिए एक ऐसा बैरोमीटर बताया जिसकी जद में वे अपनी कविता की कद-काठी को सदा नापते रहे हैं। कवि लीलाधर मंडलोई ने श्री विष्णु की काव्यकृति 'काल और अवधि के दरम्यान' के परिप्रेक्ष्य में विचार रखते हुए कहा, श्री विष्णु की कविताएँ मस्तिष्क पर दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ती हैं। रचनापाठ से पूर्व श्री खरे ने पुरस्कारों की आड़ में हो रही विसंगतियों की खुलकर निंदा की।

स्वागत उद्‌बोधन में आयोजक मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यकारी अध्यक्ष तथा वरिष्ठ आलोचक प्रो0 कमला प्रसाद ने भवभूति अलंकरण की अवधारणा पर प्रकाश डाला। साथ ही उन्होंने स्व0 सुदीप के व्यक्तित्व व कृतित्व पर अपनी बात कही। कवि राजेन्द्र शर्मा ने प्रशस्ति-वाचन किया। संचालन कथाकार मुकेश वर्मा ने किया। सम्मानित रचनाकारों को ग्यारह-ग्यारह हज़ार रुपये की राशि, स्मृति-चिह्न, प्रशस्ति-पट्टिका व शॉल भेंट किये गये।

प्रस्तुति : वसंत सकरगाए, भोपाल

डा0 देवेन्द्र गुप्ता पुरस्कृत

दुष्यंत कुमार राष्ट्रीय संग्रहालय भोपाल म0प्र0 द्वारा आयोजित समारोह में देश की प्रमुख सात साहित्य पत्रिकाओं कादंबिनी, गगनाचाल, नबनीत, सेतु, प्रेरणा, शिवम व अक्षय के संपादकों को मध्य प्रदेश के शिक्षा एवं संस्कृति मंत्री श्री लक्ष्मीकांत शर्मा द्वारा पुरस्कार प्रदान किये गये। कार्यक्रम की अध्यक्षता पूर्व मुख्यमंत्री एवं सांसद कैलाश जोशी ने की और इस समारोह में कार्यक्रम के दौरान् ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार की पत्नी विशेष रूप से उपस्थित रहीं। सेतु के संपादक डा0 देवेन्द्र गुप्ता ने प्रभाष जोशी पुरस्कार मिलने पर आभार ज्ञापित करते हुए कहा कि साहित्य के संरक्षण और संवर्द्धन में लघु पत्रिकाओं का विशेष योगदान है और सेतु का आगे भी यह प्रयास रहेगा कि पत्रिका के माध्यम से साहित्य और हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में हिमाचल प्रदेश की उपस्थिति और पहचान राष्ट्रीय स्तर पर बनी रहे। सांयकालीन कार्यक्रम में प्रसिद्ध ग़ज़ल गायक चंदनदास ने हिन्दी शायर ग़ज़लकार दुश्यंत कुमार की स्मृति में अपनी गायिकी से समां बांधा।

प्रस्तुति : मनोज जोशी, सहसंपादक-सेतु

मैथिली कथा गोष्ठी

सुपौल जिला प्रगतिशील लेखक संघ एवं विप्लव फाउन्डेशन के संयुक्त तत्त्वावधान में मैथिली कथा गोष्ठी का आयोजन अशोक कुमार मेहता (दरभंगा) की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। मैथिली कथा संगोष्ठी का उद्‌घाटन सेवानिवृत प्रो0 डा0 परमानन्द पाठक ने किया। इस अवसर पर डा0 रमाकांत झा रमण लिखित पुस्तक 'मैथिली आरम्भिक यात्रा साहित्य' तथा हिन्दी की कथा लेखिका उषा किरण खान लिखित पुस्तक (नाटक) 'कहाँ गये मेरे उगना' का लोकार्पण डा0 परमानंद पाठक द्वारा किया गया।

गोष्ठी के संयोजक अरविन्द ठाकुर, जिला अध्यक्ष प्रगतिशील लेखक संघ, सुपौल ने स्वागत भाषण में कहा कि मैथिली साहित्य के निरंतर विकास में इस त्रैमासिक कथा गोष्ठी का अहम योगदान है। यह एक गोष्ठी मात्र नहीं बल्कि कथा लेखन की कार्यशाला भी है।

अजीत कुमार आज़ाद (पटना) के संचालन में हुई इस कथा-यात्रा में रमानंद रमण, रमाकांत राय, शैलेन्द्र ठाकुर, अंशुमान सत्यकेतु, उमेश मंडल, जगदीश मंडल, कमल मोहन चुन्नू, सच्चिदानंद, सौरभ, रंजीत खाँ, विजय हरीश आदि सरीखे कथाकार शामिल थे, जिसमें वरिष्ठ साहित्यकार डा0 रमण को मैथिली साहित्य में विशिष्ट योगदान के लिए सम्मानित किया गया।

प्रस्तुति : महेन्द्र नारायण पंकज, सुपौल

इस अंक के कलाकार 'वंशीलाल परमार'

इस अंक के मुख पृष्ठ के चित्रकार **वंशीलाल परमार** हैं। ये जाने-माने लेखक, चित्रकार और फोटो ग्राफर हैं।
इनका पता : 'आशुतोष' निकट गायत्री मन्दिर, स्वार्सा, जिला-मंदसौर (म0प्र0) पिन-458888

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय अर्थव्यवस्था का भविष्य

गिरीश मिश्र

पिछले की तरह ही इस बार चालू वित्तीय वर्ष के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति की रूपरेखा संसद के समक्ष आगामी वर्ष का बजट पेश करने के पूर्व रखी गयी जिससे बजट प्रस्तावों पर सार्थक बहस हो सके। 'आर्थिक समीक्षा 2009-10' में संवृद्धि की संभावनाओं और घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है।

"आर्थिक समीक्षा 2009-10" से स्पष्ट है कि हमारी अर्थव्यवस्था विकसित देशों में पैदा होकर सर्वत्र फैली अति मंदी के चंगुल से काफी कुछ बाहर आ गयी है और उसने आर्थिक संवृद्धि के मार्ग पर बढ़ने की रफ़्तार तेज कर दी है। हमारी वार्षिक संवृद्धि की दर 2007 में अतिमंदी का दौर होने के पूर्व, यानी 2006-07 में 9.7 प्रतिशत हो गयी थी और भारतीय अर्थव्यवस्था एशिया में तीसरे स्थान पर चीन और जापान के बाद पहुँच चुकी थी। उम्मीद की जा रही थी कि अगर सब कुछ ठीक-ठाक रहा तो वह जापान को पीछे धकेल कर दूसरे स्थान पर काबिज हो जाएगी। कुछ लोग भारत के महाशक्ति बनने का सपना भी देखने लगे थे। किन्तु, दुर्भाग्यवश अतिमंदी के कारण संवृद्धि दर में भी सुस्ती आयी और वह 2007-08 में 9.2 प्रतिशत तथा 2008-09 में 6.7 प्रतिशत पर आ गयी। वर्तमान वित्तीय वर्ष 2009-10 में आशा है कि वह 7.2 प्रतिशत तक पहुँच जाएगी। जो भी हो, भारतीय अर्थव्यवस्था को उतना नुकसान नहीं हुआ है जितना कई अन्य देशों को हुआ है। इसका एक बड़ा कारण नेहरू-इंदिरा युग की आर्थिक नीतियों को नहीं छोड़ना है। कांग्रेस-नीत संप्रग की अध्यक्षा श्रीमती सोनिया गांधी ने कई महीने पहले 'हिन्दुस्तान टाइम्स' द्वारा आयोजित एक जमावड़ा में इस तथ्य को रेखांकित किया था। यहाँ हम इसके समर्थन में दो बातों का उल्लेख करना चाहेंगे। पहली, नवउदारता के गढ़, शिकागो स्कूल ऑफ़ इकॉनामिक्स से अभिन्न रूप से जुड़े रघुराम जी राजन (जो कभी अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के मुख्य आर्थिक सलाहकार थे) की अध्यक्षता में बनी एक समिति ने भारतीय मुद्रा को पूंजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीय बनाने की सलाह दी थी। मगर परिस्थितियों में बदलाव के कारण इसे लागू नहीं किया जा सका था। जब देश में खेतिहरों द्वारा आत्महत्या करने की दुखद घटनाओं को देखते हुए सरकार ने कर्जमाफी जैसे कदम उठाए तब इन्हीं राजन साहब ने उसका जोरदार विरोध किया। उनका कहना था कि इससे 'मोरल हैजार्ड' का खतरा पैदा होगा जिससे लोग कर्ज लेंगे मगर नहीं लौटायेंगे क्योंकि वे यह मानकर चलेंगे कि देर-सबेर उसे सरकार माफ कर देगी। दूसरी, कौशिक बसु ने, जो अभी भारत सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार हैं, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में अपने नाम से एक पत्र लिखकर राष्ट्रीय ग्रामीण योजना का विरोध किया क्योंकि उनके अनुसार इससे काहिलपन बढ़ेगा।

कई 'ज्ञानी' लोगों के हवाले से लंदन के दैनिक पत्र 'फाइनेंसियल टाइम्स' (25 फरवरी) ने लिखा है कि इस योजना से गाँव के ग़रीबों को रोजगार और मजदूरी मिलने से खाद्यान्नों की माँग बढ़ रही है जिससे उनकी कीमतों में इज़ाफ़ा हो रहा है। पिछले वर्ष की तुलना में इस साल खाद्य पदार्थों की कीमत 18 प्रतिशत बढ़ी है। अगर यह तर्क सही है तो देश में ग़रीबी बढ़नी चाहिए जिससे क्रयशक्ति के अभाव में मांग और परिणामतः कीमतें नहीं बढ़ेंगी।

Gurukul Kangri Collection Library Haridwar 249404 (U.A.)

म0प्र0 के पूर्व राज्यपाल बलराम जाखड़ के रिश्तेदार अजय जाखड़ जो भारत कृषक समाज के अध्यक्ष हैं, नरेगा के विरुद्ध हैं क्योंकि उनके अनुसार खेतिहरों की परेशानी बढ़ गई है। कारण है मजदूरों द्वारा मज़दूरी की ऊँची दर की माँग स्पष्टतया हमारे देश में मनोरोगियों की संख्या बढ़ा रही है। 'आर्थिक समीक्षा के अनुसार विनिर्माण क्षेत्र मंदी के दौर से लगता है कि बाहर आने लगा है। उसकी संवृद्धि दर 2006-07 में 14.9 प्रतिशत थी जो घटकर 2007-08 में 10.3 प्रतिशत और 2008-09 में 3.2 प्रतिशत पर आ गई थी। चालू वर्ष में उसके 8.9 प्रतिशत होने की आशा की जा रही है। इसके विपरीत, कृषि क्षेत्र की स्थिति चिंताजनक बनी हुई है। कृषि उत्पादन की संवृद्धि दर 2007-08 में 4.7 प्रतिशत थी जो 2008-09 में 1.6 प्रतिशत हो गई। आशंका है कि चालू वर्ष में उसमें ऋणात्मक यानी -0.2 प्रतिशत की संवृद्धि दर्ज होगी। याद रहे कि कृषि क्षेत्र पर हमारी 60 प्रतिशत जनसंख्या रोजी-रोटी के लिए निर्भर है। अतः कृषि क्षेत्र की पैदावार में गिरावट से हमारी बहुसंख्यक जनसंख्या प्रभावित होगी। दक्षिण पश्चिम मानसून की कृपणता को ही इसके लिए पूरी तरह जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। राज्य भी काफी हद तक उत्तरदायी है। कृषि क्षेत्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वजनिक निवेश अपर्याप्त रहा है। सिंचाई की सुविधाओं का पर्याप्त विस्तार नहीं हो रहा है। नेहरु-इन्दिरा काल में बनी नहरों की नियमित सफाई न होने के कारण उसमें रेत जम जाने से उनकी सिंचाई क्षमता कम होती जा रही है। सड़कों, बिजली, कीमत प्रबंधन आदि की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती। बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में चीनी मिलों में ताला लगने के बाद नकदी फसलों को उगाने के अवसर तेजी से घटे हैं। इन सब कारणों से ग़रीबी बढ़ती जा रही है। गांवों से शहरों की ओर पलायन और नगरों में मलिन बस्तियों के विस्तार में तेजी आई है। हाल में आई ग़रीबी से जुड़ी सुरेश तेंदुलकर और अर्जुन सेन गुप्ता की रिपोर्टों की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन के अनुसार अतिमंदी ने 2008-09 में ही 3 करोड़ 40 लाख लोगों को ग़रीबी की रेखा के नीचे धकेल दिया है। जनगणना के आंकड़ों के अनुसार 1991 और 2001 के बीच 80 लाख लोग कृषि क्षेत्र से अन्यत्र पलायन कर गए। सरकार की तमाम कोशिशों के बावजूद सिर्फ 2008 में 16,136 खेतिहरों ने आत्महत्या कर ली। 1997 और 2008 के बीच 1,99,132 खेतिहारों ने खुदकुशी कर ली। 'आर्थिक समीक्षा' के अध्याय दो के लेखक हैं सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार कौशिक बसु। इसमें उन्होंने समावेशी संवृद्धि की अवधारणा की विस्तार से व्याख्या करने तथा यह बतलाने की कोशिश की है कि यह नया विचार है। वस्तुत ऐसा कुछ भी नहीं है। यह एक पुरानी और बदनाम अवधारणा 'ट्रिकल डाउन' सिद्धांत को नये परिधान में प्रस्तुत करने की कोशिश है। इस सिद्धांत का मानना है कि सरकार को राष्ट्रीय आय के वितरण को प्रभावित करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। यदि अधिकांश राष्ट्रीय आय थोड़ से लोगों के पास जाती है तो चिंतित नहीं होना चाहिए। अंततः उस आय का एक बड़ा भाग रिस या टपककर निचले तबकों को प्राप्त होगा। नवउदारवादी वाशिंगटन की आम राय पर आधारित भूमंडलीकरण के पक्षधरों का इसमें अटूट विश्वास है। हमारे योजना आयोग के उपाध्यक्ष मौंटेक सिंह अहलूवालिया ने इसके समर्थन में कई शोध पत्र लिखे हैं मगर कई लोग इसे गलत और अमानवीय मानते हैं। दिवंगत प्रो0 गालब्रेथ ने कहा था कि यह बहुत कुछ वैसे ही है जैसे किसी छोड़े को काफी दाना खिलाया जाय जिससे उसकी लीद में कुछ दाने बाहर कर जाएं जिनको चुगकर गौरैये ज़िंदा रहें। साज-सज्जा जो भी हो 'समावेशी संवृद्धि' और 'ट्रिकल डाउन' सिद्धांत में सारतः कोई फर्क नहीं है। हम कह सकते हैं कि जब धनवानों की बारात चलेगी तो हाथी, घोड़ा, पालकी रॉल्सरॉयस आदि पर सभ्रांत लोग चलेंगे और साथ-साथ चँवर डुलने और झाड़ू लगाने वाले भी होंगे। वधू के घर पर सबको हैसियत के अनुसार खाना-पीना मिलेगा कोई भूखा न रहेगा।

नवउदारवादी चिंतन का प्रभाव वित्तमंत्री के भी बजट भाषण में स्पष्ट रूप से दिखता है। उनके अनुसार अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका सक्रिय और मुख्य न होकर सहायक की होगी। मुख्य भूमिका निजी क्षेत्र और बाजार की होगी। राज्य सिर्फ 'इनेब्लर' या सहायक का कार्य करेगा। नवउदारवादी चिंतन में फैसिलिटेटर शब्द का इस्तेमाल हुआ है। अर्थ की दृष्टि से दोनों शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं। राज्य, श्री मुखर्जी के शब्दों में एक ऐसा वातावरण बनाएगा जिसमें निजी क्षेत्र बाजार द्वारा संचालित हो, जनता की जरूरतों को संतुष्ट करेगा। वित्त मंत्री ने रेखांकित किया है : 'संघीय बजट सरकारी लेखा का विवरण मात्र नहीं हो सकता। उसे सरकार की दृष्टि और भावी नीतियों को प्रतिबिंबित करना चाहिए।" इस प्रकार श्री मुखर्जी ने स्पष्ट कर दिया है कि भारत सरकार की नीतियाँ अब राष्ट्रीय आंदोलन तथा नेहरू-इंदिरा युग की प्रतिबद्धताओं से दूर चली गयी है। वे अब नवउदारवादी चिंतन को प्रतिबिंबित करेंगी। सर्वोच्च स्थान पर राज्य नहीं बल्कि बाज़ार बैठेगा। वह जमाना लद गया जब बाज़ार समाज में सन्निहित था।

अब बाज़ार समाज पर हावी है। आर्थिक विकास का उद्देश्य समाज में समता और क्षेत्रीय दृष्टि से संतुलन लाना नहीं रह गया है। यह अप्रत्याशित नहीं है। कार्ल पोलान्यी ने अपनी अमर कृति 'द ग्रेट ट्रांसफार्मेशन' में 1944 में ही इसे बड़े विस्तार से बतला दिया था। अनेक देशी-विदेशी शक्तियाँ बेचैन हैं। वे चाहती हैं कि नवउदारवादी आर्थिक चिंतन को तेजी से पूरी तरह लागू कर दिया जाए। 'फाइनेंशियल टाइम्स" के जेम्स लेमाँत ने फरवरी 4 के अंक में लिखा कि डा0 मनमोहन सिंह 77 वर्ष की आयु पार कर चुके हैं। अगली बार वे शायद प्रधानमंत्री नहीं बन पाएँ। हो सकता है कि राहुल गांधी उनकी जगह लें जिनका वास्ता नेहरू-गांधी परिवार के साथ है। अतः यह नकारा नहीं जा सकता कि वे नवउदारवादी चिंतन को धता बता कर नेहरूवादी चिंतन को अपना लें। अतः तत्काल प्राप्त अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। 'वॉल स्ट्रीट जर्नल' के दक्षिण एशिया ब्यूरो प्रधान पॉल बेकेट ने प्रणव मुखर्जी के नाम पर एक खुला पत्र प्रकाशित कर कहा है कि अब वामपंथियों का दबाव नहीं है और भाजपा ने खुद ही अपना बंटाधार कर लिया है। अतः नवउदारवादी आर्थिक सुधार कार्यक्रम की गाड़ी स्पष्ट दौड़नी चाहिए। यह पत्र बजट पेश होने के एक दिन पूर्व यानी 25 फरवरी को छपा था। अब देखना है कि आने वाले समय में सरकार आम आदमी के साथ अपनी प्रतिबद्धता तथा नवउदारवादी चिंतन की अपेक्षाओं के बीच कैसे तालमेल बिठाती है।

एम-112, साकेत, नई दिल्ली-110017

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं उसे घर की देवी कहता था
हालांकि कहते वक्त भी मुझे लगता था
कि अपनी बच्ची को
कहे गये ये शब्द
उसे जबरन एक भार से लाद देते हैं

कि वो बोलने वाले
माँ बाप भी
बच्ची से जितना स्नेह करते हैं
उससे कहीं ज्यादा उम्मीद भी

लेकिन क्या करें
कि उसे पहली बार
जब माँ की गोद में देखा
और उसके बाद तब से लेकर
अब तक
जब जब भी देखा
जैसे एक उजास-सा उतर आया
आकाश से दिल में
कि जैसे बज गई हो
सरस्वती के हाथों में वीणा
मेरे घर के कमरों, आंगन और
बगीचों में

लेकिन क्या ऐसा
लगना ठीक है

या थोड़ा जगना ठीक है

कि इस उजास को भी
अपना एक वृत्त चाहिए
अपनी परिधि
और अपना केन्द्र

कि इस वीणा का भी
अपना कमरा होना चाहिए
अपना आंगन
अपना बगीचा

कि जिसमें उसके स्वर
उतने ही सहजता से
उतनी ही आजादी से
खिलते हों

जितने कि देवी के यहाँ
जितने कि उस ईश्वरीय दुनिया में
जहाँ से उसे यहाँ भेजा गया

न सिर्फ पापा मम्मी की उम्मीद पूरी करने
बल्कि
ईश्वर की भी

महिलाओं को मिला सम्मान अब है नया आसमान

प्रदेश में महिलाओं के हकों की सुरक्षा और उनकी गरिमा लौटाने का कार्य मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान की प्राथमिकता है। यह स्पष्ट दिखता है, महिला सशक्तिकरण के लिए हुए कार्मों से।
सबसे पहले प्रदेश की महिलाओं की चिंताओं को केन्द्र में रख मुख्यमंत्री निवास पर महिला पंचायत आयोजित घरेलू कामकाजी महिलाओं की दिक्कतें दूर करने के लिए भी पंचायत का आयोजन।
देश में पहली बार, सबसे ज्यादा विभागों में जेंडर बजटिंग।

- ग्राम पंचायतों और नगरीय निकायों में 50% आरक्षण से आज 2 लाख महिलाओं के हाथों गांवों, शहरों की बागडोर।
- मुख्यमंत्री मजदूर सुरक्षा योजना के तहत लाखों मजदूर महिलाओं को प्रसूति अवकाश और आर्थिक मदद।
- अपने गांवों से दूसरे गांव जाने वाली छठी और नवीं की 10 लाख से ज्यादा छात्राओं को नि:शुल्क साइकिल और 54 लाख छात्राओं को दो जोड़ी गणवेश तथा 1.33 करोड़ नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकें।
- गांव की बेटी योजना के तहत प्रतिभाशाली ग्रामीण छात्राओं को उच्चशिक्षा के लिए छात्रवृत्ति, पिछले साल 21960 छात्राओं को लाभ।
- नगरीय क्षेत्र में निर्धन प्रतिभावान छात्राओं को प्रतिभा किरण योजना में छात्रवृत्तियां।
- शिक्षकों के पदों में 50% आरक्षण, पुलिस में 10% पदों पर महिला आरक्षण।
- आदिवासी महिला सशक्तीकरण योजना। 50 हजार रु. लागत वाली परियोजनाओं के लिए 4% ब्याज पर ऋण सुविधा।
- महिला बटालियन की स्थापना।
- प्रदेश में 9 महिला थानों की शुरूआत। भोपाल, इंदौर, ग्वालियर, जबलपुर, उज्जैन, सागर, रतलाम, रीवा और सतना में।
- 212 परिवार परामर्श केन्द्र संचालित, वर्ष 2006-07, 08 में क्रमशः 12601, 12290, 11720, महिला डेस्क, कुल सौ महिला डेस्क कार्यरत, 329 महिला कर्मियों के पद स्वीकृत, 47 उप निरीक्षक, 94 प्रधान आरक्षक, 188 आरक्षक होंगे।
- रचनात्मक क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि के लिए महिलाओं को 2 लाख रुपये का रानी दुर्गावती पुरस्कार।
- समाज सेवा, वीरता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य के लिए महिलाओं को रानी अवंतीबाई राज्य स्तरीय वीरता पुरस्कार और राजमाता विजयाराजे सिंधिया समाज सेवा पुरस्कार, दोनों पुरस्कारों में 1 लाख रुपये की राशि
- मातृ शिशु रक्षा कार्ड से इलाज में सुविधा।
- कन्या भ्रूण हत्या की सूचना देकर इस बुराई से लड़ने वाले को राज्य सरकार से पुरस्कार।

महिला एवं बाल विकास विभाग – वर्ष 2010-11 में 1860 करोड़ रुपयों से अधिक का प्रावधान। यह वर्ष 2002-03 के 335 करोड़ रुपयों की तुलना में 500% से अधिक है।

लाड़ली लक्ष्मी योजना – बालिका के जन्म से 18 वर्ष तक की होने तक, शिक्षा के हर चरण पर निश्चित राशि और 18 वर्ष पर 1 लाख से ज्यादा रुपये। अब तक 4 लाख बालिकाओं को लाभ। वर्ष 2007-08 में 24 करोड़ रुपये, 2008-09 में 135 करोड़ रुपये 2009-10 में 276 करोड़ रुपये, वर्ष 2010-11 में 302 करोड़ रुपयों का प्रावधान।

कन्यादान योजना – निराश्रित/निर्धन परिवार की कन्याओं का विवाह, अब तक 1 लाख कन्याओं को लाभ।

जननी सुरक्षा योजना – प्रदेश की अतिसफल प्रसव एवं परिवहन उपचार योजना, पूरे देश में जननी सुरक्षा योजना के नाम से लागू। अब तक प्रदेश में 38 लाख महिलाएं लाभान्वित, संस्थागत प्रसव 26% से 72% तक बढ़ा।

समेकित बाल विकास सेवा योजना – 86 नयी बाल विकास योजनाएं स्वीकृत, 9691 आंगनवाड़ी केन्द्र और 9820 उप आंगनवाड़ी केन्द्र शुरू होंगे। 87 लाख हितग्राही लाभान्वित। 9.45 लाख महिलाएं सहयोगिनी मातृ समिति के माध्यम से आंगनवाड़ियों से जुड़ीं।

पूरक पोषण आहार – प्रदेश की 453 परियोजनाओं, 78929 आंगनवाड़ियों, 12070 मिनी आंगनवाड़ियों में 87 लाख हितग्राहियों की भोजन व्यवस्था। सांझा चूल्हा माध्यम से सुबह, दोपहर, शाम बच्चों को पोषण आहार, 67 हजार महिला स्वसहायता समूह इस काम से जुड़े। बच्चों को 4 रुपये का, कुपोषित बच्चों को 6 रुपये और गर्भवती, धात्री माता, किशोरियों को 8 रुपये प्रतिदिन का आहार।

मंगल दिवस – हर माह प्रथम मंगलवार को गोद भराई, दूसरे मंगल को अन्नप्राशन, तीसरे को जन्म दिवस और चौथे को किशोरी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

उषा किरण योजना – घरेलू हिंसा से बचाव के लिए योजना में 453 आंगनवाड़ियों में सुरक्षा संरक्षण अधिकारी। 47 जिलों में पुलिस परामर्श केंद्र।

म.प्र. महिला वित्त एवं विकास निगम – तेजस्विनी कार्यक्रम में 11724 महिला समूह बने, इनमें 147356 महिलाएं शामिल. 415.16 करोड़ रुपयों की बचत।

मध्यप्रदेश बाल अधिकार संरक्षण आयोग – प्रदेश में बाल अधिकारों के संरक्षण और संवैधानिक हितों की सुरक्षा के लिए गठित आयोग। अध्यक्ष के रूप में 1 फरवरी 2010 को माननीय सेवा निवृत्त जस्टिस शीला खन्ना ने संभाला पदभार। छह सदस्यीय आयोग में कम से कम दो महिलाएँ होंगी।

शक्ति का स्वर, शक्ति का वर
मध्यप्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83

डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सृजन स्मरण

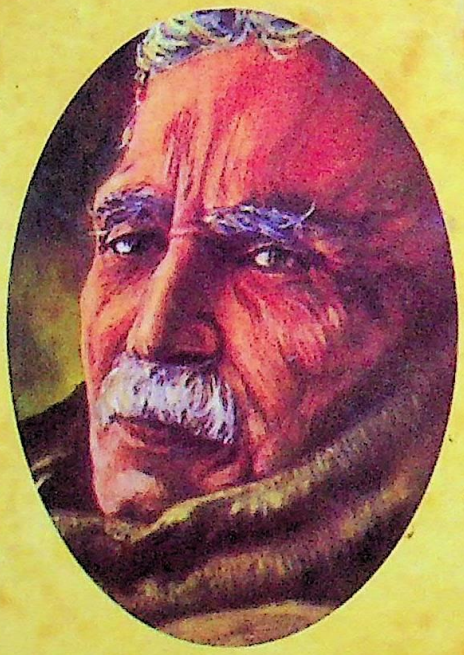

"चाह नहीं मैं सुर बाला के, गहनों में गूंथा जाऊँ ।
चाह नहीं प्रेमी माला में, बिध प्यारी को ललचाऊँ ।।
चाह नहीं सम्राटों के शव पर, हे हरि डाला जाऊँ ।
चाह नहीं देवों के सिर पर, चढ़ भाग्य पर इठलाऊँ ।।
मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।।"

माखन लाल चतुर्वेदी

(04.04.1889 - 30.01.1968)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित त
28, एम.आई.जी., अवन्तिका-।, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल सिं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जून, 2010 ■ बीस रुपये

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

ग्रीष्मावकाश उपहार अंक

कहानियाँ... और कहानियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्पायन द्वारा प्रकाशित

कुँवरपाल सिंह की महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय पुस्तकें

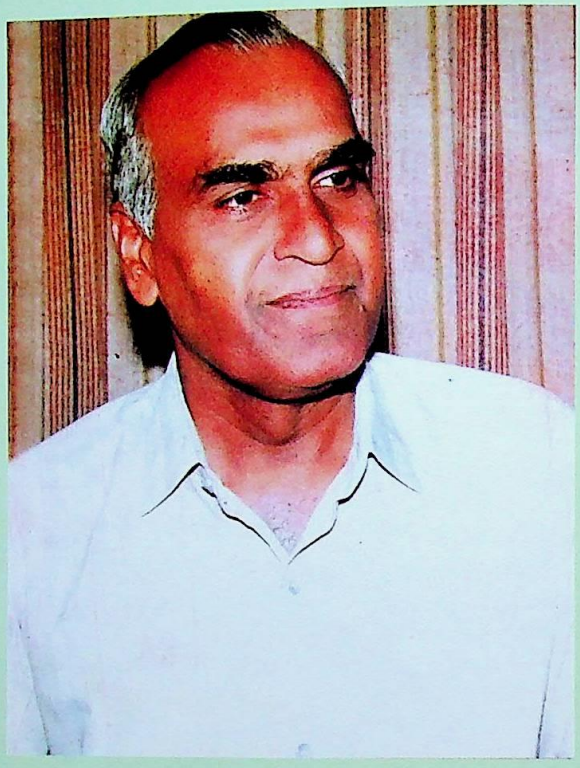

आगामी पुस्तकें

हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना	कुंवरपाल सिंह
समय संवाद	कुंवरपाल सिंह
लिए लुकाठी हाथ	कुंवरपाल सिंह
नवजागरण और हिंदी गद्य	कुंवरपाल सिंह-देवेंद्र गुप्ता

प्रकाशित पुस्तकें

1857 और जन प्रतिरोध	संपा. कुंवरपाल सिंह-नमिता सिंह	400.00
यशपाल : पुनर्मूल्यांकन	संपा. कुंवरपाल सिंह	600.00
राही और उनका रचना-संसार	संपा. कुंवरपाल सिंह	400.00
हिंदी उपन्यास : जनवादी परम्परा	सं. कुंवरपाल सिंह-अजय बिसारिया	225.00
मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी उपन्यास	कुंवरपाल सिंह	200.00

पुस्तकों के लिए लिखें–

शिल्पायन

10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
दूरभाष : 011-22821174, 9810101036
e-mail : shilpayan2005@yahoo.co.in, shilpayanbooks@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

वर्ष 26 ❑ अंक 7, जून, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय
28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com
Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; ❑ वार्षिक : 230/-; ❑ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 250/- ❑ आजीवन : 2000/- ❑ विदेशों में साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। चैक से भुगतान करने पर तीस रुपये अतिरिक्त जोड़कर भेजें।)

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.A.)

संस्थापक सम्पादक
कुमुति नारायण राय

सम्पादक
नमिता सिंह

अतिथि सम्पादक
अजय बिसारिया ❑ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

कार्यकारी सम्पादक : राजीव श्रीवास्तव
सलाहकार : वेद शर्मा, बीकानेर
मुद्रांकन : बिसारत अली
मुखपृष्ठ चित्र : दिलीप कुमार शर्मा 'अज्ञात', शैलकाता
रेखांकन : सुभाष केकरे, कोटा

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

इस अंक में

पाठक मंच/2

अपनी बात/4

श्रद्धांजलि-स्मरण
मृत्युंजय संकल्प और अपराजित जिजीविषा को प्रणाम/ डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ/7
विश्वास में नईम स्मरण/राम मेश्राम/9

संस्मरण
माँ, ओ माँ!/योगेशचन्द्र बहुगुणा/11

ग़ज़ल/कविता/गीत/दोहे
ग़ज़ल/शहरयार/10
ग़ज़लें/हस्तीमल हस्ती/17
कविताएँ/डॉ. रामदरश मिश्र/53
कविताएँ/पुष्पिता अवस्थी/64
कविताएँ/सुशांत सुप्रिय/66
कविताएँ/डॉ. संजीव कौशल/67
मेरी प्रेमिका को याद करते हुए : पाँच कविताएँ/निशांत/68

कहानी
कोंता के बाल/विजय शर्मा/18
क्या आप भी कर्नल मंगत के साथ हैं?/मुकुल जोशी/22
प्रेम प्रपंच/डॉ. मनोज श्रीवास्तव/26
शिक्षा रोज़ी से/कुमार शर्मा 'अनिल'/33
बेगार करने वाले/श्याम नारायण 'कुंदन'/39
तुम ही ठीक थे आनंद/लोकेन्द्र सिंह कोट/41
पाँच बीघे @ दो रुपये/ऋचा पाठक/44
वही शायद ठीक था/प्रकाश कांत/49
तीन टांग का सोफ़ा/विनोद पांडेय/53
बंधुआ/शिव अवतार पाल/55

लघुकथा
सुराख/रेनुश्री अस्थाना/58
समाप्ति/शैलजा 'श्यामा'/62

तेलुगु कहानी
सुदामा रिटायर हुए!/अंबल्ला जनार्दन/ अनुवाद डॉ. के.वी. नरसिंहराव/59

पहला कदम : कहानी
हर पल मिटती हुई/लता श्री/69

पुस्तक परिचय
सुजान की पीर देखकर पीर स्वयं रो उठी/नीलम कुलश्रेष्ठ/71

पुस्तक समीक्षा
प्रलय प्रतीक्षा : जन-जागरण का कलात्मक दस्तावेज/ देवेन्द्र कुमार गुप्ता/73

सांस्कृतिक समाचार/75

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वर्तमान साहित्य' अप्रैल अंक। हमेशा की तरह अंक का आकर्षक मुख पृष्ठ श्री बंसीलाल परमार, मंदसौर के चित्र के साथ मिला। इस चित्र में बैठे भारतीय किसान की तस्वीर जैसे भारतवर्ष के उन तमाम किसानों का प्रतिनिधित्व करती जान पड़ती है जो अपने श्रम का मूल्य पाने के लिए दिन-रात मेहनत करते हैं किन्तु बदले में उन्हें कई बार आत्महत्या करने तक के लिए बाध्य होना पड़ता है। मुख पृष्ठ के ये आवरण चित्र जैसे बोलते से प्रतीत होते हैं और जन साधारण की समझदारी को प्रभावित करने वाले लगते हैं।

ओमप्रकाश नामदेव, भोपाल

अम्बेडकर जयंती के उपलक्ष्य में दलित विमर्श पर केंद्रित पत्रिका कई बिन्दुओं से महत्वपूर्ण लगी। जब कोई जाति शासन के द्वारा आरक्षित हो जाती है तो उसमें मानवीय चेतना का ह्रास होने लगता है। वह चाहे सवर्ण हो या अवर्ण। बाजारीकरण पर केंद्रित आपका संपादकीय तथ्यात्मक है। राजनीति से प्रभावित कोई भी क्षेत्र निष्पक्ष नहीं रह जाता। साहित्य, कारपोरेट जगत, विकास, नक्सलवाद, उदारीकरण आदि बिन्दु क्रूर राजनीति का शिकार हो जाने के कारण अपने मंतव्यों में सफल हो पाने में असमर्थ हो रहे है। बाजार आज साहित्य को संचालित कर रहा है। लोगों में चिंतनशीलता की अपेक्षा अपना-अपना राग अपनी-अपनी ढपली जैसी स्थित हो गयी है।

जातिवाद, शिक्षा, धर्मनिरपेक्षता ये सब ऐसे बिन्दु रहे हैं जिन पर अम्बेडकर और गांधी दोनों की ही विचार धाराएँ अपनी जगह पर ठीक हैं। जातिवाद, धर्म, शिक्षा जैसे बड़े-बड़े शब्द राजनीति का हथियार मात्र रह गये हैं और एक दूसरे प्रकार का सबल समाज गठित हो रहा है। तो क्या हम युगों युग तक ऐसे ही समाज बनाते और बिगाड़ते रहेंगे ? ये सम् भाव की स्थित कब आयेगी ? कैसे आयेगी ? अभी तो नहीं दिखती।

सुशीला टाकभौरे जी के दर्द से सभी को सहानुभूति है किन्तु गांधी को षड़यंत्रकारी कहना आपके द्वारा शोभा नहीं देता। आपको एक बार फिर से सभी दुराग्रहों से मुक्त होकर चिंतन करना चाहिए। आनंद कुमार 'गौरव'' के दोनों ही गीत अच्छे लगे। 'मट्ठा' कहानी बहुत ही हृदय विदारक है।

संध्या मिश्रा, कानपुर

मार्च, 2010 अंक। 'अपनी बात' में स्त्रियों को शिक्षा की सख्त ज़रूरत है जिससे वह अपने फैसले स्वयं ले सकें, अच्छे-बुरे का निर्णय स्वयं कर सकें। शुभ्रा उपाध्याय की 'विषाद' कहानी का उद्देश्य है कि बीमार इंसान को प्रेम की, भावनाओं की जरूरत है दवाओं की नहीं। जयश्री राय की 'उसने कहा था' भावनात्मक रूप से प्रभावित करती है। अगर उसे अपने पति से थोड़ा प्रेम प्राप्त हो जाता तो वह थोड़े दिन और जी सकती थी। अनुराधा चौगुले की 'बिवाइयाँ' से ज्ञात होता है कि पैसे की चमक रिश्तों में दरार पैदा कर देता है। देवी नागरानी की 'नयी माँ' अच्छी कहानी है।

जया सिंह, उन्नाव

'वर्तमान साहित्य' का नया अंक मेरे सामने है। इससे पहले वाले अंक भी समय से मिलते रहे हैं। इस अंक के कवर ने विशेष रूप से तुरंत पत्र लिखने के लिए मुझे बाध्य किया है। एक अधेड़ उम्र का थका-हारा किसान जिस तरह दीवार के सहारे बैठा है, वह उसकी मजबूरी को दर्शाता है। इधर आंचलिक कहानी लेखन लगता है ठहर सा गया है, लेकिन यह कवर पर बैठा किसान स्वयं में कहानी बन गया है।

धर्मेंद्र गुप्त, नई दिल्ली

'वर्तमान साहित्य' के अंक निरंतर मिल रहे हैं। जिस मुस्तैदी और प्रतिबद्धता के साथ आप अंक निकाल रही हैं काबिले तारिफ तो है, ही प्रेरक भी है। मेरी बधाई स्वीकार करें।

सदानंद शाही, वाराणसी

आपको लिखने कि इच्छा काफी दिनों से थी। 'ज़िंदगी' का मसला ही ऐसा है कि सब कुछ ठप्प पड़ जाता है। नवंबर 09 में कुँवरपाल जी का 'उच्च शिक्षा में फंसे शोधार्थी' लेख मार्मिक था। कुछ दिनों पूर्व डॉक्टर साहब ने 'नई प्राइवेट यूनिवर्सिटीज' के बारे में खरी-खरी बातें लिखीं। उनके लेखन में मूल्य एवं मूल्यों के प्रति आग्रह मुझे अब भी बार-बार उनका स्मरण कराती है।

मेरा अटल विश्वास है कि कुँवरपाल सिंह जी हमारे मध्य से कहीं नहीं गए है। वे अब हमारे मध्य साकार नहीं, तो निराकार तो अवश्य हैं। उनके लिखे विचार, उनके सत्कर्म, शिक्षा, भाव आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करती रहेगी।

हरेन्द्र नारायण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रैल अंक में संपादकीय बहुत कठोर सत्य को उद्घाटित करता हुआ प्रतीत हुआ। भारत की गरीब जनता की बदहाली की वजह मजहबी उन्माद भी है। यह कितनी बड़ी सच्चाई है कि दुनिया का चौथा अमीर आदमी भारत का है और सबसे ज्यादा भूखे लोग भी भारत के ही हैं।

मैं तो गंगोली (ग़ाज़ीपुर) के करीब का आदमी हूँ। आज भी वहाँ सारी स्थितियाँ जस की तस हैं। अपने संपादकीय में धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक मुद्दे उठाए हैं, काश उस गंभीरता से देश सोचता तो बहुत सारी समस्याओं का हल निकल आता लेकिन कौन सुनता है हमारी। हम लिख लिखकर मरेंगे और धर्म के नाम पर प्रसाद खाकर कंबल पाने की लाइन में लोग मरते रहेंगे... इसमें खुदा भी क्या कर सकता है। ये तो सही सलामत रहेगा जब तक मूर्खों और धर्म भीरूओं की सेज दुनिया में रहेगी।

सेराज खान बातिश, कोलकाता

'वर्तमान साहित्य' की ''कैंपस'' कहती है—नक्सलाइट, आतंकवादी, आंतरिक आतंकी कौन तैयार करता है ? तो ग़लत है—कि प्राइवेट क्षेत्र में आरक्षण लाया जाए। संवैधानिक हक मिलना चाहिए। आदिवासी बेल्ट खनिज-यूरेनियम से भरपूर है। तब काहे बरतिकाएँ कंपनियों को पनाह देगीं। उन से लड़ने जंगभेद बंदूक कमान संहालेंगी ? दलित चिंतन सुविधाभोगी आंदोलन बन गया। नक्सलवाद ब्राह्मणवादी ताकतों द्वारा सह प्रायोजित तरीके से उभरकर आया। इनमें मानवता के मापदंड विद्यमान हैं। दलित साहित्य द्वारा धारा पाठ्यक्रम में जगह कैसे मिले ? भगतसिंह धीरे-धीरे पाठ्यक्रम बाहर हो रहे हैं तो दलितों को कौन पढ़ेगा ? ओमप्रकाश वाल्मीकी की कहानी 'शवयात्रा' पाठ्यक्रम में रखे जाने योग्य है। इस कहानी सवर्ण महिलाओं में वात्सल्यता नहीं होती, घृणा करती है। 'संविधान' कविता भाईचारे के मिठास की बेस्ट रचना बन गई। ''अप्रैल, 2010 का वर्तमान साहित्य अंक अच्छा रहा।''

यशवंत मेश्राम, राजनांदगांव (छ.ग.)

'वर्तमान साहित्य' मई, 2010 पढ़ा। डा0 प्रदीप सक्सेना का आलेख 'यह दफ़्न हुई बहस क्यों जी उठी है' काफ़ी महत्त्वपूर्ण है जिसमें 1857 के दौर की घटनाओं को इतिहास दृष्टि से, फिर से समझ विकसित करने की ज़रूरत पर बल दिया गया है। इससे संभवतः नये सकारात्मक तथ्य सामने आ सकते हैं।

जब आज के दौर में लेखन के क्षेत्र में धड़े/ मठ कमोवेश बने हुए हैं तो 1857 के दौर की कल्पना की जा सकती है जिसमें सामंती मानसिकता, अंग्रेज़ों के प्रति आकर्षण और जातीय श्रेष्ठता, वैमनस्यता जैसी विसंगतियाँ कितनी तीव्र होंगी ? यहाँ रांगेय राघव का यह दृष्टिकोण बहुत महत्त्वपूर्ण है कि ''ऐतिहासिक यथार्थ की कसौटी है लेखक का निष्पक्ष होना-न वह ब्राह्मण है, न बौद्ध, न हिन्दू, न मुस्लिम।'' आज लेखन और नये विश्लेषण की सबसे ज़्यादा जिम्मेदारी मार्क्सवादी लेखक, इतिहासकारों की बनती है।

कबीर पर आलेख पढ़ा। उन्होंने जो सामने है (आखिन देखी) वही लिखा, कबीर ने जिसका विरोध किया वह मानसिकता आज भी विद्यमान है। दरअसल लोकमंगल पर आधारित कोई भी मुखर साहित्य/ इतिहास / काव्य हमेशा प्रतिक्रियावादियों के लिए खतरा रहा है। ये प्रतिगामी ताकतें आज ग्लोबल पूंजी के साथ मिलकर ज़्यादा खतरनाक हो गयी हैं। इनसे हर स्तर पर संघर्ष करने के लिए छोटे-मोटे मतभेद भुलाकर एकजुट होने की जरूरत है।

टीकेन्द्र 'शाद', मथुरा

'वर्तमान साहित्य' का अप्रैल अंक। पत्रिका का कलेवर अपने आप में बेजोड़ है। 'दलित विमर्श' पर आधारित इस अंक में डॉ0 कश्मीरी देवी का लेख 'दलित साहित्य को शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में स्थान मिलना चाहिए' एक अच्छा सुझाव है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है कि दलित साहित्य को अब तक गढ़वाल विश्वविद्यालय ने ही अपनाया है। दलित साहित्य अंबेडकर, ज्योतिबाफुले और दुनिया के उन लोकतांत्रिक विचारों से प्रभावित है जो समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की बात करते हैं। इसे दलीय ढाँचे में बाँटना नहीं कहा जा सकता।

आज ग्लोबल होने की बात हो रही है। दुनिया संचार के माध्यमों के जरिए समीप आ रही है। मुक्त अर्थ व्यवस्था ने दुनिया को बाज़ार का रूप दे दिया है। उसूलों तक की कीमत लगाई जा रही है और दलित लेखक इसी दुविधा में फँसा है कि उसे सोलहवीं सदी की समाज व्यवस्था से लड़ना है और 21वीं सदी की चुनौतियों से भिड़ना है। दलित लेखक को अपनी जाति से बाहर आकर अन्य दलित जातियों/ उपजातियों की पीड़ा व्यक्त करनी होगी। दलितों के जीवन संघर्ष से जुड़े साहित्य को पाठ्य-पुस्तकों में शामिल कराया जाए। मेरा अपना मानना है कि जब तक दलित लेखक रचनात्मक रूप से आगे नहीं बढ़ेंगे तब तक वे अपने आपको साबित नहीं कर सकेंगे।

डॉ0 अब्दुल लतीफ़, रज़ा डिग्री कालेज, रामपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

प्रचारतंत्र बिक्री की सफलता सुनिश्चित कर सकता है। आक्रामक प्रचार के साथ उत्पाद को कौन प्रस्तुत कर रहा है, इसका भी महत्त्व है। इसीलिये छोटे, नामालूम उत्पादन-केंद्र जो पर्याप्त संख्या में उत्पादन कर सकते हैं, अपने उत्पाद बड़ी ब्रांड कंपनियों को बेच देते हैं और वे बड़ी कंपनियाँ अपनी चिप्पी लगाकर भारी विज्ञापन प्रणाली के ज़रिये अपना कहा जाने वाला उत्पाद मार्केट में उतारती हैं—पूरे आत्मविश्वास के साथ। तो बाज़ार चाहे मोटर, स्कूटर या अन्य उपकरणों के कल-पुर्ज़ों का हो या सौंदर्य-प्रसाधन हों या... ऐसा ही बहुत कुछ... अपना-अपना ब्रांड... अपने-अपने प्रायोजक... और गुणवत्ता के अपने-अपने विमर्श।

साहित्य में भी स्थिति कुछ ज़्यादा भिन्न नहीं है। संपादकों के अपने-अपने ब्रांड हैं। अपने विमर्शों के ज़रिये हलके दाग़ लिये हैं। स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श... ये बहुत हो गया, तो नये ब्राँड आये 'युवा साहित्य' के और अब नवीनतम है—'प्रेम'। स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श में जो चाहो लिखो, सब छपेगा। सब एक ही रंग में हैं। आक्रामकता चाहिए, तो भाषा बोली बन जाती है; छींटाकशी गाली-गलौज में बदलने लगती है.... इससे मार्केट वैल्यू बढ़ती है।

सवाल स्त्रियों और दलितों के प्रति असंवेदनशीलता का है, पारंपरिक सामाजिक अन्याय और शोषण का है! हर सार्थक साहित्य हाशिये के समूहों का पक्षधर होता है, जनतांत्रिक मूल्यों का समर्थन और इसके लिए आगे बढ़कर आवाज़ उठाने वाला होता है। यह तो साहित्य का धर्म है और कर्म है! लेकिन समाज खरबूजे की फाँक थोड़े ही है कि वही अंतिम सत्य हो। संपूर्णता में समाज का ग्रहण लेखकीय दायित्व है, उसके रचनात्मक सरोकारों और चिंताओं का हिस्सा है।

भूमंडलीकरण के युग में, आज ऐसा माना जाता है कि साहित्य पढ़ने की किसी को फ़ुरसत ही नहीं है। रही-सही कसर इंटरनेट पूरी कर देता है। उंगलियों की टिपटिप से पूरा जग जीतने की तमन्ना मन में होती है। ऐसे में कौन साहित्य... कैसा साहित्य कविताओं का इतना बुरा हाल कि गद्य और पद्य में कोई कुछ भी लिखकर डाल देता है और उसे कविता का नाम दे देता है। इस बुरे समय में सरस, अर्थवान और काव्य-तत्त्व के साथ कोई कविता मिल जाए, तो अहोभाग्य! लेकिन कहानी आज भी पढ़ी जा रही है। जो लोग कहते हैं कि कहानी के पाठक नहीं हैं.... वे उस नयी पीढ़ी को भूल जाते हैं, जो हाल-फिलहाल साक्षर हुई है और शिक्षा जैसा नया हथियार जो उनके हाथ लगा है, उसके ज़रिये अपना वजूद क़ायम करना चाहती है। दरअसल, परेशानी वहाँ से पैदा हुई जब हमारे आलोचक और संपादकों ने साहित्य को विमर्शों में बाँटना आरंभ कर दिया। भाषाई और धार्मिक आधार पर देश बँट रहा है। अब क्षेत्र-विशेष धर्म और भाषा के साथ नया स्वरूप ग्रहण करेगा, तो दूसरे धर्म और भाषा के लोग, उनका कामधाम हाशिये पर ही देखे जाएँगे। 'आमची मुंबई' में दूसरा कैसे शीर्ष स्थान पा सकता है? मोदी के गुजरात में एक के अलावा दूसरे रंगों के लिए जगह कहाँ है? साहित्य के रणक्षेत्र में भी जब कुछेक रंग और भंगिमा तय कर दी गयी हों, तो समग्र समाज का चित्र कैसे बन पाएगा? विविध रंगों से बना यह मानव-जीवन कैसे अपनी संपूर्णता में प्रस्तुत होगा? लिखने और प्रकाशित होने से पहले ही विमर्शों की दुनिया के गिने-चुने रंग अपना बाज़ार बना चुके हैं। बाज़ार के अपने कुछ नियम होते हैं। एक ओर ज़रूरत है, यथार्थ है, तो दूसरी ओर मार्केटिंग का अपना दर्शन है... अपनी नीति और अलग कार्यप्रणाली है। मार्केटिंग के साथ विज्ञापन जुड़ा है। आक्रामक प्रचार इन विमर्शों को ब्रांड बनाकर प्रायोजित करता है, तो यही समझ आता है कि ये अपेक्षाकृत नये विषय हैं, अभी इनका ही मार्केट है। मार्केट में माँग है, तो अभी ये सिक्के चलेगा....।

आज के इस आपाधापी भरे समय में 'प्रेम' एक दुर्लभ भावना हो गयी है। लैला-मजनूँ, शीरीं-फ़रहाद या हीर-राँझा जैसी क्लासिक प्रेम कहानियाँ अब दूसरे लोक की लगती हैं। इसलिए, यह विषय अपना स्ट्राइक करता है... और पढ़ने के लिए उत्साहित भी करता है। अकाल के समय रोटी जैसा महत्त्व है, आज प्रेम कहानियों का। इसीलिए, इस पर एक-दो-तीन-चार ... कितने भी अंक निकल सकते हैं। ज्यों-ज्यों प्रेम स्थूल हो रहा है... उसकी गहराई में धँसी बारीक़ लौ अद्भुत प्रभाव देती है। इसलिए, अब नया मार्केट प्रेम का ही बन रहा है। अपने बचपन के दिनों में मेरी कॉरेली की प्रेमकथाएँ, जो निहायत भावुकता में डूबी होती थीं... बेहद प्रभावित करती थीं। उन्हें पढ़ते समय जाने कैसा-कैसा होने लगता था। उसी किशोरावस्था में धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' पढ़ा। मन रो-रोकर हलकान हो गया। सुधा और चन्दर... जैसे अमर प्रेम कहानियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीनतम जोड़ी बनी हो। वही 'गुनाहों का देवता' एक
दिल और दिमाग़ से पढ़ा तो कोई रोना-धोना नहीं
। लगा कि हाँ! एक ठीक-सा उपन्यास है। तीसरी बार
हों का देवता' पढ़ा, तब तक साहित्य पढ़ना-लिखना दिनचर्या
हिस्सा बन चुका था। खुद भी अपनी गृहस्थी बस चुकी थी.
उस वक़्त जो पढ़ने के बाद प्रतिक्रिया हुई, वह बस यही
क्या बचकाना उपन्यास है.... यानी प्रेम का अहसास भी
के साथ, परिस्थितियों के साथ बदलता है.... नया स्वरूप
करता चलता है और इसी क्रम में हमारी संवेदनशीलता
परिवर्तनीय रूप धारण करती चलती है।

आज की ज़िंदगी में प्रेम सचमुच दुर्लभ है। आकाश कुसुम
तरह सिर्फ़ दिखता है.... पाना लगभग असंभव ही है।
वान लड़के-लड़कियाँ कारपोरेट जगत में अपनी जगह बनाने
लिए जी-जान से संघर्ष कर रहे हैं। जो भाग्यशाली 'मोटी
ाहों के पैकेज' के साथ नौकरी पा जाते हैं, उनकी घर से
त कर वापिस घर आने तक बारह-तेरह घंटे की ड्यूटी
आम बात है। इसके बावजूद जब मालिक समय-कुसमय
ते, वो अलग। अब थका-हारा शरीर, थका-हारा दिमाग़,
हारी संवेदनाएँ... प्रेम के लिए कहाँ जगह बची है। बचे-खुचे
२ घंटे में जो चाहे कर लो... खा लो-पी लो-सो लो...
लिए प्रेम अगर कहीं है भी, तो दिल में नहीं है। दिल की
ा... दिल की आशाएँ... दिल ही दिल में प्यार.... सब
या है। अब प्रेम सिर्फ़ शरीर तक रह गया है... और कभी
रीर भी साथ नहीं देता। शादी के तीन-चार साल के भीतर
तलाक की घटनाएँ शायद इसीलिए बढ़ गयी हैं।
सहित परिवार साधारणतः दिखायी देने लगे हैं, जहाँ सब
हैं, सिर्फ़ फुर्सत नहीं है... इसलिए बच्चों का झमेला कौन
.. कभी-कभी प्रेम दिखता भी है, तो वीभत्स रूप में...
वस्था में, लेकिन पागलपन के साथ। वहाँ प्रेम नहीं, अहम्
र आधिपत्य है। भावनाएँ नहीं हैं.... कोमलता नहीं है..
के दूसरे के प्रति त्याग और समर्पण तो बहुत दूर की बात
मैं प्रेम करता हूँ तुमसे... तुम भी मुझे प्रेम करो'... 'क्या
तुम प्रेम नहीं करतीं... नहीं करतीं.... तो, तो मरो...'
इस प्रेम की अंतिम परिणति प्रेमिका की जान लेकर ही
है। तो यह भी आज प्रेम का स्वरूप है। यह वो समाज
जो निम्न मध्य से मध्यवर्ग के बीच फैला है, जो सिनेमा
वी0सी0 सीरियल देख-देखकर 'प्रेम' पढ़ता और समझता है।
इसीलिए, अगर प्रेम कहानी विशेषांक एक के बाद
कायिक रूप से सफल हो रहे हैं, तो इसमें आश्चर्य नहीं
चाहिए। जो साहित्य मालिक को, प्रकाशक को मुनाफ़ा
, उसी साहित्य की सार्थकता समझी जानी चाहिए। आज
जारवाद के दौर में व्यापार और लाभ सर्वोपरि है, इसलिए
जो बिकेगा... वही छपेगा। वैसे भी विरोधाभासों से भरे समय में इस पर चर्चा होना लाज़िमी है। एक ओर घर से बाहर निकलना, शिक्षा पाने के लिए हो या नौकरी करने के लिए—दोनों ही आज ज़रूरी हैं। घर के लड़कों के सामने अगर बेकारी है, तो लड़कियों को बाहर जाना ही होगा। मध्यवर्ग में आज लड़कियों की शिक्षा भी ज़रूरी हो गयी है। यह समय का तकाज़ा है। वही लड़कियाँ जब दूसरा क़दम आगे बढ़ाती हैं और अपनी ज़िंदगी के फ़ैसले खुद लेना चाहती हैं, प्रेम करने की धृष्टता करती हैं, अपना जीवन साथी खुद चुनना चाहती हैं, तो मार दी जाती हैं। यह प्रेम क्यों नहीं आ रहा है कहानियों में। प्रेम का मतलब सिर्फ़ कभी चाची, बहन, तो कभी प्रेमिका को साईकिल या अन्य किसी उपादान के रूप में देखना या हिल स्टेशन पर, वहाँ के गेस्ट हाउस में बंद उसे महसूस करने तक ही सीमित नहीं है। अब प्रेम में समर्पण क्यों नहीं होता.... पाना ही पाना क्यों... देना क्यों नहीं होता। समाज का वातावरण बदला है, तो प्रेम का स्वरूप भी बदल गया है। अब यह प्रेम अंतरात्मा की गहराइयों में नहीं उतरता... व्यवसायीकरण हो गया है इस 'प्रेम' का भी।

इसलिए, अब विमर्शों के साथ नया विषय 'प्रेम' जुड़ गया है। इसकी मार्केटिंग भी ख़ूब हो रही है। हर पत्रिका 'युवा' और 'प्रेम' को हथिया रही है और अपने पीछे लंबी कतार लामबंद कर रही है। सामाजिक यथार्थवाद की कहानियाँ, नये बनते-बिगड़ते सामाजिक-राजनैतिक समीकरणों के चक्रव्यूह में फँसा आम आदमी, वैश्वीकृत समाज में उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों के साथ आत्मकेंद्रित मनुष्य और उसके विकल्प के लिए जन-साधारण के साथ प्रतिबद्ध खड़ा समूह और उसके प्रयास कहाँ हैं इन विशेषांकों में ! क्या ब्रांडेड साहित्य में साहित्य के मूल सरोकार गुम हो जाएँगे और साहित्य में उपभोक्तावादी समाज और उसकी प्रवृत्तियाँ ही स्थापित होंगी? उनकी प्रतिरोधक शक्तियों की कहीं पहचान नहीं होगी? ऐसे ही समाज छुट्टा छोड़ दिया जाएगा, भटकने के लिए? जहाँ सींग समाए, भागने-दौड़ने के लिए? कौन अंगीकार करेगा इन वंचितों के समूहों को... जिनके पास कोई नाम ही नहीं है। नाम नहीं है, तो प्रायोजक भी नहीं हैं और बिना प्रायोजक के मार्केट भी उन्हें उपलब्ध नहीं है।

पिछले दो अंकों से हम वर्तमान साहित्य : कमलेश्वर कहानी पुरस्कार के लिए शॉर्टलिस्ट हुई कहानियों को छाप रहे हैं। हमारे निर्णायकों की कोशिश रही है कि जन साधारण के लोगों के मुद्दे उठाने वाली कहानियों का चयन किया जाए। हाँ, उसका 'कहानी होना' एक अनिवार्य शर्त तो है ही। हमें खुशी हुई कि अधिकतर अल्पज्ञात या अज्ञात लेखकों की कहानियाँ निर्णायकों ने चयनित कीं। निर्णायकों के सम्मुख केवल कहानियाँ थीं, नाम नहीं थे। अधिकतर सार्थक कहानियाँ अब क़स्बे के,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे शहरों के रचनाकार लिख रहे हैं। वे इन नयी पैदा होने वाली समस्याओं को देख रहे हैं, उनसे जूझ रहे हैं। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से नयी जानकारियाँ पाठकों को दे रहे हैं। बेशक, उनके यहाँ कलात्मकता के ऊँचे बनाये मानदंड न हों, नये प्रयोग के नाम पर उलटबाँसियाँ न हों, भाषा का चमत्कार न हो; लेकिन संवेदना की गहराई से निकली ये कहानियाँ प्रभावित करती हैं, संदेश देती हैं और वर्तमान में मानव-जीवन के नये आयामों से परिचित कराती हैं।

इस अंक में हम कई कहानियाँ दे रहे हैं। आशा है पाठकों को पसंद आएँगी। विमर्श से इतर इन कहानियों पर प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

0 0 0

भला हो वैश्विकता का, हम भी अब कुछ नये 'दिवस' समारोहों पर कुछ खास लोगों को याद कर लेते हैं। मई दिवस या मजदूर दिवस, बाल दिवस, शिक्षक दिवस और महिला दिवस तो काफी समय पहले से मनाते ही रहे हैं। कुछ संस्थाएँ साक्षरता दिवस और पृथ्वी दिवस भी आयोजित कर लेती हैं। ये दिवस सरकारी महत्व के ज़्यादा हैं और आम लोगों की इनमें दिलचस्पी कम होती है। जो उत्साह वैलेन्टाइन डे, फादर्स डे और अब नया प्रचारित हुआ मदर्स डे में दिखाई देता है वह अलग तरह का लगता है। वैलेन्टाइन डे पर खूब गहमा गहमी रहती है। हमारा शहर मूलतः व्यापारियों का शहर है। अखबारों में विज्ञापन वाले पन्ने बढ़ जाते हैं और सैकड़ों पति-पत्नी के जोड़ों की तस्वीरों से भरे रहते हैं। साथ ही एक प्रेम भरा संदेश पति का जो वह पत्नी के लिये होता है। उसी पत्नी के लिये जो रसोई में घुसी है, काम में व्यस्त है। वह जरूर खुश होती होगी कि इस बहाने से उसकी तस्वीर छपती है और पति का प्यार भरा संदेश उसके लिये लिखा होता है। वो अचरज कर सकती कि यह संदेश तो वह उसे खुद भी घर में दे सकता अखबार में छपाने की क्या ज़रूरत थी। काश, कभी खुद ऐसा कुछ अपने मुंह से कह दिया होता। वह सोचती होगी सामने का व्यवहार इस छपे संदेश के व्यवहार से इतना क्यों होता है। उसे नहीं मालूम कि इस विज्ञापन के लिये देनी पड़ी है। व्यापार का हिस्सा हैं ये प्यार-मुहब्बत की इससे पति की सहृदयता का बिना कुछ किये समाज में भी होता है।

मदर्स डे पर टी0वी0 में और अखबारों में चंद माँ-बेटे माँ-बेटे के चित्र भी देखे। ईश्वर करे यह मदर्स डे उन की तकदीर बदल दे जो एक उम्र के बाद परिवार में हो जाती हैं। पड़ी रहती हैं एक कोने में, फालतू सामान तरह जिनकी मुख्य भूमिका अब घर की पहरेदारी भर रह है। बेटा, बहू और पोते-पोती के बीच रहकर भी वह अकेली हो जाती है। बुड्ढे माता-पिता की हमारे भारतीय में अब ऐसी ही दुर्गत होने लगी है। हमारे अपने आसपास पड़ोस में अमूमन ऐसा दिखाई दे जाता है।

इस मदर्स डे पर भी विभिन्न टी0वी0 चैनलों में बेटे-बेटि अपनी माँओं के लिये स्नेह संदेश भेज रहे थे। मीडिया 'इमोशनल अत्याचार' को बढ़ावा तो देता ही है क्योंकि मामला व्यापार का है। मेरा मन प्रार्थना करता है कि हर बेटा और बे अपनी माँ (और पिता) के बुढ़ापे का सहारा बने। वे बूढ़े दुर्द का श्राप भुगतने के लिये अभिशप्त न हों, आमीन !

नमिता

(नमिता सिंह

वर्तमान साहित्य के मई अंक में 'विघटनकारी ताकतें' और 'हत्यारे की तलाश' कविताओं के लेखक **रामकुमार आत्रेय** हैं। भूलवश इनका नाम **'राज कुमार आत्रेय'** चला गया है। भूल के लिये खेद है।

संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युंजय संकल्प और अपराजित जिजीविषा को प्रणाम

डॉ0 वेदप्रकाश अमिताभ

सिसौदिया जी चले गये। डॉ0 गोपालकृष्ण शर्मा ने जब उनके महाप्रस्थान की सूचना दी तो कुछ देर तक अवसाद की स्थिति रही और फिर स्मृतियों का प्रवाह फूट पड़ा। जिस कवि ने कभी लिखा था—'जब तलक/ यह कलम मेरे हाथ में है/ और मैं प्रतिबद्ध जन से/ तब तलक रे काल! / मुझको हरा पायेगा नहीं तू', वह अंततः काल से हार गया। लगभग एक दशक से उनका रोगजर्जर शरीर कलम और जनप्रतिबद्धता के स्तर पर काल को चुनौती दे रहा था। सन् बयालीस के जन-आंदोलन में उन्होंने सक्रिय भागीदारी की थी और अज्ञातवास के दिनों में रोगों ने उनके शरीर को घर बना लिया था। लंबी रुग्णता के बीच अध्यापन, लेखन की गतिविधियाँ संपन्न होती रहीं। एटा से सिकंदराबाद (आंध्र प्रदेश) जाने के मूल में भी उनकी रुग्णता मूल कारण बनी थी। प्रायः पत्रों और फोन-संदेशों में वे अपनी शरीरिक अशक्तता की सूचना देते रहते थे। 7 मई 2007 के एक पत्र में उन्होंने दुर्बलता अधिक होने से लिखना-पढ़ना छूट जाने की सूचना देते हुए लिखा था—'उम्र की अपनी सीमाएँ और विवशताएँ होती हैं।' लेकिन अगला ही वाक्य था—'अभी चुका नहीं हूँ मैं पर शरीर साथ नहीं देता।' सचमुच वे कभी चुके नहीं। गत वर्ष प्रकाशित 'सम्पाति-चिंता' शीर्षक खंडकृति से पता चलता है कि बिस्तर पर पड़े-पड़े उनकी चेतना और सर्जना का क्रम कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। अभी उनकी कई रचनात्मक परिकल्पाएँ साकार होनी थीं। अपने साक्षात्कारों को एक जिल्द में देने के लिए सचेष्ट थे। उनकी कुछ कहानियाँ भी संग्रहबद्ध होनी हैं। यह काम सिसौदिया जी के आत्मीयजनों को करना होगा। अच्छा हो कि उनकी पूरी रचनावली के प्रकाशन के लिए कोई योजना बने।

लगभग 25-26 वर्ष पहले एटा किसी साहित्यिक संगोष्ठी में गया था, तब सिसौदिया जी को बोलते सुना था, एकदम स्पष्ट, दो टूक, प्रमाणपुष्ट। बाद में कविताओं का पाठ सुना वह भी प्रभावशाली लगा। मैं उनके प्रबंधकाव्य 'सूली और शांति' को पढ़ चुका था, लेकिन उनके शेष काव्य से लगभग अपरिचित था। जब उनके संग्रह पढ़े तो आश्वस्त हुआ और कुछ चकित भी कि इस कवि का उल्लेख तो नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल के साथ होना चाहिए था। बाद में डा0 रणजीत, डा0 कुँवरपाल सिह आदि कुछ आलोचकों ने अपने आलेखों में उनका सम्मापूर्वक उल्लेख किया लेकिन आज भी वस्तुस्थिति यही है कि प्रगतिशील और प्रतिबद्ध आलोचक और पाठक भी या तो उनके जनवादी कृतित्व से अनभिज्ञ है या फिर जानबूझकर उनकी उपेक्षा करते रहे हैं। संभवतः ऐसे ही लोगों को संबोधित करके उन्होंने लिखा था—

तुम्हारे द्वारा रद्दी की टोकरी में फेंकी गयी/ मेरी रचनाओं को

काल-सम्पादक निकाल कर छाँटेगा/ उन्हें युग के पन्नों पर सजाकर छापेगा।

यही वजह है कि जब कहीं उनकी कोई आलोचक चर्चा करता था तो वे विस्मित भी होते थे और खुश भी। डॉ0 शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी ने 'सूली और शांति' पर लिखा था तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि जिस आलोचक से उनका दूर तक कोई परिचय नहीं है, उसने बहुत सलीके से उस कृति के महत्त्व को रेखांकित किया। अभिनव प्रसंगवश में मधुर नज़्मी कीएक टिप्पणी छपी थी, जिसमें उन्हें नागार्जुन और त्रिलोचन के साथ स्मरण किया गया था। इस पर उन्होंने मुझे 16 अगस्त 2007 के पत्र में लिखा था—'मेरे विषय में किसी बाहरी आलोचक की टिप्पणी' देर आयद दुरुस्त आयद, जैसी है। मेरा उल्लेख तो किया ही जाने लगा है।' यहाँ 'बाहरी' में निहित व्यंग्य को समझा जा सकता है और हिन्दी आलोचना की इस प्रवृत्ति को भी कि प्रायः समीक्षाएँ निकट के लोग ही लिखते हैं।

सिसौदिया जी के निकट सम्पर्क में आकर लगा था कि वे आत्ममुग्ध कथित साहित्यकारों से भिन्न प्रकृति के थे। वे बड़े कवि थे और उससे भी बड़े इन्सान। लेकिन कभी वाणी और व्यवहार में दंभ और अहंकार की बू नहीं महसूस होती थी। अपने से बहुत कनिष्ठ व्यक्तियों से भी सहजता और आत्मीयता से मिलना और संवाद करना उनका स्वभाव था। उनमें एक विलक्षण गुण था, दूसरों की प्रशंसा पीछे करने का। मैंने निंदा तो किसी की कभी सुनी ही नहीं। एक बार बातचीत में एक प्राध्यापक बंधु के व्यवहार को अनुचित बता गए तो दूसरे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन फोन आ गया कि उनकी यह बात मुझ तक ही सीमित रहे। उनकी सदाशयता का प्रसाद मुझे बराबर मिलता रहा। उन्होंने एक संपादित पुस्तक के लिए मुझ पर एक विस्तृत टिप्पणी लिख भेजी थी, जिसमें मेरे कई ऐसे गुणों का अन्वेषण किया गया था जो आज तक मुझमें नहीं हैं। वे इस बात के लिए सतत सचेत थे, कि मित्रों, स्वजनों, समानधर्माओं से संवाद बना रहे और जहाँ जिसका उल्लेख होना हो, अवश्य हो। उन्होंने मथुरा के साहित्यकारों का उल्लेख एक निबंध में किया था। उसमें मदन मोहन उपेन्द्र का नामोल्लेख करना भूल गए। उन्हें लगा कि यह गलती नहीं होनी चाहिए थी। अतः एक पत्र में उन्होंने अपनी बेचैनी इन शब्दों में व्यक्त की–'जहाँ मैंने मथुरा के साहित्यकारों का उल्लेख किया है, वहाँ मदन मोहन उपेन्द्र का उल्लेख करना भूल गया। अब मेरी स्मृति धोखा देने लगी है।.... उनका पता मेरे पास नहीं है, अन्यथा उनको खेद व्यक्त कर देता।' आज के आत्मसीमित माहौल में इस तरह आत्मीयता विरल है। उनके निकट के लोगों में उनकी आत्मीयता, सद्भाव परदुखकातरता, दूसरों को प्रोत्साहित करने के प्रवृत्ति और सर्वोपरि उनके सार्थक लेखन की स्मृति लंबे समय तक बनी रहेगी, इसमें संदेह नहीं है।

सिकंदराबाद से लिखे गए 25 जुलाई 2005 के एक पत्रांश से मैं उनकी जिजीविषा को प्रणाम करना चाहता हूँ : "चल नहीं पाता हूँ, पाँव लड़खड़ाते हैं। लेकिन हिम्मत नहीं हारी है। कविताओं की फाइलें साथ लाया हूँ। जब कभी शरीर साथ देता है, उसमें से छाँटकर नए संग्रह की तैयारी करने की कोशिश करता हूँ। मृत्यु को इस बार फिर पछाड़ तो दिया है, लेकिन बार-बार हार कर भी वह आसपास ही चक्कर लगाती रहती है। मेरी इच्छा केवल इतनी है कि मेरा लिखा हुआ–कविता, गद्य, मेरे सामने प्रकाशित हो जाए। यह संकल्प भी है।" अंततः आसपास चक्कर लगाने वाली मृत्यु इस बार अपने प्रयास में सफल हो गयी, लेकिन उनकी यश-काया को नष्ट करने की शक्ति उसके पास कहाँ है ? साहित्य में नयी दृष्टि, नयी सृष्टि, नये संप्रेषण के लिए सदैव प्रतिबद्ध डॉ0 सिसौदिया जी शायद ही कभी पुराने पड़ें। उनका उद्बोध-'मेरा शब्द-शब्द बन जाए आज आग की चिनगारी' नयी व्यवस्था के लिए कृतसंकल्प युवा रचनाकारों का प्रेरणास्रोत बन सकता है। वे उन विरल रचनाकारों में से थे जो कला से 'तलवार' और 'मरहम' दोनों का काम लेने के कायल थे। जब भी हिन्दी कविता में लोक संस्कृति के चितेरों और लोकशक्ति में अदम्य विश्वास रखने वाले रचनाकारों का उल्लेख किया जाएगा, डॉ0 मलखान सिंह सिसौदिया की उपेक्षा संभव नहीं हो पाएगी। 'संपाति-चिंता' की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्वयं सिसौदिया जी के जुझारू और अपराजेय व्यक्तित्व की भी व्यंजना है–

यदि संकल्प भी टूट जाए, मन भी थक जाय
तब भी संकल्प और मन का कर्ता और स्वामी
मैं टूटूँगा नहीं, थकूँगा नहीं।

यह मृत्युंजय संकल्प युवा रचनाकारों के लिए प्रेरणास्रोत और पाथेय बनेगा, यह आशा बेमानी नहीं होगी।

डी-131, रमेश विहार
अलीगढ़-202001

- जिन सदस्यों / संस्थाओं की सदस्यता अवधि समाप्त हो गयी हो वे तुरंत नवीनीकरण हेतु सदस्यता राशि भेजें।
- केवल ड्राफ्ट, मनीऑर्डर तथा लोकल चैक ही स्वीकार किये जायेंगे।
- चैक तथा ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से हों।

संपादक–वर्तमान साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवास में नईम स्मरण

राम मेश्राम

ध्यप्रदेश के मालवा अंचल के शहर देवास के वास्ते 1 अप्रैल, 2010, गुरुवार का दिन, एक गीतिमय दिन था। शहर के जिन प्रमुख रास्तों से लोग गुज़रते, अमर कवि नईम के गीतों-ग़ज़लों के पोस्टर होर्डिंग्स से रू-ब-रू होते।

"चौतरफ़ फ़ैली फ़सीलें, दर बनाना चाहिए
अब मकानों की जगह कुछ घर बनाना चाहिए
जोड़ दे जो आज टूटे सेतु सारे नेह के
शब्द लिपि ही क्यों, नए अक्षर बनाना चाहिए"

गुज़िश्ता 9 अप्रैल, 2009 को गीतकार, काष्ठकला शिल्पी और दुनिया-ए-फ़शानी को अलविदा कह गए। अगर वे आज होते, तो 75 साल के होते। गीतों में कबीर सिफ़त कहन से नईम ने मुल्क की चेतना को हिलाकर रख दिया था। उनके अहलों, आत्मीयों, शागिर्दों, बुद्धिजीवियों और बतौरे-ख़ास उनकी बेटी पुत्री डॉ. समीरा नईम ने मिलजुल कर नईम की यादगार का यह आयोजन देवास में किया। इस दिन 6:30 बजे देवास के मल्हार स्मृति मंदिर के सभागार में 'नईम स्मरण' के तहत लकड़ी से तराशी नईम की 27 काष्ठ कलाकृतियों की प्रदर्शनी लगायी गई, जिसमें उनके मशहूर 'वक्रतुन्ड महाकाय' गणेश भी शामिल थे। प्रदर्शनी का उद्घाटन देवास संसदीय निर्वाचन क्षेत्र के सांसद सज्जन सिंह वर्मा ने किया। लकड़ी पर तराशी नईम की इन जीवंत काष्ठकला कविताओं से दो-चार होना खुद में एक विलक्षण सौंदर्य मूलक अनुभव था। काष्ठ-शिल्पों पर लेखक जीवन सिंह ठाकुर ने विश्लेषणात्मक टिप्पणी पेश की। दूरदर्शन पर आयोजित एक अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के अंश दिखलाए गए, जिसमें कवि नईम पुरजोश अंदाज़ में काव्य पाठ कर रहे थे– "चिट्ठी पत्री-ख़तो-किताबत के मौसम फिर कब आएँगे.. क्या जाने सही इबादत के मौसम फिर कब आएँगे।"

दूसरे सत्र में श्रीमती सुल्ताना नईम (प्रो. नईम की पत्नी) की उपस्थिति में वरिष्ठ आलोचक, कवि, चिंतक डॉ. विजय बहादुर सिंह (संपादक वागर्थ–कोलकाता) ने भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित नईम के नए गीत संग्रह "उजाड़ में परिन्दे" का लोकार्पण किया और नईम के पुराने दोस्त वरिष्ठ गीतकार प्रो. उदय प्रताप सिंह ने नईम के ग़ज़ल संकलन "आदम क़द नहीं रहे लोग" का लोकार्पण किया।

नईम के गीतितत्त्व पर डॉ. विजय बहादुर सिंह ने कहा कि "नईम के गीत आदमी में इन्सान होने की कोशिश के गीत हैं, बल्कि साहित्य में इन्सानियत की तमीज़ के गीत हैं। नईम के गीतों और ग़ज़लों में अमीर खुसरो जैसी हिन्दुस्तानी भाषा की रवानी है, जो अमीर खुसरो की सांस्कृतिक समरसता की परंपरा का विस्तार करती है। नईम ऐसे समाज में कविता को परिभाषित करते हैं जो कल के हिन्दुस्तान में धर्मों, जातियों और भाषाओं के भेदभाव से ऊपर उठा होगा।" कवि, लेखक कुबेर दत्त ने 'अलाव' पत्रिका के नईम विशेषांक में प्रकाशित अपने आत्मीय संस्मरणों के चन्द अंश पढ़े। उन्होंने कहा कि नईम के व्यक्तित्त्व में लिखने, सोचने और जीने के बीच, फाँक नहीं थी। जिसने नईम को देख लिया उसने कबीर को देख लिया।

कवि पवन जैन ने कहा कि नईम ने श्रोताओं और पाठकों में छंद को लेकर दोबारा विश्वास क़ायम किया कि छंद ज़िंदगी के हर पहलू की सक्षम अभिव्यक्ति का प्रभावी माध्यम है।

वरिष्ठ गीतकार माहेश्वर तिवारी ने आत्मीय यादों में नईम को अन्यतम पारिवारिक मित्र और हितैषी बताया जो उनकी गृहस्थी को सँवारने से लेकर ज़िम्मेदारियों के निर्वाह के अनुभवी मशवरे देते थे।

तीसरे सत्र में आयोजित काव्य-गोष्ठी का संचालन मशहूर गीतकार यश मालवीय ने किया। उन्होंने नईम केन्द्रित आत्मीय कविता "नईम को देखे बहुत दिन हो गए" पढ़ी और एक गीत पेश किया "चिट्ठियों में, लकड़ियों में, गीत में जागे हुए हो/कौन कहता है कि दुनिया से कहीं भागे हुए हो"। आज की राजनीति की बुनियाद वाले शोषित व्यक्तियों पर केन्द्रित गीत "आओ भाई रामसुभग" भी पढ़ा।

माहेश्वर तिवारी ने पुरसोज़ आवाज़ में प्रभावी गीत पेश किए "आने वाले हैं, ऐसे दिन आने वाले हैं, जब आँसू पर भी पहरे बैठाने वाले हैं।" उनका 'सुबह' केंद्रित अगला गीत श्रोताओं को बहुत भाया "घर के जूठे बासन बोले सुबह हो गई है"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुबेर दत्त ने नईम की ग़ज़ल "चौतरफ़ा फैली फ़सीलें दर बनाना चाहिए" पढ़ी और फिर अपनी प्रतिनिधि कविताएँ जैसे "काल काल आपात/बोल अबोले बोल/अर्थ समर्थ हुए सब डाँवाडोल" पढ़ी। देश और समाज की गहन चिंता उनकी कविताओं में शिद्दत से गूँज रही थी। डॉ. विजय बहादुर सिंह ने समकालीन भारतीय समाज के नैतिक चरित्र पर केंद्रित चिंतन पर कविता "पूछा गया है इम्तिहान में/तुम्हारी खुद की क़ीमत और क्या है" पेश की। उन्होंने एक ग़ज़ल सुनाकर श्रोताओं को बेहद प्रभावित किया।

समापन में दिल्ली के वरिष्ठ गीतकार उदय प्रताप सिंह ने नईम के दोस्ताना ताल्लुकात का भावभीना स्मरण किया।

"चिंतक थे, कलाकार थे, विद्वान थे नईम
सबसे बड़ी है बात कि इन्सान थे नईम
धरती की बात कहते थे ऊँचाईयों के साथ
सच है कि इस जमीं के आस्मान थे नईम
वह दौर जिसमें रह गया इन्सानियत का नाम
इस सत्य का सबसे बड़ा प्रमाण थे नईम"

उन के पुरानी शैली के कविता सवैयों को ख़ासतौर पर पसंद किया गया। कवियों को देवास के श्रोता वर्ग जैसे रसिक श्रोता शायद ही मिलें हों जिनमें वरिष्ठ शायर श्री ओम प्रभाकर, देवास नगर निगम की महापौर सुश्री रेखा वर्मा, प्रकाश कांत, प्रभु जोशी, जीवन सिंह ठाकुर, नेहा शरद, राजीव कुमार सिंह (वाराणसी), मोहन वर्मा, इकबाल बार, लोक गायक प्रल्हाद सिंह टिपाण्या, श्रीकांत उपाध्याय, देवास शासकीय महाविद्यालय के प्राध्यापगण और प्रबुद्ध वर्ग नईम-स्मरण में बड़ी तादाद में शरीक थे।

एफ-115/29, शिवाजी नगर, भोपाल-16

प्रो. नईम का पता, डॉ. समीरा नईम
7/6, राधागंज, देवास

ग़ज़ल

शह्रयार

:: 1 ::

अब तुझे भी भूलना होगा मुझे मालूम है
बाद इसके और क्या होगा मुझे मालूम है।

नींद आएगी, न ख़्वाब आएँगे हिज्राँरात में
जागना, बस जागना होगा मुझे मालूम है।

इक मकाँ होगा, मकीं होगा न कोई मुन्तज़िर
सिर्फ़ दरवाज़ा खुला होगा मुझे मालूम है।

आगे जाना, और भी कुछ आगे जाना है मगर
पीछे मुड़कर देखना होगा मुझे मालूम है।

ज़िंदगी के इस तमाशे में किसी इक मोड़ पर
कोई शामिल दूसरा होगा मुझे मालूम है।

:: 2 ::

तेरे सिवा न कभी मैं किसी के साथ रहा
हर इक क़दम पे मगर ज़िंदगी के साथ रहा।

हवा को रोका कि ऊँची रहे चिराग़ की लौ
गवाह रात है मैं रौशनी के साथ रहा।

मेरे नसीब में दरिया नहीं समन्दर थे
ये और बात कि मैं तश्नगी के साथ रहा।

बदन की भूख ने बेहाल कर दिया होता
मगर मैं रूह की ताबिन्दगी के साथ रहा।

मुझे कुबूल नहीं करते इस सदी के लोग
ख़ता यही है कि पिछली सदी के साथ रहा।

सफीना अपार्टमेन्ट
मेडीकल रोड, अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ, ओ माँ!

योगेशचन्द्र बहुगुणा

"मानव जाति के होठों पर जो सबसे सुंदर शब्द है वह है—'माँ' और जो सबसे सुंदर संबोधन है, वह है—मेरी माँ। यह प्रेम और प्यार भरा शब्द है, हृदय की गहराइयों से निकलने वाला मृदु और दयालु शब्द है। माँ सब कुछ है। वह लोक में हमारा प्रस्थान है, दुख दैन्य में आशा है, निर्बलता में शक्ति है। वह प्रेम, करुणा, सहानुभूति और क्षमा का स्रोत है। जो माँ को खो बैठा है, वह उस पुनीत आत्मा को खो बैठा है, जो उसे निरंतर आशीर्वाद और दुआ देती है।

प्रकृति की प्रत्येक वस्तु माँ की याद दिलाती है। सूर्य पृथ्वी की माँ है और उसे ताप-रूपी पोषण देता है। रात को वह विश्व से तब तक विदा नहीं लेता, जब तक पृथ्वी को समुद्र के संगीत और नदियों एवं निर्झरों के भजनों की धुन पर सुला नहीं देता। यह पृथ्वी घासों और फूलों की माँ है। वह उन्हें जन्म देती, पालती-पोसती और बड़ा करती है। पेड़-पौधे और फूल अपने विशाल फलों और बीजों की माँ हैं। और माँ, जो समस्त अस्तित्त्व का मूल नमूना है, सृजन आत्मा है—सौंदर्य से भरपूर।"—(ख़लील ज़िब्रान)

.... और सचमुच, माँ मूर्तिमंत वात्सल्य है, करुणा का विल विस्तार, ममता की मंदाकिनी! तभी तो ज़िंदगी के सत्तरवें दर को पार करने के बाद भी जब कभी यौवन की पगडंडियों से जाते हुए शैशव की दुनिया की दहलीज़ पर लौटकर बंद दरवाज़ों खटखटाता हूँ, तो स्मृति की पहली किरण अपनी माँ की ही शैया पर ठहरती है, उससे पहले का कुछ भी स्मरण नहीं है। दिन से चलकर आज तक माँ मेरे लिए एक अनजानी, नीन्ही छाया-मात्र है और उसकी याद मुझे एक ख़ास तरह की मों से भर देती है। लगता है, माँ मरती नहीं, इसलिए मेरी थकी ई जीवन की संध्या में भी उसे खेत-खलिहानों, ऊँची-नीची ी-कौंठियों, वन-वीथियों, पानी के धारों, गंगा के कछारों, अपने हे को दूध पिलाने के लिए दौड़ती-रँभाती वत्सला गोमाता, नत चूज़े के खुले सुकोमल मुख के अन्दर दाना डालती चिड़िया ोंच में तलाशती रहती है।

स्मृतियाँ भी कितनी छलिया होती हैं, चश्मा मेरी नाक के र अटका होता है और उसे पाने के लिए मैं घर का कोना-कोना र मारता हूँ। जो पास में है, उस पर नज़र ही नहीं पड़ती और ुंध में कहीं खो गया था, वह चलचित्र की तरह आँखों के सामने ी लगाता रहता है। प्रकृति की व्यवस्था में स्मरण की शायद र्मतुलित प्रणाली कार्यरत है। जीवन में जो कुछ भी घटित होता है, वह सब कुछ चेतन स्मृति में संचित होता चला जाए, तो मनुष्य का सुख-चैन ही ग़ायब हो जाए और यदि सब कुछ निःशेष हो जाए, तो जीवन की गाड़ी एक क़दम भी आगे की ओर न बढ़ सके। यादें कचोटती भी हैं, तो सुकून भी देती हैं। वे सालती हैं, तो सहलाती भी हैं। कभी ऐसा भी होता है कि जिसे भूल जाना ही अच्छा होता, वह हर पल पास ही उपस्थित रहता है, यादों में ज़िंदा रहता है और जिन्हें तरोताज़ा रहना चाहिए, उन्हें अतीत का कुहासा अपने में समेट लेता है। यादों की दुनिया में लुका-छिपी का, हास-परिहास का खेल चलता ही रहता है।

तब शायद मेरी उम्र सात-आठ साल की रही होगी। उस ज़माने में पाँच साल की देहली पर क़दम रखते ही बच्चों को पास के ही किसी स्कूल में प्रारंभिक पढ़ाई करने के लिए भरती कर दिया जाता था। इस नियम के हिसाब से मैं तीसरी-चौथी कक्षा का छात्र रहा होऊँगा। हमारा स्कूल गाँव की सीमा के भीतर नरेन्द्र नगर से टिहरी जाने वाली सड़क के किनारे मुड़यागाँव में पड़ता था। मुड़यागाँव, जो पाँच सौ वर्ष पूर्व कभी बसा होगा। फिर उजड़ा, जिसके ध्वंसावशेष आज भी दिखायी देते हैं और अब एक बार फिर से आवाद होने लगा है। किन्हीं कारणों से सारे परिवार इसे खाली करके चले गये होंगे और तब पूरी बस्ती बहुगुणाओं के साबली गाँव का हिस्सा बन गयी। परिवारों की संख्या तेज़ी से बढ़ने के साथ साबली गाँव की गलियाँ बनारस की गलियों जैसी तंग और बदबूदार बन गयीं। वर्षाकाल में तो इन गलियों से गुज़रना वैतरणी पार करने जैसा था। वर्षों तक आर्थिक तंगी में जीने के कारण लोग परिस्थितियों के घात-प्रतिघात झेलते रहे। अब लक्ष्मी ने उदारता दिखायी है, तो साबली के कई परिवार मुड़यागाँव को फिर से आबाद करने में लगे हैं।

तब सड़कें आज की तरह चमचमाती नहीं होती थीं। गाड़ियाँ दौड़तीं, तो कच्ची सड़क से उठने वाले धूल के गुबार से थोड़ी देर के लिए ही सही, सब कुछ को ढक देतीं। सड़क को 1944-45 में मोटर यातायात के लिए चालू कर दिया गया था। पहले दिन चंबा क़स्बे के निकट दिखोलगाँव के बेताल सिंह और ढरसालगाँव के गोविन्दराम भट्ट की बसें इस पर दौड़ीं। इनके दर्शन करने के लिए सड़क से लगे गाँवों के लोग उमड़ पड़े। वे विस्फारित नेत्रों से इस तकनीकी चमत्कार को देखते रहे और उनके कान हॉर्न की पौं.... पौं.. पर रोमांचित होते रहे। ऐसी ही कच्ची सड़क के घुमावदार मोड़ पर सरकारी पहल पर खोला गया प्राइमरी स्कूल, सीमेंट की गयी दीवारें, टिन की ढालदार छत, छात्रों के बैठने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए मात्र दो कमरे, उन्हीं में मास्टर जी का दफ़्तर किसी एक आलमारी या बक्से में सेट किया रहता। तेज़ गर्मी और बरसात के दिनों को छोड़कर बाकी समय कक्षाएँ बाहर स्कूल के आँगन में लगतीं। इकलौते मास्टर जी किसी एक कक्षा को पढ़ा रहे होते, तो दूसरी कक्षा के छात्र लय के साथ पट्टी पहाड़ा याद कर रहे होते, एक पव्वा.. पव्वा... दो पव्वा... आध... तीन पव्वा... पौन... चार पव्वा... एक, पाँच पव्वा सवा एक...। जो नये-नये भर्ती हुए होते वे 'बराखड़ी' (बारहखड़ी) रट रहे होते—बिनमिनि 'क'... बामत 'कि'... दैणे 'की'... उड़ताले 'कु'... बढ़ढेरे 'कू'... एक लग 'के'... दो लग 'कै'... लखन्या 'को'... दो लखन्या 'कौ'... सिरबिन्दु 'के'... दो बास बिन्दु 'कः। 'रटन्त विद्या घोटंत पाटी' का सार्वभौम नियम सभी स्कूलों में समान रूप से लागू था। किसी विषय का बार-बार पारायण करके उसे कंठस्थ करना शिक्षण विधियों में सर्वोत्तम माना जाता था। आवृत्ति सर्व शास्त्राणाम् बोध से भी अधिक श्रेष्ठ थी, शास्त्रों की जिल्दों के भीतर संग्रहीत विद्या तो दूसरे के साथ में गये धन की तरह है, जो आवश्यकता के क्षणों में धोखा भी दे सकती है।

इधर वर्णमाला और पट्टी पहाड़ा की कवायद चलती , उधर अन्य कक्षा के छात्र तोलका पैमाना रट रहे होते :

आठ खस-खस का एक चावल/ आठ चावल की एक रत्ती/ आठ रत्ती का एक मासा/ बाहर मासे का एक तोला/ पाँच तोले की एक छटाँक/बारह मासे का एक तोला/चालीस सेर का एक मन।

स्कूल की दिनचर्या प्रारंभ होती कमरों की, आँगन की सफ़ाई करने; टाट-पट्टी झाड़ने और मास्टर जी की कुर्सी-मेज़ सेट करने से। सींक वाले, प्लास्टिक वाले रेडीमेड झाड़ू तब कहाँ उपलब्ध थे। जिन लड़कों की सफ़ाई की बारी होती, वे आसपास के खेतों की मेड़ों पर खड़े पेड़ों की हरी टहनियाँ तोड़कर लाते और सफ़ाई का कर्मकांड पूरा कर लेते, टाट-पट्टियों को झाड़कर लाइनों में बिछा देते। छात्र-संख्या के हिसाब से टाट-पट्टियाँ होतीं। छोटी कक्षा के बच्चे अपनी बोरी या छोटी-सी दरी स्कूल में बैठने के लिए साथ लाते और छुट्टी होने पर कंधे पर लादे साथ ही घर ले जाते। फिर, कक्षावार लाइन में खड़े होकर प्रार्थना का क्रम चलता :

रक्षतु बालाद बदरि जननि सिंहवाहिनी
दीजो सम्पत्ति अखिल कमल दल विहारिणी

ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक अपने राजा के दीर्घ जीवन के लिए प्रार्थना करते थे—'गॉड सेव द किंग'। हम प्रार्थना करते 'शेर की सवारी करने वाली माँ जगदम्बे,' हमारे बोलते हुए 'बद्रीनाथ रक्षा करे, कमलासन पर विहार करने वाली लक्ष्मी। समस्त सम्पत्ति उन्हें प्रदान करें?' बद्रीनाथ और राजवंश का आपसी रिश्ता सामाप्त होने के बाद आज भी ज्यों का त्यों क़ायम है। प्रति वर्ष यात्रा प्रारंभ होने से पहले जब बद्रीनाथ के कपाट खुलते हैं तो राज-परिवार की ओर से राजपंडितों—जो जोशी जाति से होते हैं—द्वारा अभिमंत्रित तिलों को ओखली में कूटकर उसका तेल निकालकर बद्रीनाथ मंदिर को भेजा जाता है और मंदिर स्थित दिये में तेल की पहली धार राज-परिवार द्वारा भेजे गये तिल के तेल की होती है। भले ही आज बद्रीनाथ मंदिर का प्रबंधन शासन द्वारा गठित 'बद्रीनाथ-केदारनाथ मंदिर समिति' द्वारा किया जाता है, परंतु मंदिर के कपाट खुलने पर वहाँ स्थापित दिये पर तेल डालने का पारंपरिक अधिकार आज भी टिहरी राज-परिवार के साथ सुरक्षित है और लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित होने के बाद भी महाराजा साहब, महारानी साहिबा, कुँवर साहब संबोधन उनके परिवार के सदस्यों के लिए यथावत् क़ायम हैं।

राजा परमेश्वर का प्रतिनिधि बनकर धरती पर अवतरित होता है। उसकी ओर से प्रजा का हित करने, उसका संरक्षण और नियंत्रण करने के लिए उसमें ईश्वर का अंश होता है। प्रजा का यह कर्तव्य बनता है कि वह अपने राजा की लंबी उम्र, सुख-वैभव की कामना करे ख़ुद छप्परों में रहे, पर अपने राजा के लिए श्रमदान से सैकड़ों कमरों का शीशमहल निर्मित करे; स्वयं अलोणा-अतेला खाए, परंतु हर सावन माह में घी का सेर (सौ सेर) राजा के भंडार में पहुँचाए। राजा के ख़िलाफ़ कुछ भी बोलना राजद्रोह है, जिसके लिए मौत की सज़ा तक दी जा सकती है। राजा के दस दैवीय सिद्धांतों ने लोकतंत्र के सूर्योदय से पहले न जाने कितनी सदियों तक मनुष्य के मन-मस्तिष्क को दासता की ज़ंजीरों में जकड़ 'कर रखा। मानव-जाति ने कितने संत्रास झेले! स्कूलों में की जाने वाली प्रार्थना में इस राज-भक्ति का बीजारोपण छात्रों के सुकोमल मन-मस्तिष्क में किया जाता था, ताकि भविष्य में वफ़ादार प्रजा बनकर राजाज्ञाओं को शिरोधार्य करें।

राजशाही के उस ज़माने में मास्टर का वेतन पंद्रह से रुपये मासिक से ज़्यादा नहीं होता था। उन्हें अपनी घर-गृहस्थी ठीक से चलाने के लिए छात्रों द्वारा हर माह दिये जाने वाले पर निर्भर रहना पड़ता था।'बरे' में आटा, चावल, दाल से मिर्च-मसाले, नमक, घी, तेल, चीनी, या गुड़, चायपत्ती सभी के साथ चूल्हा जलाने के लिए लकड़ी का इंतज़ाम भी करना था। स्कूल जाते समय हर छात्र को एक-एक लकड़ी अपने ले जानी होती थी। प्रार्थना के समय पंक्तिबद्ध होने पर हर की लकड़ी अपने-अपने हाथों में होती। मास्टर जी मुआइना हुए आगे बढ़ते, 'लड़कि कि पकड़ि, लकड़ि कि पकड़ि'—हाथ में लकड़ी नहीं होती, उसे अपनी हथेली आगे फैलानी और फिर मास्टर जी की डंडी की मार उस पर पड़ती—तड़ातड़। मार से बचने के लिए सफ़ाई देने का एक ही मार्ग था। गुरु जी की ओर कातर आँखों से ताकते वह मिमियाते कहता, "गुरु जी, मैं अपनी लकड़ी रास्ते में ही छोड़ आया हूँ। के बाद घर पर ही पहुँचा दूँगा।" उसके समर्थन में उसका साथी गवाही भी दे डालता। वे कभी आश्वस्त हो जाते, तो कभी बहाने बनाने के अपराध में डंडी का प्रहार हथेली के साथ-साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठ तक भी पहुँच जाता... ''झूठे बहाने बनाता है... बदमाश का।''

स्कूल की छुट्टी होने से कुछ समय पहले मॉनीटर की छाया में तीन-चार छात्रों की एक टोली गाँव में मास्टर जी के की ओर चल पड़ती। लक्ष्य होता—सुबह के जूठे बर्तनों को चौके-चूल्हे की सफ़ाई करना, स्कूल में इकट्ठी हुई लकड़ी सोईघर तक पहुँचाना और 'धरे' से पीने के पानी की व्यवस्था। उन दिनों मोहनलाल जी गैरोला हमारे गाँव में स्कूल पक के रूप में कार्यरत थे। वे टिहरी रियासत के बड़ियारगढ़ के किसी गाँव के रहने वाले थे और गाँव के कर्मकांडनिष्ठ सत्यशरण जी—जिन्हें गाँव के लोग मुर्खल्या कहकर संबोधित थे—के मकान में रहते थे। बहुत मिलनसार और सफ़ाई बाल तरतीब से काढ़े हुए, साफ़ कुर्ता-पायजामा, कहीं कोई नहीं, स्वयंपाकी, दाल, काँसी के भड्डू पर बनाते भात पतेली बनाने के लिए लोहे की कढ़ाई। दिन के स्कूल में (प्रातः से सायं 4 बजे तक) खाना खाकर ही स्कूल जाते। खाना के बाद जितना बचता, खाना पकाने के बर्तनों में ही रखा। स्कूल मॉनीटर अपनी टोली सहित जब रसोई में दाखिल तो, उसका पहला काम होता बर्तनों में बचे दाल-भात को एक लाना, टोली के बाकी सदस्य सामने से घेरा बनाकर हथेली ताकते रहते। वह थोड़ा-थोड़ा खाना सबकी हथेली पर, शेष खुद हजम करता; फिर भड्डू पर लात मारकर आदेश 'लो बे छोकरो, जल्दी-जल्दी साफ़ करो।' स्कूल-जीवन का यह कर्म होता।

उस दिन भी सांयकाल स्कूल में छुट्टी होने की घंटी बजी, उल्लास का माहौल, छह घंटे की क़ैद से मुक्ति। उछल-कूद कुछ छात्र सरपट गाँव घर की ओर दौड़ लगाने लगे, कुछ बस्ता बोरी कंधे पर लटकाये अपनी आदत के अनुसार मंथर गति लगे, कुछ शॉर्टकट से, तो कुछ मैन्द्रू मास्टर जी के घर के से होकर निर्धारित मार्ग से। स्कूल से कुछ सौ गज की दूरी उनका दुमंज़िला मकान था। ऊपर की मंजिल पर उनका रहता, सामने 'भँस्वाड़े' में भैंस, गाय, बैल बँधे रहते। नीचे ज़िल पर दुकान, उसमें हमारे मतलब की कई चीज़ें होतीं—गुड़ खर्दी, इलायची दाने, मूँगफली, भुने चने, खट्टे-मीठे लैमनचूस। कदा माँ-बाप पाई-पैसा इकन्नी-दुअन्नी जेबख़र्च के रूप में पाई-पैसे ताँबे के, इकन्नी-दुअन्नी पीतल की। एक पैसे के सिक्कों के बीच में छेद होता, कुछ पर ब्रिटिश सम्राट का उन दिनों पैसा दुर्लभ था, इसलिए चीज़ों के दाम सस्ते थे। रुपये में बीस चौक (सौ दाने) अखरोट, घी एक रुपये सेर, पैसे के खरीदे चने-मूँगफली से कोट की जेब भर जाती। मैन्द्रू जी का संयुक्त परिवार था। शिक्षक के रूप में उनकी ड्यूटी किसी गाँव में थी, तो दुकान का काम उनके बड़े भाई रण जी या अन्य कोई सदस्य देख लेता। पास के प्राइमरी स्कूल का प्रारंभ, जिसका बाद में सरकारीकरण हो गया, सत्यशरण जी ने अपने ही आँगन में प्राइवेट रूप से किया था। वे धार्मिक वृत्ति के थे, यजमानी करते थे और घंटों पूजा-पाठ में बिताया करते थे। उनकी दो शादियाँ थीं। लड़कियाँ तो हुईं, परंतु पुत्र का मुख देखने को उनका मन अब भी कसमसाता रहता था। उनका छोटा भाई महेन्द्र दत्त, जिसे वे कुकरू या मैन्द्रू बुलाया करते थे, हिबेट पाठशाला टिहरी से सातवीं की पढ़ाई पूरी करके आया था। उन्हीं को शिक्षक का दायित्व सौंपा गया। आठ आना प्रति छात्र फ़ीस लेते, उसी में से मास्टर जी की तनख़्वाह निकलती; जो बचता, उसे विद्यालय भवन के निर्माण की पूर्व तैयारी में लगाया जाता।

सत्यशरण जी गाहे-बगाहे अपनी दुकान से छात्रों को चने और गंदोड़े बाँटा करते। संयोग से, एक दिन एक मारवाड़ी सेठ, जो गंगोत्री की यात्रा करके वापिस लौट रहा था, मेहमान बनकर उसके घर पर ठहरा और एक माह से अधिक समय तक उनके घर पर रहा। वह भी छात्रों को गुड़-चना बाँटा करता। सभी छात्रों को एक-एक कुर्ता और एक-एक नीले रंग का जाँघिया उसने वितरित किया। सत्यशरण जी के मन में स्कूल-भवन निर्माण की जो कल्पना बीज रूप में मौजूद थी, मारवाड़ी सेठ के अंदर भी उसमें सहभागी बनने का संकल्प जागृत हुआ, परंतु गाँव के दो शरारती युवाओं ने उसके इस संकल्प को फलीभूत नहीं होने दिया, उसे डराकर किसी तरह उससे पैसा ऐंठने की योजना बना डाली। वे दोनों—विशंभर दत्त और जोंग्या—उसके पास पहुँचे और लाल-लाल आँखें दिखाते हुए कहा, ''सेठ! तुम्हें पता है कि जोगी जंगम जाट भिखारी, डुंडी डोमणी राँड बामणी—इनका कोई भरोसा नहीं है। तुम्हारा भी क्या विश्वास है, कोई अता-पता नहीं कि कहाँ से आये हो? कहाँ जा रहे हो? तुम्हें पता है कि कोई भी व्यक्ति पलासड़ा, बनाली और नागणी की कस्टम चौकियों में 'पौण टोटी' दिये बग़ैर रियासत में प्रवेश नहीं कर सकता। क्या तुमने ऐसा किया है?'' सेठ के मना करने पर उन्होंने उसे धमकाना प्रारंभ कर किया, ''तब हम कल राजदरबार में जाकर तुम्हारी शिकायत करेंगे, फिर जेल में चक्की पीसोगे।

बेचारा सेठ रात में ही कहीं चंपत हो गया और स्कूल-भवन बनाकर पुण्य अर्जित करने की उसकी कल्पना धरी की धरी रह गयी'' बाद में, मैन्द्रू मास्टर जी अपने घर-गाँव के स्कूल में आ गये। तब तक मैं इस स्कूल की पढ़ाई पूरी करके आगे बढ़ गया था। मास्टर जी छात्रों की पिटाई करने के लिए अभिभावकों के बीच ख़ासे चर्चित थे।

दुकान से आगे की ओर बढ़ते ही 'चमारू का धारा' तक हल्की -हल्की चढ़ाई शुरू हो जाती। कुछ सौ गज़ आगे बढ़े तो 'रवेलु' मोची का कच्चा छप्पर; एक बड़ा-सा कमरा, जिसमें जूता बनाने के लिए कसा हुआ चमड़ा और औज़ार; उसी से सटा हुआ रहने का एक कमरा व रसोई; कुछ दूर पर खाले के पास गाँव के मरे ढोरों के निकाले गये चमड़े को कमाने के लिए बनायी गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंडी, जहाँ पर वे मरे हुए ढोरों से चमड़ा निकालने का और उसे कमाने का काम करते मोचियों का यह परिवार संभव है हिमाचल के किसी इलाके से आकर हमारे गाँव और अन्य स्थानों पर, बस गया हो। उनकी बोलचाल की भाषा, पहनावा सभी कुछ गढ़वालियों से भिन्न है। उन दिनों भी उनकी स्त्रियाँ व मर्द सलवार-कुर्ता पहनते थे। यह पहनावा हमारे बीच प्रचलित नहीं था। गाँव के बड़े बुजुर्ग उन्हीं का बनाये जूता पसंद करते थे। भले ही वे इतने सख़्त होते थे कि आरंभ के दिनों में पाँव की चमड़ी को छीलकर लहूलुहान कर देते थे और पहनने वाले कुछ दिनों तक उनमें सरसों को तेल के लेप करके उसे मुलायम व सहनीय बनाने का प्रयास करते थे।

कुछ सौ गज़ और आगे बढ़कर अजस्र पानी का स्रोत था, जिसके स्वाद और शीतलता को हमने विरल ही चखा होगा। 'बीठों' (सवर्णों) के लिए इस धारे का पानी सर्वथा वर्जित था। प्यास से पीड़ित होकर कभी किसी ने 'छमोट' लगाकर (अंजुलि भरकर) कुछ घूँट पी भी लिये, तो पूरी सतर्कता के साथ कि कहीं कोई देख न ले। हमारे गाँव में पानी भरने के लिए सवर्णों और अंत्यजों के अलग-अलग पानी के स्रोत रहे हैं। आपातकाल में कोई अंत्यज यदि सवर्णों के जलाशय तक पहुँच भी गया, तो चोरी छिपे ही पानी भर सकता था, पी सकता था। अगर कोई सवर्ण उस समय वहाँ पर उपस्थित है, तो वह अपने बर्तन से पानी पिलवा देता था और दूर से पानी डालकर उसके बर्तन को भर देता था।

सवर्ण-अवर्णों के जल-स्रोतों की बात चली, तो हमारी बिरादरी में प्रचलित एक क़िस्से की बरबस ही याद हो आयी है। चमारों के एक परिवार के अलावा भाना लुहार का एक परिवार, झोपड़या और कलमदास औजियों के दो परिवार और बुद्धू केसरू ओड (बढ़ई) का एक परिवार भी प्रारंभ से ही हमारे गाँव के बाशिंदे रहे हैं। झोपड़िया प्रसिद्ध बजंत्री थे और बारात आगमन पर स्वागत के अवसर पर दोनों पक्षों के बजंत्रियों में शब्द-ताल के साथ जब परस्पर संवाद होता, तो झोपड़िया के सामने अच्छे-अच्छे बजंत्री हथियार डाल देते। कलमदास वाद्यकला में झोपड़िया जैसे निपुण तो नहीं थे, परंतु कुछ पढ़े-लिखे और ढोल सागर के अच्छे ज्ञाता माने जाते थे। भाना लुहार खेती के लोहे के औजार तो बनाते ही थे, परंतु भवन-निर्माण कला में वे लाखों में एक थे। 'पठाल' (पत्थरों की स्लेट) से मकानों की छवाई का काम इतनी कुशलता और बारीक़ी से करते कि चाहे जितनी भी बारिश हो, क्या मजाल कि छत से एक बूँद पानी भी मकान के अंदर टपके। बुद्धू-केसरू ओड (बढ़ई) का काम करते थे। गाँव के बच्चे, जवान, प्रौढ़, महिलाएँ उन्हें चाचा, दिदा, जेठा जी सुसरा जी के हिसाब से 'सेवा सौंली' करते। एक तरह की नातेदारी उनके साथ थी। वे ठीक से देख नहीं पाते थे और उनकी आँखें हर समय झपकती रहती थीं। गाँव की आर्थिक रचना के ताने-बाने में 'जजमानी' प्रणाली के माध्यम से आपस में सब परस्पर निर्भर थे। शिल्पकारों की सेवाओं के बदले सवर्ण किसान अनाज के साथ उनकी अन्य ज़रूरत का सामान भी देते, परंतु सामाजिक सोपान क्रम में अस्पृश्यता का भाव पूरी तरह सजगता के साथ विराजमान था।

एक दिन बुद्धू परिस्थितिवश 'बीठों' के पानी भरने के स्रोत 'मुड़यापन्यार' के धारे के पास से गुज़र रहे थे। उन्हें ज़ोर की प्यास लगी थी। इधर-उधर देखा, आस-पास कोई दिखायी नहीं दिया, वे झट से नीचे उतरे और पेट भर कर पानी पी गये। संयोगवश, इससे पहले वे कच्चा आँवला चख चुके थे। स्वाभाविक था कि पानी का स्वाद कुछ मीठा-मीठा-सा लगता। जब वे घर पहुँचे, तो अपने लोगों से कहने लगे—'अरे यूँ बिठू का धारा कू पाणी भौत मिट्ठु होंद तभी त यि हम लोगू तैं अपणा धारा कू पाणि नि पेण देंदा" (अरे, इन बीठों के धारे का पानी बहुत मीठा होता है, तभी तो उस पानी को हमें नहीं पीने देते)।

माना यह जाता रहा है कि वर्ण-व्यवस्था का दंश पहाड़ी क्षेत्रों में मैदानी क्षेत्रों जैसा तीखा नहीं है, परंतु प्रकृति और संस्कृति के सारे वरदानों को सवर्णों ने अपनी ही झोली में समेटकर रखा है। वंचित हमेशा से ही उसके लिए तरसते रहे हैं और उनकी पीड़ा को क्रांतिपथ के पथिक लोककवि-लोकगायक गुणनंद 'पथिक' ने गत में हारमोनियम का साज लटकाये गाँवों की डगर चौपालों की दूरियाँ नापते अमर स्वर दिया है :

गांधी जी का प्यारा हरिजन
जन समाज मा गिरयाँ किलै?
कुड़ी पुंगड़ि यूँ न चिणेंन
नाड़ा नस्यूड़ा यूँ न बणैंन
शिल्पी बणकि जुग जुग रैन
दरिद्रता से घिरयां किलै?

'चमारू के धारा' से गाँव का रास्ता सीधी चढ़ाई में बदल जाता है। हालाँकि, यह चढ़ाई कुछ सौ गज़ पर ही समाप्त हो जाती है, फिर भी तेज़ी से चले, तो आदमी हाँफने लगता है। ऊपर की पगडंडी पर पहुँचने का एक दूसरा रास्ता भी है—थोड़ा लंबा और कम चढ़ाई वाला, परंतु इस रास्ते से हम कभी जाते ही नहीं थे। इस रास्ते से लगा हुआ पानी का एक और स्रोत भी था और उससे लगी दलदली ज़मीन का फैलाव, जिसमें मरे जानवरों की हड्डियों के कंकाल इधर-उधर बिखरे पड़े रहते थे। बड़े बुजुर्गों द्वारा एक किंवदंती को ज़िंदा रखा गया था। किसी समय एक पटवारी की हत्या हो गयी थी। उसकी लाश को यहाँ पर दफ़ना दिया गया था और वह सफ़ेद घोड़े पर 'सवार' होकर भूत के वेष में सबको डराता परेशान करता रहता है। नवरात्रों के अवसर पर जिस दिन गाँव के चारों ओर 'दिशा बंधन' किया जाता, तो एक बलि—मुर्गा, भुट्टे या ऐसा और कुछ—यहाँ पर भी दी जाती थी, ताकि भूत-प्रेतों का प्रवेश गाँव के अंदर न हो सके।

रास्ते की इस चढ़ाई को पार करके ऊपर की पगडंडी को हम कुछ लड़के छूने ही वाले थे कि उस पर चलती गाँव की कुछ स्त्रियों की नज़र मुझ पर पड़ी। वे सिर पर 'मोल' (गोबर) से भरी टोकरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए आपस में कानाफूसी कर रही थीं—"य राम! ई कि माँ
मरि बिचारा कि (हे राम, इसे बेचारे की माँ कैसे मर गयी!)
शब्द मेरे कानों में पड़े तो परंतु, मुझ पर उनकी कोई प्रतिक्रिया
हुई। कुछ आगे बढ़े, तो साथ वाले लड़के अपने अपने घरों की
पकड़ते रहे। हमारा घर गाँव के पूर्वी छोर पर 'सिरकार' के नाम
पुकारी जाने वाली जगह पर है। कुछ दूर सामने से ही घर
ड़ायी देने लगता है। मैंने देखा कि हमारे घर के 'डंडियाले' में
की लोग जमा हैं। मन में कहीं कुछ कौंधा, लगा कि आज हमारे
में कुछ अनहोना घटित हुआ है, इतने अधिक लोगों के जमा
ने का क्या कारण हो सकता है?

हमारा घर! मेरा! दादा-परदादा से विरासत में मिला घर!.
अ हाउस इज़ बिल्ट बाय हैंड्स, बट अ होम इज़ बिल्ट बाय
ड्स, घर का भी अपना एक व्यक्तित्त्व होता है। उसकी दीवारों
कान तो होते ही हैं, उसकी एक जुबान भी होती है। घर का
ना ही एक विभूतिमत्व होता है, एक सतत् अनहद नाद उसमें
नादित होता रहता है। स्वर संवादित हैं, तो ऐश्वर्य बरसने लगता
ह 'घर' बन जाता है—अपने पूरे स्पंदन के साथ; स्वर विवादी
गये, तो वह मात्र ईंट-गारे का 'मकान' रह जाता है जड़ता का
ढेर मात्र। विवादी स्वर विदा हों, संवादी स्वरों का राग बज उठे,
लिए घर की नींव का पत्थर रखते हुए भूमि पूजन, वास्तु-पूजन
के एक कोने में प्रज्ज्वलित दीप को स्थापित कर देते हैं। ताकि
का कोना-कोना चिरकाल तक प्रकाशित होता रहे। शुभ मुहूर्त
कर गृह-प्रवेश करते हुए प्रार्थना करते हैं, "हे घर भयभीत मत
ए, आप काँपिए मत! हम तेजवान होने के लिए आपके पास
हैं। हम ओज संपन्न होकर आप में प्रविष्ट होते हैं, हम
बुद्धिमान होकर, तेजवान होकर आप में प्रविष्ट होते हैं, हम
जीवन को सुखी बनाने के लिए सभी प्रकार के साधनों के
गृह-प्रवेश करना चाहते हैं!"

घर भी हमारे लिए पूजा-स्थल है। वहाँ अग्नि, सविता, इंद्र
विष्णु का आह्वाहन करते हैं, ताकि वे सभी देवता उस घर में
मान रहकर हमें धन-धान्य, पुत्र-पुत्रियों, मेहमानों के साथ
से रहने दें।

हमारा घर भी दो पुरया घर है। नीचे 'ओबरे' के एक हिस्से
और उनके बच्चों के विश्राम करने का स्थान और दूसरे
में बैलों को बाँधने की जगह; पार्श्व भाग में 'जांदरी' (आटा
की चक्की) बिठा रखी थी, जिस पर मेरी दादी, माँ या बडि
सर' (प्रातःकालीन बेला) में ही कभी गेंहूँ और कभी 'कोदे'
) का आटा पीसतीं—'कड़कड़ सासू गड़गड जांदरी निंद
', 'बौंड' (ऊपर की मंज़िल) में दो कमरे—एक में रसोई के
ही परिवार के कुछ सदस्यों के लिए सोने की गुंजाइश और
रखने के लिए लकड़ी से बने एक-दो कोठार; दूसरे में
कल के साथ अनाज रखने के लिए दो कोठार, लकड़ी का एक
बक्सा, जिस पर जजमानी से आये लत्ते-कपड़े तरतीब से
रखे होते। सामने लंबा-चौड़ा 'डंडियाला', जिसके एक कोने पर सूती कपड़े की 'दोर' ओढ़े मेरे दादा जी हुक्का गुड़गुड़ाया करते। बाद में, उस स्थान पर मेरे बाबा जी का कब्ज़ा हुआ। मकान के सामने वाले हिस्से के खंभे और शहतीर यदि नक़्क़ाशीदार हों, तो उसे 'बितारी' कहकर संबोधित किया जाता है, ऐसा न हो तो वह 'डंडियाले' की श्रेणी में आता है।

'फैड़ियों' (सीढ़ियों) से चढ़कर मैं 'डंडियाले में पहुँचा और वहाँ से सोने वाले कमरे में दाखिल हुआ। कोठार के सहारे मेरी बूढ़ी दादी और अन्य स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। हमारे ही कुनबे की एक दादी ने, जिन्हें हम 'कनुड़या दादी' कहकर संबोधित करते थे, मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपनी ओर खींचा, गोद में लेकर मेरा सिर सहलाने लगीं, "हे मेरा! अब कै तैं बोलल्यु तु माँ।" वे रो रही थीं। यह सब क्या हो रहा है, मैं कुछ साफ़ समझ नहीं पा रहा था इतना ही अहसास था कि माँ के साथ कुछ हुआ है।

और दिनों घर पहुँचता था, तो दादी बासी रोटी के साथ घी-गुड़ खाने को देतीं। कभी-कभी ताज़ी रोटियाँ भी सेंक देतीं और स्कूल की थकान के साथ ही भूख से भी राहत मिलती। किंतु, आज कोई भी मेरी सुध लेने वाला नहीं था। पता ही नहीं चला कि कब मैं और उम्र में मुझसे तीन साल बड़ी मेरी दीदी अपने घर के पिछवाड़े पड़ोसी के घर पहुँच गये और कुछ खेलने में अपने को बहलाने लगे। इस घर के मुखिया को हम 'मुख्तयार बड़ा जी', कहकर संबोधित करते थे। वे पाक-कला के बड़े मर्मज्ञ माने जाते थे। गाँव में होने वाले 'कौ कार्ज', शादी-श्राद्ध आदि के अवसर पर उन्हीं को कार्याबार्या बनाया जाता था। उनकी धर्मपत्नी ने, जो अब बूढ़ी हो चलीं थीं, हमें अपने गोठयारे में खेलते देखा। वे समझ गयी होंगी कि स्कूल से आने पर आज घर में किसने इनकी पूछताछ करनी थी, इन्हें भूख लगी होगी। उन्होंने झट से अपने चूल्हे में आग सुलगायी, गेहूँ और कोदे के मिश्रित आटे की मोटी-मोटी रोटियाँ सेंकीं और घी-गुड़ के साथ हम दोनों भाई-बहन को देकर पड़ोस की संस्कृति की जड़ों को अपने स्नेह जल से सींचा।

तब तक काल ने आस-पास की पहाड़ियों सहित सारे गाँव को अपनी काली चादर में लपेट लिया था। यह भी कैसा संयोग है कि उसी दिन गाँव के दूसरे छोर पर विवाहोत्सव की दावत थी। 'बड़ा कुड़ा' वाले वंशी की उस दिन शादी थी। पिछले दिन 'बर' बारात लेकर 'ब्यौली' को लिवा लाने को गया होगा, आज बारात वापस आ रही थी। बारात आती है, तो गाँव के लड़के -लड़कियाँ कूदते-फाँदते उसे देखने दौड़ पड़ते हैं। गाँव की लड़कियाँ और बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ ब्यौली की एक झलक पाने की उत्सुकता को रोके नहीं रोक सकतीं। पुरुष-वर्ग के लिए वह वर्जित क्षेत्र है। कैसी होगी दुल्हन-काली कलूटी या जोन-सी दिप्प! नथुली बुलाक कैसी लायी होगी! नथ, नगचढ़ी और बुलाक झालुरया! और क्या-क्या गहने पहने होंगे। मुर्खले (कानों के ऊपरी हिस्से में पहने जाने वाले गहने) चाँदी के होंगे या सोने के ! सयानी स्त्रियाँ इस बात की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोज-ख़बर लेने को बेताब रहती थीं कि लड़की के साथ-साथ उसके माँ-बाप ने दान-दैजा में और क्या-क्या दिया होगा? डोला सादा है या छत्र वाला?

बाजे-गाजों की आवाज़ सुनते ही मैं और दीदी भी उस ओर दौड़ पड़े और भीड़ का हिस्सा बनकर उसी में खो गये। फिर लोग 'जिम्मण' खाने को कतार में बैठने लगे, हम भी बैठ गये। उधर रात का अँधेरा, घर में माँ की मृत देह पड़ी हुई और हम दोनों घर से लापता। पास-पड़ोस में सरगर्मी से तलाश प्रारंभ हुई। जब कहीं नहीं मिले, तो दयानंद चाचा ही हमें ढूँढते -ढूँढते बारात वाले घर तक पहुँच गये। देखा कि हम दोनों पत्तल बिछाये रसोईये द्वारा भोजन परोसे जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें काफ़ी ग़ुस्सा भी आया, झुँझलाहट भी हुई। हम दोनों को बाँह पकड़कर लाइन से बाहर खींचा और घर की ओर ले गये। घर में पास-पड़ोसी माँ की निश्चल, निस्पंद देह की रात-भर पहरेदारी कर रहे थे और हम दावत उड़ाने पहुँच गये थे।

यह जीवन की जीत थी या मौत की हार! या उस समय का अबोधपन! जिसे यह भी पता नहीं था कि मौत जैसा भी कुछ घटित होता है। और, कि मौत सब कुछ छीन लेती है और वह जीवन के दूसरे छोर पर प्रतीक्षा कर रहा सत्य है। मेरे बालपन की निर्दोष आँखों की कोरों को आँसू की एक बूँद तक भिगो नहीं पायी थी। लगता है, उस कालखंड में बाल-चेतना का विकास उस स्तर तक हुआ ही नहीं था कि वह जीवन और मृत्यु का भेद जान सके। माँ का जीवन में क्या स्थान है, उसका गहरा अहसास कर सके। आज उस उम्र के अपने नाती-पोतों को देखता हूँ, तो अपनी देह और आस-पास फैली दुनिया के प्रति उनकी सजगता और प्रति संवाद देखकर विस्मित रह जाता हूँ।

मौत क्या होती है? माँ का वियोग क्या होता है? जीवन में माँ की उपस्थिति के क्या अर्थ होते हैं? मेरे अस्तित्त्व में वह किस स्थान पर अवस्थित है? इसका पहली बार अहसास मुझे तब हुआ जब जाड़ों की एक रात को अपने एक दोस्त के घर पर चूल्हे के आस-पास बैठकर आग सेंकते हुए किड़ी दीदी ने किसी संदर्भ में मेरी माँ के जीवन-प्रसंगों का ज़िक्र किया। किड़ी दीदी यौवन के प्रथम चरण में क़दम रखते ही विधवा हो गयी थी और शेष जीवन बिताने के लिए अपने मायके में ही रह रही थी। अपनी प्रबंध-क्षमता और व्यवहार-चातुर्य के कारण मायके में अपने भाई-भाभियों के बीच में उसने विश्वास और आदर का स्थान बना लिया था और परिवार के गार्जियन की हैसियत से अपनी भूमिका का निर्वाह बखूबी कर रही थी। उसके छोटे भाई सुंदरलाल को मेरे मामा जी की लड़की जौंतारी दीदी ब्याही गयी थी। सुंदरलाल मिलिट्री कैंट गढ़ी देहरादून में ड्राइवर थे। सेना की नौकरी के कारण उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। उन दिनों हमारे गाँव में वही एकमात्र परिवार था, जिसके घर पर ग्रामोफ़ोन (जिसे लोग फ़ोनोग्राफ़ कहते और उस पर बजाने वाले रेकर्ड को तबा कहते) और गैस (पैट्रोमैक्स) था। किड़ी दीदी उन सब के सर आँखों पर थी, भले ही वैधव्य की विवशता में श्वेत वस्त्र ही धारण करती थी, किंतु उसमें भी एक गरिमा झलकती थी। अपने एकमात्र भतीजे जमुना—जिसकी माँ भी बाल्यकाल में ही उसे छोड़कर विदा हो गयी थी—को वह बड़ी आत्मीयता से सँभाले हुए थी। जमुना मेरा हम-उम्र और सहपाठी था और मुड़यागाँव स्कूल छोड़ने के बाद राणीचौरी प्राइमरी स्कूल में हम साथ-साथ जाते थे। कभी-कभार मैं रात को उन्हीं के यहाँ रुक जाता था। जमुना के पिता जी की तरह मेरे बाबा जी ने न चाहने पर भी दूसरी शादी कर ली थी। इसके लिए बड़ा जी, जिनकी अपनी कोई संतान नहीं थी; का उन पर भारी दबाव था। बड़ा भाई तो पितृतुल्य होता है, उनकी आज्ञा की अवहेलना बाबा जी कैसे कर सकते थे? बाबा जी की बारात नयी माँ लेकर जब घर पहुँची, तो उत्सुकतावश मैंने उनकी अँगुली पकड़कर पूछ ही लिया था—"आप हमारा खातिर नयी माँ लायेन?" दीदी ने तो तीन साल तक नयी माँ को माँ कहकर नहीं पुकारा। इस प्रश्न का वे क्या उत्तर देते। इस उपस्थित प्रश्न की उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई होगी, उनके मन में किन प्रश्नों ने आँखें खोली होंगी, क्या कोई अंतर्द्वंद्व वहाँ पैदा हुआ होगा, क्या उनकी स्मृतियों में मेरी माँ का साया निःशेष हो गया होगा, इसकी ख़बर उनके सिवाय किसी दूसरे को कैसे हो सकती है?

कई साल बाद किड़ी दीदी मेरी माँ के संबंध में कुछ कहे जा रही थी और दूसरों के साथ मैं भी सुने जा रहा था। सहसा न जाने क्या हुआ, एक विस्फोट जैसा हुआ, भावनाओं के ज्वार ने सारी मर्यादाएँ तोड़ दीं, कूल-किनारे ढह गये। मैं 'बुकरा बुकरि' रोने लगा। आस-पास बैठी स्त्रियाँ 'य राम, य राम', कहकर दया और सहानुभूति के शब्दों से मुझे नहलाने लगीं। जितनी ही वे सहानुभूति जतातीं, उतनी ही ज़ोर से मैं रोता जाता। रुलाई थी कि रोने की ज़िद लिये बैठी थी। दया और सहानुभूति शक्ति के बजाय आदमी को कमज़ोर करती हैं। दया का पात्र बनने से मैं सदा ही अपने को बचाता रहा हूँ। तब किड़ी दीदी ने मेरे सिर को अपनी गोदी में ले लिया, 'य राम, अपणि माँ की याद होलि वे औणि।'

कई वर्षों तक अवचेतन में जो तूफ़ान छिपकर बैठा था, एक छोटा-सा शीतल स्पर्श पाकर वह बेक़ाबू होकर बाहर फूट पड़ा और सारे तटबंधों को ढहाता हुआ बहने लगा। चेतन जिसको पकड़ न सका, अचेतन उस सबको संचित करता चला गया और फिर बहकर मुझे सदा-सदा के लिए निर्भार कर गया। फिर भी ऐसा क्यों होता है कि ज़िंदगी के संध्याकाल में भी एक हूक-सी उठती है, इच्छा होती है कि माँ की गोदी में सिर रखकर आँखें बंद कर लूँ। वह मेरा सिर सहलाए और जब जागूँ तब तक अनेक युग बीत जाएँ, मैं नई भोर में आँखें खोलूँ माँ आज भी मेरी सबसे बड़ी कमज़ोरी है।

स्ट्रीट-6 सी, /1, शास्त्रीनगर
हरिद्वार रोड, देहरादून-248001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

हस्तीमल हस्ती

: 1 :

काँटों में फूलों के जैसा हँसना खिलना आ जाए
हमको भी जीने का थोड़ा तौर तरीका आ जाए

इतनी तड़प और इतनी लगन हो अपनी चाहत में यारो
प्यास लगे तो ख़ुद सहरा ही बन के दरिया आ जाए

महँगी-मँहगी दवाएँ भी हो जाती हैं नाकाम जहाँ
काम वहाँ पर दादी का छोटा-सा नुस्खा आ जाए

प्यार सफ़र है ऐसा जिसका दुश्वारी से रिश्ता है
दरिया पार करें तो आगे कोई सहरा आ जाए

ज़िस्म मुहब्बत का घायल है नफ़रत की तलवारों से
काश ज़माना करवट ले ले कोई मसीहा आ जाए

: 2 :

औरों का भी ख़्याल कभी था अभी नहीं
इंसान इक मिसाल कभी था अभी नहीं

पत्थर भी तैर जाते थे तिनकों की ही तरह
चाहत में वो कमाल कभी था अभी नहीं

क्या होगा क़ायनात का गर सच नहीं रहा
हर दिल में ये सवाल कभी था अभी नहीं

क्यों मैंने अपने ऐब छिपाकर नहीं रक्खे
इसका मुझे मलाल कभी था अभी नहीं

क्यों दूर-दूर रहते हो, पास आओ दोस्तो
ये 'हस्ती' तंग-हाल कभी था अभी नहीं

: 3 :

सच्ची है बस ये बात, ये कहता हुआ गया
ग़म से नहीं निजात ये कहता हुआ गया

ज़ाहिर तो हो गई है भले देर से सही
किसकी है कैसी ज़ात ये कहता हुआ गया

मेरा तो साथ ख़ुद मेरे दिल ने नहीं दिया
फिर कौन देता साथ ये कहता हुआ गया

उम्मीद दूसरों से रखी मैंने जिस जगह
खाई वहीं पे मात ये कहता हुआ गया

जीवन में रंग इश्क़ का जब तक नहीं भरा
तब तक बनी न बात ये कहता हुआ गया

4.

सच कहना और पत्थर खाना, पहले भी था आज भी है
बन के मसीहा जान गँवाना, पहले भी था आज भी है

दफ़्न हज़ारों ज़ख़्म जहाँ पर, दबे हुए हैं राज़ कई
दिल के भीतर वो तहखाना, पहले भी था आज भी है

जिस पंछी की परवाज़ों में दिल की लगन भी शामिल हो
उसकी ख़ातिर आबो-दाना पहले भी था आज भी है

कतना, बुनना, रंगना, सिलना, फटना फिर कतना बुनना
जीवन का ये चक्र पुराना पहले भी था आज भी है

बदल गया है हर इक क़िस्सा फ़ानी दुनिया का लेकिन
मेरी कहानी, तेरा फ़साना पहले भी था आज भी है।

28, कालिका निवास, नेहरू रोड, पोस्ट आफिस के सामने
सांताक्रुज (पूर्व) मुंबई-400055

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांता के बाल

विजय शर्मा

सुबह माँ ने कांता के बाल धोकर सुखाये। कांता के बाल जब सूख गये, उसने उसमें ख़ूब सारा तेल चपोता और लगी खींच-खींच कर कंघे से सुलझाने। सप्ताह भर का गुस्सा कांता के बालों पर निकाला। सारी ख़ीज कांता के बालों पर उतारते हुए उसने लाल रिबन लगाकर कांता की दो चोटियाँ बनायी। बाँयी-चोटी को दाहिनी चोटी की जड़ से निकालकर फिर बाँयीं ओर लाकर कसकर बाँधा और रिबन का फूल बना दिया, फिर दाँयी चोटी को बाँयी में से घुसाते हुए वापस लाकर दाँयी ओर भी रिबन से फूल बना दिया। उसे धकेलकर हटाते हुए हिदायत दी—"ख़बरदार जो अपने आप चोटी खोली"

चोटी बहुत कसी हुई थी कांता को बड़ा अनकुस लग रहा था। माँ के डर से वह चुप रही। उसे मालूम था कि चोटी कुछ देर में अपने आप ढीली हो जाएगी। अगले इतवार तक उसे चोटी नहीं खोलनी है। फिर यही सिलसिला चलेगा। माँ उसकी चोटी खोलकर बाल धोएगी, सुखाकर उसमें नारियल का तेल चपोतेगी और कसकर दो चोटियाँ बना देगी।

इतनी परेशानी के बाद भी माँ को उसके लंबे बाल अच्छे लगते हैं; कांता को भी माँ के लंबे, मुलायम, घने, काले बाल और अपने मुलायम, काले, घुँघराले बाल। माँ कहती हैं, "बाल कभी खुले मत रखना, नज़र लग जाएगी।" और कभी जब वे कांता के बाल सँवार रही होतीं और संयोग से सुलतानपुर वाली चाची आ जाती, तो माँ को बड़ी चिंता हो जाती।

"नासपीटी सुलतानपुर वाली की नज़र बड़ी ख़राब है, आज रात तेरी नज़र उतारनी होगी।"

और, शाम या रात को याद से वे कांता की नज़र उतारतीं। किसी दिन बाल काढ़ते समय कुछ ज़्यादा बाल टूटते, तो भी इसका ठीकरा सुलतानपुर वाली के सिर फूटता—"उसके अपने खानदान में किसी के लंबे बाल नहीं है, इसीलिए हम लोगों के बाल देखकर जलती है।"

माँ को शक है कि वह उन लोगों के लंबे बाल पर टोना-टोटका भी करती रहती है, तभी तो उनके बाल आजकल इतने झड़ने लगे हैं। अगर कभी माँ को पता चलता कि वह सुलतानपुर वाली चाची के घर से आ रही हैं, तो वे कांता से खोद-खोदकर पूछतीं, "उसने तेरे सिर पर हाथ तो नहीं फेरा था...? तेरे बाल के बारे में कुछ कह रही थी?"

"हाँ मैं अपने बालों को दाल-भात खिलाती हूँ, तुम खिलाओ," उसकी माँ ने सिखा रखा है अगर कभी कोई उससे बालों के बारे में कुछ कहे या पूछे, तो वह यह उत्तर दिया कांता यही करती है।

"क्या जीजी, तुम भी गँवारों की तरह इसके इतने लंबे रखे हुए हो," पाँच साल की कांता अपने मामा की बात सुन काँप गयी।

"कितनी गंदी लगती है, दो चुट्टली बाँधकर," वे कैंची लाये। कांता भागना चाहती थी, मगर भाग न सकी, जड़ हो गयी मामा जी ने अपने घुटनों के बीच उसको पकड़ा और खच.. .. खच... कैंची चली। ज़मीन पर लच्छी-लच्छे बाल गिरते

"भइया इतने छोटे मत करो, कंधे तक रहने दो..." चलती रही। खच... खच... खच... काँता के बाल मामा जी कान के ऊपर तक काट दिये।

"अब देखो कितना अच्छा लग रहा है। चेहरा दिखायी दे है," मामा जी ने अपनी कलाकृति की खुद तारीफ़ की।

माँ रो रही थीं। उनकी आँखों में आँसू थे, पर वे मुस्कुरा

"देखो, बिलकुल गुड़िया जैसी लग रही है न," समर्थन और तारीफ़ के लिए माँ की ओर देखा। माँ मुँह घुमा पल्लू से अपनी आँखें पोंछ रही थीं।

कांता ने शीशे में खुद को देखा। पहचान न सकी। कौन यह अजनबी लड़की, जो उसे शीशे में से घूर रही है। वह इस को नहीं जानती। कितना अच्छा लगता था, लाल रिबन से बँधा चोटी वाला उसका मुँह। यह कौन अनजान लड़की है, बलकद कांता को लगा कि किसी ने उसके सारे कपड़े उतारकर सामने कर दिया है। शाम को जब सब लोग बाहर बैठे थे, उसने एक उठाकर मामा जी की पैंट की मन भर कर पिटाई की। डंडा मा जाती और कहती जाती, "अब बाल काटोगे?... बोलो, काटोगे जब थक गयी, तो डंडा वहीं फेंक दिया।

अब मुन्नू भइया कैसे उसकी चोटी खींचेंगे ? कांता को का चोटी खींचना अच्छा लगता है। वह ख़ूब चिल्लाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्हे हाथों से भइया को खूब मारती है। माँ से शिकायत करती है। मुन्नू भइया की माँ वहाँ होती हैं, तो मुन्नू भइया को खूब डाँटती हैं। चाची कहतीं, "अरे मुन्नू! क्यों लड़की को तंग कर रहा है। नहीं मानेगा। तू मार खाएगा मुझसे।"

मुन्नू भइया हँसते रहते हैं। भइया जब हँसते हैं, तो कांता को उनके गाल के गड्ढे बहुत अच्छे लगते हैं। एक दिन उन्होंने उसकी चोटी खाट से बाँध दी। कांता को पता नहीं चला। फिर बोले, "जा कांता, पानी ला। बड़ी प्यास लगी है।"

कांता जब उठी, तब उसे मालूम हुआ कि उसकी चोटी खाट से बँधी है। कांता ने तब अपनी छोटी-छोटी मुट्ठियों से मुन्नू भइया को खूब मारा। मुन्नू भइया हँसते रहे। बाक़ी लोग भी हँस रहे थे।

0 0 0

उसके बालों की दो चोटी बनी हुई हैं। दोनों आधी-आधी जोड़कर ऊपर उठाकर बाँधी हुई हैं। उनमें नीला रिबन लगा हुआ है। उसे नीला रंग ज़रा भी अच्छा नहीं लगता, मगर यह स्कूल की यूनीफ़ॉर्म का हिस्सा है। नीला स्कर्ट, सफ़ेद ब्लाउज़, काले जूते, काले मौज़े और नीले ही रिबन। पता नहीं, स्कूली बच्चों के लिए सिर्फ़ यही रंग यूनीफ़ॉर्म कौन डिजाइन करता है? माँ खुश रहती है। नीला रंग दूर से गंदा होता है। उसका बस चले, तो यूनीफ़ॉर्म का ब्लाउज़ भी नीला रख दे। अब वह स्कूल जाती है। पिता का तबादला गाँव से क़स्बे में हो गया है। स्कूल में बहन जी की सख़्त हिदायत है कि किसी लड़की की चोटी आगे नहीं लटकनी चाहिए और माथे पर कोई लट नहीं झूलनी चाहिए। उसे लट निकालना अच्छा लगता है, मीना को भी। मीना अँगुली में लपेट-लपेटकर बाल से लट बनाती है। उसे इसकी ज़रूरत नहीं है, उसके बाल अपने आप ही इतने घुँघराले हैं कि कितना भी कस कर बाँधो लट निकल ही आती है।

क्लास में वह बहन जी के डर से बार-बार लटों को कान के पीछे खोंसती रहती है, लेकिन छुट्टी की घंटी बजते ही उसके साथ-साथ उसकी लट भी बंधन से छूट जाती है।

वह जब-तब खड़ी होकर शीशे में अपना चेहरा निहारती है, कभी एक चोटी आगे करके, कभी दूसरी और कभी दोनों आगे करके। लट स्थाई रूप से माथे पर बनी रहती है। माँ को उसका शीशे के सामने खड़े होना अच्छा नहीं लगता।

"न जाने मरी शीशे में क्या निहारती रहती है?" माँ बड़बड़ाती हैं।

एक दिन पिता ने देख लिया, "शीशे के सामने खड़े होकर क्या हो रहा है?" तब से वह पिता की आँख बचाकर शीशा देखती है। उसे शीशे के सामने खड़े होकर तरह-तरह से मुँह बनाने में मज़ा आता है। वह चोटी खोलकर कंघा करते समय रोज़ देखती है। बाल कमर तक हैं। उसे इंतज़ार है, जब उसके बाल कमर से नीचे पहुँच जाएँगे।

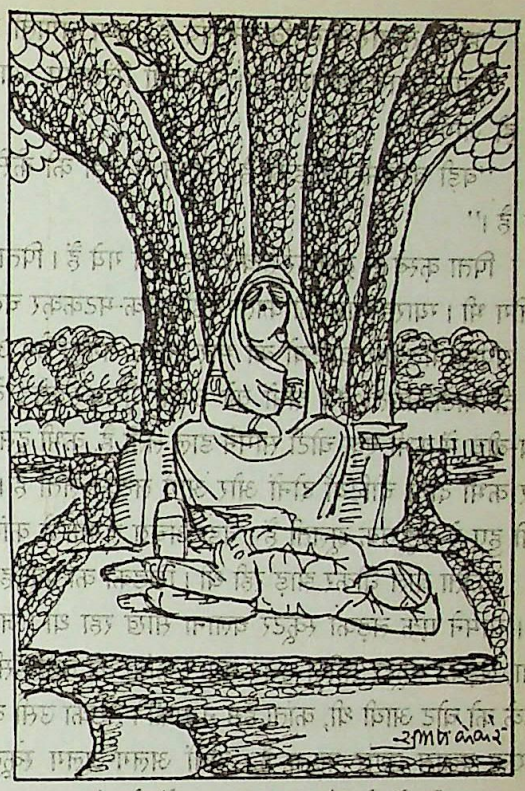

वह फाटक का सिरा पकड़े झूल रही है। उसके साथ उसकी चोटी लहरा रही है। वह बहुत खुश है कि उसके बाल फिर कमर से नीचे पहुँचने लगे हैं। कितना अच्छा लगता है, जब स्कूल में लड़कियाँ और उसकी टीचर्स भी उसके लंबे बालों को लेकर बातें करती हैं। आजकल कांता खूब मस्त रहती है। कभी मुस्कुराती है, कभी हँसती रहती है। वह बहुत खुश है, उसके बाल उसकी पहचान जो हैं।

मामा जी आने वाले हैं। कांता ने माँ से कह दिया है, इस बार मामा जी को बाल न काटने दें। क्या माँ मामा जी को रोक सकेंगी? कांता सोचती है।

"अरे जीजी, तुमने फिर इसे जंगली बना दिया।"

"भइया, रहने दो। अब बड़ी हो रही है। अब इसके बाल मत छुओ।"

मगर मामा जी को उसे मेम बनाना है। उन्होंने न माँ की बात सुनी, न कांता का रोना काम आया। मामा जी ने कैंची उठायी और फिर खच... खच... खच... बालों के लच्छे ज़मीन पर लोटकर कांता के साथ रोते रहे। कांता शर्म से कई दिन न तो स्कूल गयी, न घर से बाहर निकली। कांता से मामा जी की नयी गरम सूट की पैंट आयरन करते हुए जल गयी।

"मेरा सूट बरबाद हो गया। अब कोट कैसे पहनूँगा", मामा जी ने अपना दुख जताया।

"मेरी बला से। मत पहनो। कभी सोचा है, मैं कैसे बाहर जाऊँगी?" कांता ने मन-ही-मन मामा जी को कोसते हुए सोचा।

0 0 0

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाय! तुम्हारे बाल कितने लंबे हैं। क्या लगाती हो?"

"चावल-दाल खिलाती हूँ। आप भी खिलाइए, आपके भी लंबे हो जाएँगे।"

"बड़ी बदतमीज़ लड़की है। अपने से बड़ों को कैसे जवाब देती है।"

पिता क़स्बे से ट्रांसफ़र होकर शहर आ गये हैं। पिता के संग वे लोग भी। ग्यारह साल की कांता बड़ी मटक-मटककर चलती है। उसे अपनी पीठ कर चोटियों का भार अच्छा लगता है। आजकल वह दो चोटी करती है। दोनों को आधा गूँथकर छोड़ देती है। बीच-बीच में कभी एक चोटी सामने डाल लेती है, कभी दूसरी चोटी और कभी दोनों चोटियाँ दोनों ओर आगे लटका लेती है। वक्ष से होती हुए वे पेडू तक झूलती हैं। बड़ा अच्छा लगता है कांता को।

कांता बाल धोकर झाड़ रही थी। खिड़की का पर्दा हटा हुआ था। सामने एक लड़का स्कूटर चलाना सीख रहा था। जाने क्या हुआ, लड़का स्कूटर सहित उलट गया। कांता को बड़ी हँसी आयी लड़के को चोट आयी थी, कांता हँस न सकी। लड़का उसी के स्कूल में एक क्लास ऊपर पढ़ता है। दोनों अलग-अलग स्कूल जाते हैं—वह लड़कियों के संग, लड़का लड़कों के संग।

"आन्टी जी, कांता के पास ज्योमेट्री बॉक्स है क्या? मुझे थोड़ी देर के लिए चाहिए।"

"कांता अपना ज्योमेट्री बॉक्स ले आओ। अतुल को चाहिए।"

वह ज्योमेट्री बॉक्स ले आयी। बॉक्स लेते हुए अतुल ने हाथ बढ़ाकर कांता के बालों की फुनगी छू ली। फुनगी से होती हुई एक सरसरहट कांता के पूरे शरीर में दौड़ गयी। वह तुरंत कमरे में चली गयी। ज़रा भी रुकती, तो भहराकर गिर पड़ती। अतुल बॉक्स लेकर चला गया। थोड़ी देर बाद बॉक्स लौटा गया।

"तुम्हारे बाल बहुत सुंदर हैं। इन्हें तेल लगाकर मत बाँधा करो," बॉक्स के अंदर कंपास में पेंसिल की जगह एक पुर्जा अटका हुआ था।

"अरे! तेल क्यों नहीं लगाती सिर में? बाल कैसे फर-फर उड़ रहे हैं," माँ ने कांता को टोका। कांता ने बाल बाँध लिये तेल लगाये बिना।

"अरी नासपीटी! बड़ा फ़ैशन चढ़ा है तुझे। तेल नहीं लगाएगी, तो सिर चकराएगा।"

तेल नहीं लगाने से उसका सिर उड़ रहा था। संग में उसका मन भी।

शाम को सबके सोने के बाद उसने अपने बाल खोल लिये। उनमें अपनी अँगुलियाँ फेरने लगी। उसने मुट्ठी में भर कर अपने बाल अपनी नाक के पास लाकर ज़ोर से सूँघे। बालों की भीनी-भीनी खुशबू उसकी आत्मा तक फैल गयी। बड़ी देर तक वह अपने बालों से खेलती रही। न जाने कब उसकी आँख लग गयी। सपने में उसने देखा कि उसके बाल लंबे होते जा रहे हैं। बढ़ते जा रहे हैं। बढ़ते-बढ़ते वे बिस्तर से नीचे पहुँच गये। फिर फ़र्श पर साँप की तरह लहरा-लहरा कर सरकने लगे। बढ़ते गये। सरकते गये। कमरे से आँगन तक सरकते चले गये। आँगन में बाल सरसरा कर लहरा रहे थे।

सुबह माँ ने बाल खींचकर कांता को उठाया, "चल उठ, कैसे बाल छितराकर सो रही है भूतनी की तरह।"

0 0 0

सुहागरात में कांता को भोली-सी उम्मीद थी कि उसका पति रतन उसके बालों की प्रशंसा करेगा। रतन कमरे में आया। किसी चीज़ पर उसका ध्यान नहीं रहता है। जब देखो घोड़े पर सवार रहेगा। हर बात के लिए कहेगा, "जल्दी करो, जल्दी करो" उसकी जल्दी-जल्दी की रट सुनकर कांता को बचपन में माँ की सुनायी एक कहानी याद आती है। राजा नहुष को इंद्रासन मिल गया, तो उसके मन में इच्छा जगी कि क्यों नहीं इंद्राणी भी उसे मिले। उसके मन में इंद्राणी को पाने की लालसा ज़ोर मारने लगी। अपनी कामना के वशीभूत होकर उसने अपना प्रस्ताव इंद्राणी के पास भेजा। इंद्राणी ने इस समस्या को हल करने के लिए देवगुरु वृहस्पति से मंत्रणा की और उसकी सलाह के अनुसार नहुष को कहला भेजा कि यदि वह सप्तऋषियों द्वारा उठायी जा रही पालकी में बैठ कर आये, तो उसके प्रस्ताव पर विचार किया जा सकता है। शर्त सुनते ही नहुष बावला हो उठा। उसने सप्तऋषियों को पालकी ढोने के लिए आदेश दिया। झटपट तैयार होकर नहुष पालकी में सवार हुआ और सप्तऋषि पालकी कंधे पर रखकर चल पड़े। नहुष को उतावली में लग रहा था कि पालकी बहुत धीरे आगे बढ़ रही है। उसने कहा, "सर्प-सर्प" (जल्दी-जल्दी)।

सप्तऋषि अपनी ओर से जल्दी चलने का पूरा प्रयास कर रहे थे, मगर उनके संग एक और परेशानी थी। अगस्त्य ऋषि का क़द अन्य ऋषियों की अपेक्षा थोड़ा कम था। ऊँचाई में फ़र्क़ होने के कारण चाल में भी अंतर पड़ रहा था। दूसरी ओर नहुष इंद्राणी से मिलने को पागल हो रहा था। उसमें बिलकुल धैर्य नहीं था। जब उसे पता चला कि अगस्त्य ऋषि के कारण पालकी की चाल धीमी है, तो उसने पालकी से पैर निकालकर अगस्त्य ऋषि को एक लात जमाते हुए फिर कहा, "सर्प-सर्प।"

अगस्त्य ऋषि को क्रोध आ गया। उन्होंने राजा को शाप दिया, "जा, तू सर्प हो जा।"

कांता जब भी रतन को जल्दी-जल्दी कहते हुए सुनती, उसे माँ की सुनायी यह कहानी याद आ जाती। सोचती है कि इसे कब, कौन शाप देगा? रतन चैन से न बैठकर भागता, मानो कोई गाड़ी छूटी जा रही हो। बिस्तर पर भी उसका वही हाल था। हड़बड़ में अपना काम करता और करवट बदलकर खर्राटे भरता सो जाता। कितनी ज़ोर से खर्राटे लेता है। कांता का मन करता है कि उसकी नाक पकड़ कर दबा दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अरे सुनती हो, जल्दी से तैयार हो जाओ। मिनिस्टर साहब से मिलने जाना है।"

कांता तभी बाथरूम से नहाकर निकली थी। उसने बाल धोये थे। बालों से पानी टपक रहा था। बाल सुखाने का वक़्त न था। कांता जानती है कि रतन अभी चिल्लाने लगेगा। वह गीले बालों में कंघी फेरने लगी। उलझे बाल टूट-टूटकर गिरने लगे। बाल गीले होने के कारण सुलझने में देर लग रही थी। रतन ने कमरे का परदा हटाकर कांता को घूरती आँखों से देखते हुए कहा, "अरे ! कितनी देर लगा रही हो। मिनिस्टर साहब केवल एक घंटे के लिए मार्केट में आये हैं, फिर आगे निकल जाएँगे। कितनी मुश्किल से मिलने को राज़ी हुए हैं।"

कांता ने गीले बालों की ढीली-ढाली चोटी बना ली और कपड़े बदलने लगी। तब तक रतन चहलक़दमी करता हुआ फिर कमरे में आया, "तुम्हें कोई चिंता नहीं है, इतनी देर लगा रही हो। तुम्हारे बाल ही मुसीबत हैं। यह ठेका हाथ से निकल गया, तो सोच लो."

ठेके और बाल का संबंध कांता की समझ में नहीं आया। मंत्री से मिलने जाने की उसकी तनिक भी इच्छा नहीं थी। उसे मालूम था कि वहाँ उसकी उपस्थिति क्यों ज़रूरी है। मंत्री उसे लार टपकाती आँखों से निगलता रहेगा और रतन अपने व्यापार की बात करता रहेगा। उसे रतन के व्यापार में कोई रुचि नहीं है।

"तुम औरतों को तैयार होने में कितना समय लगता है। मिसेज़ बरखा दत्त को देखो, कितनी स्मार्ट है। अगर तुम्हारी तरह घंटों सँवारती रहती, तो कर चुकी होती अपना काम।"

रतन को टी0वी0 की बरखा दत्त बहुत भाती है। वह हर बात-बात में उसकी प्रशंसा करता है।

जब वे लोग सर्किट हाउस पहुँचे, मिनिस्टर लोगों से घिरा हुआ था। रतन को बाहर ही पता चल गया कि मंत्री के पास एक बड़ा ठेकेदार बैठा है। रतन जल-भुन गया और मंत्री से बिना मिले उसी कार में आकर बैठ गया।

"सारी मुसीबत की जड़ तुम्हारे बाल हैं।"

वह इतनी तेज़ कार चला रहा था कि कांता को डर लग रहा था। उसने अचानक ब्रेक लगाये। गाड़ी रुकते ही उसने कांता को उतरने के लिए कहा। रतन कांता को बाँह से क़रीब-क़रीब खींचता हुआ एक दुकान में ले आया। वह शहर का एक नामी ब्यूटी पार्लर था। पार्लर वाली रतन को जानती थी। रतन को देखते ही बिछकर बोली, "आइए सर! आइए।"

रतन ने उससे कहा, "मैडम के बाल एकदम टी0वी0 वाली बरखा दत्त जैसे कर दो... बिलकुल उन्हीं की तरह स्मार्ट बना दो इन्हें को।"

"ओह सर! आप ज़रा भी चिंता मत कीजिए। हम मैडम को ऐसा बना देंगे कि आप भी उन्हें नहीं पहचान पाएँगे, सर, तब तक आप बाहर पार्लर में बैठिए, टी0वी0 देखिए।"

कांता। कांता नहीं, बरखा है अब वह। बहुत बड़े कॉन्ट्रेक्टर की पत्नी है। महानगर में रहती है। रतन को कभी अपने कॉन्ट्रैक्ट के सिलसिले में किसी मिनिस्टर से मिलना होता है, कभी किसी उद्योगपति को पार्टी देनी होती है। इन सब स्थानों पर वह बिना पत्नी के कैसे जा सकता है? इसीलिए कांता को रतन के संग हर पार्टी-हर समारोह में जाना पड़ता है। उसका मन करे या ना करे। उसे इन पार्टियों में पुरुषों की टपकती लार से बड़ी घृणा होती है। उसे उबकाई आती है यह देखकर कि इन पार्टियों में अंधाधुंध मुफ़्त की शराब पीने के बाद लोग कितने नीचे गिर जाते हैं। मगर, रतन को केवल अपने व्यापार से मतलब है और इसके लिए उसके संग सजी-धजी कांता का रहना बहुत ज़रूरी है। अपने व्यापार के लिए रतन ने कांता का कायाकल्प कर दिया है। उसे कांता जैसे गँवारू नाम से छुटकारा दिला दिया है। अब तो वह मैडम बरखा है। टी0वी0 की बरखा दत्त की तर्ज़ पर रतन ने उसका गँवारू नाम कांता बदलकर बरखा कर दिया है। ऑफ़ीशियली। एफ़ीडेविट बनवाकर।

आये दिन बड़ी-बड़ी पार्टियों में जाना पड़ता है। उसे पार्टियों से पहले बराबर ब्यूटी पार्लर में जाना होता है। आदत पड़ गयी है। कभी फ़ेशियल, कभी वैक्सिंग, कभी हेयर सेटिंग। मगर, अब वह कांता कहाँ है। अब वह मैडम बरखा है। मगर, जब शादी के बाद पहली बार रतन उसे ज़बरदस्ती ब्यूटी पार्लर लेकर आया था, आज भी कभी-कभी वह दृश्य उसे खुद को आदमक़श शीशे में देखते हुए दीख जाता है।

बहुत महँगे ब्यूटी पार्लर में ऊँची कुर्सी पर बैठी है। सामने शीशे लगे हैं, मगर वह उसमें नहीं देख रही है।

ब्यूटीशियन कैंची चला रही है। खच... खच... खच... कांता के लंबे बालों के गुच्छे नीचे ज़मीन पर लोट रहे हैं। वह अपनी आँखों के आँसू अंदर-अंदर पी रही है। कोई देखेगा, तो कहेगा, मैडम रो रही हैं।

ब्यूटीशियन कह रही है, "वाह मैडम! कितनी सुंदर लग रही हैं आप, यह हेयर स्टाइल आपको बहुत सूट करता है।"

रात को रतन के सो जाने के बाद कांता का हाथ अनायास अपने सिर पर गया। बाल थे ही कहाँ जिनमें वह अँगुलियाँ फेरती। वह फफक-फफककर रो रही है। अच्छा है रतन ख़ूब पीकर टुन्न है, वरना शायद उस दिन भी वह पूछता "डार्लिंग क्यों रो रही हो? कोई परेशानी है क्या?"

प्रथम तल, 151 न्यू बाराद्वारी, जमशेदपुर-831001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप भी कर्नल मंगत के साथ हैं?

मुकुल जोशी

इस तरह की बातें चोट पहुँचाती हैं जैसी कर्नल मंगत ने मुझसे कही। अक्सर मुझे इस तरह लोगों के उपहास का पात्र बनना पड़ता है, और मैं कुछ देर के लिये खुद के लिये खुद को कोसता भी हूँ परंतु मैं खुद को नहीं बदल पाता। सही पूछिये तो मैं अपने को बदलना ही नहीं चाहता। 'इकला चलो रे'- सिद्धांत पर मैं चलने को प्रतिबद्ध हूँ। कर्नल मंगत की चुभने वाली बात-जो कोई आप से भी कह सकता है, को सही तरह से समझने के लिये आपको भी मेरे साथ 1997 के जुलाई माह में पंचमढ़ी से भोपाल की यात्रा करनी पड़ेगी। तकलीफ़ तो होगी आपको, सतपुड़ा के घनघोर मानसून के सीज़न में मेरे साथ चलने में एक छाता, एक बरसाती है मेरे पास, ऑफ़िस की फाइलें भी रख लीं ब्रीफ-केस में, ऑफ़िस के काम से भोपाल टेम्परेरी ड्यूटी जो जा रहा हूँ। तो चलें!

मूसलाधार बारिश को मैं घर से निकलने से पहले देखता हूँ। आसमान काले बदलों से घिरा है। अँधेरे से शाम का सा आभास हो रहा है जबकि दिन का एक बजा है। काश! टेंपरेरी ड्यूटी (टी0डी0) पर मैं डिटेल नहीं होता तो अभी घर में रजाई के अंदर दुबक कर पत्नी को गरम-गरम कॉफी बनाने को कहता। पैर हैं कि आगे नहीं बढ़ रहे, मगर जाना तो है-"परिस्थितियाँ धेनु हैं दुहो इनको, अपनी निष्ठुर उँगलियों से" नरेश मेहता की 'संशय की एक रात' की यह पंक्तियाँ सहसा मेरे होठों पर बुदबुदाती हैं और मैं बरसाती पहन कर छाते को खोलकर बस-स्टेशन के लिये निकल पड़ता हूँ।

करीब डेढ़ किलोमीटर चलकर मैं पंचमढ़ी के बस-स्टॉप पर पहुँचता हूँ। जूते पुराने वाले पहनने चाहिये थे, गलती हो गई, बाटा के नये जूते पहन कर आ गया-मैं खुद से सवाल करता हूँ। पानी से पूरी तरह भीग चुके हैं जूते। छप-छप की आवाज़ हो रही है चलते हुए। टिकट लेकर मैं बस में प्रवेश करता हूँ। कुल मिलाकर बीस आदमी ही बैठे हैं। मेरी तरह उनकी भी कोई मज़बूरी रही होगी, जो घनघोर बारिश में भोपाल की तरफ़ जा रहे हैं। बस की खिड़की की तरफ वाली सीटों पर पानी पड़ रहा है, ऊपर से मैं बेहतर सीट की तालश में हूँ और मुझे एक ऐसी सीट ड्राइवर के ठीक पीछे मिल भी जाती है। मेरे पीछे बैठे यात्री भी पानी से बचने के लिये बेहतर सीट ढूँढ़ने में आगे-पीछे देख रहे हैं। बस स्टार्ट होकर चल दी है। हलके अंधेरे होने की वजह से ड्राइवर ने बस की लाइट्स भी ऑन कर दी हैं। दूर-दूर तक बारिश थमने की गुँज़ाइश है ही नहीं। बीच-बीच में बिज़ली कड़कने की आवाज़ भी चमक के बाद दिल दहला रही है। हम सब यात्री ठंड से सिकुड़ कर हाथ बाँधे बैठे हैं और मौसम साफ़ होने की आस लगाये बैठे हैं।

पाँच घंटे की यात्रा करने के बाद बस भोपाल बस-स्टेशन पर रुक जाती है। पहली बार भोपाल आया हूँ। श्यामला हिल, अरेरा कॉलोनी, नूतन कॉलेज और फ़िर बैरागढ़ जाना है पता नहीं ये सब कितनी-कितनी दूर होंगे, कहाँ से बस अथवा ऑटो मिलेगा, कितना चार्ज़ करेंगे-ये सब मैं बस में बैठा-बैठा सोचता हूँ। दिल्ली की तरह तो यहाँ 'प्री-पेड' ऑटो के बिल भी मिलते नहीं होंगे, जिससे वापस पहुँचकर बिल क्लेम किया जा सके। एक बिल्कुल नए और अपरिचित शहर में पहली बार आने का यही सबसे बड़ा नुकसान होता है। कोई भी ऑटो वाला आपको लूट सकता है। बस में पैसा कम लगेगा, लेकिन ऐसी भयंकर बारिश में खुली सड़क में बस का इंतज़ार करना, राह में चलते लोगों से बस के फलाँ-फलाँ जगह के जाने के बारे में पूछना क्या उचित रहेगा? और बेटा, पैसा बचाने के चक्कर में बारिश में भीगकर बीमार पड़ गये तो दुगने पैसे खर्च करने पड़ेंगे।

हरे रंग की फ़ौजी बरसाती जिसके आगे वाले भाग में मेरा आर्मी का आई0सी0 नंबर और नाम सफ़ेद पेंट से लिखा है, पहनकर और छाते को खोलकर मैं बस से निकलता हूँ और सीधा बस स्टेशन के पास एक होटल में रात को रहने निकल पड़ता हूँ शाम के सात बज गये हैं, हाथ में बँधी घड़ी बताती है। तिरछी बारिश पड़ने की वजह से बरसाती के अंदर भी पानी आ गया है जिससे कमीज़, बनियान और घुटनों तक पैंट भीग गई है। होटल के रिसेप्शन-काउण्टर पर अपना नाम, पता आदि लिखकर, पचास रुपए एडवांस देकर, रिसेप्शनिस्ट से चाबी लेकर मैं कमरे में पहुँच कर फटाफट गीले कपड़े उतार कर ब्रीफ-केस से कुर्ता-पायजामा और तौलिया निकालता हूँ। बदन पोंछकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पायजामा पहनकर मैं होटल के कमरे के पलंग पर लेट हूँ। मौसम साफ होता तो आर्मी ऑफीसर्स मैस जाकर कमरे में होता और मेरे सामने मैस का बार मैन व्हिस्की, और स्नेक्स के साथ खड़ा होता। पर ऐसी बारिश में को ढूँढकर पहुँचना टेढ़ी खीर ही था। ऐसी ही बारिश कल भी रही, तो कैसे क्या होगा, कैसे ऑफिस के काम ...ये सब सोचते-सोचते आँख लग गई। और जब जागा, सुबह के सात बजे थे। बारिश उसी तेज़ी के साथ अब भी हो रही थी, जैसी कल थी मैं खिड़की खोलकर आसमान की देखता हूँ इस आशा से कि कहीं बादलों के बीच से ...ला नीला आसमान दिखाई दे जाये, मगर चावल के दाने के ...भी नीला आसमान नहीं दिखाई दे रहा है। किसी तरह को मारकर मैं बाथरूम जाने के लिय बैड से उठता हूँ। ब्रेक-फास्ट करने के बाद मैं होटल रिसेप्शनिस्ट से बसों ऑटो की जानकारी लेता हूँ जहाँ-जहाँ मुझे जाना है। वो बसों के बारे में बताने के बाद सलाह देता है कि ऐसी ...वार बारिश में एक बस स्टॉप से दूसरे बस-स्टॉप जाने ...वहाँ बस का इन्तजार करने में तो मैं पूरी तरह से भीग ...गा, धक्का-मुक्की में परेशानी अलग होती। अतः ऑटो में ही ठीक रहेगा। मैं रिसेप्शनिस्ट को होटल का बिल चुकाने होटल के बाहर बने शेड में आकर खड़ा हो जाता हूँ। पर इक्के-दुक्के ऑटो दिख रहे हैं। बसें बुरी तरह भरी हैं, ऐसी भयानक बारिश में भी आम आदमी बसों में ही ...ा कर सकते हैं। ऑटो में या तो सेठ आदमी या मेरी ...स्त का मारा आदमी ही यात्रा कर सकता है। मैं सड़क तरफ चल पड़ता हूँ। इशारा कर के हर ऑटो वाले को के लिये कहता हूँ। परंतु अंदर झाँकने पर हर ऑटो भरा ...ा है। कारें, बसें, ट्रक सड़क में बह रहे पानी से गुजरते ...ुछ और गीला कर गये हैं। सड़कों पर करीब दो-दो इंच तेजी से बह रहा है। कपड़े फिर से गीले हो गये हैं। ...ूते आदि इतने भीग चुके हैं कि उनके अंदर पानी भर है और कोई नहीं कह सकता कि ये जूता मैंने तीन-चार ...हले बाटा की दुकान से खरीदा होगा।

एक ऑटो दूर से आता दिखता है और सामने आकर ...ाता है। मुझे लगता है मानों एक बहुत बड़ी उपलब्धि ...ई हो। मैं तुरत अंदर बैठ जाता हूँ।

"कहाँ जाना साब?"

"नूतन कॉलेज"

"अस्सी रुपया लगेगा"

"ये तो बहुत ज्यादा है"

"इससे कम नहीं, बारिश भी तो देखो, कुछ ही ऑटो निकले हैं आज।"

"ठीक है भई, जो तेरी मर्जी"—शायद यही चारा है, यह सोचकर मैं मन ही मन सोचता हूँ यदि चार पाँच जगह जहाँ-जहाँ मुझे जाना है, इतने रुपये किराए के देने पड़े तो चार-पाँच सौ रुपये तो ऐसे ही निकल जाएँगे।

नूतन कॉलेज के गेट के पास ऑटो रुकता है।

"आ गया साब, नूतन कॉलेज!"

"थैंक्यू यार, ये लो अस्सी रुपये"—यह कहकर मैं कालेज के अंदर प्रवेश करता हूँ। कोई स्टूडैंट्स की हरकत ही नहीं दिख रही है, खैर मुझे स्टूडैंट्स से क्या करना, मैंने तो प्रिंसिपल से मिलना है- यह सोचकर मैं कॉलेज के ऑफिस की तरफ बढ़ता हूँ।

"आज कॉलेज बंद है क्या"—मैं एक चपरासी से पूछता हूँ।

"ऐसी घनघोर वर्षा में कोई लड़का-लड़की नहीं आएगा साब"

"प्रिंसिपल साब तो होंगे उनसे मिलना था।"

"वो तो साब बारह बजे के आस-पास आएँगे, उन्हें पता है ऐसी वर्षा में जब पढ़ने वाले ही नहीं आएँगे, तो वे आराम से बाद में आते हैं।" चपरासी की यह बात सुनकर मैं घड़ी देखता हूँ, दस बज चुका है। सोचा था शाम तक सब काम

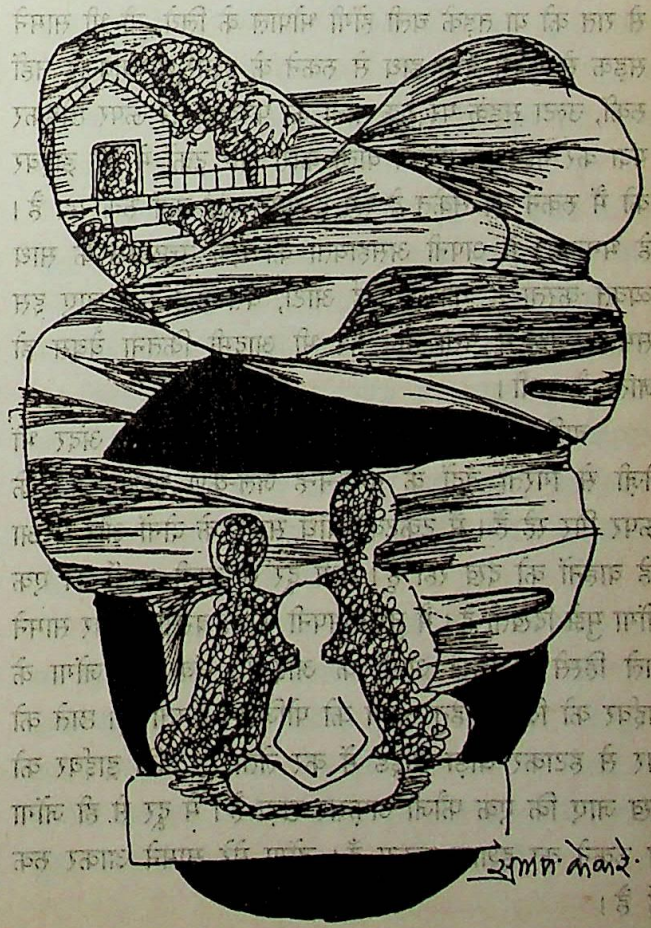

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाएँगे, लगता है ऐसी बारिश यदि रही एक-दिन और, तो भगवान ही जाने कितने दिन लगेंगे। मैं ऑफिस की गैलरी में बनी सिमेंट की कुर्सी पर बैठकर जूते को खोलकर उसका पानी निकालता हूँ और जुराबों को निचोड़ कर दोबारा पहन लेता हूँ। ठंडे में पेशाब भी ज़्यादा ही लगती है। मैं ऑफिस के टॉयलेट में जाकर निवृत्त होता हूँ। पहले ऑटो पकड़कर अरेरा कॉलोनी चला जाए-यह सोचकर मैं नूतन कॉलेज के गेट के पास आ जाता हूँ और सड़क पर खड़े होकर ऑटो का इंतजार करता हूँ। ''ज़िंदगी भर नहीं भूलेगी बरसात की ये रात''- गाना सहसा मेरे होठों पर मचलने लगता है, मगर दूसरे संदर्भ में, और फिर ये तो बरसात का दिन है, रात नहीं-कोई मेल ही नहीं-भारतभूषण और मधुबाला पर पिक्चराइज्ड इस गाने का और मेरे द्वारा फिल्माए गए इस वक़्त इस गाने का। इस वक्त मेरे लिये मेरी महबूबा सिर्फ़ ऑटो या कोई भी लिफ़्ट देने वाला (वाली का सवाल ही नहीं) आदमी ही हो सकता है। शायद महबूबा गलत शब्द होगा, मैं तो कहता हूँ कि ऑटो वाला या लिफ़्ट देने वाले आदमी के रूप में भगवान ही होगा मेरे लिये। सड़क पर फौजी बरसाती ओढ़े और सिर पर छाता ओढ़े बारिश में भीगता हुआ मैं अब ठंड से भी काँप रहा हूँ। दूर-दूर तक जहाँ नजर जाती है सड़क पर कोई भी ऑटो नहीं दिख रहा है। हाँ, ट्रक्स और कारें गुजर रही हैं मेरे आगे। कुछ बसें जो होशंगाबाद, पिपरिया से रात को या तड़के चली होंगी भोपाल के लिये, वो भी सामने सड़क से गुजरी मगर हाथ से रुकने के इशारे के बावजूद नहीं रुकीं, उल्टा सड़क पर रुके पानी का फव्वारा मेरे ऊपर छोड़कर गंदा कर गईं। हर गुजरने वाली कारों और ट्रकों में बैठे ड्राइवर को मैं रुकने का संकेत दे रहा हूँ मगर कोई नहीं रुक रहा है। हे भगवान! मैं अपनी असहायता को एक उच्छवास के साथ व्यक्त करता हूँ, काश! कोई ऑटो, बस ट्रक रुक जाए इस समय। जेब में पैसा होने पर भी आदमी कितना बेबस हो जाता है कभी।

बारिश अब और तेज़ हो गयी है। छाते के अंदर भी तेज़ी से गिरती बूँदों के नन्हें-नन्हें जल-कण बालों, चेहरे के ऊपर गिर रहे हैं। मैं टकटकी बाँधे सड़क के दोनों ओर से आ रहे वाहनों को देख रहा हूँ। तभी दूर से आती आर्मी की एक जोंगा मुझे दिखती है। मैं तुरंत अपनी फौजी बरसाती और सामने वाले हिस्से में लिखे आर्मी के आइ.सी. नंबर को जोंगा के ड्राईवर को दिखाने हेतु अपने को पोजिशन करता हूँ। छाते को सिर से हटाकर थोड़ा साइड में कर लेता हूँ ताकि ड्राईवर को दिख जाए कि एक फौजी अफ़सर खड़ा है। मैं दूर से ही जोंगा को रुकने का इशारा करता हूँ। जोंगा मेरे सामने आकर रुक गई है।

'कम इन साइड'—ड्राईवर की सीट पर बैठा व्यक्ति बोला। छाता बंद कर मैं भीगी बरसाती समेत अंदर बैठकर उस व्यक्ति को पहचानने की कोशिश करता हूँ, कुछ परिचित सा चेहरा लगता है।

''अरे सर! आइ वाज युअर कैडेट! यू वर माई इन्सट्रक्टर इन आइ0 एम0 ए0, यू आर कर्नल एम0पी0 शर्मा!'' मैं आश्चर्य युक्त खुशी का इजहार करते हुए बोलता हूँ।

''ओह! आइ सी! इट्स गुड टू सी यू। कहाँ जाना है तुझे'' कर्नल शर्मा बोले।

''थैंक्यू सर, फॉर मी यू आर 'मेना फ्रॉम हेवन'। सर मैं भोपाल टेम्परेरी ड्यूटी में आया हूँ और मुझे कई जगह जैसे अरेरा कॉलौनी, बैरागढ़, श्यामला हिल्स, नूतन कॉलेज जाना है। ऐसी बारिश में न ऑटो, न बस, न रिक्शा, कुछ भी नहीं सर, आइ वाज इन डीप ट्रबल अनटिल यू केम, आइ एम सो थैंकफुल...।''

''जोशी, ऐसी बारिश में तुझे कुछ नहीं मिलेगा। मुझे रेलवे स्टेशन जाना है, जहाँ मेरा ऑफ़िस है। आइ एम पोस्टेड एज एम. सी. ओ. इन भोपाल रेलवे स्टेशन, वहाँ मैं उतर जाऊँगा और तुम जोंगा लेकर अपने सब काम ख़त्म करके पाँच बजे से पहले तक आ जाना। आइ एम इन माइ ऑफिस टिल फाइव पी.एम. सो कम बाइ देट टाइम। आइ होप यू मस्ट बी हैप्पी नाऊ''—यह कहते हुए कर्नल शर्मा मेरी तरफ़ देखकर मुस्कुराते हैं। कर्नल शर्मा की ये बाते सुनकर मैं अवाक् हो गया हूँ। मुँह खुला सा रह गया है, आँखे नम हो गई हैं। आज के ज़माने में ऐसा भी कोई हो सकता है जो अपरिचित को अपनी सरकारी गाड़ी दे दे, भले ही वह उसका कभी कैडेट रहा हो। साढ़े चार सौ कैडेट्स को कोई याद भी कैसे रख सकता है कोई इन्स्ट्रक्टर। आजकल तो अपने सगे-संबंधियों, दोस्तों तक को लोग अपनी गाड़ी नहीं देते चलाने।

भोपाल रेलवे स्टेशन पर कर्नल शर्मा के ऑफ़िस के आगे जोंगा रुक जाती है।

''जगत सिंह, ये साब फौजी अफ़सर हैं। साब को शहर में कुछ-एक जगह जाना है। जहाँ-जहाँ बताएँ, वहाँ साब को ले जाना और साब को भी बता दिया है, पाँच बजे से पहले वापस आ जाना''- सामने खड़े ड्राइवर को बताते हुए वह मेरी तरफ देखते हैं।

''ओ के - बाय जोशी-सी यू!''

''राइट सर, थैंक्यू सर''

मैं जोंगा में बैठकर ड्राईवर को निर्देश देता हूँ। टेलिविजन के ए एक्स एन चैनल में 'रिप्लेज बिलीव इअ ऑर नॉट' की आदमी द्वारा किये गये हैरंतगेज कारनामें देखने को मिलते हैं। आज के घोर स्वार्थी समय में कर्नल शर्मा का मुझे पाँच बजे तक सरकारी जोंगा देना-बिना जान-पहचान के-मानवता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट्रू और नॉट' में लिखने योग्य घटना मानता हूँ मैं, और शायद आप भी। क्यों आपका क्या ख़्याल है?

ड्राईवर ने मुझे सही समय पर मेरे द्वारा बताये गये स्थानों पर ले जाकर मुझे बहुत सुकून पहुँचाया है, बारिश यूँ तो अभी भी हो रही है, लेकिन मेरे लिये बंद हो चुकी है क्योंकि मैं जोंगा के अंदर हूँ।

मेरे सब कार्य पूरे हो चुके हैं। बैरागढ़, श्यामला हिल्स, अरेरा कॉलौनी और नूतन कॉलेज सब जगह हो आया हूँ मैं। करीब साढ़े चार बजे वापस भोपाल रेलवे स्टेशन पर कर्नल शर्मा के ऑफिस के अंदर पहुँच गया हूँ मैं।

"सर! आई एम एक्सट्रीमली थैंकफुल टु यू। इनफैक्ट आइ कैन नेवर एक्सप्रेस माई, वो कहते हैं न इंगलिश में सर फ्रॉम हार्ट इज फुल ऑफ इमोशंस, द टंग विकम्स म्यूट' सर आप फैमिली के साथ पंचमढ़ी अवश्य पधारें। आई वुड बी ग्लैड्ड एण्ड ऑनर्ड"- यह कहकर मैं चल देता हूँ।

बारिश अभी भी हो रही है परंतु मेरे लिये शायद बंद सी हो गयी है।

इस घटना को घटे तीन वर्ष हो चुके हैं। मैं अपने ऑफ़िस की कुर्सी में बैठे ऑफिस की फाइलों से थककर जब सामने देखता हूँ तो एक परिचित से चेहरे को देखकर चौंक कर खड़ा हो जाता हूँ।

"अरे सर आप! पहचाना सर मुझे!! जुलाई 1997 में, वो मूसलाधर बारिश में नूतन कॉलेज के गेट पर आने मुझे हेल्प..."

"अरे जोशी, आई डोंट रिमेंमबर नाउ। बट टेल मी आर यू पिडली थिंग्ज वर्थ टु बी रिमेंम्बर्ड?"

"सर! यू वर माई इन्सट्रक्टर इन इंडियन मिलट्री एकेडमी।" मैं कर्नल शर्मा को याद दिलाने की कोशिश करता हूँ।

"हाँ, मैं 1984 में आइ. एम. ए. में पोस्टेड था। बट जोशी यू नो, मुझे अपने टीचर, गुरू आज भी याद हैं बट दे टेल वी रिमेंबरिंग मी-इज नॉट श्योर। आई एम हैप्पी यू रिमेंम्बर मी"-कर्नल शर्मा मुस्कुराते बोले।

"सर एनी हैल्प रिक्वायर्ड, मुझे खुशी होगी। आई वुड बी ऑनर्ड"-मैं तीन साल पहले कर्नल शर्मा द्वारा दी गयी सहायता को महसूस करते हुए कहता हूँ।

"पचमढ़ी घूमने आये हैं, बीवी-बच्चों के साथ, सुबह के ट्रेन से पिपरिया से पचमढ़ी आधा घंटा पहले ही पहुँचे हैं।"-कर्नल शर्मा बोले।

"सर मैडम, बच्चे कहाँ हैं?"

"वो मेजर दूबे के यहाँ हैं। हम दोनों एक साथ जम्मू में सर्व कर चुके हैं। इनफैक्ट ही टोल्ड मी यू वर माई कैडेट इन आइ. एम. ए.। इसलिये मैं तुमसे मिलने चला आया।"

"सर! ये रही मेरी कार की चाबी। जी भर कर घूमिए और रात को मेरे घर में डिनर, मना मत कीजियेगा सर"।

"अरे जोशी रहने दे यार, टैक्सी कर लेंगे।"

"सर। आज तो वो दिन आया है कि मैं कुछ आपके काम आ सकूँ और आप...।"

"तू नहीं मानेगा, ओ. के., इफ यू आर प्लीस्ड दिस वे। आइ विल डू व्हाट यू से।" कर्नल शर्मा मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कहते हैं।

ऑफ़िस के बाहर खड़ी नई कार जो मैं एक हफ़्ते पहले ही पटियाला से लाया हूँ, कर्नल शर्मा को उसमें बैठकर शाम को डिनर के लिये उनको पुनः याद दिलाता हूँ और फिर वापस ऑफ़िस के लिये मुड़ता हूँ।

कर्नल शर्मा की अच्छी आवाभगत की-जब वो बीवी-बच्चों के साथ रात को डिनर के लिये आये और अगले दिन उनको पचमढ़ी बस -स्टेशन से मैं सी-ऑफ करने भी गया।

एक दिन बाद ऑफ़िस में....

"यार जोशी, तू तो बहुत सीधा (मतलब बेवकूफ) है। अपनी एकदम नयी कार एक अनजान अफ़सर को दे दी। तुझे उसने अपनी बातों से बेवकूफ बना दिया होगा और तू उसके झाँसे में फँस गया होगा"—कर्नल मंगत मुझसे बोला।

"सर, बिना जान-पहचान के, एक रोज भयानक बारिश में भोपाल में पूरे दिन भर के लिये उसने मुझे अपनी फौजी जोंगा दी थी। मैं उसका कैडेट था, आइ.एम.एम. में, और वो मेरा इन्सट्रक्टर, मैं उसको जानता था पर वह मुझे नहीं। इसके बावजूद, ही हेल्पड् मी इन क्राइसिस"।

"जोशी तू तो बहुत सीधा है। तुझे तेज बनाने के लिए कुछ महीने ट्रेनिंग के लिए नेताओं के पास भेजना पड़ेगा—कर्नल मंगत के ये शब्द-बाँण मुझे अंदर तक चीर गये थे कुछ पल के लिये। क्या किसी के एहसान का बदला चुकाना बेवकूफी है। सीधापन है!! एहसान फरामोश, छल-कपट, नमकहरामी-ये सब तेज होने के प्रमाण हैं तो पुलिस, नेताओं को करप्ट न कहकर 'तेज और निपुण' क्यों नहीं कहा जाता, राम-लीला को रावण-लीला क्यों नहीं कहा जाता जबकि रावण घुमाता गया और राम घूमते ही चले गये।

है कोई जवाब आपके पास? अरे भई! अब छाता तो बंद कर लीजिए, बारिश तो कबकी बंद हो चुकी है। मुझे पता है आप कशमकश में पड़ गये हैं न, कि किस पर हँसें-मुझ पर अथवा कर्नल मंगत पर। मुझ पर हँसने वालों की संख्या ज़्यादा है और प्रजातंत्र सिर्फ़ मेजॉरिटी का खेल है। लेकिन भेड़ों के झुंड की कभी हाथी ने परवाह की है, बताइये?

C/o ले कर्नल एम सी जोशी, आर्टिलरी सेण्टर, हैदराबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम प्रपंच

डॉ0 मनोज श्रीवास्तव

शाम को जब भिनगा कहार ओसारे में बैठकर चिलम सुलगा रहा था, तो उसके चेहरे पर ग़ज़ब की ख़ुशी थी। जसमतिया सोच-सोचकर हैरान हो रही थी कि आख़िर बात क्या है कि आज उसका मनसेधू (पति) न तो उस पर कोई रौब ग़ालिब कर रहा है और न ही उस पर कोई हुकुम जता रहा है। वह हमेशा तो उस पर साँड़ की तरह पिला रहता था कि "जसमतिया, धान ओखली में कूट लिया कि नाहीं... बोरसी में आग लहकाया कि नाहीं, इनार (कूएँ) से पानी काढ़ आयी कि नाहीं... गोइंठा पाथने के बाद नाद में चारा-पानी डाला कि नाहीं... भैंस पगुराय रही है तो उसको ओसारे के बाहर खूँटे में बाँध दे..."

जसमतिया ताज्जुब में डूब-उतरा रही थी कि आज दिन भर में एक बार भी उसके मनसेधू ने मनरौतिया के बारे में कुछ भी अनापशनाप क्यों नहीं पूछा? उसे झाड़ क्यों नहीं लगाई? उसे बात-बात पर लप्पड़ लगाने की बात क्यों नहीं की...?

तभी उसे ध्यान आया कि आज वह भिनसारे से मनरौतिया का थोबड़ा एक-दो बार ही देख पायी है। हाँ, जब सबेरे वह देर तक सोती रही थी, तो उसके बाऊ ने उसका झोंटा खींचकर उसे उठाया था, "करमजली, देख दुपहरिया होने को आयी है और तू है कि घोड़े बेच के सो रही है। देख, तू अपना रस्ता बदल दे, अपना चाल चलन सुधार ले। मनभावन के चक्कर में पड़ के हमरे खानदान की इज्जत पर लीपा-पोती करने पर क्यों तुली है? तू कुछ भी कर ले, तेरा लगन मलेच्छ मनभावन से कभी न हो पाएगा..."

उसके बाद भिनगा बड़े रौब से कंधे पर लाठी तानकर, बड़बड़ाते हुए डीह बाबा की ओर निकल गया था।

"बुजरी, क्या सोच रखी है कि भिनगा कहार अपनी बिटिया का बियाह कौनो छोट जात में कर देगा ? हमारे पुरखे राजा-महाराजा के इहाँ बड़े ठाट-बाट की नुकरी करते थे। आज भी हम बड़ी-बड़ी कोठियों में डूटी बजाते हैं, लेकिन इ बब्बन हजाम के छोरे की ढिठाई तो देख रे के ऊ साला इतने बड़े खानदान की लौंडिया से लगन कराने का सपना पाल-पोस रहा है। ऐसा हरगिज नहीं होगा।"

उसके नथुने गुस्से में फड़कने-फूलने लगे। तब तक वह डीह के समाधि-स्थल पर पहुँच चुका था, जहाँ गाँव के कम से कम डेढ़-दो सौ लोग बरखा न होने पर आसन्न सूखे-अकाल से निपटने के लिए तंत्र-मंत्र और नानाविध कर्मकांडों पर विचार-विमर्श में मग्न थे।

सूखे-अकाल की चिंता में तो बब्बन हज्जाम के ज़बर जवान गदेला-मनभावन ने डीह बाबा के सामने धरती पर अंगद की भाँति पैर पटका और यह भीष्म-प्रतिज्ञा की कि सोमवार से पहले अगर दऊ प्रसन्न नहीं हुए और बरखा नहीं हुई, तो वह उस दिन ही शिवाले में जाकर अपनी गरदन काटकर बाबा भोलेनाथ को भेंट चढ़ा देगा, क्योंकि भदेसर पंडित ने ऐलान कर रखा था कि दऊ को रिझाने का बस एक ही नुस्ख़ा कामयाब हो सकता है कि गाँव का कोई जवान छोरा शिवाले में जाकर भगवान शिव के सामने अपनी बलि पढ़ाए।

गाँव के सारे बूढ़े-जवान, औरत-मर्द डीह बाबा के समाधि-स्थल पर इकठ्टे होकर भदेसर पंडित का यह ऐलान सुनने के बाद दुम दबाकर भाग खड़े होने को आतुर थे। भीड़ में गाँव के कम से कम चालीस-पचास जवान भी मौजूद थे, जो पंडित जी का ऐलान सुनकर धीरे-धीरे खिसक लिये। पर, क्या मजाल कि किसी लौंडे में इतना दमख़म हो कि गाँव के हित के लिए अपनी जान देने के लिए ताल ठोंककर आगे आये? गाँव की भलाई करने का पाखंड करने वाला ठाकुर कप्तान सिंह का छोरा जब्बर सिंह भी धीरे से कन्नी काटकर कब रफूचक्कर हो गया, इसकी भनक किसी को भी नहीं लगी।

ऐसे में, मनभावन की दिलेरी की दाद दी जानी चाहिए, जिसने आव देखा न ताव, फटाफट भीड़ से निकलकर और सभी उपस्थितजनों के सामने सीना ठोंककर गरज उठा, "अगर गाँव के कल्याण के लिए हमारी बलि चाहिए, तो हम भीष्म प्रतिज्ञा करते हैं कि जदि दो दिनों के भीतर बरखा नहीं हुई, तो हम शिवाला जाकर अपनी बलि चढ़ा देंगे। हमारी आतमा को गाँव में अपने लोगों की ख़ातिर और गाय-गोरुओं, खेती-बाड़ी को बचाने के लिए अपनी कुर्बानी देके बड़ा सुकून मिलेगा।"

उसका ऐसा कहना था कि भुतहे लू और नटई टीपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गर्मी से बिलबिलाती भीड़ में हर्षोल्लास की लहर दौड़ गई। तोगबाग जात-पात का पाखंड तजकर बिना किसी भेदभाव के मनभावन को गले लगाने और उसकी मर्दानगी का यशगान करने लगे। जो जवान लौंडे पंडित जी का ऐलान सुनकर उड़न-छू हो गये थे, वे भी धीरे धीरे जमा होने लगे और मनभावन की हिम्मत की वाहवाही करने लगे।

उससे हमेशा जला-भुना रहने वाला जब्बर सिंह भी यक ब यक प्रकट हो गया। अपनी बुज़दिली पर पर्दा डालने के लिए वह इतने अच्छे मौके से कैसे चूक सकता था? वह झट मनभावन को अपने सीने से लगाते हुए भरे गले से बोल उठा, "मनभावन! हमका माफ़ी दई दो। हम तो नाहक तुम्हारे और तुम्हारी मनरौतिया के पियार के बीच जमराज बन के आ गये थे। हम तुमको वचन देते हैं कि जदि सोमवार से पहिले बरखा हो गयी और हम जिंदा बच गये, तो हम तुम्हारा मनरौतिया से मिलाप कराने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ेगे। जमीन-आसमान एक कर देंगे। अब ई बूझ लो कि तुम हमारे भइया भये और मनरौतिया हमरी भौजी...."

वहाँ मौजूद ग्राम-प्रधान कप्तान सिंह अपने बेटे जब्बर की बात सुनकर खुद आगे आये और उन्होंने मनभावन की पीठ थपथपायी, " बबुआ! सारा गाँव तुम्हारा कर्ज़दार रहेगा। तुम्हारी शादी से अगर बरखा हो गयी, तो ई जान लो कि हम तुम्हारी याद में एक बहुत बड़ा स्मारक बनवाएँगे और अगर तुम्हारी शादी से पहले ही इंदर भगवान खुश हो गये, तो हम सब रीति-रिवाज और जात-पाँत पर लात मार के तुम्हारा लगन मनरौतिया से कराने के लिए उसके जिद्दी बाप को मजबूर कर देंगे। तुम्हारे ब्याह में सारे गाँव को नचाएँगे। ई बूझ लो कि हम ठाकुर हैं और ठाकुर का बचन कभी खाली नहीं जाता।"

मनभावन का सीना सबकी बातें सुनकर चौड़ा हुआ जा रहा था। जहाँ सारे गाँव वाले मनरौतिया के साथ खेली जा रही उसकी रास-लीला से अभी थोड़ी देर पहले आग-बगूला हो रहे थे, वही आज उसकी तारीफ़ों के पुल बाँधते नहीं अघा रहे थे। कुछ दो दिन पहले ही ठाकुर कप्तान सिंह पंचायत बैठाकर उसे सख़्त से सख़्त सज़ा दिलवाने की वकालत कर रहे थे, कह रहे थे "मनरौतिया से इशक लड़ाने का नतीजा बड़ा बुरा होगा। मनभावन के कुकर्मों का खामियाजा सारा गाँव भुगत रहा है।"

पर, आज उनका भी सुर बदल गया, "मनभावन ने गाँववालों की ख़ासतौर से जवान लौंडों की इज्जत बचायी है। ऐसे में, जो गाँवों में जब इस अफवाह का बवंडर पहुँचता कि ठकुराने में पंडित भदेसर की चुनौती का जवाब देने वाला मरद पैदा ही नहीं हुआ है और उन्हें जनानियों की तरह चूड़ियाँ पहन लेनी चाहिए, तो हमारा सिर कितने सरम से झुक जाता..."

मनभावन तो कुंतलों खुशामद के बोझ से दबा जा रहा था। उसने तत्काल पहले ठाकुर कप्तान सिंह के पैर छुये और फिर पंडित भदेसर के और उनका आशीर्वाद लेकर गदगद हो उठा। सोच रहा था कि क्या हुआ, दो ही दिन की ज़िंदगी सही, अगर उसकी बलि से दीन-दुनिया का कल्याण हो जाता है, तो यह उसका अहोभाग्य होगा!

लेकिन, उसकी प्रतिज्ञा से जिस आदमी को सबसे ज़्यादा खुशी हो रही थी वह था भिनगा कहार, जो मनरौतिया का बाप था। उसकी खुशी का राज़ यह नहीं था कि मनभावन की बलि से बरखा होगी और सारा प्यासा गाँव पानी से तर-बतर हो जाएगा। दरअसल, बात यह थी कि इसी बहाने सही, उसके सबसे बड़े दुश्मन मनभावन का सफ़ाया हो जाएगा, जो गाँव-जवार में उसकी इज्जत पर लीपा-पोती करने पर आमादा था। अब पानी बरसने वाला नहीं है। सावन भी सूखा निकल गया। ऐसे में भादों से क्या उम्मीद की जा सकती है, क्या मेघ फिर वापस लौटकर बरसने लगेगा? वह तो मन ही मन उफनती गर्मी को दिल से धन्यवाद देने लगा कि उसकी कृपा से अब उसकी दिली मंशा पूरी होने वाली है। वह पहले तो भदेसर पंडित की मूढ़ता पर मुस्कराया, "भला, आज तक कभी ऐसा हुआ है कि किसी की बलि चढ़ाने से दाऊ मेहरबान हो गये हों। सूखा-अकाल तो पड़ता ही रहता है, जिसे रोकने के लिए बड़े-बड़े कर्मकांड किये जाते हैं, लेकिन बरखा इतनी आसानी से नहीं होती। जादू-मंतर से खेत कभी नहीं लहलहा सकते। अब तो मनभावन के पाप को ऐसा दुष्परिणाम भुगतना पड़ेगा कि गाय-गोरू प्यासे मर जाएँगे, गाँव वाले रोजी-रोटी जोहने शहर को निकल जाएँगे और जो गरीब रह जाएँगे, उनका रामनाम सत्त हो जाएगा।"

फिर, उसने सिर उठाकर ढल रहे सूरज की ओर देखा और आंखें मूँदकर प्रार्थना की, "हे सूरज महराज! अब हमारी इज्जत आपके ही हाथ है। कम से कम सोमवार तक ऐसी चटख आग के गोले बरसाना कि इंद्र देवता मेघों को बरसने का हुकुम पास न कर सकें..."

भिनगा के जाते ही मनरौतिया की माई जसमतिया उसे समझाने बैठ गयी, "ई सब पियार-मोहब्बत का चक्कर सहरी छोरा-छोरियों को होता है, जिनके लिए रीति-रिवाज, धरम-करम का कोई माने नहीं होता। हम ठहरे ठेठ गँवार। ऊँच-नीच मानने-जानने वाले। अपने बाऊ का खानदानी गुमान तो तुम खूब जानती-बूझती हो। ऊ तुम्हारा मनभावन से मिलाप कबहूँ नहीं होने देंगे? भले तू-नाक रगड़ ले, पाथर पे माथा फोड़ ले।"

उसके बाद जसमतिया ने मनरौतिया को ज़बरन दतुवन-कुल्ला करवाया और नहलाया-धुलाया। उसके सिर पर तेल थपथपाते हुए उसकी चोटी गूँथी। निस्संदेह, वह अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुघड़ बिटिया पर बड़ा तरस खा रही थी। थोड़ी देर तक वह उसकी पीठ सहलाती रही, फिर उसके आगे छिपली में लिट्टी-चोखा परोसने के बाद कुएँ से पानी काढ़ने चली गयी। वहाँ कुछ समय तक जी बहलाने के लिए मनरखनी से उटका-पुरान करती रही और उसकी ननद-देवरानी के बीच लफ़ड़ों पर राजनीति करती रही। जब वापस घर लौटी, तो उसे बड़ी हैरानी हुई कि रोज़ तो मनरौतिया छह-सात लिट्टी भकोस जाती थी, फिर भी उसका भड़साँय-सरीखा पेट नहीं भरता था और वह छिपली चाटती रह जाती थी, लेकिन आज वह सिर्फ़ दो लिट्टियाँ ही खाकर ओसारे में बँसखट पर खरहरी सो रही है। उसका जी हो रहा था कि वह उसके सोते में ही उसकी बाँह उमेठकर उसे घसीटते हुए कोठरी में ले जाकर धड़ाम से कद्दू की तरह पटक दे। भला, जवान लड़की का इस तरह उघारे बदन सोना अच्छा लगता है क्या? गाँव का कोई जब्बर सिंह सरीखा लहेड़ा लौंडा देख लेगा तो इसकी जवानी का काम-तमाम कर देगा। जवान छोरी के सोने का एक ढंग-तरीका होता है।

उसने उसे झिंझोड़कर उठाया और ज़ोर से डपटते हुए कोठरी में जाक़र सोने का हुकुम जारी कर दिया।

फिर जसमतिया ओसारे में बैठकर अपने मनसेधू के फटे कुर्ते में पैबंद लगाने की जुगत भिड़ाते हुए दिनभर की घटनाओं को याद करने लगी और बिचारी मनरौतिया की बदक़िस्मती पर तरस खाने लगी कि अगर बबुनी पर बचपन से ही लगाम कसा गया होता और उसे मनभावन के कुसंग से दूर रखा गया होता, तो वह कभी उस मुरझौंसे के पियार में बावली नहीं होती। वह मन-मन भिनगा को सरापने लगी कि अगर हमारे कहने पर वह बिटिया का ब्याह आठ बरस में ही कर दिया होता, तो आज यह दिन नहीं देखना पड़ता। उसके वास्ते कितने रिश्ते आये थे! पर, वह तो बार-बार यही कहता रहता, "अरे, जसमतिया काहे को चिंता में सिर खपा रही है? जब तक मनरौतिया घर में है, घर कितना मनसायन और गुलजार लगता है। उसके जाने के बाद तो घर में भूत लोटने लगेगा। उसके ब्याह के बाद घर में बस हम-तुम ही रह जाएँगे। तू मजूरी पर निकल जाएगी और हम रायसाहब के इहाँ डूटी बजाने चले जाएँगे... उसको ससुराल पठाने का जिम्मा हमारा है। तू काहे को हरदम बकवास कर-करके हमारा कान कुतरती रहती है?"

वह फिर सोचने लगी कि दूसरी जातियों में ब्याह करने का रिवाज सिर्फ कायथ-ठाकुर और भूमिहारों में होता है। बाँभन भी ऐसे ब्याह से नाक-भौं सिकोड़ते हैं। कभी-कभार ही कोई बाँभन का मनचला छोरा कुजात की लौंडिया से ब्याह रचाता है। लेकिन, जमाना बदल रहा है। गाँव के छोरे सहर जाकर अपने साथ कोई न कोई लौंडिया बाँध लाते हैं। पहले तो उनके परिवार वाले ना-नुकुर करते हैं, फिर उस लौंडिया को अपनी बहू मान लेते हैं। वैसे भी, मनभावन हज्जाम बिरादरी का है, तो क्या हुआ? वह चतुर-सुजान है, गबरू-जवान छोरा है। हाईस्कूल फेल है और कोठी में दरबान की डूटी बजाता है। अच्छा खाता-कमाता है। बस, उसमें एक ही कमी है कि ऊ हमसे नीचे जात है, नहीं तो मनरौतिया के लिए उससे बढ़िया लड़का बत्ती लेके ढूँढने से भी नहीं मिलेगा..."

जसमतिया की आँखे गीली हो गयीं। उसने अपने पल्लू से आँखें पोंछी और फिर भिनगा के पाजामे में इजारबंद डालने लगी। उसके बाद, वहीं आँखें मलते हुए ज़मीन पर लेटकर अपना बदन तोड़ने लगी और ख़यालों में खो गयी आख़िर मनरौतिया भी मनभावन से किसी भी मामले में कमतर नहीं है। देखने में गोरी-चिट्टी है। बदन भी इतना गदराया हुआ है कि बस। देखने में किसी खाँटी ठकुराइन से कम नहीं लगती, लेकिन इसमें झूठा भी क्या है? उसका मनसेधू-भिनगा तो नामर्द है, नामर्द! उसके बलबूते तो वह आज भी माई नहीं बन पायी होती। अगर ठाकुर भैरव सिंह से उसका टाँका नहीं भिड़ा होता, तो वह आज भी बेऔलाद होती। सब ऊपर वाले की मेहरबानी है।"

भैरव सिंह का ध्यान आते ही वह मायूस हो गयी। उसे वह दिन आज भी नहीं भूलता, जब गाँव में फैले हैजे ने भैरव को काल का ग्रास बना लिया था। वह रुआँसी होकर भगवान को कोसने लगी। दोनों के बीच बरसों से प्रेम-प्रपंच चल रहा था, लेकिन किसी को कालोंकान ख़बर न हुई। भैरव सिंह वहीं शिवाले में रहते थे। महादेव बाबा की पूजा-अर्चना में उनका इतना मन लग गया था कि वे इसी ठकुराने गाँव में अपनी तिमंज़िली कोठी त्यागकर शिवाले में रात-दिन धूनी रमाये बैठे रहते थे। जसमतिया तो उनकी शिव-भक्ति पर लट्टू हो गयी थी। बहरहाल, विधाता ने जो लिख दिया था, उसे कैसे टाला जा सकता था? वह भी जसमतिया के फेर में तभी से पड़ गये थे, जब वह बारह साल की कुँआरी छैल-छबीली छोरी थी और योग्य वर पाने की मंशा से हर सोमवार शिव जी को जल चढ़ाने शिवाले जाया करती थी।

उसकी आँखों मे आँसू छलछला उठे। शिव जी की कृपा से उसका लगन भिनगा से तो हो गया, लेकिन वह भैरव की दीवानी उसके मरने तक रही। वह बड़बड़ाने लगी, "मनरौतिया, करमजली नहीं है, बल्कि हम खुद हैं। मनरौतिया के पास अभी भी मौका है कि वह भाग-पराय के मनभावन से ब्याह कर सकती है, लेकिन नामर्द भिनगा से पिंड मरते दम तक नहीं छूटेगा।"

जसमतिया अचानक उठ बैठी और सोचने लगी कि मनरौतिया तो आधी ठाकुर है और आधी कहार, लेकिन उसमें ठकुराइन के लच्छन कुछ ज्यादा ही मिलते हैं। तभी तो ठाकुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान सिंह का छोरा जब्बर सिंह उस पर डोरे डालने, उसके साथ छेड़खानी करने और सरेआम यह ऐलान करने से बाज नहीं आता कि एक न एक दिन मनरौतिया को भगा ले जाएगा। जसमतिया को इस बात से गुमान होने लगा कि उसकी छोरी को चाहने वाला कोई ऐरा-गैरा नहीं है, बल्कि ठाकुर है। ऐसा सोचकर उसकी छाती बड़े दर्प में तन गयी। उसे अचानक मनभावन से नफरत-सी होने लगी। जब्बर सिंह के आगे वह कैसे लोमड़ी सरीखा दुम दबाकर भाग खड़ा होना चाहता है?

उसे अच्छी तरह याद है कि जब मनरौतिया मनभावन के साथ ठाकुर के खेत-खलिहान में छुआ-छुअंता कंचा-गोली, लुत्ती-डंडा खेला करती थी तो दोनों की जोड़ी कितनी भली लगती थी! बब्बन ने उसके मरद से एक बार बात-बात में कह दिया, "भिनगा भइया, मनभावन और मनरौतिया की जोड़ी कितनी बढ़िया लगती है।"

उसकी बात सुनकर भिनगा तो एकदम बौरा गया था, "बब्बन! हमार बिटिया को अपनी बहू बनाने का सपना कभी मत देखना, नहीं तो बात मरने-मारने तक आ जाएगी..."

तब से दोनों में जो बोलचाल बंद हुई, वह आज तक फिर शुरू नहीं हुई। लेकिन, जवानी में कदम रखते ही मनरौतिया के पैरों में पंख उग आये। बचपन का खेल-खिलवाड़ प्यार में बदल गया। उस पर डाँट-फटकार का कोई असर होने वाला नहीं था। किसी ठकुराइन की तरह वह छाती तानकर अपने बाऊ से जबानजदगी करने पर उतारू हो जाती है। यह तो अच्छा हुआ कि वह लड़की जात है, नहीं तो भिनगा पहलवान उसकी तुड़ाई करके लूली-लंगड़ी बना देता। दरअसल, बेलगाम तो हमने ही उसे छोड़ दिया था। पतंग और परेती लेकर पतंग उड़ाने के बहाने वह मनभावन के साथ कहाँ-कहाँ, किस-किस खेत-खलिहान में क्या-क्या करने नहीं चली जाती थी, यह तो जब पता चला, जब भदेसर पंडित ने भिनगा के कान भरे।

उस दिन भिनगा रायसाहब की कोठी से काफ़ी देर से लौटा था। उसकी नाक पर गुस्सा पालथी मारकर ऐसे बैठा हुआ था जैसे कि वह किसी की गरदन अभी गड़ाँसे से रेत देगा। उससे पहले वह घर में घुसते ही सारे कोने झाँक आया। जसमतिया कुछ-कुछ समझ नहीं पा रही थी। बेशक! भिनगा के हाथ एक छोटा-सा सोटा लग गया था। इतना उत्तेजित वह तभी दिखायी देता था, जब कोई गेहुअन साँप नजर आ जाता था। लेकिन, कोई बरसात तो हो नहीं रही है कि साँप-बिच्छू पानी से बिलबिलाकर बाहर निकल आएँ और काट खाने को दौड़ें। जसमतिया थर-थर काँप रही थी कि अगर उसने उससे गुस्से का कारण पूछ लिया, तो उसकी खैर नहीं।

तभी भिनगा भड़क उठा, "ई मनरौतिया कहवाँ बिलाय गयी है? कहऊँ नजर नहीं आ रही है? भदेसर पांडे बता रहे थे कि ऊ करमजली, मनभवना हज्जाम के संग हेने-होन उसकी परछाई जैसे डोलती फिरती है। ई गाँव में आज तलक कोई प्रेम-पचीसी नहीं खेली गयी है। जदि हमरे खानदान पर कौनो दाग-धब्बा लगा, तो ई बूझ लेना कि हम मनरौतिया की बोटी-बोटी काट के खवर रहे कुकुरों को खिला देंगे।"

उसकी भड़ाँस सुनकर जसमतिया को तो डर के मारे पसीना आने लगा। उससे कुछ कहते नहीं बना, तो यह बहाना बना दिया, "मनरौतिया को हम भुल्लन तेली के इहाँ नून-तेल खरीदने भेजे हैं। ऊ बस, आती ही होगी।"

उसने उसकी आँखों में आँखें डालकर देखा। शायद, उसे उसकी बात से तसल्ली हो गयी थी, इसलिए वह भीतर कोठरी में सुस्ताने चला गया। जसमतिया की साँस में साँस आयी कि बिचारी मनरौतिया आज लात-मार खाने से बाल-बाल बच गयी। वह ओसारे से बाहर निकलकर सामने बड़ी बेसब्री से रास्ता निहारने लगी। तभी मनरौतिया आते हुए दिख गयी। उसने भगवान को धन्यवाद दिया।

मनरौतिया के पास आते ही वह गुस्से में लाल-पीली हो गयी, "मँहझौंसी! कहवाँ गयी थी? मनभावन के साथ लुकछिप करके चूमा-चाटी और ऊ करने गयी थी क्या? देख, तुम्हार बाऊ का कोप एकदम बेकाबू भया जा रहा है। हम तो आज तोहे बहाना बना के बचा लिये। ऊ सोटा लिए तुम्हारी धुनाई करने को बेचैन हो रहे थे। अब तू चुम्मार के ओसारे में बैठ जा। जब बाऊ भीतर से इहाँ आये, तो बता देना कि हम भुल्लन तेली के इहाँ नून-तेल खरीदने गये थे..."

0 0 0

लेकिन, आज मनरौतिया बड़ी उदास दिख रही है, जरूर उस मलेच्छ ने कुछ उल्टा-सीधा करतूत किया होगा—जसमतिया ने मन ही मन कहा। वह ओसारे में उसके बगल में बैठकर बड़े स्नेह से उसका सिर सहलाने लगी।

मनरौतिया यकबय घिघियाकर बिलखाने लगी, "माई रे! हमार जिनगी तो तबाह होई गयी है..'

"ऊ कैसे?" जसमतिया ने अचरज से अपना मुँह बा दिया।

"ऊ मनभावन ने डीह बाबा के ठाँव पर सैकड़ों जने के सामने ई कसम खा लिया है कि अगर सोमवार तलक बरखा नहीं हुई, तो ऊ शिवाले में जाके भोले के आगे ऐन सोमवार के दिन अपनी जिनगी का भेंट चढ़ा देगा।"

उसकी बात सुनकर पल भर के लिए तो जसमतिया ऐसे चिहुँक उठी, जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो। लेकिन, अगले पल वह मन ही मन खुश होने लगी—"चलो, बहुत बढ़िया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। उस छछूंदर मनभावन से अब छुटकारा मिल जाएगा। उसके कारण हमारे परिवार का कितना छीछालेदर हुआ है। हम तो इहै चाहते हैं कि जब्बर सिंह हमारी बिटिया को भगा ले जाए। इससे बढ़िया बात क्या होगी कि एक कहार का रिस्ता ठाकुर घराने में हो जाए? अब ई बात तो तय है कि जब बरखा के मौसम में बरखा नहीं हुई, तो सोमवार से पहले बरखा कैसे हो जाएगी।''

पर, मनरौतिया की आँखों से गंगा-जमुना बहने लगीं। वह फफक उठी, ''जदि हमारा मनभावन गाँव में बरखा के ख़ातिर अपनी जान देगा, तो हमहूँ पीछे नही हटेंगे। हम भी अपने जिसम पर किरासन तेल डाल के खुद को भसम कर देंगे। ई बात हम दिल से, महादेव बाबा की कसम खाके बोल रहे हैं. ..''

उसके गंभीर उवाच से जसमतिया के रोंगटे खड़े हो गये। इकलौती संतान के मोह से उसकी रूह कँपकँपा उठी। वह अपनी धोती के पल्लू से मनरौतिया के आँसू पोंछते हुए उसे फुसलाने लगी, ''आखिर, मनभावन में क्या लाल लगा हुआ है कि तू उस पर लट्टू हुई जा रही है?''

''माई ! मनभावन में हमारा जान बसता है। जदि मनभावन नहीं, तो समझ लो कि हम भी नहीं।''

उसके चेहरे पर अडिग निश्चय के भाव से जसमतिया फिर सिहर उठी, लेकिन उसने बात का बतंगड़ बनाने से चुप रहना ही बेहतर समझा और भाव-विह्वल होकर उसको अपनी बाँहों में भींच लिया।

पंडित भदेसर सुबह से ही शिवाला में डटे हुए थे। वह महादेव बाबा के आगे सारे कर्मकांड के लिए ज़रूरी चीज़ें, जैसे- धूपबत्ती, दसांग, सुपारी, कपूर, आम, पान और केले के पत्ते, गंगाजल वगैरह इकट्ठा करके सभी को करीने से लगाने में तल्लीन थे। बीच-बीच में वे बिलौटा को गुहार-गुहार हुकुम देते जा रहे थे कि सुद्ध घी ला, अच्छत और रोली ला, ठाकुर साहेब के इहाँ से भाग के फूल और तुलसी की पत्ती ला, हाँ, मनभावन आ गिया हो, तो उसको नहला-धुला के सफेद धोती-कुर्ता पिन्हा दे... और असलम कसाई के इहाँ से गड़ासा लाना मत भूलियो...''

मंदिर का नौकर बिलौटा अपनी खोपड़ी पर हाथ फेर-फेरकर सारी चीज़ें याद करता जा रहा था, ताकि उसे कोई भूली हुई चीज़ लाने के लिए दोबारा न भागना पड़े, क्योंकि वह सवेरे से कभी हाट, तो कभी किसी के घर भाग-भागकर थक गया था। वह थैला लिए बाहर निकला ही था कि मनभावन नहा-धोकर, झक्क सफ़ेद धोती-कुर्ता पहने पंडित भदेसर के सामने आकर एक निरीह बकरे की भाँति उँकड़ू बैठ गया। पल भर के लिए पंडित भदेसर ने उसे ऊपर से नीचे तक निहारा और फिर उसके माथे पर चंदन का लेप लगाते हुए जैसे ही कुछ मंत्र पढ़ते हुए उसके सिर पर हाथ फेरा और यह बताया कि ''अभी इगारह बजा है, बलि का मुहूरत तीन बज के सतरह मिन्ट से चार बज छह मिन्ट तक है,'' वैसे की मंदिर के बाहर गाँववालों के हुजूम का कोलाहल बेतहाशा बढ़ गया, क्योंकि उन्हें मालूम हो गया था कि बलि का बकरा आ चुका है और अब बस सारे कर्मकांड को अंजाम दिये जाने की ज़रूरत है।

पंडित भदेसर बलि की वेदी को ठीक शिवलिंग के सामने स्थापित करने के बाद बाहर का जायज़ा लेने निकल पड़े कि तभी बब्बन हज्जाम सामने दिख गया। पंडित जी भुनभुनाने लगे, '' ई ससुरा दिशाशूल कहाँ से आ गया ?''

बब्बन रोता-बिलखता साष्टांग उनके पैरों पर गिर पड़ा, ''पंडित जी महराज, हमारे बबुआ की जिनगी बखश दीजिए। ऊ इस बूढ़े की इकलौती लाठी है। रउवाँ तो जानते ही हैं कि हमारी लुगाई पाँच बरिस पहिले संक्राति के दिन नहाते समय गंगा मइया की गोदी में समा गयी थी। तब से हम मनभावन के आसरे ही जी रहे है...''

वह गिड़गिड़ाते हुए मखाकर भाँय-भाँय रोने लगा।

पंडित भदेसर अपने पैरों के उसके माथे से छू जाने की आशंका से मुँह बिचकाते हुए झट दूर खड़े हो गये, फिर अपने जनेऊ पर हाथ फेरते हुए पुराण बखानने लगे, ''बब्बन हज्जाम, तूँ भाग्यसाली है कि तेरे लौंडे की बदौलत इतना बड़ा जन-कल्याण होने जा रहा है। ग्रंथ-पुराण में नरबलि का बड़ा महात्तम बखान गया है और ई बूझ लो कि मनभावन की बलि से तुझे बड़ा पुन्य मिलेगा। और तूँ खुद को इतना बेसहारा काहे समझता है? ई गाँव के सारे लौंडे तेरी देखभाल मनभावन से कम नहीं करेंगे। तूँ उनकी सेवा से अघा आएगा।''

बब्बन ठाकुर कप्तान समेत गाँव के सभी बड़े लोगों के सामने अपनी नाक रगड़ आया था कि उसके मनभावन को बलि का बकरा बनने से बचा लिया जाए, पर उसकी जुबान घिस गयी और होंठ झुरा गये, लेकिन किसी को उस पर तरस नहीं आयी। वह समझ गया कि अब उसका कोई पुरसान हाल नहीं है, इसलिए वह हाथ जोड़कर पंडित भदेसर के सामने एक आख़िरी गुहार लगाने के लिए खड़ा हो गया, ''अच्छा पंडित जी, जब तलक मनभावन को हलाल नहीं किया जाता है, हमको उसके पास बैठने की इज़ाजत तो दे दीजिए...''

पंडित भदेसर अपना सिर नहीं में हिलाते हुए फिर नेम-धर्म बाँचने लगे, ''अइसा कइसे होगा? अब मनभावन भोले बाबा का भोग है। उसका बलि के लिए सुद्धिकरण कर लिया गया है। हमारे सिवा अगर कोई और उसको देख लेगा, तो भोले बाबा उसकी बलि स्वीकार नहीं करेंगे...''

फिर, उन्होंने दो मुस्टंडे लौंडों को कनखियाकर इशारा किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि इस अपशकुन को जल्दी से दूर करो, नहीं तो सारा कर्मकांड बिरथा चला जाएगा।

बब्बन भल्ल-भल्ल आँसू बहाता रहा, लेकिन उन लौंडो ने उसे घसीटते-धकियाते-लतियाते हुए भीड़ से बहुत दूर खदेड़ दिया। लोगबाग बड़ी बेसब्री से बलि के सही मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका एक-एक पल घंटों की भाँति गुज़र रहा था। ठाकुर कप्तान सिंह बीड़ी के लंबे-लंबे कश भरते हुए बड़ी बेसब्री से इधर-उधर पैंतरे बदल रहे थे। जब उन्होंने पंडित भदेसर को भीड़ चीरकर अपनी ओर आते हुए देखा, तो बीड़ी फेंककर कंधे से लटकते गमछे को अपने सिर पर बाँधा और फटाफट उनके पास आ धमके।

"पंडिज्जी ! क्या अभी बलि नहीं दी जा सकती? देखिए न, लोग कितने बेताब होते जा रहे है। हाँ, एक खास बात हम आपको बताने जा रहे हैं कि मनरौतिया मनभावन के वास्ते आत्मदाह करने पर उतारू है, लेकिन आप घबड़ाइए मत, हमने अपने छोरे जब्बर को उस पर काबू पाने के लिए पहले ही इसके इहाँ पठा दिया हैं..."

भीड़ पंडित भदेसर को ठाकुर के संग बतकही करते देख और भी अनियंत्रित हो गयी। वे तत्काल नरबलि के लिए चीख चिंघिया रहे थे, ताकि दऊ प्रसन्न होकर उन्हें यथाशीघ्र बरखा से आकंठ निमग्न कर दे। उत्तेजित भीड़ अब 'हर-हर महादेव' का कर्णभेदी जयघोष करते हुए चारों दिशाओं में बवंडर फैलाने लगी थी। ऐसा लग रहा था कि आसमान फट जाएगा और धरती पाताल में समा जाएगी। यह सब चल ही रहा था कि तभी हवा के एक तेज़ झोंके ने जयघोष को सुदूर दूसरे गाँवों तक फैला दिया।

भीड़ ने पहली बार हवा में शीतलता का अहसास किया। किसी ने व्यंग्य कसा, "लगता है कि पंडिज्जी के कर्मकांड के पहिले ही दऊ अपनी करामात दिखा देंगे..."

पंडित भदेसर नथुने फड़काते हुए भुनभुनाने लगे, "हमें तो ई मौसम का कोई अच्छा लच्छन नहीं दिखायी दे रहा है।

"ठाकुर कप्तान सिंह पूरब दिशा से उठती तेज़ धूल भरी आँधी को देख विस्मित हो गये, "यकबय ई मौसम को क्या हो गया?"

पंडित भदेसर शेखी बघारने लगे, "ई कोई करिश्मा नहीं, हमारे कर्मकांड का नतीजा है। अभी देखिए, बलि बढ़ते ही आसमान से पानी का फौव्वारा फट पड़ेगा।"

अगर चैत और बैसाख की कड़ाके की गर्मी में आसमान से मेघ नदारद हो और अचानक सावन बीतते-बीतते रिमझिम बरखा होने लगे, तो किसके मन में खुशी की बयार नहीं बहने लगेगी? अरे, कुछ ही दिन पहले तो गाँव-जवार के लोग यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ और इंद्र देवता को रिझाने के लिए क्या-क्या कर्मकांड नहीं कर रहे थे? आख़िरकार, बरखा रानी भी इनके कर्मकांड से रीझे बग़ैर नहीं रह सकी।

कुछ ही देर बाद आसमान अंधड़-तूफ़ान से ढँक गया। सूरज भी पता नहीं कहाँ गुम हो गया ? भीड़ ने सिर उठाकर देखा, तो सबके मुँह से एक साथ चीत्कार निकल पड़ा, "अरे! यह कोई बवंडर नहीं, मेघों का ज़बरदस्त जमावाड़ा है।"

पंडित भदेसर सोचने लगे, "अब क्या करें? हमारी सारी कोशिशें तो खटाई में पड़ने जा रही हैं। अब हमारे गोरख-धंधे का क्या होगा? हम नाहक मुहूरत देखने लगे। हमें तो सुबेरे-सुबेरे ही मनभावन को जिबह कर देना चाहिए था..."

उसने देखा कि कप्तान सिंह उसके मन में उठते भावों को बखूबी पढ़ रहे हैं। उन्होंने बहटियाते हुए अपना सिर खुजलाया और मंदिर की ओर तेज़ी से भागने लगे, लेकिन तब तक तूफान थम चुका था और उसम के बाद पानी की मोटी-मोटी बूँदें गिरने लगी थीं। मनभावन के आश्चर्य का भी ठिकाना नहीं रहा। वह सोचने लगा मनरौतियों के लिए हमारा सुच्चा पियार देख के भगवान भी टिघर गये हैं। अपनी प्रेम-साधना और प्रेम-योग की करामात देखने के लिए वह बाहर निकल आया। इसी समय बिलौटा भी झोले में सामान लिये हुए और अपने कंधे पर गड़ाँसा ताने हुए पंडित भदेसर के आगे रास्ता रोककर खड़ा हो गया। उसे देखते ही भदेसर फट पड़े, "मनहूस कहीं का, तूँ अब आ रहा है, जबकि हमारी सारी पंडिताई पर पानी फिर गया?"

बगल में खड़े मनभावन ने उनके शब्द साफ़ सुने और नफ़रत से उनके आगे मुँह का सारा खखार उगल दिया। भीड़ में शामिल होकर वह भी बरखा से अपना बदन भिगोने लगा। उसकी ख़ुशी की थाह नहीं थी, क्योंकि एक तो उसकी जान बच गयी, दूसरे, अब उसका मनरौतिया के साथ लगन होना पक्का हो गया था।

कोई तीन घंटे तक मूसलाधार बारिश होती रही। ऐसा लग रहा था कि बरखा रानी भूलवश सावन को जेठ महीना समझकर यह घोषणा कर रही हैं कि बरखा का मौसम तो अब शुरू हुआ है। मनभावन सोच रहा था कि हमारे प्यार को साकार होना था, तभी सूखा पड़ा और उसके बाद यह बरखा। अब पूरे गाँव-जवार में उसके महबूबा वाले गाने को कौन रोक सकेगा? उसे अपने बदन पर गिरती बरखा की बूँदें ऐसी लग रही थीं, जैसे मनरौतिया अपनी नरम-नरम अँगुलियाँ उसके अंग-प्रत्यंग कर नचा रही है।

बूढ़े बब्बन हज्जाम को भी इस अहसास से बेहद ख़ुशी हो रही थी कि उसके बेटे को उसकी मनचाही छोरी और उसे गुनबारी बहू मिलने वाली है। तभी उसके हाथों में न जाने कैसे इतनी ताक़त आ गयी कि वह अपने बबुआ, मनभावन को

— CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार-बार अपनी बाँहों में उठाकर तब तक बिरहा और चईता गाता रहा जब तक कि पानी की बौछार मद्धम नहीं पड़ गयी। पर, आसमान में घुमड़-उमड़ रही घनघोर घटाएँ अभी भी एकत्रित हो रही थीं। गाँव की गड़हियाँ, गड्डे-खड्डे, नाले-परनाले, कूप-तालाब सभी हड़हड़ाती बारिश के पानी से आप्लावित होते जा रहे थे। कोठियों, घरों, झुग्गी-झोंपड़ियों से ढोल के थापों पर औरतें गला फाड़कर कजरी गा रही थीं। मनभावन को लग रहा था कि यह सब उल्लास उसके मनरौतिया के साथ ब्याह के उपलक्ष्य में मनाया जा रहा है।

लेकिन, उस भीड़ में गाँव का बस एक आदमी नज़र नहीं आ रहा था। वह था—भिनगा कहार। उसे क्या पता था कि उसकी मिन्नत कभी पूरी होने वाली नहीं है! उसका पिंड उसके दुश्मन मनभावन से इतनी आसानी से नहीं छूटने वाला है। इंद्र देवता सूरज के कहर पर भारी पड़ गये।

तभी बब्बन और मनभावन जैसे नींद से जाग गये हों। मनभावन चिल्ला उठा, "अब ठाकुर कप्तानसिंह को अपना बचन निभाने की बारी आयी है।" वह बरखा की खुशी को भूलकर चिंतामग्न हो गया, क्योंकि दृश्य से ठाकुर, पंडित और भिनगा सभी ऐसे ग़ायब थे, जैसे गधे के सिर से सींग। बब्बन ने अपने बेटे की पीठ सहलाते हुए सांत्वना दी, "ठाकुर ने जबान दिया है कि ऊ पूरे छा-बधाव के साथ तुम्हारा लगन मनरौतिया से करवाएँगे। तुम इतना घबराते काहे हो?"

बब्बन अपने छोरे के कंधे पर हाथ टिकाते हुए, लगभग लँगड़ा-लँगड़ाकर भागता हुआ ठाकुर की कोठी की ओर निकल पड़ा।

ठाकुर साहब के चौकीदार खरपत मौर्या ने लाठी ठकठकाते हुए बब्बन और मनभावन को गेट पर ही रोक दिया, लेकिन मनभावन अपने बाऊ को पीछे धकेलते हुए आगे सीना तानकर खड़ा हो गया, "ठाकुर साहब ने बचन दिया था कि जदि हमारे हलाल होने से पहिले ही बरखा हो जाएगी, तो ऊ हमारा लगन मनरौतिया से करवा देंगे", उसने अपना बदन ऐंठते हुए मूछों पर ताव दिया।

खरपत ने उसकी बात पूरी होने से पहले ही अपनी लाठी उसके सीने पर रख दी। वह एक भद्दी-सी गाली देते हुए गरज उठा, "धत बकचोदा, तूँ पगला गिया है क्या?"

अपने बेटे को बगल में धकियाते हुए बब्बन तो एकदम से ताव खा गया, "सारा गाँव ई बात का साच्छी है कि डीह बाबा पर ठाकुर साहब हमारे छौने का ब्याह भिनगा की बिटिया से कराने का वादा किये थे। अब ऊ टेम आ गया है।"

"बुड़बक कहीं का, तूँ दूनो बहिराय और अन्हराय गये हो क्या? सारे गाँव को ई खबर है कि मनरौतिया ठाकुर साहब के छोरे जब्बर को भगा ले गयी है। ठाकुर साहब का गुस्सा इस समय बेकाबू है। ऊ थाने में भिनगा कहार के खिलाफ रपट लिखवाने गये हैं। एक ठो नीच जात की लड़की ने इतने बड़े खानदान की इज्जत पर बट्टा लगाया है। ई सब साजिश मनरौतिया के बाप भिनगा और उसकी माई जसमतिया ने रचा था। जब ऊ दूनों जेल की चक्की पीसेंगे, मिट्टी फोरेंगे..."

उसकी बात सुनकर तो मनभावन को गश-सा आने लगा। उसके बाप ने अगर सहारा न दिया होता, तो वह वहीं ज़मीन पर लुढ़क जाता। बब्बन ने उसके मुँह पर पानी के छींटे दिये, तो उसे होश आया।

उसके बाद उसने अपने बेटे को लाख समझाने की कोशिश की, पर वह तो गाँव के बड़े लोगों के षडयंत्र का शिकार हो चुका था। जब्बर सिंह और मनरौतिया तो दोबारा गाँव में कभी नहीं दिखे। बताया जाता है कि जब्बर ठाकुर कप्तान सिंह की शहर वाली कोठी में अभी भी रह रहा है, लेकिन उसके साथ मनरौतिया कभी नज़र नहीं आयी। हाँ, जब्बर की शादी के कई साल बाद कोठी में कभी-कभार किसी नौकरानी को देखा गया है, जिसका चेहरा-मुहरा मनरौतिया से मिलता-जुलता है। पर, उसकी सेहत इतनी ढल चुकी है कि उसे बस मनरौतिया का हमशक्ल ही कहा जा सकता है। उससे उसका नाम पूछे जाने पर वह अपना नाम भी कुछ और बताती है।

पर, आज भी ठकुराने गाँव के शिवाले की सीढ़ियों के किनारे एक बूढ़ा आदमी एक गंदी चादर बिछाये हुए दिखायी देता है। गाँव वाले उसे मजनू का खिताब पहले ही दे चुके हैं। नयी पीढ़ी के बच्चे जब उसे कंकड़-पत्थर से मार-मारकर पगला-पगला कहते हुए चिढ़ाते हैं, तो वह आसमान की ओर टकटकी लगाये हुए बड़बड़ाता है, "ई बरस बरखा जम के होई और बरखा में ही हमारा लगन होगा। मनरौतिया दुलहिन बनेगी और हम दूल्हा। सारे गाँव वाले बराती बनेंगे। ठाकुर कप्तान सिंह अपना बचन नहीं जाने देंगे.."

सी. 66, नयी पंचवटी
पवन सिनेमा के सामने
जी. टी. रोड, ग़ाज़ियाबाद (उ0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिश्ता रोज़ी से

कुमार शर्मा 'अनिल'

फ़ोलाबा का विशाल समुद्र तट। दिन भर दिहाड़ी दार मजदूर की तरह काम करता सूरज दूर क्षितिज में अब समंदर में मुँह धोने की तैयारी कर रहा है। क़ाफिले से कहीं दूर पीछे छूट गए ख़ानाबदोश की तरह अहसास कराता दहाड़ता समुद्र शांत आसमान को धमकाता-सा प्रतीत होता है। तट पर सूर्यास्त के समय वैसे भी सैलानियों की चहल-पहल कुछ ज़्यादा ही बढ़ जाती है। रेत में जगह-जगह धँसी बीयर और कोल्ड ड्रिंक्स की बोतलें, गले और कमर में हाथ डाले उन्मादित युवा जोड़े... अस्फुट आवाज़ें। पूरे वातावरण में उन्माद की एक अज़ीब सी मादकता छाई।

तट के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चमगादड़ की तरह फड़फड़ाते हुए माइकल कई चक्कर लगा आया है। दहाड़ता हुआ समंदर उसे हमेशा एक आध्यात्मिक शाँति का बोध कराता है, जबकि घर का नीरव सन्नाटा उसके मन-मस्तिष्क में अज़ीब सा शोर भर देता है। घर के हर कोने से उसे मारिया के लड़ने-झगड़ने की तीखी आवाज़ें सुनाई देती हैं या संगीत वाद्य यंत्रों से निकलती कर्कश संगीत लहरियाँ। मारिया को घर छोड़े हुए महीने से ऊपर हो चुका है और संगीत बाद्य यंत्रों को छूने अंतिम बार कब हाथ लगाया था यह भी उसे याद नहीं।

उसे एक बीयर पीने की तीव्र इच्छा हो रही है। पिछले कुछ दिनों से लगातार वह इतनी ज़्यादा शराब पी चुका है कि अब व्हिस्की के दो पैग पीने भर से उसका शरीर और मस्तिष्क दोनों काम करना बंद कर देगे। उसे तो अब यह भी याद नहीं कि पिछले कितने दिनों से उसने भरपेट खाना नहीं खाया है, बस शराब... शराब.... शराब...। यह शराब ही थी जिसकी वजह से उसका कैरियर चौपट हुआ, रोजी-रोटी छूटी और इस शराब की वजह से। भूल गया वह अपने संगीत को इस पूरी दुनिया को, अपने आप को।

उसने गंदी शर्ट और पैंट की जेबें टटोलीं। पचास का एक मुड़ा-तुड़ा नोट और एक-दो रुपये का सिक्का, उसने उन्हें कहाँ-कहाँ ख़र्च किया। उसके अनुमान के मुताबिक उसके पास ज़्यादा पैसे बचने चाहिए थे। जब काफ़ी माथा-पच्ची के बाद भी उसका हिसाब नहीं मिला तो एक झटके से वह तट के उस हिस्से में चला आया जहाँ सैलानियों की चहल-पहल कुछ कम थी। समंदर के किनारे वहाँ कुछ उभरी हुई चट्टानें थी जहाँ वह अक्सर आकर बैठता था और कभी-कभी तो पूरी रात वहीं पर गुज़ार देता था। वह महसूस कर रहा था कि बीयर का नशा और दहाड़ते समुद्र के इस शोर में उसके भीतर से आने वाली आवाज़ों का शोर कुछ हद तक दब जाएगा। उसने केन को खोलकर होठों से लगा लिया।

पिछले दो वर्षो के दौरान वह बेतहाशा पीता रहा है। मारिया और उसके संबंधों के बीच कटुता की ज़मीन पर उसे शराब की ढेरों खाली बोतलें नाचती नज़र आती हैं। मारिया, जिससे वह बेइंतहा प्यार करता था। जो उसके संगीत की प्रेरणा थी। जिससे उसने अभी मात्र दो वर्ष पूर्व ही प्रेम-विवाह किया था, वही मारिया उससे इस तरह संबंध तोड़कर चली गई जैसे दोनों में कभी कोई रिश्ता ही ना रहा हो। वह सोचता था मारिया उसे समझ नहीं पाई जबकि वास्तविकता यह थी कि मारिया उसे बहुत जल्दी समझ गई और उसने अपनी राहें अलग कर लीं। यह अलग होना भी एकदम से नहीं हुआ था। पिछले दो वर्षो में धीरे-धीरे एक-एक क़दम रखकर मारिया ने घर की दहलीज लाँघी थी। इस दौरान उसने माइकल को पूरा अवसर दिया था कि वह अपनी शराबखोरी और शराब पीने के बाद की गई अपनी ऊल-जुलूल बातों और हरकतो को छोड़कर एक मर्द की तरह उसे वापिस लौटा लाए परंतु माइकल के लिए शराब से बढ़कर कुछ नहीं था।

उस दिन भी रोज़ की तरह वही सब दुहराया गया था।

"अब बस भी करो माइकल, तंग आ चुकी हूँ मैं तुम्हारी इस शराब खोरी से। कोई लिमिट होती है हर चीज़ की। चौबीस घंटे बस शराब-शराब-शराब। काम-धंधा कुछ करते नहीं हो और 'वाइफ़' के पैसों पर ऐश करते हो। धिक्कार है तुम्हें।" मारिया ने उसके हाथ से बोतल छीन ली थी।

"ये मैं ऐश कर रहा हूँ। तू क्या सोचती है, ये शराब पीकर मैं मजे करता हूँ... यातना देता हूँ मैं अपने आपको। और ये सब तेरी और तेरी इस दुनिया की वजह से जिसमें तू रहती है। तू देखना, मैं दिखाऊँगा एक दिन साली इस दुनिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपने इसी टेलेंट के दम पर, मैं दिखाऊँगी। तब तुझे पता चलेगा कि मैं क्या हूँ और मेरा सबसे ज़्यादा फ्रस्ट्रेशन तो तेरी वजह से ही है- उसने बोतल छीन ली।

- ''साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते कि अपने नाकारापन की वजह से है।'' मारिया इधर-उधर बर्तन पटकने लगी। मारिया की इस बात से माइकल तमतमा गया,

- ''साफ़-साफ़ कहूँगा तो तू कब उसे मानेगी।''

- ''तुम नहीं कह सकते तो मैं कह देती हूँ'', मारिया शायद उस दिन फैसला करने के मूड में थी, ''मैं कह देती हूँ कि तुम्हारे इस फ्रस्ट्रेशन की वजह जोसेफ़ है क्योंकि वह हैण्डसम है, केयरिंग है, लाइफ़ में तुमसे ज़्यादा सक्सेजफुल है.. और सबसे ज़्यादा जो बात तुम्हें फ्रस्ट्रेशन देती है वह यह है कि वह मुझमें रुचि लेता है''—रोजी चीख उठी-''जलते हो तुम उससे क्योंकि तुम जानते हो कि उसके सामने तुम कुछ भी नहीं। मैं आज ही चली जाऊँगी तुम्हारे बनाए इस नरक को छोड़कर।''

माइकल को लगा था कि यह झगड़ा भी रोज की तरह ही शाँत हो जाएगा। मारिया काम पर जाने के लिए बड़बड़ाती हुई निकल गई और वह चुपचाप बैठा शराब पीता रहा। पिछले कुछ दिनों से वह अपने अंदर की घुटन और टूटन से लड़ता आ रहा था। उसे लगता, उसके अंदर दो अलग-अलग व्यक्तित्व हैं जो एक दूसरे के विरुद्ध साज़िश रचते रहते हैं और वह, मारिया या इस समाज के विरुद्ध नहीं, बल्कि खुद के विरुद्ध तैनात है। इससे पहले भी कई बार झगड़ा बढ़ जाने पर मारिया के सामने आँसुओं में अपना फ्रस्ट्रेशन बहाकर ज़िंदगी को एक नये सिरे से सँवारने का संकल्प वह कई बार ले चुका था। परंतु कुछ दिनों बाद ही उसे लगने लगता कि केवल एक अंधकार भरा भविष्य उसके सामने है और इस दमघोंटू वातावरण में जीने की सारी उमंगे, सारे सपने समाप्त हो चुके हैं। एक लंबे तनाव से गुज़रने और स्वयं से लड़ते रहने के बाद तनाव से मुक्ति पाने का एक ही तरीका उसे नज़र आता और वह बार-बार शराब की ओर लौटता। उसे लगता कि उसके व्यक्तित्व में अनेकों विरोधाभास भर गए हैं। मारिया से वह बहुत प्यार करता था। वह मारिया ही थी जो उसके निपट एकाकी जीवन में एक अकस्मात घटना की तरह उसकी प्रेरणा बन कर आई थी। उसके जीवन में मारिया के आने पर उसे लगा कि उसके जीवन को एक नया अर्थ मिल गया है। परंतु यहाँ भी भाग्य कुटिलता से उसके ऊपर मुस्करा रहा था। विवाह पूर्व मारिया के अन्य पुरुषों से रहे दोस्ताना संबंधों का पता जब उसे लगा तो उसके विश्वास को एक तीखी खरोंच लगी। यद्यपि स्थूल स्तर पर अनेक पुरुषों का साथ मारिया को मिला था परंतु सूक्ष्म स्तर पर वह नितांत अकेली थी। माइकल को शुरू-शुरू में लगता था कि मारिया की तलाश को अंतिम पड़ाव उसकी बाँहों में आकर मिल गया है, परंतु सच्चाई इसके विपरीत थी। मारिया अपने अधूरेपन को लिए पूर्ण होने के लिए बार-बार पुरुषों से जुड़ती, टूटती और फिर किसी से जुड़ती। पूर्णता की उसकी यह तलाश अभी तक पूरी नहीं हुई।

शाम को जब मारिया काम से लौटी तो वह शराब के नशे में धुत्त सोफ़े पर पसरा पड़ा था। मारिया ने जब उसे झिंझोड़ा तो उसने गुस्से में आँखें तरेर कर उसे फटकार दिया

- ''गई नहीं तू अभी तक... अपने उस जोसेफ़ के पास''

- वह लड़खड़ाते स्वर में बोला। यह केवल एक ताना था मारिया को नीचा दिखाकर उसे चुप कराने का जबकि वास्तविकता यह थी कि वह बिल्कुल भी नहीं चाहता था कि मारिया उसे इन हालातों में छोड़कर जाए जब उसके पास कोई काम-धंधा नहीं है और आर्थिक रूप से वह पूरी तरह मारिया पर निर्भर है। मारिया चुपचाप उसके सामने सोफ़े पर बैठ गई। चारों ओर एक गहरी खामोशी थी... एक अज़ीब-सी तनाव भरी खामोशी। एक लंबे समय तक मौन की पथराई नदी दोनों के बीच पसरी रही। मारिया के लिए कितने भारी थे वे पल। ऐसे पल जिनके चेहरे ऐसे वक्त हमारी पहचान में नहीं आते लेकिन बाद में पता चलता है कि वे जमीन में कितना कुछ उलट-पुलट कर चले गए।

संबंध शुरू करना एक बात है और उन्हें सम्हाल कर रखना दूसरी बात। पहले परिवार का अर्थ प्यार, एक-दूसरे की भावनाओं का सम्मान और आपसी समझदारी हुआ करता था। अपनी गृहस्थी के हित में पति-पत्नी मतभेद होने पर अपनी-अपनी समझ के साथ ही 'आपसी समझ' का एक सामान्य बिन्दु भी तलाश लिया करते थे परंतु अब ये रिश्ते मात्र सुविधा और सहूलियत के बीच उलझ कर रह गए हैं। इन रिश्तों को टिकाए, बनाए रखने की पहले जैसी तड़प अब दोनों में ही नहीं मिलती। रिश्तों में शारीरिक संतुष्टि और भौतिक सुविधाएँ ज़्यादा महत्वपूर्ण हो गई हैं... और इन दोनों के अभाव में या तो रिश्ते टूट रहे हैं... टकरा रहे हैं... या इधर-उधर भटक रहे हैं। पुरुष जब बात-बात पर एकाधिकार जताना शुरू करता है तो पुरुष के इस एकाधिकार के दायरे से बाहर निकलने की औरत की तड़प पहले शुरू होती है अपने अन्य अधिकारों को लेकर और फिर टकराव की अंतिम परिणति होती है एक पुरुष के एकाधिकार से निकलकर दूसरे पुरुष के एकाधिकार में उलझना। आज की औरत की शायद यही नियति है। मारिया की भी शायद यही नियति थी।

- ''मेरा मन अब यहाँ ठहरने को नहीं करता माइक। मेरा दम घुटता है यहाँ अकेले। एक अनजाना सा भय, एक अजीब सी घुटन और एक अजीब सा खौफ़ मैं हर पल महसूस करती हूँ'', मारिया ने रुँधे गले से कहा तो उसने आँखें खोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अवाक मारिया की कही गई बातों को सुनता रहा।

- "खौफ़... घुटन.... मुझसे?" प्रतिक्रिया में गुस्से से माइकल का चेहरा विकृत हो गया—"साफ़ क्यों नहीं कहतीं कि तुम्हारा मन अब मुझसे भर गया है और एक नये पुरुष की आवश्यकता तुम्हारे शरीर को महसूस होने लगी है", वह घटियापन पर उतर आया।

- "एक शराबी की सोच उसके अपने घटियापन तक ही सीमित रहती है... इसके आगे तुम सोच भी नहीं सकते माइकल। एक भिखारी जो तुम्हारे अंदर हमेशा हाथ फैलाये बैठा रहता है जो सिर्फ़ दूसरों के सामने हाथ फैलाना जानता है। देना नहीं। क्या दिया है तुमने मुझे बीते इन वर्षो में... यातना... अपमान और इस शरीर पर अपनी हीन भावना के ये नीले निशान। कभी प्यार के दो बोल नहीं सुने मैंने तुम्हारे मुँह से। सिर्फ़ गालियाँ या पैसे माँगने के सिवा। नफ़रत हो गई है मुझे तुमसे" मारिया भी गुस्से से तमतमा गई।

कई बार अत्यधिक प्रेम की परिणति घृणा के रूप में होती है। प्रेम का केन्द्रीय भाव विश्वास प्रेम के थोड़ा पुराना पड़ते ही अविश्वास में बदल जाता है। पति-पत्नी के रिश्तों में शक के घोड़े पर सरपट दौड़ते हुए व्यक्ति के क़दमों तले दूसरे की संवेदनाओं की हरी घास अक्सर कुचली जाती है।

- "जा रही हूँ मैं"—एक खूब गीली और अवरुद्ध सुगबुगाहट मारिया के ओठों पर काँप गई। उसने एक गहरी नज़र मारिया पर डाली। कितनी बदल गई है मारिया पिछले कुछ वर्षो में। क्या सचमुच मुझसे नफ़रत करने लगी है मारिया? उसकी आँखें भर आई, परंतु उसने रोका नहीं था मारिया को और चली गई थी मारिया।

यह सब इतनी तेज़ी से घटा था कि वह चाहकर भी मारिया को रोक नहीं पाया। उसने सोचा, शायद मारिया स्वयं उससे मुक्त होना चाह रही थी... अपने आप से लड़कर ही थी। उसने उसे जाने की अनुमति देकर उसकी मुश्किलें आसान कर दीं। पहले वह सोचता था कि उसके लिए मारिया को छोड़ना आसान नहीं होगा। कुछ दिन उसने अपने अंदर बहुत सूनापन सा महसूस किया। मारिया के चले जाने से ज़्यादा दुख उसे इस बात का था कि वह जोसेफ़ के साथ रह रही थी। जोसेफ़ को वह अच्छी तरह जानता था। वह एक धूर्त किस्म का चालबाज़ युवक था जिसे सुंदर लड़कियों के ज़िस्म से ज़्यादा उनकी भावनाओं से खेलने में मज़ा आता था।

उन दोनों के बीच का फ़ासला जोसेफ़ के आने से ही बढ़ा था। शुरू-शुरू में मारिया को लगता था कि वह माइकल से दूर जायेगी तो माइकल उसे रोकेगा, मनायेगा। रिश्तों के बीच बढ़ती खाई को दूर करने के लिए शराब से तौबा कर कोई काम- धंधा ढूँढेगा... घर में रुचि लेगा और उसका अतिरिक्त ध्यान रखेगा। परंतु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। जिस तरह से माइकल की बहुत सी बाते मारिया के समझ में नही आती थीं उसी प्रकार मारिया की बहुत सी बातें माइकल भी नहीं समझ पाता था। जोसेफ़ के चंगुल में फँसती मारिया को वह धीरे-धीरे अपने से दूर जाते देखता रहा।

संभवतः अपनी पत्नी के बारे में जानबूझकर अनजान बनने का अभिनय वह हर पति कभी ना कभी, कहीं ना कहीं अवश्य करता रहता है जो नशे का आदी होने के साथ-साथ जीवन में असफल भी हो। पत्नी को बहकने से बचाने की नैतिक ज़िम्मेदारी नशे से पैदा हुई हीन भावना में कहीं गुम हो जाती है।

उसने बीयर की खाली 'केन' को समंदर की ओर उछाल दिया। लहरों के बीच डूबती-उतराती 'केन' को वह तब तक देखता रहा जब तक कि वह पानी भर जाने से डूब नहीं गई। इन दो वर्षो में कितनी बदल गई थी मारिया। शराब तो वह विवाह से पूर्व भी पीता था। तब भी अपनी प्रतिभा को सम्मान और काम ना मिलने से उसके मन में इतना ही आक्रोश था। वह तो तब भी ऐसा ही था जब मारिया उससे प्यार करने लगी थी। तो फिर अब ऐसा क्या हो गया कि मारिया यह सोचने लगी कि इस तरह से सोचने-समझने वाले व्यक्ति के साथ कोई भी औरत समझौता नहीं कर सकती। "यह विवाह चीज ही ऐसी है" उसने सोचा, "हर किसी की प्रतिभा को दूसरे की नज़रों में एकदम बौना बना कर रख देती है।"

दूर कहीं समुद्र में किसी जहाज़ की पीली-पीली उदास बत्ती जल रही है। धुँए की तरह अँधेरे ने समंदर के ऊपर एक काली चादर तान दी है। खाली पेट पी हुई बीयर का नशा उसके दिमाग पर हावी होने लगा। वह मारिया को जितना अपने मस्तिष्क से निकालने की कोशिश करता, उतना ही वह ज़्यादा याद आती। घर का सारा सामान वह पहले ही पेट में उतार चुका था। पूरी तरह से अब बेघर हो चुका था वह। ठीक उसी तरह, जिस तरह ढाई वर्ष पहले जब वह यहाँ कोलाबा आया था तब एक गिटार था उसके पास और थी संगीत के क्षेत्र में कुछ कर गुज़रने की महत्वाकांक्षाएँ। जल्दी ही उसे एक होटल के आरकेस्ट्रा में संगीत बनाने का काम मिल गया । तब मारिया के मकान में ही वह पेइंगगेस्ट था।,

शर्ट को उतार कर उसे चट्टान पर बिछा दिया और आँखें मूँद कर लेट गया। पीने के बाद अक्सर सारी घटनाएँ एक चलचित्र की भाँति उसकी आँखों के आगे कौंध जातीं। उसे लगता कि एक ख़ानाबदोश हमेशा उसके अंदर तैयार बैठा रहता है जो बीते समय की धुंध में खो चुके उन सुखद-दुखद पलों की कतरने शराब के अंदर ढूँढता है। सिर्फ़ ढाई वर्ष पहले की ही तो बात हे। स्मृतियों के परिंदे फिर उसके मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आकाश पर कुलाँचे भरने लगे।

- "पता नहीं यह लड़का कब सुधरेगा। दिन-रात बस शराब-शराब और शराब। सूख कर काँटा हो गया है पर..।" बूढ़ी एलीसा अपने आप में ही बड़बड़ाती हुई माइकल के जूते खोलने लगी। माइकल शराब के नशे में धुत्त पलंग पर ही आकर पसर गया था। जब जूते के फीते नहीं खुले तो वह उन्हें खींचकर उतारने लगी।

- "पता नहीं कौन सा वह मनहूस दिन था जब इसे पेइंग गेस्ट रखा"—वह लगातार बोलती जा रही थीं।

- "अब चुप भी करो ममा... वह कौन सा आपकी बात सुन रहा है"- मारिया जूते उतारने में उनकी मदद करने लगी। "बस यह आखिरी महीना है। एक तारीख को ही पूरा हिसाब कर इसका सामान घर से बाहर रख दूँगी। मुझे नहीं चाहिए ऐसे पेइंग गेस्ट। एकदम बेवड़ा।"

- "पेइंग काहे का ममा... केवल गेस्ट कहो" मारिया उन्हें छेड़ते हुए बोली।

- "देख, तू मुझे गुस्सा मत दिला मारिया... सच कह रही हूँ मैं। अगले महीने से यहाँ नहीं रहेगा यह... देट्स ऑल।" एलिसा जूते एक तरफ फैंकते हुए बोली।

- "प्रॉमिस... एकदम डेड प्रॉमिस। मरे या जीए... मुझे क्या।"

मारिया हँस पड़ी "क्या आप और क्या आपका प्रॉमिस ममा। चार महीनों से तो मैं ही देख रही हूँ।

- "हँस मत बेबी"- एलिसा गुस्से से झल्ला उठी—"बस ये आखिरी बार इसको माफ़ किया है मैंने। अब अगर इसे थोड़ा बहुत होश आए तो पूछना इससे कि खाना खायेगा या नहीं" वह बड़बड़ाते हुए अंदर चली गई।

मारिया एकटक माइकल को देखती रही। उलझे लंबे बाल. ... तीखे नाक नक्श, पतला गोरा चेहरा और लंबा मजबूत शरीर।

"इसकी पानीदार आँखों मे कितने सारे सपने दिन में भी तैरते रहते हैं"—मारिया अक्सर सोचती। कई बार उसे माइकल पर प्यार भरा गुस्सा आता। यह 'फ्रस्ट्रेशन' का इलाज अगर शराब होती तो ये दुनिया कब की शराबखाना बन चुकी होती और हम इन्सान शराबी—वह अक्सर माइकल को समझाती —"आयेगा... कभी तो अच्छा वक्त आएगा माइक... थोड़ा धीरज रखो। कहीं ऐसा ना हो कि तुम्हारी यह प्रतिभा इस नशे के कारण कुंठित होकर गुमनामी के अँधेरे में डूब जाए। बस एक मौके का इंतजार करो... कभी तो आएगा।"

- "कब आयेगा मारिया... कब तक अपनी बनाई धुनों को मैं दूसरों को उनके नाम से बेचता रहूँगा। कब तक होटल के 'बार' में अपनी आत्मा को मार कर गाता रहूँगा। कब तक अपनी प्रशंसा में 'टिप' से पैसे भीख के रूप में लेता रहूँगा। कितनी मेहनत की है मैंने संगीत के लिए, गायन के लिए। अब जब मुझे लगता है कि मैं इस लायक हूँ कि संगीत को कुछ लौटा सकता हूँ तो...। क्या करूँ मैं मारिया... क्या करूँ?" वह झल्ला जाता।

"कुछ मत करो माइकल... कुछ मत करो। बस एक अच्छे अवसर का इंतजार करो। कभी तो आयेगा। और कुछ करना ही है माइकल तो फॉर गॉड सेक-इस जहर को मत पीयो" मारिया उसका हाथ अपने हाथ में ले लेती-"मेरी दोस्ती की खातिर माइकल। मैं जानती हूँ तुम्हारे अंदर असीम प्रतिभा है। वह दिन भी आएगा माइकल, जब तुम्हारे बनाए और गाए गीतों पर लोग झूमेंगे.... ढेरों अवार्डस तुम्हारे कदमों में होंगे। मूवीज़ तुम्हारे गीतों के दम पर सुपरहिट होंगी।

- "इस तरह कुछ नहीं होगा मारिया, मुझे झूठे सपने मत दिखाओ"- माइकल बिफर पड़ता- "मेरे जैसे हज़ारों इस अवसर के अभाव में अँधेरे के गर्त में डूब गए। कौन पूछता है यहाँ प्रतिभा। यहाँ सिर्फ़ नाम बिकता है नाम।"

"तुम्हारा नाम भी बिकेगा माइकल और काम भी-"मारिया साँत्वना देने लगती।"

कैरियर बनाने के उन दिनों में मानसिक यातना के उन छोटे-छोटे पड़ावों में मारिया की प्रेरणा माइकल को एक नया उत्साह देती। कब उसकी प्रेरणा से मारिया उसकी ज़िंदगी बन गई यह दोनों को ही नहीं पता चला। जब एलिसा आँटी से माइकल ने मारिया का हाथ माँगा तो उन्होंने सहर्ष इसकी इजाज़त दे दी। प्रारंभ के कुछ माह भविष्य के सपने बुनते हुए हँसी-खुशी गुज़र गए। जब आर्थिक अभावों का दौर शुरू हुआ तो एक ज़िम्मेदार पत्नी की तरह मारिया ने जोसेफ़ के उसी होटल में रिसेप्शनिस्ट की नौकरी कर ली जहाँ के आरकेस्ट्रा में माइकल गाता था।... और यहीं से मारिया की सुंदरता और उसका खुला स्वभाव माइकल के लिए एक अभिशाप बन गए। जब सब कुछ आँखों के सामने घटता है तो ज़्यादा दुःख होता है। मारिया का वेतन माइकल को दो घंटे के 'शो' से मिलने वाले पैसों से ज़्यादा था। अतः हीन भावना से ग्रस्त माइकल ने काम पर जाना बंद कर दिया। शायद जोसेफ़ भी यही चाहता था।

हवा के पाँवों से लिपटी पानी की कुछ बूँदे जब माइकल के चेहरे पर पड़ीं तो उसके विचारों का क्रम टूट गया। समुद्र की लहरों पर अँधेरे की चादर सी बिछ गई थी। उसे घुटन सी महसूस हुई। लगा कि साँस बस अब रुकने ही वाली है। घटाटोप बादलों से कुछ पल के लिए चाँद जब निकला तो उसने अनुमान लगाया कि दो बज चुके होंगे।

किस तरह से दिन वक़्त की मुंडेर पर से एक-एक करके गुज़रते रहते हैं.... मौन, बेबस से। मारिया के साथ गुज़ारे उन सुखद-दुखद दिनों से जब भी वह गुज़रता तो उसे लगता कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दिन आज भी उसकी ज़िंदगी की मुंडेर पर गीले कपड़ों की तरह वैसे के वैसे ही पड़े है।

मारिया को गए पाँच माह से ऊपर हो चुके हैं। माइकल को जब पैसों की ज़रूरत होती है तो यही 'बीच' पर कुछ फिल्मी गीत गाकर सैलानियों से कुछ पैसे मिल जाते हैं। लोग उसके गले की तारीफ करते है तो एक उदास मुस्कराहट उसके होंठों पर बिखर जाती है। शरीर सूख कर काँटा हो चुका है। डाक्टरों का मत है कि शराब उसके खून में इतनी रच बस गई है कि अब यदि उसने इसे छोड़ने की कोशिश की तो उसकी मृत्यु निश्चित है।

इस अंदर की ओर खिसकी इस चट्टान पर, जहाँ वह रात को सोता है, उसे असीम शाँति मिलती है। रोज रात जब यह शराब का नशा चील के काले पंखों की तरह उसके संपूर्ण व्यक्तित्व को अपने आगोश में नहीं ले लेता, वह अक्सर मारिया को याद करता है। उसे लगता है कि मारिया द्वारा अपमानित किये के बाद उसकी जीने की लालसा सामाप्त हो गयी है। चारों ओर दुख, निराशा और अँधेरा है।

0 0 0

कुछ दिनों बाद जब उसने सुना कि जोसेफ़ ने मारिया को छोड़ दिया है तो वह अपने आपको रोक नहीं पाया था। वह अंदर ही अंदर बेहद खुशी हुई थी। लगा जैसे उसने मारिया को मात दे दी हो। मात्र चार महीने में ही जोसेफ़ का मन मारिया से भर गया था। नशे मे धुत्त वह एलिसा आँटी के उस मकान पर पहुँच गया था जहाँ अब मारिया रह रही थी और जहाँ कभी वह पेइंग गेस्ट था।

माइकल जब मारिया के घर पहुँचा तो उसे यह जानकर अत्यंत दुख हुआ कि एलिसा आँटी की मृत्यु हो चुकी है। जोसेफ़ के साथ मारिया ने प्यार के छोटे-छोटे पत्थरों के एक-एक टुकड़े को चुनकर कल्पना का जो महल बनाया था, जो सपने सँजोए थे, वह उसी दिन भरभरा कर ढह गए थे जब मारिया ने माइकल का घर छोड़ा था। मारिया का यूँ हमेशा के लिए उसके पास चले आना जोसेफ को बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। कुछ माह तक उसके सुंदर शरीर से खेलने के बाद उसने मारिया को होटल के कमरे से ही नहीं, नौकरी से भी निकाल दिया था।

जोसेफ़ के साथ उसका रिश्ता यूँ भी कानूनन जायज नहीं था और अब तो विश्वास की वह अंतिम डोर भी टूट गई थी जिसके दम पर मारिया ने माइकल का घर छोड़ा था। वैसे भी इन बेनामी रिश्ते के साथ सारी उम्र नहीं गुजारी जा सकती थी। संपूर्ण स्नेह और सहानुभूति के साथ मारिया की आप-बीती को माइकल ने सुना। उसे मारिया पर तरस आ रहा था। मारिया कुछ भी रही हो... कितने ही पुरुष उसके जीवन में आए हों परंतु वह उसकी पहली और अंतिम मुहब्बत का अछूता ख्वाब थी जिसे वह अब भी खुली आँखों से देखता आया था। मारिया से उसे पहले प्रेम और घृणा एक साथ थी परंतु अब घृणा का स्थान सहानुभूति ने ले लिया था। वैसे भी मारिया कानूनन रूप से अब भी उसकी पत्नी थी । वह मौन भाव से मारिया को देखता रहा, सुनता रहा। ठीक वैसे ही जैसे वह समुद्र की उठती-गिरती लहरों को उस चट्टान से बैठे-बैठे देखता था।

- "घर छोड़ने के बाद भी माइकल, मुझे हमेशा लगता रहा जैसे कोई भारी बरगदी छाया हमेशा मेरे समूचेपन को दाबे-ढाँके बैठी रहती है.... हमेशा मेरी सुरक्षा में तत्पर" एक रूँआसी, अवरुद्ध फड़फड़ाहट मारिया के होंठों पर काँप गई-"क्या मुझे कभी माफ़ कर सकोगे माइकल।" माथे पर रूखे बालों की एक लट पसीने से चिपक गई थी और वह निर्निमेष माइकल को देखती रही। रुलाई का एक गोला उसके सीने में आकर कहीं अटक गया। कुछ देर वह चुपचाप बैठी रही फिर फफक-फफक कर रो उठी-"इस बेनामी रिश्ते के दाग की आखिरी निशानी मेरे वजूद में पल रही है... मुझे तुमसे कुछ नहीं चाहिए. ... पर इस नन्हे से वजूद को तुम्हारा नाम चाहिए माइक... जो इस समय मेरे ज़िस्म में साँस ले रहा है।"

माइकल हतप्रभ-सा मारिया का चेहरा देखता रह गया। मारिया से अब कोई भावनात्मक संबंध ना होने के बावजूद उसे लगा कि कहीं कुछ उसके भीतर टूट गया है। मारिया स्तब्ध, पराजित सी उसके सामने सिर झुकाए बैठी रही। न जाने वह समय का कौन-सा अंश था कि मारिया की खुली हथेली पर धीरे से उसने अपना हाथ रख दिया । दूसरा हाथ साँत्वना देने के लिए मारिया के माथे और कनपटी को सहलाते पलके ढाँपने नीचे उतरा तो लगा कि उसकी उँगलियाँ अश्रुजल से भीग गई हों। माइकल ने नन्ही बच्ची की तरह पुचकारते हुए मारिया की ठोड़ी पकड़कर उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा-"किसी भी तरह नहीं जीने दोगी तुम मुझे।"

मारिया के चेहरे पर एक उदास सी झीनी मुस्कुराहट काँप कई, जैसे धूप में देर तक झुलसने के बाद ठंडी हवा का स्पर्श मिला हो।

- "तुम चाहो तो मारिया इसे मेरा नाम दे सकती हो परंतु मेरा यहाँ लौटना अब संभव नहीं है। इन कुछ महीनों में मैने इतनी लम्बी यात्रा तय कर ली है कि अब सब कुछ बहुत पीछे छूट चुका है। मैं यदि चाहूँ तब भी यह संभव नहीं है।" माइकल उठ खड़ा हुआ।

और, माइकल लौट आया था फिर अपनी उसी दुनिया में। दिन गुज़रते गए और इन्हीं गुज़रते दिनों के बीच अचानक उसे पता चला कि मारिया नहीं रही। एक स्वस्थ बच्ची को जन्म देने के बाद उसकी मृत्यु हो गई। उसका जाना ज़रूरी था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि मारिया कानूनन अब भी उसकी पत्नी थी। वह देर तक कब्रिस्तान में सूनी आँखों से उस ताबूत पर मिट्टी गिरते देखता रहा जिसके अंदर मारिया खामोश लेटी हुई थी। सारे लोग वापिस लौट चुके थे। नीरव कब्रिस्तान में गहराती शाम की फीकी रोशनी स्याह परछाईयों में बदल रही थी।

वह देर रात तक मारिया की कब्र के पास बैठा रहा। श्मशान हो या कब्रिस्तान.... दोनों ही जीवन यात्रा के अंतिम पड़ाव है। परंतु श्मशान हमेशा उसके मन में जीवन के प्रति एक वैराग्य भाव उत्पन्न करता, जबकि कब्रिस्तान में आकर उसे लगात कि इन कब्रों में इन्सानों के मरे हुए ज़िस्म नहीं बल्कि ज़िंदा कहानियाँ दफ़न है।

उसने ब्हिस्की का क्वार्टर निकाला और एक ही साँस में खाली कर दिया। रात भर उस कब्रिस्तान में सोचों से घिरा वह खुद अपने आप से लड़ता रहा लेकिन किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका।

फिर न जाने कब नशे ने उसे अपनी गिरफ़्त में ले लिया। सुबह जब उसकी तन्द्रा टूटी तो चार बज रहे थे। कब्रिस्तान में एक अज़ीब सी वीरानी पसरी पड़ी थी जिसे चलती हुई तेज हवा की साँय-साँय और भी गहरा कर रही थी। उसे लगा कि वह सदियों से यहाँ बैठा था और ऐसे ही बैठा रहेगा।

अभी ठीक से सूरज निकला भी नहीं था कि वह उस नर्सिंग होम में पहुँच गया जहाँ नर्स ने नन्ही-सी बच्ची उसे सौंप दी। साथ ही आवश्यक हिदायतें भी दीं। हर चार-पाँच घंटे के बाद उसे दूध पिलाना था, उसके कपड़े बदलने थे।

"बच्ची का क्या नाम लिखूँ"–नर्स ने पूछा था–"या फिर...।"

"रोज़ी ! रोज़ी डिसूजा, डॉटर आफ माइकल डिसूजा"- वह लड़खड़ाते स्वर में बोला–"शी' ज माय डॉटर, माय डॉटर।

पहली रात उस नन्ही सी रोज़ी पर जितनी भारी थी उससे कहीं ज़्यादा उस पर भारी गुज़री। शराब का आदी उसका कमज़ोर शरीर रात भर पत्ते की तरह काँपता रहा। दूसरी तरफ़ रोज़ी चुप होने का नाम ही नहीं ले रही थी। यद्यपि दूध की बोतल और आवश्यक कपड़े वह उधार ले आया था। रोजी के रोने की आवाज़ सुनकर पड़ोस की एक औरत उसे दूध पिलाकर सुला गई। वह रात भर उसके चेहरे की ओर देखता हुआ जागता रहा। रोज़ी के मासूम चेहरे पर नींद में अचानक थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक मुस्कुराहट खेल जाती। मानो कह रही हो-"बुरे फँसे माइकल डिसूजा।" उस मासूम सी मुस्कराहट में वह सब कुछ भूल जाता।

माइकल के सामने अब एक नया संसार था। मारिया द्वारा अपमानित होने के बाद उसके जीने की लालसा और उमंग ही ख़त्म हो उठी थी। चारों ओर दुख, निराशा और अँधेरा ही अँधेरा था.... लेकिन अब उसे लगने लगा था कि यह अँधेरा ही अब उजाले की शक्ल लेता जा रहा है। भीतर बसी हीनता की भावना अब धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। जीवन को उसने अब नए सिरे से सोचना प्रारंभ कर दिया। रोज़ी को गोद में उठाने के बाद सम्भावित झंझाओं से दृढ़तापूर्वक सामना करने की एक अदभुत शक्ति वह अपने कमजोर शरीर में महसूस करता। उसे क्या पता था कि मासूम सी चितवन वाली यह सुंदर-सी, फूल-सी लड़की जिससे कि उसका कोई रिश्ता तक नहीं बनता उसके जीवन में इतने गहरे तक उतर जाएगी। उसकी हर अदा, हर चितवन उसके अंग-अंग में रच-बस जाएगी। उसके व्यक्तित्व की ख़ुशबू उसके जीवन में रजनीगंधा के फूलों की तरह घुल जाएगी और उसका मासूम-सा चेहरा उसके जीवन में इतना अनुशासन भर देगा कि वह वही सब करेगा जो रोज़ी चाहेगी।

रोज़ी अब दो वर्ष की हो चुकी है। लोग उसे माइकल की बेटी ही समझते हैं। माइकल अब 'बीच' पर गाने के बजाए एक होटल के आरकेस्ट्रा में गाता है। जो जानकार यह समझते थे कि शराब पीना छोड़ने पर वह मर जाएगा वे अब आश्चर्यचकित हैं कि माइकल शराब को बिल्कुल हाथ नहीं लगाता। अपनी बनाई संगीत की धुनें वह फिर से दूसरों को उनके नाम से बेचने लगा है, मात्र कुछ रूपयों की ख़ातिर... परंतु अब उसे इससे कोई फ्रस्ट्रेशन नहीं है। रोज़ी की दुनिया को विशाल बनाने के लिए उसने अपनी दुनिया को बहुत ही छोटा कर लिया है, इतना छोटा कि उसमें अब केवल इतनी ही जगह बची है कि जिसमें केवल अकेली रोज़ी ही समा सके.

.. बस।

1192 - बी सेक्टर-41 बी, चंडीगढ़

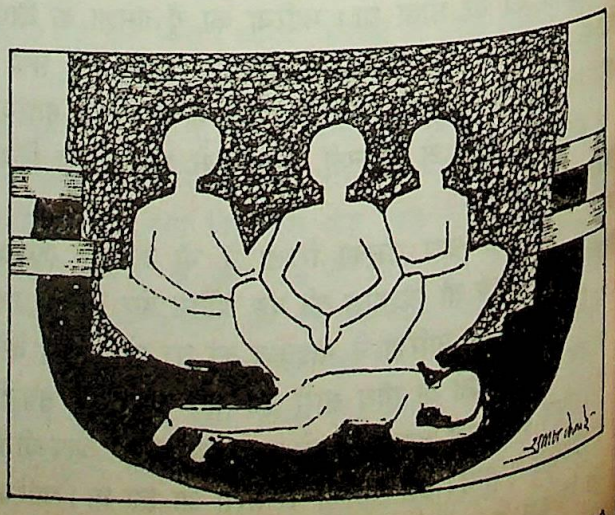

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेगार करने वाले

श्याम नरायण 'कुंदन'

"बे टे, ज़रा इधर सुनो"

शाम का समय था और मैं तेज़ क़दमों से अपने स्कूल से घर लौट रहा था कि एक अनजानी आवाज़ से चौंका।

उस समय मेरे आगे-पीछे कोई नहीं था। बायीं तरफ़ खुला मैदान था। दायीं तरफ़ दुक्का खाँ का विशाल बैठका था, जहाँ कुछ जमींदारी बूढ़े बसहटी चारपाई पर लेटे ऊँघ रहे थे। शायद वह आवाज़ बैठक से ही आयी थी, पर कौन किसे बुला रहा था, मैं अपने ख्याल में खोया होने के कारण जान न सका।

"हाँ... हाँ... इधर... मैं तुम्हें ही बुला रहा हूँ," वहाँ एक जमींदारी बूढ़ा चारपाई पर उठकर बैठ गया और मेरी तरफ़ उंगली से इशारा करते हुए लगभग चिल्लाया।

निसंदेह वे दुक्का खाँ ही थे। मैं उनको अच्छी तरह पहचानता था। वे हमारे गाँव के ही नहीं, बल्कि अरियात-करियात के सबसे प्रभावशाली व्यक्तियों में से थे। मुसलमानों के प्रतिनिधि थे और आस-पास के गाँवों के चौधरी थे। बड़े से बड़े लोग उनको सलामी ठोकते थे और अपनी फ़रियाद लेकर पुलिस के पास जाने के बजाय उनके पास ही आते थे।

मैंने देखा था कि चौधरी दुक्का खाँ जब-जब हमारे टोले की गलियों से गुज़रते, तो लोग चारपाई छोड़कर उठ जाते और तब तक सिर झुकाये खड़े रहते, जब तक कि वे उनकी आँखों से ओझल न हो जाते ।

पर, उस पल चौधरी साहब मुझे क्यों बुला रहे थे, यह मेरे लिए आश्चर्य का विषय था। मैं एक अनहोनी के भय से काँप रहा था, तो भी मैं डरते-डरते कुछ पलों में उनके पास पहुँच गया।

"बेटे तुम दक्षिण टोले के ही हो न?" जब दुक्का खाँ ने दूसरी बार भी मेरे लिए 'बेटे' शब्द का प्रयोग किया, तो मेरे भय का पारा थोड़ा नीचे उतरा। इसलिए, थोड़े निर्भीक होकर जवाब दिया—"जी हाँ।"

"किसके घर के हो?"

"श्री उदित का।"

"ओ, तो तुम उदित नारायण के बेटे हो?"

"जी"

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"दिव्य नारायण"

"किस कक्षा में पढ़ते हो?"

"पाँचवी में।"

"शाबास"

उस पल दुक्का खाँ के मुँह से अपनी शाबासी सुनकर मैं फूला नहीं समाया। बोला कुछ नहीं, बस उनको एकटक निहारता रहा। वे उस पल एक बसहटी चारपाई पर पालथी मारकर बैठे हुए थे और एक आदमी उनको पीछे से पंखा झल रहा था। मैंने देखा कि साठ की उम्र पार करने के बाद भी उनके चेहरे पर चमक थी।

"बेटे, आजकल तुम्हारे दादा जी कैसे हैं?" मुझे चुप देखकर दुक्का खाँ ने आगे पूछा।

"ठीक हैं," मैने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"जानते हो, मैं और तुम्हारे दादा जी एक ज़माने में अच्छे मित्र हुआ करते थे, लेकिन इधर कुछ वर्षों से स्वास्थ्य की समस्याओं की वजह से हमारा मिलना-जुलना काफ़ी कम हो गया है। घर जाकर अपने दादा जी से कहना कि मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

'जी, ज़रूर...'

यह सब कुछ मेरे लिए बड़ा अद्‌भुत और अनोखा था। गर्व और स्वतंत्रता क्या होती है, मैं उस दिन जाना था। इससे पहले मैं मुसलमानों की गलियों से गुज़रते हुए भय से काँपा करता था, लेकिन उस दिन के बाद मैं सीना तानकर चलने लगा।

सचमुच, पहली बार मुझे अपने तथा अपने परिवार पर गर्व हुआ था। दादा जी का तो जैसे मैं मुरीद हो गया, इसलिए मैं इसके बारे में सबसे पहले उन्हीं को बताना चाहता था। पर, घर पहुँचा, तो मुझे निराशा हाथ लगी। शायद दादा जी कुछ दिनों के लिए कहीं बाहर चले गये थे। मैंने इसका ज़िक्र अपने माँ-बाप से किया, पर उन्होंने मेरी बात को गंभीरता से नहीं लिया और हँसते हुए दूसरी तरफ़ चले गये।

ख़ैर, उस घटना के बाद मैं और दुक्का खाँ अच्छे मित्र बन गये थे। इसलिए, जब भी में उनके सामने से गुज़रता, वे मुझे एक बार आवाज़ अवश्य देते। अपने पास-पास अपनी चारपाई पर बिठाते। प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरते। दादा जी का हालचाल पूछते और कभी-कभी मुझे कुछ खाने के लिए भी देते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग एक महीने के बाद जब दादा जी घर लौटे, तो सबसे पहले मैंने उन्हें दुक्का खाँ वाली बात ही बतायी। दादा जी ने मेरी बात को बड़े ध्यान से सुना, फिर अचानक ठठाकर हँसने लगे।

इससे पहले मैंने दादा जी को इस तरह हँसते हुए कभी नहीं देखा था। मैंने सोचा, दादा जी अगर ऐसे हँस रहें हैं, तो ज़रूर कोई बड़ी बात होगी। जब उनकी हँसी रुकी, तो वे मुझे ध्यान से देखने लगे। मैंने पूछा—"दादा जी, ऐसे क्यों देख रहे हैं, बताइए न?"

"कुछ नहीं बेटे, बस इसलिए, क्योंकि तुम बहुत सुंदर हो।"

इतना कहकर दादाजी दूसरी तरफ़ जाने लगे। बात को अधूरा छोड़कर इस तरह दादा जी का जाना मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने आगे जाकर उनका रास्ता रोक लिया, बोला—"दादा जी, मैं ज़मींदारों और पठानों के बेटों की तरह सुंदर हूँ, इस बात को तो मैं भी जानता हूँ, पर दुक्का खाँ और आपकी दोस्ती वाली जो बात मैं नहीं जानता, आप उसके बारे क्यों नहीं बताते?"

मेरी ज़िद देखकर दादा जी पास ही एक बसहटी चारपाई पर बैठ गये, फिर मेरे दोनों कंधों को पकड़कर बोले—"तो तुम सुनना ही चाहते हो?"

"हाँ..."

"तो सुनो, मैं और दुक्का खाँ कभी मित्र नहीं रहे।"

"मित्र नहीं रहे... तो फिर..."

"हाँ बेटे, भला दुक्का खाँ जैसे बड़े व्यक्ति हम जैसे छोटों के मित्र कैसे हो सकते हैं? हमारी ज़िंदगी तो उनके खेतों में काम करते बीत गयी। और अमर, तुम भी नहीं पढ़ोगे-लिखोगे, तो तुम्हें भी उन्हीं के खेतों में काम करना पड़ेगा।"

उस पल मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था, इसलिए बस दादा जी के चेहरे के चढ़ते-उतरते भावों को देख रहा था। शायद दादा जी भी मेरे चेहरे के भावों को पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। वहाँ अंतराल पीढ़ी का था, लेकिन दोनों के चेहरों पर जो चिंता थी, वह एक ही रंग लिये हुए थी।

दादा जी थोड़ा रुककर फिर बोले—"बेटे, तुम्हारा आश्चर्य जायज़ है, क्योंकि तुम अभी बच्चे हो। जब तुम भी हमारी उम्र के हो जाओगे, तो सब समझ जाओगे।"

"दादा जी, आप बात को इतना घुमा-फिराकर क्यों कह रहे हैं? साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते?"

"बेटे, मैं घुमा-फिराकर नहीं बोल रहा हूँ, बल्कि बात को तुम ही नहीं समझ रहे हो। चौधरी साहब मेरे नहीं, बल्कि ठाकुर दीपनारायण के मित्र हैं। वह तो भ्रमवश उन्होंने तुम्हें तुम्हारी सुंदरता की वजह से ठाकुर दीपनारायण का नाती समझ लिया होगा, क्योंकि तुमने अपने पिता का नाम उदित नारायण बताया होगा। और वे उदित नारायण तुम्हारे पिता नहीं, बल्कि ठाकुर दीपनारायण के बेटे हैं, जो हमारे घर के सामने वाली हवेली में रहते हैं", दादा जी ने ठाकुर दीपनारायण की हवेली की तरफ़ इशारा करते हुए कहा।

दादा जी की बात सुनकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

"पर बेटे, तुममें भी एक बात है", दादा जी थोड़ा रुककर फिर बोले।

"वह क्या दादाजी?"

"वह यह कि तुम बहुत सुंदर हो।"

"बिल्कुल ठाकुर और पठानों के बेटों की ही तरह...", मैंने दादा जी की बात को आगे बढ़ाया, तो वे ठठाकर हँसने लगे।

सच्चाई जानने के बाद एक बार फिर मेरे इर्द-गिर्द एक भय का वातावरण छा गया। पहले की भाँति फिर मैं पठानों की गलियों से गुज़रते हुए डरने लगा। दुक्का खाँ की बैठक के सामने से गुज़रते हुए तो मुझे बहुत ही सावधानी बरतनी पड़ती थी। पर ऐसा कितने दिन चल सकता था? आख़िर एक दिन जब दुक्का खाँ से मेरा सामना हुआ, तो उन्होंने पूछ ही लिया—"अरे भई, कहाँ थे इतने दिन तक? आख़िर तुमने मेरा संदेशा अपने दादा जी के पास पहुँचाया कि नहीं?"

"देखिए, आप मुझे ग़लत समझ रहे हैं। मैं ठाकुर दीपनारायण का नाती नहीं हूँ..." इसके आगे अब मैं कुछ भी छिपाना नहीं चाहता था, इसलिए मैंने स्पष्ट शब्दों में कहा।

"लेकिन, तुमने तो बताया था कि तुम उदित नारायण के बेटे हो..."

"निस्संदेह मैं उदितनारायण का बेटा हूँ, लेकिन उन उदित नारायण का बेटा नहीं, जो आपके मित्र दीपनारायण के बेटे हैं, बल्कि मैं उन नारायण का बेटा हूँ, जो रघूराम के बेटे हैं।"

"अरे शकील, यह लड़का किस उदित नारायण की बात कर रहा है?" दुक्का खाँ ने अपने पास हीं खड़े एक लड़के से पूछा।

"बाबा, यह उसी उदित नारायण की बात कर रहा है, जो हमारे खेतों में बेगार करता है।"

"क्या यह उस उदित का बेटा है?"

"हाँ"

"या अल्लाह! इतनी बड़ी ग़लती हुई मुझसे। मैं इसे क्या समझता रहा और यह क्या निकला..." दुक्का खाँ सचमुच अपने किये पर पछता रहे थे।

मौक़ा देखकर मैं वहाँ से भाग निकला। भागते हुए दुक्का खाँ के मुँह से मैंने बस इतना ही सुना—"लेकिन, ये साले बेगार करने वालों के बच्चे भी अब इतने सुंदर कैसे होने लगे हैं?"

311-एम एच सी, यूनीवर्सिटी ऑफ़ हैदराबाद
गाची बाउली, हैदराबाद-500046

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम ही ठीक थे आनंद

लोकेन्द्र सिंह कोट

वो दिन थे सन् 1965 के, जब मैं और आनंद एक साथ निकले थे—मध्यप्रदेश के एक गाँव दोतरू से। मध्य प्रदेश के निर्माण को महज नौ-दस बरस हुए थे। विचारों का समान प्रवाह, आगे पढ़ने की समान ललक और बचपन की घनिष्ठता हमें हमेंशा साथ रहने पर मजबूर करती थी। शहर में हम अपना भविष्य खोजने आये थे। उच्चतर स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई हमने साथ रहते हुए शहर में ही की। गाँव से शहर आने के बदलाव की प्रक्रिया के तहत घर की याद का अवसाद हमने बहुत दिनों तक महसूस किया था, शायद इसी वजह से हम शहर को भी ठीक ढंग से अपना नहीं सके थे। समय गुज़रता गया... और इतना गुज़र गया कि उसके द्वारा उड़ायी धूल पर हम उँगलियों से अपने नाम लिख सकते थे। मगर... मेरे अनुसार आनंद अभी भी उतना ही पीछे था, उसे शहर की चमक-दमक शोर-शराबा अभी तक रास नहीं आ रहा था। वहीं मुझे शहर की सप्तरंगी दुनिया आकर्षित कर चुकी थी।

भविष्य के सपने सभी बुनते हैं... हमने भी अपनी पढ़ाई के दौरान् बुने। मगर मेरे और आनंद के सपनों में अंतर था। उसे तो मानो गाँव ही गाँव दिखायी देता था और मुझे गाँव के सपने आते ही नहीं थे, मेरे लिए तो बस शहर ही सब कुछ था। गाँव उन दिनों संक्रमण के दौर से गुज़र रहे थे। पंचवर्षीय योजनाओं के तहत विकास का क्रम तो प्रारंभ हो चुका था, परंतु फिर भी यह शैशवकाल ही था। गाँव में अभी भी अपार समस्याएँ थीं और गाँव के मुकाबले शहर कहीं अधिक तेज़ी से विकसित हो रहे थे। कई बार गाँव और शहर के इस द्वंद्व में हम दोनों मित्र बहस कर बैठते थे। प्रत्येक के अपने-अपने तर्क होते, कोई हारना नहीं चाहता, और वास्तव में उस समय यह मैच ड्रा ही रहता था। उसके विचार गांधी जी के रामराज्य पर आधारित रहते और मेरे नेहरू जी की औद्योगिक नीतियों पर।

पढ़ाई ख़त्म हुई, यानी अफ़सानों की दुनिया ख़त्म। इस दुनिया में हमने मिलकर कड़ी मेहनत की थी, तमाम विरोधाभासों के बाद भी। पहले स्कूल और फिर विश्वविद्यालय में प्रथम, द्वितीय स्थान पर ही आते रहे थे। अफ़सानों से हम हक़ीक़त पर आये तो होश उड़ चुके थे। पहले-पहल तो यथार्थ की कठोर सतहों पर चलना असंभव ही लगा, और था भी क्या आख़िर हमारे पास सिवाय चंद सपनों और डिग्रियों के।

अक्सर ऐसी परिस्थितियों में डिग्रियाँ धोखा दे जाती हैं और सपने दूर गगन के तारे। हमें पहली बार पता चल रहा था कि किताबी बातों और हक़ीक़त में कितना अंतर है। वे तो हमारे संस्कार कुछ सहारा दे गये, वरना उम्र की उस दहलीज़ पर हम लड़खड़ा ही गये थे। मात्र एक मीटर आगे ही हमें अँधेरा दिखायी देता था... हज़ारों-हज़ार स्वप्नों को तो मानो खलिहान में रखकर पकी फसल की भाँति जला दिया गया हो। एक समय तो हमें यह भी लगा कि इतना पढ़कर ही हमने ग़लती कर दी। मुंशी प्रेमचंद की कुछ पंक्तियाँ बहुत पहले पढ़ी थीं, जो उस समय कुछ ज़्यादा समझ में नहीं आयी थीं, आज हमारे सामने हक़ीक़त बनकर लटक रही थीं—"विद्यार्थी की परीक्षा जब तक नहीं होती, वह उसी की तैयारी में लगा रहता है, लेकिन परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद भावी जीवन-संग्राम की चिंता उसे हतोत्साहित कर दिया करती है। उसे अनुभव होता है कि जिन साधनों से मैंने अब तक सफलता प्राप्त की है, वे इस विस्तृत, अगम्य क्षेत्र में अनुपयुक्त हैं।" हमारी पीड़ा भी यही थी। राह चलती कुतिया की तरह हमें और हमारी शिक्षा को हर कोई यूँ लतियाता, मानो ऐसे बहुत देखे हैं उसने। उम्र का यही वह समय था, जबकि हमें कोई भी कहीं मोड़ सकता था। लेकिन; व्यवस्थाओं से पूर्णतः उम्मीद थी और बदलाव की बयार प्रारंभ भी हो चुकी थी। मुझे लगता था कि हर व्यक्ति के जीवन में ऐसा क्षण अवश्य आता है और यहीं पर हमारे पूर्व पीढ़ी के द्वारा दिये गये संस्कार अपनी भूमिका अदा करते हैं।

हमने ख़ूब प्रतियोगी परीक्षाएँ दीं, साक्षात्कार दिये... प्रारंभ में तो छोर मिल ही नहीं रहा था, लेकिन एक दिन मेहनत रंग लायी और प्रकाश फैल गया... हमें नौकरी मिल गयी, और इत्तफ़ाक देखिए कि एक ही साथ, एक ही विभाग में। हमें नौकरी मिल गयी है, इसका पूरा-पूरा विश्वास तो हमें एक माह के बाद हुआ। ख़ैर, कुछ भी हो, हमारे स्वप्न फिर दूर गगन से धरातल पर आ गये थे और उनमें से एक-दो में तो रंग भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर गया था। उसी समय आनंद को एक और जगह से नौकरी का बुलावा आया, उसका कार्यक्षेत्र प्रदेश का एक दूरस्थ गाँव था। उसने अपनी इस ओहदेदार और अधिक तनख़्वाह वाली नौकरी को ऐसे ठोकर मार दी, मानो कुछ हुआ ही न हो। गांधी-विचार से ओत-प्रोत आनंद के आगे मैंने बहुत विनती की कि तुम ग़लत कर रहे हो... क्यों स्वर्ग छोड़कर नर्क भोगना चाहते हो... उसी गाँव की धूल में क्यों जाना चाहते हो... मगर, वह अडिग था। हम जुदा हो गये... मुझे भी शहर के गहरे आकर्षण ने जकड़ रखा था। समय के चलते हम अपनी तूलिका से अपने-अपने सपनों में रंग भरने में मशगूल हो गये।

मैंने देखा, आनंद फिर से गाँव में जाकर ज़्यादा ख़ुश है ... उसने जो ठाना था, जो सिद्धांत बनाये थे, उन्हीं पर चला। ग्रामीण विकास मंत्रालय ने अब गाँवों की ओर ध्यान देना प्रारंभ कर दिया था। गाँवों में विद्युतीकरण हो रहा था, विद्युत मोटरों का प्रचलन... कुछेक जगह ट्रैक्टर... तो कृषि में मशीनीकरण को बढ़ावा मिल रहा था! खेती का जो कार्य दिनों में होता था, वह अब घंटों में बदलने लगा था और बदलाव की तस्वीर धीरे-धीरे उभर रही थी। अब तो आनंद भी लिखने लगा था—अख़बारों, पत्र-पत्रिकाओं में। मैं आदर्शों को पहली बार ज़मीन पर उतरकर काम करते हुए देख रहा था। मैं शहर-प्रेम से अभिशप्त था, फिर भी उसका कायल हुए बग़ैर नहीं रह सका।

साल के कुछ त्योहारों पर वह जब भी घर मिलता था, हमेशा गाँव की बात किया करता था और मैं शहर की। इधर शहरों में भी नये-नये प्रयासों से उन्नति की रूपरेखा रची जा रही थी। औद्योगिक विकास के लिए कई शहर चुने गये और उन्हें पर्याप्त अनुदान देकर उभारा गया। रोज़गार भी बढ़ने लगा था और रहन-सहन के स्तर पर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा था। स्वास्थ्य-सुविधाएँ बढ़ायी जाने लगी थीं और शिक्षा और साक्षरता में तो अभूतपूर्व क्रांति आ चुकी थी। देश के परिदृश्य में अब प्रदेश भी अपनी भूमिका के लिए चर्चा में आ रहा था।

समय गुज़रता गया, हम दोनों का ब्याह हुआ, बच्चे हुए और प्रदेश भर में चलाये जा रहे परिवार नियोजन कार्यक्रम का लाभ उठाते हुए अपने को दो बच्चों तक ही सीमित रखा और तात्कालीन शासन की योजना के तहत दो-दो विशेष वेतन वृद्धियाँ प्राप्त कीं। आनंद ने गाँव मे रहकर अपनी नौकरी के अलावा प्रौढ़-शिक्षा से जुड़कर आस-पास के गाँवों में साक्षरता की अलख जगायी और प्रदेश का प्रतिनिधित्व करते हुए राष्ट्रपति से राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया। यह उसकी पहली विशेष उपलब्धि थी। आनंद ने कुछ समय बाद टेरीटोरियल आर्मी ज्वाइन कर भारत-पाक युद्ध में भी अपना योगदान दिया। प्रदेश के कई वीर सिपाही इस युद्ध में शहीद हुए और देश की जीत का जश्न प्रदेश भर में मनाया गया।

आपातकाल और इसके बाद का समय थोड़ा संघर्षमय था, लेकिन हम अपनी-अपनी जगह परिवार के साथ डटे हुए थे। जीवन-संघर्ष के इस युद्ध में भी हम लगभग विजयी हुए थे। इसके बाद टी0वी0 के आगमन को हमारे शहर में तो ख़ूब सराहा गया था, परंतु गाँव अभी भी इससे दूर थे। एशियाई खेलों में प्रदेश के भी कुछ खिलाड़ियों ने हिस्सा लिया और श्रेष्ठ प्रदर्शन करते हुए राष्ट्रीय स्तर पर नाम रोशन किया। इस दौरान् बच्चे भी बड़े हो रहे थे। शिक्षा के स्तर में भी सुधार आया था। आनंद ने उस दौर में गाँव में जागरूकता अभियान के साथ हरियाली अभियान छेड़ रखा था, जिसे राज्य शासन ने बहुत प्रोत्साहन दिया और उसे अन्य जगह भी प्रारंभ करवाया। इस बार आनंद को यूनीसेफ़ ने उत्कृष्ट कार्यों के आधार पर अंतरराष्ट्रीय सम्मान से नवाज़ा, जिसके बाद राज्य शासन ने भी समाज-सेवा के क्षेत्र में अपने यहाँ का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

ग्रामीण परिस्थितियों के बावजूद आनंद की लड़की ने इस वर्ष कक्षा 12 वीं में प्रदेश में प्रथम स्थान प्राप्त किया और मानव संसाधन मंत्रालय की छात्रवृत्ति प्राप्त कर विदेश प्रस्थान कर गयी। आनंद ने उसे एक ही शर्त पर जाने दिया था कि वह लौटकर इसी देश की सेवा करेगी। उसके छोटे लड़के ने संगीत की दुनिया में अपना नाम करना प्रारंभ कर दिया था। उसका रुझान फ़िल्म उद्योग की ओर हो चुका था। दूसरी ओर, मेरे बच्चे तमाम सहूलियतों और अंग्रेज़ीदां स्कूलों में पढ़ने के बावजूद वो मुकाम हासिल नहीं कर पाये, जो आनंद के बच्चों ने विपरीत परिस्थितियों में कर दिखाया था। वास्तव में, देखा जाए तो व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियाँ ही मज़बूत और महान बनाने में मदद करती हैं और सहज परिस्थितियाँ उतना अनुकूल माहौल तैयार करने में असफल रहती हैं।

यह समय और भी नये बदलाव का था। ग्रामीण अधोसंरचना में भारी फेरबदल हो रहे थे। इधर शहरों में कंप्यूटर युग आ चुका था और उधर गाँवों में टेलीफ़ोन, टी0वी0 आ चुके थे। खेतों में लगभग सभी ओर मशीनों का साम्राज्य हो चुका था। अब कृषि भी बहुत कुछ आसान और कम समय खाने वाली हो चुकी थी। सोयाबीन एक क्रांतिकारी फ़सल के रूप में आ चुकी थी और ऊपर से नवीन कीटनाशक, उर्वरकों के प्रयोग ने प्रदेश को सोया-उत्पादन में देश में प्रथम ला दिया था।

एक समय आया, जब देश में उदारीकरण और वैश्वीकरण की लहर आयी और ग्रामीण और शहरी परिदृश्य में बदलाव और भी गहरे हुए। प्रदेश में भी विदेशी पूँजी निवेश हुआ और जनमानस की दशा और दिशा बदलने लगी। शहरों की भाँति गाँवों में भी हरित क्रांति के बाद एक नव-धनाढ्य वर्ग ने जन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। चूँकि, प्रदेश में ग्रामीण जनता का प्रतिशत ज़्यादा है, लिए उदारीकरण के बाद विदेशी कंपनियाँ अपने उपभोक्ताओं वहीं गाँव में पकड़ करती रहीं। ग्रामीण उपभोक्ता की नब्ज़ पहचानकर ये कंपनियाँ उसके हिसाब से अपने उत्पादों में बदलाव लाती रहीं। पिछले पचास सालों की आज़ादी के बाद में उन्नति के नये-नये इतिहास रचे गये।

स्वदेशी के पक्षधर आनंद को यह सब रास नहीं आ रहा जहाँ मशीनीकरण उसे बेरोज़गारी की एक वजह लगती थी, वह ग्रामीण जनता का शहरों में प्रव्रजन भी इसी की देन मानता था। मैं उसे समझता था कि उन्नति के लिए कुछ तिलांजलियाँ देनी ही होंगी। परंतु, वह अपने कहे पर अडिग इसी के चलते वह अपनी सरकारी नौकरी छोड़कर एक सहकारी संस्था खोलकर ग्रामीण समाज के उत्थान के लिए काम करने लगा। मैं उसके निर्णय से ख़ुश नहीं था।

इधर प्रदेश सरकार ने विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की दृष्टि से अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किये और में पंचायत राज संस्थाओं के गठन के पश्चात् पंचायतों के कार्य करने वाली बाधाओं को दृष्टिगत रखते हुए विधान में अनेक संशोधन किये गये, जिससे पंचायतें यथार्थ में स्वशासन की महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ बन सकें। मध्यप्रदेश देश का प्रथम राज्य बना, जिसने 73वें संविधान संशोधन के अनुरूप सर्वप्रथम पंचायत राज का विधान बनाया तथा पंचायत राज संस्थाओं हेतु निर्वाचन सम्पन्न कराये।

आनंद ने पंचायती राज के इसी उद्देश्य को-जो महात्मा गांधी ने स्वतंत्र भारत में एक मज़बूत पंचायत राज शासन-पद्धति का स्वप्न सँजोया था, जिसमें शासन-कार्य की प्रथम इकाई पंचायतें होंगी तथा उनकी कल्पना पंचायतों के शासन-व्यवस्था की धुरी के साथ ही आत्मनिर्भर, पूर्णतया स्वायत्त और स्वावलंबी होंगी थीं—आधार बनाकर कार्य किया और बहुत सफलता अर्जित की। विश्व-परिदृश्य पर प्रदेश का नाम पंचायती राज के रूप में स्थापित हुआ और कई देशों से विभिन्न प्रतिनिधिमंडल प्रदेश के इस पंचायती राज और विशेषकर उसमें महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए प्रदेश में आने लगे। आनंद ने इस दिशा के अंतर्गत सुरक्षित प्रसव-योजना, कन्यादान-योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क-योजना, प्रधानमंत्री रोजगार-योजना, वर्षा एवं फ़सल बीमा-योजना में बहुत कार्य किया और ग्रामीणों को उनके हितों के प्रति जागरूक किया। साथ-साथ में उसकी लेखन की गतिविधि भी चलती थी। इस पर आनंद को एशिया का नोबल पुरस्कार कहलाने वाला रेमन मेग्सेसे अवार्ड मिला और प्रदेश ही नहीं, विदेश में वह चर्चा का केंद्र बन गया।

दूसरी ओर, मैं स्थिर गति से अपनी यात्रा कर रहा था। मेरे बच्चे कंप्यूटर व परमाणु उर्जा विभाग में लगकर कार्यरत थे। वहीं, आनंद के बच्चे उसी की भाँति विख्यात हो चुके थे। एक संगीत के क्षेत्र का जाना-माना नाम था, तो उसकी बेटी बिल गेट्स की कंपनी माइक्रोसॉफ़्ट की भारत प्रमुख थी। कुल मिलाकर, सब कुछ हमारी उम्मीदों के अनुरूप ही था, लेकिन शहर में मैं जहाँ रहता हूँ, वह जगह भी किसी पॉश कॉलोनी के नाम से विख्यात है, जहाँ अब सब कुछ मशीनी हो गया है और प्रत्येक घर अपने तीसरे घर को नहीं पहचानता है कि वहाँ कौन रहता है? विकास की मेरी परिभाषा आज यहाँ जाकर दम-सी तोड़ रही है। यहाँ असंवेदनशीलता की तो हद ही हो जाती है। कोई कितना भी क्यों न तड़प रहा हो, कोई उसकी आवाज़ नहीं सुनता है। शाम होते ही वीरानी छा जाती है, सभी अपने-अपने घरों में समा जाते हैं। घर से दफ़्तर पहुँचते-पहुँचते शर्टें आधी तो प्रदूषण से ही काली पड़ जाती हैं। सामानों से घर ठूँसकर भर लिए जाते हैं। बासी भोजन से कई बार काम चलाना पड़ता है और दूध तो ऐसा कि... माशाअल्लाह ! पैसों से सब कुछ खरीदने का दंभ क्षण-भर की शांति नहीं दे सकता, सुकून नहीं दे सकता...। मैं तड़प उठा हूँ आनंद! मुझे लगता है, मैंने ग़लत सपने देखे और उनमें रंग भरने की कोशिश की. .. मैं भी तुम्हारे पास आना चाहता हूँ... खुले में... नैसर्गिक छाँव में.... जहाँ आज भी कई चीज़ों के अभाव के बाद भी जीवन है... मुस्कुराहट है... ताज़गी है... जीने का एक मक़सद है... और भी बहुत कुछ है। मुझे माफ़ करना आनंद... उस समय तुम सही थे.... तुम ही जीते हुए थे... मैं व्यर्थ में उस बहस को ड्रा का नाम देता रहा था।

6, एम0आई0जी0, शॉपिंग सेंटर
टीला जमालपुरा, भोपाल-462001

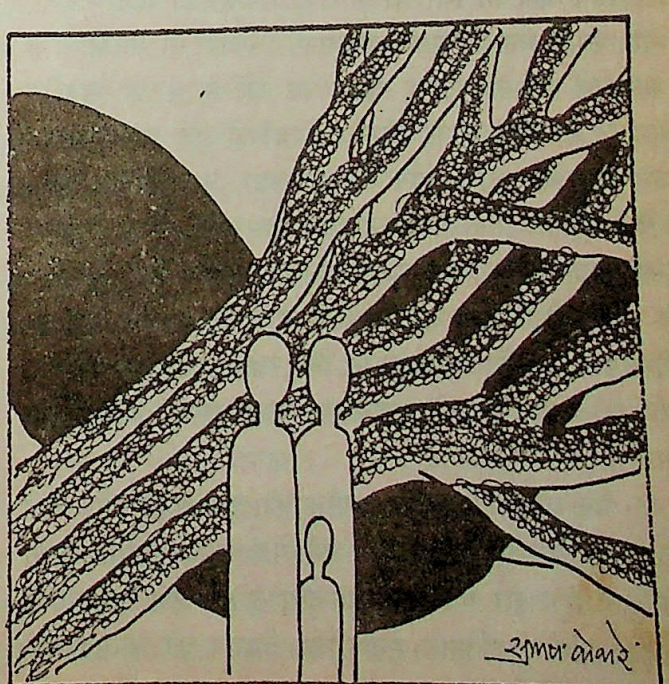

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच बीघे @ दो रुपये

ऋचा पाठक

शहर से तीस किलोमीटर दूर दुर्गम रास्ता तय कर उस ग्रामीण राजकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में पहुँचना मुझे खुद पर अत्याचार सा लगा।

मेरी यात्रा घर से शुरू होनी थी रोडवेज के लिए, वहाँ से बस पकड़ कर बारह कि. मी. दूर एक शहर में उतर कर रिक्शा पकड़ कर प्राइवेट बस स्टैंड को भागना। फिर वहाँ से बस पकड़ कर सत्रह कि. मी. दूर एक कस्बे में उतर कर डेढ़ किमी. की पदयात्रा करके उस गाँव में स्कूल तक पहुँचना। मैं तो सोचकर ही पस्त हो गयी मन से भी। समझ में नहीं आ रहा था नौकरी कैसे करूँगी?... ऊपर से स्कूल की बिल्डिंग। सुना था पहले वहाँ पशु बँधते थे... अब बच्चियाँ। मैदान के नाम पर एक छोटा सा आँगन था। वही टीचर्स का स्टाफ रूम भी था, सो बच्चों का खेलना निरूपाय सा ही था।

बरसात हुई नहीं थी। गर्मी की भीषणता शत-प्रतिशत अंक प्राप्त कर रही थी। मेरी दुःखद क्षोभ भरी मुद्रा देखकर प्रिंसीपल मैम ने अपने तरीके के ढांढस बंधाया—"यहाँ की सभी टीचर्स वैल क्वालीफाइड हैं और अनुशासित भी। आपसे भी शिकायत नही मिलनी चहिए"। हैं... पहले ही दिन धमकी, खैर! अपने मन को समझाते हुए मैं बच्चियों से मिलने चली गयी। मैं सही-सही शब्द नहीं दे पा रही हूँ, पर वे भावहीन चेहरे थे। अभाव उनके पोर-पोर से झाँकते हुए, पर ये अभाव धन के न थे। धन के बिना भी लाड़-प्यार, आत्मविश्वास, मुक्त हँसी, संस्कार और जुझारूपन दिया जा सकता है पर उनको मिले वातावरण में इन गुणों का नितांत अभाव दिख रहा था। वे 'कर्ण' थीं जिसकी जाँघ में कीड़े ने काट-काट कर घाव कर दिया पर उसने फिर भी जाँघ पर सिर रखकर सोए गुरू परशुराम की निद्रा भंग न होने दी, जबकि हम गुरुओं में कोई भी परशुराम सा रत्ती भर भी नहीं था।

मैंने क्लास में जाकर साइंस की बुक मांगी और बच्चे टुकुर-टुकुर मेरा मुँह ताकते रहे। मैंने फिर कहा— 'बच्चो, साइंस की बुक दो।' इस बार कुछ फुसफुसाहट हुई और एक लड़की ने बहुत संकोच के साथ पूछा-दीदी! विज्ञान की किताब माँग रही हैं क्या?

मैं हिल-गयी। तो शुरूआत यहाँ से करनी होगी। खैर! पढ़ाना शुरू किया। पर पूरा पीरियड पढ़ाने से पहले ही गर्मी से हालत ख़राब हो गयी।

ऐसा लग रहा था दम घुट रहा है। घबरा कर क्लास से बाहर निकल आयी। आते ही प्रिंसीपल से साबका पड़ गया-क्या हुआ?

'दीदी! बहुत सफोकेशन है अंदर तो, दम घुट रहा है। एक तो इतने छोटे और नीचे पटे कमरे ऊपर से पचास बच्चे। सोचिए, कितनी कार्बनडाईऑक्साइड इकट्ठी हो गयी होगी। हिटलर के गैस चैंबर्स लग रहे है।

प्रिंसीपल इस नयी ओवरस्मार्ट टीचर को पूरी तरह ठीक करने के मूड में आ गयी- "इन्ही गैस चैम्बर्स में ये बच्चे सालों से ज़िंदा हैं। आप तो कमरे के दरवाजे के करीब थीं, क्लास की आख़िरी सीट पर बैठी बच्ची के बारे में सोचिए।"

मैं कुछ खीझ सी गयी- मैडम! छप्पन साल हो गये देश को आज़ाद हुए। आपके स्कूल में बिजली तक तो आयी नहीं, मैं तो जान नहीं दे सकती आपके स्कूल के लिए।

-मैडम! जान तो कोई भी नहीं दे सकता, न ही आज तक किसी ने दी है स्कूल के लिए।

लेकिन क्या आपकी कोई जिम्मेदारी नही?

-तो क्या ये मेरी जिम्मेदारी है कि मैं स्कूल में बिजली लगवाऊँ?

-बात सिर्फ़ बिजली की नहीं है। मैं तो आपको एक विचार दे रही थी-चिंतन के लिए। इन बच्चों की तरफ देखो-जिस स्थिति में आप घंटा भर नहीं रह पायी इस स्थिति में ये बच्चे छह घंटे रहते है पर कभी शिकायत नहीं करते जबकि इनका हक़ है शिकायत करने का! पर नहीं... ये बेचारे तो हमारे पढ़ाने को भी हमारा अहसान समझते है क्योंकि हम आप इन्हें ये अहसास करते हैं। जरा कभी इन मजदूर बच्चियों के अंदर उतर कर देखिए, आपकी सारी शिकायतें दूर हो जाएगी।

ऊपर से खामोश रही मैं पर, अंदर से बड़बड़ाने लगी- बहुत सुनी हैं मैंने ये किताबी, आध्यात्मिक बातें। खुद कुछ करना नहीं, औरों पर सवार हो जाओ। अरे! सालों से यहाँ पड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो तो इसकी कुंठा हम पर क्यों निकाल रही हो।

टन् न... न... आज स्कूल की छुट्टी मुझे मंदिर की घंटी की तरह मधुर लग रही थी। जैसे छुटपन में लगती थी और मैं बैग उठाकर दौड़ पड़ी गेट से बाहर! पर... सड़क पर जाते ही रुक गयी। ये टेढ़े-मेढ़े रास्तें मुझे तो याद भी नहीं। मजबूरी में दूसरों का इंतजार किया और गति धीमी करके उनके साथ चलने की कोशिश करने लगी।

घर जाते ही अल्टीमेटम दे दिया-मैं इस स्कूल में ज़्यादा दिन नहीं रह सकती। जल्दी ट्रॉंसफर करवाओ।

-ठीक है...। सीट तो खाली होने दो।

0 0 0

अगले दिन उमस कुछ कम हुई, अंदर भी बाहर भी। स्टाफ और बच्चों के साथ मेलजोल बढ़ने लगा। अब ज़िंदगी और सर्विस एक रौ में चलने लगी।

सत्रांत से पहले हाईस्कूल की छात्राओं को विदाई पार्टी दी गयी। सभी दसवीं की छात्राएं ख़ूब सजी सँवरी आयीं। माँ या चाची की सबसे अच्छी साड़ी, मेले से खरीदी हल्की-फुल्की आर्टीफिशियल ज्वैलरी... पर चेहरे पर जो लुनाई, जो शर्मो हया मैंने यहाँ देखी वो दुर्लभ थी। बच्चियाँ नमस्ते करतीं और हँसती शरमाती किसी के पीछे छिप जातीं। लड़कियों का अपने सौंदर्य को लेकर शरमाना...! हाँ रोज़ गोबर कूड़ा उठाकर सिर पर रखकर गाँव के बाहर डालने वाली, खेतों में धान की लगाई करने वाली, घर का चूल्हा चौका करने वाली को एक दिन सजने को मिला होगा तो जाने कितनी देर मुट्ठी वाला दर्पण निहारा होगा।

खैर! टीचर्स ने अपनी जगह ली। कार्यक्रम शुरू हुआ- ख़ूब नाच-गाना हुआ। कुछ बच्चियों ने कुछ अलग भी किया। कार्यक्रम के अंत में एक बच्ची ने अपनी बात कही-

"बड़ी दीदी से मेरी प्रार्थना है कि हमारा स्कूल इंटर कॉलेज करवा दें वरना हम में से बहुत-सी लड़कियाँ हाईस्कूल के बाद गोबर कूड़ा करती हुई ही ब्याह दी जाएँगी...।

मैं एक हाथ में चाय पकड़े दूसरे में बिस्किट उठाती मजे में सिर हिलाती हुई रघुपति सहाय 'फिराक' की पंक्तियाँ याद करने लगी-

पढ़िए गीता, बनिए सीता, फिर इन सबमें लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता, निज घर बार बसाइये।
होंय कटीली आँखें गीली, लकड़ी सीली, तबियत ढीली
घर की सबसे बड़ी पतीली, भरकर भात पसाइये।।

अचानक मैं चौंक पड़ी। बच्ची का गला रूँध गया था। एकदम से सभी बच्चियों पर निगाह दौड़ायी तो पाया अमूमन की आँखें पनीली थीं। अब हर वक़्त मस्ती में रहने वाला मेरा मन भी उदास हो गया। क्लोजिंग सैरेमनी में प्रिंसिपल मैम ने गंभीर और अपनत्व भरी आवाज़ में कहा-"बच्चो! हम तो बहुत दिनों से कोशिश कर रहे हैं, यहाँ तक कि प्रशासन भी हमसे स्पष्टीकरण माँग रहा है कि क्षेत्र का सबसे पुराना एकमात्र विद्यालय होने के बावजूद इस विद्यालय का उच्चीकरण अब तक क्यों नहीं हुआ? लेकिन उच्चीकरण की आवश्यक शर्त है मानक के अनुसार भूमि, जो कि सरकार नहीं देती और न ही आप के गाँव के लोग दे रहे हैं। ऐसा करते हैं, एक बार फिर से हम लोग कोशिश करते हैं और आप लोग भी माता-पिता को इस कार्य में सहयोग देने के लिए प्रोत्साहित कीजिए।"

अगले ही दिन अभिभावक-शिक्षक संघ की मीटिंग का आदेश निकाला गया और तीसरे दिन मीटिंग हो गयी। प्रिंसीपल मैम ने बहुत प्रभावपूर्ण तरीके से मुद्दे को रखा। नतीजा सुखद रहा और सड़क किनारे की दो बीघा जमीन के बदले ग्राम समाज की नदी किनारे की दस बीघे जमीन देने का प्रस्ताव पास कर दिया गया जिसे स्वीकर कर ग्राम प्रधान ने अपनी जमीन देने का वादा कर दिया।

पर अगले ही दिन पता चला कि प्रधान जी की तो घर पहुँचते ही क्लास लग गयी। और बस.... प्रधान जी फेल।

कुछ समय बाद हमारी समर्पित प्रिंसीपल मैम का भी स्थानांतरण हो गया। सात साल बीत गये... जमीन की बात सिमट कर बिन्दु मात्र रह गयी पर अस्तित्वहीन न हुई थी।

इसी बीच बावनखेड़ी में शबनम-सलीम द्वारा ग्यारह पारिवारिक सदस्यों का हत्याकांड हुआ। मेरे स्कूल की सबीना और शबनम के पिता और भाई ने उन्हें लड़कों के स्कूल में पढ़ाने से मना कर दिया। पढ़ाई बंद हो जाने से सबीना, शबनम ने रो-रोकर आँखें सुजा लीं। मेरे पास रोज ही फ़ोन आते। मैंने फ़ोन पर उनके पिता को बहुत समझाया। वे हाँ जी-हाँ जी करते रहे पर नतीजा वही 'ढाक के तीन पात'। लड़कियों से शबनम की ख़राब स्थिति के बारे में सुनकर उसके घर पहुँची तो वो लिपट कर फूट-फूट रोयी। ऐसा लगता था कई दिन से सोयी न हो। मैं उसके पिता से मिलने गयी थी और वे पिछले दरवाजे से निकल गये। घर के फ़ोन से उनसे बात की तो बोले-'आप इसी स्कूल को बड़ा बनाओ। जमीन दिलाने में मै आपकी मदद करूँगा। मैंने उनके भाई से पूछा-"ये शबनम हो सकती है तो क्या आप सलीम नहीं हो सकते जो असली कातिल है। पर नतीजा सिफर'।

अब मैंने एक बार फिर कार्यवाहक प्रधानाचार्य को साथ लेकर गाँव की सभी स्थानीय प्रतिनिधियों के घर जाकर संपर्क किया। ग्राम प्रधान, वार्ड मैम्बर अमूमन महिलाएँ थीं। मैंने पूरे जोश से उनके सामने बात रखी। "सोचिए, जब ग्राम प्रधान, वार्ड मैम्बर, सांसद, मुख्यमंत्री, सत्ता दल की अध्यक्षा और राष्ट्रपति के महिला होते हुए एक कन्या विद्यालय को जमीन नहीं मिलेगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कब मिलेगी।"

पर पूर जोश पर बर्फ़ का सा ठंडा पानी पड़ जाता उनके रटे-रटाऐ शब्दों से-देखो बे आयें.... तो बात करेंगे।

उसी दिन नये जिला विद्यालय निरीक्षक विद्यालय आये। पहले तो उन्होंने कम छात्रा संख्या पर निराशा प्रकट की लेकिन फिर बाद में हमारी योजना को फलीभूत करने के लिए एस. डी.एम. से मिलकर सरकारी स्तर पर कार्यवाही शुरू करने की सलाह दी।

हम लोग पूरे जोश में एस.डी.एम. ऑफ़िस पहुँचे। काफ़ी इंतजार के बाद जब वे मिले तो उन्होंने पूरी सहृदयता के साथ हमारी बात सुनी और तुरंत नायब तहसीलदार को हमारे गाँव जाकर प्रक्रिया शुरू करने का आदेश दे दिया। इस पहली सफलता से हमारे पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। हम किलकते हुए स्कूल पहुँचे और जब बच्चों को बताया तो उनकी खुशी उछाल मारकर आकाश छू गयी।

पर... एक हफ़्ता बीत गया, कोई नहीं आया तो हम फिर एस.डी.एम. ऑफ़िस गये। इस बार न तो वे इतने सहज थे न ही हम इतने आत्मविश्वासी। उन्होंने फिर से नायब तहसीलदार को फ़ोन करके गाँव जाकर जमीनी प्रक्रिया शुरू करने को कहा। हम अपने स्वीकृत प्रार्थना पत्र को महत्वपूर्ण दस्तावेज की तरह मुट्ठी में लिए चिलचिलाती धूप में फिर से अठारह कि. मी. दूर अपने स्कूल के लिए चल दिये। पर अब बच्चों से बात करने का उत्साह न था।

सबीना, शबनम अक्सर उच्चीकरण के बारे में पूछने आ जातीं और मैं अपराध बोध से ग्रस्त उन्हें जैसे तैसे बहला देती।

फिर से हफ़्ता बीत गया। अब हमने फिर से अभिभावक-शिक्षक संघ की मीटिंग बुलायी और संघ के अध्यक्ष ने तहसील दिवस में प्रार्थना पत्र देने की जिम्मेदारी ली।

वे गये और तहसीलदार की शब्द-शक्ति लेकर वापस आ गये। बोले-उन्होंने कहा कि प्रार्थना पत्र प्रिंसीपल की तरफ़ से जि.वि.नि. को जायेगा। उनसे जिलाधिकारी को जायेगा। उनसे फिर एस.डी.एम. को आदेश आयेगा तक कार्यवाही शुरू होगी।

हमने तुरंत ही जि.वि.नि. को प्रार्थना पत्र लिखना शुरू कर दिया। अगले ही दिन मैं जि.वि.नि. जी के साथ डी.एम साहब से मिली। वे बहुत जल्दी में थे फिर भी उन्होंने बात समझ ली और आश्वासन भी दिया।

इसी बीच मैं सयुंक्त शिक्षा निदेशक जी से भी मिली। उन्होंने स्थानीय स्तर पर जमीन का मसला सुलझाने के लिए स्थानीय विधायक जी की मदद लेने का सुझाव दिया।

इधर गाँव में उस जमीन, जिसके लिए हम कोशिश कर रहे थे और कुछ ग्रामीणों की मदद से राजकीय अभिलेखों की मदद से गाटा संख्या भी पता कर ली थी, उस पर कूड़े डालने वाले परिवारों की प्रतिक्रियाएँ शुरू हो गयीं। वे सौ परिवार थे जो पचास साल से वहाँ कूड़ा डाल रहे थे। स्कूल से बस के रास्ते में उन परिवारों की महिलाओं द्वारा अपशब्दों के कूड़े बरसाये जाते। एक शिक्षित व्यक्ति ने मर्डर तक की धमकी दे दी। ग्राम प्रधान ने सार्वजनिक रूप से प्रिंसीपल को धमकी दे दी। गाँव की बेटी होने के कारण उनके सगे भाई ने भी भाईचारा दिखाते हुए चुप बैठने की धमकी दे दी। प्रिंसीपल ने मेरे हाथ जोड़ लिये। अब मुझे अकेले ही काम को आगे बढ़ाना था।

तभी ईश्वर के आशीर्वाद की झमझम बारिश हुई। प्रदेश के दो सौ चालीस राजकीय हाईस्कूल एक साथ उच्चीकृत हुए और हमारा विद्यालय भी इंटर कॉलेज हो गया। हालाँकि उससे गौशाला ओर मेरी गऊओं की भौगोलिक स्थिति में तो कोई अंतर नहीं आना था पर वे खुश होकर कह रही थीं- कोई बात नहीं दीदी! बरामदे में दो क्लास एक साथ पढ़ लिया करेंगे।

एक दिन स्कूल जाकर सुना कि कल ठेकेदार आया था और बता गया है कि इसी बिल्डिंग को गिराकर यहीं इंटर कॉलेज की नई बिल्डिंग बन जायेगी।

मुझे चक्कर आ गया... फिर से उन्हीं अमानवीय परिस्थितयों में हमेशा के लिए मेरी बच्चियाँ... कोई हवा नहीं, कोई खिड़की नहीं, कोई मैदान नहीं।

-मैं तो बाबली सी हो गयी।

घर जाकर हर संभावित जगह फ़ोन करे पूछा- अब मैं क्या करूँ?

पिता जी शिक्षा विभाग मे अधिकारी रह चुके थे। उन्होंने सलाह दी-अब सीधे डी.एम. साहब से बात की जाये। मेरे पास डी.एम. साहब का मोबाइल नंबर नहीं था, फिर कई लोगों से बात की तो एक ने उनके ऑफिस का बेसिक फ़ोन नंबर दिया। नंबर मिल गया तो फ़ोन करने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। मोबाइल हाथ में पकड़े-पकड़े हाथ काँपने लगे। बार-बार नंबर स्क्रीन पर लाती और हटा देती। काफ़ी जद्दोजहद के बाद फ़ोन किया और अटैंडेंट से डी.एम. साहब का मोबाइल नंबर लेते ही खटाक से काट दिया।

अब मुख्य परीक्षा की घड़ी थी। मोबाइल हाथ से नहीं छूट रहा था पर मैं जो खुद को बहुत निर्भीक समझ रही थी पूरी हिम्मत खो चुकी थी।

थोड़ी देर में पतिदेव भी घर में आ गये। मशीनी तौर पर चाय नाश्ता कराने के बाद जब उनसे बात की तो बोले-जब स्कूल की बिल्डिंग की जरूरत बच्चों, अभिभावकों, शिक्षा विभाग, प्रशासन किसी को नहीं है तो तुम क्यों जान देने पर तुली हो और डी.एम. को क्या छोटा-मोटा आदमी समझ रखा है जो तुम्हारी कॉल रिसीव करेंगे बात सुनेंगे और जमीन दे देंगे। हज़ारों लोग फिरते हैं उनके आगे-पीछे। ज़्यादा स्मार्ट न बनो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और... और टीचरों की तरह नौकरी करो, बस...!

मेरा मन ये मानने को तैयार नहीं था कि मैं ग़लत कर रही हूँ, लेकिन खुद को सही मानते हुए भी क़दम उठाने की हिम्मत नहीं कर पा रही थी। पलकों में रात गुजर गयी, भारी अंतर्द्वंद्व के बीच। घर में रहकर फ़ोन नहीं कर सकती इतना समझ गयी थी। हालाँकि फैक्ट्री के लिए गाड़ी स्टार्ट करते हुए इन्होंने कहा-देख लो। अगर तुम्हें लगता है कि कुछ हो सकता तो ठीक है।'' मैंने तुरंत फोन डी.एम. साहब को मिलाया पर आठ बजे थे सुबह के इसलिए शायद रिसीव नहीं हुआ। सुकून मिला।

इंटर कालेज के लिए मानक छह बीघे का है और हमारा स्कूल एक बीघे में बना था। मैंने प्रिंसीपल को कहा-आप विभाग को लिख दीजिये कि सर्वे करा लिया जाये, यदि मानक के अनुसार जमीन हो तो बिल्डिंग वहीं बनवा दी जाये वरना जमीन मिलने तक इंतजार कर लिया जाये।' उन्होंने कहा—''तुम गाँव जाकर प्रधान से बात करो, यदि वह अभी भी जमीन देने को तैयार हो जाये तो हम इस अनुमति पत्र में फेरबदल कर दें।''

मैं स्कूल की प्रार्थना के बाद दूसरी टीचर के साथ ग्राम प्रधान के घर पहुँची। ग्राम प्रधान घर पर ही थीं फिर वही बात-'देखो... वे आयें, तौ बात करेंगे।' अब मैंने सीधे कहा, आप फ़ोन पर बात करवाइये।' प्रधान पति से बात हुई। उन्होंने कहा-गाँव वाले तैयार नहीं हैं जी! आप चाहो तो नदी किनारे जंगल की जमीन दे देंगे।' मैंने फ़ोन ऑफ किया और जितनी कड़वाहट नहीं रोक पायी, वहीं छोड़ आयी।

स्कूल में आकर फिर वही अंतर्द्वंद्व...! एक बार फिर से डी.एम. साहब को फ़ोन करने को सोचा। लेकिन फिर वही जान हलक में आ जाती। फिर सोचा-कर ही लेते हैं ज़िंदगी भर के लिए यह अपराध-बोध तो नहीं रहेगा कि अगर फ़ोन कर लिया होता तो कुछ तो हो जाता।

आख़िरकार पौने बारह बजे पर फ़ोन कर ही लिया और फ़ोन उठ भी गया। 'हेलो के जबाब में मेरी मरी सी आवाज़ निकली- डी.एम. साहब से बात हो सकती हैं।''

-बोल रहा हूँ। बताइये।

एकदम धक से हुई, संभलकर बोलना शुरू किया

-सर! मैं एक अध्यापिका बोल रही हूँ।

-अपना और अपने स्कूल का नाम बताइये।

मैंने दोनों नाम बताये फिर कहा- सर! हमारे विद्यालय के उच्चीकरण के कारण नयी बिल्डिंग प्रस्तावित हुई है, लेकिन जमीन नहीं है। अगर जमीन नहीं मिली तो पुरानी बिल्डिंग तोड़कर ही नई बिल्डिंग बन जायेगी और हमारे बच्चों को न तो पैंतीस साल से आज तक कोई खेल का मैदान मिला न आगे कभी मिलेगा। हमारा स्कूल कबूतरख़ाना बनकर रह जायेगा।

आप प्रिंसीपल हैं?

नहीं, सर ! मैं तो सहायक अध्यापिका हूँ। प्रिंसीपल जिला कार्यालय गयी हुई हैं और चार्ज़ मुझको सौंप गयी हैं।

-ठीक है! मैं दो बजे तक आपके तहसील कार्यालय में पहुँच रहा हूँ। आप भी अपना प्रतिनिधिमंडल लेकर पहुँच जाइये।

-लेकिन सर! हम केवल दो टीचर्स ही हैं।

-ठीक है। दो ही आ जाइये और एस.डी.एम साहब से कह दीजिये कि मैंने आपको बुलाया है वरना मिलना मुश्किल हो जायेगा।

-ठीक है, सर! थैंक यू सर। नमस्ते सर।

उनकी आवाज में गूँज थी, गमक थी और सौहार्द भी। अब काम करना आसान हो गया। बिजली की सी तेजी आ गयी पाँवो में भी और मस्तिष्क में भी। मैं कनिष्ठतम थी किंतु दूसरी टीचर मुझ पर भरोसा करती थीं। मैंने उन्हें सारी बात बताकर स्कूल की छुट्टी करवा दी कि बरसात आने वाली है और गांव में बरसात के बाद निकलना मुश्किल हो जाता है।

हमारे पैरों मे जैसे पहिये लग गये। डेढ़ किलोमीटर का रास्ता दस मिनट में तय करके फिर बस पकड़ के हम एक घंटे में एस.डी.एम. साहब के घर के दरवाजे पर पहुँच गये। जैसे ही वो बाहर निकले, नमस्ते करके उन्हें बताया कि डी. एम. साहब ने हमें आपके मार्फत उनसे मिलने को कहा है।

-ठीक है। आप लोग गैस्ट हाउस पहुंचिये। वे दो बजे वहीं पहुँचेंगे।

और वे गाड़ी में बैठकर चले गये। हम लोग भी गैस्ट हाउस के कॉरिडोर में पहुँच कर अपना प्रार्थना पत्र लिखने लगे। इसी बीच हमने प्रिंसीपल को फ़ोन कर दिया और वे भी वहाँ पहुँच गयीं। तभी एस.डी.एम. साहब ने हमसे पूछा-किस सिलसिले में मिलना है आपको साहब से? हमने बताया तो उन्होंने हमसे कहा-साहब को आने में एक डेढ़ घंटा है। तब तक आप कहीं घूम आइये। हमने कहा- 'सर'! हमारे पास कोई जगह नहीं है जहाँ हम समय बिता सकें। तो भी उन्होंनें अपनी बात दोहरायी और मजबूरन हम सड़क पर आ गये और सामने बनी लोक-निर्माण विभाग भवन के मैदान की और बढ़ने लगे कि कुछ पत्रकार आये और हमारी बात पूछकर बोले—''आपको बाहर नहीं आना चाहिए था अब आपको अंदर जाने को नहीं मिलेगा।''

अब हम मेन गेट पर ही खड़े हो गये। डी.एम. साहब का काफिला आया-गेट खुला गाड़ियाँ अंदर गयीं और गेट बंद। हम तीनों गेट पर ही रह गये।

काफी देर हो गयी तो हमने गेटमैन से कहा तो उसने कहा—मैंने एस.डी.एम. साहब से पूछा लेकिन उन्होंने मना कर दिया। दूसरी दीदी को गुस्सा आया बोली-'हम कोई असामाजिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्व हैं या आतंकवादी हैं जो अंदर नहीं जा सकते, शिक्षिकाएँ हैं।' पर वो बेचारा भी मजबूर था। थोड़ी देर में एक सुरक्षा अधिकारी आया और हमसे वहाँ होने की वजह पूछी। फिर कहा –'यहाँ आप लोग नहीं मिल पायेंगे साहब से। कल ऑफिस आइये'।

अब तक सूरज भी डूबने लगा था और बाकी दोनों की हिम्मत भी। वे कहने लगी- अब चलते हैं। इतने लोग कह रहे हैं सो सच ही होगा। वैसे भी दिन छिप रहा है। घर पर लोग परेशान हो रहे होंगे।' मुझे भी अपने नन्हें बच्चे याद आने लगे लेकिन फिर सोचा-अब की डूबे तो रसातल में...। सो मैंने कहा–मैं तो नहीं जाऊँगी' और अपने मोबाइल पर डी.एम. साहब को मैसेज टाइप किया कि हम लोग अंदर आने के लिए उनकी अनुमति का इंतजार कर रहे हैं और भेज दिया। थोड़ी देर में डी.एम. साहब का संदेशवाहक आया कि साहब मीटिंग के बाद आपसे बात करेंगे।

हम लोग खुश हो गये।

थोड़ी देर में वही संदेशवाहक फिर आया और हमें साहब से मिलने के लिये कहा। हम लोग लगभग दौड़ते से हुए से कॉरिडोर में पहुँचे तो डी.एम. साहब मीटिंग हॉल से निकलकर आ रहे थे। मैंने जल्दी से आगे बढ़कर प्रार्थना पत्र उनके हाथ में दिया। उन्होंने एस. डी. एम. साहब से कहा -'इनका स्कूल बहुत पुराना है। नयी बिल्डिंग के लिए जमीन की जरूरत है। दिलवा दीजिये।'

एस.डी.एम. साहब ने तहसीलदार साहब को आगे कर दिया। वे बोले-सर! मैंने इन्हें बताया था कि प्रधानाचार्य द्वारा जि. वि.नि. को प्रार्थना पत्र दिया जायेगा, उनके द्वारा आपको, फिर आप हमें आदेश देंगे तो प्रक्रिया शुरू हो जायेगी। इस पर डी.एम. साहब ने कहा-'तो कह तो रहा हूँ, कहिए तो इसी काग़ज़ पर आदेश कर देता हूँ और उन्होंने उसी काग़ज़ पर जमीन देने के आदेश कर दिये।

हमारे तो पंख लग गये। अब वही पत्रकार हमसे प्रकरण के बारे में पूछ रहे थे और नाम वगैरह नोट करने लगे। अगले दिन अख़बार में चित्र सहित ख़बर छपी।

लेकिन सब कुछ इतना आसान न था। कुछ दिन तक कोई हलचल नहीं लगी तो मैंने फिर डी.एम. साहब को याद दिलाया तो उन्होंने अगले दिन तहसील दिवस के समय पर याद दिलाने को कहा। अब हलचल शुरू हो गयी। मैं जब भी महसूस करती कि कई दिन हो गये हैं तो एक बार उन्हें याद दिला देती।

आख़िरकार एक दिन वह आया कि जब मैं स्कूल पहुँची तो पता चला कि तहसीलदार साहब आये थे और ढाई दिन में उस जमीन को खाली करने का आदेश दे गये है। मैंने तुरंत डी.एम. साहब को धन्यवाद का फ़ोन किया और उन्हें वर्तमान वस्तु स्थिति से अवगत कराया कि गाँव वाले विधायक जी से मिलने गये हैं। इस प्रकरण में सबीना और शबनम के पिता ने विधायक जी के सामने विद्यालय की पैरवी कर अपना वादा निभाया। विधायक जी ने भी विद्यालय का साथ दिया।

प्रिंसीपल मैम दुखी बैठी थीं क्योंकि उनके भाई-भतीजों ने उन पर बहुत लानत मलामत भेजी थी। एक दिन वह भी आया जब स्कूल में जमीन के कागज आ गये। मेरा सिर डी.एम. साहब के प्रति कृतज्ञता से झुक गया। मेरे मोबाइल से टैरिफ बाउचर के चलते दो रुपये ख़र्च हुए थे और मेरे स्कूल को पाँच बीघा जमीन मिल गयी थी।

अगले दिन जब मैं स्कूल की प्रार्थना में पहुँची तो देखा सभी बच्चियों के मुँह से खुशी फूट पड़ रही थी। मैंने जमीन मिलने की आधिकारिक घोषणा प्रिंसीपल मैम से करवायी तो तालियों से आसमान गूँज गया। थोड़ी देर बाद कक्षा दस की एक छात्रा ने मुझसे कहा- दीदी! भावना आपसे छिपती फिर रही है।' भावना क्लास की टॉपर लड़की थी। मैंने भावना को आवाज़ दी तो वो फिर हँसती हुई भाग गयी। कुछ समय बाद मैं उसकी क्लास के पिछले गेट से किसी काम से गयी तो आगे की तरफ़ आते हुए भावना के सिर पर अख़बार की हल्की सी चपत लगाते हुए पूछा–क्यों? क्यों भाग रही थी मुझसे? आज मैं इतनी डरावनी लग रही हूँ क्या?'' और उसने कुर्सी पर बैठे-बैठे दोनों बाँहों से मेरी दाहिनी बाँह जकड़ ली और सिर नीचा कर लिया। मैंने उसे आवाज़ दी पर कोई आवाज़ नहीं आयी। उसकी साँस तेज चल रही थीं और आँखें मुझे दिख नहीं रही थीं। धीरे-धीरे सभी लड़कियाँ खामोश हो गयीं। आज भी उनकी आँखें पनीली थीं पर गुण बदल गया था। जब मेरी भी आँखें गीली हो गयीं तो मैंने उसकी पीठ सहलायी और कहा–'फिर मिलते हैं।' और मैं क्लास से बाहर आ गयी। अब सबीना और शबनम मेरे विद्यालय में ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ रही हैं।

पर आज अख़बार में एक ख़बर का हैडिंग, देखकर ऐसा लगा कि जैसे विद्यालय में पैतीस साल बाद लगी बिजली का कनैक्शन कट गया हो। हैडिंग था- जिलाधिकारी श्री अमित कुमार घोष स्थानांतरित।

मैं अख़बार हाथ में लिये उस जमीन को देख रही हूँ और सोच रही हूँ, क्या इस विद्यालय के चलते वे कभी यहाँ के बच्चों की यादों से जा पाएँगे?

11/7 गुरू नानक कालौनी
दीपक सिनेमा के सामने
काशीपुर-244713

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही शायद ठीक था

प्रकाश कांत

उस दिन अचानक मिल गयी थी। अचानक इसलिए कि वहाँ मिलने की कभी कल्पना तक नहीं की थी और न ही इसकी कभी कोई संभावना ही रही थी! इतनी दूर और ऐसी जगह उधर का कोई क्यों आने-जाने लगा! कोई नहीं आता था। खुद का वहाँ होना भी शुरू-शुरू में ख़ासा अजीब, बेहूदा और असुविधाजनक लगता रहा था। अक्सर अपने से ही पूछता रहता था कि इतनी दूर और ऐसी जगह क्यों हूँ? क़तई नहीं होना चाहिए! तब तय लगता था कि इधर रहूँगा नहीं। मौका मिलते ही निकल लूँगा। उधर ही कुछ छोटा-मोटा कर लूँगा। लेकिन, नहीं हो सका ऐसा, सारी कोशिशों के बाद भी! शादी-ब्याह इधर ही हो गया। एक कच्चा-पक्का मकान बना लिया और फिर इस तरह धीरे-धीरे इधर का ही हो गया। इस तरह से कि कुछ साल बाद उस तरफ़ जाना भी छूट गया। उधर के दोस्त-यार छूट गये। जान-पहचाने छूट गयीं। उधर जो कुछ भी अपना था, वह कम होता चला गया। यूँ, भीतर से खाली होता गया। खालीपन में जाकर भला क्या मिलता? और फिर, इधर का लदा-फँदापन भी धीरे-धीरे बढ़ता गया, जिसने कहीं और के होने का अहसास भी ख़त्म जैसा कर दिया।

अब वह मिली थी। वहीं। अचानक। मैं एकदम से पहचान नहीं पाया था। उसके वहाँ होने की कोई संभावना न होने से ! जबकि देखते ही पहचान लेना चाहिए था, क्योंकि वह वैसी ही थी। काफ़ी कुछ वैसी की वैसी। कुछेक मामूली बदलावों के बावजूद। देखते ही लगा कि वही है, लेकिन चूँकि वहाँ होने की कतई उम्मीद नहीं थी, इसलिए अगले ही पल ख़्याल आया कि वह नहीं है! और यह हर तरह से अच्छा ही था। क्योंकि, अगर होती तो मैं अपने उस हाल और हुलिये में उसके सामने कैसे हो सकता होता? यह एक सुविधाजनक ख़्याल था, राहत बख़्श भी, जो जल्दी निकल गया; क्योंकि मैंने देखा, सामने वही थी। मेरे सारे न चाहने के बावजूद! और उसने मुझे पहचान भी लिया था। यह थोड़ा-सा आश्चर्यजनक भी था, क्योंकि मुझे यही लगता था कि मैं अब उतनी आसानी से पहचाना नहीं जा सकता, किसी पुराने परिचित या मिलने-जुलने वाले से! पहले वाली जान-पहचान के निशानात अब बचे नहीं थे। पता नहीं उसे कैसे मिल गये? किस तरह से पहचान लिया और आवाज़ दी? पहली बार अनसुना करने पर दोबारा... ज़्यादा ज़ोर से..

मैं रुका। उसके वहाँ होने को लेकर हैरानी ज़ाहिर की।

"वे ट्रान्सफ़र होकर आजकल यहीं आ गये हैं! दो-तीन महीनों से यहीं हूँ!" उसका जवाब था। मुस्कुराहट में लिपटा हुआ। उसके पति एक्साइज़ में थे, किसी बड़ी पोस्ट पर। शादी के वक़्त ही पोस्ट बड़ी थी, इतने साल बाद तो और बड़ी हो गयी होगी। यही सब देख-समझकर शादी हुई थी। उन दिनों मैं जैसे-तैसे अपनी पढ़ाई निपटाकर काम की तलाश में था। हालत वही थी, जो किसी भी बेरोज़गार शख़्स की होती है। उसकी शादी के दिन मैं शहर में नहीं था। एक इन्टरव्यू के सिलसिले में बाहर गया हुआ था। लौटकर आया, तब तक वह विदा होकर जा चुका थी। उसके बाद दो-तीन बार ऐसे ही चलते-चलाते मिलना हुआ।

"आप यहाँ?" उसका सवाल था।

"मैं तो बरसों से इधर ही हूँ, बल्कि यहीं का होकर रह गया हूँ', मैं हँसा था। एक उजाड़ हँसी। उसने इतनी दूर और बेहद पिछड़ी जगह पर मेरे होने को लेकर थोड़ी-सी हैरानी ज़ाहिर की, जो शायद कोई भी करता। उसने मेरे काम-धाम वगैरह के बारे में पूछा। मुझे परेशानी और कुछ-कुछ असुविधा जैसी महसूस हुई। गोलमोल-सा जवाब दिया था।

"आप घर आइए। सिविल लाइन्स! परिवार सहित आइए!" निमंत्रण परिवार सहित... इसे पता है कि मेरा परिवार है! क्या हम सब खुफिया तौर पर एक -दूसरे की इस तरह ज़रूरी ख़बरें रखते हैं! या कि ऐसी ख़बरें अपने-आप हो जाती हैं, क्योंकि वे आम ज़िंदगी का हिस्सा हुआ करती हैं। नौकरी, शादी, बच्चे! इसमें नया या रहस्य जैसा क्या है, जिसके लिए जासूसी या खुफियागिरी करवानी पड़े। बहरहाल, उसने निमंत्रण दिया था अपने यहाँ परिवार सहित आने का।

"ज़रूर!" मेरा जवाब था, शिष्टाचार-भरा । वह मुस्कुराई। गाड़ी में बैठी। चल दी। मैं घर लौट आया। ख़ूब सारी थकान लिये हुए। वह थकान साथ लाये सामान को ढोने की नहीं थी, हालाँकि सामान काफ़ी था। लेकिन, उतना तो अक्सर लाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता था!

पस्ती-सी महसूस हुई थी। पत्नी अपना काम कर रही थी। बैठे-बैठे कुछ देर उसे देखता रहा। फिर उठकर चाय बना ली । पत्नी को भी दे दी। कुछ देर उसके पास बैठा रहा। चुप। वह अपना काम निपटाती रही। हमेशा जैसी। फिर वक़्त देखा। छह बज रहे थे। नमू को कोचिंग से लाने का वक़्त हो रहा था। उठ आया था।

सिविल लाइन्स! उसका पता। सिविल लाइन्स शहर के दूसरी तरफ़ थी। आम तौर पर उस तरफ़ आने का काम नहीं पड़ता था। उस तरफ़ जो कुछेक नयी कॉलोनियाँ बनी थीं, उनमें किसी से जान-पहचान नहीं थी। सिविल लाइन्स में जान-पहचान होने का तो सवाल ही नहीं था।

बहरहाल, वह अब इसी शहर में थी और इससे मुझे खुश होना चाहिए था। काफ़ी अच्छा-सा महसूस करना चाहिए था। वैसे, इधर बरसों से इस तरह का कभी ख़्याल नहीं आया था। एक ही शहर! वह और मैं! बरसों पहले की तरह ! अजीब -सा महसूस हो रहा था। पता नहीं, ठीक-ठीक कैसा? परेशानी, असुविधा, असहजता या और कुछ! उस दिन बीच बाज़ार अचानक मिल जाने पर क़ायदे से मुझे उसे अपने यहाँ आने का निमंत्रण देना चाहिए था, जबकि उसने दिया। मैं तो पूरे वक़्त अपनी असहजता से बाहर ही नहीं निकल पाया। उसके चले जाने के बाद कहीं सहज हो पाया, वह भी पूरी तरह से नहीं। घर पहुँचने के बाद भी देर तक हल्की-सी असहजता बनी रही।

ख़ैर, वह अब इसी शहर में थी। एक तरह से मेरे शहर में! उजाड़ और पिछड़े शहर में! और अपने यहाँ बुलाया हुआ था पत्नी सहित। लगा कि यह एक रस्मी निमंत्रण है। मिलने पर रस्मी तौर इस तरह कहना ही पड़ता है। कहना मुझे चाहिए था, उसने कह दिया। मैंने बात को आयी-गयी मान लेना चाहा। लेकिन, कुछ दिन बाद जब वह फिर मिली, तब उसने अपना निमंत्रण दोहराया। वह कहीं से लौट रही थी। गाड़ी में होने से ध्यान उसी का गया था। गाड़ी रुकवाई थी। गाड़ी से उसे उतरते देख मैं फिर से असहज हो उठा था।

"आप आये नहीं ?" सवाल था। मुझे एकदम से कोई नहीं सूझा—जवाब या बहाना।

"नहीं-नहीं... दरअसल, ऐसे ही थोड़ा-सा काम में फँसा रहा... अब आता हूँ।" मैंने एक ही साँस में कह डाला। काफ़ी कुछ घिच-पिच-सा... हड़बड़ाहट में! जिसका एक तरह से कोई मतलब नहीं था।

"अकेले नहीं उन्हे भी साथ लाइएगा! अभी यहीं है न?"

"हाँ, हैं न! उसे भी ले आऊँगा।"

"तो फिर कल शाम को आ जाइए। मैं इंतज़ार करूँगी," उसने तय कर दिया था।

अब मैं पूरी तरह से फँस चुका था। मेरे सामने उसका तय किया हुआ 'कल' था और इस 'कल' से बच निकलने का उस वक़्त मेरे सामने कोई रास्ता नहीं था। तत्काल ऐसा कोई बहाना नहीं मिला था, जिसके ज़रिये इस 'कल' से बचा जा सकता। बहरहाल, 'हाँ' कहना पड़ा। वह चली गयी। उस वक़्त उसके चेहरे पर मुस्कुराहट थी। पहले जैसी।

घर एक अजीब-सी बेचैनी के साथ लौटा, जबकि अगले दिन उसके यहाँ जाना था। क़ायदे से तो इस बात को लेकर काफ़ी उत्तेजित और उत्साहित होना चाहिए था। इतने सालों बाद उसके यहाँ! भले ही इस बीच सब कुछ बदल गया हो—भीतर-बाहर, आस-पास हर तरह से! इसके बावजूद जाना तो उसी के यहाँ था। बरसों पहले तो उसके यहाँ जाने के बहाने ढूँढता रहता था। छोटा-बड़ा कैसा भी और ऐसा कुछ होता कि कोई न कोई बहाना मिल भी जाता था। ऐसा कोई कारण, जो उसे सच्चा लगे, बहाना नहीं। यही होता भी जाता। कुछ देर बाद फिर से आ सकने की संभावना तलाशता लौट आता। यह सिलसिला काफ़ी दिनों तक चला। और, अब फिर उसके यहाँ जाना था। किसी झूठे-सच्चे बहाने से नहीं, बल्कि उसी के बुलाने पर। उन दिनों बुलाने की कभी ज़रूरत पड़ी नहीं ज़रूरत पड़ने के पहले ही मैं किसी बहाने की काग़ज़ वाली नाँव पर बैठकर हाज़िर हो जाता था। कभी भी और कहीं भी डूब जाने का ख़तरा उठाकर! अब काग़ज़ की नाँव नहीं थी, बल्कि उसने लाने के लिए अपनी गाड़ी भेजने की बात कही थी, जिसके लिए मैंने ही मना कर दिया था।

'जाना चाहिए या नहीं' जैसे किसी संकल्प-विकल्प की कोई स्थिति अब सामने नहीं थी। उसने तय कर दिया था। मैंने मंज़ूर कर लिया था। इन्कार करने की कोई गुंजाइश न रहने के चलते। और अब अगले दिन जाना था... पत्नी के साथ! जिसे कि अब तक इस बारे में बताया नहीं था। बहुत निरीह-सी लगी थी। अपने ही खंडहर के किसी भीतरी हिस्से जैसी औरत! जो पता नहीं कब चुपचाप मेरे अपने खंडहर का भी हिस्सा हो गयी थी। अब से पहले कभी उस पर इस तरह से ध्यान नहीं गया था। अब गया। चलेगी वह ? वैसे इधर हम लोग कहीं साथ-साथ कम ही आते-जाते थे, या कि जा पाते थे। ज़्यादातर अकेले जाते थें! ज़्यादातर जगहों पर जाने का काम मैं ही निपटा आता था। कहीं-कहीं वह अकेले हो आती थी। इस तरह अकेले आने-जाने की आदत हो गयी थी। लेकिन,अब दोनों को साथ जाना था। आग्रह था उसका! अगर अकेला गया, तो शायद बुरा मान जाए। ज़ोर देकर कहा भी तो था कि उन्हें भी साथ लाएँ। न ले जाने पर यही समझेगी कि मैं पत्नी को शायद उससे मिलवाना नहीं चाहता।

बहरहाल, खाना खाते वक़्त पत्नी को बताया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरे साथ पढ़ी हुई एक लड़की आजकल अपने पति के साथ यहीं आयी हुई है। उसके पति एक्साइज़ में ऑफ़ीसर हैं। आज वह बाज़ार में मिली थी। उसने कल हम दोनों को अपने घर बुलाया है," बहुत नपे-तुले और सीधे-साधे ढंग से कहा गया वाक्य।

"मैं क्या करूँगी जाकर। आप हो आइए," उसका बिल्कुल प्रत्याशित-सा जवाब, जिससे मुझे राहत महसूस होनी चाहिए थी, लेकिन नहीं हुई। अगर यह कहीं बाहर गयी हुई होती या बीमार-वीमार जैसी होती, तो एक बार इसे साथ न ले जाना चल भी जाता। लेकिन, ऐसा कुछ भी नहीं था। अकेले जाने पर यह तो बता नहीं सकता था कि वह क्या करती साथ आकर।

"उसने बहुत ज़ोर देकर तुम्हें भी साथ लाने को कहा है," मैंने हल्का-सा दबाव बनाया।

"ठीक है," उसकी निस्संग-सी सहमति । यूँ भी वह अपनी किसी बात पर ज़्यादा ज़ोर नहीं देती, न किसी तरह की बहस ही करती है। शुरू में लगता था कि ऐसा वह बेमन से करती है, लेकिन बाद में धीर-धीरे समझ में आया कि यह उसका स्वभाव ही है। एक ख़ास तरह की तटस्थता या असंलग्नता के चलते हर चीज़ का स्वीकार! जिसे गफ़लत में अपनी कोई निजी राय न होना समझा जा सकता था।

बहरहाल, साथ चलने की बात उसने मान ली थी। मेरे लिए इसमें राहत महसूस करने जैसा कुछ नहीं था। यह ज़रूर कहना चाहा था कि थोड़ी ठीक-ठाक चले! हालाँकि इस 'ठीक-ठाक' का ठीक-ठीक क्या मतलब हो सकता है, यह मुझे भी साफ़ नहीं था। यह तो होगा नहीं कि बाहर जाना है, तो साड़ी नहीं बदलेगी, घर में पहनी साड़ी पहनकर ही चल देगी. चोटी वगैरह भी करेगी... इससे ज़्यादा और क्या करेगी या कि क्या किया जा सकता है?... हमेशा इतना ही करती है। सो कुछ कहा नहीं। कहना अटपटा लगा। ज़रूरी-सा लगने के बावजूद। किसी अफ़सर के यहाँ जाना या फिर 'उसके' यहाँ जाना तो कोई कारण नहीं हुआ। हालाँकि इस 'उस' के बारे में भी तो उसे कहाँ बताया था! इतना-भर बताया था कि बहुत पहले साथ में पढ़ी हुई एक लड़की के यहाँ जाना है!... बस!

तो कुछ नहीं कहा। अपने बारे में भी तय कर लिया कि जैसा हमेशा कहीं आता-जाता हूँ, वैसा ही जाऊँगा। यूँ भी जिस हाल में वह देख ही चुकी है, उस देखचुकेपन में अब कुछ नया जोड़-घटाव करने से क्या हासिल हो जाएगा?

अगले दिन दाढ़ी ज़रूर बना ली थी, हालाँकि हमेशा की तरह एकाध दिन बिना बनाये भी रह सकता था। रोज़ बनाना इधर अर्से से बंद था। अक्सर दो-एक दिन में ही बनाया करता था। जाना शाम को था, लेकिन असहजता सवेरे से घिरने लगी थी। बरसों बाद उसके यहाँ जाना था। उसके, जो इसी शहर में थी। बरसों बाद हम दोनों लोग एक ही शहर में थे। उसी शहर में, जिसमें मैं इधर बरसों से था। काफ़ी पहले हम दोनों का एक ही शहर हुआ करता था। दोनों के एडमिशन या परीक्षा फ़ॉर्म में पते के कॉलम में एक ही शहर का नाम पड़ता था। अब फिर से एक ही शहर था, लेकिन अब एडमिशन या परीक्षा के फ़ॉर्म नहीं भरे जाने थे। वह कई परीक्षाओं के मनचाहे रिजल्ट पहले ही हासिल कर चुकी थी, जबकि मेरे तो कई जगह एडमिशन तक नहीं हो पाये थे। रिजेक्ट या कैंसिल हो चुका था। सो अब फिर से शहर एक ही था और एक लंबे अर्से बाद था। इतने लंबे अर्से के गुज़र जाने का अब तक तो अहसास नहीं हुआ था, अब हो रहा था। एक चुभन के साथ। यह चुभन वक़्त के इस तरह से बीत जाने की थी या और किसी चीज़ की... पता नहीं।

उसके यहाँ शाम को जाना था। इस बीच लगभग तीन चौथाई दिन पड़ा था, जिसमें वह सब करना था, जो रोज़ करना होता था। किया भी था। करते वक़्त इस बात का अहसास भी बना रहा था कि शाम को उसके यहाँ जाना है। पत्नी के साथ। उसके बुलावे पर। इसी के साथ ऐसा कुछ घट जाने की उम्मीद करता रहा, जिसके कारण जाना टल जाए, हालाँकि जानता था कि ऐसा कुछ हो भी गया, तो जाने से इस बार-भर बच जाऊँगा। वह बाद में फिर बुलाएगी। तब तो जाना ही पड़ेगा। हर बार तो बहाने से काम नहीं चल सकता। किसी न किसी दिन तो जाना ही पड़ेगा। बेहतर है कि अभी और इस बार ही में जाने का काम निपटा लिया जाए। एक बार हो आए, फिर छुट्टी।

ख़ैर! शाम को घर लौटने पर पत्नी को चलने के लिए तैयार पाया। यह उसकी आदत थी। आमतौर पर उसे दूसरी बार किसी चीज़ के लिए कहना नहीं पड़ता था। मैंने पूरी थकान के साथ ख़ुद को जाने के लिए तैयार किया और पत्नी को लेकर निकला। रास्ते भर चुपाचाप चलता रहा। पत्नी जब भी साथ चलती थी, अमूमन इसी तरह चुप रहती थी। कहीं भी आते-जाते वह घर की ही तरह आमतौर पर कम बोलती थी। जब कि बहुत कुछ पूछा जा सकता था। जैसेकि वह और मैं कितने साल साथ पढ़े? वह उस शहर में कितने साल रही? उसके परिवार के बारे में और इसी तरह की कुछ और चीज़ें। उनकी बातें, जिन्हें सुविधाजनक ढंग से कहा-बताया जा सकता था। लेकिन, मैं भी चुप रहा। अपनी तरफ़ से कोई बात नहीं की। इतना भर बताया था कि जिनके यहाँ जा रहे हैं, वे डिस्ट्रिक्ट रेंक के अफ़सर हैं। पता नहीं, उसने चलते-चलते सुनी गयी इस सूचना को कितना ग्रहण किया था। ऐसी चीज़ों को लेकर उसके भीतरी संसार को आमतौर पर जानना नहीं हो पाता था। मैं ज़्यादा कोशिश भी नहीं करता था, इसीलिए अक्सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता था कि उसके भीतर ऐसा बहुत सारा इकट्ठा होता गया है, जो 'बिन जाना' ही रहता जा रहा था। कभी-कभी सोचता था कि जब वह अपने भीतर से इस तरह के 'बिन जाने हुओं से' एकदम ठस्सम ठस्स भर जाएगी तब क्या होगा? बाद वाला, 'बिन जाना हुआ' वह कहाँ रखेगी।

अब तक हम सिविल लाइन्स वाले एरिया में दाखिल हो चुके थे। पुराने टाइप के बंगले। पीले पुते हुए। क़रीब-क़रीब एक जैसे। बाहर नेम प्लेट! ओहदे के साथ। डी.वाई.एस.पी.। डी.एफ़.ओ.। ए.डी.एम.। और भी कुछ इसी तरह। उसका बंगला ढूँढने में दिक़्क़त नहीं हुई। बड़े लोगों के साथ एक ख़ास बात यह भी होती है कि उनके घर ज़्यादा ढूँढने नहीं पड़ते, आसानी से मिल जाते हैं। ऐसा कुछ होता है कि आप उनके यहाँ जाने के लिए निकलते हैं और भीतर घुसने की हिम्मत जुटा रहे होते हैं! जबकि आम आदमी के साथ यह होता है कि पूरा पता ठीक से मालूम होने पर भी कई जगह पूछना पड़ता है। फिर भी कभी-कभी घर एकदम नहीं मिलता, बताने वाला इसकी जगह उसके घर का रास्ता बता देता है। पुरानी बस्तियों के गली-कूचों में तो और मुश्किल रहती है। कब इस गली से दूसरी गली में पहुँच गये, पता ही नहीं चलता। तब कोई अहसास कराता है, कि जिसका घर ढूँढा जा रहा है उसका घर तो दो गली पीछे छोड़ आये। मैं अपने घर आने वालों की इस तरह की फ़जीहत कई दफ़ा देख चुका था। लोग काफ़ी घूमने-भटकने के बाद पहुँच पाये थे। पहुँचने के बाद उन्होंने मुश्किल से घर मिलने की शिकायत भी की थी।

बहरहाल, हम ठीक उसके बंगले के गेट पर थे। उसने गार्ड को शायद बता रखा था, इसलिए नाम बताते ही वह फ़ौरन अंदर ले गया। थोड़े से अदब के साथ। पत्नी के लिए ऐसी जगह जाने का यह पहला मौका था। मैं भी कहाँ हमेशा या अक्सर जाता रहा था। शायद दो-एक बार ही जाने का मौका आया हो। वह भी दस-पाँच मिनट के लिए। शब्दशः खड़े-खड़े गया और आ गया। ख़ैर, मेरी असहजता बढ़ गयी थी। पत्नी सामान्य-सहज थी।

उसने भीतर से हमें देख लिया था, सो तेज़ी से बाहर आयी। हमें लेने।

"आइए", वह हाथ जोड़कर मुस्कुरा रही थी।

"यह मेरी पत्नी हैं और ये है अन्विता जी," मैंने दोनों का परिचय करवाया। पत्नी ने एक छोटी-सी मुस्कुराहट के साथ उसके नमस्कार का जवाब दिया। अगले पल हम लोग ड्राइंगरूम में थे। एक चमकदार अफ़सरी आभिजात्य के बीच। इस बीच कुछ देर के लिए उसके दोनों बच्चे वहाँ आये थे। गब्दुल्ले। ख़ूबसूरत। टी0 वी0 और फिल्मों में दिखाते हैं, वैसे। नाम भी उतने ही ख़ूबसूरत। कुछ लोगों पर शायद सब कुछ होता है। मुझे अपने बच्चे याद आ रहे थे, जिनमें से एक की इस बार सप्लीमेंट्री आयी थी।

"उन्हें अचानक टूर पर जाना पड़ा, वरना आपसे मिलकर उन्हें काफ़ी ख़ुशी होती", उसने अपने पति के बारे मे बताया। मैं मुस्कुराया, हालाँकि, मुस्कुराना शायद ज़रूरी नहीं था। सिर्फ़ गर्दन हिलायी जा सकती थी। हल्के से। लेकिन अब क्या, मुस्कुरा तो चुका ही था। पत्नी सहज बनी हुई थी। कम-से-कम ऊपर से तो यही लग रहा था। अचानक ध्यान गया कि मैं पैर हिला रहा हूँ। कहीं पढ़ा था कि पैर हिलाना बेचैनी की निशानी तो है ही, अशिष्टता भी है। बहरहाल, पैर हिलाना फ़ौरन बंद कर दिया। पैर चिपका लिये। इस बीच चाय-नाश्ता आ गया। काफ़ी चीज़ें थी। एक तरह से पूरी सेंटर टेबल भर गयी थी। कई तरह के बिस्किट। फल। दूसरी चीज़ें। मैंने देखा कि ऐसे कामों के लिए वहाँ शायद दो चपरासी हैं, जिन्हें वह बीच-बीच में आदेश दे रही थी। कुछ काम वे अपने आप कर रहे थे। चाय-नाश्ते के बीच वह मुझसे और पत्नी से बातें करती रही। उसकी बातों में एक तरह का संतुलन था। पत्नी से बात करते वक़्त एक ख़ास तरह की गरिमा नज़र आ रही थी। मैं एक अजीब- से छोटेपन से घिरता और जकड़ता जा रहा था। इस तरह का कोई छोटापन भीतर कहीं रहा है। इसका अहसास इससे पहले कभी नहीं हुआ था। आज हुआ, तो परेशान होता रहा।

क़रीब घंटे-भर बाद निकल पाये थे।

"हमारे यहाँ आइए कभी," पत्नी ने कहा था उससे। शिष्टाचारवश। हालाँकि, मैं नहीं चाहता था कि वह आये और वह सब देखे जिसमें मैं रहता हूँ। इसके बावजूद वैसा भी ज़रूरी था। पता नहीं मैं कह पाता या नहीं! पत्नी ने कह दिया।

वह गेट तक छोड़ने आयी। हम दोनों से नमस्कार किया।

सड़क पर आकर काफ़ी राहत महसूस हुई थी। राहत और हल्कापन। पीछे पलटकर नहीं देखा था। पता नहीं वह कितनी देर हमें जाते हुए देखती रही हो।

अच्छा ही हुआ था, जो उसने उस वक़्त शादी के मेरे प्रस्ताव से इन्कार कर दिया था। मैंने बहुत शिद्दत से महसूस किया।

155, एल0आई0जी, मुखर्जी नगर, देवास, (म0 प्र0) 455001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन टांग का सोफ़ा

विनोद पांडेय

मैं हमेशा से कोई ऐसा ही थोड़े था। मेरी भी आन-बान-शान थी। इसी घर में मेरा जन्म हुआ। बड़े अरमान से बाबू जी मेरे लिए ख़ास सागौन की लकड़ी लाये। शहर के सबसे मशहूर बढ़ई बुलाये। उन्होंने बैठक की पैमाइश की। पैमाने के मुताबिक मुझे आकार मिला। सहारनपुर के नामवर कारीगरों ने अपनी नक्काशी कला के सारे हुनर मेरी पुश्त, हत्थों और पैरों को सजाने में झोंक डाले। बबुआइन जी ने सुंदर-सुंदर फूल-बूटों वाली कशीदाकारी वाले अपने हाथों बनाये गिलाफ़ चढ़ी मोटी-मोटी मुलायम गद्दियों को मुझ पर सेट किया था। उस टाइम अपने बाबू जी और बबुआइन जी की आँखों से फूटती खुशी देख मैं खुद को धन्य मानता था।

क्या शान क्या रूप निखरा था मेरा। जो भी देखता, दीदे फाड़कर देखता। मैं था ही ऐसा। मेरे बाबू जी की हनक थी। उनके मुहल्ले-टोले का पहला सोफ़ा, बाबू जी बड़े फ़ख्र के साथ आने-जाने वालों के बीच मेरी शान में कसीदे पढ़ा करते। देखने वालों की आँखों में हसरतें तैरने लगतीं। मैं भी इलाके के बड़े-बड़े खानदानों को अपने आगोश में बिठाकर अपना जीवन सफल समझता। बाबू जी घर रहते; तो मुझ पर पसरे रहते। उनके दफ़्तर जाते ही बबुआइन जी, सारे घर की चाबियाँ खूँट में बाँधें, मुझ पर बैठ हुकुम चलाया करती थीं। धीरे-धीरे दिन बीतते गये। बाबू जी की नयी फ़सल तैयार होती गयी। मेरे ऊपर बाबू जी की पहलौठी औलाद ने अपनी पहली चिरक मारी थी। मैं उसके गू-मूत में गँधाकर अपने आपको धन्य मानता। बाबू जी बड़े मुन्ना को लिये मुझ पर पसरे खुद को धन्य समझते। क्या दिन थे वो भी। दिन भर मुन्ना जी अपने हम-उम्र साथियों-संगियों के साथ मेरे इस हत्थे से उस हत्थे तक कूद-कूद कर मेरी मजबूती का इम्तिहान लिया करते।

मैं भी उनका मन रखने के लिए उनके उछलने-कूदने पर तनकर रहता था। उन्हें कभी लगने भी नहीं दिया कि उनके अचानक कूद पड़ने से मुझे कैसी चोट लगती थी। वो कूदा करते—बाबू-बबुआइन जी गद्गद् होते। लगने पर भी मैं मुन्ना जी की हर चोट हँस-हँसकर सहा करता।

मेरे देखते-देखते मुन्ना जी बड़े होते गये, उधर मेरे बाबू जी बुढ़ाते गये। मुझे अच्छा लगता था, जब मुन्ना जी के जवानी की तरफ़ दौड़ते संगी मेरी सुंदरता, मेरी नक़्क़ाशी, मेरे रूप-रंग और मेरी मज़बूती की तारीफ़ करते। बाबू जी के सौंदर्य-बोध की सराहना सुन-सुनकर मैं फूलकर कुप्पा हो जाया करता था।

अब मुन्ना जी पढ़-लिख कर अफ़सर हो गये थे। उधर मेरे बाबू जी रिटायर हो गये थे। अब तो वो और मैं दोनों ही अपने-अपने पुराने दिन याद किया करते। मेरे बायें हत्थे पर मसनद टिकाये, अधलेटे बाबू जी मुन्ना को बड़े और मैं उनको छोटे होते देखा करता। चूँकि, मुन्ना जी बड़े हो गये थे, बाबू जी से भी बड़े अफसर बन चुके थे, सो उनकी शादी वाले आने लगे। मैं भी घर के दूसरे मेंबरों की तरह मुन्ना जी की शादी को लेकर उत्साहित था। बारात सजी, घोड़ी चढ़े, नांच-गाना हुआ और खाना-पीना हुआ और फिर धूमधाम के साथ मुन्ना जी की सुंदर-सुंदर सी मुन्नाइन आ गयी मुन्नाइन के घरवालों ने बहुत कुछ दिया था। उसी दिये-दवाये में से ही एक था—मेरा दुश्मन। रैक्सीन-मढ़ा आजकल वाले ट्रेन्ड का लोहे के खोखले पाइपों पर टिका, घुन-खायी आम की लकड़ी के बने डिब्बे वाला, यूज़ एंड थ्रो टाइप दिखावटी और सजावटी सोफ़ा!

बैठक के बाहर से ही अपने लिए जगह तलाशती उसकी आँखें सीधे मुझसे टकरायीं। पहली बार ऐसा लगा कि मेरा प्रतिद्वंद्वी मेरे वजूद को चुनौती दे रहा है। मैंने सोचा कि मैं तो

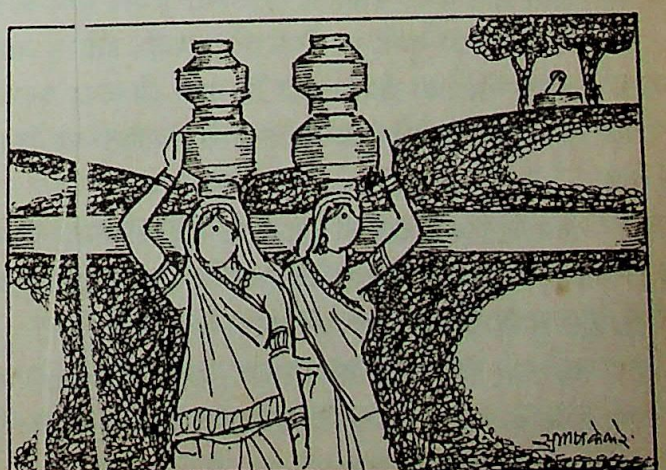

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू और बबुआइन जी की ख़ास फ़रमाइश पर बना, असली सागौन की लकड़ी का मज़बूत कद-काठी वाला, पीढी-दर-पीढ़ी साथ निभाने वाला, कमरे की ख़ास पैमाइश के मुताबिक बना बाबू जी की बैठक की आन-बान शान वाला सोफ़ा!

सो भला किसकी मजाल, जो बाबू जी की सबसे प्रिय–ज़िंदगी में अपनी कमाई से बनी पहली बड़ी संपत्ति यानी मुझे–कौन इधर-उधर कर सकता है। मैं वाकई मुगालते में था।

मैं भूल गया था कि मेरे बाबू जी अब घर के मालिक नहीं रहे थे। कमान मुन्ना जी, सॉरी साहब जी, के हाथ थी। साहब जी, यानी अपने वो मुन्ना जी, जिन्हें रुई के फाहों में लिपटाकर दाई ने मुझ पर टिके बाबू जी को थमाया था। बाबू जी की गोद में मुन्ना जी और मेरी गोद में बैठे बाबू जी दोनों ही उस पल गिलगिले थे।

मुन्ना जी ने इशारा किया। उनके सरकारी नौकर-चाकर एक साथ आततायी की तरह मेरी तरफ़ लपके। कई ने मिल-मिल कर मुझे इधर-उधर करना चाहा। आजकल के लपूझन्ना टाइप जवानों में कहाँ दम कि मुझे हिलाएँ। उनके फिचकुर निकलते देख मैं आँखें नीची किये मुस्कुरा रहा था।

उधर अपने कारिंदों की मर्दानगी को ललकारती मुन्ना जी की आवाज़ आयी–"बड़े बाबू कैसे काहिल लोगों की फ़ौज बनायी है आपने? एक ज़रा-सा सोफ़ा इनसे नहीं हट पा रहा–शेम, शेम।"

बड़े बाबू चिंघाड़ते हुए अपने आदमियों की ओर टूट पड़े। उन्होंने ख़ुद मेरे पाँव पकड़े और ललकारा–"ज़ोर लगा के हइय्या" और एक झटके के साथ मुझे उखाड़ फेंका। मैं असहाय था। बाबू जी आँसू भरी निगाहों से मेरी दशा-दुर्दशा अपनी हत्थेवाली पाट लगी कुर्सी पर बैठे देखा किये। वे भी असहाय थे। इस उठापटक में मेरी एक टाँग तो वहीं टूटकर छूट गयी। बाक़ी तीनों चरमरा गयीं। शायद इसी को कहते होंगे–चूल-चूल हिल जाना। ख़ैर, मुन्ना जी के इशारे पर मुझे बगल वाले छोटे कमरे में किसी तरह अटा दिया। चौथे कोने को टांग की जगह गुम्मों पर टिका दिया गया। इसी में बाबू जी के पुराने टी0वी0 सहित उनकी रैक स्टूल की जगह बनायी गयी और बाबू जी को मुझ पर फिर से स्थापित कर दिया गया।

दिन जाते पता थोड़े ही लगता है! बाबू जी ज़्यादा जर्जर हो गये हैं, मेरी भी चरमराहट बढ़ गयी है। उधर घर में मुन्ना जी छोटे मुन्ना जी के आने की ख़ुशी में मगन हैं।

एक बार फिर जगह की किल्लत आन पड़ती है। जगह यानी बैठक के साथ वाला कमरा यानी तीन टाँग का सोफ़ा–मैं और बिना टाँग के मेरे असहाय बाबू जी।

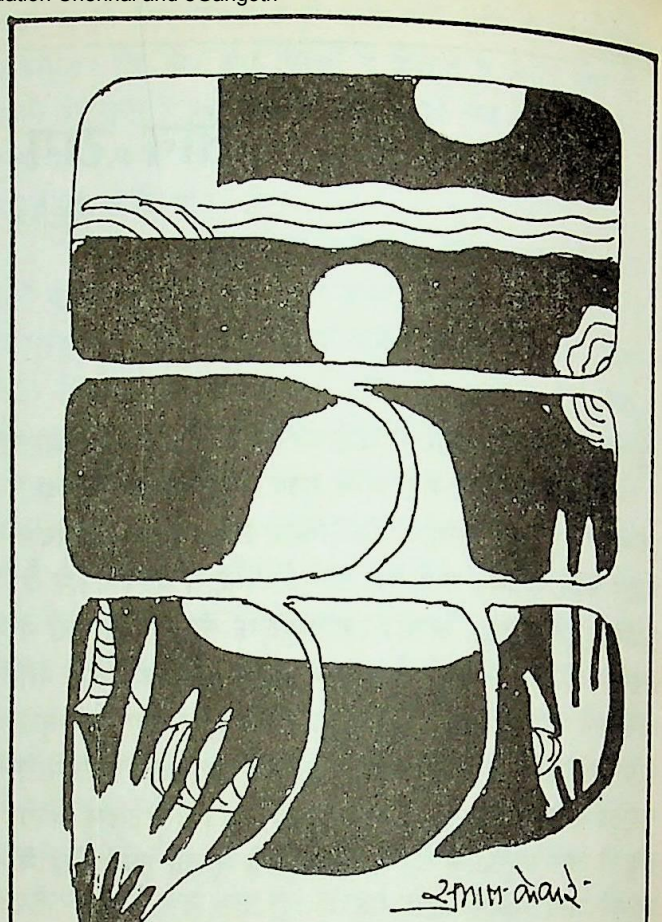

एक बार फिर उखाड़-पछाड़ चली। इस बार कमान मुन्नाइन जी के हाथ थी। फेंटा बाँधे वो ख़ुद मैदान में थीं। पहले ही फ़रमान में मुझे मेरे बाबू जी सहित पिछवाड़े बरामदे में बेरहमी से पटक दिया गया। फिर से मुझे गुम्मों पर टिकाया गया, बाबू जी को मुझ पर बिना बिछावन लिटाया गया।

किसी ने कहा भी कि नंगा सोफ़ा पीठ में चुभेगा। मुन्नाइन जी ने दूरंदेशी दिखायी। बाबू जी पड़े-पड़े हगते-मूतते हैं, सोफ़े की जालियों से नीचे बह जाया करेगा। बार-बार उठाओ-बैठाओ शिट!

बस, तभी से मैं और मेरे बाबू जी पिछवाड़े बरामदे में पड़े कबाड़ यानी बाबू जी का खटारा स्कूटर, मुन्ना जी की ट्राई साइकिल से लेकर पुराने कूलरों की बॉडी, रद्दी के ढेर को निरीह बने निहारा करते हैं। बाबू जी की खाँसी और उनके हिलने-डुलने से मेरी चरमराहट सुन मुन्नाइन जी मोबाइल पर इत्मीनान से मुन्ना जी को मुतमईन करती है–'डोन्ट वरी' पिछवाड़े बुड्ढा खाँसता!! ही, ही, ही!...

39/17 मेस्टन रोड, कानपुर- 208001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँधुआ

शिव अवतार पाल

लक्खू पर काम करने का जुनून इस क़दर सवार रहता था कि घंटों बिना रुके-थके काम पूरा करके ही दम लेता था। वह अपना गाँव और घर-द्वार छोड़कर आया ही इसलिए था कि ढेर सारा पैसा कमाये, इतना कि माँ को रोटी के लिए फिर कभी दूसरों के खेत पर मजदूरी न करनी पड़े। लेकिन, आज उसके हाथ खाल घिसने में रोज़ की तरह नहीं चल रहे थे। विद्युत गति से चलते हाथों को जैसे ज़ंग लग गयी थी। वह चाहकर भी काम में मन नहीं लगा पा रहा था। उसकी नज़र फिसल कर बार-बार उस मरियल-से लड़के के चेहरे पर जाकर ठहर जाती थी, जो आज सुबह ही काम पर आया था। उस लड़के से उसका कोई संबंध नहीं था। वह उसे जानता तक नहीं था। यहाँ तक कि उसे ज़िंदगी में आज पहली बार देखा था, फिर भी लड़के के प्रति उसके मन में आत्मीयता उभर रही थी। उसका मन हो रहा था कि उसे लेकर कहीं एकांत में जाकर बैठ जाए और उससे संबंधित हर जानकारी हासिल कर ले। उससे पूछे कि इस शहर में और भी बहुत-सी जगह हैं, जहाँ उसे रोज़ी-रोटी मिल सकती थी, फिर यहाँ मरने क्यों आया? लड़का उसके भीतर घुमड़ते द्वंद्व से अनभिज्ञ खाल घिसने में लगा था। उसके धीरे-धीरे चलते हाथ काँप रहे थे और जब-तब नाक और होंठ सिकोड़कर ऊपर की ओर उठा लेता था। पहला दिन होने की वजह से वह असहज था या खाल से उठती बदबू उसे ऐसा करने पर मजबूर कर देती थी। लक्खू झंझावात में ऐसा उलझा कि दोपहर ढलने तक चौथाई काम भी पूरा न कर सका। इसका अहसास उसे मालिक के पैर की ज़ोरदार ठोकर से हुआ। वह गुलाटें खाता दूर जाकर गिरा था। गालियों की तीख़ी बौछार के साथ मालिक गुर्राया, "बहुत चर्बी चढ़ती जा रही है और काम के नाम पर दम निकलता है। आज से तुझे एक टेम खाना मिलेगा साले... हरामी," उसके मुँह से थूक के छींटों के साथ फिर अपशब्दों का भभूका निकला, "जल्दी-जल्दी हाथ हिला। वक़्त पर डिलीवरी न हुई, तो खाल खींच लूँगा।"

उसकी धमकी को एक कान से सुन दूसरी ओर से निकालता हुआ वह अपनी जगह आकर ऐसे बैठ गया, जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। गाली-गलौज और मारपीट का वह इतना अभ्यस्त हो चुका था कि यह सब उसे सामान्य प्रक्रिया लगती थी। अब वह इस तरह हाथ चला रहा था, मानो किसी ने मालिक के शरीर से खाल उतारकर उसके सामने रख दी हो। हर बार की तरह इस बार भी उसने दुआ की कि अगले जन्म में मालिक भैंसा बने और वह कसाई, ताकि अपने हाथ से उसकी गर्दन काटकर उसकी खाल के जूते पहन सके। यह उसकी हार्दिक इच्छा थी, जो दिन-ब-दिन बलवती होती जा रही थी। माँ कहती थी कि ईश्वर सबके मन की बात सुनता है। माँ का कहा झूठ नहीं हो सकता, यही सोचकर वह खुश हो लेता था, क्योंकि अब तक वह हज़ारों बार यह मनौती मान चुका था। मालिक को भैंसा बनाने का ख़्याल उसके मन में यूँ ही नहीं आया था, दरअसल उसकी बनावट ही ऐसी थी। काला-कलूटा बेढंगा शरीर, चेहरे पर चेचक के गड्ढों के भीतर भरी मक्कारी और बेसुरी आवाज़। जब वह चिल्लाता था, तो भैंसे के डकराने का आभास होता था। उसने फिर लड़के की ओर देखा, उसके चेहरे पर सहमेपन के भाव साफ़ नज़र आ रहे थे और हाथ भी पहले से तेज़ चलने लगे थे। थोड़ी देर पहले हुई घटना ने उसकी आँखों में ख़ौफ़ भर दिया था। उसका जी चाहा कि लड़के को घसीटकर कारखाने की सीमा के बाहर फेंक दे या उसे झिंझोड़कर पूछे कि इतना कुछ देखने के बाद भी तेरी आँखें नहीं खुलीं, क्यों इस नर्क में सड़ना चाहता है? यहाँ पीने के लिए आँसू और ख़ून के घूँट हैं.... रोटी की जगह लात और घूसे मिलते हैं। क्या यही सब पाने की ख़्वाहिश लेकर आया है? यह ख़तरनाक तिलस्मी क़िला है, जिसके भीतर आने के बाद बाहर निकलने के सारे द्वार बंद हो जाते हैं। यहाँ तेरे सारे स्वप्न दम तोड़ देंगे। घर-परिवार और दुनिया से नाता तोड़ना पड़ेगा। सब कुछ त्यागने की ताक़त है तुझमें? भाग जा यहाँ से. ... अभी इसी वक़्त निकल जा... उठ, बैठा क्यों है?

उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक उसे क्या होता जा रहा है। किसी अजनबी को लेकर इतना परेशान क्यों है? क्यों वह लड़का उसके अस्तित्त्व पर छाता जा रहा है? लड़के से संबंधित हर जिज्ञासा को वह दिमाग़ से खुरच देना चाहता था। उसने कई बार कोशिश भी की, लेकिन हर बार असफल रहा। यह मन की कैसी दुर्बलता थी कि भटक कर अनचाही जगह पर केंद्रित हो जाता था। शाम होने तक वह आधा काम भी न निबटा सका। मालिक बौखला गया। फिर वही भद्दी गालियों का दौर... मारपीट. .. यातनाएँ और उसकी भैंसे वाली कल्पना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात में भी लक्खू की लड़के से बात करने की हसरत पूरी न हो सकी। वह थककर सो चुका था। उसे जगाने की तीव्र इच्छा का दमन कर लक्खू वहीं उसके पास बैठ गया। काफ़ी देर तक बैठा रहा। रात बीतने के साथ उसकी आँखें भीगती जा रही थीं। कोरों पर अटकी खारी बूँदों में माँ का चेहरा चमक उठा। माँ जैसे बाहें पसारे उसे आवाज़ दे रही थी—'लक्खू वापस आ जा। तुझे देखे एक अरसा बीत गया। राह देखते अब तो आँखें भी पथरा गयीं। मुझे धन-दौलत नहीं, लक्खू चाहिए... मेरा अपना लक्खू... मेरा प्यारा बेटा लक्खू... मैं लोगों के जूठे बर्तन माँजकर दो जून की रोटी का इंतज़ाम कर लूँगी, पर तू वापस आ जा... तेरे सिवाय और कौन है, जिसके सहारे जिऊँ... मैं मर गयी तो चिता को आग देने वाला भी कोई नहीं है...''

वह काँपकर रह गया। उसका मन हुआ कि पंछी की तरह उड़कर माँ के आँचल की ममता भरी छाँव में दुबक जाए और उसके दुख-दर्द को आत्मसात् कर सारी रिक्तता भर दे। उसकी आँखों में स्मृति के दीप जलने लगे।

वह बिहार के एक छोटे-से गाँव का रहने वाला था, जहाँ भूख, ग़रीबी और बेकारी कभी साथ नहीं छोड़ती। जब से होश सँभाला माँ को ही देखा था। बापू की उसे शक्ल तक याद नहीं थी। माँ ने उसका नाम लखपति रखा था। उसके नाम के सहारे वह यथार्थ के कठोर धरातल से दूर कल्पना में ही सही, अभावों के उन दंशों को चुनौती देना चाहती थी, जो सालों से उसे डसते आ रहे थे, यह अलग बात है कि वह पूरे जीवन में हज़ार रुपये भी एक साथ न देख सकी। वह माँ के साथ खेतों पर मज़दूरी करने जाता था, तब कहीं मुश्किल से आधा पेट खाने की व्यवस्था हो पाती थी। उसकी एक छोटी बहन थी—उसके बचपन का खिलौना, नन्हीं-मुन्नी और बहुत प्यारी। एक दिन अचानक उसे हैजा हो गया। गाँव के आस-पास कोई डॉक्टर नहीं था और शहर लगभग पंद्रह मील दूर था, वहाँ जाने के लिए रुपये चाहिये थे जबकि घर में एक धेला तक न था। माँ रोती-बिलखती गाँव में भटकती रही, बेटी को बचाने की याचना करती रही, पर उसके आँसुओं पर कोई द्रवित नहीं हुआ। उसकी आँखों के सामने बहन ने तड़प-तड़पकर दम तोड़ दिया। माँ छाती पीटकर रो रही थी और वह निस्सहाय मूक दर्शक बना देखता रहा, रोता रहा। माँ कहती थी कि बापू की मौत भी इलाज के अभाव में हुई थी। उसी दिन उसने प्रण कर लिया था कि शहर जाकर बहुत सारे रुपये कमाएगा, ताकि माँ का आँचल ख़ुशियों से भर सके। तब वह चौदह साल का था। माँ उसे भेजने को तैयार नहीं थी, पर उसकी ज़िद के आगे उसे झुकना पड़ा। गाँव के दो-चार लड़के शहर में काम करते थे, उनका पता लेकर उसने जेब में डाल लिया। माँ उसे गाँव के बाहर दूर तक छोड़ने आयी। वह अब भी आशंकित थी। कलेजे के टुकेड़े से दूर होने की वेदना उसकी आँखों मे छलक रही थी। माँ को आश्वस्त कर वह बुलंद इरादों के साथ चल पड़ा।

शहर में अपार जन-समूह देखकर उसके हाथ-पाँव फूल गये। इतनी भीड़ तो गाँव के मेले में भी नहीं होती थी। सड़क पर दौड़ती कारों और बसों की तरह ज़िंदगी दौड़ रही थी। सब जल्दी में थे, भागे जा रहे थे, पता नहीं क्यों और कहाँ? एक-दूसरे से आगे निकलने की जैसे प्रतियोगिता हो रही थी। काग़ज़ हाथ में लेकर उसने कई लोगों से पता पूछने की कोशिश की, पर उसकी बात सुनने के लिए किसी के पास वक़्त नहीं था। यहाँ के लोग कितने निष्ठुर हैं। इससे अच्छा तो उसका गाँव है, जहाँ भटके राहगीर को लोग दूसरे गाँव तक छोड़ आते हैं। सभ्यता के विकास में सरलता खोती जा रही है। उसकी इच्छा हुई कि वापस लौट जाए, पर विवशता ने पाँव बाँध दिये। काम की तलाश में वह दिन भर भटकता रहा और अंत में हारकर हताश हो गया।

रात पाँव पसारने लगी थी। थकान से उसका बदन टूट रहा था और भूख से आँतें ऐंठ रही थीं। दिन था, तो आस थी। उसकी आँखें भर आयीं। काश! माँ उसके पास होती, वह कुछ भी करती, लेकिन उसे भूखा नहीं रहने देती। आज कोई काम भी तो नहीं मिला था। कल का दिन भी ऐसे ही गया तो? ऐसा नहीं हो सकता, उसने ख़ुद को तसल्ली दी। कल कहीं-न-कहीं काम ढूँढकर ही दम लेगा। उसकी भूख बढ़ती ही जा रही थी, पर किसी के आगे हाथ फैलाने की हिम्मत नहीं हुई। उसके छोटे से हृदय में बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षाएँ थी, इतनी बड़ी भी नहीं कि सब कुछ मुफ़्त चाहता। वह काम के बदले में भरपेट खाना और माँ के अधरों की रूठी मुस्कान वापस चाहता था।

उसने नज़र उठाकर देखा, चारों ओर ऊँची-ऊँची इमारतें जगमगा रही थीं। उसे लगा कि इन दीवारों के भीतर कोई इंसान नहीं रहता। पत्थरों के बीच में रहकर इंसान पत्थर बन चुका है, किसी में कोई संवेदना नहीं, सबके सब भाव-शून्य। उसका मन वितृष्णा से भर गया ।

उसके जीवन के घने अँधेरे में एक व्यक्ति धूमकेतु की तरह चमका। उसकी सहनुभूति से उसका दग्ध हृदय शीतल हो गया। शहर के बारे में अपने दृष्टिकोण पर उसे शर्मिंदगी हुई। मानवता अभी मरी नहीं, अच्छे बुरे लोग हर जगह रहते हैं। उसके साथ वह चमड़े के कारखाने में आया। यहाँ पशुओं की खाल से चमड़ा तैयार किया जाता था। वहाँ फैली दुर्गंध से उसे उबकाई आने लगी, उसका दम घुटने लगा। यह काम उससे नहीं होगा, कोई अन्य साफ़-सुथरा काम मिल जाए, तो ठीक वरना... वरना क्या ? उसके मस्तिष्क में एक साथ कई प्रश्नों ने डंक मारे। भूख का अहसास उसे डराने लगा। आज दिन भर की भटकन नुकीले पंजे लेकर सामने खड़ी थी। परिस्थितियों के आगे उसे समर्पण करना पड़ा। शुरू में कुछ दिनों तक उसे परेशानी हुई, फिर अभ्यस्त हो गया। वह एक-एक दिन गिन रहा था। पगार मिलते ही सीधे गाँव जाएगा और सौ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ के हाथ पर रख देगा। उसकी मेहनत की पहली कमाई देखकर वह कितनी खुश होगी। बहन की मौत के बाद से वह बुझी-बुझी रहती है, शायद भीतर से टूट चुकी है। उसे जितना कष्ट भोगना था, भोग लिया, बस और नहीं। अब उसके सुख भरे दिन आरंभ होने वाले थे।

एक महीना बीतने के बाद उसकी बेचैनी बढ़ने लगी। आठ दिन और निकल चुके थे। उसका सब्र टूट गया। उसने हिम्मत बटोरकर झिझकते हुए पगार माँगी।

"हरामजादे, तगादा करता है" उसे बाल पकड़कर परे धकेलता हुआ मालिक चीख़ा, "रहने और खाने के रुपये क्या तेरा बाप दे जाता है?"

वह सन्न रह गया। उसके वर्तमान का नंगा सत्य उजागर हो गया था। अब वह लक्खू नहीं बँधुआ था। बँधुआ यानी खूँटे पर बँधा जानवर, जिसका अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व नहीं होता। उसके जीवन की बागडोर मालिक के हाथ में होती है, वह जैसे चाहे उसे नचाता है। यह एक शब्द लाखों दीमकों का समूह बनकर वर्तमान और भविष्य चटकर लेता है। बँधुआ, जाल में फँसे बेबस पशु की तरह होता है, वह सिर पटक-पटक कर दम तोड़ सकता है, स्वतंत्र विचरण नहीं कर सकता। वह नाली में लिजलिजाता कीड़ा होता है, जो न जीता है और न मरता है। वहाँ काम करने वाले हम-उम्र लड़कों के साथ उसे एक कोठरी में रखा जाता था। न ढंग का खाना और न कोई देखभाल। बस काम और केवल काम। कोल्हू के बैल की तरह जुते रहना उसकी नियति बन चुकी थी। उससे उम्र में चार-पाँच वर्ष बड़ा बंसी खाँसते-खाँसते बेदम हो जाता था, कभी-कभी खून से उसके होंठ सन जाते थे। रामू का बुखार कभी उतरता ही नहीं था और गिरधर को देखकर तो उसे झुरझुरी आ जाती थी। उसके हाथ-पैर के घाव सड़ने लगे थे। दवा के नाम पर बेअसर सफ़ेद गोली दे दी जाती थी। यदाकदा बाल मज़दूरों की पड़ताल करने साहब लोग आते थे, वे सीधे मालिक के ऑफ़िस में जाते और कुछ देर बाद पेट पर हाथ फेरते बाहर निकलते, तो जेब फूली हुई होती थी। उनकी सुध लेने की फ़ुर्सत किसी को नहीं थी। काश, कोई साहब उन्हें इस नर्क से मुक्ति दिला देता। एक बार ऐसा अवसर आया भी। उसे साथियों के साथ खालों से भरे गोदाम में बंद कर दिया गया। वहाँ इतनी दुर्गंध थी कि उसकी हालत ख़राब हो गयी। कुछ मिनट कई युगों के समान बीते। उस दिन उसके हलक के नीचे एक कौर तक न उतर सका। बेजान खालों के बीच रहने वाले इन्सानों में मानवीय मूल्य मृतप्राय हो चुके थे। सबके सब चलते-फिरते पुतले थे। एक दिन वह भागा और पकड़ा गया। उसके बाद जो हुआ, उसकी याद कर आज भी उसकी हड्डियों में सिहरन होने लगती है। शहर के लोगों के बारे में उसकी धारणा बिल्कुल ठीक थी। यहाँ न इंसान हैं और न इंसानियत हिंसक पशुओं की भाँति घात लगाये बैठे रहते हैं, जहाँ जिसे मौका लगा, दबोच लिया। उस रात स्नेह का नीर उँडेलकर यहाँ लाने वाला इंसान स्वप्न दिखाकर लाया होगा। भूख भी क्या चीज़ है, कैसे-कैसे खेल दिखाती है। आँसू पोंछकर उसने आसमान की ओर देखा, मानो ऊपर वाले से पूछ रहा था कि सबको भूख एक समान दी है, तो रोटी में इतना अंतर क्यों ? कोई अधिक खाने से मरता है और किसी को भूख निगल लेती है; किसी के पास अथाह दौलत है और कोई कीड़े-मकोड़ों की ज़िंदगी जीने को लाचार। तेरा बनाया एक इंसान राजा है और दूसरा बँधुआ। इतना अंधेर! अगर हिम्मत है, तो बँधुआ-जीवन का एक पल जीकर देख, तब तुझे एहसास होगा कि हम कैसे एक पल में हज़ार बार मरते हैं। कर पाएगा ऐसा ? किसी का दर्द महसूस नहीं कर सकता, तो कैसा भगवान है? हर बार की तरह इस बार भी उसकी आवाज़ सीने में घुटकर रह गयी।

उसे इस आग में झुलसते छह वर्ष बीत चुके थे। इस बीच उसने थोड़ा-बहुत पैसा इकट्ठा कर लिया था। अब वह भागने की ताक में था। इस बार भागा, तो किसी के हाथ नहीं आएगा। यहाँ से निकलकर सीधा किसी ईमानदार साहब के पास जाएगा और अभिशप्त जीवन जी रहे बँधुआ मज़दूरों को मुक्त कराके की दम लेगा। इस अभियान के बाद गाँव जाएगा, माँ के पास, सदा के लिए। फिर कभी शहर की ओर पाँव पसारकर भी नहीं सोएगा। उसे लगा कि आज आया लड़का रो रहा है। शायद उसे भ्रम हो रहा था। उसने ग़ौर से देखा, सचमुच वह रो रहा था उसकी सिसकियाँ ज़हरीले काँटे बनकर उसके हृदय में छिदने लगीं।

"रो क्यों रहे हो?" उसने स्नेहिल हाथ उसके सिर पर रखा।

आत्मीय संबल पाकर लड़के की हिचकी बँध गयी। अचानक वह उठा और उससे लिपटकर रो पड़ा।

"यहाँ बहुत डर लग रहा है," वह हिचकियों की बीच बोला, "मुझे घर जाना है।"

"ठीक है, चले जाना," उसकी आवाज़ में लड़के के आँसुओं की नमी सिमट आयी थी, "कहाँ के रहने वाले हो?"

उसने बताया।

"घर में और कौन-कौन है?"

"पाँच भाई-बहनों में मैं सबसे बड़ा हूँ," वह आँसू पोंछकर बोला, "बापू दारूबाज़ है, उसे घर से कोई मतलब नहीं। रिक्शा खींचने में जो आमदनी होती है, उसकी दारू पी जाता है। जब काम नहीं करता, तो माँ से रुपये माँगता है। माँ इधर- उधर काम करके बड़ी मुश्किल से घर का खर्च चलाती है। बापू रुपये न मिलने पर उसे बुरी तरह मारता है, वह चुपचाप सब कुछ सह लेती है। लेकिन, मुझसे नहीं देखा जाता, इसलिए भाग आया। अब माँ न जाने कैसी होगी, उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है," उसकी आँखें फिर छलक आयीं।

लक्खू भाव-विह्वल हो गया।

"घर जाकर क्या करोगे ?" उसने भरे कंठ से पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेहनत-मज़दूरी करूँगा, रिक्शा खींचूँगा, जो भी काम मिलेगा, वो करूँगा। माँ के पास रहकर उसका और छोटे भाई-बहनों का ख़्याल तो रख सकूँगा," परिस्थितिजन्य अभावों ने उसे समय से पहले ही युवा बना दिया था।

"किराये के लिए रुपये हैं?"

वह रिक्त आँखों से उसकी ओर निहारता रहा।

कोई बात नहीं लक्खू ने उसे सांत्वना दी, कल तुम घर पहुँच जाओगे, लेकिन एक बात याद रखना..." उसे सतर्क करते हुआ वह बोला, "यहाँ से जा रहे हो, इसकी चर्चा किसी से मत करना।"

उसने मूक सहमति में सिर हिलाया।

"अब सो जाओ।"

लक्खू सोच में पड़ गया। आने वाला कल उसके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण दिन था। भोर की पहली किरण खिलने से पहले वह इस अंध कूप के तिलिस्म का पहला द्वार तोड़ देगा, फिर पूरा क़िला ध्वस्त कर देगा, ताकि बँधुआ जीवन की विभीषिका फिर किसी मासूम का बचपन न लील सके। कल कोई ताक़त उसका रास्ता नहीं रोक सकती। अपने मज़बूत इरादों के प्रति वह दृढ़ संकल्पित था। मुक्त गगन में उड़ान भरने की कल्पना ने उसे रोमांचित कर दिया था।

200, सती मुहल्ला, इटावा

लघुकथा

सुराख

रेनुश्री अस्थाना

एक बंद कोठरी की ज़मीन पर कई हम उम्र लड़कों के साथ बीजू भी सोया था। एक मैली चादर शरीर पर डाले। चादर के बीच की पैंबद सारे धागों को उखाड़े एक बड़ा-सा सुराख बनाती बीजू के पेट को उघोड़ थी। उसने धीरे-धीरे कर चादर के ऊपर खींच लिया। सुराख अब उसके मुँह पर थी। बीजू ने दोनों हाथों को ऊँचा कर सुराख ऊपर कर दिया। बिल्कुल आँखों के सामने सटे किसी बाइस्कोप के गोले की तरह और देखने लगा सुराख के पार थे घुप्प अँधेरे को जहाँ गहरी काली सियाही का लेप जैसा था।

कुछ देर बाद वहाँ लाल-लाल गोले उभरने लगे। गोले से घूमती धरती की तरह बीजू ने आँखें घँसा दी। गोले के केंद्र में अब वहाँ बहुत कुछ दिखने लगा था। चलचित्र थे बोलते चित्र की तरह बिलकुल सजीव।

धरती घूम रही थी घट रही थी इमारते रेत के टीले सी ढह रहीं थीं। और उसमें समा रही थीं लोगों की चीखें, सोते सपनों की दुनिया। अपने से बच्चे, उनके माँ-बाप। बहुत कुछ नहीं शायद सब कुछ भोर की गोद मे छुप कर आया ये नरी विनाश निगल गया सब सुख-दुख अमीरी, ग़रीबी, गया मेरी तरह बिरजू की तरह मोहन की तरह नहीं सुधा की तरह जो टेढ़ी होती इमारत से न जाने कैसे बाहर आ गिरी थी।" टूटत धागों से बने सुराख में कचोटती यादों की तस्वीर एक के बाद एक चलती रही। उसमें उभरा था एक छोटा सा घर। वो हंस दिया "ये तो मेरा घर है।' वहाँ थे बीजू के माँ-बाबा। जहाँ कभी माँ ढोकले बना कर खिला रही थी तो कभी उबलते मट्ढे में राई का तड़का लगा रोटी के टुकड़े डाल रही थी कभी सुबह जलदी उठकर आँगन में झाड़ू लगा चूल्हा लगाने का कोयला कूट रही थी तो उसके हाथों की चूड़ियों की खनक पूरे घर मे साँई राम के भजन सी फैल रही थी।

शाम ढलते ही कपड़े की मील से बाबा का आकर घण्टी बजाना मेरा साईकिल लेकर बाहर भागना सब तो है इस गोले के भीतर जीता जागता साँस लेता।" और तभी अचानक उसके हाथ की चादर छूट के उसके ऊपर गिर गई अँधेरा अब चारों तरफ था। सामने का गोला घेरा गायब हो गया था और खो गया था बीजू का घर, उस भोर का बिख़राव पर उसके बिखराव का वो था घरे जो उसके भीतर था।

दिन तो फर्नीचर की दुकान की लकड़ी प्राइमर और पेंट में निकल जाता पर रात तो खाली होती। उसने दोनों हथेलियों से आँखे ढँक लीं।

"मुझे शक्ति दो साँईराम... बुदबुदाता बीजू सोने की कोशिश में बाँई और घूम गया।

सी -044 रंगोली, आशियाना गाँव
डा0 भीलवाडी, अलवर (राज.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदामा रिटायर हुए!

अंबल्ला जनार्दन

"सुनो! नाश्ता कर चुके न? ज़रा बाज़ार जाकर दो-तीन साग-सब्ज़ी ले आना। बेटे और बहू के लंच बॉक्स के लिए सब्ज़ी बनानी है। फ्रिज में तरकारी ख़त्म हो गयी है।"

पत्नी के चेहरे पर निगाह टिकाये सुदामा ने थैला हाथ में लिया और बाहर निकल पड़े।

आवश्यक चीज़ें ख़रीदकर लौट ही रहे थे कि रास्ते में उन्हें उसी गली के रहने वाले उनके मित्र भूपति मिले। वे ताश के पत्ते खेलने में माहिर थे।

"अमाँ यार! ब्रीफ़केस की जगह सब्जियों का थैला आ गया? मैंने तुम्हें आने के लिए कहा था न! फ़ुरसत में हो, तो पत्ते खेलने क्यों नहीं आते?"

"मैंने पत्नी को वचन दिया है कि अब मैं पत्ते नहीं खेलूँगा। अभी तो मैं व्यस्त हूँ। बाद में कभी फ़ुरसत से बात करेंगे," यह कहकर दुलकी चाल से सुदामा ने घर की ओर क़दम बढ़ाये।

"हाय-हाय! इतनी देर क्यों कर दी तुमने? वैसे भी उनका अफ़सर तानाशाह है। माधवी बहुत जल्दी कर रही है," हाथ से थैला छीनते हुए लक्ष्मी ने कहा।

"पिताजी, टेलीफ़ोन का बिल भरने के लिए आज ही आख़िरी दिन है। यह चेक़ लीजिए और टेलीफ़ोन के ऑफ़िस में जमा कर दीजिए," मनोहर ने टेलीफ़ोन बिल और चेक उनके हाथ में थमा दिया।

"कैसा अत्याचार है? आख़िर मैंने भी स्टेट बैंक में मैनेजर का काम किया है। मुझसे कहते हैं कि सब्ज़ी लाओ, बिल जमा करो। जब तक मैं नौकरी में था, तब तक क्या ऐसे छोटे-मोटे काम बताने की कभी हिम्मत हुई थी इनकी ?" मन ही मन सुदामा तिलमिला उठे।

सुदामा आधे घंटे तक अख़बार के पन्ने पलटते रहे। फिर गहरी साँस लेते हुए टेलीफ़ोन बिल जमा करने के लिए बाहर निकल पड़े। लाइन में कुछ महिलाएँ थीं। क़तार में अपनी हैसियत का एक भी व्यक्ति उन्हें नज़र नहीं आया। ऐसे लोगों की लाइन में खड़े होना उनकी तौहीन थी, फिर भी यह उनकी लाचारी थी।

वे जब घर लौटे, भोजन का समय हो गया था। खाने पर बैठे, तो दाल को छोड़कर बाक़ी सारे व्यंजन ठंडे हो चुके थे।

"सारी की सारी चीज़ें ठंडी देने के बजाय इन्हें कुछ गरम नहीं कर सकती थीं क्या ?"

"तुम समझते हो कि खाना और सब्ज़ियाँ बार-बार गरम करते रहना ही मेरा काम है? मैं ख़ुद ठंडा खाना खाती हूँ, तो तुम एकाध दिन थोड़ी-सी ठंडी हुई चीज़ें खालो, तो कौन-सा पहाड़ टूट जाएगा? तुम एडजस्ट करना सीखो।"

क्या यह वही लक्ष्मी है, जो ऐसा बोल रही है? वही लक्ष्मी, जो दफ़्तर जाते समय उनके लिए खाने में सारी की सारी चीज़ें ग़रम होनी चहिए, यह सोचकर हॉटपैक में सहेजकर रख देती थी? रात के खाने में भी गरम चीज़ें परोसने वाली उनकी वही पत्नी है यह? सुदामा अनमने से खाने पर बैठे। व्यंजन स्वादिष्ट तो थे, पर मन अशांत था; इसलिए वे लाचारी से कुछ कुतरकर उठे और हाथ-मुँह धो लिए। बिस्तर पर पसर गए, परंतु नींद उनके पास फटक नहीं रही थी। क्या उन्होंने वी0आर0एस0 यानी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर कहीं कोई ग़लती तो नहीं की? पहली बार उनके मन में उथल-पुथल शुरू हुई। दफ़्तर में जैसे की इस बारे में परिपत्र निकला, उन्होंने सबसे पहले इसके लिए आवेदन किया था। क्यों न करते? बाक़ी आठ साल की सेवा अवधि का वेतन जो मिल रहा था। बिना काम किये, घर बैठे-बैठे आराम से वेतन पाने में कितना सुख है! शेष छुट्टी के लिए वेतन ही नहीं, बल्कि कर में भी राहत जो थी! यह सारी रकम बैंक में जमा कर रखेंगे, तो हर महीने ब्याज मिलता होगा। इसके अलावा पेंशन भी तो है। इतने आकर्षक पैकेज को वे कैसे छोड़ते ? इतना ही नहीं, दूसरी ओर ऑफ़िस की ज़िम्मेदारियाँ भी जो बढ़ रही थीं। बैंक में कब कौन-सा ऋण नाकारा (एन0पी0ए0) बनेगा, इसका कोई पता नहीं। ये सारे ऋण मंजूर करने के लिए स्पष्टीकरण देते रहना, जाँच-पड़ताल... ये सब सरदर्द की बातें हैं। कुछ भ्रष्ट व्यक्तियों की कृपा से बैंकों में अनेक घपले हो रहे हैं। हालाँकि, वे इन सबसे दूर हैं, फिर भी यदि यह साबित हो जाता है कि उनके मैनेजर रहते हुए ऐसा कुछ गोलमाल घटित हुआ है, तो फिर ज़िम्मेदारी उन्हीं की मानी जाएगी।

एक ज़माना था, जब बैंक मैनेजर की समाज में बहुत इज़्ज़त होती थी। हाल में धोखाधड़ी के जो मामले प्रकाश में आये हैं, उनके कारण बैंक मैनेजर संदेह की दृष्टि से देखे जा रहे हैं। स्वैच्छिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवानिवृत्ति लेने से इन झंझटों से नहीं, बल्कि तीन साल में एक बार होने वाले स्थानांतरण (ट्रान्सफ़र) से भी मुक्ति मिल जाएगी। यही सब सोच-विचार करने के बाद उन्होंने वी.आर.एस. के लिए हामी भरी थी। पर अब ? सोचते-सोचते सुदामा नींद के आगोश में चले गये।

जब वे नींद से उठे, तो शाम के छह बज रहे थे। एक घंटे तक वे टी0वी0 देखते रहे। जिस किसी भी चैनल को दबा रहे थे, वहीं चिरपरिचित अर्थहीन कार्यक्रम आ रहे थे। वे ऊब उठे और अपने मित्र रामेश्वर के साथ गपशप करने के लिए बाहर निकल आये। रामेश्वर तो खुशकिस्मत हैं। अपनी तरह उन्होंने वी0आर0एस0 नहीं लिया है।

लगता था कि रामेश्वर दफ़्तर से अभी-अभी लौटे हैं। रामेश्वर और उनकी पत्नी गरम-गरम पकौड़े खाते और चाय पीते हुए टी0वी0 देख रहे थे।

सुदामा को वे दिन याद आये, जब वे नौकरी में थे। जैसे ही वे दफ़्तर से घर लौटते, लक्ष्मी इसी तरह चाय और नाश्ता दिया करती। दोनों आराम से बातें करते हुए स्वल्पाहार लेते थे। लेकिन अब? जब तक वे दो-तीन बार स्वयं नहीं माँगते, तब तक चाय के लिए भी नहीं पूछा जा रहा है।

"आओ बंधु! समय पर आये हो। एक हाथ लगा दो," रामेश्वर ने पकौड़े वाली प्लेट आगे सरका दी।

"धन्यवाद रामेश्वर! मैं अभी-अभी भरपेट खाकर आ रहा हूँ," झूठ कहा सुदामा ने।

"कोई बात नहीं। दो पकौड़े खाओगे, तो तुम्हारी चर्बी नहीं बढ़ेगी," ज़ोर देने पर सुदामा ने एक पकौड़ा उठा लिया।

दोनों मित्र पास में स्थित पार्क में चले गये।

"हाँ, बोलो यार! कैसा है तुम्हारा स्वैच्छिक आरामदायक जीवन ?"

"यह आरामदायक नहीं, बल्कि मेरे लिए तो यह हाय-हाय वाली ज़िंदगी है। तुम्हारी बात अनसुनी करके वी0आर0एस0 लेने के कारण मुझे उचित दंड मिल रहा है। जैसा तुमने कहा था, पद है तो ही आदमी का महत्त्व है। उसके बिना घर वाले और बाहर वाले सब के सब नीची निगाह से देखते हैं।"

"क्या हुआ?"

"पूछो तो सही कि क्या नहीं हुआ। अपनी तीस साल की सर्विस में जो छोटे-मोटे काम मुझे कभी नहीं करने पड़े, अब करने पड़ रहे हैं। मना करता हूँ, तो लक्ष्मी व्यंग्य कसती है कि वैसे तो दफ़्तर जाना नहीं है, घर का इतना-सा काम करने से घिस नहीं जाओगे या पिस नहीं जाओगे। किसी काम से अपने बैंक गया, तो किसी ने बात तक नहीं की। जो शख़्स कभी मेरे साथ बाबू था, अभी मैनेजर बन गया है। किसी ग्राहक के साथ चर्चा करते हुए उसने मुझे देखा ज़रूर था, शिष्टता के नाते मुस्कराया तक नहीं। अपने खाते के विषय में बात करने के लिये मुझे उससे मिलना था, पर पर्ची भेजने के बाद भी मुझे आधे घंटे तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। मुझे अपमान-सा महसूस हुआ। इसी तरह मैं जब आंचलिक कार्यालय में प्रबंधक था, तब जब कभी शाखा में जाता था, तो सब के सब "सर! सर!" करके बात करते थे, ठंडा पेय मँगवाकर मेरी ख़ातिरदारी करते थे। आंचलिक कार्यालय में अपने-अपने लंबित मामले देखने का मुझसे अनुरोध करते थे। अभी आठ साल की सर्विस बाक़ी है, तो भी मैंने वी0आर0एस0 क्यों लिया ? यह सोचकर पल-पल पश्चाताप की आग में झुलस रहा हूँ।"

"सब्र करो दोस्त! ये सारी बातें मैं तुम्हें पहले ही बता चुका था। तब तुमने मुझे पागल समझा था। तुमने मेरा मज़ाक उड़ाया था कि क़ानूनी तौर पर मुफ़्त में मिल रहे धन को मैं ठुकरा रहा हूँ। मनुष्य के लिए केवल रुपया-पैसा ही सब कुछ नहीं, बल्कि समाज में मान-सम्मान का भी महत्त्व है। ओहदे के कारण वह आसानी से मिल जाता है। तुमने केवल आर्थिक पहलुओं पर ही विचार किया और बाक़ी आठ साल की सर्विस को तिलांजलि दे दी। अब इस तरह चिंता करोगे, तो तुम्हारा स्वास्थ्य ख़राब हो जाएगा। इसलिए, किसी भी तरह समझौता करने की आदत डाल लो। अब रात हो चुकी है। कल मुझे ऑफ़िस जाना होगा। तुम्हारी तरह सुबह दस बजे तक सोते नहीं रह पाऊँगा। अब चलो, चलते हैं।"

पार्क से निकलकर दोनों ने अपने-अपने घर की राह ली।

"बेडरूम से चश्मा ला देना लक्ष्मी।"

"हाय-हाय! तुमने वी0आर0एस0 क्या लिया, मेरी जान पर आफ़त आ गयी है। दिन भर घर में ही रहते हुए 'यह लाओ', 'वह लाओ' कहकर मुझे परेशान करते हो। तुम खुद भी तो ले सकते हो। तभी अच्छा था जब तुम नौकरी में थे। सवेरे निकलकर रात में घर लौटते थे। तब तो मैं दिन में थोड़ी देर झपकी भी ले पाती थी। अब तो वह कुछ भी नहीं रहा। मेरा सारा समय तुम्हारी सेवा में ही गुज़र रहा है। अभी मैं कहीं फ़ुरसत में थोड़े ही हूँ?" रसोईघर से ही उत्तर जैसा प्रश्न था। सुदामा को फिर से पुराने दिनों की याद आयी।

उन दिनों...

उनके मुँह से बात निकलने भर की देर थी। पल भर में अपेक्षित सारी चीज़ें पेश की जाती थीं। तब में और अब में कितना अंतर है?

टी0वी0 बंद करके सुदामा बेडरूम में चले आये।

लक्ष्मी अपने सारे काम निपटाकर बेडरूम में आयी तो सुदामा ने कहा, "कुछ दिन अपने रिश्तेदारों के यहाँ घूम आएँ? अगले हफ़्ते मेरे जीजा जी के बेटे का जनेऊ-संस्कार है, उसमें भी शामिल हो सकेंगे।"

"छुट्टी न मिलने के बहाने जाने कितनी शादियों में जाने से तुम बचते रहे, अब जनेऊ-संस्कार में जाने के लिए कह रहे हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसी अज़ीब बात है? अब तुम्हें फ़ुरसत है, पर मुझे भी फ़ुरसत होनी चाहिए न ? बेटा और बहू दोनों नौकरी कर रहे हैं। हम दोनों बाहर जाएँगे, तो बच्चों का ध्यान कौन रखेगा?''

''हाँ लक्ष्मी! सच तो है। किसी बात के लिए क़िस्मत चाहिए। ज़िम्मेदारी से भरी नौकरी में छुट्टी मिलना मुश्किल होता था। तुम बहुत ज़िद करती रहीं, पर तुम्हारे साथ ऐसे शुभ कार्यक्रमों में भाग लेने का नसीब मुझे नहीं था, इसलिए तुम्हें अकेले ही जाना पड़ता था। अब मुझे बहुत फ़ुरसत है लेकिन तुम्हें समय निकालना संभव नहीं । क्या करें?... ठीक है, मैं अकेले ही कुछ दिन के लिए रिश्तेदारों के यहाँ घूम आऊँगा।''

सुदामा को लगा कि रिश्तेदारों के यहाँ भी उनके प्रति आदर-सम्मान में कमी आ गयी है। उनके मन में टीस-सी उठी। जहाँ एक हफ़्ता रुकने की सोची, वहाँ तीन दिन और जहाँ तीन दिन रुकना था, वहाँ एक दिन रहकर वे जल्दी ही घर लौट आये। दिन-भर घर में रहने से वे ऊब उठे। उन्हें अनुभव से समझ में आया कि आराम से जीवन-यापन करने का मतलब काम के बिना घर बैठे रहना नहीं है। और, कुछ दिन इस तरह कोई कामकाज न करते हुए बैठे रहेंगे, तो इतना निश्चित है कि वे पागल हो जाएँगे। उन्होंने तय कर लिया कि अपने बैंक के खातेदारों से मिलकर वे अपने लायक कोई नौकरी ढूँढ लेंगे।

अतीत में उनके द्वारा लाभान्वित हुए कुछ व्यक्तियों ने चाय या कॉफ़ी पिलाकर अच्छी तरह उनकी ख़ातिरदारी की। लेकिन, जैसे ही उन्होंने नौकरी की बात छेड़ी, तो वे बगलें झाँकने लगे। एक बार फिर सिद्ध हुआ कि सबके सब लोग उदित हो रहे सूरज की ही पूजा करते हैं। फिर भी, सुदामा ने हिम्मत नहीं हारी, कुछ पैरवी करके उन्होंने एक बड़ी कंपनी में आर्थिक सलाहकार का काम सँभाल लिया।

नाम के लिए तो ओहदा बड़ा भी था, पर क्लर्क से मैनेजर तक सारे काम उन्हें स्वयं ही करने पड़ रहे थे। उनका कोई सहायक नहीं था। उनके लिए उपयुक्त केबिन भी नहीं मिला था, फिर भी उन्हें हालात से समझौता करके चलना था। कोई दूसरा चारा नहीं। बैंक-सेवा का लंबा अनुभव होने के कारण सारे-के-सारे बैंक-संबंधी व्यवहार उन्हें ही देखने थे। ऋण लेने के लिए आवश्यक विवरण बनाना; उनकी मंजूरी के लिए बैंक से संपर्क और पैरवी करना विभिन्न अधिकारियों से मिलकर उनके साथ अपनी संस्था के अच्छे संबंध क़ायम रखना; मासिक, त्रैमासिक और छमाही तौर पर नियमित रूप से बैंक द्वारा अपेक्षित ब्यौरा इकट्ठा करना—इस तरह के सारे दायित्व उन्हीं के कंधों पर थे। दिन में दस घंटे कार्यालय के काम में ही व्यतीत हो रहे थे। बैंक के वे कर्मचारी, जिन्होंने कभी मैनेजर के रूप में उनका आदर-सम्मान किया, एक खातेदार का प्रतिनिधि बनकर आने पर अपना सहज स्वाभाविक दर्प दिखाने लगे। कल के अपने अधीनस्थ कर्मचारी को भी अब उन्हें 'सर' कहकर इज़्ज़त के साथ संबोधित करना पड़ रहा था।

इतना करने पर भी प्रबंध निदेशक महोदय बड़बड़ाते कि काम जल्दी नहीं हो रहा है। उनकी मैनेजरी के समय यही भलेमानुस झुक-झुककर अत्यंत विनम्रतापूर्वक उनकी आवभगत किया करते थे और अपने बहुत सारे काम निकलवा लिया करते थे। वही अब उनके प्रति अपने अधीनस्थ कर्मचारी के रूप में उपेक्षा और तिरस्कार से भरा व्यवहार कर रहे थे। कुछ महीने बाद वे नाक में दम करने लगे कि बैंक का लोन बढ़वाओ। वैसे उस वक़्त कंपनी के व्यवहार कुछ ठीक नहीं चल रहे थे। पहले से लिये हुए ऋणों का ब्याज और किश्तें अदा करना ही दूभर हो गया था। तब तक लिये गये ऋणों से एम.डी. ने अपनी स्वयं की संपत्ति बनवा रखी थी। इस तरह कंपनी की रकम का मार्ग बदलने के कारण कंपनी की कार्यशील पूँजी घट गयी। साथ ही, उत्पादन भी कम हो गया। इसके परिणामस्वरूप, कंपनी की आर्थिक स्थिति क्षीण होने लगी। ऐसी हालत में कंपनी के लिए नये सिरे से ऋण मिलना असंभव था। प्रबंध निदेशक ज़ोर दे रहे थे कि ग़लत-सलत आँकड़े दिखाकर नये लोन के लिए कोशिश करो। इसकी तो उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी। एक ओर वह संस्था थी, जिसने उन्हें जीवन दिया, तो दूसरी ओर वही कंपनी थी, जो उन्हें फ़िलहाल वेतन दे रही थी। किसी एक के प्रति किया गया न्याय दूसरे के प्रति अन्याय ही सिद्ध होने वाला था। उन्होंने नौकरी इसलिए ज़्वाइन नहीं की थी कि उन्हें खाने के कोई लाले पड़ रहे हैं। केवल इसलिए इस कंपनी में ज़्वाइन किया कि वे कुछ तो सक्रिय रह सकें। केवल इसलिए कि वे अपने अनुभव को कुछ सार्थकता दे सकें। लेकिन, अब यह स्थिति थी। वे अपनी अंतरात्मा का दमन भी नहीं कर सकते थे। सो काफ़ी सोच-विचार के बाद आख़िर सुदामा ने अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

उस रात उन्होंने ख़ूब चिंतन-मनन किया। क्या वे अपने विगत वैभव की याद में हर बात को बढ़ा-चढ़ाकर देख-सोच रहे हैं? दूसरे लोग यद्यपि सामान्य हैं, पर क्या वे कहीं इस ग़लतफ़हमी के शिकार तो नहीं कि दूसरे उनका अपमान कर रहे हैं? वे कुछ भी तय नहीं कर पा रहे थे।

उनके जीवन के विभिन्न पड़ाव फ़िल्म की रील की तरह उनकी आँखों के सामने एक-एक करके झूल रहे थे। स्कूल की अंतिम परीक्षा में भले ही उन्हें डिस्टिंक्शन मिली थी, पर इंटरमीडिएट में वे साधारण अंकों से ही उत्तीर्ण हो पाये थे। उपयुक्त कोचिंग लेने की उनकी हैसियत नहीं थी, यही इसका प्रमुख कारण था। इसलिए डॉक्टर बनने की ख़्वाहिश से साइंस और पी0सी0बी0 ग्रुप लेने की वजह से उन्हें बी0एस-सी0 में प्रवेश लेना पड़ा था। कड़ी मेहनत करके वे बी0एस-सी0 में प्रथम श्रेणी पा सके। और आगे पढ़ने की स्थिति नहीं थी, सो प्रतियोगिता परीक्षाओं में बैठने लगे। दो बार फ़ेल हो गये थे, पर तीसरी बार भाग्य ने उनका साथ दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। स्टेट बैंक में उन्हें नौकरी मिली थी। नौकरी के नाते उन्हें कई जगह घूमना पड़ा। बैंक की परीक्षाएँ पास करने से क्रमशः पदोन्नति होती रही... इस तरह तीस साल तक चली नौकरी की दास्तान स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के साथ समाप्त हुई। उसके बाद थोड़ी-सी अवधि के लिए की हुई प्राइवेट नौकरी भी छोड़ने की मजबूरी आन पड़ी।

अब वे क्या करें? एक बड़ा प्रश्नचिह्न उनके सामने मुँहबाये खड़ा था। पद तो उन्होंने छोड़ दिया, पर उनके लिए जीवन अभी बरकरार था। उनका स्वास्थ्य सही-सलामत चल रहा था। काम करने की शक्ति उनमें थी। काम... यानी... क्या पैसा कमाने वाला काम ही उन्हें करना चाहिए? ऐसा कौन-सा काम है, जो उन्हें अच्छी तरह समय व्यतीत करने के साथ-साथ पूरा संतोष दे सके ? आख़िर उन्हें इसका उत्तर मिल गया। यदि वे स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति को स्वैच्छिक सेवा के साथ आगे बढ़ाएँ तो?... हाँ यही ठीक है। उनकी कॉलोनी के उस पार मज़दूरों की झोपड़ियाँ थीं। उन्होंने देखा कि उन मजदूरों के बच्चे स्कूल न जाकर छोटे-मोटे काम करते रहते हैं। कुछ तो आवारागर्दी में लिप्त रहते हैं। ऐसे बच्चों को अगर वे पढ़ाएँ, तो उनमें से जो बच्चे तेज़ होंगे, उन्हें निजी तौर पर दसवीं (एस.एस.सी) की परीक्षा में बिठाया जा सकता है। उपयुक्त कोचिंग के अभाव में वे खुद व्यावसायिक पाठ्यक्रम यानी प्रोफेशनल कोर्स ज्वाइन नहीं कर पाये थे। यह आवश्यक है कि उनकी शिक्षा और अनुभव कम-से-कम कुछ लोगों के लिए ही सही, काम आये। उन्हें सेवाभाव और निष्ठा से काम करके इस मिट्टी में से हीरे बाहर निकालने होंगे।

अपने विचारों को अमली जामा पहनाने की योजना भी उन्हें जल्दी बनानी होगी। उन्होंने अनुभव के सहारे बहुत-सी जनहित की योजनाएँ कार्यान्वित की थीं, इसलिए उन्हें पूरा विश्वास था कि उनकी यह योजना अवश्य सफल होगी। इसे अमल में लाने के लिए अपने जैसे कुछ अन्य वी0आर0एस0 धारकों की भी सहायता लेने की उन्होंने सोची। यह सब सोचने के बाद सुदामा का मन हल्का हो गया। फिर वे शांति और आराम से नींद के आगोश में खो गये।

अनुवाद : डॉ. के0वी0 नरसिंह राव

लघुकथा

समाप्ति

शैलजा 'श्यामा'

नदी के तीर पर घूमते समय सियार और क्रौंच पक्षी में घनी मित्रता होने के परिणाम स्वरूप सियार ने क्रौंच को अपने घर भोजन हेतु आमंत्रित किया। क्रौंच के आते ही सियार ने टेबिल पर दो थालियों में खीर परोसी और कहा, "मित्र, संकोच मत करना, खाओ...।" सियार अपनी लंबी जिह्वा से लप्-लप् खीर खाने लगा। मन ही मन हंसता वह देख रहा था कि क्रौंच क्या करता है। क्रौंच ने पंखों के नीचे से स्ट्रॉ निकाला, उसे खीर में डालकर वह चोंच द्वारा खीर चूसने लगा। सियार को आश्चर्य हुआ। भोजन समाप्त होने पर उसने क्रौंच से पूछा, "मित्र, तुमने कैसे जाना कि मैं थाली में परोसूँगा?" क्रौंच ने हँसते-हँसते कहा, "तुम्हें, तुम्हारे धाघपन को कौन नहीं जानता ? तुम्हारी हर कृति में ठगी होती है, मुझे ज्ञात था, अतः मैं स्ट्रॉ लाया।" सियार ने लज्जित होकर कहा, "मुझे पछतावे का अवसर दो। तुम मुझे अपने घर बुलाओ और भोजन सुराही में देना। प्रतिकूलता की तकलीफ मैं झेल लूँगा।"

क्रौंच ने कहा, "ऐसा करने का अर्थ है—'शठं प्रति शठयम्।' उससे क्या होगा ? देखो मित्र जैसे को तैसा यानी संघर्ष, युद्ध... और युद्ध में तो दूसरे युद्ध के ही बीज बोये जाते हैं, शांति स्थापित नहीं होती। और वैसे भी, इस तरह जैसे को तैसा आचरण करने से मिलने वाला आनंद निकृष्ट स्तर का क्षुद्र आनंद होता है, जो स्वभाव में हीनता उत्पन्न करता है। मुझे ऐसा आनंद नहीं चाहिए। क्यों न हम जैसे को तैसे वाला किस्सा यहीं समाप्त करें ? इससे प्रतिशोध का भाव ही नष्ट हो जाएगा।"

सियार क्रौंच से सहमत हुआ।

महाराष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

डॉ0 रामदरश मिश्र

ऊँचाई

सीढ़ियों पर सीढ़ियाँ, सीढ़ियाँ, सीढ़ियाँ
कितना उत्साहित हुआ था वह
इस गर्वित ऊँचाई के सिर पर बैठ कर
उन्माद की हँसी हँसकर
उपेक्षा से देखा था छूटी हुई धरती को
वहाँ पहले से मौजूद सफेद जमात ने
हास्यमय स्वर में कहा था—
"स्वागत है इस आकाश लोक में।"

अब उसे क्यों लग रहा है
कि वह अकेला होता जा रहा है
और उसे निरंतर एक भय खा रहा है
कि फिर नीचे न गिर पड़े
सपने में
उसे उसी से छीन कर कोई भाग जाता है
वह चौंक चौंक नींद से जाग जाता है

अँधेरे के विरुद्ध

रस्सा बाँध कर
वे तेज-तेज स्वरों में चीखते रहे अँधेरे के विरुद्ध
और रह-रह कर खुद ही गिरते रहे बारी-बारी
अँधेरा और और गहराता रहा
और उन्हीं के भीतर पैठ कर मुस्कुराता रहा

वह अकेला चुपचाप चलता रहा सन्नाटे में
लेकिन चलते समय उसने एक मशाल जला ली थी
सच वह अकेला नहीं था
छोटी सी ही सही, एक रोशनी उसके साथ थी
उससे कट-कटकर अँधेरा थरथरा रहा था
और वह धीरे-धीरे मुस्करा रहा था

धरती

यह समतल लंबी-चौड़ी मटमैली धरती है
यहाँ भूख है, प्यास है
निरंतर रोज़ी-रोटी की तलाश है
लेकिन इस पर लोग साथ-साथ चलते हैं
नीचे गिरने का डर नहीं होता
आकाश में कितना कुछ जगमगाता है
लेकिन वहाँ कोई हम सफर नहीं होता

फूल

रात निगल गयी थी
जड़-चेतन का अपना-अपना वजूद
एक अंधा सन्नाटा पी रहा था जीवन की साँसें
लेकिन एक फूल कहीं
चुपचाप अपनी खुशबू में नहा रहा था
कोई देखे या न देखे
उसका अस्तित्व यहाँ से वहाँ तक महमहा रहा था।

देवता

रंग-बिरंगे कीमती पत्थरों के घर में
पत्थर के देवता सो रहे थे
लोग उन पर सिर पटक-पटककर रो रहे थे
और माँग रहे थे न जाने क्या-क्या
मैं विस्मय भाव से घर लौट आया
और ज्योंही रसोई घर में घुसा
चकले से आवाज़ आयी
"अरे तुम कहाँ चले गये थे
मैं तो यहाँ हूँ।

एक शुरूआत

रोज़ रोज़ अख़बारों के पन्ने
दहशत-भरी ख़बरों से भरे होते हैं
टी0वी0 का स्क्रीन रंगा होता है रक्त से
वह बेचैन है
चाहता है कि दुनिया मुक्त हो इन कुरुप छायाओं से
लेकिन चाहकर भी अकेले क्या कर सकता है
यह किसकी आवाज़ है-
"कोई बात नहीं दोस्त, पहले अपने से शुरू करो
कम से कम एक छाया का भार तो हटेगा
हँसेगी एक छोटी सी रोशनी
और दीप से दीप जलते चले जायेंगे।

आर-38, वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

पुष्पिता अवस्थी

बूँद

बूँद-बूँद से ओस,
बूँद-बूँद से बादल,
बूँद-बूँद से नदी,
बूँद-बूँद का झरना
बूँद-बूँद का सागर
बूँद-बूँद का आँसू
बूँद-बूँद भर दुःख
बूँद-बूँद भर सुख के लिए

ईश्वर

ईश्वर में
रचा गया है-ईश्वर
ईश्वर को
बचाये रखने के लिए।

अवतारों में
अवतरित किया गया है-ईश्वर
मनुष्य को
बनाये रखने के लिए।

अकेलापन

अपने घर पर
छोड़ आती हूँ–
अपना अकेलापन
जिसे जीती हूँ मैं
और जो जीता है मुझे
आमने-सामने होने पर।

वह रहता है घर में
मेरे साथ पहने हुए कपड़े की तरह
वह रहता है–देह पर
देह में पड़े हुए अकेलेपन को
ढकने के लिए।

अकेलापन रहता है–
मेरे घर-भीतर
शब्द की तरह।
अवकाश के दिन
घर के भीतर
अकेलापन देखता है–
मेरा अकेलापन
और सहलाता है-मेरा शरीर
सोयी हुई मुलायम साँसों से
घर के भीतर
छिपा बैठा है–हर सामान में
एक उदास ठंडक बनकर
आईना ओढ़े रहता है
अकेलेपन की स्याह चादर
कि उपस्थिति पर भी
आईना,
नहीं तोड़ता है-चुप्पी

समय का मौन
समाया है–अकेलेपन में
और घर के सन्नाटे में
कि साँसें ही मेरे घर का
घर हैं।

अपने एकाकीपन से
कहीं ज़्यादा
अखरता है-मुझे
अपने घर का अकेलापन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर में
सूने और अकेले होने पर
हर चीज़ पर
मोहर लगा देती है-धूल
पुरानेपन की
हर वस्तु
ओढ़ लेती है—उपेक्षा की चादर
पूरे घर में
फैली जाती है—
मौत की परछाई
और अकेलेपन की कसक
जो
घर का ताला खोलते ही
उझककर-आ जाती हो—
हथेली की मुट्ठी में
उसे, अपनी आँखों की अंजुलि में
सहेजकर
सूर्यास्त के बाद
मिलती हूँ—अपने अकेलेपन से
जैसे—
घर पहुँचकर
पुरुष मिलता है—
अपनी स्त्री से
सारे दुःख को
सुख में बदलने के लिए

चाँद

स्मृतियों का
एक घर है
अकेलेपन के अंधेरे में

जेलों के भीतर
आज़ादी का सुख है-चाँद
आकाश से लिखता है—
गुलामी की काली पाटी में
पिघले संघर्ष की
उजली इबारत

बँदीली ऊष्मा की
शीतलता में ठंडी होती है—
मन की धधकती तोपें

चाँदनी की
रूपहली धारा में
नहाती हीं—तेजाबी आँखें
कि झर जाता है
मन का ताप
भट्ठे की राख की तरह
मन की ईंट पकने पर

नयी सभ्यता

चाटुकारों ने
विश्व की सभ्यता का
रुख बदल दिया है
और मानव-सभ्यता के
मानक भी।

चाटुकारों ने
निष्काम-कर्म से
हासिल की हैं—
कर्म सिद्धियों और
कुर्सियों को सिखाया है-बोलना
उसके लिए रची है—
मोहक और विनम्र-भाषा।

चाटुकारों की
सांस्कृतिक सुगंध
बहुत मादक है।
उनकी कहनी की
मुद्राएँ होती हैं-मोहक
वह पूरी दुनिया को
एक तरफ खतियाकर
करते हैं—स्तुतिपाठ।

चाटुकार रचते
हैं-हमेशा
छद्म खोल-प्रशंसा का
झूठ को बनाते हैं—
सच से अधिक
उत्तेजक
प्रखर और प्रभावशाली।

चाटुकार जानता है—
मानव दुर्बलता
और मानसिक क्षुधा
ये हैं-समाज के मनोवैज्ञानिक
जो रचते हैं—
एक खोखला समाज।
सच-सा दिखता
सुसंस्कृत
सुसभ्य
उल्लास से पूर्ण
लेकिन,
'धोखा'
जो चाटुकार के
जाने के बाद
खतम होता है।
जैसे—खेल 'खतम'
होता है-किसी नाटक का
और उसे
सच मानते हैं—हम
भूले रहते हैं—
कुहर देर के लिए
अपना सच
कि
कुछ की कुछ दुनिया
लोगों को कुछ और
दिखायी देती है-
जीवन भर।

P.O. Box 1080
1810 KB Alkmaar
The Netherlands

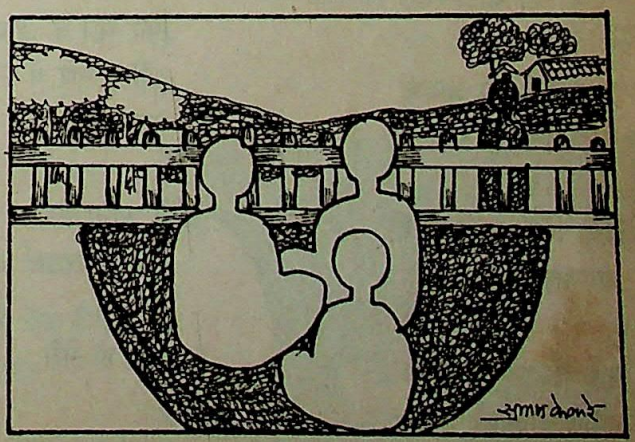

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

सुशांत सुप्रिय

फ़र्क

मैंने बर्फ़ से
हाथ मिलाया
सुन्न पड़ गई
मेरी उंगलियाँ

मैंने आग से
हाथ मिलाया
जल गई
मेरी उंगलियाँ

मैंने राजनेता से
हाथ मिलाया
मेरा हाथ ही
ग़ायब हो गया।

हादसा

कल रात
शहर में
एक महिला का शील
दुष्टों का क्रीड़ा-स्थल हो गया

एक हरा-भरा आदमी
मरु-स्थल हो गया

एक शिखर-सा बुज़ुर्ग
समतल हो गया

एक मासूम-सा बच्चा
बेकल हो गया

कल रात
यह शहर

जंगल हो गया

यूँ आना

यूँ आना जैसे
आती है हवा

सहलाना
फिसल जाना

यूँ आना जैसे
आती है धूप

पड़ना, फिर
ढल जाना

यूँ आना जैसे
आता है
शाम के आकाश में
पहला तारा
फिर भोर के आकाश में
अंतिम तारे में
बदल जाना

यूँ आना कि
मेरी ही परछाई लगो
या जैसे
साँस हो मेरी

मुझमें समा कर
निकल जाना

आत्म मंथन

पी रहा हूँ
औरों का ख़ून

हिला रहा हूँ दुम
जिसके-तिसके सामने

रेंक रहा हूँ
फ़ायदे के राग में

नोच रहा हूँ
इसकी-उसकी लाश को

मैं इंसान हूँ
या कुछ और

द्वारा-श्री एच0बी0 सिन्हा
5174, श्यामलाल बिल्डिंग
बसंत रोड
नई दिल्ली-110055

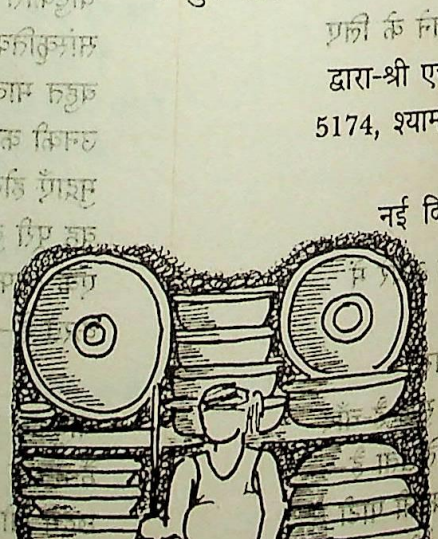

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो. कविताएँ

डा0 संजीव कौशल

तुम चाहती हो

तुम चाहतीं तो
ये बात
कहानी बनने से
रह सकती थी
अब तुम चाहती हो
लोग कहानियाँ न कहें
अब भी चाहा
नहीं चाहा
तुमने ही चाहा
तुम्हारी चाहत से बंधा
आखिर
मैं कौन सा पहलू हूँ

ई0एम0यू0

ग़ाज़ियाबाद से चलकर
तिलकब्रिज होती हुई
नई दिल्ली को जाने वाली
ई0एम0यू0
आगे बढ़ते हुए
पुरानी दिल्ली शाहदरा होती हुयी
लौट आती है ग़ाज़ियाबाद
जैसे चढ़ा आयी हो
महानुभावों की इस भव्य नगरी को
एक और माला

थैंक्स

एस सा लटका हूँ
तुम्हारे थैंक्स में मैं
के को कहना
कि थामे रखे
यूहीं बाहें मेरी

दस बज गये

'पापा देखना ज़रा
पूरे दस बज गये
अरे अब क्या करेंगे हम'

बेटे ने इन दिनों
एक घड़ी पहन रखी है/ और
नहाते वक़्त ही उतारता है उसे
जो जी में आता है
टाइम बना देता है
जैसे समय पूछ के चलता है
उससे
सच कहूँ
मैं दिल से चाहता हूँ
समय पूछ के चले उससे
इसी तरह
सारी ज़िंदगी

स्पर्श

फुटपाथ पर बिछा हूँ
फंसा दूसरे पत्थरों में
और घिस रहा हूँ
धीरे-धीरे
अनगिनत जूतों से

काश कि पार्क में रखी बेंच होता
बैठते लोग कुछ ठहर कर
करते बातें
कुछ सुखों और दुखों की
और छूती जो
उंगलियाँ
मुझे स्पर्श मिल जाता

किताबें

न जाने कितनी किताबों में
कितने ही पन्ने
मुड़े हुए दबे पड़े हैं
जब भी कोशिश करता हूँ
उन्हें खड़ा करने की
चटक के टूट जाती है
उनकी कमर

न जाने कितनी किताबों में
कितनी ही बातें
रखीं थीं संभाल कर
कि कभी और खोलेंगे इन्हें
कि कहीं और बो लेंगे इन्हें
सुना है अब किताबों से
उनकी राख झरती है।

असिस्टेंट प्रोफेसर
आई.जी.पी.इ. एस.एस. यूनीवर्सिटी दिल्ली
नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व प्रेमिका को याद करते हुए : पाँच कविताएँ

निशांत

1

एक दिन
वह मिली
मुँह घुमा लिया

एक दिन
सर नीचा किए
बगल से निकल गई

बहुत दिन बाद
अचानक
एक-दूसरे के सामने पड़ गए हम
पहले भौचक्क हुई
फिर धीमे से मुस्कुराई
अपनी सहेली से बातें करते हुए
आहिस्ता-आहिस्ता चली गई

यह मेरी पूर्व प्रेमिका थी
जाते-जाते मुड़कर देख गई
एक बार मेरा चेहरा।

2.

क्यूँ करती हो मुझे प्रेम ?
एक बार मैंने पूछा था!

"मेरा सपना था
किसी कवि से प्रेम करने का।"

एक दिन उसने कहा-
"मुझे लगता है
मैं आपसे नहीं कर पा रही हूँ प्रेम"
और डेने खोल उड़ गई

मैं
आज तक
इंतजार कर रहा हूँ।

3.

अभी भी
एक मुस्कुराहट
कितने सारे सवालों के जवाब हो सकती है।
अभी भी
बचा के रखा जा सकता है प्रेम
एक छोटी सी डिबिया में!

अभी भी
बदली जा सकती है दुनियाँ
तुम्हारी आँखों के इशारों पे।

तुम
एक बार
कहकर तो देखो।

4.

आज
उसे
बहुत नजदीक से देखा

लगा
कुछ बदल गया है

क्या...
क्या...
क्या...

शायद
प्रेम....

शायद
प्रेम....

5.

पहले
उसे याद करके
अकेले में रोना चाहता था
रोता था
बहुत धीमे-धीमे

अब
कभी-कभी मुस्कुरा लेता हूँ

उस उम्र में ही संभव था 'वह', सब कुछ
उसकी तीव्रता

अब तो
कभी-कभी 'उस सब' की याद आती है
मुस्कुरा देता हूँ धीरे से
एक फीकी हँसी।

द्वारा-विजय कुमार साव
128, पेरियार,
जे.एन.यू.
नई दिल्ली-110067

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर पल मिटती हुई

लता श्री

हर दिन रात की राख को बुहार कर सुबह होती है लेकिन हर शाम दिन को रात से जोड़ देती है। भले ही जीवन विगत नहीं आगत का नाम है लेकिन यादें वो हकीकत हैं जो हमें अपने आपसे अलग नहीं होने देतीं। कई बरस बीते पर लगता है, आज की बात है। मैं उस आँगन की शाख थी जहाँ किल्लत की कड़ी धूप शबनम की ओट लिए मिलती थी। तकलीफ बेहयाई से आँखें नहीं मिलाती थी, बल्कि हर कमी एक शोखी बनकर भीतर बस जाती थी। गुड़िया-खिलौने, लुका-छिपी और घर-घर खेलना ये सारे शौक मैंने दो-चार तितलियों को पकड़कर उड़ा देने में ही पूरे कर लिए क्योंकि मेरे पास लुटपन के लिए वक्त कहाँ था। ये धरती जो पहले की बोझिल थी अपना भार भी उसे देना मुझे कैसे गंवारा होता इसलिए अपना ज़्यादा से ज़्यादा बोझ खुद के कंधे पर डाल मैं बढ़ने लगी। पेंसिल की छोटी टुकड़ी कलम के ढक्कन में फंसा बढ़ाने की चाहत को कोशिश की सीढ़ियाँ चढ़ाती रही, खस्ताहाल बासी आदमियत से नई ताजगी लेती, उतरन कपड़े और फटे जूते पहन कर भी मैं निःसंकोच नयी उड़न भरती रही। इस तरह अपनों ने ज़िम्मेदार और ज़रूरतों ने समझदार बना दिया।

क्या मुझे मलाल है बड़े बनने की कोशिश में मैंने बचपन खो दिया? नहीं, बिल्कुल नहीं। बल्कि उन दिनों तो मैं बेइंतहा खुश थी, गले तक ज़िंदगी में डूबी हुई, हर चीज में कुछ पाने, हर शै कुछ ढूँढने की चाहत से लबरेज़, अपनी नज़र से पूरी कायनात पीती, ख़्वाहिशों के आस्मां पे कोशिशों के सितारे जड़ती-हर पल बनती, हाँ हर पल बनती।

उफ! ये कैसी कसैली मुस्कान है मेरे होठों पे। शायद मेरा अंतस् मुझे उलाहना दे रहा है कि निकलो इस गिरफ़्त से, संवेदनाओं के आस्मां से यादों के चाँद को निकाल बाहर करो कि अब तो काली रात है, घनघोर काली रात... अब मैं बड़ी जो हो गई हूँ हर पल मिटती हुई।

मैं अपने भीतर की तन्हाइयों को बाहर की मसरूफ़ियत के सुपुर्द कर अपनी राह चल रही थी कि एक दिन अचानक एक तस्वीर मेरी आँखों में झाँकने लगी, धीरे-धीरे मेरे जज्बातों में तैरने लगी और फिर मेरी रगों में बहने लगी। उस तस्वीर के हरे रंग को अपने पोर-पोर से महसूस करती हुई बदरंग और बेजान से सुर्ख रंग और दिलनशीं बनी। सच्ची एकनिष्ठता से उन रंगों के कदमों तले बिछकर होठों पर उसकी खुशी सजाए, उसके सारे ग़म अपनाकर तमाम अच्छाइयों और बुराइयों को सहेजती दिल से दुआ करने लगीं। मैं उसके साथ अँधेरे और उजाले के झिलमिले को पार कर एक जादुई दुनिया में प्रवेश कर पाई। जहाँ सूरज तड़प की तपिश लिए धरती को प्यार कर रहा था। शुरू से ही मेरी आँखों ने नींद में कोई सपना नहीं देखा, मैं हमेशा से हक़ीकत की ज़मीन पर चलती रही इसलिए इस एहसास को ग्रहण करना मेरे लिए सहज नहीं था लेकिन उसे बिसराना नामुमकिन हो गया। आख़िरकार अपने भीतर की जद्दो-जहद को विराम दे जिन रंगों को मैं ठिठुरता नहीं देख सकती थी उन्हें अपनी रूह जलाकर तपिश देने लगी।

लेकिन समय कभी एक-सा नहीं रहता, यही इसकी पहचान है। धीरे-धीरे सारे हाथ रूठ गए, सारे साथ छूट गए। मेरी जागी पलकों ने जो सजाए थे वो सारे ख्वाब झर गए। एक अपने ज़िस्म का ही सहारा था जो मुझे हर पल काम में उलझा कर दिल के दरीचे तक आने ही नहीं देता था। लेकिन इसकी बीमारी ने मुझे भीतर से परेशान कर दिया। मेरा कतरा-कतरा जिसमें एक मुश्किल और काम -काजी ज़िंदगी धमा-चौकड़ी करती थी, वहाँ मेरे लहू मे ज्वर का ज़हर भर गया और रह-रहकर मेरी नसें दर्द से फटने लगीं। मेरी चरमराती ज़िंदगी का एक अंतिम आसरा था कि मेरा ज़र्रा-ज़र्रा किसी के पास महफूज़ है और मैं इसी खुमार के साथ अपनी आख़िरी साँसें लेना चाहती थी।

लेकिन... लेकिन... लेकिन होता वही है जो होना होता है- मैं उलझी और परेशान इस ख़्वाहिश के साथ खुश थी कि कोई है जो मेरे ग़म में शरीक है, जिसे मेरे दुःख का अंदाजा ही नहीं एहसास भी है। जिसकी एक जुंबिश से मेरी कँपकँपाती ऊँगलियाँ फिर से जी उठेंगी, जिसके अपनेपन के दो बोल मेरी बोझिल साँसों को फिर महका उठेंगी। मेरी इन बेचैन दहकती आँखों को एक उसकी ही लोरी थोड़ी-सी नींद दिला सकेगी।

लेकिन में ग़लत थी-उसने अपनी उपस्थिति तो जतलाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु अनछुऐ पहलू-सा। उसने मेरी परवाह भी दिखलाई लेकिन ड्यूटी बजाने-सा। यहाँ तक कि उसके वाक्य भी शब्दों में बदल गए थे और मैं शायद एक बोझ में।

मेरी उम्मीद तिल-तिलकर मर रही थी, मेरा विश्वास भी दम तोड़ रहा था। मेरी आत्मा बिलख रही थी मेरा रोम-रोम चीत्कार रहा था धोखा... धोखा... धोखा। मैं फिर ठगी गई... मेरा सारा वजूद ढह रहा था, मेरी भावनाएँ मेरे घुटने पर सर पटक-पटक कर रो रही थी और मैं बेबस.... लाचार लुटी-लुटी आँखों से खुद को देख रही थी। इस बार दुःख सबसे बड़ा था क्योंकि मुझे लूटने वाले हाथ मेरे ही थे।

तभी मैं देखा, मेरे हाथ सूने थे, मेरा अंग-अंग कोरा था मेरी आत्मा पर कोई रंग था ही नहीं, तस्वीर अपने सारे रंग खुद में समेटे मुझे झकझोर कर मेरे सारे भ्रम तोड़कर मुझ पर अंतिम एहसान कर रहा थी। मैं इस दान से खुद को वंचित नहीं कर पाई, अपनी आत्मा पर पड़ी विश्वास की लाश को भावनाओं की अर्थी में सजाकर अपनी आँखों में उसकी चिता जला दी। मैं बेशुमार रातें उन जलती आँखों से जगती रही... टूटती रही... मिटती रही-और जब आगे, राख हुई तो चितवन, सिहरन, स्फुरण यहाँ तक की जीवन भी ढेर हो गया।

कुछ भी मिलता है अपनी पूरी कीमत वसूल करने के बाद और जब वह भी खो जाए तो हम किस क़दर खाली हो जाते हैं। ये रिक्तता का एहसास एक संक्रमण बन हर लम्हा दूसरे पल को निगलता जाता है। मैं आँखों में अँधेरा भरे हर कदम दलदल लिये अपने धराशायी अस्तित्व को जर्जर हिम्मत के हाथों सहलाने लगी। रात की उदासी में मैने कुछ लोगों को देखा जिनमें कुछ की आँखें फटी हुई थी, किसी का कलेजा कट गया था। किसी का पेट फटा था, किसी की अंतड़ियाँ उलट गई थी, किसी का धड़ सर से अलग होकर छटपटा रहा था। किसी की नस-नस चरमरा गयी थी, किसी की पूरी हड्डियाँ ऐंठ गई थी, किसी का ख़ून रिस रहा था, किसी का मवाद बह रहा था। ये सारे ज़िंदगी के कुशल अभिनेता थे। यहाँ सब अधूरे हैं, बिल्कुल अकेले। अपने अधूरेपन को उनके आधेपन

से भरा जा सकता था। इसलिए मैं चुपचाप उनसे हिलमिल कर सो गई।

ये ज़िंदगी हज़ारों-लाखों बार की दोहराई हुई है। यहाँ कुछ भी आधृत नहीं, यूँ तो ज़िंदगी ठहरी हुई है लेकिन थमने का नाम नहीं लेती। साँसे जिनमें केवल पूर्ण विराम है, कोई अल्प या अर्द्धविराम नहीं, रुकने तक ये केवल चलना जानती है। कई दिन हुए उन्हीं साँसों ने मेरी ज़िंदगी के ढेर को उड़ा दिया लेकिन उसमें छुपी एक चिंगारी चुपके से मुझमें समा गई और धड़कनों की थाप पर साँसों की मीठी आँच बनने लगी।

अब भीतर हर पल ज्वालामुखी की लपटें लिए मैं खौल रही हूँ, या ठंडे बर्फ की मानिंद में बिल्कुल शांत हूँ।

किन्तु अब फर्क़ नहीं पड़ता। जान गई हूँ जलना या पिघलना दोनों का अंत एक ही है-समाप्त होना। अब मेरी पथराई आँखों में आँसू आकर पूछते हैं-बोलो गले में ही सूख जाऊँ या पलकों से गालों तक ढलक जाऊँ।

आज सुबह धड़कनों ने मुझसे पूछा—कोई उलझन तो नहीं, जवाब में मैने गुनगुना दिया-

जिनको चाहत हो वो रोशनी पा ले
हमने तो दिल जलाकर सरेआम रख दिया।

क्वा0 नं0 - के0 3, सी0 टी0 एस0 कॉलोनी, हजारीबाग (झारखण्ड)

इस अंक के रेखांकन के चित्रकार हैं

सुभाष केकरे

आर्शीवाद रंगपुर रोड नं. 4, डडवाड़ा कोटा जक्शन, कोटा-324004 (राजस्थान),
फोन नं. 0744-2440650

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुजान की पीर देखकर पीर स्वयं रो उठी

नीलम कुलश्रेष्ठ

"हौंस हौंस फूलन के सारे सिंगार सजौं
आँगन में फूलन कौ चदरा बिछाऊँगी।
जा दिन सनेही घर आवै घन आनंद जू
घर द्वार गली गली दियरा जलाऊँगी।"

ब्रजभाषा में पंक्तिबद्ध ये भावनाएँ घनानंद की प्रेयसी सुजान की हों, लेकिन इन्हें अभिव्यक्ति दी है गुजरात की प्रथम हिन्दी कवयित्री कुमारी मधुमालती चौकसी ने। कवि घनानंद ने सुजान से अपने प्रेम की अभिव्यक्ति राधा-कृष्ण को प्रतीक मानकर की है। उनके छंदों में बार-बार सुजान शब्द आता है। सुजान भी तो गायिका कवयित्री थीं। क्या उन्होंने भी विरह में छंद नहीं लिखे होंगे? यही सोचकर मधु जी ने ब्रजभाषा में 'सुजान की पाती' लिखी है। मधुजी के शब्दो में –

"मेरी पीर देखि पीर सुबक सुबक रोवै
तरफै सुजान तौन आहें न भरत है।"

एक-डेढ़ वर्ष पूर्व जब मैं इस पुस्तक की गहनता में डूब चुकी थी, तो इधर-उधर फ़ोन करके इस पुस्तक पर कुछ लिखने का अनुरोध करती रही। उत्तर यही मिलता था कि पुस्तक ब्रजभाषा में है। इधर एक फ़िल्म की नर्तकी अंजलिका शास्त्रीय संगीत पर नृत्य करती हुई मेरी रूह में कुछ इस तरह समा गयी कि लगा कि हर राजनर्तकी, हर राजगायिका के प्रेम का अंत यही है! अंजलिका का प्रेमी-साथी नर्तक व कवि था। अंजलिका पर आसक्त राजा ने तलवार से कवि की गर्दन उड़ाकर उनके प्रेम का अंत कर दिया। अंजलिका के चेहरे पर पड़े प्रेमी के ख़ून के छीटों व उसकी तड़पती चीख़ में सुजान की चीख़ घुलमिल गई है।

अंजलिका या सुजान ही क्यों, राजदरबार से जुड़ी ऐसी कलाकारों की नियति यही रही है, चाहे वह सलीम की अनारकली हो, नगरवधू चित्रलेखा हो, बीजगुप्त के दरबार की नर्तकी आम्रपाली का बौद्ध धर्म अपनाना हो या सुमधुर गायिका रूपमती राजा बाज बहादुर से मांडु में का दर्ज़ा पाकर भी षडयंत्र की शिकार बनी हो। मांडु के क़िले में घूमते हुए रानी रूपमती बुर्ज की ऊँचाई को देखकर राजा बाज बहादुर के गगनचुंबी प्रेम की थाह को छू लेती है। कहते हैं, बाज बहादुर ने ये बुर्ज इसलिए बनवाया था कि रानी रूपमती प्रतिदिन अपने गाँव तेजपुर में नर्मदा नदी की पूजा करके सुबह अन्न ग्रहण करतीं थी। इस बुर्ज से वह नदी दिखायी देती थी, इसलिए सुबह रानी अपने महल से पूजा करने इस बुर्ज पर चढ़ती थीं। दीवाने बाज बहादुर ने अपना संगीत कक्ष पास में ही बनवाया था, जिससे सुबह-सुबह अपनी प्रिया के दर्शन कर सकें। इन दो संगीत कलाकारों के मिलन का समय भी षडयंत्र के कारण दीर्घकालीन न हो सका, लेकिन उस उद्दाम प्रेम की शिद्दत ने भारत जैसे दकियानूसी देश में मांडु के क़िले में बोर्ड लगवा लिया–'रानी रूपमती की प्रणय-नगरी'।

सुजान के प्रेम की भावाव्यक्ति वाली इस पुस्तक में मधु जी के निवेदन में ही इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मिल जाती है। आनंद विक्रम की सत्रहवीं शती के सर्वप्रथम कवि घनआनंद हैं। ये मुग़ल सम्राट मुहम्मदशाह रंगीले के मुंशी थे। बादशाह गान-विद्या और काव्य-रचना में प्रवीण थे। इस बादशाह के दरबार में एक अत्यंत ख़ूबसूरत वेश्या गायिका थी–सुजान। घनआनंद इस सुजान पर आसक्त थे। दोनों के प्रेम का एक बड़ा कारण था–कविता। बादशाह भी उनके व्यक्तित्त्व व कवित्व से प्रभावित थे, इसलिए दरबारी उनसे जलते थे। इधर सुजान की कवि के लिए प्रेमदृष्टि भी उनसे छिपी नहीं थी। दरबारी घनआनंद को दरबार से निष्कासित करवाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने बादशाह से कहा कि वे उनसे गाना सुनें। घनआनंद गाना सुनाने में संकोच करते रहे, तो दरबारियों ने कहा–"ये गीत नहीं गाएँगे, इनकी प्रेरणा सुजान को बुलाया जाए।"

बादशाह ने सुजान को बुलवा लिया। उन्हें देखकर घन आनंद ऐसे तन्मय हो गये कि उन्होंने उसकी तरफ़ उन्मुख होकर आत्मा से अलाप लेकर ऐसा सुंदर गाया कि सब स्तब्ध रह गये। बादशाह मुहम्मदशाह जब स्वरों के तरन्नुम से जागे, तो यह देखकर क्रोधित हो गये कि घनआंनद उनकी तरफ़ पीठ करके गा रहे थे। उन्होंने तुरंत ही उन्हें देश-निष्कासन का आदेश सुना दिया।

राज सम्मान की आशा करने वाले घनआनंद पर क्या गुज़री होगी, यह सोचा ही जा सकता है। वे दिल्ली से जाने से पूर्व सुजान के पास गये और उससे साथ चलने का अनुरोध किया। सुजान ने दृढ़ता से इन्कार कर दिया व समझाया–"मैं तो इस राज की बंधक हूँ। मैं तुमसे अत्यधिक प्रेम करती हूँ, लेकिन तुम्हारे साथ मैं चल दी, तो बादशाह के सिपाही हमें कहीं से भी ढूँढकर क़त्ल कर देंगे। मुझे अपनी मौत की परवाह नहीं है, लेकिन तुम्हारी जान मेरे लिए अनमोल है।"

हताश को घनआंनद वृंदावन चले गये और वैष्णव संप्रदाय में दीक्षित होकर कृष्ण-भक्ति में लीन हो गये, लेकिन सुजान के नाम को वे कभी अपने हृदय से मिटा नहीं सके, न अपने छंदों से। मधु जी के अनुसार सुजान से घनआंनद का प्रेम परकीयत्व की ओर जाने का आग्रह करता है:

"सूने घर गैल हाट बाट सब सूने भयै
सूनो मन बिलाखे बिलखि भयो अनौ है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

. . .

"मेरौ घन आनंद सुजान परदेस गयो
याही तौं ये सौ मुख मोरि कतराति है।"

दिल के निपट सूनेपन से जूझती नायिका हो या ये उलाहना देती व बताती कि किस तरह वह घनआनंद के छंदों के छल भरे मधुर शब्दों के कारण प्रेमपाश में फँस गयी थी :

"हौं तो मतिमंद छल छंद सो फँसाई मोहि
प्यार भरे नैनन की सेन ते बुलाइबे।"

इन छंदों में जैसे एक प्रेयसी की मनुहार चित्रित है:

"साँच को जु आँच नाहिं होति घन आनंद जू
याही तै तो उर माँहि आसनु बिछाऊँगी।
कहौ जू निहोरौ कहि आवौ वेगि आवै यहाँ
आँखिन के द्वारे ताहि उर मैं बिठाऊँगी।

सुजान के दिल में तड़प की ऐसी आग लगी कि वह गाँव तक के जल जाने की बात करती है:

"आज उर दाह तैं उठति ज्वाला आनंद जू
मोहि तो लगे है सारो गाँव जरि जावैगो।"

सुजान की गहरी प्रीति की तड़प से मधुबेन ने जैसे एक एक अक्षर सींचा है:

"एक एक आखर में एक एक बूँद भरी
याही तै तो कहौं तायें टीसें भरी प्रान की
बाँचि लीजो एक एक पाँति छू सुजान प्यारे
फारि फेंकि दीजौ नाहीं पाती या सुजान की।"

दरबार में घनआनंद के सुजान को देखकर तन्मय होकर गाने की बात आग की तरह पूरे में फैल गयी थी। घन आनंद तो वृंदावन चले गये थे। बदनामी का बोझ गायिका सुजान को भोगना पड़ा होगा, तभी वे शिकायत करती हैं:

"तुम सौं स्नेह करि गई बदनाम घन
मोहि बतलावैं लोग आँगुरी बताइ कै।"

सुजान बादशाहों के बार-बार कसते शिकजों से अपने को बचा लेती होगी। वह हेकड़ी से कहती है:

"बड़े बड़े भूप और अनूप रूप देखि लीन्हें
जानति हौं जग माँहि लागी छाप राहु की
काहू की जिवायै नाहिं जीवौ घनआनंद जू
प्यासी नाहिं रूप की, दासी नाहिं काहू की।"

सुजान के हृदय में कोई और क्यों नहीं जगह बना पाता, उसी से सुनिए:

"मन के हुलास माँहि मोद की लहरि उठै
तासौं हियरा में कोऊ चोर घुस पावै ना।"

वह विरह की आग में मर जाने की धमकी दे डालती है:

"औरै काहिं दीजै दोस भाग में लिख्यौ है तातै
विरहा की आग में अकेली जरि जाऔंगी।"

. . .

"कौन विरभागै अजहूँ न तुम आये तातैं
दियरा जरावौं नाहिं हियरा जराऔंगी।"

राजदरबार की एक गायिका हमेशा आभूषणों, चमकदार वस्त्रों से व फूलों के महकते गजरों से सजी रहती है। वह मधु जी के शब्दों में क्या कह रही है:

"फूलन में बैठि बैठि शूलन सौं बातैं करौं
ऐसी अनहोनी रीति कबौं ना निहारी है।"

या

"काहू सौं कहोगी नाहिं गोई राखौ हिय माँझ
घन मन ले गयो छाँडिके सुजान को।"

सुजान अंत में इतनी निराश हो जाती है कि सोच लेती है कि उसका प्रेम असफल ही रहेगा, वह बिना प्यार किये मर जाएगी; इसलिए मधु जी लिखती हैं:

"हौं तो मर जाऊँगी न रंच अफसोस मोहिं,
बिरह बिचारौ रोइ रोइ मरि जावैगो।"

. . .

"आवै घन आनंद बताइ दीजो अँगुरी सौं
सोइ है सुजान यहाँ थाती लै विजोग की।"

मधु जी ने गुजरातीभाषी होते हुए भी जिस तरह व्याकरण का ध्यान रखते हुए ब्रजभाषा के छंद लिखे हैं, उन्हें देखकर अचंभा होता है। यह ज्ञान उन्हें अपने गुरु व मुँहबोले अग्रज पंडित राधेश्याम शर्मा जी से प्राप्त हुआ था।

उत्कट प्रेम से बरसते, लरजते शब्दों वाली इस पुस्तक के प्रकाशन में बैंक ऑफ़ बड़ौदा के एक वरिष्ठ अधिकारी श्री रोशनलाल ने रुचि ली व मेहनत की, तब इसका प्रकाशन संभव हो सका।

गुजरात हिन्दी साहित्य अकादमी के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. अंबाशंकर नागर ने एक कार्यक्रम में बताया था—"कच्छ में प्राचीन ब्रजभाषा संस्थान होने के कारण गुजरात में ब्रजभाषा साहित्य इतना लिखा गया है कि यहाँ से ट्रक में भरकर ले जाया जा सकता है।"

सुजान की पाती की भूमिका लिखते हुए सुप्रसिद्ध कवि व महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय, वडोदरा के हिन्दी विभाग के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष डॉ0 विष्णु विराट ने लिखा है—"गुजरात में हुए ब्रजभाषा साहित्य-सृजन की शृंखला में कवि दयाराम गोविंद गिल्लभाई, महिरावण सिंह जैसे महान कवियों की ओजस्वी श्रेणी में यह ब्रज काव्यकृति 'सुजान की पाती' भी पूर्ण सम्मान और साहित्यिक ऊँचाइयों के साथ प्रतिष्ठित होगी। घन आनंद का छंद-विधान और भाषा की प्रकृति उनके समग्र काव्य सृजन पर हावी रही है। आश्चर्य तो तब होता है, जब कुमारी मधुमालती की कविता भी उसी तेवर और कविता के उसी मिजाज को आगे बढ़ाती है। कहीं लगता ही नहीं कि ये कविताएँ घनआनंद की कविताओं से अलग हैं।"

150/बी, रेलवे कॉलोनी, प्रतापनगर, वडोदरा-4

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रलय प्रतीक्षा : जन-जागरण का कलात्मक दस्तावेज़

देवेंद्र कुमार गुप्ता

आज हम सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्रों में भ्रम की स्थिति देख रहे हैं, इसके परिणामस्वरूप अनेक विसंगतियाँ सामाजिक जीवन में घर करती जा रही हैं। ऐसे समय में आधुनिक राजस्थान के निर्माण में अग्रणी भूमिका निभाने वाले और नारी-शिक्षा एवं ग्रामीण जीवन के उन्नायक श्री हीरालाल शास्त्री की उनके रचनात्मक कार्यक्रमों एवं अनुभवों पर आधारित पुस्तक 'प्रलय-प्रतीक्षा' प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक का संपादन प्रो. दिवाकर शास्त्री एवं श्री बिहारी शरण पारीक ने बड़ी कुशलता से किया है। पुस्तक को दो खंडों में विभाजित किया गया है। प्रथम खंड में शास्त्री जी के गीतों का संग्रह है। ये गीत एक ओर शास्त्री जी के लोक से गहरे जुड़ाव को रेखांकित करते हैं, वहीं उनके गहरे सामाजिक सरोकारों की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। किसान-जीवन से जुड़ी बहुत-सी समस्याओं को उन्होंने स्वर ही नहीं दिया, बल्कि उनके गीतों में शोषण के प्रति पीड़ा मौजूद है, उसे रोकने का आह्वान है। किसानों में उत्पन्न जागृति को व्यक्त करती, ये पंक्तियाँ देखिए :

"थारा पेट जस्यो ही म्हारो, रोटी माँगै रोज।
म्हाँने भूखाँ मार-मार कर, थारो जीबो नौज।।"

इन गीतों में किसानों की वास्तविक दशा, जीवन कुटीर द्वारा किये गये प्रयासों एवं विघटनकारी तत्त्वों की चालबाज़ियों का पर्दाफ़ाश किया गया है। शास्त्री जी ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्य में संलग्न थे, अतएव किसानों में चेतना जाग्रत करने के लिए उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम चलाये, ये गीत इसी शृंखला की कड़ी के रूप में हैं।

समाज के स्वाभाविक विकास को अवरुद्ध करने में सामाजिक कुरीतियाँ काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार रही हैं। इन कुरीतियों का सबसे अधिक शिकार ग़रीब आदमी हुआ है। शास्त्री जी ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठायी। इन गीतों में जाति प्रथा-जाति के ठेकेदार पंचों और उनकी वास्तविकता से परिचय कराया है :

"दुनिया भर का धरम करम को पंच इजारो लियाँ फिरै।
यांका सिर पर सारो बोझो जको बिचारा लियां फिरै।।

XXX

घर जो कोई नहीं लुटावै गैले गैले काम करै।
पंच खफा हो उलंकै तांई कालो टींको लियां फिरै।"

समाज में इन कुरीत्तियों को महिमामंडित करने के लिए शास्त्र और परंपरा की दुहाई दी जाती है। शास्त्री जी इस कटु यथार्थ से परिचित थे, उनका कवि-हृदय इनके विरुद्ध आवाज़ उठाता है। वे मृत्युभोज, बाल-विवाह एवं अनमेल विवाह जैसी सामाजिक कुप्रथाओं को बंद करने का आह्वान करते हैं और ग्रामवासियों को स्वावलंबी होने का संदेश देते हैं, वे साफ़ शब्दों में कहते हैं :

"घर को धंधों में कर ले, खोटी आस पराई।
घर को पीसो घर में रासें, बोलो कसी बुराई।।"

शास्त्री जी ने जन-जीवन को निकट से देखा था। वास्तव में, वे ज़मीन से जुड़े सामाजिक कार्यकर्ता थे। ग्रामीण जीवन से उन्हें विशेष लगाव था। गाँवों की दुर्दशा एवं ग्रामीणों के शोषण को देखकर उनका संवेदनशील हृदय व्यथित हो जाता है। इस पुस्तक में संकलित 'बारला गाँव हालाँ की प्रार्थना', 'गरीब की प्रार्थना', 'सेवक परियाद', 'प्यारो साँवरियो', 'ललकार', 'मोटो कपड़ो', 'नुकता को ख्याल', 'नुकता को पाप' गीतों के माध्यम से जन-जागृति उत्पन्न करने का प्रयास है।

आबादी का लगभग पचास फ़ीसदी हिस्सा और समाज में सदियों से हाशिये पर रही स्त्रियों के प्रति चिंता, शास्त्री जी के गीतों में साफ़ दिखायी पड़ती है। स्त्रियों की क्षमता में उनका गहरा विश्वास है, वे उनकी ताक़त को पहचानते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि पति-पत्नी के समन्वय से ही घर का कल्याण होता है। वे महिलाओं का आह्वान करते हैं कि कुरीतियों का परित्याग करके चेतना-संपन्न बनें, ताकि देश एवं समाज का विकास हो। नारी-शिक्षा के प्रसार पर उन्होंने विशेष बल दिया है :

"हाँ सखी! थे बात बिचारो। आपणा घर को काम सँवारो।
पैली थे विद्या अपणावो। मार अविद्या दूर भगावो।।
विद्या को परचार हुयां सब होय सुधारो जी-सखी थे।"

पुस्तक के दूसरे खंड में शास्त्री जी के नेतृत्व में चलने वाले जीवन कुटीर के कार्यक्रमों की समीक्षा उन्हीं के शब्दों में है। समाज-सुधार का कार्य सरल नहीं है; इसके लिए त्याग, निष्ठा, धैर्य एवं संघर्ष की आवश्यकता है। इस संदर्भ में कबीर की यह उक्ति उचित ही है—'जो घर फूँके आपना, चले हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ।' शास्त्री जी क़ानून के माध्यम से सामाजिक सुधार को उचित नहीं मानते, बल्कि इसके लिए समाज को जागरूक करना चाहते हैं। वे लिखते हैं कि "दुनियां का जितना पैसा आजकल धर्म-पुण्य के नाम पर मुफ़्तखोरों की जेब में जा रहा है, उतना अगर देश की भलाई वालों को मिल जाए, तो देश-सेवकों की एक फ़ौज खड़ी हो जाए।" वे समाज में व्याप्त समस्याओं से बेहद चिंतित थे, साफ़ शब्दों में चेतावनी देते हैं कि "दुनियां की जो हालत हम जानते हैं, उससे कहीं ज़्यादा बुरी हालत है। अगर आप समझदार हैं, जल्दी फिकर करेंगे और थोड़ी बहुत रोक तो लगाएँ, नहीं तो जल्दी ही ऐसा तूफान आएगा कि किसी के बाप के भी रोके नहीं रुकेगा।"

पुस्तक के परिशिष्ट में शास्त्री जी का परिचय है, जो उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता एवं संघर्ष-यात्रा को व्यक्त करता है। यह पुस्तक तत्कालीन समय के सच से तो परिचित कराती है, साथ ही हमारे समय में सामाजिक सुधार में लगे व्यक्तियों एवं संस्थाओं के लिए मार्गदर्शक हो सकती है।

हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्रलय प्रतीक्षा, हीरा लाल शास्त्री, संपादक : प्रो. दिवाकर शास्त्री, बिहारी शरण पारीक, शिल्पायन, 10295, लेन नं.1, शाहदरा, वैस्ट गौरखपार्क, दिल्ली-32, मूल्यः रु 200/-

---

वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010

वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010 के लिए मौलिक, अप्रकाशित कहानियाँ आमंत्रित हैं। पुरस्कार राशि रु0 11,000=00 है, जो कमलेश्वर जी के परिवार ने इस प्रयोजन हेतु 'वर्तमान साहित्य' को प्रदान की है।

कहानियाँ साफ़ टाइप की हुई हों तथा तीन प्रतियों में हों। कहानी की हर प्रति पर लेखक का नाम व पता अवश्य हो। कहानी भेजने की अंतिम तिथि 30 सितंबर, 2010 है। लिफाफे पर **'वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार'** अवश्य लिखें।

कहानियों का चयन एक निर्णायक-मंडल द्वारा किया जायेगा। चयनित कहानी पर पुरस्कार जनवरी, 2011 में प्रदान किया जाएगा।

कहानियाँ संपादक, वर्तमान साहित्य को निम्नलिखित पते पर भेजें।

संपादक

वर्तमान साहित्य

28-एम0आई0जी0, अवन्तिका-1, रामघाट रोड, अलीगढ़

ई-मेल से भेजी कहानी प्रतियोगिता में स्वीकार नहीं की जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामविलास जी की कविताओं पर गोष्ठी

रामविलास जी के 97 वें जन्म दिवस के उपलक्ष्य में 26 फरवरी 2010 को दिल्ली के त्रिवेणी कला संगम सभागार में एक संगोष्ठी और सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। गोष्ठी का विषय था, 'रामविलास जी की कविताएँ।' गोष्ठी के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय से जुड़े एक नाट्य ग्रुप 'गवाह-द विटनेस' ने रामविलास जी के लिखे हुए एक प्रहसन 'महाराजा कठपुतली सिंह' का मंचन किया। कार्यक्रम के अंत में सुश्री सुदेश का गायन हुआ जिसमें उन्होंने राग विहाग में आलाप और तराना, एक भजन और एक होली के अलावा रामविलास जी एक प्रारंभिक कविता 'हम गोरे हैं' को कब्बाली के रूप में प्रस्तुत किया।

डॉ. रामविलास शर्मा फाउंडेशन द्वारा आयोजित इस गोष्ठी के मुख्य वक्ता थे, केदारनाथ सिंह और मुरली मनोहर प्रसाद सिंह। कार्यक्रम की अध्यक्षता की विश्वनाथ त्रिपाठी ने।

गोष्ठी के आरंभ में रामविलास जी के अनुज और उनकी पारिवारिक पत्रिका 'सचेतक' के संपादक राम शरण शर्मा मुंशी ने उपस्थित विद्वज्जनों का स्वागत करते हुए दो कविताएँ पढ़कर सुनाई जिनमें से एक रामविलास जी की लिखी हुई थी सन् 1936 की और दूसरी श्री केदारनाथ सिंह की सन् 1983 की। मुंशी जी ने कहा कि यद्यपि दोनों कविताओं के लेखन काल के बीच लंबा अंतराल है, फिर भी इनमें आशा का स्वर समान है। राम विलास जी की कविता का शीर्षक था 'नया गौरव' और केदार नाथ सिंह जी की कविता का शीर्षक था 'यह पृथ्वी रहेगी'।

विजय मोहन शर्मा ने कहा कि यूँ तो रामविलास जी की कविताएँ पहले से ही छप रहीं थीं किंतु एक गंभीर कवि के रूप में उनकी छवि 'तार सप्तक' के प्रकाशन के बाद से ही बनी। तार सप्तक में रामविलास जी के नाम से छपे वक्तव्य के बारे में विजय जी ने बताया कि उस वक्तव्य का अंतिम पैरा, जिसमें कहा गया है कि कविता लिखने में बड़ी मेहनत पड़ती है, उनका लिखा हुआ नहीं है। बाकी का वक्तव्य रामविलास जी का लिखा हुआ अपना 'परिचय' है। वक्तव्य के इस वाक्य से यह धारणा उत्पन्न होती है कि रामविलास जी को कविता लिखने में बड़ा कष्ट होता था, जबकि असलियत इसके बिलकुल विपरीत थी। वह कविताएँ ही लिखना चाहते थे। आलोचना के क्षेत्र में वह आते ही नहीं यदि उनके प्रिय कवि निराला पर 'द्वेषपूर्ण आरोपों की वर्षा' न हो रही होती'। साहित्यकार के अलावा रामविलास जी एक इतिहास चिंतक भी थे। कम कविताएँ लिख पाने के बारे में वह कहते हैं जो व्यक्ति एक विकासोन्मुख साहित्य की आवश्यकताओं की चीन्ह कर उसे अनुरूप गद्य लिखे, वह कवि हो भी कैसे सकता है। मुरली मनोहर प्रसाद सिंह जी ने कहा कि कविताओं के क्षेत्र में रामविलास जी ने दो बार पहल की है। पहली बार सन 1936 के आसपास जब सिर्फ़ वे ही नहीं, उनके रामकालीन कवि नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र और मुक्तिबोध अपने-अपने अंचल का जीवन लेकर कविता में आते हैं। सन् 1943 में केरल के चार कम्युनिस्ट नेताओं को फाँसी की सजा सुनाई गई थी। रामविलास जी ने इस घटना को लेकर कविता लिखी,

कथा सुनो अब एक गाँव की, हियां से दक्खिन में बड़ी दूर
सात लाख है गाँव देस मां जिसमां एक बसा कय्यूर।

इसके आगे रामविलास जी किसानों की संघर्ष गाथा कहते हैं।

अपने अध्यक्षीय भाषण में विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा कि—रामविलास जी की एक कविता है, 'किसान कवि और उसका पुत्र' जिसमें वह कहते हैं,

यह मानव का हृदय क्षुद्र इस्पात नहीं है
भय से सिहर उठे, वह तरू का पात नहीं हैं,
जीवन की मरण व्यथा को सहना होगा
अंतर में यह व्यथा छिपाये रहना होगा।

कुछ लोगों ने क्रान्ति के विफल होने पर कविताएँ लिखी हैं। उन्हें इस कविता को पढ़ना चाहिए।

रामविलास जी के संगीत संबंधी विचारों को एक जगह संकलित करके विजय मोहन शर्मा ने एक पुस्तक तैयार की है, 'संगीत का इतिहास और भारतीय नव जागरण की समस्या' जो वाणी प्रकाशन से छपी है। इस अवसर पर त्रिपाठी जी ने उसका लोकार्पण भी किया।

प्रस्तुति : विजय मोहन शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवराम की कविताएँ

कोटा, सुप्रसिद्ध रंगकर्मी एवं साहित्यकार शिवराम के तीन कविता संग्रहों-'माटी मुळकेगी एक दिन', 'कुछ तो हाथ गहो' व 'खुद साधो पतवार' के लोकार्पण समारोह में मुख्य अतिथि डॉ0 रमाकांत शर्मा ने कहा कि शिवराम की कविता इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये कविताएँ अपने समाज की तकलीफों और दुख दर्द की कविताएँ हैं और इस व्यवस्था के शोषण और दमन के शिकार हो रहे मजदूरों-किसानों के प्रति करुणा का गहरा अहसास है। 'विकल्प' जन सांस्कृतिक मंच द्वारा कला-दीर्घा में आयोजित 'कविता और समय' परिचर्चा में अपने विचार व्यक्त करते हुए समारोह के अध्यक्ष वरिष्ठ साहित्यकार रघुराज सिंह हाड़ा ने कहा कि यह समय हमसे जिस नये ढंग की कविता की माँग कर रहा है, शिवराम की कविता अपनी सहजता और सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण उसे पूरा करती हैं। कवि-समीक्षक महेन्द्र नेह ने शिवराम की कविताओं के अंश सुनाते हुए कहा कि ये कविताएँ मात्र भावनात्मक धरातल पर नहीं बल्कि ज्ञानात्मक संवेदनाओं से युक्त हैं।

वरिष्ठ साहित्यकार डा0 नरेन्द्र नाथ चतुर्वेदी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि शिवराम की कविताएँ प्रगतिशीलता और जनवाद को भारतीय मनुष्य के दुख-दर्दों और उसकी संस्कृति से जोड़ने वाली कविताएँ हैं।

श्री शैलेन्द्र चौहान ने वर्तमान समय को मनुष्य-विरोधी बताते हुए कहा कि शिवराम की कविताएँ इस दौर में जीवन के नये सपने बुनती है और मन में नई आशाएँ जगाती हैं।

शिवराम ने अपने तीनों कविता संग्रहों से अपनी प्रतिनिधि रचनाओं का पाठ करते हुए कहा कि मैंने अपने जीवन के अनुभवों को ही कविताओं में बयान किया है।

समारोह का संचालन करते हुए 'विकल्प' के सचिव शकूर अनवर ने कहा कि शिवराम हमारे शहर के ही नहीं, वर्तमान हिन्दी कविता और समय के महत्वपूर्ण कवि हैं। समारोह के अंत में दिवंगत हुए 'वातायन' के संपादक सुप्रसिद्ध गीतकार हरीश भादानी व 'वर्तमान साहित्य' के संपादक व जनवादी चिंतक कुँवरपाल सिंह के सम्मान व स्मृति में मौन रखकर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

प्रस्तुति : महेन्द्र नेह

अशोक अंजुम को 'साहित्य श्री' पुरस्कार

अलीगढ़, गत दिनों चर्चित कवि, व्यंग्यकार श्री अशोक अंजुम को उनके जन्मदिन पर सुप्रसिद्ध समालोचक 90 वर्षीय डॉ0 राकेश गुप्त द्वारा अपनी पत्नी स्वर्गीया श्रीमती तारावली गुप्त की स्मृति में ग्रंथायन प्रकाशन संस्थान द्वारा दिया जाने वाला 'साहित्य श्री' सम्मान प्रदान किया।

ग्रंथायन द्वारा आयोजित समारोह में डॉ0 राकेश गुप्त के प्रमाण-पत्र के साथ 5100/- सम्मान राशि अशोक अंजुम को भेंट की। डॉ0 गोपालबाबू शर्मा ने शॉल उढ़ाकर सम्मानित किया तथा संस्थान के सचिव श्री अभय कुमार गुप्ता ने श्री अंजुम को स्मृति चिह्न तथा 2100/- मूल्य की पुस्तकें भेंट कीं।

कार्यक्रम का संचालन कर रहे डॉ0 वेदप्रकाश अमिताभ ने अशोक अंजुम के कृतित्व व व्यक्तित्व का विस्तृत परिचय दिया। अरुणाचल प्रदेश से पधारे डॉ0 मधुसूदन शर्मा ने बताया कि समाज की चुनौतियों और विसंगतियों पर अशोक अंजुम की पैनी नज़र है। वरिष्ठ रचनाकार डॉ0 गोपालबाबू शर्मा ने अशोक अंजुम की रचनाधर्मिता की प्रशंसा की। डॉ0 कुन्दनलाल उप्रेती ने कहा कि ग़ज़ल के कथ्य और शिल्प दोनों पर ही इनकी मजबूत पकड़ है। डॉ0 भगत सिंह ने सुप्रसिद्ध कवि डॉ0 कुँअर बेचैन द्वारा अशोक अंजुम की रचनाधर्मिता पर लिखे हुए आलेख का वाचन किया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता सहारनपुर से पधारे वरिष्ठ कवि श्री रघुवीर सिंह अरविन्द ने की।

प्रस्तुति : डॉ0 भगत सिंह, गांधी नगर, अलीगढ़

गोष्ठी रपट

'मुंशी प्रेमचंद शोध एवं अध्ययन केन्द्र' लमही वाराणसी के तत्वावधान में 'प्रेमचंद की कहानियाँ : दलित सरोकार' विषय पर एक संगोष्ठी 24 फरवरी 2010 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित भारत कला भवन में आयोजित हुई। इस अवसर पर प्रख्यात आलोचक प्रो0 निर्मला जैन ने कहा कि प्रेमचंद की रचनाओं का संघर्ष उपनिवेशवाद के खिलाफ़ है। प्रेमचंद पराशक्तियों के आतंकवाद एवं धर्म की सनातनी अवधारणा तथा सामाजिक विषमता के बीच शोषकों का उपहास कर शोषितों को सजग करते हैं। प्रेमचंद द्वारा घीसू, माधव जैसे निकृष्ट कोटि के दलित पात्र सृजित करने के आरोप पर विराम लगाते हुए उन्होंने बताया कि उनके साहित्य में सनातनी ब्राह्मणवादी मानसिकता के निकृष्ट स्वरूप भी परिलक्षित हुए हैं।

'मुंशी प्रेमचंद स्मारक एवं अध्ययन केन्द्र' लमही, वाराणसी के सदस्य सचिव प्रो0 कुमार पंकज और संयोजक प्रो0 विजय बहादुर सिंह ने भी अपने विचार व्यक्त किये। अध्यक्षता बी0एच0यू0 के कुलपति धीरेन्द्रपाल सिंह ने की। धन्यवाद ज्ञापन प्रो0 रंगनाथ पाठक ने किया।

प्रस्तुति : रिपुंजय कुमार सिंह, बी.एच.यू., वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञेय व्याख्यानमाला : प्रेम जनमेजय का व्याख्यान

जम्मू के अज्ञेय प्रेमी हिन्दी साहित्यकारों की संस्था 'शाश्वती' ने के0एल0 सहगल हॉल जम्मू में अज्ञेय स्मारक व्याख्यान का आयोजन किया जिसमें हिन्दी के प्रतिष्ठित व्यंग्यकार और व्यंग्य-यात्रा के संपादक प्रेम जनमेजय ने 'बदलते सामाजिक परिवेश में व्यंग्य की भूमिका' विषय पर अपना व्याख्यान दिया।

व्यंग्य समाज की बुराइयों पर चोट करता है। बदलते सामाजिक मूल्यों की पड़ताल करते हुए प्रेम जनमेजय ने कहा कि हमारा आज बहुत ही भयावह है। हमारे शहरों का ही नहीं आदमी के अंदर का चेहरा भी बदल रहा है। पूँजीवाद हमारा मसीहा बन गया है। विसंगतियों के विरुद्ध जब और विधाएँ अशक्त हो जाती हैं तो कबीर, भारतेंदु, परसाई जैसे रचनाकार व्यंग्यकार की भूमिका निभाते हैं। बेहतर मानव समाज के लिए व्यंग्य की रचनात्मक भूमिका उपस्थिति की जाए। वरिष्ठ साहित्यकार डॉ0 ओम प्रकाश गुप्त ने अपने अध्यक्षीय भाषण में हिन्दी साहित्य को अज्ञेय के अवदान पर चर्चा करते हुए उनको एक महान व्यंग्यकार बताया।

कार्यक्रम के आरंभ में अज्ञेय की आवाज़ में उनकी दो कविताओं का पाठ भी सुनाया गया। कार्यक्रम का संचालन करते हुए नेहा मेहता ने कहा कि अज्ञेय के सौवें जन्म दिन को लेकर जम्मू में खासा उत्साह देखा जा रहा है और वर्ष 2011 में इस संदर्भ में बड़े पैमाने पर कार्यक्रमों का आयोजन किया जायेगा।

प्रस्तुति : बृजमोहिनी, रिहाड़ी, जम्मू-180005

कथाकार मार्कण्डेय को श्रद्धांजलि

वरिष्ठ कथाकार मार्कण्डेय के आकस्मिक निधन पर जन संस्कृति मंच, उदयपुर द्वारा श्रद्धांजलि दी गई। मार्कण्डेय हिन्दी साहित्य के जाने माने हस्ताक्षर थे और उन्होंने कहानी, उपन्यास व कथा आलोचना को अपनी कृतियों से समृद्ध किया।

वरिष्ठ समालोचक प्रो0 नवलकिशोर ने कहा कि नयी कहानी आन्दोलन में प्रगतिशीलता का परचम फहराने वाले मार्कण्डेय ने हिन्दी कहानी को ग्रामीण और आँचलिक धरातल से गहराई से जोड़ा। डॉ0 माधव हाड़ा ने 1954 में प्रकाशित मार्कण्डेय के पहले कहानी संग्रह 'पीन-फूल' की चर्चा करते हुए कहा कि नयी कहानी के भटकावों से पृथक वैचारिक तेजस्विता ने उनके कथा लेखन को पहचान दी। राजस्थान विद्यापीठ में सह आचार्य डॉ0 मलय पानेरी ने मार्कण्डेय के उपन्यास 'अग्निबीज' को अपनी तरह का अनूठा उपन्यास बताया। श्री लक्ष्मण व्यास ने कहा कि ग्रामीण यथार्थ के चित्रण के साथ मार्कण्डेय की कहानियाँ परिवर्तनकामी चेतना की पहल भी जगाती हैं।

'बनास' के संपादक डॉ0 पल्लव ने कहा कि नयी कहानी आंदोलन की सिरचढ़ी कहानियों का पुनर्पाठ करने पर चौंकाने वाले परिणाम मिलते हैं और तब मार्कण्डेय, अमरकांत, भीष्म साहनी के कथा लेखन की गहराई का अनुमान होता है।

प्रस्तुति : डॉ0 पल्लव, उदयपुर

समकालीन विमर्श : निराला साहित्य

निराला अध्ययन एवं शोध पीठ, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में विचारोत्तेजक बहस एवं वाद-विवाद-संवाद में कई नए प्रश्न और प्रस्थापनाएँ उभरकर सामने आईं।

उद्घाटन सत्र में बीज वक्तव्य देते हुए बहुवचन के संपादक प्रो0 राजेन्द्र कुमार ने कहा कि 'निराला के साहित्य में स्वाधीनता का एक अर्थ निर्भयता है। जो निर्भय नहीं है, वह स्वाधीनता भी नहीं है। अध्यक्षता करते हुए सुप्रसिद्ध आलोचक श्री दूधनाथ सिंह ने प्रो0 राजेन्द्र कुमार की स्थापनाओं से असहमति व्यक्त करते हुए यह कहा कि किसी भी बड़े रचनाकार को किसी एक विचारधारा में बाँधकर नहीं देखा जाना चाहिए। निराला की कविता ही इसका प्रमाण है।

उद्घाटन सत्र में विश्वविद्यालय के कार्यवाहक कुलपति प्रो0 के0जी0 श्रीवास्तव की उपस्थिति और उनका वक्तव्य संगोष्ठी के संयोजक प्रो0 मुश्ताक अली ने दिया तथा अंत में धन्यवाद ज्ञापन कार्यवाहक विभागाध्यक्ष प्रो0 रामकिशोर ने किया। इस सत्र का संचालन गोष्ठी के सह-संयोजक श्री सूर्यनारायण ने किया।

गोष्ठी के 'सत्ता विमर्श और निराला का साहित्य' केंद्रित प्रथम सत्र का आधार व्यक्तव्य देते हुए, वरिष्ठ आलोचक प्रो0 सूर्यप्रसाद दीक्षित ने निराला साहित्य में विमर्श के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला। युवा आलोचक वैभव सिंह ने निराला को बीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े रोमैंटिक कवि के रूप में चिन्हित किया। प्रो0 अवधेश प्रधान ने अपने विस्तृत वक्तव्य में निराला की चेतना पर 1947 के महान स्वाधीनता संग्राम और बंगाल के नवजागरण के प्रभाव को रेखांकित किया। प्रो0 अजय तिवारी ने सत्ता विमर्श की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके समकालीन आशयों पर भी प्रकाश डाला।

सत्र की अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ आलोचक प्रो0 शंभुनाथ ने सत्ता की असीमित व्याप्ति को रेखांकित करते हुए स्थापित किया कि आज हम बाहर से भले संपन्न हों लेकिन अंदर से भावहीन हैं। सत्र का संचालन विभाग की वरिष्ठ अध्यापिका प्रो0 शैल पाण्डेय ने किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'निराला साहित्य में हाशिए का समाज था', सत्र का बीज वक्तव्य देते हुए प्रखर दलित चिंतक श्री कँवल भारती ने अपने पूर्ववर्ती वक्ताओं से घोर असहमति व्यक्त की और डॉ0 रामविलास शर्मा द्वारा निराला की विद्रोही या क्रांतिकारी छवि गढ़ने को काल्पनिक बताते हुए यह कहा कि 'निराला जो नहीं हैं वह रामविलास बनाना चाहते हैं।'

डॉ0 दिनेश कुशवाह ने इस विडंबना की ओर ध्यान आकर्षित किया कि हिन्दी में अल्पसंख्यक समाज का चित्रण दाल में नमक के बराबर है। निराला छायावाद के अकेले ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने मुसलमानों को भी रचना का विषय बनाया है। पश्चिम बंग राज्य विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो0 अरुण होता ने निराला को 'भारतीय चेतना' का रचनाकार बताया। डॉ0 दीपक प्रकाश त्यागी ने निराला को संत साहित्य की मानववादी और रूढ़ि विरोधी चेतना से जोड़ा।

डा0 लालसा यादव ने स्त्री विमर्श की दृष्टि से निराला साहित्य का मूल्यांकन करते हुए निराला को स्त्रियों का मित्र रचनाकार बताया। निराला मात्र रोमांटिक कवि नहीं थे, बल्कि अपनी यथार्थवादी चेतना के कारण वे पहले रचनाकार थे जिन्होंने विवाह संस्था और सुहाग के प्रतीक चिह्नों को निरर्थक, बल्कि स्त्री-मुक्ति के लिए बाधक बताया।

अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ आलोचक प्रो0 गोपेश्वर सिंह ने कहा कि निराला ने छायावादी कविता को रोमेंटिक चेतना से आगे ले जाकर स्वाधीनता संघर्ष से जोड़ा। सत्र का संचालन प्रो0 मुश्ताक अली ने किया।

गोष्ठी के अंतिम सत्र 'संस्कृति विमर्श और निराला का साहित्य' में आधार वक्तव्य कवि और समाज-विज्ञानी डॉ0 बद्रीनारायण ने प्रस्तुत किया।

उनके अनुसार निराला आधुनिकता को रचना-धर्मिता के रचनाकार हैं।

आलोचक शंभुनाथ ने कहा कि निराला को हिन्दू समाज का वाल्तेयर कहा जा सकता है, क्योंकि वे सांस्कृतिक सुधारक थे।

कवि और आलोचक पंकज चतुर्वेदी ने कहा कि निराला आभिजात्य का विरोध करते हैं।

दलित आलोचक डॉ0 रामचन्द्र ने निराला को आज़ादी और प्रगतिशील आंदोलन के दौर का महत्त्वपूर्ण रचनाकार स्वीकार करते हुए उनके इतिहास बोध को संदेह के घेरे में रखकर देखने पर बल दिया।

कवि और निराला साहित्य के शोध अध्येता डा0 विवेक निराला ने निराला की सीमाओं को हिन्दी नवजागरण की सीमाओं के परिप्रेक्ष्य में देखने पर बल दिया।

सत्र की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध आलोचक प्रो0 अजय तिवारी ने की।

सत्र का संचालन विभाग की अध्यापिका प्रो0 मीरा दीक्षित ने किया।

प्रस्तुति : डॉ0 रमाकांत राय
एवं कु0 रानी राय
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ0 पुनीत बिसारिया की दो पुस्तकों का लोकार्पण

गोवा विश्वविद्यालय के एकेडमिक स्टॉफ कॉलेज सभागार में आयोजित एक कार्यक्रम में नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर के वरिष्ठ हिन्दी प्राध्यापक एवं युवा समीक्षक डॉ0 पुनीत बिसारिया द्वारा संपादित दो पुस्तकों 'युवाओं की दृष्टि में गांधी' तथा 'हिन्दी पत्रकारिता : कल आज और कल' का विमोचन हिन्दी की प्रख्यात महिला कथाकार सूर्यबाला ने किया।

समारोह को संबोधित करते हुए वरिष्ठ कथा लेखिका सूर्यबाला ने कहा कि डॉ0 बिसारिया द्वारा विगत कुछ वर्षों से अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तकों का लेखन एवं संपादन किया गया है, जिनके माध्यम से उन्होंने साहित्य जगत में एक महत्वपूर्ण स्थान अर्जित किया है। समारोह का संचालन गोवा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ0 रवीन्द्र नाथ मिश्र ने किया तथा गोवा विश्वविद्यालय की हिन्दी प्राध्यापिका डॉ0 चतुरा साकोर्डेकर ने सभी के प्रति आभार जताया।

प्रस्तुति : डॉ0 ब्रजेश कुमार पांडेय, जालौन (उ0प्र0)

जटिल यथार्थ की सफल प्रस्तुति

"अपनी कहानियों में मिथिलेश्वर ने यथार्थ को उसकी जटिलता के साथ प्रस्तुत किया है। इस मामले में ग्रामीण परिवेश के यथार्थवादी कहानीकार मिथिलेश्वर सफल रहे हैं।" उक्त राय प्रख्यात आलोचक एवं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली के भारतीय भाषा विभाग के अध्यक्ष डॉ0 चमन लाल ने जाहिर की। इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली से सद्यः प्रकाशित 'मिथिलेश्वर की पुरस्कृत-कहानियाँ' पुस्तक को लोकार्पित करते हुए वे अपने विचार व्यक्त कर रहे थे।

इस लोकार्पण समारोह का सफल संचालन अलका सिन्हा ने किया। अपने संचालन में अलका सिन्हा ने जीवन से जुड़े कथाकार मिथिलेश्वर की कहानियों को स्तरीयता और लोकप्रियता दोनों स्तर पर श्रेष्ठ करार दिया।

उक्त अवसर पर रामदरश मिश्र, डॉ0 नित्यानंद तिवारी, हिमांशु जोशी, महीप सिंह, हरिपाल त्यागी, बलदेव वंशी, शेरजंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्ग, महेश दर्पण आदि के साथ काफ़ी रचनाकार, पत्रकार एवं पाठक उपस्थित थे।

प्रस्तुति : असीम कुमार, के-71, कृष्णनगर, दिल्ली-51

दिनकर की काव्य-संस्कृति

सिलीगुड़ी, दिनकर की काव्य-संस्कृति पुरुषार्थ को जगाती हैं' उत्तर बंग विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में डा0 खगेन्द्र ठाकुर ने कहा। संगोष्ठी का विषय था, 'दिनकर की कविता में सांस्कृतिक चिंतन।' कार्यक्रम का संचालन हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्ष डॉ0 मनीषा झा तथा अध्यापक डा0 सुनील कुमार द्विवेदी ने किया।

डॉ0 मनीषा झा ने कहा कि दिनकर की कविता में संस्कृति के विविध रूप मौजूद हैं। डॉ0 सुनील कुमार द्विवेदी ने संस्कृति के स्वरूप चिन्हित किए एवं कहा कि दिनकर आधुनिक युग की समस्या से दो-दो हाथ करते नज़र आते हैं। इस अवसर पर विभागाध्यक्ष अजय कुमार साव, स्थानीय साहित्यकार ओमप्रकाश पांडेय तथा विभाग के छात्र-छात्राएँ उपस्थित थे।

प्रस्तुति : शिबानी सिंह, उत्तर बंग विवि0

भारतीय लेखक शिविर

पं0 विद्यानिवास मिश्र के जन्मदिवस पर उनकी याद में 'विद्याश्री न्यास' ने 'उ0प्र0 भाषा-संस्थान' और 'केन्द्रीय हिन्दी संस्थान' के सहयोग से 'कन्हैयालाल गुप्ता मोतीवाला स्मृति भवन' (रथयात्रा) में भारतीय लेखक शिविर एवं 'भाषा, शिक्षा एवं संस्कृति' पर त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

उद्घाटन सत्र में अध्यक्ष पद से प्रो0 वेणी माधव शुक्ल (पूर्व कुलपति, गोरखपुर वि0वि0) ने पं0 विद्यानिवासजी के बचपन के संस्मरण सुनाते हुए उन्हें भारत का भविष्य-निर्माता मनीषी बताया। मुख्य अतिथि रमेशचन्द शाह ने स्व0 पंडित जी को समन्वयक संस्कृति का प्रज्ञा पुरुष कहा।

चर्चा सत्र 'शिक्षा की भारतीय अवधारणाः परंपरा और प्रयोग' में डॉ0 कृष्णदत्तपालीवाल ने विदेशी प्रभावों से हुई शिक्षा की क्षतियों को रेखांकित किया। सत्र के अन्य वक्ता रहे-हरिकेश सिंह, रामसुधार सिंह, गिरीश्वर मिश्र, शंकरशरण श्रीवास्तव, श्रीमती वेन्नी पासाह, अरविन्द झा, सुशील कुमार शर्मा, विश्वनाथ वर्मा, संतोषकुमार एवं श्रीमती शशिकला पांडेय। संचालन किया ब्रजेन्द्र त्रिपाठी ने।

दूसरे सत्र 'शिक्षा की चुनौतियाँ' का संचालन चित्तरंजन मिश्र ने किया। अध्यक्षीय संबोधन में कमलेशदत्त त्रिपाठी ने शिक्षा की विसंगतियों पर चिंता व्यक्त की।

तीसरे सत्र में 'भारतीय भाषाएँ एवं बोलियाँ' पर सत्यदेव त्रिपाठी के संचालन में प्रमुख वक्तव्य डॉ0 अरुणेश नीरन ने दिया और राजेन्द्र प्रसाद पांडेय, प्रभाकर मिश्र, राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी, रामबख्श मिश्र आदि ने अपने विचार व्यक्त किये।

'भारत में हिन्दी' विषय पर आयोजित चौथे सत्र में देश के चार प्रमुख अंचलों में हिन्दी की स्थिति व गति पर चार विशेषज्ञ विद्वानों-नन्दकिशोर पांडेय, शंकरलाल पुरोहित, सत्यदेव त्रिपाठी व श्री दिलीप सिंह-ने अपनी राय रखी और अध्यक्षीय भाषण में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने हर भारतीय भाषा की निजता और अस्तित्व की रक्षा की बात की। डॉ0 रीतारानी पालीवाल, एम0गोविन्द व सुरेन्द्रप्रताप ने भी अपने विचार रखे।

डॉ0 बलराज पांडेय के संचालन में पाँचवा सत्र 'भारतीय संस्कृति : इतिहास और भविष्य' पर मंथन का रहा, जिसमें प्रमुख वक्तव्य दिया रमेश चन्द्र शाह ने और अध्यक्षता की श्री रामाश्रय राय ने। अंतिम सत्र मूल विषय के तीनों प्रमुख आयामों-शिक्षा, भाषा व संस्कृति के आपसी संबंधों के समाहार का रहा।

दूसरी शाम पं0 विद्यानिवासजी लिखित रेडियो रूपक 'गार्गी वाचक्नवी' का सफल मंचन-एन0के0 आचार्य ने अपनी टीम के साथ पेश किया।

समापन सत्र सम्मान समारोह के रूप में संपन्न हुआ, जिसके मुख्य अतिथि प्रो0 अवधराम (कुलपति, म0गां0विद्यापीठ) थे और अध्यक्षता की न्यायमूर्ति गणेशदत्त दुबे ने। इसमें 'विद्याश्री न्यास' की तरफ से कवि श्री रामनवल मिश्र को 'लोककवि सम्मान' एवं बहुमुखी रचनाकार श्री रमेशचन्द शाह को 'द्वितीय विद्यानिवास मिश्र स्मृति सम्मान' प्रदान किया गया।

सत्र का संचालन अरुणेश नीरन ने किया और न्यास के सचिव श्री दयानिधि मिश्र ने सबका हार्दिक आभार माना।

प्रस्तुति : डा0 दयानिधि मिश्र, वाराणसी

कृत्या 2010, अंतरराष्ट्रीय कवितोत्सव

कृत्या 2010, अंतरराष्ट्रीय कवितोत्सव मैसूर में उत्सव भारतीय भाषा संस्थान के सहयोग से कृत्या के तत्वावधान में संपन्न हुआ। कृत्या सांस्कृतिक एवं साहित्यिक स्वैच्छिक संस्था है जो गत पाँच वर्षों से मासिक द्विभाषी काव्य पत्रिका के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय काव्योत्सवों का आयोजन कर रही है। कृत्या की पेशकश से नोर्वे की कमपनी नोर्ला ने विभिन्न भारतीय भाषा के कवियों की कविताओं पर फिल्म बनाई। इस वर्ष आस्ट्रेलिया की सबसे बड़ी रेडियो अकादमी उत्सव में सुनाई गई कविताओं का प्रसारण करेगी। ऐसे वक्त में जब कि आस्ट्रेलिया जैसे देश में भारतविरोधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवैया दिखाई दे रहा है, कृत्या की यह साहित्यिक पहल महत्त्वपूर्ण है।

कृत्या 2010 में ईरान के दो कवि मरियम अला अमजदी एवं बहजाद जरीनपुर, नोर्वे की आदवे क्लीवे, इजराइल की दिति रोनेन, आयरलैण्ड की हैलनडावेर, वियेतनाम के नुइ चिंग त्रुग, इटली की जिंगोनिया, कोस्टारिका से ओस्वाल्दौ सोमा के साथ-साथ वियेना से पीटर आदि ई कवियों ने भाग लिया। सबसे महत्त्वपूर्ण उपस्थिति थी, एलिसिया पाटरोनी की जो अर्जेन्टीना की महत्त्वपूर्ण कवि हैं, जो निष्कासन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण लेखन कर रही है। कुछ मिलाकर विदेश से बाइस कवि और देश से भी भारतीय भाषाओं के लगभग इतने कवियों ने भाग लिया जिनमें प्रमुख नाम हैं प्रयाग शुक्ल, तिब्बती कवि तेनसिंग, अमित कल्ला, रति सक्सेना, अग्रिशेखर, दुष्यंत, निशांत और शैलेय।

कवितोत्सव का विषय था निष्कासन, पीड़ा और उससे विमुक्ति। इसमें युद्ध के प्रतिस्वरूप होने वाले विस्थापन के साथ-साथ आर्थिक विस्थापन, भाषाई और अध्यात्मिक विस्थापन को भी मुद्दा बनाया गया था। काव्योत्सव के समानांतर एक आर्ट कैम्प का आयोजन हुआ, जिसमें ग्वालियर की प्रांजल आर्ट संस्था ने सहयोग किया। यहाँ पर करीब दस कलाकारों ने कविता के समानांतर में पेंटिंग में भाग लिया।

कुछ कविताएँ ऐसी थीं जो दिल में छप सी गयीं, जैसे कि एलिसिया पाटरोनी की कविता।

"उन्होंने मेरे पाँवों के नीचे से
मेरे देश को खींच लिया
निष्कासन-यह नाम देकर
अचानक इस तरह
मेरे पैरों के नीचे की जमीन खींच ली
मेरे चारों ओर अब दूरियाँ ही दूरियाँ"
फिर भी मैं उस दिन को याद करती हूँ
जब सेना ने मेरे देश को
सलाखों के पीछे ढकेल दिया था
लेकिन उस दिन मुझ में जबरदस्त ताकत आई
और डर चला गया
यही शुरूआत थी

ऐसी ही एक कविता है तिब्बती युवक तेनसिंग की 'धर्मशाला में बरसात' थी–

हर शाम
मैं अपने किराए के कमरे में लौटता हूँ

पर मैं इस तरह मरना नहीं चाहता
कहीं न कहीं
कोई रास्ता होना चाहिए
मैं अपने कमरे की तरह नहीं रो सकता
मैं बहुत रो चुका
जेल में
हताशा के छोटे-छोटे क्षणों में
कहीं न कहीं
कोई रास्ता होना चाहिए
मैं रोना नहीं चाहता
मेरा कमरा काफी भीग चुका है।

प्रस्तुति : डॉ0 रति सक्सेना

भाषा सेतु सम्मान 2010 प्रो0 विजयराघव रेड्डी को

"अपनी भाषा" संस्था द्वारा जस्टिस शारदा चरण मित्र स्मृति भाषा सेतु सम्मान रचनात्मक अवदान तथा अनुवाद कार्य के माध्यम से भावात्मक एकता एवं सौमनस्य कायम करने के लिए श्री पोली विजयराघव रेड्डी को दिया गया। अस्वस्थता के कारण श्री रेड्डी की अनुपस्थिति में प्रो0 सी0 बर्द्धन कुमार ने सम्मान ग्रहण किया। श्री कुमार ने विजयराघव रेड्डी के "तेलुगु-हिन्दी अंतर्संबंध : ऐतिहासिक संदर्भ एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य" विषय पर लिखित व्याख्यान का पाठ किया। इस व्याख्यान में श्री रेड्डी ने मध्यकालीन तेलुगु संबंध के साथ स्वाधीनता आंदोलन के दौरान दोनों भाषाओं के बीच के अंतरंग रिश्तों का उल्लेख किया। उनका विचार था कि हिन्दी तथा तेलुगु दोनों की संवेदना में गहरी समानता है जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्यों में हुई है।

द्वितीय सत्र में "भारत की सामासिक संस्कृति और हिन्दी" विषय पर विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता पूर्व सांसद श्रीमती सरला माहेश्वरी ने की। डा0 ऋषिकेश राय तथा श्री प्रियंकर पालीवाल ने सामासिक संस्कृति के विभिन्न तत्वों को व्याख्यायित करते हुए अपने विचार रखे।

वरिष्ठ आलोचक डा0 श्रीभगवान सिंह ने कहा कि भले ही हम राजनीतिक संदर्भ में स्वतंत्र हों, भाषिक रूप से हम अब भी पराधीन हैं। सामासिकता की रक्षा के लिए हमें शहादत देनी होगी। बोलियों के लिए भाषा की रीढ़ तोड़ना गलत है।

अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में श्रीमती सरला माहेश्वरी ने कहा कि सांस्कृतिक विशुद्धता का दावा एक मिथक है। कोई भी संस्कृति मौलिकता का दावा नहीं कर सकती। भारतीय संस्कृति विभिन्न संस्कृतियों का संगम है जिसमें एकता के सूत्र के दर्शन होते हैं। इनके संरक्षण की आज ज़रूरत है। विघटन के इस दौर में संस्था के महासचिव डॉ0 अमरनाथ के सत्प्रयासों की सभी वक्ताओं ने सराहना की। सम्मान समारोह का संचालन डा0 सोमा बंदोपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संगोष्ठी का संचालन डा0 विवेक सिंह ने किया। धन्यवाद ज्ञापन डा0 वसुमति डागा ने किया।

प्रस्तुति : डा0 ऋषिकेश राय, मीडिया प्रभारी

कविताई कॅनवास पर जनपदीय रंगों की छटा

भोपाल। अज्ञेय की कविता दुःख का अत्यंत मार्मिक बयान रचती है, किन्तु मुक्तिबोध और नागार्जुन का काव्य संसार-संवेदनाओं को पवित्र उत्साह के साथ सहेजता है। जनपदीय रंगों से सराबोर लीलाधर मंडलोई की कविताओं में कविद्वय की उसी काव्य निष्ठा का आत्मीय प्रतिनिधित्व मिलता है। हिन्दी आलोचना के सुविख्यात शिल्पी डा0 धनंजय वर्मा ने अपने मन की यह बात पिछले दिनों मंडलोई पर केंद्रित कार्यक्रम में कही। रचनात्मक कर्तव्यनिष्ठा के वशीभूत 'सरोकार सहकारिता' के इस अभियान में 'पहले-पहल' और 'वनमाली सृजनपीठ' भी बराबरी से शरीक रहे। मौका था सुप्रसिद्ध साहित्यिक मासिक 'राग भोपाली' के मंडलोई पर एकाग्र अंक के लोकार्पण का।

प्रभुनाथ सिंह आजमी ने कहा, मंडलोई की कविताओं के जरिए हमारे अवसाद को लोकतांत्रिक गरिमा मिलती है। कवि ओम भारती की राय में अपनी आँच और आग को सतत साथ में रखने वाले मंडलोई की कविताएँ बार-बार स्मृतियों की ओर लौटती हैं और इस तरह मंडलोई अपने परिवेश की रुहानी सौगात देते हैं।

मंडलोई ने मित्र-विरादरी के आग्रह पर बिजुका, तलाक, चींटियाँ सहित कुछ वे कविताएँ भी सुनाई, जो भोपाल के साहित्यिक परिवेश को अब भी महकाती हैं।

'राग भोपाली' के संपादक, कवि शैलेन्द्र शैली ने स्वागत भाषण में मंडलोई को ऐसा कवि बताया, जिनके लिए पसीने और गोबर की गंध को शिद्दत से महसूसना शर्म की नहीं, गर्व की बात है। वे जीवन संघर्ष के महत्वपूर्ण कवि हैं। संचालन कवि बलराम गुमाश्ता ने किया। 'पहले-पहल' के संपादक, कवि महेन्द्र गगन, सरोकार सहकारिता के सूत्रधार, कथाकार मुकेश वर्मा के अलावा राग तैलंग, राम सक्सेना, रेखा कस्तवार तथा दिनेश नायर ने हनुमंत मनगढ़े सहित सभी मंचासीन अतिथियों का पुष्पदलों से अभिवादन किया।

प्रस्तुति : वसंत सकरगाए

'अनाद्यसूक्त' उद्भ्रांत की सर्वश्रेष्ठ कृति

उद्भ्रांत की गीत की साधना घूम-फिर कर बार-बार प्रकट होती है। उन्होंने गीत से शुरू किया था। उनके छंदों की लय से यही पता चलता है। उनमें गहरा समकालीन बोध है मगर इसके साथ वे छंदों की लय भी अपनी मुक्त छंद की कविताओं में भी ले आए। 'अनाद्यसूक्त' उनकी अब तक की सर्वोत्तम कृति है जहाँ उन्होंने शब्दों के मितव्यय से बड़ी बात कहने का सफल प्रयोग किया है।

उक्त विचार शिखर आलोचक प्रो0 नामवर सिंह ने उद्भ्रांत की दो पुस्तकों 'त्रेता' और 'अनाद्यसूक्तः' तथा हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक प्रो0 आनंद प्रकाश दीक्षित द्वारा लिखित आलोचना ग्रंथ 'त्रेता : एक अंतर्यात्रा' के लोकार्पण के अवसर पर गांधी शांति प्रतिष्ठान में व्यक्त किये।

कार्यक्रम का संचालन करते हुए सुरेश शर्मा ने विजयदेव नारायण साही द्वारा 1958 में की गई महाकाव्य के अंत की घोषणा की याद की। उन्होंने कहा कि उद्भ्रांत ने उस टूटी हुई कड़ी को फिर से जोड़ दिया है।

धन्यवाद ज्ञापन नेशनल पब्लिशिंग हाउस के श्री कमल जैन ने किया।

प्रस्तुति : रामजी यादव, नई दिल्ली

हेमंत फाउंडेशन द्वारा आयोजित समारोह

मुंबई : 'यह सच है कि सभ्यता का ज्यों-ज्यों उत्कर्ष होता जाता है, मनुष्य उतना ही अकेला पड़ता जाता है इसीलिए साहित्य का दायित्व भी उतना ही बढ़ता जाता है। ऐसे में कोई कुछ भी कहे कविता और साहित्य कभी अप्रासंगिक नहीं हो सकते बल्कि दिन-दिन उनका महत्व बढ़ता ही जायेगा। ये उद्गार वरिष्ठ समालोचक तथा भारतीय भाषा परिषद् के निदेशक डा0 विजय बहादुर सिंह ने हेमंत फाउंडेशन द्वारा आयोजित विजय वर्मा कथा सम्मान एवं हेमंत स्मृति कविता सम्मान समारोह में व्यक्त किए।

प्रसिद्ध साहित्यकारों, टी0वी0 अभिनेताओं, साहित्य प्रेमियों, मीडिया, प्रेस से संलग्न तथा लखनऊ से विशेष रूप से आए तद्भव के कथाकार, संपादक अखिलेश एवं भोपाल से आए राजेश जोशी की उपस्थिति में वर्ष 2010 का विजय वर्मा कथा सम्मान राजू शर्मा को उनके उपन्यास 'विसर्जन' के लिए तथा हेमंत स्मृति कविता सम्मान राकेश रंजन को उनके कविता संग्रह 'चाँद में अटकी पतंग' के लिए प्रमुख अतिथि विजय बहादुर सिंह ने प्रदान किया।

समारोह में राकेश रंजन के उपन्यास विसर्जन पर डा0 राजम नटराजन पिल्लै ने अपना आलोचनात्मक वक्तव्य प्रस्तुत किया। राकेश रंजन के कविता संग्रह 'चाँद में अटकी पतंग' के लिए कथाकार, पत्रकार प्रमिला वर्मा ने समीक्षात्मक टिप्पणी प्रस्तुत की।

विशेष रूप से इस समारोह में आए प्रभुजोशी ने कहा "कितने ही महानगरीयकरण के शीर्ष पर पहुँचते हुये व्यवस्थाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर्विरोध पैदा हो जाएँ बावजूद इसके कविता मौजूद रहेगी।

पुरस्कृत रचनाकारों ने अपने वक्तव्यों में अपनी रचना प्रक्रिया, प्रतिबद्धता और सरोकारों को स्पष्ट किया। पुरस्कार के प्रति आभार व्यक्त करते हुए राजू शर्मा ने कहा—सम्मानों का महत्व यह होता है कि वह इस बहाने पाठकों तक लेखक को पहुँचाता है।''

राकेश रंजन ने संस्था के प्रति आभार व्यक्त किया, और संग्रह की कुछ कविताओं का पाठ किया।

कार्यक्रम के अध्यक्ष विश्वनाथ सचदेव ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा ''कि सम्मान के रूप में साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने के लिए लगातार 12 वर्षों से हेमंत फाउंडेशन तमाम दिक्कतों के बावजूद सक्रिय है यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।''

कार्यक्रम का संचालन कवि आलोक भट्टाचार्य ने अपने निराले अंदाज में किया। टी0वी0 कलाकार सोनू पाहूजा ने आभार व्यक्त किया।

प्रस्तुति : यामिनी वर्मा

जन पर हावी होता तंत्र

पंजाबी उपन्यासकार मित्रसेन मीत के हिन्दी में अनूदित उपन्यास 'रामराज्य' पर 14 मार्च को लुधियाना में आयोजित समीक्षा गोष्ठी में चर्चा की शुरूआत करते हुए प्रसिद्ध लेखक विनोद शाही ने कहा कि आज़ादी के बाद जब देश की सत्ता हमारे हाथों में आई तो अर्थव्यवस्था भी हमारे हाथों में आनी चाहिये थी। फलस्वरूप हमारा विकास परजीवी बना रहा। खुशी की बात है कि आज हम जिस उपन्यास पर चर्चा करने के लिये यहाँ उपस्थित हैं उसमें वर्चस्ववादी लोगों द्वारा अन्याय का चित्र है और साथ ही प्रतिरोधी संघर्ष भी है। हेतु भारद्वाज ने अपनी बात इस प्रश्न के माध्यम से रखी कि 'मीत' जिस व्यवस्था के एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं उसी की विद्रूपताओं को नंगा कर लोगों के सामने रखने को जोखिम क्यों उठा रहे हैं?

प्रख्यात समांजशास्त्री रामशरण जोशी का मानना था कि किसी भी राष्ट्र और राज्य की परख इस बात से होती है कि वह अपने निर्बलतम और न्यूनतम साधन रखने वाले लोगों के साथ कैसा व्यवहार करता है।

सुपरिचित लेखक एवं समाजकर्मी सुरेश पंडित इस उपन्यास की इसलिये प्रशंसा करते हैं क्योंकि यह पुलिसतंत्र, न्यायालय और कारागारों के उन पहलुओं से अवगत करवाता है जिनसे आम पाठक प्रायः अपरिचित रहता है।

डॉ0 हरभंजन सिंह भाटिया ने कहा कि 'मीत' का यह उपन्यास न केवल लोगों से जुड़े सामूहिक मुद्दों को उठाता है बल्कि उनसे निजात पाने की राह भी दिखाता है।

अंत में इतिहासविद् लाल बहादुर वर्मा ने कहा कि मित्रसेन मीत का यह उपन्यास लोगों को इस व्यवस्था के खिलाफ़ खड़े होने के लिये न केवल उकसाता है बल्कि यह भी दिखलाता है कि उनके सामूहिक अभियान के क्या परिणाम हो सकते हैं। मनोज शर्मा ने अपने लिखित वक्तव्य में 'मीत' के उपन्यास की विशेषताओं का वर्णन किया।

कार्यक्रम लोक साहित्य संघ लुधियाना द्वारा आयोजित किया गया। इसका संचालन राकेश शर्मा और तरसेम गुजराल ने किया और कृतज्ञता ज्ञापन व लेखकीय वक्तव्य मित्रसेन मीत द्वारा किया गया।

प्रस्तुति : निर्मल मिश्रा

डा0 राही मासूम रज़ा पर आयोजित संगोष्ठी

'अजनबी शहर के अजनबी रास्ते, अपनी तन्हाई पर मुस्कुराते रहे, हम बहुत देर तक यूँ ही चलते रहे, वो बहुत देर तक याद आते रहे।'' डा0 राही मासूम रज़ा की लिखी ये पंक्तियाँ उनकी जन्म तिथि (14 मार्च) पर आयोजित कार्यक्रम में बहुत याद आईं।

डा0 राही मासूम रज़ा साहित्य एकेडमी के तत्वावधान में सायंकाल स्थानीय करण भाई सभागार, गांधी भवन में डा0 राही मासूम रज़ा की पुण्य तिथि के अवसर पर एक संगोष्ठी 'आज की शाम डा0 राही मासूम रज़ा' के नाम का आयोजन किया गया।

संगोष्ठी में भाग लेते हुए प्रसिद्ध कवि एवं आलोचक राजेन्द्र वर्मा ने कहा कि डा0 राही मासूम रज़ा जीवन भर सांप्रदायिकता के विरुद्ध लड़ते रहे। प्रसिद्ध कथाकार अवधेश कुमार श्रीवास्तव ने कहा कि राही का साहित्य जन सामान्य के इतना करीब आकर लिखा गया है कि वह सोद्देश्य के साथ अत्यंत लोकप्रिय भी है। जन संस्कृति मंच के संयोजक कौशल किशोर ने कहा कि 'राही' जी का मानना था कि साहित्यकार को कभी भी स्वयं को समाज से ऊँचा और भिन्न नहीं समझना चाहिए। कवि भगवान स्वरूप कटियार ने डा0 राही मासूम रज़ा के शब्दों को उद्धृत करते हुए कहा कि भारतीय आम जनमानस, चाहे वह किसी जाति व धर्म का हो, उसकी अभिव्यक्ति सामान्य मानसिक स्तर पर एक जैसी ही स्वीकारी जाती है। रंगकर्मी गौरव श्रीवास्तव 'मस्तो' ने डा0 राही मासूम रज़ा के फिल्म पटकथा लेखन पर प्रकाश डाला।

प्रिय संपादक पत्रिका के संपादक उग्रनाथ नागरिक ने डा0 राही मासूम रज़ा की सांप्रदायिकता के विरुद्ध प्रतिबद्धता का उल्लेख करते हुए कहा कि यह राही की ही हिम्मत थी कि वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुई में बैठकर बाल ठाकरे और शहाबुद्दीन तथा बनातवाला
ुखारी को निरंतर चुनौती देते रहे। एकेडमी के उपाध्यक्ष राजीव
हन ने कहा कि राही ग़रीबों और गाँव की ज़रूरतों को शब्दों में
ोते थे। मार्क्सवादी चिंतक के0बी0 सिंह ने कहा कि महान
ुआरू साहित्यकार डा0 राही मासूम रज़ा को आज हम उस
मंजर में याद कर रहे हैं जब सांप्रदायिकता अपने नंगे रूप में
े समाज को प्रदूषित करने में लगी है। डा0 राही मासूम रज़ा
ाहित्य एकेडमी के महामंत्री राम किशोर ने कहा कि राही
ांप्रदायिकता को समाज का कोढ़ मानते थे।

गोष्ठी की अध्यक्षता कर रहे एकेडमी के उपाध्यक्ष डा0 अली
ाकर ज़ैदी ने कहा कि पूरे हिन्दी और उर्दू साहित्य में एक भी ऐसा
ाहित्यकार नहीं है जिसने दोनों ही भाषाओं में अमूल्य साहित्यक
ेधियाँ प्रस्तुत की हों।

समारोह में जिन अन्य लोगों ने भाग लिया उनमें प्रमुख हैं
ारत ज्ञान विज्ञान समिति के सचिव संजीव सिन्हा, रजनीकांत
ुगल, अजय कुमार, भानु प्रताप द्विवेदी, प्रतीक अवस्थी आदि।

कार्यक्रम का सफल संचालन डा0 राही मासूम रज़ा साहित्य
केडमी के महामंत्री राम किशोर ने किया।

प्रस्तुति : मधु श्रीवास्तव, लखनऊ

Gurukul Kangri University
Haridwar 249404

क भी व्यक्ति मैला ढोता है तो पूरा भारत मैला ढोता है

रमणिका फाउंडेशन एवं सफाई कर्मचारी आंदोलन द्वारा
ारतीय साहित्य अकादमी सभागार में 'युद्धरत आम आदमी' के
ेषांक 'सृजन के आइने में मलमूत्र ढोता भारत' एवं 'विचार की
ौटी' पुस्तक के लोकार्पण समारोह 'हंस' के संपादक श्री राजेन्द्र
व ने दृष्टांत देते हुए कहा "ऊपर से नीचे देखने पर सबकुछ
ा समान दिखाई देता है परंतु जैसे-जैसे हम नीचे उतरते हैं, हमारे
ने विभिन्नताएँ नजर आने लगती हैं। इन विभिन्नताओं को
ीक से देखने का पायोनियर काम रमणिका जी ने इस विशेषांक
ाध्यम से किया है। दरअसल हम शारीरिक एवं भौतिक मलमूत्र
े से ज़्यादा शास्त्रों का मलमूत्र ढो रहे हैं।

रमणिका गुप्ता ने कार्यक्रम का उद्देश्य बताते हुए कहा कि
ा साहब का यह कथन कि "आप लोग अपने हाथों की विशाल
क्ति को अनुभव नहीं कर रहे। मात्र आपके काम करने से मना
ने से ही आप एक सप्ताह में ऐसी दुर्दशा और विनाश कर सकते
जितना कि तीन दिन में हिन्दू-मुसलमान के दंगे से भी नहीं
ते।' बाबा साहब का दलित भीख नहीं माँगता वरन् अपना हक
ीन कर लेता है।

समाजवादी चिंतक मस्तराम कपूर ने कहा कि सफाई के
ेत्र में लगे लोगों का विकास जरूरी है। इसके लिए सभी वर्ग के
लोगों को इस विकास आन्दोलन में हिस्सा बनना होगा।

साहित्य अकादमी के उपाध्यक्ष एस0एस0नूर ने कहा-"दरअसल शास्त्रों ने हमारे अवचेतन मन में जाति और छुआ-छूत को कूट-कूटकर भर दिया है। पंजाब में कीर्तन करने वाले सभी दलित होते हैं। कीर्तन होने तक उन्हें बराबर माना जाता है और फिर वे अछूत हो जाते हैं।

विशेषांक की अतिथि संपादक सुशीला टाकभौरे ने इन अंकों को तैयार करने से जुड़े अपने अनुभव बाँटे और कहा कि "इन दोनों विशेषांकों का उद्देश्य है इन जातियों में चेतना उत्पन्न करना, गुलामी का एहसास कराना, ब्राह्मणवाद से सावधान होना, मानव गरिमा और स्वाभिमान का एहसास कराना, दलित जातियों में एकता लाना तथा वाल्मीकि एवं सभी सफाईकर्मी जातियों की समस्याओं से समाज को परिचित कराना ताकि उनकी मानसिकता बदले। रमेश चन्द्र मीणा ने अपने आलेख में कहा लोकतंत्र के आधी सदी के बाद भी अगर ऐसी अमानवीय प्रथा इस देश में चल रही है तो यह न केवल एक व्यक्ति व समाज के लिए, अपितु पूरे देश के लिए शर्मनाक है। अजय नावरिया ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा यह तथ्य उजागर हुआ कि अब तक के हिन्दी दलित लेखन में एक जाति विशेष का ही वर्चस्व है और बाकी अन्य सभी दलित जातियाँ नगण्य हैं, इसलिए हाशिये पर भी है।

रत्न कुमार सांभरिया ने कहा—"भारत वर्ष एक मात्र ऐसा देश है, जहाँ सामाजिक व्यवस्था में एक सवर्ण देश है, दूसरा अवर्ण। जिस देश की चर्चा की जा रही है, वह अस्पृश्यों और दलितों में दलित है। जिस का नाम है मेहतर। जयप्रकाश कर्दम ने कहा कि—"रमणिका जी ने हिन्दी ही नहीं बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं जैसे गुजराती, तेलगु, पंजाबी व आदिवासी भाषाओं में भी कई विशेषांक निकाल कर महत्वपूर्ण काम किया है। दलित साहित्यकार विमल थोराट ने कहा कि—"जो लोग कहते हैं दलित जहाँ था वहीं रहेगा, उन्हें अपना नजरिया बदलने की जरूरत है। सभा के अध्यक्ष एवं सफाईकर्मचारी आंदोलन के अध्यक्ष विल्सन बैजवाड़ा ने भावपूर्ण ढंग से अपने अनुभव बताते हुए कहा—"सबके अनुभव अलग-अलग जरूर हैं। परंतु कारण एक ही है, वह है जातिवाद।"

कार्यक्रम का संचालन अनिता भारती ने किया। रमणिका फाउंडेशन के प्रचार प्रभारी सुधीर सागर ने धन्यवाद ज्ञापन दिया।

प्रस्तुति : सुधीर सागर, मीडिया प्रभारी, नई दिल्ली-24

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखा कस्तवार की किताब 'किरदार जिंदा है' लोकार्पित

भोपाल ! हिन्दी आलोचना दोगली हो गयी है। प्रपंचकारी उसकी आँख 'शत्रुलोचन' और 'मित्रलोचन' जैसे निंदनीय जालों से ग्रस्त है। ऐसे में साहित्यिक रचनाओं के किरदारों पर 'किरदार जिंदा है'। प्रसिद्ध कथाकार श्रीमती ममता कालिया ने सुश्री रेखा कस्तवार की किताब 'किरदार जिंदा है' के लोकार्पण समारोह में अध्यक्षीय पद से कहा। आलोचना के पक्षपाती व्यवहार के चलते कई महत्त्वपूर्ण रचनाएँ पाठकों से यथोचित संवाद नहीं बना पाती हैं।

सुश्री रेखा कास्तवार देश के एक सुप्रतिष्ठित हिन्दी अख़बार की महिलाओं पर एकाग्र परिशिष्ट में 'किरदार जिंदा है' शीर्षक से नियमित लिखती रहीं हैं। लोकार्पित कृति में प्रकाशित किरदारों के अलावा तीन अन्य किरदार शामिल हैं, जो पूरी तार्किकता से हमारे समय में सीधा संवाद करते हैं।

'वनमाली सृजनपीठ', 'पहले-पहल' तथा 'सरोकार' की साझेदारी में सोलह मार्च को स्वराज संस्थान में इस आयोजन के मुख्य अतिथि अरविंद जैन थे। मंचासीन 'वनमाली' के अध्यक्ष, यशस्वी साहित्यकार संतोष चौबे और लेखक व समाजसेवी विवेक हिरदे ने भी विचार रहे।

नियमित पाठक रहे विवेक ने कहा, अब भी कई किरदार ऐसे हैं जो रेखा से गरहे विमर्श की दरकार रखते हैं ताकि वे समाज के दुःख-दर्द को आत्मसात कर सकें। अपनी बात रखते हुए रेखा ने विमोचित कृति को सृजनात्मक आलोचना की पुस्तक बताया। साथ ही स्वीकार किया कि स्त्री की सिसकियाँ और चीखें सदियों पुरानी हैं। उन्हें शब्द बाद में मिले। सुप्रसिद्ध कला समीक्षक व कार्यक्रम के संचालक विनय उपाध्याय ने कहा, स्त्री विमर्श नया नहीं लेकिन बार-बार नए अर्थों में हमसे संवाद करता है। नाट्य संस्था 'रंगशीर्ष' के बैनर तले रंगकर्मी संजय मेहता के निर्देशन में कृति में शामिल मंटो की बहुचर्चित कहानी 'लाइसेंस' का कलाकारों ने पाठ किया तथा संजय ने विमर्श के प्रतिक्रियात्मक पत्र को पढ़ा। 'पहले-पहल' के संपादक महेन्द्र गगन, सरोकार' के प्रमुख सूत्रधार मुकेश वर्मा ने मंचासीनों का स्वागत किया।

प्रस्तुति : वसंत सकरगाए

प्रो. कुंवरपाल सिंह द्वारा संपादित दो महत्वपूर्ण पुस्तकें

यशपाल : पुनर्मूल्यांकन

यशपाल का सम्पूर्ण लेखन रूढ़िवाद, धार्मिक अंधविश्वासों और धर्म के नाम पर होनेवाले अन्याय, अनाचार के प्रतिरोध का साहित्य है। उनका मुख्य उद्देश्य वर्ग-चेतना का विस्तार और विकास करना था। इस पुस्तक के माध्यम से हिन्दी रचनाकारों-आलोचकों की चार पीढ़ियों ने अपने-अपने ढंग से यशपाल का मूल्यांकन किया है। यशपाल इतने बड़े लेखक हैं, कि एक पुस्तक में उनका मूल्यांकन सम्भव नहीं है। फिर भी, प्रयास किया गया है कि यशपाल के जीवन और कृतित्व का मूल्यांकन कर, हिन्दी पाठकों को यशपाल-सम्बन्धी नवीनतम और प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हो सके।

डिमाई आकार, सजिल्द, **मूल्य : 600.00**

131844

राही और उनका रचना-संसार

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

राही कबीर के बाद दूसरे बड़े लेखक हैं जिन्होंने तमाम खतरे उठाकर हिन्दू और मुसलमान दोनों साम्प्रदायिक शक्तियों का डटकर मुकाबला किया। प्रस्तुत पुस्तक ऐसे महान रचनाकार के व्यक्तित्व और कृतित्व के अनेकों अनछुए आयामों को मूल्यांकित करती कृति है।

कमलेश्वर के शब्दों में–"राही की रचना का सौन्दर्य उनके विचारों में मौजूद है। यह राही की ऐसी पहचान है जो बहुत कम लेखकों को नसीब होती है। राही अपने अंदाजे-बयां के लिए नहीं, अचूक बात कहने के लिए सराहे जाते हैं। बड़े अनकहे लेकिन बड़े पुख्ता तरीके से राही की आजादी के बाद संक्रमण और उसके तर्कपूर्ण संवेदनात्मक आयामों को मनुष्य के सन्दर्भ में उद्घाटित किया है।"

डिमाई आकार, सजिल्द, **मूल्य : 400.00**

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखें :

शिल्पायन

10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032

दूरभाष : 22821174, 9810101036

e-mail:shilpayan2005@yahoo.co.in • shilpayanbooks@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंबेडकर स्मारक, महू

सामाजिक समरसता का नया तीर्थ

मध्यप्रदेश समरसता का नया तीर्थ बना है बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों के अनुरूप प्रदेश में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के विकास को केन्द्र में रखकर स्वर्णिम मध्यप्रदेश बनाना सरकार का एक मात्र सरोकार है। प्रदेश में मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह ने अनुसूचित जाति पंचायत का समागम कर उनकी बातें सीधे सुनीं आज शिक्षा, रोजगार और प्रशिक्षण के हर क्षेत्र में अनुसूचित वर्ग को नये अवसर मिल रहे हैं। वे शामिल हुये हैं विकास की मुख्यधारा में।

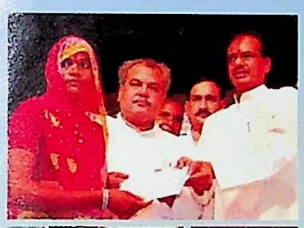

अनुसूचित जाति विकास का उभरता नक्शा

- अस्पृश्यता निवारण में उल्लेखनीय योगदान देने वाली ग्राम पंचायत को एक लाख का पुरस्कार। 48 पंचायतें पुरस्कृत।
- अस्पृश्यता निवारण के लिये अंतरजातीय विवाह करने वाली दम्पति को 50 हजार का पुरस्कार।
- अनुसूचित जाति वर्ग के सामाजिक उत्थान के लिये कार्य करने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं के लिये एक लाख रुपये के संत रविदास स्मृति पुरस्कार की स्थापना।
- अत्याचार से पीड़ितों को त्वरित न्याय दिलाने के लिये 49 विशेष न्यायालयों की स्थापना।
- महू में सामाजिक समरसता के महाकुंभ का बाबा साहेब अम्बेडकर जन्म दिवस पर सालाना आयोजन।
- प्रदेश में अनुसूचित जाति बस्तियों में 32 करोड़ के कार्य।
- मेडीकल एवं इंजीनियरिंग के विद्यार्थियों का निर्वाह भत्ता 740 से 1500 रुपये मासिक किया गया।
- खिलाड़ियों को खेलकूद उपकरणों के लिये आर्थिक सहायता।
- 11वीं में प्रवेश लेने वाली छात्राओं को दी जाने वाली प्रोत्साहन राशि दो से बढ़ाकर तीन हजार की गई।
- शासकीय विभागों में अनुसूचित जाति वर्ग के लोगों से वाहन किराये पर।
- अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिये 749.66 करोड़ रुपये की छात्रवृति वितरित की गई।
- पिछले पांच वर्षों में 227 नये छात्रावासों का निर्माण।
- अनुसूचित जाति के संचालित होस्टलों में 3600 सीटों की क्षमता बढ़ाई गई।
- अनुसूचित जाति के हाईस्कूल विद्यार्थियों का रिजल्ट 84.44 प्रतिशत एवं हायर सेकेण्डरी के विद्यार्थियों का रिजल्ट 87.78 रहा।
- अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिए विशेष तकनीकी प्रशिक्षण। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिए कम्प्यूटर प्रशिक्षण। लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं के लिए प्रोत्साहन।

अभिनव पहल

- 92 डॉ. अम्बेडकर मांगलिक भवन तैयार - 404.78 लाख व्यय।
- अनुसूचित जाति की कला प्रतिभा को सम्मान के लिये अब कबीर पुरस्कार।
- डॉ. अम्बेडकर अनुसूचित जाति स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना - एक करोड़ 60 लाख का प्रावधान।
- अंत्योदय स्वरोजगार योजना के अंतर्गत 11 हजार से अधिक हितग्राही लाभान्वित। 42 करोड़ से अधिक की सहायता वितरित।
- दीनदयाल मार्केट विकास हेतु एक करोड़ रुपये का प्रावधान।
- बहन निवेदिता स्व-सहायता समूह विकास योजना में दो करोड़ 50 लाख का लक्ष्य।
- अंत्योदय मार्केट प्रोत्साहन योजना - 20 लाख का प्रावधान।
- कपिलधारा योजना में अनुसूचित जाति के कूप धारकों को लाभान्वित करने 7 करोड़ रुपयों का लक्ष्य।
- जाति प्रमाण पत्र जारी करने की समयावधि में कमी।
- अनुसूचित जाति बहुल बस्तियों में 113906 लाख रुपये व्यय कर विद्युतीकरण - इस वर्ष 879 लाख का प्रावधान।
- 1905955 छात्र-छात्राओं के लिए 5793 लाख की राज्य छात्रवृति।
- आश्रम छात्रावास योजना में 5600 लाख का बजट प्रावधान।
- विदेश में उच्च शिक्षा के लिये 37 लाख-छात्राओं के लिये 211 लाख की सहायता।

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री
मध्यप्रदेश शासन

विकास से सबको जोड़ता मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसंपर्क द्वारा जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखा कस्तवार की किताब 'किरदार जिंदा है' लोकार्पित

भोपाल ! हिन्दी आलोचना दोगली हो गयी है। प्रपंचकारी उसकी आँख 'शत्रुलोचन' और 'मित्रलोचन' जैसे निंदनीय जालों से ग्रस्त है। ऐसे में साहित्यिक रचनाओं के किरदारों पर 'किरदार जिंदा है'। प्रसिद्ध कथाकार श्रीमती ममता कालिया ने सुश्री रेखा कस्तवार की किताब 'किरदार जिंदा है' के लोकार्पण समारोह में अध्यक्षीय पद से कहा। आलोचना के पक्षपाती व्यवहार के चलते कई महत्त्वपूर्ण रचनाएँ पाठकों से यथोचित संवाद नहीं बना पाती हैं।

सुश्री रेखा कास्तवार देश के एक सुप्रतिष्ठित हिन्दी अख़बार की महिलाओं पर एकाग्र परिशिष्ट में 'किरदार जिंदा है' शीर्षक से नियमित लिखती रहीं हैं। लोकार्पित कृति में प्रकाशित किरदारों के अलावा तीन अन्य किरदार शामिल हैं, जो पूरी तार्किकता से हमारे समय में सीधा संवाद करते हैं।

'वनमाली सृजनपीठ', 'पहले-पहल' तथा 'सरोकार' की साझेदारी में सोलह मार्च को स्वराज संस्थान में इस आयोजन के मुख्य अतिथि अरविंद जैन थे। मंचासीन 'वनमाली' के अध्यक्ष, यशस्वी साहित्यकार संतोष चौबे और लेखक व समाजसेवी विवेक हिरदे ने भी विचार रहे।

नियमित पाठक रहे विवेक ने कहा, अब भी कई किरदार ऐसे हैं जो रेखा से गरहे विमर्श की दरकार रखते हैं ताकि वे समाज के दुःख-दर्द को आत्मसात कर सकें। अपनी बात रखते हुए रेखा ने विमोचित कृति को सृजनात्मक आलोचना की पुस्तक बताया। साथ ही स्वीकार किया कि स्त्री की सिसकियाँ और चीखें सदियों पुरानी हैं। उन्हें शब्द बाद में मिले। सुप्रसिद्ध कला समीक्षक व कार्यक्रम के संचालक विनय उपाध्याय ने कहा, स्त्री विमर्श नया नहीं लेकिन बार-बार नए अर्थों में हमसे संवाद करता है। नाट्य संस्था 'रंगशीर्ष' के बैनर तले रंगकर्मी संजय मेहता के निर्देशन में कृति में शामिल मंटो की बहुचर्चित कहानी 'लाइसेंस' का कलाकारों ने पाठ किया तथा संजय ने विमर्श के प्रतिक्रियात्मक पत्र को पढ़ा। 'पहले-पहल' के संपादक महेन्द्र गगन, सरोकार' के प्रमुख सूत्रधार मुकेश वर्मा ने मंचासीनों का स्वागत किया।

प्रस्तुति : वसंत सकरगाए

प्रो. कुंवरपाल सिंह द्वारा संपादित दो महत्वपूर्ण पुस्तकें

यशपाल : पुनर्मूल्यांकन

यशपाल का सम्पूर्ण लेखन रूढ़िवाद, धार्मिक अंधविश्वासों और धर्म के नाम पर होनेवाले अन्याय, अनाचार के प्रतिरोध का साहित्य है। उनका मुख्य उद्देश्य वर्ग-चेतना का विस्तार और विकास करना था। इस पुस्तक के माध्यम से हिन्दी रचनाकारों-आलोचकों की चार पीढ़ियों ने अपने-अपने ढंग से यशपाल का मूल्यांकन किया है। यशपाल इतने बड़े लेखक हैं, कि एक पुस्तक में उनका मूल्यांकन सम्भव नहीं है। फिर भी, प्रयास किया गया है कि यशपाल के जीवन और कृतित्व का मूल्यांकन कर, हिन्दी पाठकों को यशपाल-सम्बन्धी नवीनतम और प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हो सके।

डिमाई आकार, सजिल्द, **मूल्य : 600.00**

131844

राही और उनका रचना-संसार

राही कबीर के बाद दूसरे बड़े लेखक हैं जिन्होंने तमाम खतरे उठाकर हिन्दू और मुसलमान दोनों साम्प्रदायिक शक्तियों का डटकर मुकाबला किया। प्रस्तुत पुस्तक ऐसे महान रचनाकार के व्यक्तित्व और कृतित्व के अनेकों अनछुए आयामों को मूल्यांकित करती कृति है।

कमलेश्वर के शब्दों में–"राही की रचना का सौन्दर्य उनके विचारों में मौजूद है। यह राही की ऐसी पहचान है जो बहुत कम लेखकों को नसीब होती है। राही अपने अंदाजे-बयां के लिए नहीं, अचूक बात कहने के लिए सराहे जाते हैं। बड़े अनकहे लेकिन बड़े पुख्ता तरीके से राही की आजादी के बाद संक्रमण और उसके तर्कपूर्ण संवेदनात्मक आयामों को मनुष्य के सन्दर्भ में उद्घाटित किया है।"

डिमाई आकार, सजिल्द, **मूल्य : 400.00**

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखें :

शिल्पायन

10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032

दूरभाष : 22821174, 9810101036

e-mail : shilpayan2005@yahoo.co.in • shilpayanbooks@gmail.com

Gurukul Kangri University Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.A.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंबेडकर स्मारक, महू

सामाजिक समरसता का नया तीर्थ

मध्यप्रदेश समरसता का नया तीर्थ बना है बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों के अनुरूप प्रदेश में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के विकास को केन्द्र में रखकर स्वर्णिम मध्यप्रदेश बनाना सरकार का एक मात्र सरोकार है। प्रदेश में मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह ने अनुसूचित जाति पंचायत का समागम कर उनकी बातें सीधे सुनीं आज शिक्षा, रोजगार और प्रशिक्षण के हर क्षेत्र में अनुसूचित वर्ग को नये अवसर मिल रहे हैं। वे शामिल हुये हैं विकास की मुख्यधारा में।

अनुसूचित जाति विकास का उभरता नक्शा

- अस्पृश्यता निवारण में उल्लेखनीय योगदान देने वाली ग्राम पंचायत को एक लाख का पुरस्कार। 48 पंचायतें पुरस्कृत।
- अस्पृश्यता निवारण के लिये अंतरजातीय विवाह करने वाली दम्पति को 50 हजार का पुरस्कार।
- अनुसूचित जाति वर्ग के सामाजिक उत्थान के लिये कार्य करने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं के लिये एक लाख रुपये के संत रविदास स्मृति पुरस्कार की स्थापना।
- अत्याचार से पीड़ितों को त्वरित न्याय दिलाने के लिये 49 विशेष न्यायालयों की स्थापना।
- महू में सामाजिक समरसता के महाकुंभ का बाबा साहेब अम्बेडकर जन्म दिवस पर सालाना आयोजन।
- प्रदेश में अनुसूचित जाति बस्तियों में 32 करोड़ के कार्य।
- मेडीकल एवं इंजीनियरिंग के विद्यार्थियों का निर्वाह भता 740 से 1500 रुपये मासिक किया गया।
- खिलाड़ियों को खेलकूद उपकरणों के लिये आर्थिक सहायता।
- 11वीं में प्रवेश लेने वाली छात्राओं को दी जाने वाली प्रोत्साहन राशि दो से बढ़ाकर तीन हजार की गई।
- शासकीय विभागों में अनुसूचित जाति वर्ग के लोगों से वाहन किराये पर।
- अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिये 749.66 करोड़ रुपये की छात्रवृति वितरित की गई।
- पिछले पांच वर्षों में 227 नये छात्रावासों का निर्माण।
- अनुसूचित जाति के संचालित होस्टलों में 3600 सीटों की क्षमता बढ़ाई गई।
- अनुसूचित जाति के हाईस्कूल विद्यार्थियों का रिजल्ट 84.44 प्रतिशत एवं हायर सेकेण्डरी के विद्यार्थियों का रिजल्ट 87.78 रहा।
- अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिए विशेष तकनीकी प्रशिक्षण। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिए कम्प्यूटर प्रशिक्षण। लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं के लिए प्रोत्साहन।

अभिनव पहल

- 92 डॉ. अम्बेडकर मांगलिक भवन तैयार - 404.78 लाख व्यय।
- अनुसूचित जाति की कला प्रतिभा को सम्मान के लिये अब कबीर पुरस्कार।
- डॉ. अम्बेडकर अनुसूचित जाति स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना - एक करोड़ 60 लाख का प्रावधान।
- अंत्योदय स्वरोजगार योजना के अंतर्गत 11 हजार से अधिक हितग्राही लाभान्वित। 42 करोड़ से अधिक की सहायता वितरित।
- दीनदयाल मार्केट विकास हेतु एक करोड़ रुपये का प्रावधान।
- बहन निवेदिता स्व-सहायता समूह विकास योजना में दो करोड़ 50 लाख का लक्ष्य।
- अंत्योदय मार्केट प्रोत्साहन योजना - 20 लाख का प्रावधान।
- कपिलधारा योजना में अनुसूचित जाति के कूप धारकों को लाभान्वित करने 7 करोड़ रुपयों का लक्ष्य।
- जाति प्रमाण पत्र जारी करने की समयावधि में कमी।
- अनुसूचित जाति बहुल बस्तियों में 113906 लाख रुपये व्यय कर विद्युतीकरण - इस वर्ष 879 लाख का प्रावधान।
- 1905955 छात्र-छात्राओं के लिए 5793 लाख की राज्य छात्रवृति।
- आश्रम छात्रावास योजना में 5600 लाख का बजट प्रावधान।
- विदेश में उच्च शिक्षा के लिये 37 लाख-छात्राओं के लिये 211 लाख की सहायता।

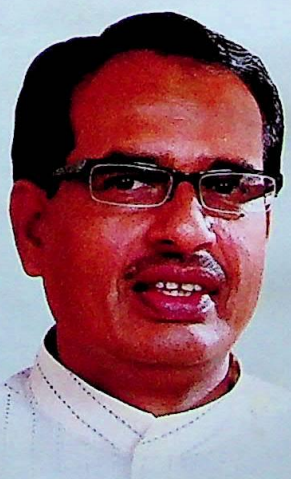

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री
मध्यप्रदेश शासन

विकास से सबको जोड़ता मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसंपर्क द्वारा जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./6

सृजन स्मरण

घुड़सवार घोड़े पर नहीं, हवा पर
सवार है-
हवा न कुछ खाती है, न कुछ
पीती है,
न कुछ माँगती है।

हवा घोड़े से अधिक तेज चलती है,
हवा कहीं नहीं रुकती,
हवा बीच-बीच में
घोड़े की तरह हिनहिनाती है।

श्रीकांत वर्मा
(1931 - 1986)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित त
28, एम.आई.जी., अवन्तिका-।, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल सि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

131844

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar